हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

चतुर्थ भाग

['ज' से 'दस्तदाजी' तक, शब्दसख्या– १९०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट — रामचद्र शुक्ल
अमीरसिह — जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन — रामचद्र वर्मा



संपादकमंडल

सपूर्णानद — कमलापति त्रिपाठी
मगलदेव शास्त्री — धीरेद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड — नगेद्र
हरवशलाल शर्मा — रामधन शर्मा
शिवप्रसाद मिश्र — शिवनदनलाल दर
गोपाल शर्मा — सुधाकर पाडेय
भोलाशकर व्यास (सह० सयो०) — करुणापति त्रिपाठी (सयोजक सपादक)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री — विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा,
वाराणसी ★ नई दिल्ली

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण (दूसरी बार)

सं० २०५२ वि०   सन् १९९५ ई०

प्रतियाँ – ६००

मूल्य – रु० २५०/- मात्र

मुद्रक

श्रीनारायण, नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
के लिए आनन्द प्रिंटिंग प्रेस, जगतगज, वाराणसी
द्वारा (ऑफसेट प्रिंटिंग) मुद्रित।

इस संस्करण के संबंध में

हिंदी शब्दसागर हिंदी का सबसे प्रामाणिक कोश है, जो भारतीय भाषाओ का दिशा निर्देशक है। इसका परिवर्धित, सशोधित, नवीन सस्करण, स० २०२४ वि० सन् १९६७ ई० मे निकला था। इसके भाग क्रमश अनुपलब्ध होते जा रहे है। इसलिए सभा ने यह सकल्प लिया कि इसका दूसरा सस्करण प्रकाशित किया जाय ताकि इसकी उपलब्धता निरन्तर बनी रहे। चौथा भाग इधर कुछ दिनो से अनुपलब्ध था, इसी क्रम मे यह सस्करण उपलब्ध कराया जा रहा है।

आशा है, अपने गुण धर्म के कारण इस कोश का उपयोग और प्रयोग हिंदी जगत् निरन्तर करता रहेगा।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
स० २०५२ वि०
१८ अगस्त १९९५ ई०

सुधाकर पांडेय
प्रधानमत्री
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र मे भारतीय भाषाओ के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओ ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरतर यह ग्रथ इस क्षेत्र मे गभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रथ के रूप में इसका मूल्य लोगो को सहस्र मुद्राओ से भी अधिक देना पडा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशो का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरतर इसकी पुन अवतारणा का गभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बडे व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० सपूर्णानद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एव हिंदीजगत् का ध्यान निम्नाकित शब्दो मे इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ गया है। हिंदी मे एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् सस्करण निकालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारो का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया सस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला सस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातो में और हिंदी के अलावा ससार में बहुत बातो में बडी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियो के लिये भी साधारणत पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयो का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया सस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षो मे बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम मे अग्रसर होगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन सपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामत्रालय ने अपने पत्र स० एफ।४—३।५४ एच० दिनाक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षो मे, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमडल का गठन किया गया, इस सबध में देश के विभिन्न क्षेत्रो के अधिकारी विद्वानो की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानो की राय के अनुसार इस कार्य का सयोजन करना चाहती थी, वह भी नही उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानो तथा परामर्शमडल के सदस्यो ने गभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के सपादन हेतु सिद्धात स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरतर पाँच वर्षो तक केंद्रीय शिक्षा मत्रालय देता रहा और कोश के सशोधन, सवर्धन और पुन सपादन का कार्य लगातार होता रहा, परतु इस अवधि मे सारा कार्य निपटाया नही जा सका। मत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बडे मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की सस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुन उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार सपूर्ण कोश का सशोधन सपादन दिसबर, १९६५ मे पूरा हो गया।

इस ग्रथ के सपादन का सपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्यभार का ६० प्रतिशत बोझ भी भारत सरकार ने वहन किया है इसी लिये यह ग्रथ इतना सस्ता निकालना सभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मत्रालय के अधिकारियो का प्रशसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप मे यह ग्रथ हिंदीजगत् के समुख उपस्थित किया जा रहा है उसमे अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रथो के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव मे वैसा कर सकना सभव नही हुआ। फिर भी यह कहने मे हमे सकोच नही कि अद्यतन प्रकाशित कोशो मे शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओ के कोशो मे अतुलनीय है, और इस क्षेत्र मे काम करनेवाले प्राय सभी क्षेत्रीय भाषाओ के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेगे। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का सकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और सशोधन के लिये कोशशिल्प सबधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस सशोधित प्रवर्धित रूप मे शब्दो की सख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल सत एव सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से सकलित किए गए है। परिशिष्ट खड मे प्राविधिक एव वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दो की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह सशोधित परिवर्धित सस्करण कुल दस खडो में पूरा होगा। इसका पहला खड पौष, सवत् २०२२ वि० मे छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतत्र के प्रधान मत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पौष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पडाल मे काशी, प्रयाग एव अन्यान्य स्थानो के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियो, पत्रकारो तथा गण्यमान्य नागरिको की उपस्थिति मे सपन्न हुआ। समारोह मे उपस्थित महानुभावो मे विशेष उल्लेख्य माननीय श्री प० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान सपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री प० सुमित्रानदन जी पत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस सशोधित सवर्धित सस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य मे इसके समस्त सपादको को एक एक फाउटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलो द्वारा भेंट की गई। उन्होने अपने सक्षिप्त सारगर्भित भाषण मे इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा 'सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढग की अकेली सस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी सस्था ने नही की। भिन्न भिन्न विषयो पर जो पुस्तके इस सस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढग के अनूठे ग्रथ है और उनमे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ मे लिए हैं जिनकी इस समय नितात आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र मे यह सभा अप्रतिम है'।

प्रस्तुत चतुर्थ खड मे 'ज' से लेकर 'दम्नदामी' तक के शब्दो का सचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, यौगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य सामग्री 'विशेष' से सवलित इस भाग की शब्दसख्या लगभग १९००० है। अपने मूल रूप में यह अश कुल ५२९ पृष्ठो मे था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित सशोधित सस्करण मे ५७६ पृष्ठो मे आ पाया है।

सपादकमडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण मे योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड नियमित रूप से नित्य सभा मे पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गभीरतापूर्वक गति देते रहे और प० करुणापति त्रिपाठी ने इसके सपादन और सयोजन में प्रगाढ निष्ठा के साथ पग पग, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य सपन्न होना सभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। सभव है, हम सबके प्रयत्न मे त्रुटियाँ हो, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहे क्योकि ऐसे ग्रथ का कार्य अस्थायी नही सनातन है।

अत मे शब्दसागर के मूल सपादक तथा सभा के सस्थापक स्व० डा० श्यामसुदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुन दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र मे यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया सस्करण और भी अधिक प्रभोज्ज्वल होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी
विजया दशमी, २०२४ वि०

सुधाकर पाडेय
प्रधान मत्री

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं।]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वाँ सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद विहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कलामंदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खंड] संपा० आर० शामशास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अष्टांग (शब्द०)	अष्टांगयोगसंहिता
आँधी	आँधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
आत्रेय अनुक्रमणिका (शब्द०)	आत्रेय अनुक्रमणिका
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं० १९५३ ई०
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनंदघन (शब्द०)	कवि आनंदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद, प्र० सं०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९५४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यों०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा०, ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ सं०
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय,' प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०
एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०

कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढ़ी०	कढ़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट मिर्जापुर, प्र० सं०
कबीर ग्र ०	कबीर ग्रंथावली, सपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी २००७ वि०
कबीर म०	कबीर मंसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, सन् १९०८
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० स०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद प्र० स०
कविंद (शब्द०)	कविंद कवि
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१–४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० स०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम स०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम स०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ९वाँ स०
काले०	काले कारनामे, 'निराला,' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० स०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कीर्ति०	कीर्तिलता, स० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्र ०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूँट
कोई कवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कुलार्णव तंत्र (शब्द०)	कुलार्णव तंत्र
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, सपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चंद हसीनों के खतूत पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ स०
खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
गंग ग्र ०	गंग कवित्त [ग्रंथावली], संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २९वाँ स०
गालिब०	गालिब की कविता, स० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी, प्र० स०
गि० दा०, गि० दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र०

गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि
चंद	चंद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
चरण (शब्द०)	चरणदास
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'अश्क', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति
चिता	चिता, प्रयाग सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला,' किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
छीत०	छीत स्वामी, संपा० व्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत् २०१२
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जनानी०	जनानी ड्योढ़ी, अनु० यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
ढोला०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०

प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
परमानंद०	परमानंदसागर
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९६ वि०
पलटू०	पलटू साहब की बानी [१-३ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०
पारिजात०	पारिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली संपा० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबंध०	प्रबंधपद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला,' सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूर्णसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय राघव, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बाँकी० ग्रं०, बाँकीदास ग्रं०	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० रामनारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बंदन०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बलबीर (शब्द०)	बलबीर कवि
बाँगेदरा	बाँगेदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बीसल० रास	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपालसिंह ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बृहत्०	बृहत्संहिता
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला,' हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०

बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मिणी री, स० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९३१ ई०
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा
ब्रज०	ब्रजविलास, सपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्र०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, सपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, तृ० स०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि स०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सवत् १९६०
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रु०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९३३ वि०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५९ वि०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम स०।
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचद्र विद्यालकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० स० १९८७ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्र०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], सपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड सस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, प० सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्र०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी
भीखा श०,	भीखा शब्दावली प्र० स०
भुवनेश (शब्द०)	भुवनेश कवि
भूषण ग्र०	भूषण ग्रंथावली, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्र०स०
मति० ग्र०	मतिराम ग्रंथावली, सपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० स०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवशराय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९३९ ई०
मधुज्वाल	मधुज्वाल सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० स०
मनविरक्त०	मनविरक्तकरन गुटका सार (चरणदास)
मनु०	मनुस्मृति
मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
मलूक० बानी	मलूकदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
महावीर प्रसाद (शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ स०
माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० स०, १८९९ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव	मानव, कवितासकलन, भगवतीचरण वर्मा
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० स०
मानस	रामचरितमानस, सपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० स०, १९५० ई०
मुंशी अभि० ग्र०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, सपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
मृग०	मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना–४, प्र० स०

मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णविहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० स०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० स०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० स०
योग०	योगवाशिष्ठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण, बंबई स० १९६७ वि०
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांरो, सपा० महतावचंद्र खारेड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, सपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० स०, १९८२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नपरीक्षा (शब्द०)	रत्नपरीक्षा
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०
रस०	रसमीमांसा, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०
रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय स०
रसखान०	रसखान और घनानंद, सपा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० स०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम रसखान
रस र०, रसरतन	रसरतन, सपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना

राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० स०
रा० रू०	राजरूपक, सपा० पं० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, सपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ स०
रामकवि (शब्द०)	राम कवि
राम० च०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, सपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ स०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
राम० धर्म० स०	रामस्नेह धर्म संग्रह, सपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रामरसिक०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, संपा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय पटना, प्र० सं०
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लूलाल
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम स०
लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्ण०, वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, सपा० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० स०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० स०
विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी

व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास
व्रज (शब्द०)	व्रज (शब्द०)
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शंकर०	शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, आगरा, प्र० सं०
शंभु (शब्द०)	शंभु कवि
शकु०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शाहजहाँनामा (शब्द०)	शाहजहाँनामा
शार्ङ्गधर सं०	शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १९७१
शिखर०	शिखर वंशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १९८५
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि
शुक्ल० अभि० ग्रं०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन
शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
शृंगार सुधाकर (शब्द०)	शृंगार सुधाकर
शेर०	शेर ओ सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० सं०
संतवाणी०, संत०सार०	संतवाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
सन्यासी,	सन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी
स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सत्य०	कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान [महाभारत]
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, संपा० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
सा० लहरी	साहित्यलहरी, संपा० रामलोचनशरण विहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
साहित्य०	साहित्यालोचन
सुंदर० ग्रं०	सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता
सुंदरीसिंदूर (शब्द०)	सुंदरी सिंदूर
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुधाकर (शब्द०)	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०
सुंदर (शब्द०)	सुंदर कवि
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूरसागर [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर० (राधा०)	सूरसागर संपा० राधाकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि
सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०

सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
सौ अजान० (शब्द०)	सौ अजान और एक सुजान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
स्वामी हरिदास(शब्द०)	स्वामी हरिदास
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० सपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक
हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)
हम्मीर०	हम्मीरहठ, सपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
ह० रासो०	हम्मीर रासो, सपा० डा० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चद्र
हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित् - एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना. प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना
हिं० का० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, ड० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० स०
हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हिम त०	हिमतरगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० स०
हुमायूं	हुमायूंनामा, अनु० व्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० स०
हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी	अव्य०	अव्यय
अ०	अरबी	इब०	इबरानी
अक० रूप	अकर्मक रूप	उ०	उदाहरण
अनु०	अनुकरण शब्द	उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक	उडि०	उड़िया
अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक	उप०	उपसर्ग
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप	उभय०	उभयलिंग
अप०	अपभ्रंश	एकव०	एकवचन
अर्ध मा०	अर्धमागधी	कहावत	कहावत
अल्पा०	अल्पार्थक	काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
अव०	अवधी	[को०], (को०)	अन्य कोश

कोंक०	कोंकणी	फा०	फारसी
क्रि०	क्रिया	बंग०	बंगला भाषा
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	बरमी०	बरमी भाषा
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	बहुव०	बहुवचन
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	बुं० ख०	बुंदेलखंड की बोली
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	बोल०	बोलचाल
क्व०	क्वचित्	भाव०	भाववाचक संज्ञा
गीत	लोकगीत	भू०	भूमिका
गुज०	गुजराती	भू० कृ०	भूत कृदंत
ची०	चीनी भाषा	मरा०	मराठी
छं०	छंद	मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
जापा०	जापानी	मला०	मलायम भाषा
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	मि०	मिलाइए
जी०, जीवन०	जीवनचरित्	मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
ज्या०	ज्यामिति	मुहा०	मुहावरा
ज्यो०	ज्योतिष	यू०	यूनानी
डिं०	डिंगल	यौ०	यौगिक
त०	तमिल	राज०	राजस्थानी
तर्क०	तर्कशास्त्र	लश०	लशकरी
ति०	तिब्बती भाषा	ला०	लाक्षणिक
तु०	तुर्की	लै०	लैटिन
दू०	दूहा या दूहला	व० कृ०	वर्तमान कृदंत
दे०	देखिए	वि०	विशेषण
देश०	देशज	वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक
देशी	देशी	वै०	वैदिक
धर्म०	धर्मशास्त्र	व्या०	व्याकरण
नाम०	नामधातु	(शब्द०)	शब्दसागर
ना० धा०	नामधातुज क्रिया	सं०	संस्कृत
नामिक धातु	नामिक धातु	संयो०	संयोजक अव्यय
ने०	नेपाली	संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र	स०	सकर्मक
पं०	पंजाबी	सक० रूप	सकर्मक रूप
परि०	परिशिष्ट	सधु०	सधुक्कड़ी भाषा
पा०	पाली	सर्व०	सर्वनाम
पुं०	पुंलिंग	स्पे०	स्पेनी भाषा
पुर्त०	पुर्तगाली	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
पु० हिं०	पुरानी हिंदी	स्त्री०	स्त्रीलिंग
पू० हिं०	पूर्वी हिंदी	हिं०	हिंदी
पृ०	पृष्ठ	(पु)	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
प्रत्य०	प्रत्यय	>	व्युत्पन्न
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना	†	प्रांतीय प्रयोग
प्रा०	प्राकृत	‡	ग्राम्य प्रयोग
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप	√	धातुचिह्न
फ०	फरांसीसी भाषा	*	संभाव्य व्युत्पत्ति
फकीर०	फकीरों की बोली	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

ज

ज—हिंदी वर्णमाला मे चवर्ग के अंतर्गत एक व्यंजन वर्ण। यह स्पर्श वर्ण है और चवर्ग का तीसरा अक्षर है। इसका बाह्य प्रयत्न सवार और नाद घोष है। यह अल्पप्राण माना जाता है। 'झ' इस वर्ण का महाप्राण है। 'च' के समान ही इसका उच्चारण तालु से होता है।

जंकशन—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह स्थान जहाँ दो या अधिक रेलवे लाइनें मिली हों। जैसे,—मुगलसराय जंकशन। २ वह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। संगम। जैसे,—कालेज स्ट्रीट और हैरिसन रोड के जंकशन पर गहरा दंगा हो गया।

जंग[1]—संज्ञा स्त्री० [फा०, सं० जङ्ग] [वि० जंगी] लड़ाई। युद्ध। समर। उ०—सरदलाम करि हल्ल जंग हूहूँ ओर मचाइय। सनमुख अरि हट्टि सुभट बहु कट्टि हटाइय।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

यौ०—जंगआवर। जंगजू।

जंग[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० जंक] एक प्रकार की बड़ी नाव जो बहुत चौड़ी होती है।

क्रि० प्र०—खोलना।

जंग[3]—संज्ञा पुं० [फा० जंग] १ लोहे का मुरचा। धातुजन्य मैल।

क्रि० प्र०—लगना।

२ घंटा। घड़ियाल (को०)। ३. हबशियों का देश (को०)।

जंगआवर—वि० [फ़ा०] लड़नेवाला योद्धा। लड़ाका।

जंगजू—वि० [फा०] लड़ाका। वीर। योद्धा। उ०—और सुना है प्रताप बड़े जोश के साथ फौज मुहय्या कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।—महाराणा प्रताप (शब्द०)।

जंगम[1]—वि० [सं० जङ्गम] १ चलने फिरनेवाला। चलता फिरता। चर। उ०—पुष्पराशि समान उसकी देख पावन कांति। भूप को होने लगी जंगम लता की भ्रांति।—शकुं०, पृ० ७। २. जो एक स्थल से दूसरे स्थल पर लाया जा सके। जैसे, जंगम संपत्ति, जंगम विष। ३. गमनशील प्राणी से उत्पन्न या प्राणिजन्य।

जंगम[2]—संज्ञा पुं० दाक्षिणात्य लिंगायत शैव संप्रदाय के गुरु।

विशेष—ये दो प्रकार के होते हैं—विरक्त और गृहस्थ। विरक्त सिर पर जटा रखते हैं और कौपीन पहनते हैं। इन लोगों का लिंगायतों मे बड़ा मान है।

३ गमनशील यति। जोगी। उ०—कहँ जंगम तु कौन नर क्यों आगम ह्याँ कीन।—पृ० रा०, ६। २२। ४. जाना। गमन। उ०—तिन रिषि पूछिय ताहि, कवन कारन इह आगम। कवन थान, किहि नाम, कवन दिसि करिव सु जंगम।—पृ० रा०, १। ५६१।

जंगमकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्गमकुटी] छतरी (को०)।

जंगमगुल्म—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमगुल्म] पैदल सिपाहियों की सेना।

जंगम विष—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमविष] वह विष जो चर प्राणियों के दंश, आघात या विकार आदि से उत्पन्न हो।

विशेष—सुश्रुत ने सोलह प्रकार के जंगम विष माने हैं—दृष्टि, निश्वास, दंष्ट्रा, नख, मूत्र, पुरीष, शुक्र, लाला, आर्तव, आल (डाढ़), मुखसंदेश, अस्थि, पित्त, विशर्द्धित, शूक और शव या मृत देह। उदाहरण के लिये जैसे, दिव्य सर्प के श्वास में विष, साधारण सर्प के दंश में विष; कुत्ते, बिल्ली, बंदर, गोह आदि के नख और दाँत में विष; बिच्छू, भिड़, सकुची मछली आदि के डाढ़ में विष होता है।

जंगल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] [वि० जंगली] १. जलशून्य भूमि। रेगिस्तान। २ वन। कानन। अरण्य।

मुहा०—जंगल खँगालना = जंगल में भ्रमना। जंगल की जाँच पड़ताल करना या छानना। जंगल में मंगल = सुनसान स्थान में चहल पहल। जंगल जाना = टट्टी जाना। पाखाने जाना।

३. माँस। ४ एकांत या निर्जन स्थान (को०)। ५. बंजर भूमि। ऊसर (को०)।

जंगल जलेबी—संज्ञा पुं० [हिं० जंगल + जलेबी] १ गू। गलीज। गू का लेंड़। २. घरियारे की जाति का एक पौधा जिसके पीले रंग के फूल के अंदर कुंडलाकार लिपटे हुए बीज होते हैं। जलेबी।

जंगला[1]—संज्ञा पुं० [पुर्त० जेंगिला] १ खिड़की, दरवाजे, बरामदे आदि में लगी हुई लोहे की छड़ों की पंक्ति। कटहरा। बाड़। २. चौखट या खिड़की जिसमें जाली या छड़ लगी हों। जंगला।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. दुपट्टे आदि के किनारे पर काढ़ा हुआ बेल बूटा।

जंगला[2]—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गल्य] १. संगीत के बारह मुकामों में से एक। २ एक राग का नाम। ३. एक मछली जो बारह इंच लंबी होती है और बंगाल की नदियों में बहुत मिलती है। ४ अन्न के वे पेड़ या डंठल जिनसे कूटकर अन्न निकाल लिया गया हो।

जंगली—वि० [हिं० जंगल] १ जंगल में मिलने या होनेवाला। जंगल संबंधी। जैसे, जंगली लकड़ी, जंगली कंडा। २ आपसे आप होनेवाला (वनस्पति)। बिना बोए या लगाए उगनेवाला। जैसे, जंगली आम, जंगली कपास। ३. जंगल में रहनेवाला। बनैला। जैसे, जंगली आदमी, जंगली जानवर, जंगली हाथी। ४. जो घरेलू या पालतू न हो। जैसे, जंगली कबूतर। ५ असभ्य। उजड्ड। बिना सलीके का। जैसे, जंगली आदमी।

जंगली बादाम—संज्ञा पुं० [हिं० जंगली+बादाम] १. कतीले की जाति का एक पेड़ । पून । पिनार ।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष के पश्चिमी घाट के पहाड़ों तथा मर्तबान और टनासरिन के ऊपरी भागों में होता है । इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है । यह पेड़ फागुन चैत में फूलता है और इसके फूलों से बड़ी दुर्गंध आती है । इसके फलों के बीज को उबालकर तेल निकाला जाता है । इन बीजों को महँगी के दिनों में लोग भूनकर भी खाते हैं । फूल और पत्तियाँ औषध के काम मे आती हैं । इसे पून और पिनार भी कहते हैं ।

२. हड़ की जाति का एक पेड़ ।

विशेष—यह अंडमन के टापू तथा भारतवर्ष और बर्मा में भी उत्पन्न होता है । इसकी छाल से एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसके बीज से एक प्रकार का बहुमूल्य तेल निकलता है जो गंध और गुण में बादाम के तेल के समान ही होता है । इसकी पत्तियाँ कसैली होती हैं और चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं । इसके बीज को लोग गजक की तरह खाते हैं और इसकी खली सुअरों को खिलाई जाती है । इसकी छाल, पत्ती, बीज, तेल आदि सब औषध के काम में आते हैं । लोग इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को भी खिलाते हैं । इसे हिंदी बदाम और नट बदाम भी कहते हैं ।

जंगली रेंड़—संज्ञा पुं० [हिं० जंगली+रेंड़] दे० 'बन रेंड' ।

जंगूला—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगूला] घुंघरू का दाना । बोर ।

जंगार—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगार] [वि० जंगारी] १. ताँबे का कसाव । तूतिया । २. एक प्रकार का रंग । उ०—तस्वीर वही संगरको जंगार में पाया ।—कबीर मं०, पृ० ३१० ।

विशेष—यह ताँबे का कसाव है जिसे सिरकाकश लोग निकालते हैं । वे ताँबे के चूर्ण को सिरके के अर्क में डाल देते हैं । सिरके का बरतन रात भर मुँह बंद करके और दिन को मुँह खोल करके रखा रहता है । चौबीस घंटे के बाद सिरके को उस बरतन से निकालकर छिछले बरतन में सूखने के लिये रख देते हैं । जब पानी सूख जाता है तब उसके नीचे चमकीली नीले रंग की बुकनी निकलती है जो रँगाई के काम में आती है ।

जंगारी—वि० [फ़ा० जंगार] नीले रंग का । नीला ।

जंगाल[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगार] दे० 'जंगार' । उ०—और पपाल रंग तेहि माई । येहि बिधि पाँचो तत दरसाई ।—घट०, पृ० २३८ ।

जंगाल[2]—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गाल] पानी रोकने का बाँध ।

जंगाली[1]—वि० [फ़ा० जंगार] दे० 'जंगारी' । उ०—स्यामी सुरख सफेदी होई । जरद जाति जंगाली सोई ।—घट०, पृ० ९७ ।

जंगाली[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो चमकीले नीले रंग का होता है ।

जंगालीपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंगाली+पट्टी] गंधा बिरोजा की बनी नीले रंग की पट्टी जो घोड़े के सुमों पर लगाई जाती है ।

जंगी[1]—वि० [फ़ा०] १. लड़ाई से संबंध रखनेवाला । जैसे, जंगी जहाज, जंगी कानून । २. फौजी । सैनिक । सेना संबंधी । जैसे, जंगी लाट, जंगी अफसर ।

यौ०—जंगी लाट = प्रधान सेनापति ।

३. बड़ा । बहुत बड़ा । दीर्घकाय । जैसे, जंगी घोड़ा । ४ वीर । लड़ाका । बहादुर । जैसे, जंगी आदमी । ५. स्वस्थ । पुष्ट । जैसे, जंगी जवान ।

जंगी[2]—संज्ञा पुं० [देश०] (कहारों की बोलचाल में) घोड़ा । जैसे,—दाहुने जंगी, बचा के ।

जंगी[3]—वि० [फ़ा०] जंगबार का । हबश देश का । जैसे, जंगी हड़ ।

जंगी[4]—संज्ञा सं० जंगबार देश का निवासी । हबशी ।

जंगी जहाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगी+अ० जहाज] लड़ाई के काम का जहाज । युद्धपोत ।

जंगी बेड़ा—संज्ञा पुं० [फा० जंगी+हिं० बेड़ा] लड़ाकू जहाजों का समूह । युद्धपोतों का काफिला ।

जंगी हड़—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंगी+हिं० हड़] काली हड़ । छोटी हड़ ।

जंगुल—संज्ञा पुं० [सं० जंगुल] जहर । विष ।

जंगे जरगरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंगेजरगरी] केवल दिखावटी या झूठमूठ की लड़ाई । कूटयुद्ध [को०] ।

जंगेला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चौरी, मामरी और रुही भी कहते हैं । वि० दे० 'रुही' ।

जंगैं—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंगी] बड़ी घुँघरू लगी कमरपट्टी जिसे अहीर या धोबी अपने जातीय नाच के समय कमर में बाँधते हैं ।

जंगोजदल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंगो+अ० जदल] रक्तपात । मारकाट । लड़ाई झगड़ा । उ०—नई हमको हर्गिज है वह बल । ता उससे करें हम जंगोजदल ।—दक्खिनी०, पृ० २२२ ।

जंगोजिदाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगो+अ० जिदाल] दे० 'जंगोजदल' ।

जंघ[1] (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घा] दे० 'जंघा' । उ०—जानु जंघ त्रिभंग सुंदर कलित कंचन दंड । काछनी कटि पीत पट दुति, कमल केसर खंड ।—सूर०, १।३०७ ।

जंघ[2]†—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घा] जाँघ में पहनी जानेवाली जाँघिया ।

जंघा—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घा] १ पिंडली । २. जाँघ । रान । उरु । ३. कैंची का दस्ता जिसमें फल और दस्ताने लगे रहते हैं । यह प्राय: कैंची के फलों के साथ ढाला जाता है पर कभी कभी यह पीतल का भी होता है ।

जंघाकर, जंघाकार—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाकर, जङ्घाकार] हरकारा । धावक [को०] ।

जंघात्राण—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में जाँघों की रक्षा के काम में उपयोगी कवच [को०] ।

जंघापथ—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घापथ] पैदल रास्ता [को०] ।

जंघाफार—संज्ञा पुं० [हिं० जंघा+फारना] कहारों की बोली में

वह खाई जो पालकी के उठानेवाले कहारों के रास्ते में पड़ती है।

जंघाबंधु—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाबन्धु] एक ऋषि का नाम [को०]।

जंघाबल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाबल] दौड़ने की शक्ति। जाँघ की ताकत [को०]।

जंघामथानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + मथानी] छिनाल स्त्री। पुंश्चली। कुलटा।

जंघार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + आर] वह फोड़ा जो जाँघ में हो।

विशेष—यह आकृति में लंबा और कड़ा होता है और बहुत दिनों में पकता है। इसमें अधिक पीड़ा और जलन होती है।

जंघारथ—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारथ] १. एक ऋषि का नाम। २ जंघारथ नामक ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

जंघारा—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० जञ्ज (=लड़ना), या सं० जङ्ग (=युद्ध) + हिं० आर (प्रत्य०)] राजपूतों की एक जाति जो बड़ी झगड़ालू होती है। उ०—तब जंघारो बीर बर स्वामि सु आगे आइ।—पृ० रा०, ६१। २४००।

जंघारि—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारि] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

जंघाल[1]—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाल] १ धावन। धावक। दूत। २ भावप्रकाश के अनुसार मृग की सामान्य जाति।

विशेष—इस जाति के अंतर्गत हरिण, एण, कुरंग, ऋष्य, पृषत, न्यंकु, शबर, राजीव, मुंडी आदि हैं। तामड़े रंग के हिरन को हरिण, कृष्णवर्ण को एण, कुछ ताम्र वर्ण लिए काले को कुरंग, नीलवर्ण को ऋष्य, हरिण से कुछ छोटे चंद्रबिंदुयुक्त को पृषत, बहुत से सींगोंवाले को मृग, न्यंकु इत्यादि कहते हैं।

जंघाल[2]—वि० वेग से दौड़नेवाला [को०]।

जंघिल—वि० [सं० जङ्घिल] शीघ्रगामी। फुर्तीला। प्रजवी। तेजी से दौड़नेवाला [को०]।

जंजपूक—संज्ञा पुं० [सं० जञ्जपूक] मंद स्वर से जप करनेवाला भक्त। उ०—जंजपूक गठरी सो बैठयो झुको कमर सन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६।

जंजबील—संज्ञा स्त्री० [अ० जंजबील] सोंठ। सूखी अदरक। सुंठि [को०]।

जंजर[1]†(पु)—वि० [सं० जर्जर] दे० 'जंजल'।

जंजर[2](पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ंजीर] शृंखला। जंजीर। उ०—सबई लगि दिढ़ जंजर जेरी। मोह लोह की पाइनि बेरी।—नंद० ग्रं०, पृ० २७३।

जंजरित(पु)—वि० [हिं० जं (= जनु) + सं० जटित, हिं० जरित] ग्रथित सा। जड़ा हुआ सा। उ०—नयन उदय पुंडरिक प्रसन भ्रमरीय सु राजै। गुजहार जंजरित तड़ित बद्दरि सु विराजै।—पृ० रा० २। ५१०

जंजल(पु)†—वि० [सं० जर्जर, प्रा० जज्जर] पुराना और कमजोर। बेकाम। जीर्ण शीर्ण।

जंजार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] दे० 'जंजाल' उ०—कहा पढ़ावे बावरे और सकल जंजार।—संत र०, पृ० १४१।

जंजाल(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] [वि० जंजालिया, जंजाली] १ प्रपंच। झंझट। बखेड़ा। उ०—अस प्रभु दीनबंधु हरि, कारन रहित दयाल। तुलसिदास सठ ताहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।—तुलसी (शब्द०)। २. बंधन। फँसाव। उलझन। उ०—(क) आज्ञा ले के चल्यो नृपति वहँ उत्तर दिशा विशाल। करि तप विप्र जनम जब लीन्हों, मिटयो जन्म जंजाल।—सूर० (शब्द०)। (ख) हृदय की कबहुँ न पीर घटी। दिन दिन हीन छीन भई काया, दुख जंजाल जटी।—सूर० (शब्द०)।

मुहा०—जंजाल तोड़ना = बंधन या फँसाव को दूर करना। उ०—भव जंजाल तोरि तरु बन के पल्लव हृदय बिदारो।—सूर० (शब्द०)। जंजाल में पड़ना या फँसना = कठिनता में पड़ना। संकट मे पड़ना। उलझन में फँसना।

३ पानी का भँवर। ४. एक प्रकार की बड़ी पलीतेदार बंदूक जिसकी नाल बहुत लंबी होती है। यह बहुत भारी होती है और दूर तक मार करती है। उ०—सूरज के सूरज नहिं लुट्टिय। तुपक तेग जंजालन छुट्टिय।—सूदन (शब्द०)। ५. एक बड़े मुँह की तोप। इसमें कंकड़ पत्थर आदि भरकर फेंके जाते थे। यह बहुधा किले का धुस तोड़ने के काम में आती थी। ६. बड़ा जाल।

जंजालिया—वि० [हिं० जंजाल + इया (प्रत्य०)] १. जंजाल या जंजाल रचनेवाला। बखेड़ा करनेवाला। उ०—वाह रे ईश्वर! तेरे सरीखा जंजालिया कोई जालिया भी न निकलैगा।—श्यामा०, पृ० ५। २. झगड़ालू। उपद्रवी। फसादी।

जंजाली[1]—वि० [हिं० जंजाल] झगड़ालू। बखेड़िया। फसादी।

जंजाली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंजाल] वह रस्सी और घिरनी जिससे पाल चढ़ाते या गिराते हैं।

जंजीर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ंजीर] [वि० जंजीरी] १ साँकल। सिकड़ी। कड़ियों की लड़ी। जैसे, लोहे की जंजीर। उ०—तुम सु छुड़ावहु मत कहु, बहुरि जरहु जंजीर।—पृ० रा०, ६। १६२। २. बेड़ी।

मुहा०—जंजीर डालना = पैर में बेड़ी डालना। बाँधना। बंदी करना। पैर में जंजीर पड़ना = (१) जंजीर में जकड़ा जाना। बंदी होना। (२) स्वच्छंदता का अपहरण होना। बाधा या विवशता। उ०—प्रीतम बसत पहार पर, हम जमुना के तीर। अब तो मिलना कठिन है, पाँव परी जंजीर।—(शब्द)।

३. किवाड़ की कुंडी या सिकड़ी।

मुहा०—जंजीर बजाना = कुंडी खटखटाना। जंजीर लगाना = कुंडी बंद करना।

जंजीरखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ंजीरखानह्] कारागृह। बंदीगृह। कैदखाना [को०]।

जंजीरा—संज्ञा पुं० [हिं० जंजीर] एक प्रकार की सिलाई जो देखने में जंजीर की तरह मालूम पड़ती है। यह [illegible]

कर सी जाती है और यह केवल कसीदे और सूईकारी में काम आती है। लहरिया।

क्रि० प्र०—डालना।

जंजीरि(पु)—वि० [हिं० जंजीर+ई] जंजीरदार। जिसमें जंजीर लगी हो।

जंजीरी—वि० [फ़ा० जंजीरी] १ जंजीरेदार। २ जंजीर में बँधा। बंदी (को०)।

मुहा०—जंजीरी गोला=तोप के वे गोले जो कई एक साथ जंजीर में लगे रहते हैं। ये साधारण गोलों की अपेक्षा अधिक भयानक होते हैं।

जंजीरेदार—वि० [हिं० जंजीरा+दार] जिसमें जंजीरा पड़ा हो। जंजीरा डाला हुआ। लहरियादार।

विशेष—यह केवल सिलाई के लिये प्रयुक्त होता है। जैसे, जंजीरेदार सिलाई।

जंट—संज्ञा पुं० [अं० ज्वाइंट] जिला मजिस्ट्रेट के नीचे का सिवीलियन मजिस्ट्रेट। जंट मजिस्टर।

जंटिलमैन—संज्ञा पुं० [अं०] १ भलामानुस। सभ्य पुरुष। २. अंगरेजी चाल ढाल से रहनेवाला आदमी। उ०—तुम लोग अभी जंटिलमैन से ट्रीट करना बिलकुल नहीं जानता।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ७६।

जंड—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली पेड़ जिसे साँगर भी कहते हैं। इसकी फलियों का अचार बनाया जाता है। उ०—डेले, पीलू, आक और जंड के कुहमुडाए वृक्ष।—ज्ञानदान, पृ० १०३।

जंडैल[1]—वि० [हिं० जट+एल (प्रत्य०)] १ प्रधान। बड़ा। २. स्वस्थ। तंदुरुस्त। हृष्टाकट्टा।

जंडैल[2]†—संज्ञा पुं० [अं० जनरल] सैनिक अफसर। नायक। उ०—झलकारी ने टोकने के उत्तर में कहा—हम तुम्हारे जंडैल के पास जाउता है।—झाँसी०, पृ० ४३५।

जंत[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० जन्तु] प्राणी। जीव। जंतु। उ०—कर्मंहि करि उपजत ये जंत। कर्मंहि करि पुनि सबकौ अंत।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०६।

यौ०—जीवजंत=जीव जंतु। उ०—(क) जीवजंत घन विघन वन जीव जीव बल छीन।—पृ० रा०, ६। २२। (ख) जा दिन जीव जंत नहीं कोई।—रामानंद, पृ० १२।

जंत[2]—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र, प्रा० जंत] यंत्र। तांत्रिक यंत्र। जंतर।

यौ०—जंत मंत=जंतर मंतर

जंतर—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र, प्रा० जंत्र] १. कल। औजार। यंत्र। २ तांत्रिक यंत्र।

यौ०—जंतर मंतर।

३. चौकोर या लंबी ताबीज जिसमें तांत्रिक यंत्र या कोई टोटके की वस्तु रहती है। इसे लोग अपनी रक्षा या सिद्धि के लिये पहनते हैं। उ०—जंतर टोना मूड हिलावन ता कूँ साँच न मानो।—चरण० बानी, पृ० १११। ४ गले में पहनने का एक गहना जिसमें चाँदी या सोने के चौकोर या लंबे टुकड़े पाट में गुँथे होते हैं। कठुला। ताबीज। ५ यंत्र जिससे वैद्य या रासायनिक तेल या आसव आदि तैयार करते हैं। ६ जंतर मंतर। मानमंदिर। आकाशलोचन। †७ पत्थर, मिट्टी आदि का बड़ा ढोंका। ८ बीणा। बीन नामक बाजा।

जंतर मंतर—संज्ञा पुं० [हिं० यन्त्र+मन्त्र] १ यंत्र मंत्र। टोना टोटका। जादू टोना। २ आकाशलोचन। मानमंदिर जहाँ ज्योतिषी नक्षत्रों की स्थिति, गति आदि का निरीक्षण करते हैं।

जंतरा—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्री] एक रस्सी जो गाड़ी के ढाँचे पर कसी या तानी जाती है। जन्ना।

जंतरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्र] १ छोटा जंता जिसमे सोनार तार बढ़ाते हैं। वि० दे० 'जंता'—२।

मुहा०—जंतरी में खींचना=(१) तारों को जंते मे डालकर पतला और लंबा करना। (२) सीधा करना। दुरुस्त करना। कज निकालना। टेढ़ापन दूर करना।

२ पत्र। तिथिपत्र। एक तरह का पचांग। उ०—मेरे यहाँ की सग्रह की जंतरियों आदि को देखकर ही यह बात लिखी है।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ (जी०) पृ० १२१।

जंतरी[2]—संज्ञा पुं० १ जादूगर। भानमती। २ बाजा बजानेवाला। वाद्यकुशल व्यक्ति। उ०—बिना जंतरी यंत्र बाजता गगन मे।—पलटू०, पृ० ६४।

जंता[1]—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] [स्त्री० जंती, जंतरी] १. यंत्र। कल। जैसे, जंताघर। २ सोनारो और तारकसों का एक औजार जिसमें डालकर वे तार खींचते हैं।

विशेष—यह औजार लोहे की एक लंबी पटरी होती है जिसमें बहुत से ऐसे छेद कई पंक्तियों में होते हैं जो क्रमश छोटे होते जाते हैं। सोनार सोने या चाँदी के तारों को पहले बड़े छेदों में, फिर उससे छोटे छेदो मे, फिर और छोटे छेदों में क्रमानुसार निकालकर खींचते हैं जिससे तार पतले होकर बढ़ते जाते हैं।

जंता[2]—वि० [सं० यन्त्रि (=यंता) यन्त्रणा देनेवाला। दंड देनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—साकिनी डाकिनी पूतना प्रेत बैताल भूत प्रथम जूथ जंता।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६७।

जंता[3]—संज्ञा पुं० [सं० यन्ता] अश्वरथ का वाहक। सारथी उ०—जाकों तू भयो जात है जंता। अठयों गर्भ सु तेरो हंता।—नंद० ग्रं०, पृ० २२१।

जंता[4](पु)—संज्ञा पुं० [सं० जनितृ>जनिता] [स्त्री० जंती] पिता। बाप।

जंती[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंता] छोटा जंता जिससे सोनार बारीक तार खींचते हैं। जंतरी।

जंती[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० जनितृ>जनिता, या हिं० जनना] माता। माँ।

जंतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म लेनेवाला जीव। प्राणी। जानवर।

यौ०—जीवजंतु=प्राणी। जानवर।

२. महाभारत के अनुसार सोमक राजा का एक पुत्र जिसकी चरबी

से होम करने के पीछे सौ पुत्र हो गए। ३. आत्मा। जीवस्थ आत्मा (को०)। ४. क्षुद्र जीव। निम्न कोटि का जानवर। कीट पतग आदि (को०)।

जंतुकंबु—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुकम्बु] १. शंख का कीड़ा। २. शख।

जंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुका] लाख। जतुका। लाक्षा।

जंतुघ्न[1]—वि० [सं० जन्तुघ्न] प्राणिनाशक। कृमिघ्न।

जंतुघ्न[2]—संज्ञा पुं० १. विडग। वायविडग। २ हींग। ३. बिजौरा नीबू। ४ वह औषध जिसके सपर्क से कीडे मर जाते हों।

जंतुघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुघ्नी] वायविडग। विडग।

जंतुनाशक—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुनाशक] हीग।

जंतुपादप—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुपादप] कोशाम्र या कोसम नाम का वृक्ष। वि० दे० 'कोसम' (को०)।

जंतुफल—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुफल] उदुबर। गूलर। ऊमर।

जंतुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुमती] पृथ्वी। धरती (को०)।

जंतुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुमारी] नीबू।

जंतुला—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुला] कास नाम की घास।

जंतुशाला—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुशाला] चिड़ियाघर।

जंतुहंत्री—संज्ञा स्त्री० [स० जन्तुहन्त्री] वायविडग। जतुघ्नी।

जंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] १. कल। औजार। २ तात्रिक यत्र।
यौ०—जत्रमत्र।

३ ताला। ४. तंत्र वाद्य। वाजा। वि० दे० 'यत्र'। उ०—कबीर जत्र न वाजही, टूटि गया सब तार।—कबीर सा० सं०, पृ० ७६।

जंत्रना[1]—क्रि० स० [हिं० जत्र] ताला लगाना। ताले के भीतर बद करना। जकड़बद करना। उ०—सभा राउ गुरुमहिसुर मत्री। भरत भगति सबके मति जत्री।—तुलसी (शब्द०)।

जंत्रना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्रणा] दे० 'यत्रणा'।

जंत्रमत्र—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र मन्त्र] दे० 'जतर मतर', 'यत्र मत्र'। उ०—जयति पर जत्र मत्राभिचार प्रसन, कारमनि कूट कृत्यादि हता।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६७।

जंत्रा—संज्ञा पुं० [हिं० जतरा] दे० 'जंतरा'।

जंत्रित—[सं० यन्त्रित] १. नियत्रित। बद। बँधा। उ०—जयति निरुपाधि भक्तिभाव जत्रित हृदय बधु हित चित्रकूटादि चारी।—तुलसी (शब्द०)। २ ताला लगा हुआ। ताले में बद। उ०—नाम पाहरू राति दिन, ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निजपद जत्रित जाहि प्रान केहि बाट।—मानस, ५। ३०।

जंत्री[1]—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रिक] वीणा आदि बजानेवाला। वाजा बजानेवाला।

जंत्री[2]—वि० यन्त्रित करनेवाला। बद्ध करनेवाला। जकड़बद करनेवाला।

जंत्री[3]—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रिन्] वाजा। उ०—बाजन दे वैजतरी जग जत्री ना छेड। तुझे बिरानी क्या पडी अपनी आप निवेर।—कबीर (शब्द०)।

जंत्री[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक प्रकार का तिथिपत्र। पत्रा। जंतरी।

जंद[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ंद, मि० सं० छन्दस्] १. पारसियों का अत्यंत प्राचीन धर्मग्रंथ।

विशेष—इसकी भाषा वैदिक भाषा से मिलती जुलती है। इसके श्लोक को 'गाथा' या मथ्र (मि० सं० मत्र) कहते हैं। इसके छद और देवता वेदों के छंदों और देवताओं से मिलते हैं।

२ वह भाषा जिसमें पारसियों का जद अवेस्ता नामक धर्मग्रंथ लिखा गया है।

यौ०—जद अवेस्ता=जरथुस्त्र रचित पारसियों का धर्मग्रंथ।

जंदरा—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र > हिं० जतर > जदरा] १. यंत्र। कल।

मुहा०—जदरा ढीला होना=(१) कल पुर्जे वेकार होना। (२) हाथ पैर सुस्त होना। थकावट आना। नस ढीली होना।

२ जाँता। जैसे, कुछ गेहूँ गीले, कुछ जदरे ढीले। † ३. ताला।

जंदा†—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र हिं० जन्त्र] ताला। उ०—जिस विषम कोठड़ी जदे मारे। बिनु बीजी क्यों खुलहि ताले।—प्राण०, पृ० ३२।

जंघाला—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्राला] १२८ हाथ लवी, १६ हाथ चौडी और १२४ हाथ ऊँची नाव।

जंपती—संज्ञा पुं० [सं० जम्पती] दपती। पतिपत्नी।

जंपना(पु)†—क्रि० अ० [सं० जल्प; प्रा० जप्प, जप, सं० जल्पना] कहना। कथन करना। उ० (क) इम जपै चद वरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ।—पृ० रा० ५७। २३६। (ख) सम वनिता वर वदि चद जपिय कोमल कल।—पृ० रा०, १।१३। (ग) यों कवि भूषण जपत है लखि सपति को अलकापति लाजै।—भूषण (शब्द०)।

जंब[1]—संज्ञा पुं० [सं० जम्ब] कर्दम। कीचड। पक।

जंब[2]—संज्ञा पुं० [अ० ज़ंब] पाप। दोष। गुनाह। उ०—नफ्स तेरा जब अती बोले है जान। लायक उस है वेजन्न पछान।—दक्खिनी०, पृ० ३८१।

जंबक[1]—संज्ञा पुं० [अ० ज़बक़, तुल० सं० चम्पक] चपा का फूल (को०)।

जंबक[2]—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] जवुक। उ०—ऐसा एक अचभा देखा। जबक करै केहरि सूं खेला।—कबीर ग्रं०, पृ० १३५।

जंबाल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बाल] १. कीचड़। काँदो। पंक। २. सेवार। शैवाल। ३ काई। ४ केवड़ा।

जंबाला—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बाला] केतकी का वृक्ष।

जंबालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बालिनी] नदी। सरिता (को०)।

जंबीर—संज्ञा पुं० [सं० जम्बीर] १. जबीरी नीबू। २ ~~मरुवा।~~ ३ सफेद या हलके रग की तुलसी। ४ बनतुलसी।

जंबीरी नीबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बीर] एक प्रकार का खट्टा नीबू।

विशेष—इसका फल कागजी नीबू से बड़ा होता है। इसके फल के ऊपर का छिलका मोटा और उभड़े महीन महीन दानों के कारण खुरदुरा होता है। कच्चा फल श्यामता लिए गहरा हरा होता है, पर पकने पर पीला हो जाता है। इसका पेड़ बड़ा और कँटीला होता है। बसंत ऋतु में इसमें फूल लगते हैं और बरसात में फल दिखाई पड़ते हैं जो कार्तिक के उपरांत खाने योग्य होते हैं। फल इसमें बहुत आते हैं और बहुत दिनों तक रहते हैं।

जंबील—संज्ञा स्त्री० [फा० जम्बील] झोली। पिटारी। टोकरी।

जंबु—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] १. जंबू वृक्ष। जामुन। २. जामुन का फल। उ०—जुत जंबु फल चारि तकि सुख करौं हौं।—घनानंद०, पृ० ३५२। ३. जांबवान्। उ०—बंधि पाज सागरह हनुम अंगद सुग्रीवह। नील जंबु सु जटाल चली राहुन अप पीवह।—पृ० रा०, २।२७१।

जंबुक—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] [स्त्री० जंबुकी] १. बड़ा जामुन। फरेंदा। २. श्योनाक वृक्ष। ३. सुवर्ण केतकी। केवड़ा। ४. शृगाल। गीदड़। ५. वरुण। ६. एक वृक्ष। ७. टेंटू का पेड़। सोना पाढ़ा। ८. स्कंद का एक अनुचर। ९. नीच व्यक्ति। निम्न कोटि का आदमी। [को०]।

जंबुका(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] शृगाल। गीदड़। जंबुक। उ०—बरजी बहु मन जंबुका बहुत अभोजन खात।—संत-बानी०, भा० १, पृ० ११६।

जंबुखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुखण्ड] दे० 'जंबुद्वीप'।

जंबुद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुद्वीप] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप।

विशेष—यह द्वीप पृथिवी के मध्य में माना गया है। पुराण का मत है कि यह गोल है और चारो ओर से खारे समुद्र से घिरा है। यह एक लाख योजन विस्तीर्ण है और इसके नौ खंड माने गए हैं जिनमें प्रत्येक खंड नौ नौ हजार योजन विस्तीर्ण है। इन नौ खंडों को वर्ष भी कहते हैं। इलावृत खंड इन खंडों के बीच में बतलाया गया है। इलावृत खंड के उत्तर में तीन खंड हैं—रम्यक, हिरण्मय, और कुरुवर्ष। नील, श्वेत और शृंगवान् नामक पर्वत क्रमशः इलावृत और रम्यक, रम्यक और हिरण्मय तथा हिरण्मय और कुरुवर्ष के मध्य में है। इसी प्रकार इलावृत के दक्षिण में भी तीन वर्ष हैं जिनके नाम हरिवर्ष, पुरुष और भारतवर्ष हैं, और दो दो वर्षों के बीच एक एक पर्वत है जिनके नाम निषध, हेमकूट और हिमालय हैं। इलावृत के पूर्व में भद्राश्व और पश्चिम में केतुमाल वर्ष है, तथा गंधमादन और माल्य नाम के दो पर्वत क्रमशः इलावृत खंड के पूर्व और पश्चिम सीमारूप हैं। पुराणों का कथन है कि इस द्वीप का नाम जंबुद्वीप इसलिये पड़ा है कि इसमें एक बहुत बड़ा जंबु का पेड़ है जिसमें हाथी के इतने बड़े फल लगते हैं। बौद्ध लोग जंबुद्वीप से केवल भारतवर्ष का ही ग्रहण करते हैं।

जंबुध्वज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुध्वज] जंबुद्वीप।

जंबुनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बुनदी] दे० 'जंबू नदी'।

जंबुप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुप्रस्थ] एक प्राचीन नगर।

विशेष—इस नगर का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। भरत जब अपने ननिहाल केकय देश से लौट रहे थे तब मार्ग में उन्हें यह नगर पड़ा था। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि आजकल का जम्बू या जम्मू (काश्मीर) वही नगर है।

जंबुमत्—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] १. एक नगर का नाम जिसे जाववान् भी कहते हैं। २. पर्वत [को०]।

जंबुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बुमति] एक अप्सरा का नाम।

जंबुमान—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] दे० 'जंबुमत्' [को०]।

जंबुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमालिन्] एक राक्षस का नाम।

जंबुर(पु)†—संज्ञा पुं० [फा० जंबूर] दे० 'जंबूर'। उ०—लाहन मीर बहादुर जंगी। जंबुर कमाने तीर खदंगी।—जायसी (शब्द०)।

जंबुल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुल] १. जंबू। जामुन। २. केतकी का पेड़। ३. कर्णपाली नामक रोग। इसमें कान की लौ पक जाती है। सुपकनवा।

जंबुवनज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुवनज] दे० 'जंबूवनज'।

जंबुस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० जंबुस्वामिन्] एक जैन स्थविर का नाम जिनका जन्म राजा श्रेणिक के समय में ऋषभदत्त सेठ की स्त्री धारिणी के गर्भ से हुआ था।

जंबू¹—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] १. जामुन। २. जामुन का फल। ३. नागदमनी। दौना। ४. काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द स्त्री० है पर जामुन फल के अर्थ में क्लीव भी है।

जंबू²†—वि० बहुत बड़ा। बहुत ऊँचा।

जंबूका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूका] किशमिश।

जंबूखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूखण्ड] दे० 'जंबुखंड'।

जंबूद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूद्वीप] दे० 'जंबुद्वीप'।

जंबूनद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बूनद] स्वर्ण। सोना। उ०—जंबूनद को मेरु बनायव। पंच वृक्ष सुर तहाँ गायव। द्रुतिय रजत गिरि जहाँ सुहायव। ताहि नाम कैलाश धरायव।—प० रासो, पृ० २२।

जंबूनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूनदी] १. पुराणानुसार जंबुद्वीप की एक नदी।

विशेष—यह नदी उस जामुन के वृक्ष के रस से निकली हुई मानी जाती है जिसके कारण द्वीप का नाम जंबुद्वीप पड़ा है और जिसके फल हाथी के बराबर होते हैं। महाभारत में इस नदी को सात प्रधान नदियों में गिनाया है और इसे ब्रह्मलोक से निकली हुई लिखा है।

जंबूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूर] १. जंबूरा। २. तोप की चरख। ३. पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लादी जाती थी। जंबूरक। ४. भिड़। बर्रे (को०)। ५. शहद की मक्खी (को०)। ६. एक औजार (को०)।

जंबूरक—संज्ञा स्त्री० [जम्बूरक] छोटी तोप जो प्राय ऊँटो पर लादी जाती है। २ तोप की चर्ख। ३ भवर कली।

जंबूरची—सज्ञा पुं० [फा० जबूरची] १. जबूर नामक छोटी तोप का चलानेवाला। तोपची। बर्कंदाज। सिपाही। तुपकची।

जंबूरा—सज्ञा पुं० [फ़ा० जबूरह्] १ चर्ख जिसपर तोप चढ़ाई जाती है। २ भँवर कडो। भँवर कली। ३ सोने लोहे आदि धातुओं के बारीक काम करनेवालों का एक औजार जिससे वे तार आदि को पकड़कर ऐंठते, रेतते या घुमाते हैं।

विशेष—यह काम के अनुसार छोटा या बडा होता है और प्रायः लकडी के टुकड़े में जड़ा होता है। इसमें चिमटे की तरह चिपककर बैठ जानेवाले दो चिपटे पल्ले होते हैं। इन पल्लों की बगल में एक पेंच रहता है जिससे पल्ले खुलते और कसते हैं। कारीगर इसमें चीजों को दबाकर ऐंठते, रेतते, तथा और काम करते हैं।

४ लकड़ी का एक बल्ला जो मस्तूल पर आड़ा लगा रहता है और जिसपर पाल का ढाँचा रहता है।—(लश०)।

जबूल—सज्ञा पुं० [सं० जम्बूल] १ जामुन का वृक्ष। २ केवड़े का पेड़।

जबूवनज—सज्ञा पुं० [सं० जम्बूवनज] श्वेत जपा पुष्प। सफेद गुडहुल का फूल।

जंभ—सज्ञा पुं० [सं० जम्भ] दाढ़। चौमर। २. जबड़ा। ३ एक दैत्य का नाम जो महिषासुर का पिता था और जिसे इद्र ने मारा था। उ०—इंद्र ज्यों जभ पर, बाड़ौ सुग्रंभ पर रावण सदभ पर रघुकुलराज है।—भूषण (शब्द०)।

यौ०—जभद्विष। जंभभेदी। जंभरिपु=इद्र का नाम।

४ प्रह्लाद के तीन पुत्रों में से एक। ६ जबीरी नीबू। ७ कषा और हँसली। ८ भक्षण। ९ जम्हाई।

जभक¹—सज्ञा पुं० [सं० जम्भक] १ जंबीरी नीबू। २ शिव। ३. एक राजा का नाम।

जभक²—वि० १. जम्हाई या नींद लानेवाला। २. हिंसक। भक्षक। ३. कामुक।

जंभका—सज्ञा स्त्री० [सं० जम्भका] जम्हाई।

जंभन—सज्ञा पुं० [सं० जम्भन] १. भक्षण। २ रति। सयोग। ३ जम्हाई।

जंभा—सज्ञा स्त्री० [सं० जम्भा] जँभाई। जमुहाई।

जभारासि—सज्ञा पुं० [सं० जम्भाराति] जभ असुर के शत्रु इद्र [को०]।

जंभारि—सज्ञा पुं० [सं० जम्भारि] १ इद्र। २ अग्नि। ३ वज्र। ४ विष्णु।

जंभिका—सज्ञा स्त्री० [सं० जम्भिका] जम्हाई। जभा [को०]।

जंभी, जभीर—सज्ञा पुं० [स० जम्भिन्, जम्भीर] दे० 'जबीरी नीबू'। उ०—कहूँ दाख दाडिम सेव कटहल तूत अरु जभीर है।—भूषण ग्र०, पु० ४।

जभीरी—सज्ञा पुं० [सं० जम्भीर] दे० 'जबीरी नीबू'।

जंभूरा†—सज्ञा पुं० [फ़ा० जमूरह् > जबूरा] दे० 'जबूरा'।

जंवालिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० जम्वालिनी] नदी।

जँगरा—सज्ञा पुं० [देश०] उर्द, मूंग इत्यादि के वे डठल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं। जेंगरा।

जँगरैत—वि० [हिं० जाँगर + ऐत (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जँगरैतिन] १ जाँगरवाला। २ परिश्रमी। मेहनती।

जँगला—सज्ञा पुं० [हिं० जगला] १. दे० 'जगला'¹। २. दे० 'जगला'²।

जँचना—क्रि० अ० [हिं० जाँचना] १. जाँचा जाना। देख भाल करना। २ जाँच में पूरा उतरना। दृष्टि मे ठीक या अच्छा ठहरना। उचित तथा अच्छा ठहरना। उचित या अच्छा प्रतीत होना। ठीक या अच्छा जान पड़ना। जैसे,—(क) हमें तो उसके सामने यह कपड़ा नहीं जँचता। (ख) मुझे उसकी बात जँच गई। ३. जान पड़ना। प्रतीत होना। निश्चय होना। मन में बैठना। जैसे,—मुझे तुम्हारी बात नही जँचती।

जँचा—वि० [हिं० जँचना] १. जँचा हुआ। सुपरीक्षित। २. अव्यर्थ। अचूक। जैसे,—जाँचा हाथ।

जँजाल(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] एक प्रकार की प्राचीन बदूक। जजाल। उ०—छूट्टी एक कासे बिसावै जँजालें।—हिम्मत०, पृ० १२।

जँजीरनी(पु)—वि० [हिं० जजीर] बाँधनेवाली। उ०—कच मेचक जाल जजीरनी तू।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० २१०।

जँतसर—सज्ञा पुं० [हिं० जाँत + सर (प्रत्य०)] [स्त्री० जँतसरी, जँतसारी] वह गीत जिसे स्त्रियाँ चक्की पीसते समय गाती हैं। जाँते का गीत।

जँउसार—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्रशाला] जाँता गाड़ने का स्थान। वह स्थान जहाँ जाँता गाड़ा जाता है।

जँवाना—क्रि० अ० [हिं० जाँता] १ जाँते मे पिस जाना। २. कुचल जाना। चूरचूर होना।

जँबुर(पु)—सज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूर] एक प्रकार की तोप जो प्रायः ऊँटों पर चलती थी। जबूरक। उ०—लाखन मार बहादुर जमी। जँबुर, कमानें तीर खदगी।—जायसी ग्र०, पृ० २२२।

जँभाई—संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भा] मुँह के खुलने की एक स्वाभाविक क्रिया जो निद्रा या आलस्य मालूम पडने, शरीर से बहुत अधिक खून निकल जाने या दुर्बलता आदि के कारण होती है। उबासी।

विशेष—इसमे मुँह के खुलते ही साँस के साथ बहुत सी हवा धीरे धीरे भीतर की ओर खिच आती है और कुछ क्षण ठहरकर धीरे धीरे बाहर निकलती है। यद्यपि यह क्रिया स्वाभाविक और बिना प्रयत्न के आपसे आप होती है, तथापि बहुत अधिक प्रयत्न करने पर दबाई भी जा सकती है। प्राय दूसरे को जँभाई लेते हुए देखकर भी जँभाई आने लगती है। हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रथो मे लिखा है कि जिस वायु के कारण जँभाई आती है उसे 'देवदत्त' कहते हैं। वैद्यक के अनुसार जँभाई आने पर उत्तम सुगधित पदार्थ खाना चाहिए।

क्रि० प्र०—आना।—लेना।

जँभाना—क्रि० अ० [सं० जृम्भण] जँभाई लेना।

जँवाई†—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ, प्रा० जामाउ, हिं० जमाई] जामाता। दामाद।

जँवारा†—संज्ञा पुं० [सं० यवाग्र या हिं० जौ] १ दे० 'जवारा'। २ नवरात्र। उ०—नेवरात को लोग जँवारा भी कहते हैं।—सुक्ल अभि० ग्रं० (सा०), पृ० १३२।

ज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मृत्युंजय। २ जन्म। ३ पिता। ४ विष्णु। ५. विष। ६ मुक्ति। ७ तेज। ८ पिशाच। ९. वेग। १. छंदशास्त्रानुसार एक गण जो तीन अक्षरों का होता है। जगण।

विशेष—इसके आदि और अंत के वर्ण लघु और मध्य का वर्ण गुरु होता है (।ऽ।)। जैसे, महेश, रमेश, सुरेश आदि। इस का देवता सूर्य और फल रोग माना गया है।

ज[2]—वि० १. वेगवान्। वेगित। तेज। २. जीतनेवाला। जेता।

ज[3]—प्रत्य० उत्पन्न। जात। जैसे,—देशज, पित्तज, वातज, आदि।

विशेष—यह प्रत्यय प्राय तत्पुरुष समास के पदों के अंत में आता है। पंचमी तत्पुरुष आदि में पचम्यंत पदों की विभक्ति लुप्त हो जाती है, जैसे, पादज, द्विज इत्यादि। पर सप्तमी तत्पुरुष में 'प्रावृट्', 'शरत्', 'काल' और 'दि' इन चार शब्दों के अतिरिक्त, जहाँ विभक्ति बनी रहती है (जैसे, प्रावृषिज, शरदिज, कालेज, दिविज) शेष स्थलों में विभक्ति का लोप विकल्पित होता है, जैसे, मनसिज, मनोज, सरसिज, सरोज इत्यादि।

ज(पु)[4]—अव्य० पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त। उ०—चंद्र सूर्य का गम नहीं जहाँ ज दर्शन पावै दास।—रामानंद० पृ० १०।

जइँ(पु)—क्रि० वि० [सं० यत्र] दे० 'जहाँ'। उ०—वालूँ ढोला देसड़उ, जइँ पाणी कूँवेण।—ढोला०, दू० ६५७।

जइ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० जय, हिं० जै] दे० 'जय'। उ०—निय मासा बप्पई, साहस कपइ, जइ सूरा जइ पाण्डीआ।—कीर्ति०, पृ० ४८।

जइस(पु)†—वि० [सं० यादृश] [अन्य रूप जइसन, जइसे] दे० 'जैसा। उ०—(क) गए सुपति हसन की पाँती। ता मध्ये उन जइस अजाती।—कबीर सा०, पृ० ६५। (ख) बेबि सरोरुह ऊपर देखल जइसन दुतिय चंदा।—विद्यापति०, पृ० २४। (ग) सुनइत रस कथा थापए चीत। जइसे कुरंगिनी सुनए संगीत।—विद्यापति०, पृ० ४०६।

जई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यव, प्रा० जव, हिं० जौ] १ जौ की जाति का एक अन्न।

विशेष—इसका पौधा जौ के पौधे से बहुत मिलता जुलता है और जौ के पौधे से अधिक बढ़ता है। जौ, गेहूँ आदि की तरह यह अन्न भी वर्षा के अंत मे बोया जाता है। बोने के प्राय एक महीने बाद इसके हरे डंठल काट लिए जाते हैं जो पशुओं के चारे के काम आते हैं। काटने के बाद डंठल फिर बढ़ते हैं और थोड़े ही दिनों में फिर काटने के योग्य हो जाते हैं। इस प्रकार जई की फसल तीन महीने में तीन बार हरी काटी जाती है और अंत में अन्न के लिये छोड दी जाती है। चौथी बार इसमे प्राय हाथ भर या इससे कुछ कम लंबी बालें लगती हैं। इन्हीं बालो में जई के दाने लगते हैं। बोने के प्राय साढ़े तीन या चार महीने बाद इसकी फसल तैयार हो जाती है। फसल पकने पर पीली हो जाती है और पूरी तरह पकने से कुछ पहले ही काट ली जाती है, क्योंकि अधिक पकने से इसके दाने झड जाते हैं और डंठल भी निकम्मे हो जाते हैं। एक बीघे मे प्राय बारह तेरह मन अन्न और अठारह मन डंठल होते हैं। इसके लिये दोमट भूमि अच्छी होती है और अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इस देश में जई बहुधा घोड़ों आदि को ही खिलाई जाती है, पर जिन देशों मे गेहूँ, जौ आदि अच्छे अन्न नहीं होते वहाँ इसके आटे की रोटियाँ भी बनती हैं। इसके हरे डंठल गेहूँ और जौ के भूसे से अधिक पोषक होते हैं और गौएँ, भैंसें और घोड़े आदि उन्हें बड़े चाव से खाते हैं।

२ जौ का छोटा अंकुर।

विशेष—हिंदुओं के यहाँ नवरात्र मे देवी की स्थापना के साथ थोड़े से जौ भी बोए जाते हैं। अष्टमी या नवमी के दिन वे अंकुर उखाड़ लिए जाते हैं और ब्राह्मण उन्हें लेकर मंगल-स्वरूप अपने यजमानों को भेंट करते हैं। उन्हीं अंकुरों को जई कहते हैं। इस अर्थ में इनके साथ 'देना' 'खोंसना' आदि क्रियाओं का भी प्रयोग होता है।

मुहा०—जई डालना = अंकुर निकालने लिये किसी अन्न को भिगोना या तर स्थान मे रखना। जई लेना = किसी अन्न को इस बात की परीक्षा के लिये बोना कि वह अंकुरित होगा कि नहीं। जैसे,—धान की जई लेना, गेहूँ की जई लेना, आदि।

४. उन फलो की बतिया या फली जिनमें बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है। जैसे, खीरे की जई, कुम्हड़े की जई। उ०—(क) सरुख बरजि तरजिए तरजनी कुम्हिलैहैं कुम्हड़े की जई है।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—निकलना।—लगना। उ०—बचन सुपत्र मुकुल अवलोकनि, गुननिधि पहुप भई। परस परम अनुराग सींचि मुख, लगी प्रमोद जई।—सूर०, १०।१७६२।

जई[2]—वि० [सं० जयिन्, प्रा० जई] दे० 'जयी'।

जईफ—वि० [अ० जईफ़] [वि० स्त्री० जईफा] बुड्ढा। वृद्ध।

जईफी—संज्ञा स्त्री० [फा० जईफी] बुढ़ापा। वृद्धावस्था। उ०—जवानी का कमाया जईफी में काम आयगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३४।

जउँन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'जमुना'। उ०—सब पिरथमी असीसइ, जोरि जोरि कै हाथ। गाग जउँन जौ लहि जल, तौ लहि अम्मर माथ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३०।

जउवा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का रोगकीट। उ०—जउबा नारु दुखित रोग।—दरिया० बानी, पृ० ५०।

जऊ(पु)†—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] जो। अगर। यदपि। यद्यपि।

उ०—धन तन पानिप को जळ, छकत रहै दिन राति। तऊ ललन लोयननि की, नैकुक प्यास न जाति।—स० सप्तक, पृ० २४७।

जकंद(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जग़्द] छलाँग। उछाल। चौकड़ी।

जकंदना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० जकद + ना (प्रत्य०)] १. कूदना। उछलना। उ०—सजोम जकदत जात तुरग। चढ़े रन सूरनि रंग उमग।—हम्मीर०, पृ० ५०। २ टूट पड़ना। उ०—जमन जोर करि धाइया तब भरत जकदे। मानो राहु सपट्टिया मच्छन तू चदे।—सूदन (शब्द०)।

जक[1]—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख] १ धनरक्षक भूत प्रेत। यक्ष। २ कजूस आदमी।

जक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झक] [वि० झक्की] १ जिद्द। हठ। अड़। उ०—हुती जिती जग में अधमाई सो मैं सबै करी। अधम समूह उधारन कारन तुम जिय जक पकरी।—सूर०, १।१३०।

क्रि० प्र०—पकड़ना।

२. धुन। रट। उ०—जदपि नाहिं नाहिं नहीं बदन लगी जक जाति। तदपि भौंह हाँसी भरिनु, हाँसी पै ठहराति।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—जक बँधना = रट लगना। धुन लगना। उ०—तव पद चमक चकचाने चद्रचूर चख चितवत एक टक जक बँध गई है।—चरण (शब्द०)।

जक[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जक] १ हार। पराजय। उ०—यही हैं अकसर कजा के जिनसे फरिश्ते भी, जक उठा चुके हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५७। २ हानि। घाटा। टोटा।

क्रि० प्र०—उठाना।—पाना।

३. पराभव। लज्जा। ४ डर। खौफ। भय।

जक[4]—संज्ञा स्त्री० [अ० जका] सुख। शांति। चैन। उ०—सुख चाहै अरु उद्यमी जक न परै दिन राति।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० १७४।

जकड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० जकड़ना] जकड़ने का भाव। कसकर बाँधना।

मुहा०—जकडवद करना=(१) खूब कसकर बाँधना। (२) अच्छी तरह फँसा लेना। पूरी तरह अपने अधिकार में कर लेना।

जकड़ना[1]—क्रि० स० [सं० युक्त + करण या शृङ्खल (= सिकडी)] कसकर बाँधना। जैसे,—उसके हाथ पैर जकड दो।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।

जकड़ना†[2]—क्रि० अ० अकडने आदि के कारण अंगों का हिलने डुलने के योग्य न रह जाना। जैसे, हाथ पैर जकडना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठना।

जकन—संज्ञा पुं० [अ० ज़क़न] ठुड्डी। ठोढी। उ०—जब से चाहा है तेरा चाहे जकन, अब्र चश्मो से मेरे जारी है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २१।

जकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० छक या चकपकाना अथवा देश०] [वि० चकित] अचभे में आना। भौंचक्का होना। चकपकाना। उ०—(क) तकि तकि चहूँ ओर जकि सी रही थकि, बकि बकि उठै छकि छैल की लगन में।—दीनदयालु (शब्द०)। (ख) तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ। ... कोउ रहे आकाश देखत, कोउ रहे सिर नाइ। घरिक लौं जकि रहे तहँ तहँ देह गति बिसराइ।—सूर०, १०।३८७। (ग) दूत दबकाने, चित्रगुप्त हू चकाने औ जकाने जमलाल पापपुंज लुंज ह्वै गए।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५६।

जकर—संज्ञा पुं० [अ० ज़कर] शिश्न। पुरुषेंद्रिय। २. नर। ३. फौलाद [को०]।

जकरना(पु)—क्रि० स० [हिं० जकडना] दे० 'जकडना'। उ०—श्यामा तेरे नेह की डोर जकरि जिय मोर।—श्यामा०, पृ० १७१।

जकरिया—संज्ञा पुं० [अ० जकरिया] एक यहूदी पैगबर या भविष्यवक्ता जो आरे से चीरे गए थे। उ०—योहन जकरिया भविष्यवक्ता का पुत्र था।—कबीर म०, पृ० २६५।

जकात[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़कात] दान। खैरात।

क्रि० प्र०—देना।—करना।—पाना।

जकात[2]—[अ० ज़का(= वृद्धि ?)] कर। महसूल। उ०—(क) उस समय उडीसा में कौडियों के द्वारा क्रय विक्रय होता था। यहाँ की मुख्य आय जमीदारी और जकात से थी।—शुक्ल अभि० ग्र० (इति०), पृ० ११५।

जकाती—संज्ञा पुं० [हिं० जकात] दे० 'जगाती'।

जकित(पु)—वि० [हिं० चकित] चकित। विस्मित। स्तभित। उ०—हरिमुख किधौ मोहिनी माई। ...सूरदास प्रभु बदन बिलोकत जकित थकित चित अनत न जाई।—सूर (शब्द०)।

जकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १ मलयाचल। २ कुत्ता। ३. बैंगन का फूल। ४ जोड़ा। युग्म (को०)।

जक्की[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बुलबुल की एक जाति।

विशेष—इस जाति की बुलबुल आकार में छोटी होती है और जाडे के दिनों में उत्तर या पश्चिम हिंदुस्तान के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में पाई जाती है। गरमी के महीनो मे यह हिमालय पर चली जाती है।

जक्की[2]—वि० [हिं० झक] दे० 'झक्की'।

जक्त(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] दे० 'जगत'। उ०—ओर ते छोर ले एक रस रहत हैं, ऐसे जान जक्त में बिरले प्रानी।—कबीर० रे०, पृ० ७७।

जक्ष(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष] दे० 'यक्ष'।

जक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण। भोजन। खाना। उ०—सच्चु शब्द की सची जक्षण। नानक कहे उदासी लक्षण।—प्राण०, पृ० १६८।

जक्ष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्ष्मा] दे० 'यक्ष्मा' या 'क्षयी'।

जखां—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ाका, हिं० जक] सुख। चैन। उ०—उन सतन के साथ से जिवड़ा पावै जख। दरिया ऐसे साध के चित चरनो ही रख।—दरिया० बानी, पृ० २।

जखनई—क्रि० वि [हिं० जिस + सं० क्षण] जिस समय। जब। उ०—जखने चलिय सुरतान लेख परि सेष जान को।—कीर्ति०, पृ० ६६।

जखनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी प्रा० जक्खिनी] दे० 'यक्षिणी'

जखनी²—संज्ञा स्त्री० [अ० यखनी] दे० 'अखनी'।

जखम—संज्ञा पुं० [फा० जख्म, मि० सं० यक्ष्म] १. वह क्षत जो शरीर में आघात या अस्त्र आदि के लगने के कारण हो जाय। घाव। २. मानसिक दुःख का आघात। सदमा।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।—देना।—पूजना। भरना।—लगना।—होना।

मुहा०—जखम ताजा या हरा हो आना = बीते हुए कष्ट का फिर लौट आना। गई हुई विपत्ति का फिर आ जाना। जखम पर नमक छिड़कना = दु.ख बढ़ाना।

जखमी—वि० [फा० जख्मी] जिसे जखम लगा हो। घायल। चुटैला।

जखीर—संज्ञा पुं० [अ० ज़खीरह्, हिं० जखीरा] खजाना। कोष। संग्रह। उ०—किल्ला में पाया और जेता जखीर। सावक ही खडपुर नें कीना वहीर।—शिखर०, पृ० २३।

जखीरा—संज्ञा पुं० [अ० ज़खीरह्] १ वह स्थान जहाँ एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों का संग्रह हो। कोष। खजाना। २ संग्रह। ढेर। समूह। उ०—रहे जखीरा गढ़ के जेता।—ह० रासो, पृ० ५६।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

यौ०—जखीरा अदोज = दे० 'जखीरेबाज'। जखीराअदोजी दे० 'जखीरेबाजी'।

३ वह बाग का स्थान जहाँ बिक्री के लिये तरह तरह के पेड़ पौधे और बीज आदि मिलते हों।

जखीरेबाज—वि० पुं० [अ० जखीरह् + फा० बाज (प्रत्य०)] जखीरेबाजी करनेवाला। अन्न आदि का अपसचय करनेवाला।

जखीरेबाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जखीरेबाज + ई] अन्न आदि या उपयोग में आनेवाली और बिकनेवाली वस्तुओं का इस विचार से संचय करना कि जब महँगी होगी तब इसे बेचेंगे।

जखेड़ा—संज्ञा पुं० [फा० जखीरह्, हिं० जखीरा] १ दे० 'जखीरा'। २ जमाव। यूथ। समूह। ३. दे० 'बखेड़ा'।

जखैया—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख]। एक प्रकार का कल्पित भूत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह लोगो को अधिक कष्ट देता है।

जख्ख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख] दे० 'यक्ष'।

जख्म—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ख्म] दे० 'जखम'।

यौ०—जख्मखुर्दा = घायल। जख्मी। जख्मेजिगर = दिल की चोट। इश्क का घाव। प्रेम की पीड़ा।

जगंद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जग़द] छलाँग। चौकड़ी। कुदान [को०]।

जग¹—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] १. ससार। विश्व। दुनिया। उ०—तुलसी या जग आइ के सबसे मिलिए धाय। का जाने केहि भेष में नारायण मिलि जाय।—तुलसी (शब्द०)। २. संसार के लोग। जनसमुदाय। उ०—साँच कहो तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।—कबीर (शब्द०)।

जग²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जग्य, जग्ग] दे० 'यज्ञ'। उ०—सुन्यो इंद्र मेरो जग मेटा। यह मदमत्त नद को बेटा। नद० ग्र०, पृ० १८१।

जगकर—संज्ञा पुं० [हिं० जग + कर] दे० 'जगकर्ता'।

जगकर्ता(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जग + कर्ता] संसार के निर्माता। ईश्वर। उ०—वे जगकर्ता सब कछु अहही। वेद शास्त्र सब तिन कहँ कहहीं।—कबीर सा०, पृ० ४८२।

जगकारन—संज्ञा पुं० [हिं० जग + कारन] जगत के कारणभूत। परमात्मा। उ०—जगकारन तारन भव भंजन धरनी भार।—मानस, ५।१।

जगचख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जग + सं० चक्षु] दे० 'जगच्चक्षु'। उ०—आदू ऊतन धाम अजोध्या जगचख वस अस हरि जोधा।—रा० रू०, पृ० ११।

जगचार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जग + चार (प्रत्य०)] लौकिक रस्म। नेग। उ०—किया ज्यो जो समुझ हो जगचार अमीर। न ले कुच्छ की जब फिर चल्या वह फकीर।—दक्खिनी०, पृ० १३७।

जगच्चक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + चक्षु] सूर्य।

जगजंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + यन्त्र] जगतचक्र। उ०—कृपा घन आनद अधार जगजत है।—घनानद, पृ० १६५।

जगजगा¹†—संज्ञा पुं० [जगमग से अनु०] पीतल आदि का बहुत पतला चमकीला तख्ता जिसके छोटे छोटे टुकड़े काटकर टिकुली और ताजिये आदि पर चिपकाए जाते हैं। पन्नी।

जगजगा²—वि० चमकीला। प्रकाशित। जो जगमगाता हो।

जगजगाना—क्रि० अ० [अनु०] चमकना। जगमगाना।

जगजननि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + जननी] दे० 'जगज्जननी'। उ०—जग सती जगजननि भवानी।—मानस।

जगजामिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + यामिनी] भवनिशा। संसाररूपी रात्रि। उ०—एहि जगजामिनी जागहि जोगी। मानस, २।९३।

जगजाहिर—वि० [हिं० जग + अ० जाहिर] व्यक्त। स्पष्ट। सर्वज्ञात। सर्वविदित। उ०—क्यो वह जगजाहिर हो।—सुनीता, पृ० ३१०।

जगजोनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जगयोनि] ब्रह्मा। उ०—सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुनगन जगजोनी।—मानस, २।२९६।

जगज्जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगदंबिका । जगद्धात्री । परमेश्वरी [को०] ।

जगज्जयी—वि० [सं० जगत् + जयिन्] विश्वविजयी [को०] ।

जगझंप—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा जो प्राचीन काल में युद्ध में बजाया जाता था। आजकल भी कहीं कहीं विवाह तथा पूजा आदि के अवसरों पर इसका व्यवहार होता है ।

जगड्वाल—संज्ञा पुं० [म०] आडंबर । व्यर्थ का आयोजन ।

जगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल शास्त्र के अनुसार तीन अक्षरों का एक गण जिसमें मध्य का अक्षर गुरु और आदि और अंत के अक्षर लघु होते हैं। जैसे,—महेश, रमेश, गणेश, हुवत ।

विशेष—दे० 'ज—१०' ।

जगत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु । २. महादेव । ३ जगम । ४. विश्व । ससार ।

यौ०—जगत्कर्ता, जगत्कारण, जगत्तारण, जगत्पति, जगत्पिता, जगत्स्रष्टा = परमेश्वर । ईश्वर । जगत्परायण = विष्णु । जगत्प्रसिद्ध=विश्वप्रसिद्ध । लोक में ख्यात ।

पर्या०—जगती । लोक । भुवन । विश्व ।

५ गोपाचदन ।

जगत¹—संज्ञा स्त्री० [सं० जगति = घर की कुरसी] कुएँ के ऊपर चारों ओर बना हुआ चबूतरा जिसपर खड़े होकर पानी भरते हैं ।

जगत²—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] दे० 'जगत्' ।

यौ०—जगतजनक = ईश्वर । जगतजननि = दे० 'जगज्जननी' । जगतारन = परमात्मा । जगतसेठ ।

जगतसेठ—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + श्रेष्ठ] बहुत बड़ा धनी महाजन, जिसकी साख सारे ससार में मानी जाय ।

जगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ संसार । भुवन । २. पृथिवी । भूमि ।

यौ०—जगतीचर = मानव । मनुष्य । जगतीजानि = राजा । भूपति । जगतीपति, जगतीपाल, जगतीभर्ता = दे० 'जगतीजानि' ।

३ एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह बारह अक्षर होते हैं। ४ मनुष्य जाति । मानव जाति (को०) । ५ गऊ । गाय (को०) । ६ मकान की भूमि । गृह के निमित्त या घर से संबद्ध भूमि (को०) । ७ जामुन के वृक्ष से युक्त स्थान । वह जगह जहाँ जामुन लगा हो (को०) ।

जगतीतल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवी । भूमि ।

जगतीधर—संज्ञा पुं० [सं०] १ बोधिसत्व । २ भूधर । पर्वत (को०) ।

जगतीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष । पेड़ । पौधा [को०] ।

जगत्कर्ता—संज्ञा पुं० [सं० जगत्कर्तृ] १ ईश्वर । परमेश्वर । २ धाता । विधाता । ब्रह्मा [को०] ।

जगत्प्रभु—संज्ञा पुं० [सं०] १ पितामह ब्रह्मा । २. नारायण । विष्णु । ३. महेश । शंकर । शिव [को०] ।

जगत्प्राण—संज्ञा पुं० [सं०] समीरण । वायु । हवा [को०] ।

जगत्साक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जगत्साक्षिन्] भानु । सूर्य ।

जगत्सेतु—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर ।

जगदंतक—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + अन्तक] मृत्यु । काल ।

जगदंबा जगदंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + अम्बा; -अम्बिका] दुर्गा । भवानी । उ०—(क) जगदंबा जहँ अवतरी सो पुर बरनि कि जाय ।—मानस, १ । ४ । (ख) जगदंबिका जानि भव भामा ।—मानस, १ । १०० ।

जगद—संज्ञा पुं० [सं०] पालक । रक्षक ।

जगदातमाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जगदात्मन्] परमात्मा । परमेश्वर । उ०—जगदातमा महेस पुरारी ।—मानस, १ । ६४ ।

जगदात्मा—संज्ञा पुं०[सं० जगदात्मन्] १. परमात्मा । २ वायु [को०] ।

जगदादि—संज्ञा पुं० [सं० जगदादिः] १. ब्रह्मा । २. परमेश्वर ।

जगदादिज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

जगदाधार—संज्ञा पुं० [सं० जगदाधार] १. परमेश्वर । २. वायु । हवा । ३. काल । समय (को०) । ४. शेषनाग । जगत् को धारण करनेवाले । उ०—(२) जय अनंत जय जगदाधारा । —मानस ६ । ७६ । (ख) जगदाधार शेष किमि उठई चले खिसियाइ ।—मानस, ६ । ५३ ।

जगदानंद—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + आनन्द] परमेश्वर ।

जगदायु—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + आयु] वायु । हवा ।

जगदीश—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + ईश] १. परमेश्वर । २. विष्णु । ३ जगन्नाथ ।

जगदीश्वर—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + ईश्वर] १ परमेश्वर । जगदीश । २ इंद्र । मघवा (को०) । ३ शिव का नाम (को०) । ४ राजा । भूपति (को०) ।

जगदीश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवती ।

जगद्गुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर । २. शिव । ३ विष्णु (को०) । ४ ब्रह्मा (को०) । ५ नारद । ६ अत्यंत पूज्य या प्रतिष्ठित पुरुष जिसका सब लोग आदर करें । ७. शंकराचार्य की गद्दी पर के महंतों की उपाधि ।

जगद्गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा देवी । २. मनसा देवी का एक नाम ।

विशेष—यह नागों की बहन और जरत्कारु ऋषि की पत्नी थी ।

जगद्दीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. महादेव । शिव । ३. आदित्य । सूर्य (को०) ।

जगद्धाता—संज्ञा पुं० [सं० जगद्धातृ] [स्त्री० जगद्धात्री] १ ब्रह्मा । २ विष्णु । ३. महादेव ।

जगद्धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा की एक मूर्ति । २ सरस्वती ।

जगद्बल—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

जगद्बीज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

जगद्योनि¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । २ विष्णु । ३. ब्रह्मा । ४. परमेश्वर ।

जगद्योनि²—संज्ञा स्त्री० पृथिवी । धरा ।

जगद्वंद्य¹—संज्ञा पुं० [सं० जगत्+वन्द्य] श्रीकृष्ण का एक नाम [को०]।

जगद्वंद्य²—वि० संसार द्वारा पूजनीय या पूज्य।

जगद्रुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

जगद्विख्यात—वि० [सं० जगत्+विख्यात] लोकप्रसिद्ध। सर्वख्यात।

जगद्विनाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल।

जगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यजन्] दे० 'यज्ञ'। उ०—जोवैजौ गृहि गृहि जगन जागवै, जगनि जगनि कीजै तप जाप।—वेलि, दू० ५०।

जगनक—संज्ञा पुं० [सं० यजनक, अथवा देश०] महोबा के राजा परमाल के दरबार का प्रसिद्ध कवि।

जगना—क्रि० अ० [सं० जागरण] १. नींद से उठना। निद्रा त्याग करना। सोने की अवस्था में न रहना।

क्रि० प्र०—उठना।—जाना।—पड़ना।

२. सचेत होना। सावधान होना। खबरदार होना। ३ देवी देवता या भूत प्रेत आदि का अधिक प्रभाव दिखाना। ४ उत्तेजित होना। उमड़ना या उभड़ना। वेग से प्रकट होना। जैसे, शरीर मे काम जगना। ५. (आग का) जलना। बलना। दहकना। जैसे, आग जगना। उ०—करि उपचार थकी सखि चल उताल नँदनंद। चदक चंदन चद ते ज्वाल जगी चौचद।—स्० सत० (शब्द०)। ६ जगमगाना। चमकना। जैसे, ज्योति जगना।

जगनिवास—संज्ञा पुं० [सं० जगन्निवास] दे० 'जगन्निवास'। उ०—जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम।—मानस १। १९१।

जगनींदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जग+नींदी] उनींदी। अर्धसुप्त। सोते जागते सी दशा। उ०—वह सोता तो रहा पर जग भी रहा था। सच पूछो, तो वह जगनींदी मे पड़ा था।—सुनीता, पृ० ३०८।

जगनु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जगन्नु' [को०]।

जगन्नाथ—संज्ञा पुं० [सं० जगत्+नाथ] जगत् का नाथ। ईश्वर। २ विष्णु। ३ विष्णु की एक प्रसिद्ध मूर्ति जो उड़ीसा के अतर्गत पुरी नामक स्थान में स्थापित है।

विशेष—यह मूर्ति अकेली नहीं रहती, बल्कि इसके साथ सुभद्रा और बलभद्र की भी मूर्तियाँ रहती हैं। तीनो मूर्तियाँ चदन की होती हैं। समय समय पर पुरानी मूर्तियों का विसर्जन किया जाता है और उनके स्थान पर नई मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं। सर्वसाधारण इस मूर्ति बदलने को 'नवकलेवर' या 'कलेवर बदलना' कहते हैं। साधारणत लोगों का विश्वास है कि प्रति बारहवें वर्ष जगन्नाथ जी का कलेवर बदलता है। पर पंडितों का मत है कि जब आषाढ़ में मलमास और दो पूर्णिमाएँ हों, तब कलेवर बदलता है। कूर्म, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, नृसिंह, अग्नि, ब्रह्म और पद्म आदि पुराणों में जगन्नाथ की मूर्ति और तीर्थ के संबंध में बहुत से कथानक और माहात्म्य दिए गए हैं। इतिहासों से पता चलता है कि सन् ३१८ ई० में जगन्नाथ जी की मूर्ति पहले पहल किसी जगल में पाई गई थी। उसी मूर्ति को उड़ीसा के राजा ययाति-केसरी ने, जो सन् ४७४ में सिंहासन पर बैठा था, जगल से ढूँढ़कर पुरी में स्थापित किया था। जगन्नाथ जी का वर्तमान भव्य और विशाल मदिर गगवश के पाँचवें राजा भीमदेव ने सन् ११४८ से सन् ११६८ तक में बनवाया था। सन् १५६८ में प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति काला पहाड़ ने उड़ीसा को जीतकर जगन्नाथ जी की मूर्ति आग मे फेंक दी थी। जगन्नाथ और बलराम की आजकल की मूर्तियो में पैर बिलकुल नहीं होते और हाथ विना पजों के होते हैं। सुभद्रा की मूर्तियों में न हाथ होते हैं और न पैर। अनुमान किया जाता है कि या तो आरभ में जगल में ही ये मूर्तियाँ इसी रूप में मिली हो और या सन् १५६८ ई० में अग्नि में से निकाले जाने पर इस रूप में पाई गई हों। नए कलेवर मे मूर्तियाँ पुराने आदर्श पर ही बनती हैं। इन मूर्तियों को अधिकाश भात और खिचड़ी का ही भोग लगता है जिसे महाप्रसाद कहते हैं। भोग लगा हुआ महाप्रसाद चारो वर्णों के लोग विना स्पर्शास्पर्श का विचार किए ग्रहण करते हैं। महाप्रसाद का भात 'अटका' कहलाता है, जिसे यात्री लोग अपने साथ अपने निवासस्थान तक ले जाते और अपने सबंधियों में प्रसाद स्वरूप बाँटते हैं। जगन्नाथ को जगदीश भी कहते हैं।

यौ०—जगन्नाथ का अटका या भात=जगन्नाथ जी का महाप्रसाद।

४ बगाल के दक्षिण उड़ीसा के अतर्गत समुद्र के किनारे का प्रसिद्ध तीर्थ जो हिंदुओं के चारो धामों के अनर्गत है।

विशेष—इसे पुरी, जगदीशपुरी, जगन्नाथपुरी, जगन्नाथ क्षेत्र और जगन्नाथ धाम भी कहते हैं। अधिकांश पुराणो मे इस क्षेत्र को पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा गया है। जगन्नाथ जी का प्रसिद्ध मदिर यहीं है। इस क्षेत्र में जानेवाले यात्रियों में जातिभेद आदि बिलकुल नहीं रह जाता। पुरी में समय समय पर अनेक उत्सव होते हैं जिनमे से 'रथयात्रा' और 'नवकलेवर' के उत्सव बहुत प्रसिद्ध हैं। उन अवसरो पर यहाँ लाखों यात्री आते हैं। यहाँ और भी कई छोटे बड़े तीर्थ हैं।

जगन्नियता—संज्ञा पुं० [सं० जगन्नियन्तृ] परमात्मा। ईश्वर।

जगन्निवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर। परमेश्वर। २ विष्णु।

जगन्नु—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २ जतु। कीट। ३ पशु। जानवर (को०)।

जगन्मय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जगन्मयी—संज्ञा पुं० [सं०] १. लक्ष्मी। २ समस्त ससार को चलानेवाली शक्ति।

जगन्माता—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + मातृ] १. दुर्गा का एक नाम। २ लक्ष्मी [को०]।

जगन्मोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. महामाया।

जगपतिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यज्ञपत्नी] याज्ञिकों की वे स्त्रियाँ जो कृष्ण को भोजन देने गई थीं। उ०—जगपतिनीन अनुग्रह दैन। बोले तब हरि करुना ऐन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०० ।

जगप्रान(पु)—संज्ञा पुं० [जगत्+प्राण] वायु। समीरण। उ०—यावत ही हेमंत तो कंपन लगो जहान। कोक कोकनद मे दुखी अहित भए जगप्रान।—दीन० ग्रं०, १६५ ।

जगवंद(पु)—वि० [सं० जगत्+वन्द्य] जिसकी वंदना संसार करे। संसार द्वारा पूजित। जगद्वंद्य। उ०—आपनपो जु तज्यो जगवंद है।—केशव (शब्द०)।

जगबीती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जग+बीती] जगत् की चर्चा। लौकिक वृत्त।

जगभिषक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जग+भिषक्] सोंठ।—अनेकार्थ०, पृ० १०४ ।

जगमग¹—वि० [अनु०] १ प्रकाशित। जिसपर प्रकाश पड़ता हो। २ चमकीला। चमकदार। उ०—हंसा जगमग जगमग होई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ६ ।

जगमग²—संज्ञा स्त्री० दे० 'जगमगाहट'।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जगमगना(पु)—वि० [हिं० जगमग] जगमगानेवाला। जगमग करनेवाला। चमकनेवाला। उ०—फूलन के खंभा दोऊ फूलन के डाँडी चारु, फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना।—नंद ग्रं०, पृ० ३७४ ।

जगमगा—वि० [हिं० जगमग] दे० 'जगमग'। उ०—जगमगा चिकुर प्रतिहिं सोहै रानै जैसे पुरसही।—कबीर सा०, पृ० १०४ ।

जगमगाना—क्रि० अ० [अनु०] किसी वस्तु का स्वयं अथवा किसी का प्रकाश पड़ने के कारण खूब चमकना। झलकना। दमकना। उ०—तरनितनया तीर जगमगत ज्योतिमय पुहुमि पै प्रगट सब लोक सिरताज।—घनानंद, पृ० ४६२ ।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगमग] चमक। चमचमाहट। जगमगाने का भाव।

जगमोहन¹—संज्ञा पुं० [हिं० जग+मोहन] मंदिर का बाहरी प्रांगण। उ०—सो वह ब्रह्मन तो बाहिर जगमोहन में प्रभुन की आज्ञा पाय के बैठ्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २९१ ।

जगमोहन²—वि० [सं० जगत्+मोहन] [वि० स्त्री० जगमोहिनी] विश्व को मुग्ध करनेवाला।

जगर—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। जिरहबकतर।

जगरन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जागरण] दे० 'जागरण' उ०—जगन्नाथ जगरन कै आई। पुनि दुवारिका जाइ नहाई।—जायसी (शब्द०)।

जगरनाथ†—संज्ञा पुं० [सं० जगन्नाथ] दे० 'जगन्नाथ'।

जगरमगर—संज्ञा पुं० [हिं०] १. चकमकाहट। चकाचौंध। २ माया। दे० 'जगमग'। उ०—जगरमगर को खेल कोऊ नर पावई। लोक वेद की फेर जो सबै नचावई।—गुलाल०, पृ० ६६ ।

जगरा†—संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करा] खजूर की खाँड।

जगल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिष्टी नामक सुरा। पीठी से बना हुआ मद्य। २. शराब की सीठी। कल्क। ३ मदन वृक्ष। मैनी। ४. कवच। ५ गोमय। गोबर।

जगल—वि० धूर्त। चालाक।

जगवाना—क्रि० स० [हिं० जगना] १ सोते से उठवाना। निद्रा भंग करवाना। २. किसी वस्तु को अभिमंत्रित करके उसमें कुछ प्रभाव लाना।

जगसूर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जगत्+सूर] राजा (क्व०)। उ०—बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा। ए जगसूर ! सीउ मोहिं लागा।—जायसी (शब्द०)।

जगहँसाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जग+हँसाई] लोकनिंदा। बदनामी। कुख्याति। उ०—बेवफाई न कर खुदा सूँ डर। जगहँसाई न कर खुदा सूँ डर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५ ।

जगह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जायगाह] १. वह अवकाश जिसमें कोई चीज रह सके। स्थान। स्थल। जैसे,—(क) उन्होंने मकान बनाने के लिये जगह ली है। (ख) यहाँ तिल धरने को जगह नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—छोड़ना।—देना।—निकालना।—पाना।—बनाना।—मिलना, आदि।

मुहा०—जगह जगह = सब स्थानों पर। सब जगह।

२. स्थिति। पद।

विशेष—कुछ लोग इस अर्थ में 'जगह' को क्रियाविशेषण रूप में बिना विभक्ति के ही बोलते हैं। जैसे,—हम उन्हें भाई की जगह समझते हैं।

३. मौका। स्थल। अवसर। ४. पद। ओहदा। जैसे,—(क) दो महीने हुए उन्हें कलक्टरी में जगह मिल गई। (ख) इस दफ्तर मे तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है।

जगहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगना] जगना। जगने की अवस्था। जगने का भाव।

जगाजोत†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जगर मगर। जगमगाहट।

जगात†—संज्ञा पुं० [अ० जगात] १ वह धन आदि जो पुण्य के लिये दिया जाय। दान। खैरात। २ महसूल। कर।

जगाती†—संज्ञा पुं०[हिं० जगात या फा० जकाती] १. महसूल या कर लगानेवाला कर्मचारी। वह जो कर वसूल करे। उ०—घर के लोग जगाती लागे छीन लेंय करधनिया।—कबीर श०, भा० १, पृ० २२। २ कर उगाहने का काम या भाव।

जगाना—क्रि० स०[हिं० जागना या जगना का प्रे० रूप] नींद त्यागने के लिये प्रेरणा करना। जैसे,—वे बहुत देर से सोए हैं, उन्हें जगाओ। २ चेत में लाना। होश दिलाना। उद्बोधन कराना। चैतन्य करना। ३. फिर से ठीक स्थिति में लाना। ४ बुझती या बहुत धीमी आग को तेज करना। सुलगाना। ५ गाँजा। आदि की अग्नि को तेज करना, जैसे, चिलम जगाना। ६.

यंत्र या सिद्धि आदि का साधन करना। जैसे,—मंत्र जगाना। भूत प्रेत जगाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।—लेना।

जगामग—वि० [अनु०] दे० 'जगमग'। उ०—चमकत नूर जहूर जगामग ढाके सकल सरीर। —मीरा० ग्रं०, पृ० २४।

जगार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जग+आर (प्रत्य०)] जागरण। जागृति। उ०—नैना ओछे चोर सखी री। श्याम रूप निधि नेखे पाई देखन गए भरी री। कहा लेहि, कह तजै, विवश भए तैसी करनि करी री। भोर भए मोरे सो ह्वै गयो घरे जगार परी री।—सूर (शब्द०)।

जगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मोर की जाति का एक पक्षी। जवाहिर नाम का पक्षी।

विशेष—यह शिमले के आसपास के पहाड़ों में मिलता है और प्राय दो हाथ लंबा होता है। नर के सिर पर लाल कलगी होती है और मादा के सिर पर गुलाबी रंग की गाँठें होती हैं। नर का सिर काला, गला लाल और पीठ गुलाबी रंग की होती है और उसके परों पर गुलाबी धारियाँ होती हैं। उसकी दुम लंबी और काली होती है और छाती तथा पेट के नीचे के पर भी काले होते हैं जिनपर ललाई की झलक होती है और एक छोटी सफेद बिंदी भी होती है। मादा का रंग कुछ मैला और पीलापन लिए होता है। यह पक्षी दस दस बारह बारह के झुंड में रहता है। जाड़े के दिनों में यह गरम देशों में आकर रहता है। इसकी बोली बकरी के बच्चे की तरह होती है और यह उड़ते समय चीत्कार करता है। इसका चीत्कार बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है। अंगरेज लोग इसका शिकार करते हैं। इसे जवाहिर भी कहते हैं।

जगीर†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जागीर] दे० 'जागीर'। उ०—फाका जिकर किनात ये तीनों बात जगीर। —पलटू०, भा०१, पृ० १४।

जगीसⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० जग+ईस] दे० 'जगदीश'। उ०—मिले सब विप्र सु दीन असीस। भए सुभ निरभय विप्र जगीस। रासो, पृ० ८।

जगीला†—वि० [हिं० जागना] जागने के कारण अलसाया हुआ। उनींदा। उ०—दुरति दुराए ते न रति, बलि कुंकुम उर मैन। प्रगट कहे पति रतजगे जगी जगीले नैन।—शृं० सत० (शब्द०)।

जगुरि—संज्ञा पुं० [सं०] जंगम।

जगैया†—वि० [हिं० जागना] १. जगानेवाला। प्रबुद्ध करनेवाला। २. जागनेवाला।

जगोटा†—संज्ञा पुं० [हिं० जोग+बाट] योग का मार्ग। जोगियों का पथ। उ०—कवन जगोटा कवन अधारी।—प्राण०, पृ० ७६।

जगौहाँⓅ†—वि० [हिं० जागना] दे० 'जगीला'।

जग्गⓅ†[४]—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जग्ग] दे० 'यज्ञ'। उ०—आयो सु गंग तट काज जग्ग।—पृ० रा०,१। ५७५।

जग्ग[२]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] संसार।

जग्घ[४]—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन। आहार। खाना। २. वह स्थान जहाँ भोजन किया गया हो [को०]।

जग्घ[२]—वि० खाया हुआ। भुक्त। भक्षित [को०]।

जग्घि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खाने की क्रिया। भोजन। २ कई आदमियों का साथ मिलकर खाना। सहभोजन।

जग्मि[१]—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जग्मि[२]—वि० जो चलता हो। जो गति में हो।

जग्य[१]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] दे० 'यज्ञ'। उ०—पिता जग्य सुनि कछु हरषानी। —मानस, १।६१।

यौ०—जग्यउपवीत = यज्ञोपवीत।

जग्योपवीतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत] दे० 'यज्ञोपवीत। कमलासन आसनह मद्धि जग्योपवीत जुरि।—पृ० रा०, १। २५५।

जघन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कटि के नीचे आगे का भाग। पेड़ू। २. नितंब। चूतड़। उ०—सरस विपुल मम जघनन पर कल किंकिनि कलश सजावो।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ३. सेना का पिछला भाग। उपयोगार्थ संरक्षित सैन्यदल (को०)।

यौ०—जघनकूप = दे० 'जघनकूपक'। जघनगौरव। जघनचपला।

जघनकूपक—संज्ञा पुं० [सं०] चूतड़ पर का गड्ढा।

जघनगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब की गुरुता। नितंबभार [को०]।

जघनचपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कामुकी स्त्री। २ कुलटा। ३. आर्या छंद के सोलह भेदों में से एक। यह मात्रावृत्त जिसका प्रथमार्ध आर्या छंद के प्रथमार्ध का सा और द्वितीयार्ध चपला छंद के द्वितीयार्ध का सा हो।

जघनी—वि० [सं० जघनिन्] बड़े नितंबों से युक्त [को०]।

जघनेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठूमर।

जघन्य[१]—वि० [सं०] १ अंतिम। चरम। २ गर्हित। त्याज्य। अत्यंत बुरा। ३ क्षुद्र। नीच। निकृष्ट। ४ निम्न कुलोत्पन्न। नीच कुल का (को०)।

जघन्य[२]—संज्ञा पुं० १. शूद्र। २ नीच जाति। हीन वर्ण। ३ पीठ का वह भाग जो पुट्ठे के पास होता है। ४ राजाओं के पाँच प्रकार के सकीर्ण अनुचरों में से एक।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार ऐसा आदमी धनी, मोटी बुद्धि का, हँसोड़ और क्रूर होता है और उसमें कुछ कवित्व शक्ति भी होती है। ऐसे मनुष्य के कान अर्धचंद्राकार, शरीर के जोड़ अधिक दृढ़ और उँगलियाँ मोटी होती हैं। इनकी छाती, हाथों और पैरों में तलवार और खाँड़े आदि के से चिह्न होते हैं।

५ दे० जघन्यभ। ६ लिंग। शिश्न (को०)।

जघन्यज—संज्ञा पुं०[सं०] १ शूद्र। २ अंत्यज। ३ छोटा भाई (को०)।

जघन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं० जघन्य+ता (प्रत्य०)] क्रूरता।

क्षुद्रता। नीचता। उ०—अपने कुरूप मदबुद्धि बालक के स्थान और स्वत्व को दूसरे के बालक को दे देना कैसी कुछ विचित्र मूर्खता और जघन्यता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६।

जघन्यभ—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा, भरणी और शतभिषा ये छह नक्षत्र।

जघ्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो वध करता हो। २ वह अस्त्र जिससे वध किया जाय।

जघ्नु—वि० [सं०] निष्ठुर। प्रहारक। वधकारी [को०]।

जघ्रि—वि० [सं०] १ सूँघनेवाला। २ अनुमानयुक्त [को०]।

जचगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जचगी] प्रसव की अवस्था। प्रसूतावस्था [को०]।

जचना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'जँचना'।

जच्चा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जच्चह्] दे० 'जच्चा'।

जच्चा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जच्चह्] प्रसूता स्त्री। वह स्त्री जिसे तुरंत संतान हुई हो।

विशेष—प्रसव के बाद चालीस दिनों तक स्त्रियाँ जच्चा कहलाती हैं।

यौ०—जच्चाखाना = सूतिकागृह। सौरी। जच्चा बच्चा = प्रसूता और प्रसूत संतति। जच्चागरी, जच्चागीरी = धात्री कर्म। बच्चा पैदा कराने का काम। कौमारभृत्य।

जच्छ†—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख, जच्छ] दे० 'यक्ष'। उ०—देखि विकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई।—मानस, १।१७६।

यौ०—जच्छपति। जच्छराज। जच्छेश।

जच्छपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यक्षपति] यक्षों के स्वामी। कुबेर। उ०—अस तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे।—मानस, १।१७६।

जज¹—संज्ञा पुं० [अं०] १ न्यायाधीश। विचारपति। न्याय करनेवाला। २ दीवानी और फौजदारी के मुकदमों का फैसला करनेवाला बड़ा हाकिम।

विशेष—भारतवर्ष में प्राय: एक या अधिक जिलों के लिये एक जज होता है, जो डिस्ट्रिक्ट जज (जिला जज) कहलाता है। जिले के अंदर अंतिम अपील जज के यहाँ ही होती है।

यौ०—दौरा या सेशन (सेशन) जज = वह जज जो कई जिलों में घूम घूमकर कुछ विशेष बड़े मुकदमों का फैसला कुछ विशिष्ट अवसरों पर करें। सबजज = दे० 'सदराला'। सिविल जज = दीवानी की छोटी अदालत का हाकिम।

जज²—संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा।

जजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यजन, प्रा० जजन] यज्ञ कार्य। यज्ञ करना। उ०—तीरथ व्रत आदि देवा पूजन जजन। सत नाम जाने बिना नर्क परन।—भीखा० श०, पृ० २२।

जजना(पु)—क्रि० स० [सं० यजन] सम्मान करना। आदर करना। पूजा करना। उ०—कलि पूजैं पाखंड को जजैं न श्रुति आचार। मागध नट विट दान दें तथा न द्विज करें प्यार।—दीन० ग्रं०, पृ० ७६।

जजबात—संज्ञा पुं० [अ० जज्बह् का बहुव० जज्बात] भावनाएँ। विचार। उ०—लेकिन जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जजबात की परवाह नहीं करते तो…।—काया०, पृ० ४२।

जजमनिका†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जजमान] पुरोहिती। उपरोहिती। यजमानी।

जजमान—संज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान'।

जजमानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जजमान + ई (प्रत्य०)] दे० 'यजमानी'।

जजमेंट—संज्ञा पुं० [अं०] फैसला। निर्णय। जैसे,—मामले की सुनवाई हो चुकी, अभी जजमेंट नहीं सुनाया गया।

जजा—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रतिकार। बदला। प्रतिफल। परिणाम उ०—किते दिन गुजर गए वले इस बजा। न पाया बुताँ ते उन्हें कुछ जजा।—दक्खिनी०, पृ० २६५।

जजात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ययाति] दे० 'ययाति'। उ०—बलि वेणु अंबरीष मानधाता प्रहलाद कहिये कहाँ लौ कथा रावण जजात की।—राम० धर्म०, पृ० ६४।

जजाल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जजाल] एक प्रकार की बंदूक। दे० 'जजाल'–४। उ०—कितेक सवग्रीव चढ़ि लै जजाल दगाई।—सुजान०, पृ० ३०।

जजिमान—संज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान'।

जजिया—संज्ञा पुं० [अं० जिज्यह्] १. दंड। २ एक प्रकार का कर जो मुसलमानी राज्यकाल में अन्य धर्मवालों पर लगता था।

जजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जज + ई (प्रत्य०)] १. जज की कचहरी। जज की अदालत। २ जज का काम। जज का पद या ओहदा।

जजीरा—संज्ञा पुं० [अ० जजीरह] टापू। द्वीप।

यौ०—जजीरानुमा = जमीन का वह भाग जो तीन ओर पानी से घिरा हो।

जजु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यजुष्, प्रा० जउ, जजु] दे० 'यजुर्वेद'। उ०—चतुर बेद मति सब ओहि पाहाँ। रिग जजु साम अथर्वन माहाँ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६१।

जजुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यजुष] दे० 'यजुर्वेद'। उ० जजुर कहै सरगुन परमेसर, दस औतार धराया।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ५४।

जज्ज†—संज्ञा पुं० [अं० जज] दे० 'जज'। उ०—फूसि न जो तू ले पयो राजा बाबू आमला जज्ज।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५५१।

जज्ब—संज्ञा पुं० [अ० जज्ब] १ आकर्षण। खिंचाव। २ नेस्ती। ३. सोखना। आत्मसात् करना [को०]।

जज्बा—संज्ञा पुं० [अ० जज्बह्] भावना। भाव। मनोवृत्ति। उ०—उ०—जोश और जज्बा का झंझा, औ तूफान किसी ने फूँके।—बंगाल०, पृ० ४४।

यौ०—जज्बए इश्क = प्रेम का आकर्षण। जज्बए दिल = हृदय की भावना या आकर्षण।

जज्बाती—वि० [ग्र० जज्बाती] भावना में बहनेवाला। भावुक [को०]।

जझकनाⓅ—क्रि० ग्र० [ग्रनु०] बिचकना। उझकना। चौंकना। उ०—जझकत झझकत लाल तरंगहि।—माधवानल०, पृ० १६४।

जझरा†—संज्ञा पुं० [हिं० झरना] लोहे की चद्दर का तिकोना टुकड़ा जो उसमें से तवे काटने के बाद बच रहता है।

जज्ञⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] दे० 'यज्ञ'। उ०—फेन वारि समुझाने भँवर न काटे वेध। कहँ मरौ तै चितउर जज्ञ करौ ग्रसुमेध।—जायसी (शब्द०)।

जज्ञासⓅ—वि० [सं० जिज्ञासु] दे० 'जिज्ञासु'। उ०—जो कोई जज्ञास है, सदगुरु सरणै जाइ। सुंदर ताहि कृपा करे ज्ञान कहै समुझाइ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८१५।

जट[1]—संज्ञा पुं० [देश०, हिं० झाड] एक प्रकार का गोदना जो झाड़ी के ग्राकार का होता है।

जट[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जाट'।

जटⓅ[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा'। उ०—मैं बड़ मैं बड मैं बड़ माँटी। मण दसना जट का दस गाँठी।—कबीर ग्रं०, पृ० १७६।

यौ०—जटजूट = जटाजूट। उ०—कोदंड कठिन चढाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों।—मानस, ३।१२।

जटना[1]—क्रि० स० [हिं० जाट] धोखा देकर कुछ लेना। ठगना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

जटनाⓅ[2]—क्रि० स० [सं० जटन] जडना। ठोंककर लगाना। उ०—पाट जटी ग्रति श्वेत सो हीरन की ग्रवली।—केशव (शब्द०)।

जटल—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल] व्यर्थ ग्रौर झूठ मूठ की बात। गप। बकवाद। उ०—ग्रपना बहुत समय इधर उधर की जटल हाँकने में खो देते हैं।—शिक्षागुरु (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मारना।—हाँकना।

यौ०—जटल काफिया = गपशप। बेतुकी बात। ऊटपटाँग बात। जटलबाज = बकवादी। गप हाँकनेवाला।

जटल्ली†—वि० [हिं० जटल] गप्पी। जटलबाज।

जटवाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा'। उ०—कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले।—कबीर० श०, भा० २, पृ० १५।

जटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक में उलझे हुए सिर के बहुत बड़े बड़े बाल, जैसे प्राय साधुग्रों के होते हैं।

पर्या०—जटा। जटि। जटी। जूट। शट। कोटीर। हस्त।

२ जड़ के पतले पतले सूत। झकरा। ३ एक में उलझे हुए बहुत से रेशे ग्रादि। जैसे, नारियल की जटा, बरगद की जटा। ४ शाखा। ५. जटामासी। ६ जूट। पाट। ७ कौंछ। केवाँच। ८. शतावर। ९ रुद्रजटा। बालछड। १०. वेदपाठ का एक भेद जिसमें मंत्र के दो या तीन पदों को क्रमानुसार पूर्व ग्रौर उत्तरपद को पृथक् पृथक् फिर मिलाकर दो बार पढ़ते हैं।

जटाऊⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जटायु] दे० 'जटायु'। उ०—ग्रागे मारग रोक जटाऊ। मार गयो तिहि रावण राऊ।—कबीर सा०, पृ० ४०।

जटाचीर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

जटाजिनी—संज्ञा पुं० [सं० जटाजिनिन्] जटा ग्रौर मृगचर्म धारण करनेवाला।

जटाजूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. जटा का समूह। बहुत से लंबे बढ़े हुए बालों का समूह। उ०—जटाजूट दृढ़ बाँधे माथे।—मानस, ६।८५। २ शिव की जटा।

जटाज्वाल—संज्ञा पुं० [सं०] दीप। चिराग [को०]।

जटाटंक—संज्ञा पुं० [सं० जटाटङ्क] शिव। महादेव।

जटाटीर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

जटाधर—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव। २ एक बुद्ध का नाम। ३. दक्षिण के एक देश का नाम जिसका वर्णन बृहत्संहिता में ग्राया है। ४. जटाधारी। ५ संस्कृत के एक कोशकार का नाम (को०)।

जटाधारी[1]—वि० [सं० जटाधारिन्] जो जटा रखे हो। जिसके जटा हो। जटावाला।

जटाधारी[2]—संज्ञा पुं० १. शिव। महादेव। २ मरसे की जाति का एक पौधा जिसके ऊपर कलगी के ग्राकार के लहरदार लाल फूल लगते हैं। मुर्गकेश। ३. साधु। बैरागी।

जटाना[1]—क्रि० स० [हिं० जटना] जटने का प्रेरणार्थक रूप।

जटाना[2]—क्रि० ग्र० [हिं० जटना] धोखे में ग्राकर ग्रपनी हानि कर बैठना। ठगा जाना।

जटापटल—संज्ञा पुं० [सं०] वेदपाठ करने का एक बहुत जटिल प्रकार या क्रम। कहते हैं, यह क्रम हयग्रीव ने निकाला था।

जटामंडल—संज्ञा पुं० [सं० जटामण्डल] जटाजूट। जूडा। जटापिंड [को०]।

जटामाली—संज्ञा पुं० [सं० जटामालिन्] महादेव। शिव।

जटामांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जटामासी'।

जटामासी—संज्ञा स्त्री० [सं० जटामासी] एक सुगंधित पदार्थ जो एक वनस्पति की जड है। बालछड। बालूचर।

विशेष—यह वनस्पति हिमालय मे १७००० फुट तक की ऊँचाई पर होती है। इसकी डालियाँ एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक लंबी ग्रौर सोंके की तरह होती हैं जिनमें ग्रामने सामने डेढ़ दो ग्रगुल लंबी ग्रौर ग्राधे से एक ग्रंगुल तक चौडी पत्तियाँ होती हैं। इसके लिये पथरीली भूमि, जहाँ पानी पड़ा करता हो या सर्दी बनी रहती हो, ग्रधिक उत्तम है। इसमें छोटी उँगली के बराबर मोटी काली भूरी पत्तियाँ होती हैं जिनपर तामडे रंग के बाल या रेशे होते हैं। इसकी गंध तेज ग्रौर मीठी तथा स्वाद कड़ुग्रा होता है। वैद्यक में जटामासी बलकारक, उत्तेजक, विघ्न तथा उन्माद ग्रौर कास, श्वास ग्रादि को दूर करनेवाली मानी गई है। लोगों का कथन है कि इसे लगाने से बाल बढ़ते ग्रौर काले होते हैं। खींचने से इसमें से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो ग्रोषध ग्रौर

सुगंध के काम आता है। २८ सेर जटामासी में से डेढ़ छटाँक के लगभग तेल निकलता है। इसे बालछड़, बालूचर आदि भी कहते हैं।

जटायु—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध।

विशेष—यह सूर्य के सारथी अरुण का पुत्र था जो उसकी श्येनी नाम्नी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। यह दशरथ का मित्र था और रावण से, जब वह सीता को हरण कर लिए जाता था, लड़ा था। इस लड़ाई में यह घायल हो गया था। रामचंद्र के आने पर इसने रावण के सीता को हर ले जाने का समाचार उनसे कहा था। उसी समय इसके प्राण भी निकल गए थे। रामचंद्र ने स्वयं इसकी अंत्येष्टि क्रिया की थी। संपाति इसका भाई था।

२. गुग्गुल।

जटाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वटवृक्ष। बरगद। २ कचूर। ३. मुष्कक। मोखा। ४ गुग्गुल।

जटाल²—वि० जटाधारी। जो जटा रखे हो।

जटाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटाव¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली मिट्टी जिससे कुम्हार घड़े आदि बनाते हैं। कुम्हरौटी।

जटाव†²—संज्ञा पुं० [हिं० जटना] जट जाने या जटने की क्रिया।

जटावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटावल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुद्रजटा। शंकरजटा। २ एक प्रकार की जटामासी जिसे गंधमासी भी कहते हैं।

जटासुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रसिद्ध राक्षस।

विशेष—यह द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर ब्राह्मण के वेश में पांडवों के साथ मिल गया था। एक बार इसने भीम की अनुपस्थिति में द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को हरण कर ले जाना चाहा था, पर मार्ग में ही भीम ने इसे मार डाला था।

२ वृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम।

जटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्लक्ष वृक्ष। पाकर का पेड़। २ बरगद का पेड़। ३ जटा। ४ समूह। ५ जटामासी।

जटित—वि० [सं०] जड़ा हुआ। जैसे, रत्नजटित।

जटियल—वि० [हिं० जटल] १ निकम्मा। रद्दी। २ नकली। दिखावटी। ३ जटनेवाला।

जटिल¹—वि० [सं०] १ जटावाला। जटाधारी। २. अत्यंत कठिन। जटा के उलझे हुए बालों की तरह जिसका सुलझना बहुत कठिन हो। दुरूह। दुर्बोध। ३ क्रूर। दुष्ट। हिंसक।

जटिल²—संज्ञा पुं० १. सिंह। २ ब्रह्मचारी। ३ जटामासी। ४ शिव।

विशेष—जिस समय शिव के लिये पार्वती हिमालय पर तपस्या कर रही थी, उस समय शिव जी जटिल वेश धारण करके उनके पास गए थे। उसी के कारण उनका यह नाम पड़ा।

५. बकरा (को०)। ६ साधु (को०)।

४-३

जटिलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन ऋषि का नाम। २. इस ऋषि के वंशज।

जटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल+ता (प्रत्य०)] कठिनाई। उलझन। पेचीदगी।

जटिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मचारिणी। २ जटामासी। ३. पिप्पली। पीपल। ४ वचा। बच। ५ दौना। दमनक। ६. महाभारत के अनुसार गौतम वंश की एक ऋषिकन्या का नाम जिसका विवाह सात ऋषिपुत्रों से हुआ था। यह बड़ी धर्मपरायण थी।

जटी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पाकर। २. जटामासी। दे० 'जटि'।

जटी²—संज्ञा पुं० [सं० जटिन्] १ शिव। २. प्लक्ष या वट का वृक्ष। ३. वह हाथी जो साठ वर्ष का हो [को०]।

जटी³—[सं० जटिन्] [वि० स्त्री० जटिनी] जटाधारी उ०—विमन जटी, तपसी भए मुनि मन गति भूली।—छीत०, पृ० २०।

जटी(पु)—वि० [सं० जटित] दे० 'जटित'।—उ०—जौ पै नहिं होती ससिमुखी मृगनैनी केहरि कटी, छवि जटी छटा की सी छटी रस लपटी छूटी छटी—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६३।

जडुल—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का दाग या धब्बा जो जन्म से ही होता है। लोग इसे लच्छन या लक्षण कहते हैं।

जटुली†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बच्चों के केश। उ०—धूलि धूसर जटा जटुली हरि लियो हर भेष।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० २५२।

जट्टा†—संज्ञा पुं० [हिं० जाट] जाट जाति।

जट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जली तवाकू। उ०—एक ही फूंक में चिलम की जट्टी तक चूस जाते।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ८४।

जट्टू†—वि० [हिं० जटना] ठगनेवाला। गैरवाजिब मूल्य लेनेवाला।

जठर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेट। कुक्षि।

यौ०—जठरगद। जठरज्वाल = भूख। जठरज्वाला। जठरयंत्रणा, जठरयातना = गर्भवास का कष्ट। जठराग्नि। जठरानल।

२. भागवत पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह मेरु के पूर्व उन्नीस हजार योजन लंबा है और नील पर्वत से निषध गिरि तक चला गया है। यह दो हजार योजन चौड़ा और इतना ही ऊँचा है।

३. एक देश का नाम।

विशेष—वृहत्संहिता के मत से यह देश श्लेषा, मघा और पूर्वाफाल्गुनी के अधिकार में है। महाभारत मे इसे कुक्कुर देश के पास लिखा है।

४ सुश्रुत के अनुसार एक उदर रोग।

विशेष—इस उदर रोग मे पेट फूल जाता है। इसमें रोगी बलहीन और वर्णहीन हो जाता है तथा उसे भोजन से अरुचि हो जाती है।

५ शरीर। देह। ६ मरकत मणि का एक दोष।

विशेष—कहते हैं कि इस दोषयुक्त मरकत के रखने से मनुष्य दरिद्र हो जाता है।

जठर[२]—वि० १. वृद्ध। बूढ़ा। २. कठिन। ३. बँधा हुआ (को०)।

जठरगद—संज्ञा पुं० [सं०] आँत की व्याधि [को०]।

जठरज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुधाग्नि। बुभुक्षा। भूख। २ उदर की पीड़ा। उदरशूल [को०]।

जठरामुल—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

जठराई—वि० [हिं० जेठ या जठर] [वि० स्त्री० जेठरी] जेठा। बड़ा।

जठरागि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'।

जठराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट की वह गरमी या अग्नि जिसमें अन्न पचता है।

विशेष—पित्त की कमी बेशी से जठराग्नि चार प्रकार की मानी गई है, मंदाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, और समाग्नि।

जठरानल—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जठरामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतिसार रोग। २. जलोदर रोग।

जठल—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का जलपात्र जिसका आकार उदर का सा होता था।

जठाग्गी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेठानी] दे० 'जेठानी'। उ०—देखि जठाणी, लागी छह पैठ।—बी० रासो, पृ० ६६।

जठागनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'। उ०—कइ खाय सिराय पचाय जठागनि बाय बढ़ाय सबाय मरै।—राम० धर्म०, पृ० १०५।

जठौंठी—वि० [हिं० जूठा + औंठी (प्रत्य०)] जूठा कर देनेवाला। जूठा करनेवाले स्वभाव का। (भ्रमर)। उ०—चपरीक चेटुवा को लागो है परत, सुभि अग्रभाग सम्र मृदु मंजुल जठोंठी को।—पजनेस०, पृ० २१।

जठेरा—वि० [हिं० जेठ या जठर] [स्त्री० जठेरी] जेठा। बड़ा। उ०—विप्रबधू कुलमान्य जठेरी।—मानस, २।४६।

जड—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० जड़ [को०]।

जडक्रिय—वि० [सं०] सुस्त। दीर्घसूत्री।

जडुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जडुल' [को०]।

जडूला—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ में बच्चे के मुंडन संस्कार को जडूला कहते हैं।—उ०—दादू ही को सब शुभ और अशुभ कार्यों (विवाह, जन्म, जडूला) में मानते हैं और स्मरण करते हैं।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १ पृ० ८।

जड्ड(पु)—वि० [सं० जड] दे० 'जड़'। उ०—बाहर चेतन की रहन, भीतर जड्ड अचेत।—दरिया० बानी, पृ० ३४।

जड्डा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा'। उ०—न तिष्पा गिर बच्च कै पुच्छन तिष्पारे। कंध सु जड्डा केहरी नेना ज्यो तारे।—पृ० रा०, २४।१४६।

जड़[१]—वि० [सं० जड] १ जिसमें चेतनता न हो। अचेतन। २. जिसकी इंद्रियों की शक्ति मारी गई हो। चेष्टाहीन। स्तब्ध ३. मंदबुद्धि। नासमझ। मूर्ख। ४. सरदी का मारा या ठिठुरा हुआ। ५ शीतल। ठंढा। ६ गूँगा। मूक। ७. जिसे सुनाई न दे। बहरा। ८. अनजान। अनभिज्ञ। ९ जिसके मन मे मोह हो। जो वेद पढ़ने में असमर्थ हो (दायभाग)।

जड़[२]—संज्ञा पुं० [सं० जडम्] १ जल। पानी। २ बरफ। ३ सीसा नाम की धातु। ४ कोई भी अचेतन पदार्थ (को०)।

जड़[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा (= वृक्ष की जड)] वृक्षों और पौधों आदि का वह भाग जो जमीन के अंदर दबा रहता है और जिसके द्वारा उनका पोषण होता है। मूल। सोर।

विशेष—जड़ के मुख्य दो भेद हैं। एक मूसल या डंडे के आकार की होती है और जमीन के अंदर सीधी नीचे की ओर जाती है; और दूसरी झकरा जिसके रेशे जमीन के अंदर बहुत नीचे नहीं जाते और थोड़ी ही गहराई में चारो तरफ फैलते हैं। सिंचाई का पानी और खाद आदि जड़ के द्वारा ही वृक्षों और पौधों तक पहुँचती है।

यौ०—जड़मूल।

यह जिसके ऊपर कोई चीज स्थित हो। नींव। बुनियाद।

मुहा०—जड़ उखाड़ना, काटना या खोदना = किसी प्रकार की हानि पहुँचाकर या बुराई करके समूल नाश करना। ऐसा नष्ट करना जिसमें वह फिर अपनी पूर्वस्थिति तक न पहुँच सके। जड़ जमना = दृढ़ या स्थायी होना। जड़ पकड़ना जमना। दृढ़ होना। मजबूत होना। जड़ पड़ना = नीव पड़ना बुनियाद पड़ना। शुरू होना। जड़ बुनियाद से, जड़मूल से = आमूलत। समूल। जड़ में पानी देना या भरना = दे० 'जड़ उखाड़ना'। जड़ में मट्ठा डालना = सर्वनाश का प्रयोग करना। जड़ सींचना = आधार को पुष्ट करना।

३ हेतु। कारण। सबब। जैसे,—यही तो सारे झगड़ों की जड़ है। ४ वह जिसपर कोई चीज अवलंबित हो। आधार।

जड़आमला—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + आमला] भुइँ आँवला।

जड़क्रिया—वि० [सं० जडक्रिय] जिसे कोई काम करने में बहुत देर लगे। सुस्त। दीर्घसूत्री।

जड़काला—संज्ञा पुं० [हिं० जाड़ा + सं० काल] सर्दी के दिन। जाड़े का समय। उ०—लागेउ माघ परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला।—जायसी ग्रं०, पृ० १५४।

जड़जगत—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + जगत्] अचेतन पदार्थ। जड़प्रकृति।

जड़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० जड का भाव, जडता] १ अचेतनता। २ मूर्खता। बेवकूफी। ३ साहित्यदर्पण के अनुसार एक संचारी भाव।

विशेष—यह संचारी भाव किसी घटना के होने पर चित्त के विवेकशून्य होने की दशा में होता है। यह भाव प्राय घबराहट, दुःख, भय या मोह आदि में उत्पन्न होता है।

४ स्तब्धता। अचलता। चेष्टा न करने का भाव। उ०—निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी।—तुलसी (शब्द०)

जड़ताई—संज्ञा स्त्री० [सं० जड + (वै०) ताति (प्रत्य०) अथवा हिं०] दे० 'जड़ता'। उ०—हरु विधि वेगि जनक जड़ताई। —मानस, १।२४६।

जड़त्व—संज्ञा पुं० [सं० जडत्व] १. चेतनता का विपरीत भाव। अचेतन पदार्थों का वह गुण जिससे वे जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं और स्वयं हिल डोल या किसी प्रकार की चेष्टा आदि नहीं कर सकते। २. स्थिति और गति की इच्छा का अभाव। वैशेषिक के अनुसार परमाणुओं का एक गुण।

जड़ना—क्रि० स० [सं० जटन] [संज्ञा जड़िया, जड़ाई, वि० जड़ाऊ] १ एक चीज को दूसरी चीज में पच्ची करके बैठाना। पच्ची करना। जैसे, अँगूठी में नग जड़ना। २. एक चीज को दूसरी चीज में ठीक कर बैठाना। जैसे, कील जड़ना, नाल जड़ना।

सयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।

३ किसी वस्तु मे प्रहार करना। जैसे, धौल जड़ना, थप्पड़ जड़ना। ४ चुगली या शिकायत के रूप में किसी के विरुद्ध किसी से कुछ कहना। कान भरना। जैसे,—किसी ने पहले ही उनसे जड़ दिया था, इसीलिये वे यहाँ नहीं आए।

सयो० क्रि०—देना। उ०—और वर्मो की सुनिए कि झट जा के बेगम साहब से जड़ दी कि हुजूर, अब जरी गफलत न करें। सैर कु०, पृ० २६।

जड़पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं० जड + पदार्थ] भौतिक द्रव्य। अचेतन पदार्थ।

जड़प्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० जड + प्रकृति] दे० 'जड़जगत'।

जड़भरत—संज्ञा पुं० [सं० जडभरत] अंगिरस गोत्री एक ब्राह्मण जो जड़वत् रहते थे।

विशेष—भागवत में लिखा है कि राजा भरत ने अपने वानप्रस्थ आश्रम में एक हिरन के बच्चे को पाला था और उसके साथ उनका इतना प्रेम था कि मरते दम तक उन्हें उसकी चिंता बनी रही। मरने पर वे हिरन की योनि में उत्पन्न हुए, पर उन्हें पुण्य के प्रभाव से पूर्व जन्म का ज्ञान बना रहा। उन्होंने हिरन का शरीर त्याग कर फिर ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया। वह ससार की भावना से बचने के लिये जड़वत् रहते थे इसीलिये लोग उन्हें जड़भरत कहते थे।

जड़लग—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार। उ०—सम सारत समधा सब कोई। जड़लग वह गई सग जिनोई। —रा० रू०, पृ० २५५।

जड़वत—वि० [सं० जड+वत्] जड़ के समान। चेतनारहित। बेहोश। उ०—जड़वत देख दोउ के संगा। चेतन देख दोउ में रंगा।—घट०, पृ० २५७।

जड़वाद—संज्ञा पुं० [सं० जड+वाद] वह दार्शनिक मत या विचार-धारा जिसमें पुनर्जन्म और चेतन आत्मा का अस्तित्व मान्य नहीं। उ०—जड़वाद जर्जरित जग में तुम अवतरित हुए आत्मा महान।—युगांत, पृ० ५७।

जड़वादी—वि० [सं० जड़वादिन्] जड़वाद का अनुगामी।

जड़वाना—क्रि० स० [हिं० जड़ना] १ नग इत्यादि जड़ने के लिये प्रेरणा करना। जड़ने का काम कराना। २ कील इत्यादि गड़वाना।

जड़विज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० जड+विज्ञान] भौतिक विज्ञान। जड़वाद।

जड़वी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] धान का छोटा पौधा जिसे जमे हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ हो।

जड़हन—संज्ञा पुं० [हिं० जड + हनन (= गाड़ना)] धान का एक प्रधान भेद जिसके पौधे एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह बैठाए जाते हैं।

विशेष—यह धान असाढ़ में घना बोया जाता है। जब पौधे एक या दो फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब किसान इन्हें उखाड़कर ताल के किनारे नीचे खेतों में बैठाते हैं। वह खेत, जिसमे इसके बीज पहले बोए जाते हैं, 'बियाड़' कहलाता है, और पौधे के बीज को 'बेहन' तथा बीज बोने को 'बेहन डालना' कहते हैं। बीज को बियाड़ से उखाड़कर दूसरे खेत में बैठाने को 'रोपना' या 'बैठाना' कहते हैं, और यह खेत जिसमें इसके पौधे रोपे जाते हैं, 'सोई', 'डाबर', आदि कहलाता है। जड़हन पौधों में कुआर के अंत में बाल फूटने लगती है, और अगहन में खेत पककर कटने योग्य हो जाता है। इस प्रकार के धान की अनेक जातियाँ होती हैं जिनमें से कुछ के चावल मोटे और कुछ के महीन होते हैं। यह कभी कभी तालों के किनारे या बीच में भी थोड़ा पानी रहने पर बोया जाता है, और ऐसी बोआई को 'बोआरी' कहते हैं। अगहनी के अतिरिक्त धान का एक और भेद होता है जिसे कुआरी कहते हैं। इस भेद के धान 'ओसहन' कहलाते हैं।

जड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० जडा] १. भुइँ आँवला। २ कौंछ। केवाँच।

जड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] १ जड़ने का काम। पच्चीकारी। २ जड़ने का भाव। ३ जड़ने की मजदूरी।

जड़ाऊ—वि० [हिं० जड़ना] जिसपर नग या रत्न आदि जड़े हों। पच्चीकारी किया हुआ। जैसे, जड़ाऊ मंदिर।

जड़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] दे० 'जड़ाई'।

जड़ाना[1]—क्रि० स० [हिं० जड़ना] जड़ने का प्रेरणार्थक रूप। जड़ने का काम दूसरे से कराना।

जड़ाना[2]—क्रि० अ० [हिं० जाड़ा] १ जाड़ा सहना। ठंढ खाना। २ सरदी की बाधा होना। शीत लगना। उ०—पूस जाड़ थरथर तन काँपा। सुरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३५८।

जड़ाव—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] जड़ने का काम या भाव। उ०—पुनि अभरन बहु काढ़ा, नाना भाँति जड़ाव। फेरि फेरि सब पहिरहिं, जैस जैस मन भाव।—जायसी (शब्द०)।

जड़ावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] जड़ने का काम या भाव। जड़ाव।

जड़ावर—संज्ञा पुं० [(देशी जड्डा + सं० आ + $\sqrt{वृ}$ > आ वर, अथवा हिं० जाड़ा] जाड़े में पहनने के कपड़े। गरम कपड़े।

क्रि० प्र०—देना = स्वल्प वेतनभोगी कर्मचारियो को जाड़े के कपड़े या उसके विनिमय मे धन देना।—मिलना।

जड़ावल²—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ावर] दे० 'जड़ावर'।

जड़ावला‡—वि० [हिं० जड़ना] जड़ाया हुआ। खचित।

जड़ित(पु)—वि० [हिं० जड़ना या सं० जटित] जो किसी चीज में जड़ा हुआ हो। २. जिसमें नग आदि जड़े हो।

जड़िमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़िमन्] १ जड़ता। जड़त्व। २ एक भाव जिसमें मनुष्य को इष्ट अनिष्ट का ज्ञान नही होता और वह जड़ हो जाता है। ३ मौर्ख्य। मूर्खता।

जड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] १. नगों के जड़ने का काम करनेवाला पुरुष। वह जो नग जड़ने का काम करता हो। कुंदनसाज। उ०—हकनाहक पकरे सकल जड़िया कोठीवाल। अर्घ०, पृ० ४३। २. सोनारों की एक जाति या वर्ग जो गहने में नग जड़ने का काम करती है।

जड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] वह वनस्पति जिसकी जड़ औषध के काम में लाई जाय। विरई।

यौ०—जड़ी बूटी = जंगली औषधि या वनस्पति।

जड़ीभूत—वि० [सं० जड़ीभूत] स्तब्ध। निश्चल। जड़भाव को प्राप्त। गतिहीन। उ०—गौतम ने जिस परिवर्तन के अमर सत्य को पहचाना था, क्या वही गतिशील होकर चल सका। लौटकर आया कहाँ जहाँ शाश्वत जड़ीभूत स्थिरता का पाषाण आकाश चूमने का प्रयत्न कर रहा था।—प्रा० भा० प०, पृ० ४७५।

जड़ीला¹—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + ईला (प्रत्य०)] १ वह वनस्पति जिसकी जड़ काम में आती हो। जैसे, मूली, गाजर। २ वह ऊँची उठी हुई जड़ जो रास्ते में मिले। —(कहार)।

जड़ीला²—जड़दार। जिसमे जड़ हो।

जड़ुआ—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] चाँदी का एक गहना जो छल्ले की तरह पैर के अँगूठे में पहना जाता है।

जड़ुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जटुल'।

जड़ैया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाड़ा + ऐया (प्रत्य०)] वह बुखार जिसके आरभ में जाड़ा लगता हो। जूड़ी।

जढ़†—वि० [सं० जड] दे० 'जड़'।

जढ़ता†—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ता] दे० 'जड़ता'।

जढ़ाना†—क्रि० अ० [हिं० जड़ या जढ़] जड हो जाना। २. हठ करना। जिद करना। अपनी बात पर अड़े रहना।

जत(पु)¹—वि० [सं० यत्] जितना। जिस मात्रा का।

जत²—संज्ञा पुं० [सं० यति] वाद्य के बारह प्रबंधों में से एक। होली का ठेका या ताल।

जतन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यत्न] दे० 'यत्न'। उ०—बार बार मुनि जतन कराहीं। अत राम कहि आवत नाही।—तुलसी (शब्द०)।

जतना(पु)—क्रि० स० [यत्न, हिं० जतन] यत्न करना। उ०—अब के ऐसी जतनन जतौ। विरणुहिं गर्भ बीच ही हतौं।—नंद० ग्रं०, पृ० २२२।

जतनी¹—संज्ञा पुं० [सं० यत्न] १. यत्न करनेवाला। २. सुचतुर। चालाक।

जतनी²—संज्ञा स्त्री० [सं० यत्न (= रक्षा)] वह रस्सी या डोरी जिसे चर्खे (रहँट) की पखुरियों के किनारे पर माल के टिकाव के लिये बाँधते हैं।

जतनु(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यत्न'। उ०—करेहु सो जतनु विवेकु विचारी। —मानस १।५२।

जतरा‡—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा'। उ०—माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगन्नाथ जी की जतरा कर आया था।—नई०, पृ० १०७।

जतलाना‡—क्रि० स० [हिं० जताना] दे० 'जताना'।

जतसर†—संज्ञा पुं० [हिं० जाँता] दे० 'जँतसर'।

जता(पु)†—वि०, अव्य० [सं० यत्] दे० 'जितना'। उ०—मेरे पास धन माल हैं होर मता। तुजे देऊँगी में सारा जता।—दक्खिनी०, पृ० ३७६।

जताना¹—क्रि० स० [सं० ज्ञात] १. जानने का प्रेरणार्थक रूप। ज्ञात कराना। बतलाना। २ पहले से सूचना देना। आगाह करना।

जताना²†—क्रि० अ० [हिं० जाँता] दे० 'जँताना'।

जतारा†—संज्ञा पुं० [हिं० जाति या सं० यूथ] वंश। खानदान। कुल। जाति। घराना।

जति¹(पु)—क्रि० [सं० जेतृ] जेता। जीतनेवाला। उ०—चरन पीठ उन्नत नत पालक, गूढ़ गुलुफ जघा कदली जति।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१५।

जति²†—संज्ञा पुं० [सं० यति] दे० 'यति'। उ०—स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रवीन। नीचु हति महिदेव बालक कियो मीचु विहीन।—तुलसी ग्र०, पृ० ४२२।

जती¹—संज्ञा पुं० [सं० यतिन्] सन्यासी। दे० 'यति'। उ०—जती पुरुष कहुँ ना गहैं परनारी को हाथ।—शकुंतला०, पृ० ६७।

जती²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यति] छद में विराम। दे० 'यति²'।

जतु¹—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष का निर्यास। गोंद। २ लाख। लाह। ३ शिलाजतु। शिलाजीत।

जतु²—संज्ञा स्त्री० गेदुर। चमगादड [को०]।

जतुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ हींग। २. लाख। लाह। ३ शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का चिह्न जो जन्म से ही होता है। इसे लच्छन या लक्षण भी कहते हैं।

जतुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। २ चमगादड़। ३ लाक्षा। लाख। लाह (को०)।

जतुकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्पटी या पपड़ी नाम की लता।

जतुकृत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुकृष्णा' [को०]।

जतुकृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका या पपड़ी नाम की लता।

जतुगृह—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस ऐसी चीजों का बना हुआ घर

जो जल्दी जल सकै। २. लाख का बना घर जैसा वारणावत में दुर्योधन ने पांडवों को भस्म करने के लिये बनवाया था। लाक्षागृह (को०)।

जतुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

जतुपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १ शतरंज का मोहरा। २ चौसर की गोटी। ३ लाख का बना हुआ रूप या आकार [को०]।

जतुमणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें दाग पड जाता है। जड़ुल। जतुक।

जतुमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का धान।

जतुरस—संज्ञा पुं० [सं०] लाख का बना हुआ रंग। अलक्तक। महावर।

जतू—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी का नाम। चमगादड। २. लाख का बना हुआ रंग।

जतूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

जतूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुका'।

जतेक(पु)—क्रि० वि० [सं० यत् या हिं० जितना+एक] जितना। जिस मात्रा का। जिस संख्या का।

जतैं(पु)—क्रि० वि० [सं० यत्र, प्रा० जत्थ] जहाँ। उ०—ब्रजमोहन मोह की मूरति राम जतै बनि रोहिनि पुन्य फली।—घनानंद०, पृ० २००।

जत्था—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से जीवों का समूह। झुंड। गरोह।
क्रि० प्र०—बाँधना।

यौ०—जत्थादार, जत्थेदार=जत्था अर्थात् समूह का प्रधान या नायक।

जत्र(पु)—क्रि० वि० [सं० यत्र] जहाँ। जिस जगह। उ०—किते जीव संमूह देखत भज्जैं। मृग व्याघ्र चीते गिद्ध जत्र गज्जैं।—ह० रासो, पृ० ३६।

जत्रानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जाटों की एक जाति जो रुहेलखंड में बसती है।

जत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १ गले के सामने की दोनों ओर की वह हड्डी जो कंधे तक कमानी की तरह लगी रहती है। हँसली। हँसिया। उ०—यज्ञोपवीत पुनीत विराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१५। २ कंधे और बाँह का जोड़।

जत्वश्मक—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

जथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] जत्था। यूथ। यूथ। उ०—झाँझ [illegible] करत घोर घटा घहरि घने। घुँघरू घिरत फिरत मिलि एक जथ।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ४४७।

जथा[1]—क्रि० वि० [सं० यथा] १ दे० 'यथा'। उ०—जथा भूमि सब बीज मैं, नखत निवास अकास। रामनाम सब धरम मैं जानत तुलसीदास।—तुलसी ग्रं०, भाग २, पृ० ८८।

यौ०—जथाजोग। जथाथित। जथारुचि=अपने इच्छानुसार। उ०—बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४। जथालाभ=जो भी मिल जाय उसमें। जोभी प्राप्त हो उससे। उ०—जथालाभ संतोष सदाई।—मानस, ७।४६।

जथा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] मंडली। गरोह। समूह। टोली।
क्रि० प्र०—बाँधना।

जथा[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रथ] पूँजी। धन। संपत्ति।

यौ०—जमा जथा।

जथाजोग(पु)—क्रि० वि० [सं० यथायोग्य] दे० 'यथायोग्य'। उ०—जथाजोग भेंटे पुरवासी गए सूल, सुखसिंधु नहाए।—सूर०, ६। १६८।

जथाथित(पु)—क्रि० वि० [सं० यथास्थित] जैसा था वैसा ही। ज्यों का त्यों। उ०—सिवहिं बिलोकि ससकेउ मारू। भयउ जथाथित सबु संसारू।—मानस, १। ८६।

जथारथ(पु)—अव्य० [सं० यथार्थ] दे० 'यथार्थ'। उ०—जे जन नियुत जथारथवेदी। स्वारथ अरु परमारथ भेदी।—नंद ग्रं०, पृ० ३०२।

जथारथवेदी(पु)—वि० [सं० यथार्थ+वेदिन्] यथार्थवेत्ता। सच्चाई को जाननेवाला।

जथावकास(पु)—क्रि० वि० [सं० यथावकाश] अवकाश के अनुसार। उ०—जाके जठर मध्य जग जितो। जथावकास रहत है तितो।—नंद० ग्रं०, पृ० २२६।

जथासंखि(पु)—अव्य० [सं० यथासंख्य] क्रम के अनुसार। जैसा क्रम हो उसके अनुसार। उ०—वर्से वर्ण च्यारयो जथासंखि वास। चहूँ आश्रमं औ तज लोभ आस।—ह० रासो, पृ० १७।

जद[1](पु)—क्रि० वि० [सं० यदा] जब। जब कभी। उ०—(क) जद जागूँ तद एकली, जब सोऊँ तब बेल।—ढोला०, दू० ५११। (ख) ब्रजमोहन घनआनंद जानी जद चस्मों विच आया है।—घनानंद०, पृ० १८१।

जद[2](पु)—अव्य० [सं० यदि] अगर। यदि।

जद[3]—संज्ञा स्त्री० [फा० जद] १ आघात। चोट। २. लक्ष्य। निशाना। ३ सामना [को०]।

जदनी—वि० [फा० ज़दनी] मारने या वध करने योग्य।

जदपि—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' उ०—जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना।—मानस, १। ७६।

जदबदा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जद्दवद्द'।

जदल—संज्ञा पुं० [अ०] १ युद्ध। संघर्ष। २. झगड़ा। हुज्जत [को०]।

जदवर, जदवार—संज्ञा पुं० [अ०] जहर के असर को दूर करनेवाली एक घास। निर्विषी।

जदा—वि० [फा० जदह्] पीडित। संत्रस्त। मारा हुआ। जैसे, गमजदा। मुसीबतजदा=विपत्ति का मारा।

जदि(पु)—अव्य० [सं० यदि] अगर। जो।

जदीद—वि० [अ०] नया। हाल का। नवीन।

जदु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदु] दे० 'यदु'।

जदुईस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जदुपति'।—अनेकार्थ०, पृ० ६१।

जदुकुल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यदुवंश'।

जदुनाथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यदुनाथ' उ०—बिनु दीन्हें ही देत सूर प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं।—सूर०, १। ३।

जदुपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुपति] श्रीकृष्ण। उ०—कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार। मों संपति जदुपति सदा बिपति बिदारनहार।—बिहारी (शब्द०)।

जदुपाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुपाल] श्रीकृष्ण।

जदुपुरी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुपुरी] राजा यदु का नगर। यदुकुल की राजधानी, मथुरा अथवा यदुओं की पुरी द्वारका। उ०—दृष्टि पड़ी जदुपुरी सुहाई।—नंद० ग्रं०, पृ० २१३।

जदुबंशी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यदुवंशी'। उ०—कुंज कुटीरे जमुना तीरे तू बिलखता जदुबंशी।—हिम कि०, पृ० २४।

जदुराइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] यदुपति। श्रीकृष्णचंद।

जदुराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद।

जदुराम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुराम] यदुकुल के राम। बलदेव।

जदुराय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र।

जदुवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुवर] श्रीकृष्णचंद्र।

जदुवीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुवीर] श्रीकृष्णचंद्र।

जद्द(पु)[1]—वि० [अ० ज्यादह्] अधिक। ज्यादा।

जद्द[2]—वि० [सं० योद्धा] प्रचंड। प्रबल। उ०—छागलि चलेउ समद्द रूप बलहद्द जद्द अति।—गोपाल (शब्द०)।

जद्द[3]—संज्ञा पुं० [अ०] दादा। पितामह। बाप का बाप।

जद्दपि(पु)—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि'।

जद्दबद्द—संज्ञा पुं० [सं० यत्अवद्य अथवा हिं० अनु०] अकथनीय बात। वह बात जो न कहने योग्य हो। दुर्वचन।

जद्दो[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] चेष्टा। कोशिश। प्रयत्न। दौड़धूप [को०]।

जद्दी[2]—वि० [अ०] मौरूसी। बापदादे की [को०]।

जद्दोजहद—संज्ञा स्त्री० [अ०] दौड़धूप। चेष्टा। प्रयत्न। उ०—व्यक्ति विलीन दलों के दुर्मद, जद्दोजहद में रद्दोबदल में।—मिलन०, पृ० १७३।

जद्यपि—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि'। उ०—सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान। चलै जोंक जल वक्रगति, जद्यपि सलिल समान।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०१।

जनंगम—संज्ञा पुं० [सं० जनङ्गम] चांडाल।

जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोक। लोग।

यौ०—जनअपवाद = अफवाह। लोकापवाद। उ०—जन अपवाद गूँजता था, पर दूर।—अपरा, पृ० १३६। जन आंदोलन = उद्देश्यपूर्ति के लिये जनसमूह द्वारा किया हुआ सामूहिक प्रयत्न या हलचल। जनजीवन = लोकजीवन। जनप्रवाद। जनक्षय। जनश्रुति। जनवल्लभ। जनसमूह। जनसमाज। जनसमुदाय। जनसमुद्र = जनसमूह। जनसाधारण। जनसेवक। जनसेवा, आदि।

२ प्रजा। ३. गँवार। देहाती। ४. जाति। ५ वर्ग। गण। उ०—आर्य लोग इस समय अनेक जनों में विभक्त थे। प्रत्येक जन एक पृथक् राजनैतिक समूह मालूम होता है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३३। ६ अनुयायी। अनुचर। दास। उ०—(क) हरिजन हंस दशा लिए डोलैं। निर्मल नाम चुनी चुनि बोलैं।—कबीर (शब्द०)। (ख) हरि अर्जुन को निज जन जान। लै गए तहँ न जहाँ ससि भान।—सूर०, १०। ४३०६। (ग) जन मन मंजु मुकर मल हरनी। किए तिलक गुन गन बस करनी।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—हरिजन।

७ समूह। समुदाय। जैसे, गुणिजन। ८ भवन। ९ वह जिसकी जीविका शारीरिक परिश्रम करके दैनिक वेतन लेने से चलती हो। १० सात महाव्याहृतियों में से पाँचवीं व्याहृति। ११ सात लोकों में से पाँचवाँ लोक। पुराणानुसार चौदह लोकों के अंतर्गत ऊपर के सात लोकों में से पाँचवाँ लोक जिसमें ब्रह्मा के मानसपुत्र और बड़े बड़े योगींद्र रहते हैं। १२ एक राक्षस का नाम। १३ मनुष्य। व्यक्ति।

जन[2]—संज्ञा स्त्री० [फा० जन] १. महिला। नारी। २ स्त्री। पत्नी। भार्या। उ०—मुसल्ला बिछा उसका जन नानियाज।—दक्खिनी०, पृ० २१५

जन[3](पु)—वि० [सं० जन्य] उत्पन्न। जनित। जात। उ०—सतसैया तुलसी सतर तम हरि पर पद देत। तुरत अविद्या जन दुरित वर तुल सम करि खेत।—स० सप्तक, पृ० २५।

जनउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जनेउ] दे० 'जनेऊ'। उ०—फोट चाट जनउ तोड।—कीर्ति०, पृ० ४४।

जनक[1]—वि० [सं०] पैदा करनेवाला। जन्मदाता। उत्पादक।

जनक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पिता। बाप। २ मिथिला के एक राजवंश की उपाधि।

विशेष—ये लोग अपने पूर्वज निमि विदेह के नाम पर वैदेह भी कहलाते थे। सीता जी इस कुल में उत्पन्न सीरध्वज की पुत्री थी। इस कुल में बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न हुए हैं जिनकी कथाएँ ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाभारत और पुराणों में भरी पड़ी हैं।

३ सीता जी के पिता सीरध्वज का नाम।

यौ०—जनकतनया = सीता। जनक की पुत्री। उ०—तात जनकतनया यह सोई।—मानस, १।२३१। जनकनंदिनी। जनकदुलारी। जनकपुर। जनकसुता = दे० जनकात्मजा। उ०—जनकसुता जगजननि जानकी।—मानस, १।१८।

४ संबरासुर का चौथा पुत्र। ५ एक वृक्ष का नाम।

जनकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पन्न करने का भाव या काम। २ उत्पन्न करने की शक्ति।

जनकदुलारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जनक + हिं० दुलारी] सीता। जानकी।

जनकनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनकनन्दिनी] सीता। जानकी। उ०—जनकनंदिनी जनकपुर जब ते प्रगटी आइ। तब ते सब सुख संपदा अधिक अधिक अधिकाइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८३।

जनकपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी।

विशेष—इसका स्थान आजकल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं। यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष वहाँ दर्शन के लिये जाते हैं।

जनकात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता। जानकी [को०]।

जनकारी—संज्ञा पुं० [सं० जनकारिन्] लाख का बना हुआ रंग। आलक्तक।

जनकौर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जनक+औरा (प्रत्य०)] १. जनक का स्थान। जनक नगर। उ०—बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि। सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६। २. जनक राजा के वंशज या संबंधी। उ०—कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक बस बौरा।—तुलसी (शब्द०)।

जनक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] महामारी। लोकनाश [को०]।

जनखदाँ—संज्ञा पुं० [फा० जनख+दाँ] ठोढ़ी। चिबुक। उ०—जनखदाँ में तेरे मुश्क चाहे चमचम का असर दिसता।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६।

जनखा—वि० [फा० जनख़ह् या जनानह्] १ जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों। २ हीजड़ा। नपुंसक।

जनगणना—संज्ञा स्त्री० [सं० जन+गणना] मर्दुमशुमारी। जनसंख्या की गिनती।

जनगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली।

जनघरा—संज्ञा पुं० [सं० जन+गृह] मंडप। —(हिं०)।

जनचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जनचक्षुस्] सूर्य।

जनचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद। सर्वसाधारण में फैली हुई बात।

जनजल्पना—संज्ञा पुं० [सं० जनजल्पना] लोकचर्चा। अफवाह [को०]।

जनजागरण—संज्ञा पुं० [सं० जन+जागरण] जनसमुदाय में स्वहित की दृष्टि से चेतना उत्पन्न होना।

जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जनन का भाव। २ जनसमूह। सर्वसाधारण।

यौ०—जनता जनार्दन=जनसमूह रूपी ईश्वर। लोकरूपी ईश्वर।

जनतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जन+तन्त्र] जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का शासन। लोकतंत्र। प्रजातंत्र।

यौ०—जनतंत्रवादी=लोकतंत्र को माननेवाला।

जनतांत्रिक—वि० [सं० जन+तान्त्रिक] जनतंत्र संबंधी। उ०—विजित हो रहा यांत्रिक मानव। निखर रहा जनतांत्रिक मानव।—अणिमा, पृ० १२०।

जनत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूप और वृष्टि से रक्षा हो।

जनत्राता—संज्ञा पुं० [सं० जन+त्राता] सेवक की रक्षा करनेवाला। लोक का रक्षक। उ०—भइ दन गएउ मलन जनत्राता।—मानस, ७।११०।

जनथोरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ककड़बेल। बंदाल।

जनजाति—संज्ञा स्त्री० [सं० जन+जाति] जंगलों और पर्वतीय क्षेत्रों में रहनेवाली जाति या वर्ग।

जनधन—संज्ञा पुं० [सं० जनधन] १ मनुष्य और संपत्ति। २. सार्वजनिक धन।

जनधा—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

जनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पत्ति। उद्भव। २. जन्म। ३ आविर्भाव। ४ तंत्र के अनुसार मंत्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मंत्रों का मात्रिका वर्णों से उद्धार किया जाता है। ५ यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिसके उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है। ६ वंश। कुल। ७ पिता। ८ परमेश्वर।

जनना—क्रि० स० [सं० जनन (= जन्म)] संतान को जन्म देना। प्रसव करना। उ०—(क) जनत पुत्र भए धजे नगारा। तदपि धनवि हर सोच अपारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) रंभ खंभ जघन दुति देखत नशत जनम जग माँही।—रघुराज (शब्द०)

जननाशौच—संज्ञा पुं० [सं० जनन+अशौच] वह अशौच जो घर में किसी का जन्म होने के कारण लगता है। वृद्धि।

जननि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जननि] दे० 'जननी'। समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हौं इहाँ तेरे ही कारन आयो। तेरी सौं सुनि जननि जसोदा मोहिं गोपाल पठायो।—सूर०, १०।४७८।

जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पन्न करनेवाली। २ माता। माँ। उ०—(क) जननी जनकादि हितू भए भूरि बहोरि भई उर की जरनी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) करनी करुनासिंधु की मुख कहत न आवै। कपट हेत परसे बकी जननी गति पावै।—सूर०, १।४। ३. जूही का पेड़। ४ कुटकी। ५ मजीठ। ६. जटामाँसी। ७ अलता। ८ पपड़ी। पपरिका। ९ चमगादड़। १०. दया। कृपा। ११ जनी नाम का गंधद्रव्य।

जननेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० जनन+इन्द्रिय] १ वह इंद्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है। भग। योनि। २. उपस्थ (को०)।

जनपद—संज्ञा पुं० [सं०] १ देश। २ सर्वसाधारण। निवासी। देशवासी। प्रजा। लोक। लोग। उ०—ज्यों हुलास रनिवास नरेशहि त्यों जनपद रजधानी।—तुलसी (शब्द०)। ३. राज्य। ४ प्रादेशिक क्षेत्र। ५ मनुष्य जाति (को०)।

जनपदकल्याणी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनपद+कल्याणी] गणतंत्र की सामान्य (जनभोग्या) विशिष्ट गणिका।

जनपदी—संज्ञा पुं० [सं० जनपदिन्] देश, समाज, क्षेत्र का शासक [को०]।

जनपदीय—वि० [सं०] जनपद का। जनपद संबंधी।

जनपाल, जनपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मनुष्यों का पोषण करनेवाला। सेवक या अनुचर का पालन करनेवाला।

जनप्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ लोकप्रवाद। लोकनिंदा। २. जनरव। अफवाह। किंवदंती।

जनप्रिय[1]—वि० [सं०] सबसे प्रेम रखनेवाला । सर्वप्रिय । सबका प्यारा ।

जनप्रिय[2]—संज्ञा पुं० १ धान्यक । धनिया । २ शोभांजन वृक्ष । सहँजन का पेड़ । ३ महादेव । शिव ।

जनप्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सबके प्रिय होने का भाव । सर्वप्रियता । लोकप्रियता ।

जनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुलहुल का साग ।

जनबगुल—संज्ञा पुं० [हिं० जन + बगुला] एक प्रकार का बगुला ।

जनम—संज्ञा पुं० [सं० जन्म] १. उत्पत्ति । जन्म । दे० 'जन्म' । उ०—बहु विधि राम शिवहि समुझावा । पारवती कर जनम सुनावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—धारना ।—पाना ।—लेना ।—होना ।

यौ०—जनमघूंटी । जनमपत्ती । जनमपत्री ।

२ जीवन । जिंदगी । आयु । उ०—(क) होय न विषय बिराग, भवन बसत भा चौथपन । हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तुलसीदास मोको बड़ो सोचु है तू जनम कवन विधि भरिहै ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—जनम गँवाना = व्यर्थ जनम या समय नष्ट करना । जनम बिगड़ना = धर्म नष्ट होना । जनम करम के श्रोछे = जन्मना और कर्मणा उभय प्रकार से हीन । उ०—ऐसे जनम करम के श्रोछे, श्रोछन हूँ ब्योहारत ।—सूर०, १।१२२ । जनम भरना = जीवन बिताना । उ०—नैहर जनमु भरब बरु जाई । जियत न करब सवति सेवकाई ।—मानस, २।२१ । जनम भर जलना = आजीवन दुःख भोगना । उ०—वह अनपढ़, गँवार, मूफट्ट, लोह लट्ठ के पाले पड़कर जनम भर जला करे ।—ठेठ०, पृ० १० । जनम हारना = आजीवन किसी की सेवा के लिये संकल्प धारण करना । उ०—अब मैं जनम संभु से हारा ।—मानस, १।८१ ।

जनमघूँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम + घूँटी] वह घूँटी जो बच्चों को जन्मते समय से दो तीन वर्ष तक दी जाती है ।

मुहा०—(किसी बात का) जनमघूंटी में पड़ना = जन्म से ही (किसी बात की) आदत पड़ना । (किसी बात का) इतना अभ्यस्त हो जाना कि उससे पीछा न छूट सके । जैसे,—झूठ बोलना तो इनकी जनमघूंटी में पड़ा है ।

जनमजला—वि० [हिं० जनम + जलना] [वि० स्त्री० जनमजली] दुर्भाग्यग्रस्त । भाग्यहीन । अभागा ।

जनमत—संज्ञा पुं० [सं० जन + मत] सर्वसाधारण जनता की राय । लोकमत । उ०—जनमत राजा को निकाल सकता था ।—प्रा० भा० प०, पृ० १८६ ।

यौ०—जनमत संग्रह = जनता की राय का संकलन । लोकमत का संकलन जिससे लोक की राय जानी जाय । उ०—जनमत संग्रह के पूर्व सब दलों को अपने मत के प्रचार का अधिकार होगा ।—भारतीय०, पृ० २२६ ।

जनमदिन—संज्ञा पुं० [हिं० जनम + दिन] दे० 'जन्मदिन' ।

जनमधरती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम + धरती] दे० 'जन्मभूमि' ।

जनमना[1]—क्रि० अ० [सं० जन्म] १ पैदा होना । उत्पन्न होना । जन्म लेना । उ०—(क) जे जनमे कलिकाल कराला ।—मानस, १।१२ । (ख) कै जनमत मरि गई एक दासी घरवारी ।—हम्मीर०, पृ० ४५ । २ चौसर आदि खेलों में किसी नई या मरी हुई गोटी का, उन खेलों के नियमानुसार खेले जाने के योग्य होना ।

जनमना[2]—क्रि० स० [सं० जन्म या हिं० जनमाना] जन्म देना । उत्पन्न करना । उ०—कैकय सुता सुमित्रा दोऊ । सुंदर सुत जनमत भै ओऊ ।—मानस, १।१९५ ।

जनमपत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम+पत्ती] चाय कुलियों की बोलचाल की भाषा मे चाय की वह छोटी पत्ती या फुनगी जो पहले पहल निकलती है ।

जनमपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्मपत्री] दे० 'जन्मपत्री' ।

जनमरक—संज्ञा पुं० [सं०] वह बीमारी जिससे थोड़े समय में बहुत से लोग मर जायँ । महामारी ।

जनमर्य्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लौकिक आचार या रीति ।

जनमसंगी—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० जनमसंगिनी] जिसका साथ जनम भर रहे (पति या पत्नी) ।

जनमसँघाती(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जनम+संघाती] वह जिसका साथ जन्म से ही हो । बहुत दिनों से साथ रहनेवाला मित्र । २ वह जिसका साथ जन्म भर रहे ।

जनमाना—क्रि० स० [हिं० जनम] १ जनमने का काम कराना । प्रसव कराना । २ दे० 'जनमना' ।

जनमु(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, हिं० जनम] दे० 'जन्म' । उ०—राम काज लगि जनमु जग, सुनि हरषे हनुमान ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८६ ।

जनमुरीद—वि० [फ़ा० जन+मुरीद] पत्नीपरायण । पत्नीभक्त । जोरू का गुलाम । उ०—पत्नी की सी कहता हूँ तो जनमुरीद की उपाधि मिलती है ।—मान०, भा० १, पृ० १५४ ।

जनमेजय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जन्मेजय' ।

जनयिता[1]—वि० [सं० जनयितृ] वि० स्त्री० जनयित्री] जन्मदाता । पैदा करनेवाला ।

जनयिता[2]—संज्ञा पुं० पिता । बाप ।

जनयित्री[1]—वि० [सं०] जन्म देनेवाली । उ०—शीतलता, सरलता मइत्री । द्विजपद प्रीति धरम जनयित्री ।—मानस, ७ । ३८ ।

जनयित्री[2]—संज्ञा स्त्री० माता । माँ ।

जनयिष्णु—वि० [सं०] जननकर्ता । उत्पादक [को०] ।

जनरंजन—वि० [सं० जन+रञ्जन] मनुष्यों को या सेवकों को सुख पहुँचानेवाला [को०] ।

जनरल[1]—संज्ञा पुं० [अं०] फौजों का एक बड़ा अफसर जिसके अधिकार मे कई रेजिमेंट होती है । अंग्रेजी सेना का सेनापति या सेनानायक ।

जनरल[2]—वि० साधारण । आम । जैसे, इंस्पेक्टर जनरल ।

जनरव—संज्ञा पुं० [सं०] १. किंवदंती । जनश्रुति । अफवाह । २.

लोकनिंदा। बदनामी। ३ बहुत से लोगों का कोलाहल। हल्ला। शोरगुल।

जनलोक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर के सप्तलोकों मे से पाँचवाँ लोक। दे० 'जन' ११।

जनवरी—संज्ञा स्त्री० [ग्रं० जनुग्ररी] अंग्रेजी साल का पहिला महीना जो इकतीस दिनों का होता है।

जनवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्वेत रोहित का पेड। सफेद रोहिडा। २ जनप्रिय। लोकप्रिय।

जनवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनाना] दे० 'जनाई'-२।

जनवाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जनरव'।

जनवाना[1]—क्रि० स० [हिं० जनना] जनने का प्रेरणार्थक रूप। प्रसव कराना। लडका पैदा कराना।

जनवाना[2]—क्रि० स० [हिं० जानना] समाचार दिलवाना। किसी दूसरे के द्वारा सूचित कराना।

जनवास—संज्ञा पुं० [सं० जन्य+वास] १ सर्वसाधारण के ठहरने या टिकने का स्थान। लोगों के निवास का स्थान। २ बरातियों के ठहरने का स्थान। वह जगह जहाँ कन्या पक्ष की ओर से बरातियों के ठहरने का प्रबंध हो। उ०—(क) सकल सुपास जहाँ दीन्ह्यो जनवास तहाँ कीन्ह्यो सन्मान दे हुलास त्यों समाज को।—कबीर (शब्द०)। (ख) दीन्ह जाय जनवास सुपास किए सब। घर घर बालक बात कहन लागे सब।—तुलसी (शब्द०)। ३ सभा। समाज।

जनवासना—क्रि० स० [सं० जनवास+ना (प्रत्य०)] आगत जन को ठहरने या वैठने का स्थान देना। उ०—तोरन सुचारु आचार करि कै जनवासत मडपहि।—पृ० रा०, ७।१७७।

जनवासा—संज्ञा पुं० [सं० जन्यवास] दे० 'जनवास'-२। उ०—अति सुदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा।—मानस, १।३०६।

जनव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] लोकप्रसिद्ध या लोक में प्रचलित चलन या रीति रिवाज [को०]।

जनशून्य—वि० [सं०] जनहीन। निर्जन। सुनसान।

जनश्रुत—वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

जनश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह खबर जो बहुत से लोगों मे फैली हुई हो पर जिसके सच्चे या झूठे होने का कोई निर्णय न हुआ हो। अफवाह। किंवदंती।

क्रि० प्र०—उठना।—फैलना

जनसख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जन+सख्या] किसी स्थानविशेष पर बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती। आबादी। जैसे,—(क) काशी की जनसंख्या दो लाख के लगभग है। (ख) कलकत्ते की जनसख्या में बबई की अपेक्षा इस बार कम वृद्धि हुई है।

जनसंबाध—वि० [सं०] सघन बसा हुआ [को०]।

जनसमूह—संज्ञा पुं० [सं० जन+समूह] सर्वसाधारण मनुष्यों का समुदाय। आम जनता का मजमा।

जनसाधारण—संज्ञा पुं० [हिं०] सामान्य जन। आम जनता।

जनसेवक—वि० [सं० जन+सेवक] जनता की सेवा करनेवाला। जनता का हितू। जनसेवी।

जनसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं० जन+सेवा] सर्वसाधारण जनता के हित का काम।

जनसेवी—वि० [सं० जन+सेविन्] दे० 'जनसेवक'।

जनस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दंडकारण्य। दडकवन।

जनहरण—संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृत्त का नाम।

विशेष—यह मुक्तक का दूसरा भेद है और इसके प्रत्येक चरण में तीस लघु और गुरु होता है। जैसे,—लघु सब गुरु इक तिसर न मन घर भजु नर प्रभु अघ जन हरण।

जनहित—संज्ञा पुं० [सं० जन+हित] लोकोपकारी कार्य। लोक-कल्याण। उ०—का न कियो जनहित जदुराई।—सूर०, १।६।

जनहीन—वि० [सं० जन+हीन] निर्जन। बिजन। जनशून्य।

जनांत—संज्ञा पुं० [सं० जनान्त] १ वह प्रदेश जिसकी सीमा निश्चित हो। २. यम। ३ वह स्थान जहाँ मनुष्य न रहते हों।

जनांत[2]—वि० मनुष्यों का नाश करनेवाला।

जनांतिक—संज्ञा पुं० [सं० जनान्तिक] १ दो आदमियों में परस्पर वह सांकेतिक बातचीत जिसे और उपस्थित लोग न समझ सकें।

विशेष—इसका व्यवहार बहुधा नाटकों में होता है।

२ व्यक्ति का सामीप्य।

जना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पत्ति। पैदाइश। २ महिष्मती के राजा नीलध्वज की स्त्री का नाम। जैमिनी।

विशेष—भारत के अनुसार पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़नेवाला प्रवीर इसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उस घोड़े के लिये प्रवीर और पांडवों में जो युद्ध हुआ था उसमें इसने (जैमिनी ने) अपने पुत्र को बहुत सहायता और उत्तेजना दी थी। जब युद्ध में प्रवीर मारा गया तब यह स्वयं युद्ध करने लगी। श्रीकृष्ण को इससे पांडवों की रक्षा करने में बहुत कठिनता हुई थी।

जना[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० जिनां] दे० 'जिना'।

जना[3]—वि० [सं० जन्य] [वि० स्त्री० जनी] उत्पन्न किया हुआ। जन्माया हुआ।

जना(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० जनी (=माता) का हिं०पुं० रूप] उत्पन्न करनेवाला पिता। उ०—एकै जनी जना ससारा। कौन ज्ञान से भयउ न्यारा।—कबीर बी०, पृ० १२।

जनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] १. जनानेवाली। दाई। २. जनाने की उजरत। पैदा कराई का हक या नेग। दाई की मजदूरी।

जनाउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जनाव] दे० 'जनाव'। उ०—अवध-नाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ। भए प्रेम बस सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ।—तुलसी (शब्द०)।

जनाकर—वि० [सं० जन+आकर] मनुष्यों से भरा हुआ। जनाकीर्ण। उ०—ग्राम नहीं वे ग्राम आज औ नगर न नगर जनाकर। ग्राम्या, पृ० ११।

जनाकार—वि० [अ० जिनह् + फा० कार] बुरा काम करनेवाला। व्यभिचारी। उ०—कहीं मजमा है मर्दोजन जनाकार। —कबीर म०, पृ० ४७।

जनाकीर्ण—वि० [सं०] सघन आबादीवाला। आदमियों से भरा हुआ। जनाकर। उ०—हबड़ा के जनाकीर्ण स्थान में उन दोनों ने अपने को ऐसा छिपा लिया, जैसे मधुमक्खियों के छत्ते में कोई मक्खी।—तितली, पृ० २१६।

जनाचार—संज्ञा पुं० [सं०] देश या समाज आदि की प्रचलित रीति। लोकाचार।

जनाजा—संज्ञा पुं० [अ० जनाजह्] १ मृतक शरीर। मुर्दा। शव। लाश। उ०—खुदी खुद की खोइ जनाजा जियते करना।—पलटू०, पृ० १४। २ अरथी या वह संदूक जिसमें लाश को रखकर गाड़ने, जलाने या और किसी प्रकार की अंतिम क्रिया करने के लिये ले जाते हैं। उ०—छूटेंगे जीस्त के फंदे से कौन दिन आतिश। जनाजा होगा कब अपना रवाँ नहीं मालूम।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३८१।

क्रि० प्र०—उठना। निकलना।—रवाँ होना।

जनातिग—वि० [सं०] असाधारण। असामान्य। लोकोत्तर [को०]।

जनाधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर। २ राजा।

जनाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। नरेश। २ विष्णु का एक नाम [को०]।

जनाती—संज्ञा पुं० [अथवा हिं० जन (= यज्ञ = विवाह) + आती (= पक्ष के)] कन्या पक्ष के लोग। घराती।

जनानखाना—संज्ञा पुं०[अ० जनान + फा० खानह्] घर का वह भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हों। स्त्रियों के रहने का घर। अंतःपुर उ०—अब उन्हीं की संतान, जनानखानों में पतली छड़ी छिपा अंग्रेजी जूता की एँड़ी खटखटाते कुर्सों से मुकवाते पैठे चले जा रहे हैं।—प्रेमघन०, पृ० ७६।

जनाना[1]—क्रि० स० [हिं० जानना का प्रे० रूप] मालूम कराना। जताना। उ०—सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।—मानस, २।१२७।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

जनाना[2]—क्रि० स० [हिं० जनना का प्रेरणार्थक रूप] उत्पन्न कराना। जनने का काम कराना।

संयो० क्रि०—देना।

जनाना[3]—वि० [फ़ा० जनानह्] [वि० स्त्री० जनानी] १ स्त्रियों का स्त्री संबंधी। जैसे, जनाना काम, जनानी सूरत, जनानी बोली। २ नामर्द। नपुंसक। हींजड़ा। ३ निर्बल। डरपोक। ४ औरत। स्त्री। पत्नी।

जनाना[4]—संज्ञा पुं० १ जनखा। मेहरा। २, अंतःपुर। जनानखाना।

मुहा०—जनाना करना = पर्दा करना। स्थान को पर्देवाली स्त्रियों के आने जाने योग्य करना।

जनानापन—संज्ञा पुं० [फा० जनानह् + पन (प्रत्य०)] मेहरापन। स्त्रीत्व।

जनानी—वि० स्त्री० [फ़ा जनानह] दे० 'जनाना'[3]।

जनाब—संज्ञा पुं० [अ०][स्त्री० जनाबा] १. बड़ों के लिये आदर सूचक शब्द। महाशय। महोदय। जैसे, जनाब मौलवी साहब। २. पार्श्व। पहलू (को०)। ३. आश्रम (को०)। ४. चौखट। देहली। ड्योढ़ी। ५ उपस्थिति। मौजूदगी (को०)।

जनाबआली—संज्ञा पुं० [अ०] मान्यवर। महोदय। प्रतिष्ठित पुरुषों के लिये आदरसूचक संबोधन।

जनार्दन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ शालग्राम की बटिया का का एक भेद। ३. कृष्ण (को०)।

जनार्दन—वि० लोगों को कष्ट पहुँचानेवाला। दुखदायी।

जनाव—संज्ञा पुं०[हिं० जनाना] जनाने की क्रिया। सूचना। इत्तिला। उ०—चलत न काहुहि कियो जनाव। हरि प्यारी सों बाढ्यो भाव। रास रसिक गुण गाइ हो।—सूर (शब्द०)।

जनावना—क्रि० स० [हिं० जनाना] सूचित करना। विदित करना। जताना। ज्ञापित करना। उ०—तातें आप आगे कहा जनावनो? जो कोई न जानतो होइ ताकों जनाइए। दो—सौ बावन०, भा० १, पृ० २११।

जनावर—संज्ञा पुं० [हिं० जानवर] दे० 'जानवर'। उ०—घास में कोई जनावर न रहन पावे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१०।

जनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेड़िया। २. मनुष्यभक्षक। वह जो आदमियों को खाता हो। ३ आदमियों को खाने का काम।

जनाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] ठहरने का स्थान। धर्मशाला। सराय [को०]।

जनाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्मशाला या सराय आदि जहाँ यात्री ठहरते हों। २ वह मकान या मंडप आदि जो किसी विशेष कार्य या समय के लिये बनाया जाय। ३. साधारण घर। मकान।

जनि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। २ जिससे कोई उत्पन्न हो। नारी। स्त्री। ३ माता। ४. जनी नामक गंधद्रव्य। ५ पुत्रवधू। पतोहू। ६ भार्या। पत्नी। ७. जतुका। ८ जन्मभूमि।

जनि[2]—क्रि० वि० [हिं० जानना] जनु। मानो। उ०—पीन पयोधर अपरुब सुंदर ऊपर मोतिन हार। जनि कनकाचल उपर विमल जल दुइ बह सुरसरि धार।—विद्यापति, पृ० ३६।

जनि[3]—अव्य० [हिं०] मत। नहीं। न (निषेधार्थक)। उ०—जनि लेहु मातु कलंक करुना परिहरहु अवसरु नहीं। —मानस, १।९७।

जनि[4]—सर्व० [हिं०] दे० 'जिस'। उ०—जनि का जन्म होइत हम गेलहुँ ऐलहुँ तनिकर अंते।—विद्यापति, पृ० २५२।

जनिक—वि० [सं०] उत्पन्न करनेवाला। जन्म देनेवाला [को०]।

जनिका[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनाना] पहेली। मुअम्मा। बुझौवल।

जनिका[2]—वि० [सं०] दे० 'जनि' [को०]।

जनित—वि० [सं०] १ उत्पन्न । जन्मा हुआ । उपजा हुआ । २ उत्पन्न किया हुआ ।

जनिता¹—संज्ञा पुं० [सं० जनितृ] पैदा करनेवाला । उत्पन्न करनेवाला । पिता ।

जनिता²—संज्ञा स्त्री० [सं० जनितृ] उत्पन्न करनेवाली । माता । प्रसूति । उ०—उद्दित प्रधान सुभ गातनह, जेम जलधि पुन्निम बढ़हि । हुलसत हीय जे प्रीय त्रिय, जिम सु जोति जनिता धढ़हि ।—पृ० रा०, १ । १८४ ।

जनित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ जन्मस्थान । जन्मभूमि । २. मूल । आधार (को०) ।

जनित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न करनेवाली । माता । माँ ।

जनित्व—संज्ञा पुं० [सं०] पिता (को०) ।

जनित्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता (को०) ।

जनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जनिमन्] १. उत्पत्ति । जन्म । २ संतान । संतति (को०) ।

जनिनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का बड़ा पेड़ ।

जनियाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जानि] प्रियतमा । प्राणप्यारी । प्रिया । प्रेयसी ।

जनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० जन] १ दासी । सेविका । अनुचरी । उ०—धाइ, जनी, नाइन, नटी प्रगट परोसिनि नारि ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ६८ । २ स्त्री । ३ उत्पन्न करनेवाली । माता । ४. जन्माई हुई । कन्या । लड़की । पुत्री । उ०—प्यारी छबि की रासि बनी । जाहि विलोकि निमेष न लागत श्री वृषभानु जनी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५ ।

जनी²—वि० स्त्री० उत्पन्न की हुई । पैदा की हुई । जनमाई हुई ।

जनी³—संज्ञा स्त्री० [सं० जननी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पर्पटी या पानड़ी भी कहते हैं ।

विशेष—यह शीतल, वर्णकारक, कसैली, कड़वी, हलकी, अग्निदीपक, रुचिकारक तथा रक्त, पित्त, कफ, रुधिरविकार, कोढ़, दाह, वमन, तृषा, विष, खुजली और व्रण का नाश करनेवाली कही गई है ।

जनीयर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

जनु¹—क्रि० वि० [हिं० जानना] [अन्य रूप-जनि, जनुक, जनू, जानो आदि] मानो । उ०—(क) छुटत गिलोला हथ्थ तैं पारत चोट पयल्ल । कमलनयन जनु कामिनी करत कटाछ छयल्ल ।—पृ० रा०, १।७२८ । (ख) कामकंदला भई वियोगिनि । दुर्बल जनू वर्ष को रोगिनि ।—माधवानल०, पृ० २०३ ।

जनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म । उत्पत्ति ।

जनुक—क्रि० वि० [हिं० जनु+क (प्रत्य०)] जैसे । मानो ।

जनूँ(पु)—संज्ञा पुं० [जुनून] पागलपन । उन्माद । उ०—इतना एहसाँ और कर लिल्लाह ए दस्ते जनूँ ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २४६ ।

जनू—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पत्ति । जन्म (को०) ।

जनून—पुं० [अ० जुनून] [वि० जनूनी] पागलपन । सनक । उन्माद । खब्त (को०) ।

जनूनी—वि० [अ० जुनूनी] पागल । उन्मादी (को०) ।

जनूब—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० जनूबी] दक्षिण । दक्खिन (को०) ।

जनूबी—वि० [अ०] दक्षिण संबंधी । दक्खिनी । दक्षिण का (को०) ।

जनेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० जनेन्द्र] राजा ।

जने—संज्ञा पुं० [सं० जन्] व्यक्ति । आदमी । प्राणी । उ०—हममें दो जने का साझा तो निभता ही नहीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८२ ।

यौ०—जने जने । जैसे, नाऊ की बरात में जने जने ठाकुर ।

जनेऊ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत, प्रा० जन्नोवईय, अथवा सं० जन्म] यज्ञोपवीत । ब्रह्मसूत्र । उ०—वामन को जनम जनेऊ मेलि जानि बूझि, जीभ ही बिगारिबे को याच्यो जन जन मे ।—अकबरी०, पृ० ११५ ।

मुहा०—जनेऊ का हाथ=पटेबाजी या तलवार का एक हाथ जिसमें प्रतिद्वंद्वी की छाती पर ऐसा आघात लगाया जाता है जैसे जनेऊ पड़ा रहता है । इसे जनेव या जनेवा का हाथ भी कहते हैं ।

२ यज्ञोपवीत संस्कार । उ०—दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ।—मानस, १।२०४ ।

जनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० जन+हिं० एत (प्रत्य०)] बरयात्रा । बरात । उ०—बीच बीच बर बास करि, मग लोगन सुख देत । अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आय जनेत ।—तुलसी (शब्द०) ।

जनेता—संज्ञा पुं० [सं० जनयिता या जनिता] पिता । बाप ।—(हिं०) ।

जनेरा—संज्ञा पुं० [हिं० जुआर] एक प्रकार का बाजरा जिसके पेड़ बहुत लंबे होते हैं । इसमें बालें भी बहुत लंबी आती हैं । जोन्हरी ।

जनेव—संज्ञा पुं० [हिं० जनेऊ] दे० 'जनेऊ' ।

जनेवा—संज्ञा पुं० [हिं० जनेऊ] १. लकड़ी आदि में बनाई या पड़ी हुई लकीर या धारी । २ एक प्रकार की ऊँची घास जिसे घोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं । ३ बाएँ कंधे से दाहिनी कमर तक शरीर का वह अंश जिसपर जनेऊ रहता है । ४. तलवार या लाठी का वह वार जो जनेऊ की तरह काट करे । दे० मु० 'जनेऊ का हाथ' ।

जनेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नरेश । भूपति ।

जनेष्ट—वि० [सं०] [वि०स्त्री० जनेष्टा] जनप्रिय । लोकप्रिय (को०) ।

जनेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हल्दी । २. चमेली का पेड़ । ३ पपड़ी । पर्पटी । ४. वृद्धि नाम की ओषधि ।

जनेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जनेश] दे० 'जनेश' । उ०—गौतम की तीय तारी मेटे अघ भूरि भारी, लोचन अतिथि भए जनक जनेस के ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६० ।

जनैया—वि० [हिं० जानना+ऐया (प्रत्य०)] जाननेवाला । जानकार । उ०—(क) बदले की बदलो लै जाहु । उनकी एक हमारी है तुम बड़े जनैया आहु ।—सूर०, १०।४००१ ।

(ख) तृण के समान धनधाम राज त्याग करि पाल्यो पितु बचन जो जानत जनैया है।—पद्माकर (शब्द०) (ग) जो मायसु अब होइ स्वामिनी ल्यावहुँ ताहि लेवाई। योगी बावा बड़ो जनैया यहै कुँवर सुखदाई। —रघुराज (शब्द०)।

जनो‡[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जनेऊ] दे० 'जनेऊ'।

जनो‡[2]—क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो। गोया। उ०—(क) तैही जनो पतिदेवत के गुन गौरि सबै गुनगौरि पढाई।—मति० ग्रं०, पृ० २७५ (ख) कुकुम मंडित प्रिया वदन जनो रंजित नायक। —नंद० ग्रं०, पृ० ३६।

जनोपयोगी—वि० [सं० जनोपयोगिन्] जनसाधारण के व्यवहार या उपयोग का।

जनौ(पु)—क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो। जनो। उ०—(क) जब भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनौं सोइ उठि जागा।—जायसी (शब्द०)। (ख) नर तौ जनौं ग्रवृत ही पगे।—नंद० ग्रं०, पृ० २३२। (ग) उन तेग कढ्ढी। जनौ वज्र टट्टी।—पृ० रा०, १०।२०।

जनौघ—संज्ञा पुं० [सं० जन + ओघ] भीड। जनसमूह [को०]।

जन्नत—संज्ञा पुं० [अ०] १ उद्यान। वाटिका। बाग। २ बिहिश्त। स्वर्ग। देवलोक। उत्तम लोक। उ०—हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन। दिल के खुश रखने को गालिब ये खयाल अच्छा है। —कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४७४। (ख) जन्नत से कढ़वा दिया शुरू में ही बेचारे आदम को। —धूप०, पृ० ७३।

जन्नती—वि० [अ०] १ स्वर्गवासी। स्वर्गीय। २ सदाचारी। पुण्यात्मा। स्वर्ग के योग्य [को०]।

जन्म—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] १. गर्भ में से निकलकर जीवन धारण करने की क्रिया। उत्पत्ति। पैदाइश।

यौ०—जन्मांध। जन्माष्टमी। जन्मतिथि। जन्मभूमि। जन्मपंजी जन्मपत्री। जन्मरोगी। जन्मदिवस=जन्मदिन। जन्मकुंडली। जन्ममरण। जन्मदाता। जन्मदात्री। जन्मनाम। जन्मलग्न, आदि।

पर्या०—जनु। जन। जनि। उद्भव। जनी। प्रभव। भाव। भव। संभव। जनू। प्रजनन। जाति।

क्रि० प्र०—देना।—धारना।—लेना।

मुहा०—जन्म लेना=उत्पन्न होना। पैदा होना।

२ अस्तित्व प्राप्त करने का काम। आविर्भाव। जैसे,—इस वर्ष कई नए पत्रों ने जन्म लिया है। ३ जीवन। जिंदगी।

मुहा०—जन्म बिगड़ना=वेधर्म होना। धर्म नष्ट होना। जन्म बिगाड़ना=(१) अशोभन और अनुचित कामों में लगे रहना। (२) दे० 'जन्म हारना'। जन्म जन्म=सदा। नित्य। जन्म जन्मातर=सदा। प्रत्येक जन्म में। जन्म में थूकना‡=घृणापूर्वक धिक्कारना। जन्म हारना=(१) व्यर्थ जन्म खोना। (२) दूसरे का दास होकर रहना।

४ फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली का वह लग्न जिसमें कुंडलीवाले जातक का जन्म हुआ हो।

जन्मअष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्माष्टमी] दे० 'जन्माष्टमी'।

जन्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु की उपासना करने से मनुष्य का मोक्ष हो जाता है और उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। इसी से विष्णु को जन्मकील कहते हैं।

जन्मकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्मकुण्डली] ज्योतिष के अनुसार वह चक्र जिससे किसी के जन्म के समय में ग्रहों की स्थिति का पता चले।

जन्मकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] पिता। जन्मदाता।

जन्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि। जन्मस्थान [को०]।

जन्मगत—वि० [सं० जन्म + गत] जन्म से ही प्राप्त। जन्मना प्राप्त [को०]।

जन्मग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति।

जन्मजात—वि० [सं०] जन्म से ही प्राप्त या उत्पन्न।

जन्मतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जन्म की तिथि। जन्मदिन। २. वर्षगाँठ।

जन्मतुआ‡—वि० [हिं० जन्म + तुआ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जन्मतुई] थोड़े दिनों का पैदा हुआ। नवोत्पन्न। दुधमुहाँ।

जन्मद—वि० [सं०] दे० 'जन्मदाता'।

जन्मदाता—संज्ञा पुं० [सं० जन्मदातृ] [स्त्री० जन्मदात्री] जन्म देनेवाला। पिता [को०]।

जन्मदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जननी। माता [को०]

जन्मनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म समय का नक्षत्र।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार किसी को अपने जन्मनक्षत्र में यात्रा न करनी चाहिए और हजामत न बनवानी चाहिए, उस दिन उसे कुछ दान पुण्य आदि करना चाहिए।

जन्मना[1]—क्रि० स० [सं० जन्म हिं० ना (प्रत्य०)] १ जन्म लेना। जन्म ग्रहण करना। पैदा होना। २ आविर्भूत होना। अस्तित्व में आना।

जन्मना[2]—क्रि० वि० [सं० जन्मन् का करण कारक] जन्म से। जन्म द्वारा।

जन्मनाम—संज्ञा पुं० [सं० जन्मनामा] जन्म के १२ वें दिन रखा गया नाम [को०]।

जन्मप—संज्ञा पुं० [सं०] १ फलित ज्योतिष में जन्मलग्न का स्वामी। २ फलित ज्योतिष में जन्मराशि का स्वामी।

जन्मपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंडली में जन्मराशि का मालिक। २. जन्मलग्न का स्वामी।

जन्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ जन्मपत्री। २ जन्म का विवरण। जीवनचरित्। ३ किसी चीज का आदि से अंत तक विस्तृत विवरण।

जन्मपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्मपत्री।

जन्मपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र या खर्रा जिसमें किसी की उत्पत्ति के समय के ग्रहों की स्थिति, उनकी दशा, अंतर्दशा, आदि और फलित ज्योतिष के अनुसार उनके फल आदि दिए हों।

जन्मपादप—संज्ञा पुं० [सं०] वंशवृक्ष [को०] ।

जन्मप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ माता । माँ । २ जन्म होने का स्थान ।

जन्मभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ जन्म समय का लग्न । २ जन्म समय का नक्षत्र । ३. जन्म की राशि । ४ जन्मनक्षत्र के सजातीय नक्षत्र आदि ।

जन्मभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म की भाषा । मातृभाषा [को०] ।

जन्मभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जिस स्थान पर किसी का जन्म हुआ हो । जन्मस्थान । २ वह देश जहाँ किसी का जन्म हुआ हो ।

जन्मभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] जीव । प्राणी ।

जन्मयोग—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मपत्रिका । जन्मकुंडली [को०] ।

जन्मराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लग्न जिसमे किसी के उत्पन्न होने के समय चद्रमा उदय हो ।

जन्मरोगी—वि० [सं० जन्मरोगिन्] जन्म से रुग्ण । जन्म से ही रोगग्रस्त [को०] ।

जन्मलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जन्मराशि' [को०] ।

जन्मवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० जन्मवर्त्मन्] योनि । भग ।

जन्मविधवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो बचपन मे विवाह होने पर विधवा हो गई हो और अपने पति के साथ जिसका सपर्क न हुआ हो । अक्षतयोनि विधवा ।

जन्मवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं० जन्म + वृत्तात] दे० 'जन्मपत्र' ।

जन्मशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म से ही प्राप्त ऋणों या कर्तव्यो का परिशोधन [को०] ।

जन्मसिद्ध—वि० [सं० जन्म + सिद्ध] जिसकी प्राप्ति जन्म से ही सिद्ध या मान्य हो । जैसे,—स्वतत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । उ०—बन जन्मसिद्ध गायिका, तन्वि, मेरे स्वर की रागिनी वह्नि ।—अपरा, पृ० १७७ ।

जन्मस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ जन्मभूमि । २ माता का गर्भ । ३ कुडली में वह स्थान जिसमे जन्म समय के ग्रह रहते हैं ।

जन्मांतर—संज्ञा पुं० [सं० जन्मान्तर] दूसरा जन्म । अन्य जन्म । उ०—कारन ताको जानिए सुधि प्रगटी है आय । जन्मातर के सखन की जो मन रही समाय ।—शकुतला, पृ० ८२ ।

यौ०—जन्मातरवाद = पुनर्जन्म सबधी विचारधारा ।

जन्मांध—वि० [सं० जन्मान्ध] जन्म का अधा । जन्म से अधा ।

जन्मा¹—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] वह जिसका जन्म हो । जन्मवाला । जैसे,—द्विजन्मा, शूद्रजन्मा ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्राय समासात में होता है ।

जन्मा²—वि० उत्पन्न । जो पैदा हुआ हो ।

जन्माधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम । २ जन्मराशि का स्वामी । ३ जन्मलग्न का स्वामी ।

जन्माना—क्रि० स० [हिं० जन्मना] जन्मने का सकर्मक रूप । उत्पन्न करना । जन्म देना ।

जन्माष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादो की कृष्णाष्टमी, जिस दिन आधी रात के समय भगवान श्रीकृष्णचद्र का जन्म हुआ था । इस दिन हिंदू व्रत तथा श्रीकृष्ण के जन्म का उत्सव करते हैं ।

विशेष—विष्णुपुराण मे लिखा है कि श्रीकृष्णचद्र का जन्म श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था । इसका कारण मुख्य चाद्रमास और गौण चाद्रमास का भेद मालूम होता है, क्योंकि जन्माष्टमी किसी वर्ष सौर श्रावण मास मे होती है । और किसी वर्ष सौर भाद्र मास मे होती है ।

जन्मास्पद—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि । जन्मस्थान ।

जन्मी¹—संज्ञा पुं० [सं० जन्मिन्] प्राणी । जीव ।

जन्मी²—वि० जो उत्पन्न हुआ हो ।

जन्मेजय—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुरुवशी प्रसिद्ध राजा परीक्षित के पुत्र का नाम ।

विशेष—यह बड़ा प्रतापी राजा था । इसने तक्षक नाग से अपने पिता का बदला लिया था और एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था । वैशपायन ने इसे महाभारत सुनाया था । यह अर्जुन का प्रपौत्र और अभिमन्यु का पौत्र था ।

२ विष्णु । ३ एक प्रसिद्ध नाग का नाम ।

जन्मेश—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मराशि का स्वामी ।

जन्मोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के जन्म के स्मरण का उत्सव तथा नवग्रह, अष्टचिरजीवी और कुलदेवता आदि का पूजन । बरसगाँठ । २ जातक के छठे दिन या बारहवें दिन होनेवाला उत्सव या समारोह ।

जन्य¹—संज्ञा पुं०[सं०] [स्त्री० जन्या] १ साधारण मनुष्य । जनसाधारण । २ किंवदती । अफवाह । ३ राष्ट्र या किसी देश के वासी । ४. लड़ाई । युद्ध । ५. हाट । बाजार । ६ निंदा । परिवाद । ७ वर । दूलह । ८. वर के संबंधी जन । वर पक्ष के लोग । ९. बराती । १० जामाता । दामाद । ११. पुत्र । बेटा । उ०—अतुल अबुकुल सा अमल भला कौन है धन्य । अबुज जिसका जन्य तू धन्य धन्य ध्रुव धन्य ।—साकेत, पृ० २९३ । १२ पिता । १३ महादेव । १४ देह । शरीर । १५ जन्म । १६ जाति । १७ जन्म के समय होनेवाला शकुन या अपशकुन (को०) ।

जन्य—वि० १ जन सबधी । २ जो उत्पन्न हुआ हो । उद्भूत । ३ किसी जाति, देश, वश या राष्ट्र से सबध रखनेवाला । ४, दैशिक । राष्ट्रीय । जातीय । ५ साधारण । सामान्य । गँवारू (को०) । ६ (समासात मे) किसी से या किसी के द्वारा उत्पन्न । जैसे, तज्जन्य, दुःखजन्य ।

जन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म होने का भाव ।

जन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वधू की सहेली । २ वधू । ३ माता की सखी । ४. प्रीति । स्नेह । ५ सुख । आनद (को०) ।

जन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि । २ ब्रह्मा । विधाता । ३ प्राणी । जीव । ४ जन्म । उत्पत्ति । ५ हरिवंश के अनुसार चौथे मन्वतर के सप्तर्षियो में से एक ऋषि का नाम ।

जप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जपतव्य, जपनीय, जपी, जप्य] १. किसी मंत्र या वाक्य का बार बार धीरे धीरे पाठ करना। २ पूजा या संध्या आदि में मंत्र का संख्यापूर्वक पाठ करना।

विशेष—पुराणों में जप तीन प्रकार का माना गया है—मानस, उपांशु और वाचिक। कोई कोई उपांशु और मानस जप के बीच 'जिह्वाजप' नाम का एक चौथा जप भी मानते हैं। ऐसे लोगों का कथन है कि वाचिक जप से दसगुना फल उपांशु में, शतगुना फल जिह्वा जप में और सहस्रगुना फल मानस जप में होता है। मन ही मन मंत्र का अर्थ मनन करके उसे धीरे धीरे इस प्रकार उच्चारण करना कि जिह्वा और ओंठ में गति न हो, मानस जप कहलाता है। जिह्वा और ओठ को हिलाकर मंत्रों के अर्थ का विचार करते हुए इस प्रकार उच्चारण करना कि कुछ सुनाई पड़े, उपांशु जप कहलाता है। जिह्वाजप भी उपांशु के ही अंतर्गत माना जाता है, भेद केवल इतना ही है कि जिह्वा जप में जिह्वा हिलती है, पर ओठ में गति नहीं होती और न उच्चारण ही सुनाई पड़ सकता है। वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है। जप करने में मंत्र की संख्या का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिये जप में माला की भी आवश्यकता होती है।

यौ०—जपमाला। जपयज्ञ। जपस्थान।

३ जापक। जपनेवाला। जैसे, कर्णजप।

जपजी—संज्ञा पुं० [हिं० जप] सिक्खों का एक पवित्र धर्मग्रंथ, जिसका नित्य पाठ करना वे अपना मुख्य धर्म समझते हैं।

जपतप—संज्ञा पुं० [हिं० जप+तप] संध्या, पूजा, जप और पाठ आदि। पूजा पाठ। उ०—जपतप कछु न होइ तेहि काला। हे विधि मिलइ कवन विधि बाला।—मानस, १।१३१।

जपत(पु)—संज्ञा पुं० [अ० जब्त] दे० 'जब्त'। उ०—अपत करी बन की लता, जपत करी द्रुम साज। बुध बसत को कहत हैं कहा। जानि ऋतुराज।—स० सप्तक, पृ० ३८२।

जपतव्य—वि० [सं०] दे० 'जपनीय'।

जपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जप करने का काम। २ जप करने का भाव।

जपन—संज्ञा पुं० [सं०] जपने का काम। जप।

जपना[1]—क्रि० स० [सं० जपन] १ किसी वाक्य या वाक्यांश को बराबर लगातार धीरे धीरे देर तक कहना या दोहराना उ०—राम राम के जपे ते जाय जिय की जरनि।—तुलसी (शब्द०)। २ किसी मंत्र का संध्या, यज्ञ या पूजा आदि के समय संख्यानुसार धीरे धीरे बार बार उच्चारण करना। ३ खा जाना। जल्दी निगल जाना (बाजारू)।

जपना(पु)[2]—क्रि० स० [सं० यजन] यजन करना। जज्ञ करना। उ०—चहत महामुनि जाग जपो। नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तपो।—तुलसी (शब्द०)।

जपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जपना] १. माला। २ वह थैली जिसमें माला रखकर जप किया जाता है। गोमुखी। गुप्ती।

जपनीय—वि० [सं०] जप करने योग्य। जो जपने योग्य हो।

जपमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माला जिसे लेकर लोग जप करते हैं।

विशेष—यह माला संप्रदायानुसार, रुद्राक्ष, कमलाक्ष, पुत्रजीव, स्फटिक, तुलसी आदि के मनको की होती है। इनमे प्रायः एक सौ आठ, चौवन या अट्ठाईस दाने होते हैं और बीच में जहाँ गाँठ होती है वहाँ एक सुमेरु होता है। हिंदुओं के अतिरिक्त बौद्ध, मुसलमान और ईसाई आदि भी माला से जप करते हैं।

जपयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] जपात्मक यज्ञ। जप। इसके तीन भेद वाचिक, उपांशु और मानसिक हैं।

विशेष—दे० 'जप—२'।

जपहोम—संज्ञा पुं० [सं०] जप। मंत्र का होमात्मक रूप में जप।

जपा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा पुष्प। अड़हुल। उ०—को इनकी छबि कहि सकै, को इनकी छबि लाल। रोचन तैं रोचन कहा, जावक, जपा, गुलाल।—स० सप्तक, पृ० ३८७।

यौ०—जपाकुसुम=अड़हुल का फूल।—अनेकार्थ०, पृ० ४१। जपालक्त, जपालक्तक=जपाकुसुम सा गहरा लाल महावर।

जपा(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० जप] वह जो जप करता हो। जप करनेवाला व्यक्ति। उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—जायसी ग्रं०, पृ० १२।

जपाना‡—क्रि० स० [हिं० जप या जपना] जपने का प्रेरणार्थक रूप। जप कराना।

जपिया(पु)—वि० [हिं०] जप करनेवाला।

जपी—संज्ञा पुं० [सं० जपिन् हिं० जप+ई (प्रत्य०)] जप करनेवाला। वह जो जप करता हो।

जप्त—संज्ञा पुं० [अ० जब्त] दे० 'जब्त'।

जप्तव्य—वि० [सं०] जो जपने योग्य हो। जपनीय।

जप्ती—संज्ञा स्त्री० [अ० जब्ती] दे० 'जब्ती'।

जप्य[1]—वि० [सं०] जपने योग्य। जपनीय।

जप्य[2]—संज्ञा पुं० मंत्र का जप।

जफर[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़फ़र] जय। विजय। सफलता। उ०—दो तीन गरातिब वह लश्कर। जग उससे किए नई पाए जफर।—दक्खिनी०, प० २२१।

जफर[2]—संज्ञा पुं० [अ० जफ्र] एक विद्या जिससे परोक्ष ज्ञान प्राप्त होता है (को०)।

जफा—संज्ञा स्त्री० [फा० जफ़ा] अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार। सख्ती। उ०—गया बहाना भूल जफा में मूर गँवाया।—पलटू०, पृ० ९०।

यौ०—जफाकार, जफाकेश, जफाशिआर=अत्याचारी। अन्यायी। क्रूर। जालिम।

जफाकश—वि० [फा० जफ़ाकश] १ सहिष्णु। सहनशील। २. मेहनती। परिश्रमी।

जफाकशी—संज्ञा स्त्री० [फा० जफ़ाकशी] सहिष्णु और परिश्रमी स्वभाव का होना (को०)।

जफीर—संज्ञा स्त्री० [अ० जफीर] दे० 'जफील'।

जफीरी—संज्ञा स्त्री० [अ० जफ़ीर+फा० ई (प्रत्य०)] १ एक प्रकार की कपास जो मिस्र देश मे होती है। २ सीटी (को०)।

जफील—स्त्री० संज्ञा पुं० [अ० जफ़ीर] १ सीटी का शब्द, विशेषत: उस सीटी का शब्द जो कबूतरबाज कबूतर उड़ाने के समय मुँह में दो उँगलियाँ रखकर बजाते हैं। २. वह जिससे सीटी बजाई जाय। सीटी।

क्रि० प्र०—बजाना।—देना।

जफीलना—क्रि० अ० [हिं० जफील] सीटी बजाना। सीटी देना।

जब—क्रि० वि० [सं० यावत्, प्रा० याव, जाव] जिस समय। जिस वक्त। उ०—जबते राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—जब कभी = जब जब। जिस किसी समय। जब कि = जब। जब जब = जब कभी। जिस जिस समय। उ०—जब जब होइ धरम की हानी। बाढ़ै असुर अधम अभिमानी। तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।—तुलसी (शब्द०)। जब तब = कभी कभी। जैसे,—जब तब वे यहाँ आ जाया करते हैं। जब होता है तब = प्राय। अकसर। बराबर। जैसे,—जब होता है, तब तुम मार दिया करते हो। जब देखो तब = सदा। सर्वदा। हमेशा। जैसे,—जब देखो तब तुम यहीं खड़े रहते हो।

जबई—क्रि० वि० [हिं० जब + ही] जिस किसी समय। उ०—जबई आनि परै तहाँ तबई ता सिर देहि।—नद० ग्रं०, पृ० १३५।

जबड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जम्भ] मुँह में दोनों ओर ऊपर और नीचे की वे हड्डियाँ जिनमें डाढ़ें जड़ी रहती हैं। कल्ला।

मुहा०—जबड़ा फाड़ना = मुँह खोलना। मुँह फाड़ना। जबड़े की तान = गवैयों की एक तान जो उत्तम नहीं मानी जाती।

यौ०—जबड़ातोड़ = जबरदस्त। बलवान। मुँहतोड़।

जबदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धान जो रुहेलखंड में पैदा होता है।

जबर¹—वि० [फ़ा० जबर] १ बलवान। बली। ताकतवर। २ मजबूत। दृढ़। ३ ऊँचा। ऊपरी।

जबर²—क्रि० वि० ऊपर। उपरि।

जबर³—संज्ञा पुं० उर्दू में ह्रस्व अकार का बोधक चिह्न।

जबरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जबर + ई (प्रत्य०)] अन्याययुक्त सख्ती। अत्याचार। ज्यादती।

जबरजंग—वि० [हिं० जबर + जंग] दे० 'जबरदस्त'।

जबरज़द, जबरजद्द—संज्ञा पुं० [अ० जबरजद] एक प्रकार का पन्ना जो पीलापन लिए हरे रंग का होता है। पुखराज।

जबरजस्त—वि० [फ़ा० जबरदस्त] दे० 'जबरदस्त'।

जबरजस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबरदस्ती] दे० 'जबरदस्ती'। उ०—किसी के कहने से नहीं छोड़ सकते जबरजस्ती जो चाहे निकाल दे।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ७६४।

जबरदस्त—वि० [फ़ा० जबरदस्त] [संज्ञा जबरदस्ती] १ बलवान् बली। शक्तिवाला। २ दृढ़। मजबूत। पक्का।

जबरदस्ती¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबरदस्ती] अत्याचार। सीनाजोरी। प्रबलता। जियादती। अन्याय।

जबरदस्ती²—क्रि० वि० बलपूर्वक। दबाव डालकर। इच्छा के विरुद्ध।

जबरन—क्रि० वि० [अ० जब्रन्] बलात्। जबरदस्ती। बलपूर्वक। उ०—एक तरह से जबरन ही उसे गाडी में बैठा लिया।—भस्मावृत०, पृ० ११।

जबरा¹—वि० [हिं० जबर] बलवान। बली। प्रबल। जबरदस्त। जैसे —जबरा मारे रोने न दे।

जबरा²—संज्ञा पुं० [हिं० जबर (= दृढ)] चौड़े मुँह का एक प्रकार का कुठला या अनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

जबरा³—संज्ञा पुं० [अ० जेबरा] घोड़े और गदहे के मध्य का एक बहुत सुंदर जंगली जानवर जो मटमैले सफेद रंग का होता है और जिसके सारे शरीर पर लंबी सुंदर और काली धारियाँ होती हैं।

विशेष—यह कंधे तक प्राय: तीन हाथ ऊँचा और छरहरे, पर मजबूत बदन का होता है। इसके कान बड़े, गरदन छोटी और दुम गुच्छेदार होती है। यह बहुत चौकन्ना, चपल, जंगली और तेज दौड़नेवाला होता है और बड़ी कठिनता से पकड़ा या पाला जाता है। यह कभी सवारी या लादने का काम नहीं देता। दक्षिण अफ्रिका के जंगलों और पहाड़ों में इसके झुंड के झुंड पाए जाते हैं। जहाँ तक हो सकता है, यह बहुत ही एकांत स्थान में रहता है और मनुष्यों आदि की आहट पाकर तुरत भाग जाता है। इसका शिकार बहुत किया जाता है जिससे इसकी जाति के शीघ्र ही नष्ट हो जाने की आशंका है।

जबराइल—संज्ञा पुं० [अ० जिब्रील] एक फरिश्ता या देवदूत।

जबरूत—संज्ञा पुं० [अ०] प्रतिष्ठा। श्रेष्ठता। बुजुर्गी [को०]।

जबर्दस्त—वि० [हिं०] दे० 'जबरदस्त'।

जबर्दस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जबरदस्ती'।

जबल—संज्ञा पुं० [अ०] पर्वत। पहाड़। उ०—तन दुख नीर तड़ाग, रोग विहंगम रूखड़ो। विसन सलीमुख बाग, जरा थरक ऊतर जबल।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ४१।

जबह—संज्ञा पुं० [अ० जब्ह, ज़िब्ह] गला काटकर प्राण लेने की क्रिया। हिंसा। उ०—भोले भाले मुसलमानों को बर्गला कर जबह न कीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

मुहा०—जबह करना = बहुत कष्ट देना। अत्यंत दुःख देना।

जबहा¹—संज्ञा पुं० [हिं० जीव] जीवट। साहस। हिम्मत। जैसे,—उसने बड़े जबहे का काम किया।

जबहा²—संज्ञा पुं० [अ० जबहह्] १. दसवाँ नक्षत्र। मघा। २. ललाट। पेशानी। माथा।

यौ०—जबहासाई—माथा रगड़ना या घिसना। दैन्य प्रदर्शन।

जबाँ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबाँ] दे० 'जबान'। उ०—जबाँ सबके गाली ही भला आशिक को तुम दे दो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४२२।

यौ०—जबाँगीर। जबाँजद। जबाँदराज। जबाँदराजी। जबाँदाँ = भाषाविज्ञ। जबाँदानी। जबाँबंदी।

जबाँगीर—वि० [फ़ा० जबाँगीर] जासूस। गुप्तचर। भेदिया [को०]।

जबाँजद—वि० [फ़ा० ज़बाँजद] जो सबकी जबान पर हो। जन-प्रसिद्ध। विख्यात [को०]।

जबाँदराज —वि० [फा० जबाँदराज] दे० 'जबानदराज'।

जबाँदराजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबाँदराजी] दे० जबानदराजी'।

जबाँदानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबाँदानी] किसी भाषा का पांडित्य या पूर्ण ज्ञान। उ०—लखनऊवाले, जिन्हें अपनी जबाँदानी का अभिमान है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०६।

जबान—संज्ञा स्त्री० [फा० जबान][वि० जबानी]। १ जीभ। जिह्वा।

यौ०—जबानदराज। जबानबदी।

मुहा०—जबान कतरनी की तरह चलना=धृष्टतापूर्वक अनुचित अनुचित बातें कहना। उ०—ऐसी ढिठाई से खुदा समझे कि दोनों की जबान कतरनी की तरह चल रही है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६६। जबान को लगाम देना=अपना कथन समाप्त करना। चुप हो जाना। उ०—बस बस जरी जबान को लगाम दो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३। जबान आना=किसी चुप्पे आदमी का बढ़कर बातें करना। उत्तर प्रत्युत्तर करना। उ०—शान खुदा, बेजबानों को भी हमारे लिये जबान आई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४। जबान खींचना=बहुत अनुचित या धृष्टतापूर्ण बातें करने के लिये कठोर दंड देना। जबान खुलना=(१) मुँह से बात निकालना। (२) बच्चों का बोलने लगना। बोलने मे समर्थ होना। जबान खुलवाना=टेढ़ी सीधी कुछ कहने को विवश करना। जबान खुश्क होना=पिपासित होना। प्यास से आकुल होना। जबान खोलना=मुँह से बात निकालना। बोलना। जबान घिस जाना या घिसना=कहते कहते हार जाना। बार बार कहना। जबान चलना=(१) मुँह से जल्दी जल्दी शब्द निकलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना। (३) खाया जाना। मुँह चलाना। जबान चलाना=(१) बोलना, विशेषत जल्दी जल्दी बोलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना। जबान चलाए की रोटी खाना=खुशामद या चापलूसी द्वारा जीवनयापन करना। जबान चाटना=दे० 'ओंठ चाटना'। जबान टूटना=(बालक का) स्पष्ट उच्चारण आरंभ करना। † जबान डालना=(१) माँगना याचना करना। (२) पूछना। प्रश्न करना। जबान तक न हिलना=मौन रह जाना। कुछ न कहना। उ०—इतनी फिरगिनें बैठी हैं किसी की जबान तक नहीं हिली और हम आपस में कटे मरते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३। जबान थामना या पकड़ना=बोलने न देना। कहने से रोकना। जबान पर आना=कहा जाना। मुँह से निकलना। जबान पर या में ताला लगना=चुप रहने को विवश होना। जबान पर मुहर लगाना=बोलने या कहने पर रुकावट होना। जबान पर रखना=(१) किसी चीज को थोड़ी मात्रा मे खाकर उसका स्वाद लेना। चखना। (२) स्मरण रखना। याद रखना। जबान पर लाना=मुँह से कहना। बोलना। उ०—मरहबा वगैरह जबान पर लाते थे और खुद ही झुक झुक कर सलाम करते थे।—फिसाना०, भा० १, पृ० ११ जबान पलटना=कहकर बदल जाना। वचन भंग करना। जबान पर होना=हर दम याद रहना। स्मरण रहना। जबान बद करना=(१) चुप होना। (२) बोलने से रोकना। (३) विवाद में हराना। जबान बंद होना=(१) मुँह से शब्द न निकलना। (२) विवाद में हार जाना। निग्रह स्थान में आना। जबान बिगड़ना=(१) मुँह से अपशब्द निकलने का अभ्यास होना। २ मुँह का स्वाद इस प्रकार खराब होना कि खाने की कोई चीज अच्छी न लगे। (३) जबान चटोरी होना। जबान में काँटे पड़ना=(१) जबान फरना। निनावाँ होना। (२) किसी बात को रुककर रुक कहना। जबान मे कीड़े पड़ना=अनुचित कथन या मिथ्या भाषण पर अशुभ कामना। जबान मे खुजली होना=झगड़े की अभिलाषा होना। जबान में लगाम न होना=अनुचित बातें कहने का अभ्यास होना। सोच समझकर बोलने के अयोग्य होना। जबान रोंकना=(१) जबान पकड़ना। (२) चुप करना। जबान सँभालना मुँह से अनुचित शब्द न निकलने देना। सोच समझकर बोलना। जबान सीना। दे० 'मुँह सीना'। जबान निकालना = उच्चारण होना। बोला जाना। जबान से निकलना=उच्चारण करना। कहना। जबान हिलाना=बोलने का प्रयत्न करना। मुँह से शब्द निकालनना। दबी जबान से बोलना या कहना=कमजोर होकर बोलना। अस्पष्ट रूप से बोलना। इस प्रकार से बोलना जिससे सुनने-वालों को उस बात के सबंध मे संदेह रह जाय। बदजबानी=अनुचित और अशिष्ट बात। बरजबान=जो बहुत अच्छी तरह याद हो। कठस्थ। उपस्थित। बेजबान=जो अधिक न बोलता हो। बहुत सीधा।

२. जबान से निकला हुआ शब्द। बात। बोल। जैसे —मरद की एक जबान होती है।

मुहा०—जबान बदलना=कही हुई बात से फिर जाना। दे० 'जबान पलटना'।

३ प्रतिज्ञा। वादा। कौल। करार।

मुहा०—जबान देना या हारना=प्रतिज्ञा करना। वचन देना। वादा करना।

४ भाषा। बोलचाल। जैसे, उर्दू जबान।

जबानदराज—वि० [फा० जबानदराज] [संज्ञा जबानदराजी] १ जो बहुत सी न कहने योग्य और अनुचित बातें कहे। बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करनेवाला। २ बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला। शेखी या डींग हाँकनेवाला।

जबानदराजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबानदराजी] बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करने की क्रिया या भाव। धृष्टता। ढिठाई। गुस्ताखी।

जबानबंद—संज्ञा पुं० [फा० जबानबद] १. तावीज या यंत्र। वह तावीज जो शत्रु की जबान को रोकने के लिये लिखा जाय। २ वह साक्षी या इजहार जो लिखा हुआ हो।

जबानबदी—संज्ञा स्त्री० [फा० जबानबदी] १ किसी घटना आदि के संबंध मे साक्षी स्वरूप वह कथन जो लिख लिया जाय। लिखा जानेवाला इजहार। २. मौन। चुप्पी।

जबानी—वि० [हिं० जबान] जो केवल जबान से कहा जाय, पर कार्य अथवा और किसी रूप मे परिणत न किया जाय। मौखिक। जैसे, जबानी जमाखर्च, जबानी सदेसा।

जबाब—सज्ञा पुं० [अ० जवाब] दे० 'जवाब'

यौ०—जबाबदेह = उत्तरदाता। जिम्मेदार। उ०—इस नूतन कविता आदोलन के साथ मैं आज अपनी रचनाओं के लिये आलोचक के सामने पहले से कही अधिक जवाबदेह हूँ। —वदन०, पृ० २१।

जबार†—सज्ञा पुं० [अ० जवार] दे० 'जवार'। उ०—जबार में ही हाई स्कूल खुल गया था।—नई०, पृ० ८।

जबाला—सज्ञा स्त्री० [सं०] सत्यकाम जाबाल ऋषि की माता का नाम जो एक दासी थी। इसकी कथा छादोग्य उपनिषद् में है।

विशेष—दे० 'जाबाल'।

जबुर्‌†—वि० [अ० जब्र] बुरा। खराब। अनुचित।

जबून—वि० [तु० जबून] बुरा। खराब। निकम्मा। निकृष्ट। उ०—करत है राम जबून भला, हम बपुरा कौन सवारे।—जग० श०, पृ० ११४।

जबूर—सज्ञा पुं० [अ० जाबूर] वह आसमानी किताब जो हजरत दाऊद पर उतरी थी। एक मुसलमानी धर्मग्रंथ। उ०—जैसे तौरीत ऋग्वेद है वैसा ही जबूर सामवेद है।—कबीर म०, पृ० २८८।

जब्त—सज्ञा पुं० [अ० जब्त] १ अधिकारी या राज्य द्वारा दड-स्वरूप किसी अपराधी की सपत्ति का हरण। किसी अपराधी को दड देने के लिये सरकार का उसकी जायदाद छीन लेना। २. अपने अधिकार में आई हुई किसी दूसरे की चीज को अपना लेना। कोई वस्तु किसी के अधिकार से ले लेना। ३ धैर्य धारण करना। धीरतायुक्त होना। सहना (को०)। ४ प्रबध। इंतजाम। व्यवस्था (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जब्ती—सज्ञा स्त्री० [अ० जब्त] जब्त होने की क्रिया। कुर्की।

मुहा०—जब्ती में आना = जब्त हो जाना।

जब्बर(पु)†—वि० [फा० जबर] शक्तिशाली। भारी। उ०—लालन लोटहि पोट चोट जब्बर उर लागी। कियो हियो दु सार पीर प्राननि में पागी।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १५।

जब्बार—वि० [अ०] जबरदस्ती करनेवाला। ताकतवर। शक्तिशाली। उ०—छुन्कारा हुआ आज दस्ते जब्बार।—कबीर म०, पृ० ४७।

जब्भा†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जवहा'।

जब्र—सज्ञा पुं० [अ०] १ कठोर व्यवहार। ज्यादती। सख्ती। २. लाचारी। मजबूरी (को०)।

जब्रन—क्रि० वि० [अ० जब्रन्] बलात्। बलपूर्वक। जबर-दस्ती।

जब्री—वि० [अ०] जबरदस्ती, बलपूर्वक या अनिवार्यत कराया जानेवाला (को०)।

जब्रीया[1]—क्रि० वि० [अ० जब्रीयह्] जबरदस्ती से।

जब्रीया[2]—सज्ञा पुं० वह जो ईश्वरेच्छा या नियति को सर्वोपरि मानता हो (को०)।

जब्रील—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जिब्रील'।

जब्ह—सज्ञा पुं० [अ० जब्ह] दे० 'जबह्'।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जभन—सज्ञा पुं० [सं० यभन] मैथुन। स्त्री-प्रसंग।

जम(पु)—सज्ञा पुं० [सं० यम] दे० 'यम'। उ०—दरसन ही ते लागी जम मुख मसी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १८१।

यौ०—जम अनुजा = यमुना। जमकातर। जमघट। जमघर। जमदिशा। जमपुर।

जमई—[फ़ा०] जो जमा हो। नगदी। जमा संबंधी।

विशेष—यह शब्द उस भूमि के लिये आता है जिसका लगान नगद लिया जाता है। जैसे, जमई खेत। अथवा इसका व्यवहार उस लगान के लिये होता है जो जिस के रूप मे नही बल्कि नगद हो। जैसे, जमई लगान, जमई बदोबस्त।

जमक[1](पु)—सज्ञा पुं० [सं० यमक] दे० 'यमक'।

जमक[2]—सज्ञा पुं० [हिं० चमक] दे० 'चमक'।

जमकना—क्रि० अ० [हिं० चमकना] दे० 'चमकना'।

जमकात(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जमकातर' उ०—बिजुरी चक्र फिरै चहुँ फेरी। औ जमकात फिरै जम फेरी।—जायसी (शब्द०)।

जमकातर(पु)[1]—सज्ञा पुं० [सं० यम + हिं० कातर] भँवर।

जमकातर[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्त्तरी] १ यम का छुरा या खाँड़ा। २ एक प्रकार की छोटी तलवार।

जमकाना—क्रि० सं० [हिं० जमकना] जमकना का सकर्मक रूप। चमकाना।

जमघंट—सज्ञा पुं० [सं० यम + घण्ट] दे० 'यमघंट'। उ०—सब कछु जरि गयो होरी में। तब धूरहि धूर बचो री नाम जमघट परो री।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०७।

जमघट—सज्ञा पुं० [हिं० जमना + घट (= समूह)] मनुष्यों की भीड़ जिसमें लोग ठसाठस भरे हों और जिसे कोई आदमी सुगमता से पार न कर सके। बहुत से मनुष्यों का भीड़। ठट्ठ। जमावड़ा। मजमा। उ०—और नर्तकियों का जमघट जमता था।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३२।

क्रि० प्र०—जमना। —लगना।—लगाना।—होना।

जमघटा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जमघट'।

जमघट्ट—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जमघट'।

जमघर(पु)—सज्ञा पुं० [यम + गृह] यमालय। उ०—दुनिया में भरमो मति हीना। जमघर जावगे नाम विहीना।—कबीर सा०, पृ० ८१४।

जमज(पु)—वि० [सं० यमज] दे० 'यमज'।

जमजम—सज्ञा पुं० [अ० जमजम] मक्का का एक कुआँ जिसका पानी मुसलमान लोग बहुत पवित्र मानते हैं। उ०—जनखदी

में तेरे मुम्क चाहे जमजम का असर दिसता ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ९ ।

जमजोहरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो ऋतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती है ।

विशेष—यह चिड़िया जाड़े के दिनों में उत्तरपश्चिम भारत में दिखाई पड़ती है और गरमी में फारस और तुर्किस्तान को चली जाती है । यह प्राय एक बालिश्त लंबी होती है और ऋतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती रहती है ।

जमडाढ़—संज्ञा स्त्री०[सं० यम+दंष्ट्र, प्रा० दड्ढ, डड्ढ, हिं० डाढ़] कटारी की तरह का एक हथियार जिसकी नोक बहुत पैनी और आगे की ओर झुकी हुई होती है । इसे शत्रु के शरीर में भोंकते हैं । जमधर ।

जमदग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रकार वैदिक ऋषि जिनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है । भृगुवंशी ऋचीक ऋषि के पुत्र ।

विशेष—वेदों में जमदग्नि के बहुत से मंत्र मिलते हैं । ऋग्वेद के अनेक मंत्रों से जाना जाता है कि विश्वामित्र के साथ ये भी वशिष्ठ के विपक्षी थे । ऐतरेय ब्राह्मण हरिश्चंद्रोपाख्यान में लिखा है कि हरिश्चंद्र के नरमेध यज्ञ मे ये अध्वर्यु हुए थे । जमदग्नि का जिक्र महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण में आया है । इनकी उत्पत्ति के संबंध में लिखा है कि ऋचीक ऋषि ने अपनी स्त्री सत्यवती, जो राजा गाधि की कन्या थी, तथा उनकी माता के लिये भिन्न गुणोंवाले दो चरु तैयार किए थे । दोनों चरु अपनी स्त्री सत्यवती को देकर उन्होंने बतला दिया था कि ऋतुस्नान के उपरांत यह चरु तुम खा लेना और दूसरा चरु अपनी माता को खिला देना । सत्यवती ने दोनों चरु अपनी माता को देकर उसके संबंध में सब बातें बतला दीं । उसकी माता ने यह समझकर कि ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये अधिक उत्तम गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चरु तैयार किया होगा, उसका चरु स्वयं खा लिया और अपना चरु उसे खिला दिया । जब दोनों गर्भवती हुईं, तब ऋचीक ने अपनी स्त्री के लक्षण देखकर समझ लिया कि चरु बदल गया है । ऋचीक ने उससे कहा कि मैंने तुम्हारे गर्भ से ब्रह्मनिष्ठ पुत्र और तुम्हारी माता के गर्भ से महाबली और क्षात्र गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चरु तैयार किया था, पर तुम लोगों ने चरु बदल लिया । इसपर सत्यवती ने दुःखी होकर अपने पति से कोई ऐसा प्रयत्न करने की प्रार्थना की जिसमे उसके गर्भ से उग्र क्षत्रिय न उत्पन्न हो; और यदि उसका उत्पन्न होना अनिवार्य ही हो तो वह उसकी पुत्रवधू के गर्भ से उत्पन्न हो । तदनुसार सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि और उसकी माता के गर्भ से विश्वामित्र का जन्म हुआ । इसीलिये जमदग्नि में भी बहुत से क्षत्रियोचित गुण थे । जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका से विवाह किया था और उसके गर्भ से उन्हे रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम नाम के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे । ऋचीक के चरु के प्रभाव से उनमें से परशुराम में सभी क्षत्रियोचित गुण थे । जमदग्नि की मृत्यु के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि एक बार हैहय के राजा कार्तवीर्य उनके आश्रम से उनकी कामधेनु ले गए थे । इस पर परशुराम ने उनका पीछा करके उनके हजार हाथ काट डाले । जब कार्तवीर्य के पुत्रों को यह बात मालूम हुई, तब लोगों ने जमदग्नि के आश्रम पर जाकर उन्हें मार डाला ।

जमदिसा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यम+दिशा] दक्षिण दिशा जिसमें यम का निवास माना जाता है । उ०—मेष सिंह धन पूरुब बसैं । बिरिख मकर कन्या जम दिसै ।—जायसी (शब्द०) ।

जमधर—संज्ञा पुं० [हिं० जमडाढ़] १. जमडाढ़ नामक हथियार । उ०—गहि हथ्थ एकन को गिराए मारि जमधर कमर में ।—हिम्मत०, पृ० २१ । २ एक प्रकार का बदामी कागज ।

जमधार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जम+धार] यम की सेना । काल की सेना । उ०—जमधार सरिस निहारि सब नर नारि चलिहहिं भाजि कै ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४ ।

जमन१—संज्ञा पुं० [सं० जमन] १. भोजन करना । भक्षण । २. भोजन । भोज्य वस्तु [को०] ।

जमन(पु)२—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, तुल०, फ़ा० जमन] दे० 'यमुना' । उ०—सूर थान निगमबोधह सुरग । जल जमन न्हाइ राखिस स्नमग ।—पृ० रा०, १ । ५५८ ।

जमन३(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यवन] म्लेच्छ । मुसलमान । यवन । उ०—(क) व्याघ्र सुरिच्छव मृग चरम, चरन दिए पहिराय । जमन सैन कै भेद कहँ, बिदा किए नृपराय ।—प० रासो, पृ० १०४ । (ख) दोऊ नृप मिलि मत्र करि जमन मिट्टवहु ग्रास । —प० रासो, पृ० १०४ ।

जमन४—संज्ञा पुं०[अ० जमन] जमाना । काल । जगत् । ससार [को०] ।

जमना१—क्रि० अ० [सं० यमन (=जकड़ना), मि० अ० जमा] १ किसी द्रव पदार्थ का ठढक के कारण समय पाकर अथवा और किसी प्रकार गाढ़ा होना । किसी तरल पदार्थ का ठोस हो जाना । जैसे, पानी से बरफ जमना, दूध से दही जमना । २ किसी एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ पर दृढ़तापूर्वक बैठना । अच्छी तरह स्थित होना । जैसे, जमीन पर पैर जमना, चौकी पर आसन जमना, बरतन पर मैल जमना, सिर पर पगड़ी या टोपी जमना ।

मुहा०—दृष्टि जमना = दृष्टि का स्थिर होकर किसी ओर लगना । नजर का बहुत देर तक किसी चीज पर ठहरना । निगाह जमना = दे० 'दृष्टि जमना' । मन मे बात जमना = किसी बात का हृदय पर भली भाँति अंकित होना । किसी बात का मन पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ना । रंग जमना = प्रभाव दृढ़ होना । पूरा अधिकार होना ।

३ एकत्र होना । इकट्ठा होना । जमा होना । जैसे, भीड़ जमना, तलछट जमना । ४ अच्छा प्रहार होना । खूब चोट पड़ना । जैसे, लाठी जमना, थप्पड़ जमना । ५ हाथ से होनेवाले काम का पूरा पूरा अभ्यास होना । जैसे,—लिखने में हाथ जमना । ६ बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक होना । बहुत से

आदमियों के सामने किसी काम का इतनी उत्तमता से होना कि सबपर उसका प्रभाव पड़े। जैसे, व्याख्यान जमना, गाना जमना, खेल जमना। ७. सर्वसाधारण से संबंध रखनेवाले किसी काम का अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। जैसे, पाठशाला जमना, दूकान जमना। ८ घोड़े का बहुत ठुमक ठुमककर चलना। उ०—जमत उड़त ऐंडत उछरत पै बनी बजावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११।

जमना[2]—क्रि० अ० [सं० जन्म, प्रा० जम्म>जम+हिं० ना (प्रत्य०)] उगना। उपजना। उत्पन्न होना। फूटना। जैसे, पौधा जमना, बाल जमना।

जमना[3]—संज्ञा पुं० [हिं० जमना (=उत्पन्न होना)] वह घास जो पहली वर्षा के उपरांत खेतों मे उगती है।

जमना[4]†—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'यमुना'।

जमनिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जवनिका] १ जवनिका। परदा। २. काई। उ०—हृदय जमनिका बहुविधि लागी।—तुलसी (शब्द०)।

जमनोत्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना + अवतार] गढ़वाल के निकट हिमालय की वह चोटी जहाँ से यमुना निकलती है।

जमनौता—संज्ञा पुं० [अ० जमानत+हिं० औता (प्रत्य०)] वह रकम जो कोई मनुष्य अपनी जमानत करने के बदले में जमानत करनेवाले को दे।

विशेष—मुसलमानी राज्यकाल मे इस प्रकार की रकम देने की प्रथा प्रचलित थी। यह रकम प्राय. ५ रुपए प्रति सैकड़े के हिसाब से दी जाती थी।

जमनौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमनौता] दे० 'जमनौता'।

जमपुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यमपुर] दे० 'यमपुर'। उ०—स्वामी को सकट परै, जो तजि भाजै कूर। लोक अजस, परलोक मैं जमपुर जात जरूर।—हम्मीर०, पृ० ४७।

जमरस्सी—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + हिं० रस्सी] चौरी नाम का वृक्ष जिसकी जड़ साँप के काटने की बहुत अच्छी औषधि समझी जाती है।

जमरा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—विष्णु ते अधिक और कोउ नाही। जमरा विष्णु को चेरा आही।—कबीर सा०, पृ० ३६५।

जमराई†—संज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जो कोई सत्त पुरुष गहे भाई। ता कहँ देख डरे जमराई।—कबीर सा०, पृ० ८१५।

जमराण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जमराँणा सौंहो करौं वानेइ लेज्यों मेल।—ढोला०, दू० ६१०।

जमरूद—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा लबोतरा फल।

जमल(पु)—वि० [सं० यमल, प्रा० जमल] दे० 'यमल'। उ०—अमल कमल कर पद बदन जमल कमल से नैन।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७४८।

यौ०—जमलतरु=दे० 'यमलार्जुन'। उ०—मुनि सराप तै भए जमलतरु तिन्ह हित आपु बँधाए हो।—सूर०, १।७।

जमवट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] पहिए के आकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुआँ बनाने में भगाड़ मे रखा जाता है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है।

जमवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यमद्वार] यम का द्वार। उ०—(क) सिंहल द्वीप भए पौतारू। जबूदीप जाइ जमवारू।—जायसी (शब्द०)। (ख) उ०—परि जमवार चढ़े जहँ रहा। जाइ न मेटा ताकर कहा।—पदमावत, पृ० २६२।

जमशेद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ईरान का एक प्राचीन शासक।

विशेष—कहा जाता है, इसके पास एक ऐसा प्याला था जिससे उसे संसार भर का हाल ज्ञात होता था।

जमहूर—संज्ञा पुं० [अ० जुमहूर] जनता। सर्वसाधारण [को०]।

जमहूरियत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुम्हूरियत] जनतंत्र। प्रजातंत्र [को०]।

जमहूरी—वि० [अ० जुम्हूरी] सार्वजनिक [को०]।

जमाँ—संज्ञा पुं० [अ० जमा] जमाना। काला। समय। संसार। दुनिया [को०]।

जमा[1]—वि० [अ०] १. जो एक स्थान पर संग्रह किया गया हो। एकत्र। इकट्ठा।

मुहा०—कुल जमा या जमा कुल=सब मिलाकर। कुल। सब। जैसे,—वह कुल जमा पाँच रुपए लेकर चले थे।

२ जो अमानत के तौर पर या किसी खाते में रखा गया हो। जैसे,--(क) उनका सौ रुपया बैंक में जमा है। (ख) तुम्हारे चार थान हमारे यहाँ जमा हैं।

जमा[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ मूल धन। पूँजी। २ धन। रुपया पैसा। जैसे,—उसके पास बहुत सी जमा है।

यौ०—जमाजथा। जमापूँजी।

मुहा०—जमा मारना=अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। बेइमानी से किसी का माल हजम करना। जमा हजम करना=दे० 'जमा मारना'। उ०—चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६६२।

३ भूमिकर। मालगुजारी। लगान।

यौ०—जमाबंदी।

४. संकलन। जोड़ (गणित)। ५ वही आदि का वह भाग या कोष्ठक जिसमे आए हुए धन या माल आदि का विवरण दिया जाता है।

यौ०—जमाखर्च।

जमाअत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ दे० 'जमात'–१। उ०—यह खबर हमको भूँमरणु की नागा जमाअत के वयोवृद्ध भंडारी बालमुकुंद जी से मिली।—सुंदर ग्र० (भू०), भा० १, पृ० ४।

जमाअती—वि० [अ०] जमात संबंधी। सामुदायिक [को०]।

जमाई[1]—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दामाद। जँवाई। जामाता।

जमाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] १ जमने की क्रिया। २. जमने का भाव।

जमाई[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमाना] १. जमाने की क्रिया। जमाने का भाव। ३. जमाने की मजदूरी।

जमाखर्च—संज्ञा पुं० [अ० जमअ + फा० खर्च] आय और व्यय ।

जमाजथा—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमा + गथ (=पूँजी)] धनसंपत्ति । माल और माल । जमापूँजी ।

जमात—संज्ञा स्त्री० [अ० जमाअत] १ बहुत से मनुष्यों का समूह । आदमियों का गिरोह या जत्था । जैसे, साधुओं की जमात । —सिंहों के नहिं लेहड़े हंसों की नहिं पाँत । लालों की नहिं बोरियाँ साधु न चलै जमात । सत- बानी०, पृ० २८ । २ कक्षा । श्रेणी । दरजा । जैसे,—वह लड़का पाँचवीं जमात मे पढता है । ३ पंक्ति । कतार । समूह । जैसे, सिपाहियों की जमात ।

यौ०—जमातबंदी=गिरोहबंदी । दलबंदी । उ०—जिसके कारण समाज की जमातबंदी भी बदलती गई । —भा० इ० रू०, पृ० ६९२ ।

जमादार—संज्ञा पुं० [फा० या अ० जमाअत+दार] [संज्ञा जमादारी] १ कई सिपाहियों या पहरेदारों आदि का प्रधान । वह जिसकी अधीनता मे कुछ सिपाही, पहरेदार या कुली आदि हों । २ पुलिस का वह बडा सिपाही जिसकी अधीनता में कई और साधारण सिपाही होते हैं । हेड कास्टेबल । ३ कोई सिपाही या पहरेदार । ४ नगरपालिका का वह कर्मचारी जो भंगियों के काम का निरीक्षण करता है ।

जमादारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमादार + ई (प्रत्य०)] १ जमादार का पद । २ जमादार का काम ।

जमानत—संज्ञा स्त्री० [अ० जमानत] वह जिम्मेदारी जो कोई मनुष्य किसी अपराधी के ठीक समय पर न्यायालय मे उपस्थित होने, किसी कर्जदार के कर्ज अदा करने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये अपने ऊपर ले । वह जिम्मेदारी जो जबानी या कोई कागज लिखकर अथवा कुछ रुपया जमा करके ली जाती है । प्रतिभूति । जामिनी । जैसे,— (क) वे सौ रुपये की जमानत पर छूटे है । (ख) उन्होंने हमारी जमानत पर उनका सब माल छोड़ दिया है ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।

यौ०—जमानतदार=प्रतिभू । जामिनी । जिम्मेदार । जमानतनामा ।

जमानतनामा—संज्ञा पुं० [अ० जमानत + फा० नामह्] वह कागज जो जमानत करनेवाला जमानत के प्रमाणस्वरूप लिख देता है ।

जमानती—संज्ञा पुं०[अ० जमानत + फा० ई (प्रत्य०)] जमानत करनेवाला । वह जो जमानत करे । जामिन । जिम्मेदार (क्व०) ।

जमानवीस—संज्ञा पुं० [अ० जमअ + फ़ा० नवीस] कचहरी का एक अहलकार ।

जमाना¹—क्रि० स० [हिं० 'जमना' का स० रूप] १ किसी द्रव पदार्थ को ठढा करके अथवा किसी और प्रकार से गाढ़ा करना । किसी तरल पदार्थ को ठोस बनाना । जैसे, चाशनी से बरफी जमाना । २ किसी एक पदार्थ को दूसरे पर दृढ़तापूर्वक बैठाना । अच्छी तरह स्थित करना । जैसे, जमीन पर पैर जमाना ।

मुहा०—दृष्टि जमाना=दृष्टि को स्थिर करके किसी ओर लगाना । (मन में) बात जमाना=हृदय पर बात को भली भाँति अंकित करा देना । रंग जमाना=अधिकार दृढ़ करना । पूरा पूरा प्रभाव डालना ।

३ प्रहार करना । चोट लगाना । जैसे, हथौड़ा जमाना, थप्पड़ जमाना । ४. हाथ से होनेवाले काम का अभ्यास करना । जैसे,—अभी तो वे हाथ जमा रहे हैं । ५ बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक करना । जैसे,—व्याख्यान जमाना । ६ सर्वसाधारण से संबंध रखनेवाले किसी काम को उत्तमतापूर्वक चलाने योग्य बनाना । जैसे, कारखाना जमाना, स्कूल जमाना । ७ घोड़े को इस प्रकार चलाना जिससे वह ठुमुक ठुमुककर पैर रखे । ८. उदरस्थ करना । खा जाना । जैसे, भंग का गोला जमाना । ९ मुँह मे रखना । मुखस्थ करना । जैसे, पान का बीड़ा जमाना ।

जमाना²—क्रि० स० [हिं० जमना (= उत्पन्न होना)] उत्पन्न करना । उपजाना । जैसे, पौधा जमाना ।

जमाना³—संज्ञा पुं० [फा० जमानह्] १. समय । काल । वक्त । २. बहुत अधिक समय । मुद्दत । जैसे,—उन्हें यहाँ आए जमाना हुआ । ३ प्रताप या सौभाग्य का समय । एकबाल के दिन । जैसे,—आजकल आपका जमाना है । ४. दुनिया । संसार । जगत् । जैसे,—सारा जमाना उसे गाली देता है । ५ राज्यकाल । राज्य करने की अवधि (को०) । ६. किसी पद पर या स्थान पर काम करने का समय । कार्यकाल (को०) । ७ विलंब । देर । अतिकाल (को०) ।

मुहा०—जमाना उलटना=समय का एकबारगी बदल जाना । जमाना छानना=बहुत खोजना । जमाना देखना=बहुत अनुभव प्राप्त करना । तजरबा हासिल करना । जैसे—आप बुजुर्ग हैं, जमाना देखे हुए हैं । जमाना पलटना या बदलना= परिवर्तन होना । अच्छे या बुरे दिन आना ।

यौ०—जमानासाज । जमानासाजी । जमाने की गर्दिश=समय का फेर ।

जमानासाज—वि० [फ़ा० जमानह् + साज] १ जो अपने स्वार्थ के लिये समय समय पर अपना व्यवहार बदलता रहता है । अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखनेवाला । २. मुतफन्नी । धूर्त । छली (को०) ।

जमानासाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जमानह्साजी] अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखना । अपने स्वार्थ के लिये समयानुसार अनुचित रूप से अपना व्यवहार बदलना ।

जमापूँजी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जमाजथा' ।

जमाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पटवारी का एक कागज जिसमे असामियों के नाम और उनसे मिलनेवाले लगान की रकमें लिखी जाती हैं ।

जमामरद(पु)†—संज्ञा पुं० [फा० जवाँमर्द] दे० 'जवाँमर्द' । उ०—आए हैं जमामरद ग्यान कर करद लै, दरद न जान्यो अब जिन दिन पार रे । —ब्रज० ग्र०, पृ० १३३ ।

जमामार—वि० [हिं० जमा + मारना] अनुचित रूप से दूसरों का धन दबा रखने या ले लेनेवाला।

जमाल—संज्ञा पुं० [अ०] सौंदर्य। शोभा। छवि। रूप। उ०—कनक बिंदु सुरकी रकुम, पदन मिलत जमाल। बदन तिलक दिए भई, तिलक चौगुनी भाल।—स० सप्तक, पृ० २५३।

जमालगोटा—संज्ञा पुं० [सं० जयमाल (= जमाल) + गोटा] एक पौधे का बीज जो अत्यंत रेचक है। जयपाल। दंतीफल।

विशेष—यह पौधा करोटन की जाति का है और समुद्र से ३०००फुट की ऊँचाई तक परती भूमि में होता है। यह पौधा दूसरे वर्ष फलने लगता है। इसका फल छोटी इलायची के बराबर होता है जिसके भीतर सफेद गरी होती है। गरी में तेल का अंश बहुत अधिक होता है और उसे खाने से बहुत दस्त आते हैं। गरी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो बहुत तीक्ष्ण होता है और जिसके लगाने से बदन पर फफोला पड़ जाता है। तेल गाढ़ा और साफ होता है और औषध के काम में आता है। इसकी खली चाह के खेत की मिट्टी में मिलाने से पौधों में दीमक और दूसरे कीड़े नहीं लगते। इसके पेड़ कहवे के पेड़ के पास छाया के लिये भी लगाए जाते हैं।

जमाली—वि० [अ०] सुंदर रूपवाला। स्वरूपवान्। सौंदर्ययुक्त [को०]।

जमाव—संज्ञा पुं० [हिं० जमाना] १ जमने का भाव। २ जमाने का भाव। ३ भीड़ भाड़। जमावड़ा।

जमावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमाना] जमने का भाव। दे० 'जमाव'

जमावड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जमना (= एकत्र होना)] बहुत से लोगों का समूह। भीड़। उ०—इन लोगों का भारी जमावड़ा वहीं हुआ करता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६३०।

जमीं—संज्ञा स्त्री० [फा० जमीं] दे० 'जमीन'। उ०—गिरकर न उठे काफिरे बदकार जमीं से, ऐसे हुए गारत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५३०।

जमींकंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० जमीन + कंद] सूरन। ओल।

जमींदार—संज्ञा पुं० [फा० जमीनदार] जमीन का मालिक। भूमि का स्वामी।

विशेष—मुसलमानों के राजत्वकाल में जो मनुष्य किसी बड़े प्रांत, जिले या कुछ गाँवों का भूमिकर लगाने और सरकारी खजाने में जमा करने के लिये नियुक्त होता था, वह जमींदार कहलाता था और उसे उगाहे हुए कर का दसवाँ भाग पुरस्कार स्वरूप दिया जाता था। पर, जब अंत में मुसलमान शासक कमजोर हो गए तब वे जमींदार अपने अपने प्रांतों के स्वतंत्र रूप से प्राय मालिक बन गए। अंगरेजी राज्य में जमींदार लोग अपनी अपनी भूमि के पूरे पूरे मालिक समझे जाते थे और जमींदारी पैतृक होती थी। ये सरकार को कुछ निश्चित वार्षिक कर देते थे और अपनी जमींदारी का संपत्ति की भाँति जिस प्रकार चाहें, उपयोग कर सकते थे। काश्तकारों आदि को कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार वे अपनी जमीन स्वयं ही जोतने बोने आदि के लिये देते थे और उनसे लगान आदि लेते थे। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर लोकतांत्रिक सरकार ने जमींदारी प्रथा का वैधानिक उन्मूलन कर दिया है।

जमींदारा—संज्ञा पुं० [फा० जमींदारी] दे० 'जमींदारी'।

जमींदारी—संज्ञा स्त्री० [फा० जमीनदारी] जमींदार की वह जमीन जिसका वह मालिक हो। २ जमींदार होने की दशा या अवस्था। ३ जमींदार का हक या स्वत्व।

जमींदोज—वि० [फा० जमींदोज] १ जो गिरा, तोड़ा या उखाड़कर जमीन के बराबर कर दिया गया हो। २ दे० 'जमीनदोज'।

जमी—वि० [सं० यमिन्] इंद्रियनिग्रही। उ०—देखि लोग सकुचात जमी से।—मानस, २।२१४।

जमीन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जमीन] १ पृथ्वी (ग्रह)। जैसे,—जमीन बराबर सूरज के चारों तरफ घूमती है। २ पृथ्वी का वह ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी का है और जिसपर हम लोग रहते हैं। भूमि। धरती।

मुहा०—जमीन आसमान एक करना = किसी काम के लिये बहुत अधिक परिश्रम या उद्योग करना। बहुत बड़े बड़े उपाय करना। जमीन आसमान का फरक = बहुत अधिक अंतर। बहुत बड़ा फरक। आकाश पाताल का अंतर। उ०—मुकाबिला करते हैं तो जमीन आसमान का फर्क पाते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४३६। जमीन आसमान के कुलावे मिलाना = बहुत डींग हाँकना। बहुत शेखी मारना। उ०—चाहे इधर की दुनियाँ उधर हो जाय, जमीन आसमान के कुलावे मिल, जायँ, तूफान आए, भूचाल आए, मगर हम जरूर आएँगे।—फिसाना०, भा०३, पृ० ५१। जमीन का पैरों तले से निकल जाना = सन्नाटे में आ जाना। होश हवास जाता रहना। जमीन चूमने लगना = इस प्रकार गिर पड़ना कि जिसमें जमीन के साथ मुहँ लग जाय। जैसे,—जरा से धक्के से वह जमीन चूमने लगा। जमीन दिखाना = (१) गिराना। पटकना। जैसे, एक पहलवान का दूसरे पहलवान को जमीन दिखाना। (२) नीचा दिखाना। जमीन देखना = (१) गिर पड़ना। पटका जाना। (२) नीचा देखना। जमीन पकड़ना = जमकर बैठना। जमीन पर चढ़ना = (१) घोड़े का तेज दौड़ने का अभ्यास होना। (२) किसी कार्य का अभ्यस्त होना। जमीन पर पैर या कदम न रखना = बहुत इतराना। बहुत अभिमान करना। उ०—ठाकुर साहब ने बारह चौदह हजार रुपया नकद पाया तो जमीन पर कदम न रखा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६६। जमीन पर पैर न पड़ना = बहुत अभिमान होना। जमीन में गड़ जाना = अत्यंत लज्जित होना।

३ सतह, विशेषकर कपड़े, कागज या तख्ते आदि की वह सतह जिसपर किसी तरह के बेल बूटे आदि बने हों। जैसे,—काली जमीन पर हरी बूटी की कोई छींट मिले तो लेते आना। ४ वह सामग्री जिसका व्यवहार किसी द्रव्य के प्रस्तुत करने में आधार रूप से किया जाय। जैसे, अतर खींचने में चंदन की जमीन, फुलेल में मिट्टी के तेल की जमीन। ५ किसी कार्य के लिये पहले से निश्चय की हुई प्रणाली। पेशबंदी। भूमिका। आयोजन।

मुहा०—जमीन बदलना = आधार का परिवर्तन होना। स्थिति का बदल जाना। जैसे,—अब जमीन ही बदल गई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४०। जमीन बाँधना = किसी कार्य के लिये पहले से प्रणाली निश्चित करना।

जमीनदोज—वि० [फ़ा० जमीनदोज] १ धरती के नीचे या भीतर। भूगर्भिक। उ०—और तब जमीनदोज किले बनने लगे।—भा० इ० रू०, पृ० १४१। २ दे० 'जमीदोज'।

जमीनी—वि० [फ़ा० जमीनी] जमीन संबंधी। जमीन का।

जमीमा—संज्ञा पुं० [अ० जमीमह्] १ क्रोडपत्र। अतिरिक्त पत्र। २ पूरक। परिशिष्ट [को०]।

जमीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जमईयत] गोष्ठी। दल। परिषद्। जमाअत। समुदाय। उ०—प्रत्येक सरदार के अपनी जमीयत के साथ प्रतिवर्ष तीन महीने तक दरबार की सेवा मे उपस्थित रहने की जो रीति चली आ रही है वह जारी रखी जायगी।—राज० इति०, पृ० १०४६।

जमीर—संज्ञा पुं० [अ० जमीर] १ अंतःकरण। हृदय। मन। २ विवेक। ३ (व्या०) सर्वनाम [को०]।

यौ०—जमीरफरोश = आत्मविक्रेता। अवसरवादी।

जमील—वि० [अ०] [वि०स्त्री० जमीला] रूपवान। सुंदर। हसीन [को०]।

जमुआ[1]‡—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूक] दे० 'जामुन'।

जमुआ[2]‡—संज्ञा पुं० [सं० यम, हिं० जम+उआ (प्रत्य०), अथवा हिं० जमना (= पैदा होना)] एक प्रकार का घातक बालरोग।

जमुआरा‡—संज्ञा पुं० [हिं० जमुआ+आर (प्रत्य०)] जामुन का जंगल।

जमुकना‡—क्रि० अ० [?] पास पास होना। सटना। उ०—जब जमुक्यो कछु पृथु तनय, तब तरग तहँ छोड़ि। भयो पुरंदर अलख तर, सक्यो न सन्मुख दौड़ि।—रघुराज (शब्द०)।

जमुनⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमुना] दे० 'यमुना'। उ०—(क) उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम।—मानस, २। १०१ (ख) मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै।—भारतेंदु ग्रं०, भा०१, पृ० ४५५

जमुना—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, प्रा० जमुणा, जऊँणा] यमुना नदी। वि० दे० 'यमुना'।

जमुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनिका] दे० 'यवनिका'। उ०—जाग्रत स्वप्न सु जमुनिका सुषुपति भई पिटार सुदर। बाजीगर जुदो खेल दिखावन हार।—सुदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ७८५।

जमुनियाँ‡[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जामुन+ईया (प्रत्य०)] १. जामुन का रंग। जामुनी। २ जामुन का वृक्ष। ३ यम का भय। यमपाश (लाक्ष०)। उ०—जमुनियाँ की डार मोरी तोड देव हो।—धरम० श०, पृ० २६।

जमुनियाँ[2]—वि० जामुन के रंग का। जामुनी रंग का।

जमुरका‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूर] कुलाबा।

जमुरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंबूर] १ चिमटी के आकार का नालबदों का एक औजार जिससे वे घोड़ों के नाल काटते हैं। २. चिमटी। सँडसी।

जमुर्दी—वि० [अ० जमुर्रदीन, हिं० जमुर्रदी] १. दे० 'जमुर्रदी'। उ०—जमुर्दी जरी के काम।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २९।

जमुर्रद—संज्ञा पुं० [अ०] [अ०] पन्ना नामक रत्न।

जमुर्रदी[1]—वि० [अ० जमुर्रदीन] जमुर्रद के रंग का हरा। जो मोर की गर्दन की तरह नीलापन लिए हुए हरे रंग का हो।

जमुर्रदी[2]—संज्ञा पुं० जमुर्रद का रंग। नीलापन लिए हुए हरा रंग।

जमुवाँ‡—संज्ञा पुं० [हिं० जमुआ] जामुनी। जामुन का रंग।

जमुहाना‡—क्रि० अ० [सं० जृम्भण] दे० 'जम्हाना'।

जमूरकⓅ—संज्ञा पुं० [फा० जंबूरक] एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े या ऊँट पर रहती है। उ०—सबके आगे सुतर सवार अपार सिंगार बनाए। धरे जमूरक तिन पीठन पर सहित निशान सुहाये।—रघुराज (शब्द०)।

जमूरा[1]—संज्ञा पुं० [फा० जंबूरक, हिं० जमूरक] दे० 'जमूरक'।

जमूरा[2]—संज्ञा पुं० [अ० जह्र+फ़ा० मुह्रह्] दे० 'जहरमोहरा'। उ०—जुगति जमूरा पाइ कै, सर पे लपटाना। विष वा के बेधे नही, गुरु गम्म समाना।—कबीर० श० भा० ३, पृ० १४।

जमैयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जमईयत] १ दल। समुदाय। २ सभा। गोष्ठी। परिषद् [को०]।

यौ०—जमैयतुल उलेमा = विद्वानों की सभा या गोष्ठी।

जमोग‡—संज्ञा पुं० [हिं० जमोगना] १ जमोगने अर्थात् स्वीकार कराने की क्रिया। सरेख। २ किसी दूसरे की बात का किसी तीसरे के द्वारा समर्थन। सामने का निश्चय। तसदीक। ३. देहाती लेनदेन की एक रीति जिसके अनुसार कोई जमींदार किसी महाजन से ऋण लेने के समय उसके चुकाने का भार उस महाजन के सामने अपने काश्तकारों पर छोड़ देता है और काश्तकारों से लगान के मद्धे उसका स्वीकार करा देता है।

यौ०—सही जमोग।

जमोगदार—संज्ञा पुं० [अ० जमा+सं० योग] वह व्यक्ति जो जमोग की रीति से जमींदार को रुपया देता है।

जमोगना‡—क्रि० स० [अ० जमा+सं० योग] १. हिसाब किताब की जाँच करना। २ ब्याज को मूल धन मे जोड़ना। ३ स्वयं किसी उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिये किसी दूसरे को उसका भार सौंपना और उससे उस उत्तरदायित्व को स्वीकृत कराना। सरेखना। ४ किसी को किसी दूसरे के पास ले जाकर उससे अपनी बात का समर्थन कराना। तसदीक कराना।

जमोगवाना‡—क्रि० स० [हिं० जमोगना] जमोगने का काम किसी दूसरे से कराना। सरेखवाना।

जमोगा‡—संज्ञा पुं० [हिं० जमोगना] दे० 'जमोग'।

यौ०—सही जमोगा।

जमौआ—वि० [हिं० जमाना] जमाया हुआ। जमाकर बनाया हुआ।

जम्म¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यम] दे० 'यम'।

यौ०—जम्मराजा=यमराज। उ०—मनो जीव पाधीन को जम्मराजा दियो दड सोई मधै धूम धोटै।—हम्मीर०, पृ० ४

जम्म²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, प्रा० जम्म] जन्म। उत्पत्ति।

जम्मण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्, प्रा० जम्मण] उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। उ०—तन माहि मनूषा जो ठहिरावै। जम्मण मरण मिश्त अरु दोजख ताके निकट न आवै।—प्राण०, पृ० ६०।

जम्मना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] उत्पन्न होना। पैदा होना। जम्मै मरै न विनसै सोइ।—प्राण०, पृ० २।

जम्मभूमि(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्म, प्रा० जम्म+सं० भूमि] दे० 'जन्मभूमि'। उ०—पल्लविय जम्मभूमि को मोह छोड्डिय, धमि छोड्डिय।—कीर्ति०, पृ० २२।

जम्मू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर। जबू।

जम्हाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जँभाई'।

जम्हाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'जँभाना'। उ०—बार बार कपि आत जम्हात, लगत, नीकै ताकी चोपनि चुकन न पाए हो। घनानंद०, पृ० ४८८।

जम्हूर—संज्ञा पुं० [अ०] जनता। जनसमूह। उ०—कर उसकी बुजुर्गी छडे जम्हूर के आगे।—कबीर मं०, पृ० ४६६।

जयंत¹—वि० [सं० जयन्त] [वि० स्त्री० जयती] १. विजयी। २ बहुरूपिया। अनेक रूप धारण करनेवाला।

जयंत²—संज्ञा पुं० १ एक रुद्र का नाम। २ इद्र के पुत्र उपेंद्र का नाम। ३ संगीत मे ध्रुवक जाति में एक ताल का नाम। ४ स्कद। कार्तिकेय। ५ धर्म के एक पुत्र का नाम। ६ अक्रूर के पिता का नाम। ७ भीमसेन का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट नरेश के यहाँ अज्ञातवास करते थे। ८. दशरथ के एक मंत्री का नाम। ९ एक पर्वत का नाम। जयतिका की पहाड़ी। १० जैनों के अनुत्तर देवों का एक भेद। ११. फलित ज्योतिष में यात्रा का एक योग।

विशेष—यह योग उस समय पड़ता है जब चद्रमा उच्च होकर यात्री की राशि से ग्यारहवें स्थान मे पहुँच जाता है। इसका विचार बहुधा युद्धादि के लिये यात्रा करने के समय होता है, क्योंकि इस योग का फल शत्रुपक्ष का नाश है।

जयंतपुर—संज्ञा पुं० [सं० जयन्तपुर] एक प्राचीन नगर का नाम जिसे निमिराज ने स्थापित किया था और जो गौतम ऋषि के आश्रम के निकट था।

जयंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिका] दे० 'जयती'।

जयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्ती] १ विजय करनेवाली। विजयिनी। २. ध्वजा। पताका। ३ हलदी। ४. दुर्गा का एक नाम। ५ पार्वती का एक नाम। ६. किसी महात्मा की जन्मतिथि पर होनेवाला उत्सव। वर्षगाँठ का उत्सव। ७ एक बड़ा पेड़ जिसे जैंत या जैता कहते हैं।

विशेष—इस पेड की डालियाँ बहुत पतली और पत्तियाँ अगस्त की पत्तियों की तरह की, पर उनसे कुछ छोटी होती हैं। फूल अरहर की तरह पीले होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर बित्ते सवा बित्ते लबी पतली फलियाँ लगती हैं। फलियों के बीज उत्तेजक और सकोचक होते हैं और दस्त की बीमारियों में औषध के रूप में काम में आते हैं। खाज का मरहम भी इससे बनता है। इसकी पत्तियाँ फोड़े या सूजन पर बाँधी जाती हैं और गिलटियों को गलाने का काम करती हैं। इसकी जड़ पीसकर बिच्छू के काटने पर लगाई जाती है। यह जंगली भी होता है और लोग इसे लगाते भी हैं। इसका बीज जेठ असाढ़ में बोया जाता है। इसकी एक छोटी जाति होती है, जिसे 'चकवेड़' कहते हैं। इसके रेशे से जाल बनता है। बंगाल में इसे लोग अप्रैल, मई में बोते हैं और सितबर, अक्टूबर मे काटते हैं। पौधा सन की तरह पानी मे सड़ाया जाता है। पान के भीटों पर भी यह पेड़ लगाया जाता है।

८ जैंती का पौधा। ९ ज्योतिष का एक योग। जब श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधी रात के समय और वृष लग्न में रोहिणी नक्षत्र पड़े, तब यह योग होता है। ११ जौ के छोटे पौधे जिन्हें विजयादशमी के दिन ब्राह्मण लोग यजमानों को मगल द्रव्य के रूप में भेंट करते हैं। जई। जरई। १२ अरणी।

जय—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध, विवाद आदि में विपक्षियों का पराभव। विरोधियों को दमन करके स्वत्व या महत्व स्थापन। जीत।

विशेष—सस्कृत में जय शब्द पुलिंग है किंतु 'जीत, विजय' अर्थ मे हिंदी में इसका प्रयोग स्त्रीलिंग में ही मिलता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जय मनाना=विजय की कामना करना। समृद्धि चाहना। जय हो=आशीर्वाद जो ब्राह्मण लोग प्रणाम के उत्तर में देते हैं।

विशेष—आशीर्वाद के अतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग देवताओं की अभिवंदना सूचित करने के लिये भी होता है और जिसमें कुछ याचना का भाव मिला रहता है। जैसे, जय काली की, रामचद्र जी की जय। उ०—जय जय जगजननि देवि, सुरनर मुनि असुर सेव्य, भुक्ति मुक्ति दायिनी भय हरणि कालिका।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—जय गोपाल। जय श्रीकृष्ण। जय राम, आदि (अभिवादन वचन)।

२ ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के प्रोष्ठपद नामक छठे युग का तीसरा वर्ष।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस वर्ष में बहुत पानी बरसता है और क्षत्रिय, वैश्य आदि को बहुत पीड़ा होती है।

३ विष्णु के एक पार्षद का नाम।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि सनकादिक ने भगवान के पास जाने से रोकने पर क्रोध करके इसे और इसके भाई

विजय को शाप दिया था। उसी से जय को संसार मे तीन बार हिरण्याक्ष, रावण और शिशुपाल का अवतार तथा विजय को हिरण्यकशिपु, कुभकर्ण और कस का जन्म ग्रहण करना पड़ा था।

४. महाभारत या भारत ग्रथ का नाम। ५ जयती या जैत के पेड़ का नाम। ६ लाभ। ७ युधिष्ठिर का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे। ८. अयन। ९ वशीकरण। १०. एक नाग का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है। ११ भागवत के अनुसार दसवें मन्वतर के एक ऋषि का नाम। १२ विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। १३ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। १४ राजा सजय के एक पुत्र का नाम। १५. उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न परुवसु के एक पुत्र का नाम। १६. वह मकान जिसका दरवाजा दक्खिन की तरफ हो। १७ सूर्य। १८. अरणी या अग्निमथ नाम का पेड़। १९ इंद्र। २० इंद्र का पुत्र जयत।

विशेष—पुराणों आदि में और भी बहुत से 'जय' नामक पुरुषों के वर्णन आए हैं।

जय²—वि० (समास में प्रयुक्त) विजयी। जीतनेवाला। जैसे, मृत्यु जय (=मृत्यु को जीतनेवाला)।

जयककरण—सज्ञा पुं० [सं० जय + कङ्कण] वह ककरण जो प्राचीन काल में वीर पुरुषों को किसी युद्ध आदि के विजय करने की दशा में आदरार्थ प्रदान किया जाता था।

जयक—वि० [सं०] विजेता। जीतनेवाला [को०]।

जयकरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] चौपाई नामक एक छद का नाम।

जयकार—सज्ञा पुं० [सं० जय + कार] जयघोष।

यौ०—जयजयकार।

जयकोलाहल—सज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जूआ खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयचंद—सज्ञा पुं० [हिं० जय + चद] १ कान्यकुब्ज का एक प्रसिद्ध राजा। २ देशद्रोही व्यक्ति (लाक्ष०)।

विशेष—यह गहड़वालवश का अतिम नरेश था। इसका राज्यकाल सन् ११७० से ११९३ ई० तक रहा। अपने राज्यकाल के आखिरी वर्ष में यह शहाबुद्दीन गोरी से पराजित होकर मारा गया।

जयखाता—स्त्री० पुं० [हिं० जय (=लाभ) + खाता] बनियों की एक बही जिसमें वे नित्य अपना मुनाफा या लाभ आदि लिखा करते हैं।—(क्व०)।

जयघोष—सज्ञा पुं० [सं०] जय + घोष] जय जय की आवाज उ०—पा गया जयघोष अगणित पक्ष।—साकेत, पृ० १९५

जयजयवंती—सज्ञा स्त्री० [हिं० जय + जयवती] सपूर्ण जाति की एक सकर रागिनी जो धूलश्री, बिलावल और सोरठ के योग से बनती है।

विशेष—इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह रात को ६ दड से १० दड तक गाई जाती है, पर वर्षाऋतु में लोग इसे सभी उमय गाते हैं। कुछ लोग इसे मेघ राग की भार्या मानते हैं और कुछ लोग मालकोश का सहचरी भी बताते हैं।

जयजीव(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० जय + जी] एम प्रकार का अभिवादन जिसका अर्थ है—जय हो और जियो। इसका प्रयोग प्रणाम आदि के समान होता था।—उ० कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमगल वचन सुनाए।—तुलसी (शब्द०)।

जयढक्का—सज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल। जीत का डका।

जयत्—सज्ञा पुं० [सं० जयेत्] दे० 'जयति'।

जयतकल्याण—सज्ञा पुं० [सं०] सपूर्ण जाति का एक सकर राग जो कल्याण और जयतिश्री को मिलाकर बनता है। यह रात के पहले पहर में गाया जाता है।

जयताल—सज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष—यह मात्रताला ताल है और इसमें क्रम से एक लघु, एक गुरु, दो लघु, दो द्रुत और एक प्लुत होता है। इसका बोल यह है—धाहूँ। तत्थरि थरियाऽ ताहु। ताहु। सत० धा० तत्या तायरि थरियोंऽ।

जयति—सज्ञा पुं० [सं० जयेत्] एक सकर राग जो गौरी और ललित के मेल से बनता है। कोई कोई इसे पूरिया और कल्याण के योग से बना भी मानते हैं। वि० दे० 'जयेत्'।

जयतिश्री—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो दीपक राग की भार्या मानी जाती है।

जयती—सज्ञा स्त्री० [सं० जयेती] श्री राग की एक रागिनी।

विशेष—यह सपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे टोडी, विभास और शहाना के योग से बनी हुई बताते हैं। कितने लोग इसे पूरिया, सामत और ललित के मेल से बनी मानते हैं। वि० दे० 'जयेती'।

जयतु—क्रि० वि० [सं०] जय हो (आशीर्वादसूचक)।

जयत्सेन—सज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय नकुल का नाम [को०]।

जयदुंदुभी—सज्ञा स्त्री० [सं० जय + दुन्दुभी] जीत का डका। विजय की भेरी।

जयदुर्गा—सज्ञा स्त्री० [सं०] तत्र के अनुसार दुर्गा की एक मूर्ति।

जयदेव—सज्ञा पुं० [सं०] सस्कृत के प्रसिद्ध काव्य 'गीतगोविंद' के रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव भक्त एव कवि।

विशेष—इनका जन्म आज से प्राय आठ नौ सौ वर्ष पहले बगाल के वर्तमान बीरभूम जिले के अतर्गत केंदुबिल्व नामक ग्राम में हुआ था। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये गौड़ के महाराज लक्ष्मणसेन की राजसभा मे रहते थे। इनका वर्णन भक्तमाल में भी आया है।

जयद्रथ—सज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार सिंधुसौवीर या सौराष्ट्र का राजा जो दुर्योधन का बहनोई था।

विशेष—इसने एक बार जगल में द्रौपदी को अकेली पाकर हर ले जाने का प्रयत्न किया था। उस समय भीम और अर्जुन ने इसकी बहुत दुर्दशा की थी। यह महाभारत के युद्ध मे लड़ा था और चक्रव्यूह के युद्ध मे अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का वध इसी ने किया था। दूसरे दिन भयकर युद्ध के अनतर सायकाल यह अर्जुन के हाथो मारा गया।

जयद्वल—सज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय सहदेव का नाम [को०]।

जयध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १ तालजंघा के पिता का नाम जो अवंती के राजा कार्तवीर्यार्जुन का पुत्र था। २. जयपताका। जयंती।

जयध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयघोष'।

जयन—संज्ञा पुं० [सं० जयनम्] १. जय। जीत। २ हाथी, घोड़े आदि की सुरक्षा के लिये एक प्रकार का जिरहबख्तर (को०)।

जयना(पु)—क्रि० अ० [सं० जयन] जीतना। उ०—(क) भरत धन्य तुम जग जस जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ। —तुलसी (शब्द०)। (ख) लै जात यवन मोहि करिकै जयन। —भारतेंदु ग्रं०, भा०१, पृ० ५०२।

जयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या।

जयपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजय के प्रमाण में विजयी को लिख देता है। विजयपत्र। उ०—मम जयपत्र सकारि पुनि सुंदर मुहि अपनाय। —भारतेंदु ग्रं०, भा०, १, पृ० ६०८। २. वह राजाज्ञा जो अर्थी-प्रत्यर्थी के बीच विवाद के निबटारे के लिये लिखी जाय। वह कागज जिसपर राजा की ओर से किसी विवाद का फैसला लिखा हो।

विशेष—प्राचीन काल में ऐसे पत्र पर वादी और प्रतिवादी के कथन, प्रमाण और धर्मशास्त्र तथा राजसभा के सभ्यों के मत लिखे हुए होते थे और उसपर राजा का हस्ताक्षर और मोहर होती थी।

जयपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जयपराजय—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + पराजय] दे० 'जयाजय'।

जयपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ जमालगोटा। २ ब्रह्मा का एक नाम (को०)। ३ विष्णु। ४ राजा।

जयपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जुआ खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १ राजा विराट के भाई का नाम। २. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष—इसमें एक लघु, एक गुरु और तब फिर एक लघु होता है। यह तिताला ताल है और इसका बोल यह है,—ताह। धिधिकिट ताहं गन थों।

जयफर—संज्ञा पुं० [हिं० जायफल] दे० 'जायफल'। उ०—जयफर लौंग सुपारि छोहारा। मिरिच होइ जो सहै न झारा।—जायसी (शब्द०)।

जयभेरी—संज्ञा पुं० [सं०] विजय डंका। जीत का नगाड़ा (को०)।

जयमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १ वह हाथी जिसपर राजा विजय करने के उपरांत सवार होकर निकले। २. राजा के सवार होने योग्य हाथी। ३ ताल के साठ भेदों में एक।

विशेष—यह शृंगार और बीर रस में बजाया जाता है। यह चौताला ताल है और इसका बोल यह है—तकि तकि। दातकि। धिमि धिमि। थों।

४ ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त आयुर्वेदीय जयमंगल नामक रस (को०)। ५. विजय की खुशी। जय का आनंद (को०)।

जयमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जयमार(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + माल्य] दे० 'जयमाल'। उ०—का कहँ दैउ ऐस जिउ दीन्हा। जेइ जयमार जीति रन लीन्हा। —जायसी ग्रं०, पृ० १२२।

जयमाल—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] वह माला जो विजयी को विजय पाने पर पहनाई जाय। २ वह माला जिसे स्वयंवर के समय कन्या अपने वरे हुए पुरुष के गले में डालती है। उ०—उ०—गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली।—मानस, १। २६४।

जयमाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० जयमाल] दे० 'जयमाल'। उ०—सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला।—मानस, १। २६४।

जयमाल्य—संज्ञा पुं० [सं० जय + माल्य] दे० 'जयमाल'।

जययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

जयरात—संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग देश के एक राजकुमार का नाम जो कौरवों की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़ा था और भीम के हाथ से मारा गया था।

जयलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयश्री'।

जयलेख—संज्ञा पुं० [सं० दे० 'जयपत्र'।

जयवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इंद्राणी। शची। २. विजय करनेवाली सेना (को०)।

जयशाली—संज्ञा पुं० [सं० जय + शाली] यादव वंश के प्रसिद्ध राजा जिन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और वहाँ का किला बनवाया था।

विशेष—अपने पिता के सबसे बड़े पुत्र होने पर भी पहले इन्हें राजसिंहासन नहीं मिला था। पर अपने छोटे भाई के मर जाने पर इन्होंने शहाबुद्दीन गोरी से सहायता लेकर अपने भतीजे भोजदेव को मारा और राज्याधिकार प्राप्त किया था। सिंहासन पर बैठने के बाद संवत् १२१२ में इन्होने जैसलमेर नगर बसाया और किला बनवाया था।

जयशृंग—संज्ञा पुं० [सं० जयशृङ्ग] विजय की घोषणा के निमित्त बजाया जानेवाला सींग का बाजा (को०)।

जयश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजय की अधिष्ठातृ देवी। विजयलक्ष्मी २. विजय। जीत। ३ ताल के मुख्य साठ भेदों में से एक। ४ देशकार राग से मिलती जुलती संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो संध्या के समय गाई जाती है। कुछ लोग इसे देशकार राग की रागिनी मानते हैं।

जयस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० जयस्तम्भ] वह स्तंभ जो विजयी राजा किसी देश का विजय करने के उपरांत अपनी विजय के स्मारक स्वरूप बनवाता है। विजयसूचक स्तंभ।

जयस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० जयस्वामिन्] १ शिव का एक नाम। २ छांदोग्य सूत्र तथा आश्वलायन ब्राह्मण के व्याख्याता (को०)।

जया¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम। २. पार्वती का

एक नाम। ३. हरी दूब। ४. अरणी नामक वृक्ष। ५ जयती या जत का पेड। ६. हरीतकी। हड़। ७ दुर्गा की एक सहचरी का नाम। ८. पताका। ध्वजा। ९. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दोनों पक्षो की तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियाँ। १० सोलह मातृकाओं में से एक। ११. माघ शुक्ल एकादशी। १२ एक प्राचीन बाजा जिसमे बजाने के लिये तार लगे होते थे। १३. जया पुष्प। गुड़हल का फूल। अड़हुल। १४. भाँग। १५ शमीवृक्ष। छोंकर।

जया२—वि० [सं०] जय दिलानेवाली। विजय करानेवाली। उ०—तीज अष्टमी तेरसि जया। चौथी चतुरदसि नोमी रखया। —जायसी (शब्द०)।

जयाजय—सज्ञा पुं० [सं०] जय और पराजय। जीत हार [को०]।

जयादित्य—सज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम जो काशिकावृत्ति के कर्ता थे।

जयाद्वय—सज्ञा स्त्री० [सं०] जयती और हड़।

जयानीक—सज्ञा पुं० [सं०] १. द्रुपद राजा के एक पुत्र का नाम। २. राजा विराट के एक भाई का नाम।

जयापीड़—सज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्रसिद्ध राजा जो ईसवी आठवी शताब्दी मे हुए थे।

विशेष—ये एक बार दिग्विजय करने के लिये निकले थे, पर रास्ते में सैनिक इन्हें छोड़कर भाग गए। इसपर ये प्रयाग चले गए थे जहाँ इन्होंने ९९९९९ घोड़े दान किए थे।

[ज]यावती—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कार्तिकेय की एक मातृका का नाम। २. एक संकर रागिनी जो धवलश्री, बिलावल और सरस्वती के योग से बनती है।

[ज]यावह—वि० [सं० जय+आवह] जय प्राप्त करानेवाला [को०]।

[ज]यावहा—सज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदती का वृक्ष।

जयाश्रया—सज्ञा स्त्री० [सं०] जरड़ी घास।

जयाश्व—सज्ञा पुं० [सं०] राजा विराट के एक भाई का नाम।

जयाह्वया, जयाह्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयावहा'।

जयिष्णु—वि० [सं०] जयशील। जो जीतता हो।

जयी१—वि० [सं० जयिन्] [वि० स्त्री० जयिनी] विजयी। जयशील।

जयी२—सज्ञा स्त्री० [सं० यव] दे० 'जई'।

जयेंद्र—सज्ञा पुं० [सं० जयेन्द्र] काश्मीर के राजा विजय के पुत्र का नाम जो आजानुबाहु थे।

जयेत्—सज्ञा पुं० [सं०] षाड़व जाति के एक राग का नाम जो पूरिया और कल्याण के योग से बनता है। इसमे पचम स्वर नही लगता।

जयेद्गौरी—सज्ञा स्त्री० [सं० सं० जयेत्+गौरी=जयेद्गौरी] एक सकर रागिनी जो जयेत् और गौरी के मेल से बनती है।

जयेती—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो गौरी और जयत्श्री के मेल से उत्पन्न होती है। यह सामत, ललित और पूरिया अथवा टोड़ी, सहाना और विभास राग के योग से भी बन सकती है।

जय्य—वि० [सं०] जय करने योग्य। जो जीतने योग्य हो।

जरंड—वि० [सं० जरठ] क्षीण। वृद्ध। पुराना [को०]।

जरंत—सज्ञा पुं० [सं० जरन्त] १. वृद्ध व्यक्ति। बूढ़ा आदमी। २. महिष। भैंसा [को०]।

जर१(पु)—सज्ञा पुं० [सं० जरा] जरा। वृद्धावस्था।

जर२—वि० [सं०] १. क्षय होने या जीर्ण होनेवाला। २ क्षीण। वृद्ध। पुराना। ३ क्षय या जीर्ण करनेवाला [को०]।

जर३—सज्ञा पुं० [सं०] १. नाश या जीर्ण होने की क्रिया। २ जैन दर्शन के अनुसार वह कर्म जिससे पाप, पुण्य, कलुष, राग-द्वेषादि सब शुभाशुभ कर्मों का क्षय होता है।

जर४—सज्ञा पुं० [सं० ज्वर] दे० 'ज्वर'। उ०—खने सताप सीत जर जाड़। की उपचरय संदेह न छाँड़।—विद्यापति०, पृ० १३७

जर५—सज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का समुद्री सवार। कचहरा।—(लश०)।

जर६—सज्ञा स्त्री० [हिं० जड] दे० 'जड'।

जर७—संज्ञा पुं० [फा० जर] १ सोना। स्वर्ण।

यौ०—जरकस=दे० 'जरकश'। जरकार=(१) स्वर्णकार। सुनार।(२) सोने का काम की हुई वस्तु। जरगर। जरदोजो। जरनिगार। जरनिगारी। जरबफ्त। जरबाफ्ता। जरदोज।

२ धन। दौलत। रुपया। उ०—जर ही मेरा मल्लाह है जर राम हमारा।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५१५।

यौ०—जरअस्ल=मूलधन। जरखरीद। जरगर। जरडिगरी= डिगरी की रकम। जरदार। जरनक्द=रोकड़। नकद। रुपया। जरनीलाम=नीलामी से प्राप्त धन। जरपेशगी= अग्रिम धन। बयाना।

जरई—सज्ञा स्त्री० [हिं० जड] धान आदि के वे बीज जिनमें अंकुर निकले हों।

विशेष—धान को दो दिन तक दिन मे दो बार पानी से भिगोते हैं, फिर तीसरे दिन उसे पयाल के नीचे ढककर ऊपर से पत्थरों से दबा देते हैं जिसे 'मारना' कहते हैं। फिर एक दिन तक उसे उसी तरह पड़ा रहने देते हैं, दूसरे या तीसरे दिन फिर खोलते हैं। उस समय तक बीजो मे से सफेद सफेद अंकुर निकल आते हैं। फिर उन्हें फैला देते हैं और कभी कभी सुखाते भी हैं। ऐसे बीजो को जरई और इस क्रिया को 'जरई करना' कहते हैं। यह जरई खेत में बोने के काम आती है और शीघ्र जमती है। कभी कभी धान की मुजारी भी बद पानी में डाल दी जाती है और दो तीन दिन तक वैसे ही पड़ी रहती है, चौथे दिन उसे खोलते हैं। उस समय वे बीज जरई हो जाते हैं। कभी कभी इस बात की परीक्षा के लिये कि बीज जम गया या नहीं, भिन्न भिन्न प्रातो की भिन्न भिन्न रीति से जरई की जाती है।

२ दे० 'जई'।

जरकटी—सज्ञा पुं० [देश०] एक शिकारी पक्षी। उ०—जुर्रा बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने, टोने जरकटी त्यो शचान सान पार है।—रघुराज (शब्द०)।

जरकस, जरकसी—वि० [फ़ा० जारकश] १. जिसपर सोने आदि के तार लगे हों। उ०—(क) छोटिए धनुहियाँ पनहियाँ पगन छोटी, छोटिए कछोटी कटि छोटिए तरकसी। लसत अँगुली झीनी दामिनि की छवि छीनी सुंदर वदन सिर पगिया जरकसी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अब झाँकि झाँकि झमकि झुकी उझकि झरोखे ऐन। कसे कचुकी जरकसी लसी बसी ही नैन।—शृं० सत० (शब्द)।

जरकसि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जरकसी'। उ०—पहिरे जरकसि पर आभूषण अंग अंग नैति रिझाय।—नंद० ग्र०, पृ० ३४६।

जरखरीद—वि० [फा० जरखरीद] नक्द दाम देकर खरीदी हुई जमीन जायदाद जिसपर खरीददार का पूर्ण अधिकार हो। उ०—जब देखो तब तू तू—चुप ! गोया बेटा नहीं जरखरीद गुलाम है।—शराबी, पृ० १७१।

जरखेज—वि० [फा० जरखेज] उपजाऊ। जिसमें खूब अन्न पैदा होता है। उर्वरा (जमीन का विशेषण)।

जरखेजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जारखेजी] उर्वरता। उपजाऊपन।

जरगर—संज्ञा पुं० [फा० जरगर] स्वर्णकार। सुनार [को०]।

जरगह—संज्ञा स्त्री० [फा० जर + जियाह] एक घास जिसे चौपाये बड़े स्वाद से खाते हैं।

विशेष—यह घास राजपूताने आदि में बहुत बोई जाती है। किसान इसे खेतों में कियारियाँ बनाकर बोते हैं और छठे सातवें दिन पानी देते हैं। पद्रह बीस दिन में यह काटने लायक हो जाती है। एक बार बोने पर कई महीनों तक यह बराबर पद्रहवें दिन काटी जा सकती है। यह दाने की तरह दी जाती है और बैल घोड़े इसके खाने से जल्दी तैयार हो जाते हैं।

जरगा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जर + जियाह] दे० 'जरगह'।

जरज—संज्ञा पुं० [देश०] एक कंद जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक की जड़ गाजर या मूली की तरह होती है और दूसरे की जड़ शलजम की तरह होती है।

जरजर(पु)—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० जरजरी] दे० 'जर्जर'। उ०—(क) सविषम खर शरे अंग भैल जरजर कहइते कि पतियाइ। —विद्यापति, पृ० ४८२। (ख) नाव जरजरी भार बहु खेवनहार गँवार।—दीन० ग्र०, पृ० ११३।

जरजराना—क्रि० अ० [सं० जर्जर] जर्जरित होना। जीर्ण होना।

जरजरी(पु)— संज्ञा स्त्री० [हिं० जड + जड़ी] जड़ी बूटी। सुनहरी जड़ी। उ०—नाग दवनि जरजरी, राम सुमिरन बरी, भनत रैदास चेत निमैता।—रै० बानी, पृ० २०।

जरछार(पु)—वि० [हिं० जरना + सं० क्षार] १. भस्मीभूत। २ नष्ट।

जरजाल—संज्ञा पुं० [अ० जर + फा० जलूक(=गोली छर्रा)] लोहे के तारों में बंधे हुए बहुत से फल छुरी इत्यादि जो तोप में भर के छोड़े जाते हैं। उ०—लिए तुपक जरजाल जमूरे। लै भरि बान बल पूरे।—हम्मीर०, पृ० ३०।

जरठ[1]—वि० [सं०] १ कर्कश। कठिन। २ वृद्ध। बुड्ढा। उ०—जरठ भयउँ अब कहै रिछेसा।—मानस, ४।२६। ३ जीर्ण। पुराना। ४ पांडु। पीलापन लिये सफेद रग का।

जरठ[2]—संज्ञा पुं० बुढ़ापा।

जरठाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जरठ] बुढ़ापा। वृद्धावस्था। जीर्ण अवस्था।

जरडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास का नाम जिसे खाने से गाय भैंस अधिक दूध देती हैं।

विशेष—वैद्यक मे इसे मधुर, शीतल, दाहनाशक, रक्तशोधक और रुचिर माना है।

पर्या०—गर्मोटिका। सुनाला। जवाश्रया।

जरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हींग। २. जीरा। ३. काला नमक। सोवर्चल। ४. कासमर्द। कसौजा। ५. जरा। बुढ़ापा। ६ दस प्रकार के ग्रहणों में से एक जिसमें पश्चिम से मोक्ष होना प्रारंभ होता है। ७ सुफेद जीरा।

जरणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. साखू का वृक्ष। सागौन का पेड़।

जरणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ काला जीरा। २ वृद्धावस्था। बुढ़ापा। ३ स्तुति। प्रशसा। ४. मोक्ष। मुक्ति।

जरत्[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जरती] १ बुड्ढा। वृद्ध। २ बहुत दिनों का।

जरत्[2]—संज्ञा पुं० वृद्ध व्यक्ति। पुराना आदमी [को०]।

जरत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृद्ध व्यक्ति। पुराना आदमी। २ साँड़ [को०]।

जरता बलता†—संज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'जलना' के अंतर्गत 'जलता बलता'।

जरतार(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० जर+तार] सोने या चाँदी आदि का तार। जरी। उ०—बीच जरतारन की हीरन के हार की जगमगी ज्योतिन की मोतिन की झालरैं।—देव (शब्द०)।

जरतारी—वि० [हिं० जरतार] [वि० स्त्री० जरतारी] जिसमें सुनहले या रुपहले तार लगे हों। जरी के काम का। उ०—जरतारी मुख पै सरस सारी सोहत सेत। सरद जलद मिद जलज पर सहज किरन छबि देत।—स० सप्तक, पृ० ३४५।

जरतुआ†‡—वि० [हिं० जलना] जो दूसरों को देखकर बहुत जलता या बुरा मानता हो। ईर्ष्या करनेवाला।

जरतिका, जरती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्धा स्त्री। बूढ़ी महिला।

जरतुश्त—संज्ञा पुं० [फा० जरतुश्त] दे० 'जरदुश्त'।

जरत्करण—स्त्री० पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

जरत्कारु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने वासुकि नाग की कन्या से ब्याह किया था। आस्तिक मुनि इनके पुत्र थे।

जरत्कारु[2]—संज्ञा [सं०] जरत्कारु ऋषि की स्त्री जो वासुकि नाग की कन्या थी। इसका नाम मनसा भी था।

जरद—वि० [फा० जर्द] पीला। जर्द। पीत। उ०—घोड़े जरद दुसाला यारी केसर की सी क्यारी हैं।—घनानंद, पृ० १७६।

जरद अंखी—संज्ञा स्त्री० [फा० जर्द, हिं० जरद + अखी] काली

झंग्री की तरह की एक प्रकार की बड़ी झाडी जिसकी लंबी टहनियों के सिरों पर काँटे होते हैं।

विशेष—यह देहरादून से भूटान और खसिया की पहाडी तक ७००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। दक्षिण मे कनाडा (कनारा, कन्नड़) और लका तक भी होती हैं। इसमें फागुन चैत में फूल लगते हैं जो कच्चे भी खाए जाते हैं और अचार डालने के काम आते हैं।

जरदक—संज्ञा पुं० [फा० जरदक] जरदा या पीलू नाम का पक्षी।

जरदष्टि¹—वि० [सं०] १. वृद्ध। बुड्ढा। २ दीर्घजीवी। बहुत दिनों तक जीनेवाला।

जरदष्टि²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुढापा। वृद्धावस्था। २ दीर्घ-जीवन।

जरदा¹—संज्ञा पुं० [फा० जर्दह्] १ एक प्रकार का व्यजन जिसे प्राय मुसलमान लोग खाते हैं।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है कि चावल में पहले हल्दी डालकर उसे पानी में उबालते हैं। फिर उसमें से पानी पसा लेते हैं और उसे दूसरे बर्तन में घी डालकर शक्कर के शर्बत में पकाते हैं। पीछे से इसमे लौंग, इलायची आदि सुगधित द्रव्य और मसाले छोड दिए जाते हैं।

२. एक विशेष क्रिया से बनाई हुई खाने की सुगधित सुरती।

विशेष—यह प्राय काले रग की होती है और पान दोहरा, आदि के साथ खाई जाती है। यह पीले और लाल रग की भी बनाई जाती है। वाराणसी इसका एक प्रमुख व्यापार-केंद्र है।

यौ०—जरदाफरोश = जरदा बेचनेवाला।

३ पीले रग का का घोडा। उ०—जरदा जिरही जाँग सुनौची ऊदे खजन।—सुजान०, पृ० ८। ४ पीली आँख का कबूतर। ५ पीले रग की एक प्रकार की छीट।

जरदा²—संज्ञा पुं० [फा० जरदक] एक प्रकार का पक्षी। पीलू।

विशेष—इसकी कनपटी पीली, पीठ खाकी, पेट सफेद और चोंच तथा पैर पीले होते हैं। इसे पीलू भी कहते हैं।

जरदार—वि० [फा० जर + दार] अमीर। धनवान। उ०—हुआ मालूम यह गुचे से हमको। जो कोई जरदार है सो तंग दिल है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३०।

जरदालू—संज्ञा पुं० [फा० जरदालू] खूबानी नाम का मेवा।

विशेष—दे० 'खूबानी'।

जरदी—संज्ञा स्त्री० [फा० जरदी] पिलाई। पीलापन।

मुहा०—जरदी छाना = किसी मनुष्य के शरीर का रग बहुत दुर्बलता, खून की कमी या किसी दुर्घटना आदि के कारण पीला हो जाना।

२ अंडे के भीतर का वह चेप जो पीले रंग का होता है।

जरदुश्त—संज्ञा पुं० [फा० जरदुश्त, मि० सं० जरदष्टि (= दीर्घजीवी, वृद्ध), अथवा सं० जरत्त्वष्टृ (= एक ऋषि)] फारस देश के प्राचीन पारसी धर्म के प्रतिष्ठाता एक आचार्य।

विशेष—ये ईसा से ६ सौ वर्ष पूर्व ईरान के शाह गुश्ताश्प के समय में हुए थे। इन्होंने सूर्य और अग्नि की पूजा की प्रथा चलाई थी और पारसियों का प्रसिद्ध धर्मग्रंथ 'जद अवस्था' (जद अवेस्ता) बनाया था। ये 'मीनू चेह्र' के वशज और यूनान के प्रसिद्ध हकीम 'फीसा गोरस' के शिष्य थे। शाहनामे मे लिखा है कि जरदुश्त तूरानियों के हाथ से मारे गए थे। इनको जरतुश्त और जरथुस्त्र भी कहते हैं।

जरदोज—संज्ञा पुं० [फा० जरदोज] [संज्ञा जरदोजी] वह मनुष्य जो कपडों पर कलाबत्तू और सलमे सितारे आदि का काम करता हो। जरदोजी का काम करनेवाला।

जरदोजी—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की दस्तकारी जो कपडों पर सुनहले कलाबत्तू या सलमें सितारे आदि मे की जाती है। उ०—सुवरन साज जीन जरदोजी। जगमगात तन अगनित ओजी।—हम्मीर०, पृ० ३।

जरद्गव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुड्ढा बैल। २ बृहत्संहिता के अनुसार एक वीथी जिसमे विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं। यह चद्रमा की वीथी है।

जरद्गव—वि० जीर्ण। प्राचीन।

जरद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] जल।

जरन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जलन'।

जरनल¹—संज्ञा पुं० [अं०] वह सामयिक पत्र या पुस्तक जिसमे क्रम से किसी प्रकार की घटनाएँ आदि लिखी हों। सामयिक पत्र।

जरनल—संज्ञा पुं० [अं० जेनरल] दे० 'जनरल'।

जरनलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं० जर्नलिस्ट] दे० 'पत्रकार'।

जरना¹—क्रि० अ० [हिं० जलना] दे० 'जलना'। उ०—देखि जरनि जड नारि की रे जरति प्रेत के सग।—सूर०, १।३२५।

जरना²(पु)—क्रि० अ० [सं० जटन, हिं० जडना] दे० 'जडना'। उ०—नग कर मरम सो जरिया जाना। जरै जो अस नग हीर पखाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४१।

जरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जरना (= जलना)] १ जलने की पीडा जलन। उ०—पानी फिरै पुकारतौ उपजी जरनि अपार। पावक आयौ पूछने सुदर वाकी सार —सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ७२८। २ व्यथा। पीडा। उ०—(क) तातें हौं देत न दूखन तोहूँ। राम विरोधी उर कठोर ते प्रगट कियो है विधि मोहूँ। सुदर सुखद सुसील सुधानिधि जरनि जाय जेहिं जोए। विष वारुणी बधु कहियत विधु नातो मिटत न धोए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिर नाइ। देखे बिन रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाइ—तुलसी (शब्द०)। (ग) देखि जरनि जड नारि की रे जरति प्रेत के सग। चिता न चित फीको भयो रे रची जु पिय के रग।—सूर०, १।३२५।

जरनिगार—वि० [फा० जरनिगार] सुनहरे कामवाला। सुनहरे रग का।

जरनिगारी—संज्ञा [फा० जरनिगारी] सुनहरा काम। सोने का पानी। मुलम्मा।

जरनी⁽ᵖ⁾†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन] जलन। ताप। अग्नि। ज्वाला। उ०—बिछुरी मनों सग तें हिरनी। चितवत रहत चकित चारों दिसि उपजि विरह तन जरनी।—सूर०, ६।७३।

जरनैल¹—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जनरल'।

जरनैल²—संज्ञा पुं० [अं० जर्नल] दे० 'जर्नल'।

जरपरस्त—वि० [फ़ा० ज़रपरस्त] अर्थपिशाच। सूम। लोभी। कजूस [को०]।

जरपोस—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रपोश] जरी का कपड़ा। जरी की पोशाक। उ०—सबज पोस जरपोस करि लीनो लाल लुगाइ। भाइ भाइ फिर भाइ करि करति घाइ पर घाइ।—स० सप्तक, पृ० ३८३।

जरफ—वि० [अं० ज़रफ] साफ। स्वच्छ। निर्मल उ०—सब सहर नारि शृंगार कीन। अप अप्प झुंड मिलि चलि नवीन। थपि कनक थार भरि द्रव्य दूब। पटकूल जरफ जरकसी ऊब।—पृ० रा०, १।७१३।

जरब—संज्ञा स्त्री० [अं० ज़र्ब] आघात। चोट।

यौ०—जरब खफीफ = हलकी चोट। जरब शदीद = भारी चोट।

मुहा०—जरब देना = चोट लगाना। आघात करना। पीटना। उ०—दगा देत दूतन चुनौती चित्रगुप्तै देत जम को जरब देत पापी लेत शिवलोक।—पद्माकर (शब्द०)।

२ तबले मृदंग आदि पर का आघात। थाप जो दो तरह की होती है, एक खुली और दूसरी बंद। ३. गुणा (गणित)। कपड़े पर छपी या काढ़ी हुई बेल।

जरबकस—वि० [फा० ज़र + बख्श] उदार। दाता। दानी। धन देनेवाला।

उ०—तुम जरबकस जराव मोती हो लाल जवाहिर नहिं गनता।—स० दरिया, पृ० ६४।

जरबफ्त—संज्ञा पुं० [फा० जरबफ्त] वह रेशमी कपड़ा जिसकी बुनावट में कलाबत्तू देकर कुल बेल बूटे बनाए जाते हैं।

जरबाफ—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रबाफ़] सोने के तारों से कपड़े पर बेलबूटे बनानेवाला कारीगर। जरदोज।

जरबाफी¹—वि० [फा० ज़रबाफ़ी] जरबाफ के काम का। जिसपर जरबाफ का काम बना हो।

जरबाफी²—संज्ञा स्त्री० दे० 'जरदोजी'।

जरबीला⁽ᵖ⁾†—वि० [फ़ा० जरब + हिं० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जरबीली] जो देखने मे बहुत भड़कीला और सुंदर हो।—उ०—श्रवण झुकै झुमका अति लोल कपोल जराइ जरे जरबीले।—गुमान (शब्द०)। (ख) आयो तहँ भावतो कहँ पायो सीर सोरह मे पीठ पीछे चोन्हें चीन्हें पोति जरबीली को।—रघुराज (शब्द०)।

जरबुलंद—संज्ञा पुं० [फा० ज़रबुलंद] कोफ्त का एक भेद जिसके गुलबूटे, जिनपर सोने या चाँदी की कलई होती है, बहुत उभड़े रहते हैं।

जरब्बी⁽ᵖ⁾—वि० [अं० जरब] घाव करनेवाला। चोट पहुँचानेवाला उ०—लियं रुंड तेगं सुघल्लै जरब्बी। कटे सेन चहुवान गानहु करब्बी।—पृ० रासो, पृ० ८४।

जरबुलमसल—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़रबुलमसल] कहावत। लोकोक्ति।

जरमन¹—संज्ञा पुं० [अं०] १. जरमनी देश का निवासी। वह जो जरमनी देश का हो।

जरमन²—संज्ञा स्त्री० जरमनी देश की भाषा।

जरमन³—वि० जरमनी देश सबंधी। जरमनी का। जैसे, जरमन माल, जरमन सिलवर।

जरमन सिलवर—संज्ञा पुं० [अं०] एक सफेद और चमकीली यौगिक धातु जो जस्ते, ताँबे और निकल के सयोग से बनती है।

विशेष—इसमें आठ भाग ताँबा, दो भाग निकल और तीन से पाँच भाग तक जस्ता पड़ता है। निकल की मात्रा बढा देने से इसका रंग अधिक सफेद और अच्छा हो जाता है। इस धातु के बरतन और गहने आदि बनाए जाते हैं।

जरमनी—संज्ञा पुं० [अं०] मध्य यूरोप का एक प्रसिद्ध देश।

जरमुआ†—वि० [हिं० जरना + मुअना [वि० स्त्री० जरमुई] जल-मरनेवाला। बहुत ईर्ष्या करनेवाला।

जरर—संज्ञा पुं० [अ० ज़रर] १ हानि। नुकसान। क्षति। उ०—जब जुल्मो जरर मुल्क सुलेमान में देखा।—कबीर म०, पृ० ३८८। २ आघात। चोट।

क्रि० प्र०—आना। पहुँचना। —पहुँचाना।

३. आफत। मुसीबत।

जरल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बारहमासी घास जो मध्य प्रदेश और बुंदेलखंड मे बहुत होती है। इसे 'सेवाती' भी कहते हैं।

जरवाना⁽ᵖ⁾—क्रि० स० [हिं० जलना] दे० जलवाना'। उ०—न जोगी जोग से ध्यावै। न तपसी देह जरवावै।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ७।

जरवारा⁽ᵖ⁾—वि०[फ़ा० जर + हिं० वाला (प्रत्य०)]रुपए-पैसेवाला। धनी। उ०—ते धन जिनकी ऊंची नजर है। कहक बनाय दिए जरवारे जिमकी कतहुँ नजर है।—देवस्वामी (शब्द०)।

जरस¹—संज्ञा स्त्री० [फा०] घंटा। घड़ियाल। उ०—जघं जी पर टँगाती हूँ मैं एक जरस। फिर आए सफर कर तूँ जब हो सरस।—दक्खिनी० पृ०, १४६।

जरस²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की समुद्र की घास।—(लश०)

जरहरि⁽ᵖ⁾—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल का खेल। जलक्रीडा। उ०—रुहिरि तरंगिणि तीर भूत गए जरहरि खेलइ।—कीर्ति०, पृ० १०८।

जरांकुश—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञकुश] मूँज के प्रकार की एक सुगंधित घास जिसमें नीबू की सी सुगंध आती है।

विशेष—यह कई प्रकार की होती है। दक्षिण भारत में यह बहुत अधिकता से होती है। इससे एक प्रकार का तेल निकलता है जिसे नीबू का तेल कहते हैं और जो साबुन तथा सुगंधित तेल आदि बनाने में काम आता है।

जरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा। वृद्धावस्था।
यौ०—जराग्रस्त। जरामरण।
२ पुराणानुसार काल की कन्या का नाम। विस्रसा। ३ एक राक्षसी का नाम जो मगध देश की गृहदेवी थी। इसी को षष्ठी भी कहते हैं। जरा नाम की एक राक्षसी जिसने जरासंध को जोड़ा था। दे० 'जरासंध'। उ०—जरा जरासंध की संधि जोरयौ हुतौ भीम ता संघ कौ चीर डरयौ।—सूर०, १०।४२१५। ४. खिरनी का पेड़। ५. प्रार्थना। प्रशंसा। श्लाघा।
यौ०—जराबोध।
६. पाचन शक्ति (को०)। ७ वृद्धावस्था की शिथिलता (को०)।

जरा²—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्याध का नाम।
विशेष—इसी के बाण से भगवान् कृष्णचंद्र देवलोक सिधारे थे।

जरा¹—वि० [अ० जर्रह्] थोड़ा। कम। जैसे,—जरा से काम में तुमने इतनी देर लगा दी।
यौ०—जरा जरा = थोड़ा थोड़ा। जरामना = कमवेश। थोड़ा बहुत। जरा सा।

जरा²—क्रि० वि० थोड़ा। कम। जैसे,—जरा दौड़ो तो सही।
मुहा०—जरा चलेगी = जरा बात बढ़ेगी। तकरार होगी। उ०—मैं तो समझी थी कि जरा चलेगी।—सैर० कु०, पृ० २४।

जराअत¹—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] दे० 'जिराअत'।

जराअत—संज्ञा स्त्री० [अ० जराअत] १, रुदन। क्रंदन। २ विनती। मिन्नत (को०)।

जराऊ㊥—वि० [हिं०] दे० 'जड़ाऊ'। उ०—पाँवरि कवम जराऊ पाऊँ। दीन्हि असीस आइ तेहि ठाऊँ।—जायसी (शब्द०)।

जराकुमार—संज्ञा पुं० [पुं०] जरासंध।

जराग्रस्त—वि० [सं०] बुड्ढा। वृद्ध।

जराजीर्ण—वि० [सं० जरा + जीर्ण] बुढ़ापे के कारण दुर्बल। बुड्ढा वृद्ध। उ०—हो मलते कलेजा पड़े, जरा जीर्ण, निर्निमेष नयनों से।—अपरा, पृ० १५२।

जराति㊥—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] खेती। फसल। समृद्धि। उ०—रैती बादशाही की जराति उजड़ैगा। देवीसिंघ तेरा जोर देखना पड़ेगा।—शिखर०, पृ० ९४।

जराती—संज्ञा पुं० [हिं० जलना] वह घोरा जो चार बार उड़ाया गया हो।

जरातुर—वि० [सं०] जरा से जर्जर। जराग्रस्त। वृद्ध। बूढ़ा (को०)।

जराद—संज्ञा पुं० [अ०] टिड्डी।

जराना㊥—क्रि० सं० [हिं० जरना] दे० 'जलाना'। उ०—पवन को पूत महाबल जोधा पल में लंक जराई।—सूर०, ९।१४०।

जरापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम।

जराफत—संज्ञा स्त्री० [अ० जराफत] जरीफ होने का भाव। मसखरापन। परिहासप्रियता। उ०—उसके मिजाज में जराफत जियादा है।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० १०२। २. हँसी मजाक। परिहास।
यौ०—जराफतपसंद = विनोदप्रिय। हँसोड़। जराफत की पोट = हँसी की पोटली। हँसोड़।

जराफा—संज्ञा पुं० [अ० जराफ] दे० 'जिराफा'।

जराबोध—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो।—(वैदिक)।

जराबोधीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

जराभीत, जराभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव (को०)।

जरार्भस—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

जरायणि—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम।

जराय㊥—वि० [हिं०] दे० 'जराव'।

जरायम—संज्ञा पुं० [अ० 'जरीमह्' का बहु व०] पाप। दोष। गुनाह। अपराध (को०)।

जरायमपेशा—वि० [फा० जरायम पेशह्] जो अपराधी स्वभाव का हो। अपराधी। दोष या गुनाह करनेवाला। जुर्म करनेवाला।

जरायु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जरायुज] १. वह झिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ उत्पन्न होता है। आँवल। खेड़ी। उल्व। २ गर्भाशय। ३. योनि। ४. जटायु। ५ अग्निजार या समुद्रफल नामक वृक्ष। ६. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम। ७ साँप की केंचुल (को०)।

जरायुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राणी जो आँवल या खेड़ी में लिपटा हुआ अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हो। पिंडज।

जरार—वि० [अ० जरर] क्रूर। हानि पहुँचानेवाला। उ०—बड़ा जरार आदमी है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२५।

जराव㊥—वि० [हिं० जड़ना] जड़ाऊ। जिसमें नगीने आदि जड़े हों। जड़ा हुआ। उ०—(क) बेंदी जराव लिलार दिए गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। (ख) सुंदर सूधी सुगोल रची विधि कोमलता अति ही सरसात है। त्यों हरिऔध जराव जरे खरे कंकन कंचन के दरसात है।—अयोध्या० (शब्द०)।

जराशोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शोष रोग जो लोगों को वृद्धावस्था में हो जाता है।
विशेष—इस शोष रोग में रोगी दुर्बल हो जाता है, उसे भोजन से अरुचि हो जाती है और बल, वीर्य तथा बुद्धि का क्षय हो जाता है।

जरासंध—पुं० [सं० जरासन्ध] महाभारत के अनुसार मगध देश का एक राजा। यह वृहद्रथ का पुत्र और कंस का श्वसुर था।
विशेष—पुराणों के अनुसार यह दो टुकड़ों में उत्पन्न हुआ और 'जरा' नाम की राक्षसी द्वारा दोनों टुकड़ों को जोड़कर सजीव किया गया। इसलिये इसका नाम जरासंध, जरासुत आदि पड़ा। कृष्ण द्वारा अपने श्वसुर कंस के मारे जाने पर इसने मथुरा पर अठारह बार आक्रमण किया था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अर्जुन और भीम को साथ लेकर कृष्ण इसकी राजधानी गिरिव्रज में ब्राह्मण के वेश में गए और उन राजाओं को छोड़ देने के लिये कहा जिन्हें उसने परास्त कर कैद

कर लिया था, किंतु जरासंध ने नहीं माना। अंतत भीम के साथ युद्ध करने की माँग स्वीकार कर ली। कहते हैं कई दिनों तक मल्ल युद्ध होने के बाद भी जब यह पराजित नहीं हुआ तब एक दिन कृष्ण का संकेत पाकर भीम ने द्वंद्व युद्ध में जरा राक्षसी द्वारा जोड़े गए अंग के दोनों विभागों को चीरकर इसे मार डाला था।

जरासिंघ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जरासंघ'।

जरासुत—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

यौ०—जरासुतजित् = जरा राक्षसी के पुत्र जरासंध को जीतनेवाला। भीम।

जराह—संज्ञा पुं० [अ० जर्राह] दे० 'जर्राह'।

जरिणी—वि० स्त्री० [सं० जरिन्] वृद्धा। बूढ़ी [को०]

जरित¹—वि० [सं०] १ वृद्ध। जईफ। २. क्षीण। दुर्बल। कृश [को०]।

जरित²—वि० [हिं० जड़ना, अ० हिं० जरना] दे० 'जड़ित'।—उ०—पहुँची करनि कंठ कठुला बन्यो, केहरि नख मनि जरित जराए।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८६।

जरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जरिमन्] बुढ़ापा। जरा। वृद्धावस्था।

जरिया¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जड़िया] दे० 'जड़िया'।—उ०—नग कर मरम सो जरिया जाना। जरै जो अस नग हीर पखाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४१।

जरिया—वि० [हिं० जरना] जो जलाने से उत्पन्न हो। जलाकर बनाया या तैयार किया हुआ। जैसे, जरिया शोरा, जरिया नमक।

यौ०—जरिया शोरा=एक प्रकार का शोरा जो भाफ उड़ाकर बनाया जाता है। जरिया नमक=वह खारा नमक जो आँच से तैयार किया जाता है।

जरिया³—संज्ञा पुं० [अ० जरियह् या जरीअह्] १ संबंध। लगाव। द्वार। जैसे,—उनके यहाँ अगर आपका कोई जरिया हो तो बहुत जल्दी काम हो जायगा। २. हेतु। कारण। सबब। ३ उपाय। साधन। तदबीर। उ०—चौपाई जरिया सिर पर धरिया, विष ऊर्पाग्या तन तिग्या।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २३१।

जरिश्क—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रिश्क] दारुहलदी।

जरी¹—वि० पुं० [सं० जरिन्] [वि० स्त्री० जरिणी] बुड्ढा। वृद्ध।

जरी(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ी] जड़ी। बूटी। उ०—तब सो जरी अमृत लेइ आवा। जो मरे हुत तिन्ह छिरिकि जियावा।—जायसी (शब्द०)।

जरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जरी] १ ताश नामक कपड़ा जो बादले से बुना जाता है। २ सोने के तारों आदि से बना हुआ काम।

जरी⁴—वि० सोने का। स्वर्णिम। स्वर्णमय।

जरीद—संज्ञा पुं० [अ०] १. पत्रवाहक। कासिद। २ जासूस। गुप्तचर [को०]।

जरीदा—संज्ञा पुं० [अ० जरीदह्] १ एकाकी व्यक्ति। अकेला आदमी २. समाचारपत्र। अखबार [को०]।

जरीनाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० जरी+नाल (=ठोकर)] कहारों की बोलचाल में वह स्थान जहाँ ईंटें और रोड़े पड़े हों।

जरीफ वि० [अ० जरीफ] परिहास करनेवाला। मसखरा। ठट्ठेबाज। मखौलिया।

जरीब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] माप जिससे भूमि नापी जाती है। विशेष—हिंदुस्तानी जरीब ५५ गज की और अंग्रेजी जरीब ६० गज की होती है। एक जरीब में २० गट्ठे होते हैं।

यौ०—जरीबकश। जरीबकशी = (१) जरीब द्वारा खेतों की पैमाइश। (२) जरीब खींचने का काम।

मुहा०—जरीब डालना = भूमि को जरीब से नापना।

२ लाठी। छड़ी।

जरीबकश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह मनुष्य जो भूमि नापने के समय जरीब खींचने का काम करता है।

जरीबफ्त(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० जरबफ्त] दे० 'जरबफ्त'। उ०—जरीबफत औ ओढे सालें, ताहि समुझि के धरना।—सं० दरिया०, पृ० १४५।

जरीवाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुरमाना'। उ०—आगे तो जरीवाना, फेर जहलखाना रे हरी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५६।

जरीबी—वि० [फ़ा०] (भूमि) जो जरीब से नापी हुई हो।

जरीमाना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुरमाना'।

जरीली—वि० स्त्री० [हिं० जड़ना + ईला (प्रत्य०)] सोने के तारों से निर्मित। जड़ावदार। जिसपर जड़ाव का काम हो। उ०—कहूँ प्रभा श्यामल इंद्रनीली। मोती छरी सुंदर ही जरीली।—श्यामा०, पृ० ३८।

जरुआ†—संज्ञा पुं० [सं० जरा] जरावस्था। वृद्धावस्था। बुढ़ापा। उ०—जोवन बाल वृद्ध अवस्ता। जोवन हारिआ जरुआ जित्ता।—प्राण०, पृ० २४२।

जरूथ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ मांस। गोश्त।

जरूथ²—वि० कटुवादी। कटुभाषी।

जरूर¹—क्रि० वि० [अ० जरूर] [वि० जरूरी। संज्ञा जरूरत] अवश्य। निःसंदेह। निश्चय करके।

यौ०—जरूर जरूर = अवश्यमेव।

जरूर²—संज्ञा पुं० [अ० जरूर] दवा की बुकनी जो जख्म या आँख में छोड़ी जाय [को०]।

जरूरत—संज्ञा स्त्री० [अ० जरूरत] आवश्यकता। प्रयोजन।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

यौ०—जरूरतमंद = (१) इच्छुक। आकांक्षी। (२) दीन। दरिद्र। मुँहताज। (३) भिक्षुक। भिखारी।

जरूरतन्—क्रि० वि० [अ० जरूरतन] आवश्यकतावश। कारणवश। जरूरत से।

जरूरियात—संज्ञा स्त्री० [अ० जरूरी का बहुव०] आवश्यक चीजें।

जरूरी—वि० [फ़ा० जरूरी] १ जिसकी जरूरत हो। जिसके बिना

काम न चले। प्रयोजनीय। २ जो अवश्य होना चाहिए। आवश्यक। सापेक्ष।

जरूला(पु)†—वि० [सं० जटा + हिं० वाला (प्रत्य०); अथवा हिं० झड़ + ऊला (प्रत्य०)] १. गर्भकालीन केशोंवाला। गर्भोत्पन्न केश या जटा से युक्त। उ०—नित ही ब्रजजन हित अनुकूलो। जसुदा जीवन लला जरूलो।—घनानंद०, पृ० २३२। २ जटुल। जन्मजात लक्षण चिह्नों से युक्त।

जरोटन—संज्ञा स्त्री० [सं० जलाटनी] जोंक। उ०—कोर कजरारी कैधों फरकत फेर फेर, सूकत जरोटन की थिरक थकैसी सी।—पजनेस०, पृ० ६।

जरोल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है।

विशेष—यह इमारत, जहाज और तोपों के पहिए बनाने के काम आती है। यह बगाल मे, विशेषकर सिलहट के कछार में, चटगाँव और उत्तरी नीलगिरि में बहुत होता है।

जरौट(पु)†—वि० [हिं० जड़ना] जड़ाऊ। उ०—कोऊ कजरौट जरौट लिए कर कोउ मुरछल कोऊ छाता।—रघुराज (शब्द०)।

जर्कबर्क—वि० [फा० जर्क वर्क] जिसमें खूब तड़क भड़क हो। भड़कीला। चमकीला। भड़कदार।

जर्जर¹—वि० [सं०] १ जीर्ण। जो बहुत पुराना होने के कारण बेकाम हो गया हो। २. फूटा। टूटा। खंडित। ३ वृद्ध। बुड्ढा। ४ (ध्वनि) जो किसी पात्र के टूटने से हो (को०)।

जर्जर²—संज्ञा पुं० १ छरीला। बुढ़ना। पत्थरफूल। २ इंद्र की पताका (को०)।

जर्जरानना—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जरानना] एक मातृका का नाम जो कार्तिकेय की अनुचरी हैं।

जर्जरता—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जर + हिं० ता (प्रत्य०)] पुरानापन। जीर्णता। उ०—स्मृति चिह्नों की जर्जरता में। निष्ठुर कर की बर्बरता में।—लहर, पृ० ३४।

जर्जरित—वि० [सं० जर्जरित] १ जीर्ण। पुराना। २ टूटा। फूटा। खंडित। ३ पूर्णत आक्रांत या अभिभूत।

जर्जरीक—वि० [सं०] १ बहुत वृद्ध। बुड्ढा। २ जिसमें बहुत से छेद हो गए हों। अनेक छिद्रवाला।

जर्ण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. (घटता हुआ या कृष्ण पक्ष का) चंद्रमा। २ वृक्ष। पेड़।

जर्ण²—वि० जीर्ण। पुराना। क्षीण।

जर्णा—संज्ञा, स्त्री० [हिं० जलना, पु० हिं० जरना] विरह। वियोग। जलन। जैसे, जर्णा को अग।

जर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी। २. योनि।

जर्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राचीन वाहीक देश का एक नाम। २ उक्त देश का निवासी।

जर्तिल—संज्ञा पुं० [सं०] जगली तिल। बनतिलवा।

जर्त्तु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जर्त'।

जर्द—वि० [फा० ज़र्द] पीला। पीले रग का। पीत।

यौ०—जर्दगोश = छली। धूर्त। मक्कार। जर्दचश्म = (१) श्येन जाति के शिकारी पक्षी। (२) पीली आँखोंवाला। जर्दचोब = हरिद्रा। हल्दी।

जर्दा—संज्ञा पुं० [फा० जर्दह्] दे० 'जरदा'।

जर्दालू—संज्ञा पुं० [फ़ा० जर्दालू] एक मेवा। जरदालू। खुबानी।

विशेष—दे० 'खुबानी'।

जर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पीलापन। पीलाई। वि० दे० 'जरदी'।

जर्दोज—संज्ञा पुं० [फा० जरदोज़] दे० 'जरदोज'।

जर्दोजी—संज्ञा स्त्री० [जरदोजी] दे० 'जरदोजी'।

जर्नल—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जरनल'।

जर्नलिस्ट—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'पत्रकार'।

जर्फ—संज्ञा पुं० [अ० ज़र्फ़] १ बरतन। भाजन। पात्र। २. योग्यता। पात्रता। ३ सहनशीलता। गंभीरता (को०)।

जर्रा¹—संज्ञा पुं० [अ० जर्रह्] १ अणु। २. वे छोटे छोटे कण जो सूर्य के प्रकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। ३. जौ का सौवाँ भाग। ४. बहुत छोटा टुकड़ा या खंड।

जर्रा²—वि० दे० 'जरा'।

जर्रा³—संज्ञा स्त्री० सपत्नी। सौत। सौकन।

जर्राक—वि० [अ० जर्राक़] धूर्त। मुहदेखी कहनेवाला। द्विजिह्व।

यौ०—जर्राकखाना = धूर्तावास। धूर्तों की बैठक।

जर्राद—वि० [अ० जर्राद] जिरहबख्तर बनानेवाला। शस्त्र निर्माता।

यौ०—जर्रादखाना = शस्त्रागार।

जर्राफ—वि० [अ० जर्राफ़] १ हँसोड़। दिल्लगीबाज। २ प्रतिभाशील (को०)।

जर्रार—वि० [अ०] [संज्ञा जर्रारी] १ बलिष्ठ। प्रबल। २. लड़ाका। बहादुर। वीर। ३. विशाल। भारी (सेना या भीड़)।

जर्रारा—संज्ञा पुं० [अ० जर्रारह्] १ बहुत विशाल सेना। २ एक भयंकर विषैला बिच्छू जिसकी पूंछ जमीन पर घिसटती चलती है (को०)।

जर्रारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जर्रार + ई (प्रत्य०)] बहादुरी। वीरता। सूरमापन।

जर्राह—संज्ञा पुं० [अ०] [संज्ञा जर्राही] चीर फाड़ का काम करनेवाला। फोड़ों आदि को चीरकर चिकित्सा करनेवाला। शस्त्रचिकित्सक। शल्यचिकित्सक।

जर्राही—संज्ञा स्त्री० [अ०] चीर फाड़ का काम। चीर फाड़ की सहायता से चिकित्सा करने का काम। शस्त्रचिकित्सा। शल्यचिकित्सा।

जर्वर—संज्ञा पुं० [सं०] नागों के एक पुरोहित का नाम जिसने एक बार यज्ञ करके साँपों की रक्षा की थी।

जर्हिल—संज्ञा पुं० [सं०] जगली तिल। जर्तिल।

जलंग¹—संज्ञा पुं० [सं० जलङ्ग] महाकाल नाम की एक लता।

जलंग²—वि० जलसंबंधी । जलीय । जल का ।

जलंगम—संज्ञा पुं० [सं० जलङ्गम] चांडाल

जलती(पु)†—वि० [हिं० जलना] जलनेवाली । जलती हुई । प्रज्वलित । उ०—तन भीतर मन मानिया बाहर कहूँ न लाग । ज्वाला ते फिर जल भया बुझी जलंती आग ।—कबीर ग्रं० स०, पृ०, ४५ ।

जलंधर—संज्ञा पुं० [सं० जलन्धर] १ एक पौराणिक राक्षस का नाम जो शिव जी की कोपाग्नि से गंगा-समुद्र-संगम में उत्पन्न हुआ था ।

विशेष—पद्म पुराण मे लिखा है कि यह जनमते ही इतने जोर से रोने लगा कि सब देवता व्याकुल हो गए । उनकी ओर से जब ब्रह्मा ने जाकर समुद्र से पूछा कि यह किसका लड़का है तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरा पुत्र है, आप इसे ले जाइए । जब ब्रह्मा ने उसे अपनी गोद में लिया तब उसने उनकी दाढ़ी इतने जोर से खींची कि उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ा । इसी लिये ब्रह्मा ने इसका नाम 'जलधर' रखा । बड़े होने पर इसने इंद्र की नगरी अमरावती पर अधिकार कर लिया । अंत में शिव जी इंद्र की ओर से उससे लड़ने गए । उसकी स्त्री वृंदा ने, जो कालनेमि की कन्या थी, अपने पति के प्राण बचाने के लिये ब्रह्मा की पूजा आरंभ की । जब देवताओं ने देखा कि जलधर किसी प्रकार नहीं मर सकता तब अंत में जलधर का रूप धारण करके विष्णु उसकी स्त्री वृंदा के पास गए । वृंदा ने उन्हें देखते ही पूजन छोड़ दिया । पूजन छोड़ते ही जलधर के प्राण निकल गए । वृंदा क्रुद्ध होकर शाप देना चाहती थी पर ब्रह्मा के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर वह सती हो गई ।

२ एक प्राचीन ऋषि का नाम । ३ योग का एक बंध ।

जलंधर²—संज्ञा पुं० [हिं० जलोदर] दे० 'जलोदर' ।

जलंबल—संज्ञा पुं० [सं० जलम्बल] १ नदी । २ अंजन ।

जल¹—वि० [सं०] १ स्फूर्तिहीन । ठंढा । जड़ । २ मूढ़ । हतज्ञान (को०) ।

जल—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी । २ उशीर । खस । ३ पूर्वाषाढा नक्षत्र । ४. ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में चौथा स्थान । ५. सुगंधवाला । नेत्रबाला । ६ धर्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य । वि० दे० 'दिव्य' ।

जलअलि—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी का भँवर । २. एक काला कीड़ा जो पानी पर तैरा करता है । पैरौवा । भौंतुआ । उ०—भरत दशा तेहि अवसर कैसी । जल प्रवाह जल अलि गति जैसी ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इसकी बनावट खटमल की सी होती है, परंतु आकार में यह खटमल से बहुत बड़ा होता है । इसका स्वभाव है कि यह प्राय एक ओर घूम घूमकर तैरता है । जलप्रवाह के विरुद्ध भी यह तेजी से तैर सकता है ।

जलई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना या बोजल] वह काँटा जिसके दोनों ओर दो अँकुड़े होते हैं और दो तख्तों के जोड़ पर जड़ा जाता है । यह प्राय नाव के तख्तों को जड़ने में काम आता है ।

जलकंटक—संज्ञा पुं० [सं० जलकण्टक] १. सिंघाड़ा । २ कुंभी ।

जलकंडु—संज्ञा पुं० [सं० जलकण्डु] एक प्रकार की खुजली जो पानी मे बहुत काल तक लगातार रहने से पैरों में उत्पन्न होती है ।

जलकंद—संज्ञा पुं० [सं० जलकन्द] १ केला । कदली । २ काँदा । जलकँदरा ।

जलकँदरा—संज्ञा पुं० [सं० जल+कन्दली] काँदा नामक गुल्म जो प्राय. तालों के किनारे होता है ।

जलक—संज्ञा पुं० [सं०] १ शंख । २ कौड़ी ।

जलकपि—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु ।

जलकपोत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया जो पानी के किनारे होती है ।

जलकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० झलकना] चमकना । जगमगाना । देदीप्यमान होना । उ०—खिलवत से निकल जलकते दरबार मे आया ।—कबीर म०, पृ० ३६० ।

जलकरंक—संज्ञा पुं० [सं० जलकरङ्क] १ नारियल । २. पद्म । कमल । ३ शंख । ४ लहर । तरंग । जललता ।

जलकर—संज्ञा पुं० [हिं० जल+कर] १ वह पदार्थ जो जलाशयों आदि मे हो और जिसपर जमींदार की ओर से कर लगाया जाय । जैसे, मछली, सिंघाड़ा, कवलगट्टा आदि । २ इस प्रकार के पदार्थों पर का कर । ३. वह द्रव्य या कर जो नगरों में पानी देने के बदले में नगरपालिकाएँ वसूल करती हैं । पानी का कर ।

जलकल—संज्ञा पुं० [हिं०] पानी पहुँचाने की कल । पानी का नल ।

यौ०—जलकल विभाग=दे० 'वाटर वर्क्स' ।

जलकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेवार । २ कीचड़ । काई ।

जलकल्मष—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रमंथन में निकला हुआ विष (को०) ।

जलकष्ट—संज्ञा पुं० [सं० जल+कष्ट] जल का अभाव । पानी की कमी ।

जलकांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० जलकाङ्क्ष] [स्त्री० जलकांक्षी] हाथी ।

जलकांत—संज्ञा पुं० [सं० जलकान्त] वायु । हवा । पवन ।

जलकांतार—संज्ञा पुं० [सं० जलकान्तार] वरुण ।

जलकाँदा—संज्ञा पुं० [हिं० जल+काँदा] दे० 'काँदा' ।

जलकाक—संज्ञा पुं० [सं०] जलकौआ नामक पक्षी ।

पर्य्या०—दात्यूह । कालकंटक ।

जलकामुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यमुखी । २ कुटुंबिनी नाम का गुल्म (को०) ।

जलकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह शरीरधारी जिसका जल ही शरीर है ।

जलकिनार—संज्ञा पुं० [हिं० जल + किनारा] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

जलकिराट—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राह या नाक नामक जलजंतु।

जलकुंतल—संज्ञा पुं० [सं० जलकुन्तल] सेवार।

जलकुंभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल+कुम्भीर] कुंभी नाम की वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर होती है।

विशेष—दे० 'कुंभी[२]'—८।

जलकुकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलकुक्कुट] एक जलपक्षी। मुर्गाबी। उ०—जैसे जल महँ रहै जलकुकुरी, पख लिप्त जल नाहिं।—जग० श०, भा० २, पृ० ८९।

जलकुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] मुरगाबी। उ०—कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५६।

जलकुक्कुभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जल की चिड़िया। कुकुही। बनमुर्गी।

पर्य्या०—कोयष्टि। शिखरी।

जलकुब्जक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवार। २. काई।

जलकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कूआँ। कूप। २ तालाव। सर। ३. जलावर्त। आवर्त। भँवर [को०]।

जलकूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु।

जलकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुच्छल तारा जो पश्चिम में उदय होता है।

विशेष—इसकी चोटी या शिखा पश्चिम की ओर होती है और स्निग्ध तथा मूल में मोटी होती है। यह देखने में स्वच्छ होता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इसके उदय से नौ मास तक सुभिक्ष रहता है।

जलकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलक्रीड़ा'।

जलकेश—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

जलकौआ—संज्ञा पुं० [हिं० जल+कौआ] एक प्रकार का जलपक्षी।

विशेष—इसकी गर्दन सफेद, चोंच भूरी और शेष सारा शरीर काला होता है। मादा के पैर नर से कुछ विशेष बड़े होते हैं। यह चिड़िया सारे यूरोप, एशिया, अफ्रिका और उत्तरी अमेरिका में पाई जाती है। इसकी लंबाई दो से तीन हाथ तक होती है और यह एक बार में चार से छह तक अंडे देती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस खाने में स्निग्ध, भारी, वातनाशक, शीतल और बलवर्धक होता है।

जलक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] देव और पितृ आदि का तर्पण।

जलक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रीड़ा जो जलाशयों आदि में की जाय। जलविहार। जैसे, तैरना, एक दूसरे पर पानी फेंकना।

जलखग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जो पानी के किनारे रहता है।

जलखर—संज्ञा पुं० [हिं० जाल + खर] दे० 'जलखरी'।

जलखरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल + काढ़ना, या खारी] रस्सी या तागे की जाल की बनी हुई थैली या झोली जिसमें लोग फल आदि रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं।

जलखावा—संज्ञा पुं० [हिं० जल + खाना] जलपान। कलेवा।

जलगर्द—संज्ञा पुं० [सं० जल + फ़ा० गर्द] पानी में रहनेवाला साँप। डेंड़हा।

जलगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध के प्रधान शिष्य आनंद का पूर्वजन्म का नाम।

जलगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी मे का भँवर। २ कछुआ। ३ वह देश जिसमें जल कम हो। ४. चौकोर तालाव (को०)।

जलघड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + घड़ी] एक यंत्र जिससे समय का ज्ञान होता है।

विशेष—इसमें पानी पर तैरता हुआ एक कटोरा होता है जिसके पेंदे में छेद होता है। यह कटोरा पानी के नाँद में पड़ा रहता है। पेंदी के छेद से धीरे धीरे कटोरे में पानी आता है और कटोरा एक घंटे में भरता और डूब जाता है। डूबने के बाद फिर कटोरे को पानी से निकालकर खाली करके पानी की नाँद मे डाल देते हैं और उसमें फिर पहले की तरह पानी भरने लगता है। इस प्रकार एक एक घंटे पर वह कटोरा डूबता है और फिर खाली करके पानी के ऊपर छोड़ा जाता है।

जलघरा†—संज्ञा पुं० [हिं० जल + घर] वह स्थान जहाँ जल आदि रखा जाता है। नहाने का स्थान। उ०—ताकों श्रीनाथ जी के जलघरा में स्नान कराइवे की सेवा सौंपी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २०९।

जलघुमर—संज्ञा पुं० [हिं० जल + घूमना] पानी का भँवर। जलावर्त। चक्कर।

जलचत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह देश जिसमे जल कम हो। २. चौकोर तालाव (को०)।

जलचर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचरी] पानी में रहनेवाले जंतु। जलजंतु। जैसे, मछली, कछुआ, मगर, आदि। उ०—जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।—मानस, १।३।

यौ०—जलचरकेतु(पु) = मीनकेतु। कामदेव। उ०—सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचर केतू।—मानस, १।१२५।

जलचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली। उ०—मधुकर मो मन अधिक कठोर। बिगसि न गयो कुंभ काँचे लौं बिछुरत नंदकिशोर। हमतें भली जलचरी बपुरी अपनो नेह निबाह्यो। जल तें बिछुरि तुरत तन त्याग्यो पुनि जल ही कौं चाह्यो।—सूर०, १०।३७२९।

जलचादर—संज्ञा स्त्री० [सं० जल + हिं० चादर] किसी ऊँचे स्थान से होनेवाला जल का भीना और विस्तृत प्रवाह। उ०—सहज सेत पचतोरिया पहिरत अति छवि होति। जलचादर के दीप लौं जगमगाति तन जोति।—बिहारी र०, दो० ३४०।

विशेष—प्राय धनवानों और राजाओं आदि के स्थानों मे शोभा के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-

चादर कहते हैं। कभी इसके पीछे आले बनाकर उनमें दीपक की पंक्ति भी जलाई जाती है जिससे रात के समय जलचादर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत शोभा देती है।

जलचारी—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचारिणी] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।

जलचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुमीर या नाक नामक जलजंतु।

जलचौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चौलाई'।

जलजंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र, प्रा० जलजंत] फुहारा। दे० 'जलयंत्र'। उ०—जलजंत छुट्टि महाराज आय। रानीन जुक्त मन मोद पाय।—प० रासो, पृ० ४०।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्तु] जल में रहनेवाले जीवजंतु। जलचर।

जलजंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजन्तुका] जोंक।

जलजंत्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र, प्रा० जलजंत्र, जलजंत] झरना। फुहारा। उ०—चहुं ओर सघन पर्वत सुगध। जलजंत्र छुटै उच्चे सबध।—ह० रासो, पृ० ६३।

जलजंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजम्बुका] जलजामुन जो साधारण जामुन से छोटा होता है। दे० 'जलजामुन'।

जलजबूका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजम्बूका] दे० 'जलजबुका'।

जलज¹—वि० [सं०] जल में उत्पन्न होनेवाला। जो जल में उत्पन्न हो।

जलज²—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल। २ शख। ३. मछली। ४ पनीहाँ नाम का वृक्ष। ५ सेवार। ६ अबुवेत। जलवेत। ७. जलजंतु। ८ सामुद्रिक या लोनार नमक। ९ मोती। १० कुचले का पेड़। ११ चौलाई।

जलजन्म—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्मन्] कमल [को०]।

जलजन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलजला¹—वि० [सं० ज्वल + जल > जज्वल] क्रोधी। दीप्त होनेवाला। बिगड़ैल।

जलजला²—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़लज़लह्] भूकंप। भूडोल।

जलजलाना—क्रि० अ० [सं० ज्वल्ल, प्रा० जल, झाल, झल] झल् झल करना। चमकना। उ०—वे हिलकर रह जाते हैं, उजली धूप जलजलाती हुई नाचती निकल जाती है।—आकाश०, पृ० १३३।

जलजात¹—वि० [सं०] जो जल में उत्पन्न हो। जलज।

जलजात²—संज्ञा पुं० पद्म। कमल।

जलजान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जलयान] दे० 'जलयान'। उ०—उडुप, पोत, नतका, पलन, तरि, वहित्र, जलजान। नाम नाँव चढ़ि भव उदधि कैसे तरे अजान।—नंद० ग्र०, पृ० ९१।

जलजामुन—संज्ञा पुं० [हिं० जल + जामुन] एक प्रकार का जामुन जिसके वृक्ष जंगलों में नदियों के किनारे आपसे आप उगते हैं। इसके फल बहुत छोटे और पत्ते कनेर के पत्तों के समान होते हैं।

जलजावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० जलज + अवलि] मोतियों की माला। उ०—लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै। अँग अंग तरंग उठै दुति की परिहै मनो रूप अबैधर च्वै।—घनानंद, पृ० ५८५।

जलजासन—संज्ञा पुं० [सं०] कमल पर बैठनेवाले, ब्रह्मा।

जलजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] नक्र। नाक। घड़ियाल [को०]।

जलजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जलजीविन्] मल्लाह। मछुआ [को०]।

जलजोनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जल (= कृपीट) + योनि, प्रा० जोणि] अग्नि। पावक। उ०—जातवेद जलजोनि हरि चित्रभान वृहभान।—अनेकार्थ०, पृ० ४।

जलडमरूमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] भूगोल में जल की वह पतली प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो।

जलडिंब—संज्ञा पुं० [सं० जलडिम्ब] शबूक। घोंघा।

जलतरंग—संज्ञा पुं० [सं० जलतरङ्ग] १. जल का हिलोर। जल की लहर। २. एक प्रकार का बाजा।

विशेष—यह बाजा धातु की बहुत सी छोटी बड़ी कटोरियों को एक क्रम से रखकर बनाया और बजाया जाता है। बजाने के समय सब कटोरियों में पानी भर दिया जाता है और उन कटोरियों पर किसी हलकी मुँगरी से आघात करके तरह तरह के ऊँचे नीचे स्वर उत्पन्न किए जाते हैं।

जलतरन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जल + तरण, हिं० तरना] पानी में तैरने की विद्या। उ०—पसुभाषा अरु जलतरन, धातु रसाइन जानु। रतन परख अरु चातुरी, सकल अग सग्यानु।—माधवानल०, पृ० २०८।

जलतरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + तरोई] मछली। (हास्य)।

जलताडन—संज्ञा पुं० [सं०] पानी पीटना। जल को पीटने का काम। २. (लाक्ष०) निरर्थक कार्य। व्यर्थ का काम [को०]।

जलतापिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे हिलसा, हेलसा कहते हैं।

जलतापी—संज्ञा पुं० [सं० जलतापिन्] दे० 'जलतापिक'।

जलताल—संज्ञा पुं० [सं०] सलई का पेड़ [को०]।

जलतिक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई का पेड़।

जलत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छाता। २. वह कुटी जो एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान तक पहुँचाई जा सके।

जलत्रास—संज्ञा पुं० [सं०] वह भय जो कुत्ते, शृगाल आदि जीवों के काटने पर मनुष्य को जल देखने अथवा उसका नाम सुनने से उत्पन्न होता है। अंग्रेजी में इसे 'हाइड्रोफोबिया' कहते हैं।

जलथंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ, जलस्तम्भन] मंत्रों आदि से जल का स्तमन करने या उसे रोकने की क्रिया। जलस्तंभन। उ०—बिरह बिथा जल परस बिन बसियत मो मन ताल। कछु जानत जलथंभ विधि दुर्जोधन लौं लाल।—बिहारी र०, दो० ४१४।

जलद¹—वि० [सं०] जल देनेवाला। जो जल दे।

जलद²—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २ मोथा। ३ कपूर। ४. पुराणानुसार शाकद्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम।

जलदकाल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाऋतु। बरसात।

जलदक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु।

जलदतिताला—संज्ञा पुं० [हिं० जल्दी+तिताला] वह साधारण तिताला ताल जिसकी गति साधारण से कुछ तेज हो। यह कौवाली से कुछ विलंबित होता है।

जलदर्दुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

जलदस्यु—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री डाकू। समुद्री जहाजों पर डकैती करनेवाले व्यक्ति।

जलदाता—संज्ञा पुं० [सं० जलदातृ] तर्पण करनेवाला। देव, ऋषि और पितृ गणों को पानी देनेवाला [को०]।

जलदान—संज्ञा पुं० [सं०] तर्पण [को०]।

जलदाशन—संज्ञा पुं० [सं०] साखू का पेड़।

विशेष—प्राचीन काल मे प्रवाद था कि बादल साखू की पत्तियाँ खाते हैं, इसी से साखू का यह नाम पड़ा।

जलदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जो चारो ओर नदी, झील आदि से सुरक्षित हो।

जलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वाषाढा नाम का नक्षत्र। २ वरुण जो जल के देवता हैं।

जलदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण।

जलदोदो—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा जो काई की तरह पानी पर फैलता है। इसके शरीर में लगने से खुजली पैदा होती है।

जलद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता, शंख आदि द्रव्य जो जल से उत्पन्न होते हैं।

जलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोन, जिससे खेत में पानी देते या नाव का पानी उलीचते हैं।

जलद्विप—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्तनपायी जलजंतु। वि० दे० 'जलहस्ती'

जलधर—संज्ञा पुं० [सं०] १ बादल। २ मुस्ता। ३ समुद्र। ४. तिनिश। तिनस का पेड़। ५ जलाशय। तालाब। झील। उ०—बहुता दिन बीजइ पछइ राति पड़ती देखि। रोही मज्झि डेरा किया ऊजल जलधर देखि।—ढोला०, दू० ५९८।

जलधर केदारा—संज्ञा पुं० [सं० जलधर+हिं० केदारा] एक संकर राग जो मेघ और केदारा के योग से बनता है।

जलधरमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बादलों की श्रेणी। २ बारह अक्षरों की एक वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में क्रमश मगण, भगण, सगण और मगण (ऽऽऽ, ऽ।।, ।।ऽ, ऽऽऽ) होते हैं। जैसे—मो भासै मोहन हमको दै योगा। ठानो ऊधो उन कुबजा सों भोगा। साँचो ग्वालागन कर नेहा देखो। प्रेमाभक्ती जलधरमाला लेखो।

जलधरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर का या धातु आदि का बना हुआ वह अर्घा जिसमे शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलहरी।

जलधार¹—संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप का एक पर्वत।

जलधार²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधारा] दे० 'जलधारा'।

जलधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पानी का प्रवाह। पानी की धारा। २ एक प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करनेवाले पर कोई मनुष्य बराबर धार बाँधकर पानी डालता रहता है।

जलधारी¹—वि० [सं० जलधारिन्] [वि० स्त्री० जलधारिणी] पानी को धारण करनेवाला। जलधारक।

जलधारी²(पु)—संज्ञा पुं० बादल। मेघ। उ०—श्रवण न सुनत, चरण गति थाके, नैन भये जलधारी।—सूर।

जलधि—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। उ०—बाँध्यो बननिधि नीरनीधि जलधि सिंधु बारीस। सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस।—मानस, ६।५। २. एक संख्या जो दस शंख की होती है और कुछ लोगों के मत से दस नील की। ३ चार की संख्या (को०)।

जलधिगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लक्ष्मी। २ नदी। दरिया।

जलधिज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

जलधिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी [को०]।

जलधिरशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र रूपी करधनीवाली अर्थात् पृथिवी [को०]।

जलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक प्रकार की कल्पित धेनु।

विशेष—इस धेनु की कल्पना जल के घड़े मे दान के लिये की जाती है। इस दान का विधान अनेक प्रकार के महापातकों से मुक्त होने के लिये है, और इस दान का लेनेवाला भी सब प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है।

जलन—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन, हिं० जलना] १ जलने की पीड़ा या दुख। मानसिक वेदना या ताप। दाह। २ बहुत अधिक ईर्ष्या या डाह।

मुहा०—जलन निकालना=द्वेष या ईर्ष्या से उत्पन्न इच्छा पूरी करना।

जलनकुल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलना—क्रि० अ० [सं० ज्वलन] १. किसी पदार्थ का अग्नि के संयोग से अंगारे या लपट के रूप मे हो जाना। दग्ध होना। भस्म होना। बलना। जैसे, लकड़ी जलना, मशाल जलना, घर जलना, दीपक जलना।

यौ०—जलता बलता=होलिकाष्टक या पितृपक्ष का कोई दिन जिसमें कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता।

मुहा०—जलती आग=भयानक विपत्ति। जलती आग मे कूदना=जान बूझकर भारी विपत्ति मे फँसना।

२ किसी पदार्थ का बहुत गरमी या आँच के कारण भाफ या कोयले आदि के रूप में हो जाना। जैसे, तवे पर रोटी जलना, कड़ाही में घी जलना, धूप में घास या पौधे का जलना। ३. आँच लगने के कारण किसी अंग का पीड़ित और विकृत होना झुलसना। जैसे, हाथ जलना।

मुहा०—जले पर नमक छिड़कना या लगाना=किसी दुखी या व्यथित मनुष्य को और अधिक दुख या व्यथा पहुँचाना।

जले फफोले फोड़ना = दु:खी या व्यथित व्यक्ति को किसी प्रकार, विशेषकर अपना बदला चुकाने की इच्छा से, और अधिक दु:खी या व्यथित करना। जले पाँव की बिल्ली = जो स्त्री हरदम घूमती फिरती रहे और एक स्थान पर न ठहर सके।

४. बहुत अधिक डाह। ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण कुढ़ना। मन ही मन संतप्त होना।

यौ०—जलना भुनना=बहुत कुढ़ना।

मुहा०—जली कटी या जली भुनी बात = वह लगती हुई बात जो द्वेष, डाह या क्रोध आदि के कारण बहुत व्यथित होकर कही जाय। जल मरना = डाह या ईर्ष्या आदि के कारण बहुत कुढ़ना। द्वेष आदि के कारण बहुत व्यथित हो उठना। उ०—तुम्ह अपनायो तब जनिहौं जब मनु फिरि परिहैं। हरखिहै न अति आदरे निदरे न जरि मरिहै।—तुलसी (शब्द०)।

जलनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनाली'।

जलनाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी बहने का मार्ग। प्रणाली। नाली। मोरी [को०]

जलनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ चार की संख्या।

जलनिर्गम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का निकास।

जलनीम—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + नीम] एक प्रकार की कोनिया जो कड़ई होती है और प्राय जलाशयों के निकट दलदली भूमि में उत्पन्न होती है।

जलनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार। शैवाल।

जलनीली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनीलिका'।

जलपंदर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जल + देश० पदुर] जलसर्प। पानी का साँप। उ०—सहजाँ सोई सुमिरिये आलस ऊँघ न आन। जन हरिया तन पेखणों ज्यो जलपंदर जान।—राम० धर्म०, पृ० ५८।

जलपक(पु)—वि० [सं० जलपक्व] जल मे पकनेवाला। जल मे पका हुआ। उ०—घीपक जलपक जेते गने। कटुवा बटुवा ते सब बने।—चित्रा०, पृ० १०३।

जलपच्छी—संज्ञा पुं० [सं० जलपक्षिन्] वह पक्षी जो जल के आस पास रहता हो।

जलपटल—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

जलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ वरुण। २. समुद्र। ३ पूर्वाषाढा नक्षत्र।

जलपथ—संज्ञा पुं० [सं०] नाली या नहर जिसमें से पानी बहता हो।

जलपना(पु)—क्रि० अ०, क्रि० स० [हिं०] दे० 'जल्पना'।

जलपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नहर। नाला। जलपथ [को०]।

जलपाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] रुद्राक्ष की जाति का एक पेड।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय के उत्तरपूर्वीय भाग मे तीन हजार फुट की ऊँचाई पर होता है और उत्तरी कनारा और ट्रावनकोर के जगलो मे भी मिलता है। यह रुद्राक्ष के पेड से छोटा होता है। इसका फल गूदेदार होता है और 'जगली जैतून' कहलाता है। इसके कच्चे फलों की तरकारी और अचार बनाया जाता है और पक्के फल यो ही खाए जाते हैं।

जलपाटल—संज्ञा पुं० [हिं० जल + पटल] काजल। उ०—कज्जल जलपाटल मुखी नाग दीपसुत सोच। लोपांजन दग लै चली ताहि न देखै कोय।—नंददास (शब्द०)।

जलपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी का बर्तन। २ जल पीने का बर्तन [को०]

जलपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह थोडा और हलका भोजन जो प्रात - काल कार्य आरंभ करने से पहले अथवा संध्या को कार्य समाप्त करने के उपरात साधारण भोजन से पहले किया जाता है। कलेवा। नाश्ता।

यौ०—जलपानगृह = वह सार्वजनिक स्थान जहाँ जलपान की सामग्री मिलती हो तथा बैठकर खाने पीने की व्यवस्था हो।

जलपारावत—संज्ञा पुं० [सं०] जलकपोत नाम की चिड़िया जो जलाशयों के किनारे रहती है।

जलपिंड—संज्ञा पुं० [सं० जलपिंड] अग्नि। आग।

जलपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

जलपिप्पलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

जलपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल नाम की ओषधि।

जलपीपल—संज्ञा स्त्री० [सं० जलपिप्पली] पीपल के आकार की एक प्रकार की गंधहीन ओषधि।

विशेष—इसका पेड खड़े पानी में उत्पन्न होता है। पत्तियाँ बेंत की पत्तियों से मिलती जुलती और कोमल होती हैं। इसके तने मे पास पास बहुत सी गाँठें होती हैं और इसकी डालियाँ दो ढाई हाथ लंबी होती हैं। इसके फल पीपल के फल की तरह होते हैं, पर उनमे गंध नहीं होती। यह खाने में तीखी, कड़ुई, कसैली और गुण मे मलशोधक, दीपक, पाचक और गरम होती है। इसे 'गगतिरिया' भी कहते हैं।

पर्या०—महाराष्ट्री। शारदी। तोयवल्लरी। मत्स्यादिनी। मत्स्यगंधा। लांगली। शकुलादनी। चित्रपत्री। प्राणदा। तृणशीता। बहुशिखा।

जलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ लज्जावती की तरह का एक पौधा जो दलदली भूमि मे उत्पन्न होता है। २ कमल आदि फूल जो जल में उत्पन्न होते हैं।

जलपृष्ठजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार।

जलपोत—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का जहाज।

जलप्पना(पु)—क्रि० अ० [सं० जल्प] दे० 'जल्पना'। उ०—वीर भद्र अरु रुद्र जलप्पिय। कह्यो सत्त संकर वन थप्पिय।—पृ० रा०, २५। ४८२।

जलप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेत या पितर आदि की उदकक्रिया। तर्पण।

जलप्रदानिक—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में स्त्रीपर्व के अंतर्गत एक उपपर्व का नाम।

जलप्रपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता हो। पौसरा। सबील। प्याऊ।

जलप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी नदी आदि का ऊँचे पहाड़ पर से नीचे स्थान पर गिरना। २ वह स्थान जहाँ किसी ऊँचे पहाड़ पर से नदी नीचे गिरती हो। ३ वर्षाकाल। प्रावृट् ऋतु। जलदागम (को०)।

जलप्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलप्लावन'।

जलप्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का बहाव। उ०—भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जलअलि गति जैसी।—मानस, ३। २३३। २ किसी के शव को नदी आदि में बहा देने की क्रिया या भाव। ३ किसी पदार्थ को बहते हुए जल में छोड़ देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जलप्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] नदी या जलाशय के आसपास का स्थान।

जलप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या स्थान जहाँ जल अधिकता से हो। अनूप देश।

जलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १ मछली। २ चातक। पपीहा।

जलप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चातकी। २ पार्वती। दुर्गा। दाक्षायणी। [को०]।

जलप्रेत—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो जल में डूबकर मरने से प्रेत योनि प्राप्त करे।

जलप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलप्लावन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी की बाढ़ जिससे आस पास की भूमि जल मे डूब जाय। २. पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जिसमे सब देश डूब जाते हैं।

विशेष—इस प्रकार के प्लावन का वर्णन अनेक जातियो के धर्मग्रंथों में पाया जाता है। हमारे यहाँ के शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा अनेक पुराणों में वर्णित, वैवस्वत मनु का प्लावन तथा मुसलमानों और ईसाइयों के हजरत नूह का तूफान इसी कोटि का है।

जलफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

जलबंध—संज्ञा पुं० [सं० जलबन्ध] मछली।

जलबंधक—संज्ञा पुं० [सं० जलबन्धक] पत्थर मिट्टी आदि का बाँध जो किसी जलाशय का जल रोक रखने के लिये बनाया जाता है।

जलबंधु—संज्ञा पुं० [सं० जलबन्धु] मछली।

जलबालक—संज्ञा पुं० [सं०] विंध्याचल पर्वत।

जलबालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

जलबिंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० जलबिन्दुजा] यावनाल शर्करा नाम की दस्तावर ओषधि जिसे फारसी में शीरखिश्त कहते हैं।

जलबिंब—संज्ञा पुं० [सं० जलबिम्ब] पानी का बुलबुला।

जलबिडाल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलबिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह देश जहाँ जल कम हो। २. केकड़ा। ३ कच्छप। कछुआ (को०)। ४ चौकोर झील या तालाब (को०)।

जलबुद्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुल्ला। बुलबुला।

जलबेत—संज्ञा पुं० [सं० जलवेतस् या जलवेत्र] जलाशयों के निकट की भूमि मे पैदा होनेवाला एक प्रकार का बेत।

विशेष—इस बेत का पेड़ लता के आकार का होता है। इसके पत्ते बाँस के पत्तो की तरह होते हैं और इसमे फल फूल आते ही नहीं। कुरसियाँ, बेंचें इत्यादि इसी बेत के छिलके से बुनी जाती हैं।

जलबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० जलवल्ली] जल में या जल के कारण उत्पन्न होनेवाली लताएँ। उ०—भय दिवाह प्राहुट्ठ दुवि तपसरनी कौ कोप। जलबेली बिहु नागव्रिप ते जिन भए अलोप।—पृ० रा०, १। ४९५।

जलब्रह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोचो या हुरहुर का साग।

जलब्राह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलब्रह्मी'।

जलभँगरा—संज्ञा पुं० [हिं० जल+भँगरा] एक प्रकार का भँगरा जो पानी मे या पानी के किनारे होता है।

जलभँवरा—संज्ञा पुं० [हिं० जल+भँवरा] काले रंग का एक कीड़ा जो पानी पर बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। इसे भँवरा भी कहते हैं।

जलभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलपात्र'।

जलभालू—संज्ञा पुं० [हिं० जल+भालू] सील की जाति का एक जंतु।

विशेष—यह आकार मे आठ नौ हाथ लंबा होता है और इसके सारे शरीर मे बड़े बड़े बाल होते हैं। यह झुंडों मे रहता है और इसकी सत्तर से अस्सी तक मादाओं के झुंड मे एक ही नर रहता है। यह पूर्व तथा उत्तरपूर्व एशिया और प्रशांत महासागर के उत्तरी भागों मे अधिकता से पाया जाता है।

जलभीति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलत्रास'।

जलभू[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। २ एक प्रकार का कपूर। ३. जलचौलाई। ४ वह स्थान जहाँ जल एकत्र कर रखा जाता है (को०)।

जलभू[2]—संज्ञा स्त्री० वह भूमि जहाँ जल अधिक हो। जलप्राय भूमि। कच्छ। अनूप।

जलभू[3]—वि० जलीय। जल मे उत्पन्न [को०]।

जलभूषण - संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जलभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ एक प्रकार का कपूर। ३ जल रखने का पात्र या बरतन।

जलमंडल—संज्ञा पुं० [सं० जलमण्डल] एक प्रकार की बड़ी मकड़ी जिसके विष के संसर्ग से मनुष्य मर जा सकता है। चिरैया बुदकर।

जलमंडूक—संज्ञा पुं० [सं० जलमण्डूक] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। जलदर्दुर।

जलम‡—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, पु० हिं० जनम] दे० 'जन्म'।

जलमक्षिका—संज्ञा पुं० [सं०] जलनिवासी एक कीट [को०]।

जलमग्न—वि० [सं०] जल मे डूबा हुआ। जल में निमग्न [को०]।

जलमद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलपक्षी। मछरंग। कौड़िल्ला।

जलमधूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलमहुआ'।

जलमय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २ शिव की एक मूर्ति।

जलमय²—वि० जल से पूर्ण या जलनिर्मित [को०]।

जलमर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलकपि'।

जलमल—संज्ञा पुं० [सं०] फेन। झाग।

जलमसि—संज्ञा पुं० [सं०] १ बादल। मेघ। २ एक प्रकार का कपूर।

जलमहुआ—संज्ञा पुं० [सं० जलमधूक] एक प्रकार का महुआ जो दक्षिण में कोंकण की ओर जलाशयों के निकट होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ उत्तरी भारत के महुए की पत्तियों से बड़ी होती हैं और फूल छोटे होते हैं। वैद्यक में यह ठढा, व्रणनाशक, बलवीर्यवर्धक तथा रसायन और वमन को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्या०—दीर्घपत्रक। ह्रस्वपुष्पक। स्वादु। गौलिका। मधूलिका। क्षौद्रप्रिय। पतंग। कीरेष्ठ। गौरिकाक्ष। मागल्य। मधुपुष्प।

जलमातंग—संज्ञा पुं० [सं० जलमातङ्ग] दे० जलहस्ती [को०]।

जलमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देवियाँ जो जल मे रहनेवाली मानी गई हैं। ये गिनती में सात हैं। इनके नाम हैं—(१) मत्सी, (२) कूर्मी, (३) वाराही, (४) दुर्दुरी, (५) मकरी, (६) जलूका और (७) जतुका।

जलमानुष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलमानुषी] परीक्ष नामक एक कल्पित जलजतु जिसकी नाभि से ऊपर का भाग मनुष्य का सा और नीचे का मछली के ऐसा होता है। उ०—तुरत तुरगम देव चढ़ाई। जलमानुष अगुआ सँग लाई।—

जलमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलपथ' [को०]।

जलमार्जार—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊदबिलाव।

जलमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघमाला। बादलों का समूह। उ०—बादल काला बरसिया अत जलमाला माँण। काम लगो चाला करण मतवाला रँग माँण।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ७।

जलमुक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जलमुक्, जलमुच्] मेघ। बादल। दे० 'जलमुच्'। उ०—नीरद छीरद अबुवह वारिद जलमुक नाँह।—अनेकार्थ०, पृ० ८२।

जलमुच्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बादल। मेघ। २ एक प्रकार का कपूर।

जलमुर्गा—संज्ञा पुं० [हिं०] जलकुक्कुट। मुर्गाबी।

जलमुलेठी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलयष्टि] जलाशय के तट पर पैदा होनेवाली मुलेठी।

जलमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

जलमूर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करका। ओला।

जलमोद—संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

जलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र] १ वह यंत्र (रहट, चरखी आदि) जिससे कुएँ आदि नीचे स्थानों से पानी ऊपर निकाला या उठाया जाता है। २. जलघड़ी। ३ फुहारा। फौआरा।

यौ०—जलयंत्रगृह = फुहारा घर। वह घर जिसमे फुहारे लगे हो। जलयंत्रमंदिर = दे० 'जलयंत्रगृह'।

जलयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह यात्रा जो अभिषेक आदि के निमित्त पवित्र जल लाने के लिये की जाती है। २. राजपुताने में प्रचलित एक उत्सव।

विशेष—यह देवोत्थापिनी एकादशी के बाद चतुर्दशी को होता है। उस दिन उदयपुर के राणा अपने सरदारों के साथ सज-कर बड़े समारोह से किसी ह्रद के पास जाकर जल की पूजा करते हैं।

३ वैष्णवों का एक उत्सव जो ज्येष्ठ की पूर्णिमा को होता है। इस दिन विष्णु की मूर्ति को खूब ठढे जल से स्नान कराया जाता है।

जलयान—संज्ञा पुं० [सं०] सवारी जो जल में काम आती है। जैसे, नाव, जहाज आदि।

जलयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० जल+युद्ध] पानी में होनेवाली लड़ाई। जलपोतों द्वारा युद्ध।

जलरंक—संज्ञा पुं० [सं० जलरङ्क] बक। बगुला।

जलरंकु—संज्ञा पुं० जलरङ्कु] बनमुर्गी। जलकुक्कुट। मुर्गाबी।

जलरंज—संज्ञा पुं० [सं० जलरञ्ज] एक प्रकार का बगुला।

जलरंड—संज्ञा पुं० [सं० जलरण्ड] १. आवर्त। भँवर। २ पानी की बूँद। जलकण। ३ साँप। सर्प।

जलरख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जल+हिं० रख] यक्ष। जल के रखवारे। वरुण के सिपाही। उ०—तूझ तुरगाँ दान रा हिमगिर बलहटियाँह। गाने गीत तुरगमुख जलरख जल वटियाँह।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ६।

जलरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्री या साँभर नमक। २ नमक।

जलराक्षसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल मे रहनेवाली राक्षसी जिसका नाम सिंहिका था और जो आकाशगामी जीवों की छाया से उन्हें अपनी ओर खींच लेती थी।

जलराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कर्क, मकर, कुभ और मीन राशियाँ। २. समुद्र।

जलरास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जलराशि] समुद्र। जल का पुजीभूत रूप। सागर। उ०—जैसे नदी समुद्र समावै द्वैत भाव तजि ह्वै जलरास।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० १५६।

जलरुंड—संज्ञा पुं० [सं० जलरुण्ड] दे० 'जलरंड'।

जलरुह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १ मकर राशि। २ नक्र। मकर (को०)।

जललता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी की लहर। तरग।

जललोहित—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

जलवरंट—संज्ञा पुं० [सं० जलवरण्ट] जल के अधिक ससर्ग से होनेवाली एक प्रकार की पिटिका या व्रण [को०]।

जलवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ का एक भेद। उ०—सुनत मेघवर्तक साजि सैन लै आये। जलवत, वारिवर्त पवनवर्त, बीजुवर्त, आगिवर्तक जलद सग ल्याये।—सूर (शब्द०)। २ दे० 'जलावत'।

जलवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जलपक्षी [को०]।

जलवल्कल—संज्ञा पुं० [सं०] जलकुभी।

जलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाडा।

जलवा—संज्ञा पुं० [अ० जल्वह्] १ शोभा। दीप्ति। तडक भडक। उ०—जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है। उसी का सब है जलवा जो जहाँ में आशकारा है।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८५१। २ प्रदर्शन। नुमाइश। ३. दीदार। दर्शन (को०)।

यौ०—जलवागर = प्रकट। प्रत्यक्ष। उ०—हुआ जब आइने मे जलवागर मैं तब लिया बोसा। जो आया अपने काबू में तो फिर मुँह देखना क्या है।—कविता को०, भा०४, पृ० २६।

जलवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक बाजा। उ०—जलाघात, जलवाद, चित्रयोग्य मालाग्रथन।—वर्ण०, पृ० २०।

जलवाना—क्रि० स० [हिं० जलाना] जलाने का प्रेरणार्थक रूप। जलाने का काम दूसरे से कराना।

जलवानीर—संज्ञा पुं० [सं०] जलवेत। अबुवेतस्।

जलवायस—संज्ञा पुं० [सं०] कौडिल्ला पक्षी।

जलवायु—संज्ञा पुं० [सं० जल + वायु] आबहवा। मौसम।

जलवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] विंध्य पर्वत श्रेणी [को०]।

जलवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ उशीर। खस। २ विष्णुकंद।

जलवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। वारिवाह। २ वह व्यक्ति जो जल ढोता हो (को०)। ३ एक प्रकार का कपूर (को०)।

जलवाहक, जलवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] जल ढोनेवाला व्यक्ति। पनभरा। जलघडिया [को०]।

जलविंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० जलविन्दुजा] दे० 'जलबिंदुजा'।

जलविषुव—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक योग जो सूर्य के कन्या राशि से मिलकर तुला राशि मे सक्रमित होने के समय होता है। तुला सक्राति।

जलवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] भरत के एक पुत्र का नाम।

जलवृश्चिक—संज्ञा पुं० [सं०] झींगा मछली।

जलवेत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलबेत'।

जलवेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलवेत'।

जलवैकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक अशुभ योग। पानी या जलाशय में आकस्मिक विकार या अद्भुत बातो का दिखाई पडना।

विशेष—बृहत्सहिता के अनुसार नगर के पास से नदी का सरक जाना, तालाबो का अचानक एकबारगी सूख जाना, नदी के पानी में तेल, रक्त, मास आदि बहना, जल का अकारण मैला हो जाना, कुएँ में धुआँ, ज्वाला आदि देख पडना, उसके पानी का खौलने लगना या उसमें से रोने, गाने, गर्जने आदि के शब्दों का सुनाई पडना, जल के गध, रस आदि का अचानक बदल जाना, जलाशय के पानी का बिगड जाना, इत्यादि इस योग मे होते हैं। यह अशुभ माना गया है और इसकी शांति का कुछ विधान भी उसमे दिया गया है।

जलव्यथ जलव्यध—स्त्री० पुं० [सं०] ककमोट या कौआ नाम की मछली।

जलव्याघ्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलव्याघ्री] सील की जाति का एक जतु जो बडा क्रूर और हिंसक होता हैं।

विशेष—डील डौल में यह जलभालू से कुछ ही बडा होता है पर इसके शरीर पर के बाल जलभालू के बालों की तरह बहुत बडे नहीं होते। इसके शरीर पर चीते की तरह दाग या धारियाँ होती हैं। यह प्राय दक्षिण सागर मे सेटलैंड नामक टापू के पास होता है।

जलव्याल—संज्ञा पुं० [सं०] जलगर्द। पानी मे का साँप।

जलशय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जलशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलशय'।

जलशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षोपल। करका। ओला [को०]।

जलशायी—संज्ञा पुं० [सं० जलशायिन्] विष्णु।

जलशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोंघा [को०]।

जलशुनक—संज्ञा पुं० [सं०] जल का नकुल। ऊदबिलाव [को०]।

जलशूक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार। काई

जलशूकर—संज्ञा पुं० [सं०] कुभीर या नाक नामक जलजतु।

जलशोष—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा। अनावृष्टि [को०]।

जलसंघ—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विशेष—महाभारत मे लिखा है कि इसने सात्यकि के साथ भीषण युद्ध करके तोमर से उसका बायाँ हाथ तोड दिया था। अत मे यह सात्यकि के हाथ से मारा गया था।

जलसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १ नहाना। स्नान करना। २ धोना। पखारना। ३ मुर्दे को जल में बहा देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जलसमाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग के अनुसार जल में डूबकर प्राणत्याग।

क्रि० प्र०—लेना।

२ शव आदि को जल मे डुबाना या तिरोहित करना।

क्रि० प्र०—देना।

जलसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों मे से अतिम समुद्र।

जलसर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक।

जलसा—संज्ञा पुं० [अ० जलसह] १ आनंद या उत्सव मनाने के लिये बहुत से लोगों का एक स्थान पर एकत्र होना, विशेषत लोगो का वह जमावड़ा जिसमे खाना पीना, गाना बजाना, नाच रग और आमोद प्रमोद हो। जैसे,—कल रात को सभी लोग जलसे में गए थे। २ सभा,

समिति आदि का बड़ा अधिवेशन जिसमें सर्वसाधारण सम्मिलित हों। जैसे,—परसों आर्य समाज का सालाना जलसा होगा।

जलसाई(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जलशायी] भगवान् विष्णु। उ०—नींद, भूख अरु प्यास तजि करती हो तन राख। जलसाई बिन पूजिहैं क्यों मन के अभिलाख। —मति० ग्रं०, पृ० ४४५।

जलसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलसिंही] सील की जाति का एक जंतु।

विशेष—यह जंतु, पाँच सात गज लंबा होता है और इसके सारे शरीर में ललाई लिए पीले रंग के या काले भूरे बाल होते हैं। इसकी गर्दन पर सिंह की तरह लंबे लंबे बाल होते हैं। यह अत्यंत वन्य और शांत प्रकृति का होता है। यह अमेरिका और एशिया के बीच 'कमस्चटका' उपद्वीप तथा 'क्यूरायल' आदि द्वीपों के आस पास मिलता है। यह झुंड में रहता है। इसकी गरज बड़ी भयानक होती है और तंग किए जाने पर यह भयंकर रूप से आक्रमण करता है।

जलसिक्त—वि० [सं०] जल से सींचा हुआ। गीला। आर्द्र [को०]।

जलसिरस—संज्ञा पुं० [सं० जलशिरिष] जल में या जलाशय के अति निकट पैदा होनेवाला एक प्रकार का सिरस वृक्ष जो साधारण सिरस वृक्ष से बहुत छोटा होता है। इसे कहीं कहीं ढाकोन भी कहते हैं।

जलसीप—संज्ञा स्त्री० [सं० जलशुक्ति] वह सीप जिसमें मोती होता है।

जलसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। जलज। उ०—जलसुत प्रीतम जानि तास सम परम प्रकासा। अहिरिपु मध्य कियो जिनि निश्चल बासा। —सुंदर ग्रं०, भा० १, (जी०), पृ० ११०।

यौ०—जलसुत प्रीतम = सूर्य।

२ मोती। मुक्ता। उ०—श्याम हृदय जलसुत की माला, अतिहि अनूपम छाजे (री)। मनहुँ बलाक भाँति नव घन पर, यह उपमा कछु भ्राजे (री)। —सूर०, १०।१८०७।

जलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] सूँस। शिशुमार। २ बड़ा कछुआ। ३ जोंक। ४ एक प्रकार का पौधा जो जल में पैदा होता है। ५. कौआ। ६ ककमोट या कौआ नाम की मछली। ७ सिंघाड़ा।

जलसूत—संज्ञा पुं० [सं०] नहरुआ रोग।

जलसूर्य, जलसूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में व्यक्त सूर्य का प्रतिबिंब [को०]।

जलसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सींचना। पानी देना। जल का छिड़काव।

जलसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलसेक'।

जलसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जो जहाजों पर चढ़कर समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी बेड़ों पर रहनेवाली फौज। नौसेना। समुद्री सेना।

जलसेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेनापति जिसकी अधीनता में जलसेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अधीनता में बहुत से लड़ाई के जहाज और जलसैनिक हों। जल या नौसेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।

जलसेनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

जलस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ] एक दैवी घटना जिसमें जलाशयों या समुद्र में आकाश से बादल झुक पड़ते हैं और बादलों से जल तक एक मोटा स्तंभ सा बन जाता है। सूँडी।

विशेष—यह जलस्तंभ कभी कभी सौ सवा सौ गज तक व्यास का होता है। जब यह बनने लगता है, तब आकाश में बादल स्तंभ के समान नीचे झुकते हुए दिखाई पड़ते हैं और थोड़ी ही देर में बढ़ते हुए जल तक पहुँचकर एक मोटे खंभे का रूप धारण कर लेते हैं। यह स्तंभ नीचे की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। यह बीच में भूरे रंग का, पर किनारे की ओर काले रंग का होता है। इसमें एक केंद्ररेखा भी होती है जिसके आस पास भाप की एक मोटी तह होती है। इससे जलाशय का पानी ऊपर को खिंचने लगता है और बड़ा शोर होता है। यह स्तंभ प्रायः घंटों तक रहता है और बहुधा बढ़ता भी है। कभी कभी कई स्तंभ एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। स्थल में भी कभी कभी ऐसा स्तंभ बनता है जिसके कारण उस स्थान पर जहाँ वह बनता है, गहरा कुंड बन जाता है। जब यह नष्ट होने को होता है, तब ऊपर का भाग तो उठकर बादल में मिल जाता है और नीचे का पानी हो कर पानी बरस पड़ता है। लोग इसे प्रायः अशुभ और हानिकारक समझते हैं।

जलस्तंभन—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भन] मंत्रादि से जल की गति का अवरोध करना। पानी बाँधना।

विशेष—दुर्योधन को यह विद्या आती थी अतएव वह शल्य के मारे जाने के बाद 'द्वैपायन ह्रद' में जल का स्तंभन करके पड़ा था। इसका विशेष विवरण महाभारत में शल्य पर्व के २९वें अध्याय में द्रष्टव्य है।

जलस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] जल थल। जल और जमीन।

जलस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडदूर्वा।

जलस्थान, जलस्थाय—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का स्थान। जलाशय। तालाब [को०]।

जलस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग [को०]।

जलस्रोत—संज्ञा पुं० [सं०] जल का सोता। चश्मा। जलप्रवाह [को०]।

जलह—संज्ञा पुं० [सं०] जल के फौवारोंवाला छोटा स्थान। वह स्थान जहाँ फुहारा लगा हो [को०]।

जलहड्डी—संज्ञा पुं० [हिं० जल + हड्डी] मोती। उ०—तै सो लाख समापिया रावल लालच छड्ड। सौंसण सीचाँणा जिसा, जेप हुसे जलहड्ड। —बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ८०।

जलहर¹(पु)—वि० [हिं० जल + हर] जलमय। जल से भरा हुआ।

उ०—दादू करता करत निमिष में जल माँहि थल थाप। थल माँहि जलहर करै, ऐसा समरथ आप।—दादू (शब्द०)।

जलहर[३]⑤—संज्ञा पुं० [सं० जलधर, प्रा० जलहर] १ मेघ। बादल। उ०—बिज्जुलियाँ नीलज्जियाँ जलहर तूँ ही लज्जि। सूनी सेज विदेस प्रिय मधुरइ मधुरइ गज्जि।—ढोला०, दू० ५०। २ तालाब। सरवर। जलाशय। उ०—(क) बिरह जलाई मैं जलूँ जलती जलहर जाउ। मों देखे जलहर जलै सतो कहा बुझाउँ।—कबीर (शब्द०)। (ख) नैना भए अनाथ हमारे। मदन गोपाल वहाँ ते सजनी सुनियत दूर सिधारे। वे जलहर हम मीन बापुरी कैसे जियहिं निनारे।—सूर (शब्द०)। (ग) सुंदर सोल सिंगार सजि गई सरोवर पाल। चंद मुलक्यउ जल हँस्यउ जलहर कंपी पाल।—ढोला०, दू० ३६४।

जलहरण—संज्ञा पुं० [सं०] बत्तीस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति या दंडक जिसके अंत में दो लघु पड़ते हैं। इसमें सोलहवें वर्ण पर यति होती है। जैसे,—भरत सदा ही पूजे पादुका उतै सनेम, इतै राम सिय बंधु सहित सिधारे बन। सूपनखा कै कुरूप मारे खल झुंड घने, हरी दससीस सीता राघव विकल मन।

जलहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधरी] १ पत्थर या धातु आदि का वह अर्घा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है। उ०—लिंग जलहरी घर घर रोपा।—कबीर सा०, पृ० १५८१। २ एक बरतन जिसमें नीचे पानी भरा रहता है। लोहार इसमें लोहा गरम करके बुझाते हैं। ३. मिट्टी का घड़ा जो गरमी के दिनों में शिवलिंग के ऊपर टाँगा जाता है। इसके नीचे एक बारीक छेद होता है जिसमे से दिन रात शिवलिंग पर पानी टपका करता है।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढाना।

जलहस्ती—संज्ञा पुं० [सं०] सील की जाति का एक जलजंतु जो स्तनपायी होता है।

विशेष—यह प्राय छह से आठ गज तक लंबा होता है और इसके शरीर का चमड़ा बिना बालों का और काले रंग का होता है। इसके मुँह में ऊपर की ओर १६ और नीचे की ओर १४ दाँत होते हैं। यह प्राय दक्षिण महासागर में पाया जाता है, पर जब वहाँ अधिक सरदी पड़ने लगती है, तब यह उत्तर की ओर बढ़ता है। नर की नाक कुछ लंबी और सूँड की तरह आगे को निकली हुई होती है और वह प्राय १५-२० मादाओं के झुंड में रहता है। गरमी के दिनो में इसकी मादा एक या दो बच्चे देती है। इसका मांस काले रंग का और चरबी मिला होता है और बहुत गरिष्ठ होने के कारण खाने योग्य नहीं होता। इसकी चरबी के लिये, जिससे मोमबत्तियाँ आदि बनती हैं, इसका शिकार किया जाता है। प्रयत्न करने पर यह पाला भी जा सकता है।

जलहार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलहरी] पानी भरनेवाला। पनिहारा।

जलहारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलहार'।

जलहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पानी भरनेवाली। पनिहारिन। २. नाली। जल के निकास की प्रणाली (को०)।

जलहारी—संज्ञा पुं० [सं० जलहारिन्] [स्त्री० जलहारिणी] पनिहारा। जलहारक।

जलहालम—संज्ञा पुं० [सं० जल+देश० हालम] एक प्रकार का हालम या चंसुर वृक्ष जो जलाशयों के निकट होता है। इसकी पत्तियाँ सलाद या मसाले की तरह काम में आती हैं और बीजों का उपयोग औषध में होता है।

जलहास—संज्ञा पुं० [सं०] १ झाग। फेन। २ समुद्र का फेन। समुद्रफेन।

जलहोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम जिसमें वैश्वदेवादि के उद्देश्य से जल मे आहुति दी जाती है।

जलांचल—संज्ञा पुं० [सं० जलाञ्चल] १ पानी की नहर। पानी का सोता। २ झरना। निर्झर (को०)। ३ सेवार। काई (को०)।

जलांजल—संज्ञा पुं० [सं० जलाञ्जल] १ सेवार। २ सोता। स्रोत।

जलांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी भरी अंजुली। २ पितरों या प्रेतादिक के उद्देश्य से अंजुली में जल भरकर देना।

मुहा०—जलांजलि देना=त्याग देना। छोड़ देना। कोई संबंध न रखना।

जलांटक—संज्ञा पुं० [सं० जलाण्टक] मगर। नक्र। नाक (को०)।

जलांतक—संज्ञा पुं० [सं० जलान्तक] १ सात समुद्रों मे से एक समुद्र २ हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र का एक पुत्र जो सत्यभामा गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

जलांबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलाम्बिका] कूप। कुआँ।

जलाक—संज्ञा स्त्री० [हिं० जलना] १ पेट की जलन। २ तीक्ष्ण धूप की लपट। ३ लू।

जलाकर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र, नदी, कूप, स्रोत, जलाशय आदि जो जलयुक्त हो।

जलाकांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० जलाकाङ्क्ष] हाथी।

जलाकांक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलाकाङ्क्षिन्] दे० 'जलाकाक्ष'।

जलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल में आकाश का प्रतिबिंब। २ जलगत आकाश या शून्य (को०)।

जलाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल। जलपिप्पली।

जलाखु—संज्ञा [सं०] ऊदबिलाव।

जलाजल⑤—संज्ञा पुं० [हिं० झलाझल] गोटे आदि की झालर। झलाझल। उ०—गति गयंद कुच कुंभ किंकिणी मनहुँ घंट झहनावै। मोतिन हार जलाजल मानो खुमीदंत झलकावै।—सूर (शब्द०)।

जलाटन—संज्ञा पुं० [सं०] कंक नामक पक्षी।

जलाटनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाटीन—संज्ञा पुं० [अं० जेलाटीन] एक प्रकार की सरेस। दे० 'जेलाटीन'।

जलातंक—संज्ञा पुं० [सं० जलातङ्क] जलत्रास नामक रोग ।

जलातन—वि० [हिं० जलना+तन] १. क्रोधी । बिगड़ैल । बदमिजाज । २. ईर्ष्यालु । डाही ।

जलात्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जोंक । २. कुआँ । कूप ।

जलात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा की समाप्ति का काल । शरत् काल ।

जलाद(पु)—संज्ञा पुं० [अ० जल्लाद] दे० 'जल्लाद' । उ०—हो मन राम नाम को गाहक । चौरासी लख जिया जोनि लख भटकत फिरत अनाहक । करि हियाव सो भी जलाद यह हरि के पुर लै जाहि । घाट बाट कहूँ अटक होय नहिं सब कोउ देहि निबाहि ।—सूर० (शब्द०) ।

जलाधार—संज्ञा पुं० [सं०] जल का आधारभूत स्थान । जलाशय [को०] ।

जलाधिदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] १ वरुण । २ पूर्वाषाढा नक्षत्र ।

जलाधिप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वरुण । २. फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो मवत्सर में जल का अधिपति हो ।

जलाना¹—क्रि० स० [हिं० 'जलना' का सक० रूप] १. किसी पदार्थ को अग्नि के संयोग से अंगारे या लपट के रूप में कर देना । प्रज्वलित करना । जैसे, आग जलाना, दीया जलाना । २ किसी पदार्थ को बहुत गरमी पहुँचाकर या आँच की सहायता से भाप या कोयले आदि के रूप मे करना । जैसे, अंगारे पर रोटी जलाना, काढ़े का पानी जलाना । ३. आँच के द्वारा विकृत या पीड़ित करना । झुलसाना । जैसे—अंगारे से हाथ जलाना । ४. किसी के मन में डाह, ईर्ष्या या द्वेष आदि उत्पन्न करना । किसी के मन में संताप उत्पन्न करना ।

मुहा०—जला जलाकर मारना = बहुत दु ख देना । खूब तंग करना ।

जलाना(पु)²—क्रि० अ० [हिं० जल+आना (प्रत्य०) जलमग्न होना । जलमय होना । उ०—महा प्रलय जब होवे भाई । स्वर्ग मृत्यु पाताल जलाई ।—कबीर सा०, पृ० २४३ ।

जलापा¹—संज्ञा पुं० [हिं० √जल+आपा (प्रत्य०)] डाह या ईर्ष्या आदि के कारण होनेवाली जलन ।

क्रि० प्र०—सहना । —होना ।

जलापा²—संज्ञा पुं० [अ० जैलप पाउडर] एक विलायती औषध जो रेचक होती है ।

जलापात—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ऊँचे स्थान पर से नदी आदि के जल का गिरना । जलप्रपात ।

जलामई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जलमय] जलमय । जल से परिपूर्ण । उ०—समुद्र मध्य दूरि कै उघारि नैन दीजिए । दशौ दिशा जलामई प्रत्यक्ष ध्यान कीजिए ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ५४ ।

जलायुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलार्णव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्षाकाल । बरसात । २ समुद्र । सागर (को०) ।

जलार्द्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. भीगा वस्त्र । २ जलसिक्त पंखा । ३. जल से भीगा हुआ पदार्थ या स्थान [को०] ।

जलाल—संज्ञा पुं० [अ०] १. तेज । प्रकाश । उ०—खुदावंद का जलाल दहकती आग के सदृश दिखलाई देता था ।—कबीर म०, पृ० २०१ । २ महिमा के कारण उत्पन्न होनेवाला प्रभाव । आतंक ।

जलालत—संज्ञा स्त्री० [अ० जलालत] तिरस्कार । अपमान । बेइज्जती । उ०—कुछ देर बाद मंसूबा पलटा । बंबई के कारनामे याद आए । जलालत से नसों में खून दौड़ने लगा; सोचा क्या बंबई में मुँह दिखाएँ ।—काले०, पृ० ३७ ।

जलाली—वि० [अ०] प्रकाशित । दीप्त । आतंकयुक्त । उ०—किया उस उपर यक जलाली नजर, जो हैबत सूँ पानी हुआ सर बसर ।—दक्खिनी०, पृ० ११७ । २. ईश्वरीय । उ०—रूह जलाली करत हलाली, क्यों दोजख आगी जलता है ।—कबीर श०, भा २, पृ० १७ । ३. पराक्रमी । दुर्दम । अजेय । उ०—ऐसी सेन जलाली बर औरंगजेब ।—नट०, पृ० १६७ ।

जलालुक—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़ । भसींड ।

जलालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलालोका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलालुका' [को०] ।

जलावंत(पु)—वि० [सं० जलवन्त] पानीवाला । जल से परिपूर्ण । उ०—जलावंत इक सिंध अगम है सुखमन सूरत लाया । उलट पलट कै यह मन गरजै गगन मंडल घर पाया ।—पलटू०, पृ० ८१ ।

जलाव—संज्ञा पुं० [हिं० जलना+आव (प्रत्य०)] १ खमीर या आटे आदि का उठना ।

क्रि० प्र०—आना । पतला शीरा ।

२ वह आटा जो उठाया हो । खमीर । ३ किवाम ।

जलावतन—वि० [अ०] [संज्ञा स्त्री० जलावतनी] जिसे देश निकाले का दंड मिला हो । निर्वासित ।

जलावतनी—संज्ञा स्त्री० [अ० जलावतन+ई] दंडस्वरूप किसी अपराधी का शासक द्वारा देश से निकाल दिया जाना । देश-निकाला । निर्वासन ।

जलावतार—संज्ञा पुं० [सं०] नदी का वह स्थान जहाँ उतरने चढ़ने के लिये नाव आदि लगाई जाती है । घाट [को०] ।

जलावन—संज्ञा पुं० [हिं० जलाना] १. लकड़ी, कंडे आदि जो जलाने के काम में आते हैं । ईंधन । २ किसी वस्तु का वह अंश जो आग में उसके तपाए, जलाए या गलाए जाने पर जल जाता है । जलता ।

क्रि० प्र०—जाना ।—निकलना ।

३ मौसिम में कोल्हू के पहले पहल चलने का उत्सव । भेंडरव ।

विशेष—इसमें वे सब काश्तकार जो उस कोल्हू मे अपनी ईख पेरना चाहते हैं, अपने अपने खेत से थोड़ी थोड़ी ईख लाकर वहाँ पेरते हैं और उसका रस ब्राह्मणों, भिखारियों आदि को पिलाते तथा उससे गुड़ बनाकर बाँटते हैं ।

जलावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर । नाल ।

जलाशय¹—वि० [सं०] १ जल मे रहने या शयन करनेवाला । २ मूर्ख । जड़ [को०] ।

जलाशय²—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ पानी जमा हो। जैसे,—गड्ढा, तालाब, नदी, नाला, समुद्र आदि। २ उशीर। खस। ३ सिंघाड़ा। ४. लामज्जक नामक तृण। ५ मत्स्य। मछली (को०)।

जलाशया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंदला। नागरमोथा।

जलाशयोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नए बने कूप या तालाब आदि की प्रतिष्ठा। दे० 'जलोत्सर्ग'।

जलाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृत्तगुड या दीर्घनाल नाम का तृण। २ जलाशय (को०)। ३ सारस। बक (को०)।

जलाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली घास।

जलाष्ठीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा और चौकोर तालाब (को०)।

जलासुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाहल¹—वि० [हिं० जलाजल, या सं० जलस्थल] जलमय। उ०—प्रातप्रिया अंसुप्रान के नीर पनारे भए वहि के भए नारे। नारे भए ते भई नदियाँ नदियाँ नद ह्वै गए काटि किनारे। वेगि चलो पू चलो ब्रज को नँदनदन चाहत चेत हमारे। वे नद चाहत सिंधु भए अब सिंधु ते ह्वै है जलाहल सारे।—(शब्द०)।

जलाहल²—वि० [हिं० झलाझल] झलझलाता हुआ। चमक दमक। वाला। देदीप्यमान। उ०—कठसरी बहु क्रांति, मिली मुकताहलाँ।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ३६।

जलाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। २. कुमुद। कुँई।

जलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जली—वि० [अ०] प्रकट। व्यक्त। स्पष्ट। प्रकाशमान। उ०—जिन्हे जली नित ऐसा याद हर दम अल्ला नाँव। यू हर भाजा बरतन पूरे नासुत पावे ठाँव।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

जलील—वि० [अ० जलील] १. तुच्छ। बेकदर। २ जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित। तिरस्कृत।

जलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलू, जलूक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जलू, जलूक] जलौका। जोंक (को०)।

जलूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलूस—संज्ञा पुं० [अ० जुलूस] बहुत से लोगों का किसी उत्सव के उपलक्ष मे सज धजकर, विशेषत किसी सवारी के साथ किसी विशिष्ट स्थान पर जाने या नगर की परिक्रमा करने के लिये चलना।

क्रि० प्र० —निकलना। —निकालना।

२ जलसा। धूमधाम। उ०—जोवन जलूस फूस लाये लों नसाय कहा पाप समुदाय मान मातो सान धरि कै। —दीन० ग्रं०, पृ० १३८।

जलेंद्र—संज्ञा पुं०[सं० जलेन्द्र] १ वरुण। २ महासागर। ३ शिव (को०)।

जलेंधन—संज्ञा पुं० [सं० जलेन्धन] १ बाड़वाग्नि। २. वह पदार्थ जिसकी गरमी से पानी सूखता है। जैसे, सूर्य, विद्युत् आदि।

जलेचर—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] जलचर।

जलेच्छया—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीसूँड़ नाम का पौधा जो पानी मे उत्पन्न होता है।

जलेज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। जलज।

जलेतन—वि० [हिं० जलना + तन] १ जिसे बहुत जल्दी क्रोध आ जाता हो। जिसमे सहनशीलता बिलकुल न हो। २. जो डाह, ईर्ष्या आदि के कारण बहुत जलता हो।

जलेबा—संज्ञा पुं० [हिं० जलेबी] बड़ी जलेबी। वि० दे० 'जलेबी'।

जलेबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जलाब (= खमीर या शोरा)] १ एक प्रकार की मिठाई जो कुंडलाकर होती है और खमीर उठाए हुए पतले मैदे से बनाई जाती है।

विशेष—इसके बनाने की पद्धति यह है कि पतले उठे हुए मैदे को मिट्टी के किसी ऐसे बरतन में भर लेते हैं जिसके नीचे छेद होता है। तब उस बरतन को घी की कड़ाही के ऊपर रखकर इस प्रकार घुमाते हैं कि उसमें से मैदे की धार निकलकर कुंडलाकार होती जाती है। पक चुकने पर उसे घी में से निकालकर शीरे में थोड़ी देर तक डुबो देते हैं। मिट्टी के बरतन की जगह कभी कभी कपड़े की पोटली का भी व्यवहार किया जाता है।

२ बरियारे की जाति का एक प्रकार का पौधा।

विशेष—यह पौधा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है और इसमे पीले रग के फूल लगते हैं। इसके फूल के अदर कुंडलाकार लिपटे हुए बहुत से छोटे छोटे बीज होते हैं।

३. गोल घेरा। कुंडली। लपेट। ४. एक प्रकार की आतिशबाजी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले आदि रखकर और ऊपर कागज चिपका कर बनाई जाती है।

यौ०—जलेबीदार = जिसमे कई घेरे हो।

जलेभ—संज्ञा पुं० [सं०] जलहस्ती।

जलेरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरजमुखी नाम के फूल का पौधा। २. एक गुल्म। कुटुंबिनी (को०)।

जलेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

जलेवाह—संज्ञा पुं० [सं०] पानी मे गोता लगाकर चीजें निकालनेवाला मनुष्य। गोताखोर।

जलेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ वरुण। २. समुद्र। जलाधिप।

जलेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ मछली। २ विष्णु का एक नाम।

विशेष—जिस समय सृष्टि का लय होता है, उस समय विष्णु जल में सोते हैं इसी से उनका यह नाम पड़ा है।

जलेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ वरुण।

जलोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलोच्छ्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलाशयों में उठनेवाली लहरें जो उनकी सीमा का उल्लघन करके बाहर गिरती हैं। जल का उमड़कर अपनी सीमा से बाहर गिरना या बहना। २. वह प्रयत्न जो किसी स्थान से जल को बाहर निकालने अथवा उसे किसी स्थान में प्रविष्ट करने के लिये किया जाय।

जलोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ताल, कुआँ या बावली आदि का विवाह ।

जलोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नाभि के पास पेट के चमड़े के नीचे की तह मे पानी एकत्र हो जाता है ।

विशेष—इस रोग में पानी इकट्ठा होने से पेट फूल जाता है और आगे की ओर निकल पडता है । वैद्यो का मत है कि घृतादि पान करने और वस्ति कर्म, रेचन और वमन के पश्चात् चटपट ठढे जल से स्नान करने से शरीर की जलवाहिनी नसें दूषित हो जाती हैं और पानी उतर आता है । इसमे रोगी के पेट मे शब्द होता है और उसका शरीर काँपने लगता है ।

जलोद्धतगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण, सगण, जगण और सगण होता है (। ऽ ।, ।। ऽ । ऽ ।, ।। ऽ) । जैसे—जु साजि सुपली हरी हि सिर मे । चले जु बसुदेव रैन जल मे । प्रभू चरण को छुआ जमुन मे । जलोद्धति गति हरी छिनक में । २ जल बढ़ने की स्थिति ।

जलोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुंदला । २. छोटी ब्राह्मी ।

जलोद्भूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंदला नाम की घास ।

जलोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

जलोरगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलौकस—संज्ञा पुं० [सं०] जलौका । जोंक ।

जलौका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलौकस्] जोंक ।

जल्द—क्रि० वि० [अ०] [संज्ञा जल्दी] १ शीघ्र । चटपट । बिना विलंब । २ तेजी से ।

जल्दबाज—वि० [फ़ा० जल्दबाज] [संज्ञा जल्दबाजी] जो किसी काम के करने में बहुत, विशेषत आवश्यकता से अधिक, जल्दी करता हो । बहुत अधिक जल्दी करनेवाला ।

जल्दबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जल्दबाजी] उतावली । शीघ्रता ।

जल्दी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] शीघ्रता । फुरती ।

जल्दी[2]†—क्रि० वि० [अ० जल्द] दे० 'जल्द' ।

जल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ कथन । कहना । २. बकवाद । व्यर्थ की बात । प्रलाप । ३. न्याय के अनुसार सोलह पदार्थों मे से एक पदार्थ ।

विशेष—यह एक प्रकार का वाद है जिसमें वादी छल, जाति और निग्रह स्थान को लेकर अपने पक्ष का मडन और विपक्षी के पक्ष का खडन करता है । इसमें वादी का उद्देश्य तत्त्वनिर्णय नही होता किंतु स्वपक्ष स्थापन और परपक्ष खडन मात्र होता है । वाद के समान इसमे भी प्रतिज्ञा, हेतु आदि पाँच अवयव होते हैं ।

जल्पक—वि० [सं०] बकवादी । वाचाल । बातूनी । उ०—तब सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर । तजौं तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम ।—मानस, ६ । ३२ ।

जल्पन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ बकवाद । प्रलाप । गपशप । व्यर्थ की बातें । २ बहुत बढ़कर कही हुई बात । डींग ।

जल्पन[2]—वि० [सं०] बातूनी । जल्पक [को०] ।

जल्पना—क्रि० अ० [सं० जल्पन] व्यर्थ बकवाद करना । बहुत बढ़ चढ़कर बातें करना । डींग मारना । सीटना । उ०—(क) कट जल्पसि जड़ कपि बल जाके । बल प्रताप बुधि तेज न ताके ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जनि जल्पसि जड़ जतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु । लोकपाल बल बिपुल ससिग्रसन हेतु सब राहु ।—तुलसी (शब्द०) ।

जल्पना(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल्पन । बकवाद । डींग । उ०—भजि रघुपति करु हित आपना । छाड़हु नाथ तृषा जल्पना ।—मानस, ६ । ५५ ।

जल्पाक—वि० [सं०] व्यर्थ की बहुत सी बातें करनेवाला । जल्पक । बकवादी । वाचक ।

जल्पित—वि० [सं०] १ जो (बात) वास्तव मे ठीक न हो । मिथ्या । २ कथित । उक्त । कहा हुआ ।

जल्ला†—संज्ञा पुं० [हिं० झील] १. झील ।—(लश०) । २ ताल । ३. हौज । ह्रद ।

जल्लाद[1]—संज्ञा पुं० [अ०] वह जिसका काम ऐसे पुरुषों के प्राण लेना हो, जिन्हें प्राणदड की आज्ञा हो चुकी हो । घातक । बधुआ ।

जल्लाद[2]—वि० क्रूर । निर्दय । बेरहम ।

जल्हु—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

जल्वा—संज्ञा पुं० [अ० जल्वह्] दे० 'जलवा' । उ०—बिना उसके जल्वा के दिखती कोई परी या हूर नहीं । सिवा यार के दूसरे का इस दुनियाँ में नूर नहीं ।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० १६४ ।

यौ०—जल्वागार = दे० 'जलागार' । जल्वागाह = प्रदर्शनगृह । उ०—भौरों सा रस लेता रहता गाता फिरता तू राहों मे । रूप और रस राग भरी इन जीवन की जल्वागाहों में ।—दीप ज०, पृ० १५३ ।

जल्वागाय(पु)—[फ़ा० जल्वागाह] दे० 'जल्वागाह' । उ०—जब इस वज्म छब की उकसी दिखाय । तो जोहर हो ज्यों दिए मने जल्वागाय ।—दक्खिनी०, पृ० १३८ ।

जल्सा—संज्ञा पुं० [अ० जल्सह्] दे० 'जलसा' उ०—रेल मे, जहाज में, खाने पीने के जलसों मे, पास बैठने मे और बातचीत करने में जानपहचान नहीं समझी जाती ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३३० ।

जव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वेग ।

जव[2]—संज्ञा पुं० [सं० यव] जो ।

जवन[1]—वि० [सं०] [वि०स्त्री० जवनी] वेगवान् । वेगयुक्त । तेज ।

जवन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग । २. स्कंद का एक सैनिक । ३ घोड़ा ।

जवन[3]—संज्ञा पुं०[सं० यवन] दे० 'यवन' । उ०—पृथीराज जैचद कलह करि जवन बुलायो ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०७ ।

जवन[4](पु)†—सर्व० [सं० यत्पुनः; प्रा० जउण, या हिं०] दे०

'जौन' अथवा 'जिस'। उ०—जवन विधि मनुवा मरे सोई भाँति सम्हारो हो।—धरम०, पृ० ६।

जवनाल—संज्ञा पुं० [सं० यवनाल] जौ का डंठल। दे० 'यवनाल'।

जवनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पर्दा। दे० 'यवनिका'। उ०—(क) मोहन काहैं न उगिलो माटी। बड़ी बार भई लोचन उघरे भरम जवनिका फाटी। सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई कहति न मीठी खाटी।—सूर०, १०।२५४ (ख) द्वार झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ।—घनानंद, पृ० ३१३। २ कनात। घेरा (को०)। ३ नाव की पाल (को०)।

जवनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जवनिमन्] गति। वेग। क्षिप्रता (को०)।

जवनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जवाइन। अजवायन। २ तेजी। वेग।

जवनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जवनिका' (को०)।

जवनी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनी] यवनी। यवन स्त्री। मुसलमान स्त्री। उ०—भूषन यो अवनी जवनी कहैं।—कोऊ कहै सरजा सो हहारे। तू सबको प्रतिपालन हार विचारे भतार न मारु हमारे।—भूषण ग्रं०, पृ० ५१।

जवस्—संज्ञा पुं० [सं०] वेग।

जवस—संज्ञा पुं० [सं०] घास।

जवाँ—संज्ञा पुं० [फा० जवान का यौगिक रूप] युवक। युवा।

यौ०—जवाँमर्द। जवाँमर्दी। जवाँबख्त = भाग्यवान्। सौभाग्यशाली। जवाँसाल = युवक। नई उमर का।

जवाँमर्द—वि० [फ़ा०] [संज्ञा जवाँमर्दी] १ शूरवीर। बहादुर। २ स्वेच्छापूर्वक सेना में भरती होनेवाला सिपाही। वालेंटियर।

जवाँमर्दी—संज्ञा स्त्री० [फा०] वीरता। बहादुरी। मर्दानगी।

जवा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जपा'।

जवा[2]—संज्ञा पुं० [सं० यव] १ एक प्रकार की सिलाई जिसमें तीन बखिया लगाते हैं और इस प्रकार सिलाई करके दर्ज को चीरकर दोनों ओर तुरप देते हैं। २ लहसुन का एक दाना।

जवाइन—संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका, यवानी, हिं० अजवाइन] अजवाइन। जवाइन।

जवाई—संज्ञा स्त्री [हिं० जाना, पुंहिं जावना] १ वह धन जो जाने के उपलक्ष में दिया जाय। २. जाने की क्रिया। गमन। ३ जाने का भाव।

यौ०—अवाई जवाई = आवागमन। आना जाना।

जवाखार—संज्ञा पुं० [सं० यवक्षार] एक प्रकार का नमक जो जौ के क्षार से बनता है। वैद्यक में यह पाचक माना गया है।

जवाद[1]—संज्ञा पुं० [अ० जबाद] दे० 'जवादि'। उ०—मृग मद जवाद सब चरचि अंग। कसमीर अगर सुर रहिय अंग।—पृ० रा०, ६।११२।

जवाद[2]—वि० [अ०] मुक्तहस्त। दानी। यशस्वी। वदान्य। फैयाज। उ०—पुनि कूरम सौं बिरचियौ छोड़ति देखि अजाद। बचन जीत तासौं भयौ सूरज आपु जवाद।—सुजान०, पृ० ३३।

जवादानी—संज्ञा स्त्री० [सं० यव, हिं० जवा + दाना] चपाकली नामक गहना जो गले में पहना जाता है।

जवादि—संज्ञा पुं० [अ० जब्बाद, जबाद, तुल० सं० जवादि] एक सुगंधित द्रव्य जो गंधमार्जार से निकाला जाता है। उ०—पहिले तजि आरस आरसी देखि घरीक घसे घनसारहि लै। पुनि पोछि गुलाब तिलौछि फुलेल अँगोछे में आछे अँगोछन कै। कहि केशव मेद जवादि सो माँजि इते पर आँजे मे अंजन है। बहुरे हरि देखौं तो देखौं कहा सखि लाज ते लोचन लागे दहैं। —केशव (शब्द०)।

विशेष—राजनिघंटु में इसके गुणों का वर्णन प्राप्त होता है। यह काले रंग की एक चिकनी लसदार चीज है जो कस्तूरी की तरह महकती है। इसे गौरासार, मृगधर्मज आदि भी कहते हैं। वि० दे० 'गंधविलाव'।

जवादि कस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [अ० या सं०] दे० 'जवादि'।

जवाधिक—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा।

जवान[1]—वि० [फा०] १. युवा। तरुण।

यौ०—जवाँमर्द। जवाँमर्दी।

२ वीर। बहादुर। पराक्रमी।

जवान[2]—संज्ञा पुं० १ मनुष्य। पुरुष २। सिपाही। ३ वीर पुरुष।

जवानिल—संज्ञा पुं०। [सं०] तीव्रगामी वायु। तेज हवा। आँधी। तूफान (को०)।

जवानी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवाइन। अजवायन।

जवानी[2]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ यौवन। तरुणाई। युवावस्था। २ मस्ती। मद।

मुहा०—जवानी उठना या जवानी उभड़ना = यौवन का प्रारंभ होना। तरुणाई का आरंभ होना। जवानी उतरना = उमर ढलना। बुढ़ापा आना। जवानी चढ़ना = (१) यौवन का आगमन होना। तरुणाई का प्रारंभ होना। (२) मद पर आना। मदमत्त होना। जवानी ढलना = उमर खसकना। जवानी उतरना। बुढ़ापा आना। जवानी पर आना = मस्ती में आना। यौवन के मद से मत्त होना। जवानी फटी पड़ना = जवानी का पूर्ण विकास पाना। उठती जवानी = यौवनारंभ। चढ़ती जवानी। उतरती जवानी = यौवनावसान। उमर खसकने की अवस्था। चढ़ती जवानी = यौवनारंभ। जवानी का प्रारंभ होना। उठती जवानी। चढ़ती जवानी माझा ढीला = भरी जवानी में उत्साह की जगह अशक्तता या कमजोरी दिखाना।

जवाब—संज्ञा पुं० [अ०] १ किसी प्रश्न या बात को सुन अथवा पढ़कर उसके समाधान के लिये कही या लिखी हुई बात। उत्तर।

यौ०—जवाबदावा। जवाबदारी। जवाबदेही।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—माँगना।—मिलना।—लिखना।

मुहा०—जवाब तलब करना = किसी घटना का कारण पूछना। कैफियत माँगना। जवाब मिलना या कोरा जबाब मिलना = निषेधात्मक उत्तर मिलना।

२ वह जो कुछ किसी के परिणाम स्वरूप या बदले में किया जाय। कार्यरूप में दिया हुआ उत्तर। बदला। जैसे,—जब उधर से गोलियों की बौछार आरंभ हुई, तब इधर से भी

उसका जवाब दिया गया। ३ मुकाबले की चीज। जोड। जैसे,—इस तस्वीर के जवाब में इसके सामने भी एक तस्वीर होनी चाहिए। ४ इनकार। अस्वीकार। नहीं करना। ५ नौकरी छूटने की आज्ञा। मौकूफी। जैसे,—कल उन्हें यहाँ से जवाब हो गया।

क्रि० प्र०—देना। —पाना। —मिलना। —होना।

जवाबतलब - वि० [अ०] जिसके संबंध मे समाधानकारक उत्तर माँगा गया हो। उत्तर या जवाब माँगने लायक।

जवाबतलबी—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाबतलब+फ़ा० ई (प्रत्य०)] जवाब माँगना। उत्तर माँगना [को०]।

जवाबदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाब+फा० दारी (प्रत्य०)] जवाबदेही। उत्तरदायित्व। उ०—यदि आज भारत की किसी भाषा या साहित्य के सामने जवाबदारी का विराट् प्रश्न उपस्थित है तो वह हिंदीभाषा और हिंदी साहित्य के सामने है।—शुक्ल अभि० ग्रं० (जी०), पृ० १३।

जवाबदावा—संज्ञा पुं०[अ० जवाब+हिं० दावा]वह उत्तर जो वादी के निवेदन पत्र के उत्तर में प्रतिवादी लिखकर अदालत में देता है।

जवाबदिही—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाब+फा० दिही] दे० 'जवाबदेही'। उ०—(क) उसमें जवाबदिही करने के लिये भी रूपे चाहियेंगे।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २४३। (ख) मदन मोहन की ओर से लाला ब्रजकिशोर जवाबदिही करते हैं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३५७।

जवाबदेह—वि० [अ० जवाब+फा दिह०] जिसपर किसी बात का उत्तरदायित्व हो। जिम्मेदार।

जवाबदेही—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाब+फा० दिही] १. उत्तर देने की क्रिया। २ उत्तरदायित्व। उत्तर देने का भाव। जिम्मेदारी। जैसे,—मैं अपने ऊपर इतनी बड़ी जवाबदेही नहीं लेता।

जवाबसवाल—संज्ञा पुं० [अ० जवाब+सवाल] १ प्रश्नोत्तर। २ वाद विवाद।

जवाबी—वि० [अ० जवाब+फ़ा० ई (प्रत्य०)] जवाब संबंधी। जवाब का। जिसका जवाब देना हो। जैसे, जवाबी तार, जवाबी कार्ड।

जवार¹—संज्ञा पुं० [अ०] १ पड़ोस। २ आसपास का प्रदेश।

जवार²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ज्वार] एक अन्न। वि० दे० 'जुआर'।

जवार³—संज्ञा पुं०[अ० जवाल] १ अवनति। बुरे दिन। २ जंजाल। झंझट। भार।

जवार⁴—संज्ञा पुं० [हिं० जवाहर] दे० 'जवाहर'। उ०—सो सज्जन सूरे पूरे हैं। हीरे रतन जवार। तुलसी श०, पृ० २१०।

जवारा—संज्ञा पुं० [हिं० जौ] जौ के हरे हरे अंकुर जो दशहरे के दिन स्त्रियाँ अपने भाई के कानों पर खोंसती हैं या श्रावणी और विजया दशमी में ब्राह्मण अपने यजमानों के हाथों में देते हैं। जई।

जवारिश—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह हकीमी या यूनानी औषध जो अवलेह या चटनी जैसी होती है [को०]।

जवारिस (पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० जवारिश] दे० 'जवारिश'। उ०—सत जवारिस सो जन पीवै, जा को ज्ञान प्रगासा।—धरम०, पृ० ५।

जवारी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० जव] एक प्रकार का हार जिसमें जौ, छुहारे, मोती आदि मिलाकर गुँथे हुए होते हैं और जिसे कुछ जातियों में विवाह के उपरांत ससुर अपनी बहू को पहनाता है।

जवारी²—संज्ञा स्त्री० १. सितार, तंबूरे, सारंगी आदि तारवाले बाजों में लकड़ी या हड्डी आदि का छोटा टुकड़ा जो उन बाजों में नीचे की ओर बिना जुड़ा हुआ रहता है और जिसपर होकर सब तार खूँटियों की ओर जाते हैं। यह टुकड़ा सब तारों को बाजे के तल से कुछ ऊपर उठाए रहता है। घोड़ी। २ तारवाले बाजों में षड्ज का तार।

क्रि० प्र०—खोलना। —चढ़ाना। — बाँधना। —लगाना।

जवाल—संज्ञा पुं० [अ० जवाल] १ अवनति। उतार। घटाव।

क्रि० प्र०—आना। —पहुँचना।

(पु) २. जंजाल। आफत। झंझट। बखेड़ा। उ०—छाँड़ि के जवाल जाल महि तू गोपाल लाल तातें कहि दीनदयाल फंद क्यों फँसात है।—दीन० ग्र०, पृ० १७०।

मुहा०—जवाल में पड़ना या फँसना=आफत में फँसना। झंझट या बखेड़े में फँसना। जवाल में डालना=आफत मे फँसाना।

जवाशीर—संज्ञा पुं० [फा० जावशीर] एक प्रकार का गंधाबिरोजा।

विशेष—यह कुछ पीले रंग का और कुछ पतला होता है। इसमें से तारपीन की गंध आती है। इसका व्यवहार प्रायः औषधों में होता है। वि० दे० 'गंधाबिरोजा'।

जवास—संज्ञा पुं० [सं० यवासक प्रा०, यवासअ] एक कँटीला क्षुप जिसकी पत्तियाँ करौंदे की पत्तियों के समान होती हैं। उ०—अर्क जवास पात बिनु भएऊ। जस सुराज खल उद्यम गएऊ।—मानस, ४।१५।

विशेष—यह क्षुप नदियों के किनारे बलुई भूमि में आपसे आप उगता है। बरसात के दिनों मे इसकी पत्तियाँ गिर जाती हैं। वर्षा के बीत जाने पर यह फलता फूलता है। वैद्यक में इसको कड़आ, कसैला, हलका और कफ, रक्त, पित्त, खाँसी, तृष्णा तथा ज्वर का नाशक और रक्तशोधक माना गया है। कहीं कहीं गरमी के दिनों में खस की तरह इसकी टट्टियाँ भी लगाते हैं।

पर्या०—यास। यवासक। अनंता। बालपत्र। अधिककंटक। दूरमूल। समुपात। दीर्घमूल। मरुद्भव। कटकी। वनदर्भ। सूक्ष्मपत्रा।

जवासा—संज्ञा पुं० [सं० यवासक, प्रा० जवासअ] दे० 'जवास'।

जवाही—संज्ञा पुं० [?] [वि० जवाही] १ आँख का एक रोग जिसमें पलक के भीतर की ओर किनारे पर बाल जम जाते हैं। प्रवाल। परवाल। २ बैलों की आँख का एक रोग जिसमें उनकी आँख के नीचे मांस बढ़ आता है।

जवाहद—संज्ञा स्त्री० [हिं० जवा (=दाना)+हद] बहुत छोटी हद।

जवाहर—संज्ञा पुं० [अ०] रत्न । मणि ।

जवाहरखाना—संज्ञा पुं० [अ० जवाहर+फा० खानह्] वह स्थान जिसमें बहुत से रत्न और आभूषण आदि रहते हों। रत्नकोष । तोशाखाना ।

जवाहरात—संज्ञा पुं० [अ०, जवाहर का बहुवचन रूप] बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि । जैसे,—अब उन्होंने कपड़े का काम छोड़कर जवाहरात का काम शुरू किया है ।

जवाहिर—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जवाहर' । उ०—जटिल जवाहिर आभरन छवि के उठत तरंग । लपट गहत कर लपट सी लपट लगी सब संग ।—स० सप्तक, पृ० ३७३ ।

यौ०—जवाहिरखाना = दे० 'जवाहरखाना' ।

जवाहिरात—संज्ञा पुं० [अ०] जवाहिर का बहुवचन । दे० 'जवाहरात' ।

जवाही—वि० [हिं० जवाह] १. जिसकी आँख में जवाह रोग हुआ हो । २. जवाह रोग युक्त । जैसे, जवाही आँख ।

जविन—वि० [सं०] वेगवान । गतिशील [को०] ।

जवी[1]—वि० [सं० जविन्] वेगयुक्त । वेगवान् ।

जवी[2]—संज्ञा पुं० १ घोड़ा । ऊँट ।

जवीय—वि० [सं० जवीयस्] अत्यंत वेगवान् । बहुत तेज ।

जवैया†—वि० [हिं० जाना+ऐया (प्रत्य०)] जानेवाला । गमनशील ।

जशन—संज्ञा पुं० [फा० जश्न, मि० सं० यजन] १. धार्मिक उत्सव । २ किसी प्रकार का उत्सव । नाचगान । जलसा । ३ आनंद । हर्ष ।

क्रि० प्र०—करना । मनाना । होना ।

४. वह नाच और गाना जिसमे कई वेश्याएँ एक साथ संमिलित हों । यह बहुधा महफिल या जलसे की समाप्ति पर होता है । उ०—क्यों भाई अब आज जशन होगा न ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२५ ।

जश्न—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'जशन' । उ०—एक जश्न सा वहाँ जमेगा, मदिराओं के दौर चलेंगे । सेठ हमारे चुने गए हैं, अबकी कौंसिल के मेंबर । —मानव, पृ० ६८ ।

जस(पु)‡[1]—क्रि० वि० [सं० यादृश>जइस>जस, प्रा० जहा] जैसा । उ०—जस जस सुरसा बदन बढ़ावा । तासु दुगुन कपि रूप देखावा । —तुलसी (शब्द०) ।

जस(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० यश] दे० 'यश' ।

जसद—संज्ञा पुं० [सं०] जस्ता ।

जसवान(पु)—वि० [सं० यशस्वान्] यशस्वी । जिसका यश चारों ओर फैला हो । उ०—चढ़े सूर सावंत सब, रूपवान जसवान । —हम्मीर०, पृ० ५० ।

जसामत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ लंबाई, चौड़ाई और मोटाई, गहराई या ऊँचाई । २ मोटापा । स्थूलता [को०] ।

जसारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. शूरता । बहादुरी । २. धृष्टता । [को०] ।

जसी—वि० [सं० यशी] कीर्तिवाला । यशवाला । यशस्वी । उ०—जाति की जान देख जोखों में, जो जसी लोग जान पर खेलें । —चुभते०, पृ० ७ ।

जसीम—वि० [अ०] मोटा । स्थूल । पीवर । पीन [को०] ।

जसु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यशोदा] नंद की पत्नी । यशोदा । उ०—थोरोई दूध पूत के हितही । राखति जसु जमाइ नित नित ही । —नंद० ग्रं०, पृ० २४८ ।

जसुरि—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

जसुदा, जसोदा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० यशोदा ।

जसूँद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

विशेष—इस वृक्ष के रेशों से रस्से आदि बनते हैं । इसकी लकड़ी मुलायम होती है और मेज कुर्सी आदि बनाने के काम मे आती है । इसे नताउल भी कहते हैं । वि० दे० 'नताउल' ।

जसोमति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'यशोदा' ।

जसोवा, जसोवै(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'यशोदा' । उ०—सो तुम मातु जसोवै, मोहि न जानहु बार । जहँ राजा बलि बाँधा छोरी पैठि पतार ।—जायसी (शब्द०) ।

जस्टिफाई—संज्ञा पुं० [अ० जस्टिफाई] कंपोज किए हुए मैटर को इस सहूलियत से बैठाना या कसना कि कोई लाइन या पंक्ति छोटी बड़ी या कोई अक्षर इधर उधर न होने पाए । जैसे,—इस पेज का जस्टिफाई ठीक नहीं हुआ है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जस्टिस[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] न्याय । इन्साफ [को०] ।

जस्टिस[2]—संज्ञा पुं० वह जो न्याय करने के लिये नियुक्त हो । न्यायमूर्ति । विचारपति । न्यायाधीश । जैसे—जस्टिस सुंदरलाल ।

विशेष—हिंदुस्तान में हाईकोर्ट के जज जस्टिस कहलाते हैं ।

जस्टिस आफ दि पीस—संज्ञा पुं० [अ०][संक्षिप्त रूप 'जे० पी०'] स्थानीय छोटे मैजिस्ट्रेट जो शांतिरक्षा, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते हैं । शांतिरक्षक । जैसे, आनरेरी मजिस्ट्रेट ।

विशेष—बंबई में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं । इन्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट ही समझना चाहिए । जज, मजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं । अपने महल्ले या आस पास दंगा फसाद होने पर वे जस्टिस आफ दि पीस या शांतिरक्षक की हैसियत से शांतिरक्षा की व्यवस्था करते हैं ।

जस्त—संज्ञा पुं० [सं० जसद] दे० 'जस्ता' ।

जस्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] छलाँग । कुलाँच । जैसे,—शिकार का आहट पाते ही वह जस्त मारने को तैयार हो जाती ।—सन्यासी, पृ० ५० ।

जस्तई—वि० [हिं० जस्ता] जस्ते के रंग का । खाकी ।

जस्ता—संज्ञा पुं० [सं० जसद] कालापन लिए सफेद या खाकी रंग की एक धातु ।

विशेष—इस धातु में गंधक का अंश बहुत होता है । इसका

व्यवहार अनेक प्रकार के कार्यों में, विशेषत: लोहे की चादरों पर, उन्हें मोरचे से बचाने के लिये कलई करने, बैटरी में बिजली उत्पन्न करने तथा बरतन बनाने आदि में होता है। भारत में इसकी सुराहियाँ बनती हैं जिनमें रखने से पानी बहुत जल्दी और खूब ठंढा हो जाता है। इसे ताँबे में मिलाने से पीतल बनता है। जर्मन सिलवर बनाने में भी इसका उपयोग होता है। विशेष रासायनिक प्रक्रिया से इसका क्षार भी बनाया जाता है, जिसे 'सफेदा' कहते हैं और जिसका व्यवहार औषधों तथा रंगों में होता है। पहले यह धातु भारत और चीन में ही मिलती थी पर बाद में बेलजियम तथा प्रूशिया में भी इसकी बहुत सी खानें मिलीं। यूरोपवालों को इसका पता बहुत हाल में लगा है।

जहंदमⓅ†—[अ० जहन्नम, हिं० जहन्नुम] दे० 'जहन्नुम'। उ०—जगत जहंदम राचिया, झूठे कुल की लाज। तन बिनसैं कुल बिनसिहै, गह्यो न राम जिहाज। —कबीर ग्रं०, पृ० ४७।

जहँⓅ†—क्रि० वि० [सं० यत्र, प्रा० जत्थ, अप० जहँ] दे० 'जहाँ'। उ०—अगम गयौ गिरि निकट विकट उद्यान भयंकर। जहँ न सबरि दिसि बिदसि बहुत जहँ जीव खयंकर।—पृ० रा०, ६।६४।

यौ०—जहँ जहँ = जहाँ जहाँ। जिस जिस जगह। उ०—जहँ जहँ चरण पड़े संतन के तहँ तहँ बंटाधार।—कहावत (शब्द०)। जहँ तहँ = जहाँ तहाँ। यत्र तत्र। उ०—जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा।—मानस, २।१९८।

जहँगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जहाँगीरी] कलाई का एक आभूषण। वि० दे० 'जहाँगीरी'।

जहँड़ना†—क्रि० अ० [सं० जहन, हिं० जहँड़ाना] १ घाटा उठाना। हानि उठाना। उ०—हिंदू गूँगा गुरु कहै, मुसलिम गोयमगोय। कहैं कबीर जहँड़े दोऊ, मोह नींद में सोय।—कबीर० (शब्द०)। २ धोखे में आना। भ्रम में पड़ना। उ०—अब हम जाना हो हार बाजी को खेल। डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो लेत सकेल। हरि बाजी सुर नर मुनि जहँड़े माया चेटक लाया। घर में डारि सबन भरमाया हृदया ज्ञान न आया।—कबीर (शब्द०)।

जहँडाना†—क्रि० अ० [सं० जहन] १ हानि उठाना। २ धोखे में पड़ना। उ०—सबै लोग जहँडा दयी अंधा सबै भुलान। कहा कोई नहिं मानहि सब एकै माहँ समान।—कबीर (शब्द०)।

जहक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झकना] १ कुढ़न। चिढ़। खीझ। २ आवेश। उत्तेजना।

जहक[2]—वि० [सं०] छोड़ने या त्याग करनेवाला। (को०)।

जहक[3]—संज्ञा पुं० १ समय। २ बालक। शिशु। ३ साँप की केंचुल (को०)।

जहकना[1]—क्रि० अ० [हिं० चहकना] १. मस्त होना। प्रसन्न होना। आनंद से सराबोर होना। उ०—आजु कुंज मंदिर में छके रंग दोऊ बैठे, केलि करैं लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि। —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १५०। २ उन्मत्त होना। प्रमत्त होना। उ०—जहकन लागीं कूर कोइलैं अमंद चंद लखि चहूँ ओर सो चकोर लागे जहकन। —प्रेमघन०, भा० १, पृ० २२८।

जहकना†[2]—क्रि० स० [हिं० झकना] १. चिढ़ना। कुढ़ना।

जहका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जंतु। कटास। कटार (को०)।

जहतिया†—संज्ञा पुं० [हिं० जगात (= कर)] जगात उगाहनेवाला। भूमिकर या लगान वसूल करनेवाला। उ०—साँचो सो लिखवार कहावै। काया ग्राम मसाहत करिकै जमा बाँधि ठहरावै। मन्मथ करै कैद अपनी में जान जहतिया लावै। माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध को फोता भजन भरावै।—सूर (शब्द०)।

जहत्स्वार्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें पद या वाक्य अपने वाच्यार्थ को छोड़कर अभिप्रेत अर्थ को प्रकट करता है। जैसे, 'मम घर गंगा माहिं' यहाँ 'गंगा माहिं' से 'गंगा के बीच' अर्थ नहीं है, किंतु 'गंगा के किनारे' अर्थ है। इसे जहल्लक्षणा भी कहते हैं।

जहदजहल्लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें एक या एक से अधिक देश का त्याग और केवल एक देश का ग्रहण किया जाय। वह लक्षणा जिसमें बोलनेवाले को शब्द के वाच्यार्थ से निकलनेवाले कई एक भावों में से कुछ का परित्याग कर केवल किसी एक का ग्रहण अभिप्रेत होता है। जैसे, यह वही देवदत्त है, इस वाक्य से बोलनेवाले का अभिप्राय केवल देवदत्त से है, न कि पहले के देवदत्त से या अब के देवदत्त से। इसी प्रकार छांदोग्य उपनिषद् में आए हुए 'तत्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् 'हे श्वेतकेतु! वह तू ही है', आया है। इस वाक्य से कहनेवाले का अभिप्राय ब्रह्म के सर्वज्ञत्व और श्वेतकेतु के अल्पज्ञत्व या ब्रह्म की सर्वव्यापिता और श्वेतकेतु की एकदेशिता को एक ठहराने का नहीं है किंतु दोनों की चेतनता ही की ओर लक्ष्य है।

जहदना—क्रि० अ० [हिं० जहदा] १. कीचड़ होना। दलदल हो जाना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठाना।

२ शिथिल पड़ना। थक जाना। हाँफ जाना।

जहदा†—संज्ञा पुं० [?] दलदल। बहुत अधिक कीचड़। उ०—जग जहदा मे राचिया झूठे कुल की लाज। तन दीजे कुल बिनसिहै रटै न नाम जहाज। —कबीर (शब्द०)।

जहंदमⓅ†—संज्ञा पुं० [अ० जहन्नुम] दे० 'जहन्नुम'।

जहन—पुं० [फा० जेहन, जेह्न] समझ। दिमाग। बुद्धि। धारणा। उ०—बादल नीचे हो और इनसान ऊँचे पर यह बात उनके जहन में नहीं आती थी।—सैर कु०, पृ० १२।

जहनाⓅ—क्रि० स० [सं० जहन] १ त्यागना। छोड़ना। परित्याग करना। २ नाश करना। नष्ट करना। उ०—जहि पर दोष धरत भो कैसे। फिरिहै अघ उलूक सुभगै से। (शब्द०)।

जहन्नम—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जहन्नुम'।

जहन्नुम—संज्ञा पुं० [अ०] १. नरक। दोजख।

मुहा०—जहन्नुम में जाना (१) नष्ट या बर्बाद होना, (२) आँखों से दूर होना। जहन्नुम में जाय। हमें कोई सबब नहीं।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग दु:खजनित उदासीनता प्रकट करने के लिये होता है। जैसे,—अब यह मानता ही नहीं, तब जहन्नुम में जाय।

२. वह स्थान जहाँ बहुत दु:ख और कष्ट हो।

जहन्नुमरसीद— वि० [फ़ा०] नरक में गया हुआ। दोजखी।

मुहा०—जहन्नुमरसीद करना = नष्ट करना। नामनिशान मिटा देना। जहन्नुमरसीद होना = नष्ट या बरबाद होना।

जहन्नुमी—वि० [फ़ा०] जहन्नुम में जानेवाला। नारकिक। नरकगामी।

जहमत—संज्ञा स्त्री० [अ० जहमत] १ आपत्ति। मुसीबत। आफत।

मुहा०—जहमत उठाना = दु:ख भोगना। मुसीबत सहना।

२. झंझट। बखेड़ा। खरखशा।

मुहा०—जहमत में पड़ना = झंझट में फँसना। बखेड़े में पड़ना।

जहर[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जह्र] १ वह पदार्थ जो शरीर के अंदर पहुँचकर प्राण ले ले अथवा किसी अंग मे पहुँचकर उसे रोगी कर दे। विष। गरल।

यौ०—जहरदार। जहरबाद। जहरमोहरा।

मुहा०—जहर उगलना = (१) मर्मभेदी बात कहना जिससे कोई बहुत दु:खी हो। (२) द्वेषपूर्ण बात कहना। जली कटी कहना। जहर करना या कर देना = बहुत अधिक नमक मिर्च आदि डालकर किसी खाद्यपदार्थ को इतना कड़ुआ कर देना कि उसका खाना कठिन हो। जाय जहर का घूँट = बहुत कड़ुआ। बेसवाद या कड़ुआ होने के कारण न खाने योग्य। जहर का घूँट पीना = किसी अनुचित बात को देखकर क्रोध को मन ही मन दबा रखना। क्रोध को प्रगट न होने देना। जहर का बुझाया हुआ = जो बहुत अधिक उपद्रव या अनिष्ट कर सकता हो। जहर की गाँठ = विष की गाँठ। किसी पर जहर खाना = किसी बात या आदमी के कारण ग्लानि, ईर्ष्या, लज्जा आदि से आत्महत्या पर उतारू होना। जैसे,—अपने इस काम पर तो उन्हें जहर खा लेना चाहिए। जहर देना = जहर खिलाना या पिलाना। जहर मार करना = अनिच्छा या अरुचि होने पर भी जबरदस्ती खाना। जैसे,—कचहरी जाने की जल्दी थी; किसी तरह दो रोटियाँ जहर मार करके चलते हो। जहर मारना = विष के प्रभाव या शक्ति को हटाना या शांत करना। जहर में बुझाना = तीर, छुरी, तलवार, कटार आदि हथियारों को विषाक्त करना।

विशेष—ऐसे हथियारों से जब वार किया जाता है, तब उसके साथ ही घायल मनुष्य के शरीर में उनका विष प्रविष्ट हो जाता है जिसके प्रभाव से आदमी बहुत जल्दी मर जाता है।

२. अप्रिय बात या काम। वह बात या काम जो बहुत नागवार मालूम हो। जैसे,—हमारा यहाँ आना उन्हें जहर मालूम हुआ।

मुहा०—जहर करना या कर देना = बहुत अधिक अप्रिय या असह्य कर देना। बहुत नागवार बना देना। जैसे,—उन्होंने हमारा खाना पीना जहर कर दिया। जहर मिलाना = किसी बात को अप्रिय कर देना। जहर में बुझाना = किसी बात या काम को अप्रिय बनाना। जैसे,— आप जो बात कहते हैं, जहर मे बुझाकर कहते हैं। जहर लगना = बहुत अप्रिय जान पड़ना। बहुत नागवार मालूम होना।

जहर[2]—वि० घातक। मार डालनेवाला। प्राण लेनेवाला।

२ बहुत अधिक हानि पहुँचाने वाला। जैसे,— ज्वर के रोगी के लिये घी जहर है।

जहर[3] ㉤— संज्ञा पुं० [हिं० जौहर] दे० 'जौहर'। उ०—ग्यारह पुत्र कढाइ चारहे अजय बचायो। साजि जहर व्रत नारि धर्म धर्म कुल रखायो।—राधाकृष्ण दास (शब्द०)।

यौ०—जहर व्रत = जौहर का व्रत। जौहर का कार्य रूप में परिणयन।

जहरगत— संज्ञा स्त्री० [हिं० जहर + गति] नाच की एक गत जिसमे घूँघट काढ़कर नाचा जाता है।

जहरदार— वि० [फ़ा० जहरदार] जहरीला। विषाक्त।

जहरबाद— संज्ञा पुं० [फ़ा० जहरबाद] रक्त के विकार के कारण उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का बहुत भयंकर और विषाक्त फोड़ा।

विशेष—इस फोड़े के आरंभ में शरीर के किसी अंग में सूजन और जलन होती है और तदुपरांत उस अंग मे फोड़ा होकर बढ़ने लगता है। इसका विष शरीर के भीतर ही भीतर शीघ्रता से फैलने लगता है और फोड़ा बड़ी कठिनता से अच्छा होता है। यह रोग मनुष्यों आदि को भी होता है। कहते हैं, इस फोड़े के अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता।

जहरमोहरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जहरमोहरह्] १ काले रंग का एक प्रकार का पत्थर जिसमें साँप काटने के कारण शरीर में चढ़े विष को खींच लेने की शक्ति होती है।

विशेष—यह पत्थर शरीर मे उस स्थान पर रखा जाता है जहाँ साँप ने काटा हो। कहते हैं, यह पत्थर उस स्थान पर आपसे आप चिपक जाता है, और जबतक सारा विष नहीं खींच लेता, तबतक वहाँ से नही छूटता। यह भी प्रवाद है कि यह पत्थर बड़े मेढक के सिर मे से निकलता है।

२. हरे रंग का एक प्रकार का पत्थर जो कई तरह के विषो को खींच लेता है।

विशेष—यह बहुत ठंढा होता है, इसलिये गरमी के दिनो मे लोग इसे घिसकर शरबत में मिलाकर पीते हैं। खुतन देश का यह पत्थर, जिसे 'जहरमोहरा खताई' कहते हैं, बहुत अच्छा होता है।

जहरी—वि० [हिं० जहर + ई (प्रत्य०)] १. जहरवाला। विषाक्त। उ०—कुछ चाशनीमयी, कुछ कुछ जहरी, कुछ झिल-

मिलती, कुछ कुछ गहरी, वह आती ज्यों नमगंधार मेरी वीणा में एक तार। —वनासि, पृ० ७४। २. अत्यधिक मादक या नशीली वस्तु पीनेवाला। ३ कसर रखनेवाला। डाही। ईर्ष्यालु।

जहरीला—वि० [हिं० जहर+ईला (प्रत्य०)] जिसके जहर हो। जहरदार। विषाक्त। जैसे, जहरीला फल, जहरीला जानवर।

जहल[1]—संज्ञा पुं० [अ० जह्ल] नासमझी। मूर्खता। बुद्धिहीनता। उ०—गैर उसकी हुकम सूँ करना अमल। नफा नईं नुकसान है जानो जहल। —दक्खिनी०, पृ० १९२।

जहल[2]—संज्ञा पुं० [अं० जेल] कारागार। बंदीगृह।

यौ०—जहलखाना = जेहलखाना। बंदीगृह। उ०—फेरे जहलखाना रे हरी। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५६।

जहल्लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जहत्स्वार्था'।

जहवाँ†—क्रि० वि० [सं० यत्र] दे० 'जहाँ[1]'।

जहाँ—क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ, प्रा० जह] १. स्थानसूचक एक शब्द। जिस स्थान पर। जिस जगह। उ०—धन्य सो देस जहाँ सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी। —तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—जहाँ का तहाँ = अपने पहले के स्थान पर। जिस जगह पर हो, उसी जगह पर। जहाँ का तहाँ रह जाना = (१) दब जाना। आगे न बढ़ना। (२) कुछ कारवाई न होना। जहाँ तहाँ = इतस्तत। इधर उधर। उ०—जहँ तहँ गई सकल तब सीता कर मन सोच। मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच। —तुलसी (शब्द०)।

२. सब जगह। सब स्थानों पर। उ०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग। जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृश तनु राम वियोग। —तुलसी (शब्द०)।

जहाँ[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जहान। संसार। लोक।

विशेष—इस रूप में इस शब्द का व्यवहार केवल कविता या यौगिक शब्दों में होता है। जैसे,— (क) जहाँ में जहाँ तक जगह पाइए। इमारत बनाते चले जाइए। (ख) जहाँगीरी। जहाँपनाह।

यौ०—जहाँआरा। जहाँगर्द = संसार में घूमनेवाला। घुमक्कड़। जहाँगर्दी = विश्वभ्रमण। संसारपर्यटन। जहाँगीर = विश्वविजयी। विश्व का शासक। जहाँदीद। जहाँदीदा। जहाँगीरी। जहाँपनाह।

जहाँआरा—वि० [फ़ा०] संसार को शोभित करनेवाला (को०)।

जहाँगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मुगल सम्राट् अकबर का पुत्र।

जहाँगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. हाथ में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है। साधारणत हाथ में पहनने की सोने की वे पटरियाँ जहाँगीरी कहलाती हैं, जिनपर नग जड़े होते हैं। कहीं कहीं पटरियों में कोढ़े भी जड़े होते हैं जिनमें बहुत छोटे छोटे घुँघुरुओं के फूल के आकार के झुब्बे पिरो दिए जाते हैं। इन पटरियों को भी जहाँगीरी कहते हैं।

२ हाथ में पहनने की लाख की एक प्रकार की चूड़ी।

जहाँदीद—वि० [फ़ा०] जिसने दुनियाँ को देखकर बहुत कुछ तजरबा किया हो। अनुभवी।

जहाँदीदा—वि० [फ़ा० जहाँदीदह्] दे० 'जहाँदीद'।

जहाँपनाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार का रक्षक।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल बहुत बड़े राजा के लिये ही किया जाता है।

जहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

जहाज—संज्ञा पुं० [अ० जहाज़] बहुत अधिक बड़ी नाव जो बहुत गहरे जल विशेषत समुद्र में चलती है। पोत।

विशेष—आजकल के जहाजों का अधिकांश भाग लोहे का ही होता है और उनके चलाने के लिये भाप के बड़े बड़े इंजिनों से काम लिया जाता है। यात्रियों को ले जाने, माल ढोने, देशों की रक्षा करने, लड़ने भिड़ने आदि कामों के लिये साधारण जहाजों की लंबाई छह सौ फुट तक होती है।

यौ०—जहाज का कौवा या कागा। जहाज का पंछी = दे०; जहाजी कौआ। उ०—(क) सीतापति रघुनाथ जू तुम लग मेरी दौर। जैसे काग जहाज को सूझत और न ठौर। —तुलसी (शब्द०)। (ख) मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै। जैसे उड़ि जहाज को पछी फिरि जहाज पै आवै।—सूर० १। १६७८।

जहाजरान—संज्ञा पुं० [फ़ा० जहाज़ + फ़ा० रां (प्रत्य०)] जहाज चलानेवाला। पोत का चालक (को०)।

जहाजरानी—संज्ञा स्त्री० [अ० जहाज + फ़ा० रानी (प्रत्य०)] जहाज चलाने का कार्य या पेशा। जहाज चलाना।

जहाजी—वि० [अ० जहाज + फ़ा० ई (प्रत्य०)] जहाज से संबंध रखनेवाला। जैसे, जहाजी बेड़ा।

यौ०—जहाजी इत्र = एक प्रकार का निकृष्ट इत्र जो कन्नौज में बनता है। जहाजी कौआ = (१) वह कौआ या कोई पक्षी जो किसी जहाज के छूटने के समय उस पर बैठ जाता है और जहाज के बहुत दूर समुद्र में निकल जाने पर जब वह उड़ता है, तब चारो ओर कहीं स्थल न देखकर फिर उसी जहाज पर आ बैठता है। साधारणत इससे ऐसे मनुष्य का अभिप्राय लिया जाता है जिसे अपने ठहरने या कोई काम करने के लिये एक के सिवा और कोई दूसरा स्थान न मिलता हो। (२) बहुत बड़ा धूर्त। भारी चालाक। जहाजी डाकू = वे डाकू जो समुद्रों में अपना जहाज लेकर घूमते रहते हैं और साधारण जहाजों के यात्रियों को लूट लेते हैं। समुद्री डाकू। जहाजी सुपारी = एक प्रकार की सुपारी जो साधारण सुपारी से लगभग दूनी बड़ी होती है।

जहान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार। लोक। जगत्। जैसे,—जान है तो जहान है (कहावत)।

विशेष—कविता और यौगिक शब्दों में इस शब्द का रूप 'जहाँ' हो जाता है। वि० दे० 'जहाँ' (२)।

जहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय ।

जहालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] अज्ञान । मूर्खता । मूढ़ता ।

जहिया(पु)†—क्रि० वि० [सं० यद+हिया] जिस समय । जिस दिन । जब । उ०—(क) कह कबीर कुछ अछलो न जहिया । हरि बिरवा प्रतिपालेसि तहिया ।—कबीर (शब्द०) । (ख) मुसमल विश्व जितब तुम जहिया । धरिहै विष्णु मनुज तनु तहिया ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जहिया तहिया = जिस किसी समय ।

जहाँ(पु)—क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ] १. जहाँ ही । जिस स्थान पर । उ०—सत खंड सात ही तरंगिनी वहै जहीं । सोहं रूप ईश को अशेष जंतु सेवहीं ।—केशव (शब्द०) ।

यौ०—जहीं जहीं तहीं तहीं । उ०—जहीं जहीं विराम लेत राम जू तहीं तहीं अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सो बढ़े ।—केशव (शब्द०) ।

२ ज्यों ही । उ०—सीय जहीं पहिराई । रामहि माल सुहाई । दुंदुभि देव बजाए । फूल तहीं बरसाए ।—केशव (शब्द०) ।

जहीन—वि० [अ० जहीन] १. बुद्धिमान् । समझदार । २. धारणा शक्तिवाला । मेधावी ।

जहु—संज्ञा पुं० [सं०] संतान । संतति । औलाद ।

जहूर—संज्ञा पुं० [अ० जहूर या जुहूर] प्रकाश । दीप्ति । उ०—जदपि रहो है भावतो सकल जगत भरपूर । बल जैये वा ठौर की जहँ ह्वै करै जहूर ।—स० सप्तक, पृ० १७८ ।

मुहा०—जहूर में आना = प्रकट होना । जहूर में लाना = प्रकट करना ।

जहूरा(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० जहूर या जुहूर] १. देखावा । दृश्य । उ०—ये सब यार प्यार लख पूरा । रूप न रेख जहूरा । २ ठाठ । ३ लड़का ।—(बाजारू) ।

जहेज—संज्ञा पुं० [अ० जहेज मि० सं० दायज] वह धन संपत्ति जो कन्या के विवाह में पिता की ओर से वर को अथवा उसके घरवालों को दी जाती है । दहेज ।

जह्नु—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. एक राजर्षि का नाम ।

विशेष—(१) पुराणों के अनुसार जब भगीरथ गंगा को लेकर आ रहे थे, तब जह्नु ऋषि मार्ग में यज्ञ कर रहे थे । गंगा के कारण यज्ञ में विघ्न होने के भय से इन्होंने उनको पी लिया था । भगीरथ जी के बहुत प्रार्थना करने पर इन्होंने फिर गंगा को कान से निकाल दिया था । तभी से गंगा का नाम जह्नुसुता, जाह्नवी आदि पड़ा । (२) इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्रीवाचक शब्द लगाने से गंगा का अर्थ होता है ।

यौ०—जह्नुजा । जह्नुकन्या । जह्नुतनया । जह्नुसप्तमी । जह्नुसुता ।

जह्नुकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जह्नुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा । उ०—जो पृथ्वी के विपुल सुख की माधुरी है विपाशा । प्राणी सेवा जनित सुख की प्राप्ति तो जह्नुजा है ।—प्रिय०, पृ० २४४ ।

जह्नुतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जह्नुसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ला सप्तमी । कहते हैं, इसी दिन जह्नु ने गंगा को पान किया था । गंगासप्तमी ।

जह्नुसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जह्र—संज्ञा पुं० [अ० ज़ह्र] विष । जहर [को०] ।

जांगल¹—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गल] १. तीतर । २ मांस । ३ वह देश जहाँ जल बहुत कम बरसता हो, धूप और गरमी अधिक पड़ती हो, हरे वृक्षों या घास आदि का अभाव हो, करील मदार, बेल और शमी आदि के पेड़ हों और बारहसिंघे तथा हिरन आदि पशु रहते हों । ४. ऐसे प्रदेश में पाए जानेवाले हिरन और बारहसिंघे आदि जंतु जिनका मांस मधुर, रूखा, हलका, दीपन, रुचिकारक, शीतल और प्रमेह, कंठमाला तथा श्लीपद आदि रोगों का नाशक कहा गया है ।

जांगल²—वि० जंगल संबंधी । जंगली ।

जांगलि—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गलि] १. सँपेरा । साँप पकड़नेवाला । मदारी । २. विषवैद्य । साँप का जहर उतारनेवाला ।

जांगलिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गलिक] दे० 'जांगलि' ।

जांगली—संज्ञा स्त्री० [सं० जाङ्गली] कौंछ । केंवाच ।

जांगलू—वि० [फा० जंगल] गँवार । जंगली । उजड्ड ।

जांगी—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंग ?] नगाड़ा ।—(डिं०) ।

जांगुल—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुल] १. तोरई । तरोई । २ विष । ३. दे० 'जगुल' ।

जांगुलि—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुलि] साँप पकड़नेवाला । गारुड़ो । सँपेरा ।

जांगुलिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुलिक] दे० 'जांगुलि' ।

जांगुली—संज्ञा स्त्री० [सं० जाङ्गुली] साँप का विष उतारने की विद्या ।

जांघिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्घिक] १ उष्ट्र । ऊँट । २. एक प्रकार का मृग जिसे शिकारी भी कहते हैं । ३. वह जिसकी जीविका बहुत दौड़ने आदि से ही चलती है । जैसे, हरकारा ।

जांतव—वि० [सं० जान्तव] जंतु संबंधी । जंतुजन्य ।

जांब(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बव] जामुन का फल या वृक्ष ।

जांबवंत—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवत्>जाम्बवन्त] दे० 'जांबवान्' । उ०—(क) महाधीर गंभीर वचन सुनि जांबवंत समझाए । बढ़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूषण सिया दिखाए ।—सूर (शब्द०) । (ख) जांबवंत सुतासुत कहाँ मम सुता बुद्धि वंत पुरुष यह सब सँभारै ।—सूर (शब्द०) ।

जांबव—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बव] १ जामुन का फल । जंबू फल । २. जामुन के फल से बनी हुई शराब । जामुन का बना मद्य । ३. जामुन का सिरका । ४. सोना । स्वर्ण ।

जांबवक—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवक] दे० 'जांबव' ।

जांबवत्—संज्ञा पुं० [पुं० जाम्बव] दे० 'जांबवान्' ।

जांबवती—संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवती] १. जाम्बवान् की कन्या जिसके साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था । उ०—(क)

जाबवती भरपी कन्या भरि मणि राखी समुहाय। करि हरि ध्यान गए हरिपुर को जहाँ योगेश्वर जाय। —सूर (शब्द०)। (ख) रिच्छराज यह मनि तासों लै जाबवती कौं दीन्हीं। जब प्रसेन को बिलँब भई तब सत्राजित सुध लीन्हीं। —सूर०, १०। ४१६०।

विशेष—भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण जब स्यमतक मणि की खोज में जगल में गए थे, तब वहीं उन्होंने जांबवान् को परास्त करके वह मणि पाई थी और उसकी कन्या जाबवती से विवाह किया था।

२. नागदमनी। नागदौन।

जांबवान्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] सुग्रीव के मत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है।

विशेष—इनके विषय मे यह प्रसिद्ध है कि यह रीछ थे। रावण के साथ युद्ध करने मे त्रेता युग मे इन्होने रामचद्र को बहुत सहायता दी थी। भागवत में लिखा है कि द्वापर युग मे इसी की कन्या जाबवती के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था। यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इन्होने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी। इस कथा का उल्लेख रामचरितमानस (किष्किंधा कांड, दोहा २८) मे भी है, यथा—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाय। उभय घरी महँ दीन्ही सात प्रदच्छिन धाय।

जांबवि—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवि] वज्र।

जांबवी—संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवी] १ जांबवान् की पुत्री। जाबवती। २ नागदमनी।

जांबवोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवोष्ठ] जाबोवष्ठ नामक छोटा अस्त्र जिससे प्राचीन काल मे फोडे आदि जलाए जाते थे।

जांबीर—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बीर] जबीरी नीबू। जँभीरी नीबू।

जांबील—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बील] १ पैर के घुटनेवाली गोल हड्डी। २ जबीरी नीबू (को०)।

जांबुक—वि० [सं० जाम्बुक] जबुक सबधी। शृगाल संबधी (को०)।

जांबुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुमालिन्] प्रहस्त नामक राक्षस के पुत्र का नाम जिसे अशोक वाटिका उजाडते समय हनुमान ने मार डाला था।

जांबुवत्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवत्] दे० 'जाबवान्'।

जांबुवान—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवान्] दे०'जाबवान्'।

जाबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] दे० 'जबू' (द्वीप)। उ०—जाबू और पलाक्ष है शाल्मली कुश चारि। क्रौंच सकला द्वीप षट पुष्कर सात विचारि —(शब्द०)।

जाबूनद—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बूनद] १ धतूरा। २ सोना। ३ स्वर्णाभूषण (को०)।

जांबोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बोष्ठ] प्राचीन काल का एक प्रकार का छोटा अस्त्र जिससे फोडे आदि जलाए जाते थे।

जाँ[1]—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं० जा] दे० 'जा'[1]।

जाँ[2]—संज्ञा स्त्री० [फा०] प्राण। जान।

जाँ[3]—वि० [फा० जा] दे० 'जा'[4]।

जाँउनि‡(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० जामुन] दे० 'जामुन'।

जाँग[1]—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों की एक जाति। उ०—जरदा, जिरहो, जांग, सुरंगी, ऊदे खंजन। कार रकवाहे कवल गिलमिली गुलगुल रजन। —सूदन (शब्द)।

जाँग[2]—संज्ञा स्त्री० [हि० जांघ] दे० 'जांघ'।

जाँगड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] राजाओं का यश गानेवाला। भाट। बदी।

जाँगड़िया—संज्ञा, पुं० [देश०] दे० 'जांगडा'। उ०—(क) जांगड़िया दूहा दिऐ सिधू राग मल्हार। —बाँकी० ग्रं०, भा० २, पु० ६६। (ख) कुण पूछे ढोलाकणो जांगड़िया नूं जाब। —बाँकी० ग्र०, भा०२, पृ०१०।

जाँगर[1]—संज्ञा पुं० [हि० जान या जांघ>जांग+फ़ा० गर (प्रत्य०)] १ शरीर। देह। २ हाथ पैर। ३ पौरुष। बल। शक्ति।

यौ०—जांगरचोर=जो काम करने से जी चुराता हो। आलसी। ढीलहराम। जांगरतोड=मेहनत करनेवाला। मेहनती। जैसे, जांगरतोड आदमी, जाँगरतोड़ काम।

मुहा०—जाँगर टूटना, जाँगर थकना=शरीर शिथिल होना। पौरुष या श्रमशक्ति का जवाब देना।

जाँगर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] खाली डंठल जिसमें से अन्न झाड़ लिया गया हो। उ०—तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौंज संपदा सकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो। —तुलसी (शब्द०)।

जाँगरा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जागड़ा'। उ०—करैं जाँगरे आलाप बिरद कलाप भूप प्रताप। अतिशय मिजाजी चढ़े बाजी करत अरि उर ताप—रघुराज (शब्द०)।

जाँगलू—वि० [हि० जंगल] दे० 'जागलू'।

जाँगी—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंग] नगाड़ा। —(डिं०)।

जाँघ—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घ (=पिंडली)] घुटने और कमर के बीच का अंग। ऊरु।

जाँघा‡—संज्ञा पुं० [देश०] १. ट्रक।- (पूरबी)। २. कुएँ के ऊपर गड़ारी रखने का खभा। ३ लकड़ी या लोहे का वह धुरा जिसमे गडारी पहनाई हुई होती है।

जाँघिया—संज्ञा पुं० [हि० जांघ+इया (प्रत्य०)] १ लँगोट की तरह पहनावे का जांघ को ढकने का एक प्रकार का सिला हुआ वस्त्र। काछा।

विशेष—यह पायजामे की तरह का कमर में पहनने का एक प्रकार का सिला हुआ पहनावा है जिसकी चुस्त मोहरियाँ घुटनों के ऊपर कमर और पैर के जोड तक ही रहती हैं। इसमें पूरी रान दिखाई पडती है। इसे प्राय: पहलवान और नट आदि लँगोटे के ऊपर पहनते हैं।

२. मालखम की एक प्रकार की कसरत।

विशेष—इसमें बेंत को पैर के अँगूठे और दूसरी उँगली से पकड़कर पिंडली में लपेटते हुए दूसरी पिंडली पर भी लपेटते

हैं और उस दूसरे पैर के अँगूठे से बेंत को पकड़कर नीचे की ओर सिर करके लटक जाते हैं।

जाँघिला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जाँघ] वह बैल जिसका पिछला पैर चलने में लच खाता हो।

जाँघिला[2]—वि० जिसका पैर चलने में लच खाता हो।

जाँघिल[3]—संज्ञा पुं० [देश०] १ खाकी रंग की एक चिड़िया।

विशेष—इसकी गरदन लंबी होती है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और उसी के लिये इसका शिकार किया जाता है।

२ प्रायः एक बालिश्त लंबी एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

विशेष—इसकी छाती और पीठ सफेद, पर काले, चोंच और सिर पीला, पैर खाकी और दुम गुलाबी रंग की होती है।

जाँच—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाँचना] १. जाँचने की क्रिया या भाव। परीक्षा। परख। इम्तहान। आजमाइश। २ गवेषणा। तहकीकात।

यौ०—जाँच पड़ताल = खोज के साथ किसी बात का पता लगाना। छानबीन।

जाँचक[ⓟ]—संज्ञा पुं० [सं० याचक] दे० 'जाचक' या 'याचक'। उ०—जाँचक पै जाँचक कहूँ जाँचै ? जो जाँचै तो रसना हारी।—सूर, १।३४।

जाँचकता[ⓟ]—संज्ञा स्त्री० [सं० याचकता] दे० 'जाचकता' या 'याचकता'। उ०— (क) जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे। —तुलसी (शब्द०)। (ख) दुख दीनता दुखी इनके दुख जाँचकता अकुलानी।—तुलसी (शब्द०)।

जाँचकताई[ⓟ]—संज्ञा स्त्री [हिं० जाँचक + ताई (प्रत्य०)] दे० 'याचकता'।

जाँचना—क्रि० स० [सं० याचना] १ किसी विषय की सत्यता या असत्यता अथवा योग्यता या अयोग्यता का निर्णय करना। सत्यासत्य आदि का अनुसंधान करना। यह देखना कि कोई चीज ठीक है या नहीं। जैसे, हिसाब जाँचना, काम जाँचना।

संयो० क्रि०—देखना। —रखना। —डालना।

२. किसी बात के लिये प्रार्थना करना। माँगना। उ०—(क) जिन जाँच्यो जाइ रंस नंदराय,ठरे। मानो बरसत मास असाढ़ दादुर मोर ररे। — सूर (शब्द०)। (ख) रावन मरन मनुज कर जाँचा। प्रभु विधि बचन कीन्ह चह साँचा। —तुलसी (शब्द०)। (ग) यही उदर के कारने जग जाँच्यो निसि याम। स्वामिपनो सिर पर चढ्यो सरयो न एको काम। —कबीर (शब्द०)।

जाँजरा[ⓟ]†—वि० [सं० जर्जर, प्रा० जज्जर] [वि० स्त्री० जाजरी] जो बहुत ही जीर्ण हो। जर्जर। जीर्ण शीर्ण। उ०—सामी यहै दोष जु मैं रोष हूँ। धनुष तोरी जाँजरो, पुरानो हो मैं जानो गयो काम सो। —हनुमान (शब्द०)।

जाँझ[ⓟ]†—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झा] वह वर्षा जिसके साथ तेज हवा भी हो।

जाँझा[ⓟ]†—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झा] दे० 'जाँझ'।

जाँट—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे रिया भी कहते हैं।

जाँत—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] आटा पीसने की बड़ी चक्की। जाँता। उ०—धरती सरग जाँत पट दोऊ। जो तेहि बिच जिउ राख न कोऊ। —जायसी ग्रं०, पृ० ६३।

जाँता—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] १. आटा पीसने की पत्थर की बड़ी चक्की जो प्रायः जमीन में गड़ी रहती है।

क्रि० प्र०—चलाना। —पीसना।

२ सुनारों और तारकशों आदि का एक औजार।

विशेष—यह इस्पात या फौलाद लोहे की एक पटरी होती है जिसमें क्रमशः बड़े छोटे अनेक छेद होते हैं। उन्हीं में कोई धातु की बत्ती या मोटा तार आदि रखकर उसे खींचते खींचते लंबा और महीन तार बना लेते हैं। इसे जंती भी कहते हैं।

जाँद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के पेड़ का नाम।

जाँन[ⓟ][1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] ज्ञान। जानकारी। उ०—लहे जीव जेते सु केते जिहाँन। भ्रमै जत्र तत्र सु पावै न जानं। —ह० रासो, पृ० ३५।

जाँन[2]—संज्ञा पुं० [सं० यान] गमन। जाना।

यौ०—आवाजाँन = आवागमन। उ०—त्रिवेणी कर असनान। तेरा मेट जाय आवाजाँन। —रामानंद०, पृ० ६।

जाँन[ⓟ]†[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० यान, यात्रा] बारात। उ०—वृंदावन बैसाख पर सोहै जान ससोह। —रा० रू०, पृ० ३४७।

जाँपना—क्रि० स० [अप० चंप, चप्प] दे० 'चाँपना'।

जाँपनाह—संज्ञा पुं० [फा० जहाँपनाह] दे० 'जहाँपनाह'।

जाँब[ⓟ]†—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] जंबू फल। जामुन। जाम। उ०—(क) काहू गही अब की डारा। कोई बिरछ जाँब प्रति छारा। —जायसी (शब्द०)। (ख) श्याम जाँब कस्तूरी चोवा। अब जो ऊँच हृदय तेहि रोवा। —जायसी (शब्द०)।

जाँबख्शी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्राणदान। जीवनदान। उ०—हुजूर यह गुलाम का लड़का है। हुजूर इसकी जाँबख्शी करें, हुजूर का पुराना गुलाम हूँ। —काया०, पृ० १६५।

जाँबाज—वि० [फा० जाँबाज़] प्राण निछावर करनेवाला। जान की बाजी लगा देनेवाला। साहसी। उ०—जिसके लिये जाँबाज है परवानए बेखौफ। —कबीर म०, पृ० ४६७।

जाँबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जाँबाजी] जान की बाजी। प्राणों का दाँव। साहस। उ०— पै एतो हूँ हम सुन्यो, प्रेम अजूबो खेल। जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल। —रसखान०, पृ० ११।

जाँमल[ⓟ]†—वि० [सं० यमल] दो। दोनों। उ०—भूप द्वार असकन्न भँडारी, हेमराज जाँमल हितकारी। —रा० रू०, पृ० ३१५।

जाँ सी—वि० [फ़ा० जा] मुनासिब। वाजिब। उचित।

यौ०—बेजाँसी। जाँबे बेजाँबे।

जाँवत[ⓟ]—अव्य० [सं० यावत्, हिं०, जावत] दे० 'यावत्'। उ०—जाँवत जग साखा वन ढाँखा। जाँवत केस रोम पखि पाँखा।

—जायसी (शब्द०)। (ख) पुन रुपवत बखानौ काहा। जाँवत जगत सबै सुख चाहा। —जायसी (शब्द०)।

जाँवर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जाना] गमन। प्रस्थान। जाना। उ०—नव नव लाड़ लड़ाइ लड़िल नाहीं नाहीं कहूँ ब्रज जाँवरो। —स्वामी हरिदास (शब्द०)।

जा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता। माँ। २ देवरानी। देवर की स्त्री।

जा²—वि० स्त्री० [सं० तुल० फ़ा० (प्रत्य) जा (= उत्पन्न करनेवाला)] उत्पन्न। संभूत। जैसे, गिरिजा, जनकजा।

जा³(पु)†—सर्व० [हिं० जो] जो। जिस। उ०—(क) जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहि न कछु संदेहू। —तुलसी (शब्द०)। (ख) इक समान जग ह्वै रहत लाज काम ये दोइ। जा तिय के तन में सबहि मध्या कहिए सोइ। —पद्माकर ग्र०, पृ० ८७। (ग) मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ। जा तन की झाँई परैं स्यामु हरितदुति होइ। —बिहारी र०, दो० १।

जा⁴—वि० [फ़ा०] मुनासिब। उचित। वाजिब। जैसे,—आपकी बात बहुत जा है

यौ०—बेजा = नामुनासिब। जो ठीक न हो।

जा⁵—संज्ञा पुं० स्थान। जगह। उ०—कुछ बेर रहा हक्का बक्का भौचक्का सा आ गया कहाँ। क्या करूँ यहाँ जाऊँ किस जा। —मिलन०, पृ० १६०।

जाइंट—संज्ञा पुं० [अ० ज्वाइंट] १. जोड़। पैवंद। २. गिरह। गाँठ। (मिस्तरी)। ३ दे० 'ज्वाइंट'।

जाइ(पु)‡—वि० [हिं० जाना] व्यर्थ। वृथा। निष्प्रयोजन। बेफायदा। उ०—सुमन सुमन अरपन लिए उपवन ते घन ल्याइ। धन्नी धरि हरि तकि कहीं छाइ भयो श्रम जाइ। —(शब्द०)।

जाइफल—संज्ञा पुं० [सं० जातीफल] दे० 'जायफल'।

जाइफल—संज्ञा पुं० [सं० जातीफल] दे० 'जायफल'।

जाइस—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जायस'।

जाई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० जा (= उत्पन्न)] कन्या। बेटी। पुत्री। उ०—खुशहाली हुई बाप होर माई कूँ। सुलक्षन हुआ पूत उस जाई कूँ। —दक्खिनी०, पृ० ३६०।

जाई²—संज्ञा स्त्री० [सं० जाती] जाती। चमेली।

जाउँनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जामुन] दे० 'जामुन'।

जाउर‡—संज्ञा पुं० [हिं० चाउर (= चावल)] मीठा और चावल डालकर पकाया हुआ दूध। खीर।

जाएल†—संज्ञा पुं० [देश०] दो बार जोता हुआ खेत।

जाएस—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जायस'।

जाक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख, जक्ख] यक्ष।

जाकट—संज्ञा पुं० [अ० जैकेट] दे० 'जाकेट'।

जाकड़—संज्ञा पुं० [हिं० जाकर; अथवा हिं० जकड़ना (= बाँधना)] १ दुकानदार के यहाँ से कोई माल इस शर्त पर ले आना कि यदि वह पसंद न होगा, तो फेर दिया जायगा। पक्का का उलटा। २ इस प्रकार (शर्त पर) लाया हुआ माल।

यौ०—जाकड़ बही।

जाकड़बही—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाकड़ + बही] वह बही जिसमें दुकानदार जाकड़ पर दिए हुए माल का नाम, किस्म और दाम आदि टाँक लेते हैं।

जाकिट†—संज्ञा स्त्री० [अ० जैकेट] दे० 'जाकेट'।

जाकेट—संज्ञा स्त्री० [अ० जैकेट] कुर्ती या सदरी की तरह का एक प्रकार का अँग्रेजी पहनावा।

जाख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख] दे० 'यक्ष'। उ०—कोरी मटुकी दह्यो जमायो जाख न पूजन पायौ। तिहि घर देव पितर काहे कों जा घर कान्हर आयौ। —सूर०, १०।३४६।

जाखन†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए के आकार का चौका चक्कर जो कूएँ की नींव में दिया जाता है। जमवट। नेवार।

जाखिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी, प्रा० जक्खिणी] दे० 'यक्षिणी'। उ०—राघव करै जाखिनी पूजा। चहै सो भाव देखावै दूजा। —जायसी (शब्द०)।

जाग¹—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] यज्ञ। मख। उ०—(क) जब तीन्हों सो दैहैं साम। ता पीछे तुम कीजौ जाग। तब तिन्हैं कंप्रपुर जैहौ। तहाँ आइ मोकों तुम पैहौ। —सूर०, ६।२। (ख) दरस हित मुनि योगि सब करत सदै बहु जाग। देखते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग। —तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। —जागना। —करना। उ०—पहुँच महा मुनि जाग जयो। नीच निसाचर देत दुसह दुख कृश तनु ताप तयो। —तुलसी (शब्द०)।

जागा²—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगह] १. जगह। स्थान। ठिकाना। उ०—(क) सुहिकौ न सुहिकौ कहीं कुहुकिनी छू कै राग, जाग कुल घोर तोपखाना माघ ल्याया है। —सूदन (शब्द०)। (ख) कुदरत वाकी भर रही रसनिधि सबही जाग। ईंधन बिन बनियौ रहै ज्यों पाहन में आग। —रसनिधि (शब्द०)। २ गृह। घर। मकान। —(हिं०)।

जाग³—संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना] जागने की क्रिया या भाव। जागरण। उ०—घटती होइ जाहि ते दूनी ताको कीजै त्याग। चोखे कियो बास मन भीतर अब समझे यह जाग। —सूर (शब्द०)।

जाग⁴—संज्ञा पुं० [देश०] वह कबूतर जो बिलकुल काले रंग का हो।

जाग⁵—संज्ञा पुं० [अ० जक] अञ्जाय का भांडाररक्षक।

जागत—संज्ञा पुं० [सं०] जगती छंद।

जागता—वि० [सं० जाग्रत] [वि० स्त्री० जागती] १ सजग। सचेत। २. तेजस्वी। चमत्कारिक।

मुहा०—जागता = प्रत्यक्ष। साक्षात्। जैसे, जागती जोत, जागती कला। उ०—लहिरैं जागति सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी। —पद्माकर (शब्द०)।

जागतिक—वि० [सं०] जगत्संबंधी । सांसारिक [को०] ।

जागती कला—संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना + कला] दे० 'जागती जोत' ।

जागती जोत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना + सं० ज्योति] १ किसी देवता विशेषत देवी की प्रत्यक्ष महिमा या चमत्कार । २. चिराग । दीपक ।

जागना[1]—क्रि० अ० [सं० जागरण] १ सोकर उठना । नींद त्यागना । उ०—ग्राइ जगावहिं चेला जागहु । ग्रावा गुरू पाय उठि लागहु ।—जायसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

२ निद्रारहित रहना । जाग्रत अवस्था में होना । ३. सजग होना । चैतन्य होना । सावधान होना । उ०—जरठाई दसा रवि काल उयो अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ।—तुलसी (शब्द०) । ४ उदित होना । चमक उठना । उ०—(क) भागत अभाग अनुरागत विराग भाग जागत आलस तुलसी से निकाम कै ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) निश्चय प्रेम पीर एहि जागा । कसे कसौटी कंचन लागा ।—जायसी (शब्द०) । ५ समृद्ध होना । बढ़ चढ़कर होना । उ०—पद्माकर स्वादु सुधा तें सरै मधु तें महा माधुरी जागती है ।—पद्माकर (शब्द०) । ६. जोर शोर से उठना । समुत्थित होना । जैसे, लोकमत का जागना । ७ प्रज्वलित होना । जलना । ८ प्रादुर्भूत होना । अस्तित्व प्राप्त करना । ९. प्रसिद्ध होना । मशहूर होना । उ०—खायो खोंचि माँगि मैं तेरो नाम लिया रे । तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

जागना[2]Ⓟ—क्रि० अ० [सं० यजन] यज्ञ करना । उ०—पयसि पयागे जाग सत जागइ सोइ पावए बहु भागी ।—विद्यापति, पृ० ४१७ ।

जागनौल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का हथियार ।

जागबलिक—संज्ञा पुं० [सं० याज्ञवल्क्य] एक ऋषि । दे० 'याज्ञवल्क्य' । उ०—जागबलिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

जागर—संज्ञा पुं० [सं०] १ जागरण । जाग । जागने की क्रिया । उ०—सुनि हरिदास यहै जिय जानौ सुपने को सो जागर । —हरिदास (शब्द०) । २ कवच । अंगत्राण । जिरह बख्तर । ३ अतःकरण की वह अवस्था जिसमें उसकी सब वृत्तियाँ (मन, बुद्धि, अहंकार आदि) प्रकाशित या जाग्रत हों ।

जागरक—वि० [सं०] जाग्रत । चैतन्य [को०] ।

जागरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निद्रा का अभाव । जागना । २ किसी व्रत, पर्व या धार्मिक उत्सव के उपलक्ष में अथवा इसी प्रकार के किसी और अवसर पर भगवद्भजन करते हुए सारी रात जागना । उ०—बासर ध्यान करत सब बीत्यो । निशि जागरन करन मन चीत्यो ।—सूर (शब्द०) ।

जागरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागरण' [को०] ।

जागरित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ नींद का न होना । जागरण । २. सांख्य और वेदांत के मत से वह अवस्था जिसमें मनुष्य को इंद्रियों द्वारा सब प्रकार के व्यवहारों और कार्यों का अनुभव होता रहे ।

जागरित[2]—वि० जागा हुआ । चैतन्य । सचेत ।

जागरित स्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो ।

जागरितांत—संज्ञा पुं० [सं० जागरितान्त] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो । जागरित स्थान ।

जागरिता—वि० [सं० जागरित] [वि०स्त्री० जागरित्री] जागा हुआ । चैतन्य ।

जागरी—वि० [सं० जागरिन्] दे० जागरिता[2] ।

जागरूा—संज्ञा पुं० [देश० जाँगर + हिं० ऊ (प्रत्य०)] १ भूसा आदि मिला हुआ वह खराब अन्न जो दँवाई के बाद अच्छा अन्न निकाल लेने पर बच रहता है । २ भूसा ।

जागरूक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जाग्रत अवस्था में हो । चैतन्य ।

जागरूक[2]—वि० जागता हुआ । निद्रारहित । सावधान ।

जागरूप—वि० [हिं० जागना + रूप] जो बहुत ही प्रत्यक्ष और स्पष्ठ हो ।

जागर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जागरण । जाग्रति । २ चेतनता ।

जागर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागर्ति' [को०] ।

जागा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगह] दे० 'जगह' ।

जागाह†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [फा० जायगाह, हिं० जगह] स्थान । जगह । उ०—कोई झगड़े अपनी जागाह पर, यह मेरी है यह तेरी है । —राम० धर्म० (सं०), पृ० ९२ ।

जागी†Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, अथवा देशज, जाँगड़ा, जाँगरा] भाट ।

जागीर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] ऐसी भूमि जो राजा, बादशाह, नवाब आदि किसी को प्रदान करते हैं । वह गाँव या जमीन आदि जो किसी राज्य या शासक आदि की ओर से किसी को उसकी सेवा के उपलक्ष में मिले । सेवा के पुरस्कार में मिली हुई भूमि । जमीन । मुआफी । तअल्लुका । परगना ।

क्रि० प्र०—देना । —पाना । —मिलना ।

यौ०—जागीर खिदमती = सेवा के बदले में मिली जागीर । जागीर मनसबी = वह जागीर जो किसी मनसब, किसी पद के कारण प्राप्त हो ।

जागीरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसे जागीर मिली हो । जागीर का मालिक ।

जागीरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'जागीरी' ।

जागीरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जागीर + ई (प्रत्य०)] १ जागीरदार होने का भाव । २. अमीरी । रईसी । उ०—भागता सो फ़ुकिया पीठ जो लागा धाय । जागीरी सब ऊतरी धनी न कहसो आय ।—कबीर (शब्द०) । ३. जागीर के रूप मे मिली मिल्कियत ।

जागुड़—संज्ञा पुं० [सं० जागुड] १. केसर । २. एक प्राचीन देश का नाम । ३ इस देश का निवासी ।

जागृति—संज्ञा स्त्री० [सं० जागर्ति] दे० 'जागरण' ।

जागृवि—संज्ञा पुं० [सं०] १ राजा । २ आग । ३. जागरण (को०) ।

जाग्रत¹—वि० [सं० जाग्रत्] १ जो जागता हो । सजग । सावधान । २ व्यक्त । प्रकाशमान । स्पष्ट (को०) ।

जाग्रत²—संज्ञा पुं० वह अवस्था जिसमें शब्द, स्पर्श आदि सब बातों का परिज्ञान और ग्रहण हो ।

जाग्रति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाग्रत] जागरण । जागने की क्रिया ।

जाघनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊरु । जाँघ । जंघा । २. पुच्छ । पूँछ (को०) ।

जाचक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० याचक] १. माँगनेवाला । वह जो माँगता हो । भिक्षुक । मंगन । भिखारी । उ०—(क) नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम्ह सों मन भावत पायो न कै । —तुलसी (शब्द०) । (ख) नद पौरि जे जाँचन आए । बहुरो फिरि जाचक न कहाए । —१०।३२ । २. भीख माँगनेवाला । भिखमगा । उ०—दोऊ चाह भरे कछू चाहत कह्यो कहै न । नहिं जाचक सुनि सूम लौं बाहर निकसत बैन । —बिहारी (शब्द०) ।

जाचकता(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० याचकता] १ माँगने का भाव । भीख माँगने की क्रिया । भिखमगी । उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो । —तुलसी (शब्द०) ।

जाचना(पु)†—क्रि० स० [सं० याचन] माँगना । उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो ।—तुलसी (शब्द०) ।

जाजन(पु)—क्रि० स० [सं० याजन] यज्ञ कराना । उ०—जजन जाजन जाप रटन तीरथ दान ओपधी रसिक गदमूल देता । —रै० बानी, पु० २ ।

जाजना¹(पु)†—क्रि स० [हिं० जाना] जाना । जाने की क्रिया या भाव । उ०—आलंब न और जगदीसै कह्यो जाजे कहाँ, आगि कै तो दाधे अंति आगि ही सिराहिंगे । —सुंदर० ग्रं०, (जी०), भा० १ पु० ६६ ।

जाजना²(पु)†—क्रि० स० [हिं० जाजन] पूजा करना । उपासना करना । उ०—स्यभ देव की सेवा जाजे, तो देव दृष्टि है सकल पछाने । —दक्खिनी०, पु० ३४ ।

जाजम—संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] एक प्रकार की चादर जिसपर बेल बूटे आदि छपे होते हैं और जो फर्श पर बिछाने के काम में आती है ।

जाजमलार—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जाजामलार' ।

जाजर(पु)†—वि० [सं० जर्जर] [वि०स्त्री० जाजरि, जाजरी] दुर्बल । कृश । जीर्ण । उ०— परन गिरहिं कर कपमान जाजर देह गिरन । प्राण०, पु० २५२ ।

जाजरा(पु)†—वि० [सं० जर्ज्जर,] जर्जर । जीर्ण । उ०—(क) ज्यों घुन लागई काठ को लोहइ लागई काँट । काम किया घट जाजरा दादू बारह बाट । —दादू (शब्द०) । (ख) आँधरो अधम जड जाजरो जरा जवन सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में । —तुलसी (शब्द०) ।

जाजरी†—संज्ञा पुं० [देश०] बहेलिया । चिड़ीमार ।

जाजरू†—संज्ञा पुं० [फा० जाजरूर] दे० 'जाजरूर' ।

जाजरूर—संज्ञा पुं० [फा० जा + अ० ज़रूर] शौच क्रिया करने का स्थान । पाखाना । टट्टी ।

जाजल—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद की एक शाखा का नाम ।

जाजलि—संज्ञा [सं०] एक प्रवरप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

जाजा(पु)‡—वि० [अ० ज़ियादह्, हिं० ज़्यादा] बहुत । अधिक । उ०—जाय जोगण बंद जाजा, प्रजुण वन्ही करे प्राजा । वहण आवध होम बाजा, रूपि दराजा रोस । —रघु० रू०, पु० २०७ ।

जाजात‡—संज्ञा स्त्री० [फा० जायदाद] दे० 'जायदाद' ।

जाजामलार—संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । इसे जाजमलार भी कहते हैं ।

जाजिम—संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] १. एक प्रकार की छपी हुई चादर जो बिछाने के काम में आती है । २. गलीचा । कालीन ।

जाजी—संज्ञा पुं० [सं० जाजिन्]] योद्धा । वीर [को०] ।

जाजुल(पु)†— वि० [सं० जाज्वल्य] दीप्तिमान । प्रकाशमान । प्रदीप्त । उ०—दसकठ सेन सिंघार दारुण, मार अषयकुमार । तो जोधार जो जोधार जाजुल रामरो जोधार । —रघु० रू०, पु० १६४ ।

जाजुलित(पु)—वि० [हिं० जाजुल + इत (प्रत्य०)] दे० 'जाजुल' ।

जाज्वल्य—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । प्रकाशयुक्त । २. तेजवान् ।

जाज्वल्यमान—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । दीप्तिमान् । २ तेजस्वी । तेजवान् ।

जाट¹—संज्ञा पुं० [सं० यष्टि अथवा सं० यादव,>जादव>जाद्दव>जाद्दअ>जाटअ>जाट] १. भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध जाति जो समस्त पंजाब, सिंध, राजपूताने और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में फैली हुई है ।

विशेष—इस जाति के लोग संख्या में बहुत अधिक हैं और भिन्न भिन्न प्रदेश में भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं । इस जाति के अधिकांश आचार व्यवहार आदि राजपूतों से मिलते जुलते होते हैं । कहीं कहीं ये लोग अपने को राजपूतों के अंतर्गत भी बतलाते हैं । राजपूतों के ३६ वंशों में जाटों का भी नाम आया है । कुछ देशों में जाटों और राजपूतों का विवाह संबंध भी होता है । पर कहीं कहीं के जाटों में विधवा विवाह और सगाई की प्रथा भी प्रचलित है । जाटों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कोई कहता है कि इनकी उत्पत्ति शिव की जटा से हुई, और कोई जाटों को यदुवंशी और जाट शब्द को यदु या यादव से संबद्ध बतलाता है । अधिकांश जाट खेती बारी से ही अपना निर्वाह करते हैं । पंजाब, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में बहुत से मुसलमान जाट भी हैं ।

२. एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना ।

जाट²—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, हिं० जाठ] दे० 'जाठ' ।

साध्य सम। (६) प्राप्ति सम। (१०) अप्राप्ति सम। (११) प्रसंग सम। (१२) प्रतिदृष्टांत सम। (१०) अनुत्पत्ति सम। (१४) संशय सम। (१५) प्रकरण सम। (१६) हेतु सम। (१७) अर्थापत्ति सम। (१८) अविशेष सम। (१६) उपपत्ति सम। (२०) उपलब्धि सम। (२१) अनुपलब्धि सम। (२२) नित्य सम। (२३) अनित्य सम, और (२४) कार्य सम।

५. वर्ण। ६. कुल। वंश। ७ गोत्र। ८ जन्म। ९. आमलकी। छोटा आँवला। १० सामान्य। साधारण। आम। ११. चमेली। १२. जाविश्री। १३. जायफल। जातीफल। १४ वह पद्य जिसके चरणों में मात्राओं का नियम हो। मात्रिक छंद।

जातिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातकर्म'।

जातिकोश, जातिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिकोशी, जातिकोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाविश्री।

जातिचरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जातीय रहन सहन तथा प्रथा।

जातिच्युत—वि० [सं०] जाति से गिरा या निकाला हुआ। जो जाति से अलग या बाहर हो।

जातित्व—संज्ञा पुं० [सं०] जाति का भाव। जातीयता।

जातिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ जाति या वर्ण का धर्म। २ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि का अलग अलग कर्तव्य। जिस जाति में मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, उसका विशेष आचार या कर्तव्य।

विशेष—प्राचीन काल में अभियोगों का निर्णय करते हुए जातिधर्म का आदर किया जाता था।

जातिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जातिपत्री] जाविश्री।

जातिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जाविश्री।

जातिपाँति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + हिं० पाँति > सं० पङ्क्ति] जाति या वर्ण आदि। उ०—जाति पाँति उन सम हम नाहीं। हम निर्गुण सब गुण उन पाहीं।—सूर (शब्द०)।

जातिफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं० जातिवैर] स्वाभाविक शत्रुता। सहज वैर।

विशेष—महाभारत में जातिवैर पाँच प्रकार का माना गया है,—(१) स्त्रीकृत। (२) वास्तुज। (३) वाग्ज। (४) सापत्न और (५) अपराधज।

जातिब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसका केवल जन्म किसी ब्राह्मण के घर में हुआ हो और जिसने तपस्या या वेद अध्ययन आदि न किया हो।

जातिभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] जातिच्युत होने का भाव। जातिभ्रष्टता [को०]।

जातिभ्रंशकर—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार नौ प्रकार के पापों में से एक प्रकार का पाप जिसका करनेवाला जाति और आश्रम आदि से भ्रष्ट हो जाता है।

विशेष—इसके अंतर्गत ब्राह्मणों को पीड़ा देना, मदिरा पीना अथवा अखाद्य पदार्थ खाना, कपट व्यवहार करना और पुरुषमैथुन आदि कई निंदनीय काम हैं। यह पाप यदि अनजान में हो तो पापी को प्राजापत्य प्रायश्चित्त और यदि जानकारी में हो तो सांतपन प्रायश्चित्त करना चाहिए।

जातिभ्रष्ट—वि० [सं०] जातिच्युत। जातिबहिष्कृत [को०]।

जातिमान्—वि० [सं० जातिमत्] सत्कुलोत्पन्न। कुलीन [को०]।

जातिलक्षण—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातिसूचक भेद। जातीय विशेषता [को०]।

जातिवाचक—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्याकरण में संज्ञा का एक भेद। २. जाति को बतानेवाला शब्द [को०]।

जातिविद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] जातियों का पारस्परिक वैर। जातिगत वैर। [को०]

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातिवैर'।

जातिवैरी—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक शत्रु [को०]।

जातिव्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] जातिगत पेशा। जातीय धंधा या काम। जैसे, सोनारी, लोहारी आदि।

जातिशस्य—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिसंकर—संज्ञा पुं० [सं० जातिसंकर] दो जातियों का मिश्रण। वर्णसंकरता। दोगलापन।

जातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिस्मर—वि० [सं०] जिसे अपने पूर्वजन्म का इतिवृत्त याद हो। जैसे,—जातिस्मर शिशु। जातिस्मर शुक। जातिस्मर मुनि।

जातिसूत—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल। जातीफल।

जातिस्वभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का अलंकार जिसमें आकृति और गुण का वर्णन किया जाता है। २ जातिगत स्वभाव, प्रकृति या लक्षण।

जातिहीन—वि० [सं०] १ नीची जाति का। निम्न जाति का। उ०—जातिहीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि। महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि।—मानस, ३।३०। २. जातिभ्रष्ट। जातिच्युत (को०)।

जाती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चमेली। २ आमलकी। छोटा आँवला। ३ मालती। ४ जायफल।

जाती[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] दे० 'जाति'। उ०—(क) सादर बोले सकल बराती। बिष्णु बिरंचि देव सब जाती।—मानस, १।६६। (ख) दीन हीन मति जाती।—मानस, ६।११५।

जाती[3]—संज्ञा पुं० [देश०] हाथी। हस्ती (डिं०)।

जाती[4]—वि० [अ० ज़ाती] १. व्यक्तिगत। २. अपना। निज का।

जातीकोश—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीकोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातिकोश'।

जातीपत्री—संज्ञा पुं० [सं०] जाविश्री। जायपत्री।

जातीपूग—संज्ञा पुं० (सं०) जायफल।

जातीफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीय—वि० [सं०] जातिसंबंधी । जाति का । जातिवाला ।

जातीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जाति का भाव । जातित्व । २ जाति की ममता । ३ जाति ।

जातीरस—संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंधद्रव्य ।

जातु—अव्य० [सं०] १ कदाचित् । कभी । २ संभवत । शायद ।

जातुक—संज्ञा पुं० [सं०] हींग ।

जातुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती स्त्री की इच्छा । दोहद ।

जातुधान—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस । निशाचर । असुर ।

जातुष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जातुषी] १ जतु या लाख का बना हुआ । २ चिपकनेवाला । चिपचिपा । लसदार (को०) ।

जातू—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

जातूकर्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपस्मृति बनानेवाले एक ऋषि का नाम । हरिवंश के अनुसार इनका जन्म अट्ठाईसवें द्वापर मे हुआ था । २ शिव का एक नाम (को०) ।

जातूकर्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि भवभूति के पिता का नाम ।

जातेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जातकर्म' ।

जातोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह बैल जो बहुत ही छोटी अवस्था में बधिया कर दिया गया हो ।

जात्यंध—वि० [सं० जात्यन्ध] जन्मांध (को०) ।

जात्य—वि० [सं०] १ उत्तम कुल में उत्पन्न । कुलीन । २ श्रेष्ठ । ३. जो देखने मे बहुत अच्छा हो । सुदर ।

जात्य त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज क्षेत्र जिसमें एक समकोण हो । जैसे ◺ ।

जात्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक आसन ।

विशेष—इस आसन में हाथ और पैर जमीन पर रखकर चलते हैं । कहते हैं कि इस आसन के सिद्ध हो जाने से पूर्वजन्म की सब बातें याद हो आती हैं ।

जात्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह दूषित उत्तर जिसमें व्याप्ति स्थिर हो । यह अठारह प्रकार का माना गया है ।

जात्यारोह—संज्ञा पुं० [सं०] खगोल के अक्षांश की गिनती मे वह दूरी जो मेष से पूव की ओर प्रथम अंश मे ली जाती है ।

जात्र†—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] तीर्थयात्रा । यात्रा । उ०—हुतो आदय तब कियो असद्व्यय करी न ब्रज बन जात्र । —सूर०, १।२१३ ।

जात्रा‡—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा' ।

जात्री‡—संज्ञा पुं० [सं० यात्री] दे० 'यात्री' ।

जायका†—संज्ञा स्त्री० [सं० जूयिका] ढेरी । ढेर । राशि ।

जादपति†—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्ण । विष्णु । उ०—कमला अहे जादपति बारी । ताको है मुकता रखवारी ।—इंद्रा०, पृ० १५६ ।

जादरसार†—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वस्त्र । उ०—पाटै वइठा दुई राजकुमार । पहिरी वस्त्र जादर सार । —बी० रासो, पृ० २२ ।

जादवां†—संज्ञा पुं० [सं० यादव] यादव । यदुवंशी ।

जादवपति†—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्णचंद्र ।

जादसंपति†—संज्ञा पुं० [सं० यादसाम्पति] जलजतुओं का स्वामी । वरुण ।

जादसपती†—संज्ञा पुं० [सं० यादसाम्पति] दे० 'जादसपति' ।

जादा†—वि० [अ० जियादह्, हिं० ज्यादा] दे० 'ज्यादा' ।

जादुई—वि० [फा० जादू] इंद्रजाल सबधी । जादू के प्रभाववाला । उ०—इन चित्रों में जादुई आकर्षण है जिसकी सुहानी दीप्ति हमारी चेतना पर छा जाती है ।—प्रेम० और गोर्की पृ० १ ।

जादू[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ वह अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य जिसे लोग अलौकिक और अमानवी समझते हों । इंद्रजाल । तिलस्म ।

विशेष—प्राचीन काल में ससार की प्राय सभी जातियो के लोग किसी न किसी रूप में जादू पर बहुत विश्वास करते थे । उन दिनों रोगों की चिकित्सा, बड़ी बड़ी कामनाओं की सिद्धि और इसी प्रकार की अनेक दूसरी बातों के लिये अच्छे अच्छे जादूगरों और सयानों से अनेक प्रकार के जादू ही कराए जाते थे । पर अब जादू पर से लोगो का विश्वास बहुत अंशों में उठ गया है ।

क्रि० प्र०—चलना । —करना ।

मुहा०—जादू उतरना=जादू का प्रभाव समाप्त होना । जादू चलना=जादू का प्रभाव होना । किसी बात का प्रभाव होना । जादू काम करना=प्रभाव होना । उ०—उसमें न किसी का जादू काम कर रहा है और न किसी का टोना ।—चुभते० (प्रा०) पृ० ३ । जादू जगाना=प्रयोग प्रारंभ करने से पहले जादू को चैतन्य करना ।

२ वह अद्भुत खेल या कृत्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा दे कर किया जाय । ताश, अँगूठी, घड़ी, छुरी और सिक्के आदि के तरह तरह के विलक्षण और बुद्धि को चकरानेवाले खेल इसी के अंतर्गत हैं । बाजीगरी का खेल । ३ टोना । टोटका । ४ दूसरे को मोहित करने की शक्ति । मोहिनी । जैसे,—उसकी आँखों में जादू है ।

क्रि० प्र०—करना । —डालना ।

जादू†[2]—संज्ञा पुं० [सं० यादव] दे० 'जादो' । उ०—पूरब दिसि गढ गढ़नपति समुद्र सिखर अति द्रुग्ग । तहँ सु विजय सुर राजपति जादू कुलह अभग्ग ।—पृ० रा०, २० । १ ।

जादूगर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० जादूगरनी] वह जो जादू करता हो । तरह तरह के अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य करनेवाला मनुष्य ।

जादूगरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ जादू करने की क्रिया । जादूगर का काम । २ जादू करने का ज्ञान । जादू की विद्या ।

जादूनजर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जादूनजर] दृष्टि मात्र से मोहित कर लेनेवाला । देखते ही मन लुभानेवाला । जिसके नेत्रों मे जादू हो ।

जादूनिगाह—वि [फा०] दे० 'जादूनजर' ।

जादूबयान—वि० [फ़ा०] जिसकी वाणी वशीभूत करनेवाली हो। जिसकी वाणी में जादू जैसी शक्ति हो [को०]।

जादूबयानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जादू जैसी शक्ति या प्रभाववाली वाणी। उ०—आपकी ज दूबयानी तो इस दम अपना काम कर गई।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

जादो—संज्ञा पुं० [सं० यादव] दे० 'जादौ'। उ०—दुरजोधन को गर्व घटायो जादो कुल नास करी।—कबीर श०, पृष्ठ ४०।

जादौ†—संज्ञा पुं० [सं० यादव] १ यदुवंशी। यदुवंश मे उत्पन्न। उ०—सुमति विचारहिं परिहरहिं दल सुमनहु संग्राम। सकल गए तन बिनु भए साखी जादौ काम।—तुलसी (शब्द०)। २. नीच जाति। नीच कुलोत्पन्न।

जादौराइ—संज्ञा पुं० [सं० यादवराज] श्रीकृष्णचंद्र। उ०—गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ। मातु की गति दई ताहि कृपाल जादौराइ।—तुलसी (शब्द०)।

जान¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] १ ज्ञान। जानकारी। जैसे,—हमारी जान मे तो कोई ऐसा आदमी नही है। २ समझ। अनुमान। खयाल। उ०—मेरे जान इन्हहिं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतोरी।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—जान पहचान = परिचय। एक दूसरे से जानकारी। जैसे,—(क) हमारी उनकी जान पहचान नहीं है। (ख) उनसे तुमसे जान पहचान होगी।

मुहा०—जान मे = जानकारी मे। जहाँ तक कोई जानता है वहाँ तक।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास मे या 'में' विभक्ति के साथ ही होता है। इसके लिंग के विषय में भी मतभेद है। पुंलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में प्रयोग प्राप्त होते है।

जान²—वि० सुजान। जानकार। ज्ञानवान। चतुर। उ०—(क) जानकी जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०७। (ख) प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे कैसे लागै घाट। बेकान्यो है जान कहावत जानपनो कि कहा परी बाट।—हरिदास (शब्द०)।

यौ०—जानपन। जानपनी। जानपनो। जानराय। जानसिरोमनि = ज्ञानवानों में श्रेष्ठ। उ०—(क) तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय। जनगुन गाहक राम दोषदलन करुनायतन।—मानस, २३२। (ख) प्रभु कौ देखो एक सुभाइ। अति गंभीर उदार उदधि हरि जान सिरोमनि राइ।—सूर०, १। ८।

जान³—संज्ञा पुं० [सं० जानु] दे० 'जानु'।

जान⁴—संज्ञा पुं० [सं० यान] दे० 'यान'।

जान⁵—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ प्राण। जीव। प्राणवायु। दम। जैसे,—जान है तो जहान है।

मुहा०—जान आना = जी ठिकाने होना। चित्त में धैर्य होना। चित्त स्थिर होना। शांति होना। जान का गाहक = (१) प्राण लेने की इच्छा रखनेवाला। मार डालने का यत्न करनेवाला। शत्रु (२) बहुत तंग करनेवाला पीछा। न छोडनेवाला। जान का रोग = ऐसा दुःखदायी व्यक्ति या वस्तु जो पीछा न छोडे। सब दिन कष्ट देनेवाला। जान का लागू = दे० 'जान का गाहक'। जान के लाले पड़ना = प्राण बचना कठिन दिखाई देना। जी पर आ बनना। (अपनी) जान को जान न समझना = प्राण जाने की परवाह न करना। अत्यंत अधिक कष्ट या परिश्रम सहना। (दूसरे को) जान को जान न समझना = किसी को अत्यंत कष्ट या दुःख देना। किसी के साथ निष्ठुर व्यवहार करना। (किसी की) जान को रोना = किसी के कारण कष्ट पाकर उसका स्मरण करते हुए दुःखी होना। किसी के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को याद करके दुःखी होना। जैसे,—तुमने उसकी जीविका ली, वह अबतक तुम्हारी जान को रोता है। जान खाना = (१) तंग करना। बार बार पेर कर दिक करना। (२) किसी बात के लिये बार बार कहना। जैसे,—चलते हैं, क्यों जान खाते हो। जान खोना = प्राण देना। मरना। जान चुराना = दे० 'जी चुराना'। जान छुड़ाना = (१) प्राण बचाना। (२) किसी झंझट से छुटकारा करना। किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु को दूर करना। संकट टालना। छुटकारा करना। निस्तार करना। जैसे,—(क) जब काम करने का समय आता है तब लोग जान छुड़ाकर भागते हैं। (ख) इसे कुछ देकर अपनी जान छुड़ाओ। जान छूटना = किसी झंझट या आपत्ति से छुटकारा मिलना। किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु का दूर होना। निस्तार होना। जैसे,—बिना कुछ दिए जान नहीं छूटेगी। जान जाना = प्राण निकलना। मृत्यु होना। (किसी पर) जान जाना = किसी पर अत्यंत अधिक प्रेम होना। जान जोखों = प्राण का भय। प्राणहानि की आशंका। जीवन का संकट। प्राण जाने का डर। जान डालना = शक्ति का संचार करना। उ०—हम बेजान मे जान डाल देते थे।—चुभते० (दो दो०), पृ० २। जान तोड़कर = दे० 'जी तोड़कर'। जान दूभर होना = जीवन कटना कठिन जान पड़ना। भारी मालूम होना। दुःख पड़ने के कारण जीने की इच्छा न रह जाना। जान देना = प्राण त्याग करना। मरना (किसी पर) जान देना = (१) किसी के किसी कर्म के कारण प्राण त्याग करना। किसी के किसी काम से कष्ट या दुःखी होकर मरना। (२) किसी पर प्राण न्योछावर करना। किसी को प्राण से बढ़कर चाहना। बहुत ही अधिक प्रेम करना। (किसी के लिये) जान देना = किसी को बहुत अधिक चाहना। (किसी वस्तु के लिये या पीछे) जान देना = किसी वस्तु के लिये अत्यंत अधिक व्यग्र होना। किसी वस्तु की प्राप्ति या रक्षा के लिये बेचैन होना। जैसे,—वह एक एक पैसे के लिये जान देता है, उसका कोई कुछ नही दबा सकता। जान निकलना = (१) प्राण निकलना। मरना। (२) भय के मारे प्राण सूखना। डर लगना। अत्यंत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना। जान पड़ना = दे० 'जान आना'। जान पर आ बनना = (१) प्राण का भय होना। प्राण बचना कठिन दिखाई देना। (२) आपत्ति आना। चित्त संकट मे पड़ना। (३) हैरानी होना। नाक मे दम होना। गहरी व्यग्रता होना। जान पर खेलना = प्राणों को भय मे डालना। जान को जोखों मे डालना।

अपने आपको ऐसी स्थिति में डालना जिसमे प्राण तक जाने का भय हो। जान पर नौबत आना = दे० 'जान पर आ बनना'। जान बचना = (१) प्राणरक्षा करना। (२) पीछा छुडाना। किसी कष्टदायक या अप्रिय वस्तु या व्यक्ति को दूर रखना। निस्तार करना। जैसे,—हम तो जान बचाते फिरते हैं, तुम बार बार हमें आकर घेरते हो। जान मारकर काम करना = जी तोड़कर काम करना। अत्यंत परिश्रम से काम करना। जान मारना = (१) प्राणहत्या करना। (२) सताना। दु ख देना। तग करना। दिक करना। (३) अत्यत परिश्रम कराना। कडी मेहनत लेना। जैसे,—उनके यहाँ कोई काम करने क्या जाय, दिन भर जान मार डालते हैं। जान मे जान आना = धैर्य बँधना। ढारस होना। चित्त स्थिर होना। व्यग्रता, घबराहट या भय आदि का दूर होना। जान लेना = (१) मार डालना। प्राणघात करना। (२) तंग करना। दु ख देना। पीडित करना। जैसे,—क्यो धूप में दौडाकर उसकी जान लेते हो। जान सी निकलने लगना = कठिन पीड़ा होना। बहुत दु ख होना। जान सूखना = (१) प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। होश हवाश उडना। जैसे,— शेर को देखते ही उसकी तो जान सूख गई। (२) बहुत अधिक कष्ट होना। (३) बहुत बुरा लगना। खलना। जैसे,—किसी को कुछ देते देख तुम्हारी क्यों जान सूखती है। जान से जाना = प्राण खोना। मरना। जान से मारना = मार डालना। प्राण ले लेना। जान से जाना। जान हलाकान करना = सताना। तंग करना। दिक करना। हैरान करना। जान हलाकान होना = तग होना। दिक होना। हैरान होना। जान होठों पर आना = (१) प्राण कठगत होना। प्राण निकलने पर होना। (२) अत्यत कष्ट होना। घोर पीडा होना।

२ बल। शक्ति। बूता। सामर्थ्य। जैसे,—अब किसी में कुछ जान नहीं है जो तुम्हारा सामना करने आवे। ३ सार। तत्व। सबसे उत्तम अश। जैसे,—यही पद तो उस कविता की जान है। ४ अच्छा या सु दर करनेवाली वस्तु। शोभा बढ़ानेवाली वस्तु। मजेदार करनेवाली चीज। चटकीला करनेवाली चीज। जैसे,—ममाला ही तो तरकारी की जान है।

मुहा०—जान आना = ओप चढना। शोभा बढ़ना। जैसे,—रग फेर देने से इस तसवीर में जान आ गई है।

जान[६]—सज्ञा पु० [देश० या सं० यान] बारात। उ०—(क) कर जोड़े राजा कहइ, चालउ चउरासी राय की जान।—बी० रासो, पृ० १०। (ख) जान पराई में अहमक बच्चे, कपड़े भी फट्टे देह भी टूट्टे। (कहावत)।

जानकार—वि० [हिं० जानना + कार (प्रत्य०)] १. जाननेवाला। अभिज्ञ। २. विज्ञ। चतुर।

जानकारी—सज्ञा स्त्री० [हिं० जानकार + ई (प्रत्य०)] १ अभिज्ञता। परिचय। वाकफियत। २ विज्ञता। निपुणता।

जानकी—सज्ञा स्त्री० [स०] जनक की पुत्री। सीता।

जानकीकंत—सज्ञा पुं० [सं० जानकीकन्त] राम। उ०—अवै जानकीकत, तब छूटै संसारदुख। —तुलसी ग्र०, पृ० ९६।

जानकीजानि—सज्ञा पुं० [सं०] (जिसकी स्त्री जानकी है) रामचद्र। उ०—बाहुबल विपुल परिमित पराक्रम अतुल गूढ़ गति जानकीजानि जानी। —तुलसी (शब्द०)।

जानकीजीवन—सज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचद्र। उ०—जानकीजीवन को जन ह्वै जरि जाहु सो जीह जो जाँचत औरहि। —तुलसी (शब्द०)।

जानकीनाथ—सज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति, श्रीराम। उ०—सौ बातन की एकै बात। सब तजि भजो जानकीनाथ।—सूर (शब्द०)।

जानकीप्राण—सज्ञा पु० [सं०] रामचद्र। उ०—निज सहज रूप में संयत जानकीप्राण बोले। —अनामिका, पृ० १५६।

जानकीमगल—सज्ञा पुं० [सं०] गोस्वामी तुलसीदास का बनाया हुआ एक ग्रथ जिसमे श्रीराम जानकी के विवाह का वर्णन है।

जानकीरमण—सज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति—श्रीरामचद्र।

जानकीरवन(पु)—सज्ञा पुं० [सं० जानकीरमण] दे० 'जानकीरमण'।

जानकीवल्लभ—सज्ञा पुं० [सं०] रामचद्र (को०)।

जानदार(पु)[१]—वि० [फ़ा०] १ जिसमें जान हो। सजीव। जीवधारी। २ उत्कृष्ट। ओपदार। जैसे, जानदार मोती। जानदार चीज या वस्तु।

जानदार[२]—सज्ञा पुं० जानवर। प्राणी।

जाननहार(पु)—वि० [हिं० जानना + हार (प्रत्य०)] जानने या समझनेवाला। जाननिहार। उ०—सुखसागर सुख नीद बस सपने सब करतार। माया मायानाथ की को जग जाननहार। —तुलसी ग्र०, पृ० १२३।

जानना—क्रि० स० [सं० ज्ञान] १. किसी वस्तु की स्थिति, गुण, क्रिया या प्रणाली इत्यादि निर्दिष्ट करनेवाला भाव धारण करना। ज्ञान प्राप्त करना। बोध प्राप्त करना। अभिज्ञ होना। वाकिफ होना। परिचित होना। अनुभव करना। मालूम करना। जैसे,—(क) वह व्याकरण नही जानता। (ख) तुम तैरना नही जानते। (ग) मैं उसका घर नहीं जानता।

संयो० क्रि०—जाना।—पाना।—लेना।

यौ०—जानना बूझना = जानकारी रखना। ज्ञान रखना।

मुहा०—जान पडना = (१) मालूम पडना। प्रतीत होना। (२) अनुभव होना। सवेदना होना। जैसे—जिस समय मैं गिरा था, उस समय तो कुछ नहीं जान पडा, पर पीछे बडा दर्द उठा। जानकर अनजान = किसी बात के विषय मे जानकारी रखते हुए भी किसी को चिढ़ाने, धोखा देने या अपना मतलब निकालने के लिये अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना। जान बूझकर = भूले से नहीं। पूरे संकल्प के साथ। नीयत के साथ। अनजान में नही। जैसे,—तुमने जान बूझकर यह काम किया है। जान रखना = समझ रखना। ध्यान मे रखना। मन में बैठाना। हृदयगम करना। जैसे,—इस बात को जान रखो कि अब वह नही आएगा। किसी का कुछ जानना =

किसी का सहायतार्थ दिया हुआ धन या किया हुआ उपकार स्मरण रखना। किसी के किए हुए उपकार के लिये कृतज्ञ होना। किसी का एहसानमंद होना। जैसे,—क्यों मुझे कोई दो बात कहे, मैं किसी का कुछ जानता हूँ। (.) तो मैं जानूँ = (१) ( ) तो मैं समझूँ कि बड़ा भारी काम किया या बड़ी अनहोनी बात हो गई। जैसे,—(क) यदि तुम इतना कूद जाओ तो मैं जानूँ। (ख) यदि वह दो दिन में इसे कर लाए तो जानूँ। (२) (···) तो मैं समझूँ कि बात ठीक है। जैसे,—सुना तो है कि वे आनेवाले हैं, पर आ जायँ तो जानें।

विशेष—इस मुहावरे के प्रयोग द्वारा यह अर्थ सूचित किया जाता है कि कोई काम बहुत कठिन है या किसी बात के होने का निश्चय कम है। इसका प्रयोग 'मैं' और 'हम' दोनों के साथ होता है।

(··) तो मैं नहीं जानता = ( ) तो मैं जिम्मेदार नही। तो मेरा दोष नही। जैसे,—उसपर चढ़ते तो हो, पर यदि गिर पड़ोगे तो मैं नही जानता। मैं क्या जानूँ ? तुम क्या जानो ? वह क्या जाने ? = मैं नही जानता, तुम नही जानते, वह नही जानता। (बहुवचन में भी यह मुहावरा बोला जाता है)। जाने अनजाने = जान बूझकर या बिना जाने बूझे।

२ सूचना पाना। खबर पाना या रखना। अवगत होना। पता पाना या रखना। जैसे,—हमे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे आनेवाले हैं। ३ अनुमान करना। सोचना। जैसे,—मैं जानता हूँ कि वे कल तक आ जाएँगे।

जाननिहारा(पु)—वि० [हिं० जाननि + हार (प्रत्य०)] जाननेवाला। समझनेवाला। उ०—(क) औरु तुम्हहि को जाननिहारा।—मानस, २।१२७। (ख) भूत भविष को जाननिहारा। कहतु है बन शुभ गवन की बारा।—नंद० ग्रं०, पृ० १५६।

ज्ञानपति(पु)—वि० [सं० ज्ञान + पति] ज्ञानियों मे प्रधान। जानकारों में श्रेष्ठ। उ०—जानपति दानपति हाड़ा हिंदुवान पति दिल्लीपति दलपति बलाबधपति है।—मति० ग्रं०, पृ० ३६।

जानपद—संज्ञा पुं० [सं०] १ जनपद संबंधी वस्तु। २ जनपद का निवासी। जन। लोक। मनुष्य। ३ देश। ४. कर। मालगुजारी। ५ मिताक्षरा के अनुसार लेख्य (दस्तावेज) के दो भेदों में से एक।

विशेष—इस लेख्य (दस्तावेज मे) लेख प्रजावर्ग के परस्पर व्यवहार के संबध में होता है। यह दो प्रकार का होता है—एक अपने हाथ से लिखा हुआ, दूसरा दूसरे के हाथ से लिखा हुआ। अपने हाथ से लिखे हुए में साक्षी की आवश्यकता नही होती थी।

जानपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वृत्ति। २ एक अप्सरा।

विशेष—इस अप्सरा को इंद्र ने शरद्वान् ऋषि का तप भंग करने के लिये भेजा था। शरद्वान् ऋषि ने मोहित होकर जो शुक्रपात किया, उससे कृप और कृपी की उत्पत्ति हुई। महाभारत आदिपर्व में यह आख्यान वर्णित है।

जानपना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जान + पन (प्रत्य०)] जानकारी। अभिज्ञता। चतुराई। होशियारी। उ०—वेकाज्यो है जान कहावत जानपनो की कहा परी बाट।—हरिदास (शब्द०)।

जानपनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जान + पन (प्रत्य०)] बुद्धिमानी। जानकारी। चतुराई। होशियारी। उ०—(क) जानपनी की गुमान बड़ो तुलसी के विचार गँवार महा है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जानी है जानपनी हरि की अब बाँधिएगी कछु मोठ कला की।—तुलसी (शब्द०)। (ग) दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता पर वचन ताति घनी।—तुलसी (शब्द०)।

जानबाज—संज्ञा पुं० [फा० जान + बाज] वलंटियर। वालंटियर। जान पर खेल जानेवाला (लश०)।

जानमनि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जान + सं० मणि] ज्ञानियों मे श्रेष्ठ। बड़ा ज्ञानी पुरुष। बहुत बुद्धिमान मनुष्य। उ०—रूप सील सिंधु गुन सिंधु बंधु दीन को, दयानिधान जानमनि बीर बाहु बोल को।—तुलसी ग्रं०, पृ० २००।

जानमाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जानमाज] एक पतला कालीन या आसन जिसपर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। नमाज पढ़ने का फर्श।

जानराय—संज्ञा पुं० [हिं० जान + राय] जानकारों में श्रेष्ठ। अत्यंत ज्ञानी पुरुष। बड़ा बुद्धिमान मनुष्य। सुजान। उ०—जागिए कृपानिधान जानराय रामचंद्र जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे।—तुलसी (शब्द०)।

जानवर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ प्राणी। जीव। जीवधारी। २. पशु। जंतु। हैवान।

मुहा०—जानवर लगना = जानवरों का आना जाना या दिखाई पड़ना। उ०—और वहाँ जंगलों में दरिंद जानवर लगते हैं और आदमियों को खा जाते हैं।—सैर कु०, पृ० १६।

जानवर[2]—वि० मूर्ख। अहमक। जड़।

जानशीन—संज्ञा पुं० [फा० जाँनशीन] १. वह जो दूसरे की स्वीकृति के अनुसार उसके स्थान, पद या अधिकार पर हो। २ वह जो व्यवस्थानुसार दूसरे के पद या संपत्ति आदि का अधिकारी हो। उत्तराधिकारी।

जानहार(पु)†[1]—वि० [हिं० जाना + हार (प्रत्य०)] १. जानेवाला। २. खो जानेवाला। हाथ से निकल जानेवाला। ३ मरनेवाला। नष्ट होनेवाला।

जानहार(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जानना + हार (प्रत्य०)]। वह जो जाननेवाला हो। जाननेवाला या समझनेवाला व्यक्ति। दे० 'जाननिहार'।

जानहार[3]—वि० जाननेवाला।

जानहु(पु)†—अव्य [हिं० जानना] मानो। जैसे। उ०—धनि राजा अस सभा सँवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी।—जायसी (शब्द०)।

जानाँ—संज्ञा पुं० [फा०] प्रिय। माशूक। प्यारा। उ०—दिल का हुजरा साफ कर जानाँ के आने के लिये।—तुरसी० सा०, पृ० ४।

जाना[1]—क्रि० अ० [सं० √या (हिं० जा) + ना (=जाना)] १. एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्राप्त होने के लिये गति में होना। गमन करना। किसी ओर बढ़ना। किसी ओर अग्रसर होना। स्थान परित्याग करना। जगह छोड़कर हटना। प्रस्थान करना। जैसे,—(क) वह घर की ओर जा रहा है। (ख) यहाँ से जाओ।

मुहा०— जाने दो = (१) क्षमा करो। माफ करो। (२) त्याग करो। छोड़ दो। (३) चर्चा छोड़ो। प्रसग छोड़ो। जा पड़ना=किसी स्थान पर अकस्मात् पहुँचना। जा रहना= किसी स्थान पर जाकर वहाँ ठहरना। जैसे,—मुझे क्या, मैं किसी धर्मशाला में जा रहूँगा। किसी बात पर जाना=किसी बात के अनुसार कुछ अनुमान या निश्चय करना। किसी बात को ठीक मानकर उसपर चलना। किसी बात पर ध्यान देना। जैसे,—उसकी बातों पर मत जाओ अपना काम किए चलो।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग सयो० क्रि० के रूप में प्रायः सब क्रियाओं के साथ केवल पूर्णता आदि का बोध कराने के लिये होता है। जैसे, चले जाना, आ जाना, मिल जाना, खो जाना, डूब जाना, पहुँच जाना, हो जाना, दौड़ जाना, खा जाना इत्यादि। कही कहीं जाना का अर्थ भी बना रहता है। जैसे, कर जाना—इनके लिये भी कुछ कर जाओ। कर्मप्रधान क्रियाओं के बनाने में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे, किया जाना, खा जाना। जहाँ 'जाना' का सयोग किसी क्रिया के पहले होता है, वहाँ उसका अर्थ बना रहता है। जैसे, जा निकलना, जा डटना, जा भिड़ना।

२ अलग होना। दूर होना। जैसे,—(क) बीमारी यहाँ से न जाने कब जायगी। (ख) सिर जाय तो जाय, पीछे नहीं हटेंगे। ३ हाथ या अधिकार से निकलना। हानि होना।

मुहा०—क्या जाता है ? =क्या व्यय होता है ? क्या लगता है ? क्या हानि होती है ? जैसे,—उनका क्या जाता है, नुकसान तो होगा हमारा। किसी बात से भी गए ? =इतनी बात से भी वचित रहे ? इतना करने के भी अधिकारी या पात्र न रहे ? इतने में भी चूकनेवाले हो गए। जैसे,—उसने हमारे साथ इतनी बुराई की तो हम कुछ कहने से भी गए ?

४ खोना। गायब होना। चोरी होना। गुम होना। जैसे,— (क) पुस्तक यहीं से गई है। (ख) जिसका माल जाता है, वही जानता है। ५. बीतना। व्यतीत होना। गुजरना (काल, समय)। उ०—(क) चार दिन इस महीने में भी गए और रूपया न आया। (ख) गया वक्त फिर हाथ आता नहीं। ६ नष्ट होना। बिगड़ना। सत्यानाश या बरबाद होना। जैसे,—यह घर भी अब गया।

मुहा०—गया घर = दुर्दशाप्राप्त घराना। वह कुल जिसकी समृद्धि नष्ट हो गई हो। गया बीता = (१) दुर्दशाप्राप्त। (२) निकृष्ट।

७ मरना। मृत्यु को प्राप्त होना (क्वी०)। जैसे,—उसके दो बच्चे जा चुके हैं। ८. प्रवाह के रूप में कहीं से निकलना। बहना। जारी होना जैसे, आँख से पानी जाना, खून जाना, धातु जाना, इत्यादि।

जाना[2]†(पु)—क्रि० स० [सं० जनन] उत्पन्न करना। जन्म देना। पैदा करना। उ०—(क) मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो। मोसों कहत मोल को, लीन्हो तू जसुमति कब जायो।— सूर०, १०।२१५। (ख) कोशलेश दशरथ के जाए। हम पितु वचन मानि बन आए।—तुलसी (शब्द०)।

जानि[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। भार्या। जैसे, जानकीजानि। उ०—सो मय दीन्ह रावनहिं आनी। होइहि जातुधानपति जानी।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समासांत में होता है और यह ह्रस्व इकारांत ही रहता है।

जानि[2](पु)—वि० [सं० ज्ञानी] जानकार। जाननेवाला। उ०— यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जानि सिरोमनि कोसलराऊ। —तुलसी (शब्द०)।

जानिब—सज्ञा स्त्री० [अ०] तरफ। ओर। दिशा। उ०—फौज उश्शाक देख हर जानिब। नाजनी साहबे दिमाग हुआ।— कविता कौ०, भा० ४, पृ० ७।

जानिबदार—सज्ञा स्त्री० [फा०] तरफदार। पक्षपाती। हिमायती।

जानिबदारी—सज्ञा स्त्री० [फा०] पक्षपात। हिमायत। तरफदारी।

जानी[1]—सज्ञा पुं० [अ० जानी] विषयलपट व्यभिचारी व्यक्ति [को०]।

जानी[2]—वि० [फा०] १. जान से सबध रखनेवाला। प्राणों का। २ घनिष्ठ। गहरा (को०)।

यौ०—जानी दुश्मन = जान लेने को तैयार दुश्मन। प्राणों का गाहक शत्रु। जानी दोस्त = दिली दोस्त। घनिष्ठ मित्र। प्रिय दोस्त। प्राणप्रिय मित्र।

जानी[3]—वि० स्त्री० [फ़ा० जान] प्राणप्यारी। प्राणेश्वरी। प्रिया।

जानीवासउ(पु)†—सज्ञा [हिं० जनवासा] जनवासा। बारात ठहरने का स्थान। उ०—धार नग्री आयो बीसल राव, जानीवासउ दीयो तिणि ठाव।—बी० रासो, पृ० १६।

जानु[1]—सज्ञा पुं० [सं०] जाँघ और पिंडली के मध्य का भाग। घुटना। उ०—(क) श्याम की सु दरताई। बडे बिशाल जानु लौं पहुँचत यह उपमा मन भाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा।—तुलसी (शब्द०)।

जानु[2]—सज्ञा पुं० [सं० जानु, तुल० फ़ा० जानू] जाँघ। रान। उ०— बान है फाबत आक के मान है कदली विपरीत उठानु है। का न करै यह सौतिन के पर प्रान से प्यारी सुजान की जानु है।—तोष (शब्द०)।

जानु[3](पु)—अव्य०[हिं० जानना]दे० 'जानो'। उ०—तरिवर फरे फरै फरहरी। फरे जानु इद्रासन पुरी।—जायसी (शब्द०)।

जानुदघ्न—वि० [सं० जानु + दघ्न (दघ्नच् प्रत्य०)] घुटने तक गहरा या घुटनों तक ऊँचा [को०]।

जानुपाणि—क्रि वि० [सं०] घुटरुवों। पैया पैयाँ। घुटनो और हाथों के बल (चलना जैसे बच्चे चलते हैं)।

जानुपानि(पु)—क्रि० वि० [सं० जानुपाणि] दे० 'जानुपाणि'। उ०—(क) जानुपानि धाए मोहिं धरना। श्यामल गात, अरुण कर चरना।—तुलसी (शब्द०) (ख) पीत झँगुलिया तनु पहिराई। जानुपानि विचरन मोहि भाई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) राजत सिंधु रूप राम सकल गुन निकाय धाम, कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानुपानि चारी।—तुलसी (शब्द०)।

जानुप्रहृतिक—संज्ञा पुं० [सं०] मल्ल युद्ध या कुश्ती का एक ढंग जिसमें घुटनों का व्यवहार विशेष होता था।

जानुफलक—संज्ञा पुं० [सं०] घुटने की वह हड्डी जो जाँघ और पिंडली को जोड़ती है [को०]।

जानुमंडल—संज्ञा पुं० [सं० जानुमण्डल] दे० 'जानुफलक'।

जानुवाँ—संज्ञा पुं० [सं० जानु + हिं० वाँ (प्रत्य०)] एक रोग जो हाथी के अगले पिछले पैर के जोड़ों में होता है और जिसमें कभी कभी घुटने की हड्डी उभर आती है।

जानुविजानु—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक।

जानू—संज्ञा पुं० [फ़ा० जानू] जंघा। जाँघ।

जानो—अव्य० [हिं० जानना] मानो। जैसे। ऐसा जान पड़ता है कि।

जान्य—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक ऋषि का नाम।

जाप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी मंत्र या स्तोत्र आदि का बार बार मन में उच्चारण। मंत्र की विधिपूर्वक आवृत्ति। उ०—अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू।—तुलसी (शब्द०)। २. भगवान् के नाम का बार बार स्मरण और उच्चारण।

जाप[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० जप] मंत्र या नाम आदि जपने की माला। उ०—बिरह भभूत जटा बैरागी। छाला काँध जाप कंठ लागी।—जायसी (शब्द०)।

जापक—संज्ञा पुं० [सं०] जपकर्ता। जप करनेवाला। जपनेवाला। उ०—(क) राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलि काल। जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु।—तुलसी (शब्द)। (ख) चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत। राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत।—तुलसी (शब्द०)।

जापता(पु)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० जाबितह्] कायदा। नियम। पद्धति। जाब्ता। उ०—सारे या सिबायबि जापता सूँ मेल कीनी। सारा कामखाँन्याँ में बुलास्याँ धाम लीनी।—शिखर०, पृ० ५६।

जापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जप। २ निवर्तन।

जापा—संज्ञा पुं० [सं० जनन] सौरी। प्रसूतिका गृह।

जापान—संज्ञा पुं० [जाँ० निप्पान्; अं० जापान] एक द्वीपसमूह जो चीन के पूरब है।

जापानी[1]—संज्ञा पुं० [अं० जापान + हिं० ई (प्रत्य०), या देश०] जापान द्वीपसमूह का निवासी। जापान का रहनेवाला;

जापानी[2]—वि० जापान का। जापान का बना। जैसे, जापानी दियासलाई, जापानी भाषा।

जापिनी(पु)—वि० [हिं०] जपनेवाली। उ०—बीर बधू ही पापिनी पीर बधू हरि लेहि। और पीर कहाँ जापिनी पीर पपीहा देहि।—स० सप्तक, पृ० २३४।

जापी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० जापिन्] जापक। जप करनेवाला। उ०—माधव जू मोते और न पापी। लपट धूत पूत दमरी को विषय जाप को जापी।—सूर० १।१४०।

जाप्य—वि० [सं०] (मंत्र या स्तुति) जप करने योग्य [को०]।

जाफा—संज्ञा पुं० [अ० ज़ा' फ, जो' फ] १ बेहोशी। २ घुमरी। मूर्च्छा। ३ थकावट। शिथिलता। निर्बलता।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

जाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ियाफ़त] भोज। दावत।

क्रि० प्र०—करना। —होना।—खाना।—खिलाना। —देना।

जाफरान—संज्ञा पुं० [अ० ज़ाफ़रान] १ केसर। २ अफगानिस्तान की एक तातारी जाति।

जाफरानी—वि० [अ० ज़ाफ़रानी] केसरिया। केसर के रंग का। केसर का सा पीला। जैसे, जाफरानी रंग, जाफरानी कपड़ा।

जाफरानी ताँबा—संज्ञा पुं० [अ० जाफरानी + हिं० ताँबा] पीलापन लिए हुए उत्तम ताँबा जो जो चाँदी सोने में मेल देने के काम में आता है।

जाफा—संज्ञा पुं० [अ० इज़ाफ़ह्] वृद्धि। बढ़ती। उ०—एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे।—गोदान, पृ० ३७।

जाब[1](पु)—संज्ञा पुं० [अ० जवाब] उत्तर। जवाब। उ०—दिए जाब उनकूँ अलेकुल सलाम, ऐ जिब्रैल, नेकदस नेक नाम।—दक्खिनी०, पृ० १४५।

जाब[2]—संज्ञा पुं० [अं० जाब] १ धंधा। काम। २ द्रव्य के बदले में किया हुआ कार्य।

यौ०—जाब वर्क। जाब प्रेस।

जाब[3]†—संज्ञा पुं० [अं० जब्ब, हिं० जाबा†] बैलों के मुँह पर लगाने की जाली। उ०—बैलों की मुँह पर 'जाब' लगा दिया जाता है।—मैला०, पृ० ६७।

जाबजा—क्रि० वि० [फ़ा० जा + बजा] जगह जगह। इधर उधर।

जाबड़ा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जबड़ा'।

जाबता—संज्ञा पुं० [फा जाबितह्] दे० 'जाब्ता'।

जाब प्रेस—संज्ञा पुं० [अ०] कार्ड, नोटिस आदि छोटी छोटी चीजों के छापने की कल।

जावर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों के साथ पका हुआ चावल।

जावर[2]†—वि० [सं० जर्जर] वृद्ध। बुड्ढा। जईफ।—(डिं०)।

जावर‡[3]—वि० [फ़ा० जबर] बलवान्। ताकतवर। अधिक बलवाला।

जाबाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जिनकी माता का नाम जाबाला था ।

विशेष—छांदोग्य उपनिषद् में इनके संबंध में यह आख्यान आया है कि जब ये ऋषियों के पास वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये गए, तब उन्होंने इनका गोत्र तथा इनके पिता का नाम आदि पूछा । ये न बतला सके और अपनी माता के पास पूछने गए । माता ने कहा कि मैं जवानी में बहुतों के पास रही और उसी समय तू उत्पन्न हुआ । मैं नहीं जानती कि तू किसका पुत्र है । जा और कह दे कि मेरी माता का नाम जाबाला है और मेरा जाबाल है । जब आचार्य ने यह सुना तब उन्होंने कहा कि 'हे जाबाल ? समिधा लाओ, मैं तुम्हारा यज्ञोपवीत करूँ, क्योंकि ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई ऐसा सत्य नहीं बोल सकता' । इनका एक नाम सत्यकाम भी है ।

जाबालि—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यपवंशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु और मंत्रियों में से थे ।

विशेष—इन्होंने चित्रकूट में रामचंद्र को वन से लौट जाने और राज्य करने के लिये बहुत समझाया था, यहाँ तक कि अपने उपदेश में इन्होंने चार्वाक से मिलते जुलते मत का आभास देकर भी राम को वनगमन से विमुख करने का प्रयत्न किया था ।

जाबित—वि० [अ० ज़ाबित] १ जब्त करनेवाला । सहनशील । २ प्रबंधक ।

जाबिता—संज्ञा पुं० [अ० ज़ाबितह्] दे० 'जाब्ता' ।

जाबिर—वि० [फ़ा०] १. जब्र करनेवाला । अत्याचार करनेवाला । जबरदस्ती करनेवाला । २. जबरदस्त । प्रचंड ।

जाब्ता—संज्ञा पुं० [अ० ज़ाब्ता] नियम । कायदा । व्यवस्था । कानून । जैसे, जाब्ते की कारवाई, जाब्ते की पाबंदी ।

यौ०—जाब्ता अादालत = अदालत संबंधी कार्यविधि । अदालती व्यवहार । जाब्ता दीवानी = सर्वसाधारण के परस्पर अधिक व्यवहार से संबंध रखनेवाला कानून या व्यवस्था । जाब्ता फौजदारी = दंडनीय अपराधों से संबंध रखनेवाला कानून । जाब्ता माल = अदालत माल का व्यवहार या पद्धति ।

जाम[1]—संज्ञा पुं० [सं० याम] पहर । प्रहर । ७½ घड़ी या तीन घंटे का समय । उ०—(क) भए जाम जुग भूपति आवा । घर घर उत्सव बाज बधावा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दुतिय जाम बतीत उच्चव रस किंत्ति काव्य जपि ।—पृ० रा०, ६ । ११ । (ग) उ०—जाम सिसा रहि घोर की, सल्हव सुप्न सु होय । —प० रासो, पृ० १७० ।

जाम[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ प्याला । २. प्याले के आकार का बना हुआ कटोरा ।

जाम[3]—संज्ञा पुं० [अनु० झम (=जल्दी)] जहाज की दौड़ (लश०) ।

जाम[4]—संज्ञा पुं० [अं० जैम] १ जहाज का दो चट्टानों या और किसी वस्तु के बीच अटकाव । फँसाव (लश०) ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—होना ।

२. मुरब्बा । चाशनी में पागे हुए फल ।

जाम[5]—वि० रुका हुआ । अवरुद्ध । जैसे, दो गाड़ियों के लड़ जाने से रास्ता जाम हो गया ।

जाम[6]—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] जामुन ।

जामगिरी—संज्ञा पुं० [?] बंदूक का फलीता (लश०) ।

जामगी—संज्ञा पुं० [?] बंदूक या तोप का फलीता । उ०—जोत जामगिन मे जगी लागे नषत दिखान । रन असमान समान भौ रन समान असमान ।—लाल (शब्द०) ।

जामण†—संज्ञा पुं० [सं० जन्म] उत्पत्ति । जन्मना ।_जन्म होना । पैदाइश । उ०—हरि रस माते मगन भए सुमिरि सुमिरि भए मतवाले, जामण मरण सब भूलि गए ।—दादू०, पृ० ५६६ ।

यौ०—जामणमरण = जन्म और मृत्यु ।

जामदग्न्य—संज्ञा पुं० [सं०] जमदग्नि के पुत्र । परशुराम ।

जामदानी —संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जामह् दानी > जामादानी] १. कपड़ों की पेटी । चमड़े का संदूक जिसमें पहनने के कपड़े रखे जाते हैं । २ एक प्रकार का कढ़ा हुआ फूलदार कपड़ा । बूटीदार महीन कपड़ा । ३ शीशे या अबरक की बनी हुई छोटी संदूकची जिसमें बच्चे अपनी खेलने की चीजें रखते हैं ।

जामन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जमाना] वह थोड़ा सा दही या और कोई खट्टा पदार्थ जो दूध में उसे जमाकर दही बनाने के लिये डाला जाता है । उ०—फेरि कछु करि पौरि तें फिरि चितई मुसुकाय । आई जामन लेन कौं नेहैं चली जमाय । —बिहारी (शब्द०) ।

जामन[2]—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] १. जामुन । २ आलू बुखारे की जाति का एक पेड़ । पारस नाम का वृक्ष ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय पर पंजाब से लेकर सिकिम और भूटान तक होता है । इसमें से एक प्रकार का गोंद तथा जहरीला तेल निकलता है जो दवा के काम में आता है । इसके फल खाए जाते हैं और पत्तियाँ चौपायों को खिलाई जाती हैं । लकड़ी से खेती के सामान बनाए जाते हैं । इसे पारस भी कहते हैं ।

जामन(पु)†[3]—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, पुं० हिं० जामण] जन्म । उ०—सुनिए धनुषधारी, अरजी हमारी यह मेट दीजै भय भारी जामन मरन को ।—रघु० रू०, पृ० २८५ ।

जामना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० जमना] दे० 'जमना' । उ०—ऊसर बरसे तृण नहि जामा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जामनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] रात्रि । यामिनी । निशा ।

जामनी—वि० [सं० यावनी] दे० 'यावनी' ।

जाम बेतुआ—संज्ञा पुं० [हिं० जाम + बेंत] एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह बाँस प्राय बरमा, आसाम और पूर्वी बंगाल में होता है । यह बाँस टट्टर बनाने, छत पाटने आदि के लिये बहुत अच्छा होता है ।

जामल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तंत्र । वि० दे० 'यामल' जैसे, रुद्र जामल ।

जामवंत—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जाववान्'। उ०—जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमत हृदय प्रति भाए।—मानस, ५।१।

जामान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जांबवान्'। उ०—जामवान अगद सुग्रीव तथा कोउ रावन। —प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४३।

जामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जामह्] १. पहनावा। कपडा। वस्त्र। उ०—सत कै सेल्ही जुगत कै जामा छिमा ढाल ठनकाई।—कबीर श०, भा० २, पृ० १३२। २ एक प्रकार का घुटने के नीचे बड़े घेरे का पुराना पहनावा। उ०—हिंदू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कधों पर कपडा रखते हैं। —भारतेंदु ग्र०, भा० १ पृ० २४६।

विशेष—इस पहनावे का नीचे का घेरा बहुत बडा और लहँगे की तरह चुननदार होता है। पेट के ऊपर इसकी काट बगलबदी के ढंग की होती है। पुराने समय में लोग दरबार आदि में इसे पहनकर जाते थे। यह पहनावा प्राचीन कचुक का रूपातर जान पडता है जो मुसलमानों के आने पर हुआ होगा, क्योंकि यद्यपि यह शब्द फारसी है, तथापि प्राचीन पारसियों में इस प्रकार का पहनावा प्रचलित नहीं था। हिंदुओं में अवतक विवाह के अवसर पर यह पहनावा दुलहे को पहनाया जाता है।

मुहा०—जामे से बाहर होना=आपे से बाहर होना। अत्यत क्रोध करना। जामे में फूला न समाना=अत्यत आनदित होना।

यौ०—जामाजेब=वह जिसके शरीर पर वस्त्र शोभा पाता हो। जामादार=कपडों की देखभाल करनेवाला नौकर। जामा-पोश=वस्त्रयुक्त परिधानयुक्त।

ामात—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता'।

ामाता—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] १ दामाद। कन्या का पति। उ०—सादर पुनि भेटे जामाता। रूपसील गुननिधि सब भ्राता।—तुलसी (शब्द०)। २ हुरहुर का पौधा। हुलहुल।

जामातु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता'।

जामातृक—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता। दामाद [को०]।

जामानी†—वि० [हिं०] दे० 'जामुनी'। उ०—कहीं बैंगनी जामानी तो कही कत्थई कही सुरमई। इन रगो मे डूबो गई मन, सध्या पावस की। —मिट्टी०, पृ० ७६।

जामि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बहिन। भगिनी। २ लडकी। कन्या। ३ पुत्रवधू। बहू। पतोहू। ४ अपने सबध या गोत्र की स्त्री। ५ कुल स्त्री। घर की बहू बेटी।

विशेष—मनुस्मृति में यह शब्द आया है जिसका अर्थ कुल्लूक ने भगिनी, सपिंड की स्त्री, पत्नी, कन्या, पुत्रवधू आदि किया है। मनु ने लिखा है कि जिन घर में जामि प्रतिपूजित होती है, उसमे सुख की वृद्धि होती है, और जिसमें अपमानित होती है, उस कुल का नाश हो जाता है।

जामि[2]—संज्ञा पुं० [सं० याम] दे० 'याम' और 'जाम' उ०—प्रथम जामि निसि रज्ज कज्ज हैगे दिष्पत लगि। दुतिय जाम सगीत उछव रस किति काव्य जगि।—पृ० रा०, ६।११।

जामिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यामिक] पहरुआ। पहरा देनेवाला। रक्षक। उ०—चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।—तुलसी (शब्द०)।

जामित्र—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहादि शुभ कर्म के काल के लग्न से सातवाँ स्थान।

जामित्र वेध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग जिसमें विवाह आदि शुभ कर्म दूषित होते हैं।

विशेष—शुभ कर्म का जो काल हो, उसके नक्षत्र की राशि से सातवी राशि पर यदि सूर्य, शनि या मगल हो, तव जामित्र-वेध होता है। किसी किसी के मत से सप्तम स्थान में पापग्रह होने से ही जामित्रवेध होता है। किंतु यदि चद्रमा अपने मूल त्रिकोण या क्षेत्र में हो, अथवा पूर्ण चद्र हो या पूर्ण चंद्र अपने या शुभ ग्रह के क्षेत्र मे हो तो जामित्रवेध का दोष नहीं रह जाता।

जामिन[1]—संज्ञा पुं० [अ० ज़ामिन] १ जिम्मेदार। जमानत करने-वाला। इस बात का भार लेनेवाला कि यदि कोई विशेष मनुष्य कोई विशेष कार्य करेगा या न करेगा, तो मैं उस कार्य की पूर्ति करूँगा या दड सहूँगा। प्रतिभू। उ०—तो मैं आपको उनका जामिन समझूँगी।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६५१।

क्रि० प्र०—होना।

२ दो अगुल लबी एक लकडी जो नैचे की दोनो नलियो को अलग रखने के लिये चिलमगर्दे और चूल के बीच में बाँधी जाती है। ३ दूध जमाने की वस्तु। दे० 'जामन'।

जामिन[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी'। उ०—काम लुवध बोली सब कामिन। च्यार जाम गई जागत जामिन।—पृ० रा०, १। ४१०।

जामिनदार—संज्ञा पुं० [फा० ज़ामिनदार] जमानत करनेवाला।

जामिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'जामिनी'। उ०—सुखद सुहाई सरद की कैसी जामिनि जात।—अनेकार्थ०, पृ० ८३।

जामिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी'।

जामिनी[2]—संज्ञा स्त्री० [फा] जमानत। जिम्मेदारी।

जामी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यामी] १ दे० 'यामी'। २ दे० 'जामि[1]'।

जामी[2](पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जनमना या जमना] बाप। पिता (डिं०)।

जामुन—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] गरम देशो मे होनेवाला एक सदाबहार पेड। जाम। जबू।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष से लेकर वरमा तक होता है और दक्षिण अमेरिका आदि में भी पाया जाता है। यह नदियों के किनारे कही कही आपसे आप उगता है, पर प्राय फलो के लिये बस्ती के पास लगाया जाता है। इसकी लकडी का छिलका सफेद होता है और पत्तियाँ आठ दस अगुल लबी और तीन चार अगुल चौडी तथा बहुत चिकनी, मोटे दल की और चमकीली होती हैं। बैसाख जेठ में इसमें मजरी लगती है जिसके झड जाने पर गुच्छों में सरसों के बराबर फल दिखाई

पढते हैं जो पढने पर दो तीन अंगुल लंबे बेर के आकार के होते हैं। बरसात लगते ही ये फल पकने लगते हैं और पकने पर पहले बैंगनी रंग के और फिर खूब काले हो जाते हैं। ये फल कालेपन के लिये प्रसिद्ध हैं। लोग 'जामुन सा काला' प्राय बोलते हैं। फलों का स्वाद कसैलापन लिए मीठा होता है। फल में एक कड़ी गुठली होती है। इसकी लकडी पानी में सड़ती नहीं और मकानों में लगाने तथा खेती के सामान बनाने के काम मे आती है। इसका पका फल खाया जाता है। फलों के रस का सिरका भी बनता है जो तिल्ली, यकृत् रोग आदि की दवा है। गोआ मे इससे एक प्रकार की शराब भी बनती है। इसकी गुठली बहुमूत्र के रोगी के लिये अत्यंत उपकारी है। बौद्ध लोग जामुन के पेड को पवित्र मानते हैं। वैद्यक में जामुन का फल ग्राही, रूखा तथा कफ, पित्त और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—जंबू। सुरभिपत्रा। नीलफला। श्यामला। महास्कंधा। राजार्हा। राजफला। शुकप्रिया। मोदमादिनी। जंबुल।

जामुनी—वि० [हिं० जामुन] जामुन के रंग का। जामुन की तरह बैंगनी या काला। जैसे, जामुनी रंग।

जामेय—संज्ञा पुं० [सं०] भागिनेय। भांजा। बहिन का लड़का।

जामेवार—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का दुशाला जिसकी सारी जमीन पर बेलबूटे रहते हैं। २. एक प्रकार की छींट जिसकी बूटी दुशाले की चाल की होती है।

जायंट—वि० [अं०] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। संयुक्त। जैसे, जायंट सेक्रेटरी। जायंट एडीटर।

जायंट मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अं०] फौजदारी का वह मजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका दर्जा जिला मजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्राय नया सिविलियन होता है। जंट।

जायँ¹—क्रि० वि० [अ० जायश्र] व्यर्थ। वृथा। निष्फल।

जायँ†²—अव्य० [फ़ा जा (=ठीक)] वाजिब। मुनासिब। ठीक। उचित। जैसे,—तुम्हारा कहना जायँ है।

जाय(पु)¹—अव्य० [अ० जायअ (=वृथा)] वृथा। निष्फल। व्यर्थ। बेकार। उ०—(क) जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई। —तुलसी (शब्द०)। (ख) तात जाय जिन करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी। —तुलसी (शब्द०)। (ग) जेहि देह सनेह न रावरे मो ऐसी देह धराइ जो जाय जिए। —तुलसी (शब्द०)।

जायां²—संज्ञा स्त्री० [देश०] चने और उड़द की भूनकर पकाई हुई दाल।

जाय³—संज्ञा स्त्री०[फा० 'जा' का यौगिक रूप]जगह। स्थान। मौका।

यौ०—जायनमाज। जायपनाह, जायरहाइश=निवास स्थान।

जाय⁴(पु)—वि० [सं० जात] जन्मा हुआ। पैदा। उत्पन्न। जैसे—चल जा दासीजाय तेरा उत्साह दिलाता निष्फल हुआ।

जायक—संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

जायका—संज्ञा पुं० [अ० जाइक़ह, जायकह्] खाने पीने की चीजों का मजा। स्वाद। लज्जत।

क्रि० प्र०—लेना।

जायकेदार—वि० [अ० जायक़ह् + फ़ा० दार] स्वादिष्ट। मजेदार। जो खाने या पीने मे अच्छा जान पड़े।

जायचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ायचह्] जन्मकुंडली। जन्मपत्री।

जायज—वि० [अ० जायज़्] यथार्थ। उचित। मुनासिब। ठीक। वाजिब।

क्रि० प्र०—रखना।

जायजा—संज्ञा पुं० [अ० जायजह्] १. जाँच। पड़ताल।

मुहा०—जायजा देना=हिसाब समझाना। जायजा लेना=पड़ताल करना। जाँचना।

२. हाजिरी। गिनती।

जायजरूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जा + अ० जरूर] टट्टी। पाखाना।

जायद—वि० [फ़ा० जायद] १ ज्यादा। अधिक। २ फालतू। अतिरिक्त।

जायदाद—संज्ञा स्त्री० [फा०] भूमि, धन या सामान आदि जिसपर किसी का अधिकार हो। संपत्ति।

विशेष—कानून के अनुसार जायदाद दो प्रकार की है, मनकूला और गैरमनकूला। मनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाई जा सके। जैसे, बरतन, कपड़ा, असबाव आदि। गैरमनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो स्थानांतरित न की जा सके। जैसे, मकान, बाग, खेत, कुआँ आदि।

जायदाद गैरमनकूला—संज्ञा स्त्री० [फा जायदाद + अ० ग़ैरमनकूलह्] वह संपत्ति जो हटाई बढाई न जा सके। स्थावर संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद जौजियत—संज्ञा स्त्री० [फा० जायदाद + अ० जौजियत] वह संपत्ति जिसपर स्त्री का अधिकार हो। स्त्रीधन।

जायदाद मकफूला—संज्ञा स्त्री० [फा० जायदाद + अ० मकफूलह्] वह संपत्ति जो किसी प्रकार रेहन या बंधक हो।

जायदाद मनकूला—संज्ञा स्त्री० [फा० जायदाद + अ० मनकूलह] चल संपत्ति। जंगम संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद मुतनाजिआ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जायदाद + अ० मुतनाज़िअह] वह संपत्ति जिसके अधिकार आदि के विषय में कोई झगड़ा हो। विवादग्रस्त संपत्ति।

जायदाद शौहरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह संपत्ति जो स्त्री को उसके पति से मिले।

जायनमाज—संज्ञा स्त्री० [फा० जायनमाज] वह छोटी दरी, कालीन या इसी प्रकार का और कोई बिछौना जिसपर बैठकर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। बहुधा इसपर बना या छपा हुआ मसजिद का चित्र होता है। मुसल्ला।

जायपनाह—संज्ञा स्त्री० [फा०] आश्रय या पनाह का स्थान। आश्रय-गृह (को०)।

जायपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जातिपत्री] दे० 'जावित्री'।

जायफर—संज्ञा पुं० [सं० जातिफल, जातीफल] दे० 'जायफल'।

जायफल—संज्ञा पुं० [सं० जातीफल, प्रा० जाइफल] अखरोट की तरह का पर उससे छोटा, प्राय जामुन के बराबर, एक प्रकार का सुगंधित फल जिसका व्यवहार औषध और मसाले आदि में होता है। जातीफल।

पर्या०—कोषक। सुमनफल। कोश। जातिशस्य। शालूक। मालतीफल। मज्जसार। जातिसार। पुट।

विशेष—जायफल का पेड प्राय ३०, ३५ हाथ ऊँचा और सदाबहार होता है, तथा मलाका, जावा और बटेविया आदि द्वीपो मे पाया जाता है। दक्षिण भारत के नीलगिरि पर्वत के कुछ भागों में भी इसके पेड उत्पन्न किए जाते हैं। ताजे बीज बोकर इसके पेड उत्पन्न किए जाते हैं। इसके छोटे पौधों की तेज धूप आदि से रक्षा की जाती है और गरमी के दिनों मे उन्हे नित्य सींचने की आवश्यकता होती है। जब पौधे डेढ़ दो हाथ ऊँचे हो जाते हैं तब उन्हें १५-२० हाथ की दूरी पर अलग अलग रोप देते हैं। यदि उनकी जडो के पास पानी ठहरने दिया जाय अथवा व्यर्थ घासपात उगने दिया जाय तो ये पौधे बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। इसके नर और मादा पेड अलग अलग होते हैं। जब पेड़ फलने लगते हैं तब दोनो जातियो के पेडों को अलग अलग कर देते हैं और प्रति आठ दस मादा पेडों के पास उस ओर एक नर पेड लगा देते हैं जिधर से हवा अधिक आती है। इस प्रकार नर पौधों का पुपराग उडकर मादा पेड़ों के स्त्री रज तक पहुँचता है और पेड फलने लगते हैं। प्राय: सातवें वर्ष पेड फलने लगते हैं और पद्रहवें वर्ष तक उनका फलना बराबर बढ़ता जाता है। एक अच्छे पेड में प्रतिवर्ष प्राय डेढ़ दो हजार फल लगते हैं। फल बहुधा रात के समय स्वय पेडों से गिर पडते हैं और सवेरे चुन लिए जाते हैं। फल के ऊपर एक प्रकार का छिलका होता है जो उतारकर अलग सुखा लिया जाता है। इसी सूखे हुए ऊपरी छिलके को जावित्री कहते हैं। छिलका उतारने के बाद उसके अदर एक और बहुत कड़ा छिलका निकलता है। इस छिलके को तोड़ने पर अदर से जायफल निकलता है जो छाँह में सुखा लिया जाता है। सूखने पर फल उस रूप मे हो जाते हैं जिस रूप मे वे बाजार मे बिकने जाते हैं। जायफल मे से एक प्रकार का सुगंधित तेल और अरक भी निकाला जाता है जिसका व्यवहार दूसरी चीजों की सुगध बढाने अथवा औषधों में मिलाने के लिये होता है। जायफल की बुकनी या छोटे छोटे टुकड़े पान के साथ भी खाए जाते हैं। भारतवर्ष में जायफल और जावित्री का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से होता आया है। वैद्यक में इसे कड़ुवा, तीक्ष्ण, गरम, रेचक, हलका, चरपरा, अग्निदीपक, मलरोधक, बलवर्धक तथा त्रिदोष, मुख की विरसता, खाँसी, वमन, पीनस और हृद्रोग आदि को दूर करनेवाला माना है।

जायरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो बुंदेलखंड और राजपूताने की पथरीली भूमि मे नदियो के पास होती है।

जायल—वि० [फ़ा० या अ० जाइल] जिसका नाश हो चुका हो। विनष्ट। समाप्त। बरबाद।

जायस—संज्ञा पुं० रायबरेली जिले की एक तहसील तथा प्रसिद्ध प्राचीन और ऐतिहासिक नगर जहाँ बहुत दिनों से सूफी फकीरो की गद्दी है। उ०—जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू। —जायसी ग्र०, पृ० ६।

विशेष—यहाँ मुसलमान विद्वान् बहुत दिनों से होते आए हैं। बहुत सी जातियाँ अपना आदि स्थान इसी नगर को बताती हैं। पद्मावत या पद्मावती ग्रंथ के रचयिता प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद यहीं के निवासी थे और यहीं उन्होंने पद्मावत की रचना की थी। उनका प्रसिद्ध सक्षिप्त नाम 'जायसी' इसी शब्द से बना है।

जायसवाल—संज्ञा पुं० [हिं० जायस] १ जायस का रहनेवाला व्यक्ति। २. बनियो की एक शाखा।

जायसी¹—वि० [हिं जायस] जायस का रहनेवाला। जायस सबंधी। जायस का।

जायसी²—संज्ञा पुं० १ जायस का व्यक्ति या पदार्थ। २. प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी का सक्षिप्त नाम।

जाया¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विवाहिता स्त्री। पत्नी। जोरू। विशेषत वह स्त्री जो किसी बालक को जन्म दे चुकी हो। उ०—जरा मरन ते रहित अमाया। मात पिता सुत बधु न जाया।—सूर (शब्द०)। २ उपजाति वृत्त का सतवाँ भेद जिसके पहले तीन चरणों में (ज त ज ग ग) ।ऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽ, ऽ और चौथे चरण मे (त त ज ग ग) ऽऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽ, ऽ होता है। ३. जन्मकुडली मे लग्न से सातवाँ स्थान जहाँ से पत्नी के सबध की गणना की जाती है।

जाया²—वि० [अ० जाये या फ़ा० जायह्] खराब। नष्ट। व्यर्थ। खोया हुआ।

क्रि० प्र०—करना। —जाना। —होना।

जायाघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष में ग्रहों का एक योग।

विशेष—यह योग उस समय होता है जब जन्मकुडली में लग्न से सातवें स्थान पर मगल या राहु ग्रह रहता है। जिस मनुष्य की कुडली में यह योग पड़ता है फलित ज्योतिष के अनुसार उस मनुष्य की स्त्री नहीं जीती।

२. वह मनुष्य जिसकी कुडली मे यह योग हो। ३ शरीर मे का तिल।

जायाजीव—संज्ञा पुं० [सं०] १ बगला पक्षी। २ अपनी जाया (स्त्री) के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला। नट। वेश्या का पति।

जायानुजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जायानुजीविन्] दे० 'जायाजीव'।

जायी—संज्ञा पुं० [सं० जायिन्] सगीत मे ध्रुपद की जाति का एक प्रकार का ताल।

जायु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ औषध। दवा। २. वैद्य। भिषग।

जायु²—वि० जीतनेवाला। जेता।

जार¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसके साथ किसी दूसरे की विवाहिता स्त्री का प्रेम या अनुचित सबध हो। उपपति। पराई स्त्री से प्रेम करनेवाला पुरुष। यार। आशना।

जार²—वि० मारनेवाला। नाश करनेवाला।

जार³—संज्ञा पुं० [अं० ज़ार] रूस के सम्राट् की उपाधि।

जार६(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जाल] दे० 'जाल'। उ०—कहहिं कबीर पुकारि के, सबका उहै विचार। कहा हमार मानै नहिं, किमि छूटै भ्रम जार।—कबीर बी०, पृ० १६५।

जार७—संज्ञा पुं० [फा० ज़ार] स्थान। जगह [को०]।

जार८—संज्ञा पुं० [अं०] अँचार आदि रखने का मिट्टी, चीनी मिट्टी या शीशे का वर्तन।

जारक—वि० [सं०] १ जलानेवाला। क्षीण या नष्ट करनेवाला। २. पाचक [को०]।

जारकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] व्यभिचार। छिनाला।

जारज—संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री की वह संतान जो उसके जार या उपपति से उत्पन्न हुई हो। दोगली संतति।

विशेष—धर्मशास्त्रों में जारज संतान दो प्रकार के माने गए हैं। जो संतान स्त्री के विवाहित पति के जीवनकाल में उसके उपपति से उत्पन्न हो वह 'कुंड' और जो विवाहित पति के मर जाने पर उत्पन्न हो वह 'गोलक' कहलाती है। हिंदू धर्मशास्त्रानुसार जारज पुत्र किसी प्रकार के धर्म कार्य या पिंडदान आदि का अधिकारी नहीं होता।

जारजन्मा—वि० [सं० जारजन्मन्] जार से उत्पन्न। जारज [को०]।

जारजयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में किसी बालक के जन्मकाल में पड़नेवाला एक प्रकार का योग जिससे यह सिद्धांत निकाला जाता है कि वह बालक अपने असली पिता के वीर्य से नहीं उत्पन्न हुआ है बल्कि अपनी माता के जार या उपपति के वीर्य से उत्पन्न है। उ०—चित पितमारक जोगु गनि भयौ भयें सुत सोगु। फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समुझैं जारज जोगु।—बिहारी र०, दो० ५७५।

विशेष—बालक की जन्मकुंडली में यदि लग्न या चंद्रमा पर बृहस्पति की दृष्टि न हो अथवा सूर्य के साथ चंद्रमा युक्त न हो और पापयुक्त चंद्रमा के साथ सूर्य युक्त हो तो यह योग माना जाता है। द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि में रवि, शनि या मंगलवार के दिन यदि कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा और पूर्वाभाद्रपद में से कोई एक नक्षत्र हो तो भी जारज योग होता है। इसके अतिरिक्त इन अवस्थाओं में कुछ अपवाद भी हैं जिनकी उपस्थिति में जारज योग होने पर भी बालक जारज नहीं माना जाता।

जारजात—संज्ञा पुं० [सं०] जारज।

जारजेट—संज्ञा स्त्री० [अं० जार्जेट] एक प्रकार का महीन तथा बढ़िया कपड़ा।

जारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ पारे का ग्यारहवाँ संस्कार। २ जलाना। भस्म करना। ३ धातुओं को फूँकना।

विशेष—वैद्यक में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, पारा आदि धातुओं को औषध के काम के लिये कई बार कुछ विशेष क्रियाओं से फूँककर भस्म करने को 'जारण' कहते हैं।

जारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा जीरा। सफेद जीरा।

जारद्गवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में मध्यमार्ग की एक वीथी का नाम जिसमें वराहमिहिर के अनुसार श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा तथा विष्णुपुराण के अनुसार विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं।

जारना१—संज्ञा पुं० [सं० जारण या हिं० जलाना] १ जलाने की लकड़ी। ईंधन। २ जलाने की क्रिया या भाव।

जारना२—क्रि० स० [सं० जारण, हिं० 'जलाना'] दे० 'जलाना'।

जारभरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपपति रखनेवाली स्त्री। परपुरुष से संबंध रखनेवाली स्त्री [को०]।

जारा१—संज्ञा पुं० [हिं० जलाना] सोनार आदि की भट्ठी का वह भाग जिसमें आग रहती है और जिसमें रखकर कोई चीज गलाई या तपाई जाती है। इसके नीचे एक एक छोटा छेद होता है जिसमें से होकर भाथी की हवा आती है।

जारा(पु)२—संज्ञा पुं० [हिं० जाला] दे० 'जाला'। उ०—रोमराजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।—मानस, ६।१५।

जारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका किसी दूसरे पुरुष के साथ अनुचित संबंध हो। दुश्चरित्रा स्त्री।

जारित—वि० [सं०] १ गलाया हुआ। पचाया हुआ। २ (धातु) फोंकी हुई। भारी हुई [को०]।

जारी१—वि० [अ०] १. बहता हुआ। प्रवाहित। जैसे, खून का जारी होना। २ चलता हुआ। प्रचलित। जैसे,—वह अखबार जारी है या बंद हो गया?

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

जारी२—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ारी (=रोना)] १ एक प्रकार का गीत जिसे मुहर्रम में ताजियों के सामने स्त्रियाँ गाती हैं। २. रुदन। विलाप।

यौ०—गिरियाँ व जारी = रोना पीटना। विलाप।

जारी३—संज्ञा पुं० [देश०] झरबेरी का पौधा।

जारी४—संज्ञा स्त्री० [सं० जार + ई (प्रत्य०)] परस्त्री गमन। जार की क्रिया या भाव।

जारी५—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जाली'। उ०—जारी अटारी, झरोखन, मोखन झाँकत दुरि दुरि ठौर ठौर तें परत काँकरी।—नंद० ग्रं०, पृ० १४३।

जारुथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम।

जारुधि—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु पर्वत के छत्रों का केसर माना जाता है।

जारूथ्य—संज्ञा पुं० [सं० जारूथ्य] दे० 'जारूथ्य'।

जारूथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अश्वमेध यज्ञ जिसमें तिगुनी दक्षिणा दी जाय।

जारोब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] झाड़ू। बोहारी। कूँचा।

जारोबकश१—संज्ञा पुं० [फा०] झाड़ू देनेवाला व्यक्ति।

जारोबकश२—वि० झाड़ू देनेवाला।

जारोबकशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] झाड़ू देने का काम [को०]।

जार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग।

जालंधर—संज्ञा पुं० [सं० जालन्धर] १ एक ऋषि का नाम। २ जलंधर नाम का दैत्य। ३. पंजाब प्रांत का एक नगर।

जालंधरी विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जालन्धर (=एक दैत्य)] मायिक विद्या। माया। इंद्रजाल।

जाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी प्रकार के तार या सूत आदि का बहुत दूर दूर पर बुना हुआ पट जिसका व्यवहार मछलियों और चिड़ियों आदि को पकड़ने के लिये होता है।

विशेष—जाल मे बहुत से सूतों, रस्सियो या तारो आदि को खड़े और आड़े फैलाकर इस प्रकार बुनते हैं कि बीच में बहुत से बड़े बड़े छेद छूट जाते हैं।

क्रि० प्र०—बनाना।—बुनना।

यौ०—जालकर्म = मछुए का धंधा या पेशा। जालग्रथित = जाल में फँसा हुआ। जालजीवी।

मुहा०—जाल डालना या फेंकना = मछलियाँ आदि पकड़ने, कोई वस्तु निकालने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये जल में जाल छोड़ना। जाल फैलाना या बिछाना = चिड़ियों आदि को फँसाने के लिये जाल लगाना।

२ एक में ओतप्रोत बुने या गुथे हुए बहुत से तारों या रेशों का समूह। ३ वह युक्ति जो किसी को फँसाने या वश में करने के लिये की जाय। जैसे,—तुम उनके जाल से नहीं बच सकते।

मुहा०—जाल फैलाना या बिछाना = किसी को फँसाने के लिये युक्ति करना।

४ मकड़ी का जाला। ५ समूह। जैसे,—पद्मजाल। ६ इंद्रजाल। ७ गवाक्ष। झरोखा। ८ अहंकार। अभिमान। ९ वनस्पति आदि को जलाकर उसकी राख से तैयार किया हुआ नमक। क्षार। खार। १० कदम का पेड़। ११ एक प्रकार की तोप। उ०—जाल जजाल हथनाल गयनाल हूँ बान नीसान फहरान लागे।—सूदन (शब्द०)। १२ फूल की कली। १३. दे० 'जाली'। १४ वह झिल्ली जो जलपक्षियों के पंजे को युक्त करती है (को०)। १५. आँखों का एक रोग (को०)।

जाल²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाल] ज्वाला। लपट। उ०—अग्गि जाल किन तन उठत किन तन तन बरसै मेह। चक्रपवन हड्डर के केतन ककर खेह।—पृ० रा०, ६।५५।

जाल³—संज्ञा पुं० [अ० जअ्ल। मि० सं० जाल] वह उपाय या कृत्य जो किसी को धोखा देने या ठगने आदि के अभिप्राय से हो। फरेब। धोखा। झूठी कारंवाई।

क्रि० प्र०—करना।—बनाना।—रचना।

जाल⁴(पु)—संज्ञा स्त्री० [देशी जाड़ (=गुल्म)] राजस्थान में होनेवाला एक वृक्षविशेष। उ०—थल मथ्थइ जल बाहिरी, तूँ काँइ नीली जाल। कँई तूँ सीची सज्जणे, कँइ वूठउ अग्गालि।—ढोला०, दू० ३९।

जालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जाल। २ कली। ३ समूह। ४ गवाक्ष। झरोखा। ५ मोतियो का बना हुआ एक प्रकार का आभूषण। ६ केला। ७. चिड़ियो का घोसला। ८. गर्व। अभिमान।

जालकारक—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा।

जालकि—संज्ञा पुं० [सं०] १ जालो से अपनी जीविका निर्वाह करनेवाला मनुष्य।

जालकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ी।

जालकिरच—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल + किरच] परतला मिली हुई वह पेटी जिसके साथ तलवार भी लगी हो।

जालकी—संज्ञा पुं० [सं० जालकिन्] बादल [को०]।

जालकीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकड़ा। २ वह कीड़ा जो मकड़ी के जाले में फँसा हो।

जालगर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग।

विशेष—इसमें किसी स्थान पर कुछ सूजन हो जाती है और बिना पके ही इसमें जलन उत्पन्न होती है। इस रोग में रोगी को ज्वर भी हो जाता है।

जालगोणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दही मथने की हाँडी [को०]।

जालजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जालजीविन्] धीवर। मछुआ।

जालदार—वि० [सं० जाल + हिं० दार] जिसमें जाल की तरह पास पास छेद हो। । जालवाला। जालीदार। २ फंदेवाला। फरेदार (को०)।

जालना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जलाना'। उ०—दादू केइ जाले केइ जालिये, केई जालन जाँहि। केई जालन की करे, दादू जीवन नाँहि।—दादू० बानी, पृ० ३९७।

जालनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जालिनी' ४। उ०—जालनी यह तीव्र दाह करके संयुक्त और मास के जाल से व्याप्त होती है।—माधव०, पृ० १८७।

जालपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १ हंस। २. जाबालि ऋषि के एक शिष्य का नाम। ३ एक प्राचीन देश का नाम। ४ वह पशु या पक्षी जिसके पैर की उँगलियाँ जालदार झिल्ली से ढँकी हों।

जालप्राया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कवच। जिरह बकतर। सजोया।

जालबंद—संज्ञा पुं० [हिं० जाल + फा० बंद] एक प्रकार का गलीचा जिसमें जाल की तरह बेलें बनी होती हैं।

जालबर्बुरक—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसमें छोटी छोटी डालियाँ होती हैं।

जालम(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'जालिम'। उ०—विघन करत है चपेट पकड फेट काल की। नामा दर्जी जालम बिठू राजा का गुलाम।—दक्खिनी०, पृ० ४५।

जालरंध्र—संज्ञा पुं०[सं० जालरन्ध्र]घर मे प्रकाश आने के लिये झरोखे में लगी हुई जाली या उसके छेद। उ०—जालरंध्र मग अँगनु

को कछु उजास सो पाइ। पीठि दिए जगत्यो रह्यो डीठि झरोखें लाइ।—बिहारी (शब्द०)।

जालव—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दैत्य का नाम जो बलवल का पुत्र था और जिसका बलदेव जी ने वध किया था।

जालसाज—संज्ञा पुं० [अ० जअ्ल + फ़ा० साज] वह जो दूसरों को धोखा देने के लिये झूठी कारवाई करे।

जालसाजी—संज्ञा स्त्री० [जाल+साजी/अ० जअ्ल + फ़ा० साजी] फरेब या जाल करने का काम। दगाबाजी।

जाला[1]—संज्ञा पुं० [सं० जाल] १ मकड़ी का बुना हुआ बहुत पतले तारों का वह जाल जिसमें वह अपने खाने के लिये मक्खियों और दूसरे कीड़ों मकोड़ों आदि को फँसाती है। वि० दे० 'मकड़ी'।

विशेष—इस प्रकार के जाले बहुधा गंदे मकानों की दीवारों और छतों आदि पर लगे रहते हैं।

२. आँख का रोग जिसमें पुतली के ऊपर एक सफेद परदा या झिल्ली सी पड़ जाती है और जिसके कारण कुछ कम दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह रोग प्रायः कुछ विशेष प्रकार के मैल आदि के जमने के कारण होता है, और ज्यों ज्यों झिल्ली मोटी होती जाती है, त्यों त्यों रोगी की दृष्टि नष्ट होती जाती है। झिल्ली अधिक मोटी होने के कारण जब यह रोग बढ़ जाता है, तब इसे माड़ा कहते हैं।

३. सूत या सन आदि का बना हुआ वह जाल जिसमें घास भूसा आदि पदार्थ बाँधे जाते हैं। ४ एक प्रकार का सरपत जिससे चीनी साफ की जाती है। ५ पानी रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन। ६ दे० 'जाल'।

जाला(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] दे० 'ज्वाला'। उ०—इक मुक्ख अग्गि जाला उठत, इक परह देह बरिखा उठत।—पृ० रा०, ६।४५।

जालाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] झरोखा। गवाक्ष।

जालाप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तरल औषधि [को०]।

जालिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कैवर्त। जाल बुननेवाला व्यक्ति। २. जाल से मृगादि जंतुओं को फँसानेवाला व्यक्ति। कर्कटक। ३. इंद्रजालिक। मदारी। बाजीगर। ४ मकड़ी (हिं०)। ५. प्रदेश आदि का प्रधान शासक (को०)।

जालिक[2]—वि० जाल से जीविका अर्जित करनेवाला (को०)।

जालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाश। फंदा। २ जाली। ३ विधवा स्त्री। ४. कवच। जिरह बकतर। सजोया। ५. मकड़ी। ६ लोहा। ७ समूह। उ०—प्रनतजन कुमुदबन इंदुकर जालिका। जालसि अभिमान महिपेस बहु कालिका।—तुलसी (शब्द०)। ८ स्त्रियों के मुख पर डालनेवाला आवरण या परदा। मुख पर डाली जानेवाली जाली (को०)। ९ जोंक (को०)। १०. केला (को०)। ११ एक प्रकार का वस्त्र (को०)।

जालिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरोई। घिया। २ वह स्थान जहाँ चित्र बनते हों। चित्रशाला। ३ परवल की लता। ४. पिडिका रोग का एक भेद।

विशेष—इसमें रोगी के शरीर के मांसल स्थानों में दाहयुक्त फुंसियाँ हो जाती हैं। यह केवल प्रमेह के रोगियों को होता है।

जालिनी(पु)[2]—वि० [हिं० जालना] जलानेवाली।

जालिनीफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तरोई। २ घिया।

जालिम—वि० [अ० ज़ालिम] जो बहुत ही अन्यायपूर्ण या निर्दयता का व्यवहार करता हो। जुल्म करनेवाला। अत्याचारी।

जालिमाना—वि० [अ० जालिम, फ़ा० ज़ालिमानह्] अत्याचार संबंधी [को०]। जालसाज। फरेब या धोखा देनेवाला।

जालिया[1]—वि० [हिं० जाल = (फरेब) + इया (प्रत्य०)] जाल फरेब करने या धोखा देनेवाला।

जालिया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जाल + इया (प्रत्य०)] जाल की सहायता से मछली पकड़नेवाला। धीवर।

जाली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरोई। २ परवल।

जाली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल] १ किसी चीज, विशेषतः लकड़ी पत्थर या धातु आदि, में बना हुआ बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह।

क्रि० प्र०—काटना।—बनाना।

२. कसीदे का एक प्रकार का काम जिसमें किसी फूल या पत्ती आदि के बीच में बहुत से छोटे छोटे छेद बनाए जाते हैं।

क्रि० प्र०—काढ़ना।—निकालना। —डालना। —भरना। —बनाना।

३. एक प्रकार का कपड़ा जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। ४ वह लकड़ी जो पारा काटने के गड़ासे के, दस्ते पर लगी रहती है। ५. कच्चे आम के अंदर गुठली के ऊपर का वह तंतुसमूह जो पकने से कुछ पहले उत्पन्न होता और पीछे से कड़ा हो जाता है। इसके उत्पन्न होने के उपरांत आम के फल का पकना आरंभ होता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

६ दे० 'जाला'।

जाली[3]—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की छोटी नाव।

जाली[4]—वि० [अ० जअ्ल + हिं० ई (प्रत्य०)] नकली। बनावटी। झूठा। जैसे, जाली सिक्का, जाली दस्तावेज।

यौ०—जाली नोट = नकली नोट।

जालीदार—वि० [देश०] जिसमें जाली बनी या पड़ी हो।

जालीलेट—संज्ञा पुं० [हिं० जाली + लेट] एक प्रकार का कपड़ा जिसकी सारी बुनावट में बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं।

जालीलोट[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जाली + लोट] दे० 'जालीलेट'।

जालीलोट[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जाली + अं० नोट] दे० 'जाली नोट'।

जालोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] कश्मीर में विहार या अग्रहार का नाम [को०]।

जाल्म¹—वि० [सं०] १. पामर। नीच। २. मूर्ख। बेवकूफ। ३ क्रूर। कठोर। निष्ठुर (को०)।

जाल्म²—संज्ञा पुं० १ दुष्ट, धूर्त या कपटी व्यक्ति। २ निर्धन या पदभ्रष्ट व्यक्ति। ३. बुरा पाठ या वाचन करनेवाला व्यक्ति [को०]।

जाल्मक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जाल्मिका] १ वह जो अपने मित्र, गुरु या ब्राह्मण के साथ द्वेष करे। २ नीच या अधम या तुच्छ व्यक्ति।

जाल्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

जाल्य²—वि० जाल में फँसाए जाने योग्य [को०]।

जावक†—संज्ञा पुं० [सं० यावक] लाह से बना हुआ पैरों में लगाने का लाल रंग। अलता। महावर।

जावँत—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'जावत'। उ०—जावँत जगति हस्ति औ चाँटा। सब कहँ भुगुति रात दिन बाँटा। —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२३।

जावत†—अव्य [सं० यावत्] दे० 'यावत्'।

जावन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जावना] जाने की क्रिया या भाव। जाना। उ०—नगे हि आवन नगे हि जावन झूठी रचिया बाजी। या दुनिया में जीवन थोड़ा गर्व करे सो पाजी।—कबीर श०, भा० २, पृ० ४८।

जावन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जामन'। उ०—(क) नई दोहनी पोंछि पखारी धरि निर्धूम खीर पर तार्यो। तामें मिलि मिश्रित मिश्री करि दै कपूर पुट जावन नायो।—सूर (शब्द०)। (ख) तोष मरुत तब छमा जुड़ावइ। धृति सम जावन देइ जमावइ —तुलसी (शब्द०)।

जावना¹—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'जाना। उ०—ऊँमर बीठा जावता, हुलहुल करइ करूर। एराकी मोखभिया, जइसइ केती दूर। —ढोला०, दू० ६४१।

जावना²—क्रि० अ० [हिं० जनना] जन्म लेना। उत्पन्न होना। उ०—कहैं कि हमरे बालक जावै, बड़ी अपूर्बल दीसै। —चरण० बानी, पृ० ७३।

जावन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ वेग। तेजी। २ शीघ्रता [को०]।

जावर†—संज्ञा पुं० [देश०] १ ऊख के रस में पकाई गई खीर। बखीर। २ कद्दू के साथ पकाया हुआ चावल।

जावा¹—संज्ञा पुं० पूर्वी एशिया का एक द्वीप। यवद्वीप।

जावा²—संज्ञा पुं० [हिं० जामन या जमना] वह मसाला जिससे शराब चुआई जाती है। बेसवार। जाया।

जावित्री—संज्ञा स्त्री [सं० जातिपत्री] जायफल के ऊपर का छिलका जो बहुत सुगंधित होता है और औषध के काम में आता है। दे० 'जायफल'।

विशेष—वैद्यक में इसे हलका, चरपरा, स्वादिष्ट, गरम, रुचिकारक और कफ, खाँसी, वमन श्वास, तृषा, कृमि तथा विष का नाशक माना जाता है।

जाषक—संज्ञा पुं० [सं०] पीला चदन।

जाषनी(पु)†—[हिं०] दे० 'यक्षिणी'। उ०—राघौ करी जाषनी पूजा। चहै सुभाव दिखावै दूजा। —जायसी (शब्द०)।

जाषरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाषनी] नटिनी। उ०—गीति गावहि जाषरी मत्त भए मतरुफ गावइ। —कीर्ति०, पृ० ४२।

जासु(पु)†—वि० [सं० यस्य, प्रा० जस्स] जिसका।

जासू¹—संज्ञा पुं० [देश०] वे पान जो उस अफीम में मिलाने के लिये काटे जाते हैं जिससे मदक बनता है।

जासू²(पु)—वि० [हिं० जासु] दे० 'जासु'।

जासूस—संज्ञा पुं० [अ०] गुप्त रूप से किसी बात विशेषत अपराध आदि का पता लगानेवाला। भेदिया। मुखबिर। खुफिया।

जासूसी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गुप्त रूप से किसी बात का पता लगाने की क्रिया। जासूस का काम।

जासों(पु)—सर्व० [हिं०] जिससे। उ०—नददास दृष्टि जासों तनु की तरुनि पर ता ऊपर चद वारौं करति आरति नित।—नद० ग्र०, पृ० ३७७।

जास्ती¹—वि० [अ० ज्यादती से देश० रूप] अधिक। ज्यादा। उ०—गिरी ऐसी दमदार थी कि पाव भर तौलते तो छह से जास्ती सुपारी नही चढ़ा पाते तराजू पर। —नई०, पृ० ७८।

जास्ती²—संज्ञा स्त्री० ज्यादती।

जास्पति—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता। जँवाई। दामाद।

जाह¹—संज्ञा पुं० [फा०] १ पद। २. मान। प्रतिष्ठा। ३ गौरव [को०]।

जाह²—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्या] धनुष की डोरी। प्रत्यचा। उ०—वाम हाथ लीध वाह जीभरऐ कसीस जाह।—रघु०रु०, पृ० ७६।

जाहक—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिरगिट। २ जोक। ३ बिछौना। बिस्तर। ४ घोंघा।

जाहपरस्त—वि० [फा०] १ प्रतिष्ठा का लोभी २ पदलोलुप। ३. बड़े लोगों या अमीरों की भक्ति करनेवाला [को०]।

जाहर†—वि० [अ० जाहिर] दे० 'जाहिर'।

जाहिद—संज्ञा पुं० [अ० जाहिद] धर्मनिष्ठ। उ०—नही है जाहिदो को मै सेती काम। लिखा है उनकी पेशानी मे सिरका। —कविता कौ०, भा० ४, पृ० १९।

जाहिर—वि० [अ० जाहिर] १ जो छिपा न हो। जो सबके सामने हो। प्रगट। प्रकाशित। खुला हुआ। २ विदित। जाना हुआ।

यौ०—जाहिर जहूर = जाहिर। जाहिरपरस्त = ऊपरी बातो पर दृष्टि रखनेवाला।

जाहि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] मालती लता तथा उसका फूल।

जाहिरा—क्रि० वि० [अ०] देखने मे। प्रगट रूप मे। प्रत्यक्ष में। जैसे,—जाहिरा तो यह बात नही मालूम होती आगे ईश्वर जाने।

जाहिल—वि० [अ०] १ मूर्ख। अनाड़ी। अज्ञान। नासमझ। २. अनपढ़। विद्याहीन। जो कुछ पढ़ा लिखा न हो।

जाही—संज्ञा स्त्री० [सं० जाती] १ चमेली की जाति का एक प्रकार का सुगंधित फूल। २. एक प्रकार की आतिशबाजी।

जाहुष—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्यक्ति का नाम जिसकी रक्षा अश्विन् करते हैं (को०)।

जाह्नवी—संज्ञा स्त्री [सं०] जह्नु ऋषि से उत्पन्न, गंगा।

जिं(पु)—सर्व [हिं० जिन] जिसने। जो।

विशेष—'जिन' का यह रूप प्राचीन हिंदी काव्य में मिलता है।

जिंक—संज्ञा स्त्री० [अं० जिंक] जस्ते का क्षार।

विशेष—यह क्षार देखने मे सफेद रंग का होता है और रंग रोगन और दवा के काम मे आता है। यह क्लोराइड आफ जिंक, वा सलफेट आफ जिंक को सोडियम, बेरियम वा कैलसियम सलफाइड मे घोलने या हल करने से बनता है। सलफाइड के नीचे तलछट बैठ जाता है जिसे निकालकर सुखाने के बाद लाल आंच मे तपाकर ठंढे पानी मे बुझा लेते हैं। इसके बाद वह खरल में पीसी जाती है और बाजारो में बिकती है। इसे सफेदा भी कहते हैं। गुलाबजल या पानी में घोलकर इसे आँखों में डालते हैं जिससे आँख की जलन और दर्द दूर हो जाता है।

यौ०—जिंक आक्साइड।

जिंगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गनी] जिंगिन का पेड़।

जिंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गिनी] दे० 'जिंगनी'।

जिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गी] मजीठ (को०)।

जिंजर—संज्ञा पुं० [अं०] अदरख से बनी एक प्रकार की पेय। उ०—खन्ना ने जिंजर का ग्लास खाली करके सिगार सुलगाई।—गोदान, पृ० १२७।

जिंद¹—संज्ञा पुं० [अ० जिन या जिन्न] भूत प्रेत। मुसलमान भूत। दे० 'जिन'।

जिंद²—संज्ञा पुं० [हिं० जद] दे० 'जद'।

जिंद³—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'जिंदगी'। उ०—दे गिरद गिरंदा हुवा वे जिंद असाडी छीनी है।—घनानंद, पृ० १८०।

जिंदगानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] जीवन। जिंदगी।

जिंदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ जीवन।

मुहा०—जिंदगी से हाथ धोना=जीने से निराश होना।

२ जीवनकाल। आयु।

मुहा०—जिंदगी का दिन पूरा करना वा भरना=(१) दिन काटना। जीवन बिताना। (२) मरने को होना। आसन्नमृत्यु होना। जिंदगी का दुश्मन होना=जिंदगी देना। मौत के मुँह में जाना। उ०—हाथी आया ही चाहता है क्यों जिंदगी के दुश्मन हो गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८६।

जिंदा—वि० [फा० जिंदह्] १. जीवित। जीता हुआ।

यौ०—जिंदादिल। जिंदाबाद=अमर हो।

२ सक्रिय। सचेष्ट (को०)। ३ हराभरा (को०)।

जिंदादिल—वि० [फा० जिंदह्दिल] [संज्ञा जिंदादिली] खुशमिजाज। हँसोड़। दिल्लगीबाज। विनोदप्रिय।

जिंदादिली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जिंदह्दिली] प्रसन्न रहने और मनोविनोद करने का भाव।

जिंदाबाद—अव्य० [फा० ज़िंदह्बाद] चिरजीवी हो। जीवित हो।

यौ०—इनकलाब जिंदाबाद=क्रांति चिरजीवी हो।

जिंस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ प्रकार। किस्म। भाँति। २ वस्तु। द्रव्य। ३ सामग्री। सामान। ४ अनाज। गल्ला। रसद।

यौ०—जिंसवार।

५ आभरण। गहना (को०)। ६. लिंग (को०)। ७ जाति (को०)। ८ परिवार (को०)। ९. वर्ग (को०)। १०. पण्य द्रव्य या व्यापारिक वस्तु (को०)। ११ असबाब (को०)। १२ व्यवहार गणित (अंकगणित)।

यौ०—जिंसखाना=भंडारगृह।

जिंसवार—संज्ञा पुं० [फा०] पटवारियों का एक कागज जिसमे वे अपने हलके के प्रत्येक खेत मे बोए हुए अन्न का नाम परताल करते समय लिखते हैं।

जिँवाना—क्रि० स० [हिं० जेवना का सक० रूप] दे० 'जिमाना'।

जि—संज्ञा पुं० [सं० जि] पिशाच (को०)।

जिअ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीव, प्रा० जिअ] दे० 'जी'। उ०—राम भगति भूषित जिअ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी।—मानस, १।९।

जिअन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जीवन'। उ०—मरन जिअन एही पँथ एही आस निरास। परा सो गया पतारहि तिरा सो गया कविलास।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२६।

जिसीलगान—संज्ञा पुं० [हिं० जिसी+लगान] जिंस के रूप में ली जानेवाली लगान। फसल के रूप मे ली जानेवाली लगान।

जिअन(पु)—संज्ञा पुं०[सं० जीवन] जीवन। जीवन की पद्धति। उ०—जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा।—मानस, २।१५६।

जिअना†—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन।

जिअना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० जीना] दे० 'जीना'।

जिआना(पु)†—क्रि० स०[हिं०] दे० 'जिलाना'। उ०—तासों बैर कबहुँ नहि कीजै। मारे मरिय जिआए जीजै।—तुलसी (शब्द०)।

जिउँ(पु)—अव्य० [सं० यथा; अप० जिवँ] दे० 'ज्यों' या 'जिमि'।
• उ०—ऊँची चढ़ि चातृगि जिउँ, मागि निहालइ मुध्ध।—ढोला०, दू० १९।

जिउ†—संज्ञा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव'।

जिउका—संज्ञा स्त्री० [सं० जीविका] 'जीविका'।

जिउकिया—संज्ञा पुं० [हिं० जीविका वा जिउका] १. जीविका करनेवाला। रोजगारी। २ पहाड़ी लोग जो दुर्गम जगलों और पर्वतों से अनेक प्रकार की व्यापार की वस्तुएँ, जैसे,—चँवर, कस्तूरी, शिलाजीत, शेर के बच्चे, तथा जड़ी बूटी आदि ले आकर नगरों मे बेचते हैं।

जिउ तंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीव+तत्त्व] जी का तत्त्व। जी की बात। उ०—जेति नारि हँसि पूछहिं अमिय वचन जिउ तंत।—जायसी ग्रं०, पृ० १६४।

जिउतिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूतिया > सं० जीवितपुत्रिका] एक व्रत जो आश्विन कृष्णाष्टमी के दिन होता है। दे० 'जितापृमी'।

विशेष—इस व्रत को वे स्त्रियाँ जिनके पुत्र होते हैं, करती हैं। इसमें गले में एक धागा बाँधा जाता है जिसमें अनंत की तरह गाँठें होती हैं। कहीं कहीं यह व्रत आश्विन शुक्लाष्टमी के दिन किया जाता है।

जिउनार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेवनार'। उ०—भोजन प्रपच कीन्ह जिउनारा। सात बार घटा झनकारा।—कबीर म०, पृ० ४६३।

जिउलेवा—वि० [हिं० जीव + लेवा] दे० 'जिवलेवा'।

जिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ब्रज का एक लोकगीत, जिसमें दो दल बनाकर प्रश्नोत्तर होता है।

जिकर—संज्ञा पुं० [हिं० जिकिर] दे० 'जिकिर'। उ०—फिरै गैब का छत्र जिकर का मुस्क लगाई।—पलटू०, भा० १, पृ० १०६।

जिकाⓅ†—सर्व० [हिं० जिसका या जिनका का संक्षिप्त रूप] दे० 'जिसका'। उ०—भावी सब रत भाँमली, प्रिया करइ सिणगार। जिका हिया न फाटही, दूर गया भरतार।—ढोला०, दू० ३०३।

जिक्र—संज्ञा पुं० [अ० जिक्र] १. चर्चा। बातचीत। प्रसग।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—चलना।—चलाना।—छिड़ना।—छेड़ना।

यौ०—जिक्र मजकूर = बातचीत। चर्चा। जिक्रे – खैर = कुशल-चर्चा। शुभ चर्चा उ०—अतः सबसे पहले क्यों न कविसम्मेलनों ही का जिक्रे खैर किया जाय।—कुकुम। (भू०), पृ० २।

२ एक प्रकार का जप (को०)।

जिगⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यज्ञ'। उ०—हुण ताडका निज ठहरां। जिग मांड आरभ जाहरा।—रघु० रू०, पृ० ६७।

जिगत्नु¹—वि० [सं०] क्षिप्रगामी। तेज चलनेवाला [को०]।

जिगत्नु²—संज्ञा पुं० प्राणवायु। श्वास [को०]।

जिगन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जिगिन'।

जिगमिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाने की इच्छा [को०]।

जिगमिषु—वि० [सं०] जाने का इच्छुक [को०]।

जिगर—संज्ञा पुं० [फा० मि० सं० यकृत्][वि० जिगरी] १ कलेजा।

यौ०—जिगर कुल्फ = जिगर का ताला। हृदयरूपी ताला। उ०—मुसकानि सों लटकीली बानि आनि दिल में डोलें। अलकें रल्कें हलकें जिगर कुल्फ को जु खोलें।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४१। जिगर खराश = (१) जिगर को छीलनेवाला। (२) अप्रिय। दुःखदायी। जिगर गोशा। जिगरबंद = पुत्र (ला०)। जिगर-सोज = (१) दिल जलानेवाला। (२) दिल का जला।

मुहा०—जिगर कबाब होना = (१) कलेजा पक जाना या जलना। (२) बुरी तरह कुढ़ना। जिगर के टुकड़े होना = कलेजे पर सदमा पहुँचना। भारी दुःख होना। जिगर थामकर बैठना = असह्य दुःख से पीड़ित होना।

२ चित्त। मन। जीव। ३. साहस। हिम्मत। ४ गूदा। सत्त। सार। ५. मध्य। सार भाग। जैसे, लकड़ी का जिगर। ६ पुत्र। लड़का (प्यार से)।

जिगरकीड़ा—संज्ञा पुं० [फा० जिगर + हिं० कीड़ा] भेड़ों का रोग जिसमें उनके कलेजे में कीड़े पड़ जाते हैं।

जिगरा—संज्ञा पुं० [हिं० जिगर] साहस। हिम्मत। जीवट।

जिगरी—वि० [फा०] १. दिली। भीतरी। २ अत्यंत घनिष्ठ। अभिन्नहृदय। जैसे, जिगरी दोस्त।

जिगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गिनी] एक ऊँचा जंगली पेड़।

विशेष—इसके पत्ते महुए या तुन के पत्तों के समान होते हैं और टहनी में जोड़ के रूप में इधर इधर लगते हैं। यह पहाड़ों और तराई के जगलों में होता है। इसके फूल सफेद और फल बेर के बराबर होते हैं। वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा और कसैला लिखा है। इसकी प्रकृति गरम बतलाई गई है और वात, व्रण, अतीसार, और हृदय के रोगों में इसका प्रयोग लाभकारी कहा गया है। इसकी दतवन अच्छी होती है और मुख की दुर्गंध को दूर करती है।

पर्या०—जिगिनी। झिंगिनी। झिंगी। सुनिर्यासा। प्रमोदिनी। पार्वती। कृष्णशाल्मली।

जिगीषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जय की इच्छा। विजय प्राप्त करने की कामना। २ उद्योग। पेशा। व्यवसाय। ३. लड़ने की इच्छा। युद्ध करने की इच्छा। (को०)। ४ प्रतिस्पर्धा। लाग डाँट (को०)। ५ प्रमुखता (को०)।

जिगीषु—वि० [सं०] १ युद्ध की इच्छा रखनेवाला। २ विजय का इच्छुक [को०]।

जिगुरन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चोटीदार चकोर जो हिमालय में गढ़वाल से हजारा तक मिलता है।

विशेष—इसे जकी, सिंग मोनाल, और जेवर भी कहते हैं। इसकी मादा बादेल कहलाती है।

जिघत्नु—वि० [सं०] वध की इच्छा रखनेवाला। शत्रु [को०]।

जिघत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भूख। खाने की इच्छा। २. प्रयास करना [को०]।

जिघत्सु—वि० [सं०] भूखा। भोजन की इच्छा रखनेवाला [को०]।

जिघांसक—वि० [सं०] मारनेवाला। वध करनेवाला [को०]।

जिघांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मारने की इच्छा। २. प्रतिहिंसा। उ०—जिघांसा की वृत्ति प्रबल हुई तो छोटी छोटी सी बातों पर अथवा खाली संदेह पर ही दूसरों का सत्यानाश करने की इच्छा होगी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६०।

जिघांसु—वि० [सं०] दे० 'जिघांसक'।

जिघृक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पकड़ने की इच्छा [को०]।

जिघृक्षु—वि० [सं०] पकड़ने की इच्छा रखनेवाला [को०]।

जिघ्र—वि० [सं०] १ संदेही। संदेह या शंका करनेवाला। २. सूँघनेवाला। ३ समझनेवाला [को०]।

जिंच—संज्ञा स्त्री० वि० [?] दे० 'जिच्च'।

जिच्च¹—संज्ञा स्त्री० [?] १ बेबसी। तंगी। मजबूरी। २. शतरंज

मे शाह की वह अवस्था जब उसे चलने का कोई घर न हो और न अदंब में देने को मोहरा हो। ३ शतरज के खेल की वह अवस्था जिसमें किसी एक पक्ष का कोई मोहरा चलने की जगह न हो।

जिच्च²—वि० विवश। मजबूर। तग।

जिजमान(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० जजमान] दे० 'जजमान'। उ०—मनु तमगन लियो जीति चद्रमा सौतिन मध्य बँध्यो है। कै कवि निज जिजमान नृप मे सुदर श्राइ बस्यो है।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४५।

जिजिया¹†—सज्ञा स्त्री० [हिं० जीजी] बहन।

जिजिया²—सज्ञा पुं० [अ० जिजियह्] १. कर। महसूल। २. वह कर या महसूल जो मुसलमानी अमलदारी मे उन लोगों पर लगता था जो मुसलमान नहीं होते थे।

जिजीविषा—सज्ञा स्त्री० [सं०] जीने की इच्छा [को०]।

जिजीविषु—वि० [सं०] जीने की इच्छा रखनेवाला [को०]।

जिज्ञापयिषा—सज्ञा स्त्री० [सं०] जताने या ज्ञापन की इच्छा [को०]।

जिज्ञापयिषु—वि० [सं०] जनाने का इच्छुक [को०]।

जिज्ञासा—सज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा। ज्ञान प्राप्त करने की कामना। २. पूछताछ। प्रश्न। परिप्रश्न। तहकीकात।
क्रि० प्र०—करना।

जिज्ञासित—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की गई हो। पूछा हुआ [को०]।

जिज्ञासितव्य—वि० [सं०] जिज्ञासा योग्य। पूछने योग्य [को०]।

जिज्ञासु—वि० [सं०] १ जानने की इच्छा रखनेवाला। ज्ञानप्राप्ति के लिये इच्छुक। खोजी। २ मुमुक्षु (को०)।

जिज्ञासू—वि० [सं० जिज्ञासु] दे० 'जिज्ञासु'।

जिज्ञास्य—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की जाय। जिसे जानना हो। जिसके सबंध में पूछताछ की जाय।

जिठाई†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेठाई'।

जिठानी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेठानी'।

जिणि(पु)—सर्व० [हिं० जिन] दे० 'जिस'। उ०—जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ। उआँ लगे मो लग्गसी, ऊ ही लाख पसाउ।—ढोला०, दू० ७४।

जित—वि० [सं०] जीतनेवाला। जेता।
विशेष—इस अर्थ मे यह शब्द समासात में आता है। जैसे, इंद्रजित्, शत्रुजित्, विश्वजित् इत्यादि।

जित¹—वि० [सं०] जीता हुआ। पराजित। जिसे दूसरे ने जीता हो।

जित²†(पु)—क्रि० वि० [सं० यत्र] जिधर। जिस ओर। उ०—जात है जित बाजि केशो जात हैं तित लोग।—केशव (शब्द०)।
यौ०—जित तित्त = जहाँ तहाँ। वि० दे० 'जहाँ' के मुहावरे। उ०—सम विषम विहर वन सघन घन तहाँ सथ्थ जित तित्त हुश्र। भूल्यो सुसग कवियन वनह और नहीं जन सग दुश्र।—पृ० रा०, ६।१३।
मुहा०—जित कित होकर जाना = अव्यवस्थित जाना। इधर उधर जाना। उ०—पसु अरु पसुप दवानल माही। चकित भए जित कित ह्वै जाही।—नद० ग्र०, पृ० ३१०।

जितक—वि० [हिं० जित] दे० 'जितना'। उ०—अवतारी अवतार धरन अरु जितक विभूती। इस सब आश्रय के अधार जग जिहि की ऊती।—नद० ग्र०, पृ० ४४।

जितना—वि० [हिं० जिस + तना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जितनी] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जैसे,—जितना मैं दौडता हूँ उतना तुम नही दौड सकते।
विशेष—सख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जितने' का प्रयोग होता है। 'जितना' के पीछे 'उतना' का प्रयोग सबध पूरा करने के लिये किया जाता है। जैसे, जितना मीठा वह आम था उतना यह नहीं है।

जितकोप, जितक्रोध—वि० [सं०] जिसने क्रोध को जीत लिया हो।

जितनेमि—सज्ञा पुं० [सं०] पीपल का दड या डडा [को०]।

जितमन्यु—वि० [सं०] दे० 'जितकोप' [को०]।

जितरा†—सज्ञा पुं० [हिं० जिता] वह हलवाहा जिसे वेतन या मजदूरी नहीं दी जाती बल्कि खेत जोतने के लिये हल बैल दिए जाते हैं।

जितलोक—वि० [सं०] जिसने पुण्य कर्म से स्वर्गादि लोक प्राप्त किया हो।

जितवना(पु)—क्रि० स० [सं० ज्ञात] जताना। प्रकट करना। उ०—चितवत जितवत हित हिए किए तिरीछे नैन। भीजे तन दोऊ कँपै क्यों हू जप निबरै न।—बिहारी (शब्द०)।

जितवाना—क्रि० स० [हिं० जीतना का प्रे० रूप] जीतने देना। जीतने में समर्थ या उद्यत करना। जीतने म सहायक होना।

जितवार(पु)†—वि० [हिं० जीतना] जीतनेवाला। विजयी। उ०—जँह हो ब्रजेशकुमार। रनभूमि को जितवार।—सूदन (शब्द०)।

जितवैया†—वि० [हिं० जीतना + वैया (पु० प्रत्य०)] १. जीतनेवाला। २ जितानेवाला। किसी को विजयी बनानेवाला।

जितशत्रु—वि० [सं०] विजयी। जो शत्रु को पराजित कर चुका हो [को०]।

जितश्रम—वि० [सं०] जो श्रम या थकान का अनुभव न करता हो।

जितसंग—वि० [सं० जितसङ्ग] आसक्ति या आकर्षण से मुक्त [को०]।

जितस्वर्ग—वि० [सं०] पुण्य के प्रभाव से जो स्वर्ग जीत चुका हो [को०]।

जिता¹†—सज्ञा पुं० [हिं० जोतना वा जीतना] वह सहायता जो किसान लोग खेत की जोताई बोआई में एक दूसरे को देते हैं।

जिता²—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० जिती] दे० 'जितना'।

जिताक्ष—वि० [सं०] जितेंद्रिय [को०]।

जिताक्षर—वि० [सं०] बढ़िया पढ़ने लिखनेवाला [को०]।

जितात्मा—वि० [सं० जितात्मन्] जितेंद्रिय।

जिताना—क्रि० स० [हिं० जीतना का प्रे० रूप] जीतने मे समर्थ या उद्यत करना। उ०—ताही समै छैल छल कीन्हों है छबीली

सग, देव विपरीत वसि बूझत पहेली बात । पूछैं जो पियारी ताहि जानत अजान पिय, आपु पूछी प्यारी को जताइ कै जिताई जात ।—देव (शब्द०) ।

जितार†—वि० [सं० जित्वर] १ जीतनेवाला । विजयी । २ बली । जो जीत सके । ३ अधिक । भारी । वजनी ।

विशेष—प्राय पलडे पर रखी हुई वस्तु के सबध मे बोलते हैं ।

जितारि¹—वि० [स०] १ शत्रुजित् । २. कामादि शत्रुओं को जीतनेवाला ।

जितारि²—सज्ञा पु० बुद्धदेव का नाम ।

जिताष्टमी—सज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं का एक व्रत जिसे पुत्रवती स्त्रियाँ करती हैं ।

विशेष—यह व्रत अाश्विन कृष्णाष्टमी के दिन पडता है । इस दिन स्त्रियाँ सायकाल जलाशय में स्नान कर जीमूतवाहन की पूजा करती हैं और भोजन नहीं करती । इस व्रत के लिये उदयातिथि ली जाती है । इसको जिउतिया भी कहते हैं ।

जिताहार—वि० [सं०] भूख पर विजय प्राप्त करनेवाला [को०] ।

जिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] जीत । विजय ।

जितिक(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'जेतिक' । उ०—जितिक हुती ब्रज गो, वच्छ, बाछी । तेल हरद करि आछी काछी ।—नद० ग्रं०, पृ० २३५ ।

जिती—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'जितिक' । उ०—ब्रह्मादिक विभूति जग जिती । अड अड प्रति दिखियत तिती । —नद० ग्र०, पृ० २६७ ।

जितीक—वि० [हिं०] दे० 'जितिक' । उ०—पुनि जितीक गोपीजन भाई । ते रोहिनी सबहिं पहिराई ।—नंद० ग्र०, पृ० २३५ ।

जितुम—सज्ञा पुं० [यू० डिडुमाई] मिथुन राशि ।

जितेंद्रिय—वि० [सं० जितेन्द्रिय] १ जिसने अपनी इद्रियो को जीत लिया हो ।

विशेष—मनुस्मृति में ऐसे पुरुष को जितेंद्रिय माना है जिसे सुनने, छूने, देखने, खाने और सूँघने से हर्ष या विषाद न हो ।

२ शात । समवृत्तिवाला ।

जिते(पु)—वि० [हिं० जिस+ते] जितने (सख्यासूचक) । उ०—कत विदेस रहे हो जिते दिन देहु तिते मुकुतानि की माला ।—पद्माकर (शब्द०) ।

जितेक(पु)—वि० [हिं० जिते] जितना । उ०—नगनि मध्य नग हुते जितेक । लै लै ऊपर बैठे तितेक । —नद० ग्र०, पृ० ३१४ ।

जितै(पु)—क्रि० वि० [सं० यत्र, प्रा० यत्त] जिधर । जिस ओर । उ०—लाल जितै चितवै तिय पै, तिय त्यौं त्यौं चितौति सखीन की ओरी । —देव (शब्द०) ।

जितैया—वि० [सं० जित्+ऐया (प्रत्य०)] जितवैया । जितवार । जेता । उ०—प्रबल प्रतीक सुप्रतीक के जितैया रैया राम भावसिंह तेरे दान के दुरद हैं ।—मति० ग्र०, पृ० ४२७ ।

जितैला—वि० [हिं० जीत+ऐला (प्रत्य०)] जीतनेवाला । विजेता । उ०—जमींदार ने कहा, तुम किसी जमीदार का राज यो नही दे सकते । यह राज जितैला है । मगर ऐसा ही करना है तो उस जमींदार को बुला लाओ ।

जितो¹(पु)†—वि० [हिं० जिस] जितना (परिमाणसूचक) । उ०—(क) बैठि सदा सतसग ही मे विष मानि विषय रस कीर्ति सदाही । त्यों पद्माकर झूठ जितो जग जानि सुज्ञानहि के अवगाही ।— पद्माकर (शब्द०) । (ख) नख सिख सुदरता अवलोकत, कह्यो न परत सुख होत जितो री ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—सख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जिते' का प्रयोग होता है ।

जितो²—क्रि० वि० जिस मात्रा से । जितना ।

जितना(पु)—क्रि० स० [हिं० जीतना] दे० 'जीतना' । उ०—(क) द्वादस हथ्य मयद वर भिडपाल लिय मारि । जब वह कर सिंघिनि गहे को जित्ते नृप नारि । —पृ० रासो, पृ० १४ । (ख) रहत अचौंको नित ही ध्यान सु रावरो । अब मन लीनो जित्त भयो प्रीति सो बावरो । —ब्रज० ग्र०, पृ० ३८ ।

जित्तम—सज्ञा पुं० [यू० डिडुमाइ] मिथुन राशि ।

जित्थू—अव्य० [प०] जहाँ । उ०—अहो अहो घन आनंद जानी जित्थू तित्थू जांदा है ।— घनानद, पृ० १८१ ।

जित्य—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० जित्या] १ बडा हल । २ हेंगा । पटेला । सरावन (को०) ।

जित्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ हीग । २ सरावन । पटेला (को०) ।

जित्वर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जित्वरी] जेता । जीतनेवाला । विजयी ।

जित्वरी—सज्ञा स्त्री० [स०] काशीपुरी का एक प्राचीन नाम [को०] ।

जिथनी(पु)—सर्व० [?] जिससे । जिसका । उ०— तुका सज्जन तिन सूँ कहिये जिथनी प्रेम दुनाय ।—दक्खिनी०, पृ० १०८ ।

जिद—सज्ञा स्त्री० [अ० जिद] [वि० जिद्दी] १ उलटी बात या वस्तु । विरुद्ध वस्तु या बात । २ वैर । शत्रुता । वैमनस्य ।

क्रि० प्र०—करना । —बाँधना । —रखना ।

३ हठ । अड । दुराग्रह ।

क्रि० प्र०—आना । —करना । —बाँधना । —रखना ।

मुहा०—जिद पर आना = हठ करना । अडना । जिद चढना = हठ धरना । जिद पकडना = हठ करना ।

जिदियाना †— सज्ञा स्त्री० [अ० जिद से नामिक धातु] हठ करना । दुराग्रह करना । अडना । अड जाना ।

जिद्द†—सज्ञा स्त्री० [अ० जिद्द] दे० 'जिद' ।

जिद्दन—क्रि० वि० [अ०] जिद्द करते हुए । हठ करते हुए । जिद के कारण । [को०] ।

जिद्दी—वि० [अ० जिद्+ फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. जिद करनेवाला । हठी । अडनेवाला । जैसे, जिद्दी लडका । २ दुराग्रही । दूसरे की बात न माननेवाला ।

जिधर—क्रि० वि० [हिं० जिस+धर (प्रत्य०)] जिस ओर । जहाँ ।

विशेष—समन्वय मे इसके साथ 'उधर' का प्रयोग होता है। जैसे, जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

यौ०—जिधर तिधर = (१) जहाँ तहाँ। इधर उधर।

विशेष—अब इसका कम प्रयोग है।

(२) वेठिकाने। बिना ठौर ठिकाने।

मुहा०—जिधर चाँद उधर सलाम = अवसरवादिता। उ०—शर्मा जी डाँटते हैं, जिधर चाँद उधर सलाम।—मैला०, पृ० ३४४।

जिधाँ(पु)—अव्य [देश०] जहाँ। उ०—पिद्दे चलथे थे दस भायाँ मिलाकर। जिधाँ पिद्दे वो जगल बीच यकसर।—दक्खिनी०, पृ० ३३८।

जिन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २. सूर्य। ३ बुद्ध। ४ जैनों के तीर्थंकर।

यौ०—जिन सदन = जिनसद्म। जैन मंदिर।

जिन[2]—वि० १ जीतनेवाला। जयी। २ राग द्वेष आदि जीतनेवाला। ३ वृद्ध [को०]।

जिन[3]—वि० [सं० यानि] 'जिस' का बहुवचन।

जिन[4]—सर्व० [हिं०] 'जिस' का बहुवचन।

जिन[5]—संज्ञा पुं० [अ०] भूत।

मुहा०—जिन का साया = जिन लगना। जिन चढना, जिन सवार होना = क्रोध के आवेश में होना। क्रोधाध होना।

जिन[6]—अव्य० [हिं० जनि] मत। उ०—सोच करो जिन होहु सुखी मतिराम प्रवीन सबै नरनारी। मजुल वजुल कुंजन में घन, पुंज सखी ससुरारि तिहारी।—मति० ग्रं०, पृ० २६०।

जिन[7]—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की शराब। उ०—जिन का एक पेग।—वो दुनिया, पृ० १४२।

जिनगानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जिदगानी] दे० 'जिंदगानी'।

जिनगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० जिंदगी। उ०—यकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी।—मई०, पृ० २६।

जिनस(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० जिस] १ प्रकार। जाति। किस्म। उ०—बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहि बनें।—मानस, १। ६३। २ दे० 'जिंस'।

जिना—संज्ञा पुं० [अ० जिना] व्यभिचार। छिनाला।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—जिनाकार। जिनाकारी। जिनाबिलजब्र।

जिनाकार—वि० [अ० जिना + फा० कार] [संज्ञा जिनाकारी] व्यभिचारी।

जिनाकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिना + फा० कारी] पर-स्त्री-गमन। व्यभिचार।

जिनाबिलजब्र—संज्ञा पुं० [अ०] किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा और सम्मति के विरुद्ध बलात् संभोग करना।

जिनावर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जानवर'। उ०—कहै श्री हरिदास पिजरा के जिनावर लों, तरफराइ रह्यो उडिबे को कि हरि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३६०।

जिनि[1]—अव्य० [हिं० जनि] मत। नहीं। दे० 'जनि'। उ०—(क) यह उज्जल रसमाल कोटि जतनन के पोई। सावधान ह्वै पहिरो यहि तोरो जिनि कोई।—नंद० ग्रं०, पृ० २५। (ख) जिनि कटार गर लावसि समुझि देखु मन आप। सकति जीउ जो काटै महा दोष औ पाप। जायसी—(शब्द०)।

जिनि[2](पु)—सर्व० [हिं० जिन] जिन्होंने।

जिनिस†—संज्ञा स्त्री० [अ० जिंस] दे० 'जिंस'।

जिनिसवार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जिंसवार'।

जिनेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० जिनेन्द्र] १ एक बुद्ध। २. एक जैन संत [को०]।

जिन्न—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जिन' [को०]।

जिन्नात—संज्ञा पुं० [अ० जिन का बहु व०] भूत प्रेतादि।

जिन्नी[1]—वि० [अ०] जिन या भूत संबंधी [को०]।

जिन्नी[2]—संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जिसके वश मे भूत प्रेत हो [को०]।

जिन्ह[1](पु)—सर्व० [हिं० जिन] दे० 'जिन'।

जिन्ह[2](पु)†—संज्ञा पुं० [अ० जिन्न] दे० 'जिन' (भूत प्रेत)।

जिन्हार—अव्य० [फ़ा० जिनहार] हर्गिज। बिलकुल। उ०—कहे उस शर्त से ऐ नेक अतवार। खिलाफ इसमे न करना तुमे जिन्हार।—दक्खिनी, पृ० ३२५।

जिप्सी—संज्ञा पुं० [अ०] १ एक घूमती फिरती रहनेवाली जाति-विशेष। २ उक्त जाति का व्यक्ति।

जिबह—संज्ञा पुं० [अ० जब्ह] दे० 'जबह'। उ०—मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहि। साहिब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहि।—संतवाणी०, पृ० ६१।

जिब्भा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिब्हा†—संज्ञा पुं० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिभलो†—वि० [हिं० जीभ+ला (प्रत्य०)] चटोरा। चट्टू।

जिभ्या†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिम(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'जिमि'। उ०—ले धण एही सपजइ, तउ जिम ठल्लइ जाइ।—ढोला०, दू० ४५६।

जिमखाना—संज्ञा पुं० [अ० जिमनास्टिक का संक्षिप्त रूप जिम + हिं० खाना] वह सार्वजनिक स्थान जहाँ लोग एकत्र होकर व्यायामादि करते हैं। व्यायामशाला।

जिमनार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जिमाना] भोज। समष्टिभोज। उ०—जहाँ गए ब्रह्मभोज, साधु जिमनार यथेच्छ करते।—सुदर ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १४२।

जिमनास्टिक—संज्ञा पुं० [अ०] वे कसरतें जो काठ के दोहरे बल्लो या छड़ों आदि के ऊपर की जाती हैं। अंग्रेजी कसरत।

जिमाना—क्रि० स० [हिं० जीमना] खाना खिलाना। भोजन कराना।

जिमि(पु)—क्रि० वि० [हिं० जिस + इमि] जिस प्रकार से। जैसे। यथा। ज्यों। उ०—कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।—मानस, ७। १३०।

विशेष—समन्वय सूचित करने के लिये इस शब्द के आगे तिमि का प्रयोग होता है।

जिमित—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन [को०]।

जिमींदार—संज्ञा पुं० [हिं० जमीदार] दे० 'जमीदार'।

जिम्मा—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्] १ इस बात का भारग्रहण कि कोई बात या कोई काम अवश्य होगा और यदि न होगा तो उसका दोष भार ग्रहण करनेवाले के ऊपर होगा। किसी ऐसी बात के होने या न होने का दोष अपने ऊपर लेने की प्रतिज्ञा जिसका संबंध अपने से या दूसरे से हो। उत्तरदायित्व-पूर्ण प्रतिज्ञा। जवाबदेही। जैसे,—(क) मैं इस बात का जिम्मा लेता हूँ कि कल आपको चीज मिल जाएगी। (ख) इस बात का जिम्मा मेरा है कि ये एक महीने के भीतर आपका रुपया चुका देंगे। (ग) क्या रोज रोज खिलाने का मैंने जिम्मा लिया है।

क्रि० प्र०—करना। —लेना।

मुहा०—कोई काम किसी के जिम्मे करना = किसी काम को करने का भार किसी के ऊपर होना। किसी के जिम्मे रुपया आना, निकलना या होना = किसी के ऊपर रुपया ऋणस्वरूप होना। देना। ठहराना। जैसे,—हिसाब करने पर ५) रु० तुम्हारे जिम्मे निकलते हैं। किसी के जिम्मे रुपया डालना = किसी के ऊपर ऋण या देना ठहराना।

विशेष—जिम्मा और वादा में यह अंतर है कि वादा अपने ही विषय में किया जाता है और जिम्मा दूसरे के विषय में भी होता है।

२ सुपुर्दगी। देखरेख। संरक्षा। जैसे,—ये सब चीजें मैं तुम्हारे जिम्मे छोड़ जाता हूँ, कहीं इधर उधर न होने पाएँ।

जिम्मादार—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्+फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मादारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिम्मह्+दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मावार—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह् फा०+वार (प्रत्य०)] वह जो किसी बात के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो। जवाबदेह। उत्तरदाता।

जिम्मावारी—संज्ञा पुं० [हिं० जिम्मावार+ई (प्रत्य०)] १ किसी बात को करने या किए जाने का भार। उत्तरदायित्व। जवाबदेही। २ सुपुर्दगी। संरक्षा। उ०—हम इन चीजों को तुम्हारी जिम्मावारी पर छोड़ जाते हैं।

जिम्मी—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मी] इसलामी राज्य का वह कर जिसे गैर मुसलमान होने के कारण देना पड़ता था [को०]।

जिम्मीजर—संज्ञा स्त्री० [फा० जमी+जर] जर जमीन। उ०—पाखड डड रच्चै नहीं। जिम्मीजर ककर वरा। सभरिय काल कटक हनौ तो पाछै गुज्जर धरा। —पृ० रा०, १२। १२८।

जिम्मेदार—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्+फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिम्मह्+फा० दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मेवार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जिम्मावार'। उ०—जिस गाँव के ये हैं, वहाँ का जमींदार जिम्मेवार होगा।—काले०, पृ० ५।

जिम्मेवार—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्+फ़ा० वार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेवारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिम्मह्+फ़ा० वारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जियं†—संज्ञा पुं० [सं० जीव] मन। चित्त। जी। उ०—(क) अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई। —तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रसन चंद सम जतिय दिन इक मन हट्ट जिय। इह आराधत भट्ट प्रगट प्रचाम वीर विय। —पृ० रा०, ६। २६।

यौ०—जियवधा=हत्या करनेवाला। जल्लाद।

जियन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जीवन] जीवन। जिंदगी।

जियनि†—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन] १. जीवन। २ जीवन का ढंग। रहन सहन। आचरण।

जियरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जीव] १. जीव। मन। चित्त। उ०—मेरो स्वभाव चितैबे को माई री लाल निहारि कै वसी बजाई। या दिन तें मोहि लागी ठगोरी री लोग कहैं कोउ बावरी माई। यों रसखानि घिरयो सिगरो ब्रज जानत वे कि मेरो जियरा ई। जो कोउ चाहे भलो अपनो तो सनेह न काहू सो कीजिए माई।—रसखान (शब्द०)। २ प्राण। उ०—जियरा जावगे हम जानी। पाँच तत्व को बनो है पिंजरा जिसमें वस्तु बिरानी। आवत जावत कोइ न देखा डूब गया बिन पानी। —कबीर श०, भा०, पृ०।

जियाँकार—वि० [फा० जियाँकार] १ हानि पहुँचानेवाला। २ बदमाश। बुरा आचरण करनेवाला [को०]।

जिया¹—संज्ञा स्त्री० [अ० जिया] १ सूर्य का प्रकाश। २ चमक। आभा। कांति [को०]।

जिया²†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाई या धाय] दूध पिलानेवाली दाई।

जिया³†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जी' और 'मन'।

जिया⁴†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीजी या बीबी] बड़ी बहन।

जियाजंतु†—संज्ञा पुं० [हिं० जीवजंतु] दे० 'जीवजंतु'।

जियादत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियादत] १. आधिक्य। अतिशयता। २ अत्याचार। जुल्म [को०]।

जियादती—संज्ञा स्त्री० [अ० जियादत+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'ज्यादती'।

जियादा—वि० [अ० जियादह्] दे० 'ज्यादा'।

जियान—संज्ञा पुं० [फ़ा० जियान] घाटा। टोटा। नुकसान। हानि। क्षति।

क्रि० प्र०—उठाना। —होना। —करना।

जियाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जीना] १ जिलाना। उ०—अब्रहूँ करि माया जिव फेरी। मोहि जियाव देहु पिय मोरी। —जायसी (शब्द०)। २ पालना। पोसना। उ०—बाघ बच्छानि को गाय जियावत, बाघिनी पै सुरभी सुत चोपै। —गुमान (शब्द०)।

जियापोता—संज्ञा पुं० [हिं० जिलाना+पूत] पुत्रजीवा का पेड़। पतजिव।

जियाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियाफ़त] १ आतिथ्य। मेहमानदारी। २ भोज। दावत।

मुहा०—जियाफत करना=(१) आदर सत्कार करना। (२) खाना खिलाना। भोज देना।

जियार[१]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जियरा'। उ०—जावै बीत जियार, जेहल पछतावै जिके।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १६।

जियार[२]†—वि० [हिं०] साहसी। हिम्मती। जीवटवाला।

जियारत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियारत] १ दर्शन। २ तीर्थदर्शन।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—जियारत लगना=मेला लगना। दर्शन के लिये दर्शकों की भीड़ होना।

जियारतगाह—संज्ञा पुं० [अ० जियारत+फ़ा० गाह] १. पवित्र स्थान। तीर्थ। २ दरबार। दरगाह। ३ दर्शकों की भीड़ या जमघट।

जियारती—वि० [अ० जियारत+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १ दर्शक। २ तीर्थयात्री।

जियारा†—संज्ञा पुं० [हिं०] १. जिलाना। जीवित रखना। पालना पोसना। २. आहार। चारा। ३ जीविका। ४ साहस। हियाव।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

जियारीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [?] १ जीवन। जिंदगी। उ०—उनको लै मान जियो याही मे प्रमान भयो दयो जो पै जाइ तौ ही तौ जियारी है।—प्रिया० (शब्द०)। २ जीविका। उ०—राका पति बाँका तिया बसै पुर पडुर मे उर में न चाह नेकु रीति कछु न्यारियै। करीन बीन करि जीविका नवीन करैं, घरे हरि रूप हिये, ताही सो जियारियै।—प्रिया (शब्द०)। ३ जीवट। जिगरा। हृदय की दृढ़ता। साहस।

जियास—संज्ञा पुं० [हिं० जी] विश्वास। धैर्य। उ०—सांम कमधा सांपनो उर अपनो जियास।—रा० रू०, पृ० ३६७।

जिरगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जिरगह्] १ झुंड। गरोह। २. मडली। ३ पठानों की पचायत (को०)।

जिरण—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा [को०]।

जिरह[१]—संज्ञा पुं० [अ० जरह] १. हुज्जत। खुचुर। २. फेर फार के प्रश्न जिनसे उत्तरदाता घबड़ा जाय और सच्ची बात छिपा न सके। ऐसी पूछताछ जो किसी से उसकी कही हुई बातो की सत्यता की जाँच के लिये की जाय।

क्रि० प्र०—करना।— होना।

मुहा०—जिरह काढ़ना या निकालना=खोद विनोद करना। बहुत अधिक पूछताछ करना। बात में बात निकालना। खुचुर निकालना।

३. वह सूत की डोरी जो बैसर में ऊपर नीचे बय के गाँधने के लिये लगी रहती है (जुलाहे)। ४. चीरा। घाव (को०)।

जिरह[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जिरह्] लोहे की कड़ियों से बना हुआ कवच। वर्म। बकतर।

यौ०—जिरहपोश=जो बकतर पहने हो। कवची।

जिरही[१]—वि० [फ़ा० जिरही] जो जिरह पहने हो। कवचधारी।

जिरही[२]—संज्ञा पुं० सैनिक [को०]।

जिराअत—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] खेती। कृषि कर्म।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—जिराअत पेशा=खेतिहर। किसान। कृषक।

जिरात†—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] दे० 'जिराअत'।

जिराफ—संज्ञा पुं० [अ० जिराफ या ज़राफ़] घास के मैदानों का एक वन्य पशु।

विशेष—यह अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका के घास के मैदानों में झुंडों मे फिरा करता है। इसके पैरो मे खुर होते हैं और इसका अगला धड़ पिछले से भारी होता है। गरदन इसकी ऊँट की सी लंबी होती है। यह अठारह फुट ऊँचा होता है। इसमें सिर पर दो छोटे छोटे सींग होते हैं जो रोएँदार चमड़े से ढके रहते हैं। इसकी आँखें सुंदर और उभड़ी होती हैं, जिनसे यह बिना सिर मोड़े पीछे देख सकता है। इसकी नाक की बनावट कुछ ऐसी होती है कि यह जब चाहे उसे बंद कर सकता है। जीभ इसकी इतनी लंबी होती है कि यह उसे मुँह से सत्रह इंच बाहर निकाल सकता है। इसके शरीर पर हिरन के से रोएँ और बड़ी बड़ी चित्तियाँ होती हैं। यह ताड़ों और खजूरों की पत्तियाँ खाता है।

जिरायत†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जिराअत'।

जिरिया—संज्ञा पुं० [हिं० जीरा] एक प्रकार का धान जो जीरे की तरह पतला और लंबा होता है।

जिलवा—वि० [अ० जलवह्] आत्मप्रदर्शन। हावभाव। शोभा। उ०—नरेशों की समान लालसा पग पग पर अपना जिलवा दिखाती थी।—काया०, पृ० १७०।

जिला[१]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चमक दमक। ओप। पानी।

मुहा०—जिला करना या देना=किसी वस्तु को माँजकर तथा रोगन आदि चढ़ाकर चमकाना। सिकली करना। जैसे,—हथियारों पर जिला देना, तलवार पर जिला देना।

यौ०—जिलाकार=सिकलीगर।

२. माँजकर तथा रोगन आदि चढ़ाकर चमकाने का कार्य। झलकाने की क्रिया। ओप देने का कार्य।

जिला[२]—संज्ञा पुं० [अ० जिलअ] १. प्रांत। प्रदेश। २ भारतवर्ष में किसी प्रांत का वह भाग जो एक कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंध में हो। ३. किसी इलाके का छोटा विभाग या अंश।

यौ०—जिलादार।

४ किसी जमींदार के इलाके के बीच बना हुआ वह मकान जिसमे वह या उसके आदमी तहसील वसूल आदि के लिये ठहरते हों।

ज़िला जज—संज्ञा पुं० [अ० ज़िलअ + अ० जज] जिले का प्रधान न्यायाधीश । जिलाधीश ।

जिलाट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मढा होता था और जो थाप से बजाया जाता था ।

जिलादार—संज्ञा पुं० [अ० ज़िलअ + फ़ा० दार (प्रत्य०)] १ सरबराहकार । सजावल । २ वह अफसर जिसे जमींदार अपने इलाके के किसी भाग में लगान वसूल करने के लिये नियत करता है । ३ वह छोटा अफसर जो नहर, अफीम आदि संबंधी किसी हलके में काम करने के लिये नियत हो ।

जिलादारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जिलादार + ई (प्रत्य०)] जिलेदार का काम या पद ।

जिलाधीश—संज्ञा पुं० [अ० जिलअ + सं० अधीश] दे० 'जिला मैजिस्ट्रेट' ।

जिलाना—क्रि० स० [हिं० जीना का सक रूप] १ जीवन देना । जी डालना । जिंदा करना । जीवित करना । जैसे, मुर्दा जिलाना । २. पालना । पोसना । जैसे, तोता जिलाना, कुत्ता जिलाना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्राय ऐसे ही पशुओ या जीवों के लिये होता है जिनसे मनुष्य कोई काम नही लेता, केवल मनोरंजन के लिये पालता है । जैसे,—कुत्ता, विल्ली, तोता, शेर आदि । घोड़े, हाथी, ऊँट, गाय, वैल आदि के लिये इसका प्रयोग नही होता ।

३. मरने से बचाना । मरने न देना । प्राणरक्षा करना । जैसे,—सरकार ने अकाल में लाखों आदमियो को जिला लिया । ४. धातु के भस्म को फिर धातु के रूप में लाना । मूर्छित धातु को पुन जीवित करना ।

[ज़ि]ला बोर्ड—संज्ञा पुं० [अ० जिला + अं० बोर्ड] किसी जिले के करदाताओं के प्रतिनिधियो की वह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्रामबोर्डों की सहायता से गाँवों की सड़कों की मरम्मत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलाना, चेचक के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रबंध आदि करना है ।

विशेष—म्युनिसपैलिटी के समान ही जिलाबोर्ड के सदस्यो का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है ।

जिला मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अ० + अं०] जिले का बडा हाकिम जो फौजदारी मामलो का फैसला करता है । जिला हाकिम ।

विशेष—हिंदुस्तान में जिले का कलक्टर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो दो पदों के कारण दो नामो से पुकारा जाता है । मालगुजारी संबंधी कार्यों का अध्यक्ष (प्रधान) होने से कलक्टर और फौजदारी मामलो का फैसला करने के कारण वह मैजिस्ट्रेट कहलाता है ।

जिलासाज—संज्ञा पुं० [अ० जिला + फा० साज] सिकलीगर । हथियारो पर ओप चढ़ानेवाला ।

ज़िलाह⑭—संज्ञा पुं० [अ० जल्लाद ?] अत्याचारी । उ०—ज्वाला की जलूसन, जलाक जग जालन की, जोर की जमा है जोम जुलुम जिलाहे की ।—पद्माकर ग्रं० पृ० २२८ ।

जिलिवदार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जिलेदार' । उ०—अर्जी लिखी फौजदार ले पोंचे जिलिवदार । जाकै देव दरबार चोपदार के कहिने ।—दक्खिनी०, पृ० ४६ ।

जिलेदार—संज्ञा पुं० [हिं० जिलादार] दे० 'जिलादार' ।

जिलेबी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जलेबी] दे० 'जलेबी' ।

जिलो⑭—संज्ञा पुं० ? अनुचर । उ०—अथा बादशाहमों बडा नामदार । जिलो में चले उसके कई ताजदार ।—दक्खिनी०, पृ० १६८ ।

जिल्द—संज्ञा स्त्री० [अ०] [वि० जिल्दी] १. खाल । चमड़ा । खलड़ी । २ ऊपर का चमड़ा । त्वचा । जैसे, जिल्द की बीमारी । ३ वह पट्ठा या दफ्ती जो किसी किताब की सिलाई जुजबंदी आदि करके उसके ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—बाँधना ।

यौ०—जिल्दबंद । जिल्दसाज ।

४ पुस्तक की एक प्रति ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग उस समय होता है जब पुस्तकों का ग्रहण सख्या के अनुसार होता है । जैसे,—दस जिल्द पद्मावत, एक जिल्द रामायण ।

५. किसी पुस्तक का वह भाग जो पृथक् सिला हो । भाग । खड । जैसे,—दादूदयाल की बानी दो जिल्दों में छपी है ।

जिल्दगर—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फ़ा० गर (प्रत्य०) । जिल्दबंद ।

जिल्दबंद—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फा० बंद (प्रत्य०)] वह जो किताबो की जिल्द बाँधता हो । जिल्द बाँधनेवाला ।

जिल्दबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्द + फा० बंदी (प्रत्य०)] पुस्तकों की जिल्द बाँधने का काम । जिल्द साजी ।

जिल्दसाज—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फा० साज (प्रत्य०)] संज्ञा जिल्दसाजी] जिल्दबंद । जिल्द बाँधनेवाला ।

जिल्दसाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्द + फा० साजी (प्रत्य०)] जिल्दबंदी । किताबो पर जिल्द बाँधने का काम ।

जिल्दी—वि० [अ० जिल्द + फा० ई (प्रत्य०) त्वक संबंधी । त्वचा या चमड़े से संबंध रखनेवाला । जैसे, जिल्दी बीमारी ।

जिल्लत—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्लत] १ अनादर । अपमान । तिरस्कार । बेइज्जती ।

मुहा०—जिल्लत उठाना = १ अपमानित होना । २ तुच्छ होना । हेठा ठहरना । जिल्लत देना = (१) अपमानित करना । (२) लज्जित करना । हतक करना । हेठा ठहराना । जिल्लत पाना = अपमानित होना ।

२. दुर्गति । दुर्दशा । हीन दशा । जैसे, जिल्लत मे पड़ना या फँसना ।

जिल्ली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह आसाम में होता है और घर की छाजन आदि में लगता है ।

जिल्वा—संज्ञा पुं० [अ० जल्वह्] दे० 'जल्वा' । उ०-एक दिन ऐसा

आवेगा जब तमाम दुनिया में ईमान का जिल्वा होगा।—मा० अ०, भा० १, पृ० ५२६।

जिल्हौर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में काटा जाता है।

जिवा—संज्ञा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव'।

जिवड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीव + डा (प्रत्य०)] दे० 'जीव'। उ०—ऐसा जिवड़ा न मिलाए जो फरक विछोर।—कबीर म०, पृ० ३२५।

जिवमार(पु)—वि० [हिं० जीव + मार] जान मारनेवाला। उ०—जल नहिं, थल नहिं, जीव और सृष्टि नहिं, काल ज्विमार नहिं ससय सताया।—कबीर रे०, पृ० ३३।

जवरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'जेवरी'। उ०—आदि अत जो कोउ न पावै। तनक जिवरिया रित फिरि आवै।—नंद० ग्र०, पृ० २५०।

जिवाँना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० १ 'जिमाना'। २. 'जिवाना'।

जिवाजिव—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

जिवाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जीव (=जीवन)] जीवित करना। जिलाना। उ०—ईहि काँटै मो पाइ गड़ि लीनी मरति जिवाइ। प्रीति जनावति भीति सौं मीत जु काढ्यौ आइ।—बिहारी र०, दो० ६०५।

जिवारी(पु)—वि० [हिं० जिव] जिलानेवाली। उ०—सोभा समूह भई घनआनंद मुरति अग अनंग जिवारी।—घनानद, पृ० १०६।

जिवाला(पु)—संज्ञा पुं० [मरा० जिवाला] जीवन। उ०—जिव का वी यो जिवाला रूपों में रूप आला। सबके ऊपर है बाला नित हसत रस तू मीरा'।—दक्खिनी, पृ० ११०।

जिवावना—क्रि० स० [जिवाना ?] जिलाना। जियाना। उ०—आनदघन अघ ओघबहावन सुदृष्टि जिवावन वेद भरत है साखी।—घनानद, पृ० ४१८।

जिवैया—वि०[हिं०]जीमनेवाला। खानेवाले। उ०—तुम्हारे सिवाय और कोई जिवैया नही बैठा है।—मान भा०, ५, पृ० २७।

जिष्ट(पु)—वि० [सं० ज्येष्ठ] दे० 'ज्येष्ठ'। उ०—अन अभूत सु उन्नत जिष्ट। वदन भर कि वद्ध मनु पिष्ट।—पृ० रा०, १।२५७।

जिष्णु[1]—वि०[सं०]जीतनेवाला। विजय प्राप्त करनेवाला। विजयी।

जिष्णु[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ इंद्र। ३ अर्जुन। ४ सूर्य। ५ वसु।

जिस[1]—वि० [सं० यस्य, प्रा० जस्स, हिं० जिस] 'जो' का वह रूप जो उसे विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ आने से प्राप्त होता है। जैसे, जिस पुरुष ने, जिस लड़के को, जिस छड़ी से। जिस घोड़े पर, जिस घर में, इत्यादि।

जिस[2]—सर्व० 'जो' का वह अगरूप, विकारीरूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, जिसने, जिसको, जिससे, जिसका, जिस पर, जिनमें।

विशेष—सबध पूरा करने के लिये 'जिस' के पीछे 'उस' का प्रयोग होता है। जैसे,—जिसको देंगे उससे लेंगे। पहले 'उस' के स्थान पर 'तिस' का प्रयोग होता था।

जिसउ(पु)—वि० [रा०] जैसा। उ०—साल्ह कुँवर सुरपति जिसउ, रूपे अधिक अनूप। लाखाँ बगसइ माँगया, लाख मँगण सिर भूप।—ढोला०, दू० ६३।

जिसनू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जिष्णु] दे० 'जिष्णु'—३। उ०—भहै भ्रिकुटी धनुक समानू। है बरुनी जिसनू के बानू।—इंद्रा०, पृ० ६०।

जिसा(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'जैसा'। उ०—मोकु दोस न दीज्यो कोई, जिसा करम भुगताऊँ सोई।—रामानद०, पृ० २६।

जिसिम—संज्ञा पुं० [अ० जिस्म] दे० जिस्म'।

जिसौह(पु)—क्रि० वि०, वि० [हिं० जिसउ] जैसा। उ०—नृसिंह विराजत सिंह जिसौह। विभीषन भा कयमास जिसौह।—पृ० रा०, ५।३६।

जिस्का—वि० [हिं०] जिसका। दे० 'जिस'। उ०—उन्होंने ऐसा प्रेम लगाया जिस्का पारावार नहीं।—श्यामा०, पृ० १२१।

विशेष—पुराने लेखक 'जिसका' को इसी प्रकार लिखते थे।

जिस्ता[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जस्ता] दे० 'जस्ता'।

जिस्ता[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दस्ता] दे० 'दस्ता'।

जिस्म—संज्ञा पुं० [अ०] शरीर। देह।

जिस्मानी—वि० [अ०] शरीर सबधी। शारीरिक [को०]।

जिस्मी—वि० [अ० जिस्म + फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'जिस्मानी' [को०]।

जिह[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० ज़ह, सं० ज्या] चिल्ला। रोदा। ज्या। धनुष की प्रत्यचा। उ०—तिय कित कमनैती पढी विन जिह भौंह कमान। चित चल बेझे चुकति नहिं बंक बिलोकनि बान।—बिहारी (शब्द०)।

जिह(पु)[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'जिस'।

जिहन—संज्ञा पुं० [अ० जिह्‌न] समझ। बुद्धि। धारणा।

मुहा०—जिहन खुलना=बुद्धि का विकास होना। जिहन लड़ना=बुद्धि का काम करना। बुद्धि पहुँचना। जिहन लड़ाना=सोचना। बुद्धि दौड़ाना। ऊहापोह करना।

जिहाज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जहाज] मरुभूमि का जहाज अर्थात् ऊँट। उ०—ऊमर विच छेती घणी, घाते गयउ जिहाज। चारण ढोलइ सौंमुहउ, आइ कियउ सुभराज।—ढोला०, दू० ६४३।

जिहाद—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० जिहादी] १ धर्म के लिये युद्ध। मजहबी लड़ाई। धार्मिक युद्ध। २ वह लड़ाई जो मुसलमान लोग अन्य धर्मावलबियों से अपने धर्म के प्रचार आदि के लिये करते थे।

मुहा०—जिहाद का झंडा=वह पताका जो मुसलमान लोग भिन्न धर्मवालो से युद्ध करने के लिये लेकर चलते थे। जिहाद का झंडा खड़ा करना=मजहब के नाम पर लड़ाई छेड़ना।

जिहान(पु)[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० जहान] संसार। जहान। उ०—मेक सयत समपत्त मैं, पैंतीसै जसराज। मैं हरिधाम जिहान तज, हिंदुसथान जिहान।—रा० रू०, पृ० १७।

जिहान[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जाना। गमन। २. पाना। प्राप्त करना [को०]।

जिहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय [को०]।

जिहालत—संज्ञा स्त्री० [अ० जहालत] मूर्खता। अज्ञानता

जिहासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्याग करने की इच्छा।

जिहासु—वि० [सं०] त्याग करने की इच्छा करनेवाला।

जिहीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरने की इच्छा। लेने की इच्छा। हरण करने की कामना।

जिहीर्षु—वि० [सं०] हरण करने की इच्छा रखनेवाला।

जिहेज—संज्ञा पुं० [अ० जिहेज] दे० 'जहेज' [को०]

जिह्म[1]—वि० [सं०] १. वक्र। टेढ़ा। २ दुष्ट। क्रूर प्रकृतिवाला। ३ कुटिल। कपटी। ४ अप्रसन्न। खिन्न। ५. मंद। ६ पीला। पीतवर्ण का (को०)।

जिह्म[2]—संज्ञा पुं० १ तगर का फूल। २ अधर्म। ३ कपट (को०)। ४ बेईमानी। मिथ्यात्व (को०)।

जिह्मग[1]—वि० [सं०] १ कुटिल गतिवाला। टेढ़ी चाल चलनेवाला। २ मंद गति। धीमा। ३. कुटिल। कपटी। चालबाज।

जिह्मग[2]—संज्ञा पुं० साँप।

जिह्मगति[1]—वि० [सं०] टेढ़ा मेढ़ा चलनेवाला [को०]।

जिह्मगति—संज्ञा पुं० साँप [को०]।

जिह्मगामी—वि० [सं० जिह्मगामिन्][वि०स्त्री० जिह्मगामिनी] १. टेढ़ा चलनेवाला। २. कुटिल। कपटी। चालबाज। ३ मंदगामी। सुस्त। धीमा।

जिह्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ टेढ़ापन। वक्रता। २. मंदता। धीमापन। ३ कुटिलता। कपट। चालबाजी।

जिह्ममेहन—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक।

जिह्मयोधी[1]—वि० [सं० जिह्मयोधिन्]कपट युद्ध करनेवाला [को०]।

जिह्मयोधी[2]—संज्ञा पुं० भीम [को०]।

जिह्मशल्य – संज्ञा पुं० [सं०] खैर। खदिर। कत्था।

जिह्माक्ष—वि० [सं०] ऐंचा ताना [को०]।

जिह्मित—वि० [सं०] घूमा हुआ। फिरा हुआ। चकित। विस्मित।

जिह्मीकृत—वि० [सं०] झुकाया हुआ। टेढ़ा किया हुआ।

जिह्व – संज्ञा पुं० [सं०] १ जिह्वा।

विशेष—इसका प्रयोग समस्त पदों में मिलता है। जैसे, द्विजिह्व। २. तगरमूल (को०)।

जिह्वक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें जीभ मे काँटे पड़ जाते हैं, रोगी से स्पष्ट बोला नही जाता, जीभ लड़खड़ाती है।

विशेष—इसकी अवधि १६ दिन की है। इसमें श्वास कास आदि भी हो जाते हैं। इस रोग में रोगी प्रायः गूँगे या बहरे हो जाते हैं।

जिह्वल—वि० [सं०] जिभला। चट्टू। चटोरा।

जिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जीभ। २ आग की लपट (को०)। ३ वाक्य (को०)।

जिह्वाग्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ की नोक। टूँड।

मुहा०—जिह्वाग्र करना = कठस्थ करना। जबानी याद करना। किसी विषय को इस प्रकार रटना या घोखना कि उसे जब चाहे तब कह डाले। जिह्वाग्र होना = जबानी याद होना।

जिह्वाग्र[2]—वि० याद रखनेवाला या वाली (चीज या ग्रंथ)।

जिह्वाच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ काटने का दंड।

विशेष—जो लोग माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे उनको यही दंड दिया जाता था।

जिह्वाजप—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रानुसार एक प्रकार का जप जिसमें जिह्वा हिलने का विधान है।

जिह्वानिर्लेखन—संज्ञा पुं० [सं०] जीभी [को०]।

जिह्वानिर्लेखनिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जिह्वानिर्लेखन'।

जिह्वाप—संज्ञा पुं० [सं०] वे पशु जो जीभ से पानी पिया करते हैं। जैसे, कुत्ते, बिल्ली, सिंह आदि।

जिह्वामल—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ पर बैठा हुआ मैल [को०]।

जिह्वामूल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जिह्वामूलीय] जीभ की जड़ या पिछला स्थान।

जिह्वामूलीय[1]— वि० [सं०] जो जिह्वा के मूल से सबंध रखता हो।

जिह्वामूलीय[2]—संज्ञा पुं० वह वर्ण जिसका उच्चारण जिह्वामूल से हो।

विशेष—शिक्षा के अनुसार ऐसे वर्ण अयोगवाह होते हैं और वे संख्या मे दो हैं ⌣क और ⌣ख। क और ख के पहले विसर्ग आने से जिह्वामूलीय हो जाते हैं। कोई कोई वैयाकरण कवर्ग मात्र को जिह्वामूलीय मानते हैं।

जिह्वारद—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

जिह्वारोग—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ का रोग।

विशेष—सुश्रुत के मत से यह पाँच प्रकार का होता है। तीन प्रकार के कटक जो वात, पित्त और कफ के प्रकोप से जीभ पर पड़ जाते हैं, चौथा अलास जिसमें जिह्वा के नीचे सूजन हो जाती है और पाँचवाँ उपजिह्विका जिसमें जिह्वा के मूल मे सूजन हो जाती है और लार टपकती है। इन पाँचों मे अलास असाध्य है। इसमे जीभ के तले की सूजन बढ़कर पक जाती है।

जिह्वालिह—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

जिह्वालौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] चटोरापन। स्वादलोलुपता [को०]।

जिह्वाशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] खदिर। खैर का पेड़। कत्था।

जिह्वास्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जिह्वारोग जिसमें वायु स्वरवाहिनी नाड़ियों में प्रवेश करके उन्हें स्तंभित कर देता है।—माधव, पृ० १४२।

जिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभी।

जिह्वोल्लेखनिका, जिह्वोल्लेखनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] जीभी [को०]।

जींगन†—सज्ञा पुं० [सं० जृगण] खद्योत । जुगनू । उ०—बिरह जरी लखि जींगननि कह्यौ सुवह कै बार । अरी आउ उठि भीतरै वरसति आज अँगार ।—बिहारी (शब्द०) ।

जी—सज्ञा पुं० [सं० जीव] १. मन । दिल । तबीयत । चित्त । उ०—(क) कहत नसाइ होइ हिय नीकी । रीझत राम जानि जन जीकी । मानस, १।२८ । २ हिम्मत । दम । जीवट । ३ सकल्प । विचार । इच्छा । चाह ।

मुहा०—जी अच्छा होना = चित्त स्वस्थ होना । रोग आदि की पीडा या वेचैनी न रहना । नीरोग होना । जैसे,—दो तीन दिन तक बुखार रहा, आज जी अच्छा है । किसी पर जी आना = किसी से प्रेम होना । हृदय का किसी के प्रेम मे अनुरक्त होना । जी उकताना = चित्त का उचाट होना । चित्त न लगना । एक ही अवस्था में बहुत काल तक रहते रहते परिवर्तन के लिये चित्त व्यग्र होना । तबीयत घबराना । जैसे,—तुम्हारी बातें सुनते सुनते तो जी उकता गया । जी उचटना = चित्त न लगना । चित्त का प्रवृत्त न होना । मन हटना । किसी कार्य, वस्तु या स्थान आदि से विरक्ति होना । जैसे,—अब तो इस काम से मेरा जी उचट गया । जी उठना = दे० 'जी उचटना' । जी उठाना = चित्त हटाना । मन फेर लेना । विरक्त होना । अनुरक्त न रहना । जी उड़ जाना = भय, आशका आदि से चित्त सहसा व्यग्र हो जाना । चित्त चचल हो जाना । धैर्य जाता रहना । जी में घबराहट होना । जैसे,—उसकी बीमारी का हाल सुनते ही मेरा तो जी उड गया । जी उदास होना = चित्त खिन्न होना । जी उलट जाना = (१) मन का वश मे न रहना । चित्त चंचल और अव्यवस्थित हो जाना । चित्त विक्षिप्त हो जाना । होश हवास जाता रहना । (२) मन फिर जाना चित्त विरक्त होना । जी करना = (१) हिम्मत करना । हौसला करना । साहस करना (२) जी चाहना । इच्छा होना । जैसे,—अब तो जी करता है कि यहाँ से चल दें । जी काँपना = भय आशका आदि से कलेजा धक धक करना । हृदय थर्राना । डर लगना । जैसे,—वहाँ जाने का नाम सुनते ही जी काँपता है । जी का बुखार निकालना = हृदय का उद्वेग बाहर करना । क्रोध, शोक, दु ख आदि के वेग को रो कलपकर या बक झककर शांत करना । ऐसे क्रोध या दु ख को शब्दों द्वारा प्रकट करना जो बहुत दिनो से चित्त को सतप्त करता रहा हो । जी का बोझ या भार हलका होना = ऐसी बात का दूर होना जिसकी चिंता चित्त में बराबर रहती आई हो । खटका मिटना । चिंता दूर होना । जी का अमान माँगना = प्राण रक्षा की प्रतिज्ञा की प्रार्थना करना । किसी काम के करने या किसी बात के कहने के पहले उस मनुष्य से प्राणरक्षा करने या अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करना जिसके विषय में यह निश्चय हो कि उसे उस काम के होने या उस बात को सुनने से अवश्य दु ख पहुँचेगा । जैसे,—यदि किसी राजा से कोई अप्रिय बात करनी हुई तो लोग पहले यह कह लेते हैं कि 'जी का अमान पाऊँ तो कहूँ' । जी का आ लगना = प्राणों पर आ बनना । प्राण बचना कठिन हो जाना । ऐसे भारी झझट या सकट मे फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । जी की निकालना = (१) मन की उमग पूरी करना । दिल की हवस निकालना । मनोरथ पूरा करना । (२) हृदय का उदगार निकालना । क्रोध, दु ख, द्वेष आदि उद्वेग को बक झक कर शांत करना । बदला लेने की इच्छा पूरी करना । जी का जी में रहना = मनोरथों का पूरा न होना । मन में ठानी, सोची या चाही हुई बातों का न होना । जी की पड़ना = प्राण बचाने की चिंता होना । प्राण बचाना कठिन हो जाना । ऐसे भारी झझट या सकट मे फँस जाना कि पीछा छुडाना कठिन हो जाय । उ०—सब असबाब डाढो मैं न काढ़ो तै न काढ़ो तैन काढ़ो जिय की परी सभारै सहन भडार को । —तुलसी (शब्द०) । जी का = जीवटवाला । जिगरेवाला । साहसी । हिम्मतवर । दमदार । उ०—धनी धरनी के नीके आपुनी अनी के सग आवैं जुरि जी के मो नजीके गरजी के सो ।—गोपाल (शब्द०) । (किसी के) जी को समझना = किसी के विषय में यह समझना कि वह भी जीव है, उसे भी कष्ट होगा । दूसरे के कष्ट को समझना । दूसरे को क्लेश न पहुँचाना । दूसरे पर दया करना । जी को मारना = (१) मन की इच्छाओं को रोकना । चित्त के उत्साहों को न पूरा करना । (२) सतोष धारण करना । जी को न लगना = (१) चित्त में अनुभव होना । हृदय में वेदना होना । सहानुभूति होना । जैसे—दूसरो की पीड़ा आदि किसी के जी को नही लगती । (२) प्रिय लगना । भाना । अच्छा लगना । जी खटकना = (१) चित्त में खटका या सदेह उत्पन्न होना । (२) हानि आदि की आशका से (किसी काम के करने से) जी हिचकना । (किसी से या किसी के ओर से) जी खट्टा करना = मन फेर देना । चित्त में घृणा या विरक्ति उत्पन्न कर देना । चित्त विरक्त करना । हृदय में दुर्भाव उत्पन्न करना । जैसे,—तुम्हीं ने मेरी ओर से उनका जी खट्टा कर दिया है । (किसी से या किसी ओर से) जी खट्टा होना = चित्त हट जाना । मन फिर जाना या विरक्त होना । अनुराग न रहना । घृणा होना । जैसे,—उसी एक बात से उनकी ओर से मेरा जी खट्टा हो गया । जी खपाना = (१) चित्त तन्मय करना । (किसी काम में) जी लगाना । नितात दत्तचित्त होना । जी तोड़कर किसी काम में लग जाना । (२) प्राण देना । अत्यत कष्ट उठाना । जी खुलना = सकोच छूट जाना । धड़क खुल जाना । किसी काम के करने में हिचक न रह जाना । जी खोलकर = (१) बिना किसी सकोच के । बिना किसी प्रकार के भय या लज्जा के । बिना हिचके । बेधडक । जैसे,—जो कुछ तुम्हें कहना हो, जी खोलकर कहो । (२) जितना जी चाहे । बिना अपनी ओर से कोई कमी किए । मनमाना । यथेष्ट । जैसे,—तुम हमें जी खोलकर गालियाँ दो, चिंता नही । जी गँवाना = प्राण देना । जान खोना । जी गिरा जाना = जी बैठा जाना । तबीयत सुस्त होती जाना । शिथिलता आती जाना । जी घबराना = (१) चित्त व्याकुल होना । मन व्यग्र होना । (२) मन न लगना । जी ऊबना । जी चलना =

(१) जी चाहना । इच्छा होना । (४) जी माना । चित्त मोहित होना । जी चला = (१) वीर । दिलेर । बहादुर । शूर । शूरमा । (२) दानवीर । दाता । दानी । उदार । दान-शूर । (३) रसिक । सहृदय । जी चलाना = (१) इच्छा करना । मन दौड़ाना । चाह करना । (२) हिम्मत बाँधना । साहस करना । हौसला बढ़ाना । जी चाहना = मनोभिलाष होना । मन चलना । इच्छा होना । जी चाहे = यदि इच्छा हो । यदि मन में आवे । जी चुराना = किसी काम या बात से बचने के लिये हीला हवाली करना या युक्ति रचना । किसी काम से भागना । जैसे,—यह नौकर काम से जी चुराता है । जी छुपाना = (१) दे० 'जी चुराना' । जी छूटना = (१) हृदय की दृढता न रहना । साहस दूर होना । ना उम्मेदी होना । उत्साह जाता रहना । (२) थकावट आना । शिथिलता आना । जी छोटा करना = (१) हृदय का उत्साह कम करना । (२) हृदय संकुचित करना । मन उदास करना । दान देने का साहस कम करना । उदारता छोड़ना । कजूसी करना । जी छोड़ना = (१) प्राण त्याग करना । (२) हृदय की दृढ़ता खोना । साहस गँवाना । हिम्मत हारना । जी छोड़कर भागना = हिम्मत हारकर बड़े वेग से भागना । एकदम भागना । ऐसा भागना कि दम लेने के लिये भी न ठहरना । जी जलना = (१) चित्त सतप्त होना । हृदय में संताप होना । चित्त में कुढ़न और दु ख होना । क्रोध आना । गुस्सा लगना (१) ईर्ष्या होना । डाह होना । जी जलाना = (१) चित्त सतप्त करना । हृदय में क्रोध उत्पन्न करना । कुढ़ाना । चिढ़ाना । (२) हृदय में दु ख उत्पन्न करना । रज पहुँचाना । दु खी करना । चित्त व्यथित करना । सताना (३) ईर्ष्या या डाह उत्पन्न करना । जी जानता है = हृदय ही अनुभव करता है, कहा नहीं जा सकता । सही हुई कठिनाई, दु ख या पीड़ा वर्णन के बाहर है । जैसे,—(क) मार्ग मे जो जो कष्ट हुए कि उसे जी ही जानता होगा । ('जी जानना होगा' भी बोला जाता है ।) जी जान से लगना = हृदय से प्रवृत्त होना । सारा ध्यान लगा देना । एकाग्र चित्त होकर तत्पर होना । जैसे,—वह जी जान से इस काम में लगा है । किसी को जी जान से लगी है = कोई हृदय से तत्पर है । किसी की घोर इच्छा या प्रयत्न है । कोई सारा ध्यान लगाकर उद्यत है । कोई बराबर इसी चिंता और उद्योग में है । जैसे,- उसे जी जान से लगी है कि मकान बन जाय । जी जान लड़ाना = मन लगाना । दत्त चित्त होना । जी जुगोवा = (१) किसी तरह प्राणरक्षा करना । कठिनाई से दिन बिताना । जैसे तैसे दिन काटना । (२) बचना । अलग रहना । तटस्थ रहना या होना । जी जोड़ना = (१) हिम्मत बाँधना या करना । (२) तैयार होना । उद्यत होना । जी टँगा रहना या होना = चित्त मे ध्यान या चिंता रहना । जी मे खटका बना रहना । चित्त चिंतित रहना । जैसे,—(क) जब तक तुम नहीं आओगे, मेरा जी टँगा रहेगा । (ख) उसका कोई पत्र नहीं आया, जी टँगा है । जी टूट जाना = उत्साह भग हो जाना । उमग या हौसला न रह जाना । नैराश्य होना । उदासीनता होना । जैसे,—उनकी बातों से हमारा जी टूट गया, अब कुछ न करेंगे । जी ठढा होना = (१) चित्त शांत और सतुष्ट होना । अभिलाषा पूरी होने से हृदय प्रफुल्लित होना । चित्त में सतोष और प्रसन्नता होना । जैसे,—वह यहाँ से निकाल दिया गया, अब तो तुम्हारा जी ठढा हुआ ? जी ठुकना = (१) मन को सतोष होना । चित्त स्थिर होना । (२) चित्त में दृढ़ता होना । साहस होना । हिम्मत बँधना । दे० 'छाती ठुकना' । जी डरना = शका या आशका होना । भय होना । जी डालना = (१) शरीर में प्राण डालना । जीवित करना (२) प्राणरक्षा करना । मरने से बचाना । (३) हृदय मिलाना । प्रेम करना (४) उत्साहित करना । बढ़ावा देना । जी डूबना = (१) बेहोशी होना । मूर्च्छा आना । चित्त विह्वल होना । (२) चित्त स्थिर न रहना । घबराहट और बेचैनी होना । चित्त व्याकुल होना । जी डोलना = (१) विचलित होना । चचल होना । (२) लुब्ध होना । अनुरक्त होना । (३) मन न करना । न चाहना । जी ढहा जाना = दे० 'जी बैठा जाना' । जी तपना = चित्त क्रोध से सतप्त होना । जी जलना । क्रोध चढ़ना । उ०—सुनि गज जूह अधिक जिउ तपा । सिंह जात कहुँ रह नहिं छपा । —जायसी (शब्द०) । जी तरसना = किसी वस्तु या बात के अभाव से चित्त व्याकुल होना । किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये चित्त अधीर या दु खी होना । किसी बात की इच्छा पूरी न होने का कष्ट होना । जैसे,—(क) तुम्हारे दर्शन के लिये जी तरसता था । (ख) जब तक बगाल मे थे, रोटी के लिये जी तरस गया । जी तोड़ काम, परिश्रम या मिहनत करना = जान की बाजी लगाकर किसी काम को करना । जी तोड़ना = (१) दिल तोड़ना । निराश करना । हतोत्साह करना । (२) पूरी शक्ति से काम करना । काम करने में कुछ भी न उठा रखना । जी दह-लना = भय या आशका से चित्त डाँवाडोल होना । डर से हृदय काँपना । डर के मारे जी ठिकाने न रहना । अत्यत भय लगना । जी-दान = प्राण दान । प्राणरक्षा । जी दार = जीवटवाला । दृढ़ हृदय का । साहसी । हिम्मतवर । बहा-दुर । कड़े दिल का । जी दुखना = चित्त को कष्ट पहुँचना । हृदय मे दु ख होना । जैसे,—ऐसी बात क्यो बोलते हो जिससे किसी का जी दुखे । जी दुखाना = चित्त व्यथित करना । हृदय को कष्ट पहुँचाना । दु.ख देना । सताना । जैसे,—व्यर्थ किसी का जी दुखाने से क्या लाभ ? जी देना = (१) प्राण खोना । मरना । (२) दूसरे की प्रसन्नता या रक्षा के लिये प्राण देने को प्रस्तुत रहना । (३) प्राण से बढ़कर प्रिय समझना । अत्यत प्रेम करना । जैसे,—वह तुम पर जी देता है और तुम उससे भागे फिरते हो । जी दौड़ना = मन चलना । इच्छा होना । लालसा होना । जी धँसा जाना = दे० 'जी बैठा जाना' । जी धड़कना = (१) भय या आशका से चित्त स्थिर न रहना । कलेजा धक धक करना । डर के मारे हृदय में घबराहट होना । डर लगाना । (२) चित्त में दृढ़ता न होना । साहस न पड़ना । हिम्मत न पड़ना । जैसे.—चार पैसे पास से निकालते जी धड़-

कता है। जी धकधक करना = कलेजे का भय आदि के आवेग से जोर जोर से उछलना। जी धड़कना = डर लगना। जी धकधक होना = दे० 'जी धकधक करना'। जी निकलना = (१) प्राण छूटना। प्राण निकलना। मृत्यु होना। (२) चित्त व्याकुल होना। डर लगना। प्राण सूखना। जैसे,—अब तो उधर जाते इसका जी निकलता है। (३) प्राणांत कष्ट होना। कष्टबोध होना। जैसे,—तुम्हारा रुपया तो नहीं जाता है, तुम्हारा क्यों जी निकलता है? जी निढाल होना = चित्त का स्थिर न रहना। चित्त ठिकाने न रहना। चित्त विह्वल होना। हृदय व्याकुल होना। जी पक जाना = किसी अप्रिय बात को नित्य देखते देखते या सुनते सुनते चित्त दुखी हो जाना। किसी बार बार होनेवाली बात का चित्त को असह्य हो जाना। और अधिक सुनने का साहस चित्त में न रहना। जैसे,—नित्य तुम्हारी जली कटी बातें सुनते सुनते जी पक गया। जी पड़ना = (१) शरीर में प्राण का संचार होना। जैसे—गर्भ के बालक को जी पड़ना। (२) मृतक के शरीर में प्राण का संचार होना। मरे हुए में जान आना। जी पकड़ लेना = कलेजा थामना। किसी असह्य दुःख के वेग को दबाने के लिये हृदय पर हाथ रख लेना। जी पकड़ा जाना = मन में संदेह पड़ जाना। माथा ठनकना। कोई भारी खटका पैदा हो जाना। चित्त में कोई भारी आशंका उठना। (स्त्रि०)। जैसे,—तार आते ही मेरा तो जी पकड़ा गया। जी पर आ बनना = प्राणों पर आ बनना। प्राण बचाना कठिन हो जाना। ऐसे भारी संकट या झंझट में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय। जी पर खेलना = प्राण को संकट में डालना। जान को आफत में डालना। जान पर जोखों उठाना। ऐसा काम करना जिसमें जान जाने का भय हो। जी पानी करना = (१) लहू पानी एक करना। प्राण देने और लेने की नौबत आना। भारी आपत्ति खड़ी करना। (२) चित्त कोमल या दयार्द्र करना। जी पानी होना = चित्त कोमल या दयार्द्र होना। जी पिघलना = (१) दया से हृदय द्रवित होना। चित्त का दयार्द्र होना। (२) हृदय का प्रेमार्द्र होना। चित्त में स्नेह का संचार होना। जी पीछे पड़ना = दिल बहलना। चित्त बँटना। मन का किसी ओर बँट जाना जिसमें दुःख की बात कुछ भूल जाय। (स्त्री०) जी फट जाना = हृदय मिला न रहना। चित्त में पहले का सा सद्भाव या प्रेमभाव न रह जाना। प्रीति भंग होना। प्रेम में अंतर पड़ जाना। चित्त विरक्त होना। किसी की ओर से चित्त खिन्न हो जाना। जी फिर जाना = मन हट जाना। चित्त विरक्त हो जाना। चित्त अनुरक्त न रहना। हृदय में घृणा या अरुचि उत्पन्न हो जाना। जैसे,—जब किसी ओर से जी फिर जाता है तब फिर वह बात नहीं रह जाती। जी फिसलना = चित्त का किसी की ओर) आकर्षित होना। मन खिंचना। हृदय अनुरक्त होना। मन मोहित होना। मन लुभाना। जी फीका होना = दे० 'जी खट्टा होना'। जी बँटना = (१) चित्त का किसी ओर इस प्रकार लग जाना कि किसी प्रकार की दुःख या चिंता की बात भूल जाय। जी बहलाना। (२) चित्त का एकाग्र न रहना। चित्त का एक विषय में पूर्ण रूप से न लगा रहना, दूसरी बातों की ओर भी चला जाना। ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान भंग होना। मन उचटना। जैसे,—काम करते समय यदि कोई कुछ बोलने लगता है तो जी बँट जाता है। (३) एकांत प्रेम न रहना। एक व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरे व्यक्ति से भी प्रेम हो जाना। अनन्य प्रेम न रहना। जी बद होना = दे० 'जी फिरना'। जी बढ़ना = (१) चित्त प्रसन्न या उत्साहित होना। हौसला बढ़ना। (२) साहस बढ़ना। हिम्मत आना। जी बढ़ाना = (१) उत्साह बढ़ाना। किसी विषय में प्रवृत्त करने के लिये उत्तेजित करना। प्रशंसा पुरस्कार आदि द्वारा किसी काम में रुचि उत्पन्न करना। हौसला बढ़ाना। जैसे,—लड़कों का जी बढ़ाने के लिये इनाम दिया जाता है। (२) किसी कार्य की सफलता की आशा बँधाकर अधिक उत्साह उत्पन्न करना। किसी कार्य में होनेवाली बाधा या कठिनाई के दूर होने का निश्चय दिलाकर उसकी ओर अधिक प्रवृत्ति उत्पन्न करना। साहस दिलाना। हिम्मत बँधाना। जी बहलना = (१) चित्त का किसी विषय में लगकर आनंद अनुभव करना। चित्त का आनंदपूर्वक लीन होना। मनोरंजन होना। जैसे,—थोड़ी देर तक खेलने से जी बहल जाता है। (२) चित्त के किसी विषय में लग जाने से दुःख या चिंता की बात भूल जाना। जैसे,—मित्रों के यहाँ आ जाने से कुछ जी बहल जाता है नहीं तो दिन रात उस बात का दुःख बना रहता है। जी बहलाना = (१) रुचि के अनुकूल किसी विषय में लगकर आनंद अनुभव करना। मनोरंजन करना। जैसे,—कभी कभी जी बहलाने के लिये ताश भी खेल लेते हैं। (२) चित्त को किसी ओर लगाकर दुःख या चिंता की बात भूल जाना। जी बिखरना = (१) चित्त ठिकाने न रहना। मन विह्वल होना। (२) मूर्छा होना। बेहोशी होना। जी बिगड़ना = (१) जी मचलाना। मतली छूटना। कै करने की इच्छा होना। (२) घिटकना। घृणा करना। घिन मालूम होना। जी बुरा करना = कै करना। उलटी करना। वमन करना। (किसी की ओर से) जी बुरा करना = किसी के प्रति अच्छा भाव न रखना। किसी के प्रति बुरी धारणा रखना। किसी के प्रति घृणा या क्रोध करना। (किसी की ओर से दूसरे का) जी बुरा करना = (१) दूसरे का ख्याल खराब करना। बुरी धारणा उत्पन्न करना। (२) क्रोध, घृणा या दुर्भाव उत्पन्न करना। जी बुरा होना = (१) कै होना। उलटी होना। (२) ख्याल खराब होना। (३) चित्त में दुर्भाव या घृणा उत्पन्न होना। जी बैठ जाना = (१) चित्त विह्वल होता जाना। चित्त ठिकाने न रहना। चैतन्य न रहना। मूर्च्छा सी आना। जैसे,—आज न जाने क्यों बड़ी कमजोरी जान पड़ती है और जी बैठा जाता है। (२) मन भरना। उदासी होना। जी भिटकना = चित्त में घृणा होना। घिन मालूम होना। जी भरना (क्रि० अ०) = (१) चित्त तुष्ट होना। तुष्टि होना। तृप्ति होना। मन अघाना। और अधिक

की इच्छा न रह जाना। जैसे,—(क) अब जी भर गया और न खाएँगे। (ख) तुम्हारी बातों से ही जी भर गया, अब जाते हैं। (व्यंग्य)। (२) मन की अभिलाषा पूरी होने से आनंद और संतोष होना। जैसे,—लो, मैं, आज यहाँ से चला जाता हूँ, अब तो तुम्हारा जी भरा। (३) रुचि के अनुकूल होना। मन में घृणा न होना। जैसे,—ऐसे गंदे बरतन में पानी पीते हो, न जाने कैसे तुम्हारा जी भरता है। जी भरकर=जितना और जहाँ तक जी चाहे। मनमाना। यथेष्ट। जैसे,—तुम हमें जी भरकर गालियाँ दो, कोई परवाह नहीं। जी भरना (क्रि० स०)=चित्त विश्वासपूर्ण करना। चित्त से किसी बात की बुराई या धोखा आदि खाने की आशंका दूर करना। खटका मिटाना। इतमीनान करना। दिलजमई करना। जैसे,—यों तो घोड़े में कोई ऐब नहीं है पर आप दस आदमियों से पूछकर अपना जी भर लीजिए। जी भर आना=हृदय का करुणा या शोक के आवेग से पूर्ण होना। चित्त में दुःख या करुणा का उद्रेक होना। दुःख या दया उमड़ना। हृदय में इतने दुःख या दया का वेग उठना कि आँखों में आँसू आ जाय। हृदय का करुणा से विह्वल होना। जी भरभरा उठना=रोमांच होना। हृदय के किसी आकस्मिक आवेग से चित का विह्वल हो जाना। (अपना) जी भारी करना=चित्त खिन्न या दुखी करना। जी भारी होना=तबीयत अच्छी न होना। किसी रोग या पीड़ा आदि के कारण सुस्ती जान पड़ना। शरीर अच्छा न रहना। जी भुरभुराना=किसी की ओर चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी मचलना=किसी वस्तु या या व्यक्ति की ओर आकृष्ट होना। जी मचलाना = दे० 'जी मतलाना'। जी मतलाना=चित्त में उलटी या कै करने की इच्छा होना। वमन करने को जी चाहना। जी मर जाना= मन में उमंग न रह जाना। हृदय का उत्साह नष्ट होना। मन उदास हो जाना। जी मलमलाना=चित में दुःख या पछतावा होना। अफसोस होना। जैसे,—गाँठ के चार पैसे निकालते जी मलमलाता है। जी मारना=(१) चित्त की उमंग को रोकना। हृदय का उत्साह नष्ट करना। (२) संतोष धारण करना। सब्र करना। जी मिचलाना=दे० 'जी मतलाना'। (किसी से) जी मिलना=चित्त के भाव का परस्पर समान होना। हृदय का भाव एक होना। समान प्रवृत्ति होना। एक मनुष्य के भावों का दूसरे मनुष्य के भावों के अनुकूल होना। चित्त पटना। जी में आना=(१) मन में भाव उठना। चित्त में विचार उत्पन्न होना। (२) मन में इच्छा होना। जी चाहना। इरादा होना। संकल्प होना। जैसे,—तुम्हारे जो जी में आवे, करो। जी में घर करना=(१) मन में स्थान करना। हृदय में किसी का ध्यान बना रहना। (२) याद रहना। कोई बात या व्यवहार मन में बराबर रहना। जी में गड़ना या खुभना= (१) चित्त में जम जाना। हृदय में गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) हृदय में अंकित हो जाना। चित्त में ध्यान बना रहना। उ०—माधव मूरति जी में खुभी।—सूर (शब्द०)। जी में जलना=(१) हृदय में क्रोध के कारण संताप होना। मन में कुढ़ना। मन ही मन ईर्ष्या करना। डाह करना। जी में जी आना=चित्त ठिकाने होना। चित्त की घबराहट दूर होना। चित्त शांत और स्थिर होना। चित्त की चिंता या व्यग्रता दूर होना। किसी बात की आशंका या भय मिट जाना। जैसे,—जब वह उस स्थान से सकुशल लौट आया तब मेरे जी में जी आया। जो में जी डालना= (१) चित्त संतुष्ट और स्थिर करना। चित्त का खटका दूर कराना। चिंता मिटाना। (२) विश्वास दिलाना। इतमीनान करना। दिलजमई कराना। जी में डालना=मन में विचार लाना। सोचना। जैसे,—तुम्हारे साथ कोई बुराई करूँगा ऐसी बात कभी जी में न डालना। जी में धरना=(१) मन में लाना। चित्त में किसी बात का इसलिये ध्यान बनाए रहना जिसमें आगे चलकर कोई उसके अनुसार कार्य करे। ख्याल करना। (२) मन में बुरा मानना। नाराज होना। वैर रखना। जी में पैठना=(१) चित्त में जम जाना। हृदय पर गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) ध्यान में अंकित होना। बराबर ध्यान में बना रहना। चित्त से न हटना या भूलना। जी में बैठना=(१) मन में स्थिर होना। चित्त में निश्चय होना। चित्त में निश्चित धारणा होना। मन में सत्य प्रतीत होना। जैसे,—उन्होंने जो बातें कही वे मेरे जी में बैठ गई। (२) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (३) हृदय पर अंकित हो जाना। ध्यान में बराबर बना रहना। जी में रखना=(१) चित्त में विचार धारण करना। ख्याल बनाए रखना जिसमें आगे चलकर उसके अनुसार कोई कार्य करें। (२) मन में बुरा मानना। वैर रखना। द्वेष रखना। कीना रखना। जैसे,—उसे चाहे जो कहो वह कोई बात जी में नहीं रखता। (३) हृदय में गुप्त रखना। हृदय के भाव को बाहर न प्रकट करना। मन में लिए रहना। जैसे,—इस बात को जी में रखो, किसी से कहो मत। (किसी का) जी रखना=(किसी का) मन रखना। किसी के मन की बात होने देना। मन की अभिलाषा पूरी करना। इच्छा पूरी करना। उत्साह भंग न करना। प्रसन्न करना। संतुष्ट करना। जैसे,—जब वह बार बार इसके लिये कहता है तो उसका जी रख दो। जी रुकना=(१) जी घबराना। (२) जी हिचकना। चित्त प्रवृत्त न होना। जी लगना= चित्त तत्पर होना। मन का किसी विषय में योग देना। चित्त प्रवृत्त होना। दत्तचित्त होना। जैसे,—पढ़ने में उसका जी नहीं लगता। (किसी से) जी लगाना=चित्त का प्रेमासक्त होना। किसी से प्रेम होना। जी लगाना= चित्त तत्पर करना। किसी काम में दत्तचित्त बनना। जी लगा रहना या लगा होना= (१)चित्त में ध्यान बना रहना। (२) जी में खटका लगा रहना। चित्त चिंतित रहना या होना। जैसे,—बहुत दिनों से कोई पत्र नहीं *आया*, जी लगा है। (किसी से) जी लगाना=किसी से प्रेम करना। जी लटना=पस्त होना। हिम्मत टूटना। उ०—इस

जगत का जीव वह है ही नहीं। छुट गए धन जी लटा जिसका नहीं। —चोखे०, पृ० २२। जी लड़ाना = (१) प्राण जाने की भी परवाह न करके किसी विषय में तत्पर होना। (२) मन का पूर्ण रूप से योग देना। पूरा ध्यान देना। सारा ध्यान लगा देना। जी लरजना = दे० 'जी काँपना'। जी ललचना = (१) जी में लालच होना। चित्त में किसी बात के लिये प्रबल इच्छा होना। किसी वस्तु की प्राप्ति आदि की गहरी लालसा होना। (२) किसी चीज के पाने के लिये तरसना। जैसे,—वहाँ की सुंदर सुंदर वस्तुओं को देखकर जी ललच गया। (३) चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी ललचाना = (१) (क्रि० अ०) दे० 'जी ललचना'। (२) (क्रि० स०) दूसरे के चित्त में लालच उत्पन्न करना। किसी बात के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न करना। किसी वस्तु के लिये जी तरसाना। जैसे,—दूर से दिखाकर क्यों उसका जी ललचाते हो, देना हो तो दे दो। (३) मन लुभाना। मन मोहित करना। जी लुटना = मन मोहित होना। मन मुग्ध होना। हृदय प्रेमासक्त होना। जी लुभाना = (१) (क्रि० स०) चित्त आकर्षित करना। मन मोहित करना। हृदय में प्रीति उपजाना। सौंदर्य आदि गुणों के द्वारा मन खींचना। (२) (क्रि० अ०) चित्त आकर्षित होना। मन मोहित होना जैसे,—उसे देखते ही जी लुभा जाता है। जी लूटना = मन मोहित करना। जी लेना = जी चाहना। जी करना। चित्त का इच्छुक होना। जैसे,— वहाँ जाने के लिये हमारा जी नहीं लेता। (दूसरे का) जी लेना = प्राण हरण करना। मार डालना। जी लोटना = जी छटपटाना। किसी वस्तु की प्राप्ति या और किसी बात के लिये चित्त व्याकुल होना। चित्त का अत्यंत इच्छुक होना। ऐसी इच्छा होना कि रहा न जाय। जी सन हो जाना = भय, आशंका आदि से चित्त स्तब्ध हो जाना। जी घबरा जाना। डर के मारे चित्त ठिकाने न रहना। होश उड़ जाना। जैसे,—उसे सामने देखते ही जी सन हो गया। जी सनसनाना = (१) चित्त स्तब्ध होना। भय, आशंका, क्षीणता आदि से अंगों की गति शिथिल ह. ना। (२) चित्त विह्वल होना। जी सांय सांय करना = दे 'जी सनसनाना'। जी से = जी लगाकर। ध्यान देकर। पूर्ण रूप से। दत्तचित्त होकर। जैसे,—जी से जो काम किया जायगा वह क्यों न अच्छा होगा। (किसी वस्तु या व्यक्ति का) जी से उतर जाना = दृष्टि से गिर जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति की) इच्छा या चाह न रह जाना। किसी व्यक्ति पर स्नेह या श्रद्धा न रह जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति) चित्त में विरक्त हो जाना। भला न जँचना। हेय या तुच्छ हो जाना। बेकदर हो जाना। जी से उतारना या जी से उतार देना = किसी वस्तु या व्यक्ति की उपेक्षा या अवहेलना करना कदर न करना। जी से जाना = प्राणविहीन होना। मरना। जान खो बैठना। जैसे,—बकरी अपने जी से गई, खानेवाले को स्वाद ही न मिला। जी से जी मिलना। (१) हृदय के भाव परस्पर एक होना = एक के चित्त का दूसरे के चित्त के अनुकूल होना। मैत्री का व्यवहार होना। (२) चित्त में एक दूसरे से प्रेम होना। परस्पर प्रीति होना। (किसी व्यक्ति या वस्तु से) जी हट जाना = चित्त प्रवृत्त या अनुरक्त न रह जाना। इच्छा या चाह न रह जाना। जैसे,—(क) ऐसे कामों से अब हमारा जी हट गया। (ख) उससे मेरा जी एकदम हट गया। जी हवा हो जाना = किसी भय, दु ख या शोक के सहसा उपस्थित होने पर चित्त स्तब्ध हो जाना। चित्त विह्वल हो जाना। जी घबरा जाना। चित्त व्याकुल हो जाना। (किसी का) जी हाथ में रखना = (१) किसी का भाव अपने प्रति अच्छा रखना। राजी रखना। मन मैला न होने देना। (२) जी में किसी प्रकार का खटका पैदा न होने देना। दिलासा दिए रहना। जी हाथ मे लेना = दे० 'जी हाथ में रखना'। जी हारना = (१) किसी काम से घबराना या ऊब जाना। हैरान होना। पस्त होना। (२) हिम्मत हारना। साहस छोड़ना। जी हिलना = (१) भय से हृदय काँपना। जी दहलना। (२) करुणा से हृदय क्षुब्ध होना। दया से चित्त उद्विग्न होना।

जी[2]—अव्य० [सं० जित् प्रा० जिव (= विजयी) या सं० (श्री) युत प्रा० जुक, हिं० जू] एक समानसूचक शब्द जो किसी नाम या अल्ल के आगे लगाया जाता है अथवा किसी बड़े के कथन, प्रश्न या संबोधन के उत्तर रूप में जो संक्षिप्त प्रतिसंबोधन होता है उसमें प्रयुक्त होता है। जैसे,—(क) श्री रामचंद्र जी, पंडितजी, त्रिपाठी जी, लाला जी इत्यादि। (ख) कथन—ये आम कैसे मीठे हैं। उत्तर—जी हाँ। बेशक। (ग) तुम वहाँ गए थे या नहीं? उत्तर—जी नहीं। (घ) किसी ने पुकारा—रामदास? उत्तर—जी हाँ? (या केवल) जी।

विशेष—प्रश्न या केवल संबोधन में जी का प्रयोग बड़ों के लिये नहीं होता। जैसे किसी बड़े के प्रति यह नहीं कहा जाता कि (क) क्यों जी! तुम कहाँ थे? अथवा (ख) देखो जी! यह जाने न पावे। स्वीकार करने या हामी भरने के अर्थ में 'जी हाँ' के स्थान पर केवल 'जी' बोलते हैं, जैसे, प्रश्न—तुम वहाँ गए थे? उत्तर—जी! (अर्थात् हाँ)। उच्चारण भेद के कारण जी से तात्पर्य पुन. कहने के लिये होता है। जैसे,—किसी ने पूछा—तुम कहाँ जा रहे हो? उत्तर मिला 'जी'? अर्थ से स्पष्ट है कि श्रोता पुनः सुनना चाहता है कि उससे क्या कहा गया है।

जी[3]—वि० [अ० जी] वाला। सहित। युक्त (को०)।

यौ०—जीशऊर = शऊरवाला। तमीजदार। (२) समझदार। जीशान = शानवाला।

जीअ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जी', 'जीव'।

जीअन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जीवन'।

जीउ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव'।

जीऊ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जिउ'। उ०—बिनु जल मीन तपी तस जीऊ। चात्रिक भई कहत पिउ पीऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४।

जीकाद—संज्ञा पुं० [अ० जीकाद] हिजरी सन् के ग्यारहवें महीने का नाम [को०] ।

जीको(पु)—सर्व० [हिं०] जिसका । उ०—ताहि जतावत मरम हिये को निपट मन मिलो जीको ।—घनानद, पृ०४६४ ।

जीगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्गण, देशी जोइगण, हिं० जीगन] दे० 'जुगनू' । उ०—विरह जरी लखि जीगननु कह्यो न उहि कै बार। अरी आउ भजि भीतरी बरसतु आज अंगार ।—बिहारी (शब्द०) ।

जीगा—संज्ञा पुं० [फा० जीगह्] १ तुर्रा । सिरपेच । कलँगी । २ पगड़ी में बाँधने का एक रत्नजटित आभूषण (को०) । ३ कोलाहल । शोर (को०) ।

जीजा—संज्ञा पुं० [हिं० जीजी] बड़ी बहिन का पति । बड़ा बहनोई ।

जीजी—संज्ञा स्त्री०[सं० देवी, हिं० देई, प्रा० दीदी अथवा देश०(= बड़ी बहिन)] उ०—कीजै कहा जीजी जू ! सुमित्रा परि पायँ कहै तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है ।—तुलसी (शब्द०) ।

जीजूराना—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम ।

जीट†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] डींग । लंबी चौड़ी बात ।

मुहा०—जीट उड़ाना=डींग हाँकना उ०—अपनी तहसीलदारी की ऐसी जीट उड़ाई कि रानी जी मुग्ध हो गईं ।—काया, पृ०५८ । जीट मारना=दे० 'गप मारना' ।

जीण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन । उ०—सरसति सामणी तूँ जग जीण । हंस चढ़ी लटकावै वीण । —बी०, रासो, पृ० ४ ।

जीत[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० जिति, वैदिक जीति] १ युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता । जय । विजय । फतह ।

क्रि० प्र०—होना ।

२ किसी ऐसे कार्य में सफलता जिसमें दो या अधिक विरुद्ध पक्ष हों । जैसे, मुकदमे मे जीत, खेल मे जीत, बाजी में जीत । ३ लाभ । फायदा । जैसे,—तुम्हारी तो हर तरह से जीत है, इधर से भी, उधर से भी ।

जीत[2]—संज्ञा स्त्री० [?] जहाज में पाल का बुताम ।—(लश०) ।

जीत[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जीति' ।

जीतनहार—वि०[हिं० जीतना + हार (प्रत्य०)] जीतनेवाला । विजय करनेवाला । उ०—क्यो न फिरैं सब जगत मे करत दिग्विजै मार । जाके दृग सामत हैं कुवलय जीतनहार । —मति० ग्र०, पृ० ३६६ ।

जीतना—क्रि० स० [हिं० जीत + ना (प्रत्य०)] १ युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता प्राप्त करना । शत्रु को हराना । विजय प्राप्त करना । जैसे, लड़ाई जीतना, शत्रु को जीतना । उ०—रिपु रन जीति सुजस सुर गावत । सीता अनुज सहित प्रभु आवत ।—मानस ७ । २ । २ किसी ऐसे कार्य में सफलता प्राप्त करना जिसमे दो या दो से अधिक परस्पर विरुद्ध पक्ष हों । जैसे, मुकदमा जीतना, खेल मे जीतना, बाजी जीतना, जुए में रुपया जीतना ।

जीतब(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जीवितव्य] जीवन । जीवित रहना । उ०—ताते लोमस नाम है मोरा । करौ समाध जीतब है थोरा ।—कबीर सा०, पृ० ४३ ।

जीता—वि० [हिं० जीना] [वि० स्त्री० जीती] १ जीवित । जो मरा न हो । २ तौल या नाप में ठीक से कुछ बढ़ा हुआ । जैसे,—जरा जीता तौलो ।

जीतालू—संज्ञा पुं० [सं० आलु] अरारोट ।

जीता लोहा—संज्ञा पुं० [हिं० जीना + लोहा] चुंबक । मेकनातीस ।

जीति[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता का नाम ।

विशेष—यह जमुना किनारे से नेपाल तक तथा अवध, बिहार और छोटा नागपुर मे होती है । इसके रेशे बहुत मजबूत होते हैं और रस्सी बनाने के काम आते हैं । इन रेशों को टोगुस कहते हैं । इन रेशो से धनुष की डोरी बनती है ।

जीति[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विजय । उ०—जीति उठि जाइगी अजीत पडु पूतनि की, भूप दुरजोधन की भीति उठि जाइगी । —रत्नाकर, भा० २, पृ० १४२ । २. क्षय । हानि (को०) । ३. ह्रास की अवस्था । वृद्धावस्था (को०) ।

जीन[1]—संज्ञा पुं० [फा० जीन] १ घोड़े की पीठ पर रखने की गद्दी । चारजामा । काठी ।

यौ०—जीनपोश ।

२. पलान । कजावा । ३ एक प्रकार का बहुत मोटा सूती कपड़ा ।

जीन[2]—वि० [सं०] १ जीर्ण । पुराना । जर्जर । कटा फटा । २ वृद्ध । ३ क्षीण (को०) ।

जीन[3]—संज्ञा पुं० चमड़े का थैला (को०) ।

जीनत—संज्ञा स्त्री० [अ० जीनत] १ शोभा । छवि । खूबसूरती । २. सजावट । शृंगार ।

क्रि० प्र०—देना = शोभा देना ।—बख्शना = शोभा या सौंदर्य बढ़ाना ।

जीनपोश—संज्ञा पुं० [फा० जीनपोश] जीन के ऊपर ढकने का कपड़ा । काठी का ढँकना ।

जीनसवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जीन + सवारी] घोड़े पर जीन रखकर चढ़ने का कार्य । जैसे,—यह घोड़ा जीनसवारी में रहता है ।

जीनसाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० जीनसाज] जीन बनानेवाला कारीगर चारजामा बनानेवाला ।

जीना—क्रि० स० [सं० जीवन] १ जीवित रहना । सजीव रहना । जिंदा रहना । न मरना । जैसे,—यह घोड़ा अभी मरा नहीं है जीता है । (ख) वह अभी बहुत दिन जीएगा । उ०—अरविंद सो आनन रूप मरंद अनदित लोचन भृंग पिए । मन मों न बस्यो ऐसो बालक जो तुलसी जग में फल कौन जिए ?— तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. जीवन के दिन बिताना । जिंदगी काटना । जैसे,—ऐसे जीने से तो मरना अच्छा ।

मुहा०—जीना भारी हो जाना = जीवन कष्टमय हो जाना । जीवन

का सुख और आनंद जाता रहना। जीता जागता = जीवित और सचेत। भला चंगा। जीता लहू = देह से ताजा निकला हुआ खून। जीती मक्खी निगलना = (१) जान बूझकर कोई अन्याय या अनुचित कर्म करना। सरासर बेईमानी करना। जैसे,—उससे रुपया पाकर मैं कैसे इनकार करूँ? इस तरह जीती मक्खी तो नहीं निगली जाती। (२) जान बूझकर बुराई में फँसना। जान बूझकर आपत्ति या संकट में पड़ना। जीते जी = (१) जीवित अवस्था में। जिंदगी रहते हुए। उपस्थिति में। बने रहते। आछत। जैसे,—(क) मेरे जीते जी तो कभी ऐसा न होने पाएगा। (ख) उसके जीते जी कोई एक पैसा नहीं पा सकता। (२) जबतक जीवन है। जिंदगी भर। जैसे,—मैं जीते जी आपका उपकार नहीं भूल सकता। जीते जी मर जाना = जीवन में ही मृत्यु से बढ़कर कष्ट भोगना। किसी भारी विपत्ति या मानसिक आघात से जीवन भारी होना। जीवन का सारा सुख और आनंद जाता रहना। जीवन नष्ट होना। जैसे—(क) पोते के मरने से तो हम जीते जी मर गए। (ख) इस चोरी से जीते जी मर गए। जीते जी मर मिटना = (१) बुरी दशा को पहुँचना। (२) अत्यंत आसक्त होना। उ०—मैं तो जीते जी मर मिटा यारो कोई तदबीर ऐसी बताओ कि विसाल नसीब हो जाय। —फिसाना०, भा० १, पृ० ११। जीते रहो = एक आशीर्वाद जो बड़ों की ओर से छोटों को दिया जाता है। जब तक जीना तब तक सीना = जिंदगी भर किसी काम में लगे रहना। उ०—पेट के बेट बेगारहि में जब लौं जियना तब लौं सियना है।—पद्माकर (शब्द०)।

३. प्रसन्न होना। प्रफुल्लित होना। जैसे,—उसके नाम से तो वह जी उठता है।

संयो० क्रि०—उठना।

मुहा०—अपनी खुशी जीना = अपने ही सुख से आनंदित होना।

जीप—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की छोटी मोटर जो कार से अधिक मजबूत होती है तथा उसके चारों पहिए इंजन द्वारा संचालित होते हैं। उ०—बहुत जल्द मैं चाहता हूँ जीप का रास्ता निकाल दिया जाय।—किन्नर०, पृ० ११।

जीपण(पु)—वि० [हिं० जीपना] जीतनेवाले। उ०—उदर सुमित्र लक्षण जीपण अरि, धरे शेष अवतार धुरंधर।—रघु० रू०, पृ० ६०।

जीपना—क्रि० स० [हिं० जीतना] जीतना। उ०—अवसाण आए छत्री पोरस सरसावै। यह लोक जीप परलोक मोख पावै।—रा० रू०, पृ० ११४।

जीवना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० जीवना] जीवित रहना। जीवन धारण करना। उ०—मैं गही तेग पति साह सों धरि जाहु-जौन जीवौ चहै। ह०, रासो, पृ० ८९।

जीवो(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जीवना] दे० 'जीवन'। उ०—साहिन में सरजा समत्थ सिवराज, कवि भूषन कहत जीवो तेरोई सफल हैं।—भूषन ग्रं०, पृ० ६३।

जीभ—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा, प्रा० जिब्भ] १. मुँह के भीतर रहनेवाली लंबे चिपटे मांसपिंड के आकार की वह इंद्रिय जिससे कटु, अम्ल, तिक्त इत्यादि रसों का अनुभव और शब्दों का उच्चारण होता है। जबान। जिह्वा। रसना।

विशेष—जीभ मांसपेशियों और स्नायुओं से निर्मित है। पीछे की ओर यह नाल के आकार की एक नरम हड्डी से जुड़ी है जिसे जिह्वास्थि कहते हैं। नीचे की ओर यह दाढ़ के मांस से संयुक्त है और ऊपर के भाग की अपेक्षा अधिक पतली झिल्ली से ढकी है जिसमें से बराबर लार छूटती रहती है। नीचे के भाग की अपेक्षा ऊपर का भाग अधिक छिद्रयुक्त या कोशमय होता है और उसी पर वे उभार होते हैं जो काँटे कहलाते हैं। ये उभार या काँटे कई आकार के होते हैं, कोई अर्धचंद्राकार कोई चिपटे और कोई नोक या शिखा के रूप के होते हैं। जिन माँसपेशियों और स्नायुओं के द्वारा यह दाढ़ के माँस तथा शरीर के और भागों से जुड़ी है उन्हीं के बल से यह इधर उधर हिल डोल सकती है। स्नायुओं में जो महीन महीन शाखा स्नायु होती हैं उनके द्वारा स्पर्श तथा शीत, उष्ण आदि का अनुभव होता है। इस प्रकार के सूक्ष्म स्नायुओं का जाल जिह्वा के अग्र भाग पर अधिक है इसी से वहाँ स्पर्श या रस आदि का अनुभव अधिक तीव्र होता है। इन स्नायुओं के उत्तेजित होने से ही स्वाद का बोध होता है। इसी से कोई अधिक मीठी या सुस्वादु वस्तु मुँह में लेकर कभी लोग जीभ चटकारते या दबाते हैं। द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न एक प्रकार की रासायनिक क्रिया से इन स्नायुओं में उत्तेजना उत्पन्न होती है। १२८ अंश गरम जल में एक मिनट तक जीभ डुबोकर यदि उसपर कोई वस्तु रखी जाय तो खट्टे मीठे आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। कई वृक्ष ऐसे हैं जिनकी पत्तियाँ चबा लेने से भी यह ज्ञान थोड़ी देर के लिये नष्ट हो जाता है। वस्तुओं का कुछ अंश काँटों में लगकर और घुलकर छिद्रों के मार्ग से जब सूक्ष्म स्नायुओं में पहुँचता है तभी स्वाद का बोध होता है। अतः यदि कोई वस्तु सूखी, कड़ी है तो उसका स्वाद हमें जल्दी नहीं जान पड़ेगा। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि घ्राण का रसना के स्वाद से घनिष्ठ संबंध है। कोई वस्तु खाते समय हम उसकी गंध का भी अनुभव करते हैं। जिस स्थान पर जीभ लारयुक्त मांस आदि से जुड़ी रहती है वहाँ कई सूत्र या बंधन होते हैं जो जीभ की गति नियत या स्थिर रखते हैं। इन्हीं बंधनों के कारण जीभ की नोक पीछे की ओर बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकती। बहुत से बच्चों की जीभ में यह बंधन आगे तक बढ़ा रहता है जिससे वे बोल नहीं सकते। बंधनों को हटा देने से बच्चे बोलने लगते हैं। रसास्वादन के अतिरिक्त मनुष्य की जीभ का बड़ा भारी कार्य कंठ से निकले हुए स्वर में अनेक प्रकार के भेद डालना है। इन्हीं विभेदों से वर्णों की उत्पत्ति होती है जिनसे भाषा का विकास होता है। इसी से जीभ को वाणी भी कहते हैं।

पर्या०—जिह्वा। रसना। रसज्ञा। रसाल। रसिका। साधुस्रवा। रसला। रसाका। ललना।

मुहा०—जीभ करना = बहुत बढ़कर बोलना। ढिठाई से उत्तर देना। जीभ खोलना = मुँह से कुछ बोलना। शब्द निकालना। जैसे,—अब जहाँ जीभ खोली कि पिटे। जीभ चलना = भिन्न-भिन्न वस्तुओं का स्वाद लेने के लिये जीभ का हिलना डोलना। स्वाद के अनुभव के लिये जिह्वा चपल होना। चटोरेपन की इच्छा होना। उ०—जीभ चले बल ना चले वही जीभ जरि जाय।—(शब्द०)। जीभ थोड़ी करना = कम बोलना। बकवाद कम करना। अधिक न बोलना। उ०—मेरो गोपाल तनक सो कहा करि जानै दधि की चोरी। हाथ नचावति आवति ग्वालिन जीभ न करही थोरी।—सूर (शब्द०)। जीभ निकालना = (१) जीभ बाहर करना। (२) जीभ खीचना। जीभ उखाड़ लेना। जीभ पकड़ना = बोलने न देना। बोलने से रोकना। जीभ बढ़ाना = चटोरपन की आदत होना। जीभ बंद होना = बोलना बंद करना। जबान न खोलना। चुप रहना। जीभ हिलाना = मुँह से कुछ न बोलना। छोटी जीभ = गलशुंडी। किसी की जीभ के नीचे जीभ होना = किसी का अपनी कही हुई बात को बदल जाना। एक बार कही हुई बात पर स्थिर न रहना।

२ जीभ के आकार की कोई वस्तु। जैसे,—निब।

मुहा०—कलम की जीभ = कलम का वह भाग जो छीलकर नुकीला किया रहता है।

जीभा—संज्ञा पुं० [हिं० जीभ] १ जीभ के आकार की कोई वस्तु जैसे, कोल्हू का पच्चर। २ चौपायों की एक बीमारी जिसमें उनकी जीभ के काँटे सूज या बढ़ जाते हैं और उनसे खाते नहीं बनता। बेरुखी। अवार। ३ बैलों की आँख की एक बीमारी जिसमे आँख का मांस बढ़कर लटक आता है।

जीभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीभ] धातु की बनी एक पतली लचीली और धनुषाकार वस्तु जिससे जीभ छीलकर साफ करते हैं। २ मैल साफ करने के लिये जीभ छीलने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

३. निब। ४. छोटी जीभ। गलशुंडी। ५ चौपायों का एक रोग। दे० 'जीभा'। ६ लगाम का एक भाग।

जीभी चाभा—संज्ञा पुं० [हिं० जीभ + चाभना] चौपायों का एक रोग। दे० 'जीभा'।

जीमट—संज्ञा पुं० [सं० जीमूत (= पोषण करनेवाला).] पेड़ों और पौधों के धड़, शाखा और टहनी आदि के भीतर का गूदा।

जीमना—क्रि० स० [सं० जेमन] भोजन करना। आहार करना। खाना। उ०—काबा फिर काशी भया राम जो भया रहीम मोटा चुन मैदा भया बैठि कबीरा जीम।—कबीर (शब्द०)।

जीमूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ पर्वत। २ मेघ। बादल। ३. मुस्ता। मोथा। नागर मोथा। ४. देवताड़ वृक्ष। ५ इंद्र। ६ पोषण करनेवाला। रोजी या जीविका देनेवाला। ७ घोषा लता। ८. सूर्य। ९. एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है। १०. एक मल्ल का नाम जो विराट की सभा मे रहता था और भीम के द्वारा मारा गया था। ११. हरिवंश के अनुसार दशार्ह के पौत्र का नाम। १२ ब्रह्मांड पुराण में शाल्मली द्वीप के एक राजा जो वपुष्मत् के पुत्र थे। १३ शाल्मली द्वीप के एक वर्ष का नाम। १४. एक प्रकार का दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और ग्यारह रगण होते हैं। यह प्रचित के अतर्गत है।

जीमूतमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघ से उत्पन्न मोती।

विशेष—रत्नपरीक्षा विषयक प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के मोती का वर्णन है। वृहत्संहिता, अग्निपुराण, गरुडपुराण, युक्तिकल्पतरु आदि ग्रंथों में भी इस मुक्ता का विवरण मिलता है, पर ऐसा मोती आजतक देखा नही गया। वृहत्संहिता मे लिखा है कि मेघ से जिस प्रकार ओले उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार यह मोती भी उत्पन्न होता है। जिस प्रकार ओले बादल से गिरते हैं उसी प्रकार यह मोती भी गिरता है पर देवता लोग इसे बीच ही मे उड़ा लेते हैं। सारांश यह है कि यह मुक्ता मनुष्यों को अलभ्य है। न देखने पर भी प्राचीन आचार्य लक्षण बतलाने से नहीं चूके हैं और उन्होंने इसे मुरगी के अंडे की तरह गोल, ठोस और वजनी बतलाया है। इसकी कांति सूर्य की किरण के समान कही गई है। इसे यदि तुच्छ से तुच्छ मनुष्य कभी पा जाय तो सारी पृथ्वी का राजा हो जाय।

जीमूतवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २ शालिवाहन राजा का पुत्र।

विशेष—आश्विन कृष्ण ८ को पुत्रकामनावाली स्त्रियाँ इनका पूजन करती हैं।

३ जीमूतकेतु राजा का पुत्र जो प्रसिद्ध नाटक नागानंद का नायक है। ४ धर्मरत्न नामक स्मृतिसंग्रहकार।

जीमूतवाही—संज्ञा पुं० [सं० जीमूतवाहिन्] धूम। धुआँ।

जीयⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जीव', 'जी'।

मुहा०—जीय धरना = दे० 'जी मे धरना'। उ०—माधव जू जो जन तें बिगरै। तउ कृपालु करुणामय केशव प्रभु नहिं जीय धरै।—सूर (शब्द०)।

जीयट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जीवट'।

जीयतिⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीना] जीवन। जिंदगी। उ०—तोहि सोंहि आँखिनि सो आँखें मिली रहें जीयति को यहै लहा।—हरिदास (शब्द०)।

जीयदान—संज्ञा पुं० [सं० जीवदान] प्राणदान। जीवनदान। प्राणरक्षा। उ०—बालक काज धर्म जनि छाँड़ो राय न ऐसी कीजै हो। तुम मानी वसुदेव देवकी जीयदान इन दीजै हो।—सूर (शब्द०)।

जीयेⓤ—वि० [प्रा० जेंव, जेम] दे० 'जिमि' या 'ज्यों'। उ०—जीये तेल तिलन्हि मे जीये गंधि फुलिन्ह।—संतवाणी०, पृ० ८५।

जीर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ जीरा। २. फूल का जीरा। केसर। उ०—रघुराज पंकज को जीर नहिं बेधै हरि धर्यो किमि धीर पावै पीर मन मोर है।—रघुराज (शब्द०)। ३. खड्ग। तलवार। ४ अणु।

जीर²—वि० क्षिप्र । तेज । जल्दी चलनेवाला ।

जीर³—संज्ञा पुं० [फ़ा० जिरह] जिरह । कवच । उ०—कुंडल के ऊपर कडाके उठैं ठौर ठौर, जीरन के ऊपर खडाके खडगान के ।—भूषण (शब्द०) ।

जीर⁴(पु)—वि० [सं० जीर्ण] पुराना । जर्जर । उ०—मनहु मरी इक वर्ष की भयो तासु तन जीर । करवत कर महि पर गिरी गयो सुखाय शरीर ।—रघुराज (शब्द०) ।

जीरक¹—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा ।

जीरक²—वि० [फ़ा० जीरक] १. प्रवीण । प्रतिभाशाली । २ होशियार । चालक ।

जीरण¹—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा ।

जीरण(पु)²—वि० [सं० जीर्ण] दे० 'जीर्ण' ।

जीरह(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० जिरह] । अंगत्राण । सन्नाह । उ०—जान तणी साजति करउ । जीरह रगावली पहहरज्यो टोप । —बीसल० रास०, पृ० ११ ।

जीरा—संज्ञा पुं० [सं० जीरक, तुलनीय फ़ा० जीरह्] डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक पौधा ।

विशेष—इसमें सौंफ की तरह फूलों के गुच्छे लंबी सीकों मे लगते हैं । पत्तियाँ बहुत बारीक और दूब की तरह लबी होती हैं । बंगाल और आसाम को छोड भारत में यह सर्वत्र अधिकता से बोया जाता है । लोगों का अनुमान है कि यह पश्चिम के देशों से लाया गया है । मिस्र देश तथा भूमध्य सागर के माल्टा आदि टापुओं में यह जगली पाया जाता है । माल्टा का जीरा बहुत अच्छा और सुगंधित होता है । जीरा कई प्रकार का होता है पर इसके दो मुख्य भेद माने जाते हैं— सफेद और स्याह अथवा श्वेत और कृष्ण जीरक । सफेद या साधारण जीरा भारत में प्राय सर्वत्र होता है, पर स्याह जीरा जो अधिक महीन और सुगंधित होता है । काश्मीर लद्दाख, बलूचिस्तान तथा गढ़वाल और कुमाऊँ से आता है । काश्मीर और अफगानिस्तान मे तो यह खेतों में और तृणों के साथ उगता है । माल्टा आदि पश्चिम के देशों से जो एक प्रकार का सफेद जीरा आता है वह स्याह जीरे की जाति का है और उसी की तरह छोटा और तीव्र गंध का होता है । वैद्यक में यह कटु, उष्ण, दीपक तथा अतीसार, गृहणी, कृमि और कफ वात को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—जरण । अजाजी । कणा । जीर्ण । जीर । दीप्य । जीरण । अजाजिका । वह्निशिख । मागध । दीपक ।

मुहा०—ऊँट के मुँह मे जीरा = खाने की कोई चीज मात्रा में बहुत कम होना ।

२. जीरे के आकार के छोटे छोटे महीन और लंबे बीज । ३ फूलों का केसर । फूलों के बीज का महीन सूत ।

जीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री नाम की घास ।

जीरी—संज्ञा पुं० [हिं० जीरा] एक प्रकार का धान जो अगहन मे तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है । पजाब के करनाल जिले में अधिक होता है । इसके दो भेद हैं—एक रमाली, दूसरा रामजमानी ।

जीरीपटन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फूल ।

जीर्ण¹—वि० [सं०] १. बहुत बुड्ढा । बुढ़ापे से जर्जर । २. पुराना । बहुत दिनों का । जैसे, जीर्ण ज्वर । ३. जो पुराना होने के कारण टूट फूट गया होगा । कमजोर हो गया हो । फटा पुराना । उ०—का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जीर्ण शीर्ण = फटा पुराना । टूटा फूटा ।

४. पेट में अच्छी तरह पचा हुआ । जठराग्नि में जिसका परिपाक हुआ हो । परिपक्व । जैसे,—जीर्ण अन्न, अजीर्ण ।

जीर्ण²—संज्ञा पुं० १ जीरा । २ बूढ़ा व्यक्ति (को०) । ३. वृक्ष (को०) । ४ शिलाजतु (को०) । ५ वृद्धावस्था । वार्धक्य (को०) ।

जीर्णक—वि० [सं०] प्राय शुष्क या कुम्हलाया हुआ (को०) ।

जीर्णज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना बुखार । वह ज्वर जिसे रहते बारह दिन से अधिक हो गए हों ।

विशेष—किसी किसी के मत से प्रत्येक ज्वर अपने आरंभ के दिन से ७ दिन तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम और २१ दिनों के पीछे, जब रोगी का शरीर दुर्बल और रूखा हो जाय तथा उसे क्षुधा न लगे और उसका पेट सदा भारी रहे 'जीर्ण' कहलाता है ।

जीर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा । बुढाई । २ पुरानापन ।

जीर्णदारु—संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धदारक वृक्ष । विधारा ।

जीर्णपत्र—संज्ञा सं० [सं०] पट्टिका लोध्र । पठानी लोध ।

जीर्णपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ कदब का पेड़ । २ पुराना पत्ता (को०) ।

जीर्णफंजी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीर्णफञ्जी] विधारा (को०) ।

जीर्णबुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जीर्णपर्ण' ।

जीर्णवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैक्रांत मणि ।

जीर्णवस्त्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] फटा पुराना कपडा (को०)

जीर्णवस्त्र²—वि० जो फटे पुराने कपडो मे हो (को०) ।

जीर्णवाटिका¹—संज्ञा पुं० [सं०] खँडहर (को०) ।

जीर्णा¹—वि० [सं०] बूढ़ा । बुढ़िया ।

जीर्णा²—संज्ञा स्त्री० काली जीरी ।

जीर्णास्थिमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हड्डी को गला सडाकर बनाई हुई मिट्टी ।

विशेष—ऐसी मिट्टी बनाने की विधि शब्दार्थ चिंतामणि नामक ग्रथ में इस प्रकार लिखी है,—जहाँ शिलाजीत निकलता हो वहाँ एक गहरा गड्ढा खोदे और उसे जानवरों और मनुष्यों की ... र दे । ऊपर से सज्जीखार नमक, गधक और ... महीने तक डालता जाय । इसके पीछे फिर पत्थर ... तीन वर्ष मे ये सब वस्तुएँ एक सिल ... उस सिल को लेकर बुकनी कर ... ऐसे पात्र में भोजन करना

उ०—सुकवि सरद नभ मन उडुगन से। राम भगत जन जीवनधन से।—तुलसी (शब्द०)।

जीवनधर¹—वि० [सं० जीवन + धर] जीवनरक्षक। जीवनदायक जीवनप्रद [को०]।

जीवनधर²—संज्ञा पुं० जलधर। मेघ। बादल [को०]।

जीवनबूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + हिं० बूटी] १ एक पौधा या बूटी। संजीवनी।

विशेष—इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह मरे हुए आदमी को भी जिला सकती है।

२ अति प्रिय वस्तु या व्यक्ति।

जीवनमरण—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन और मरण। जिंदगी और मौत।

जीवनमुक्त—वि० [सं०] जो जीवन में ही सर्वबंधनो से मुक्त हो चुका हो [को०]।

जीवनमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवनकाल मे ही प्राप्त निर्बंधता [को०]।

जीवनमूरि—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + मूल] १ संजीवनी नाम की जड़ी। २ अत्यंत प्रिय वस्तु या व्यक्ति। प्यारी। प्राणप्रिया।

जीवनमूलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवनमूल] संजीवनी बूटी। उ०—जीवन कों लै का करौं, पायो जीवनमूलि। भक्ति को सार यह।—नंद० ग्र०, पृ० १८८।

जीवनयापन—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + यापन] जीवननिर्वाह। जीवन व्यतीत करना।

जीवनवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनचरित्। जीवनवृत्तांत। जीवनी।

जीवनवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं० जीवनवृत्तांत] जीवनचरित। जिंदगी भर का हाल। जीवनी।

जीवनवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० जीविका] जीवनोपाय। प्राणरक्षा के लिये उद्यम। रोजी।

जीवनसंग्राम—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + संग्राम] जीवन की संघर्षमय परिस्थितियों का सामना। संघर्षों में जीवनयापन का प्रयत्न।

जीवनहेतु—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनरक्षा का साधन। जीविका। रोजी।

विशेष—गरुडपुराण में दस प्रकार की जीविका बतलाई गई है—विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षा, विपणि, कृषि, वृत्ति, भिक्षा और कुसीद।

जीवनांत—संज्ञा पुं० [सं० जीवनान्त] जीवन की समाप्ति। मरण। मृत्यु [को०]।

जीवना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १, महौषध। २ जीवंती लता। उ०—जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस।—संत० वाणी०, पृ० ४८०।

जीवना²(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'जीना'।

जीवना³—क्रि० स० दे० 'जीमना'।

जीवनाघात—संज्ञा पुं० [सं०] विष। प्राणघाती जहर [को०]।

जीवनाधार¹—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन का अवलंब या सहारा [को०]।

जीवनाधार²—वि० परम प्रिय। प्राणाधार [को०]।

जीवनांतर—क्रि० वि० [सं० जीवनान्तर] जीवन के बाद।

जीवनावास¹—वि० [सं०] जल में रहनेवाला।

जीवनावास²—संज्ञा पुं० १ वरुण। २ देह। शरीर।

जीवनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवनी] १. संजीवनी बूटी। २ जिलानेवाली वस्तु। प्राणाधार। ३. अत्यंत प्रिय वस्तु। उ०—गहली गरब न कीजिए, समय सुहागिनि पाय। जिय की जीवनि जेठ सो, माह न छाँह सुहाय।—बिहारी (शब्द०)।

जीवनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ काकोली। २. तिक्त जीवंती। डोडी। ३ मेद। ४. महामेद। ५ जूही।

जीवनी²—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + हिं० ई (प्रत्य०)] जीवन भर का वृत्तांत। जीवनचरित्। जिंदगी का हाल।

जीवनीय¹—वि० [सं०] १ जीवनप्रद। २ जीविका करने योग्य। बरतने योग्य।

जीवनीय²—संज्ञा पुं० १ जल। २ जयंती वृक्ष। ३ दूध (डिं०)।

जीवनीयगण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में बलकारक औषधियों का एक वर्ग।

विशेष—इसके अंतर्गत अष्टवर्ग पर्णिनी, जीवंती, मधूक और जीवन हैं। वाग्भट्ट के मत से जीवनीय गण ये हैं—जीवंती, काकोली, मेद, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, ऋषभक जीवक और मधूक।

जीवनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती लता।

जीवनेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सैंहली वृक्ष।

जीवनोत्तर—वि० [सं०] जीवन के बाद का।

जीवनोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + उत्सर्ग] जीवन की बलि। जीवन का दान। उ०—यौवन की मांसल, स्वस्थ गंध नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग।—युगांत, पृ० ४७।

जीवनोपाय—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनरक्षा का उपाय। जीविका। वृत्ति। रोजी।

जीवनौषध—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह औषध जिससे मरता हुआ भी जी जाय।

जीवन्मुक्त—वि० [सं०] जो जीवित दशा मे ही आत्मज्ञान द्वारा सांसारिक मायाबंधन से छूट गया हो।

विशेष—वेदांतसार में लिखा है कि जिसने अखंड चैतन्य स्वरूप ज्ञान द्वारा अज्ञान का नाश करके आत्मरूप अखंड ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो और जो ज्ञान तथा अज्ञान के कार्य, पाप पुण्य एवं संशय, भ्रम आदि के बंधन से निवृत्त हो गया हो वही जीवन्मुक्त है। सांख्य और योग के मत से पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान होने से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है अर्थात् जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि यह प्रकृति जड, परिणामिनी और त्रिगुणमयी है और मैं नित्य और चैतन्यस्वरूप हूँ तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

जीवन्मृत—वि० [सं०] जो जीते ही मरे के तुल्य हो। जिसका जीना और मरना दोनों बराबर हो। जिसका जीवन सार्थक और

सुखमय न हो। उ०—यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत।—ग्राम्या, पृ० १६।

विशेष—जो, अपने कर्तव्य से विमुख और अकर्मण्य हो, जो सदा ही कष्ट भोगता रहे, जो बड़ी कठिनता से अपना पोषण कर सकता हो, जो अतिथि आदि का सत्कार न करता हो, ऐसा मनुष्य धर्मशास्त्र में जीवन्मृत कहलाता है।

जीवन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा का मंत्र।

जीवपति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मराज।

जीवपति[2]—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री। सौभाग्यवती स्त्री। सुहागिनी स्त्री।

जीवपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री।

जीवपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नया पत्ता [को०]।

जीवपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवती।

जीवपितृक—वि० [सं०] जिसका पिता जीवित हो [को०]।

जीवपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुत्रजीव वृक्ष। जियापोता का पेड़। २ इंगुदी का वृक्ष।

जीवपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो [को०]।

जीवपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहज्जीवती। बड़ी जीवंती।

जीवप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़।

जीवबंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीवबन्धु] दे० 'जीवबंधु'।

जीवबंधु—संज्ञा पुं० [सं० जीवबन्धु] गुल दुपहरिया। बंधुजीव। बंधूक।

जीवबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशु आदि की बलि [को०]।

जीवबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० जीव + बुद्धि] सामान्य प्राणियों की समझ। लौकिक बुद्धि। उ०—परि छिन एक में जीवबुद्धि सो बिगरि गई।—दो सौ० बावन०, भा० १, पृ० १३५।

जीवभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती लता।

जीवमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० जीवमन्दिर] देह। शरीर [को०]।

जीवमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी, धनदा, नंदा, विमला, मंगला, बला और पद्मा नाम की सात देवियाँ जो जीवों का पालन और कल्याण करती हैं। (विधान पारिजात)।

जीवयाज—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं से किया जानेवाला यज्ञ।

जीवयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सजीव सृष्टि। जीवजंतु। जानवर।

जीवरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का रज जो गर्भधारण के उपयुक्त हुआ हो।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार यह पंचभौतिक होता है अर्थात् जिन पंचभूतों से जीवों की उत्पत्ति होती है वे इसमें होते हैं।

जीवरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] जीव। प्राण। उ०—साईं सेती चोरिया, चोरा सेती गुझ। तब जानेगा जीवरा मार परैगी तुझ।—कबीर (शब्द०)।

जीवरि†—संज्ञा पुं० [सं० जीव या जीवन] जीवन। प्राणधारण की शक्ति। उ०—दी मन माली मदन पुर आलवाल वयो। प्रेम पय सींच्यों पहिल ही सुभग जीवरि दयो।—सूर (शब्द०)।

जीवल—वि० [सं०] १ जीवनमय। २. जीवनपूर्ण। ३. सजीव करनेवाला। सप्राण करनेवाला [को०]।

जीवला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सेंहली। २. सिंहपिप्पली।

जीवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] भूलोक। पृथ्वीतल। मर्त्यलोक।

जीववत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका बच्चा जीवित हो [को०]।

जीववल्ली—संज्ञा संज्ञा [सं०] क्षीरकाकोली।

जीवविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० जीव + विज्ञान] जीव जंतुओं विषयक शारीरिक विज्ञान [को०]।

जीवविषय—संज्ञा [सं०] जीवा या जीवन का विस्तार [को०]।

जीववृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीव का गुण या व्यापार। २. पशु पालने का व्यवसाय।

जीवशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शाक जो मालवा देश में अधिक होता है। सुसना।

जीवशुक्ला—संज्ञा स्त्री [सं०] क्षीरकाकोली।

जीवशेष—वि० [सं०] जिसका केवल प्राण बचा हो। प्राणशेष। [को०]।

जीवशोणित—संज्ञा पुं० [सं०] सजीव या स्वस्थ रक्त [को०]।

जीवश्रेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवभद्रा [को०]।

जीवसंक्रमण—संज्ञा पुं० [सं० जीवसङ्क्रमण] जीव का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन।

जीवसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] कामवृद्धि वृक्ष।

जीवसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य। धान।

जीवसुत—संज्ञा पुं० [सं० जीव + सुत] वह जिसका पुत्र जीवित हो [को०]।

जीवसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीता हो।

जीवसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संतति जीती हो। जीवत्तोका।

जीवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ जीव रहता है। मर्मस्थान। हृदय।

जीवहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राणियों का वध। २ प्राणियों के वध का दोष।

जीवहिंसा—संज्ञा स्त्री [सं०] प्राणियों की हत्या। जीवों का वध।

जीवहीन—वि० [सं०] १ मृत। जीवनरहित। २. प्राणहीन। जहाँ कोई जीव न हो [को०]।

जीवांतक—संज्ञा पुं० [सं० जीवान्तक] १ जीवों का वध करनेवाला। २ व्याध। बहेलिया।

जीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह सीधी रेखा जो किसी चाप के सिरे से दूसरे सिरे तक हो। ज्या। २ धनुष की डोरी।

३ जीवती । ४ बालवच । वचा । ५ भूमि । ६. जीवन । ७ जीवनोपाय । जीविका । ८ जीवन (को०) । ९. आभरण की खनक या झनक (को०) ।

जीवाजून—संज्ञा पुं० [सं० जीवयोनि] जीवजंतु । प्राणीमात्र । पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि । उ०—पौ फाटी पगरा हुआ जागे जीवाजून । सब काहू को देत है चोंच समाना चून ।—कबीर (शब्द०) ।

जीवाणु—संज्ञा पुं० [सं० जीव + अणु] अति सूक्ष्म जीव । क्षुद्रतम जीव । उ०—ऐसा होता है कि जीवाणु कई पुश्तों तक बिना विकसित हुए प्रवाहित रहें । —पा० सा० सि०, पृ० ११२ ।

जीवातु—संज्ञा पुं० [सं०] १ खाद्य । आहार । २ जीवन । अस्तित्व । ३ पुनर्जीवन । ४ जीवनदायक औषध (को०) ।

जीवातुमत्—संज्ञा पुं० [सं०] आयुष्काम यज्ञ का एक देवता जिससे आयु की प्रार्थना की जाती है । (आश्वश्रौत सूत्र)

जीवात्मा—संज्ञा पुं० [जीवात्मन्] प्राणियों की चेतन वृत्ति का कारणस्वरूप पदार्थ । जीव । आत्मा । प्रत्यगात्मा ।

विशेष—अनेक धार्मिक और दार्शनिक मतों के अनुसार शरीर से भिन्न एक जीवात्मा है । इसके अनेक प्रमाण शास्त्रों मे दिए गए हैं । सांख्य दर्शन मे आत्मा को 'पुरुष' कहा है और उसे नित्य, त्रिगुणशून्य, चेतन स्वरूप, साक्षी, कूटस्थ, द्रष्टा, विवेकी, सुख-दुःख-शून्य, मध्यस्थ और उदासीन माना है । आत्मा या पुरुष अकर्ता है, कोई कार्य नहीं करता, सब कार्य प्रकृति करती है । प्रकृति के कार्य को हम अपना (आत्मा का) कार्य समझते हैं । यह भ्रम है । न आत्मा कुछ कार्य करता है, न सुख दुःखादि फल भोगता है । सुख दुःख आदि भोग करना बुद्धि का धर्म है । आत्मा न बद्ध होता है, न मुक्त होता है । कठोपनिषद् मे आत्मा का परिमाण अंगुष्ठमात्र लिखा है । इसपर सांख्य के भाष्यकार विज्ञानभिक्षु ने बतलाया है कि अंगुष्ठमात्र से अभिप्राय अत्यंत सूक्ष्म से है । योग और वेदांत दर्शन भी आत्मा को सुख दुःख आदि का भोक्ता नहीं मानते । न्याय, वैशेषिक और मीमांसा दर्शन आत्मा को कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता मानते हैं । न्याय वैशेषिक मतानुसार जीवात्मा नित्य, प्रति शरीरभिन्न और व्यापक है । शांकर वेदांत दर्शन मे जीवात्मा और परमात्मा को एक ही माना गया है । उपाधियुक्त होने से ही जीवात्मा अपने को पृथक् समझता है, पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर यह भ्रम मिट जाता है और जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप हो जाता है । सांख्य, वेदांत योग आदि सभी जीवात्मा को नित्य मानते हैं । बौद्ध दर्शन के अनुसार जैसे सब पदार्थ क्षणिक हैं उसी प्रकार आत्मा भी । जीवात्मा एक क्षण मे उत्पन्न होता है और दूसरे क्षण में नष्ट हो जाता है । अतः क्षणिक ज्ञान का नाम ही आत्मा है । जिसकी धारा चलती रहती है और एक क्षण का ज्ञान या विज्ञान नष्ट होता है और दूसरा क्षणिक विज्ञान उत्पन्न होता है । इसे पूर्ववर्ती विज्ञानों के संस्कार और ज्ञान प्राप्त होते रहते हैं । इस क्षणिक ज्ञान के अतिरिक्त कोई नित्य या स्थिर आत्मा नहीं । माध्यमिक शाखा के बौद्ध तो इस क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा को भी नहीं स्वीकार करते, सब कुछ शून्य मानते हैं । वे कहते हैं कि यदि कोई वस्तु सत्य होती तो सब अवस्थाओं में बनी रहती । योगाचार शाखा के बौद्ध आत्मा को क्षणिक विज्ञान स्वरूप मानते हैं और इस विज्ञान को दो प्रकार का कहते हैं—एक प्रवृत्ति विज्ञान और दूसरा आलय विज्ञान । जाग्रत और सुप्त अवस्था मे जो ज्ञान होता है उसे प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं और सुषुप्ति अवस्था में जो ज्ञान होता है उसे आलय विज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान आत्मा ही को होता है । जैन दर्शन भी आत्मा को चिर, स्थायी और प्रत्येक प्राणी मे पृथक् मानता है । उपनिषदों मे जीवात्मा का स्थान हृदय माना है पर आधुनिक परीक्षाओं से यह बात अच्छी तरह प्रगट हो चुकी है कि समस्त चेतन व्यापारों का स्थान मस्तिष्क है । मस्तिष्क को ब्रह्मांड भी कहते हैं । दे० 'आत्मा' ।

पर्या०—पुनर्भवी । जीव । असु—मान् । सत्व । देहभृत् । चेतन ।

जीवादान—संज्ञा पुं० [सं०] बेहोशी । मूर्छा । संज्ञाशून्यता (को०) ।

जीवाधार—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा का आश्रयस्थान । हृदय ।

विशेष—उपनिषदों मे जीव का स्थान हृदय माना गया है ।

जीवाना—क्रि० स० दे० 'जिलाना' । उ०—बातें या वैष्णव को मरत तें जीवायो ।—दो सौ बावन०, भा०१, पृ० ३२३ ।

जीवानुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्गाचार्य मुनि, जो बृहस्पति के वंश मे हुए हैं । किसी के मत से ये बृहस्पति के छोटे भाई भी कहे जाते हैं । उ०—भापत हम जीवानुज बानी । जा महँ होइ सकल दुख हानी ।—गोपाल (शब्द०) ।

जीवास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार कर्म का करनेवाला, कर्म के फल को भोगनेवाला, किए हुए कर्म के अनुसार शुभाशुभ गति में जानेवाला और सम्यक् ज्ञानादि के वश से कर्म के समूह को नाश करनेवाला जीव ।

विशेष—यह तीन प्रकार का माना गया है,—अनादिसिद्ध, मुक्त और बद्ध । अनादिसिद्ध अर्हत् हैं जो सब अवस्थाओं मे अविद्या आदि के बंधन से मुक्त तथा अणिमादि सिद्धियों से संपन्न रहते हैं ।

जीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह वस्तु या व्यापार जिससे जीवन का निर्वाह हो । भरण पोषण का साधन । जीवनोपाय । वृत्ति । उ०—जीविका विहीन लोग सीद्यमान, सोच बस कहैं एक एकन सो कहाँ जाई का करी ?—तुलसी ग्र० पृ०, २२१ ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—जीविकाजन = जीवन निर्वाह के साधन का संग्रह । उ०—उसे अपने जीविकार्जन की एक मशीन बना रहा है । —स० दर्शन पृ० ८८ ।

मुहा०—जीविका लगना = भरण पोषण का उपाय होना । रोजी का ठिकाना होना । जीविका लगाना = भरण पोषण का उपाय करना । जीवन निर्वाह का उपाय करना । रोजी का ठिकाना करना ।

२ जीवनदायी तत्व अर्थात् जल (को०) । ३. जीवन (को०) ।

जीवित¹—वि० [सं०] १ जीता हुआ । जिंदा । सप्राण । उ०—उस समय सत्यगुरु का वेष जीवित साधु के समान था । —कबीर म०, पृ० ८१ । २ जो जीव या प्राणयुक्त हो

गया हो (को०)। १३ सजीव या सप्राण किया हुआ (को०)। ४ वर्तमान। उपस्थित (को०)।

जीवित[2]—संज्ञा पुं० १ जीवन। प्राणधारण।

यौ०—जीवितेश।

२. जीवन अवधि। आयु (को०)। ३ जीविका। रोजी (को०)। ४ प्राणी (को०)।

जीवितकाल—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनकाल। जीवित रहने का समय। आयु [को०]।

जीवितज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धमनी [को०]।

जीवितनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] पति [को०]।

जीवितव्य[1]—वि० [सं०] जीवित रहने या रखने योग्य [को०]।

जीवितव्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जीवन। २ जीवित रहने की संभावना। ३ पुनर्जीवित होने की संभावना।

जीवितव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनोत्सर्ग। जीवन की आहुति [को०]।

जीवितसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] जान का खतरा [को०]।

जीवितांतक—संज्ञा पुं० [सं० जीवितान्तक] शिव। शंकर। महादेव [को०]।

जीवितेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राणनाथ। प्यारा व्यक्ति। प्राणों से बढ़कर प्रिय व्यक्ति। २ यमराज। ३ इंद्र। ४ सूर्य। ५ देह में स्थित इडा और पिंगला नाडी। ६. एक जीवनदायिनी ओषधि जो मृतक को जीवित करनेवाली कही गई है (को०)।

जीवितेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

जीवी—वि० [सं० जीविन्] १. जीनेवाला। प्राणधारक। २ जीविका करनेवाला। जैसे,—श्रमजीवी। शस्त्रजीवी।

विशेष—सामान्यतया इसका प्रयोग समस्त पदों के अंत में होता है। जैसे,—बुद्धिजीवी।

जीवेंधन—संज्ञा पुं० [सं० जीवेन्धन] जलती हुई लकडी या ईंधन [को०]।

जीवेश—संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा। ईश्वर।

जीवोपाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत इन तीनों अवस्थाओं को जीव की उपाधि कहते हैं।

जीव्य—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन [को०]।

जीव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवनोपाय। जीविका [को०]।

जीस्त—संज्ञा स्त्री० [फा० जीस्त] जिंदगी। जीवन। उ०—जीस्त नहीं है सरासर, बस सरगरदानी वह है। —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६६।

जीह(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीभ, सं० जिह्वा] जीभ। जबान। उ०—(क) जन मन मंजु कंजु मधुकर से। जीह जसोमति हर हलधर से।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहरौ जो चाहसि उजियार। —तुलसी (शब्द०)। (ग) नाम जीह जपि जागहिं जोगी। तुलसी (शब्द०)।

जीहि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीह] दे० 'जीह'।

जुंग—संज्ञा पुं० [सं० जुङ्ग] वृद्धदारक वृक्ष। विधारा।

जुंगित[1]—संज्ञा पुं० [सं० जुङ्गित] परित्यक्त। बहिष्कृत [को०]।

जुंगित[2]—वि० नीच जाति का व्यक्ति। चांडाल [को०]।

जुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जुन्हरी', 'ज्वार'।

जुंदर—संज्ञा पुं० [?] बंदर का बच्चा (कलंदरों की बोली)।

जुंबाँ—वि० [फ़ा० जुंबाँ] कंपायमान। हिलता हुआ [को०]।

जुंबिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुंबिश] चाल। गति। हरकत। हिलना डोलना।

मुहा०—जुंबिश खाना = हिलना डोलना।

जुँआँ—संज्ञा पुं० [सं० यूका] दे० 'जूँ'।

जुँई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जुई'।

जुँवली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुंबा] एक प्रकार की पहाड़ी भेड़।

जु[1](पु)—वि० [हिं०] दे० 'जो'। उ०—करत लाल मनुहारि, पै तू न लखति इहि ओर। ऐसो उर जु कठोर तो उचितहि उरज कठोर। —मति० ग्रं०, पृ० ४०८।

जु[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जू] दे० 'जू'।

जुअती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युवती] दे० 'युवती'।

जुअल(पु)—वि० [सं० युगल, प्रा० जुअल] दे० 'युगल'। उ०—पम कोप्पिअ सुनिअ सुरुतान, रोमञ्चिअ भुअ जुअल।—कीर्ति०, पृ० ६०।

जुआँ—संज्ञा पुं० [सं० यूका, प्रा० जूआ] [स्त्री० अल्पा० जुईं] एक छोटा कीडा जो मैलेपन के कारण सिर के बालों में पड़ जाता है। जूँ। ढील।

जुआँरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआँ] जुआँ। छोटी जुआँ।

जुआँरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ज्वार'।

जुआ[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, पा० जूत] वह खेल जिसमें जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है। रुपए पैसे की बाजी लगाकर खेला जानेवाला खेल। किसी घटना की संभावना पर हार जीत का खेल। द्यूत। उ०—आछो जनम अकारथ गार्यो। करी न प्रीति कमललोचन सों जन्म जुआ ज्यों हारयो —सूर (शब्द०)।

विशेष—जुआ कौडी, पासे, ताश आदि कई वस्तुओं से खेला जाता है पर भारत में कौडियों से खेलने का प्रचार आजकल विशेष है। इसमें चित्ती कौड़ियों को लेकर फेंकते हैं और चित्त पड़ी हुई कौड़ियों की संख्या के अनुसार दाँवों की हार जीत मानते हैं। सोलह चित्ती कौड़ियों से जो जुआ खेला जाता है उसे सोरही कहते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।—जीतना।—हारना।—होना।

जुआ[2]—संज्ञा पुं० [सं० युज (= जोड़ना)] १ गाड़ी, छकड़े, हल आदि की वह लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है। २ जाँते की चक्की या मुँठ।

जुआ[3]—संज्ञा पुं० [हिं० जुवा] दे० 'युवा'। उ०—बाल वृद्ध जुआ नर नारिन की एक संग।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८६।

जुआखाना—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + फ़ा० खाना] वह स्थान जहाँ जुआ खेला जाता हो। जुआ खेलने का अड्डा।

जुआचोर—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + चोर] १. वह जुआरी जो अपना

दाँव जीतकर खिसक जाय। २. धोखेबाज। धोखा देकर दूसरों का माल उड़ा लेनेवाला। ठग। वंचक।

जुआचोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआ + चोरी] ठगी। धोखेबाजी। वंचकता।

क्रि० प्र०—करना।

जुआठा†—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + काठ] दे० 'जुआठा'।

जुआठा—संज्ञा पुं० [सं० युग + काष्ठ] हल मे लगनेवाला वह लकड़ी का ढाँचा जो बैलो के कधो पर रहता है।

जुआड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० जुआरी] दे० 'जुआरी'।

जुआन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुवान'।

जुआनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआन + ई (प्रत्य०)] दे० 'जवानी'।

जुआब(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० जवाब] दे० 'जवाब'। उ०—आवे जाड जनावे तुषार, हिए बिरहानल जुआब भए की।—हिंदी प्रेमा, पृ० २७१।

जुआर[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ज्वार] दे० 'ज्वार'। उ०—जाएखने दितहु आलिंगन गाढ। जनि जुआर पउसे खेलपाढ़।—विद्यापति, पृ० ३४३।

जुआर(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ+आर (प्रत्य०)] जुआ खेलनेवाला व्यक्ति। जुआडी। उ०—संशय सावज शरीर महँ, सगहि खेल जुआर।—कबीर बी०, पृ० ८८।

जुआर[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ज्वार] दे० 'ज्वार'।

जुआरदासी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पौधा जो फूलो के लिये लगाया जाता है।

जुआर भाटा—संज्ञा [हिं० ज्वारभाटा] दे० 'ज्वार भाटा'।

जुआरा—संज्ञा पुं० [हिं० जोतार] उतनी धरती जितनी एक जोडी बैल एक दिन में जोत सके।

जुआरी—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ] जुआ खेलनेवाला।

जुइना†—संज्ञा पुं० [सं० यूनि (= बधन या जोड़)] घास या फूस की ऐंठकर बनाई हुई रस्सी जो बोझ बाँधने के काम मे आती है।

जुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूँ] १ छोटी जुआँ। २ एक छोटा कीड़ा जो मटर, सेम इत्यादि की फलियों मे लगकर उन्हे नष्ट कर देता है।

जुई[1]—संज्ञा स्त्री० [?] बरछी के आकार का काठ का बना वह पात्र जिससे हवन में घी छोड़ा जाता है। स्रुवा।

जुई[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी, हिं० जुही] दे० 'जुही'।

जुकति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत'। उ०—उकति जुकति रसभरी उठाऊँ। भागभरी को हरष बढ़ाऊँ।—घनानंद, पृ० २४२।

जुकाम—संज्ञा पुं० [हिं० जूड़ + घाम वा अ० जुकाम, तुलनीय सं० यक्ष्मन्, *जखम,>जुखाम] अस्वस्थता या बीमारी जो सरदी लगने से होती है और जिसमें शरीर मे कफ उत्पन्न हो जाने के कारण नाक और मुँह से कफ निकलता है, ज्वराश रहता है, सिर भारी रहता और दर्द करता है। सरदी।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—जुकाम बिगड़ना = जुकाम का सुख जाना। मेढकी को जुकाम होना = किसी मनुष्य मे कोई ऐसी बात होना जिसकी उसमे कोई संभावना न हो। किसी मनुष्य का कोई ऐसा काम करना जो उसने कभी न किया हो या जो उसके स्वभाव या अवस्था के विरुद्ध हो।

जुकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुत्ता। २ मलय पर्वत [को०]।

जुक्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १ मिलनयोग। उ०—तन चपक कुंदन मनो कै केसर रंग जुक्ति।—पृ० रा०, ६। ५४। २ उपाय। यत्न। उ०—घृत मन वास पास मनि तेहि माँ, करि सो जुक्ति बिलगावा।—जग्बानी, पृ० ४७।

जुग—संज्ञा पुं० [सं० युग] १ युग।

मुहा०—जुग जुग = चिर काल तक। बहुत दिनों तक। जैसे,—जुग जुग जीओ।

२ दो। उभय। उ०—बाला के जुग कान मैं बाला सोभा देत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८८। ३. जत्था। गुट्ट। दल। गोल।

मुहा०—जुग टूटना = (१) किसी समुदाय के मनुष्यों का परस्पर मिला न रहना। अलग अलग हो जाना। दल टूटना। मंडली तितर बितर होना। जैसे,—सामने शत्रु सेना के दल खड़े थे, पर आक्रमण होते ही वे इधर उधर भागने लगे और उनके जुग टूट गए। (२) किसी दल या मंडली में एकता या मेल न रहना। जुग फूटना = जोडा खडित होना। साथ रहनेवाले दो मनुष्यों मे से किसी एक का न रहना।

३ चौसर के खेल मे दो गोटियो का एक ही कोठे मे इकट्ठा होना। जैसे, जुग छूटा कि गोटी मरी। ४. वह डोरा जिसे जुलाहे तारो को अलग अलग रखने के लिये ताने मे डाल देते हैं। ५ पुश्त। पीढ़ी।

जुगजुगाना—क्रि० अ० [हिं० जगना (= प्रज्वलित होना)] १. मद मद और रह रहकर प्रकाश करना। मद ज्योति से चमकना। टिमटिमाना। जैसे, तारो का जुगजुगाना। उ०—कोठरी के कोने मे एक दीया जुगजुगा रहा था। २. अवनत या हीन दशा से क्रमश कुछ उन्नत दशा को प्राप्त होना। कुछ कुछ उभरना। कुछ कीर्ति या समृद्धि प्राप्त करना। कुछ बढ़ना या नाम करना। जैसे,—वे इधर कुछ जुगजुगा रहे थे कि चल बसे।

जुगजुगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुगजुगाना] एक चिड़िया जिसे शकरखोरा भी कहते हैं।

जुगत[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १ युक्ति। उपाय। तदबीर। ढग। उ०—सब्द मस्कला करै ज्ञान का कुरंड लगावै। जोग जुगत से मलै दाग तब मन का जावै।—पलटू०, भा० १, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—जुगत भिड़ाना या मिलाना या लगाना = जोड तोड़ बैठाना। ढग रचना। उपाय करना। तदबीर करना।

२ व्यवहारकुशलता। चतुराई। हथकंडा। ३. चमत्कारपूर्ण उक्ति। चुटकुला।

जुगति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] उपाय। तदबीर। उ०—जोग-जुगति सिखए सबै मनो महामुनि मैन। चाहत पिय अद्वैतता कानन सेवत नैन।—बिहारी र०, दो० १३।

जुगती[1]—वि० [हिं० जुगत + ई (प्रत्य०)] उपायी । युक्तिकुशल । जोड़ तोड़ बैठा लेने में कुशल ।

जुगती[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] युक्ति । उपाय । उ०—कोई कहे जुगती सब जानूं कोइ कहे मैं रहनी । आतम देव सो पारखो नाहीं यह सब झूठी कहनी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०१

जुगनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोगना] दे० 'जुगनू' ।

जुगनी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गाना जो पंजाब में गाया जाता है ।

जुगनी[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का आभूषण । वि० दे० 'जुगनू' २ ' । उ०—गल मे कटवा, कठा, हँसली, उर में हुमेल कल चपकली, जुगनी चौकी, मूँगे नकली ।—ग्राम्या०, पृ० ४० ।

जुगनू—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्गण, प्रा० जोइगण अथवा हिं० जुग-जुगाना] १ गुबरैले की जाति का एक कीड़ा जिसका पिछला भाग आग की चिनगारी की तरह चमकता है । यह कीड़ा बरसात मे बहुत दिखाई पड़ता है । खद्योत । पटबीजना ।

विशेष—तितली, गुबरैले, रेशम के कीड़े आदि की तरह यह कीड़ा भी ढोले के रूप में उत्पन्न होता है । ढोले की अवस्था में यह मिट्टी के घर में रहता है और उसमें से दस दिन के उपरांत रूपांतरित होकर गुबरैले के रूप मे निकलता है । इसके पिछले भाग से फासफरस का प्रकाश निकलता है । सबसे चमकीले जुगनू दक्षिणी अमेरिका मे होते हैं जिनसे कहीं कहीं लोग दीपक का काम भी लेते हैं । इन्हें सामने रखकर लोग महीन से महीन अक्षरो की पुस्तकें भी पढ़ सकते हैं ।

२ स्त्रियों का एक गहना जो पान के आकार का होता है और गले में पहना जाता है । रामनामी ।

जुगम(पु)—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' । उ०—ररो ममु जुगम अंक बाकी रह्या ।—रघु० रू०, पृ० ५७ ।

जुगल—वि० [सं० युगल] दे० 'युगल' । उ०—लाल कंचुकी मैं उगे जोवन जुगल लखात ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८७ ।

जुगलस्वरूप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युगल + स्वरूप] १ नियामक प्रकृति पुरुष के रूप में मान्य युग्म विग्रह । २. राधाकृष्ण । उ०—तब युगल स्वरूप ने वा कोठी में ही दरसन दीनो ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७८ ।

जुगलिया—संज्ञा पुं० [?] जैन कथाओं के अनुसार वह मनुष्य जिसके ४०९६ बाल मिलकर आजकल के मनुष्यो के एक बाल के बराबर हो ।

जुगवना—क्रि० स० [सं० योग + अवना (प्रत्य०)] १ संचित रखना । एकत्र करना । जोड़ जोड़कर रखना कि समय पर काम आए । २ हिफाजत से रखना । सुरक्षित रखना । यत्न और रक्षापूर्वक रखना ।

जुगाड़†—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० योग (= योजन) + हिं० आड़ (प्रत्य०)] १ व्यवस्था । कार्यसाधन का मार्ग ।२. युक्ति ।

क्रि० प्र०—करना । बैठाना ।

जुगादरी—वि० [सं० युगान्तरीय] बहुत पुराना । बहुत दिनों का ।

जुगाना†—क्रि० स० [हिं० जुगवना] दे० 'जुगवना' । उ०—जस भुवंगम मणि जुगावे अस शिष्य गुरु आज्ञा गहे ।—कबीर सा० पृ० २१२ ।

जुगार†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'जुगाली' उ०—बैठे हिरन सुहावने जिन पै करत जुगार ।—शकुतला, पृ० ११९ ।

जुगालना—क्रि० अ० [सं० उद्‌गिलन (= उगलना)]सींगवाले चौपायो का निगले हुए चारे को थोड़ा थोड़ा करके गले से निकाल मुँह मे लेकर फिर से धीरे धीरे चबाना । पागुर करना ।

जुगाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुगालना] सींगवाले चौपायो की निगले हुए चारे को गले से थोड़ा थोड़ा निकाल निकाल फिर से चबाने की क्रिया । पागुर । रोमंथ ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुगी[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० योगी] योग करनेवाला । जोगी । उ०—रिषि सत जती जगम जुती रहहिं ध्यान आरंभ मह ।—पृ० रा०, १२।८९ ।

जुगी[2](पु)—वि० [हिं० युगी] युग से संबंध रखनेवाला । युग का ।

विशेष—इसका प्रयोग समास मे ही मिलता है । जैसे सतयुगी, कलयुगी ।

जुगुत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' ।

जुगुति—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' । उ०—होत डमरू कर लोआ सख । जोग जुगुति गिम भरल माथ ।—विद्यापति, पृ० ३९७ ।

जुगुप्सक—वि० [सं०] व्यर्थ दूसरे की निंदा करनेवाला ।

जुगुप्सन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जुगुप्स्य, जुगुप्सित] निंदा करना । दूसरे की बुराई करना ।

जुगुप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निंदा । गर्हणा । बुराई । २ अश्रद्धा । घृणा ।

विशेष—साहित्य मे यह बीभत्स रस का स्थायी भाव है और शांत रस का व्यभिचारी । पतंजलि के अनुसार शौच या शुद्धि लाभ कर लेने पर अपने अंगो तक से जो घृणा हो जाती है और जिसके कारण सासारिक प्राणियों तक का ससर्ग अच्छा नहीं लगता, उसका नाम 'जुगुप्सा' है ।

जुगुप्सित—वि० [सं०] निंदित । घृणित ।

जुगुप्सु—वि० [सं०] निंदक । बुराई करनेवाला ।

जुगुप्सू—वि० [सं०] दे० 'जुगुप्सु' ।

जुग्त—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'युक्ति' । उ०—जोग जुग्त ते भरम न छूटै जब लग आपन सूझै । कहै कबीर सोइ सतगुर पूरा जो कोइ समझै बूझै ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५२ ।

जुग्म—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' ।—अनेकार्थ०, पृ० ३३ ।

जुज[1]—संज्ञा पुं० [अ० जुज, मि० सं० युज्] १. कागज के ८ पृष्ठो या १६ पृष्ठों का समूह । एक फारम ।

यौ०—जुजबंदी ।

२ अंश । टुकड़ा । उ०—जुज से कुल कतरे से दरिया बन जावे । अपने को खोये तब अपने को पावे ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६८ ।

जुज़³—अव्य० [फ़ा० जुज़] को छोड़कर। के सिवा। बिना। बगैर [को०]।

जुजदान—संज्ञा पुं० [अ० जुज + फ़ा० दान] बस्ता। वह थैला जिसमे लड़के पुस्तकें आदि रखते हैं।

जुजबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० जुज़+फ़ा० बंदी] किताब की सिलाई जिसमें आठ आठ वा सोलह सोलह पन्ने एक साथ सिए जाते हैं।

क्रि० प्र०—करना।

जुजरस—वि० [अ० जुज़रस] १. सूक्ष्मदर्शी। तीव्र बुद्धिवाला। २ मितव्ययी। ३. कंजूस। कृपण [को०]।

जुजरसी—संज्ञा स्त्री० [अ० जुज़रसी] १. सूक्ष्मदर्शिता। २. मितव्ययिता [को०]।

जुज व कुल—संज्ञा पुं० [अ० जुज़ व कुल] अंश और संपूर्ण। संपूर्ण। कुल [को०]।

जुजवी—वि० [अ० जुज़्वी] १ बहुत मे से कोई एक। बहुत कम। कुछ थोड़े से। २. बहुत छोटे अंश का। जैसे, जुजवी हिस्सेदार।

जुजाम—संज्ञा पुं० [अ० जज़ाम] कुष्ठ रोग। कोढ़। उ०—फिल फोर हुआ है उसको जुजाम। जीने से किया उसको नाकाम।—दक्खिनी०, पृ० २२६।

जुजीठल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युधिष्ठिर] राजा युधिष्ठिर। (हिं०)।

जुज्झ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध। लड़ाई। उ०—छमा तरवार से जगत को बसि करै, प्रेम की जुज्झ मैदान होई।—पलटू०, भा०२, पृ० १५।

जुझवाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जुझाना] १ लड़ने के लिये प्रोत्साहित करना। लड़ा देना। २ लड़ाकर मरवा डालना।

जुझाऊ—वि० [हिं० जुज्झ, जूझ+आऊ (प्रत्य०)] १ युद्ध का। युद्ध संबंधी। जिसका व्यवहार रणक्षेत्र मे हो। लड़ाई में काम आनेवाला। उ०—बाजे बिहद जुझाऊ बाजैं। निरसैं मर्ग तुरग गज गाजैं।—हम्मीर०, पृ० ५१। २ युद्ध के लिये उत्साहित करनेवाला। जैसे, जुझाऊ बाजा, जुझाऊ राग। उ०—बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि सुनि होय भटन मन चाऊ।—तुलसी (शब्द०)।

जुझाना—क्रि० स० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] १ लड़ा देना। युद्ध के लिये प्रेरित करना। २ युद्ध में मरवा डालना।

जुझार(पु)†—वि० [हिं० जुज्झ + आर (प्रत्य०)] लड़ाका। सूरमा। वीर। बाँकुरा। बहादुर। उ०—सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर को जीतनहारा।—तुलसी (शब्द०)।

जुझावर—वि० [हिं० जुज्झ+आवर (प्रत्य०)] जुझानेवाला। उ०—जहँ बजै जुझावर बाजा, सब कायर उठि उठि भाजा।—कबीर श०, भा०३, पृ० २०।

जुट—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्त, प्रा० जुत्त अथवा स० √जुट् ?] १. दो परस्पर मिली हुई वस्तुएँ। एक साथ के दो आदमी या वस्तु। जोड़ी। जुग। २. एक साथ बँधी या लगी हुई वस्तुओं का समूह। लाट। थोक। ३. गुट। मंडली। जत्था। दल। ४. ऐसे दो मनुष्य जिनमे खूब मेल हो। जैसे,—उन दोनों की एक जुट है। ५. जोड़ का आदमी या वस्तु।

जुटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जटा। २ गुथी। चोटी। जूड़ा [को०]।

जुटना—क्रि० अ० [सं० युक्त,प्रा० जुत्त+ना (प्रत्य०) या √सं० जुड़् बाँधना] १ दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे। एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटना कि बिना प्रयास या आघात के अलग न हो सके। दो वस्तुओं का बँधने, चिपकने, सिलने या जड़ने के कारण परस्पर मिलकर एक होना। संबद्ध होना। संश्लिष्ट होना। जुड़ना। जैसे,—इस खिलौने का टूटा सिर गोंद से नहीं जुटता, गिर गिर पड़ता है।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—मिलकर एक रूप हो जानेवाले द्रव या चूर्ण पदार्थों के संबंध मे इस क्रिया का प्रयोग नहीं होता।

२ एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास होना कि दोनों के बीच अवकाश न रहे। दो वस्तुओं का परस्पर इतने निकट होना कि एक का कोई पार्श्व दूसरे के किसी पार्श्व से छू जाय। भिड़ना। सटना। लगा रहना। जैसे,—मेज इस प्रकार रखो कि चारपाई से जुटी न रहे। ३. लिपटना। चिमटना। गुथना। जैसे—दोनों एक दूसरे से जुटे हुए खूब लात घूँसे चला रहे हैं। ४ संभोग करना। प्रसंग करना। ५ एक ही स्थान पर कई वस्तुओं या व्यक्तियों का आना या होना। एकत्र होना। इकट्ठा होना। जमा होना। जैसे,—भीड़ जुटना, आदमियों का जुटना, सामान जुटना। ६. किसी कार्य में योग देने के लिये उपस्थित होना। जैसे,—आप निश्चित रहें, हम मौके पर जुट जायँगे। ७ किसी कार्य में जी जान से लगना। प्रवृत्त होना। तत्पर होना। जैसे,—ये जिस काम के पीछे जुटते हैं उसे कर ही के छोड़ते हैं। ८ एकमत होना। अभिसंधि करना। जैसे,—दोनों ने जुटकर यह उपद्रव खड़ा किया है।

जुटली—वि० [सं० जूट] जूड़ेवाला। जिसे लंबे लंबे बालों की लट हो। उ०—सखी री नंदनंदन देखु। धूरि धूसर जटा जुटली हरि किए हर भेषु।—सुर (शब्द०)।

जुटाना—क्रि० स० [हिं० जुटना] १. दो या अधिक वस्तुओं को परस्पर इस प्रकार मिलाना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे। जोड़ना।

संयो० क्रि०—देना।

२ एक वस्तु को दूसरी के इतने पास करना कि एक का कोई

भाग दूसरे के किसी भाग से छू जाय। भिड़ाना। सटाना। ३. इकट्ठा करना। एकत्र करना। जमा करना।

जुटाव—संज्ञा पुं० [हिं० जुट+भाव (प्रत्य०)] जमाव। बटोर।

जुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शिखा। चुटी। चुटैया। २. गुच्छा। लट। जुड़ो। जुट्टी। ३ एक प्रकार का कपूर।

जुट्टा¹—संज्ञा पुं० [हिं० जुटना] १ घास, पत्तियो या टहनियों का एक में बँधा पूला। आँटी। २ एक समूह या जुट में उगनेवाली घास जाति की कोई वनस्पति। जैसे, सरपत का जुट्टा, कास का जुट्टा।

जुट्टा²—वि० परस्पर मिला या सटा हुआ।

जुट्टी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुटना] १ घास, पत्तियो या टहनियों का एक मे बँधा हुआ छोटा पूला। अँटिया। जूरी। जैसे, तवाकू की जुट्टी, पुदीने की जुट्टी। २. सूरन आदि के नए कल्ले जो बँधे हुए निकलते हैं। ३ तले ऊपर रखी हुई एक प्रकार की कई चिपटी (पत्तर या परत के आकार की) वस्तुओं का समूह। गड्डी। जैसे, रोटियों की जुट्टी, रुपयो की जुट्टी, पैसो की जुट्टी। †४ एक पकवान जो शाक या पत्तो को बेसन, पीठी आदि मे लपेटकर तलने से बनता है।

जुट्टी²—वि० जुटी या मिली हुई। जैसे, जुट्टी भौं।

जुठारना—क्रि० स० [हिं० जूठा] १. खाने पीने की किसी वस्तु को कुछ खाकर छोड़ देना। खाने पीने की किसी वस्तु में मुँह लगाकर उसे अपवित्र या दूसरे के व्यवहार के अयोग्य करना। उच्छिष्ट करना।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठी वस्तु का खाना निषिद्ध समझा जाता है।

संयो० क्रि०—डालना। देना।

२ किसी वस्तु को भोग करके उसे किसी दूसरे के व्यवहार के अयोग्य कर देना।

जुठिहारा—संज्ञा पुं० [हिं० जूठा+हारा] [स्त्री० जुठिहारी] जूठा खानेवाला। उ०—सूरदास प्रभु नदनदन कहै हम ग्वालन जुठिहारे।—सूर (शब्द०)।

जुठैला—वि० [हिं० जूठा+ऐल (प्रत्य०)] उच्छिष्ट। जूठा।

जुठीला—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटे पैरोंवाली बादामी रंग की एक चिड़िया जो समूह मे रहती है।

जुड़ंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़ना+अंग] अति निकट का संबंध। अंग और अंगी जैसी घनिष्टता।

जुड़ना—क्रि० अ० [हिं० जुटना या सं० जुड़ (= बाँधना)] १ दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे। दो वस्तुओं का बँधने, चिपकने, सिलने, या जड़े जाने के कारण परस्पर मिलकर एक होना। संबद्ध होना। सम्मिलित होना। संयुक्त होना।

क्रि० प्र०—जाना।

२ संयोग करना। संभोग करना। प्रसंग करना। † ३. इकट्ठा होना। एकत्र होना। ४ किसी काम मे योग देने के लिये उपस्थित होना। ५. उपलब्ध होना। प्राप्त होना। मिलना। मयस्सर होना। जैसे, कपड़े लत्ते जुड़ना। उ०—उसे तो चने भी नही जुड़ते। ६ गाड़ी आदि मे बैल लगना। जुतना।

जुड़पित्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूड़+पित्त] शीत और पित्त से उत्पन्न एक रोग जिसमें शरीर में खुजली उठती है और बड़े बड़े चकत्ते पड़ जाते हैं।

जुड़वाँ¹—वि० [हिं० जुड़ना] जुड़े हुए। यमल। गर्भकाल से ही एक मे सटे हुए। जैसे, जुड़वाँ बच्चे।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग गर्भजात बच्चो के लिये ही होता है।

जुड़वाँ²—संज्ञा पुं० एक ही साथ उत्पन्न दो या अधिक बच्चे।

जुड़वाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़वाना] दे० 'जोड़वाई'।

जुड़वाना¹†—क्रि० स० [हिं० जूड़] १ ठंढा करना। सुखी करना। जैसे, छाती जुड़वाना।

जुड़वाना²†—क्रि० स० [हिं० जोड़वाना] दे० 'जोड़वाना'।

जुड़ाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ाई] दे० 'जोड़ाई'।

जुड़ाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़ाना] ठढक। शीतलता। जाड़ा। उ०—जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नीद जुड़ाई होई।—मानस, १। ३९।

जुड़ाना¹†—क्रि० अ० [हिं० जूड़] १ ठंढा होना। शीतल होना। २ शांत होना। तृप्त होना। प्रसन्न होना। संतुष्ट होना।

संयो० क्रि०—जाना।

जुड़ाना²—क्रि० स० १. ठढा करना। शीतल करना। २. शांत और संतुष्ट करना। तृप्त करना। प्रसन्न करना। उ०—खोजत रहेउ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावहुँ छाती।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

जुड़ाना³—क्रि० स० [हिं० जुड़ना का क्रि० स० रूप] जोड़ने का काम किसी और से कराना।

जुड़ावना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जुड़ाना'।

जुड़ावाँ—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० जुड़वाँ] दे० 'जुड़वाँ'।

जुडीशल—वि० [अं०] दीवानी या फौजदारी संबंधी। न्याय संबंधी।

जुत⑤—वि० [सं० युत] दे० 'युत'। उ०—(क) जानी जाति नारिन दवारि जुत बन मे।—मतिराम (शब्द०)। (ख) जननंद जुत नरवर लई भ्रम उज्जैन अपार। दब्बोहा पारेध लइ, रैयत करी पुकार।—पृ० रासो, पृ० ८८।

जुतना—क्रि० अ० [सं० युक्त प्रा० जुत्त] १ बैल, घोड़े आदि का गाड़ी में लगना। नधना। २ किसी काम मे परिश्रमपूर्वक लगना। किसी परिश्रम के कार्य मे तत्पर या सलग्न होना। जैसे,—वह दिन भर काम मे जुता रहता है। ३ लड़ाई में लगना। गुथना। जुटना। ४. जोता जाना। हल चलने के कारण जमीन का खुदकर भुरभुरी हो जाना। जैसे,—यह खेत दिन भर मे जुत जायगा।

जुतवाना—क्रि० स० [हिं० जोतना] १. दूसरे से जोतने का काम करवाना। दूसरे से हल चलवाना। जैसे, जमीन जुतवाना, खेत जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

२ बैल, घोड़े आदि को गाडी, हल आदि में खींचने के लिये लगवाना। नधवाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो पशु जोते जाते हैं तथा जिस वस्तु मे जोते जाते हैं, दोनों के लिये होता है। जैसे, घोडे जुतवाना, गाड़ी जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

जुताई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोताई'।

जुताना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जोताना'।

जुतियाना—क्रि० स० [हिं० जूता से नामिक धातु] १. जूता मारना। जूतों से मारना। जूते लगाना। २. अत्यंत निरादर करना। अपमानित करना।

जुतियौअल—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुतियाना+औवल (प्रत्य०)] परस्पर जूतों की मार।

क्रि० प्र०—होना।

जुत्थⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] दे० 'यूथ'।

जुथौली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी चिड़िया।

विशेष—इसकी छाती और गरदन का कुछ अंश सफेद और बाकी भूरा होता है।

जुदा—वि० [फ़ा०] [स्त्री० जुदी] १ पृथक्। अलग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जुदा करना = नौकरी से छुड़ाना। काम से अलग करना २ भिन्न। निराला। ३ अन्य। दूसरा (को०)। ४ विरही। विरहग्रस्त (को०)।

जुदाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] बिछोह। वियोग। दो व्यक्तियों का एक दूसरे से अलग होने का भाव। विरह।

क्रि० प्र०—होना।

जुदागाना—क्रि० वि० [फ़ा० जुदागानह्] अलग अलग। पृथक् पृथक्। उ०—हर मुल्क की चाल चलन, लिबास, पोशाक और रस्मो रिवाज जुदागाना होता है। —प्रेमघन, भा०२, पृ० १५७।

जुदी—वि० स्त्री० [फ़ा० जुदी] दे० 'जुदा'।

जुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—साहब दी सुरतनां माइ गज जुद्ध निरष्षिय।—पृ० रा०, १९। १०२।

जुधⓅ—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—हौं ब्रह्म राय जुध करन जोग। जुध भाजि जाउ तौ परै सोग।—पृ० रा०, १।४४५।

जुधवान्Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध+हिं० वान (प्रत्य०)] योद्धा। युद्ध करनेवाला व्यक्ति।

जुनब्बीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [अ० जनब] जनब नगर की निर्मित तलवार। उ०—जगि जोर जुनब्बै फहरत फब्बैं सुंडनि गब्बै फर पारैं।—पद्माकर ग्रं० पृ० २७।

जुना†—वि० [हिं० जूना] दे० 'जीर्ण'। उ०—जो जुने थिगले सिया है इस बजा। कुछ अजब तेरी कदर है औ कजा। —दक्खिनी०, पृ० १७५।

जुनारदार—वि० [अ० जुन्नार+फ़ा० दार] १ ब्राह्मण। २. जनेऊ धारण करनेवाला। उ०—केसोदास मारू मरि हरम कमठ कटी जैन खाँ जुनारदार मारे इक नीर के।—अकबरी० पृ० ११६।

जुनिपर—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का अंग्रेजी फूल जो कई रगों का होता है।

जुनूँ—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जुनून'। उ०—जजीर जुनूँ कड़ी न पड़ियो। दीवाने का पाँव दरमियाँ है। —प्रेमघन, भा० २, पृ० ४०६।

जुनून—संज्ञा पुं० [अ०] पागलपन। सनक। झक। उन्माद।

जुनूनी—वि० [अ०] विक्षिप्त। सनकी। उन्मत्त [को०]।

जुनूब—संज्ञा पुं० [अ० जनूब] दक्षिण। दक्खिन [को०]।

जुन्नार—संज्ञा पुं० [अ०] यज्ञोपवीत। जनेऊ। उ०—बा तजरवये तसबीहो जुन्नार झुका।—कबीर ग्रं०, पृ० ४६८।

जुन्हरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हाई†—संज्ञा [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा] १. चाँदनी। चंद्रिका। उ०—सुमन बास स्फुटत कुसुम निकर तैसी है शरद जैसी रैन जुन्हाई।—अकबरी०, पृ० ११२। २ चंद्रमा।

जुन्हार†—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हैया†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा, हिं० जोन्ही+ऐया (प्रत्य०)] १ चाँदनी। चंद्रिका। चंद्रमा का उजाला। २. चंद्रमा। उ०—अहित अनैसो ऐसो कौन उपहास यातें सोचन खरी मैं परी जोवति जुन्हैया को।—पद्माकर (शब्द०)

जुफ्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० जुफ्त] १ युग्म। जोड़ा। २ सम संख्या जो दो से बँट जाय। ३ जूता [को०]।

जुबकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० युवक] दे० 'युवक'। उ०—प्रात समय नित न्हाय जुबक जोधा जित आए।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २३।

जुबतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'युवति'। उ०—अवलि निम्न जातीय जुबति जन जुरि जहँ जाहीं।—प्रेमघन०, पृ० ४८।

जुबनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'यौवन'। उ०—जुबन रूप सँग सोभा पावै। सोइ कुरूप सँग बदन दुरावै।—नंद० ग्रं०, पृ० ११७।

जुबराजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० युवराज] दे० 'युवराज'।

जुबली—संज्ञा स्त्री० [अं० या इबरानी योबल] किसी महत्वपूर्ण घटना का स्मारक महोत्सव। जश्न। बड़ा जलसा।

जुबाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० युवन] युवावस्था। उ०—बालपना भोले गयो, और जुवा महमंत।—कबीर सा०, पृ०७९।

जुबादⓅ—संज्ञा पुं० [अ० जबाद] एक प्रकार का गंधद्रव्य जो गंधमार्जार से निकाला जाता है [को०]।

जुबान—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबान] दे० 'जबान'।

जुवानी—वि० [फा० जवानी] दे० 'जवानी'।

जुव्वन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यौवन, प्रा० जुव्वण] दे० 'यौवन'। उ०—जुव्वन क्यों बसि होई छक्क मैमत की। —सुदर ग्रं०, भा०१, पृ० ३६३।

जुव्वा—संज्ञा पुं० [अ० जुव्वह्] फकीरो का एक प्रकार का लवा पहनावा। भुब्बा। लवा अँगरखा। चोगा। उ०—जो एक सोजन कू लाग्रो होर तागा। सियो मेरे जुव्वे में यक दो टाँका। —दक्खिनी०, पृ० ११५।

जुमकना†—क्रि० अ० [हिं० जमना] १ जमकर खड़ा होना। अड़ना। २ एकत्र होना। जोम में आना। उ०—जीतत जुमकि पौन मग लगनि।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६।

जुमना[1]—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में पाँस या खाद देने का एक ढग जिसके अनुसार कटी हुई झाड़ियों और पेड़ पौधों को खेत में बिछाकर जला देते हैं और बची हुई राख को मिट्टी में मिला देते हैं।

जुमना(पु)[2]—क्रि० अ० [अ० जोम] जोश में आना। अड़ना। उ०—ज्वानी जुमी जमाल सूरति देखिए थिर नाहिं वे।—रै० बानी, पृ० ३२।

जुमला[1]—वि० [अ० जुम्लह्] सब। कुल। सबके सब।

जुमला[2]—संज्ञा पुं० १ वह पूरा वाक्य जिससे पूरा अर्थ निकलता हो। २. जोड़ (को०)।

जुमहूर—संज्ञा पुं० [अ० जुम्हूर] जनता। जनसाधारण। सर्वसाधारण (को०)।

जुमहूरियत—[अ० जुम्हूरियत] गणतंत्र। जनतंत्र। प्रजातंत्र (को०)।

जुमहूरी—वि० [अ० जुम्हूर+फा०ई (प्रत्य०)] सार्वजनीन। लोकसंचालित (को०)

जुमहूरी सल्तनत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुम्हूर+फ़ा०ई (प्रत्य०) + अ०] सल्तनत गणतंत्र राज्य। जनतंत्र शासन। प्रजातंत्र राष्ट्र (को०)।

जुमा—संज्ञा पुं० [अ० जुमअ] शुक्रवार।

यौ०—जुमा मसजिद।

जुमा मसजिद—संज्ञा स्त्री० [अ० जुमअ मस्जिद] वह मसजिद जिसमें जमा होकर मुसलमान लोग शुक्रवार के दिन दोपहर की नमाज पढ़ते हैं।

जुमिल—संज्ञा पुं० एक प्रकार का घोड़ा। उ०—गुर्रा गुठ जुमिल दरियाई।—रघुनाथ (शब्द०)।

जुमिला(पु)†—वि० [अ० जुम्लह्] सब। समस्त। संपूर्ण। उ०—श्री नयपाल जुमिला के छितिपाल।—भूषण ग्रं०, पृ० ८२।

जुमिल्ला—संज्ञा पुं० [?] वह खूँटा जो लपेटन की बाईं ओर गड़ा रहता है और जिसमें लपेटन लगी रहती है। (जुलाहों की बोली)।

जुमुकना—क्रि० अ० [सं० यमक] १ निकट आ जाना। पास आ जाना। २ जुड़ना। इकट्ठा होना।

जुमेरात—संज्ञा स्त्री० [अ० जुमअ्रात] बृहस्पतिवार। गुरुवार। वीफै।

जुमेराती—वि० [अ० जुमअ्रात+फ़ा० ई (प्रत्य०)] जो जुमेरात को पैदा हुआ हो।

विशेष—मुसलमानों में इस प्रकार के नाम जुमेरात को पैदा बच्चों के रखे जाते हैं।

जुम्मा[1]—संज्ञा पुं० [अ० जुमअ] दे० 'जुमा'।

जुम्मा[2]—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्] दे० 'जिम्मा'।

जुम्मा[3]—वि० [अ० जमअ] कुल। सब। संपूर्ण।

मुहा०—जुम्मा जुम्मा आठ दिन = (१) थोड़े दिन। कुछ दिन। चंदरोज। (२) कुल मिलाकर आठ दिन। कुल मिलाकर इने गिने दिन।

जुयांग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली जाति।

विशेष—इस जाति के लोग सिंहभूमि के दक्षिण उड़ीसा में पाए जाते हैं और कोलों से मिलते जुलते होते हैं।

जुर(पु)†—संज्ञा दे० [सं० ज्वर] दे० 'ज्वर'। उ०—अपने कर जु विरह जुर ताते। मति भुरि जाहिं डरति तिय याते।—नंद० ग्रं०, पृ० १३२।

जुरअत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुर्अत] साहस। हिम्मत। हियाव। जवड़ा।

जुरझुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वर या जूर्ति + हिं० झरझराना] १. हलकी गरमी जो ज्वर के आदि मे जान पड़ती है। ज्वरांश। हरारत। २ ज्वर के आदि की कँपकँपी। शीत कप।

जुरना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जुड़ना] दे० 'जुड़ना'। उ०—(क) पाँव रोपि रहै रण माहिं रजपूत कोऊ हय गय गाजत जुरत जहाँ दल है। —सुदर ग्रं०, भा० २, पृ०१०८। (ख) दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति। परति गाँठि दुरजन हिए दई नई यह रीति।—बिहारी (शब्द०)।

जुरवाना‡—संज्ञा पुं० [हिं० जुरमाना] दे० 'जुरमाना'।

जुरमाना—संज्ञा पुं० [अ० जुर्म, फ़ा० जुर्मानह्] अर्थदंड। धनदंड। वह दंड जिसके अनुसार अपराधी को कुछ धन देना पड़े।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।—लगना।—होना।

जुरर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जुर्रा] दे० 'जुर्रा'। उ०—जुरर बाज बहु कुही कुहेल।—प० रासो, पृ०, पृ०१८।

जुररा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जुर्रा] दे० 'जुर्रा'। उ०—जुररा सिकार तीतर बटेर। पेलत सरित तट यह अबेर।—पृ० रा०, ५।१६।

जुराना(पु)†[1]—क्रि अ० दे० 'जुड़ाना'। उ०—कत चौक सीमंत की बैठी गाँठ जुराइ। पेखि परोसी कौं, पिया घूँघुट में मुसिक्याइ। —मति० ग्रं०, पृ० ४४४।

जुराना(पु)†[2]—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'जुटाना'।

जुराफा—संज्ञा पुं० [अ० जिराफ़] अफरीका का एक जंगली पशु।

विशेष—इसके खुर बैल के से, टाँगें और गर्दन ऊँट की सी लबी, सिर हिरन का सा, पर बहुत छोटे छोटे और पूँछ गाय की सी होती है। इसके चमड़े का रंग नारंगी का सा होता है, जिसपर बड़े बड़े काले धब्बे होते हैं। ससार भर मे सबसे ऊँचा पशु यही है। १५ या १६.

फुट तक की ऊँचाई तक के तो सब ही होते हैं पर कोई कोई १८ फुट तक की ऊँचाई के भी होते हैं। इसकी आँखें ऐसी बडी और उभरी हुई होती हैं कि बिना सिर फेरे हुए ही यह अपने चारों ओर देख सकता है। इसी से इसका पकड़ना या शिकार करना बहुत कठिन है। इसके नथुनो की बनावट ऐसी विलक्षण होती है कि जब यह चाहे उन्हें बद कर ले सकता हैं। इसकी जीभ १७ इच तक लबी होती हैं। यह प्राय वृक्षो की पत्तियाँ खाता हैं और मैदानो में झुंड बाँधकर रहता है। चरते समय झुड के चारो ओर चार जुराफे पहरे पर रहते हैं जो शत्रु के आने की सूचना तुरत झुड को दे देते हैं। शिकारी लोग घोड़ो पर सवार होकर इसका शिकार करते हैं, परतु बहुत निकट नही जाते, क्योकि इसके लात की चोट बहुत कड़ी होती है। इसका चमड़ा इतना सख्त होता है कि उसपर गोली असर नहीं करती। इसका मास खाया जाता है।

यह पशु झुड बाँधकर परिवारिक रीति से रहता है, इसी से हिंदी कवियों ने इसके जोड़े में अत्यत प्रेम मानकर इसका काव्य मे उल्लेख किया है परतु समझने मे कुछ भ्रम हुआ है और इसको पशु की जगह पक्षी समझा है। जैसे,—(क) मिलि विहरत बिछुरत मरत दपति अति रसलीन। नूतन विधि हेमत की जगत जुराफा कीन।—विहारी (शब्द०)। (ख) जगह जुराफा ह्वै जियत तज्यो तेज निज भानु। रूप रहे तुम पूस मे यह धो कौन सयानु।—पद्माकर (शब्द०)।

जुराब—सज्ञा स्त्री० [हिं० जुर्राब] दे० 'जुर्राब'। उ०—उसकी ऊनी जुराव में एक छेद हो जाय।—अभिशप्त, पृ० १३८।

जुरावना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जुड़ावना] दे० 'जुडाना'।

जुरावरी(पु)—वि० फा० [जोरावरी] दे० 'जोरावरी'। उ०—सुंदर काल जुरावरी ज्यों जाएँ त्यों लेइ। कोटि जतन जो तूं करै तोहूँ रहन न देइ।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७०३।

जुरी[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० जूर्ति (=ज्वर)] धीमा ज्वर। हरारत।

जुरी[2]—वि० [हिं० जुटना] १ जुटी। जुटाई हुई। २. प्राप्त। उ०—जो निबाहो नेह के नाते न तुम जो न रोटी बाँटकर खाओ जुरी।—चुभते०, पृ० ३५।

यौ०—जुरी कुरी = (१) अर्जित या प्राप्त सपूर्ण राशि। २ परिजन और कुल।

जुर्म—सज्ञा पुं० [अ०] अपराध। वह कार्य जिसके दड का विधान राजनियम के अनुसार हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—जुर्म खफीफ = छोटा या सामान्य अपराध। जुर्म शदीद = गभीर अपराध। भारी अपराध।

जुर्माना—सज्ञा पुं० [फा०_जुर्मानह्] अर्थदड। वह रकम जो किसी अपराध के दड मे चुकानी पडे।

जुर्रत—सज्ञा स्त्री० [अ० जुरअत] दे० 'जुरअत' [को०]।

जुर्रा—सज्ञा पुं० [फ़ा०] नर बाज। उ०—वृक्षो पर जुर्रे, बाज, बहरी इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

जुर्राब—सज्ञा स्त्री० [अ०] मोजा। पायतावा।

जुर्री—सज्ञा स्त्री० [हिं० जुर्रा] बाज। मादा बाज।

जुल—सज्ञा पुं० [सं० छल ?] धोखा। दम। झाँसा। पट्टी। छल छद। चकमा।

क्रि० प्र०—देना।—में आना।

यौ०—जुलबाज। जुलबाजी।

जुलकरन(पु)—सज्ञा पुं० [अ० जुल्क़र्नैन] सम्राट् सिकदर की उपाधि जिसके दोनो कधो पर बालो की लटें पड़ी रहती थी। उ०—भये मुरीद जुलहा के आई। तबही जुलकरन नाम धराई।—कबीर सा०, पृ० १५१।

जुलकरनैन—सज्ञा पुं० [अ० जुल्क़र्नैन] सुप्रसिद्ध यूनानी बादशाह सिकदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगो के मत से इसका अर्थ दो सीगोंवाला है। वे कहते हैं कि सिकदर अपने देश की प्रथा के अनुसार दो सीगोवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग 'पूर्व और पश्चिम दोनो कोनो को जीतनेवाला', कुछ लोग '२० वर्ष राज्य करनेवाला' और कुछ लोग 'दो उच्च ग्रहो से युक्त' अर्थात् भाग्यवान् भी अर्थ करते हैं।

जुलना—क्रि० स० [हिं० जुड़ना] १ मिलना अर्थात् समिलित होना। २ मिलना अर्थात् भेंट करना।

विशेष—यह क्रिया अवव अकेली नही बोली जाती है। जैसे,—(क) मिल जुलकर रहो। (ख) जिससे मिलना हो, मिल जुल आओ।

जुलफ(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—जुलफ मैं कुलुफ करी है मति मेरी छलि, एरी अलि कहा करों कल ना परति हैं।—दीन० ग्र०, पृ० १०।

जुलफिकार—सज्ञा पुं० [अ० जुल्फ़क़ार] मुसलमानो के चौथे खलीफा अली की तलवार का नाम [को०]।

जुलफी†—सज्ञा पुं० [हिं० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—दाढ़ी झारत कोऊ, कोऊ जुलफीन सँवारत।—प्रेमघन० भा० १, पृ० २३।

जुलबाज—वि० [हिं० जुल + फा० बाज] धोखेबाज। छली। धूर्त। चालाक।

जुलबाजी—सज्ञा स्त्री० [हिं० जुलबाज] धोखेबाजी छल। धूर्तता। चालाकी।

जुलबाना(पु)†—वि० [अ० जुल्म + फा० आनह्] अत्याचारी। जुल्मी। क्रूर। उ०—जम का फौज वडा जुलबाना पकरि मरोरे काला।—सं० दरिया, पृ० १५२।

जुलम†—सज्ञा पुं० [हिं० जुल्म] दे० 'जुल्म'। उ०—जुलम के हेत हलकारे, मनी मगरूर मतवारे। पकड जम जूतियो मारे, बहुर बिलकुल नरक डारे।—सत तुरसी०, पृ० २९।

जुलहा†—सज्ञा पुं० [हिं० जुलाहा] दे० 'जुलाहा'। उ०—चार वेद

ब्रह्मा ने ठाना । जुलहा भूल गया अभिमाना ।—कबीर सा०, पृ० ८१४

जुलाई—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक अंगरेजी महीना जो जेठ या असाढ़ में पड़ता है । यह अंगरेजी का सातवाँ महीना है और ३१ दिनों का होता है । इस मास की १३वीं या १४वीं तारीख को कर्क की संक्राति पड़ती है ।

जुलाव—संज्ञा पुं० [अ० जुल्लाब, फ़ा० जुलाब] १ रेचन । दस्त ।
क्रि० प्र०—लगना ।
२ रेचक औषध । दस्त लानेवाली दवा ।
क्रि० प्र०—देना । —लेना ।
मुहा०—जुलाव पचना = किसी दस्त लानेवाली दवा का दस्त न लाना वरन् पच जाना जिससे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं ।
विशेष—विद्वानों का मत है कि यह शब्द वास्तव में फ़ा० गुलाव से अरवी साँचे में ढालकर बना लिया गया है । गुलाव दस्तावर दवाओं में से है ।

जुलाल—वि० [अ०] मीठा पानी । स्वच्छ पानी । निथरा हुआ जल । उ०—के डोने में जूँ है श्री फूलों की फाव । यो कासे में जूँ है आवे जुलाल ।—दक्खिनी०, पृ० १५० ।

जुलाहा—संज्ञा पुं० [फा० जोलाह] १ कपड़ा बुननेवाला । ततुवाय । ततुकार ।
विशेष—भारतवर्ष में जुलाहे कहलानेवाले मुसलमान हैं । हिंदू कपड़ा बुननेवाले कोली आदि भिन्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं ।
मुहा०—जुलाहे का तीर = झूठी बात । जुलाहे की सी दाढ़ी = छोटी या नोकदार दाढ़ी ।
२ पानी पर तैरनेवाला एक कीड़ा । ३ एक बरसाती कीड़ा जिसका शरीर गावदुम और मुँह मटर की तरह गोल होता है ।

जुलित(पु)—वि० [सं० ज्वलित] जलता हुआ । उ०—जुलित पावक तेज लोचन भारी । सकै दिष्ट को देव दान सहारी ।—पृ० रा०, १०।१९८ ।

जुलुफ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुल्फ] दे० 'जुल्फ' । उ०—जुलुफ निसैनी पै चढे दृग धर पलकै पाइ ।—स० सप्तक, पृ० १८५ ।

जुलुफी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुल्फ] दे० 'जुल्फ' ।

जुलुम†—संज्ञा पुं० [हिं० जुल्म] दे० 'जुल्म' । उ०—जोर जुलुम प्रकास पावे तौहिं कहो को बचावे ।—गुलाल०, पृ० ११७ ।

जुलुमी†—वि० [हिं० जुल्मी] १ जुल्म करनेवाला । १ अत्यधिक प्रभावित या मोहित करनेवाला ।

जुलूस—संज्ञा पुं० [अ०] १ सिंहासनारोहण ।
क्रि० प्र०—करना । —फरमाना ।
२ राजा या बादशाह की सवारी । ३ उत्सव और समारोह की यात्रा । धूमधाम की सवारी । ४. बहुत से लोगों का किसी विशेष उद्देश्य के लिये जत्था बनाकर निकलना ।
क्रि० प्र०—निकलना । —निकालना ।

जुलोक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्युलोक] बैकुंठ । स्वर्ग ।

जुल्फ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुल्फ़] सिर के वे लंबे बाल जो पीछे की ओर लटकते हैं । पट्टा । कुल्ले ।

जुल्फी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुल्फ] जुल्फ । पट्टा ।

जुल्म—संज्ञा पुं० [अ० जुल्म] [वि० जुल्मी] १ अत्याचार । अन्याय । अनीति । जबरदस्ती । अंधेर ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
यौ०—जुल्मदोस्त=अत्याचार पसंद करनेवाला । जुल्मपसंद = अत्याचारी । जुल्मरसीदा = अत्याचार पीड़ित । जुल्मोसितम = अत्याचार ।
मुहा० —जुल्म टूटना=आफत आ पड़ना । जुल्म ढाना = (१) अत्याचार करना । (२) कोई अद्भुत काम करना । जुल्म-तोड़ना = अत्याचार करना ।
३ आफत ।

जुल्मत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुल्मत] अंधकार की कालिमा । अंधेरा । अंधकार । उ०—इस हिंद से सब दूर हुई कुफ्र की जुल्मत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५३० ।

जुल्मात—संज्ञा पुं० [अ० जुल्मात] [जुल्मत का बहुव०] १. गंभीर अंधेरा । उ०—डूब्या जाके मगरिब के जुल्मात में । लगे दीपने ज्यों दिवे रात में ।—दक्खिनी०, पृ० ८३ । २ वह घोर अंधकार जो सिकंदर को अमृतकुंड तक पहुँचने में पड़ा था (को०) ।

जुल्मी—वि० [अ० जुल्म + फ़ा० ई (प्रत्य०)] अत्याचारी ।

जुल्लाव—संज्ञा पुं० [अ० जुलाब] १ रेचन । दस्त ।
क्रि० प्र०—लगना ।
२ रेचक औषध । वि० दे० 'जुलाब' ।
क्रि० प्र०—देना । —लेना ।

जुव[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'युवक' । उ०— बाहर से फगुहार जुरे जुव जन रस राते ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३८३ ।

जुव(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'युवती' । उ०—परम मधुर मादक सुनाद जिहि व्रज जुव मोही ।—नंद०, ग्रं०, पृ० ४० ।

जुवती—संज्ञा स्त्री०[सं० युवती]दे० 'युवती' ।—अनेकार्थ०, पृ० १०४ ।

जुवराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युवराज] दे० 'युवराज' । उ०—जाइ पुकारे ते सब बन उजार युवराज । सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज ।—मानस, ५।२८ ।

जुवा†[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, हिं जुआ] दे० 'जुआ' । उ०—जुवा खेल खेलन गई जोवित जोबन जोर । क्यों न दई तें मति भई सुन सुरही के सोर ।—स० सप्तक, पृ० ३६४ ।

जुवा(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० युवा] दे० 'युवती' । उ०—साजि साज कुंजन गई लख्यो न नंदकुमार । रही ठौर ठाढ़ी ठगी जुवा जुवा सी हार ।—स० सप्तक, पृ० ३८८ ।

जुवा(पु)[3]—वि० [हिं० जुदा] दे० 'जुदा' । उ०—मन मिलिमोहा तिको मादवाँ, जीभ करे खिण मांह जुवा ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १०३ ।

जुवा[4]—वि० [हिं०] दे० 'युवा' । उ०—गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५६ ।

जुवाड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० जुआरी] दे० 'जुआरी'। उ०—चोर, डाकू जुवाडी या दुष्ट हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८६।

जुवाना—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हिं० जवान] दे० 'जवान'।

जुवानी—संज्ञा पुं० [हिं० जवानी] दे० 'जवानी'।

जुवान्—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हिं० जुवान] तरुण। जवान। उ०—लखि हिय हँसि कह कृपानिधान्। सरिस स्वान मघवान जुवान्।—मानस, २।३०१।

जुवाब—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जवाब'। उ०—ता पत्र का जुवाब श्री गुसाईं जी ने या वैष्णव को कृपा करिकै यह लिख्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २६१।

जुवार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ज्वार'। उ०—लहु लहु जोति जुवार की भरु गँवारि की होति।—मति० ग्रं०, पृ०, ४४४।

जुवारी—संज्ञा पुं० [हिं० जुआरी] दे० जुआरी'। उ०—गृथ गँवाइ ज्यों चले जुवारी।—हिं० क० का०, पृ० २१४।

जुष—वि० [सं०] १. भोग करनेवाला। चाहनेवाला। २ जानेवाला। ग्रहण करनेवाला। पहुँचनेवाला।

विशेष—समस्त पदों के अंत में इसका प्रयोग मिलता है। जैसे, परलोकजुष, रजोजुष।

जुष्कक—संज्ञा पुं० [सं०] भात का रसा या जूस [को०]।

जुष्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] उच्छिष्ट। जूठन [को०]।

जुष्ट[2]—वि० १ तृप्त। तुष्ट। २. सेवित। भुक्त। ३ समन्वित। युक्त। ४. इष्ट। वाछित। ५ पूजित। ६. अनुकूल [को०]।

जुष्य[1]—वि० [सं०] पूजनीय। सेवनीय [को०]।

जुष्य[2]—संज्ञा पुं० सेवा [को०]।

जुसाँदा—संज्ञा पुं० [हिं० जोशाँदा] दे० 'जोशाँदा'।

जुस्तजू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तलाश। खोज। उ०—गरचे आज तक तेरी जुस्तजू खासो आम सब किया किए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १९९।

जुहना(पु)—क्रि० अ० [हिं० जूह (=यूथ) से नामिक धातु] दे० 'जुडना'। मिलना। उ०—कहाँ कहूँ कान्ह जुहे तुम संग।—पृ० रा०, २। ३५७।

जुहाना—क्रि० स० [सं० यूथ, प्रा० जूह + हिं० आना (प्रत्य०)] १ एकत्र करना। २ संचित करना। जोड जोड़कर एक जगह रखना।

संयो० क्रि०—देना। लेना।

जुहार—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहार (=युद्ध का रुकना या बंद होना ?] राजपूतों या क्षत्रियों में प्रचलित एक प्रकार का प्रणाम। अभिवादन। सलाम। बंदगी।

जुहारना—क्रि० स० [सं० अवहार (=पुकार या बुलावा)] १. किसी से कुछ सहायता माँगना। किसी का एहसान लेना। २ सलाम या वंदगी करना। उ०—यदि कोई मिले भी तो बुलाने पर भी मत बोलना। जुहारे तो सिर भर हिला देना।—श्यामा०, पृ० ९९।

जुहावना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जुहाना'।

जुही—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी] एक छोटा झाड़ या पौधा जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर नीचे नुकीली होती हैं। दे० 'जूही'। उ०—खिली मिलि जूथन जूथ जुही।—घनानंद, पृ० १४६।

विशेष—यह अपने सफेद सुगंधित फूलों के लिये बगीचों मे लगाया जाता है। ये फूल बरसात मे लगते हैं। इनकी सुगंध चमेली से मिलती जुलती बहुत हलकी और मीठी होती है।

जुहुराण[1]—संज्ञा पुं० [सं० जुहुराण] चंद्रमा [को०]।

जुहुराण[2]—वि० [सं०] वक्र बनानेवाला। वक्रतापूर्वक कार्य करनेवाला [को०]।

जुहुवान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २ वृक्ष। ३ कठोर हृदयवाला व्यक्ति। क्रूर व्यक्ति [को०]।

जुहू—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश की लकड़ी का बना हुआ एक अर्धचंद्राकार यज्ञपात्र जिससे घृत की आहुति दी जाती हैं। २ पूर्व दिशा। ३ अग्नि की जिह्वा। अग्निशिखा (को०)।

जुहूरा—संज्ञा पुं० [अ० ज़ुहूर] प्रकट होना। जाहिर होना। आविर्भाव। उत्पत्ति। उ०—यह माहूद ठीका जो पूरा हुआ। तो यमजाल का फिर जुहूरा हुआ।—कबीर म०, पृ० १३४।

जुहूराण—संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्वर्यु। २ अग्नि। ३ चंद्रमा [को०]।

जुहूवाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जुहूराण' [को०]।

जुहूवान्—संज्ञा पुं० [सं० जुहूवत्] पावक। अग्नि [को०]।

जुहोता—संज्ञा पुं० [सं० जुहुवत्] यज्ञ में आहुति देनेवाला।

जूँ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यूका] एक छोटा स्वेदज कीड़ा जो दूसरे जीवों के शरीर के आश्रय से रहता है।

विशेष—ये कीडे बालों में पड़ जाते हैं और काले रंग के होते हैं। आगे की ओर इनके छह पैर होते हैं और इनका पिछला भाग कई गंडों मे विभक्त होता है। इनके मुँह मे एक सूँडी होती है जो नोक पर झुकी होती है। ये कीडे उसी सूँडी को जानवरों के शरीर में चुभोकर उनके शरीर से रक्त चूसकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। चीलर भी इसी की जाति का कीड़ा है पर वह सफेद रंग का होता है और कपड़ों में पड़ता है। जूँ बहुत अंडे देती हैं। ये अंडे बालों में चिपके रहते हैं और दो ही तीन दिन में पक जाते और छोटे छोटे कीड़े निकल पड़ते हैं। ये कीडे बहुत सूक्ष्म होते हैं और थोडे ही दिनों में रक्त चूसकर बड़े हो जाते हैं। भिन्न भिन्न आदमियों के शरीर पर की जूँ भिन्न भिन्न आकृति और रंग की होती हैं। लोगों का कथन है कि कोढ़ियों के शरीर पर जूँ नहीं पड़ती।

क्रि० प्र०—पड़ना।

यौ०—जूँमुहाँ।

मुहा०—कानों पर जूँ रेंगना = चेत होना। स्थिति का ज्ञान होना। सतर्कता होना। होश होना। कानों पर जूँ न रेंगना = होश न होना। बात ध्यान में न आना। जूँ की चाल = बहुत धीमी चाल। बहुत सुस्त चाल।

जूँⓤ²—अव्य० [हिं०] दे० 'ज्यूं'। उ०—मारू सायर लहर ज्यूं हिवडै द्रव काढत।—ढोला०, दू० ६१२।

जूँठⓤ—वि०, संज्ञा पुं० [सं० जुष्ट, हिं० जूठ] दे० 'जूठा'।

जूँठन—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूठन] दे० 'जूठन'। उ०—तब से रेडा सगरी श्री गुसाईं जी की टहल करे और महाप्रसाद श्री गुसाईं जी की जूँठन लेई।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६२।

जूँठा—वि०, संज्ञा पुं० [सं० जुष्ट, हिं० जूठा] दे० 'जूठा'।

जूँड़िहा—संज्ञा पुं० [हिं० झुंड] वह बैल जो बैलों के झुंड के आगे चलता है।

जूँदन—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० जूँदनी] बंदर। (मदारी)।

जूँमुँहाँ—वि० [हिं० जूँ + मुँह] वह जो देखने में सीधा सादा पर वास्तव में बड़ा धूर्त हो।

जू¹—अव्य० [सं० (श्री) युक्त] १. एक आदरसूचक शब्द जो ब्रज, बुंदेलखंड, राजपूताना आदि में बड़े लोगों के नाम के साथ लगाया जाता है। जी। जैसे, कन्हैया जू। २. संबोधन का शब्द। दे० 'जी'।

जू²—अव्य० [देश०] एक निरर्थक शब्द जो बैलों या भैंसों को खड़ा करने के लिये बोला जाता है।

जू³—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती। २ वायुमंडल। वायु। ३ बैल या घोड़े के मस्तक पर का टीका।

जू⁴—वि० [वै० सं०] तेज। वेगवान् [को०]।

जूआ¹—संज्ञा पुं० [सं० युग] १ रथ या गाड़ी के आगे हरस में बाँधी या जड़ी हुई वह लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है।

क्रि० प्र०—बाँधना।

†२ जुआठा। ३ चक्की में लगी हुई वह लकड़ी जिसे पकड़कर वह फिराई जाती है।

जूआ²—संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, प्रा० जूआ] वह खेल जिससे जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है। किसी घटना की संभावना पर हार जीत का खेल। द्यूत। वि० दे० 'जुआ'।

क्रि० प्र०—खेलना।—जीतना।—हारना।—होना।

जूआखाना—संज्ञा पुं० [हिं० जूआ + फ़ा० खानह्] वह अड्डा, घर या स्थान जहाँ लोग जुआ खेलते हैं।

जूआघर—संज्ञा पुं० [हिं० जूआ + घर] दे० 'जूआखाना'।

जूआचोर—संज्ञा पुं० [हिं० जूआ + चोर] दे० 'जुआचोर'।

जूक—संज्ञा पुं० [यूना० ज्यूकस] तुला राशि।

जूगⓤ—संज्ञा पुं० [सं० युग] दे० 'युग'। उ०—तोहे जञो परे हीत उदासिन जूग पलटि न गेल।—विद्यापति, पृ० ३२४।

जूजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कर्णपाली। कान की ललरी या लोर। उ०—कोई अपनी जूजी छेदकर कडा पहन लेता और कोई उसको काटकर फेंक देता है।—कबीर म०, पृ० ३६१।

जूजू—संज्ञा पुं० [अनु०] एक कल्पित भयंकर जीव जिसका नाम लोग लड़कों को डराने के लिये लेते हैं। हाऊ।

जूझ—संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध। लड़ाई। झगड़ा। उ०—(क) पाई नहीं जूझ हठ कीन्हे। जे पावा ते आपुहि चीन्हे।—जायसी (शब्द०)। (ख) कोने परा न छूटिहे सुन रे जीव अबूझ। कबिर मांड़ मैदान में करि इंद्रिन सों जूझ।—कबीर (शब्द०)।

जूझना†ⓤ—क्रि० अ० [सं० युद्ध या हिं० जूझ] १. लड़ना। २. लड़कर मर जाना। युद्ध में प्राणत्याग करना। उ०—जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परयो नृप धरनी।—तुलसी (शब्द०)।

जूट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ जटा की गाँठ। जूड़ा। २. लट। जटा। ३ शिव की जटा।

जूट²—संज्ञा पुं० [अं०] १ पटसन। २ पटसन का बना कपड़ा।

यौ०—जूट मिल = वह मिल जहाँ पटसन के रेशों या धागों से बोरे, टाट आदि बनते हैं। पटकल।

जूटनाⓤ¹—क्रि० स० [हिं० जुटना] मिलाना। जोड़ना। जुटाना।

जूटनाⓤ²—क्रि० अ० [हिं० जुटना] १. प्रवृत्त होना। लग जाना। २ एकत्र होना। उ०—जवना हार थई रण जूटे। फिरियो सेख नगारे फूटे।—रा० रू०, पृ० २५६।

जूटिⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० जुड] १ मेल। २. संधि। ३. जोड़ी।

जूठीं—वि० स्त्री० [सं० जुष्ट] दे० 'जूठी'। उ०—चाट रहे हैं जूठी पत्तल कभी सड़क पर पड़े हुए हैं।—अपरा, पृ० ६६।

जूठ†—वि० [सं० जुष्ट] १ दे० 'जूठन'। २ दे० 'जूठा'।

जूठन—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूठ] १ वह खाने पीने की वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमें से कुछ अंश किसी ने मुँह लगाकर खाया हो। किसी के आगे का बचा हुआ भोजन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।

२. वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसी ने एक दो बार कर लिया। हो। भुक्त पदार्थ। दे० 'जूठा'।

जूठा¹—वि० [सं० जुष्ट, प्रा० जुट्ठ] [वि० स्त्री० 'जूठी। क्रि० जुठारना] १ (भोजन) जिसे किसी ने खाया हो। जिसमें किसी ने खाने के लिये मुँह लगाया हो। किसी के खाने से बचा हुआ। उच्छिष्ट। जैसे,—जूठा अन्न, जूठा भात, जूठी पत्तल। उ०—विनती राय प्रवीन की, सुनिए साह सुजान। जूठी पातरि भखत हैं बारी, बायस स्वान।—(शब्द०)।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठा भोजन खाना निषिद्ध है।

२ जिसका स्पर्श मुँह अथवा किसी जूठे पदार्थ से हुआ हो। जैसे, जूठा हाथ, जूठा बरतन।

मुहा०—जूठे हाथ से कुत्ता न मारना = बहुत अधिक कंजूस होना।

३. जिसे किसी ने व्यवहार करके दूसरे के व्यवहार के अयोग्य कर दिया हो। जिसे किसी ने अपवित्र कर दिया हो। जैसे, जूठी स्त्री।

जूठा[2]—संज्ञा पुं० खाने पीने की वह वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड दिया हो। वह भोजन जिसमे से कुछ किसी ने मुँह लगाकर खाया हो। किसी के आगे का बचा हुआ भोजन। जूठन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।—चाटना।

जूठियाना†—क्रि० स० [हिं० जूठ + इयाना (प्रत्य०)] १. जूठा कर देना। उ०—माखी काहु के हाथ न आवे। गघ सुगध सबे जुठियावे।—स० दरिया, पृ० ६।

जूठी—वि०, संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जूठा'।

जूड[1]†—वि० [सं० जड] [क्रि० जुड़ाना, जुडवाना] ठढा। शीतल। उ०—ओझा डाइन डर से डरपैं जहर जूड हो जाई। विषघर मन मे कर पछितवा बहुरि निकट नहिं आई।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८।

जूड[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूड़ना†—संज्ञा पुं० [देश०] पहाडी बिच्छू जो आकार में बडा और काले भूरे रग का होता है।

जूड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० जूट अथवा सं० चूडा] १ सिर के बालो की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ अपने बालो को एक साथ लपेटकर अपने सिर के ऊपर बाँधती हैं। उ०—काको मन बाँधत न यह जूडा बाँधनहार।—श्यामा०, पृ० २९।

विशेष—जटाधारी साधु लोग भी जिन्हें अपने बालो की सजावट का विशेष ध्यान नही रहता अपने सिर पर इस प्रकार बालो को लपेटकर गाँठ बनाते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।—खोलना।

२. चोटी। कलँगी। जैसे, कबूतर या बुलबुल का जूडा। ३ पगडी का पिछला भाग। ४ मूँज आदि का पूला। गुँजारी। ५ पानी के घडे के नीचे रखने की घास आदि की लपेटकर बनाई हुई गडुरी।

जूड़ा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जूड] [स्त्री० जूडी] बच्चो का एक रोग जिसमें सरदी के कारण साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है और साँस लेते समय कोख मे गड्ढा पड जाता है। कभी कभी पेट में पीडा भी होती है और बच्चा सुस्त पडा रहता है।

जूड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूड] एक प्रकार का ज्वर जिसमे ज्वर आने के पहले रोगी को जाड़ा मालूम होने लगता है और उसका शरीर घटो काँपा करता है। उ०—जो काहू की सुनहिं बडाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह ज्वर कई प्रकार का होता है। कोई नित्य आता है, कोई दूसरे दिन, कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन आता है। नित्य के इस प्रकार के ज्वर को जूडी, दूसरे दिन आनेवाले को अँतरा, तीसरे दिन आनेवाले को तिजरा और चौथे दिनवाले को चौथिया कहते हैं। यह रोग प्राय मलेरिया से उत्पन्न होता है।

क्रि० प्र०—आना।

जूड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़ना] जुट्टी।

जूड़ी[3]—वि० [हिं० जूड़] ठडी। शीतल। उ०—किंतु बँगले के कमरे मे घुसते ही शीतल जूडी छाया ने अपना असर किया।—किन्नर०, पृ० ७।

जूण(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'।

जूत[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जूता] १ जूता। २. बडा जूता।

जूत[2]—वि० [सं०] १. आग्रह किया हुआ। २ खींचा हुआ। ३ दिया हुआ। प्रदत्त। ४ गया हुआ। गत (को०)।

जूता—संज्ञा पुं० [सं० युक्त, प्रा० जुत्त] चमडे आदि का बना हुआ थैली के आकार का वह ढाँचा जिसे दोनो पैरो में लोग काँटे आदि से बचने के लिये पहनते है। जोडा। पनही। पादत्राण। उपानह।

विशेष—जूता दो या दो से अधिक चमडे के टुकडो को एक मे सीकर बनाया जाता है। वह भाग जो तलवे के नीचे रहता है तला कहलाता है। ऊपर के भाग को उपल्ला कहते हैं। तले का पिछला भाग एडी या एँड़ और अगला भाग नोक या ठोकर कहलाता हैं। उपल्ले के वे अश जो पैर के दोनो ओर खडे उठे रहते हैं, दीवार कहलाते हैं। वह चमड़े की पट्टी जो एँडी के ऊपर दोनो दीवारो के जोड पर लगी रहती है, लगोट कहलाती हैं। देशी जूते कई प्रकार के होते हैं। जैसे,—पजाबी, दिल्लीवाल, सलीमशाही, गुरगाबी, घेतला, चट्टी इत्यादि। अग्रेजी जूतो के भी कई भेद होते हैं। जैसे, बूट, स्लिपर, पप इत्यादि।

महाभारत के अनुशासन पर्व मे छाते और जूते के आविष्कार के संबध मे एक उपाख्यान है। युधिष्ठिर ने भीम से पूछा कि श्राद्ध आदि कर्मों मे छाता और जूता दान करने का जो विधान है उसे किसने निकाला। भीष्म जी ने कहा कि एक बार जमदग्नि ऋषि क्रीडावश धनुष पर बाण चढ़ा चढ़ाकर छोडते थे और उनकी पत्नी रेणुका फेंके हुए बाणो को ला लाकर उन्हे देती थी। धीरे धीरे दोपहर हो गई और कडी धूप पड़ने लगी। ऋषि उसी प्रकार बाण छोड़ते गए। पतिव्रता रेणुका जब बाण लाने गई तब धूप से उसका सिर चकराने लगा और पैर जलने लगे। वह शिथिल होकर कुछ देर तक एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठ गई। इसके उपरात वह बाणो को एकत्र करके ऋषि के पास लाई। ऋषि क्रुद्ध होकर देर होने का कारण बार बार पूछने लगे। रेणुका ने सब व्यवस्था ठीक ठीक कह सुनाई। तब तो जमदग्नि जी सूर्य पर अत्यत क्रुद्ध हुए और धनुष पर बाण चढ़ाकर सूर्य को मार गिराने पर तैयार हुए। इसपर सूर्य ब्राह्मण के वेश मे ऋषि के पास आए और कहने लगे सूर्य ने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप उन्हें मार गिराने को प्रस्तुत हुए हैं। सूर्य से लोक का कितना उपकार होता है? जब इसपर भी ऋषि का क्रोध शांत न हुआ तो ब्राह्मण वेशधारी सूर्य ने कहा कि सूर्य तो सदा वेग के साथ चलते रहते हैं। आप का लक्ष्य ठीक कैसे बैठेगा? ऋषि ने कहा कि जब मध्याह्न में कुछ क्षण विश्राम के लिये वे ठहर जाते हैं तब मैं मारूँगा। इसपर सूर्य ऋषि की शरण मे आए। तब ऋषि ने कहा कि 'अच्छा? अब कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिसमे हमारी पत्नी को धूप का कष्ट न हो।' इस

पर सूर्य ने एक जोडा जूता और एक छाता देकर कहा कि मेरे ताप से सिर और पैर की रक्षा के लिये ये दोनो पदार्थ हैं, इन्हें आप ग्रहण करें। तब से छाते और जूते का दान बडा फलदायक माना जाने लगा।

यौ०—जूताखोर।

मुहा०—जूता उठाना = मारने के लिये जूता हाथ में लेना। जूता मारने के लिये तैयार होना। (किसी का) जूता उठाना = (१) किसी का दासत्व करना। किसी की हीन से हीन सेवा करना। (२) खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता उछलना या चलना = (१) जूतो से मारपीट होना। (२) लडाई दगा होना। झगडा होना। जूता खाना = (१) जूतो की मार खाना। जूतों का प्रहार सहना। २ बुरा भला सुनना। ऊँचा नीचा सुनना। तिरस्कृत होना। जूता गाँठना = (१) फटा हुआ जूता सीना। (२) चमार का काम करना। नीचा काम करना। जूता चाटना = अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान न रखकर दूसरे की शुश्रूपा करना। खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता जड़ना = जूता मारना। जूता देना = जूता मारना। जूता पड़ना = (१) जूतो की मार पडना। उपानह प्रहार होना। (२) मुँहतोड़ जवाब मिलना। किसी अनुचित बात का कडा और मर्मभेदी उत्तर मिलना। ऐसा उत्तर मिलना कि फिर कुछ कहते सुनते न बने। (३) घाटा होना। नुकसान होना। हानि होना। जैसे,—बैठे बैठाए १०) का जूता पड़ गया। जूता पहनना = (१) पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल लेना। जूता पहनना = (१) दूसरे के पैर मे जूता डालना। (२) जूता मोल ले देना। जूता खरीद देना। जूता बरसना = दे० 'जूता पडना' (१)। जूता बैठना = जूते की मार पडना। दे० 'जूता पडना'। (२) जूता मारना = (१) किसी अनुचित बात का ऐसा कड़ा उत्तर देना कि दूसरे से फिर कुछ कहते सुनते न बने। मुँह तोड़ जवाब देना। (२) जूते से मारना। जूता लगना = (१) जूते की मार पड़ना। (२) मुँहतोड जवाब मिलना। (३) किसी अनुचित कार्य का बुरा फल प्राप्त होना। जैसा बुरा काम किया हो तत्काल वैसा ही बुरा फल मिलना। किसी अनुचित कार्य का तुरत ऐसा परिणाम होना जिससे उसके करनेवाले को लज्जित होना पडे। (४) अतिशय हानि उठाना। जूता लगाना = जूते से मारना। जूते का आदमी = ऐसा आदमी जो बिना जूता खाए ठीक काम न करे। बिना कठोर दड या शासन के उचित व्यवहार न करने वाला मनुष्य। जूते से खबर लेना = जूते से मारना। जूतो दाल बँटना = आपस में लडाई झगड़ा होना। परस्पर वैर-विरोध होना। अनबन होना। जूतो से आना = जूते से मारना। जूते लगाना। जूते से मारे के लिये तैयार होना। जूतो से बात करना = जूते से मारना। जूता लगाना।

जूताखोर—वि० [हिं० जूता+फा० खोर] १ जो जूता खाया करे। २ जो निर्लज्जता के कारण मार या गाली की कुछ परवाह न करे। निर्लज्ज। बेहया।

जूति—संज्ञा पुं० [सं०] १ वेग। तेजी। २ अग्रसर होना। आगे बढ़ना (को०)। ३ अबाध गति या प्रवाह (को०)। ४. उत्तेजना। प्रेरणा (को०)। ५. प्रवृत्ति। झुकाव (को०)। ६. मन की एकाग्रता (को०)।

जूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह का कपूर [को०]।

जूती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूता] १ स्त्रियो का जूता। २ जूता।

यौ०—जूतीकारी। जूतीखोर। जूतीछुपाई। जूतीपैजार। उ०—जूती पैजार और लाठी डडो तक की नौबत आती है। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४५।

मुहा०—जूतियाँ उठाना = नीच सेवा करना। दासत्व करना। जूती कीनोक पर मारना = कुछ न समझना। तुच्छ समझना। कुछ परवाह न करना। जैसे,—ऐसा रुपया मैं जूती की नोक पर मारता हूँ। जूती की नोक खफा होना = परवा न करना। फिक्र न करना। उ०—खफ़ा काहे को होती हो बेगम ? हमारी जूती की नोक खफा हो।—सैर कु०, भा० १, पृ० २१। जूती की नोक से = बला से। कुछ परवाह नहीं। (स्त्री०)। उ०—वह यहाँ नहीं आती है तो मेरी जूती की नोक से। जूती के बराबर = अत्यत तुच्छ। बहुत नाचीज। (किसी की) जूती के बराबर न होना = किसी की अपेक्षा अत्यत तुच्छ होना। किसी के सामने बहुत नाचीज होना। (खुशामद या नम्रता से भी कभी कभी लोग इस वाक्य का प्रयोग करते हैं। जैसे,—मैं तो आपकी जूती के बराबर भी नहीं हूँ)। जूती चाटना = खुशामद करना। चापलूसी करना। जूती दाल बँटना = दे० 'जूतियो दाल बँटना'। उ०—छेडखानी करती हैं, आओ पडोसन हम तुम लडें। दूसरी बोली लडें मेरी जूती। उसने कहा जूती लगे तेरे सर पर। वह बोली, तेरे होते सोतों पर। चलो बस जूती दाल बटने लगी।—सैर कु० भा० १, पृ० ३८। जूती देना = जूती से मारना। जूती पर जूती चढ़ना = यात्रा का आगम दिखाई पडना। (जब जूती पर जूती चढने लगती है तब लोग यह समझते हैं कि जिसकी जूती है उसे कहीं यात्रा करनी होगी)। जूती पर मारना = दे० 'जूती की नोक पर मारना'। जूती पर रखकर रोटी देना = अपमान के साथ रोटी देना। निरादर के साथ रखना या पालना। जूती पहनना = (१) जूती में पैर डालना। (२) नया जूता मोल लेना। जूती पहनाना = (१) किसी के पैर में जूती डालना। (२) नया जूता मोल ले देना। जूती से = दे० जूती की नोक से'। जूतियाँ खाना = (१) जूतियों से पिटना। (२) ऊँचा नीचा सुनना। भला बुरा सुनना। कडी बातें सहना। (३) अपमान सहना। जूतियाँ गाँठना = (१) फटी हुई जूतियो को सीना। (२) चमार का काम करना। अत्यत तुच्छ काम करना। निकृष्ट व्यवसाय करना। जूतियाँ चटकाते फिरना = (१) दीनतावश इधर-उधर मारा मारा फिरना। दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना। (फटे पुराने जूते को घसीटने से चट चट शब्द होता है)। (२) व्यर्थ इधर उधर घूमना। जूतियों दाल बँटना = आपस मे लडाई झगड़ा होना। वैर विरोध होना। फूट होना। जूतियाँ पड़ना = जूतियो की मार पड़ना। जूतियाँ बगल

में दवाना = जूतियाँ उतारकर भागना जिसमें पैर की आहट न सुनाई दे। चुपचाप भागना। धीरे से चलता बनना। खिसकना। जूतियाँ मारना = (१) जूतियों से मारना। (२) कड़ी बातें कहना। अपमानित करना। तिरस्कृत करना। (३) कड़ा उत्तर देना। मुँह तोड़ जवाब देना। जूतियाँ लगना = जूतियों से मारना। जूतियाँ सीधी करना = अत्यंत नीच सेवा करना। दासत्व करना। जूतियों का सदका = चरणों का प्रसाद (विनम्र कृतज्ञता ज्ञापन)।

जूतीकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूती + कार] जूतों की मार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जूतीखोर—वि० [हिं० जूती + फ़ा० खोर] १. जो जूतों की मार खाया करे। २ जो निर्लज्जता से मार और गाली की परवाह न करे। निर्लज्ज। बेहया।

जूती छुपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूती + छुपाना] १ विवाह में एक रस्म।

विशेष—स्त्रियाँ कोहबर से वर के चलते समय वर का जूता छिपा देती हैं और तबतक नहीं देती हैं जबतक वह जूते के लिये कुछ नेग न दे। यह काम प्रायः वे स्त्रियाँ करती हैं जो नाते में वधू की बहन होती हैं।

२ वह नेग जो वर स्त्रियों को जूती छुपाई में देता है।

जूती पैजार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूती + फ़ा० पैजार] १ जूतों की मार पीट। धौल धप्पड़। २. लड़ाई दंगा। कलह। झगड़ा।

क्रि० प्र०—करना।

जूथ—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] दे० 'यूथ'। उ०—भयो पंक अति रग को तामैं गज को जूथ फँसोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०४।

यौ०—जूथ जूथ = झुंड का झुंड। समूहबद्ध। उ०—जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छवि निदरहिं मदन विलासिनी।—मानस, १।३४५।

जूथिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

जूथिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

जूद[1]—वि० [फ़ा०] शीघ्र। त्वरित। तुरंत। जल्दी

यौ०—जूदफ़हम = कोई बात तुरत समझनेवाला। तीव्रबुद्धि।

जूद[2]—वि० [फ़ा०] तेज। द्रुत [को०]।

जून[2]—संज्ञा पुं० [सं० द्युवन् = सूर्य अथवा देश०] समय। काल। बेला।

जून[3]—संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण (= पुराना)] पुराना। उ०—का छति लाभ जून धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे।—तुलसी (शब्द०)।

जून[4]—संज्ञा पुं० [सं० (जूर्ण = एक तृण)] तृण। घास। तिनका।

जून[5]—संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेजी वर्ष का छठा महीना जो जेठ के लगभग पड़ता है।

जून[6]—संज्ञा पुं० [सं० यवन ?] एक जाति जो सिंधु और सतलज के बीच के प्रदेशों में रहती है और गाय बैल, ऊँट आदि पालती है।

जूना[1]—संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण (= एक तृण)] १ घास या फूस को बटकर बनाई हुई रस्सी जो बोझ आदि बाँधने के काम में आती है। २. घास फूस का लच्छा या पूला जिससे बरतन माँजते या मलते हैं। उसकन। उबसन। उ०—रंग ज्यादा गोरा तो नहीं, साँवले से कुछ निखरा हुआ है। हाथ में जूना है और बरतन माँजते माँजते वह खीझ उठी।—वहूकते०, पृ० ६३।

जूना[2]—वि० [सं० जीर्ण] [वि० स्त्री० जूनी] दे० 'जीर्ण'। उ०—जूना गीत दोहा चारण भी कै सुनाया।—शिखर०, पृ० ५१।

जूनि—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—सतगुरु ते जोगी जोगु पाया। अस्थिर जोगी फिरि जूनि न आया।—प्राण०, पृ० १११।

जूनियर—वि० [अं०] काल क्रम से पिछला। जो पीछे का हो। छोटा।

यौ०—जूनियर हाई स्कूल = वह हाई स्कूल जिसमें कक्षा छह से आठ तक पढ़ाई होती है। पूर्व माध्यमिक विद्यालय।

जूनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूना] दे० 'जूना'। उ०—जूनी ले कनातां तेच सींची आगि जाली।—शिखर०, पृ० ५२।

जूनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—फिर फिर जूनी संकट आवै। गर्भवास में बहु दुख पावै।—सहजो०, पृ० ८।

जूप[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, प्रा० जूआ या जूव] १ जूआ। द्यूत। उ०—जैसे, अब रूप, बिनु गाँठ धन जूप की ज्यों हीन गुण बाण है न कूप जल पान की।—हनुमान (शब्द०)। २ विवाह में एक रीति जिसमें वर और वधू परस्पर जूआ खेलते हैं। पासा। उ०—कर कपै कंगन नहिं छूटै। खेलत जूप जुगल जुवतिन में हारे रघुपति जीति जनक की।—सूर (शब्द०)।

जूप[2]—संज्ञा पुं० [सं० यूप] दे० 'यूप'।

जूम—संज्ञा पुं० [देश०] थूक। पीक। उ०—सुरती का जूम पिच से जमीन पर गिरा।—नई०, पृ० ३०।

जूमना[1]—क्रि० अ० [अ० जमा] इकट्ठा होना। जुटना। एकत्र होना। उ०—(क) लागो हुतो हाट एक मदन धनी को जहाँ गोपिन को वृंद रह्यो जूमि चहुँघाई में।—देव (शब्द०)। (ख) गिरिधरदास भूमि जूमि आसु बदि, बाज लौं दराज लेहिं परन दबाय कै।—गोपाल (शब्द०)।

जूमना[2]—क्रि० अ० [हिं० झूमना] दे० 'झूमना'।

जूर—संज्ञा पुं० [हिं० जुरना] जोड़। संचय। उ०—दान आहि सब दरबक जूरू। दान लाभ होइ बाँचै मूरू।—जायसी (शब्द०)।

जूरना[1]—क्रि० स० [हिं० जोड़ना] जोड़ना। उ०—अवध में सतन रहु दूरि। बधु सखा गुरु कहत राम को नाते बहुतेक जूरि।—देव स्वामी (शब्द०)।

जूरना[2]—क्रि० अ० [हिं० जोड़ना] इकट्ठा होना। जुटना।

जूरर—संज्ञा पुं० [अं०] पंच। न्यायसभ्य। जूरी का सदस्य।

जूरा—संज्ञा पुं० [हिं० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूरिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जो कानून, विशेषकर दीवानी कानून में पारंगत हो। व्यवहार-शास्त्र-निपुण।

जूरिस्डिक्शन—संज्ञा पुं० [अं०] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। जैसे, वह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्डिक्शन के बाहर है।

जूरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुरना] १. घास, पत्तों या टहनियों का एक बँधा हुआ छोटा पूला। जुट्टी। जैसे, तमाखू की जूरी। २ सूरन आदि के नए कल्ले जो बँधे हुए निकलते हैं। ३. एक पकवान जो पौधों के नए बंधे हुए कल्लों को गीले बेसन में लपेटकर तलने से बनता है। ४ एक प्रकार का पौधा या झाड जिससे क्षार बनता है।

विशेष—यह पौधा गुजरात, कराची आदि के खारे दलदलों में होता है।

जूरी²—संज्ञा स्त्री० [अं०] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर खून, डाकाजनी, राजद्रोह, षड्यंत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्तों के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एकमत होकर उसे चोर बताया तदनुसार जज ने उसे छोड दिया।

विशेष—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता। खर्च भर मिलता है। इन्हें निष्पक्ष रहकर न्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें बराबर अदालत में उपस्थित होना पडता है। और देशों में जज इनका बहुमत मानने को बाध्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्तान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर, जिले के दौरा जज जूरी का मत मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। जूरी से मतैक्य न होने की अवस्था में वे मामले हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।

जूरीमैन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जूरी'।

जूरू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जूर'।

जूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण।

पर्या०—उमूक। उलप।

जूर्णाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ तृणविशेष। २ कुश। दर्भ (को०)।

जूर्णाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] देवधान्य।

जूर्णि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वेग। २ आदित्य। ३ देह। ४. ब्रह्मा। ५. क्रोध। ६ स्त्रियों का एक रोग। ७ आग्नेयास्त्र (को०)।

जूर्णि²—वि० १. वेगयुक्त। वेगवान। तेज। २ द्रवित। गला हुआ। ३ ताप देनेवाला। ४ स्तुति करने में कुशल।

जूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्वर। २. ताप। गरमी (को०)।

जूलाई—संज्ञा स्त्री० [अं० जुलाई] दे० 'जुलाई'।

जूसलाँ—संज्ञा पुं० [देश०] पैर। उ०—इम पतसाह सुणे अकुलायो। अड़िताण जूसलाँ तल आयो।—रा० रू०, पृ० ६४।

जूवा¹—संज्ञा पुं० [हिं० जूआ] दे० 'जुआ'। उ०—टाँड़ा तुमने लादा भारी। बनिज किया पूरा बेपारी। जूवा खेला पूँजी हारी। अब चलने की भई तयारी।—कबीर श०, भा०१, पृ० ६।

जूवा²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जुदा'। उ०—नामरूप गुन जूवा जूवा पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट।—सुदर ग्रं०, भा०१, पृ० ७३।

जूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी उबाली या पकाई हुई वस्तु का पानी। झोल। रसा। २ उबाली या पकाई हुई दाल का पानी।

जूषण—संज्ञा पुं० [सं०] धाय नामक पेड जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जूस¹—संज्ञा पुं० [सं० जूष] १ मूँग अरहर आदि की पकी हुई दाल का पानी जो प्रायः रोगियों को पथ्य रूप में दिया जाता है।

मुहा०—जूस देना = उबली हुई दाल का पानी पिलाना। जूस लेना = (१) उबली हुई दाल का पानी पीना। (२) रोगी का सशक्त होकर खाने पीने लायक होना।

२. उबली हुई चीज का रस। रसा।

क्रि० प्र०—काढ़ना। निकालना।

जूस²—संज्ञा पुं० [फा० जुफ्त, तुलनीय सं० युक्त] १. युग्म संख्या। सम संख्या। ताक का उलटा। जैसे,—२, ४, ६, ८।

यौ०—जूस ताक।

जूस ताक—संज्ञा पुं० [हिं० जूस + फ़ा० ताक़] एक प्रकार का जुआ जिसे लड़के खेलते हैं।

विशेष—एक लड़का अपनी मुट्ठी में छिपाकर कुछ कौड़ियाँ ले लेता है और दूसरे से पूछता है—'जूस कि ताक?' अर्थात् कौड़ियों की संख्या सम है या विषम? यदि दूसरा लड़का ठीक बूझ लेता है तो जीत जाता है और यदि नहीं बूझता तो उसे हारकर उतनी ही कौड़ियाँ बुझानेवाले को देनी पड़ती हैं जितनी उसकी मुट्ठी में होती हैं।

जूस ताखा—संज्ञा पुं० [हिं० जूस + फा० ताक़] दे० 'जूस ताक'। उ०—बसन के दाग धोवै, नखछत एक टोवै, चूर लै चुरी को खेलै एक जूस ताख है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १६१।

जूसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूस] वह गाढ़ा लसीला रस जो ईख के पकते रस को गुड के रूप में ठोस होने के पहले उतारकर रख देने से उसमें से छूटता है। खाँड का पसेव। चोटा। छोवा।

जूह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यूथ, प्रा० जूह] झुंड। समूह। उ०—(क) टट्ट उह वज्जे डमरु, जूह जुगिनि जुरि नाची।—हम्मीर०, पृ० ५८। (ख) एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह।—मानस, ६।६७।

जूहर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जौहर या हिं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार दुर्ग में शत्रु का प्रवेश निश्चित जान स्त्रियाँ चिता पर बैठकर जल जाती थीं और पुरुष दुर्ग के बाहर लड़ने के लिये निकल पड़ते थे। वि० दे० 'जौहर'।

जूहारना(पु)—क्रि० स० [हिं० जुहारना] दे० 'जुहारना'। उ०—सासू जूहारबा चाल्यो छइ राई।—बी० रासो, पृ० २६।

जूहिया—वि० [हिं० जूही + इया (प्रत्य०)] जूही जैसी। उ०—हेमंती ओस की जूहिया नमी भीतर पहुँच रही थी।—नई०, पृ० ४२।

जूही¹—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी] १ फैलनेवाला एक झाड़ या पौधा जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर नीचे नुकीली होती हैं। उ०—जाही जूही बगुचन लावा। पुहुप सुदरसन लाग सुहावा।—जायसी ग्रं०, पृ० १३।

विशेष—यह हिमालय के अंचल में आपसे आप उगता है। यह पौधा फूलों के लिये बगीचो मे लगाया जाता है। इसके फूल सफेद चमेली से मिलते जुलते पर बहुत छोटे होते हैं। सुगंध इसकी चमेली ही की तरह हलकी मीठी और मनभावनी होती है। ये फूल बरसात मे लगते हैं। जूही को कहीं कहीं पहाड़ी चमेली भी कहते हैं। पर जूही का पौधा देखने मे चमेली से नहीं मिलता, कुंद से मिलता है। चमेली की पत्तियाँ सीकों के दोनों ओर पत्तियों में लगती हैं पर इसकी नहीं। जूही के फूल का अतर बनता है।

२. एक प्रकार की आतशबाजी जिसके छूटने पर छोटे छोटे फूल से झड़ते दिखाई पड़ते हैं।

जूही²—संज्ञा स्त्री० [सं० यूक] एक प्रकार का कीड़ा जो सेम, मटर आदि की फलियों में लगता है। जूई।

जृंभ—संज्ञा पुं० [सं० जृम्भ] [स्त्री० जृंभा, वि० जृंभक] १. जँभाई। जमुहाई। २ आलस्य। ३ प्रस्फुटन। विकास। खिलना (को०) ४. विस्तार। फैलाव (को०)। ५ एक पक्षी (को०)।

जृंभक¹—वि० [सं० जृम्भक] जँभाई लेनेवाला।

जृंभक²—संज्ञा पुं० १. रुद्र गणों में एक। २ एक अस्त्र जिसके चलाने से शत्रु निद्राग्रस्त होकर लड़ाई छोड़ जँभाई लेने लगते, सो जाते या शिथिल पड़ जाते थे।

विशेष—जब राम ने ताड़का आदि को मारा था तब विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर मंत्र सहित यह अस्त्र उन्हें दिया था। विश्वामित्र को यह अस्त्र घोर तपस्या के उपरांत अग्नि से प्राप्त हुआ था।

जृंभकास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० जृम्भकास्त्र] दे० 'जृंभक²'।

जृंभण¹—संज्ञा पुं० [सं० जृम्भण] १ जँभाई लेना। २ अंगों को फैलाना (को०)। ३ खिलना। विकास (को०)।

जृंभण²—वि० १. जँभाई लेनेवाला (को०)।

जृंभमान—वि० [सं० जृम्भमत्] १. जँभाई लेता हुआ या जँभाई लेनेवाला। २ प्रकाशमान। खिलता हुआ। विकासमान।

जृंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भा] १ जंभाई। २ आलस्य या प्रमाद से उत्पन्न जड़ता। ३ एक शक्ति का नाम। ४ खिलना। विकास (को०) ५. विस्तार। फैलाव (को०)।

जृंभिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भिका] १. आलस्य। २ जृंभा। ३ एक रोग जिससे मनुष्य शिथिल पड़ जाता है और बार बार जँभाई लिया करता है।

विशेष—यह रोग निद्रा का अवरोध करने से उत्पन्न होता है।

जृंभिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भिणी] एलापर्णी लता (को०)।

जृंभिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भिणी] एलापर्णी लता।

जृंभित¹—वि० [सं० जृम्भित] १ चेष्टित। २ प्रवृद्ध। फैला या फैलाया हुआ। ४ जिसने जँभाई ली हो (को०)।

जृंभित²—संज्ञा पुं० [सं०] १ रमण। २ स्फोटन। ३ स्त्रियों की ईहा या इच्छा।

जृंभी—वि० [सं० जृम्भिन्] १ जँभाई लेनेवाला। २ खिलनेवाला (को०)।

जेंटिलमैन—संज्ञा पुं० [अं०] सभ्य पुरुष। भद्रजन। सभ्रात व्यक्ति

जेंटू—संज्ञा पुं० [?] १ हिंदू। २ हिंदुओं की भाषा।

विशेष—पहले पहल पुर्तगालियों ने भारत के मूर्तिपूजकों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया था। बाद ईस्ट इंडिया कपनी के समय अँगरेज लोग रक्त धर्म मे इस शब्द का प्रयोग करने लगे।

जेंताक—संज्ञा पुं०[सं० जेन्ताक] रोगी के शरीर मे पसीना लाकर दूषित अंश और विकार आदि निकालने की एक क्रिया। भफारा।

जेंगना(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० जोइंगण] दे० 'जुगुनू-१'। उ०—सुंदर कहत एक रवि के प्रकास बिनु जेंगना की ज्योति, कहा रजनी बिलात है।—संत वाणी०, भा० २, पृ० १२३।

जेंगरा—संज्ञा पुं० [देश०] उर्द, मूँग, मोथी, ज्वार, बाजरे आदि के डंठल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं। जेंगरा।

जेंणा—क्रि० वि०[हिं०]दे० 'जहाँ'। उ०—बाल सखी तिण मंदिरइं, सज्जण रहियउ जेंण। कोइक मीठउ बोलडइ, लागो होसइ तेंण।—ढोला०, दू० ३५६।

जेंना—क्रि० स० [सं० जेमनम्] दे० 'जेंवना'।

जेँवना—संज्ञा पुं० [हिं० जेवना] भोजन। खाने की वस्तु।

जेंवना¹—क्रि० स० [सं० जेमन] भोजन करना। खाना। भक्षण करना। उ०—(क) जो प्रभु निगम अगम करि गाए। जेंवन मिस ते हम पै आए।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०४। (ख) अनंदघन ब्रज जीवन जेंवत हिलिमिलि ग्वार तोरि पतानि ढाक।—घनानंद, पृ० ४७३।

जेँवना²—संज्ञा पुं० भोजन। भोजन। खाने का पदार्थ। वह जो कुछ खाया जाय।

जेंवनार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेवनार'। उ०—चहूँ प्रकार जेंवनार भई बहु भाँतिन्ह।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६०।

जेँवाना—क्रि० स० [हिं० जेंवना] भोजन कराना। खिलाना। जिमाना।

जे(पु)¹—सर्व० [सं० ये] १ 'जो' का बहुवचन। २ दे० 'जो'। उ०—जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।—मानस, १।३।

जे(पु)²—सर्व० [सं० एतत्] यह का बहुवचन। उ०—माई, जे दोऊ, कौन गोप के ढोटा। इनकी बात कहा कहौ तोसौं, गुनन बड़े, देखन के छोटा।—नंद ग्रं०, पृ० ३४१।

जे³(पु)—सर्व० [सं० इदम्] यह। उ०—आगामिनी जामिनी जुग ही ब्रजबामिनीन सों जे कही।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१७।

जेईं(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'जो'। उ०—हनिवंत वीर लक जेईं

जारी। परबत मोहि रहा रखवारी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५६।

जेइ(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'जो'।

जेउँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों'। उ०—टपकै महुव आँसु तस परई। होइ महुवा बसंत जेउँ झरई।—जायसी ग्रं०, पृ० २५६।

जेउ, जेऊ(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'जो'।

जेज(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झेर] देर। विलंब। उ०—जन रामा अब जेज न कीजे सतगुर ज्ञान जगावै हो।—राम० धर्म०, पृ० २४८।

जेझ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झेर] विलंब। देरी। उ०—धरी बात घाखा जेझ बिसरी जिए सायत।—रा० रू०, पृ० ३३६।

जेट¹—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] १ समूह, यूथ, ढेर। २ रोटियों की तही। ३ मिट्टी के बरतनों या वह समूह जिसमें वे एक दूसरे के ऊपर रखे हों। ४ गोद। कोरा।

जेट²—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का वायुयान।

जेटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] नदी या समुद्र के किनारे पर बना हुआ वह बड़ा चबूतरा जिसपर से जहाजों का माल चढ़ाया और उतारा जाता है।

जेठंसा—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ+अंश] पैतृक संपत्ति में बड़े भाई का बड़ा हिस्सा।

जेठंसी—वि० [सं० ज्येष्ठांशिन्] पैतृक संपत्ति में बड़े भाई की हैसियत से बड़े हिस्से का अधिकारी।

जेठ—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] १. एक चांद्र मास जो बैसाख और असाढ़ के बीच में पड़ता है।

विशेष—जिस दिन इस मास की पूर्णिमा होती है उस दिन चंद्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र मे रहता है, इसी से इसे ज्येष्ठ या जेठ कहते हैं। यह ग्रीष्म ऋतु का पहला और संवत् का तीसरा मास है। सौर मास के हिसाब से जेठ वृष संक्रांति से आरंभ होकर मिथुन संक्रांति तक रहता है।

२. [स्त्री० जेठानी] पति का बड़ा भाई। भसुर।

जेठ²—वि० अग्रज। बड़ा। उ०—जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।—तुलसी (शब्द०)।

जेठउत—संज्ञा पुं० [हिं० जेठ+उत (प्रत्य०)] पति का बड़ा भाई।

जेठरा—वि० [हिं० जेठ+रा (प्रत्य०)] दे० 'जेठ' (वि०)।

जेठरैत—संज्ञा पुं० [हिं० जेठरा+ऐत (प्रत्य०)] गाँव का मुखिया।

जेठरैता—वि० ज्येष्ठ। बड़ा।

जेठरैयत—संज्ञा पुं० [हिं० जेठ+अ० रैयत] गाँव का मुखिया, जिसकी सम्मति के अनुसार गाँव के सब लोग कार्य करते हों।

जेठवा—संज्ञा पुं० [हिं० जेठ] एक प्रकार की कपास जो जेठ में तैयार होती है। इसे फुनवा भी कहते हैं। वि० दे० 'फुलवा'।

जेठा—वि० [सं० ज्येष्ठ] [वि० स्त्री० जेठी] १. अग्रज। बड़ा। २. सबसे उत्तम। सबसे अच्छा।

मुहा०—जेठा रंग = वह रंग जो कई बार की रँगाई में सबसे अंतिम बार रँगा जाय।

जेठाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेठा+ई] जेठ होने का भाव या दशा। बड़ाई। जेठापन।

जेठानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेठ] जेठ की स्त्री। पति के बड़े भाई की स्त्री।

जेठी¹—वि० [हिं० जेठ+ई (प्रत्य०)] १. जेठ संबंधी। जेठ का। २. बड़ी। पहली। जैसे, जेठी धान। जेठी कपास।

जेठी²—संज्ञा स्त्री० १. एक प्रकार की कपास जो जेठ मे पकती और फूटती है।

विशेष—इसे बरार या विदर्भ में टिकड़ी या जुड़ी और काठियावाड़ मे गँगरी कहते हैं।

२. जेठानी। उ०—जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरैं मतिराम बुलाई।—इतिहास, पृ० २५४।

जेठी³—संज्ञा पुं० बोरो नाम का धान जो चैत में नदियों के किनारे बोया और जेठ मे काटा जाता है।

जेठी मधु—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टिमधु] मुलेठी।

जेठुआ†—वि० [हिं०] दे० 'जेठी'।

जेठौत—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ+पुत्र] [स्त्री० जेठौती] १ जेठ का लडका। पति के बड़े भाई का पुत्र। जेठानी का पुत्र। २ पति का बड़ा भाई। भसुर।

जेठौता—संज्ञा पुं० [हिं० जेठौत] दे० 'जेठौत'।

जेत—वि० [हिं०] दे० 'जितना'। उ०—जेत बरांती औ असवारा। आए मोर सब चाल निहारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३११।

जेतक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जितना'। उ०—जेतक नेम धरम किए री मैं बहु विधि अंग अंग भई मैं तो स्रवन मई री।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४५।

जेतना(पु)†—वि० [हिं० जितना] दे० 'जितना'। उ०—बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज। मागे वारिद देहि जल रामचंद्र के राज।—मानस, ७।२३।

जेतवार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जैतवार'।

जेता¹—वि० [सं० जेतृ] १. जीतनेवाला। विजय करनेवाला। विजयी।

जेता²—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जेता³(पु)—क्रि० वि० [सं० यावत्] जितना।

जेता(पु)⁴—वि० [हिं० जिस+तना (प्रत्य०)] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जितना। उ०—सकल दीप महँ जेती रानी। तिन्ह महँ दीपक बारह बानी।—जायसी (शब्द०)।

जेतार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जेता'।

जेति(पु)†—वि० [हिं० जितना] जितना। उ०—हहूँ रंग बहु जानति लहरैं जेति समुंद। पै पिय की चतुराई सकिउँ न एको बुंद।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० ३४१।

जेतिक(पु)†[1]—क्रि० वि० [हिं० जितना] जितना। जिस कदर। जिस मात्रा मे। जिस परिमाण मे।

जेतिक[2]—वि० दे० 'जितना'। उ०—जेतिक भोजन व्रज तें आयो। गिरि रूपी हरि सिगरो खायो।—नंद० ग्र०, पृ० ३०७।

जेती(पु)†—वि० स्त्री० [हिं० जेता] जितनी। उ०—जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर। सहजै हीरा नीपजै जो मन आवै ठौर।—कबीर सा०, पृ० ५५।

जेतो[1](पु)†—क्रि० वि० [हिं०] जितना। जिस कदर। उ०—धीरज ज्ञान सयान सवै, गंग जेतोई सारत तेतोई ढाहै।—गंग०, पृ० ७७।

जेतो[2]—वि० दे० 'जितना'।

जेतौ[1]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'जेतो'।

जेतौ[2]‡—वि० दे० 'जितना'। उ०—अरु वह रूप अनूपम जेतौ। नैननि गह्यो गयो नहीं तेतौ।—नंद० ग्र०, पृ० १२८।

जेन केन(पु)—क्रि० वि० [सं० येन + केन] जैसे तैसे। उ०—जेन केन परकार होइ अति कृष्ण मगन मन। अनाकर्ण चैतन्य कछु न चितवै साधन तन।—नंद० ग्र०, पृ० ४६।

जेनरल[1]—वि० [अं०] १ आम। सामान्य।

यौ०—जेनरल इलेक्शन = आम चुनाव। साधारण निर्वाचन। जेनरल मर्चेंट = सामान्य उपयोग के सामान का विक्रेता।

२ बड़ा। प्रधान।

यौ०—जेनरल सेक्रेटरी = संस्था, संस्थान या विभाग का प्रधान मंत्री। जेनरल स्टाफ = सेनापति का सहकारी मंडल।

[जेन]रल[2]—संज्ञा पुं० [अं०] फौजी अफसर का एक पद जो सेनापति के अधीन होता है [को०]।

[जे]नां—क्रि० स० [सं० जेमन] दे० 'जीमना'।

[जे]न्य—वि० [सं०] १ अभिजात। कुलीन। २ असली। सच्चा। ३ विजेता [को०]।

जेन्यावसु—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २ अग्नि।

जेपाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओषधोपयोगी पौधा। जैपाल। जमाल-गोटा [को०]।

जेप्लिन—संज्ञा पुं० [जर्मन] एक विशेष प्रकार का बहुत बड़ा हवाई जहाज।

विशेष—इसका आविष्कार जर्मनी के काउंट जेप्लिन साहब ने किया था। इसका ऊपरी भाग सिगार के आकार का लंबोतरा होता है जिसके खानों मे गैस से भरी हुई बहुत बड़ी बड़ी थैलियाँ होती हैं। बड़े लंबोतरे चौखटे मे नीचे की ओर एक या दो संदूक लटकते हुए लगे रहते हैं जिनमे आदमी बैठते हैं और तोपें रखी जाती हैं। सब प्रकार के आकाशयानों से इसका आकार बहुत बड़ा होता है।

जेब[1]—संज्ञा पुं० [अ०] पहनने के कपड़ो (कोट, कुरते, कमीज, अंगे आदि) मे बगल या सामने की ओर लगी वह छोटी थैली या चकती जिसमें रूमाल, कागज आदि चीजें रखते हैं। खीसा। खरीता। पाकेट।

क्रि० प्र०—कतरना।—काटना।

यौ०—जेबकट। जेबखर्च। जेबघड़ी।

मुहा०—जेब कतरना = जेब काटकर रुपए पैसे का अपहरण। जेब खाली होना = पास मे पैसा न होना। जेब भरी होना = पास मे काफी रुपया होना।

जेब[2]—संज्ञा स्त्री० [फा० जेब] शोभा। सौंदर्य। फबन।

मुहा०—जेब तन बदलना = पहनना। धारण करना। जेब देना = शोभित होना।

यौ०—जेबदाव = तर्जदार। अच्छा। सुंदर।

जेबकट—संज्ञा पुं० [फा० जेब + हिं० काटना] वह मनुष्य जो चोरी से दूसरो के जेब से रुपया पैसा लेने के लिये जेब काटता हो। जेबकतरा। गिरहकट।

जेबकतरा—संज्ञा पुं० [हिं० जेब + कतरना] दे० 'जेबकट'।

जेबखर्च—संज्ञा पुं० [फ़ा० जेबखर्च] वह धन जो किसी को निज के खर्च के लिये मिलता हो और जिसका हिसाब लेने का किसी को अधिकार न हो। भोजन, वस्त्र आदि के व्यय से भिन्न, निज का और ऊपरी खर्च।

जेबखास—संज्ञा पुं० [फ़ा० जेब + अ० खास] राज्यकोष से राजा या बादशाह के निजी खर्च के लिये दिया जानेवाला धन।

जेबघड़ी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जेब + हिं० घड़ी] वह छोटी घड़ी जो जेब मे रखी जाती है। जेबी घड़ी। वाच।

जेबदार—वि० [फा० जेबदार] सुंदर। शोभायुक्त।

जेबरा—संज्ञा पुं० [अं० जेबरा] जबरा नाम का जंगली जानवर। दे० 'जबरा'।

जेबा—वि० [फ़ा० जेबा] सुंदर। मनोरम। शोभनीय। ललित [को०]।

मुहा०—जेबा देना = शोभा देना। सुंदर लगना।

जेबी—वि० [फ़ा०] १ जेब मे रखने योग्य। जो जेब में रखा जा सके। जैसे, जेबी घड़ी।

२ बहुत छोटा।

जेबोजीनत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जेब + अ० जीनत] बनाव सिंगार। वेश भूषा। ठाट बाट। शृंगार। सजावट [को०]।

जेमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन करना। जीमना। २ आहार। खाद्य (को०)।

जेय—वि० [सं०] जीतने योग्य। जो जीता जा सके।

जेर[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] आँवल। वह झिल्ली जिसमे गर्भगत बालक रहता और पुष्ट होता है।

जेर[2]—अव्य० [फा० जेर] नीचे। तले [को०]।

जेर[3]—वि० [फ़ा० जेर] [देश० जेरबरी] १. परास्त। पराजित। २. जो बहुत दिक किया जाय। जो बहुत तंग किया जाय।

क्रि० प्र०—करना = हराना। पछाड़ना।

जेर[4]—संज्ञा स्त्री० [फा० जेर] अरबी और फारसी के अक्षरो के नीचे लगनेवाला एक संकेत चिह्न जो इ, ई, और ए की मात्राओं का सूचक होता है।

जेर[5]—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़।

विशेष—यह सुंदरबन में अधिकता से होता है। इसके हीर की लकड़ी लाली लिए सफेद होती है और मजबूत होने के कारण इसकी लकड़ी से मेज, कुरसी, आलमारी इत्यादि बनती हैं।

जेरजामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ेरजामह्] १ अधोवस्त्र। कटिवस्त्र। २ घोड़े की ज़ीन के नीचे पीठ पर डाला जानेवाला कपड़ा [को०]।

जेरतजवीज—वि० [फ़ा० ज़ेर+अ० तज्वीज़] विचाराधीन [को०]।

जेरदस्त—वि० [फ़ा० ज़ेरदस्त] अधीन। वशीभूत। असहाय [को०]।

जेरनजर—क्रि० वि० [फ़ा० ज़ेर+अ० नज़र] आँखों में। दृष्टि में।
क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

जेरना(पु)—क्रि० स० [हिं० जेर] तंग करना। सताना। उत्पीड़ित करना।

जेरपाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ेरपाई] १ स्त्रियों के पहनने की जूती। स्लीपर। २ साधारण जूता।

जेरपेच—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ेरपेच] पगड़ी के नीचे पहनी जानेवाली छोटी पगड़ी या टोपी [को०]।

जेरबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ेरबार] घोड़े की मोहरी में लगा हुआ वह कपड़ा या चमड़े का तस्मा जो तंग में फँसाया जाता है।

जेरबार—वि० [फ़ा० ज़ेरबार] १ जो किसी विशेष आपत्ति के कारण बहुत तंग और दु:खी हो। आपत्ति या दु:ख की बोझ से लदा हुआ। २ क्षतिग्रस्त। जिसकी बहुत हानि हुई हो।

जेरबारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ेरबारी] १ आपत्ति या क्षति के कारण बहुत दुखी होने की क्रिया। तंगी। २ हैरानी। परेशानी।
क्रि० प्र०—होना।—सहना।

जेरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेरी' २. और ३.।

जेरी—संज्ञा स्त्री० [?] १. दे० 'जेर[1]'। २ वह लाठी जो चरवाहे कँटीली झाड़ियाँ इत्यादि हटाने या दबाने के लिये सदा अपने पास रखते हैं। उ०—उतहि सखा कर जेरी लीन्हें गारी देहि सकुच तोरी की। इतहि सखा कर बाँस लिए बिच मारु मची भोरा भोरी की।—सूर (शब्द०)। ३ खेती का एक औजार जो फरुई के आकार का काठ का होता है। इसका व्यवहार अन्न दाँवने के समय पुआल हटाने में होता है। सिंचाई के लिये दौरी चलाने में भी यह काम में आता है।

जेरेखाक—क्रि० वि० [फ़ा० ज़ेरेखाक] १ मिट्टी के नीचे। २ कब्र में [को०]।
क्रि० प्र०—जाना।—होना।

जेरे नजर—क्रि० वि० [फ़ा० ज़ेर+अ० नज़र] दे० 'जेरनजर'।

जेरेसाया—वि० [फ़ा० ज़ेरेसायह्] किसी का आश्रित। किसी की छाया में [को०]।

जेरे हिरासत—वि० [फ़ा० ज़ेरे+अ० हिरासत] गिरफ्तारी में पड़ा हुआ [को०]।
क्रि० प्र०—होना।

जेरे हुकूमत—वि० [फ़ा० ज़ेर+अ० हुकूमत] शासन के अधीन। मातहत देश [को०]।

जेरोजबर—क्रि० वि० [फ़ा० ज़ेरोज़बर] नीचे ऊपर उथल पुथल। अस्तव्यस्त (को०)।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

जेल[1]—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ राज्य द्वारा दंडित अपराधी आदि कुछ निश्चित समय के लिये रखे जाते हैं। कारागार। बंदी गृह।
मुहा०—जेल काटना, जाना या भोगना = जेल में रहकर दंड भोगना।

जेल[2]—संज्ञा पुं० [फा० ज़ेर] जंजाल। हैरानी या परेशानी का काम। उ०—खेलत खेल सहेलिन में पर खेल नवेली को जेल सों लागे।—मतिराम (शब्द०)।

जेलखाना—संज्ञा पुं० [अं० जेल+फ़ा० खानह्] कारागार। वि० दे० 'जेल'।

जेलर—संज्ञा पुं० [अ०] जेलखाने का अध्यक्ष। जेल का अफसर।

जेलाटीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] जानवरों विशेषत कई प्रकार की मछलियों के मांस, हड्डी खाल आदि को उबालकर तैयार की हुई एक बहुत साफ और बढ़िया सरेस जिसका व्यवहार फोटोग्राफी और चिट्ठियों आदि की नकल करने के लिये पैड बनाने में होता है।
विशेष—यह पशुओं को खिलाई भी जाती है। पर इसमें पोषक द्रव्य बहुत ही थोड़े होते हैं। खूब साफ की हुई जेलाटीन से औषधों की गोलियाँ भी बनाई जाती हैं।

जेली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेरी] घास या भूसा इकट्ठा करने का औजार। पाँचा।

जेली[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की विदेशी मिठाई या गाढ़ी मीठी चटनी जो फलों आदि द्वारा चीनी के साथ उबालकर बनाई जाती है। इसे गाढ़ा या कड़ा कर देते हैं।

जेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेवरी'।

जेवना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जीमना'।

जेवनार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेवना] १ बहुत से मनुष्यों का एक साथ बैठकर भोजन करना। भोज। २ रसोई। भोजन।

जेवर[1]—संज्ञा पुं० [फा० ज़ेवर] धातु या रत्नों आदि की बनी हुई वह वस्तु जो शोभा के लिये अंगों में पहनी जाती है। गहना। आभूषण। अलंकार। आभरण।

जेवर[2]—पुं० [देश०] एक प्रकार का महोख पक्षी जिसे जघी या सिंघ मोनाल भी कहते हैं।
विशेष—यह शिमले में बहुत पाया जाता है।

जेवर[3]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेवरी'।

जेवरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योरा'।

जेवरात—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ेवरात] जेवर का बहुवचन।

जेवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी।

जेष्ठ[1]—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] १ जेठ मास। २ जेठ। पति का बड़ा भाई।

जेष्ठ[2]—वि० [सं० ज्येष्ठ] अग्रज। जेठा। बड़ा।

जेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्येष्ठा] दे० 'ज्येष्ठा'।

जेह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़िह (= चिल्ला), तुलनीय सं० ज्या] १. कमान की डोरी में वह स्थान जो आँख के पास लगाया जाता है और

जिसकी सीध में निशान रहता है। चिल्ला। उ०—तिय कत कमनैती पढ़ी बिन जेह भौह कमान। चित चलं बेधे चुकति नहिं, बक बिलोकनि बान।—बिहारी (शब्द०)। २. दीवार में नीचे की ओर दो तीन हाथ की ऊँचाई तक पलस्तर या मिट्टी आदि का वह लेप जो कुछ अधिक मोटा और उसके तल से अधिक उभरा हुआ होता है। उ०—गदा, पदम औ चक्र सख असि, पचतत्व सूचक समुभन। अरु, इन पाँचन की गति हरि के बस यही जगत की जेह। भस्म गंग लोचन अहि डमरू पचतत्व अरु भौरू, हर के बस पाँचइ यह पँवरू जिनसे पिंड डरेह।—देवस्वामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उतारना।—निकालना।

जेहड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेट+घट] एक पर एक रखे हुए पानी से भरे हुए बहुत से घड़े।

जेहन—संज्ञा पुं० [अ० जेह्न] [वि० जहीन] बुद्धि। धारणाशक्ति।

जेहनदार—वि० [अ० जेह्न+फा० दार (प्रत्य०)] धारणा शक्तिवाला। बुद्धिमान [को०]।

जेहर†—संज्ञा स्त्री० [?] पैर में पहनने का घुँघरूदार पाजेब नाम का जेवर।

जेहरिⓅ**†**—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेहर] दे० 'जेहर'। उ०— (क) पग जेहरि बिछियन की झमकनि चलत परस्पर बाजत।—सूर (शब्द०)। (ख) पग जेहरि जजीरनि जकर्यो यह उपमा कछु पावै।—सूर (शब्द०)। (ग) अमिल सुमिल सीढ़ी मदन सदन की कि जगमगै पग युग जेहरि जराय की।—केशव (शब्द०)।

जेहल[1]†—संज्ञा स्त्री० [अ० जहल] [वि० जेहली] हठ। जिद।

जेहल[2]‡—संज्ञा पुं० [अं० जेल] दे० 'जेल'।

जेहलखाना—संज्ञा पुं० [हिं० जेलखाना] दे० 'जेलखाना' या 'जेल'।

जेहली—वि० [अ० जेहल] जो समझाने से भी किसी बात की भलाई बुराई न समझे और अपनी हठ न छोड़े। हठी। जिद्दी।

जेहिⓅ**†**—सर्व० [सं० यस्य, प्रा० जस्स, जिस, जेहि] जिसको। उ०—जेहि सुमिरत सिधि होय गण-नायक करिवर वदन।—तुलसी (शब्द०)।

ज़ेह्न—संज्ञा पुं० [अ० जेह्न] बुद्धि। धारणा शक्ति।

जैंता†—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ती] जैत का पेड़।

जै[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जय'।

जै[2]Ⓟ—वि० [सं० यावत्, प्रा० जाव] जितने। जिस संख्या में।

जैकरीⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जयकरी'।

जैकारⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जयकार'।

जैकाराⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जयकार'।

जैगीषव्य—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के वेत्ता एक मुनि का नाम।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा विस्तार से लिखी है। असित देवल नामक एक ऋषि आदित्य तीर्थ में निवास करते थे। एक दिन उनके यहाँ जैगीषव्य नामक एक ऋषि आए और उन्हीं के यहाँ निवास करने लगे। थोड़े ही दिनों में जैगीषव्य योग साधन द्वारा परम सिद्ध हो गए और असित देवल सिद्धिलाभ न कर सके। एक दिन जैगीषव्य कहीं से घूमते फिरते भिक्षुक के रूप में देवल के पास आकर बैठे। देवल यथाविधि उनकी पूजा करने लगे। जब बहुत दिन तक पूजा करते हो गए और जैगीषव्य अटल भाव से बैठे रहे, कुछ बोले चाले नहीं तब देवल ऊबकर आकाश पथ से स्नान करने चले गए। समुद्र के किनारे उन्होंने जाकर देखा तो जैगीषव्य को स्नान करते पाया। आश्चर्य से चकित होकर देवल जल्दी से आश्रम को लौट गए। वहाँ पर उन्होंने जैगीषव्य को उसी प्रकार अटल भाव से बैठे पाया। इस पर देवल आकाश मार्ग में जाकर उनकी गति का निरीक्षण करने लगे। उन्होंने देखा कि आकाशचारी अनेक सिद्ध जैगीषव्य की सेवा कर रहे हैं, फिर देखा कि वे नाना मार्गों में स्वेच्छा पूर्वक भ्रमण कर रहे हैं। ब्रह्मलोक, गोलोक, पतिव्रत लोक इत्यादि तक तो देवल पीछे गए पर इसके आगे वे न देख सके कि जैगीषव्य कहाँ गए। सिद्धों से पूछने पर मालूम हुआ कि वे सारस्वत ब्रह्मलोक में गए हैं जहाँ कोई नहीं जा सकता। इस पर देवल घर लौट आए। वहाँ जैगीषव्य को ज्यों का त्यों बैठे देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इसके बाद वे जैगीषव्य के शिष्य हुए और उनसे योगशास्त्र की शिक्षा ग्रहण करके सिद्ध हुए।

जैचंदⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जयचंद'।

जैजैकार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जयजयकार'।

जैजैवंती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयजयवती] भैरव राग की एक रागिनी जो सवेरे गाई जाती है।

जैढक—संज्ञा पुं० [सं० जय+ढक्का] एक प्रकार का बड़ा ढोल। विजय ढोल। जंगी ढोल।

जैत[1]Ⓟ**†**—संज्ञा स्त्री० [सं० जैत्र] विजय। जीत। फतह।

जैत[2]—संज्ञा पुं० [अ०] जैतून वृक्ष। २ जैतून की लकड़ी।

जैत[3]—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ती] अगस्त की तरह का एक पेड़।

विशेष—इसमें पीले फूल और लंबी फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी होती है। पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं।

जैतपत्रⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जयति+पत्र] जयपत्र। जीत की सनद।

जैतवारⓅ**†**—वि० [हिं० जैत+वार (प्रत्य०)] जीतनेवाला। विजयी। विजेता। उ०—सत्ता को सपूत राव सगर को सिंह सोहै, जैतवार जगत करेरी किरवान को।—मति० ग्रं०, पृ०३७७।

जैतश्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जयतिश्री] एक रागिनी।

जैती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिका] एक प्रकार की घास जो रबी की फसल में खेतों में आप से आप उगती है।

जैतून—संज्ञा पुं० [अ०] एक सदाबहार पेड़।

विशेष—यह अरब शाम आदि से लेकर युरोप के दक्षिणी भागों तक सर्वत्र होता है। इसकी ऊँचाई अधिक से अधिक ४० फुट तक होती है। इसका आकार ऊपर गोलाई लिए होता है।

—पत्तियाँ इसकी नरकट की पत्तियों से मिलती जुलती, पर उनसे छोटी होती हैं। इसके ऊपर की ओर हरी ओर नीचे की ओर सफेदी लिए होती हैं। फूल छोटे छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। फल कचरी के से होते हैं। पश्चिम की प्राचीन जातियाँ इसे पवित्र मानती थीं। रोमन और यूनानी विजेता इसकी पत्तियों की माला सिर पर धारण करते थे। अरबवाले भी इसे पवित्र मानते थे जिससे मुसलमान लोग अबतक इसकी लकड़ी की तसबीह (माला) बनाते हैं। इस पेड़ के फल और बीज दोनों काम में आते हैं। फल पकने पर नीलापन लिए काले होते हैं। कच्चे फलों का मुरब्बा और अचार पड़ता है। बीजों से तेल निकलता है। लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी लकड़ी धूप से चिटकती नहीं।

जैत्र[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जैत्री] १. विजेता। विजयी। उ०—चारु चल चक्र चित्रित विचित्रित परम जगत विजयी जयति कृष्ण को जैत्र रथ। —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४७।

यौ०—जैत्ररथ = विजयी।

२ सर्वोच्च (को०)।

जैत्र[2]—संज्ञा पुं० १ पारा। २. औषध। ३ विजयी व्यक्ति। विजेता पुरुष (को०)। ४ विजय (को०)। ५ सर्वोच्चता (को०)।

जैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती वृक्ष। जैंत का पेड़।

जैन—संज्ञा पुं० [सं०] १ जिन का प्रवर्तित धर्म। भारत का एक धर्म संप्रदाय जिसमें अहिंसा को परम धर्म माना जाता है और कोई ईश्वर या सृष्टिकर्ता नहीं माना जाता।

विशेष—जैन धर्म कितना प्राचीन है ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। जैन ग्रंथों के अनुसार महावीर या वर्धमान ने ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था। इसी समय से पीछे कुछ लोग विशेषकर यूरोपियन विद्वान् जैन धर्म का प्रचलित होना मानते हैं। उनके अनुसार यह धर्म बौद्ध धर्म के पीछे उसी के कुछ तत्वों को लेकर और उनमें कुछ ब्राह्मण धर्म की शैली मिलाकर खड़ा किया गया। जिस प्रकार बौद्धों में २४ बुद्ध हैं उसी प्रकार जैनों में भी २४ तीर्थंकर हैं। हिंदू धर्म के अनुसार जैनों ने भी अपने ग्रंथों को आगम, पुराण आदि में विभक्त किया है पर प्रो० जेकोबी आदि के आधुनिक अन्वेषणों के अनुसार यह सिद्ध किया गया है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से पहले का है। उदयगिरि, जूनागढ़ आदि के शिलालेखों से भी जैनमत की प्राचीनता पाई जाती है। ऐसा जान पड़ता है कि यज्ञों की हिंसा आदि देख जो विरोध का सूत्रपात बहुत पहले से होता आ रहा था उसी ने आगे चलकर जैन धर्म का रूप प्राप्त किया। भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की शैली का प्रचार विक्रमीय संवत् से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनों के मूल ग्रंथ अंगों में यवन ज्योतिष का कुछ भी आभास नहीं है। जिस प्रकार ब्राह्मणों की वेद संहिता में पंचवर्षात्मक युग है और कृत्तिका से नक्षत्रों की गणना है उसी प्रकार जैनों के अंग ग्रंथों में भी है। इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। जैन लोग सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानते, जिन या अर्हत् को ही ईश्वर मानते हैं। उन्हीं की प्रार्थना करते हैं और उन्हीं के निमित्त मंदिर आदि बनवाते हैं। जिन २४ हुए हैं, जिनके नाम ये हैं —ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य स्वामी, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी। इनमें से केवल महावीर स्वामी ऐतिहासिक पुरुष हैं जिनका ईसा से ५२७ वर्ष पहले होना ग्रंथों से पाया जाता है। शेष के विषय में अनेक प्रकार की अलौकिक और प्रकृतिविरुद्ध कथाएँ हैं। ऋषभदेव की कथा भागवत आदि कई पुराणों में आई है और उनकी गणना हिंदुओं के २४ अवतारों में है। जिस प्रकार काल हिंदुओं में मन्वंतर कल्प आदि में विभक्त है उसी प्रकार जैन लोगों में काल दो प्रकार का है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में चौबीस चौबीस जिन या तीर्थंकर होते हैं। ऊपर जो २४ तीर्थंकर गिनाए गए हैं वे वर्तमान अवसर्पिणी के हैं। जो एक बार तीर्थंकर हो जाते हैं वे फिर दूसरी उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में जन्म नहीं लेते। प्रत्येक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में नए नए जीव तीर्थंकर हुआ करते हैं। इन्हीं तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर गणधर लोग द्वादश अंगों की रचना करते हैं। ये ही द्वादशांग जैन धर्म के मूल ग्रंथ माने जाते हैं। इनके नाम ये हैं —आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती सूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, उपासक दशांग, अंतकृत् दशांग, अनुत्तरोपपातिक दशांग, प्रश्न व्याकरण, विपाकश्रुत, दृष्टिवाद। इनमें से ग्यारह अंग तो मिलते हैं पर बारहवाँ दृष्टिवाद नहीं मिलता। ये सब अंग अर्धमागधी प्राकृत में हैं और अधिक से अधिक बीस बाईस सौ वर्ष पुराने हैं। इन आगमों या अंगों को श्वेतांबर जैन मानते हैं। पर दिगंबर पूरा पूरा नहीं मानते। उनके ग्रंथ संस्कृत में अलग हैं जिनमें इन तीर्थंकरों की कथाएँ हैं और २४ पुराण के नाम से प्रसिद्ध हैं। यथार्थ में जैन धर्म के तत्वों को संग्रह करके प्रकट करनेवाले महावीर स्वामी ही हुए हैं। उनके प्रधान शिष्य इंद्रभूति या गौतम थे जिन्हें कुछ युरोपियन विद्वानों ने भ्रमवश शाक्य मुनि गौतम समझा था। जैन धर्म में दो संप्रदाय हैं—श्वेतांबर और दिगंबर। श्वेतांबर ग्यारह अंगों को मुख्य धर्म मानते हैं और दिगंबर अपने २४ पुराणों को। इसके अतिरिक्त श्वेतांबर लोग तीर्थंकरों की मूर्तियों को कच्छ या लँगोट पहनाते हैं और दिगंबर लोग नंगी रखते हैं। इन बातों के अतिरिक्त तत्व या सिद्धांतों में कोई भेद नहीं है। अर्हत् देव ने संसार को द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अनादि बताया है। जगत् का न तो कोई कर्ता हर्ता है और न जीवों को कोई सुख दुःख देनेवाला है। अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव सुख दुःख पाते हैं। जीव या आत्मा का मूल स्वभाव शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंदमय है, केवल पुद्गल या कर्म के आवरण से उसका मूल स्वरूप आच्छादित हो जाता है। जिस समय यह पौद्गलिक भार हट जाता है उस समय आत्मा परमात्मा की उच्च दशा को प्राप्त होता है। जैन मत स्याद्वाद

के नाम से भी प्रसिद्ध है। स्याद्वाद का अर्थ है अनेकातवाद अर्थात् एक ही पदार्थ मे नित्यत्व और अनित्यत्व, सादृश्य और विरूपत्व, सत्व और असत्व, अभिलाप्यत्व और अनभिलाप्यत्व आदि परस्पर भिन्न धर्मों का सापेक्ष स्वीकार। इस मत के अनुसार आकाश से लेकर दीपक पर्यंत समस्त पदार्थ नित्यत्व और अनित्यत्व आदि उभय धर्म युक्त हैं।

२ जैन धर्म का अनुयायी। जैनी।

जैनी—सज्ञा पुं० [हिं० जैन] जैन मतावलंबी।

जैनुⓅ†—सज्ञा पुं० [हिं० जेवना] भोजन। आहार। उ०—इहाँ रहौ जहँ जूठनि पावै व्रजवासी के जैनु।—सूर (शब्द०)।

जैपत्रⓅ—सज्ञा पुं० [सं० [illegible] ० 'जयपत्र'।

जैपाल—सज्ञा पुं० [सं० [illegible]

जैवो, जैवौ†—क्रि० [illegible] [हिं०] दे० 'जाना'। उ०—बनत नहीं जमुना को पैवो। सुंदर स्याम घाट पर ठाढ़े, कहौ कौन विध जैवो।—सूर०, १०। ७७९।

जैमंगल—सज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १. एक वृक्ष जिसकी लकड़ी मजबूत होती है।

विशेष—इसकी लकड़ी से मेज, कुरसी आदि सजावट की चीजें बनाई जाती हैं।

२ खास राजा की सवारी का हाथी। ३ संगीत मे एक ताल (को०)। ४ जयकार (को०)।

जैमालⓅ—सज्ञा स्त्री० [सं० जयमाल] दे० 'जयमाल'।

जैमालाⓅ—सज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] दे० 'जयमाल'।

जैमिनि—सज्ञा पुं० [सं०] पूर्वमीमासा के प्रवर्तक एक ऋषि जो व्यास जी के ४ मुख्य शिष्यों में से एक थे।

विशेष—कहते हैं, इनकी रची एक भारतसंहिता भी थी जिसका अब केवल अश्वमेध पर्व ही मिलता है। यह अश्वमेध पर्व व्यास के अश्वमेध पर्व से बड़ा है, पर कई नई बातों के समावेश के कारण इसकी प्रामाणिकता मे संदेह है।

जैमिनीय[1]—वि० [सं०] १. जैमिनि सबधी। २ जैमिनि प्रणीत। ३ जैमिनि का अनुयायी (को०)।

जैमिनीय[2]—सज्ञा पुं० १ जैमिनिकृत ग्रंथ।

जैयट—सज्ञा पुं० [देश०] महाभाष्य के तिलककार कैयट के पिता।

जैयद—वि० [अ०] १ बडा भारी। घोर। बहुत बड़ा। जैसे, जैयद बेवकूफ। जैयद आलिम। ३ बहुत धनी। भारी मालदार। जैसे, जैयद असामी।

जैल[1]—सज्ञा पुं० [अ० जैल] १ दामन। २ नीचे का स्थान। निम्न भाग। ३ पंक्ति। सफ। समूह। ४ इलाका। हलका।

यौ०—जैलदार।

जैल[2]—अव्य० नीचे।

जैलदार—सज्ञा पुं० [अ० जैल + फा० दार (प्रत्य०)] वह सरकारी ओहदेदार जिसके अधिकार मे कई गाँवों का प्रबंध हो।

जैव[1]—वि० [सं०] १ जीव सबधी। २ बृहस्पति सबधी।

जैव[2]—सज्ञा पुं० १ बृहस्पति के क्षेत्र में धनु राशि और मीन राशि। २ पुष्य नक्षत्र। ३ जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कच (को०)।

जैवातृक[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ कपूर। २. चद्रमा। ३ ओषध। ४ किसान (को०)। ५. पुत्र (को०)।

जैवातृक[2]—वि० १ [वि०स्त्री० जैवातृकी] दीर्घायु। २ दुबला पतला।

जैवात्रिकⓅ—सज्ञा पुं० [सं० जैवातृक] दे० 'जैवातृक'।

जैविक—वि० [सं०] दे० 'जैव'।

जैवेय—सज्ञा पुं० [सं०] जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कच (को०)।

जैस†—वि० [हिं० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—(क) घरनिहि जैस गगन सौं नेहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कोई भल जस धाव तुखारा। कोई जैस बैल गरिआरा।—जायसी ग्र०, (गुप्त) पृ० २२६।

जैसनⓅ†—वि० [हिं० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—भय भाजु काज न राज ग्राम सों, बससि निजपुर जैसन।—द० सागर, पृ० १७।

जैसवार—सज्ञा पुं० [हिं० जायस + वाला] कुरमियों और कलवारों का एक भेद।

जैसा[1]—वि० [सं० यादृश, प्रा० जारिस, पैशाची जइस्सो वि०स्त्री० जैसी] १. जिस प्रकार का। जिस रूप रंग, आकृति या गुण का। जैसे,—(क) जैसा देवता वैसी पूजा। (ख) जैसा राजा वैसी प्रजा। (ग) जैसा कपड़ा है वैसी ही सिलाई भी होनी चाहिए।

मुहा०—जैसा चाहिए = ठीक। उपयुक्त। जैसा उचित हो। जैसा तैसा = दे० 'जैसे तैसे'। जैसे,—काम जैसा तैसा चल रहा है। जैसे का तैसा = ज्यों का त्यों। जिसमे किसी प्रकार की घटती बढ़ती या फेरफार आदि न हुआ हो। जैसा पहले था, वैसा ही। जैसे—(क) दरजी के यहाँ अभी कपड़ा जैसे का तैसा रखा है, हाथ भी नहीं लगा है। (ख) खाना जैसे का तैसा पड़ा है, किसी ने नहीं खाया। (ग) वह साठ वर्ष का हुआ पर जैसे का तैसा बना हुआ है। जैसे को तैसा = (१) जो जैसा हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला। (२) जो जैसा हो उसी प्रकृति का। एक ही स्वभाव और प्रकृति का। उ०—जैसे को तैसा मिलै, मिलै नीच को नीच। पानी में पानी मिलै, मिलै कीच में कीच।—(शब्द०)।

२ जितना। जिस परिमाण का या मात्रा का। जिस कदर। (इस अर्थ में केवल विशेषण के साथ प्रयुक्त होता है।)जैसे,—जैसा अच्छा यह कपड़ा है, वैसा वह नहीं है।

विशेष—सबंध पूरा करने के लिये जो दूसरा वाक्य आता है वह वैसा शब्द के साथ आता है।

३ समान। सदृश। तुल्य। बराबर। जैसे,—उस जैसा आदमी ढूँढे न मिलेगा।

जैसा[2]—क्रि० वि० [हिं०] जितना। जिस परिमाण या मात्रा मे। जैसे,—जैसा इस लडके को याद है वैसा उस लडके को नहीं।

जैसी—वि० [हिं०] 'जैसा' का स्त्री०। दे० 'जैसा'।

जैसे—क्रि० वि० [हिं० जैसा] जिस प्रकार से। जिस ढंग से। जिस तरीके पर।

मुहा०—जैसे जैसे = जिस क्रम से। ज्यों ज्यों। उ०—जैसे जैसे रोग कम होता जायगा वैसे ही वैसे शरीर में शक्ति भी आती जायगी। जैसे तैसे = किसी प्रकार। बहुत यत्न करके। बड़ी कठिनता से। उ०—खैर जैसे तैसे उनको यहाँ ले आना। जैसे बने, जैसे हो = जिस प्रकार संभव हो। जिस तरह हो सके। उ०—जैसे बने वैसे कल शाम तक चले आओ। जैसे कवा घर रहे वैसे रहे विदेश = जिसके रहने या न रहने के काम में कोई अंतर न पड़े। निरर्थक व्यक्ति। जैसे मिया काठ, वैसी सन की दाढ़ी = अनुपयुक्त व्यक्ति के लिये अनुपयुक्त वस्तु ही उपयुक्त होती है।

जैसो¹ ⓟ—वि [हिं०] दे० 'जैसा'। उ०—अब कहँ पैयत सुख मांगे। जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिए कर्मन भोग अभागे। —सूर०, १।६१।

जैसो²—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'जैसा'।

जोंग—संज्ञा पुं० [सं० जोङ्ग] अगर। अगुरु।

जोंगक—संज्ञा पुं० [सं० जोङ्गक] दे० 'जोंग'।

जोंगट—संज्ञा पुं० [सं० जोङ्गट] दे० 'दोहद' [को०]।

जोंताला—संज्ञा स्त्री० [सं० जोन्ताला] देवधान्य। पुनेरा।

जों—क्रि० वि० [हिं० ज्यों] ज्यों। जैसे। जिस प्रकार से। जिस तरह से। जिस भाँति।

विशेष—दे० 'ज्यों'।

जोंक—संज्ञा स्त्री० [सं० जलौकस्] १ पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो बिलकुल थैली के आकार का होता है और जीवों के शरीर में चिपककर उनका रक्त चूसता है।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ हैं जिनमें से अधिकांश तालाबों और छोटी नदियों आदि में, कुछ तर घासों में और बहुत थोड़ी जातियाँ समुद्र में होती हैं। साधारण जोंक डेढ़ दो इंच लंबी होती है पर किसी किसी जाति की समुद्री जोंक ढाई फुट तक लंबी होती है। साधारणतः जोंक का शरीर कुछ चिपटा और कालापन लिये हुरे रंग का या भूरा होता है जिनपर या तो धारियाँ या बुंदकियाँ होती हैं। आँखें इसे बहुत सी होती हैं, पर काटने और खून चूसने की शक्ति केवल आगे, मुँह की ओर ही होती है। आकार के विचार से साधारण जोंक तीन प्रकार की मानी जाती है—कागजी, मझोली और भैंसिया। सुश्रुत ने बारह प्रकार की जोंकें गिनाई हैं—कृष्णा, अलगर्दी, इंद्रायुधा, गोचदना, कर्बुरा और सामुद्रिक ये छह प्रकार की जोंकें जहरीली और कपिला, पिंगला, शंकुमुखी, मूषिका, पुंडरीकमुखी और सावरिका ये छह प्रकार की जोंकें बिना जहर की बतलाई गई हैं। जोंक शरीर के किसी स्थान में चिपककर खून चूसने लगती है और पेट में खून भर जाने के कारण खूब फूल उठती है। शरीर के किसी अंग में फोड़ा फुंसी या गिलटी आदि हो जाने पर वहाँ का दूषित रक्त निकाल देने के लिये लोग इसे चिपका देते हैं और जब वह खूब खून पी लेती है तब उसे उँगलियों से जरा कसकर दुह लेते हैं जिससे सारा खून उसकी गुदा के मार्ग से निकल जाता है। भारत में बहुत प्राचीन काल से इस कार्य के लिये इसका उपयोग होता आया है। कभी कभी पशुओं के जल पीने के समय जल के साथ जोंक भी उनके पेट में चली जाती है।

पर्या०—रक्तपा। जलूका। जलोरगी। तीक्ष्णा। वमनी। वेधनी। जलसर्पिणी। जनमूची। जलाटनी। जलाका। पटालुका। वेणीवेधनी। जलाश्मिका।

क्रि० प्र०—लगाना।—लगवाना।

२. वह मनुष्य जो अपना काम निकालने के लिये बेतरह पीछे पड़ जाय। वह जो बिना अपना काम निकाले पिंड न छोड़े। ३. सेवार का बनाया हुआ एक प्रकार का छनना जिससे चीनी साफ की जाती है।

जोंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोंक] १ वह जलन जो पशुओं के पेट में पानी के साथ जोंक उतर जाने के कारण होती है। २. लोहे का एक प्रकार का काँटा जो दो तख्तों को मजबूती के साथ जोड़ने के काम में आता है। ३ एक प्रकार का लाल रंग का कीड़ा जो पानी में होता है। ४ दे० 'जोंक'।

जोंजों—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों ज्यों'।

जोंतों†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों त्यों'।

मुहा०—जों तों करके = बड़ी कठिनाई से। उ०—गरज जों तों करके दिन तो काटा।—लल्लू (शब्द०)।

जोंदरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'जोंधरी'।

जोंदरी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोंधरी'।

जोंधरा†—संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण] १. बड़े दानों की ज्वार। २ जोंधरी का सूखा डंठल। करबी। लकठा।

जोंधरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० जूर्ण] १ छोटी ज्वार। छोटे दानों की ज्वार। २ बाजरा (क्वचित्)।

जोंधैया—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, हिं० जोन्हैया] चाँदनी। चंद्रिका।

जो¹—सर्व० [सं० य] एक संबंधवाचक सर्वनाम जिसके द्वारा कही हुई संज्ञा या सर्वनाम के वर्णन में कुछ और वर्णन की योजना की जाती है। जैसे —(क) जो घोड़ा आपने भेजा था वह मर गया। (ख) जो लोग कल यहाँ आए थे, वे गए।

विशेष—पुरानी हिंदी में इसके साथ 'सो' का व्यवहार होता था। अब भी लोग प्रायः इसके साथ 'सो' बोलते हैं पर अब इसका व्यवहार कम होता जा रहा है। जैसे,—जो बोवेगा सो काटेगा। आजकल बहुधा इसके साथ 'वह' या 'वे' का प्रयोग होता है।

जो² ⓟ—अव्य० [सं० यद्] १ यदि। अगर। उ०—(क) जो कृपनो समुझे प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कल्प सत कोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जो बालक कछु अनुचित करहीं। गुरु, पितु मातु मोद मन भरहीं।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस ग्रर्थ में इसके साथ 'तो' का व्यवहार होता है। जैसे,—इसमें पानी देना हो तो ग्रभी दे दो।

२. यद्यपि। ग्रगरचे। (क्व०)। उ०—पौरि पौरि कोतवार जो बैठा। पेमक लुबुध सुरग होइ पैठा।—जायसी (शब्द०)।

जोग्रंडा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युवन्] जवान। युवा। उ०—जोग्रडा धावहि तुरय एचावहि बोलहि गाढिम बोला।—कीर्ति० पृ० ६४।

जोग्रण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० योजन, प्रा० जोग्रण] दे० 'योजन'। उ०—बिधु परइ सत जोग्रणे, खिवियाँ बीजलियाँह। सुरहउ लोद्र महफिकयाँ, भीनी ठोवडियाँह।—ढोला०, दू० १६०।

जोग्रना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जोवना'।

जोइ¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोरू। पत्नी। भार्या। स्त्री। उ०—विरध ग्रस विमाग हू को पतित जो पति होइ। जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाही जोइ।—सूर (शब्द०)।

जोइ²—सर्व० [हिं०] दे० 'जो'।

यौ०—जोइ सोइ = जो सो। जो जी मे ग्राए। उ०—जसोदा हरि पालनें झुलावै। हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै।—सूर०, १०।६६१।

जोइ(पु)†³—वि० [सं० योग्य, प्रा० जो, जोग्ग, जोग] योग्य। उचित। उ०—राजा राणी नूं कहइ, बात विचारउ जोइ।—ढोला०, दू० ७।

जोइन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि, हिं० जोनि] दे० 'योनि'। उ०—तीन लोक जोइन ग्रौतारा। ग्रावागमन में फिरि फिरि पारा।—कबीर सा०, पृ० ८०६।

जोइसी†—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—चित पितु मारक जोग गनि भयो भये सुत सोगु। फिरि हुलस्यो जिय जोइसी समुझें जारज जोग।—बिहारी (शब्द०)।

जोउ—सर्व [हिं०] दे० 'जो'।

जोक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोंक] दे० 'जोंक'।

जोक²(पु)—संज्ञा पुं० [ग्र० जौक] उ०—मँगे जीव तो घर बुला भेज उसूं। करे जोक फूलां सूं, भर सेज कूं।—दक्खिनी०, पृ० ८७। २ रुझान। चस्का। उ०—खुशियाँ इशरतां जोक दायम सो नित नित ग्रहा के मदिर में टिमटिम्याँ बजाय।—दक्खिनी०, पृ० ७३।

जोख†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जोखने का कार्य या भाव। तौल।

जोखता‡—संज्ञा स्त्री० [सं० योषिता] स्त्री। लुगाई।

जोखना¹—क्रि० स० [सं० जुष (= जाँचना)] तौलना। वजन करना।

जोखना²†—क्रि० ग्र० [सं० जुष = जाँचना] विचार करना। सोचना। उ०—काहू साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि। ग्रोछ पूर तेहि जानब जो थिर ग्रावत जोखि।—जायसी (शब्द०)।

जोखम†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोखिम'।

जोखा¹—संज्ञा पुं० [हिं० जोखना] १. लेखा। हिसाब।

विशेष—इस ग्रर्थ में इसका व्यवहार बहुधा यौगिक मे ही होता है। जैसे, लेखा जोखा।

†२ तौलने का काम करनेवाला ग्रादमी।

जोखा²‡—संज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री। लुगाई।

जोखाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोखना] १ जोखने का काम। तौलाई। २ जोखने या तौलने का भाव। ३. तौलने की मजदूरी।

जोखिउँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोखिम] दे० 'जोखिम'। उ०—तुम सुखिया ग्रपने घर राजा। जोखिउँ एत सहहु केहि काजा।—जायसी (शब्द०)।

जोखिम—संज्ञा स्त्री० [?] १ भारी ग्रनिष्ट या विपत्ति की ग्राशका ग्रथवा संभावना। झोकी। जैसे,—इस काम में बहुत जोखिम है।

मुहा०—जोखिम उठाना या सहना = ऐसा काम करना जिसमे भारी ग्रनिष्ट की ग्राशका हो। जोखिम मे पडना = जोखिम उठाना। जान जोखिम होना = प्राण जाने का भय होना।

२ वह पदार्थ जिसके कारण भारी विपत्ति ग्राने की संभावना हो, जैसे, रुपया, पैसा, जेवर ग्रादि। जैसे,—तुम्हारी यह जोखिम हम नही रख सकते।

जोखुग्रा†—संज्ञा पुं० [हिं० जोखना + उग्रा (प्रत्य०)] तौलनेवाला। बया।

जोखुवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोखुग्रा'।

जोखौं†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोखिम'।

मुहा०—जान जोखों होना = प्राण का सकट में होना।

जोगंधर—संज्ञा पुं० [सं० योगन्धर] एक युक्ति जिसके द्वारा शत्रु के चलाए हुए ग्रस्त्र से ग्रपना बचाव किया जाता है। यह युक्ति श्री रामचंद्र जी को विश्वामित्र ने सिखलाई थी। उ०—पद्मनाभ ग्ररु महानाभ दोउ द्वदहु सुनाभा। ज्योति निकृत निराश विमल युग जोगधर बड ग्राभा।—रघुराज (शब्द०)।

जोग¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योग'।

यौ०—जोगमुद्रा = योग की मुद्रा। जोग समाधि = योग की समाधि।

जोग²—ग्रव्य० [सं० योग्य] १ के लिये। वास्ते। उ०—ग्रपने जोग लागि ग्रस खेला। गुरु भएउँ ग्रापु कीन्ह तुम चेला।—जायसी (शब्द०)। २ को। के निकट। (पु० हिं०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा पुरानी परिपाटी की चिट्ठियो के ग्रारभिक वाक्यो मे होता है। जैसे,—'स्वस्ति श्री भाई परमानद जी जोग लिखा काशी से सीताराम का राम राम बाँचना।' बहुधा यह द्वितीया ग्रौर चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर काम मे ग्राता है। जैसे,—इनमे से एक साड़ी भाई कृष्णचद्र जी जोग देना।

जोगडा—संज्ञा पुं० [हिं० जोग + ड़ा (प्रत्य०)] बना हुग्रा योगी। पाखडी। जैसे,—घर का जोगी जोगड़ा ग्रान गाँव का सिद्ध। (कहा०)।

जोगता‡(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० योग्यता] दे० 'योग्यता'।

जोगन‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोगिन'।

जोगनिया¹†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोगिनी¹'।

जोगनिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोगिनिया²'।

जोगमाया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'योगमाया'।

जोगवना—क्रि० स० [सं० योग + अवना (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु को यत्न से रखना जिसमें वह नष्ट भ्रष्ट न हो पाए। रक्षित रखना। उ०—जिवन मुरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।—तुलसी (शब्द०)। २ संचित करना। बटोरना। ३ लिहाज रखना। आदर करना। उ०—ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मर्म कुघाउ।—तुलसी (शब्द०)। ४ दर गुजर करना। जाने देना। कुछ ख्याल न करना। उ०—खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।—तुलसी (शब्द०)। ५ पूरा करना। पूर्ण करना। उ०—काय न कलेस लेस लेत मानि मन की। सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की।—तुलसी (शब्द०)।

जोगसाधन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० योगसाधन] तपस्या।

जोगा—संज्ञा पुं० [देश०] अफीम का खूदड। वह मैल जो अफीम को छानने से बच रहती है।

जोगानल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० योगानल] योग से उत्पन्न आग। उ०—हर विरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरी—तुलसी (शब्द०)।

जोगिंद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० योगीन्द्र] १ योगिराज। योगिश्रेष्ठ। २. महादेव (डिं०)।

जोगि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० योगी] दे० 'योगी'।

जोगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० योगिनी] १ जोगी की स्त्री। २. विरक्त स्त्री। साधुनी। ३ पिशाचिनी। ४ एक प्रकार की रणदेवी जो रण में कटे मरे मनुष्यों के रुंड मुंडों को देखकर आनंदित होती है और मुंडों को गेंद बनाकर खेलती है। ५ एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा जिसमे नीले रंग के फूल लगते हैं। ६ दे० योगिनी'।

जोगिनिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. लाल रंग की एक प्रकार की ज्वार। २. एक प्रकार का आम। ३. एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

विशेष—इसका चावल वर्षों ठहर सकता है।

जोगिनी[१]—संज्ञा [सं० जोगिनी] १. दे० योगिनी'। उ०—भूमि प्रति जगमगी जोगिनी सुनि जगी सहस्र फन शेष सो सीस काँधो।—सूर (शब्द०)। २ दे० 'जोगिन'।

जोगिनी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योतिरिङ्गण, प्रा० जोइगण] जुगुनूं। खद्योत।

जोगिया[१]—वि० [हिं० जोगी + इया (प्रत्य०) १ जोगी संबंधी। जोगी का। जैसे, जोगिया भेस। २. गेरू के रंग में रँगा हुआ। गैरिक। ३ गेरू के रंग का। मटमैलापन लिए लाल रंग का।

जोगिया[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० १ 'जोगड़ा'। दे० २ 'जोगी'। ३ एक रागिनी।

जोगींद्र(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० योगीन्द्र] १ योगिराज। बड़ा योगी। योगिश्रेष्ठ। २. शिव। महादेव।

जोगी—संज्ञा पुं० [सं० योगिन्] १ वह जो योग करता हो। योगी। २. एक प्रकार के भिक्षुक जो सारंगी लेकर भर्तृहरि के गीत गाते और भीख माँगते हैं। इनके कपड़े गेरुए रंग के होते हैं।

जोगीड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जोगी + ड़ा (प्रत्य०)] १ एक प्रकार का चलता गाना जो प्राय बसंत ऋतु में ढोलक पर गाया जाता है। २. गाने बजानेवालों का एक समाज।

विशेष—इस समाज में एक गानेवाला लड़का, एक ढोलक बजानेवाला और दो सारंगी बजानेवाले रहते हैं। इनमें गानेवाले लड़के का भेस प्राय योगियों का सा होता है और वह कुछ अलंकार आदि भी पहने रहता है। इसका गाना देहातों में सुना जाता है।

३. इस समाज का कोई आदमी।

जोगीश्वर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योगीश्वर'।

जोगीस्वर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योगीश्वर'। उ०—जोगीस्वरन के ईस्वर राम। बहुरयो जदपि आतमाराम।—नंद० ग्र०, पृ० ३२१।

जोगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० योगेश्वर] १ श्रीकृष्ण। २. शिव। ३ देवहोत्र के पुत्र का नाम। ४ योग का अधिकारी। योग का ज्ञाता। सिद्ध योगी।

जोगेसर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योगेश्वर'। उ०—यूँ कँमधज्ज धरे धू अंबर। ज्यूँ गंगा मेले जोगेसर।—रा० रू०, पृ० ७६।

जोगेस्वर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योगेश्वर'। उ०—जोग मार्ग जोगेंद्र जोगि जोगेस्वर जानें।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८४।

जोगोटा[१](पु)—वि० [हिं० जोगी] जोग या योग करनेवाला।

जोगोटा[२](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जोगौटा] दे० 'जोगौटा'।

जोगौटा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० योगपट्ट] १. योगी का वस्त्र। कौपीन। लँगोट। २ झोली। उ०—मेखल सिंगी चक्र धँधारी। जोगौटा रुद्राख अधारी। कंथा पहिरि डंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २०५।

जोग्य(पु)—वि० [हिं०] दे० 'योग्य'।

जोजन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योजन'। उ०—कह मुनि तात भएउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा।—मानस, १।१५६।

जोजनगंधा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'योजनगंधा'।

जोट[१](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० योटक] १ जोड़ा। जोड़ी। २. साथी। संघाती।

जोट[२]—वि० समान। बराबरी का। मेल का।

जोटा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० योटक] १. जोड़ा। युग। उ०—(क) ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालनि के कल जोटा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा।—तुलसी (शब्द०)। २. टाट का बना हुआ एक बड़ा दोहरा थैला जिसमें अनाज भरकर बैलों पर लादा जाता है। गोना। खुरजी।

जोटिंग—संज्ञा पुं० [सं० जोटिङ्ग] १ महादेव। शिव। २. अत्यंत कठिन तपस्या करनेवाला साधक [को०]।

जोटी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोट] १. जोड़ी। युग्मक। उ०—काँचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी। सूरदास

चिरजीवहु दोऊ हरि हलधर की जाटी । —सूर (शब्द०)। २ बराबरी का । जोड़ का । समान । ३ जो गुण आदि में किसी दूसरे के समान हो । जिसका मेल दूसरे के साथ बैठ जाता हो ।

जोट—संज्ञा पुं० [सं०] बधन [को०] ।

जोड़—संज्ञा पुं० [सं० योग] १. गणित में कई संख्याओं का योग । जोडने की क्रिया । २ गणित में कई संख्याओं का योगफल । वह संख्या जो कई संख्याओं को जोडने से निकले । मीजान । ठीक । टोटल ।

क्रि० प्र० —देना ।—लगाना ।

३ वह स्थान जहाँ दो या अधिक पदार्थ या टुकडे जुड़े अथवा मिले हों । जैसे, कपडे मे सिलाई के कारण पड़नेवाला जोड, लोटे या थाली आदि का जोड़ ।

मुहा०—जोड उखडना = जोड का ढीला पड़ जाना । संधि स्थान मे कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिसके कारण जुड़े हुए पदार्थ अलग हो जायँ ।

४ वह टुकडा जो किसी चीज मे जोड़ा जाय । जैसे,—यह चाँदनी कुछ छोटी है इसमें जोड़ लगा दो । ५ वह चिह्न जो दो चीजों के एक मे मिलने के कारण संधि स्थान पर पडता है । ६ शरीर के दो अवयवों का संधि स्थान । गाँठ । जैसे, कधा, घुटना, कलाई, पोर आदि ।

मुहा०—जोड़ उखडना = किसी अवयव के मूल का अपने स्थान से हट जाना । जोड बैठना = अपने स्थान से हटे हुए अवयव के मूल का अपने स्थान पर आ जाना ।

७ मेल । मिलान । ८ बराबरी । समानता । जैसे,—तुम्हारा और उनका कौन जोड है ?

विशेष—प्राय इस अर्थ मे इस शब्द का रूप जोडा का भी होता है । जैसे,—(क) यह गमला उसके जोड का है । (ख)इसके जोड़ का एक लप ले आओ ।

९ एक ही तरह की अथवा साथ साथ काम में आनेवाली दो चीजें । जोड़ा । जैसे, पहलवानों का जोड, कपडों (धोती और दुपट्टे) का जोड़ ।

मुहा०—जोड बाँधना = (१) कुश्ती के लिये बराबरी के दो पहलवानों को चुनना । (२) किसी काम पर अलग अलग दो दो आदमियों को नियत करना । (३) चौपड़ से दो गोटियाँ एक ही घर में रखना ।

१०. वह जो बराबरी का हो । समान धर्म या गुण आदिवाला । जोड । ११ पहनने के सब कपडे । पूरी पोशाक । जैसे,—उनके पास चार जोड कपड़े हैं । १२ किसी वस्तु या कार्य मे प्रयुक्त होनेवाली सब आवश्यक सामग्री । जैसे, पहनने के सब कपडों या अग प्रत्यग के आभूषणों का जोड । १३. जोडने की क्रिया या भाव । १४ छल । दाँव ।

यौ०—जोड़ तोड़ = (१) दाँव पेंच । छल कपट । (२) किसी कार्य विशेष युक्ति । ढग ।

विशेष—बहुधा इस अर्थ में इसके साथ 'लगाना' । 'भिडना' क्रियाओं का व्यवहार होता है ।

१५ दे० 'जोड़ा' ।

जोड़ती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ + ती (प्रत्य०)] १. गणित में कई संख्याओं का योग । जोड़ । २ गणना । गिनती । शुमार ।

जोड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड] १ जोड़ने की क्रिया या भाव । २. वह पदार्थ जो दही जमाने के लिये दूध मे डाला जाता है । जावन । जामन ।

जोड़ना—क्रि० स० [सं० जुड(=बाँधना) या सं० युक्त, प्रा० जुड़] १ दो वस्तुओं को सीकर, मिलाकर, चिपकाकर अथवा इसी प्रकार के किसी और उपाय से एक करना । दो चीजों को मजबूती से एक करना । जैसे, लबाई बढ़ाने के लिये कागज या कपडा जोड़ना । २ किसी टूटी हुई चीज के टुकड़ों को मिला कर एक करना । ३. द्रव्य या सामग्री को क्रम से रखना, लगाना या स्थापित करना । जैसे, अक्षर जोड़ना, ईंट या पत्थर जोडना । ४. एकत्र करना । इकट्ठा करना । सग्रह करना । जैसे, रुपए जोडना । कुनबा जोड़ना, सामग्री जोडना । ५. कई संख्याओं का योगफल निकालना । मीजान लगाना । ६ वाक्यों या पदों आदि की योजना करना । वर्णन प्रस्तुत करना । जैसे, कहानी जोड़ना, कविता जोड़ना, बात जोड़ना, तूमार या तूफान जोड़ना (= झूठा दोषारोपण करना) । ७ प्रज्वलित करना । जलाना । जैसे, आग जोड़ना, दीआ जोडना । ८ संबंध स्थापित करना । ९. सबध करना । सबध उत्पन्न करना । जैसे, दोस्ती जोडना । † १० जोतना ।

संयो० क्रि०—देना ।

जोड़ला†—वि० [हिं० जोडा + ला (प्रत्य०)] एक ही गर्भ से एक ही समय मे जन्मे हुए दो बच्चे । यमज ।

जोड़वाँ—वि० [हिं० जोड़ा + वाँ (प्रत्य०)] वे दो बच्चे जो एक ही समय मे और एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए हों । यमज ।

जोड़वाई—संज्ञा पुं० [हिं० जोडवाना] १ जोडवाने की क्रिया । २ जोड़वाने का भाव । ३ जोडवाने की मजदूरी ।

जोड़वाना—क्रि० स० [हिं० जोड़ना का प्रे० रूप] दूसरे को जोडने मे प्रवृत्त करना । जोडने का काम दूसरे से कराना ।

जोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जोड़ना] [स्त्री० जोड़ी] दो समान पदार्थ । एक ही सा दो चीजें । जैसे, धोतियों का जोड़ा, तस्वीरों का जोडा, गुलदानों का जोड़ा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

विशेष—जोड़े मे का प्रत्येक पदार्थ भी एक दूसरे का जोड़ा कहलाता है । जैसे, किसी एक गुलदान को उसी तरह के दूसरे गुलदान का जोड़ा कहेंगे ।

२ दोनों पैरों मे पहनने के जूते । उपानह । ३ एक साथ या एक मेल में पहने जानेवाले दो कपड़े । जैसे, अंगे और पैजामे का जोडा, कोट और पतलून का जोडा, लहँगे और ओढनी का जोड़ा । ४ पहनने के सब कपडे । पूरी पोशाक । जैसे,—(क) उनके पास चार जोड़े कपडे है । (ख) हम तो घोड़े जोड़े से तैयार है, तुम्हारी ही देर थी ।

यौ०—जोडा जामा = (१) वे सब कपडे जो विवाह मे वर पहनता है । (२) पहनने के सब कपडे । पूरी पोशाक ।

क्रि० प्र०—पहनना ।—बढ़ाना ।

५ स्त्री और पुरुष। जैसे, वर कन्या का जोडा। ६ नर और मादा (केवल पशु और पक्षियो आदि के लिये)। जैसे, सारस का जोड़ा कबूतर का जोडा, कुत्तो का जोडा।

विशेष—अर्थ ५ और ६ के अर्थो मे स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा मे से प्रत्येक को भी एक दूसरे का जोडा कहते हैं।

क्रि प्र०—मिलाना।—लगाना।

मुहा०—जोडा खाना=सभोग करना। मैथुन करना। जोडा खिलाना=सभोग मे प्रवृत्त करना। मैथुन कराना। जोडा लगाना=नर और मादा को मैथुन मे प्रवृत्त करना।

७ वह जो बराबरी का हो। जोडा। ८. दे० 'जोड'।

जोड़ाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० जोडना+आई (प्रत्य०)] १ दो या अधिक वस्तुओं को जोडने की क्रिया या भाव। २ जोडने का मजदूरी। ३ दीवार आदि बनाने के लिये ईटो या पत्थरो के टुकड़ों को एक दूसरे पर रखकर जोडने की क्रिया। ४ धातुओ, पीतल, तॉबा, लोहा आदि जोडने का काम।

जोड़ासंदेश सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बँगला मिठाई जो छेने से बनती है।

जोड़ी—सज्ञा स्त्री० [हिं० जोडा] १ दो समान पदार्थ। एक ही सी दो चीजें। जोड़ा जैसे, माल की जोडी, तस्वीरों की जोडी, किवाडों की जोडी, घोडों या बैलो की जोडी।

क्रि० प्र०—मिलाना।—लगाना।

यौ०—जोडीदार=जोड़वाला। जो किसी के साथ मे हो। (किसी काम पर एक साथ नियुक्त होनेवाले दो आदमी परस्पर एक दूसरे को अपना जोडीदार कहते हैं।)

विशेष—जोडी में प्रत्येक पदार्थ को भी परस्पर एक दूसरे की जोडी कहते हैं। जैसे,—किसी एक तसवीर को उसी तरह की दूसरी तसवीर की 'जोडी' कहेंगे।

२ एक साथ पहनने के सब कपडे। पूरी पोशाक। जैसे,—उनके पास चार जोड़ी कपडे हैं। ३ स्त्री और पुरुष। जैसे वर वधू की जोडी। ४ नर और मादा (केवल पशुओं और पक्षियो के लिये)। जैसे, घोडो की जोड़ी, सारस की जोड़ी, मोर की जोडी।

विशेष—अर्थ ३ और ४. के अर्थ मे स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा मे से प्रत्येक को एक दूसरे की जोडी कहते हैं।

५ दो घोडो या दो बैलो की गाड़ी। वह गाडी जिसे दो घोडे या दो बैल खीचते हो। जैसे,—जब से समुगल का माल आपको मिला है तबसे आप जोडी पर निकलते हैं। ६ दोनों मुगदर जिनसे कसरत करते हैं।

क्रि० प्र०—फेरना।—भाँजना।—हिलाना।

यौ०—जोडी की बैठक=वह बैठकी (कसरत) जो मुगदरो की जोडी पर हाथ टेककर की जाती है। मुगदरो के अभाव मे दो लकडियो से भी काम लिया जाता है।

७. मजीरा। ताल।

यौ०—जोडीवाल=जो गाने बजानेवालो के साथ जोडी या मँजीरा बजाता हो।

८ वह जो बराबरी का हो। समान धर्म या गुण आदि वाला। जोड़।

जोड़ुआ†—सज्ञा पुं० [हिं० जोड़ा+उआ (प्रत्य०)] पैर मे पहनने का चाँदी का एक प्रकार का गहना।

विशेष—इसमे एक सिकरी मे छोटे बडे दो छल्ले लगे रहते हैं। बड़ा छल्ला अँगूठे मे और छोटा सबसे छोटी उँगली मे पहना जाता है। सिकरी बीच की उँगलियो के ऊपर रहती है।

जोड़—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोरू'।

जोत[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना अथवा सं० योक्त्र, प्रा० जोत्त] १. वह चमड़े का तस्मा या रस्सी जिसका एक सिरा घोडे, बैल आदि जोते जानेवाले जानवरों के गले मे और दूसरा सिरा उस चीज मे बँधा रहता है जिसमें जानवर जोते जाते हैं। जैसे, एक्के की जोत, गाडी की जोत, मोट या चरसे की जोत।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

२ वह रस्सी जिसमें तराजू की डडी से बँधे हुए उसके पल्ले लटकते रहते हैं। ३ वह छोटी सी रस्सी या पगही जिसमे बैल बाँधे जाते हैं और जो उन्हें जोतते समय जुआठे मे बाँध दी जाती है। ४. उतनी भूमि जितनी एक असामी को जोतने बोने के लिये मिली हो। ५ एक क्रम या पलटे मे जितनी भूमि जोती जाय।

जोत†[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] १ दे० 'ज्योति'। २ दे० जोति'।

जोत[3]—सज्ञा स्त्री० [देश०] समतल पहाडो। उ०—यद्यपि वहाँ पहुँचने के लिये कुल्लू से दो जबर्दस्त जोते पार करनी पड़ेंगी।—किन्नर०, पृ० ६४।

जोत(पु)[4]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—प्रात पुहवे नरेस व्यास जग जोत बुलाइय। लगन सिद्धि अनुजा सुत नाम चिहु चक्क चलाइय।—पृ० रा०, १। ६८६।

जोतक(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—माता पूछे पडिता जोतक पढहिं अनेक। जो विधि ने लिख पाया को बूझै न ज्ञान विवेक।—प्राण०, पृ० २११।

जोतखी†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—जोतखी जी ठीक कहते हैं। गाँव के ग्रह अच्छे नही हैं।—मैला०, पृ० २६।

जोतगी—(पु)सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—तब बुलाय सब जोतगी कही सुपनफल सत्य। दिवस पच के अतर, होय सु दिल्लीपत्त।—पृ० रा०, ३। ११।

जोतड़िया(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० जोत] दे० 'ज्योति'। उ०—ऊंची पउडी लै गगनतरि चढ़ीमा। अनहद बीचाए चमकी जोतड़िया।—प्राण०, पृ० २२३।

जोतदार—सज्ञा पुं० [हिं० जोत+फ़ा० दार (प्रत्य०)] वह असामी जिसे जोतने बोने के लिये कुछ जमीन (जोत) मिली हो।

जोतना—क्रि० स० [सं० योजन, पा० युक्त, प्रा०, जुत्त+हिं० ना (प्रत्य०)] १ रथ, गाड़ी, कोल्हू, चरसे आदि को चलाने के घोड़े आदि पशु बाँधना। जैसे,—घोड़ा [illegible] रथ आदि को उनमें घोडे बैल आदि को तैयार करना। जैसे, गाडी जोतना। [illegible] किसी काम मे लगाना। ४ हल

खेती के लिये जमीन की मिट्टी खोदना। हल चलाना जैसे, खेत जोतना।

जोतनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोत या जोतना] १ वह छोटी रस्सी जो जुए मे जुते हुए जानवर के गले के नीचे दोनों ओर बँधी होती है। २ जुताई। जोतने का काम।

जोतसी†—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० ज्योतिषी'

जोताँत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] खेत की मिट्टी की ऊपरी तह। (कुम्हार)।

जोता—संज्ञा पुं० [हिं० जोतना] १ जुआठे में बँधी हुई वह पतली रस्सी जिसमे बैलो की गरदन फँसाई जाती है। २ जुलाहो की परिभाषा में वे दोनों डोरियाँ जो करघे पर फैलाए हुए ताने के अंतिम सिरे पर उसके सूतो को ठीक रखनेवाली कमाँची या मंजनी के दोनो सिरों पर बँधी हुई होती हैं। इन दोनो डोरियो के दूसरे सिरे आपस में भी एक दूसरे से बँधे और पीछे की ओर तने होते हैं। ३ करघे में सूत की वह डोरी जो बरौंछी मे बँधी रहती है। ४ वह बहुत बड़ी धरन या शहतीर जो एक ही पंक्ति में लगे हुए कई खमों पर रखी जाती है और जिसके ऊपर दीवार उठाई जाती है। ५ वह जो हल जोतता हो। खेती करनेवाला। जैसे, हरजोता।

जोताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना + आई (प्रत्य०) १ जोतने का काम। २. जोतने का भाव। ३ जोतने की मजदूरी।

जोताव—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० जोताँत'।

जोति¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] १. घी का वह दिया जो किसी देवी या देवता आदि के आगे अथवा उसके उद्देश्य से जलाया जाता है।

क्रि० प्र०—जलाना।—बारना।

यौ०—जोतिभोग = किसी देवता के सामने जोति जलाने और भोग लगाने आदि की क्रिया।

२ दे० 'ज्योति'।

जोति(पु)†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] जोतने बोने योग्य भूमि। उ०—एपै तजि देवो क्रिया देखि जग बुरो होत जोति बहु दई दाम राम मति मानिए।—प्रिया० (शब्द०)।

जोतिक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिष'। उ०—विद्या पढ़ेउँ करन सगीता। सामुद्रिक जोतिक गुन गीता।—माधवानल०, पृ० २०८।

जोतिखी‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'।

जोतिग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] १ ज्योतिष शास्त्र। उ०—न इह बात जोतिग घटै मनस धूम थिरताव। —पृ० रा०, ३।१३। २ ज्योतिषी। उ०—जोगनैर जोतिग कहै, प्रभु सु होय प्रयुराव। पृ० रा०, ३।१३।

जोतिमय(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ज्योतिर्मय'। उ०—रतनपुत्र नृपनाथ रतन जिमि ललित जोतिमय।—मति० ग्रं०, पृ० ४१४।

जोतिलिंग—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिलिंग'।

जोतिवंत(पु)—वि० [सं० ज्योतिवत्] ज्योतियुक्त। चमकदार। उ०—पावक पवन मणि पन्नग पतग पितृ जेते जोतिवंत जग ज्योतिषिन गाए हैं।—केशव (शब्द०)।

जोतिष‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिष'।

जोतिषटोम—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिष्टोम] दे० 'ज्योतिष्टोम'।

जोतिषी‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'।

जोतिस(पु)‡ - संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिष'।

जोतिस्ना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ज्योत्स्ना'।—अने०, पृ० १०१।

जोतिहा†--संज्ञा पुं० [हिं० जोतना] जोतनेवाला किसान। जोता।

जोती(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ दे० 'ज्योति'। उ०—बदन पै सलिल कन जगमगात जोती। इदु सुधा तामे मनौं अमी मय मोती।—नद० ग्र०, पृ० ३४७। २. दे० 'जोति¹'।

जोती²—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] १ तराजू के पल्लों की डोरी जो डाँडी से बँधी रहती है। जोत। २ घोड़े की रास। लगाम। ३ चक्की मे की वह रस्सी जो बीच की कीली और हत्थे में बँधी रहती है। इसे कसने या ढीली करने से चक्की हलकी या भारी चलती है और चीज मोटी या महीन पिसती है। ४ वे रस्सियाँ जिनसे खेत में पानी खींचने की दौरी बँधी रहती है।

जोत्सना—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना] दे० 'ज्योत्स्ना'।

जोध(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योद्धा'। उ०—कबि लक्खन अबला कहत, सबला जोध कहत।—हम्मीर रा०, पृ० २७।

जोधन—संज्ञा स्त्री० [सं० योग + धन] वह रस्सी जिससे बैल के जुए की ऊपर नीचे की लकड़ियाँ बँधी रहती हैं।

जोधा¹(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योद्धा'। उ०—(क) प्रगट कपाट बड़े दीने है बहु जोधा रखवारे।—सूर (शब्द०)। (ख) सूर प्रभु सिंह ध्वनि करत जोधा सकल जहाँ तहँ करन लागे लराई।—सूर (शब्द०)।

जोधा²—संज्ञा पुं० [हिं०] जोता नाम की रस्सी जो जुआठे में बँधी रहती है और जिसमें बैलों के सिर फँसाए जाते हैं।

जोधार(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० योद्धा] योद्धा। शूर। उ०—नकं कुड मे ना पड़ूँ जीतूँ मन जोधार। ऐसो मुझ उपदेश दो सतगुर कर उपकार।—राम० धर्म०, पृ० ३१३।

जोनँ—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'।

जोनराज—संज्ञा पुं० [देश०] राजतरंगिणी के द्वितीय लेखक जिन्होंने स० १२०० के बाद का हाल लिखा है। इनका लिखा हुआ 'पृथ्वीराजविजय' नामक एक ग्रंथ और 'किरातार्जुनीय' की एक टीका भी है।

जोनरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ज्वार नामक अन्न।

जोना(पु)—क्रि० स० [हिं०] देखना। उ०—रहबारी ढोलउ कहइ करहउ आछउ जोइ।—ढोला०, दू० ३०६। (ख) प्रेम के पथ सु प्रीति की पैठ में पैठत ही है दसा यह जो ले।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७३।

जोनि(पु)† - संज्ञा स्त्री० [सं० योनि], दे० 'योनि'। उ०—जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं।—मानस, २।२४।

जोनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'योनि'। उ०—कवन पुरुष जोनी बिना कवन मीत विना काल। —रामानद०, पृ० ३३।

जोन्ह(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोण्ह] १ जुन्हाई। चद्रिका। चाँदनी। ज्योत्स्ना। २ चद्रमा।

जोन्हरी†—संज्ञा स्त्री० [देशी जोण्णलिया] ज्वार नामक अन्न।

जोन्हाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोण्हा] १ चद्रिका। चाँदनी। चद्रज्योति। २. चंद्रमा।

जोन्हार†—संज्ञा पुं० [हिं०] ज्वार नामक अन्न।

जोप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यूप'।

जोपै(पु)—अव्य० [हिं० जो + पर अथवा सं० यद्यपि] १ यदि। अगर। २ यद्यपि। अगरचे।

जोफ—संज्ञा [अ० ज़ोफ़] १ बुढ़ापा। वृद्धावस्था। २ सुस्ती। निर्बलता। कमजोरी। नाताकती।

यौ०—जोफ जिगर = (१) जिगर का ठीक ठीक काम न करना। (२) जिगर या यकृत की कमजोरी। जोफ दिमाग = दिमाग की कमजोरी। जोफ मेदा = पाचन की कमजोरी। मंदाग्नि। अजीर्ण।

जोबन—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] १ युवा होने का भाव। यौवन। उ०—धन जोवन अभिमान अल्प जल कहँ कूर आपुनी बोरी। सूर (शब्द०)।

मुहा०—जोबन लूटना = (किसी स्त्री की) युवावस्था का आनंद लेना।

२ सुंदरता, विशेषत युवावस्था अथवा मध्यकाल की सुदरता। रूप। खूबसूरती।

क्रि० प्र०—छाना।—पर आना।

मुहा०—जोबन उतरना = युवावस्था समाप्त होना। जोबन चढ़ना = युवावस्था का सौंदर्य आना। जोबन ढलना = दे० 'जोबन उतरना'।

३ रौनक। बहार। ४. कुच। स्तन। छाती। उ०—कुच दुहुँ जोबन सों लागा।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठना।—उभरना —ढलना।

५. एक प्रकार का फूल।

जोबना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जोवना] दे० 'जोवना'।

जोम—संज्ञा पुं० [अ० ज़ोम] १ उमग। उत्साह। २ जोश। उद्वेग। आवेश। ३ अहकार। अभिमान। घमड।

क्रि० प्र०—दिखाना।

४, धारणा। खयाल (को०)। ५ प्रबलता (को०)। ६. समूह(को०)।

जोय'†—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोरू। स्त्री। पत्नी।

जोय—सर्व० पु० [हिं०] जो। जिस।

जोयना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जोड़ना (जैसे, दीया जोड़ना)] १ बालना। जलाना। उ०—चौसठ दीवा जोय कै चौदह चदा माँहि। तिहि घर किसका चाँदना जिहि घर सतगुर नाहि।—कबीर (शब्द०)। २ दे० 'जोवना'।

जोयसी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'।

जोर—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ोर] बल। शक्ति। ताकत।

क्रि० प्र०—आजमाना।—देखना।—दिखाना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—जोर करना = (१) बल का प्रयोग करना। ताकत लगाना। (२) प्रयत्न करना। कोशिश करना। जोर टूटना = बल घटना या नष्ट होना। प्रभाव कम होना। शक्ति घटना। जोर डालना = बोझ डालना। दे० 'जोर देना'। जोर देना = (१) बल का प्रयोग करना। ताकत लगाना। (२) शरीर आदि का) बोझ डालना। भार देना। जैसे,—इस जंगले पर जोर मत दो नहीं तो वह टूट जाएगा। किसी बात पर जोर देना = किसी बात को बहुत ही आवश्यक या महत्वपूर्ण बतलाना। किसी बात को बहुत जरूरी बतलाना। जैसे,—उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि सब लोग साथ चलें। किसी बात के लिये जोर देना = किसी बात के लिये आग्रह करना। किसी बात के लिये हठ करना। जोर देकर कहना = किसी बात को बहुत अधिक दृढ़ता या आग्रह से कहना। जैसे,—मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि इस काम मे आपको बहुत फायदा होगा। जोर मारना या लगाना = (१) बल का प्रयोग करना। ताकत लगाना। (२) बहुत प्रयत्न करना। खूब कोशिश करना। जैसे,—उन्होंने बहुतेरा जोर मारा पर कुछ भी नहीं हुआ।

यौ०—जोर जुल्म = अत्याचार। ज्यादती।

२ प्रबलता। तेजी। बढती। जैसे, भाँग का जोर, बुखार का जोर।

विशेष—कभी कभी लोग इस अर्थ में 'जोर' शब्द का प्रयोग 'से' विभक्ति उड़ाकर विशेषण की तरह और कभी कभी 'का' विभक्ति उड़ाकर क्रिया की तरह करते हैं।।

मुहा०—जोर पकड़ना या बाँधना = (१) प्रबल होना। तेज होना। जैसे,—(क) अभी से इलाज करो नहीं तो यह बीमारी जोर पकड़ेगी। (ख) इस फोड़े ने बहुत जोर बाँधा है। (२) दे० 'जोर में आना'। जोर करना या मारना = प्रबलता दिखलाना। जैसे,—(क) लेग का जोर करना। काम का जोर करना। (ख) आज आपकी मुहब्बत ने जोर मारा, तभी आप यहाँ आए हैं। जोर में आना = ऐसी स्थिति मे पहुंचना जहाँ अनायास ही उन्नति या वृद्धि हो जाय। जोर या जोरो पर होना = (१) पूरे बल पर होना। बहुत तेज होना। जैसे—, (क) आजकल शहर में चेचक बहुत जोरों पर है। (ख) इस समय उन्हें बुखार जोरों पर है। (२) खूब उन्नत दशा में होना।

३ वश। अधिकार। इख्तियार। काबू। जैसे,—हम क्या करें, हमारा उसपर कोई जोर नहीं है।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—जताना।—होना।

मुहा०—जोर डालना = किसी काम के लिये कुछ अधिकार जताते हुए विशेष आग्रह करना। दबाव डालना।

४ वेग। आवेश। झोंक।

मुहा० —जोरो पर = बड़े वेग से। बडी तेजी से। जैसे, गाडी का जोरो पर जाना, नदी का जोरो पर बहना।

५ भरोसा। आसरा। सहारा। जैसे,—आप किसके जोर पर कूदते हैं?

मुहा० —शतरज मे किसी मोहरे पर जोर देना या पहुँचाना = किसी मोहरे की सहायता के लिये उसके पास कोई ऐसा मोहरा ला रखना जिसमे उस पहले मोहरे के मारे जाने की सभावना न रह जाय अथवा यदि उस पहले मोहरे को विपक्षी अपने किसी मोहरे से मारना चाहे तो उसका मोहरा भी तुरत उस मोहरे से मार लिया जा सके जिससे पहले मोहरे को जोर पहुँचाया गया है। शतरज के मोहरे का जोर पर होना = मोहरे का ऐसी स्थिति मे होना जिसमें यदि उसे विपक्षी का कोई मोहरा मारना चाहे तो वह स्वय भी मारा जा सके। किसी के जोर पर कूदना = किसी को अपनी सहायता पर देखकर अपना बल दिखाना। बेजोर = जिसकी सहायता पर कोई न हो।

६ परिश्रम। मेहनत। जैसे,—अँधेरे मे पढ़ने से आँखो पर जोर पड़ता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

७ व्यायाम। कसरत।

जोरई—सज्ञा स्त्री० [हिं० जोड] १ एक ही मे बँधे हुए लबे लबे और मजबूत दो बाँस जिनके सिरों पर मोटी रस्सी का एक फदा लगा रहता है और जिसका उपयोग कोल्हू धोने के समय जाठ को रोकने और उसे कोल्हू मे से निकालकर अलग करने मे होता है।

विशेष—जाठ का ऊपरी भाग इसके फंदे मे फँसा दिया जाता है और तब जाठ का निचला भाग दोनों बाँसों की सहायता से उठाकर कोल्हू के ऊपरी भाग पर रख दिया जाता है।

२ एक प्रकार का हरे रग का कीड़ा जो फसल की डालियाँ और पत्तियाँ खा जाता है।

विशेष—चने की फसल को यह अधिक हानि पहुँचाता है।

जोरदार—वि० [फ़ा० जोरदार] जिसमे बहुत जोर हो। जोरवा।

जोरन†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोड़न'। उ०—जोरन दे तब दही जमाई। —सं० दरिया, पृ० ६।

जोरना†—क्रि० स० [हिं०] १ दे० 'जोड़ना'। उ०—रति रण जानि अनग नृपति आप नृपति राजति बल जोरति। —सूर (शब्द०)। †२ जोतना। जानवर को जूए में नाधना। ३ किसी टूटी चीज के टुकड़ो को मिलाकर एक करना। उ०—जो अति प्रिय तो करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई।—तुलसी (शब्द०)।

जोरशोर—सज्ञा पुं० [फा० जोरशोर] बहुत अधिक जोर। बहुत अधिक प्रबलता या प्रचडता। जैसे,—कल शाम को जोर शोर से आँधी आई थी।

जोरा†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोड़ा'।

जोराजोरी¹†Ⓟ—सज्ञा स्त्री० [फ़ा० जोर] जबरदस्ती। धीगा धीगी।

जोराजोरी²—क्रि० वि० जबरदस्ती। बलपूर्वक।

जोरावर—वि० [फा० जोरावर] बलवान्। ताकतवर। जबरदस्त।

जोरावरी—सज्ञा स्त्री० [फ़ा० जोरावरी] १ जोरावर होने का भाव। २ जबरदस्ती। धीगाधींगी।

जोरिल्ला†—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गंधबिलाव।

जोरी¹Ⓟ†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] १ समानता। समता। दे० 'जोड़ी'। उ०—स्वर्ग सूर ससि करैं अजोरी। तेहि ते अधिक देउ केहि जोरी।—जायसी (शब्द०)। २ सहेली। साथिन। दे० 'जोड़ी'। उ०—पूछत है रुक्मिणी इनमे को वृषभानु किशोरी। बारेक हमे दिखाओ अपने बालपने की जोरी। —सूर (शब्द०)। ३ दे० 'जोड़ी'।

जोरी²—सज्ञा स्त्री० [फा० जोर] जोरावरी। जबरदस्ती। उ०—जोरी मारि भजत उनही को जात यमुन के तीर। इक धावत पोछे उनही के पावत नहीं अधीर।—सूर (शब्द०)।

जोरू—सज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ा] स्त्री। पत्नी। भार्या। घरवाली।

मुहा०—जोरू का गुलाम = स्त्री का भक्त या उसके वश में रहनेवाला। स्त्रैण।

यौ०—जोरू जाता = गृहस्थी। परिवार। घर बार।

जोल¹—सज्ञा पुं० [हिं०] मेल। मिलाप।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्राय मेल के साथ होता है। जैसे, मेल जोल।

जोल²—सज्ञा पुं० [हिं० जोड़] समूह। सघ। जमघट। उ०—कहा करौ बारिज मुख ऊपर, बिथके षटपद जोल। सूरस्याम करि ये उतकरषा, नम कीन्ही बिनु मोल।—सूर०, १०।१७६२।

जोलहटो†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] जुलाहो की बस्ती।

जोलहा†—सज्ञा पुं० [हिं०]दे० 'जुलाहा'।

जोलाहल†Ⓟ—सज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] ज्वाला। अग्नि। आग। उ०—रोग रोम पावक शिखा जगी जोलाहल जोर। —रघुराज (शब्द०)।

जोलाहा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुलाहा'।

जोलाही—सज्ञा स्त्री० [हिं०] १ जोलाहे की स्त्री। उ०—काशी में जोलाहा जोलाही हुए।—कबीर म०, पृ० १०३। २ जोलाहे का काम या धधा।

जोली¹†Ⓟ—सज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ी] वह जो बराबरी का हो। जोड़। जोडी।

यौ०—हमजोली।

जोली²—सज्ञा स्त्री० [हिं०] जाली या किरमिच आदि का बना हुआ एक प्रकार का लटकौआँ बिस्तर। —(लश०)।

विशेष—इसके दोनों सिरों पर अदवान की तरह कई रस्सियाँ होती हैं। दोनो ओर की ये रस्सियाँ दो कड़ियो में बँधी होती हैं और दोनों कड़ियाँ दो तरफ खूँटियो आदि मे लटका दी जाती हैं। बीच का बिस्तरवाला हिस्सा लटकता रहता है जिसपर आदमी सोते हैं। इसका व्यवहार प्राय. जहाजी लोग जहाजो मे करते हैं।

२. वह रस्सी जो तूफान के समय जहाजों मे पाल चढ़ाने या उतारने के काम में आती है। —(लश०)। ३ एक प्रकार की गाँठ जो रस्से के एक सिरे पर उसकी लड़ो से बनाई जाती है।

जोवना(पु)—क्रि० स० [सं० जुपण (=सेवन), अथवा प्रा० जो (जोव=देखना)] १ जोहना। देखना। तकना। २ ढूँढ़ना। तलाश करना। ३ आसरा देखना। रास्ता देखना। उ०—रैण बिहाणी जोवताँ दिन भी बीतो जाय। रामदास बिरहिन झुरै पीव न पाया जाय। —राम० धर्म०, पृ० १६३।

जोवसी(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—सु दिन कहे रूड़ा जोवसी। चतुर नागर ईसउ आण ज्यों चद।—बी० रासो०, पृ० ६।

जोवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना जिसका रंग बहुत चमकीला होता है।

विशेष—यह बहुत अच्छी तरह कई प्रकार की बोलियाँ बोल सकती है, इसीलिये लोग इसे पालते और बोलना सिखाते हैं। यह ऋतुपरिवर्तन के अनुसार भिन्न भिन्न देशों में घूमा करती है। फूलों और अनाजों को बहुत हानि पहुँचाती है और टिड्डियों का खूब नाश करती है। इसके अंडे बिना चित्ती के और नीले रग के होते हैं। इसका मांस खाने मे बहुत स्वादिष्ट होता है।

जोश—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा०] १ किसी तरल पदार्थ का आँच या गरमी के कारण उबलना। उफान। उबाल।

मुहा०—जोश खाना = उबलना। उफनना। खौलना। जोश देना =पानी के साथ उबालना। जैसे,—इस दवा का जोश देकर पीओ। जोश मारना = उबलना। मथना।

यौ०—जोशांदा = क्वाथ। काढ़ा।

२. चित्त की तीव्र वृत्ति। मनोवेग। आवेश। जैसे,—उन्होंने जोश में आकर बहुत ही उलटी सीधी बातें कह डाली।

मुहा०—जोश खाना=आवेश में आना। जोश देना =आवेश में लाना या करना। जोश मारना=उमड़ना। जोश में आना =उत्तेजित हो उठना। आवेश मे आना। खून का जोश= प्रेम का वह वेग जो अपने वंश या कुल के किसी मनुष्य के लिये उत्पन्न हो। जैसे,—खून के जोश ने उन्हें रहने न दिया, वे अपने भाई की मदद के लिये उठ दौड़े।

यौ०—जोश खरोश = अधिक आवेश। जोशे जवानी = जवानी का जोश। जोशे जुनून = पागलपन का दौर। उन्माद का जोर। सनक।

जोशन—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा०] १ भुजाओं पर पहनने का चाँदी या सोने का एक प्रकार का गहना।

विशेष—इसमें छह पहल या आठ पहलवाले लंबोतरे पोले दानों की पाँच, छह या सात जोड़ियाँ लंबाई में रेशम या सूत आदि के डोरे में पिरोई रहती हैं। दोनो बाँहों पर दो जोशन पहने जाते हैं।

२ जिरह बकतर। कवच। चार आईना।

४-१६

जोशाँदा—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० जोशाँदह्] दवा के काम के लिये पानी में उबाली हुई जड़ या पत्तियाँ आदि। क्वाथ। काढ़ा।

जोशिश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उत्साह। जोश [को०]।

जोशी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोषी'।

जोशीला—वि० [फ़ा० जोश+हिं० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जोशीली] जोश से भरा हुआ। जिसमें खूब जोश हो। आवेगपूर्ण। जैसे,—उन्होंने कल बड़ी जोशीली वक्तृता दी थी।

जोष[1]—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रीति। प्रेम। २. सुख। आराम। ३. सेवा। ४. सतोष (को०)। ५. मौन (को०)।

जोष[2]—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री। नारी।

जोष[3]—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोख'। उ०—चढ़े न चातिक चित कबहुँ प्रियपयोद के दोष। तुलसी प्रेम पयोधि की तातें माप न जोख।—तुलसी (शब्द०)।

जोषक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सेवक।

जोषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीति। प्रेम। २. सेवा। ३. दे० 'जोष' (को०)।

जोषणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जोषण' [को०]।

जोषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नारी। स्त्री।

जोषिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलियों का स्तबक या गुच्छा। २. नारी। स्त्री [को०]।

जोषित—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री [को०]।

जोषति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जोषित्] दे० 'जोषिता'। उ०—जुवा खेल खेलन गई जोषित जोबन जोर।—स० सप्तक, पृ० ३६४।

जोषिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। औरत। उ०—जदपि जोषिता अन अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी। —मानस, १। ११०।

जोषी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] १ गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति। २. महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक जाति। ३ पहाड़ी ब्राह्मणों की एक जाति। ४ ज्योतिषी। गणक—(क्व०)।

जोष्य—वि० [सं०] कमनीय। प्रिय। प्यारा [को०]।

जोसं†—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोश'।

जोसना(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना] दे० 'ज्योत्स्ना'। उ०—इह बरनी तुम जोय चद जोसना वान वृत।—पृ० रा०, २५। १८६।

जोसी(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिष, ज्योतिषी, जोइसी, जोसी] ज्योतिषी। उ०—पाड्या तोहि बोलावहि हो राय। ले पतड़ो जोसी वेगो तु आई। —बी० रासो, पृ० ६।

जोह(पु)†—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० जोहना] १. खोज। तलाश।

क्रि० प्र०—लगाना।

२ इंतजार। प्रतीक्षा। ३. नजर। दृष्टि। विशेषत। कृपायुक्त दृष्टि।

क्रि० प्र०—रखना।

जोहड़(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] कच्चा तालाब।

जोहन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोहना] १. देखने या जोहने की क्रिया। उ०—सघन कला तरु तर मनमोहन। दक्षिण चरन चरन पर दीन्हें तनु त्रिभंग मृदु जोहन।—सूर (शब्द०)। २ तलाश। खोज। ढूँढ़। ३ प्रतीक्षा। इंतजार।

जोहना‡—क्रि० स० [सं० जुषण (= सेवन) अथवा प्रा० जोव (= देखना)] १. देखना। अवलोकन करना। ताकना। निहारना। उ०—(क) दर्पन माह भीत तहँ लावा। देखौं जोहि झरोखे आवा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जो सब ठौर खम हू होहि। कह्यो प्रह्लाद आहि तूँ जोहि।—सूर (शब्द०)। २ खोजना। ढूँढ़ना। पता लगाना। उ०—शाकद्वीप तेहि आगे सोहा। बत्तिस लक्ष योजन कर जोहा।—विश्राम (शब्द०)। ३ राह देखना। इंतजार देखना। प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। उ०—फूलन सेजरिया कोठरिया बिछौले बलबिरवा जोहेला तोरी बाट।—कबीर (शब्द०)।

जोहर[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोहड़] बावली। छोटा तालाब।

जोहर(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जौहर'। उ०—जोहर करि देह त्यागी।—हु० रासो, पृ० १६०।

जोहार[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] अभिवादन। वंदन। प्रणाम। नमस्कार।

जोहार[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जौहर'।

जोहारना†—क्रि० अ० [हिं०] प्रणाम या नमस्कार आदि करना। अभिवादन करना।

जोहारी—संज्ञा स्त्री [हिं० जोहार] नमस्कार। प्रणाम। उ०—इक इक बाण भेज्यो सकल नृपति पै मानो सब साथ कीन्हे जोहारी।—सूर (शब्द०)।

जौं[1]†—अव्य० [हिं० ज्यों] यदि। जो।

जौं[2]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों'।

जौंकना(पु)—क्रि० स० [अनु०] डाँटना। डपटना। क्रुद्ध होकर ऊँचे स्वर से कुछ कहना।

जौंचो†—संज्ञा स्त्री० [देश०] गेहूँ या जौ की फसल का एक रोग जिससे बाल काली हो जाती है और उसमें दाने नहीं पड़ते।

जौंड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० जौरा] दे० 'जौरा'।

जौंरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ज्वर, प्रा०हिं० जौरा] १ ज्वर। जूड़ी। ताप। २ व्याध। उ०—जाप करत जौंरा बल्या, सु वर साथी लोच।—संत वाणी०, पृ० १०८।

जौंराभौंरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] किले या महलों के भीतर का वह गहरा तहखाना जिसमें गुप्त खजाना आदि रहता है।

जौंराभौंरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जोड़ा+भौंरा] १ दो बालकों का जोड़ा।—(प्यार का शब्द)। २ दो घनिष्ठ मित्रों का जोड़ा।

जौंरे(पु)†—क्रि० वि० [फा० जवार] निकट। समीप। आसपास।

जौ[1]—संज्ञा पुं० [सं० यव] १ चार पाँच महीने रहनेवाला एक पौधा जिसके बीज या दाने की गिनती अनाजों में है।

विशेष—यह पौधा पृथ्वी के प्राय समस्त उष्ण तथा समप्रकृतिस्थ स्थानों में होता है। भारत का यह एक प्राचीन धान्य और हविष्यान्न है। भारतवर्ष में यह मैदानों के अतिरिक्त प्रायः पहाड़ों पर भी १४००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी बोआई कार्तिक अगहन में होती है और कटाई फागुन चैत में होती है। इसका पौधा बहुत कुछ गेहूँ का सा होता है। अंतर इतना होता है कि इसमें जड़ के पास से बहुत से डंठल निकलते हैं जिन्हें कभी कभी छाँटकर अलग करना पड़ता है। इसमें टूँडदार बाल लगती है जिसमें कोश के साथ बिलकुल चिपके हुए दाने पंक्तियों में गुछे रहते हैं। दानों के ऊपर का नुकीला कोश कठिनाई से अलग होता है. इसी से यह अनाज कोश सहित बिकता है, पर काश्मीर में एक प्रकार का जौ ग्रिम नाम का होता है जिसके दाने गेहूँ की तरह कोश से अलग रहते हैं। गेहूँ के समान जौ के या जौ की गूरी के भी आटे का व्यवहार होता है। भूसी रहित जौ या उसके मैदा का प्रयोग रोगियों के लिये पथ्य के काम आता है। सूखे हुए पौधे का भूसा होता है जो चौपायों को प्रिय, खासकर है और उनके के खाने के काम में आता है। यूरोप में और अब भारतवर्ष के भी कई स्थानों में जौ से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है। जौ कई प्रकार के होते हैं। इस अन्न को मनुष्य जाति अत्यंत प्राचीन काल से जानती है। वेदों में इसका उल्लेख बराबर है। अब भी हवन आदि में इस अन्न का व्यवहार होता है। ईसा से २७०० वर्ष पहले चीन के बादशाह शिनग ने जिन पाँच अन्नों को बोआया था उनमें एक जौ भी था। ईसा से १०१५ वर्ष पहले सुलेमान बादशाह के समय में भी जौ का प्रचार खूब था। मध्य एशिया के करखंग नामक स्थान के खँडहर के नीचे दबे हुए जौ स्टीन साहब को मिले थे। इस खँडहर के स्थान पर सातवीं शताब्दी में एक अच्छा नगर था जो बालू में दब गया। वैद्यक में जौ तीन प्रकार के माने गए हैं—शूक, निःशूक और हरित वर्ण। शूक को यव, निःशूक को अतियव और हरे रंग के यव को तोक्य कहते हैं। जौ शीतल, रूखा, वीर्यवर्धक, मलरोधक तथा पित्त और कफ को दूर करनेवाला माना जाता है। यव से अतियव और अतियव से तोक्य (घोड़जई भी) हीन गुणवाला माना जाता है।

पर्या०—यव। मेध्य। सितशूल। दिव्य। अक्षत। कंचुकि। धान्यराज। तीक्ष्णशूक। तुरगप्रिय। शक्तु। हयेष्ट। पवित्र धान्य।

मुहा०—जौ जौ बढ़ना=धीरे धीरे बिना लक्षित हुए बढ़ना या विकसित होना। तिल तिल बढ़ना। क्रमश बढ़ना। जौ बराबर=जौ के दाने के बराबर लंबा। जौ भर=जौ के दाने के परिमाण का। खाए पिए सो सो हिसाब करे जौ जौ, या वे ले सौ सौ हिसाब करे जौ जौ=अधिक से अधिक सामूहिक व्यय करे पर हिसाब पाई पाई या पैसे पैसे का रखे।

२. एक पौधा जिसकी लचीली टहनियों से पंजाब में टोकरे झाड़ आदि बनते हैं। मध्य एशिया के प्राचीन खँडहरों में मकान के परदों के रूप में इसकी टट्टियाँ पाई गई हैं। ३ एक तौल जो ६ राई (सरदल) के बराबर मानी जाती है।

जौ[2]†—अव्य० [सं० यद्] यदि। अगर। उ०—जौ लरिका कछु

अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।—तुलसी (शब्द०)।

जौ³—क्रि० वि० [हिं०] जब।

यौ०—जौ लौं, जौ लगि, जौ लहि=जब तक।

जौक¹—संज्ञा पुं० [तु० जूक] १. सेना। २. कतार। ३ झुंड। गिरोह। उ०—तुजे देखना था बड़ा हम कूँ शौक। तुजे देक पाए हजारा सूँ जौक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

जौक²—संज्ञा पुं० [अ० जौक़] स्वाद। मजा। शौक। आनंद (को०)।

जौकेराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जौ+केराव] मटर मिला हुआ जौ।

जौख(पु)—संज्ञा पुं० [तु० जूक] १ झुंड। जत्था। २ फौज। सेना। ३ पक्षियों की श्रेणी। उ०—बनी गोख वे जोख की मोख सोहै। पताकानु केकी पिकी ही मरोहै।—सूदन (शब्द०)। ४. आदमियों का गोल। समूह। भीड़।

जौगढ़वा—संज्ञा पुं० [हिं० जौगढ़ (=कोई स्थान)+वा (प्रत्य०)] एक प्रकार का धान।

विशेष—यह अगहन के महीने में तैयार होता है और इसका चावल सैकड़ों वर्ष तक रह सकता है।

जौचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] चना मिला हुआ जौ।

जौजा—संज्ञा स्त्री० [अ० जौजह्] जोरू। भार्या। पत्नी।

जौजीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जौजीयत] पत्नीत्व।

जौड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जेवरी या जेवड़ी] मोटा रस्सा। उ०—फूस क जौड़ा दूरि करि, ज्यूँ बहुरि न लागै लाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७१।

जौतुक—संज्ञा पुं० [सं० यौतुक] दे० 'यौतुक'।

जौधिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यौद्धिक] तलवार या खड्ग के ३२ हाथों में से एक। उ०—पृष्ठत प्रथित जौधिक प्रथित ये हाथ जानौ बत्तिसै।—रघुराज (शब्द०)।

जौन¹(पु)—सर्व० [सं० य पुन (क. पुन>कौन के साम्य पर बना)] जो।

जौन²(पु)—वि० जो। उ०—जौन ठौर मोहिं आज्ञा होई। ताहि ठौर रैहौं मैं जोई।—सूर (शब्द०)।

जौन³(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यवन'।

जौनाल—संज्ञा स्त्री [सं० यव+नाल] १. वह जमीन जिसपर जौ आदि रबी की फसल बोई जाय। रबी का खेत। २ जौ का डंठल।

जौन्ह(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोन्ह'।

जौपै(पु)†—अव्य० [हिं० जौ+पै] अगर। यदि।

जौवति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० युवती] दे० 'युवती'।

जौवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'यौवन'।

जौम—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोम'।

जौर—संज्ञा पुं० [अ०] अत्याचार। जुल्म। उ०—अब तलक खींच खींच जौरो जफा। हर तरह दोस्ती निभाही है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १७।

जौरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० जूरा] वह अनाज जो गाँवों में नाऊ बारी आदि पौनियों को उनके काम के बदले में दिया जाता है।

जौरा²—संज्ञा पुं० [सं० ज्या+वर अथवा हिं० जेवरी] बड़ा रस्सा।

जौनावर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जोरावर'। उ०—जोरावर कोई नाँ बचि, रावण था दसकंधा।—कबीर सा०, पृ० ८८७।

जौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जुलाई'।

जौलाऊ—संज्ञा पुं० [हिं० जौलाय (=बारह)] प्रति रुपया बारह पैसे। फी रुपया तीन आना। (दलाली)।

जौलानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. तेजी। फुरती। उ०—शराब मँगाओ तो अक्ल को और जौलानी हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८८। २ घोड़ा (को०)। ३. शराब का प्याला (को०)। ४ मनोरंजन (को०)।

जौलाय—वि० [हिं० जौलाय] बारह। (दलाल)।

जौशन—संज्ञा पुं० [फा०] बाहु पर पहनने का एक आभूषण। दे० 'जोशन'।

जौहर¹—संज्ञा पुं० [फा० गौहर का अरबी रूप] १ रत्न। बहुमूल्य पत्थर। २. सार वस्तु। सारांश। तत्व।

क्रि० प्र०—निकालना।

३. तलवार या और किसी लोहे के धारदार हथियार पर वे सूक्ष्म चिह्न या धारियाँ जिनसे लोहे की उत्तमता प्रकट होती है। हथियार की ओप। ४. गुण। विशेषता। उत्तमता। खूबी। तारीफ की बात। जैसे,—(क) धुलने पर इस कपड़े का जौहर देखिएगा। (ख) मैदान में वे अपना जौहर दिखाएँगे।

क्रि० प्र०—खुलना।—दिखाना।

मुहा०—जौहर खुलना=(१) गुण का विकास होना। गुण प्रकट होना। खूबी जाहिर होना। (२) करतब प्रकट होना। भेद खुलना। गुप्त कारंवाई जाहिर होना। जौहर खोलना=गुण प्रकट करना। उत्कर्ष दिखाना। खूबी जाहिर करना। करतब दिखाना।

३ आईने की चमक।

जौहर²—संज्ञा पुं० [हिं० जीव+हर] १. राजपूतों मे युद्ध के समय की एक प्रथा जिसके अनुसार नगर या गढ़ मे शत्रु के प्रवेश का निश्चय होने पर उनकी स्त्रियाँ और बच्चे दहकती हुई चिता मे जल जाते थे।

विशेष—राजपूत लोग जब देखते थे कि वे गढ़ की रक्षा न कर सकेंगे और शत्रुओं का अवश्य अधिकार होगा तब वे अपनी स्त्रियों और बच्चों से विदा लेकर और उन्हें दहकती चिता में भस्म होने का आदेश देकर आप युद्ध के लिये सुसज्जित होकर निकल पड़ते थे। स्त्रियाँ भी शृंगार करके बड़े भारी दहकते कुंड मे कूदकर प्राण विसर्जन करती थीं। प्रसिद्ध है कि जब अलाउद्दीन ने चित्तौरगढ़ को घेरा था तब महारानी पद्मिनी सोलह हजार स्त्रियों को लेकर भस्म हुई थीं। इसी प्रकार जब जैसलमेर का दुर्ग घिरा था तब नगर की समस्त स्त्रियाँ और बच्चे अर्थात् २४००० प्राणियों के लगभग क्षण भर में जल मरे थे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जौहर होना=चिता पर जल मरना। उ०—जौहर भई सब स्त्री पुरुष भए संग्राम।—जायसी (शब्द०)।

२ आत्महत्या। प्राणत्याग।

क्रि० प्र०—करना।

३. वह चिता जो दुर्ग में स्त्रियों के जलने के लिये बनाई जाती थी। उ०—(क) जौहर कर साजा रनिवासू। जेहि सत हिये कहाँ तेहि आँसू। —जायसी (शब्द०)। (ख) अजहूँ जौहर साज के कीन्ह चहौ उजियार। होरी खेलउ रन कठिन कोउ न समेटै छार।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—साजना।

जौहरी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ हीरा, लाल आदि बहुमूल्य पत्थर बेचनेवाला। रत्नविक्रेता। २. रत्न परखनेवाला। जवाहिरात की पहचान रखनेवाला। पारखी। परखैया। जँचवैया। ३ किसी वस्तु के गुण दोष की पहचान रखनेवाला। ४ गुण का आदर करनेवाला। गुणग्राहक। कदरदान।

ज्ञंमन्य—वि० [सं० ज्ञमन्य] अपने आपको ज्ञानी माननेवाला [को०]।

ज्ञ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्ञान। बोध। २. ज्ञानी। जाननेवाला। जैसे, शास्त्रज्ञ, सर्वज्ञ, कार्यज्ञ, निमित्तज्ञ। ३ ब्रह्मा। ४. बुद्ध ग्रह। ५. सांख्य के अनुसार निष्क्रिय निर्विकार पुरुष जिसको जान लेने से बंधन कट जाते हैं। ६ मंगल ग्रह। ७ ज और ञ के सयोग से बना हुआ सयुक्त अक्षर।

ज्ञ[2]—वि० १. जाननेवाला। जैसे, शास्त्रज्ञ। २ बुद्धिमान्। जैसे, विज्ञ।

ज्ञपित—वि० [सं०] १ जाना हुआ। २ मारा हुआ ३ तुष्ट किया हुआ। ४ तेज किया हुआ। चोखा किया हुआ। ५ जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो।

ज्ञप्त—वि० [सं०] जाना हुआ।

ज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जानकारी। २ बुद्धि। ३ मारण। ४. तोषण। तुष्टि। ५ स्तुति। ६ जलाने की क्रिया।

ज्ञवार—संज्ञा पुं० [सं०] बुधवार। बुध का दिन।

ज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकारी।

ज्ञात[1]—वि० [सं०] विदित। जाना हुआ। अवगत। मालुम।

ज्ञात[2]—संज्ञा पुं० ज्ञान।

ज्ञातजौवनाⓅ—[सं० ज्ञात + यौवना] दे० 'ज्ञातयौवना'। उ०—निज तनु जोवन आगमन जानि परत है जाहि। कवि कोविद सब कहत है ज्ञातजौवना ताहि।—मति० ग्रं०, पृ० २७६।

ज्ञातनंदन—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञातनन्दन] जैनो के तीर्थंकर महावीर स्वामी का एक नाम।

ज्ञातयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका का एक भेद। वह मुग्धा नायिका जिसे अपने यौवन का ज्ञान हो। इसके दो भेद हैं—नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा।

ज्ञातव्य—वि० [सं०] जो जाना जा सके। जिसे जानना हो अथवा जिसे जानना उचित हो। ज्ञेय। वेद्य। बोधगम्य।

विशेष—श्रुति उपनिषद् आदि मे आत्मा को ही एक मात्र ज्ञातव्य माना है। उसे जान लेने पर फिर कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता।

ज्ञाता—वि० [सं० ज्ञातृ] [वि० स्त्री० ज्ञात्री] जाननेवाला। ज्ञान रखनेवाला। जानकार।

ज्ञाति—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य। गोती। भाई। बंधु। बांधव। सपिंड समानोदक आदि। उ०—ते मोहि मिले ज्ञात घर अपने में बूझी तब जात। हँसि हँसि दौरि मिले अकम भरि हम तुम एकै ज्ञाति।—सूर (शब्द०)। (ख) अहिर जाति ओछी मति कीन्ही। अपनी ज्ञाति प्रकट करि दीन्ही।—सूर (शब्द०)।

ज्ञातिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ गोत्रज का पुत्र। २ जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी का नाम।

ज्ञातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जानकारी। अभिज्ञता।

ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वस्तुओं और विषयो की वह भावना जो मन या आत्मा को हो। बोध। जानकारी। प्रतीति।

क्रि० प्र०—होना।

विशेष—न्याय आदि दर्शनों के अनुसार जब विषयों का इंद्रियों के साथ, इंद्रियों का मन के साथ और मन का आत्मा के साथ संबंध होता है तभी ज्ञान उत्पन्न होता है। मान लीजिए, कहीं पर एक घडा रखा है। इंद्रियों ने उस घड़े का साक्षात्कार किया, फिर उस साक्षात्कार की सूचना मन को दी। फिर मन ने आत्मा को सूचित किया और आत्मा ने निश्चित किया कि यह घडा है। ये सब व्यापार इतने शीघ्र होते हैं कि इनका अनुमान नही हो सकता। एक ही साथ दो विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता। ज्ञान सदा अयुगपद् होता हैं। जैसे,—मन यदि एक ओर है और हमारी आँख किसी दूसरी ओर है तो इस दूसरी वस्तु का ज्ञान नहीं होगा। न्याय मे जो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, ये चार प्रमाण माने गए हैं उन्हीं के द्वारा सब प्रकार का ज्ञान होता है। चक्षु, श्रवण आदि इंद्रियो द्वारा जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। व्याप्य पदार्थ को देख व्यापक पदार्थ का जो ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं। कभी कभी एक वस्तु (व्याप्य) के होने से दूसरी वस्तु (व्यापक) का अभाव नही हो सकता, ऐसे अवसर पर अनुमान से काम लिया जाता है। जैसे, धुएँ को देखकर अग्नि का ज्ञान। अनुमान तीन प्रकार का होता है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतो दृष्ट। कारण को देख कार्य के अनुमान को पूर्ववत् (कारणलिंगक) अनुमान कहते हैं। जैसे, बादलो का उमड़ना देख होनेवाली वृष्टि का ज्ञान। कार्य को देख कारण के अनुमान को शेषवत् (या कार्यलिंगक) अनुमान कहते हैं। जैसे, नदी का जल बढता हुआ देख वृष्टि का ज्ञान। व्याप्य को देख व्यापक के ज्ञान को सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहते हैं। जैसे, धुएँ को देख अग्नि का ज्ञान, पूर्ण चद्रमा को देख शुक्ल पक्ष का ज्ञान इत्यादि। प्रसिद्ध या ज्ञात वस्तु के साधर्म्य द्वारा जो दूसरी वस्तु का ज्ञान कराया जाता है, उसे उपमान कहते है। जैसे,—गाय ही ऐसी नीलगाय होती हैं। दूसरो के कथन या शब्द के द्वारा जो ज्ञान होता है उसे शब्द कहते हैं। जैसे गुरु का उपदेश आदि। सांख्य शास्त्र प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन ही प्रमाण मानता है उपमान को इनके अंतर्गत मानता है। ज्ञान दो प्रकार का होता है—प्रमा

अर्थात् यथार्थ ज्ञान और अप्रमा या अयथार्थ ज्ञान। वेदांत में ब्रह्म को ही ज्ञानस्वरूप माना है अतः उसके अनुसार प्रत्येक का ज्ञान पृथक् नहीं हो सकता। एक वस्तु से दूसरी वस्तु में या एक के ज्ञान से दूसरे के ज्ञान में जो विभिन्नता दिखाई देती है, वह विषय रूप उपाधि के कारण है। वास्तविक ज्ञान एक ही है जिसके अनुसार सब विभिन्न दिखाई पड़नेवाले पदार्थों के बीच में केवल एक चित् स्वरूप सत्ता या ब्रह्म का ही बोध होता है।

पाश्चात्य दर्शन में भी विषयों के साथ इंद्रियों के संयोग रूप ज्ञान को ही ज्ञान का मूल अथवा प्रथम रूप माना है। किसी एक-वस्तु के ज्ञान के लिये भी यह भावना आवश्यक है कि वह कुछ वस्तुओं के समान और कुछ वस्तुओं से भिन्न है अर्थात् बिना साधर्म्य और वैधर्म्य की भावना के किसी प्रकार का ज्ञान होना असंभव है। इस साक्षात्करण रूप ज्ञान से आगे चलकर सिद्धांत रूप ज्ञान के लिये संयोग, सहकालत्व आदि की भावना भी आवश्यक है। जैसे,—'वह पेड़ नदी के किनारे है' इस बात का ज्ञान केवल पेड़' 'नदी' और किनारा का साक्षात्कार मात्र नहीं है बल्कि इन तीन पृथक् भावों का समाहार है।

प्राणिविज्ञान के अनुसार खोपड़ी के भीतर जो मज्जा-तंतु-जाल (नाड़ियाँ) और कोश हैं, चेतन व्यापार उन्हीं की क्रिया से संबंध रखते हैं। इनमें क्रिया को ग्रहण करने और उत्पन्न करने दोनों की शक्ति है। इंद्रियों के साथ विषयों के संयोग द्वारा संचालन नाड़ियों के द्वारा भीतर की ओर जाता है और कोशों को प्रोत्साहित करके परमाणुओं में उत्तेजना उत्पन्न करता है। भूतवादियों के अनुसार इन्हीं नाड़ियों और कोशों की क्रिया का नाम चेतना है, पर अधिकांश लोग चेतना को एक स्वतंत्र शक्ति मानते हैं।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ज्ञान छाँटना = अपनी विद्या या जानकारी प्रकट करने के लिये लंबी चौड़ी बातें करना।

२ यथार्थ ज्ञान। सम्यक् ज्ञान। तत्वज्ञान। आत्मज्ञान। प्रमा। केवलज्ञान।

विशेष—मीमांसा को छोड़कर प्रायः सब दर्शनों ने ज्ञान से मोक्ष माना है। न्याय में ज्ञान द्वारा मिथ्या ज्ञान का नाश, मिथ्या ज्ञान के नाश से दोष का नाश, दोष न रहने पर प्रवृत्ति से निवृत्ति, प्रवृत्ति के नाश से, जन्म से निवृत्ति और जन्म की निवृत्ति से दुःख का नाश, दुःख के नाश से मोक्ष माना जाता है। सांख्य ने पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान प्राप्त होने से जब प्रकृति छूट जाती है तब मोक्ष का ज्ञान होना बतलाया है। वेदांत का मोक्ष ऊपर लिखा जा चुका है।

ज्ञानकांड—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानकाण्ड] वेद के तीन कांडों या विभागों में से एक जिसमें ब्रह्म आदि सूक्ष्म विषयों का विचार है। जैसे,— उपनिषद्।

ज्ञानकृत—वि० [सं०] जो पाप जान बूझकर किया गया हो, भूल से न हुआ हो।

विशेष—ज्ञानकृत पापों का प्रायश्चित्त दूना लिखा गया है।

ज्ञानगम्य—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की पहुँच के भीतर। जो जाना जा सके।

ज्ञानगर्भ—वि० [सं०] ज्ञान से पूर्ण या भरा हुआ [को०]।

ज्ञानगोचर—वि० [सं०] ज्ञानेंद्रियों से जानने योग्य। ज्ञानगम्य।

ज्ञानघन—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध ज्ञान। केवल ज्ञान [को०]।

ज्ञानचक्षु[1]—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानचक्षुस्] ज्ञान के नेत्र। अंतर्दृष्टि [को०]।

ज्ञानचक्षु[2]—वि० ज्ञान की आँख से देखनेवाला। पंडित [को०]।

ज्ञानज्येष्ठ—वि० [सं०] जो ज्ञान में बढ़कर हो [को०]।

ज्ञानतः—क्रि० वि० [सं० ज्ञानतस्] जान बूझकर। जानकारी में। समझ बूझकर।

ज्ञानतत्व—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानतत्त्व] यथार्थ ज्ञान [को०]

ज्ञानतपा—वि० [सं० ज्ञानतपस्] शुद्ध ज्ञान के लिये तप करनेवाला [को०]।

ज्ञानद—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान देनेवाला। गुरु [को०]।

ज्ञानदग्धदेह—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चतुर्थ आश्रम में हो। सन्यासी।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि सन्यासी जीवित अवस्था ही में देह अर्थात् सुख दुःख आदि को ज्ञान द्वारा दग्ध कर डालता है अतः मृत्यु हो जाने पर उसके दाह कर्म की आवश्यकता नहीं। उसके शरीर को एक गड्ढा खोदकर प्रणव मंत्र के उच्चारण के साथ गाड़ देना चाहिए।

ज्ञानदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती। [को०]।

ज्ञानदाता—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानदातृ] ज्ञान देनेवाला मनुष्य। गुरु।

ज्ञानदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान देनेवाली देवी। सरस्वती [को०]।

ज्ञानदुर्बल—वि० [सं०] ज्ञान में दुर्बल या असमर्थ [को०]।

ज्ञानधन—वि० [सं०] ज्ञानी। तत्वविद्। उ०—क्रिया समाहित चित्त ज्ञानधन तुम्हें जानकर।— अपरा, पृ० १६३।

ज्ञानधाम—वि० [सं० ज्ञानधामन्] परम ज्ञानी। उ०—खोजै सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी।—मानस, १।५१।

ज्ञाननिष्ठ—वि० [सं०] १. श्रवण, मनन, निदिध्यासन, आदि ज्ञान साधनोंवाला। २ तत्वज्ञानी [को०]।

ज्ञानपिपासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा। ज्ञान की प्यास [को०]।

ज्ञानपिपासु—वि० [सं०] ज्ञानप्राप्ति की इच्छावाला। जिज्ञासु [को०]।

ज्ञानप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक तथागत का नाम।

ज्ञानमद—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का अभिमान। ज्ञानी या जानकार होने का घमंड।

ज्ञानमुद्र—वि० [सं०] ज्ञानी। ज्ञानवाला [को०]।

ज्ञानमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रसार के अनुसार राम की पूजा की एक मुद्रा।

विशेष—इसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को अँगूठे से मिलाकर हाथ

में रखते हैं और बाएँ हाथ की उँगलियो को कमलसंपुट के आकार की करके उनसे सिर से लेकर बाएँ जघे तक रक्षा करते हैं ।

ज्ञानयज्ञ—सज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा का परमात्मा मे हवन अर्थात् आत्मा और परमात्मा का सयोग या अभेदज्ञान । ब्रह्मज्ञान ।

ज्ञानयोग—सज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोक्ष का साधन । उ०—एक ज्ञानयोग विस्तरै । ब्रह्म जानि सबसों हित करै ।—सूर (शब्द०) ।

ज्ञानलक्षण—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ न्याय मे अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद ।

विशेष—नैयायिकों ने प्रत्यक्ष के दो भेद माने हैं, लौकिक । और अलौकिक । अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं, सामान्यलक्षण, ज्ञानलक्षण और योगज । ज्ञानलक्षण वह है जिसमे विशेषण के ज्ञात होने पर विशेष्य का ज्ञान होता है । जैसे, घटत्व का ज्ञान होने पर घट शब्द से घडे का ज्ञान ।

२. ज्ञान का निर्देशक, सकेतक साधन या उपाय (को०) ।

ज्ञानलक्षणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ज्ञानलक्षण' (को०) ।

ज्ञानवान—वि० [सं०] जिसे ज्ञान हो । ज्ञानी ।

ज्ञानवापी—सज्ञा स्त्री० [सं०] काशीस्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ ।

ज्ञानविज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] १ विभिन्न प्रकार का या पवित्र ज्ञान । २ वेद, उपवेद सहित उसकी शाखाओ का ज्ञान (को०) ।

ज्ञानवृद्ध—वि० [सं०] ज्ञान में बढा । जिसकी जानकारी अधिक हो ।

ज्ञानशास्त्र—सज्ञा पुं० [सं०] भविष्य का विचार अथवा कथन करनेवाला शास्त्र (को०) ।

ज्ञानसाधन—सज्ञा पुं० [सं०] १ इद्रिय । २ ज्ञानप्राप्ति का प्रयत्न ।

ज्ञानांजन—सज्ञा पुं० [सं० ज्ञानाञ्जन] तत्वज्ञान । ब्रह्मज्ञान (को०) ।

ज्ञानाकर—सज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध ।

ज्ञानापोह—सज्ञा पुं० [सं०] भूल जाना । ज्ञान न रहना । विस्मरण (को०) ।

ज्ञानावरण—सज्ञा पुं० [सं०] १. ज्ञान का परदा । ज्ञान का बाधक । २. वह पाप कर्म जिससे ज्ञान का यथार्थ लाभ जीव को नहीं होता है ।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है,—(१) मतिज्ञानावरण । (२) श्रुतिज्ञानावरण । (३) अवधिज्ञानावरण । (४) मन.पर्याय ज्ञानावरण और (५) कैवलज्ञानावरण । (जैन) ।

ज्ञानावरणीयकर्म—पुं० [सं०] दे० 'ज्ञानावरण' ।

ज्ञानासन—सज्ञा पुं० [सं०] रुद्रयामल के अनुसार योग का एक आसन ।

विशेष—इससे योगाभ्यास मे शीघ्र सिद्धि होती है । इसमे दाहिनी जाँघ पर बाएँ पैर के तलवे को रखना पड़ता है । इससे पैर की नसें ढीली हो जाती हैं ।

ज्ञानी—वि० [सं० ज्ञानिन्] १ जिसे ज्ञान हो । ज्ञानवान् । जानकार । २ आत्मज्ञानी । ब्रह्मज्ञानी ।

ज्ञानेंद्रिय—सज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञानेन्द्रिय] वे इंद्रियाँ जिनसे जीवों को विषयो का बोध या ज्ञान होता है । ज्ञानेंद्रियाँ पाँच हैं,—दर्शनेंद्रिय, श्रवणेंद्रिय, घ्राणेंद्रिय, रसना और स्पर्शेद्रिय ।

विशेष—इन इद्रियों के गोलक या आधार क्रमश आँख, कान, जीभ, नाक और त्वक् हैं । इन पाँचो के अतिरिक्त कोई कोई छठी इद्रिय मन या अत करण मानते हैं पर मन केवल ज्ञानेंद्रिय नहीं है कर्मेंद्रिय भी है अतः उसे दार्शनिको ने उभयात्मक माना है ।

ज्ञानोदय—सज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का उदय (को०) ।

ज्ञापक[1]—वि० [सं०] १ जतानेवाला । जिससे किसी बात का बोध या पता चले । सूचक । व्यजक (वस्तु) । २ बतानेवाला । सूचित करनेवाला (व्यक्ति) ।

ज्ञापक[2]—सज्ञा पुं० १. गुरु । आचार्य । २ प्रभु । स्वामी (को०) ।

ज्ञापन—सज्ञा पुं०[सं०][वि० ज्ञापित, ज्ञाप्य]जताने या बताने का कार्य ।

ज्ञापयिता—वि० [सं० ज्ञापयितृ] सूचक । बतानेवाला । ज्ञापक (को०) ।

ज्ञापित—वि० [सं०] जताया हुआ । बताया हुआ । सूचित ।

ज्ञाप्य—वि० [सं०] जताने या सूचित करने योग्य (को०) ।

ज्ञीप्सा—सज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा (को०) ।

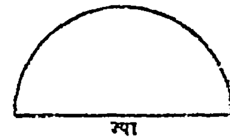
ज्ञेय—वि०[सं०]१. जिसका जानना योग्य या कर्तव्य हो । जानने योग्य ।

विशेष—ब्रह्मज्ञानी लोग एकमात्र ब्रह्म को ही ज्ञेय मानते हैं, जिसको जाने विना मोक्ष नही हो सकता ।

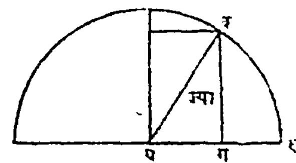
२ जो जाना जा सके । जिसका जानना संभव हो ।

ज्यौंना(५)†—क्रि० स० [हिं० जिमाना, जेवाना] खिलाना । उ०—सुभग सुस्वाद सुविजन भाति । जननी ज्यांये अपने पानि ।—नंद० ग्र०, पृ० २७८ ।

ज्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष की डोरी । २ वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो ।



३. वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से उस व्यास पर लब रूप से गिरी हो जो चाप के दूसरे सिरे से होकर गया हो ।



४ त्रिकोणमिति मे केंद्र पर के कोण के विचार से ऊपर बतलाई हुई रेखा (क ग) और त्रिज्या (क घ) की निष्पत्ति । ५ पृथ्वी । ६ माता । ७ किसी वृत्त का व्यास । ८ सर्वोच्च शक्ति (को०) । ९ अत्यधिक माँग (को०) । १०. एक प्रकार की छड़ी । शम्पा (को०) । १०. सेना का पृष्ठ भाग (को०) ।

ज्याग(५)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'याग' । उ०—जेहा केहा ज्याग ईवर राखोड़ा हुवै ।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० १४ ।

ज्याघात—सज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी के स्पर्श या रगड़ से होनेवाला उँगलियो पर का निशान या चिह्न (को०) ।

यौ०—ज्याघातवारण = धनुर्धरो द्वारा पहना जानेवाला अगुलित्राण ।

ज्याघोष—सज्ञा पुं० [सं०] धनुष की टकार (को०) ।

ज्यादती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज्यादती] १ अधिकता । बहुतायत । अधिकाई । २. जुल्म । अत्याचार ।

ज्यादा—क्रि० वि० [फ़ा० ज्यादह्] अधिक । बहुत ।

ज्यान(पु)†[1] संज्ञा पुं० [फ़ा० जियान] नुकसान । हानि । घाटा । उ०—ह्वैकै भजान जु कान्ह सो कीनो सु मान भयो वहै ज्यान है जी को ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११६ ।

ज्यान[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जान] दे० 'जान' । उ०—(क) पातसाह की ज्यान बकसीस करो ।—ह० रासो, पृ० १५६ । (ख) अरे इस्क ऐसा बुरा, फिरि लेता है ज्यान ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४८ ।

ज्याना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जियाना' । उ०—ज्याइए तो जानकी रमन जन जानि जिय, मारिए तो माँगी मीचु सूधिए कहतु हौं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४० ।

ज्यानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृद्धावस्था । जरा । बुढ़ापा । २ क्षय । ३. त्याग । परित्याग । ४ नदी । ५. अत्याचार । उत्पीड़न । ६. हानि [को०] ।

ज्यानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्यानि, तुलनीय फ़ा० जियान] हानि । घाटा । उ०—ता दिन तें ज्यानी सी बिकानी सी दिखानी बिलसानी सी बिलानी राजधानी जमराज की ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६३ ।

ज्याफत—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ियाफत] १ दावत । भोज । २. मेहमानी । आतिथ्य ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।

ज्यामिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गणित विद्या जिससे भूमि के परिमाण, भिन्न भिन्न क्षेत्रों के अंगो आदि के परस्पर संबंध तथा रेखा, कोण, तल आदि का विचार किया जाता है । क्षेत्र गणित । रेखागणित ।

विशेष—इस विद्या मे प्राचीन यूनानियों (यवनों) ने बहुत उन्नति की थी । यूनान देश के प्राचीन इतिहासवेत्ता हेरोडोटस के अनुसार ईसा से १३५७ वर्ष पूर्व सिसोस्ट्रिस के समय में मिस्र देश में इस विद्या का आविर्भाव हुआ । राजकर निर्धारित करने के लिये जब भूमि को मापने की आवश्यकता हुई तब इस विद्या का सूत्रपात हुआ । कुछ लोग कहते हैं कि नील नद के चढ़ाव उतार के कारण लोगों की जमीन की हद मिट जाया करती थी, इसी से यह विद्या निकाली गई । इउक्लिड के टीकाकार प्रोक्लस ने भी लिखा है कि थेल्स ने मिस्र में जाकर यह विद्या सीखी थी और यूनान में इसे प्रचलित की थी । धीरे धीरे यूनानियों ने इस विद्या मे बड़ी उन्नति की । पाइथागोरस ने सबसे पहले इसके संबंध मे सिद्धांत स्थिर किए और कई प्रतिज्ञाएँ निकाली । फिर तो प्लेटो आदि अनेक विद्वान् इस विद्या के अनुशीलन मे लगे । प्लेटो के अनेक शिष्यो ने इस विद्या का विस्तार किया जिनमे मुख्य अरस्तू (एरिस्टाटिल) और इउडोक्सस थे । पर इस विद्या का प्रधान आचार्य इउक्लिड (उकनैदस) हुआ जिसका नाम रेखागणित का पर्याय स्वरूप हो गया । यह ईसा से २८४ वर्ष पूर्व जीवित था और इसकंदरिया (अलेग्जैंड्रिया, जो मिस्र में है) के विद्यालय में गणित की शिक्षा देता था । वास्तव मे इउक्लिड ही यूरप मे ज्यामिति विद्या का प्रतिष्ठापक हुआ है और इसकंदरिया ही इस विद्या का केंद्र या पीठ रहा है । जब अरबवालो ने इस नगर पर अधिकार किया तब भी वहाँ इस विद्या का बड़ा प्रचार था । प्राचीन हिंदू भी इस विद्या मे बहुत पहले अग्रसर हुए थे । वैदिक काल में आर्यों को यज्ञ की वेदियों के परिमाण, आकृति आदि निर्धारित करने के लिये इस विद्या का प्रयोजन पड़ा था । ज्यामिति का आभास शुल्वसूत्र, कात्यायन श्रौतसूत्र, शतपथ ब्राह्मण आदि में वेदियों के निर्माण के प्रकरण में पाया जाता है । इस प्रकार यद्यपि इस विद्या का सूत्रपात भारत में ईसा से कई हजार वर्ष पहले हुआ पर इसमें यहाँ कुछ उन्नति नहीं की गई । यूनानियों के संसर्ग के पीछे ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के ग्रंथों में ही ज्यामिति विद्या का विशेष विवरण देखा जाता है । इस प्रकार जब हिंदुओं का ध्यान यवनों के संसर्ग से फिर इस विद्या की ओर हुआ तब उन्होंने उसमें बहुत से नए निरूपण किए । परिधि और व्यास का सूक्ष्म अनुपात ३ १४१६ । भास्कराचार्य को विदित था । इस अनुपात को अरबवालों ने हिंदुओं से सीखा, पीछे इसका प्रचार यूरप में (१२वीं शताब्दी के पीछे) हुआ ।

ज्यायस्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ज्यायसी] १. ज्येष्ठ । बड़ा । २. सर्वश्रेष्ठ । ३. विशाल । महत् । ४ जो नाबालिग न हो । प्रौढ़ । ५ वयोवृद्ध । वृद्ध । ६ क्षीण । क्षयशील । ७. उत्तम । शक्तिशाली । वरेण्य [को०] ।

ज्यायिष्ट—वि० [सं०] १. सर्वश्रेष्ठ । २ प्रथम । सर्वप्रथम [को०] ।

ज्यारना†[1](पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जियाना', 'जिलाना' । उ०—आयो फिरि विप्र नेह खोजहू न पायो कहूँ सरसायो बातै लै दिखायो स्याम ज्यारियै ।—प्रिया० (शब्द०) ।

ज्यारना[2](पु)—क्रि० स० [हिं० जारना (=जलाना)] दे० 'जारना' । उ०—चिता वारूँ ममता ज्यारूँ ।—दक्खिनी०, पृ० १३४ ।

ज्यावना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जिलाना' ।

ज्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योति [को०] ।

ज्यूँ†—अव्य० [हिं०] दे० 'ज्यों' ।

ज्येष्ठ[1]—वि० [सं०] १ बड़ा । जेठा । जैसे, ज्येष्ठ भ्राता । २. वृद्ध । बड़ा । बूढ़ा ।

यौ०—ज्येष्ठ तात = बाप का बड़ा भाई । ज्येष्ठ वर्ण = ब्राह्मण । ज्येष्ठश्वश्रू = पत्नी की बड़ी बहन । बड़ी साली ।

ज्येष्ठ[2]—संज्ञा पुं० १. जेठ का महीना । वह महीना जिसमें ज्येष्ठा नक्षत्र मे पूर्णिमा का चंद्रमा उदय हो । यह वर्ष का तीसरा और ग्रीष्म ऋतु का पहला महीना है । २ वह वर्ष जिसमें वृहस्पति का उदय ज्येष्ठा नक्षत्र में हो ।

विशेष—यह वर्ष कँगनी और सावाँ को छोड़ और अन्नों के लिये हानिकारक माना जाता है । इसमें राजा धर्मज्ञ होता है और श्रेष्ठता जाति, कुल और धन से होती है ।—(वृहत्संहिता)

३. सामगान का एक भेद । ४ परमेश्वर । ५ प्राण ।

ज्येष्ठता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ज्येष्ठ होने का भाव । बड़ाई । २. श्रेष्ठता ।

ज्येष्ठबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई नाम की जड़ी जो औषध के काम में आती है।

ज्येष्ठसामग—संज्ञा पुं० [सं०] आरण्यक साम का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठसामा—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठसामन्] ज्येष्ठ सामवेद का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठांबु—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठाम्बु] १. चावलों का धोवन। २ माँड़ (को०)।

ज्येष्ठांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़े भाई का हिस्सा या अंश। २ पैतृक संपत्ति में बड़े भाई को मिलनेवाला अधिक अंश। ३. उत्तम अंश या हिस्सा [को०]।

ज्येष्ठा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ २७ नक्षत्रों में से अठारहवाँ नक्षत्र जो तीन तारों से बने कुंडल के आकार का है। इसके देवता चंद्रमा हैं। २ वह स्त्री जो औरों की अपेक्षा अपने पति को अधिक प्यारी हो। ३ छिपकली। ४. मध्यमा उँगली। ५. गंगा। ६. पद्मपुराण के अनुसार अलक्ष्मी देवी।

विशेष—ये समुद्र मथने पर लक्ष्मी के पहले निकली थीं। जब इन्होंने देवताओं से पूछा कि हम कहाँ निवास करें तब इन्होंने बतलाया कि जिसके घर में सदा कलह हो, जो नित्य गंदी या बुरी बातें बके, जो अशुचि रहे इत्यादि उसके यहाँ रहो। लिंगपुराण में लिखा है कि जब देवताओं में से किसी ने इन्हें ग्रहण नहीं किया तब दु:सह नामक तेजस्वी ब्राह्मण ने इन्हें पत्नी रूप से ग्रहण किया।

ज्येष्ठा²—वि० स्त्री० बड़ी।

ज्येष्ठाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तमाश्रम। गृहस्थाश्रम।

ज्येष्ठाश्रमी—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठाश्रमिन्] गृहस्थ। गृही।

ज्येष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहगोधा। पल्ली। छिपकली। बिसतुइया।

ज्यों—क्रि० वि० [सं० यः + इव] १ जिस प्रकार। जैसे। जिस ढंग से। जिस रूप से। उ०—(क) तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ आगि लागे डाढ़न।—तुलसी (शब्द०)। (ख) करी न प्रीति स्याम सुंदर सों जन्म जुआ ज्यों हार्‍यो।—सूर (शब्द०)।

विशेष—अब गद्य में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता केवल कविता में सादृश्य दिखलाने के लिये होता है।

मुहा०—ज्यों त्यों = (१) किसी न किसी प्रकार। किसी ढंग से। झंझट और बखेड़े के साथ। (२) अरुचि के साथ। अच्छी तरह नहीं। ज्यों त्यों करके = (१) किसी न किसी प्रकार। किसी ढब से। किसी उपाय से। जिस प्रकार हो सके उस प्रकार। जैसे,—ज्यों त्यों करके उसे हमारे पास ले आओ। (२) झंझट और बखेड़े के साथ। दिक्कत के साथ। कठिनाई के साथ। जैसे,—रास्ते में बड़ी गहरी आँधी आई, ज्यों त्यों करके घर पहुँचे। ज्यों का त्यों = (१) जैसे का तैसा। उसी रूप रंग का। तद्रूप। सदृश। (२) जैसा पहले था वैसा ही। जिसमें कुछ फेर फार या घटती बढ़ती न हुई हो। जिसके साथ कुछ क्रिया न की गई हो। जैसे,—सब काम ज्यों का त्यों पड़ा है कुछ भी नहीं हुआ है।

विशेष—वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द के साथ 'त्यों' का प्रयोग होता है पर गद्य में प्रायः नहीं होता।

२ जिस क्षण। जैसे ही। जैसे,—(क) ज्यों मैं आया कि पानी बरसने लगा। (ख) ज्यों ही मैं पहुँचा, वह उठकर चला गया।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग 'ही' के साथ अधिक होता है।

मुहा०—ज्यों ज्यों = जिस क्रम से। जिस मात्रा से। जितना। उ०—जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न। त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहि काढ़न।—तुलसी (शब्द०)।

ज्योति:पुंज—वि० [सं० ज्योति पुञ्ज] प्रखर या दिव्य प्रकाशवाला। जिसमें प्रकाश भरा हो। उ०—खग को ज्योति:पुंज प्रात दो।—आराधना, पृ० ८।

ज्योति:शास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष।

ज्योति शिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लघु गुरु वर्णों की गणना के अनुसार विषम वर्णवृत्तों का एक भेद जिसके पहले दल में ३२ लघु और दूसरे दल में १६ गुरु होते हैं।

ज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योतिस्] १ प्रकाश। उजाला। द्युति। २ अग्निशिखा। लपट। लौ।

मुहा०—ज्योति जगना = (१) प्रकाश फैलना। (२) किसी देवता के सामने दीपक जलाना।

३ अग्नि। ४ सूर्य। ५ नक्षत्र। ६ मेथी। ७ संगीत में अष्टताल का एक भेद। ८ आँख की पुतली के मध्य का वह बिंदु या स्थान जो दर्शन का प्रधान साधन है। ९ दृष्टि। १०. अग्निष्टोम यज्ञ की एक संस्था का नाम। ११ विष्णु। १२. वेदांत में परमात्मा का एक नाम।

यौ०—ज्योतिमयी = प्रकाश से भरी हुई। ज्योतिमुख = ज्योति का मुख।

ज्योतिक†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—बार बार ज्योतिक सों घरी बूझि आवै। पकु जाइ पहुँचै नहि और एक पठावै।—सूर (शब्द०)।

ज्योतित—वि० [सं० ज्योति + हिं० त (प्रत्य०)] प्रकाशित। उद्भासित। ज्योति से पूर्ण। उ०—मां! तब तूने मुझे दिखाई अपनी ज्योतित छटा अपार।—वीणा, पृ० ५५।

ज्योतिरिंग—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्ग] जुगनू।

ज्योतिरिंगण—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्गण] जुगनू।

ज्योतिर्मय—वि० [सं०] प्रकाशमय। द्युतिपूर्ण। जगमगाता हुआ।

ज्योतिर्लिंग—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिर्लिङ्ग] १. महादेव। शिव।

विशेष—शिवपुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब वे घबड़ाकर कमलनाल पर इधर से उधर घूमने लगे। विष्णु ने कहा कि तुम सृष्टि बनाने के लिये उत्पन्न किए गए हो। इसपर ब्रह्मा बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि तुम कौन हो, तुम्हारा भी तो कोई कर्ता है? जब दोनों

में घोर युद्ध होने लगा तब झगड़ा निपटाने के लिये एक कालाग्नि सदृश ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुआ जिसके चारों ओर भयकर ज्वाला फैल रही थी । यह ज्योतिर्लिंग आदि, मध्य और अत रहित था । इस कथा का अभिप्राय ब्रह्मा और विष्णु से शिव को श्रेष्ठ सिद्ध करना ही प्रतीत होता है ।

२ भारतवर्ष मे प्रतिष्ठित शिव के प्रधान लिंग जो बारह हैं । वैद्यनाथ माहात्म्य मे इन बारह लिंगों के नाम इस प्रकार हैं । सोमनाथ सौराष्ट्र में, मल्लिकार्जुन श्रीशैल में, महाकाल उज्जयिनी मे, ओंकार नर्मदा तट पर (अमरेश्वर मे), केदार हिमालय में, भीमशकर डाकिनी में, विश्वेश्वर काशी मे, त्र्यबक गोमती किनारे, वैद्यनाथ चिताभूमि में, नागेश्वर द्वारका में, रामेश्वर सेतुबध में, घृष्णेश्वर शिवालय मे ।

ज्योतिर्लोक—सज्ञा पुं० [सं०] १ कालचक्र प्रवर्तक ध्रुव लोक । २ उस लोक के अधिपति परमेश्वर या विष्णु ।

विशेष—भागवत मे इस लोक को सप्तर्षि मडल से १३ लाख योजन और दूर लिखा है । यहीं उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव स्थित हैं जिनकी परिक्रमा इद्र कश्यप प्रजापति तथा ग्रह नक्षत्र आदि बराबर करते रहते हैं ।

ज्योतिर्विद्—सज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष जाननेवाला । ज्योतिषी ।

ज्योतिर्विद्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या ।

ज्योतिर्हस्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

ज्योतिश्चक्र—सज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र और राशियो का मडल ।

ज्योतिष—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह विद्या जिससे अंतरिक्ष में स्थित ग्रहो नक्षत्रों आदि की परस्पर दूरी, गति, परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है ।

विशेष—भारतीय आर्यों मे ज्योतिष विद्या का ज्ञान अत्यत प्राचीन काल से था । यज्ञो की तिथि आदि निश्चित करने मे इस विद्या का प्रयोजन पड़ता था । अयन चलन के क्रम का पता बराबर वैदिक ग्रथों में मिलता है । जैसे, पुनर्वसु से मृगशिरा (ऋग्वेद), मृगशिरा से रोहिणी (ऐतरेय ब्रा०), रोहिणी से कृत्तिका (तैत्ति० स०) कृत्तिका से भरणी (वेदांग ज्योतिष) । तैत्तरीय सहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल मे वासत विषुवद्दिन कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था । इसी वासंत विषुवद्दिन से वैदिक वर्ष का आरभ माना जाता था, पर अयन की गणना माघ मास से होती थी । इसके पीछे वर्ष की गणना शारद विषुवद्दिन से आरभ हुई । ये दोनों प्रकार की गणनाएँ वैदिक ग्रंथो मे पाई जाती हैं । वैदिक काल में कभी वासत विषुवद्दिन मृगशिरा नक्षत्र मे भी पड़ता था । इसे पडित बाल गगाधर तिलक ने ऋग्वेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है । कुछ लोगो ने निश्चित किया है कि वासत विषुवद्दिन की यह स्थिति ईसा से ४००० वर्ष पहले थी । अत इसमें कोई सदेह नहीं कि ईसा से पाँच छह हजार वर्ष पहले हिंदुओ को नक्षत्र अयन आदि का ज्ञान था और वे यज्ञो के लिये पत्रा बनाते थे । शारद वर्ष के प्रथम मास का नाम अग्रहायण था जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा नक्षत्र में पड़ती थी । इसी से कृष्ण ने कहा है कि 'महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ' । प्राचीन हिंदुओ ने ध्रुव का पता भी अत्यत प्राचीन काल में लगाया था । अयन चलन का सिद्धात भारतीय ज्योतिषियों ने किसी दूसरे देश से नही लिया, क्योंकि इसके सबध मे जब कि युरोप में विवाद था, उसके सात आठ सौ वर्ष पहले ही भारतवासियो ने इसकी गति आदि का निरूपण किया था । वराहमिहिर के समय मे ज्योतिष के संबध मे पाँच प्रकार के सिद्धांत इस देश में प्रचलित थे—सौर, पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश और रोमक । सौर सिद्धात सबधी सूर्य सिद्धात नामक ग्रथ किसी और प्राचीन ग्रथ के आधार पर प्रणीत जान पडता है । वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त दोनों ने इस ग्रथ से सहायता ली है । इन सिद्धात ग्रंथों मे ग्रहो के भुजाश, स्थान, युति, उदय, अस्त आदि जानने की क्रियाएँ सविस्तर दी गई हैं । अक्षाश और देशातर का भी विचार है । पूर्व काल में देशातर लका या उज्जयिनी से लिया जाता था । भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी को ही केंद्र मानकर चलते थे और ग्रहो की स्पष्ट स्थिति या गति लेते थे । इससे ग्रहो की कक्षा आदि के सबध मे उनकी और आज की गणना मे कुछ अतर पडता है ।

क्रातिवृत्त पहले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था । राशियों का विभाग पीछे से हुआ है । वैदिक ग्रथो में राशियों के नाम नहीं पाए जाते । इन राशियों का यज्ञों से भी कोई सबध नही है । बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनो के नाम यवन (यूनानियों के) सपर्क के पीछे के हैं । अनेक पारिभाषिक शब्द भी यूनानियो से लिए हुए हैं, जैसे,—होरा, दृक्काण केंद्र, इत्यादि ।

ज्योतिष के आजकल दो विभाग माने जाते हैं—एक सिद्धात या गणित ज्योतिष, दूसरा फलित ज्योतिष । फलित में ग्रहों के शुभ अशुभ फल का निरूपण किया जाता है ।

२. अस्त्रो का एक सहार या रोक जिससे चलाया हुआ अस्त्र निष्फल जाता है ।

विशेष—इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण मे है ।

ज्योतिषिक[1]—सज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करनेवाला । ज्योतिषी ।

ज्योतिषिक[2]—वि० ज्योतिष सबधी ।

ज्योतिषी[1]—सज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषिन्] ज्योतिष शास्त्र का जाननेवाला मनुष्य । ज्योतिर्विद् । दैवज्ञ । गणक ।

ज्योतिषी[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] तारा । ग्रह । नक्षत्र ।

ज्योतिष्क—सज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रह, तारा, नक्षत्र आदि का समूह । २ मेथी । ३ चित्रक वृक्ष । चीता । ४ गनियारी का पेड़ । ५ मेरु पर्वत के एक शृग का नाम । ६ जैन मतानुसार देवताओ का एक भेद जिसके अतर्गत चद्र, तारा, ग्रह, नक्षत्र और अर्क हैं ।

ज्योतिष्का—सज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी ।

ज्योतिष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें १६ ऋत्विक् होते थे । इस यज्ञ के समापनांत में १२०० गोदान का विधान था ।

ज्योतिष्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश ।

ज्योतिष्पुंज—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रसमूह ।

ज्योतिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मालकँगनी । २ रात्रि । ३ एक नदी का नाम । ४ एक प्रकार का वैदिक छंद । ५ सारंगी की तरह का एक प्राचीन बाजा । ६ सत्वगुणप्रधान मन की शांत अवस्था (कौ०) ।

ज्योतिष्मान्[1]—वि० [सं० ज्योतिष्मत्] प्रकाशयुक्त । ज्योतिर्मय ।

ज्योतिष्मान्[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ प्लक्ष द्वीप के एक पर्वत का नाम । ३ ब्रह्मा का तृतीय पाद या चरण (कौ०) । ४ प्रलयकाल में उदित होनेवाले सात सूर्यों में से एक (कौ०) ।

ज्योतिस्[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्युति । ज्युति । प्रकाश । २ परम ज्योति । ब्रह्म की ज्योति । ३ विद्युत् । बिजली । ४ दिव्य सत्ता । ५ नक्षत्र । तारा आदि । ६ आकाशीय प्रकाश (तमस् का विलोम) । ७ सूर्य चंद्र । ८ दिव्य प्रकाश या बुद्धि । ९ ग्रह नक्षत्र संबंधी शास्त्र या विज्ञान । वि० दे० 'ज्योतिष' । १० देखने की शक्ति । ११ दिव्य जगत् । १२ गाय (कौ०) ।

ज्योतिस्[2]—संज्ञा पुं० १ सूर्य । २ अग्नि । ३ विष्णु (कौ०)

ज्योतिसास्त्र(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिःशास्त्र' । उ०—ज्योतिसास्त्र प्रति इंद्री ज्ञान । ताके तुम ही बीज निदान । —नंद० ग्रं०, पृ० २४४ ।

ज्योतिस्ना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ज्योत्स्ना' ।—अनेकार्थ०, पृ० ३१ ।

ज्योतिस्नात—वि० [सं० ज्योति + स्नात] प्रकाशपूर्ण । उ०—ज्योतिस्नात जीवनपथ पर अब चरण चार गतव्य एक हो । —अग्नि०, पृ० ३५ ।

ज्योतिहीन—वि० [सं० ज्योति + हीन] प्रकाश से रहित । प्रभाहीन । उ०—उल्का वज्र व धूमादि से हत विपर्ण ज्योतिहीन होने पर ।—बृहत्संहिता, पृ० ८२ ।

ज्योतीरथ—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुव (जिसके आश्रित ज्योतिश्चक्र है) ।

ज्योतीरस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण और बृहत्संहिता में है ।

ज्योत्स्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चंद्रमा का प्रकाश । चाँदनी । २ चाँदनी रात । ३ सफेद फूल की तोरई । ४ सौंफ । ५ दुर्गा का एक नाम (कौ०) । ६ प्रकाश । उजाला (कौ०) ।

ज्योत्स्नाकाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सोम की कन्या जो वरुण के पुत्र पुष्कर की पत्नी थी ।

ज्योत्स्नाधौत—वि० [सं०] दे० 'ज्योत्स्नास्नात' ।

ज्योत्स्नाप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर ।

ज्योत्स्नावृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दीपाधार । दीवट । फतीलसोज ।

ज्योत्स्नास्नात—वि० [सं०] चाँदना में नहाया हुआ । चाँदनी से पूर्ण ।

ज्योत्स्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चाँदनी रात । २ सफेद फूल की तोरई ।

ज्योत्स्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ज्योत्स्निका' ।

ज्योत्स्नेश—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (कौ०) ।

ज्योनार—संज्ञा स्त्री० [सं० जेमन (= खाना)] १ पका ~~हुआ~~ भोजन । रसोई ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. भोज । दावत । ज्याफत ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।

मुहा०—ज्योनार बैठना = अतिथियों का भोजन करने बैठना । ज्योनार लगाना = अतिथियों के सामने रखने के लिये व्यंजनों को क्रम से लगाना या रखना ।

ज्योवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'जोवन' । उ०—तन धन ज्योवन कछु नहिं भावत हरि सुखदाई री । —दक्खिनी०, पृ० १३२ ।

ज्योरा†—संज्ञा पुं० [देश०] वह अनाज जो फसल तैयार होने पर गाँवों में नाइयों चमारों आदि को उनके कामों के बदले में दिया जाता है ।

ज्योरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी । रज्जु । डोरी ।

ज्योरू(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोरू' । उ०—माँ बाप बेटे ज्योरू लड़के सब देखत लोकन सरीखे ।—दक्खिनी, पृ० १२२ ।

ज्योहत†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीव + हत] आत्महत्या । जौहर । उ०—केश गहि करखि जमुना धार डारिहै, सुन्यो नृप नारि पति कृष्ण मारयो । भई व्याकुल सबै हेतु रोवन लगीं मरन को तुरत ज्योहत विचारयो ।—सूर (शब्द०) ।

ज्योहर†—संज्ञा पुं० [सं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार उनकी स्त्रियाँ गढ़ के शत्रुओं से घिर जाने पर चिता में जलकर भस्म हो जाती थी । दे० 'जौहर'

ज्यौं—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों' ।

ज्यौ[1]—अव्य० [सं० यदि] जो । यदि । उ०—जो न जुगुति पिय मिलन की धूर मुकुति मोहि दीन । ज्यो लहिये सँग सजन तौ धरक नरक हू की न ।—बिहारी (शब्द०) ।

ज्यौ[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीव, प्रा० जीअ, जीय] दे० 'जीव' । उ०—बूडत ज्यौ घनआनद सोचि, दई विधि व्याधि असाधि नई है ।—घनानंद, पृ० ५ ।

ज्यौ[3]—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ग्रह (कौ०) ।

ज्यौतिष—वि० [सं०] ज्योतिष संबंधी ।

ज्यौतिषिक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी ।

ज्यौत्स्न[1]—वि० [सं०] चंद्रकिरणों से प्रकाशित (कौ०) ।

ज्यौत्स्न[2]—संज्ञा पुं० शुक्ल पक्ष । उजाला पाख (कौ०) ।

ज्यौत्स्निका, ज्यौत्स्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा की रात (कौ०) ।

ज्यौनार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योनार' ।

ज्यौरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योरा' ।

ज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर की वह गरमी या ताप जो स्वाभाविक से अधिक हो और शरीर की अस्वस्थता प्रकट करे । ताप । बुखार ।

विशेष—सुश्रुत, चरक आदि ग्रंथों में ज्वर सब रोगों का राजा और आठ प्रकार का माना गया है—वातज पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सान्निपातिक और आगंतुज। आगंतुज ज्वर वह है जो चोट लगने, विष खाने आदि के कारण हो जाता है। इन सब ज्वरों के लक्षण और आचार भिन्न भिन्न हैं। ज्वर से उठे हुए, कृश या मिथ्या आहार विहार करनेवाले मनुष्य का शेष या रहा सहा दोष जब वायु के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर आमाशय, हृदय, कंठ, सिर और संधि इन पाँच कफ स्थानों का आश्रय लेता है तब उससे अँतरा, तिजरा और चौथिया आदि विषम ज्वर उत्पन्न होते हैं। प्रलेपक ज्वर से शरीरस्थ धातु सूख जाती है। जब कई एक दोष कफ स्थान का आश्रय लेते हैं तब विपर्यय नाम का विषम ज्वर उत्पन्न होता है। विपर्यय ज्वर वह है जो एक दिन न आकर दो दिन बराबर आवे। इसी प्रकार आगंतुक ज्वर के भी कारणों के अनुसार कई भेद किए गए हैं। जैसे, कामज्वर, क्रोधज्वर, भयज्वर इत्यादि। ज्वर अपने आरंभ दिन से सात दिनों तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम २१ दिनों तक प्राचीन और २१ दिनों के उपरांत जीर्णज्वर कहलाता है। जिस ज्वर का वेग अत्यंत अधिक हो, जिससे शरीर की कांति बिगड़ जाय, शरीर शिथिल हो जाय, नाड़ी जल्दी न मिले उसे कालज्वर कहते हैं। वैद्यक में गुड़ूच, चिरायता, पिप्पली, नीम आदि कटु वस्तुएँ ज्वर को दूर करने के लिये दी जाती हैं।

पाश्चात्य मत के अनुसार मनुष्य के शरीर में स्वाभाविक गरमी ९८° और ९९° के बीच होती है। शरीर में गरमी उत्पन्न होते रहने और निकलते रहने का ऐसा हिसाब है कि इस मात्रा की उष्णता शरीर में बराबर बनी रहती है। ज्वर की अवस्था में शरीर में इतनी गरमी उत्पन्न होती है जितनी निकलने नहीं पाती। यदि गरमी बहुत तेजी से बढ़ने लगती है तो रक्त त्वचा से हटने लगता है जिसके कारण जाड़ा लगता है और शरीर में कँपकँपी होती है। ज्वर में यद्यपि स्वस्थ दशा की अपेक्षा गरमी अधिक उत्पन्न होती है पर उतनी ही गरमी यदि स्वस्थ शरीर में उत्पन्न हो तो वह बिना किसी प्रकार का अधिक ताप उत्पन्न किए उसे निकाल सकता है। अस्वस्थ शरीर में गरमी निकालने की शक्ति उतनी नहीं रह जाती, क्योंकि शरीर की धातुओं का जो क्षय होता है वह पूर्ति की अपेक्षा अधिक होता है। ज्वर में शरीर क्षीण होने लगता है, पेशाब अधिक आता है, नाड़ी और श्वास जल्दी जल्दी चलने लगता है, प्रायः कोष्ठबद्ध भी हो जाता है, प्यास अधिक लगती है, भूख कम हो जाती है, सिर में दर्द तथा अंगों में विलक्षण पीड़ा होती है। विषैले कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश और वृद्धि, अंगों की सूजन, धूप आदि के ताप तथा कभी कभी नाड़ियों या स्नायुओं की अव्यवस्था से भी ज्वर उत्पन्न होता है।

ज्वर के संबंध में हरिवंश में एक कथा लिखी है। जब कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध बाणासुर के यहाँ बंदी हो गए तब कृष्ण और बाणासुर में घोर संग्राम हुआ था। उसी अवसर पर बाणासुर की सहायता के लिये शिव ने ज्वर उत्पन्न किया। उस ज्वर ने बलराम आदि को गिरा दिया और कृष्ण के शरीर में प्रवेश किया तब कृष्ण ने भी एक वैष्णव ज्वर उत्पन्न किया जिसने माहेश्वर ज्वर को निकालकर बाहर किया। माहेश्वर ज्वर के बहुत प्रार्थना करने पर कृष्ण ने वैष्णव ज्वर समेट लिया और माहेश्वर ज्वर को ही पृथ्वी पर रहने दिया। दूसरी कथा यह है कि दक्ष प्रजापति के अपमान से क्रुद्ध होकर महादेव जी ने अपने श्वास से ज्वर को उत्पन्न किया।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

मुहा०—ज्वर उतरना = ज्वर का जाता रहना। बुखार दूर होना। (किसी को) ज्वर चढ़ना = ज्वर आना। ज्वर का प्रकोप होना।

२ मानसिक क्लेश। दुःख। शोक (को०)।

ज्वरकुटुंब—संज्ञा पुं० [सं० (ज्वर कुटुम्ब)] ज्वर के साथ होनेवाले उपद्रव, जैसे, प्यास, श्वास, अरुचि, हिचकी इत्यादि।

ज्वरघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ गुड़ूच। २ बथुआ।

ज्वरचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर का उपचार या इलाज (को०)।

ज्वरप्रतीकार—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर का उपचार (को०)।

ज्वरराज—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक औषध जो पारे, माक्षिक, मैनसिल, हरताल, गंधक तथा भिलावें के योग से बनती है।

ज्वरहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वरहन्त्री] मँजीठ।

ज्वरहर[1]—वि० [सं०] ज्वर को दूर करनेवाला (को०)।

ज्वरहर[2]—संज्ञा पुं० ज्वर का चिकित्सक (को०)।

ज्वरांकुश—संज्ञा पुं० [सं० ज्वराङ्कुश] १. ज्वर की एक औषध जो पारे, गंधक, प्रत्येक विष और धतूरे के बीजों के योग से बनती है। २ कुश की तरह की एक सुगंधित घास।

विशेष—यह उत्तरी भारत में कुमायूँ गढ़वाल से लेकर पेशावर तक होती है। इसकी जड़ में से नींबू की सी सुगंध आती है। यह घास चारे के काम की उतनी नहीं होती। इसकी जड़ और डंठलों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकाला जाता है जो शरबत आदि में डाला जाता है।

ज्वरांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वराङ्गी] भद्रदंती नाम का पौधा।

ज्वरांतक—संज्ञा पुं० [सं० ज्वरान्तक] १ चिरायता। २ अमलतास।

ज्वरा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मौत। उ०—तिये सब आधिन व्याधिन जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।—केशव (शब्द०)।

ज्वरा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर।

ज्वरापह—वि० [सं०] ज्वर को दूर करनेवाला।

ज्वरापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेलपत्री।

ज्वरार्त—संज्ञा [सं०] ज्वरपीड़ित।

ज्वरित—वि० [सं०] ज्वरयुक्त। जिसे ज्वर चढ़ा हो।

ज्वरी—वि० [सं० ज्वरिन्] [वि०स्त्री० ज्वरिणी] जिसे ज्वर हो।

ज्वर्री†—संज्ञा पुं० [हिं० जुर्रा] दे० 'जुर्रा'। उ०—ज्वर्री बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने, टोने जरकटी त्यों शचान सानवारे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

ज्वलंत—वि० [सं० ज्वलन्त] १ जलता हुआ। प्रकाशमान्। दीप्त। देदीप्यमान्। २. प्रकाशित। अत्यंत स्पष्ट। जैसे, ज्वलंत दृष्टांत, ज्वलंत प्रमाण।

ज्वल—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्वाला। अग्नि। २ दीप्ति। प्रकाश।

ज्वलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिखा। आग की लपट। लौर।

ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलने का कार्य या भाव। जलन। दाह। उ०—(क) अधर रसन पर लाली मिसी मलूम। मदन ज्वलन पर सोहति, मानहु धूम।—(शब्द०)। (ख) सुदसा ज्वलन सनेहवा कारन तोर। अजन सोइ उर प्रगटत लगि दग कोर।—रहीम (शब्द०)। २. अग्नि। आग। ३ लपट। ज्वाला। ४ चित्रक वृक्ष। चीता।

ज्वलन—वि० १. प्रकाश करनेवाला। प्रकाशयुक्त। २ दाहक [को०]।

ज्वलनांत—संज्ञा पुं० [सं० ज्वलनान्त] बौद्ध ग्रंथों के अनुसार दस हजार देवपुत्रों का नायक जिसने बौद्ध मठ मे प्रवेश करते ही बोधिज्ञान प्राप्त कर लिया था।

ज्वलित—वि० [सं०] १ जला हुआ। दग्ध। २ उज्वल। दीप्तियुक्त। चमकता या झलकता हुआ।

ज्वलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता। मुर्रा। मरोडफली।

ज्वलिनी सीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच की सीमा जो ऊँचे पेड लगाकर बनाई गई हो।

विशेष—मनु ने लिखा है कि पीपल, बड, साल, ताड तथा ढाक के वृक्ष गाँव की सीमा पर लगाए।

ज्वाइनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अजवाइन] एक प्रकार का पौधा जिसके बीज औषध और मसाले के काम मे आते हैं। अजवाइन। उ०—विसूचित तन नहि सकै समारि। पीपल मूल ज्वाइनि सारि।—प्राण०, पु० १५०।

यौ०—ज्वाइनिसारि = अजवाइन का सत्त।

ज्वाना†—वि० [फ़ा० जवान] दे० 'जवान'।

ज्वानी†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जवानी] दे० 'जवानी'।

ज्वाब†—संज्ञा पुं० [अ० जवाब] दे० 'जवाब'। उ०—को रक्खे या भुमि पर, रबिख करे को ज्वाब।—हु० रासो, पु० ४८।

ज्वार—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल, यवाकार या जूर्ण] १. एक प्रकार की घास जिसकी बाल के दाने मोटे अनाजों में गिने जाते हैं।

विशेष—यह अनाज संसार के बहुत से भागो में होता है। भारत, चीन, अरब, अफ्रीका, अमेरिका आदि मे इसकी खेती होती है। ज्वार सूखे स्थानो मे अधिक होती है, सीड लिए हुए स्थानों मे उतनी नही हो सकती। भारत मे राजपूताना, पजाब आदि में इसका व्यवहार बहुत अधिक होता है। बगाल, मद्रास, बरमा आदि में ज्वार बहुत कम बोई जाती है। यदि बोई भी जाती है तो दाने अच्छे नहीं पडते। इसका पौधा नरकट की तरह एक डठल के रूप में सीधा ५-६ हाथ ऊँचा जाता है। डठल मे सात सात आठ आठ अगुल पर गाँठें होती हैं जिनसे हाथ डेढ हाथ लबे तलवार के आकार के पत्ते दोनो ओर निकलते हैं। इसके सिरे पर फूल के जीरे और सफेद दानो के गुच्छे लगते हैं। ये दाने छोटे छोटे होते हैं और गेहूँ की तरह खाने के काम मे आते है। ज्वार कई प्रकार की होती है जिनके पौधो में कोई विशेष भेद नही दिखाई पडता। ज्वार की फसल दो प्रकार की होती है, एक रबी, दूसरी खरीफ। मक्का भी इसी का एक भेद है। इसी से कही कही मक्का भी ज्वार ही कहलता है। ज्वार को जोन्हरी, जुडी आदि भी कहते हैं। इसके डठल और पौधे को चारे के काम मे लाते हैं और चरी कहते हैं। इस अन्न के उत्पत्ति-स्थान के सबध मे मतभेद है। कोई कोई इसे अरब आदि पश्चिमी देशो से आया हुआ मानते हैं और 'ज्वार' शब्द को अरबी 'दूरा' से बना हुआ मानते हैं, पर यह मत ठीक नहीं जान पडता। ज्वार की खेती भारत मे बहुत प्राचीन काल से होती आई है। पर यह चारे के लिये बोई जाती थी, अन्न के लिये नही।

२ समुद्र के जल की तरग का चढ़ाव। लहर की उठान। भाटा का उलटा।

विशेष—दे० 'ज्वारभाटा'।

ज्वारभाटा—संज्ञा पुं० [हिं० ज्वार + भाटा] समुद्र के जल का चढ़ाव उतार। लहर का बढना और घटना।

विशेष—समुद्र का जल प्रतिदिन दो बार चढता और दो बार उतरता है। इस चढाव उतार का कारण चद्रमा और सूर्य का आकर्षण है। चद्रमा के आकर्षण मे दूरत्व के वर्ग के हिसाब से कमी होती है। पृथ्वी जल के उस भाग के अणु जो चद्रमा से निकट होगा, उस भाग के अणुओ की अपेक्षा जो दूर होगा, अधिक आकर्षित होगे। चद्रमा की अपेक्षा पृथ्वी से सूर्य की दूरी बहुत अधिक है, पर उसका पिंड चद्रमा से बहुत ही बड़ा है। अत सूर्य की ज्वार उत्पन्न करनेवाली शक्ति चद्रमा से बहुत कम नहीं है $\frac{5}{9}$ के लगभग है। सूर्य की यह शक्ति कभी कभी चद्रमा की शक्ति के प्रतिकूल होती है, पर अमावस्या और पूर्णिमा के दिन दोनो की शक्तियाँ परस्पर अनुकूल कार्य करती है, अर्थात् जिस अश में एक ज्वार उत्पन्न करेगी, उसी अश मे दूसरी भी ज्वार उत्पन्न करेगी। इसी प्रकार जिस अश मे एक भाटा उत्पन्न करेगी दूसरी भी उसी मे भाटा उत्पन्न करेगी। यही कारण है कि अमावस्या और पूर्णिमा को और दिनो की अपेक्षा ज्वार अधिक ऊँची उठती है। सप्तमी और अष्टमी के दिन चद्रमा और सूर्य की आकर्षण शक्तियाँ प्रतिकूल रूप से कार्य करती हैं, अतः इन दोनों तिथियो को ज्वार सबसे कम उठती है।

ज्वारी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुआरी'।

ज्वाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निशिखा। लो। लपट। आँच। उ०—चिता ज्वाल शरीर वन दावा लगि लगि जाय।—गिरिधर (शब्द०)। २ मशाल (को०)।

घन रोय के द्वार परी चित झख ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पाँच तत्व का बना पींजरा तामे मुनियाँ रहती । उडि मुनियाँ डारी पर बैठे झखन लागे सारी दुनिया ।—कबीर (शब्द०) ।

झंखरा†—संज्ञा पुं० [देशी झखर] शुष्क वृक्ष । उ०—थल भूरा वन झखरा नहीं सु चपउ जाइ । गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ ।—ढोला०, दू० ४६८ ।

झंखाट—वि० [हिं० झखाड] दे० 'झखाड' ।

झखाड़—संज्ञा पुं० [हिं० 'झाड़' का अनु०] १ घनी और कँटीदार झाडी का पौधा । २ ऐसे कँटीदार पौधों या झाडियो का घना समूह जिसके कारण भूमि या कोई स्थान ढँक जाय । उ०—ऊँचे झाड, कँटीले झखाडो ने वन मग छाया । —क्वासि, पृ० ७२ । ३. वह वृक्ष जिसके पत्ते झड गए हो । ४ व्यर्थ की और रद्दी, विशेषत. काठ की चीजो का समूह ।

झगरा†—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरा या देश०] १ गुफा । कदरा । उ०—मिलै सिंघ गिर झगराँ, सो एकलो सदीव । रच टोली फिरता रहै, जठै तठै वन जीव । —बाँकी० ग्रं०, पृ० २७ । २ घनी झाडी ।

झंजारⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० जंजाल] जंजाल । मायाजाल । दुःख । उ०—इनके चरन सरन जे आए मिटे सकल झंजार । छीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल सकल वेद को सार । —छीत०, पृ० १४ ।

झंझकारⓅ—संज्ञा पुं० [सं० झङ्कार] झंकार । झन् झन् की मधुर ध्वनि । उ०—निगम चारि उतपति भयो चतुरानन मुख वैन । उचरेउ शब्द अनाहदा झंझकार मद ऐन । —संत० दरिया, पृ० ४० ।

झंझ[1]—संज्ञा पुं० [झन् झन् से अनु०] दे० 'झाँझ' । उ०—कोउ वीणा मुरली पटह चग मृदग उपग । झालरि झंझ वजाई कै गावहि तिनके सग ।—(शब्द०) ।

झंझ[2]†—वि० [देश०] खाली । रीता । शुष्क । रहित ।

झंझट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ व्यर्थ का झगडा । टटा । बखेडा । २ प्रपच । परेशानी । कठिनाई ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—मे पड़ना । —मे फँसना ।

झंझटिया†, **झंझटिहा**†—वि० [हिं० झंझट] दे० 'झंझटी' ।

झंझटी—वि० [हिं० झंझट] १. झंझट करनेवाला । २ झंझट से भरा हुआ (काम) ।

झंझन—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झन] आभूषण की झकार । झुन झुन की मधुर ध्वनि [को०] ।

झंझनाना[1]—क्रि० स० [सं० झञ्झन] झन झुन का शब्द करना । झंकार करना । झकारना ।

झंझनाना[2]—क्रि० अ० १ झकार होना । †२ कोई बात इस ढग से कहना जिसमें खीझ और झल्लाहट भरी हो । झल्लाना ।

झंझर[1]—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झर] दे० 'झज्झर' ।

झंझर[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झँझरी] दे० 'झँझरी' ।

झंझा—संज्ञा स्त्री० [सं० झञ्झा] । १. वह तेज आँधी जिसके साथ वर्षा भी हो । उ०—मन को मसूसी मनभावन सो रूसि सखी दामिनि ज्यों दूरि रही रंग फुँकि झंझा सी ।—देव (शब्द०) ।

यौ०—झंझानिल । झंझामारुत् । झंझामारुत = दे० 'झंझावात' ।

२. तेज आँधी । अंधड । ३ बड़ी बड़ी बूँदो की वर्षा । ४ झाँझ । ५ खोई हुई वस्तु । हिराई हुई चीज (को०) ।

झंझाⓅ—वि० प्रचड । तीखा । तेज ।

झंझानिल—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झानिल] १ प्रचड वायु । आँधी । २. वह आँधी जिसके साथ वर्षा भी हो ।

झंझार—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झा] आग की वह लपट जिसमे से कुछ अव्यक्त शब्द के साथ धुँआ और चिनगारियाँ निकलें । उ०—(क) आवै अगिनि भार भभार, धुधार करि, उचटि अगार झंझार छायो ।—सूर०, १० । ५९६ । (ख) लाल तिहारे विरह की लागी आगिन अपार । सरसैं बरसैं नीरहूँ मिटै न झर झंझार । —भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० ४६५ ।

झंझावात—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झावात] १. प्रचड वायु । आँधी । २. वह आँधी जिसके साथ पानी भी बरसे ।

झंझी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फूटी कौडी । २. दलाली का धन । झजभी । (दलालो की बोली) ।

झंझेरनाⓅ—क्रि० स० [हिं० झकझोरना] दे० 'झँझोडना' ।

झंझोटी, झंझौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक राग । दे० 'झिंझोटी' । उ०—तीसरे ने कहा वाह झंझोटी है । —श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २०४ ।

झंझोरनाⓅ—क्रि० स० [हिं० झकझोरना] दे० 'झँझोडना' । उ०—विषम वाय जिम लता मोरि मारुत झंझोरे । (कै) चित्र लिखी पुत्तरी जोरि जारत निहारे । —पृ० रा०, २।३४८ ।

झंटी—संज्ञा स्त्री० [देशी] छोटे और उठे हुए बाल । झोंटा ।

झंड—संज्ञा पुं० [सं० जट, या देशी] १ छोटे बालको के मुडन के पहले के केश । २ करील ।

झंडा—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ता या देश०] १. तिकोने या चौकोर कपडे का टुकडा जिसका एक सिरा लकडी आदि के डडे मे लगा रहता है और जिसका व्यवहार चिह्न प्रकट करने, सकेत करने, उत्सव आदि सूचित करने अथवा इसी प्रकार के अन्य कामो के लिये होता है । पताका । निशान । फरहरा । ध्वजा ।

मुहा०—झंडे तले की दोस्ती = बहुत ही साधारण या राह चलते की जान पहचान । झंडे पर चढ़ना = बदनाम होना । अपने सिर बहुत बदनामी लेना । झंडे पर चढ़ाना = बहुत बदनाम करना ।

२ ज्वार, बाजरे आदि पौधो के ऊपर का नर फूल । जीरा ।

झंडा कप्तान—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा + अं० कैप्टेन] १ उस जहाज का प्रधान जिसपर प्रतीकात्मक ध्वजा रहती है (नौसैनिक) । २. वह व्यक्ति जिसपर संस्था के प्रतीकात्मक ध्वज की जिम्मेदारी हो ।

झंडा जहाज—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा + अ० जहाज] बेडे का प्रधान जहाज जिसपर बेडे का नायक रहता है ।

झंडा दिवस—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा+सं० दिवस] वह दिन जब

किसी कार्य से प्रेरित होकर लोगों मे सहायता या चदा लिया जाता है और चिह्न स्वरूप सहायता देनेवाले को झंडी दी जाती है (नौसेनिक)।

झंडाबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा + बरदार] वह व्यक्ति जो किसी राज्य या संस्था का झंडा लेकर चलता है।

झंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'झंडा' का स्त्री० अल्पा०] छोटा झंडा जिसका व्यवहार प्राय संकेत आदि करने और कभी कभी सजावट आदि के लिये होता है।

मुहा०—झंडी दिखाना = झंडी से संकेत करना।

झंडीदार—वि० [हिं० झंडी + फा० दार] जिसमे झंडी लगी हो। झंडीवाला।

झंडोत्तोलन—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा + सं० उत्तोलन] झंडा फहराना ध्वज फहराने का कार्य।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

झंप—संज्ञा पुं० [सं० झम्प] १ उछाल। फलाँग। कुदान।

मुहा०—झंप देना = कूदना। उ०—करि अपनों कुल नास बनहि सो अगिन झंप दै आई।—सूर (शब्द०)।

(पु)† २ हाथियो और घोड़ों आदि के गले का एक आभूषण। गलझप।

झंपण—संज्ञा पुं० [अप०] आँखों को आधा खुली रखना। नेत्रों का अर्धोन्मीलन।—महा पु०, भा० १, पृ० १२।

झंपणी—संज्ञा स्त्री० [देशी] बरुनी। बरौनी। पक्ष्म।

झंपन¹—संज्ञा पुं० [सं० झम्पन] १ उछलने की क्रिया। उछाल। २. झोंका। उ०—निराशा सिकता कुपथ मे अश्मरेखा सी सुप्रकित। वायु झंपन में प्रबल से हिमशिखर सी तुम अकंपित।—स्वासि, पृ० ९९।

झंपन²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आच्छादन, प्रा० झपण, हिं० झाँपना] छिपाने की क्रिया। आवरित करने का कार्य। उ०—तिहि अवसर लालन आइ गए उपमा कवि ब्रह्म कही नहिं जाई। कचन कुभ के झपन को मुकि झपत चंद झलक्कत झाई।—अकबरी०, पृ० ३४९।

झपना(पु)—क्रि० स० [सं० आच्छादन, प्रा० झंपण] छिपाना। ढकना। आच्छादित करना। उ०—कचन कुभ के झपन को झुकि झपत चद झलक्कत झाई।—अकबरी०, पृ० ३४९।

झपाक—संज्ञा सं० [सं० झम्पाक] [स्त्री० झपाकी] वानर। बंदर (को०)।

झंपान†—संज्ञा पुं० [सं० झम्प या देश०] १ दे० 'झंपान'। २. कुदान। उछाल।

झंपापात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झम्प + पात] ऊँचाई से गहरे पानी में झम से कूद जाना। कूदकर प्राणत्याग करना। उ०—(क) जोग जज्ञ जपतप तीरथ धनादि और, झपापात लेत जाइ हिवारे गरत हैं।—सुदर०, ग्र०, भा० १, पृ० ४५५। (ख) को बूडे झपापाती, इद्रिय बसि करि न जाती।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० १५७।

झपापाती(पु)—वि० [हिं० झपापात] बहुत ऊँचाई से नदी मे गिरकर प्राणत्याग करनेवाला।

झंपावना(पु)—क्रि० स० [सं० झम्पन] १. हिलाना। कँपाना। उ०—झनझनात झिल्ली, झपावत झरना झर झर झाड़ी।—श्यामा०, पृ० १२०। †२ उछालना। कुदाना। उ०—फागुण मासि वसत रुत आयउ जइ न सुणेसि। चाचरिकइ मिस खेलती होली झपावेसि।—ढोला०, दू० १४५।

झंपारु—संज्ञा पुं० [सं० झम्पारु] वानर। बदर (को०)।

झंपित—वि० [सं० झम्प] ढंका हुआ। छिपा हुआ। आच्छादित। छाया हुआ।

झंपी—वि० [सं० झम्पिन्] कपि। झंपाक। बंदर (को०)।

झंब—संज्ञा पुं० [सं० स्तबक या हिं० झब्बा] झोपा। गुच्छा। स्तबक (को०)।

झँकना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झाँकना'। उ०—व्रज जुवतिन को दर्पन जोई। तामे मुँह झँकि आई सोई।—नद० ग्रं०, पृ० १२९।

झँका(पु)—संज्ञा [हिं०] दे० 'झोंका'।

झँकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] १, छोटी खिड़की। झरोखा। २. झँझरी। जाली।

झँकोरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झकोरा'।

झँकोरना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झकोरना'।

झँकोलना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झकोरना'।

झँकोला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० झकोरा'।

झँखना(पु)—क्रि० अ० [हिं० झंखना] दे० 'झखना'। उ०—(क) क्रीडत प्रात समय दोउ वीर। माखन माँगत, बात न मानत, झँखत जसोदा जननी तीर।—सूर०, १०।१६१। (ख) सूरज प्रभु आवत हैं हलधर को नहिं लखत झँखति कहति तो होते सग दोऊ। —सूर (शब्द०)।

झँगरा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस का जालदार गोल झाँपा जिसे बोरा भी कहते हैं।

झँगा—संज्ञा पुं० [हिं० झगा] दे० 'झगा'। उ०—(क) नव नील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकै नृप गोद लिए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आव लाल ऐसे मदु पीजे तेरी झँगा मेरी अँगिया चीर।—हरिदास (शब्द०)।

झँगिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झँगुली'।

झँगुआ—संज्ञा पुं० [देश०] मठिया नामक गहने मे की, कुहनी की ओर से तीसरी चूड़ी। दे० 'मठिया'।

झँगुला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झगा'।

झँगुलिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'झगा' का अल्पा०] छोटे बालकों के पहनने का झगा या ढीला कुरता। उ०—(क) घुटुरन चलत कनक आँगन में कौशिल्या छबि देखत। नील नलिन तनु पीत झँगुलिया घन दामिनि द्युति पेखत।—सूर (शब्द०)।

झँगुली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झँगुलिया'। उ०—(क) नहि कह्यो मोर भयो झँगुली दै मुदित महरि लखि आतुरताई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कोउ झँगुली कोउ मृदुल बढ़निया कोउ लावै रचि ताजा।—रघुराज (शब्द०)।

झँगूली Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झँगुलिया', 'झँगुली'। उ०—कुलही चित्र विचित्र झँगूली। निरखहि मातु मुदित मन फूली।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८५।

झँझनना—क्रि० अ० [अनु०] झन झन शब्द होना। झनक झनक शब्द होना। झझकारना। उ०—नेकु रहो मति बोलो अबै मनि पायनि पैजनिया झँझनैगी।—(शब्द०)।

झँझरा¹—संज्ञा पुं० [सं० जर्जर (= छिद्रयुक्त), प्रा० जज्जर, या हिं०] मिट्टी का जालीदार ढँकना जो खौले हुए दूध के बर्तन पर रखा जाता है।

झँझरा²—वि० [स्त्री० झँझरी] जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों। झीना।

झँझरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जर, हिं० झर झर से अनु०] १ किसी चीज मे बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह। जाली। उ०—(क) झँझरी के झरोखनि ह्वै के झकोरति रावटी हूँ मैं न जात सही।—देव (शब्द०)। (ख) झँझरी फूट चूर होई जाई। सबहि काल उठि चला पराई।—कबीर म०, पृ० ५६४। २ दीवारों आदि मे बनी हुई छोटी जालीदार खिड़की। ३ लोहे का वह गोल जालीदार या छेददार टुकड़ा जो दमचूल्हे आदि मे रहता है और जिसके ऊपर सुलगते हुए कोयले रहते हैं। जले हुए कोयले की राख इसी के छेदों मे से नीचे गिरती है। दमचूल्हे की जाली या झरना। ४ लोहे आदि की कोई जालीदार चादर जो प्रायः खिड़कियों या बरामदों में लगाई जाती है। ५ आटा छानने की छलनी। ६. आग आदि उठाने का झरना। ७ दुपट्टे या धोती आदि के आँचल में उसके बाने के सूतों का, सुदरता या शोभा के लिये बनाया हुआ छोटा जाल, जो कई प्रकार का होता है।

झँझरी²—वि० स्त्री० [हिं० झँझरा का अल्पा० स्त्री०] दे० 'झँझरा'।

झँझरीदार—वि० [हिं० झँझरी + फ़ा० दार] जालीदार। सूराखदार। जिसमे झँझरी या जाली हो।

झँझेरना Ⓟ†—क्रि० स० [सं० झर्झन] दे० 'झँझोड़ना'। उ०—देख्यौ भक्त प्रधान जब राजा जाग्यो नाँहि। सुदर सक करी नही पकरि झँझेरी बाँहि।—सुदर० ग्रं०, भा०२,पृ० ७६१।

झँझोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झिंझोटी'।

झँझोड़ना—क्रि० स० [सं० झर्झन] १ किसी चीज को बहुत वेग और झटके के साथ हिलाना जिसमें वह टूट फूट जाय या नष्ट हो जाय। झकझोरना। जैसे,—वे सोए हुए थे, इन्होने जाते ही उन्हें खूब झँझोड़ा। २. किसी जानवर का अपने से छोटे जानवर को मार डालने के लिये दाँतों से पकड़कर खूब झटका देना। झकझोरना। जैसे, कुत्ते या बिल्ली का चूहे को झँझोड़ना।

झँझोरा—संज्ञा पुं० [देश०] कचनार का पेड़।

झँझौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झिंझोटी'।

झँडूलना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झडूला'।

झँडूला¹—वि० [हिं० झड + ऊला (प्रत्य०)] १ जिसके सिर पर गर्भ के बाल हो। जिसका मुडन संस्कार न हुआ हो। गर्भ के बालोवाला (बालक)। २. मुंडन संस्कार के पहले का। गर्भ का (बाल)। उ०—डर बघनहाँ कठ कठुला झँडूले केस मेढ़ी लटकन मसिबिंदु मुनि मनहर।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८६।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द प्राय बहुवचन रूप मे बोला जाता है। जैसे, झँडूले केश, झँडूले बार। उ०—उर बघनहाँ, कठ कठुला, झँडूले बार, बेनी लटकन मसि बुंदा मुनि मनहर। सूर १०।१५१।

३. घने पत्तियोवाला। सघन।

झँडूला²—संज्ञा पुं० १ वह बालक जिसके सिर पर गर्भ के बाल हों। वह लड़का जिसके गर्भ के बाल अभी तक मुँडे न हों। २ मुंडन सस्कार से पहले का बाल। गर्भ का बाल जो अभी तक मूँड़ा न गया हो। ३. घनी पत्तियोंवाला वृक्ष। सघन वृक्ष।

झँपकना—क्रि० अ० [हिं० झपकना] दे० 'झपकना'।

झँपकी—संज्ञा स्त्री [हिं० झपकी] दे० 'झपकी'।

झँपताल—संज्ञा पुं० [हिं० झपताल] दे० 'झपताल'।

झँपक—संज्ञा पुं० [सं० झम्पाक] बंदर।

झँपना¹—क्रि० अ० [सं० झम्प] १. ढँकना। छिपना। आड मे होना। २ उछलना। कूदना। लपकना। झपकना। उ०—(क) छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गध। ठौर ठौर झौरत झँपत झौर झौर मधु अंध। —बिहारी (शब्द०)। (ख) जबहि झँपति तबहि कपति बिहँसि लगति उरोज।—सूर (शब्द०)। ३ टूट० पड़ना। एक दम से आ पडना। उ०—जागत काल सोवत काल काल झपै आई। काल चलत काल फिरत कबहूँ ले जाई।—दादू (शब्द०)। ४. झेंपना। लज्जित होना।

झँपना² Ⓟ—क्रि० स० पकड़कर दबा लेना। छोप लेना। ढाँक लेना। उ०—नीची म नीची निपट लौं दीठि कुही दौरि। उठि ऊँचें नीचो दियो मनु कुलिंगु झँपि झौरि। —बिहारी (शब्द०)।

झपरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना (= ढँकना)] पालकी को ढाँकने की खोली। गिलाफ। ओहार। उ०—आठ कोठरिया नौ दरवाजा दसयें लागि केवरिया। खिड़की खोलि पिया हम देखल ऊपर झाँप झँपरिया।—कबीर (शब्द०)।

झँपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झँपरिया] दे० 'झँपरिया'।

झँपाक—संज्ञा पुं० [सं० झम्पाक] बदर। कपि।

झँपान—संज्ञा पुं० [सं० झम्प] सवारी के लिये एक प्रकार की खटोली जिसमें दोनो ओर दो लबे बाँस बँधे होते हैं। झप्पान।

विशेष—इन बाँसो के दोनो ओर बीच में रस्सियाँ बँधी होती हैं, जिनमे छोटे छोटे दो और बाँस पिरोए रहते हैं। इन्ही बाँसों को चार आदमी कधो पर रखकर सवारी ले चलते हैं। यह सवारी बहुधा पहाड़ की चढ़ाई में काम आती है।

झँपोला—संज्ञा पुं० [हिं० झाँप+ओला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० झँपोली, झँपोलिया] छोटा झाँपा या झाबा। छाबड़ा।

झँफाना—संज्ञा पुं० [सं० झम्प] कांतिहीन होना। समाप्त या नष्ट होना। गलित होना। उ०—रूप रंग ज्यों फूलड़ा तन तरवर ज्यों पान। दुरिया झोलो काल को झड़ि झड़ि हुए झँफान। —राम० धर्म०, पु० ६७।

झँवकार(पु)†—[हिं० झँवला+काला] कृष्ण वर्ण का। साँवले रंग का। कुछ कुछ काला। उ०—गैंड गयंद जरे भए कारे। औ बन मिरग रोम झँवकारे।—जायसी (शब्द०)।

झँवराना—क्रि० अ० [हिं० झाँवर] १. कुछ काला पड़ना। २. कुम्हलाना। सूखना। फीका पड़ना।

झँवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झाँवाँ'। उ०—झमझत हिये गुलाब के झवाँ झँवावति पाँय।—बिहारी (शब्द०)।

झँवाना[1]—क्रि० अ० [हिं० झाँवाँ] १. झाँवे के रंग का हो जाना। कुछ काला पड़ जाना। जैसे, धूप में रहने के कारण चेहरा झँवा जाना। २. अग्नि का मंद हो जाना। आग का कुछ ठंढा हो जाना। ३. किसी चीज का कम हो जाना। घट जाना। ४. कुम्हलाना। मुरझाना। ५. झाँवे से रगड़ा जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

झँवाना[2]—क्रि० स० १. झाँवे के रंग का कर देना। कुछ काला कर देना। जैसे,—धूप ने उनका चेहरा झँवा दिया। २. अग्नि को मंद करना। आग ठंढी करना। ३. किसी चीज को कम करना। उ०—ज्ञान को अभिमान किए मोको हरि पठयो। मेरोई भजन बाधि माया सुख झँवायो।—सूर (शब्द०)। ४. कुम्हला देना। मुरझा देना। ५. झाँवे से रगड़ना। ६. झाँवे से रगड़वाना।

झँवावना(पु)—क्रि० स० [हिं० झँवाना] झाँवे से रगड़ना या रगड़वाना। उ०—झमझत हिये गुलाब के झँवा झँवावति पाँय।—बिहारी (शब्द०)।

झँसना—क्रि० स० [अनु०] १. सिर या तलुए आदि में में तेल या और कोई चिकना पदार्थ लगाकर हथेली से उसे बार बार रगड़ना जिसमें वह उस अंग के अंदर समा जाय। जैसे—सिर में कदद्दू का तेल झँसने से तुम्हारा सिर दर्द दूर होगा।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी को बहकाकर या अनुचित रूप से उसका धन आदि ले लेना। जैसे—इस ओझा ने भूत के बहाने उससे दस रुपए झँस लिए।

संयो० क्रि०—लेना।

झ—संज्ञा पुं० [सं०] १. झंझावात। वर्षा मिली हुई तेज आँधी। २. सुरगुरु। बृहस्पति। ३ दैत्यराज। ४. ध्वनि। गुंजार शब्द। ५ तीव्र वायु। तेज हवा।

झइँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'। उ०—भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई।—तुलसी (शब्द०)।

झई†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'। उ०—को जाने काहू के जिय की छिन छिन होत नई। सूरदास स्वामी के बिछुरे लागे प्रेम झई।—सूर (शब्द०)।

झउआ[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० झाबा] खाँचा। टोकरा। झाबा।

झउआ[2]†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झावुक,हिं० झाऊ] दे० 'झाऊ'। उ०—साधो एक बन झाकर झउआ। लावा तितिर तेहि माहू भुलाने सान बुझावत कौआ।—दरिया, पृ० १२५।

झउवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झउआ'।

झक[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. कोई काम करने की ऐसी धुन जिसमें आगा पीछा या भला बुरा न सूझे। २. धुन। सनक। लहर। मौज।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—लगना।—समाना।—सवार होना।

३. आँच। ताप। ज्वाला। उ०—माया के झक जब जरे, कनक कामिनी लागि। कह कबीर कस बाचिहै, रुई लपेटी आगि। —संतबानी०, पृ० ५७। ४. झोंका। झमक। झाक।

क्रि० प्र०—आना।

झक[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० झष] दे० 'झख'।

झक[3]—वि० चमकीला। साफ। ओपदार। जैसे, सफेद झक।

झककेतु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झषकेतु] दे० 'झषकेतु'।

झकझक[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ व्यर्थ की हुज्जत। फजूल झगड़ा या तकरार। किचकिच। २ व्यर्थ की बकवाद। निरर्थक वादविवाद। बकबक।

यौ०—बकबक झकझक।

झकझक[2]—वि० [अनु०] चमकीला। ओपदार। चमकदार। उ०—झकझक झलकती वहि वामा के दृग त्यों त्यों।—अपरा, पृ० ४७।

झकझका—वि० [अनु०] चमकीला। ओपदार। चमकदार।

झकझकाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ओप। चमक। जगमगाहट।

झकझेलना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झकझोरना'।

झकझोर[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] झोंका। झटका। उ०—तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा।—जायसी (शब्द०)।

झकझोर[2]—वि० झोंकेदार। तेज। जिसमें खूब झोंका हो। उ०—काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर। नाहिं चितवत देति तिय सुत नाम नौका ओर।—सूर (शब्द०)।

झकझोरना—क्रि० स० [अनु०] किसी चीज को पकड़कर खूब हिलाना। झोंका देना। झटका देना। उ०—(क) सूरदास तिनको ब्रज युवती झकझोरति उर अंक भरे।—सूर (शब्द०)। (ख) अधिक सुगंधनि सेवक चाव मलिंदन को झकझोरति है। —सेवक (शब्द०)। (ग) पातन ते डरपैए कहा झकझोरत हूँ न परी बरसात है।—(शब्द०)।

झकझोरा—संज्ञा पुं० [अनु०] झटका। धक्का। झोंका। उ०—मंद

बिलग अमेरा दलकनि पाइब दुख झकझोरा रे।—तुलसी (शब्द०)।

झकझोरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छीनाझपटी। होड़ाहोड़ी। उ०—भारत में मची है होरी। इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४०५।

झकझोलना¹—क्रि० स० [हिं० झकझोला] दे० 'झकझोरना'।

झकझोलना⁽ᵖ⁾²—क्रि० अ० काँपना। हिलना डुलना। झोंका खाना। उ०—पकरयो बीर दुष्ट दुस्सासन बिलख बदन भइ डोलें। जैसे राहु नीच ढिग आएँ चंद्रकिरन झकझोलें।—सूर०, १।२५६।

झकझोला—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झकझोरा'। उ०—मोर मोर तोर देत झकझोला, चलत नेक नहिं जोर।—सुरसी० भा०, पृ० ७।

झकझौला—संज्ञा पुं० [अनु०] आघात। धक्का। झकझोरा। उ०—रचना यह परब्रह्म की चौरासी झकझोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३१५।

झकड़—संज्ञा पुं० [हिं० झक] दे० 'झक्कड़'।

झकड़ा—संज्ञा स्त्री० [देश०] सुत सी निकली हुई जड़। (अं० फाइवर्स।)

झकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दोहनी। दूध दुहने का बरतन।

झकना—क्रि० अ० [अनु०] १ बकवाद करना। व्यर्थ की बातें करना। २ क्रोध में आकर अनुचित वचन कहना। उ०—वेगि चलो सब कहैं, झकैं तिन सौं निज हुठ तैं।—नंद० ग्रं०, पृ० २०६। ३ झुँझलाना। खीझना। उ०—हरि को नाम, दाम खोटे लौं झकि झकि डारि दयौ।—सूर०, १।६४। ४ पछताना। कुढ़ना। उ०—ऊधो कुलिश भई यह छाती। मेरो मन रसिक लग्यो नँदलालहिं झकत रहत दिन राती।—सूर (शब्द०)।

झकरा—संज्ञा पुं० [हिं० झकड़] दे० 'झक्कड़'।

झका—वि० [हिं०] दे० 'झक'।

झकाझक⁽ᵖ⁾†—वि० [अनु०] जो खूब साफ और चमकता हुआ हो। दकादक। चमकीला। झलाझल। उज्वल। जैसे,—सफेदी होने से यह कमरा झकाझक हो गया। उ०—झाँकि कै प्रीति सों झीने झरोखनि झारि कै झाका झकाझक झाँकी।—रघुराज (शब्द०)।

झकाझक्क⁽ᵖ⁾—वि० [अनु०] चमकीला। उज्वल। उ०—खँसी हैं कटारी कट्यो मे अन्यारी। झकाझक्क ववारी दई की सम्हारी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८२।

झकाझोर—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झकझोर'। उ०—चहूँ ओर तोपैं चलैं बान छूटैं। झकाझोर समसेर की मार बोलैं।—हम्मीर०, पृ० १६।

झकाझोरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] हिलाने या झकझोरने की क्रिया या स्थिति। उ०—थोरी हू किसोरी गोरी रोरी रंग बोरी तब, मची दुहूँ ओर झकाझोरी है।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २६।

झकुराना¹†—क्रि० अ० [हिं० झकोरा] झकोरा लेना। झूमना।

उ०—रुक्यौ साँकरै कुंजमग करतु झाँकि झकुरातु। मंद मंद मारुत तुरँग खुँदतु आवतु जातु।—बिहारी (शब्द०)।

झकुराना²—क्रि० स० झकोरा देना। झूमने में प्रवृत्त करना।

झकोर⁽ᵖ⁾—संज्ञा पुं० [अनु०] १ हवा का झोंका। पवन की हिलोर। हिलकोरा। उ०—(क) चारु लोचन हँसि बिलोकनि देखिकै चितचोर। मोहनी मोहन लगावत लटकि मुकुट झकोर।—सूर (शब्द०)। (ख) पवि पाहन दामिनी गरज झरि झकोर खरि खीझि। रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि।—तुलसी (शब्द०)। (ग) चारिहुँ ओर तें पौन झकोर झकोरन घोर घटा घहरानी।—पद्माकर (शब्द०)। २. झटका। झोंका। धक्का।

झकोरना—क्रि० अ० [अनु०] हवा का झोंका मारना। उ०—(क) चहुँ दिसि पवन झकोरत घोरत मेघ घटा गंभीर।—सूर (शब्द०)। (ख) झँझरी के झरोखनि ह्वै के झकोरति रावटी हूँ मैं न जात सही।—देव (शब्द०)।

झकोरा—संज्ञा पुं० [अनु०] हवा का झोंका। वायु का वेग।

झकोल⁽ᵖ⁾†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झकोर' या 'झकोरा'। उ०—मृदु पदन्यास मंद मलयानिल बिलगत शीश निचोल। नील पीत सित अरुन ध्वजा चल सीर समीर झकोल।—सूर (शब्द०)।

झकोला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झकोरा'। उ०—(क) धन भई वारी पुरुष भए भोला सुरत झकोला खाय।—कबीर सा० सं०, पृ० ७५। (ख) उन्हें कभी कोई नौका उमड़े हुए सागर में झकोले खाती नजर आती।—रंगभूमि, पृ० ४७६।

झक¹—वि० [प्रा० जगजग (=चमकना) अथवा अनु०] खूब साफ और चमकता हुआ। झकाझक। ओपदार।

झक²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झक'।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—उतरना।

झक्कड़¹—संज्ञा पुं० [अनु०] तेज आँधी। तूफान। तीव्र वायु। अंधड़।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—चलना।

झक्कड़²—वि० [हिं० झक्क + ड़ (प्रत्य०)] दे० 'झक्की'।

झक्का—संज्ञा पुं० [अनु०] १. हवा का तेज झोंका। २ झक्कड़। आँधी (लश०)।

झक्का मुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँक झूँक] किसी बात को ध्यान से न सुनकर इधर उधर झाँकना। बात को गौर से न सुनना। मटियाना। उ०—धाय कहै तब गनते विनवै झक्काझुक्की करते।—सं० दरिया, पृ० १३५।

झक्काझोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झकझोरना] दे० 'झकझोरी'। उ०—झकझाझोरी ऐंचातानी, जहँ तहँ गए बिलाई।—जग० बानी, पृ० ६८।

झक्की—वि० [अनु० या प्रा० झख] १. व्यर्थ की बकवाद करनेवाला। बहुत बक बक करनेवाला। २. जिसे झक सवार हो। जो आदमी अपनी धुन के आगे किसी की न सुने। सनकी।

झखना⁽ᵖ⁾†—क्रि० अ० [प्रा० झखण, झक्खण] दे० 'झींखना'।

उ०—कह गिरिधर कविराय मातु झखैं वहि ठाहीं।—गिरधर (शब्द०)।

झक्खर↑—संज्ञा पुं० [हिं० झक्कड़] झकोरा। उ०—घर अंबर बीच वेलड़ी, तहँ लाल सुगधा वूल। झक्खर इक नाँ आयो, नानक नहीं कबूल।—संतवाणी०, पृ० ७०।

झख¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झीखना] झीखने का भाव या क्रिया।

मुहा०—झख मारना = (१) व्यर्थ समय नष्ट करना। वक्त खराब करना। जैसे,—आप सवेरे से यहाँ बैठे हुए झख मार रहे हैं। (२) अपनी मिट्टी खराब करना। (३) विवश होकर बुरी तरह झीखना। लाचार होकर खूब कुढ़ना। जैसे,—(क) तुम्हें झख मारकर यह काम करना होगा। (ख) झख मारो और वहीं जाओ। उ०—नीर पियावत का फिरै घर घर सायर बारि। तृषावंत जो होइगा पीवैगा झख मारि।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १५।

झख²—संज्ञा पुं० [सं० झष] मत्स्य। मछली। उ०—आँखिन तें आँसू उमडि परत कुचन पर आन। जनु गिरीस के सीस पर ढारत झख मुकतान।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७०।

यौ०—झखकेतु। झखनिकेत। झखराज। झखलग्न।

झखकेतु—संज्ञा पुं० [सं० झषकेतु] दे० 'झषकेतु'। उ०—आँखों को नचा नचाकर झखकेतु ध्वजा फहरात।—वीं० शा० महा०, १८८।

झखना↑—क्रि० अ० [प्रा० झखण] दे० 'झीखना'। उ०—(क) बाबा नंद झखत केहि कारण यह कहि मया मोह अरुझाय। सूरदास प्रभु मातु पिता को तुरतहि दुख डारयो बिसराय।—सूर (शब्द०)। (ख) पुनि आंइ घरी हरि पू की सुजान तें छूटिबे को बहु भाँति झखी री।—केशव (शब्द०)। (ग) कवि हरिजन मेरे उर वनमाल तेरे बिन गुन माल रेख लेख देखि झखियाँ।—हरिजन (शब्द०)।

झखनिकेत—संज्ञा पुं० [सं० झषनिकेत] दे० 'झषनिकेत'।

झखराज—संज्ञा पुं० [सं० झषराज] मकर। नक्र। झषराज। उ०—झखराज ग्रस्यो गजराज कृपा ततकाल बिलंब कियो न तहाँ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९९।

झखलगन—संज्ञा पुं० [सं० झषलग्न] दे० 'झषलग्न'।

झखिया—संज्ञा स्त्री [हिं० झख + इया (प्रत्य०)] दे० 'झखी'।

झखी↑—संज्ञा स्त्री [सं० झष] मीन। मछली। मत्स्य। उ०—(क) आवत बन ते साँझ देखो मैं गायन माँझ, काहू को ढोटा री एक शीष मोर पखियाँ। अलसी कुसुम जैसे चंचल दीरघ नैन मानो रस भरी जो लरत जुगल झखियाँ।—सूर (शब्द०)। (ख) गोकुल माह मैं माम करैं ते भई तिय बारि बिना झखियाँ है।—(शब्द०)।

झगडना—क्रि० अ० [देशी झगड (= झगडा, कलह) + हिं० ना (प्रत्य०) या झकझक से अनु०] दो आदमियों का आवेश में आकर परस्पर विवाद करना। झगड़ा करना। हुज्जत तकरार करना। लड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

झगड़ा—संज्ञा पुं० [देशी झगड या हिं० झकझक से अनु०] दो मनुष्यों का परस्पर आवेशपूर्ण विवाद। लड़ाई। टंटा। बखेड़ा कलह। हुज्जत। तकरार।

क्रि० प्र०—करना।—उठाना।—समेटना।—डालना।—फैलाना।—तोड़ना।—खड़ा करना।—मचाना।—लगाना।

यौ०—झगड़ा बखेड़ा। झगड़ा झमेला।

मुहा०—झगड़ा खड़ा होना = झगड़ा पैदा होना। झगड़ा खरीदना = अकारण कोई ऐसी बात कह देना जिससे अनायास झगड़ा खड़ा हो जाय। उ०—शेख जी जहाँ बैठते हैं झगड़ा जरूर खरीदते हैं।—फिसाना०, भा० १, पृ० १०। झगड़ा मोल लेना = दे० 'झगड़ा खरीदना'।

झगड़ालू—वि० [हिं० झगड़ा + आलू (प्रत्य०)] लड़ाई करनेवाला। जो बात बात में झगड़ा करता हो।

झगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगड़ा] अपने नेग के लिये झगड़ा करनेवाली स्त्री।

झगर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया। उ०—तूती लाल कर करे सारस झगर तोते तीतर तुरमती बटेर गहियत है।—रघुनाथ (शब्द०)।

झगरना—क्रि० अ० [देशी झगड, हिं० झगड़ा] दे० 'झगड़ना'। उ०—जसुमति मन अभिलाष करै।...कब मेरी अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरै।—सूर०, १०।७६।

झगरा↑—संज्ञा पुं० [देशी झगड] दे० 'झगड़ा'।

झगराऊ↑—वि० [हिं० झगड़ालू] दे० 'झगड़ालू' उ०—याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति कि एक लँगरि झगराऊ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४३४।

झगरिनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगड़ी] दे० 'झगड़ी'। उ०—(क) बहुत दिनन की आसा लागी झगरिनि झगरो कीनो।—सूर०, १०।१५। (ख) झगरिनि तैं हौं बहुत खिझाई। कंचनहार दिए नहिं मानति तुहीं अनोखी दाई।—सूर०, १०।१३।

झगरी↑—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगड़ी] दे० 'झगड़ी'। उ०—यशोमति लटकति पाँय परे। तेरो भलो मनइहौं झगरी तूँ मति मनहि डरे।—सूर (शब्द०)।

झगरो‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झगड़ा'। उ०—(क) और जो वा समय प्रभुन को मुरारीदास वह वस्तु न देते तब भी श्री बालकृष्ण जी प्राकृतिक बालक की नाईं झगरो मुरारीदास सों करते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १००। (ख) तहँ तुम सुनहु बड़ा घन तुम्हरो। एक मोक्षता पर सब झगरो—नंद० ग्रं०, पृ० २७३।

झगला—संज्ञा पुं० [हिं० झगा + ला (प्रत्य०)] दे० 'झगा'।

झगा—संज्ञा दे० [देश०] १ छोटे बच्चों के पहनने का कुछ ढीला कुरता। उ०—नद उदै सुनि आयो हो वृषभानु को जगा। दैबे कौं बड़ो महर, देत ना लावे गहर लाल की बधाई पाऊँ लाल को झगा।—सूर० १०।३६। २ वस्त्र। शरीर पर पहनने का कपड़ा। उ०—(क) झगा पगा अरु पाग पिछोरी ढाढिन को पहिरायो। हरि दरियाई कंठ लगाई परदा सात उठायो।—सूर (शब्द०)। (ख) सीस पगा न झगा तन मे प्रभु जाने

को भाहि बरे किहि ग्रामा।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १४६।

झगुलि, झगुलियाॅ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगा का अल्पा०] दे० 'झगा'। उ०—प्रफुलित ह्वै के आनि, दीनी है जसोदा रानी, झीनीयै झगुलि तामैं कंचन तगा।—सूर०, १०।३९।

झगुलीॅ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झगा'।

झगूला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झगा'। उ०—डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव को, सुमन झगूला सोहैं तन छवि भारी है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५५७।

झज्झर—संज्ञा पुं० [सं० झालिञ्जर] कुछ चौड़े मुँह का पानी रखने का मिट्टी का एक बरतन।

विशेष—इस बरतन की ऊपरी तह पर पानी को ठंढा करने के लिये थोड़ी सी बालू लगा दी जाती है। इसकी ऊपरी सतह पर सुंदरता के लिये तरह तरह की नक्काशियाँ भी की जाती हैं। इसका व्यवहार प्रायः गरमी के दिनों में जल को अधिक ठंढा करने के लिये होता है।

झञ्झी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फूटी कौड़ी। २. दलाली का धन।—(दलालों की भाषा)।

झझक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकना] १. झझकने की क्रिया का भाव। किसी प्रकार के भय की आशंका से रुकने की क्रिया। चमक। भड़क। जैसे,—अभी इनकी झझक नहीं गई है, इसी से खुलकर नहीं बोलते।

क्रि० प्र०—जाना।—मिटना।—होना।

मुहा०—झझक निकलना = झझक दूर होना। भय का नष्ट होना। झझक निकालना = झझक या भय दूर करना। जैसे,—हम चार दिन में इनकी झझक निकाल देंगे।

२. कुछ क्रोध से बोलने की क्रिया या भाव। झुँझलाहट। ३. किसी पदार्थ में से रह रहकर निकलनेवाली विशेषतः अप्रिय गंध।

क्रि० प्र०—आना।—निकलना।

४. रह रहकर होनेवाला पागलपन का हलका दौरा। कभी कभी होनेवाली सनक।

क्रि० प्र०—आना।—चढ़ना।—सवार होना।

झझकन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकना] झझकने या भड़कने का भाव। डरकर हटने या रुकने का भाव। भड़क।

झझकना—क्रि० अ० [अनु०] १. किसी प्रकार के भय की आशंका से अकस्मात् किसी काम से रुक जाना। अचानक डरकर ठिठकना। बिदकना। चमकना। भड़कना। उ०—(क) कबहुँ पुंबन देत आकर्षि जिय सेत करति बिन चैत सब हेत अपने। मिलति भुज कंठ दै रहति अंग लटकि कै जात दुख दूर ह्वै झझकि सपने।—सूर (शब्द०)। (ख) छाले परिबे के डरन सकै न हाथ छुवाइ। झझकति हियहिं गुलाब के झँवा झँवावति पाइ।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।—पड़ना।

२. भुँझलाना। खिजलाना। ३. चौंक पड़ना। उ०—जसुमति मन मन यहै विचारति। झझकि उठयौ सोवत हरि अबहीं कछु पढ़ि पढ़ि तन दोष निवारति।—सूर०, १०।२००। ३. संकुचित होना। झिझकना। उ०—अति प्रतिपाल कियौ तुम हमरौ सुनत नंद जिय झझकि रहे।—सूर०, १०।३११२।

झझकनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकना] दे० 'झझकन'। उ०—वह रस की झझकनि वह महिमा, वह मुसुकनि वैसो संजोग।—सूर (शब्द०)।

झझकाना—क्रि० स० [हिं० झझकना का प्रे० रूप] १. अचानक किसी प्रकार के भय की आशंका कराके किसी काम से रोक देना। चमकाना। भड़काना। उ०—जुज्यों उझकि झाँपति बदन झुकति बिहँसि सतराइ। तुत्यों गुलाल मुठी झुठी झझकावत पिय जाइ।—बिहारी (शब्द०)। २. चौंका देना।

झझकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकारना] झझकारने की क्रिया या भाव।

झझकारना—क्रि० स० [अनु०] १. डपटना। डाँटना। २. दुरदुराना। ३. अपने सामने कुछ न गिनना। किसी को अपने आगे मंद बना देना। उ०—नख मानो चंद्र बाण साजि कै झझकारत उर आन्यो। सुरदास मानिनि रण जीत्यो समर संग हरि रस भाग्यो।—सूर (शब्द०)।

झझकना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] झाँझ बाजे का बजना। झाँझ की ध्वनि होना। उ०—झँझ झझक्कत उठत तरंग रंग, भरि उच्चारहि दंद दंद मिरदंग।—माधवानल०, पृ० १९४।

झझरी—संज्ञा स्त्री० [सं० झर्झर, हिं० झँझरी] जालीदार खिड़की। झँझरी। उ०—झझकि झझकि झझरिन जहाँ झाँकति झुकि झुकि झूमि।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३।

झझिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झिझिया'।

झट—क्रि० वि० [सं० झटिति] तुरंत। उसी समय। तत्क्षण। फौरन। जैसे,—हमारे पहुँचते ही वे झट उठकर चले गए।

मुहा०—झट से = जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।

यौ०—झट पट।

झटक(पु)†—संज्ञा पुं० [अनु०] वायु का झोंका। आँधी। उ०—झटक झाटल छोड़ल ठाम, कएल महातरु तर विसराम।—विद्यापति, पृ० ३०३।

झटकनहार—वि० [हिं० झटकना + हार] झटकनेवाला। झटका देनेवाला। उ०—झटकनहार झटकबो। झटकनहार झटकबो।—प्राण०, पृ० ११८।

झटकना—क्रि० स० [हिं० झट] १ किसी चीज को इस प्रकार एकबारगी झोंके से हिलाना कि उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या अलग हो जाय। झटके से हलका धक्का देना। झटका देना। उ०—नासिका ललित बेसरि बानी अधर तट सुभग तारक छबि कहि न जाई। धरनि पद पटकि झटकि भौंहनि मटकि पटकि तहाँ रीझे कन्हाई।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग उस चीज के लिये भी होता है जो किसी दूसरी चीज पर चढ़ती या पड़ती है। और उस चीज के लिये भी होता है जिसपर कोई दूसरी चीज चढ़ती

या पड़ती है। जैसे,—यदि धोती पर कनखजूरा चढ़ने लगे तो कहेंगे कि 'धोती झटक दो' और यदि राम ने कृष्ण का हाथ पकड़ा और कृष्ण ने झटका देकर राम का हाथ अपने हाथ से अलग कर दिया तो कहेंगे कि 'कृष्ण ने राम का हाथ झटक दिया'।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी चीज को जोर से हिलाना। झोंका देना। झटका देना।

मुहा०—झटककर=झोंके से। झटके से। तेजी से। उ०—झटकि चढ़ति उतरति अटा नेक न थाकति देह। भई रहति नट को बटा अटकि नागरी नेह।—बिहारी (शब्द०)।

३ दबाव डालकर चालाकी से या जबरदस्ती किसी की चीज लेना। ऐंठना। जैसे,—(क) आज एक बदमाश ने रास्ते मे दस रुपए उनसे झटक लिए। (ख) पंडित जी आज उनसे एक धोती झटक लाए।

संयो० क्रि०—लेना।

मुहा०—झटके का माल=जबरदस्ती छीना या चुराया हुआ माल।

झटकना[२]—क्रि० अ० रोग या दु:ख आदि के कारण बहुत दुर्बल या क्षीण हो जाना। जैसे,—चार ही दिन के बुखार में वे तो बिलकुल झटक गए।

संयो० क्रि०—जाना।

झटका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. झटकने की क्रिया। झोंके से दिया हुआ हलका धक्का। झोंका।

उ०—पिउ मोतियन की माल है, पोई काचे धाग। जतन करो झटका घना, नहिं टूटै कहुँ लागि।—संतबाणी०, पृ० ४२।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—मारना।—लगना।—लगाना।

२. झटकने का भाव। ३ पशुबध का वह प्रकार जिसमें पशु एक ही आघात से काट डाला जाता है। उ०—मुसलमान के जिबह हिंदु के मारें झटका।—पलटू०, पृ० १०६।

यौ०—झटके का मांस=उक्त प्रकार के मारे हुए पशु का मांस।

४. आपत्ति, रोग या शोक आदि का आघात।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।—लगना।

५. कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की गरदन उस समय जोर से दोनों हाथों से दबा दी जाती है जब वह भीतरी दाँव करने के इरादे से पेट में घुस आता है।

झटकाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० झटकना] झटके से स्थानच्युत कर देना। झटके से अस्तव्यस्त कर देना।—उ०—यहि लालच अँकवारि भरत हौ, हार तोरि चोली झटकाई।—सूर (शब्द०)।

झटकार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. झटकारने का भाव। झटकने का भाव या क्रिया। २. दे० 'फटकार'।

झटकारना—क्रि० स० [अनु०] किसी चीज को इस प्रकार हिलाना जिसमे उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या अलग हो जाय। झटकना। जैसे, ऊपर पड़ी हुई गर्द साफ करने के लिये चादर झटकारना या किसी का हाथ झटकारना। दे० 'झटकना'।

झटक्कना(पु)†क्रि० स० [हिं० झटकना] झटका देना। झोंका देना। उ०—झटक्कत इक्कन को गहि इक्क।—प० रासो, पृ० ४१।

झटझारी—†क्रि० वि० [अनु०] जल्दी जल्दी। उ०—आजु आओत हरि गोकुल रे, पथ चलु झटझारी।—विद्यापति, पृ० ३६५।

झटपट—अव्य० [प्रा० झडप्पड या हिं० झट+अनु० पट] अति शीघ्र। तुरंत ही। तत्क्षण। फौरन। बहुत जल्दी। जैसे,—तुम झटपट जाकर बाजार से सौदा ले आओ उ०—राम युधिष्ठिर बिक्रम की तुम झटपट सुरत करो री।—भारतेंदु० ग्र० भा० १, पृ० ५०३।

झटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भू आँवला।

झटाका—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'झड़ाका'।

झटापटा(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झडप्पड=छीना झपटी, (झडप्पिअ=छीना हुआ)] हलचल। उत्पात। उपद्रव। उ०—तिहुँ लोक होत झटापटा, अब चार जुगन निवास हो —कबीर, सा०, पृ० ११।

झटास†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ी] बौछार।

झटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा पेड़। २. झाड़ी। गुल्म [को०]।

झटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'झाटा'।

झटिति†(पु)—क्रि० वि० [सं०] १ झट। चटपट। फौरन। तत्काल। तुरत। उ०—कटत झटिति पुनि नूतन भए। प्रभु बहु बार बाहु सिर हए।—तुलसी (शब्द०)। २ बिना समझे बूझे।

झटोला‡—संज्ञा पुं० [देश०] वह खाट जिसकी बुनावट टूट टूटकर ढीली हो गई हो। उ०—माटी के कुंडिल न्हवाओ, झटोले सुलाओ। फाटी गुदरिया बिछाओ, छोरा कहि कहि बोलो।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ९१७।

झट्ट‡—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'झट'। उ०—दुअं तीन थानं हय-तीहि पान। वहै यग्ग झट्ट सुदाहिम घट्ट।—पृ० रा०, २४। १७५।

झठ†—क्रि० वि० [हिं० झट] शीघ्र। दे० 'झट'। उ०—जद जावे रे जद जावे। झठ सेस गयो समझावे।—रघु० रू०, पृ० १५६।

झड़(पु)—संज्ञा स्त्री [हिं० झड़ना] १. दे० 'झड़ी'। २ ताले के भीतर का खटका जो चाभी के आघात से घटता बढ़ता है।

झड़कना—क्रि० स० [अनु०] दे० 'झिड़कना'।

झड़क्का†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झड़ाका'।

झड़झड़ाना—क्रि० उ० [अनु०]१ दे० 'झिड़कना'। दे० 'झँझोड़ना'।

झड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ना] १. जो कुछ झड़ के गिरे। झड़ी हुई चीज। २ झड़ने की क्रिया या भाव। ३ लगाए हुए धन का मुनाफा या सूद।—(क्व०)।

यौ०—झड़नझुड़न=दे० 'झरन'।

झड़ना—क्रि० अ० [सं० क्षरण या √शद, अथवा स० झर ('निर्झर' में प्रयुक्त), प्रा० झड] किसी चीज से उसके छोटे छोटे अगों या अशो का टूट टूटकर गिरना। जैसे, आकाश से तारे झड़ना, वदन की धूल झड़ना, पेड में से पत्तियाँ झड़ना, वर्षा की बूँदें झड़ना।

मुहा०—फूल झड़ना। दे० 'फूल' के मुहावरे।

२ अधिक मान या सख्या मे गिरना।

सयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

३ वीर्य का पतन होना। (बाजारू)।

संयो० क्रि०—जाना।

४. झाड़ा जाना। साफ किया जाना। ५. वाद्य का बजना। जैसे, नौबत झड़ना।

झड़प[1]—सज्ञा स्त्री [अनु०] १ दो जीवों की परस्पर मुठभेड़। लड़ाई। २. क्रोध। गुस्सा। ३ आवेश। जोश। ४. आग की लौ। लपट।

झड़प[2]—क्रि० वि० [देशी झडप्प या अनु०] दे० 'झड़ाका'।

झड़पना—क्रि० अ० [अनु०] १ आक्रमण करना। हमला करना। वेग से किसी पर गिरना। २. छोप लेना। ३ लड़ना। झगड़ना। उलझ पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

४ जबरदस्ती किसी से कुछ छीन लेना। झटकना।

संयो० क्रि०—लेना।

झड़पा—सज्ञा स्त्री० [अनु० या देशी झड़प्प] हाथापाई। गुत्यमगुत्या।

यौ०—झड़पाझड़पी = हाथापाई। कहा सुनी।

झड़पाना—क्रि० स० [अनु०] दो जीवों विशेषत पक्षियो को लड़ाना।—(क्व०)।

झड़पी—सज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झड़पा'।

झड़बेरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ + बेर] १ जगली बेर। २. जगली बेर का पौधा।

मुहा०—झड़बेरी का काँटा = लड़ने या उलझनेवाला मनुष्य। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला मनुष्य।

झड़बैरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झड़बेरी'।

झड़बाई(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ (= झड़ी) + सं० वायु, हिं० वाइ] वह वायु जो झड़ी लिए हो। वर्षा की झड़ी से भरी हुई वायु। वह वायु जिसमें वर्षा की फुहारें मिली हों। उ० अति घण ऊनिमि आवियउ भाभी रिठि झड़वाइ। वग ही भला त बप्पड़ा धरणि न मुक्कइ पाइ।—ढोला०, दू० २५७।

झड़वाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] दे० 'झड़ाई'।

झड़वाना—क्रि० स० [हिं० झाड़ना का प्रे० रूप] झाड़ने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झाड़ने में प्रवृत्त करना।

झड़ाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] झाड़ने का भाव। झाड़ने का काम या झाड़ने की मजदूरी।

झड़ाक—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'झड़ाका'।

झड़ाका[1]—सज्ञा पुं० [अनु०] झड़प। दो जीवों की परस्पर मुठभेड़। —क्रि० वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक। चटपट।

झड़ाझड़—क्रि० वि० [अनु०] १ लगातार। बिना रुके। बराबर। एक के बाद एक। उ०—भर भर तोप झड़ाझड़ मारो।—कबीर० श०, पृ० ३८। २ जल्दी जल्दी।

झड़ाझड़ि(पु)—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'झड़ाझड़'। उ०—रन में पैठि झड़ाझड़ि खेलै सन्मुख सस्तर खावै।—चरण० बानी०, पृ० ८७।

झड़ी—सज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ना अथवा सं० झर (= झरना) या देशी झड़ी (= निरंतर वर्षा)] १ लगातार झड़ने की क्रिया। बूँद या कण के रूप में बराबर गिरने का कार्य या भाव। २ छोटी बूँदों की वर्षा। ३. लगातार वर्षा। बराबर पानी बरसना। ४. बिना रुके हुए लगातार बहुत सी बातें कहते जाना या चीजें रखते, देते अथवा निकालते जाना। जैसे,— उन्होंने बातों (या गालियों) की झड़ी लगा दी।

क्रि० प्र०—बँधना।—बाँधना।—लगना।—लगाना।

५ ताले के भीतर का खटका जो चाभी के आघात से हटता बढ़ता है।

झणझण, झणझणा—सज्ञा स्त्री०[सं०]झन् झन् की ध्वनि। झनझन का शब्द (को०)।

झणत्कार—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'झनकार' [को०]।

झन—सज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो किसी धातुखड आदि पर आघात लगने से होता है। धातु के टुकड़े के बजने की ध्वनि।

यौ०—झन झन।

झनक—सज्ञा स्त्री० [अनु०] झनकार का शब्द। झन झन का शब्द जो बहुधा धातु आदि के परस्पर टकराने से होता है। जैसे, हथियारों की झनक, पाजेब की झनक, चूड़ियों की झनक। उ०—ढोल ढनक झाँझ झनक गोमुख सहनाई। —घनानद, पृ० ४८६।

झनकना—क्रि० अ० [अनु०] १ झनकार का शब्द करना। २. क्रोध आदि में हाथ पैर पटकना। ३ चिड़चिड़ाना। क्रोध मे आकर जोर से बोल उठना। ४ दे० 'झीखना'।

झनकमनक—सज्ञा स्त्री० [अनु०] मद मद झनकार जो बहुधा आभूषणों आदि से उत्पन्न होती है। उ०—झनक मनक धुनि होत लगत कानन को प्यारी। —ब्रज० ग्र०, पृ० ११९।

झनकवात—सज्ञा स्त्री० [अनु० झनक + सं० वात] घोड़ों का एक रोग जिसमे वे अपने पैर को कुछ झटका देकर रखते हैं।

झनकाना—क्रि० स० [अनु० झनकना का प्रे० रूप] झनकार उत्पन्न करना। बजाना।

झनकार—सज्ञा स्त्री० [सं० झणत्कार, प्रा० झणक्कार] दे० 'झंकार' उ०—घर घर गोपी दही बिलोवहि कर कंकन झनकार।—सूर (शब्द०)।

झनकारना[1]—क्रि० अ० [हिं० झनकार] दे० 'झंकारना'।

झनकारना[2]—क्रि० स० दे० 'झंकारना'।

झनकोर(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० झनकार या झकोर] दे० 'झनकार'। उ०—लौका लौके बिजुली चमके झिंगुर बोलै झनकोर के। —कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३०।

झनझन—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] झन झन शब्द। झनकार। झन-झनाहट।

झनझना¹—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक कीड़ा जो तमाखू की नसों में छेद कर देता है। इसे चनचना भी कहते हैं।

झनझना²—वि॰ [अनु॰] जिसमें से झनझन शब्द उत्पन्न हो।

झनझनाना¹—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] १. झन झन शब्द होना। २. (लाक्ष॰) भय, सिहरन या हर्ष से रोमांचित होना। किसी अनुभूति से पुलकित होना। जैसे, न रोएँ झनझनाना।

झनझनाना—क्रि॰ स॰ झनझन शब्द उत्पन्न करना।

झनझनाहट—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] १ झनझन शब्द होने की क्रिया या भाव। झंकार। २ झुन झुनी।

झनझोरा†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का पेड़।

झनत्कृत—वि॰ [सं॰] दे॰ 'झंकृत'। उ॰—दूध अंतर का सरल, अम्लान, खिल रहा मुखदेश पर द्युतिमान। किंतु है अब भी झनत्कृत तार, बोलते हैं मूप बारबार।—साम॰, पु॰ ४८।

झननन—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] झन झन शब्द। झंकार।

झननाना†—क्रि॰ अ॰ और स॰ [अनु॰] दे॰ 'झकारना'।

झनवाँ—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का धान।

झनस—संज्ञा पुं॰ [देश॰ ?] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा हुआ होता था।

झनाझन¹—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] झंकार। झनझन शब्द।

झनाझन²—क्रि॰ वि॰ झनझन शब्द सहित। इस प्रकार जिसमें झन झन शब्द हो। जैसे,—झनाझन खाँडे बजने लगे, झनाझन रुपए बरसने लगे।

झनिया—वि॰ [हिं॰ झीना] दे॰ 'झीना'। उ॰—कनक रतन मनि जटित कटि किंकिन कछित पीत पट झनिया।—सूर (शब्द॰)।

झन्नाना—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] दे॰ 'झनझनाना'। उ॰—मुखर झन्नाते रहे या मूक हो सब शब्द, पोपले वाचाल ये थोथे निहोरे।—हरी घास॰, पु॰ २१।

झन्नाहट—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] झनकार का शब्द। झनझनाहट। उ॰—टूटे सार सन्नाह झन्नाहटे सों। परे टूटि कै भूमि खन्नाहटे सों।—सूदन (शब्द॰)।

झप—क्रि॰ वि॰ [सं॰ झम्प (=जल्दी से गिरना, कूदना)] जल्दी से। तुरंत। झट। उ॰—खेलत खेलत जाइ कदम चढ़ि झप यमुना जल लीनो। सोवत काला जाइ जगायो फिरि भारत हरि कीनो।—सूर (शब्द॰)।

यौ॰—झप झप। झपाझप।

मुहा॰—झप खाना=(१) पतंग का जल्दी से पेंदी के बल गिर पड़ना। (२) झेंप खाना। झेंपना।

झपक—संज्ञा स्त्री [हिं॰ झपकना] १ उतना समय जितना पलक गिरने मे लगता है। बहुत थोड़ा समय। २ पलकों का परस्पर मिलना। पलक का गिरना। ३ हलकी नींद। झपकी। ४ लज्जा। शर्म। हया। झेंप।

झपकना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ झम्प (=जोर से पड़ना, कूदना)] १. २ पलक गिराना। पलकों का परस्पर मिलना। झपकी लेना। ऊँघना।—(क्व॰)। ३ तेजी से आगे बढ़ना। झपटना। ४. ढकेलना। ५ झेंपना। शरमिंदा होना। उ॰—तभी, देवि, क्यों सहसा दीख, झपक, छिप जाता तेरा स्मित मुख, कविता की सजीव रेखा सी मानस पट पर घिर जाती है।—इत्यलम्, पृ॰ ९८। ६ डरना। सहम जाना। उ॰—कहु देत झपकी झपकि झपकहु देत खाली दाऊँ।—रघुराज (शब्द॰)।

झपका—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] हवा का झोंका।—(लश॰)।

झपकाना—क्रि॰ स॰ [अनु॰] पलकों को बार बार बंद करना। जैसे, आँख झपकाना।

झपकारी—वि॰ स्त्री॰ [हिं॰ झपक+आरी (प्रत्य॰)] १. निंदियारी। झपकानेवाली। २ हयादार। लज्जा से झुकनेवाली। उ॰—कारी झपकारी अनियारी बरुनी सघन सुहाई।—भारतेंदु ग्र॰, भा॰२, पृ॰ ४१४।

झपकी—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] १. हलकी नींद। थोड़ी निद्रा। उंघाई। ऊँघ। जैसे,—जरा झपकी ले लें तो चलें।

क्रि॰ प्र॰—आना।—लगना।—लेना।

२. आँख झपकने की क्रिया। ३. वह कपड़ा जिससे अनाज ओसाने या बरसाने में हवा देते हैं। बँवरा। ४ धोखा। चकमा। बहकाना। उ॰—कहुँ देत झपकी झपकि झपकहु देत खाली दाउँ। बढ़ि जात कहुँ द्रुत बगल ह्वै बलगात दक्षिण पाउँ।—रघुराज (शब्द॰)।

झपको (पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झपका] हवा का झोंका। उ॰—दीपक बरत विवेक को तो लौं या चित माहि। जौ लौं नारि कटाक्ष पट झपको लागत नाहि।—ब्रज॰ ग्रं॰, पृ॰ ८८।

झपकौंहाँ, झपकौहाँ (पु)†—वि॰ [हिं॰ झपना] [वि॰ स्त्री॰ झपकौही] १ नींद से भरा हुआ (नेत्र)। जिसमे झपकी आ रही हो (वह आँख)। झपकता हुआ। उ॰—(क) झपकौहें पलनि पिया के पीक लीक लखि झुकि झहराइहूँ न नेकु अनुरागे त्यौं।—पद्माकर (शब्द॰)। (ख) झुकि झुकि झपकौंहै पलनु फिरि फिरि जुरि, जमुहाइ। बीदि पिआगम नींद मिसि दी सब अली उठाय।—बिहारी र॰, दो॰ ५८९। २ मस्त। नशे में चूर। मतवाला। नशे में भरा हुआ। उ॰—ससि अश लहरी चहुँधा पूरी जोति समूरी भाल लसै। दगदुति झपकौंहीं भौंह बकौंहीं नाक चढ़ौंही अधर हँसे।—सूदन (शब्द॰)।

झपट—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ झम्प(=कूदना)] झपटने की क्रिया या भाव। उ॰—(क) देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) मन पंछी जब लग उड़ै विषय वासना माहिं। ज्ञान बाज की झपट मे तब लगि आया नाहिं।—कबीर (शब्द॰)।

यौ॰—लपट झपट=लपटने या झपटने की क्रिया या भाव। उ॰—लपट झपट झहराने हहराने वात भहराने भट परयो प्रबल परावनो।—तुलसी (शब्द॰)।

मुहा॰—झपट लेना=बहुत तेजी से बढ़कर छीनना।

झपटना¹—क्रि० अ० [सं० झम्प (=कूदना)] १. किसी (वस्तु या व्यक्ति) की ओर झोक के साथ बढ़ना। वेग से किसी की ओर चलना। २. पकड़ने या आक्रमण करने के लिये वेग से बढ़ना। टूटना। धावा करना।

मुहा०—किसी पर झपटना = किसी पर आक्रमण करना। जैसे, बिल्ली का चूहे पर झपटना।

झपटना²—क्रि० स० बहुत तेजी से बढ़कर कोई चीज ले लेना। झपटकर कोई चीज पकड़ या छीन लेना। —जैसे, तोते को बिल्ली झपट ले गई।

संयो० क्रि०—लेना।

झपटानां—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपटना] झपटने का क्रिया।

झपटाना—क्रि० स० [हिं० झपटना का प्रे०रूप] धावा कराना। आक्रमण कराना। हमला कराना। इश्तियालक देना। वार कराना। लड़ने को उभारना। उसकाना। बढ़ावा देना। किसी को झपटने में प्रवृत्त करना।

झपट्टां—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपटना] दे० 'झपट'।

क्रि० प्र०—मारना।

यौ०—झपट्टामार = झपट्टा मारनेवाला। झपटनेवाला।

झपताल—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में एक ताल जो पाँच मात्राओं का होता है और जिसमें चार पूर्ण और दो अर्ध होती हैं। इसमें तीन आघात और एक खाली रहता है। इसका मृदंग का बोल यह है—

\+ १ २ ० +

धाग, धागे, ने, तदे, धागे, ने धा। और इसका तबले का बोल यह है—धिन धा, धिन धिन धा, देत, ता तिन तिन ता। धा+।

झपना¹ (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] झपने या मुदनेवाली वस्तु। पलक। उ०—अगमपुरी की सँकरी गलियाँ अड़बड़ है चलना। ठोकर लगी गुर ज्ञान शब्द की उघर गए झपना।—कबीर० श० भा०१, पृ० ६७।

झपना²—क्रि० अ० [अनु०] १ (पलकों का) गिरना। (पलकों का) बद होना। २. (आँखे) झपकना या बद होना। झुकना। ३. लज्जित होना। झेंपना। छिपना।

झपनीं—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ढकना। वह जिससे कोई चीज ढकी जाय। २. पिटारी।

झपलैयां—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झपोला'। उ०—अस कहि झपलैया बिलरायो। गिलपिल्ले को दरस करायो।—रघुराज (शब्द०)।

झपवाना—क्रि० स० [अनु०] झपाना का प्रेरणार्थक रूप। किसी को झपाने में प्रवृत्त करना।

झपस—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपसना] १. गुजान होने की क्रिया या भाव। २ कहारों की परिभाषा मे पेड़ की झुकी हुई डाल।

विशेष—इसका व्यवहार पिछले कहार को आगे पेड की डाल होने की सूचना देने के लिये पहला कहार करता है।

झपसट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. धोखा। दबसट। कपट। ‡२ एक गाली।

झपसना—क्रि० अ० [हिं० झँपना (=ढँकना)] लता या पेड़ की डालियों का खूब घना होकर फैलना। पेड़ या लता आदि का गुंजान होना। जैसे,—यह लता खूब झपसी हुई है।

झपाक—क्रि० वि० [हिं० झप] पलक भाँजते। चटपट। उ०—झकोरि झपाक झपटि नर समय गँवाई। नहिं समुझत निज मूल अध ह्वै दृष्टि छिपाई।—भीखा श०, पृ० ८७।

झपाका¹—संज्ञा पुं० [हिं० झप] शीघ्रता। जल्दी।

झपाका²—क्रि० वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।

झपाटां—क्रि० वि० [हिं० झप] झटपट। तुरंत। शीघ्र ही।

झपाटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० झपट] चपेट। आक्रमण। दे० 'झपट'।

झपाटा²—क्रि० वि० [हिं० झपाट] शीघ्र। झटपट।

झपाना—क्रि० स० [हिं० झपना] १. झपने का सकर्मक रूप। मूँदना या बंद करना (विशेषतः आँखों या पलकों का)। २. झुकाना। ३ दे० 'छिपाना'।

झपाव—संज्ञा पुं० [देश०] घास काटने का एक प्रकार का औजार।

झपावनां—क्रि० स० [हिं० झपाना] छिपाना। गोपन करना। उ०—बदन झपावए अलकत भार, चाँदमडल जनि मिलए अँधार।—विद्यापति, पृ० ३४०।

झपित—वि० [हिं० झपना] १. झपा हुआ। मुँदा हुआ। २. जिसमें नींद भरी हो। झपकौंहा या उनींदा (नेत्र)। ३ लज्जित। लज्जायुक्त। लजालु। उ०—कवि पद्माकर छकित झपित झपि रहत दृगंचल।—पद्माकर (शब्द०)।

झपिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गले में पहनने का एक प्रकार का गहना।

विशेष—यह गहना हँसुली की तरह का बना होता है और इसके सोने या चाँदी के बीच में एक अकीक जड़ा रहता है। यह गहना प्रायः डोम जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं।

२. पेटारी। पच्छी।

झपेट—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपट] दे० 'झपट'।

झपेटना—क्रि० स० [अनु०] आक्रमण करके दबा लेना। चपेटना। दबोचना। छोप लेना। उ०—सहमि सुखात बात जात की सुरति करि लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के।—तुलसी ग्रं०, पृ० १८३।

झपेटां—संज्ञा पुं० [अनु०] १. चपेट। झपट। आक्रमण। २ भूत-प्रेतादि कृत बाधा या आक्रमण। ३ हवा का झोंका। झकोरा।—(शब्द०)।

झपोला—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० अल्पा० झपोली] दे० 'झँपोला'।

झपोली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] झँपोला का अल्पार्थक। छोटा झपोला या झाबा। झँपोली।

झप्पड़—संज्ञा पुं० [अनु०] झापड़। थप्पड़।

झप्परां—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दे० 'झप्पड़'। २. मार। चोट। उ०—दीनो मुहीम को भार बहादुर ढागो सहै क्यों गयंद को झप्पर।—भूषण ग्रं० पृ० ७१।

झप्पान—संज्ञा पुं० [हिं० झंपान] झंपान नाम की एक प्रकार की पहाड़ी सवारी जिसे चार आदमी उठाकर ले चलते हैं।

झप्पानी—संज्ञा पुं० [हिं० झंपान] झप्पान उठानेवाला कहार या मजदूर।

झबक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपक] दे० 'झपकी'।

झबकै—क्रि० वि० [हिं० झबक] झपकी में ही। उ०—सामलि राजा बोल्या रे अवधू सुणै अनोपम वांणी जी। निरगुण नारी सूं नेह करंता झबके रैणि बिहाणी जी।—गोरख०, पु० १५३।

झबकना—क्रि० अ० [अनु०] झब झब करना। ज्योति सी उठना। दीप्त होना। चमकना। उ०—काया झबकइ कनक जिम, सुंदर केहँ सुख्ख। तेह सुरंगा किम हुवइं, जिण नेहा बहु दुख्ख।—ढोला०, दू० ५४६।

झबझबी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान में पहनने का एक प्रकार का तिकोना पत्ते के आकार का गहना।

झबड़ा—वि० [अनु०] दे० 'झबरा'।

झबघरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो गेहूँ को हानि पहुँचाती है।

झबरक—संज्ञा पुं० [अनु०] जलते हुए दीपक में मोटी बत्ती। उ०—कसतूरी मरदन कीयो झबरक दीप ले गहरी बाट।—वी० रासो, पु० ९८।

झबरा¹—वि० [अनु०] वि० स्त्री० झबरी] चारों तरफ बिखरे और घूमे हुए बड़े बड़े बालोंवाला। जिसके बहुत लंबे लंबे बिखरे हुए बाल हों। जैसे, झबरा कुत्ता। उ०—कलुआ कबरा मोतिया झबरा बुचवा मोहि डेरवावे।—मलूक० बानी, पु० २५।

झबरा²—संज्ञा पुं० कलंदरों की भाषा में नर भालू।

झबरीला—वि० [हिं० झबरा + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० झबरीली] कुछ बड़ा, चारो तरफ बिखरा और घूमा हुआ (बाल)।

झबरैरा— [हिं० झबरा + ऐरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० झबरैरी] दे० 'झबरीला'। उ०—कुंतल कुटिल छबि राजत झबरैरी। लोचन चपल तारे रुचिर झबरैरी।—सूर (शब्द०)।

झबा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झब्बा'। उ०—(क) सीस फूल धरि पाटी पोंछत फूंदनि झबा निहारत। वदन बिंद जराइ की बेंदी तापर बनै सुधारत।—सूर (शब्द०)। (ख) छहरैं सिर पे छबि मोर पखा उनकी नथ के मुकता थहरैं। फहरैं पियरो पट बेनी इतै उनकी चुनरी के झबा झहरैं।—बेनी कवि (शब्द०)।

झबार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टंटा। बखेड़ा। झगड़ा। उ०—भरि नयन लखहु रघुकुल कुमार। तजि देहु और जग की झबार।—रघुराज (शब्द०)।

झबारि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झबार'। उ०—(क) बड़े घर की बहू बेटी करति वृथा झबारि। सूर अपनो अंश पावै जाहि घर झख मारि।—सूर (शब्द०)। (ख) बहुत अचगरी जिन करो अजहूँ तजो झबारि। पकरि कंस लै जाइगो कालिहि सूर सवारि।—सूर (शब्द०)। (ग) यह झगरो बगरो जब रोवत हरिपद अति अनुरागा। ताते सज्जन रसिक शिरोमणि यह झबारि सब त्यागा।—रघुराज (शब्द०)।

झबिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झब्बा का स्त्री० अल्पा०] १. छोटा झब्बा छोटा फुंदना। २. सोने या चाँदी आदि की बनी हुई बहुत ही छोटी कटोरी जो बाजूबंद, जोशन, हुमेल. आदि गहनों में सूत या रेशम में पिरोकर गूँथी जाती है। उ०—मदनातुर तौ तिनऊ पर श्याम हुमेलन की झमकै झबिया।—बाल कवि (शब्द०)।

झबिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाबा का स्त्री० अल्पा०] वह झाबा जो आकार में छोटा हो।

झबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झबा का स्त्री० अल्पा०] दे० 'झबा'। उ०—झबी जराऊ जोरि, अमित गूँथननि सँवारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६।

झबुआ—वि० [अनु०] दे० 'झबरा'।

झबूकड़ा—संज्ञा स्त्री० [अनु०] [अन्य रूप—झबुक्कड़ा, झबूकड़इ] चमका जगमगाहट। उ०—(क) ऊँचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कंत। बीजलि लियइ झबूकड़ा सिहरी अलि लागंत।—ढोला०, दू० २६८। (ख) बीज न देख चहड्डियाँ, प्री परदेश गयाँह। आपण लीय झबुक्कड़ा गलि लागी सहराँह।—ढोला०, दू० १५२।

झबूकना—क्रि० अ० [अनु०] १. चमकना। जगमगाना। दीप्त होना। ज्योतित होना। उ०—(क) मंदिर माँहि झबूकती दीवा कैसी जोति। हंस बटाऊ चलि गया काढ़ो घर की छोति।—कबीर ग्रं०, पु० ७३। (ख) भभूकं उड़ै यों झबूकै फुलंगा। मनो अग्नि बेताल नच्चैं खुलंगा।—सूदन (शब्द)। २. झझकना।

झब्बा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. एक ही मे बँधे हुए रेशम या सूत आदि के बहुत से तारों का गुच्छा जो कपड़ों या गहनों आदि में शोभा बढ़ाने के लिये लटकाया जाता है। जैसे, पगड़ी का झब्बा। २ एक में लगी गूँथी या बँधी हुई छोटी छोटी चीजों का समूह। गुच्छा। जैसे, तालियों का झब्बा घुँघुरुओं का झब्बा। उ०—झब्बा से बहु छोटे बदुए झूलत सुंदर।—प्रेमघन०, भा० १, पु० १२।

झमंकना—क्रि० स० [अनु०] झम् झम् की ध्वनि होना। झंकार होना। उ०—अवधू सहंस नाड़ी पवन चलैगा, कोटि झमंके नादं। बहतरि चंदा बाई सोष्या किरणि प्रगटी जब आद।—गोरख०, पु० १९।

झमंकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झम झम की ध्वनि। झंकार। उ०—तमते तमंते तमं तेज मारे। झमंते झमंते झमकार झारे।—पु० रा०, १२। ८६।

झमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चमक का अनुकरण। २. प्रकाश। उजेला। ३. झम झम शब्द। उ०—पग जेहरि बिछियन की झमकनि चलत परस्पर बाजत। सूर स्याम सुख जोरो

मणि कंचन छवि लाजत।—सूर (शब्द०)। ४ ठसक या नखरे की चाल।

झमकड़ा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० झमक+ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'झमक'। उ०—मिरजा साहब—एक झमकड़ा नजर आया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८।

झमकड़ा[2]—वि० झनझनानेवाले। झमझम शब्द करनेवाले। उ०—बड़े बड़े कच छुट्टि पड़े उमड़े नैन बिसाल। कड़े झमकड़े ही गड़े प्रड़े खड़े नँदलाल।—स० सप्तक, पृ० २५१।

झमकना—क्रि० अ० [हिं० झमक] १. प्रकाश की किरणें फेंकना। रह रहकर चमकना। दमकना। प्रकाश करना। प्रज्वलित होना। २ झपकना। छावा। छा जाना। उ०—आलस सौं कर कौर उठावत नैननि नींद झमकि रहि भारी। दोउ माता निरखत आलस मुख छबि पर तन मन डारति वारी।—सूर०, १०।१२८। ३. झम झम शब्द होना। झनकार की ध्वनि होना। उ०—झूमि झूमि झुकि झुकि झमकि झमकि आली रिमझिम रिमझिम असाढ़ बरसतु है।—ठाकुर, पृ० १९। ४. झम झम करते हुए उछलना कूदना। गहनों की झनकार के साथ हिलना डोलना। उ०—(क) कबहुँक निकट देखि वर्षा ऋतु झूलत सुरँग हिंडोरे। रमकत झमकत जनक सुता सँग हाव भाव चित चोरे।—सूर (शब्द०)। (ख) ज्यों ज्यों आवति निकट निसि त्यों त्यों खरी उताल। झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहचटैं बाल।—बिहारी र०, दो० ५४३। ५. गहनों की झनकार करते हुए नाचना। ६. लड़ाई में हथियारों का चमकना और खनकना। उ०—भल्ल लगे भमकन खग्ग लगे झमकन सुल लगे दमकन तेग लगे छहरान।—गोपाल (शब्द०)। ७. झमक दिखलाना। तेजी दिखाना। झोंक दिखाना। ८. झम झम शब्द करना। बजने का सा शब्द करना। उ०—तैसिये नन्हीं बूँदनि बरसतु झमकि झमकि झकोर।—सूर (शब्द०)।

झमकाना—क्रि० स० [हिं० झमकना का स० रूप] १. चमकाना। बार बार हिलाकर चमक पैदा करना। २. चलने में आभूषण आदि बजाना और चमकाना। उ०—सहज सिंगार उठत जोबन तन बिधि निज हाथ बनाई। सूर स्याम आप ढिग आपुन घट भरि चलि झमकाई।—सूर०, १०।१४४७। ३. युद्ध में हथियारों आदि का चमकाना और खनखनाना।

झमकारा—वि० [हिं० झम झम] [वि० स्त्री० झमकारी] झमाझम बरसनेवाला (बादल)। उ०—सोहे सिंधु सिंधुर से बंधुर ध्यो बिध्य गंधमादन के बधु गरज गुरवाति के। झमकारे झूमत गगन घने घुमत पुकारे मुख चूमत पपीहा मोरान के।—देव (शब्द०)।

झमझम[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ झम झम शब्द जो बहुधा घुँघुरुओं आदि के बजने से उत्पन्न होता है। छम छम। २. पानी बरसने का शब्द। ३. चमक दमक।

झमझम[2]—वि० जिसमें से खूब चमक या आभा निकले। चमकता हुआ।

झमझम[3]—क्रि० वि० १. झम झम शब्द के साथ। जैसे, घुँघुरुओं का झमझम बोलना, पानी का झमझम बरसना। २. चमक दमक के साथ। झमाझम।

झमझमाना[1]—[क्रि० अ०] १. झम झम शब्द होना। २ चमचमाना। चमकना। ३ (लाक्ष०) झनझनाना। पुलकित होना। रोमांचित होना। उ०—एक विचित्र अनुभूति से मिस मेहता की त्वचा झमझमा उठी।—पिंजरे०, पृ० ५५।

क्रि० प्र०—उठना।

झमझमाना[2]—क्रि० स० १ झमझम शब्द उत्पन्न करना। २. चमकाना।

झमझमाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झमझम शब्द होने की क्रिया या भाव। २. चमकने की क्रिया या भाव।

झमना—क्रि० अ० [अनु०] नम्र होना। झुकना। दबना। उ०—मुरली श्याम के कर अधर बिब रमी। लेति सरबस जुवतिजन को मदन विदित अमी। महा कठिन कठोर आली बाँस बस जमी। सूर पूरन परसि श्रीमुख नेकु नाहिं झमी।—सूर०, १०।१२२८।

झमा(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० झामक] दे० 'झवाँ' या 'झाँवाँ'।

झमाका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. झम झम शब्द। पानी बरसने या गहनों के बजने आदि का शब्द। २. ठसक। मटक। नखरा।

झमाझम—क्रि० वि० [अनु०] उज्वल कांति के सहित। दमक के साथ। जैसे, सलमे सितारे टँके हुए कपड़ों का झमाझम चमकना। २. झमझम शब्द सहित। जैसे, पाजेब का झमाझम बोलना, पानी का झमाझम बरसना।

झमाट—संज्ञा पुं० [अनु०] झुरमुट। उ०—पर्वत के सिर पर क्या देखता है कि बहुत से सूखे झाड़ों के झमाट से बड़ा घटाटोप धूम निकल रहा है।—व्यास (शब्द०)।

झमाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] झपकना। छाना। घिरना। उ०—(क) खेलत तुम निसि अधिक गई सुत नैननि नींद झमाई। बदन जँभात अग ऐंड़ात जननि पलोटत पाई।—सूर (शब्द०)। (ख) त्यों पदमाकर झोरि झमाई सुबोरी सबै हरि पै इक दाऊ।—पद्माकर (शब्द०)।

झमाना[2]—क्रि० अ० [हिं० झाँवाँ या झमा+ना (प्रत्य०)] दे० 'झँवाना'।

झमाना[3]—क्रि० स० [हिं० जमाना ? अथवा अनु० झमाड़] इकट्ठा करना। एकत्र करना।

झमारना(पु)—क्रि० स० [हिं० झँवाना का प्रे० रूप] झाँवरा करना। झाँवाँ की तरह कर देना कुछ कुछ श्याम वर्ण का कर देना। उ०—दोहन करत ब्रजमोहन मनोरथनि, आनँद को घन रंग झलनि झमारई।—घनानंद, पृ० २०४।

झमाल[1]—संज्ञा पुं० [देशी] इंद्रजाल। माया (को०)।

झमाल[2]—संज्ञा पुं० [डिं०] एक प्रकार का डिंगल गीत। उ०—दूहे पर चंद्रायणो, धरे उलालो धार। गीतो रूप झमाल गुण, बरणो मुझ विचार।—रघु० रू०, पृ० ९२।

झमूरा—संज्ञा पुं० [हिं० झबरा या झमाट ?] १ घने बालोंवाला पशु। जैसे, रीछ, झबरा कुत्ता आदि। २ वह लड़का जो बाजीगर के साथ रहता है और बहुत से खेलों में बाजीगर

को सहायता देता है। ३. वह बच्चा जो ढीले ढाले कपड़े पहनता हो। ४. कोई प्यारा बच्चा।

झमेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० झमेला] दे० 'झमेला'।

झमेला—संज्ञा पुं० [अनु० झाँव झाँव] १. बखेड़ा। झंझट। झगड़ा। टंटा। २ लोगों का झुंड। भीड़ भाड़। उ०—अमुन के झमेला बीर पाय याल ठेला प्रान त्यागि अलबेलो तन सहे काम चेला सो।—गोपाल (शब्द०)।

झमेलिया—संज्ञा पुं० [हिं० झमेला + इया (प्रत्य०)] झमेला करनेवाला। झगड़ालु। बखेड़िया।

झर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी गिरने का स्थान। निर्झर। २. झरना। सोता। चश्मा। पर्वत से निकलता हुआ जलप्रवाह। ३. समूह। झुंड। ४ तेजी। वेग। उ०—प्रात गई नीके उठि ते घर। मैं बरजी कहाँ जाति री प्यारी तब खीझो रिस झर ते।—सूर (शब्द०)। ५. झड़ी। लगातार वृष्टि। ६. किसी वस्तु की लगातार वर्षा। उ०—(क) वर्षत अस्त्र कवच घर फूटे। मघा मेघ मानो झर जुटे।—लाल (शब्द०)। (ख) पावक झर ते मेंह झर दाहक दुसह बिसेखि। दहै देह वाके परस याहि दृगन की देखि।—बिहारी (शब्द०)। (ग) सूरदास तबही तम नासे ज्ञान अगिन झर फूटे।—सूर(शब्द०)। ७. आँच। ताप। लपट। ज्वाला। झाल। उ०—(क) श्याम अकम भरि लीन्हीं विरह अगिनि झर तुरत बुझानी।—सूर० (शब्द०) (ख) श्याम गुणराशि मानिनि मनाई। रह्यो रस परस्पर मिट्यो तनु विरह झर भरी आनंद प्रिय उर न माई।—सूर (शब्द०)। (ग) सटपटाति सी ससिमुखी मुख घूँघट पट ढाँकि। पावक झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि।—बिहारी (शब्द०)। (घ) नेकु न झुरसी विरह झर नेह लता कुँभिलाति। नित नित होत हरी हरी खरी झालरति जाति।—बिहारी (शब्द०)। ८ ताले का खटका। ताले की भीतर की कल। ताले का कुत्ता।

झरक(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झलक] दे० 'झलक'।

झरकना(५)—क्रि० अ० [हिं०] १. दे० 'झलकना'। उ०—सरल विसाल विराजही विद्रुम खंभ सुजोर। चारु पाटियनि पुरट की झरकत मरकत मोर।—तुलसी (शब्द०)। २. दे० झिड़कना। उ०—रोवति देखि जननि अकुलानी लियो तुरत नौवा को झरकी।—सूर (शब्द०)।

झरकना(५)[२]—क्रि० अ० [हिं० झलकना] दे० 'झलकना'। उ०—हँसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि। दारिउँ सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरक्कि।—जायसी ग्रं०, पृ० ७४।

झरकना(५)[३]—क्रि० अ० [सं० झर (=पानी का बहना)] धीरे धीरे बहना। झर झर शब्द करते चलना। उ०—पौन झरक्के हिय हरख लागे. सियरि बतास।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५९।

झरकाना—क्रि० अ० [सं० झर (= समूह, झुंड)] एकत्र होना। झुंड में आ जाना। उ०—इत चौका मुहँ अस भो भाई। बहु बिठेंटी चूल्हे झरकाई।—कबीर सा०, पृ० ४०६।

झरझर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. जल के बहने, बरसने या हवा के चलने आदि का शब्द। २. किसी प्रकार से उत्पन्न झर झर शब्द।

झरझराना[१]—क्रि० स० [अनु०] किसी बरतन में से किसी वस्तु को इस प्रकार झाड़कर गिरा देना कि उस वस्तु के गिरने से झरझर शब्द हो।

झरझराना[२]—क्रि० अ० झहरा उठना। काँप उठना। कंपित होना। उ०—झरझराति झहराति लपट अति, देखियत नहीं उबार।—सूर०, १०।५९३।

झरन—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] १. झरने की क्रिया। २. वह जो कुछ झरकर निकला हो। वह जो झरा हो। ३. दे० 'झड़न'।

झरना[१](५)—क्रि० अ० [सं० क्षरण] १. झड़ना। २ किसी ऊँचे स्थान से जल की धारा का गिरना। ऊँची जगह से सोते का गिरना। जैसे,—पहाड़ों में झरने झर रहे थे। उ०—नद नंदन के बिछुरे अखियाँ उपमा जोग नहीं। झरना लौं ये झरत रैन दिन उपमा सकल नहीं। सूरदास आसा मिलिबे की अब घट साँस रही।—सूर (शब्द०)। ३. वीर्य का पतन होना। वीर्य स्खलित होना।—(बाजारू)। ४. बजना। झड़ना। जैसे, नौबत झरना।

विशेष—(१) दे० 'झड़ना'।

विशेष—(२) इन अर्थों मे इस शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये भी होता है जिसमें से कोई चीज झरती है।

झरना[२]—संज्ञा पुं० [सं० झर] ऊँचे स्थान से गिरनेवाला जलप्रवाह। पानी का वह स्रोत जो ऊपर से गिरता हो। सोता। चश्मा। जैसे, उस पहाड़ पर कई झरने हैं।

झरना[३]—[सं० क्षरण] [स्त्री० अल्पा० झरनी] १ लोहे या पीतल आदि की बनी हुई एक प्रकार की छलनी जिसमे लंबे लंबे छेद होते हैं और जिसमें रखकर समूचा अनाज छाना जाता है। २ लंबी डाँड़ी की वह करछी या चम्मच जिसका अगला भाग छोटे तवे का सा होता है और जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। पौना।

विशेष—इससे खुले घी या तेल आदि में तली जानेवाली चीजों को उलटते पलटते, बाहर निकालते अथवा इसी प्रकार का कोई और काम लेते हैं। झरने पर जो चीज ले ली जाती है उसपर का फालतू घी या तेल उसके छेदों से नीचे गिर जाता है और तब वह चीज निकाल ली जाती है।

२ पशुओं के खाने की एक प्रकार की घास जो कई वर्षों तक रखी जा सकती है।

झरना[४]—वि० [वि० स्त्री० झरनी] १ झरनेवाला। जो झरता हो। जिसमें से कोई पदार्थ झरता हो।

झरनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झनझनाहट। उ०—झाँझर झरनाहट पर जेहर का झनका था।—नट०, पृ० १११।

झरनि(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झरन'। उ०—नूपुर बजत मानि मृग से अधीन होत, मीन होत परणामृत झरनि को।—चरण (शब्द०)।

झरनी—वि० [हिं० झरना का स्त्री० अल्पा०] झरनेवाली। दे०

'झरना'। उ०—झरनी सुरस बिंदु घरनी मुकुंद जू की घरनी सुफल रूप खेत कर्म काल की। नरनी सुधरनी उधेरनी वर बानी चारु पात तम तरनी भगति नंदलाल की।—गोपाल (शब्द०)।

झरपा(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झोंका। झकोर। उ०—बंधु कीए मधुप मदंध कीए पुरजन सुमोह्यो मन गंधी की सुगंध झरपन सों—देव (शब्द०)। २. वेग। तेजी। उ०—घेरि घेरि घहर घन आए घोर तापैं महा मारुत झकोरत झरप सों।—कमलापति (शब्द०)। ३. किसी चीज को गिरने से बचाने के लिये लगाया हुआ सहारा। चाँड़। टेक। ४. चिक। चिलमन। चिलवन। परदा। उ०—(क) तासन की गिलमें गलीचा मखतुलन के झरपैं झुमाऊ रहीं झूमि रंग द्वारी में।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) झाकै झुकी युवती ते झरोखन झुंडनि ते झरपैं कर टारी।—रघुराज (शब्द०)। ५. दे० 'झड़प'।

झरपना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] १. झोंका देना। बौछार मारना। उ०—वर्षत गिरि झरपत ब्रज ऊपर। सो जल जँह तँह पूरन भू पर।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'झड़पना'—१। ३. दे० 'झड़पना—३। उ०—एते पर कबहू जब आवत झरपत सरत घनेरो।—सूर (शब्द०)।

झरपेटा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झपट'।

झरफ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिलमन। परदा। झरप।

झरबेरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झड़बेरी'।

झरबेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झड़बेरी'। उ०—महके कटहल, मुकुलित जामुन, जगल में झरबेरी झूली।—ग्राम्या, पृ० ३६।

झरबैरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झड़बेरी'।

झरर—संज्ञा पुं० [सं०] झाड़ देनेवाला। स्थान झाड़नेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि झाड़ू देनेवाले को जब कोई पड़ी हुई चीज मिलती थी तो उसका ⅓ भाग चंद्रगुप्त का राज्य लेता था और ⅔ भाग उसको मिलता था।

झरवाना—क्रि० स० [हिं० झारना का प्रे० रूप] १. झारने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झारने में प्रवृत्त करना। २. दे० 'झड़वाना'।

झरसना[1](पु)—क्रि० अ० [अनु०] १. दे० 'झुलसना'। २. सूखना। मुरझाना। कुम्हलाना।

झरसना[2](पु)—क्रि० स० १. दे० 'झुलसाना'। २. सुखाना। मुरझा देना। उ०—विषय विकार को जवास झरस्यो करै।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० २०१।

झरहरना—क्रि० अ० [अनु०] झर झर शब्द करना। उ०—अजहूँ चेति मूढ़ चहुँ दिसि तें उपजी काल अगिनि झर झरहरि। सूर काल बल व्याल ग्रसत है श्रीपति सरन परति किन फरहरि।—सूर०, १।३१२।

झरहरा—वि० [हिं० झँझरा] [वि० स्त्री० झरहरी] दे० 'झँझरा'। उ०—झुकि झुकि झूमि झूमि मिलि मिलि झेल झेल झरहरी झाँपन में झमकि झमकि उठै।—पद्माकर (शब्द०)।

झरहराना[1]—क्रि० अ० [अनु०] पत्तों का वायु या वर्षा के कारण शब्द करना या शब्द करते हुए गिरना। हवा के झोंके से पत्तों का शब्द करना अथवा शब्द सहित गिरना। उ०—झरहरात बनपात, गिरत तरु, धरनि तराकि तराकि सुनाई। जल बरषत गिरिवर तर बचि अब कैसे गिरि होत सहाई।—सूर०, १०।९६४।

झरहराना[2]—क्रि० स० १. झरझर शब्द सहित किसी चीज को, विशेषतः पेड़ों के पत्तों को, गिराना। पेड़ की डाल हिलाना। २. झटकना। झाड़ना।

झरहिल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

झराँ—संज्ञा पुं० [हिं० झरना] नष्ट होना। बेकार होना।

झरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान, जो पानी भरे हुए खेतों में उत्पन्न होता है।

झरा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] झरना। स्रोत। सोता [को०]।

झराझर—क्रि० वि० [अनु०] १. झरझर शब्द सहित। २. लगातार। बराबर। ३. वेग सहित। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी दोउ मिलि लरत झराझरि।—हरिदास (शब्द०)।

झरापना(पु)—क्रि० अ० [हिं० झपट] हमला करना। झपटना।

झराबोर—संज्ञा पुं० वि० [हिं०] दे० 'झलाबोर'।

झराहर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाला+धर] सूर्य।

झरि(पु)—संज्ञा स्त्री०[हिं० झर]दे० 'झड़ी'। उ०—दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहु मघा मेघ झरि लाई।—तुलसी (शब्द०)।

झरिफ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० झरप] चिक। चिलमन। परदा।

झरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] १. पानी का झरना। स्रोत। चश्मा। २. वह धन जो किसी हाट, बाजार या सट्टी आदि में जाकर सौदा बेचनेवाले छोटे छोटे दुकानदारों विशेषतः खोनचेवालों और कुंजड़ों आदि से प्रतिदिन किराए के रूप में वहाँ के जमींदार या ठीकेदार आदि को मिलता है। ३. दे० 'झड़ी'। उ०—कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर। नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भइ मनभावति भीर।—तुलसी (शब्द०)।

झरुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

झरोखा—संज्ञा पुं०[सं० जाल+गवाक्ष अथवा अनु० झर झर (=वायु बहने का शब्द)+ गोख अथवा सं० जालगवाक्ष][स्त्री० झरोखी] दीवारों आदि में बनी हुई झँझरी। छोटी खिड़की या मोखा जिसे हवा और रोशनी आदि के लिये बनाते हैं। गवाक्ष। गोखा। उ०—होर राणीआँ झरोखियों पर बैठीआँ सो भी सुणकर सभ के मन पवन इस्थिर हो गए।—प्राण०, पृ० १८३।

झर्झर—संज्ञा पुं० [सं०] १. हुड़ुक नाम का लकड़ी का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता है। २. कलियुग। ३. एक नद का नाम। ४. हिरण्याक्ष के एक पुत्र का नाम। ५. लोहे आदि का बना हुआ झरना जिससे कड़ाही में पकनेवाली चीज चलाते हैं। ६. झाँझ। ७. पैर में पहनने का झाँझ या झाँझर नाम का गहना।

झर्झरक—संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग।

झर्झरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तारा देवी का नाम। २. वेश्या। रंडी।

झर्झरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी। २. कटसरैया का पौधा।

झर्झरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी।

झर्झरी¹—संज्ञा पुं० [सं० झर्झरिन्] शिव।

झर्झरी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] झाँझ नामक बाजा।

झर्झरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश। २. शरीर। ३ चित्र।

झर्ना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झरना'। उ०—नदी, झर्ना, वृक्ष और आकाश में, मुझको आपके साथ अत्यंत सुख मिलता था।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६८।

झर्प(ु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झड़प'।

झर्रा—संज्ञा पुं० [देश०] १. बया पक्षी। २ एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

झर्रैया—संज्ञा पुं० [देश०] बया नाम की चिड़िया।

झल—संज्ञा पुं० [हिं० झार, सं० झल (= ताप, बिलबिलाती धुप)। अथवा सं० ज्वल्, प्रा० झल)] १ दाह। जलन। आँच। २. उग्र कामना। किसी विषय की उत्कट इच्छा। उ०—(क) जीव विलंबा जीव सो अलख लख्यो नहि जाय। साहब मिले न झल बुझै रहो बुझाय बुझाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) झल बायें झल दाहिने झल ही में व्यवहार। आगे पीछे झल जले राखे सिरजनहार।—कबीर (शब्द०)। ३. काम की इच्छा। विषय या संभोग की कामना। ४. क्रोध। गुस्सा। रिस। ५. समूह। उ०—पुनि आए सरजू सरित तीर।...कछु आपु न अघ अघ गति चलंति। झल पतितन को ऊरघ फलंति।—केशव (शब्द०)।

झलक—संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लिका (=चमक)] १. चमक। दमक। प्रकाश। प्रभा। द्युति। आभा। उ०—मनि खंभन प्रतिबिंब झलक छबि छलकि रहै भरी आँगने।—तुलसी (शब्द०)। २. आकृति का आभास। प्रतिबिंब। जैसे,—वे खाली एक झलक दिखलाकर चले गए। उ०—मकराकृत कुंडल की झलकैं इतहूँ भुज मूल में छाप परी री।—पद्माकर (शब्द०)।

झलकदार—वि० [हिं० झलक + फ़ा० दार] चमकीला। चमकनेवाला। उ०—छोटी छोटी अँगुली झलाझल झलकदार छोटी सी छुरी को लिए छोटे राज ढोटें हैं।—रघुराज (शब्द)।

झलकना—क्रि० अ० [सं० झल्लिका (=चमक)] १. चमकना। दमकना। उ०—झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे।—तुलसी (शब्द०)। २. कुछ कुछ प्रकट होना। आभास होना। जैसे,—उनकी आज की बातों से झलकता था कि वे कुछ नाराज हैं। उ०—कुंडल लोल कपोलनि झलकत मनु दरपन मैं झाँई री।—सूर०, १०।१३७।

झलकनि(ु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झलक'। उ०—(क) श्रवन कुंडल मकर मानो नैन मीन बिसाल। सलिल झलकनि रूप आभा देख री नँदलाल।—सूर (शब्द०)। (ख) मदन मोर के चद की झलकनि निदरति तनजोति। नील कमल, मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति।—तुलसी ग्रं० पृ० २७८।

झलका—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल (=जलना), प्रा० झल + हिं० का (प्रत्य०)] चलने या रगड़ लगने आदि के कारण शरीर मे पड़ा हुआ छाला। उ०—झलका झलकत पायन्ह कैसे। पकज कोस ओसकन जैसे।—तुलसी (शब्द०)।

झलकाना—क्रि० स० [हिं० झलकना का सक० रूप] १ चमकाना। दमकाना। झलकाना। २ दरसाना। दिखलाना। कुछ आभास देना।

झलकावनी(ु)—वि० [हिं० झलकना] चमकानेवाली। दीप्त करनेवाली। झलकानेवाली। उ०—सुरतरु लतान चारु फल है फलित किधौं, कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी। कैधौं चितामनिन की माल उर सोभित, बिसाल कठ में धरे हैं जोति झलकावनी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३०५।

झलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झलक'।

झलक्कना(ु)—क्रि० अ० [हिं० झलकना] दीप्त होना। झलकना। उ०—झलक्कत पुर चमक्कत सेल।—ह० रासो, पृ० ६२।

झलज्झला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बूँदों के गिरने का शब्द। वर्षा की झड़ी से उत्पन्न शब्द। २. हाथी के कान की फटफटाहट (को०)।

झलझल¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झलकना] चमक दमक।

झलझल²—क्रि० वि० रह रहकर निकलनेवाली आभा के साथ। जैसे, झलझल चमकना।

झलझला—वि० [अनु०] झलझल करनेवाली। चमचमाती हुई। चमकनेवाली। उ०—तरवार बनी ज्यो झलझला।—पलटू०, पृ० ४५।

झलझलाना¹—क्रि० अ० [अनु०] चमकना। चमचमाना। उ०—झलझलात रिस ज्वाल बदनसुत चहुँ दिसि चाहिय।—सूदन (शब्द०)। २. दे० 'झल्लाना'।

झलझलाना²—क्रि० स० चमकाना। चमचमाना।

झलझलाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ चमक। दमक। २. झल्लाहट।

झलना¹—क्रि० स० [हिं० झलझल (= हिलना) से अनु०] १ किसी चीज को हिलाकर किसी दूसरी चीज पर हवा लगाना या पहुँचाना। जैसे,—(क) जरा उन्हें पखा झल दो। (ख) वे मक्खियाँ झल रहे हैं। २. हवा करने के लिये कोई चीज हिलाना। जैसे, पंखा झलना।

संयो० क्रि०—देना।

† ३. ढकेलना। ठेलना। धक्का देकर आगे बढ़ाना।

झलना²—क्रि० अ० १. किसी चीज के अगले भाग का इधर उधर हिलना। उ०—फूलि रहे, झूलि रहे, फैलि रहे, फबि रहे, झपि रहे, झलि रहे, झुकि रहे झूमि रहे।—पद्माकर (शब्द०) † २. शेखी बघारना। डींग हाँकना।

झलना³—क्रि० अ० [हिं० झालना का अक० रूप] १. दे० 'झालना'। २ दे० 'झेलना'।

झलफला—संज्ञा पुं० [प्रा० झलहल] उजियाला। दे० 'झलमल'।

झलमल¹—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल (=दीप्ति)] १. अँधेरे के बीच थोड़ा थोड़ा उजाला। हलका प्रकाश। २. अँधेरा (कहारों की परि०)। ३ चमक दमक।

झलमल²—क्रि० वि० दे० 'झलझल'।

झलमलताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झलमल + ताई (प्रत्य०)] चमक। झलमलाहट। उ०—दुति तिय तन अस दीन्हि दिखाई। सरद चंद जल झलमलताई।—नंद० ग्रं०, पृ० १२४।

झलमला—वि० [हिं० झलमलाना] चमकीला। चमकता हुआ। उ०—मोर मुकुट अति सोहई श्रवणनि वर कुंडल। ललित कपोलनि झलमले सुंदर अति निर्मल।—सूर (शब्द०)।

झलमलाना¹—क्रि० अ० [हिं० झलमल] १. रह रहकर चमकना। रह रहकर मंद और तीव्र प्रकाश होना। चमचमाना। २. ज्योति का अस्थिर होना। अस्थिर ज्योति निकलना। ठहरकर बराबर एक तरह न जलना या चमकना। निकलते हुए प्रकाश का हिलना डोलना। जैसे, हवा के झोंके से दीए का झलमलाना। उ०—(क) मैया री मैं चंद लहौंगो। कहा करौं जलपुट भीतर को बाहर ब्यौंकि गहौंगो। यह तो झलमलात झकझोरत कैसे कै जु लहौंगो।—सूर०, १०।१९४। (ख) स्याम अलक बिच मोती मगा। मानहु झलमलति सीस गगा।—सूर (शब्द०)। (ग) बालकेलि बातबस झलकि झलमलत सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है।—तुलसी ग्रं० पृ० २७२।

झलमलाना²—क्रि० स० किसी स्थिर ज्योति या लौ को हिलाना डुलाना। हवा के झोंके आदि से प्रकाश को अस्थिर या बुझने के निकट करना।

झलमलित—वि० [हिं० झलमलाना] झलमलाता हुआ। हवा में हिलता हुआ। उ०—धरनी जिव झलमलित दीप ज्यों होत अधार करो अंधियारी।—धरनी० बा० पृ० २६।

झलरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० झालर] १ एक प्रकार का पकवान जिसे 'झालर' भी कहते हैं।

झलरा²—संज्ञा स्त्री० दे० 'झालर'।

झलराना—क्रि० अ० [हिं० झालर] फैलकर छाना। बढ़ना। झालरना।

झलरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० झालर] दे० 'झालर'। उ०—वहुँ दिस लागी झलरिया, तो लोक असंख हो। धरम०, पृ० ४४।

झलरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हुडुक नाम का बाजा। २. बजाने की झाँझ।

झलरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० झलरा या झालर का अल्पा० स्त्री०] दे० 'झालर'।

झलवाना¹—क्रि० स० [हिं० झलना] झलना का प्रेरणार्थक रूप। झलने काम दूसरे से कराना।

झलवाना²—क्रि० स० झालना का प्रेरणार्थक रूप। झालने का काम दूसरे से कराना।

झलहल—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झलहल] दे० 'झलमल¹'। उ०—झलहल तीर तरवारि बरछी देखि कांबरे कांचा।—छूटे तीर तुपक अरु गोला घाव सहै मुख सांचा।—सुंदर० ग्रं० भा० २, पृ० ८८५।

झलहलना—क्रि अ० [अनु०] चमकना। दमकना। उ०—तप तेज पुंज झलहलत तहँ, दरसन तें पातक सुघर।—ह० रासो, पृ० १०।

झलहला—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झलहल] उजियाला। झलमल।

झलहाया—संज्ञा पुं० [हिं० झल + हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० झलहाई] वह जो डाह करता हो। हसद करनेवाला आदमी। ईर्ष्यालु व्यक्ति।

झलहाला—संज्ञा पुं० [अनु०] झलमलाहट। प्रकाश की मंद तेज चमक। उ०—ज्यों दामिनी होत झलहाला। पाछे नहीं अनिल उजियाला।—कबीर सा०, पृ० ९९।

झला¹—संज्ञा पुं० [हिं० झड] १. हलकी वर्षा। २. झालर, तोरण या बंदनवार आदि। ३ पंखा। बीजना। बेना। ४ समूह। उ०—झलकत आवैं झुंड झिलिम झलानि झप्यो, तमकत आवैं तेगवाही औ सिलाही हैं।—पद्माकर (शब्द०)। ५. तीव्र वर्षा। झड़ी लगना।

झला²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आतप। धूप। चिलचिलाती धूप। चमक। २. पुत्री। कन्या। बेटी (को०)। ३ झिल्ली। झींगुर (को०)।

झला³—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाला अथवा झल] १ क्रोध। गुस्सा। २. जलन। दाह।

झलाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झला + ई (प्रत्य०)] दे० 'झनाई'।

झलाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० √झल + आई (प्रत्य०)] पंखा झलने का काम या उसकी मजदूरी।

झलाझल—वि० [अनु०] खूब झनझनाता या चमचमाता हुआ। चमाचम। उ०—(क) छोटी छोटी अँगुली झलाझल झलकदार छोटी सी छुरी को लिये छोटे राज ढोटे हैं।—रघुराज (शब्द०)। (ख) कंचन के कलस भराए भूरि पन्नन के ताने तुग तोरन तहाँई झलाझल के।—पद्माकर (शब्द०)।

झलाझलि—वि० [हिं०] दे० 'झलाझली'। उ०—नख सिख ले सब भुखन बनाई। बसन झलाझलि पैंधे आई।—स० दरिया, पृ० ३।

झलाझली¹—वि० [अनु०] चमकीला। चमकदार। झलाझल। उ०—जिन्हैं लखे झनाझली हलाहली हिये सजे।—गोपाल (शब्द०)।

झलाझली²—संज्ञा स्त्री० झलाझल होने की क्रिया या भाव।

झलाना¹—क्रि० अ० [अनु० झनझन] हड्डी, जोड़ या नस आदि पर एकबारगी चोट लगने के कारण एक विशेष प्रकार की संवेदना होना। सुन्न सा हो जाना। जैसे,—ऐसी ठोकर लगी कि पैर झला गया।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

झलाना²—क्रि० स० [हिं० झालना] दूसरे से झालने का काम कराना। झालने में किसी को प्रवृत्त करना।

झलाना³—क्रि० स० [हिं० झलना] दे० 'झलवाना¹'।

झलाबोर¹—संज्ञा पुं० [हिं० झल झल (=चमक)] १. कलाबत्तू

का बना हुआ साड़ी का चौड़ा अंचल। २ कारचोबी। उ०—झलाबोर का घांघरा घूम घुमाला तिस पर सच्चे मोती टके हुए।—लल्लू (शब्द०)। ३. एक प्रकार की आतिशबाजी। ४. काँटा। झाड़ी। ५. चमक। दमक।

झलाबोर²—वि० चमकीला। ओपदार।

झलामल¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झलझल (= चमक)] चमक। दमक। उ०—चहुँ दिस लगी है बजार झलामल हो रहो। मूमर होत अपार अधर डोरी लगी।—कबीर (शब्द०)।

झलामल²—वि० चमकीला। चमक दमकवाला। ओपदार।

झलारा†—वि० [सं० ज्वल, पुं० हिं० झल, हिं० झाल; झार] तीखा। तेज। मिर्च के स्वादवाला। झालवाला।

झलासी—संज्ञा स्त्री० [देशी] सूखी हुई पतली लकड़ी या पतली टहनी। उ०—सोच विचारकर मैं सूखी झलासियों से झोंपड़ी बनाने लगा। लतरों को काटकर उसपर छाजन हुई।—इंद्र०, पृ० ७२।

झलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी। पूगी फल [को०]।

झलुसना—क्रि० स० [देश० अथवा सं० ज्वल से विकसित हिं० नामिक धातु] दे० 'झुलसना'।

झलूस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जलूस'। उ०—सुरा अतुल साज झलूस सारा मिले इक मिसलेस।—रघु० रू०, पृ० ८३।

झल्ल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्रात्य अर्थात् संस्कारहीन क्षत्रिय और सवर्णा स्त्री से उत्पन्न वर्णसंकर जाति। २ भाँड़ या विदूषक। ३. पटह या हुड़क नामक बाजा। ४. लपट। ज्वाला। उ०—बहिन को देखकर उसे अधिक क्रोध आता, क्योंकि उसकी आँखों में वैसे झल्ल सी उठने लगती, जिसे, देखकर हम तीनों भयभीत हो जाते।—अँधेरे०, पृ० २६।

झल्ल²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झल्ला होने का भाव।

झल्लकंठ—संज्ञा पुं० [सं० झल्लकण्ठ] परेवा।

झल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १ काँसे का बना करताल। झाँझ। २. मंजीरा। जोड़ी।

झल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'झल्लक'।

झल्लना—क्रि० अ० [अनु०] बहुत झूठी झूठी बातें करना। बहुत डींग हाँकना या गप्प उड़ाना।

झल्लरा—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'झल्लरी' [को०]।

झल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हुड़क नाम का बाजा। २ झाँझ। ३ पसीना। स्वेद। ४. पसेव। ५ शुद्धता। सुच्चापन [को०]। ६ घुँघुराले केश [को०]।

झल्ला¹—संज्ञा पुं० [देश०] १ खाँचा। बड़ा टोकरा। २ वर्षा। वृष्टि। ३. बौछार। ४ वे दाने जो पके हुए तमाखू के पत्ते पर पड़ जाते हैं।

झल्ला²—वि० [हिं० जल] बहुत तरल या पतला। जिसमें अधिक पानी मिला हो। जो गाढ़ा न हो। जैसे, झल्ला रस, झल्ली भाँग।

झल्ला³†—वि० [हिं० झल्लाना] १ पागल। २ बहुत बड़ा बेवकूफ। ३ झल्लानेवाला।

झल्लाना¹—क्रि० अ० [हिं० झल्ल] बहुत चिढ़ना। खिजलाना। किटकिटाना। मुँझलाना।

झल्लाना²—क्रि० स० ऐसा काम करना जिससे कोई बहुत चिढ़े। किसी को झल्लाने या चिढ़ने में प्रवृत्त करना।

झल्लानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] झल्ला। पानी की फुही। उ०—झल्लानी झर फुट्टि, छुट्टि संका सामंता। ज्यों लट्ठी पर नारि, बीग मिल्यो धावता।—पृ० रा०, १२। ३१६।

झल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देह पोंछने का कपड़ा। अँगोछा। २. शरीर का वह मैल जो उबटन आदि लगाने, किसी चीज से मलने या पोंछने से निकले। ३. दीप्ति। प्रकाश। ४. सूर्य की किरणों का तेज।

झल्ली¹†—वि० [हिं० झखना] बातूनिया। गप्पी। बकवादी।

झल्ली²—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुडुक की तरह का एक बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता है।

झल्ली³—संज्ञा स्त्री० [हिं० झल्ला] बड़ी टोकरी। झाबा। उ०—अहीर झल्ली ढोकर जो कुछ ला पाता, उसी से गुजारा चल रहा था।—अभिशप्त, पृ० १३।

झल्लीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० झल्ला] झाबा या झल्ली ढोने का काम करनेवाला। उ०—वहीं एक झल्लीवाला रहता है ग्वाला।—अभिशप्त, पृ० २३।

झल्लीसक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

झवकना—क्रि० अ० [देश०] झलकना। चमकना। उ०—काया झब्कइ कनक जिम सुंदर केहे सुख्ख। तेहु सुरंगा जिम हुवइ। जिण वेहा बहु दुख्ख।—ढोला०, दू० ५४६।

झवरा—संज्ञा पुं० [हिं० झगड़ा] झगड़ा।

झवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० झाँवाँ। उ०—अलबेली सुजान के पायनि पानि पर्यो न टर्यो मन मेरो झवा।—घनानंद, पृ० ८।

झवारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झबार'।

झष—संज्ञा पुं० [सं०] १. मत्स्य। मीन। मछली। उ०—संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती।—तुलसी (शब्द०)। २. मकर। मगर। ३. ताप। गरमी। ४. वन। ५ मीन राशि। ६. मीन लग्न। ७. दे० 'झख'।

झषकेत—(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झष + केत (= पताका)] दे० 'झष केतन'। उ०—हरिहि हेरि ही हरि गयो बिसिख लगे झषकेत। प्रहरि सयन तें हेत करि डहरि डहरि कै खेत।—स० सप्तक, पृ० २६१।

झषकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव जिसकी पताका में मीन का चिह्न है। झषकेतु [को०]।

झषकेतु—संज्ञा पुं० [सं० झषकेतु] कंदर्प। कामदेव।

झषध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'झषकेतु' [को०]।

झषना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झखना' या, 'झींखना'।

झषनिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाशय। २ समुद्र।

झषराज—संज्ञा पुं० [सं०] मगर। मकर।

झषलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] मीन लग्न।

झषांक—संज्ञा पुं० [सं० झषाङ्क] कामदेव।

झषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबला। गुलसकरी।

झषाशन—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार नामक जलजंतु । सूँस ।

झषोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता । मत्स्यगंधा ।

झषना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झँखना' ।

झहनना¹Ⓟ—क्रि० अ० [अनु०] १ झन्नाना । झन्नाटे या सन्नाटे में आना । २. (रोएँ का) खड़ा होना । उ०—गहन गहन लागीं गावन मयूरमाला झहन झहन लागे रोम रोम छन में ।—श्रीपति (शब्द०) ३. झन झन शब्द करना ।

झहनना²—क्रि० स० दे० 'झहनाना' ।

झहनाना—क्रि० स० [अनु०] १ झहनना का सकर्मक रूप । २. झनकार शब्द करना । झनकारना । उ०—गति गयंद कुच कुम किंकिनी मनहु घट झहनावै ।—सूर (शब्द०) ।

झहरना|Ⓟ¹—क्रि० अ० [अनु०] १ झर झर शब्द करना । झड़ने का सा शब्द करना । उ०—झहरि झहरि झुकि झीनी झर लाये देव छहरि छहरि छोटी बूँदनि छहरिया ।—देव (शब्द०) २ (शरीर आदि का) बहुत शिथिल पड़ना । ढीला हो जाना । उ०—झहरि झहरि परे पाँसुरी लखाय देह बिरह बसाय हाय कैसे दूबरे भये ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

झहरना²—क्रि० स० झिड़कना । झल्लाना । उ०—सुनि सजनी मैं रही अकेली बिरह बहेली इत गुरु जन झहरैं ।—सूर (शब्द०) ।

झहराना—क्रि० अ० [अनु०] १ शिथिल होकर झर झर शब्द के साथ या लड़खड़ाकर गिरना । उ०—(क) असुर लै तरु सों पछारयो गिरयो तरु झहराइ । ताल सो तरु ताल लाग्यो उठयो बन घहराइ । —सूर (शब्द०) । (ख) आपु गए जमलार्जुन तरु तर, परसत पात उठे झहराई ।—सूर०, १० । ३८३ । (ग) लपट झपट झहराने, हहराने वात फहराने भट परयो प्रबल परावनो । —तुलसी ग्रं०, पृ० १७१ । २ झल्लाना । किट-किटाना । खिजलाना । उ०—(क) एक अभिमान हृदय करि बैठी एते पर झहरानी ।—सूर (शब्द०) । (ख) नागरि हँसति हँसी उर छाया तापर अति झहरानी । अधर कप रिस भोंह मरोरी मन की मन गहरानी ।—सूर (शब्द०) । ३ हिलाना । उ०—बालधी फिरावे बार बार झहरावे, झरैं बुँदियाँ सी, लंक पघिलाइ पागि पागिहै ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७३ ।

झांकृत—संज्ञा पुं० [सं० झाङ्कृत] १ झरने आदि के गिरने या नुपुर के बजने का शब्द । झकार । २ पैर का एक गहना जिसमें घुँघरू लगे रहते हैं । नूपुर (को०) ।

झाँई, झाँईं—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] १. परछाईं । प्रतिबिंब । छाया । आभा । झलक । उ०—(क) झाँई न मिटन पाई आए हरि आतुर ह्वै जब जान्यो गज ग्राह लए जात जल में । —सूर (शब्द०) । (ख) बेसरि के मुकुता में झाँई बरन बिराजत चारि । मानो सुर गुर शुक्र भौम शनि चमकत चद्र मझारि । —सूर (शब्द०) । (ग) कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । ससि महं प्रकट भूमि की झाँई । —तुलसी (शब्द०) । (क) मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ । जा तन की झाँई परे स्याम हरित दुति होइ ।—बिहारी (शब्द०) । २ अधकार । अँधेरा । उ०—रेशमी सतत घाल लाल पट लपिटे महल भीतरे न शीत मीत रैनि की न झाँई है ।—देव (शब्द०) । ३. धोखा । छल ।

मुहा०—झाँई बताना = छल करना । धोखा देना ।

यौ०—झाँई झप्पा = धोखा धड़ी ।

४ प्रतिशब्द । प्रतिध्वनि । उ०—कुहकि उठे बन मोर कंदरा गरजति झाँई । चित चकृत मृग वृंद बिया मनमथ सरसाई ।—नागरीदास (शब्द०) । ५ एक प्रकार के हलके काले धब्बे जो रक्तविकार से मनुष्यों के शरीर विशेषतः मुँह पर पड़ जाते हैं ।

झाँई माँई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बच्चों का एक खेल जिससे वे 'झाँई माँई कौवों की बारात आई' कहते जाते और घूमते जाते हैं ।

मुहा०—झाँई माई होना = नजरों से गायब हो जाना । अदृश्य हो जाना ।

झाँक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] झाँकने की क्रिया या भाव ।

यौ०—ताक झाँक = दे० 'ताक झाँक' ।

झाँक²—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'झाँख' ।

झाँकना—क्रि० अ० [सं० चक्ष (= चक्षण = देखना) या अधि + अक्ष, अध्यक्ष, प्रा० अज्झक्ख (= आँख के समाने)] १. ओट के बगल में से देखना । उ०—(क) जंह तँह उझकि झरोखा झाँकति जनक नगर की नारि । —सूर (शब्द०) । (ख) तुलसी मुदित मन जनक नगर जन झाँकति झरोखे लागी शोभा रानी पावती । —तुलसी (शब्द०) । २. इधर उधर झुककर देखना ।

झाँकनी|Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] १. झाँकी । दर्शन । उ०—झाँकनी दै कर काँकनी की सुनै कानन बैन अनाकनी कीने ।—देव (शब्द०) । २ कुआँ (कहारों की परि०) ।

झाँकर—संज्ञा पुं० [प्रा० झंखर] दे० 'झंखाड़' ।

झाँकरीⓅ—वि० स्त्री० [प्रा० झंखर (= शुष्क तरु] झुलसी हुई । दुर्बल । सूखी हुई । उ०—उमड़ि उमड़ि दृग रोवत अबीर भए, मुख दुति पीरी परी बिरह महा भरी । 'हरिचंद' प्रेम माती मनहुँ गुलाबी छकी, काम कर झाँकरी सी दुति तन की करी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० १७३ ।

झाँका—संज्ञा पुं० [हिं० झाँकना] १. रहठे का खाँचा । जालीदार खाँचा । २. झरोखा । उ०—सभा माँझ द्रौपदि पति राखी पति पानिप कुल ताकी । बसन ओट करि कोट बिसंभर परन न दीन्ही झाँकी । —सूर०, १ । ११३ ।

झाँकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] १. दर्शन । अवलोकन । झाँकने या देखने की क्रिया या भाव ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मिलना ।—लेना ।—होना ।

२ दृश्य । वह जो कुछ देखा जाय । उ०—काँटे समेटती, फूल छींटती झाँकी ।—साकेत, पृ० २१० ।

क्रि० प्र०—देखना ।

३. वह जिसमें से झाँका जाये । झरोखा ।

झाँख—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा जंगली हिरन । उ०—ठाढ़े ढिग बाघ बिग चीते चितवत झाँख मृग शाखामृग सब रीझि रीझि रहे हैं ।—देव (शब्द०) ।

झाँखनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० झंखना] दे० 'झीखना' । उ०—

(क) इंद्री बस न्यारी परी सुख लूटति आँखि। सूरदास सग रहै तेऊ भरै झाँखि।—सूर (शब्द०)। (ख) एहि बिधि राउ मनहि मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मनु माखा।—तुलसी (शब्द०)।

झाँखर—संज्ञा पुं० [प्रा० झखर; हिं० झखाड़] १. 'झखाड़'। उ०—झाँखर जहाँ सुछाड़हु पथा। हिलगि मकोय न फारहु कंथा।—जायसी (शब्द०)। २ अरहर की वे खूँटियाँ जो फसल काटने के बाद खेत में रह जाती हैं।

झाँगला—वि० [देश०] ढीला ढाला (कपड़ा)। उ०—पहिर झाँगले पटा पाग सिर टेढ़ी बाँधे। घर मे तेल न लोन प्रीत चेरी सों साधे।—गिरधर (शब्द०)।

झाँगा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झागा'। उ०—पीत बसन पहिरे सुठि झाँगा। चखु चपल अलकैं जनु नागा।—विश्राम (शब्द०)।

झाँजन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझन'।

झाँझ—संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लक या झनझन से अनु०] १. मजीर की तरह के, पर उससे बहुत बड़े काँसे के ढले हुए तश्तरी के आकार के दो ऐसे गोलाकार टुकड़ों का जोड़ा जिसके बीच में कुछ उभार होता है। झाल। उ०—(क) घटा घटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ ताल।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६५। (ख) ताल मृदंग झाँझ इंद्रिनि मिलि बीना बेनु बजायो।—सूर०, १। २०५।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

विशेष—इसको उभार में एक छेद होता है जिसमें डोरी पिरोई रहती है। इसका व्यवहार एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर आघात करके पूजन आदि के समय घड़ियालों और शंखों के साथ यों ही बजाने में, रामायण की चौपाइयों के गाने के समय रामलीला में अथवा ताशे और ढोल आदि के साथ ताल देने में होता है।

२. क्रोध। गुस्सा।

क्रि० प्र०—उतारना।—चढ़ाना।—निकालना।

३. पाजीपन। शरारत। उ०—रुक्यो साँकरे कुंज मग करत झाँझ झकरात। मद मंद मारुत तुरँग खूँदन आवत जात।—बिहारी (शब्द०)। ४ किसी दुष्ट मनोविकार का आवेग। ५ सूखा हुआ कुआँ या तालाब। ६ भोग की इच्छा। विषय की कामना। ७. दे० 'झाँझर'।

झाँझ²†—वि० [सं० जर्जर] जो गाढ़ा या गहरा न हो। मामूली। हलका (भाँग आदि का नशा)।

झाँझड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँझ+ड़ी (प्रत्य०)] १ दे० 'झाँझ'। २ दे० 'झाँझन'।

झाँझण‡—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ मे खुशी का एक गीत। उ०—सुंदर बछि विषै सुख कौं घर बूड़त हैं अरु झाँझण गावै।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४५६।

झाँझन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कड़े की तरह का पैर में पहनने का एक प्रकार का गहना। पैंजनी। पायल।

विशेष—यह गहना चाँदी का बनता है और इसमें नकाशी और जाली बनी होती है। यह भीतर से पोला होता है और इसके अंदर छर्रे पड़े होते हैं जिनके कारण पैरों के उठाने और रखने मे 'झन झन' शब्द होता है। कभी कभी लोग घोड़ों और बैलों आदि को भी शोभा के लिये और झन् झन् शब्द होने के लिये पीतल या ताँबे की झाँझन पहनाते हैं।

झझाँर¹†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झाँझन। पैंजनी। उ०—ब बाँहे सुंदरी बहरखा, चासु चुड़ स बचार। मनु हरि कटि थल मेखला, पग झाँझर झणकार।—ढोला०, दू० ४८१। २. दे० 'छलनी'।

झाँझर²†—वि० १ पुराना। जर्जर। छिन्न भिन्न। फूटा टूटा। २ छेदवाला। छिद्रयुक्त। उ०—आन अनुरागे पिया आन देस गेला। पिया बिना पाँजर झाँझर भेला।—विद्यापति, पृ० १७६।

झाँझरा—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० झाँझरी] पोला। जर्जर। खोखला। उ०—मलूक कोटा झाँझरा भीत परी भहराय।—मलूक०, पृ० ४०।

झाँझरि†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझन'। उ०—(क) सहस कमल सिंहासन राजैं। अनहद झाँझरि मितही बाजै।—चरण० बानी, पृ० २९८।

झाँझरी¹†—संज्ञा स्त्री० [देश०] झाँझ नामक बाजा। झाल। उ०—बजै झाँझरी शंख नगारे। गए प्रेत सब देव अगारे।—रघुराज (शब्द०)। २. झाँझन नामक पैर का गहना। उ०—झाँझरियाँ झनकेंगी खरी खरकैंगी तनी तनी तन को तन तारे।—देव (शब्द०)।

झाँझरी²—वि० स्त्री० [सं० जर्जर] छिद्रों से भरी हुई। जिसमें बहुत से छेद हों। उ०—(क) कबिरा नाव त झाँझरी कूटा खेवनहार। हलका हलका तरि गया बूडे जिन सिर भार।—कबीर (शब्द०)। (ख) गहिरी नदिया नाव झाँझरी, बोझा अधिक भई।—धरम० श०, पृ० २६।

झाँझा¹—संज्ञा पुं० [हिं० झाँझरा] १ फसल में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

विशेष—यह बढ़ी हुई फसल के पत्तों को बीच बीच में से खाकर बिल्कुल झँझरा कर देता है। यह छोटा बड़ा कई आकार और प्रकार का होता है और बहुधा तमाकू या मुकसी (मुली ?) के पत्तों पर पाया जाता है।

२ घी और चीनी के साथ भुनी हुई भाँग की फंकी। † ३ छेद छानने का पौधा।

झाँझा²—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झाँझ'। २ झंझट। बखेड़ा।

झाँझिया—संज्ञा पुं० [हिं० झाँझ+इया (प्रत्य०)] झाँझ बजानेवाला मनुष्य। बाजेवालों में से वह जो झाँझ बजाता हो।

झाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० जट, हिं० झड़ (बाल)] १ पुरुष या स्त्री

का मूत्रेंद्रिय पर के बाल। उपस्थ पर के बाल। पशम। शष्प। उ०—आबरू की आँख में एक गाँठ है। आबरू सब शायरों की झाँट है। —कविता कौ०, भा० ४, पृ० १०।

मुहा०—झाँट उखाड़ना = (१) बिलकुल व्यर्थ समय नष्ट करना। कुछ भी काम न करना। (२) कुछ भी हानि या कष्ट न पहुँचा सकना। इतनी हानि भी न पहुँचा सकना जितनी एक झाँट उखड़ जाने से हो सकती है। झाँट जल जाना या राख हो जाना = किसी को अभिमान आदि की बातें करते देखकर बहुत बुरा मालूम होना।

विशेष—इस मुहावरे का व्यवहार अभिमान करनेवाले के प्रति बहुत अधिक उपेक्षा दिखलाने के लिये किया जाता है।

२ बहुत तुच्छ वस्तु। बहुत छोटी या निकम्मी चीज।

मुहा०—झाँट बराबर = (१) बहुत छोटा। (२) अत्यंत तुच्छ। झाँट की झँडूल्ली = अत्यंत तुच्छ (पदार्थ या मनुष्य)।

झाँटा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. झकझट। २ झाड़ू। ३ झापड़। थप्पड़।

झाँटि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँठ] दे० 'झाँट'। उ०—एकोहं आपुहि भयो द्वितीया दीन्हो काटि। एकोह कासों कहै महापुरुष की झाँटि।—कबीर (शब्द०)।

झाँती(पु)†—संज्ञा स्त्री० [देश०] देह। शरीर। उ०—दादू झाँती पाए पसु पिरी अदरि सो आहे। होणी पाणे बिच मैं मिहर न लाहे।—दादू० बानी, पृ० १६३।

झाँप¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना] १ वह जिससे कोई चीज ढाँकी जाय टोकरा, झावा आदि। २. पड़ी हुई चीजें निकालने की एक प्रकार की कल। ३. नींद। झपकी। ४ पर्दा। चिक। उ०—झुकि झुकि झूमि झूमि झिल झिल झेल झेल झरहुरी झाँपन मे झमकि झमकि उठै।—पद्माकर (शब्द०)। ५ निकासा। मस्तूल का झुकाव (लश०)। ६ मूँज का बना पिटारा। झाँपा।

झाँप²—संज्ञा पुं० [सं० झम्प] उछल कूद।

क्रि० प्र०—देना = दे० 'झप' का मुहा० 'झप देना'।

झाँपना¹—क्रि० स० [सं० उज्झम्पन, हिं० झाँपना] १. ढाँकना। आवरण डालना। ओट में करना। आड़ में करना। उ०—जया गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुविचारी।—तुलसी (शब्द०)। २ पकड़कर दबा लेना। छोप लेना।

झाँपना²—क्रि० अ० लजाना। शरमाना। झेंपना।

झाँपा†—संज्ञा पुं० [हिं० झापना] १. ढाँकने का बाँस आदि का बना हुआ बड़ा टोकरा। २ मूँज का बना हुआ पिटारा।

झाँपी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना] १. ढकने की टोकरी। २ मूँज की बनी हुई पिटारी, जिसमें कभी कभी चमड़ा भी मढ़ा होता है। ३ झपकी। नींद। ऊँघ।

झाँपी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ धोबिन चिड़िया। खजन पक्षी। २. छिनाल स्त्री। पुंश्चली।

यौ०—झाँपो के‡ = एक गाली।

झाँमा†—वि० [देशी या सं० दग्ध] १. दीप्त। दग्ध। २ अनुज्वल।

झाँय(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'। उ०—चंद्रकांति मनि माझ जिमि, परति चंद की झाँय।—नंद० ग्रं०, पृ० १३१।

झाँय झाँय—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ किसी स्थान की वह स्थिति जो सन्नाटे या सूनेपन के कारण होती है। २. दे० 'झाँव झाँव'।

झाँव झाँव—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ घोर गुल। २ रग ढग। भाव ताव। उ०—बनियऊँ झाँव झाँव दिखलाने के लिये ·।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३६।

क्रि० प्र०—करना। —दिखाना। —होना।

झाँवना—क्रि० सं० [हिं० झाँवा] झाँवे से रगड़कर (हाथ पैर आदि) धोना। उ०—हौं गई भेंट भई न सहेट में तातें रुखाहुत मो मन छायगो। कालिंदी के तट झाँवत पाँय हौं आयो तहाँ लखि रूखे सुभायगो।—प्रतापसिंह सवाई (शब्द०)।

झाँवर¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाबर] वह नीची भूमि जिसमें वर्षाकाल में जल भर जाता है और जिसमें मोटा अन्न जमता है। डाबर।

विशेष—ऐसी भूमि धान के लिये बहुत उपयुक्त होती है।

झाँवर²†—वि० [सं० श्यामल][वि० स्त्री० झाँवरी] १. झाँवे के रंग का। कुछ कुछ काले रंग का। २ मलिन। उ०—साँची कहौं रावरे सों झाँवरे लगैं तमाल।—(शब्द०)। ३. मुरझाया हुआ। कुम्हलाया हुआ। ४. शिथिल। मंद। सुस्त। उ०—निसि न नींद आवै दिवस न भोजन पावै चितवत मग भई दृष्टि झाँवरी।—सूर (शब्द०)।

झाँवरा(पु)—वि० [हिं० झाँवर] कुछ कुछ काले रंग का। उ०—बलिहारी अब क्यों किये सैन साँवरे संग। नहिं कछु गोरे अंग ये भए झाँवरे रंग।—स० सप्तक, पृ० २४६।

झाँवली—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँव (= छाया)] १. झलक। २ आँख की कनखी। कनखी।

यौ०—झाँवलीबाज।

मुहा०—झाँवली देना = (१) आँख से इशारा करना। (२) बातों से फँसाना। भुलावा देना।

झाँवाँ—संज्ञा पुं० [सं० झामक] जली हुई ईंट। वह ईंट जो जलकर काली हो गई हो। इससे रगड़कर अस्त्र, शस्त्र आदि चीजों को, विशेषतः पैरों की मैल छुड़ाते हैं। उ०—झाँवाँ लेवै जोग तेग को मसै बनाई।—पलटू०, पृ० २।

झाँसना—क्रि० स० [हिं० झाँसा] १. ठगना। धोखा देना। झाँसा देना। २ किसी स्त्री को व्यभिचार में प्रवृत्त करना। स्त्री को झाँसना।

झाँसा—संज्ञा पुं० [सं० अध्यास (= मिथ्या ज्ञान), प्रा० अज्झास] अपना काम साधने के लिये किसी को बहकाने की क्रिया। धोखा। दमबुत्ता। छल। उ०—अरे मन उसे क्या है दुनियाँ का झाँसा। लिया हात में भीक का जिसने काँसा।—दक्खिनी०, पृ० २५७।

क्रि० प्र०—देना। उ०—अब्बासी सल्ली पत्तो करके कहाँ ले गई

कैसा झाँसा दे गई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४१०।
—बताना। उ०—रुपया पैसा अपने पास रक्खऽ, यारन के दूर से झाँसा बतावऽ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३५४

यौ०—झाँसा पट्टी = धोखा घड़ी।

मुहा०—झाँसे में आना = धोखे में आना। उ०—यहाँ बड़े बड़ों की आँखें देखी हैं। आपके झाँसे में कोई उनेला आए तो आए हमपर चकमा न चलेगा।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

झाँसिया—संज्ञा पुं० [हिं० झाँसा+इया (प्रत्य०)] झाँसा देनेवाला। धोखेबाज।

झाँसी—संज्ञा पुं० [देश०] १. उत्तर प्रदेश का एक प्रसिद्ध नगर जहाँ की रानी लक्ष्मीबाई ने, जो झाँसी की रानी नाम से प्रसिद्ध हैं, सन् १८५७ में स्वतंत्रता संग्राम (गदर) के अवसर पर अंग्रेजों से जमकर लोहा लिया और युद्धक्षेत्र में लड़ती हुई मारी गई थीं। २ एक प्रकार का गुबरेला जो दाल और तमाखू की फसल को हानि पहुँचाता है।

झाँसूँ—संज्ञा पुं० [हिं० झाँसा] झाँसा देनेवाला। धोखेबाज।

झा—संज्ञा पुं० [सं० उपाध्याय, पा० उपज्झाय प्रा० उवज्झय, उवज्झाय, उज्झ, उज्झाय, उज्झाओ, ओज्झाय, हिं० ओझा अथवा सं० ध्या (= ध्यान, चिंतन]; प्रा० झा] मैथिली या गुजराती ब्राह्मणों की एक उपाधि।

झाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'। उ०—मनि दर्पन सम अवनि रमवि तापर छबि देही। बियुरति कुंडल अलक तिलक झुकि झाई लेही।—नंद ग्रं०, पृ० ३२।

झाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'।

झाऊ—संज्ञा पुं० [सं० झावुक] एक प्रकार का छोटा झाड़ जो दक्षिणी एशिया में नदियों के किनारे रेतीले मैदानों में अधिकता से होता है। पिचुल। अफल। बहुग्रंथि।

विशेष—यह झाड़ बहुत जल्दी जल्दी और खूब फैलता है। इसकी पत्तियाँ सरो की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और गरमी के अंत में इसमें बहुत अधिकता से छोटे छोटे हलके गुलाबी फूल लगते हैं। बहुत कड़ी सरदी मे यह झाड नहीं रह सकता। कुछ देशों मे इससे एक प्रकार का रंग निकाला जाता है और इसकी पत्तियो आदि का व्यवहार औषधों में किया जाता है। इसमें से एक प्रकार का क्षार भी निकलता है। इसकी टहनियो से टोकरियाँ और रस्सियाँ आदि बनती हैं और सूखी लकड़ी जलाने के काम में आती है। कहीं कहीं रेगिस्तानों में यह झाड बहुत बढ़कर पेड़ का रूप भी धारण कर लेता है।

झाक(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० झक] वज्रपात। अशनिपात। उ०—(१) बहु बहु रुकहु कै कै झाक। बज्जे विषम आवध झाक।—पृ० रा०, ६।१६३।

झाकर—संज्ञा पुं० [देशी झंखर] कँटीली झाड़ियों और पौधों का समूह। झखाड़। उ०—साधो एक बन झाकर झउआ। खावा तितिर तेहि माह भुलाने सान बुझावत कौआ।—सं० दरिया, पृ० १२५।

झाग—संज्ञा पुं० [हिं० गाज] पानी आदि का फेन। गाज। फेन।
क्रि० प्र०—उठना। —छूटना। —छोड़ना। —निकलना।—फेंकना।

झागड़(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झगड़ा'। उ०—सहज ही सहज पग धारा जब आगम को दसो परकार झागड बजाई।—चरण० बानी, पृ० ५५।
क्रि० प्र०—बजाना।

झागना[1]†—क्रि० अ० [हिं० झाग] झाग उत्पन्न होना। फेन निकलना।

झागना[2]—क्रि० स० झाग उत्पन्न करना। फेन निकालना।

झाज(पु)[1]—संज्ञा पुं० [अ० जहाज] दे० 'जहाज'। उ०—किया था खुदा यूँ उसे सरफराज, जो थे सातों दरिया उपर उसके झाज।—दक्खिनी०, पृ० ७७।

झाज[2]—संज्ञा पुं० [?] महीन कागज। बैलून। गुब्बारा। उ०—बम्बा गिरा गिरा को तोपाँ चला चला को। झाजाँ में भर को ग्यासाँ हुव्वा में तू उड़ा को।—दक्खिनी०, पृ० २९६।

झाझ[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझ'।

झाझ[2](पु)—संज्ञा पुं० [अ० जहाज, दक्खिनी, झाज] दे० 'जहाज'।

झाझन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझन'। उ०—बाजे शख बीन स्वर सोई। झाझन केरी बाजन होई।—कबीर सा०, पृ० ५८४।

झाझी(पु)‡—वि० [सं० दग्ध, प्रा० दज्झ, दाझ; राज० झाझ] १. दग्ध करनेवाली। जलानेवाली। इतनी अधिक शीतल जिससे जलने का भाव प्रतीत हो। उ०—अति घण ऊनमि आवियउ, झाझी रिठि झड़वाइ। बग ही भला त बप्पड़ा, धरणि न मुक्कइ पाइ।—ढोला०, दू० २५७।

झाट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुंज। निकुंज। २. झाड़ी। ३. व्रण का प्रक्षालन। घाव को धोना।

झाट[2]—संज्ञा पुं० [देश०] शस्त्रों का प्रहार। उ०—पड झाट थाट छल राज पाट, दिल्लीस जले दल बले दाट।—रा० रू०, पृ० ७४।

झाटकपट—संज्ञा पुं० [सं० शाटक पट ?] एक प्रकार की ताजीम जो राजपूताने के राजदरबारों मे अधिक प्रतिष्ठित सरदारों को मिला करती थी।

झाटल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का लोध्र। गोलीढ। घंटा-पटलि। २. मोरवा नामक वृक्ष।

विशेष—यह सफेद और काला होने के कारण दो प्रकार का होता है। आक की भाँति इसमें से भी दूध निकलता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं और फल घंटियों की भाँति लटकते हैं।

झाटल(पु)‡[2]—वि० [?] आहत। त्रस्त। उ०—झटक झाटल छोड़ल ठाम। कएल महातरु तर बिसराम।—विद्यापति, पृ० ३०३।

झाटा†—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुही। २. भुइँ आँवला।

झाटास्त्रक—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज। मतीरा [को०]।

झाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुई आँवला।

पर्या०—झाटा। झाटीका। झाटी।

झाड़¹—संज्ञा पुं० [सं० झाट; देशी झाड (= लतागहन) १. वह छोटा पेड़ या कुछ बड़ा पौधा जिसमें पेडी न हो और जिसकी डालियाँ जड़ या जमीन के बहुत पास से निकलकर चारों ओर खूब छितराई हुई हों। पौधे से इसमें अतर यह है कि यह कटीला होता है। २ झाड़ के आकार का एक प्रकार का रोशनी करने का सामान जो छत मे लटकाया या जमीन पर बैठकी की तरह रखा जाता है।

विशेष—इसमें कई ऊपर नीचे वृत्तों में बहुत से शीशे के गिलास लगे हुए होते हैं, जिनमे मोमबत्ती, गैस या बिजली आदि का प्रकाश होता है। नीचे से ऊपर की ओर के गिलासो के वृत्त बराबर छोटे होते जाते हैं।

यौ०—झाड़ फानूस = शीशे के झाड, हाड़ियाँ और गिलास आदि जिनका व्यवहार रोशनी और सजावट आदि के लिये होता है।

३. एक प्रकार की आतिशबाजी जो छूटने पर झाड़ या बड़े पौधे के आकार की जान पड़ती है। ४ छीपियों का एक प्रकार का छापा, जो प्राय दस अगुल चौड़ा और बीस अंगुल लंबा होता है और जिसमें छोटे पेड़ या झाड़ की आकृति बनी रहती है। ५. समुद्र में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास जिसे जरस या जार भी कहते हैं।—(लश०)। ६ गुच्छा। लच्छा।

झाड़²—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] १. झाड़ने की क्रिया। झटककर या झाड़ू आदि देकर साफ करने की क्रिया।

यौ०—झाड़ पोंछ = झाड़ और पोंछकर साफ करने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना। —रखना। —होना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों ही में विशेषतः होता है। जैसे, झाड़पोंछ, झाड़बुहार, झाड़झूड़।

२ बहुत डाँट या फटकारकर कही हुई बात। फटकार। डाँटडपट।

क्रि० प्र०—देना।—बताना।—सुनना।—सुनाना।

३. मंत्र से झाड़ने की क्रिया।

यौ०—झाड़ फूँक = मन्त्रोपचार।

झाड़³—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ना] झटका (कुश्ती)।

झाड़खंड—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ + खंड] १. कँटिदार जंगल। बन। ऐसा वनविभाग जिसमें अधिकतर झरबेरी आदि के कँटीले झाड़ हों। २. अत्यंत घना और भयकर जगल। ३ छत्तीसगढ़ और गोंडवाने का उत्तरी भाग। झारखड।

झाड़ झखाड़—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ + झखाड़] १ कँटिदार झाड़ियों का समूह। २. व्यर्थ की निकम्मी चीजों का समूह।

झाड़दार¹—वि० [हिं० झाड + फा० दार] १. सघन। घना। २. कँटीला। कँटिदार। ३ जिसपर झाड़ या बेलबूटे आदि बने हों। ४. जिसमें शीशे के झाड़ की सजावट हो। जैसे,—झाड़दार कमरा।

झाड़दार²—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का कसीदा जिसमें बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं। २. एक प्रकार का गलीचा जिसपर बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं।

झाड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] १. वह जो कुछ झाड़ने पर निकले। २. वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज गर्द आदि दूर करने के लिये झाड़ी जाय। झाड़ने का कपड़ा।

झाड़ना¹—क्रि० स० [सं० क्षरण] १. किसी चीज पर पड़ी हुई गर्द आदि साफ करने या और कोई चीज हटाने के लिये उस चीज को उठाकर झटका देना। झटकारना। फटकारना। जैसे,—जरा दरी और चाँदनी झाड़ दो। २. झटका देकर किसी एक चीज पर पड़ी हुई किसी दूसरी चीज को गिराना। जैसे,—इस अँगोछे पर बहुत से बीज चिपक गए हैं, जरा उन्हें झाड़ दो। ३. झाड़ू या कपड़े आदि की रगड या झटके से किसी चीज पर पडी या लगी हुई दूसरी चीज गिराना या हटाना। जैसे,—इन किताबों पर की गर्द झाड़ दो। ४. झाड़ू या कपडे आदि के द्वारा अथवा और किसी प्रकार गर्द मैल, या और कोई चीज हटाकर कोई दूसरी चीज साफ करना। जैसे,—(क) सबेरे उठते ही उन्हें सारा घर झाड़ना पड़ता है। (ख) इस मेज को झाड़ दो।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

५. बल या युक्तिपूर्वक किसी से धन ऐंठना। झटकना।—(क्व०)।

संयो० क्रि०—लेना।

६. रोग या प्रेतबाधा आदि दूर करने के लिये किसी को मन्त्र आदि से फूँकना। मन्त्रोच्चार करना। जैसे, नजर झाड़ना।

संयो० क्रि०—देना।

७. बिगडकर कडी कडी बातें कहना। फटकारना। डाँटना।

संयो० क्रि०—देना।

८. निकालना। दूर करना। हटाना। छुड़ाना। जैसे,—तुम्हारी सारी बदमाशी झाड़ देंगे। उ०—मोहूँ ते ये चतुर कहावति। ये मनही मन मोको नारति। ऐसे वचन कहूँगी इन तें चतुराई इनकी मैं झारति।—सुर (शब्द०)। ९. अपनी योग्यता दिखलाने के लिये गढ़ गढ़कर बातें करना। जैसे,—वह आते ही अँगरेजी झाड़ने लगा। १०. त्यागना। छोड़ना। गिराना। जैसे, चिड़ियों का पंख झाड़ना।

झाड़फूँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना + फूँकना] मन्त्र आदि से झाड़ने या फूँकने की वह क्रिया जो भूत प्रेत आदि की बाधाओं अथवा रोगों आदि को दूर करने के लिये की जाती है। मन्त्र आदि पढ़कर झाड़ना या फूकना।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

झाड़बुहार—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना + बुहारना] झाड़ने और बुहारने की क्रिया। सफाई।

झाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ना] १. झाड़ फूँक । २ तलाशी । ३ सितार के सब तारों (विशेषतः बाजे का तार और चिकारी का तार) को एक साथ बजाना । झाला । ४. मल । गुह । मैला ।

मुहा०—झाड़ा फिरना = मलोत्सर्ग करना । हगना । झाड़ा फिराना = हगाना । छोटे बच्चों को मलत्याग कराना ।

५. मलोत्सर्ग का स्थान । पाखाना । टट्टी ।

क्रि० प्र०—जाना ।

झाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़] १. छोटा झाड़ । पौधा । २ बहुत से छोटे छोटे पेड़ों का समूह या झुरमुट । ३. सूअर के बालों की कूँची । बलौंछी ।

झाड़ीदार—वि० [हिं० झाड़ी + फा० दार] झाड़ी की तरह का । छोटे झाड़ का सा । २. कँटीला । काँटेदार ।

झाड़ू—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] १. बहुत सी लंबी सीकों आदि का समूह जिससे जमीन, फर्श आदि झाड़ते हैं । कूँचा । बोहारी । सोहनी । बढ़नी ।

मुहा०—झाड़ू देना = (१) झाड़ू की सहायता से कूड़ा करकट साफ करना । (२) दे० 'झाड़ फेरना' । झाड़ू फिरना = सफाया हो जाना । कुछ न रहना । झाड़ू फेरना = बिलकुल नष्ट कर देना । झाड़ू मारना = (१) घृणा करना । (२) निरादर करना । (स्त्रि०) ।

२. पुच्छल तारा । केतु । दुमदार सितारा ।

झाड़ूकश—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू + फा० कश] १. झाड़ू देनेवाला । झाड़ू बरदार । २. भंगी । मेहतर । चमार ।

झाड़ूदुमा—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू + दुम] वह हाथी जिसकी दुम झाड़ू की तरह फैली हो । ऐसा हाथी ऐबी गिना जाता है ।

झाड़ूबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ + फा० बरदार] १ वह जो झाड़ू देता हो । २. चमार । भंगी । मेहतर ।

झाड़ूवाला—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू + वाला] १. वह जो झाड़ू देता हो । झाड़ू बरदार । २ भंगी, मेहतर या चमार ।

झाण—संज्ञा पुं० [सं० ध्यान, प्रा० झाण] १. अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव । मानसिक प्रत्यक्ष । ध्यान । २. हठयोग के अनुसार वह साधना जिसमें शरीर के भीतरी पाँच तत्वों के साथ पंचमहाभूतों का ध्यान करके उन्हें ऊर्ध्व में स्थित किया जाता है ।

झाती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्यातृ, प्रा० झाती या देश०] ध्यान करनेवाला । चिंतक । उ०—खंडित निद्रा अल्प अहारी । झाती पावै अननै बारी ।—प्राण०, पृ० ८१ ।

झाप†(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० झाँपना] गोपन । छिपाव । उ०—आतर दूतर नरि, से कइसे जएबह तरि, आरति न करह झाप ।—विद्यापति, पृ० १५८ ।

क्रि० प्र०—करना ।

झापड़—संज्ञा पुं० [सं० चपेटा] थप्पड़ । पड़ाका । लप्पड़ । तमाचा ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—झापड़ कसना । झापड़ देना । झापड़ मारना = थप्पड़ मारना । उ०—यदि कोई बोल दे तो बिना एकाध झापड़ मारे मानते भी नहीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६७ ।

झापा†(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झंप, हिं० झाँपना] १. झपकी । तंद्रा । २. कमजोरी । शिथिलता । उ०—कहा होई जो श्री दुख तापा । सुखै जीभ दादू भी झापा ।—इंद्रा०, पृ० १५१ ।

झाबर¹—संज्ञा पुं० [?] दलदली भूमि ।

झाबर²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झाबा' । उ०—पुनि झाबर पै झाबर आई । घिरित खाँड का कहौं मिठाई ।—जायसी (शब्द०) ।

झाबा—संज्ञा पुं० [हिं० झाँपना (= ढाँकना)] १. टोकरा । खाँचा । हट्ठे का बड़ा दौरा ।—उ०—हम लोग दो रोटी के लिये सिर पर झाबा रखे तरकारी बेचते फिरें ।—फूलो०, पृ० ११ । २. घी, तेल आदि तरल पदार्थों के रखने का चमड़े का टोंटीदार बरतन । ३. चमड़े का बना हुआ गोल थाल जिसमें पंजाब में लोग आटा छानते हैं । इसे सफरा कहते हैं । ४ रोशनी का झाड़ जो लटकाया जाता है । ५ दे० 'झब्बा' ।

झाबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाबा] छोटा झाबा । टोकरी ।

झाम(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] १. झब्बा । गुच्छा । उ०—सुंदर दसन चिबुक अति सुंदर हृदय विराजत दाम । सुंदर भुजा पीत पट सुंदर कनक मेखला झाम ।—सूर (शब्द०) । २ एक प्रकार की बड़ी कुदाल जिससे कुएँ की मिट्टी निकालते हैं । ३. घुड़की । डाट डपट । ४. धोखा । छल । कपट ।

झामक—संज्ञा पुं० [सं०] जली हुई ईंट । झावाँ ।

झामर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. टेकुआ रगड़ने की सान । तकशाण । सिल्ली । २ स्त्रियों का पैर में पहनने का एक गहना जो पैजनी की तरह का होता है ।

झामर²—वि० [सं० श्यामल, प्रा० झामर] मलिन । साँवला । झाँवर । उ०—एव भेल विपरीत झामर देहा । दिवसे मलिन जनु चाँदक रेहा ।—विद्यापति, पृ० १३३ ।

झामरझूमर(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] चमक दमक । धूमधाम । झूठा प्रपंच । ढकोसला । उ०—दुनिया झामरझूमर अरुझी ।—कबीर० श०, पृ० ४१ ।

झामरि(पु)—वि० स्त्री० [सं० श्यामल, प्रा० झामर] दे० 'झामर' । उ०—सामरि हे झामरि तोर देह, की कहु के सयँ लाएलि नेह ।—विद्यापति, भा० २, पृ० ५६ ।

झामा†—संज्ञा पुं० [सं० श्यामल, प्रा० झामल] 'झाँवा' । उ०—शरीर का पसीना शरीर पर सूख कैदियों की त्वचा कड़ी और झामे की तरह खुरदुरी हो गई ।—भस्मावृत०, पृ० २० ।

झामी†—वि० संज्ञा पुं० [हिं० झाम] धोखेबाज । चालाक । धूर्त । जिनके मन न फोऊ झानी । झूठि न वादि न परतियगामी । —पद्माकर (शब्द०) ।

झायँ झायँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ झनकार । झन् झन् शब्द । २. सन्नाटे में हवा का शब्द । वह शब्द जो किसी सुनसान

स्थान में हवा के चलने तथा गूँज आदि के कारण सुनाई पड़ता है और जिससे कुछ भय सा होता है। जैसे, इतना बड़ा सुना घर भायँ भायँ करता है।

झार(पु)†¹—वि० [सं० सर्व, प्रा० सारो, हिं० सारा] १. एकमात्र। निपट। केवल। उ०—दीयो दधि दान को सुकेसे ताहि भावत है जाहि मन भायो झार झगरो गोपाल को।—पद्माकर (शब्द०)। २. संपूर्ण। कुल। सब। समस्त। उ०—कै नख तें सिख लौं पदमाकर जाहिरै झार सिंगार कियो है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६८। ३. समूह। झुंड।

यौ०—झारझार। झाराझार।

झार²—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला (=ताप)] १. दाह। डाह। जलन। ईर्ष्या। उ०—मोसों कहो बात बाबा यह बहुत करत तुम सोच बिचार। कहा कहौं तुम सो मैं प्यारे कंस करत तुमसों कछु झार।—सूर०, १०।५३०। २. ज्वाला। लपट। आँच। उ०—(क) जनहुँ छाँह महँ धूप दिखाई। तैसे झार लाग जो आई।—जायसी (शब्द०)। (ख) नाम लै चिलात बिलखात अकुलात अति तात तात तौंसियत झौंसियत झारहीं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७४। (ग) गरज किलक आघात उठत मनु दामिनि पावक झार। —सूर (शब्द०)। ३. झाल। चरपरापन। उ०—छाँछ छबीली धरी धुँगारी। झरहै उठत झार की न्यारी। —सूर (शब्द०)। ४. वर्षा की बूँदें। झड़ी।

झार³—संज्ञा पुं० [हिं० झड़ना] झरना। पौना।

झार⁴—संज्ञा पुं० [सं० झाट, देशी झाड़ (=लता गहन) १. वृक्ष। पेड़। झाड़। २. एक पेड़ का नाम।

झारखंड—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़+खंड] १ एक पहाड़ जो वैद्यनाथ होता हुआ जगन्नाथ पुरी तक चला गया है।

विशेष—मुसलमानों ने अपने इतिहास ग्रंथों में छत्तीसगढ़ और गोंडवाने के उत्तरी भाग को झारखंड के नाम से लिखा है।

२ दे० झाड़खंड।

झारन—क्रि० स० [हिं० झाड़ना] दे० 'झाड़न'।

झारना¹(पु)—क्रि० स० [सं० झर] १ बाल साफ करने के लिये कंघी करना। २. छाँटना। अलग करना। जुदा करना। ३. दे० 'झाड़ना'।

झारना²(पु)—क्रि० स० [हिं० झलना] दे० 'झलना'। उ०—सुरति चँवर लै सनमुख झारे।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १७।

झारफूँक†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाड़फूँक'।

झारा¹—संज्ञा पुं० [हिं० झारना] १. पतली छनी हुई भाँग। २. वह सूप जिससे अन्न को फटककर सरसों इत्यादि से पृथक् करते हैं। झरवा। † ३ लाठी तेजी से चलाने का हुनर।

झारा²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला, हिं० झाल] झार। ज्वाला। उ०—औरु दगध का कहौं अपारा। सुनै सो जरै कठिन असि झारा।—पद्मावत, पृ० २४१।

झारि¹(पु)†—वि० [हिं० झार] दे० 'झार¹'। उ०—कहहु सुमंत बिचारि केहि बालक घोटक गह्यो। बसैं इहाँ ऋषि झारि क्षत्रिन कर न निवास इत।—(शब्द०)।

झारि²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ी, या सं० धार (=धारा)] अनवरत वर्षा की झड़ी। अखंड बूँदों की धारा। उ०—मेघनि जाइ कही पुकारि। सात दिन भरि बरषि ब्रज पर गई नैकु न झारि। —सूर०, १०।८८२।

झारी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] लुटिया की तरह एक प्रकार का लँबोतरा पात्र जिसमें जल गिराने के लिये एक ओर एक टोंटी लगी रहती है। इस टोंटी में से धार बँधकर जल निकलता है। इसका व्यवहार देवताओं पर जल चढ़ाने अथवा हाथ पैर आदि धुलाने में होता है। उ०—(क) आसन दै चौकी आगे धरि। जमुनाजल राख्यो झारी भरि।—सूर (शब्द०)। (ख) आपुन झारी माँगि विप्र के चरन पखारे। इती दूर श्रम कियो राय द्विज भए दुलारे।—सूर (शब्द०)।

झारी²—संज्ञा स्त्री० [सं० झारि] वह पानी जिसमे अमचूर, जीरा, नमक आदि घुला हुआ हो। इसका व्यवहार पश्चिम में अधिक होता है।

झारी(पु)³—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ी] दे० 'झाड़ी'। उ०—फूल झरें सखीं फुलवारी। दिस्टि परी उकठी 'सब झारी'। —जायसी ग्रं०, पृ० २५४।

झारी⁴—वि० [हिं०] दे० 'झार'।

झारू—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू] दे० 'झाड़ू'।

झारनेवाला†—वि० [सं० शद प्रा० झड़, हिं० झारा+वाला (प्रत्य०)] पटा खेलनेवाला। पठा। बनेठी या लकड़ी चलानेवाला।

झार्झर—संज्ञा पुं० [सं०] ढोल या हुड़ुक बाजा बजानेवाला [को०]।

झाल¹—संज्ञा पुं० [सं० झल्लक] झाँझ। काँसे का बना हुआ ताल देने का वाद्य। उ०—सहस गुजार में परमली झाल है, झिलमिली उलटि के पौन भरना।—पलटू०, पृ० ३०।

झाल²—संज्ञा पुं० [देश०] १ रहट्ठे का बड़ा खाँचा। २. झालने की क्रिया या भाव।

झाल³—संज्ञा स्त्री० [सं० झाला] १ चरपराहट। तीतापन। तीक्ष्णता। जैसे, राई की झाल, मिरचे की झाल। २ तरंग। मौज। लहर। ३. कामेच्छा। चुल। प्रसंग करने की कामना। झल।

झाल⁴—संज्ञा पुं० [हिं० झड़] दो तीन दिन की लगातार पानी की झड़ी जो प्राय जाड़े मे होती है। उ०—जिन जिन संबल ना किया असपुर पाटन पाय। झाल परे दिन आयए संबल किया न जाय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

झाल⁵—वि० [हिं० झार] दे० 'झार'¹।

झाल⁶—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल, प्रा० झाल] १ आँच। ज्वाला। उ०—अग्नि के झाल में सौंकड़े पैसता बैठते ऊठते श्री राम रक्षा करें।—रामानंद०, पृ० ६। †२. ग्रीष्म ऋतु। उ०—आये भेल झाल कुसुम सब छूछ। वारि विहुन सर केओ नहि पूछ। —विद्यापति, पृ० ३१५।

झालड़—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ झल्लरी] १ घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है। २ दे॰ 'झालर'।

झालना⑤¹—क्रि॰ स॰ [हिं॰?] १. धातु की बनी हुई वस्तुओं में टाँका देकर जोड़ लगाना। २. पीने की चीजों को बोतल आदि में भरकर ठंढा करने के लिये बरफ या शोरे में रखना।

संयो॰ क्रि॰—देना।

झालना²†⑤—क्रि॰ स॰ [सं॰ क्ष्वेल, प्रा॰ झेल; हिं॰ झेलना] ग्रहण करना। धारण करना। उ॰—जिणि दीहे तिल्लो निइइ, हिरणी झालइ गाभ। तींह दिहाँरी गोरडी पङ्तउ झालइ धाभ।—ढोला॰, दू॰ २८२। २ कबूल करना। स्वीकार। करना। उ॰—केवांइ झाली चाकरी, दूँण इजाका दीध।—रा॰, पृ॰ १२६।

झालर¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ झल्लरी] १. किसी चीज के किनारे पर शोभा के लिये बनाया, लगाया या टाँका हुआ वह हाशिया जो लटकता रहता है।

विशेष—इसकी चौड़ाई प्राय कम हुआ करती है और उसमे सुंदरता के लिये कुछ बेल बूटे आदि बने रहते हैं। मुख्यत झालर कपड़े में ही होती है, पर दूसरी चीजों मे भी शोभा के लिये झालर के आकार की कोई चीज बना या लगा लेते हैं। जैसे, गद्दी या तकिये की झालर, पंखे की झालर। २ झालर के आकार की या किनारे पर लटकती हुई कोई चीज। ३ किनारा। छोर। —(क्व॰)। ४. झाँझ। झाल। उ॰—(क) सुन्न सिखर पर झालर झलके बरसे अमी रस बुंद घुमा।—कबीर श॰, भा॰३, पृ॰ १०। (ख) घुरत निस्सान तहँ गैब की झालरा गैब के घट का नाद आवै।—कबीर श॰, पृ॰ ८८। ५ घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है। उ॰—घटे क्रिया वाँभण, मिटे झालर परसांदा। ईन प्रजा उपजे, निरख दुर रीत निसादां।—रा॰ रू॰, पृ॰ २०

झालर²†—संज्ञा पु॰ [देश॰]] एक प्रकार का पकवान जिसे झलरा भी कहते हैं। उ॰—झालर माँडे आए पोई। देखत उजर पाग जस धोई।—जायसी (शब्द॰)।

झालरदार—वि॰ [हिं॰ झालर+दार प्रत्य॰] जिसमें झालर लगी हो।

झालरना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'झलराना'। उ॰—नेक न झुरसी विरह झर नेह लता कुँभिलाति। निति निति होति हरी हरी खरी झालरति जाति।—बिहारी (शब्द॰)।

झालरा¹†—संज्ञा पु॰ [हिं॰ झालर] एक प्रकार का रुपहला हार। हुमेल।

झालरा²—संज्ञा पु॰ [हिं॰ ताल] चौड़ा कुआँ। बावली। कुंड।

झालरि⑤†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झालर] वंदनवार। लटकते हुए मोती आदि की पंक्ति। उ॰—कनक कलस धरि मंगल गावो, मोतियन झालरि लाव हो।—धरम॰, पृ॰ ४६।

झालरी⑤—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ झल्लरी] दे॰ 'झाल'। उ॰—घंटा ताल झालरी बाजै। जग मग जोति अवधि पुर छाजै।—रामानंद॰, पृ॰ ७।

झाला¹—संज्ञा पु॰ [देश॰] १. राजपूतों की एक जाति जो गुजरात और मारवाड़ मे पाई जाती है। २. सितार बजाने में गत के अंत में द्रुत गति से बाज और चिकारी के तारों का झाड़ा बजाना। ३ बकझक। झाँझाँ।

झाला²⑤—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ज्वाला, प्रा॰ झाला] दाह। ताप। जलन। जोश। उ॰—तपन तन, जिव उठत झाला, कठिन दुख अब को सहै।—संतबानी॰, भा॰ २, पृ॰ ९९।

झालि¹†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झड़] पानी की झड़ी भाव। उ॰—झालि परे दिन ग्रथए अंतर परि गइ साँझ। बहुत रसिक के लागते वेश्या रहिगी बाँझ।—कबीर (शब्द॰)।

क्रि॰ प्र॰—छाना।—पड़ना।

झालि²—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार की काँजी जो कच्चे आम को पीसकर उसमें राई, नमक और भुनी हींग मिलाकर बनाई जाती है। झारी।

झावँ झावँ—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] १ बकवाद। बकबक। २ हुज्जत तकरार।

क्रि॰ प्र॰—करना।—मचाना।

झावरि⑤—संज्ञा पु॰ [हिं॰ झूमर] दे॰ 'झूमर' उ॰—कढ़त गोल की गोल खेल खेलन झावरि हित।—प्रेमघन॰, भा॰ १, पृ॰३३

झावना⑤—क्रि॰ स॰ [हिं॰ झावाँ से नाम॰] झावेँ से रगड़कर धोना। मैल साफ करना। उ॰—नायन न्हवायके गुसायनि के पाँय झावैं, उझकि उझकि उठै वा कर लसन ते।—नट॰, पृ॰ ७४।

झावर—संज्ञा पु॰ [देश॰] दे॰ 'झाँवर'।

झावु, झावुक—संज्ञा पु॰ [सं॰] दे॰ 'झाऊ'।

झिंगा†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ झिङ्गाक] तरोई। तोरी। तुरई।

झिंगन संज्ञा पु॰ [देश॰] १ एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्ती से लाल रंग बनता है। २. सारस्वत ब्राह्मणों की एक जाति।

झिंगरि⑤—संज्ञा पु॰ [दे॰ प्रा॰ झिंगिर]। उ॰— झिंगरि चलुर पावस निगाष।—पृ॰ रा॰, १। ४३४।

झिंगा⑤¹†—वि॰ [देश॰ ? झिंगिर⑤ झिगर] झींगुर के समान। झींगुर की ध्वनि सा। उ॰—अनहद झिंगा शब्द सुनाओ।—कबीर श॰, भा॰ १, पृ॰ ३७।

झिंगाक—संज्ञा पु॰ [सं॰ झिङ्गाक] तोरई। तरोई।

झिंगिनी¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ झिङ्गिनी] एक प्रकार का जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है। इसके पत्ते महुए के समान और शाखाओं में दोनों ओर लगते हैं। फूल सफेद और फल बेर के समान होते हैं।

पर्या॰—झिंगी। झिंगिनी। झिंगिनी। प्रमोदिनी। सुनिर्यास। २ प्रकाश। ज्योति। चमक। लुक (को॰)।

झिंगिनी²⑤—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] क्षुद्र कीटविशेष। खद्योत। जुगनू। उ॰—चमकत सार सनाह पर, हय गय नर भर

लगि। मनौं वृच्छ परि झिंगिनियाँ, करत केलि विसि जगि।
—पृ० रा०, ८। ४३।

झिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० झिङ्गी] दे० 'झिंगिनी'।

झिंझी—वि० [देशी] अत्यंत क्षीण। दुर्बल।

झिंझिम—संज्ञा पुं० [सं० झिञ्झिम] जलता हुआ वन [को०]।

झिंझिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झिंझिया'[2]।

झिंझिरिस्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० झिञ्झिरिष्टा] झिंझिरिटा नामक क्षुप।

झिंझिरीटा—संज्ञा स्त्री० [सं० झिंझिरिस्टा] एक प्रकार का क्षुप।

झिंझी—संज्ञा स्त्री० [सं० झिञ्झी] झिल्ली। झींगुर।

झिंझोटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमे सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह दिन के चौथे पहर मे गाई जाती है।

झिंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० झिण्टी] कठसरैया। पियाबासा।

झिँकवा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'झोंका'। उ०—धोखे चलु जँतवा, झमकि लेहु झिंकवा, देवस भुखल भैया पाहुन रे की।—कबीर (शब्द०)।

झिँगनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तरोई। तुरई।

झिँगवा—संज्ञा स्त्री [सं० झिङ्कट, झिङ्गट] एक प्रकार का छोटी मछली जिसके मुँह और पूँछ के पास दोनो तरफ बाल होते हैं।

झिँगारना⑤†—क्रि० अ० [हिं० झींगुर या झनकार] झींगुर का शब्द होना। झींगुर का शब्द करना।

झिँगुली⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगा] छोटे बच्चो के पहनने का कुरता। झगा। उ०—पीत झीन झिंगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही।—तुलसी (शब्द०)।

झिँगोरना⑤†—क्रि० अ० [सं० झङ्करण] झंकार करना। कूकना आवाज करना। पिहकना। उ०—डूँगरिया हुरिया हुआ वणे झिंगोरया मोर। इण रिति तीणइ नीसरइ, बाघक, चातक, चोर।—ढोला०, दू० २५३।

झिँझि⑤—वि० स्त्री० [देशी] झीनी। अत्यंत क्षीण। उ०—कहहि कबीर किहि देवहु खोरी। जब चलिहहु झिंझि आसा तोरी। —कबीर बी०, पृ० २८२।

झिँझिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छोटे छोटे छेदोंवाला वह घड़ा जिसमे दीया बाल कर कुमार के महीने में लड़कियाँ घुमाती हैं। उ०—बामरध्र मग ह्वै कढ़ै तिय तन दीपति पुंज। झिंझिया कैसो घट भयो दिन ही में बनकुंज।—मतिराम (शब्द०)।

झिँझोटी, झिँझौटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'झिंझोटी'।

झिकझोरना†—क्रि० स० [हिं० झकझोरना] दे० 'झकझोरना'। उ०—नहि नहि करए नयन ढर नोर। कॉच कमल भमरा झिकझोर।—विद्यापति, पृ० २०४।

झिकना⑤—क्रि० अ० [हिं० झाँकना] देखना। ताकना। उ०—बरुनीन ह्वै नैन झिकै झिझिकै मनो खंजन मीन पै जाल परे। —ठाकुर (शब्द०)।

झिखना†⑤[1]—क्रि० अ० [हिं०] टिमटिमाना। उ०—झलकत बगत्तर टोप झिखै। रसबाह निसा प्रतिब्यब रखै।—रा० रू०, पृ० ३४।

झिखना⑤[2]—क्रि० अ० [हिं० झीखना] दे० 'झींखना'। उ०—मोर जगि प्यारी अध ऊरध इते सी ओर बाखी खिझि झिरकि उघारि अध पलकै।—पद्माकर (शब्द०)।

झिगड़ा†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झगड़ा'।

झिगमिग†⑤—वि० [हिं० झिलमिल] दे० 'झिलमिल'। उ०—दीस रहया दिव माँहि दर्शन साँई दा। साँई दा साँई दा झिगमिग झाँई दा।—राम० धर्म०, पृ० ४६।

झिगरा, झिगरो⑤—संज्ञा पुं० [अनु०] झगड़ा। झंझट। उ०—समुझिय जग जननै को फल मन में, हरि सुमिरन मे दिन भरिए। झिगरो बहुतेरो घेर घनेरो मेरो तेरो परिहरिए।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२६।

झिझक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झझक'।

झिझकना—क्रि० अ० [हिं० झझक, झिझक] दे० 'झझकना'। उ०—यहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपो झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं।—घनानद (शब्द०)।

झिझकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झझकार'।

झिझकारना—क्रि० स० [अनु०] १. दे० 'झझकारना'। उ०—वोही ढंग तुम रहे कन्हाई सबै उठी झिझकारि। लेहु असीस सबन के मुख ते कतहि दिखावत गारि।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'झटकना'। उ०—रसना मति इत नैना निज गुन लीन। कर तें पिय झिझकारे अजुगति कौन।—रहीम (शब्द०)।

झिझकी—संज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० 'झझक'। उ०—झुकि झाँकत झिझकी करति, उझकि झरोखनि बाल।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २।

झिझिक⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झझक'।

झिझिकना⑤†—क्रि० अ० [हिं० झिझक+ना (प्रत्य०)] उ०—बरुनीन है नैन झिकै झिझिकै मनो खंजन मीन पै जाले परे। —ठाकुर (शब्द०)।

झिझिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झिंझिया'।

झिझोड़ना—क्रि० स० [अनु०] दे० 'झकझोरना'। उ०—उसे झिझोड़कर उसने हिला दिया, क्योंकि मधुबन का वह रूप देखकर मैना को भी भय लगा।—तितली, पृ० १८६।

झिटका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झटका' उ०—एक झिटका सा लगा सहर्ष। निरखने लगे लुटे से, कौन। गा रहा यह सुंदर संगीत ? कुतूहल रह न सका फिर मौन।—कामायनी, पृ० ४५।

झिटकारना†—क्रि० स० [हिं० झिटका] दे० 'झटकारना' या 'झटकना'।

झिड़का—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झिड़की'।

झिड़कना—क्रि० स० [अनु०] १ अवज्ञा या तिरस्कारपूर्वक बिगड़कर कोई बात कहना। २. अलग फेंक देना। झटकना। —(क्व०)।

झिड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिड़कना] १. वह बात जो झिड़ककर कही जाय । डाँट । फटकार ।
क्रि० प्र०—देना ।—मिलना ।—सुनना ।
२. झिड़कने की क्रिया या भाव ।

झिड़झिड़ाना—क्रि० प्र० [अनु०] भला बुरा कहना । कटु वचन कहना । चिड़चिड़ाना ।

झिड़झिड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिड़झिड़ाना] झिड़झिड़ाने का भाव या क्रिया ।—(क्व०) ।

झिनझिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झन झन' । उ०—यह झिनझिन जतर बाजै भाला । पीवै प्रेम होय मतवाला ।—द० सागर, पु० ३८ ।

झिनवा¹—संज्ञा पुं० [देश०] महीन चावल का धान । उ०—रायभोग भौ काजररानी । झिनवा रूद भौ दाउदखानी ।—जायसी (शब्द०) ।

झिनवा²—वि० [सं० क्षीण, प्रा० झीण] दे० 'झीना' ।

झिप् झिप्—क्रि० वि० [अनु०] रिमझिम शब्द के साथ । उ०—पहले नन्हीं नन्हीं बूँदे पड़ी, पीछे बड़ी बड़ी बूँदों से झिप् झिप् पानी बरसने लगा ।—ठेठ०, पु० ३२ ।

झिपना—क्रि० प्र० [हिं० छिपना] दे० 'झेंपना' ।

झिपाना—क्रि० स० [हिं० झिपना का स० रूप] लज्जित करना । शरमिंदा करना ।

झिमकना—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'झमकना' ।

झिमझिमी—वि० [हिं० झीनी; या देशी झिमिझ (=अवयवों की जड़ता)] मंद ज्योतिवाली । उ०—उसकी झिमझिमी आँखों से उल्लास के आँसू झड़ने लगते ।—पिंजरे०, पृ० ७५ ।

झिमिटना—क्रि० प्र० [हिं० सिमटना] इकट्ठा होना । एक जगह जुट जाना । उ०—झिमिट आते हैं जहाँ जो लोग, प्रकट कर कोई अकथ अभियोग । मौन रहते हैं खड़े बेचैन, सिर झुकाकर फिर उठाते हैं न ।—साकेत, पु० १७३ ।

झिर—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिरीं] बूँद । फुहार । झिरीं । उ०—झिर पिचकारी की मची आँधी उड़त गुलाल । यह घूँघरि घँसि लीजिए पकरि छबीले लाल ।—स० सप्तक, पु० ३६० ।

झिरकनहारी—वि० स्त्री० [हिं० झिरकना + हारी(प्रत्य०)] झिड़कनेवाली । उ०—यातें तुमकों ढीठि कही । स्यामहिं तुम भई झिरकनहारी एते पर पुनि हारि नहीं ।—सूर०, १०।१५।३६ ।

झिरकना(पु)—क्रि० स० [हिं० झिड़कना] दे० 'झिड़कना' । उ०—(क) छरीदार वैराग बिनोदी झिरकि बाहिरैं कीन्हें ।—सूर०, १.४० । (ख) भोर जगि प्यारी अध ऊरधं इतै की ओर भाखी खिझि झिरकि उघारि अध पलकै ।—पद्माकर (शब्द०) । २. अलग फेंक देना । झटकना ।—(क्व०) । उ०—मुकुट शिर श्रीखंड सोहै निरखि रहि ब्रजनारि । कोटि सुर कोदंड आभा झिरकि डारैं वारि ।—सूर (शब्द०) ।

झिरझिर—क्रि० वि० [अनु०] १ मंद मंद । धीरे धीरे । उ०—झिर झिर बहै बयार प्रेम रस डोलै हो ।—धरम०, पु० ४६ । २. झिर झिर शब्द के साथ ।

झिरझिरा—वि० [हिं० झरना] बहुत पतला या बारीक (कपड़ा आदि) । झँझरा । झीना ।

झिरझिराना—क्रि० प्र० [अनु०] १. झिरझिर शब्द के साथ बहना (वायु, जल आदि) । २. दे० 'झिड़झिड़ाना' ।

झिरना¹—क्रि० प्र० [सं० √क्षर, प्रा० झिर, हिं० √झरना] बहकना । गिरना । प्रवाहित होना । 'झरना' । उ०—जहाँ तहा झाड़ी में झिरती हैं झरनों की झड़ी यहाँ ।—पंचवटी, पु० ६ ।

झिरना²—संज्ञा पुं० १ छेद । छिद्र । सुराख । २ दे० 'झरना' ।

झिरमिर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'झिलमिल' । उ०—झिरमिर बरसै नूर । बिन कर बाजै ताल तूर ।—दरिया० बानी, पु० ४८ ।

झिरहर, झिरहिर(पु)—वि० [हिं०] १. झीना । छिद्रित । छेदोंवाला । उ०—छिनहर घर अरु झिरहर टाटी । घन गरजत कपै मेरा छाती ।—कबीर ग्र०, पु० १८१ । २. झिलमिल । झलकदार उ०—गग जमुन के बीच में एक झिरहिर नीरा हो ।—धरम०, पु० ३७ ।

झिरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना(= रस कर निकलना)] आमदनी । आय ।

झिराना—क्रि० प्र० [हिं०] झुराना ।

झिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर [को०] ।

झिरिहिरी(पु)—वि० [अनु०] मद मंद । धीरे धीरे । उ०—झिरिहिरी बहै बयारि, अमी रस ढरकै हो ।—पलटू०, भा० ३, पु० ७३ ।

झिरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] १ छोटा छेद जिससे कोई द्रव पदार्थ धीरे धीरे बह जाय । दरज । शिगाफ । २. वह गड्ढा जिसमें पानी झिर झिरकर इकट्ठा हो । ३. कुएं के बगल में से निकला हुआ छोटा सोता । ४. तुषार । पाला । ५ वह फसल जिसे पाला मार गया हो ।

झिरी²—संज्ञा [सं०] झींगुर । झिल्ली [को०] ।

झिरीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'झिरिका' [को०] ।

झिर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना या झिरी] वह छोटा गड्ढा जो नाली आदि में पानी रोकने के लिये खोदा जाता है । घेरुआ ।

झिलँगा¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढीला + अंग] १ टूटी हुई खाट का बाध । २ ऐसी खाट जिसकी बुनावट ढीली पड गई हो ।

झिलँगा²†—वि० १ ढीला ढाला । झोलदार । २. झीना ।

झिलँगा³—संज्ञा पुं० [हिं० झींगा] दे० 'झींगा' ।

झिलना¹—क्रि० प्र० [?] १. बलपूर्वक प्रवेश करना । घँसना । घुसना । उ०—झिली फौज प्रतिभट गिरे खाइ घाव पर घाव । कुँवर दौरि परबत चढ्यो बढ्यो युद्ध को चाव ।—लाल (शब्द०) । २. तृप्त होना । अघा जाना । उ०—मिले राम कृष्ण, झिले पाइकै मनोरथ को, हिले हग रूप किए पूरि

धूरि धूरि को।—प्रिया (शब्द)। ३. मग्न होना। तल्लीन होना। उ०—कटयो कर चले हूरि रंग मांझ झिले मानो जानी कछु चूक मेरी यहै उर धारिए।—प्रिया (शब्द०)। ४. (कष्ट, आपत्ति आदि) झेला जाना। सहा जाना। सहन होना। उठाया जाना।

झिलना[2]—संज्ञा पुं० [सं० झिल्ली] झींगुर।

झिलम—संज्ञा स्त्री [हिं० झिलमिला] लोहे का बना हुआ एक प्रकार का झांझरीदार पहरावा जो लड़ाई के समय सिर और मुँह पर पहना जाता था। एक प्रकार का लोहे का टोप या खोल। उ०—झलकत आवै झुड झिलम झलानि झप्यो तमकत आवै तेगवाही औ सिलाही के।—पद्माकर (शब्द०)।

झिलमटोप—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झिलम'।

झिलमलित(पु)†—वि० [हिं० झिलमिल + इत (प्रत्य०)] झिलमिलाता हुआ। काँपता हुआ।

झिलमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो संयुक्त प्रांत में होता है।

झिलमिल[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ कांपती हुई रोशनी। हिलता हुआ प्रकाश। झलमलाता हुआ उजाला। २ ज्योति की अस्थिरता। रह रहकर प्रकाश के घटने बढ़ने की क्रिया। उ०—(क) हेरि हेरि बिल में न लीन्हो हिलमिल में रही हौं हाथ मिल में प्रभा की झिलमिल में।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) घुंघट कै घूमि कै सु झूमके जवाहिर के झिलमिल झालर को भूमि झिल झुकत जात।—पद्माकर (शब्द०)। ३. बढ़िया मलमल या तनजेब की तरह का एक प्रकार का बारीक और मुलायम कपड़ा। उ०—(क) चँदनोता जो खरदुख भारी। बाँसपूर झिलमिल की सारी। —जायसी (शब्द०)। (ख) राम आरती होन लगी है, जगमग जगमग जोति जगी है। कंचन भवन रतन सिंहासन। दासन डासे झिलमिल डासन। तापर राजत जगत प्रकाशन। देखत छबि मति प्रेम पगी है। —मन्नालाल (शब्द०)। (पु) ४. युद्ध में पहनने का लोहे का कवच। उ०—करन पास लीन्हेउ कै छदू। बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू।—जायसी (शब्द०)।

झिलमिल—वि० रह रहकर चमकता हुआ। झलमलाता हुआ। उ०—नदी किनारे मैं खड़ी पानी झिलमिल होय। मैं मैली प्रिय ऊजरे मिलना किस विधि होय।—(शब्द०)।

झिलमिला—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० झिलमिली] १ जो गफ या गाढ़ा न हो। २ जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों। झँझरा झीना। ३ जिसमें रह रहकर हिलता हुआ प्रकाश निकले। ४ झलझलाता हुआ। चमकता हुआ। ५. जो बहुत स्पष्ट न हो।

झिलमिलाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] १ रह रहकर चमकना। जुगजुगाना। उ०—पय नल कंधर ग्रीव पुनि कंठ कपोटी कैन? पीक लीक जहँ झिलमिलत सो छबि कीने मैन।—अनेकार्थ०, पृ० २६। २. प्रकाश का हिलना। ज्योति का अस्थिर होना। ३. प्रकाश का टिमटिमाना।

झिलमिलाना—क्रि० स० १. किसी चीज को इस प्रकार हिलाना कि जिसमे वह रह रहकर चमके। २. हिलाना। कँपाना।

झिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झिलमिलाने की क्रिया या भाव।

झिलमिली—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिलमिल] १. एक दूसरे पर तिरछी लगी हुई बहुत सी आड़ी पटरियों का ढाँचा जो किवाड़ों और खिड़कियों आदि में जड़ा रहता है। खड़खड़िया।

विशेष—ये सब पटरियाँ पीछे की ओर पतली लंबी लकड़ी या छड़ में जड़ी होती हैं जिनकी सहायता से झिलमिली खोली या बंद की जाती है,। इसका व्यवहार बाहर से आनेवाला प्रकाश और गर्द आदि रोकने के लिये अथवा इसलिये होता है कि जिसमें बाहर से भीतर का दृश्य दिखलाई न पड़े। झिलमिली के पीछे लगी हुई लकड़ी या छड़ को जरा सा नीचे की ओर खींचने से एक दूसरे पर पड़ी पटरियाँ अलग अलग खड़ी हो जाती हैं और उन सबके बीच में इतना अवकाश निकल आता है जिसमें से प्रकाश या वायु आदि अच्छी तरह आ सके।

क्रि० प्र०—उठाना।—खोलना।—गिराना।—चढ़ाना।

२. चिक। चिलमन। ३. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। ४ देखने या शोभा के लिये मकानों में बनी जाली।

झिलवाना†—क्रि० स० [हिं० झेलना का प्रे० रूप] झेलने का काम कराना। सहन कराना।

झिलमिलि(पु)—वि० [अनु०] दे० 'झिलमिल'। उ०—छांड़ो झिलमिलि नेह, पुरुष गम राखि कै।—धरम०, पृ० ५२।

झिलिम्म(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिलम] दे० 'झिलम'। उ०—धरे टोप कुंडी कसे कौच अग। झिलिम्मै घटाटोप पेटी अभगं— हम्मीर०, पृ० २४।

झिल्ली†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'झिल्ली'। उ०—भननात गोलिन की भनक जनु धनि झुकार झिल्लीन की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२।

झिल्ल—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील की जाति का एक प्रकार का पौधा। इसकी छाल और फूल लाल होते हैं और पत्ते और फल बहुत छोटे होते हैं।

झिल्लड़—वि० [हिं० झिल्ला] (वह कपड़ा) जिसकी बुनावट दूर दूर पर हो। पतला और झलरा (कपड़ा)। गफ का उलटा।

झिल्लन[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] दरी बुनने की करघे की वह कड़ी लकड़ी जिसमे बै का बाँस लगा रहता है। गुरिया।

झिल्ला†—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० झिल्ली] १. पतला। बारीक। २. झँझरा। जिसमे बहुत से छोटे छोटे छेद हों।

झिल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक बाजे का नाम। २ झींगुर। झिल्ली। २ चिमड़ा कागज। चर्मपत्र [को०]।

झिल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ झींगुर। झिल्ली। २. झिल्ली की झंकार (को०)। ३. सूर्य का प्रकाश (को०)। ३. चमक।

प्रकाश। दीप्ति (को०)। ५. उबटन, अंगराग आदि शरीर पर मलने से गिरनेवाली मैल (को०)। ६. रंग आदि लगाने में प्रयुक्त वस्त्र (को०)।

झिल्ली[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. झींगुर। २. चर्मपत्र (को०)। ३. एक वाद्य (को०)। ४. दीए की बत्ती (को०)। ५. दे० 'झिल्लिका'।

झिल्ली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० चैल अथवा सं० झिल्लिका (=चमकदार पारदर्शी पतला आवरण) या अ० जिल्द (=आवरण) अथवा सं० क्षुद्र] १. किसी चीज की ऐसी पतली तह जिसके ऊपर की चीज दिखाई पड़े। जैसे, चमड़े की झिल्ली। २. बहुत बारीक छिलका। ३. आँख का जाला।

झिल्ली[3]—वि० स्त्री० बहुत पतला। बहुत बारीक।

झिल्लीक—संज्ञा पुं० [सं०] झींगुर।

झिल्लीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झींगुर। झिल्ली। २. सूर्य की दीप्ति या प्रकाश। ३. उबटन आदि का मैल। झिल्ली (को०)।

झिल्लीदार—वि० [हिं० झिल्ली+फा० दार] जिसके ऊपर किसी चीज की बहुत पतली तह लगी हो। जिसपर झिल्ली हो।

झींका—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'झीका'।

क्रि० प्र०—लेना।—डालना।

झींकना[1]—क्रि० अ० [प्रा० झख] दे० 'झींखना'। उ०—तुम्हें हर समय झींकते रहना पड़ता है।—सुखदा, पृ० ७८।

झींकना[2]†—क्रि० स० [देश०] फेंकना। पटकना।

झींका—संज्ञा पुं० [देश०] १. उतना अन्न जितना एक बार पीसने के लिये चक्की में डाला जाता है। २. सीका। छीका।

झींखा—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झख] झींखने की क्रिया या भाव। खीज।

झींखना[1]—क्रि० अ० [प्रा० झख, हिं० खीजना] १. किसी अनिवार्य अनिष्ट के कारण दुःखी होकर बहुत पछताना और कुढ़ना। खीजना। २. दुखड़ा रोना। अपनी विपत्ति का हाल सुनाना। उ०—खाट पड़े नर झींखन लागे, निकसि प्रान गयो चोरी सी।—कबीर सा० सं०, भा० २, पृ० ५।

झींखना[2]—संज्ञा पुं० १. झीखने की क्रिया या भाव। २ दुःख का वर्णन। दुखड़ा।

झींगट—संज्ञा पुं० [देश०] पतवार थामनेवाला। मल्लाह। कर्णधार। —(लश०)।

झींगन—संज्ञा पुं० [देश०] मॅझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका तना मोटा होता है और जिसमें डालियाँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं।

विशेष—यह सारे उत्तरी भारत, आसाम, बरमा और लंका में पाया जाता है। इसमें से पीलापन लिए सफेद रंग का एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसका व्यवहार छीटों की छपाई और ओषधि के रूप में होता है। इसकी छाल से टस्सर रँगा जाता है और चमड़ा सिझाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं और हीर की लकड़ी से कई तरह के सामान बनते हैं।

झींगा—संज्ञा पुं० [सं० चिङ्कट] १. एक प्रकार की मछली जो प्रायः सारे भारत की नदियों और जलाशयों आदि में पाई जाती है। झिंगवा।

विशेष—इस मछली के अगले भाग में छाती के नीचे बहुत पतले पतले और लंबे आठ पैर होते हैं; इसीलिये प्राणिशास्त्रज्ञ इसे केकड़े आदि के अंतर्गत मानते हैं। आठ पैरों के अतिरिक्त इसके दो बहुत लंबे धारदार डंक भी होते हैं। इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह लंबाई में चार अंगुल से प्रायः एक हाथ तक होती है। इसका सिर और मुँह मोटा होता है और दुम की तरफ इसकी मोटाई बराबर कम होती जाती है। यह मछली अपना शरीर इस प्रकार झुका सकती है कि सिर के साथ इसकी दुम लग जाती है। इसके सिर पर उँगलियों के आकार के दो छोटे छोटे अंग होते हैं जिनके सिरों पर आँखें होती हैं। इन आँखों से बिना मुड़े यह चारों ओर देख सकती है। यह अपने अंडे सदा अपने पेट के अगले भाग में छाती पर ही रखती है। इसके शरीर के पिछले आधे भाग पर बहुत कड़े छिलके होते हैं जो समय समय पर आप-से आप साँप की केंचुली की तरह उतर जाते हैं। छिलके उतर जाने पर कुछ समय तक इसका शरीर बहुत कोमल रहता है पर फिर ज्यों का त्यों हो जाता है। इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। बहुधा मांस के लिये यह सुखाकर भी रखी जाती है।

२ एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है। ३. एक प्रकार का कीड़ा जो कपास की फसल को हानि पहुँचाता है।

झींगुर—संज्ञा पुं० [अनु० झीं+कर] एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा। घुरघुरा। जजीरा। झिल्ली।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। यह सफेद, काला और भूरा कई रंगों का होता है। इसकी छह टाँगें और दो बहुत बड़ी मूँछें होती हैं। यह प्रायः अँधेरे घरों में पाया जाता है तथा खेतों और मैदानों में भी होता है। खेतों में यह कोमल पत्तों आदि को काट डालता है। इसकी आवाज बहुत तेज झीं झीं होती है और प्रायः बरसात में अधिकता से सुनाई देती है। नीच जाति के लोग इसका मांस भी खाते हैं।

झींझड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'छिछड़ा'। उ०—जैसे चील झींझड़े पर छापा मारे।—शराबी, पृ० ७३।

झींझना†—क्रि० अ० [अनु०] झुँझलाना। खिजलाना।

झींझो—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक रस्म। झिँझिया।

विशेष—इस रस्म में आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को मिट्टी की एक कच्ची हाँड़ी में बहुत से छेद करके उसके बीच में एक दीया बालकर रखते हैं। इसे कुमारी कन्याएँ हाथ में लेकर अपने संबंधियों के घर जाती हैं और उस दीपक का तेल उनके सिर में लगाती हैं और वे लोग उन्हें कुछ देते हैं। उसी द्रव्य से वे सामग्री मँगाकर पूर्णिमा के दिन पूजन करती हैं और आपस में प्रसाद बाँटती हैं। लोगों का यह भी विश्वास है कि इसका तेल लगाने से सेंहुआ रोग नहीं होता अथवा अच्छा हो जाता है।

२. मिट्टी की वह कच्ची हाँड़ी जिसमें छेद करके इस काम के लिये दीया रखते हैं।

झाँटना†—क्रि० अ० [देश०] दे० 'झोंकना'।

झाँपना†—क्रि० स० [देशी झप] १ दे० 'झँपना'। २. 'ढँपना'।

झाँमना†—क्रि० अ० [हिं० झूमना] दे० 'झूमना'। उ०—मानो झीम रहे हैं तरु भी मद पवन के झोंको से।—पचवटी, पृ० ५।

झाँवरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० धीवर] दे० 'धीवर'। उ०—उज्जल उदक धुवायो धोयण, लँघे पार सरिता मृदु लोयण। प्रभु झीवर कीधो भवपार।—रघु० रू०, पृ० ११०।

झाँसा†—संज्ञा पुं० [हिं० झीसी] दे० 'झीसी'।

झाँसी—संज्ञा स्त्री० [अनु० या हिं० झीना (=बहुत महीन)] फुहार। छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। वर्षा की बहुत महीन बूँदें।

क्रि० प्र०—पड़ना।

झीक[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झोंका'। उ०—काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे। तिरगुन डारे झीक पकरि कै सबै निकारे।—पलटू०, पृ० ८४।

झीक[2]†—क्रि० वि० [हिं०] झटके से। शीघ्रता से। उ०—कावाड़ी नित काटता, झीक कुहाड़ा झाड।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ३२।

झीका—संज्ञा पुं० [सं० शिक्य] रस्सी का लटकता हुआ जालदार फंदा जिसपर बिल्ली आदि के डर से दूध या खाने की दूसरी वस्तुएँ रखते हैं। छीका। सिकहर।

झीखना—क्रि० अ० [प्रा० झंख] दे० 'झीखना'।

झीझा[1]†—वि० [सं० क्षीण] [वि० स्त्री० झीझी] झीना। झँझरा।

झीणⓅ, **झीणा**Ⓟ†—वि० [सं० क्षीण, प्रा० झीण] दे० 'झीना'। उ०—(क) पाँणी ही तैं पातला, धुवाँ ही तैं झीण।—कबीर ग्र०, पृ० २९ (ख) मनवाँ तो अधर बस्या बहुतक झीणा होइ।—कबीर ग्र०, पृ० २०। (ग) मारू सेकइ हत्यडा, झीणे अंगारेह।—ढोला०, दू० २०६।

झीत—संज्ञा पुं० [लश०] जहाज के पाल का वटन।

झीन‡—वि० [सं० क्षीण, प्रा० झीण] दे० 'झीना'।

झीना—वि० [सं० क्षीण] [वि०स्त्री० झीनी] १ बहुत महीन। बारीक। पतला। उ०—प्रफुल्लित ह्वै के आनि दीन है जसोदा रानि झीनियै झँगुली तामें कंचन को तगा।—सूर (शब्द०)। २. जिसमें बहुत से छेद हों। झँझरा। ३ गुल दुबला। दुर्बल। ४. मद। धीमा।

झीनासारी†—संज्ञा पुं० [हिं०] धान का एक प्रकार।

झीमना—क्रि० अ० [हिं० झूमना] दे० 'झूमना'। उ—नव नील कुंज हैं झीम रहे, कुसुमो की कथा न बंद हुई।—कामायनी, पृ० ६५।

झीमर—संज्ञा पुं० [सं० धीवर] दे० 'झीवर'।

झीरⓅ†—संज्ञा पुं० [देश०] मार्ग। रास्ता। उ०—हरिजन सहजे उतरि गए ज्यों सुखे ताल को झीर।—भीखा श०, पृ० २४।

झीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर [को०]।

झीरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर। झिल्ली [को०]।

झील—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीर (=जल)] १ वह बहुत बड़ा प्राकृतिक जलाशय जो चारों ओर जमीन से घिरा हो।

विशेष—झीलें बहुत बड़े मैदानो मे होती हैं और प्राय इनकी लबाई और चौडाई सेकड़ों मील तक पहुँच जाती है। बहुत सी झीलें ऐसी होती हैं जिनका सोता उन्ही के तल मे होता है और जिनमें न तो कही बाहर से पानी आता है और न किसी ओर से निकलता है। ऐसी झीलों के पानी का निकास बहुधा भाप के रूप मे होता है। कुछ झीलें ऐसी भी होती हैं जिनमें नदियाँ आकर गिरती हैं और कुछ झीलो में से नदियाँ निकलती भी हैं। कभी कभी झील का सबध नदी आदि के द्वारा समुद्र से भी होता है। अमेरिका के संयुक्त राज्यो मे कई ऐसी झीलें हैं जो आपस मे नदियों द्वारा सब एक दूसरे से सबद्ध हैं। झीलें खारे पानी की भी होती हैं और मीठे पानी की भी।

२ तालाबो आदि से बड़ा कोई प्राकृतिक या बनावटी जलाशय। बहुत बडा तालाब। ताल। सर।

झीलणाⓅ†—क्रि० अ० [सं० स्ना, प्रा० भिल्ल] स्नान करना। नहाना। उ०—ढोला हूँ तुझ बाहिरी, झीलण गइय तलाइ। उजल काला नाग जिउँ लहिरी ले ले खाइ।—ढोला०, पृ० ३९३।

झीलम—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिलम] दे० 'झिलम'। उ०—साँगि समाहि कियो सुर ऐसो, टुटि परा सिर झीलम जाई।—स० दरिया, पृ० ६३।

झीलरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० झील, अथवा छीलर] छोटी झील। छोटा तालाव। छीलर। उ०—हंस बसे सुख सागरे, झीलर नहि आवै।—कबीर श० भा० ३, पृ० ४।

झीली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिल्ली] १. मलाई। २ दे० 'झिल्ली'।

झीवरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० धीवर] माँझी। मल्लाह। मछुआ। दे० 'धीवर'।

झुंट—संज्ञा पुं० [सं० झुण्ट] १. पेड़। २ झाड़ी [को०]।

झुंड—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से मनुष्यो, पशुओ या पक्षियों आदि का समूह। प्राणियो का समुदाय। वृंद। गिरोह। जैसे, भेडियों का झुंड, कबूतरो का झुंड।

मुहा०—झुंड के झुंड=सख्या मे बहुत अधिक (प्राणी)। झुंड मे रहना=अपने ही वर्ग के दूसरे बहुत से जीवों मे रहना।

झुंडी—संज्ञा स्त्री० [देशी खुट (=खूँटी) या सं० झुण्ट (=झाड)] १. वह खूँटी जो पौधो को काट लेने के बाद खेतो मे खडी रह जाती है। २ चिलमन या परदा लटकाने का कुलाबा जो प्रायः कुंदे में लगा रहता है।

झुँकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झोंकवाई'।

झुँकवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झोंकवाना'।

झुँकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झोंकाई'।

झुँगना†—संज्ञा पुं० [हिं० जिंगना, जुंगना] जुगनू।

झुँगरा†—संज्ञा पुं० [देश०] साँवाँ नामक अन्न।

झुँझना‡—संज्ञा पुं० [अनु०] बच्चों का एक खिलौना। झुनझुना।

झुँझलाना—क्रि० अ० [अनु०] खिझलाना। किटकिटाना। बहुत दुःखी और क्रुद्ध होकर बात करना। चिड़चिड़ाना।

झुँझलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुँझलाना] खीज। चिढ़।

झुँझाई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] निंदा। चुगली। चुगलखोरी।

झुँझायो(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ?] खीझ। झुँझलाहट। उ०—माखन चोर री मैं पायो। नितप्रति रीती देखि कमोरी मोहिं अति लगत झुँझायो।—सूर०, 10।1088।

झुकझोरना—क्रि० स० [अनु०] दे० 'झकझोरना'।

झुकना—क्रि० अ० [सं० युज्, युक, हिं० जुक] 1. किसी खडी चीज के ऊपर के भाग का नीचे की ओर टेढा होकर लटक आना। ऊपरी भाग का नीचे की ओर लटकना। निहुरना। नवना। जैसे, आदमी का सिर या कमर झुकना।

मुहा०—झुक झुक पड़ना=नशे या नींद आदि के कारण किसी मनुष्य का सीधा या अच्छी तरह खडा या बैठा न रह सकना। उ०—अमिय हलाहल मदभरे सेत स्याम रतनार। जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत एक बार।—(शब्द०)।

2. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का किसी ओर प्रवृत्त होना। जैसे, छड़ी का झुकना। 3 किसी खड़े या सीधे पदार्थ का किसी ओर प्रवृत्त होना। जैसे, खंभे या तख्ते का झुकना। 4. प्रवृत्त होना। दत्तचित्त होना। रुजू होना। मुखातिब होना। 5. किसी चीज को लेने के लिये आगे बढ़ना। 6. नम्र होना। विनीत होना। अवसर पड़ने पर अभिमान या उग्रता न दिखलाना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

7 क्रुद्ध होना। रिसाना। उ०—(क) सुनि प्रिय वचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अवरहु अरगानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अब झूठो अभिमान करति सिय झुकति हमारे ताँई। सुख ही रहसि मिली रावण को अपने सहज सुभाई।—सूर (शब्द०)। (ग) अनत बसे निसि की रिसनि उर बर रह्यो विसेखि। तऊ लाज आई झुकत खरे लजौहैं देखि।—बिहारी (शब्द०)। † 8 शरीरांत होना। मरना।

झुकमुख—संज्ञा पुं० [हिं० झाँकना+मुख] प्रातःकाल या संध्या का वह समय जब कि कोई व्यक्ति स्पष्ट नहीं पहचाना जाता। ऐसा अँधेरा समय जब कि किसी व्यक्ति या पदार्थ को पहचानने में कठिनता हो। झुटपुटा।

झुकरना†—क्रि० अ० [अनु०] झुँझलाना। खिजलाना।

झुकराना†—क्रि० अ० [हिं० झोंका] झोंका खाना। उ०—क्यों सौंकरे कुंज मग करतु झाँझ झुकरात। मंद मंद मारुत तुरंग खूँदन आवत जात।—बिहारी (शब्द०)।

झुकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकवाना] 1 झुकवाने की क्रिया या भाव। 2 झुकवाने की मजदूरी।

झुकवाना—क्रि० स० [हिं० झुकना] झुकाने का काम दूसरे से कराना। किसी को झुकाने में प्रवृत्त करना।

झुकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकना] 1 झुकाने की क्रिया या भाव। 2. झुकाने की मजदूरी।

झुकाना—क्रि० स० [हिं० झुकना] 1 किसी खड़ी चीज के ऊपरी भाग को टेढ़ा करके नीचे की ओर लाना। निहुराना। नवाना। जैसे, पेड की डाल झुकाना। 2. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों को किसी ओर प्रवृत्त करना। जैसे, बेंत झुकाना, छड़ झुकाना। 3 किसी खड़े या सीधे पदार्थ को किसी ओर प्रवृत्त करना। 4. प्रवृत्त करना। रुजू करना। 5. नम्र करना। विनीत बनाना। 6. अपने अनुकूल करना। अपने पक्ष में करना।

झुकामुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झुकामुखी'। उ०—सखि बिखर गई हैं कलियाँ। कहाँ गया प्रिय झुकामुकी में करके वे रगरलियाँ।—साकेत, पृ० 297।

झुकामुखी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झुकमुख'। उ०—जानि झुकामुखी भेष छपाय के गागरी ले घर तें निकरी ती।—ठाकुर (शब्द०)।

झुकार†—संज्ञा पुं० [हिं० झकोरा] हवा का झोंका। झकोरा।

झुकाव—संज्ञा पुं० [हिं० झुकना] 1 किसी ओर लटकने, प्रवृत्त होने या झुकने की क्रिया। 2 झुकने का भाव। 3 ढाल। उतार। 4 प्रवृत्ति। मन का किसी ओर लगना।

झुकावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकना+आवट (प्रत्य०)] 1. झुकने या नम्र होने की क्रिया या भाव। 2. प्रवृत्ति। चाह। झुकाव।

झुगिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [? या देश०] झोपड़ी। कुटिया। उ०—हरि तुम क्यों न हमारें आए। ताके झुगिया में तुम बैठे, कौन बड़प्पन पायो। जाति पाँति कुलहू तें न्यारो, है दासी को जायो।—सूर०, 1।244।

झुग्गी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुगिया] दे० 'झुगिया'।

झुझकाना, झुझकावना(पु)—क्रि० स० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ, हिं० झुँझलाना] उत्तेजित करना। आगे बढ़ाना। भिड़ा देना। संघर्ष कराना।

झुझाऊ(पु)—वि० [जुझाऊ] दे० 'जुझाऊ'। उ०—बाजत झुझाऊ सहनाई सिंधू राग पुनि सुनत ही कादर की छूटि जात कल हैं।—सुंदर० ग्रं०, भा० 1, पृ० 484।

झुझार(पु)†—वि० [हिं० झुझ+आर (प्रत्य०)] दे० 'जुझार'। उ०—गुजरात देश सित्तर हजार। बालुका राइ चालुक झुझार।—पृ० रा०, 1।430।

झुट(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं० झूठ] दे० 'झूठ'। उ०—देख सखि झुट कमान। कारव किछुओ बुझइ नाहि पारिए तब काहे रोखल कान।—विद्यापति, पृ० 426।

झुटपुट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झुटपुटा'। उ०—अरे, उस धूमिल विजन में ? स्वर मेरा था चिकना ही, अब घना हो चला झुटपुट।—हरी घास०, पृ० 32।

झुटपुटा—संज्ञा पुं० [अनु०] कुछ अँधेरा और कुछ उजेला समय। ऐसा समय जब कि कुछ अंधकार और कुछ प्रकाश हो। झुकमुख।

झुटलाना—क्रि० स० [हिं० झूठ] दे० 'झुठलाना'।

झुटालना—क्रि० स० [हिं० जूठा अथवा सं० अध्यस्त>अज्झट्ट>अज्झुट्ट>झूठ] जूठा करना। जुठारना।

झुटुंग—वि० [हिं० झोंटा] जिसके खड़े खड़े और बिखरे हुए बाल

हों। झोंटेवाला। जटावाला। दे० 'झोटग'। उ०—जोगिनी झुट्टुग झुंड झुंड बनी तापसी सी तीर तीर बैठी सो समरसरि खोरि के।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६५।

झुट्ट(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० यूथ, हिं० जुट्ट] गिरोह। झुंड। उ०—छोहों भरि छुट्टे कैसो छुट्टे झुट्टक झुट्टे भुव लुट्टे।—सुजान०, पृ० ३१।

झुट्ठा—वि० [हिं० झूठा] दे० 'झूठा'।

झुठकाना—क्रि०स० [हिं० झूठ] १ झूठी बात कहकर अथवा किसी प्रकार (विशेषत बच्चों आदि को) धोखा देना। २. दे० 'झुठलाना'।

झुठलाना—क्रि० स० [हिं० झूठ+लाना (प्रत्य०)] १. झूठा ठहराना। झूठा प्रमाणित करना। झूठा बनाना। २. झूठ कहकर धोखा देना। झुठकाना।

झुठाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूठ+आई (प्रत्य०)] झूठापन। असत्यता। झूठ का भाव। उ०—(क) जानि परत नहिं साँच झुठाई धेन चरावत रहे झुरैया।—सूर (शब्द०)। (ख) आधि मगन मन व्याधि विकल तन बचन मलीन झुठाई।—तुलसी (शब्द०)।

झुठाना—क्रि० स० [हिं० झूठ+आना (प्रत्य०)] झूठा ठहराना। झूठा साबित करना। झुठलाना।

झुठामुठी(पु)—क्रि० वि० [हिं० झूठ] दे० 'झूठामूठी'।

झुठालना—क्रि० स० [हिं०] १. दे० 'झुठलाना'। २. दे० 'जुठारना'।

झुन—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २ दे० 'झुनझुनी'।

झुनक(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] नूपुर का शब्द।

झुनकना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] झुन झुन शब्द करना। झुन झुन बोलना या बजना।

झुनकना(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झुनझुना'।

झुनका(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं०] १. धोखा। छल। २ दे० 'झुनझुना' उ०—दुनो ओर झुनका झुन झुन बाजे, ताहाँ दीपक ले बारी।—सं० दरिया, पृ० १०६।

झुनकार[1](पु)‡—वि० [हिं० झीना] [स्त्री० झुनकारी] झिंझरा। पतला। झीना। महीन। बारीक। उ०—अँगिया झुनकारी खरी सितजारी की सेदकनी कुच द्वै पर लौं।—(शब्द०)।

झुनकार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झनकार] दे० 'झकार'।

झुनझुन—संज्ञा पुं० [अनु०] झुन झुन शब्द जो नूपुर आदि के बजने से होता है। उ०—अरुन तरनि नख ज्योति जगमगित झुन झुन करत पाय पैजनियाँ।—सूर (शब्द०)।

झुनझुना—संज्ञा पुं० [हिं० झुन झुन से अनु०] [स्त्री० अल्पा० झुनझुनी] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना जो धातु, काठ, ताड़ के पत्तों या कागज आदि से बनाया जाता है। घुनघुना। उ०—कबहुँक ले झुनझुना बजावति मीठी बतियनै बोलै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६७।

विशेष—यह कई आकार और प्रकार का होता है,पर साधारणतः इसमें पकड़ने के लिये एक डंडी होती है जिसके एक या दोनों सिरों पर पोला गोल लट्टू होता है। इसी लट्टू में कंकड़ या किसी चीज के छोटे छोटे दाने भरे होते हैं जिनके कारण उसे हिलाने या बजाने से झुन झुन शब्द होता है।

झुनझुनाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] झुन झुन शब्द होना। घुँघरू के जैसा बोलना।

झुनझुनाना[2]—क्रि० स० झुन झुन शब्द उत्पन्न करना। झुन झुन शब्द निकालना।

झुनझुनियाँ[1]†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सनई का पौधा।

झुनझुनियाँ[2]—संज्ञा स्त्री [अनु०] १. पैर में पहनने का कोई आभूषण जो झुन झुन शब्द करे। २. बेड़ी। निगड़।

क्रि० प्र०—पहनना।—पहनाना।

झुनझुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुनझुनाना] हाथ या पैर के बहुत देर तक एक स्थिति में मुड़े रहने के कारण उसमें उत्पन्न एक प्रकार की सनसनाहट या क्षोभ। २ दे 'झुनझुना'।

झुनी—संज्ञा स्त्री [देश०] जलाने की पतली लकड़ी।

झुनुक(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] झुन झुन बजने की आवाज। उ०—झुनुक झुनुक वह पगनि की डोलनि। मधुर ते मधुर सुतुतरी बोलनि।—नंद ग्रं०, पृ० २४५।

झुन्नी†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झुनझुनी'—१। उ०—पावों में झुन्नी चढ़ गई।—जिप्सी, पृ० १३०।

झुपझुपी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'झुपझुपी'।

झुपरी—संज्ञा स्त्री० [देशी झुपडा] दे० 'झोंपड़ी'। उ०—साधुन की झुपरी भली ना साकट को गाँव। चदन की कुटकी भली ना बबूल बनराव।—कबीर (शब्द०)।

झुप्पा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दे० 'झब्बा'। २. दे० 'झुंड'।

झुमझुमी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गहना जो देहाती स्त्रियाँ कान में पहनती हैं।

झुमुक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झूमर'। उ०—पाँच रागिनी झुमक पचीसो, छठएँ धरम नगरिया।—धरम०, पृ० ३४।

झुमका—संज्ञा पुं० [हिं० झुमना] १. कान में पहनने का एक प्रकार का झूलनेवाला गहना जो छोटी गोल कटोरी के आकार का होता है। उ०—सिर पर हैं चँदवा शीश फूल, कानों में झुमके रहे झूल।—ग्राम्या, पृ० ४०।

विशेष—इस कटोरी का मुँह नीचे की ओर होता है और इसकी पेंदी में एक कुंडा लगा रहता है जिसके सहारे यह कान में नीचे की ओर लटकती रहती है। इसके किनारे पर सोने के तार में गुये हुए मोतियों आदि की झालर बनी होती है। यह सोने, चाँदी या पत्थर आदि का और सादा तथा जड़ाऊ भी होता है। यह अकेला भी कान में पहना जाता है और करणफूल के नीचे लटकाकर भी।

२. एक प्रकार का पौधा जिसमें झुमके के आकार के फूल लगते हैं। ३ इस पौधे का फूल।

झुमड़ना(पु)—क्रि० अ० [हिं० झूमना] दे० 'घुमड़ना'। उ०—रहे

झुमड़ि घन गगन घन मों तम तोम बिसेख। निसि बासर समुझ न परत प्रफुलित पकज पेख।—स० सप्तक, पु० ३६३।

झुमना¹—वि० [हिं० झूमना] [वि० स्त्री० झुमनी] झूमनेवाला। हिलनेवाला।

झुमना²—संज्ञा पुं० [देश०] वह बैल जो अपने खूँटे पर बँधा हुआ अपने पिछले पैर उठा उठाकर झूमा करे। यह एक कुलक्षण है।

झुमरनⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमना] झूमने का भाव। लहराने का कार्य। उ०—वेनी सिथिल खसित कच झुमरन लुलित पीठ पर सोहै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३२।

झुमरा—संज्ञा पुं० [देश०] लुहारों का एक प्रकार का घन या बहुत भारी हथौड़ा जिसका व्यवहार खान में से लोहा निकालने में होता है।

झुमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. काठ की मुँगरी। २. गच पीटने का औजार। पिटना।

झुमाऊ—वि० [हिं० झूमना] झूमनेवाला। जो झूमता है।

झुमाना—क्रि० स० [हिं० झूमना का स० रूप] किसी को झूमने में प्रवृत्त करना। किसी चीज के ऊपरी भाग को चारो ओर धीरे धीरे हिलाना।

झुमिरनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झूमना'।

झुरकुट—वि० [अनु०] १. मुरझाया हुआ। सूखा हुआ। २. दुबला। कृश।

झुरकुटिया¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्का लोहा जिसे खेड़ी कहते हैं।

विशेष—दे० 'खेड़ी'—१।

झुरकुटिया²—वि० [अनु०] दुबला पतला। कृश।

झुरकुनी—संज्ञा पुं० [हिं० झर+कण] किसी चीज के बहुत छोटे छोटे टुकड़े। चूर।

झुरझुरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ कँपकँपी जो जूड़ी के पहले आती है। २. कँपकँपी। कंपन।

झुरना—क्रि० अ० [हिं० धूल या चूर] १ सूखना। शुष्क होना। दे० 'झुराना'। उ०—हाड भई झुरि किंगड़ी नसें भई सब ताँति। रोव रोंव तन धुन उठै कहौं बिथा केहि भाँति।—जायसी (शब्द०)। २ बहुत अधिक दुखी होना या शोक करना। उ०—(क) साँझ भई झुरि झुरि पथ हेरी। कौन सो घरी करी पिय फेरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) इनका बोझ आपके सिर है; आप इनकी खबर न लेंगे तो संसार में इनका कहीं पता न लगेगा। वे बेचारे यों ही झुर झुर कर मर जायँगे।—श्रीनिवासदास (शब्द०)। ३ बहुत अधिक चिंता, रोग या परिश्रम आदि के कारण दुर्बल होना। घुलना। उ०—(क) ये दोऊ मेरे गाइ चरैया। जानि परत नहिं साँच झुठाई चारत धेनु झुरैया। सूरदास जसुदा मैं चेरी कहि कहि लेति बलैया।—सूर०, १०।५१३। (ख) सूनो कै परम पद, ऊनो कै अनंत मद, नूनो कै नदीस नद इंदिरा झुरै परी।—देव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना (क्व०)।—Ⓟपरना। उ०—सिद्धिन की सिद्धि दिगपालन की रिद्धि वृद्धि वेधा की समृद्धि सुरसदन झुरै परी।—रघुराज (शब्द०)।

झुरमुट—संज्ञा पुं० [सं० क्षुप (=झाड़ी)] १. कई झाड़ों या पत्तों आदि का ऐसा समूह जिससे कोई स्थान ढक जाय। एक ही में मिले हुए या पास पास कई झाड या क्षुप। उ०—आनंदघन विनोदझर झुरमुट लखें बनै न परत माख्यो।—घनानंद, पृ० ४४५। २. बहुत से लोगों का समूह। गिरोह। उ०—खन इक मँह झुरमुट होइ बीता। दर मँह चढ़े रहैं सो जीता।—जायसी (शब्द०)। ३. चादर या ओढ़ने आदि से शरीर को चारों ओर से छिपाने या ढक लेने की क्रिया।

मुहा०—झुरमुट मारना = चादर या ओढ़ने आदि से सारा शरीर इस प्रकार ढक लेना कि जिसमें जल्दी कोई पहचान न सके।

झुरवन—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना+वन (प्रत्य०)] वह अंश जो किसी चीज के सूखने के कारण उसमें से निकल जाता है।

झुरवनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० झुरना या झरना] दुखी होना। चिंता से क्षीण होना। दे० 'झुरना'। उ०—मन मम झुरवै दुलहिनि काह कीन्ह करतार हो।—कबीर ग्रं०' पृ० २।

झुरवाना—क्रि० स० [हिं० झुरना] १ सुखाने का काम दूसरे से से कराना। दूसरे को सुखाने में प्रवृत्त करना। † २. झुराना। उ०—कोउ रजक झुरवावहिं खोली झारहिं पोंछहिं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४।

झुरसना—क्रि० अ० क्रि० स० [हिं० झुलसना] दे० 'झुलसना'। उ०—आनंदघन सो उघरि मिलौंगी झुरसति बिरहा झर मैं।—घनानंद, पृ० ५३३।

झुरसाना—क्रि० स० [हिं० झुलसाना] दे० 'झुलसाना'।

झुरहुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरझुरी] दे० 'झुरझुरी'।

झुराना¹†—क्रि० स० [हिं० झुरना] सुखाना। शुष्क करना।

झुराना²†—क्रि० अ० १. सूखना। २ दुःख या भय से घबरा जाना। दुःख से स्तब्ध होना। उ०—यह बानी सुनि ग्वारि झुरानी। मीन भए मानों बिन पानी।—सूर (शब्द०)। ३. दुबला होना। क्षीण होना। दे० 'झुरना'।

संयो० क्रि०—जाना।

झुरावन—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना+वन (प्रत्य०)] वह अंश जो किसी चीज को सुखाने के कारण उसमें से निकल जाता है। झुरवन।

झुरावनाⓅ—क्रि० स० [हिं० झुराना] दे० 'झुराना'। उ०—मंजन कै नित न्हायकै अग अंगोछि कै बार झुरावन लागी।—मति०, पृ० ३८३।

झुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना] किसी चीज की सतह पर लंबी रेखा के रूप में उभरा या धँसा हुआ चिह्न जो उस चीज के सूखने, मुड़ने या पुरानी हो जाने आदि के कारण पड़ जाता है। सिकुड़न। सिलवट। शिकन। जैसे, आम पर की झुर्री, चेहरे पर की झुर्री।

क्रि० प्र०—पड़ना।

विशेष—बहुधा इसका प्रयोग बहुवचन मे ही होता है। जैसे—अब वे बहुत बुड्ढे हो गए, उनके सारे शरीर मे झुर्रियाँ पड़ गई हैं।

झुलकना⑤†—क्रि० अ० [हिं० झुलना] दे० 'झूलना'। उ०—सुरह सुगंधी वास मोती कानि झुलकते। सूती मंदिर खास जाएँ ढोलइ जागवी।—ढोला०, दू० ५०७।

झुलकी—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झुनझुना'।

झुलना¹—संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का ढीला ढाला कुरता। झुल्ला। झूला।

झुलना²—वि० [हिं० झूलना] झूलनेवाला। जो झूलता हो।

झूलना³—संज्ञा पुं० [सं० दोलन या दोला] दे० 'झूला'।

झुलनियाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुलनी + इया (प्रत्य०)] दे० 'झुलनी'। उ०—झुलनियावाली हँसि कै जियरा लै गैली हमार।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ३६३।

झुलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] १. सोने आदि के तार मे गुथा हुआ छोटे छोटे मोतियो का गुच्छा जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये नाक की नथ में लटका लेती हैं अथवा बिना नथ के एक आभूषण की तरह पहनती हैं। २. दे० 'झूमर'।

झुलनीचोर—संज्ञा पुं० [देश०] धान का वाल।—(कहारों की परि०)।

झुलमुल—वि० [अनु०] दे० 'झिलमिल'। उ०—काननि कनिक पत्र चक्र चमकत चारु ध्वजा झुनमुल झलकति अति सुखदाइ।—केशव (शब्द०)।

झुलमुला†—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० झुलमुली] दे० 'झिलमिल'। उ०—झीने पट में झुलमुली झलकति ओप अपार। सुरतरु की मनु सिंधु मै लसति सपल्लव डार।—बिहारी (शब्द०)।

झुलवना⑤—क्रि० स० [हिं० झुलाना] दे० 'झुलाना'। उ०—निकट रहति जद्यपि श्री ललना। कब बाँधै कब झुलवै पलना।—नंद० ग्रं०, पृ० २५०।

झुलवा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की कपास जो बहराइच, बलिया, गाजीपुर और गोंडा आदि में उत्पन्न होती है। यह अच्छी जाति की है पर कम निकलती है। यह जेठ में तैयार होती है, इसलिये इसे जेठवा भी कहते हैं। २ दे० 'झूला'।

झुलवाना—क्रि० स० [हिं० झूलना] झुलाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झुलाने में प्रवृत्त करना।

झुलसना¹—क्रि० अ० [सं० ज्वल + अंश] १. किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल का इस प्रकार अंशत जल जाना कि उसका रंग काला पड़ जाय। किसो पदार्थ के ऊपरी भाग का अधजला होना। झौंसना। जैसे,—यह लड़का अँगीठी पर गिर पड़ा था इसी से इसका सारा हाथ झुलस गया। २ बहुत अधिक गर्मी पड़ने के कारण किसी चीज के ऊपरी भाग का सुखकर कुछ काला पड़ जाना। जैसे,—गरमी के दिनो में कोमल पौधो की पत्तियाँ झुलस जाती हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

झुलसना²—क्रि० स० १. किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल को इस प्रकार अंशत जलाना कि उसका रंग काला पड़ जाय और तल खराब हो जाय। झौंसना। जैसे—उन्होंने जानबूझ कर अपना हाथ झुलस लिया। २ अधिक गरमी से किसी पदार्थ के ऊपरी भाग को सुखाकर अधजला कर देना। जैसे,—आज दोपहर की धूप ने सारा शरीर झुलसा दिया।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—मुँह झुलसना = देखो 'मुँह' के मुहावरे।

झुलसवाना—क्रि० स० [हिं० झुलसना का प्रे०रूप] झुलसने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झुलसने मे प्रवृत्त करना।

झुलसाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झुलसना'। २. दे० 'झुलसवाना'।

झुलाना—क्रि० स० [हिं० झूलना] हिंडोले या झूले में बैठाकर हिलाना। किसी को झूलने में प्रवृत्त करना। उ०—रहो रहो नाहीं नाहीं अब न झुलाओ लाल बाबा की सौं मेरो ये जुगल जघ थहरात।—तोष (शब्द०)। २. अधर में लटकाकर या टाँगकर इधर उधर हिलाना। बार बार झोंका देकर हिलाना। ३. कोई चीज देने या कोई काम करने के लिये बहुत अधिक समय तक आसरे में रखना। अनिश्चित या अनिर्णीत अवस्था में रखना। कुछ निष्पत्ति या निपटेरा न करना। जैसे—इस कारीगर को कोई चीज मत दो, यह महीनो झुलाता है।

झुलावना⑤†—क्रि० स० [हिं० झुलाना] दे० 'झुलाना' उ०—लेइ उछंग कबहुँक हलरावइ। कबहुँ पालने घालि झुलावइ।—तुलसी (शब्द०)।

झुलावनि⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुलाना] झुलाने का भाव या क्रिया।

झुलुआ‡—संज्ञा पुं० [हिं० झूला] दे० 'झूला'।

झुलौवा⑤¹—संज्ञा पुं० [हिं० झूला (= कुरता)] जनाना कुरता।

झुलौवा⑤†²—वि० [हिं० झूलना] जो झूलता या झुलाया जा सकता हो। झूलने या झूल सकनेवाला।

झुलौवा‡³—संज्ञा पुं० झूलना। पालना। झूला।

झुल्ला‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झूला'।

झुहिरना†—क्रि० अ० [हिं० ?] लदना। लादा जाना। उ०—रतन पदारथ नग जो बखाने। घोरन मँह देखे झुहिराने।—जायसी (शब्द०)।

झुहिराना†—क्रि० स० [हिं० ?] लादना। बोझ रखना।

झूँक⑤¹—संज्ञा पुं० [हिं० झोंक] दे० 'झोंका'। उ०—(क) मुहमद गुरु जो विधि सिखी का कोई तेहि फूँक। जेहि के भार जग थिर रहा उड़ै न पवन के झूँक।—जायसी (शब्द०)। (ख) त्यों पद्माकर पौन के झूँकन क्वैलिया कूकन को सहि लैहैं।—पद्माकर (शब्द०)।

झूँक⑤†²—संज्ञा स्त्री० दे० 'झोंक'। उ०—किंकिनी की झमकानि झुलावनि झूँकनि सो झूकि जाव कटी की।—देव (शब्द०)।

झूँकना⑤†—क्रि० स० [हिं०] १. दे० 'झोंकना'। २. दे० 'झखना'।

झूँका(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झोंका'। उ०—यह गढ़ छार होइ एक झूँके।—जायसी (शब्द०)।

झूँखना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] 'झोंखना'। उ०—अवधि गनत इकटक मग जोवत तब इतनो नहीं झूँखी।—सूर (शब्द०)।

झूँझल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झुँझलाहट'।

झूँझा†—वि० [देश०] [वि० स्त्री० झूँझी] इधर की उधर लगानेवाला। चुगलखोर। निंदक।

झूँटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० झोंटा] पेंग। दे० 'झोंटा'।

झूँटा²—वि० [हिं० झूठा] दे० 'झूठा'।

झूँठा†—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० झूठ] दे० 'झूठ'।

झूँठा(पु)†—वि० [हिं० झूँठ, झूठा झूठो] दे० 'झूठी'। उ०—अंजन अधर धरे, पीक लीक सोहै आछी काहे को लजात झूँठी सौंह खात।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५७।

झूँठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुट्टी] वह डंठल जो नील के सड़ाने पर बच रहता है।

झूँपड़ा(पु)†—संज्ञा पुं० [देशी झुंपड़ा] दे० 'झोपड़ा'। उ०—सुणि करहा ढोलउ कहइ साची आखे जोइ। अम्गर जेहा झूपड़ा तउ आसगे मोइ।—ढोला०, दू० ३१४।

झूँबणहार(पु)†—वि० स्त्री० [?] जानेवाली। उ०—हिव सूँमर हेरा हुवइ, मारू झूंबणहार। पिंगल बोलावा दिया, सोहड़ सो असवार।—ढोला०, दू० २६७।

झूँबना(पु)†—क्रि० अ० [प्रा० झप] दे० 'झूमना'। उ०—ढोलउ हल्लाणउ करइ, धण हल्लिवा न देह। झबझब झूँबइ पागड़इ, डबडब नयन भरेह।—ढोला०, दू० ३०४।

झूँमना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झूमना'। उ०—झूँमत प्यारी सारी पहिरें, चलत सु कटि लटकाइ।—नंद ग्रं०, पृ० ३८६।

झूँसना¹†—क्रि० अ०, क्रि० स० [हिं० झोंसना] दे० 'झुलसना'।

झूँसना²—क्रि० स० [अनु०] किसी को बहकाकर या दमपट्टी देकर उसका धन आदि लेना। झँसना।

झूँसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

झूकटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूट + काँटा] छोटी झाड़ी। उ०—(क) वह झूकटी तिरस्कृत प्रकृती को अनुसरती है।—श्रीधर पाठक (शब्द०)। (ख) जिमि असंत नव फूल झूकटी तले लखाई।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

झूकना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० झूँखना] दे० 'झोंखना'। उ०—(क) जाको दीनानाथ निवाजैं। भवसागर में कबहुँ न झूकै अभय निसाने बाजे।—सूर०, १।३६। (ख) पावस रितु बरसे जब मेहा। झूकति मरों हौं सुमिरि सनेहा।—हिं० प्रेमगाथा०, पृ० २२०।

झूखना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झींखना'।

झूझ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध, प्रा० झुज्झ] दे० 'युद्ध'। उ०—परे खड खड निजं सामि अग्गं। न को हारि मन्ने न को झूझ भग्गं।—पृ० रा०, ६।१५३।

झूझना—क्रि० अ० [हिं० झूझ] दे० 'जुझना'। उ०—साहब को आवइ नहीं सो बाट न बूझी रे। साईं सो सनमुख रहे इस मन से झूझी रे।—दादू (शब्द०)।

झूझाउ(पु)—वि० [सं० युद्ध, प्रा० झुज्झ + हिं० आउ (प्रत्य०)] दे० 'जुझाऊ'। उ०—बाजत झूझाउ सिंधु राग सहनाई पुनि सुनत ही कादर की छूटि जात कल है।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० ४८५।

झूझार—वि० [हिं० झूझ + आर (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० झूझारि(पु)] दे० 'जुझार'। उ—पंच महारिपि तहाँ कुटवाल। तिनकी तृषा महा झूझारि।—प्राण०, पृ० १६७।

झूट—संज्ञा पुं०, वि० [देशी झुट्ठ] दे० 'झूठ'।

झूठ¹—संज्ञा पुं० [सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त अथवा देशी झुट्ठ] वह कथन जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो। वह बात जो यथार्थ न हो। सच का उलटा।

क्रि० प्र०—कहना।—बोलना।

मुहा०—झूठ सच कहना = निंदा करना। शिकायत करना। झूठ का पुल बाँधना = लगातार एक के बाद एक झूठ बोलते जाना। झूठ सच जोड़ना = दे० 'झूठ सच कहना'।

यौ०—झूठ का पुतला = भारी झूठा। एकदम असत्य बातें कहनेवाला। झूठमूठ। झूठसच।

झूठ²—वि० [हिं०] दे० 'झूठा'।—(क्व०)। उ०—सुख संपति दारा सुत हय गय झूठ सबै समुदाइ। छन भंगुर यह सबै स्याम बिनु अंत नाहिं सँग जाइ।—सूर०, १। ३१७।

झूठ³†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूठ] दे० 'जूठन'।

झूठन—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूठन] दे० 'जूठन'।

झूठमूठ—क्रि० वि० [हिं० झूठ + अनु० मूठ] बिना किसी वास्तविक आधार के। झूठे ही। यों ही। व्यर्थ। जैसे,—उन्होंने झूठमूठ एक बात बनाकर कह दी।

झूठसच—वि० [हिं०] ठीक बेठीक। जिसमें सत्य और असत्य का मिश्रण हो।

झूठा¹—वि० [हिं० झूठ] १. जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो। जो झूठ हो। जो सत्य न हो। मिथ्या। असत्य। जैसे, झूठी बात, झूठा अभियोग। २. जो झूठ बोलता हो। झूठ बोलनेवाला। मिथ्यावादी। जैसे,—ऐसे झूठे आदमियों का क्या विश्वास।

क्रि० प्र०—ठहरना।—निकलना।—बनना।

३ जो सच्चा या असली न हो। जो केवल रूप और रंग आदि में असली चीज के समान हो पर गुण आदि में नहीं। जो केवल दिखौआ और बनावटी हो या किसी असली चीज के स्थान पर यों ही काम देने, सुभीता उत्पन्न करने अथवा किसी को धोखे में डालने के लिये बनाया गया हो। नकली। जैसे—झूठे जवाहिरात, झूठा गोटा पट्ठा, झूठी घड़ी, झूठा मसाला या काम (जरदोजी का), झूठा दस्तावेज, झूठा कागज।

विशेष—इस अर्थ में 'झूठा' शब्द का प्रयोग कुछ विशिष्ट शब्दों के साथ ही होता है जिनमें से कुछ ऊपर उदाहरण में दिए गए हैं।

४. जो (पुरजे या अंग आदि) बिगड़ जाने के कारण ठीक ठीक काम न दे सकें। जैसे, ताले या खटके आदि का झूठा पड़ जाना। हाथ या पैर का झूठा पड़ना।

क्रि० प्र०—पड़ना।

झूठा³—वि० [हिं० जूठा] दे० 'जूठा'।

झूठामूठी—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'झूठमूठ'।

झूठों—क्रि० वि० [हिं० झूठा] १. झूठमूठ। यों ही। २. नाम मात्र के लिये। कहने भर को। जैसे,—वे झूठों भी हमें बुलाने के लिये न आए। उ०—झूठों हि दोस लगावे मोहिं राजा।—गीत (शब्द०)।

झूणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की सुपारी। २. एक प्रकार का अशकुन।

झूना—वि० [सं० जीर्ण; प्रा० जूर्ण, गुज० जूनुं] दे० 'झीना'। उ०—(क) तब लौ दया बनो दुसह दुख दारिद को सायरी को सोइबो ओढ़वो झूने खेस को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तेहि प्यास उड़े झूने सुसीकर परम सीतल तृण धरे।—रघुराज (शब्द०)।

झूम—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमना, तुल० बंग० 'घूम'] १. झूमने की क्रिया या भाव। २. ऊँघ। उँघाई। झपकी।—(क्व०)।

झूमक¹—संज्ञा पुं० [हिं० झूमना] १. एक प्रकार का गीत जिसे होली के दिनों में देहात की स्त्रियाँ झूम झूमकर एक घेरे में नाचती हुई गाती हैं। झूमर। झूमकरा। उ०—लिए छरी बेत सोंधे विभाग। चाचरि झूमक कहैं सरस राग।—तुलसी (शब्द०)। २. इस गीत के साथ होनेवाला नृत्य। ३. एक प्रकार का पूरबी गीत जो विशेषतः विवाह आदि मंगल अवसरों पर गाया जाता है। झूमर। उ०—कहैं मनोरा झूमक होई। फर औ फूल लिये सब कोई।—जायसी (शब्द०)। ४. गुच्छा। स्तवक। ५. चाँदी सोने आदि के छोटे छोटे झुमकों या मोतियों आदि के गुच्छों की वह कतार जो साड़ी या ओढ़नी आदि के उस भाग में लगी रहती है जो माथे के ठीक ऊपर पड़ता है। इसका व्यवहार पूरब में अधिक होता है। ६. दे० 'झुमका'।

झूमकसाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमक + साड़ी] १. वह साड़ी जिसके सिर पर रहनेवाले भाग में झुमके या सोने मोती आदि के गुच्छे टँके हों। २. लहँगे पर की वह ओढ़नी जिसमें सिर के पल्ले पर सोने के पत्ते या मोती के गुच्छे टँके हों।

झूमकसारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झूमकसाड़ी'। उ०—(क) लाख टका अरु झूमकसारी देहु दाइ को नेग।—सूर (शब्द०)। (ख) सुनि उमगीं नारी प्रफुलित मन पहिरे झूमकसारी।—छीत०, पृ० ३।

झूमका(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'झुमका'। उ०—मेचवा मयारि विरोज लाल लटकत सुंदर सुंदर डरावगो। मोतिन झालरि झूमका राजत बिच नील मणि दह भावनो।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'झूमक'। उ०—पग मगर्त लटकत लटवाहूँ। मटकत मोहन हस्त उछाहूँ। अचल वचन झूमरो।—सूर (शब्द०)।

झूमड़—संज्ञा पुं० [हिं० झूमड] दे० 'झूमर'-२। उ०—घाट छोड नौकाओं के झूमड़ धारा में पड़ चले।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११५।

झूमड़झामड़—संज्ञा पुं० [हिं० झूमड़] ढकोसला। झूठा प्रपंच। निरर्थक विषय। उ०—अपने हाथे करे थापना अजया का सिर काटी। सो पूजा घर लेगो माली मूरति कुत्तन चाटी। दुनिया झूमड़िझामड़ि अटकी।—कबीर (शब्द०)।

झूमड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] चौदह मात्रा का एक ताल। दे० 'झूमरा'।

झूमना¹—क्रि० अ० [सं० झम्प (= कूदना)] १. आधार पर स्थित किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या सिरे का बार बार आगे पीछे, नीचे ऊपर या इधर उधर हिलना। बार बार झोंके खाना। जैसे, हवा के कारण पेड़ों की डालों का झूमना।

मुहा०—बादल झूमना = बादलों का एकत्र होकर झुकना।

२. किसी खड़े या बैठे हुए जीव का अपने सिर और धड़ को बार बार आगे पीछे और इधर उधर हिलाना। लहराना। जैसे, हाथी या रीछ का झूमना। नशे या नींद में झूमना। उ०—आई सुधि प्यारे की विचारै मति टारै तब, धारै पग मग झूमि घोरावति आए हैं।—प्रिया (शब्द०)।

विशेष—यह क्रिया प्रायः मस्ती, बहुत अधिक प्रसन्नता, नींद या नशे आदि के कारण होती है।

मुहा०—दरवाजे पर हाथी झूमना = इतना अमीर होना कि दरवाजे पर हाथी बँधा हो। इतना संपन्न होना कि हाथी पाल सके। उ०—झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जड़े मद अंबु चुचाते।—तुलसी (शब्द०)। झूम झूमकर = सिर और धड़ को आगे पीछे या इधर उधर खूब हिल हिलाकर। लहरा लहराकर। जैसे—झूम झूमकर पढ़ना, नाचना या (भूत प्रेत आदि बाधाओं के कारण) खेलना।

झूमना²—संज्ञा पुं० १. बैलों का एक रोग जिसमें वे खूँटे पर बँधे इधर उधर सिर हिलाया करते हैं। २. वह बैल जो झूमता हो।

झूमर—संज्ञा पुं० [हिं० झूमना या सं० युग्म, प्रा० जुम्म + र (प्रत्य०)] १. सिर में पहनने का एक प्रकार का गहना जिसमें प्रायः एक या डेढ़ अंगुल चौड़ी, चार पाँच अंगुल लंबी और भीतर से पोली सीधी अथवा धनुषाकार एक पटरी होती है।

विशेष—यह गहना प्रायः सोने का ही होता है, और इसमें छोटी जंजीरों से बँधे हुए घुँघरू या झब्बे लटकते रहते हैं। किसी किसी झूमर में जंजीरों से लटकती हुई एक के बाद एक इसी प्रकार दो पटरियाँ भी होती हैं। इसके पिछले भाग के कुछ में चौपहिल आकार के एक गोल टुकड़े में दूसरी जंजीर या डोरी लगी होती है जिसके दूसरे सिरे को कुंडा सिर की चोटी या माँग के पास के बालों में अटका दिया जाता है। यह गहना सिर के अगले बालों या माथे के ऊपरी भाग पर लटकता रहता है और इसके आगे के लच्छे बराबर हिलते रहते हैं। संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में केवल एक ही झूमर पहना जाता है जो सिर पर दाहिनी ओर रहता है, और यहाँ इसका व्यवहार वेश्याएँ करती हैं, पर पंजाब में इसका व्यवहार गृहस्थ स्त्रियाँ भी करती हैं, और वहाँ झूमरों की जोड़ी पहनी जाती है जो माथे पर आगे दोनों ओर लटकती रहती है।

२. कान में पहनने का झुमका नामक गहना। ३. झूमक नाम का गीत जो होली में गाया जाता है। ४. इस गीत के साथ

होनेवाला नाच। ५. एक प्रकार का गीत जो बिहार प्रांत मे सब ऋतुओं मे गाया जाता है। ६. एक ही तरह की बहुत सी चीजो का एक स्थान पर इस प्रकार एकत्र होना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय। जमघटा। जैसे, नावो का झूमर।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

७. बहुत सी स्त्रियो या पुरुषो का एक साथ मिलकर इस प्रकार घूम घूमकर नाचना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय। ८. भालू को खड़ा करने पर रस्सी लेकर भागना।—(कलंदरो की भाषा)। ९. गाड़ीवानों की मोंगरी। १०. झूमरा नामक ताल। दे० 'झूमरा'। ११. एक प्रकार का काठ का खिलौना जिसमें एक गोल टुकड़े में चारो ओर छोटी छोटी गोलियाँ लटकती रहती हैं।

झूमरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० झूमर] एक प्रकार का ताल जो चौदह मात्राओं का होता है। इसमे तीन आघात और एक विराम होता है।

धिं धिं तिरकिट, धिं धिं धा धा, तित्ता तिरकिट, धिं धिं धा धा।

झूमरा(पु)[2]—वि० [हिं० झूमना] झूमनेवाला। उ०—बहुरि अनेक अगाध जु सरवर। रस झूमरे, धूमरे तरवर।—नंद० ग्रं०, पृ० २८५।

झूमरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमर] दे० 'झूमर'।

झूमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मालक राग के पाँच भेदो मे से एक।

झूर(पु)†[1]—वि० [हिं० धूर या चूर] सूखा। खुश्क। शुष्क।

झूर(पु)†[2]—वि० [हिं० झूठ] १ खाली। रीता। २ व्यर्थ।

झूर(पु)†[3]—वि० [सं० जुष्ट] जूठा। उच्छिष्ट।

झूर(पु)[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वल, हिं० झार] १. जलन। दाह। २ परिताप। दुःख। उ०—अजहूँ कहे सुनाइ कोई करें कुबिजा दूरि। सूर दाहनि मरत गोपी कूबरी के झूरि।—सूर (शब्द०)।

झूरणा(पु)†—क्रि० अ० [हिं० झूर] दे० 'झुराना'[2]। उ०—मन ही माहैं झूरणा, रोवै मनही माँहि। मन ही माँहै धाह दे, दादू बाहरि नाँहि।—दादू०, पृ० ७३।

झूरना(पु)—क्रि० स० [हिं० झूर] दे० 'झुराना'।

झूरा(पु)†[1]—वि० [हिं० झूर] १ शुष्क। सूखा। खुश्क। २ खाली। उ०—किंगरी गहे बजाए झूरी। भोर साँझ सिंगी नित पूरी।—जायसी (शब्द०)। ३ दे० 'झूर'।

झूरा(पु)[2]—संज्ञा पुं० १ सूखा स्थान। वह स्थान जो पानी से भीगा न हो। २ जलवृष्टि का अभाव। अवर्षण। सूखा।

क्रि० प्र०—पड़ना।

३. न्यूनता। कमी। उ०—करी कराह साज सब पूरा। काढ़हु पूरी परी न झूरा।—रघुराज (शब्द०)।

झूरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूर] दे० 'झूर[4]'।

झूरे[1](पु)—क्रि० वि० [हिं० झूर] व्यर्थ। निष्प्रयोजन।

झूरे[2](पु)—वि० दे० 'झूर'। उ०—थाकि पची डोरी नहिं पूरे। बार बार खोजत रवि झूरे।—सूर (शब्द०)।

झूल[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] १ वह चौकोर कपड़ा जो प्रायः शोभा के लिये चौपायों की पीठ पर डाला जाता है। उ०—मोर के समान जब लीन्हे सावधान श्वान झूलन उपान जिन वेग वेगमान है।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—इस देश में हाथियों और घोड़ों आदि पर जो झूल डाली जाती है वह प्रायः मखमल की और अधिक दामों की होती है और उसपर कारचोबी आदि का काम किया होता है। बड़े बड़े राजाओं के हाथियो की झूलो मे मोतियो की झालरें तक टँकी होती हैं। ऊँटो तथा रथों के बैलों पर भी इसी प्रकार की झूलें डाली जाती हैं। आजकल कुत्तो तक पर झूल डाली जाने लगी है।

मुहा०—गधे पर झूल पड़ना = बहुत ही अयोग्य या कुरूप मनुष्य के शरीर पर बहुमूल्य और बढ़िया वस्त्र होना।—(व्यंग्य)।

२. वह कपड़ा जो पहनने पर भद्दा और बेढंगा जान पड़े।—(व्यंग्य)। (पु) ३ दे० 'झूला'। उ०—मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो शनि अंक लिए।—केशव (शब्द०)।

झूल[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] झुंड। समूह। उ०—जो रखवालत जगत में, झाड़ी जबक झूल।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १४।

झूल(पु)[3]—संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] झूलते समय झूले को आगे और पीछे झोंका देना। पेंग। उ०—बिच झुरमुट झूला चलत, जल छबे लाँबी झूल।—घनानंद, पृ० २१५।

झूलदंड—संज्ञा पुं० [हिं० झूलना + सं० दण्ड] एक प्रकार की कसरत जिसमें बारी बारी से बैठक और झूलते हुए दंड करते हैं।

झूलन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] १. एक उत्सव। हिंडोल।

विशेष—इस उत्सव में देवमूर्ति, विशेषतः श्रीकृष्ण या रामचंद्र आदि की मूर्तियों को झूले पर बैठाकर झुलाते हैं और उनके सामने नृत्य गीत आदि करते हैं। यह साधारणतः वर्षा ऋतु में और विशेषतः श्रावण शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक होता है।

२. एक प्रकार का संगीत या चलता गाना।

झूलना[2]—संज्ञा स्त्री० झूलने की क्रिया या भाव।

झूलना—क्रि० अ० [सं० दोलन] १. किसी लटकी हुई वस्तु पर स्थित होकर अथवा किसी आधार के सहारे नीचे की ओर लटककर बार बार आगे पीछे या इधर उधर हटते बढ़ते रहना। लटक कर बार बार इधर उधर हिलना। जैसे, पखे की रस्सी झूलना, झूले पर बैठकर झूलना। २. झूले पर बैठकर पेंग लेना। उ०—(क) प्रेम रंग बोरी भोरी नवल-किसोरी गोरी, झूलति हिंडोरे यों सोहाई सखियान में। काम झूले उर में, उरोजन में दाम झूले स्याम झूले प्यारी की अन्यारी अँखियान मे।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) फूली बेली सी ... अलबेली वधू झूलति अकेली काम केली ... हैं ... कर (शब्द०)। ३ किसी कार्य के होने ... समय तक पड़े रहना। आसरे में अथवा ... । जैसे—जो लोग बरसों ... झूल ... हो नहीं और आप

झूलना[2]—वि० [वि० स्त्री० झूलनी] झूलनेवाला । जो झूलता हो । जैसे झूलना पुल ।

झूलना[3]—संज्ञा पुं० १. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण मे ७, ७, ७ और ५ के विराम से २६ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं । जैसे–हरि राम विभु पावन परम, गोकुल बसत मनमान । २. इसी छंद का दूसरा भेद जिसके प्रत्येक चरण मे १०, १० १० और ७ के विराम से ३७ मात्राएँ और अंत में यगण होता है । जैसे,—जैति हिम बालिका असुर कुल घालिका कालिका मालिका सुरस हेतु । ३. हिंडोला । झूला । (क्व०) । उ०—अँबवा की डाली तले आली झूलना डला दे ।—गीत (शब्द०) ।

झूलनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] झूलने का भाव या स्थिति । उ०—हुत यह ललित लतन की झूलनि । फूलि फूलि जमुना जल झूलनि ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१६ ।

झूलनी बगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना + बगली] मुगदर की एक प्रकार की कसरत जो बगली की तरह की होती है ।

विशेष—बगली की अपेक्षा इसमें यह विशेषता है कि पीठ पर से बगल में मुगदर छोड़ते समय पजे को इस प्रकार उलटना पड़ता है कि मुगदर बराबर झूलता हुआ जाता है । इससे कलाई में बहुत जोर आता है ।

झूलनी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना + बैठक (= कसरत)] एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—बैठक की इस कसरत में बैठक करके एक पैर को हाथी के सूँड़ की तरह झुलाकर और तब उसे समेटकर बैठना और फिर उठकर दूसरे पैर को उसी प्रकार झुलाना पड़ता है । इसमें शरीर को तौलने की विशेष साधना होती है ।

झूलर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० झूल] झुंड । जमघट । उ०—बालूँबाबा देसणउ जहाँ पाँणी सेवार । ना पाणिहारी झूलरउ ना कुवइ लेकार ।—ढोला०, दू० ६६४ ।

झूलरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] झूलता हुआ छोटा गुच्छा या झुमका । उ०—बर बितान बहु तने तनावन । मनि झालरि झूलरि लटकावन ।—गोपाल (शब्द०) ।

झूला—संज्ञा पुं० [सं० दोला] १. पेड़ की डाल, छत या और किसी ऊँचे स्थान में बाँधकर लटकाई हुई दोहरी या चौहरी रस्सियाँ जंजीर आदि मे बँधी पटरी जिसपर बैठकर झूलते हैं । हिंडोला ।

विशेष—झूला कई प्रकार का होता है । इस प्रांत में लोग साधारणतः वर्षा ऋतु या पेड़ो की डालों मे झूलते हुए रस्से बाँधकर उसके निचले भाग में तख्ता या पटरी आदि रखकर उसपर झूलते हैं । दक्षिण भारत में झूलें का रवाज बहुत है । वहाँ प्रायः सभी घरो में छतो मे तार या रस्सी या जजीर लटका दी जाती है और बड़े तख्ते या चौकी के चारो कोने से उन रस्सियों को बाँधकर जंजीरों को जड़ देते हैं । झूले का निचला भाग जमीन से कुछ ऊँचा होना चाहिए जिसमें वह सरलता से बराबर झूल सके । झूले के आगे और पीछे जाने और आने को पेंग कहते हैं । झूले पर बैठकर पेंग देने के लिये या तो जमीन पर पैर को तिरछा करके आघात करते हैं या उसके एक सिरे पर खड़े होकर झोंके से नीचे की ओर झुकते हैं ।

क्रि० प्र०—झूलना ।—डोलना ।—पड़ना ।

२. बड़े बड़े रस्से, जंजीरों या तारो आदि का बना हुआ पुल जिसके दोनों सिरे नदी या नाले आदि के दोनों किनारों पर किसी बड़े खंभे, चट्टान या बुर्ज आदि मे बंधे होते हैं और जिसके बीच का भाग अधर में लटकता और झूलता रहता है । झूलता हुआ पुल । जैसे, लछमन झूला ।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष मे पहाड़ी नदियों आदि पर इसी प्रकार के पुल होते थे । आजकल भी उत्तरी भारत तथा दक्षिणी अमेरिका की छोटी छोटी पहाड़ी नदियो और बड़ी बड़ी खाइयों पर कहीं कहीं जंगली जातियों के बनाए हुए इस प्रकार के पुरानी चाल के पुल पाए जाते हैं । पुरानी चाल के पुल दो तरह के होते हैं— (१) एक बहुत छोटे और मजबूत रस्से के दोनों सिरे नदी या खाई आदि के दोनों किनारो पर की दो बड़ी चट्टानों आदि मे बाँध दिए जाते हैं और उनमें बहुत बड़ा बोरा या चौखटा आदि लटका दिया जाता है । ऊपरवाले रस्से को पकड़कर यात्री उसे कभी कभी स्वयं सरकाता चलता है । (२) मोटी मोटी मजबूत रस्सियों का जाल बुनकर अथवा छोटे छोटे डंडे बाँधकर नदी की चौड़ाई के बराबर लंबी और डेढ़ हाथ चौड़ी एक पटरी सी बना लेते हैं और उसे रस्सों मे लटकाकर दोनो ओर रस्सियों से इस प्रकार बाँध देते हैं कि नदी के ऊपर उन्ही रस्सो और रस्सियो की लटकती हुई एक गली सी बन जाती है । इसी मे से होकर आदमी चलते हैं । इसके दोनों सिरे भी नदी के दोनो किनारे पर चट्टानों से बंधे होते हैं । आजकल यूरोप, अमेरिका आदि की बड़ी बड़ी नदियो पर भी मोटे मोटे तारों और जंजीरो से इसी प्रकार के बहुत बड़े, बढ़िया और मजबूत पुल बनाए जाते हैं ।

३. वह बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियो मे बाँधकर दोनों ओर दो ऊँची खूँटियो या खभों आदि में बाँध दिए गए हों ।

विशेष—इस देश में साधारणतः देहाती लोग इस प्रकार के टाट के बिस्तर पेड़ों में बाँध देते हैं और उनपर सोते हैं । जहाजों मे खलासी लोग भी इस प्रकार के कनवास के बिस्तरों का व्यवहार करते हैं ।

३. पशुओं की पीठ पर डालने की झूल । ५. देहाती स्त्रियो के पहनने का ढीला ढाला कुरता । ६. झोंका । झटका ।—(क्व०) । †७. तरबूज । †८. स्त्रियो का एक प्रकार का आभूषण । २. दे० 'झुलना' ।

झूलाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० झुलाना] दे० 'झुलाना' । उ०—तामे श्री ठाकुर जी को डोल झूलाए ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २३० ।

झूलो—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] १ वह कपड़ा जिससे हवा करके अन्न ओसाया जाता है। परती। २ खलासियों आदि का जहाजी बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों से बाँधकर दोनों ओर ऊँची खूँटियों या खभों आदि में बाँध दिए जाते हैं। दे० 'झूला'-३।

झूसर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० युग, हिं० जूआ] वह लकड़ी जो बैलों को नाधने के लिये उनके कंधों पर रखी जाती है। जूआ। उ०—झूसर भार न झल्लही गोधा गावड़ियाँह। इम जस भार न ऊपड़े मोला मावड़ियाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० २ पृ० १५।

झूसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास। गुलमुला। पलजी। बड़ा मुरमुरा।

विशेष—यह घास उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है और इसे घोड़े तथा गाय बैल आदि बड़े चाव से खाते हैं।

झेंडा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जयन्त, हिं० झंडा] झंडा। ध्वज। उ०—कहे कासी पड़त लाल झेंडे बहुत। पाय दल जावे तहत क्या सरयत खबर।—दक्खिनी०, पृ० ४६।

झेंप—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपना] लाज। शर्म। हया।

झेंपना—क्रि० अ० [हिं० छिपना] शरमाना। लजाना। लज्जित होना। संयो० क्रि०—जाना।

झेकना‡—क्रि०स० [अनु०] झुकाना। बैठना। उ०—(क) ढोलइ मनह विमासियउ, साँच कहइ छइ एह। करह झेकि दोनूँ चढा कूट न संभालेह।—ढोला०, दू० ६३७। (ख) घाली टापर वाग मुखि, झेक्यउ राजदुआरि।—ढोला०, दू० ३४५।

विशेष—ऊँट के बैठने को राजस्थानी में झेकना कहते हैं। ऊँट को बैठाते समय झे झे किया जाता है। उसी के अनुकरण पर यह शब्द बना है।

झेपना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झेंपना'।

झेर(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० देर] बिलंब। देर। उ०—(क) चलहु तुरत जिनि झेर लगावहु अवही आइ करौ विश्राम।—सूर (शब्द०)। (ख) काहे को तुम झेर लगावति। दान देहु घर जाहु बेचि दधि तुम ही को वह भावति।—सूर (शब्द०)।

झेर(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० छेड़ना] बखेड़ा। झगड़ा। उ०—(क) सूरदास प्रभु रासबिहारी श्री बनवारी वृथा करत काहे झेरे। —(शब्द०)। (ख) मधुकर समाना ऐसा बेरन। नंदकुमार छाँड़ि कै लैहै योग दुजन की टेरन। जहाँ न परम उदार नंद सुत मुक्त परो किन भेरन।—सूर (शब्द०)।

झेरना(पु)[1]—क्रि० स० [हिं० झेलना] झेलना। सहना। उ०—कहु नृप पद अब ते गह्यो गहे रानि सुख झेरि। मन में भयो न मैल कछु लागे सेवन फेरि।—विश्राम (शब्द०)।

झेरना[2]—क्रि० स० [हिं० छेड़ना] शुरू करना। आरंभ करना। उ०—मेरी बडेरी आहि झेरी मुरली बहुतेरी बनी।—गोपाल (शब्द०)।

झेरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० झेर ?] १. झंझट। बखेड़ा। झेर। उ०—(क) जीव का जनम का जीवक आप ही आपले झानि झेरा।—दादू (शब्द०)। (ख) दीपक में धरयो बारि देखत भुज भए चारि हारी हौं धरति करत दिन दिन को झेरो। —सूर (शब्द०)। (ग) सुंदर वाही बचन है जामहि कछू बिबेक। नातरु झेरा में परयो बोलत मानो भेक।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७२६। २. छोटा सोता। झिरी। पौढे पानीवाला गढ़ा। † ३ समूह। झुंड।

झेल[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झेलना] १. पानी में तैरने आदि में हाथ पैर से पानी हटाने की क्रिया। २ हलका धक्का या हिलोरा। उ०—सुरत समुद्र मगन दपति सो झेलत अति सुख झेल।—सूर (शब्द०)। ३ झेलने की क्रिया या भाव।

झेल[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ~~झेल~~] बिलंब। देर। झेर। उ०—(क) सत्र कहूँ देखि भूप मणि बोले सुनहु सकल मम बैना। भये कुमार बिवाहन लायक उचित झेल कछु है ना।—रघुराज (शब्द०) (ख) झाँकति है का झरोखा लगी लग लागिवे को इहाँ झेल नहीं फिर।—पद्माकर (शब्द०)।

झेलना—क्रि० स० [क्ष्वेल (= हिलाना डुलाना)] १. ऊपर लेना। सहारना। सहना। बरदाश्त करना। जैसे, दुःख झेलना, कष्ट झेलना, मुसीबत झेलना। उ०—टूटे परत अकास को कौन सकत है झेलि।—कबीर (शब्द०)। २. पानी में तैरने या चलने में हाथ पैर से पानी हटाना। पानी को हाथ पैर से हिलाना। उ०—(क) कर पग गहि अंगुठा मुख मेलत। प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरखि हरखि अपने रंग खेलत। शिव सोचन विधि बुद्धि विचारत वट बाढ्यो सागर जल झेलत। —सूर (शब्द०)। (ख) बालकेलि को विशद परम सुख सुख समुद्र नृप झेलत।—सूर (शब्द०)। ३. पानी में हिलना। हेलना। जैसे, कमर तक पानी झेलकर नदी पार करना। ४. ठेलना। ढकेलना। आगे बढ़ाना। आगे चलाना। उ०—दुहुन की सहज बिसात दुहूँ मिलि सतरंज खेलत। उर, रुख, नैन चपल अश्व चतुर बराबर झेलत।—हरिदास (शब्द०)। † ५ पचाना। हजम करना। ६ सहना। ग्रहण करना। मानना। उ०—पाँयन आनि परे तो परे रहे केती करी मनुहारि न झेली।—मतिराम। (शब्द०)।

झेलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झेलना] एक प्रकार की जंजीर जो कान के आभूषण का भार सँभालने के लिये बालों में अटकाई जाती है।

झेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० झेलना] बच्चा जनते समय स्त्री को विशेष प्रकार से हिलाने डुलाने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना।

झेलुआ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झूला'।

झैर(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं० जहर] दे० 'जहर' उ०—जयपुरनाथ जैसा धाम बेटा तीन पाया। प्याला झैर पाया एक बेटा ने मराया। —शिखर०, पृ० ७४।

झोंक—संज्ञा स्त्री० [सं० युज, युक, युक्त, हिं० झुकना] १. झुकाव। प्रवृत्ति। २. तराजू के किसी पलड़े का किसी ओर अधिक नीचा होना।

मुहा०—झोंक मारना = डाँड़ी मारना। कम तौलना।

३ बोझ। भार। जैसे—इसकी झोंक सब उसी पर पड़ती है। ४. वेग। झटका। तेजी। प्रचंड गति। जैसे—(क) गाड़ी बड़ी झोंक से आ रही थी। (ख) सांड़ आ रहा है कहीं झोंक में पड़ जाओगे तो बड़ी चोट आवेगी। (ग) नशे की झोंक, क्रोध की झोंक, लिखने की झोंक, नींद की झोंक, ५. किसी काम का धूमधाम से ठठाना। कार्य की गति। जैसे—पहली झोंक में उसने इतना काम कर डाला। ६. ठाट। सजावट। चाल। अंदाज।

यौ०—नोक झोंक = ठाट बाट। धूम धाम।

७ पानी का हिलोरा। ८. दे० 'झोंका'। ९ दो लड्डू जो बैल-गाड़ी की मजबूती के लिये दोनों ओर लगे रहते हैं।

झोंकना—क्रि० स० [हिं० झोंक] १. झटके के साथ एकबारगी किसी वस्तु को आगे की ओर फेंकना। वेग से सामने की ओर डालना। फेंककर छोड़ना। जैसे, भाड़ में पत्ते झोंकना। इंजन में कोयला झोंकना। आँख में धूल झोंकना।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—भाड़ झोंकना = (१) भाड़ में सूखे पत्ते आदि फेंकना। २ तुच्छ व्यवसाय करना (व्यंग्य में)। जैसे—इतने दिन दिल्ली में रहे, भाड़ झोंकते रहे।

२ ढकेलना। ठेलना। जबरदस्ती आगे की ओर बढ़ाना या करना। जैसे—उसने मुझे एकबारगी आगे की ओर झोंक दिया। ३. अंधाधुंध खर्च करना। बहुत अधिक व्यय करना। बहुत अधिक खर्च करना। बहुत अधिक किसी काम में लगाना। जैसे, व्याह शादी में रुपया झोंकना।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।

४ किसी आपत्ति या दुःख के स्थान में डालना। भय या कष्ट के स्थान में कर देना। बुरी जगह ठेलना। जैसे—(क) तुमने हमें कहाँ लाकर झोंक दिया, दिन रात आफत में जान पड़ी रहती है। (ख) उसने अपनी लड़की को बुरे घर झोंक दिया। ५ कार्य का बहुत अधिक भार देना। बहुत ज्यादा काम ऊपर डालना। बिना सोचे समझे काम लादना। जैसे—तुम जो काम होता है हमारे ही ऊपर झोंक देते हो। ६ बिना विचारे आरोपित करना। (दोष आदि) मढ़ना। (दोष) लगाना। जैसे—सारा कसूर उसी पर झोंकते हो।

झोंकरना—क्रि० अ० [अनु०] १. झौं झौं करना। २ बहुत जोर से रोना। ३ झुलस जाना।

झोंकवा—संज्ञा पुं० [देश०] भट्ठे या भाड़ में खड़पताई झोंकने-वाला मनुष्य।

झोंकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंकना] १ झोंकने की क्रिया या भाव। २ झोंकवाने की क्रिया या भाव। ३ झोंकने के काम की उजरत। झोंकने की मजूरी।

झोंकवाना—क्रि० स० [हिं० झोंकना का प्रे० रूप] १. झोंकने का काम कराना। २ किसी को आगे की ओर जोर से डालना।

झोंका—संज्ञा पुं० [हिं० झोंक] १. वेग से जानेवाली किसी वस्तु के स्पर्श का आघात। तेजी से चलनेवाली किसी चीज के छू जाने से उत्पन्न झटका। धक्का। रेला। झपट्टा। २ वेग से चलनेवाली वायु का आघात। हवा का झटका या धक्का। वायु का प्रवाह। हवा का बहाव। झकोरा। जैसे—ठंढी हवा का झोंका आया। ४ पानी का हिलोरा। ५ बगल से लगने-वाला धक्का जिसके कारण कोई वस्तु गिर पड़े या अपने स्थान से हट जाय। रेला। ६ इधर से उधर झुकने या हिलने डोलने की क्रिया।

मुहा०—झोंके आना = नींद के कारण झुक झुक पड़ना। ऊँघ लगना। झोंका खाना = किसी आघात या वेग आदि के कारण किसी ओर झुकना। जैसे, झोंका खाकर गिरना, नींद से झोंका खाना।

७ ठाट। सजावट। चाल। अंदाज। उ०—पहिरे राती चूनरी सिर उपरना सोहै। कटि लहगा लीलो बन्यो झोंको जो देखि मन मोहै।—सूर (शब्द०)। ८. कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह पेंच (दाँव) उस समय किया जाता है जब दोनों पहलवानों के हाथ एक दूसरे की कमर पर होते हैं। इसमें एक हाथ विपक्षी के हाथ के बाहर निकालकर मोढ़े पर चढ़ाते और दूसरा बगल से मोढ़े पर ले जाते हैं और फिर झोंका देकर गिराते हैं।

झोंकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंकना] १ झोंकने की क्रिया या भाव। २. झोंकने की मजदूरी।

झोंकारना—क्रि० स० [हिं०] कुछ कुछ झुलसा देना। जला देना।

झोंकिया—संज्ञा पुं० [हिं० झोंकना] भाड़ में पताई आदि झोंकने-वाला। झोंकवा।

झोंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंक] १. भार। बोझ। जवाबदेही। जैसे—सब झोंकी मेरे ही सिर ? २ भारी अनिष्ट या हानि की आशंका। जोखों। जोखिम। जैसे—दूसरे का माल रख-कर झोंकी कौन सहे।

क्रि० प्र०—सहना।

झोंझ(५)—संज्ञा पुं० [देश०] १ खोता। घोंसला। २ कुछ पक्षियों (जैसे, ढेक, गीध आदि) के गले की थैली या लटकता हुआ मांस। ३ खुजली। सुरसुराहट। चुल।

मुहा०—झोंझ मारना = खुजली होना। चुल होना।

झोंझल(५)—संज्ञा पुं० [हिं० झुँझलाना] झुँझलाहट। क्रोध। कुढ़न। गुस्सा।

क्रि० प्र०—आना।

झोंट—संज्ञा पुं० [सं० झुण्ट (= झाड़ी)] १. झाड़ी। २. झाड़। झुर-मुट। ३ समूह। झुंड। जुट्टी। ४. दे० 'झोंटा'। ५ चाल। ठाट। झोंक। अंदाज। उ०—लोचन बिलोच पोच लखिता की झोटन हाव भाव भरी करत झोटन पै ललित बात।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७६।

झोंटमझोंटा—संज्ञा पुं० [हिं०] झोटाझोटी। उ०—अब झोटम झोंटा की नौबत आनेवाली है और सारा कसूर मुगलानी का है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१४।

झोंटा¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जूट] १. बड़े बड़े बालों का समूह। इधर उधर बिखरे बड़े बड़े बालों का जुट्टा। उ॰—हमरे सबद बिबेक लगहि चूतर में सोंटा। ग्रावहु चें भागु पकरि कै कटिहौं झोंटा।—पलटू॰, भाग ३, पृ॰ ८६।

मुहा॰—झोंटे पकड़कर काटना, मारना, निकालना, घसीटना या इसी प्रकार का और कुव्यवहार करना = सिर के बाल खींचकर वे सब व्यवहार करना। (स्त्रियों के लिये यह अपमान की बात है)। झोंटे खसोटना = सिर के बाल खींचना।

यौ॰—झोंटा झोंटी = ऐसी लड़ाई झगड़ा या मारपीट जिसमें झोंटा पकड़ने की नौबत आवे।

२ जुट्टा। पतली लंबी वस्तुओं का इतना बड़ा समूह जो एक बार हाथ में आ सके।

झोंटा²—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झोंका] १. वह धक्का जो झूले को इधर हिलाने के लिये दिया जाता है। झोंका। पेंग। उ॰—(क) ललिता बिसाखा देहि झोंटा रीझि अंग न समाति।—सूर (शब्द॰)। (ख) एक समय एकांत बन में डोल झूलत कुंजबिहारी। झोंटा देत परस्पर सबीरे उडावत डारी।—हरिदास (शब्द॰)।

मुहा॰—झोंटा देना = झूले को बढ़ाने के लिये धक्का देना। पेंग मारना। झोटा मारना = दे॰ 'झोंटा देना'।

२. झटका। झोंक। झाल। प्रदाज।

झोंटा³—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झोटा] १. भैंस का बच्चा। पड़वा। २. भैंसा। महिष।

झोंटी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झोंटा] दे॰ 'झोंटा'—१। उ॰—सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।—तुलसी (शब्द॰)।

यौ॰—झोटीझोटा = लड़ाई झगड़ा। दे॰ 'झोंटाझोंटी'।

झोंट²—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'झोंका'—१।

झोंप—वि॰ [प्रा॰ झंप, हिं॰ झांपना] ढक लेनेवाला। आच्छादित कर लेनेवाला। घना। निविड़। उ॰—सो रहा है झोंप अंधियाला नदी की जाँघ पर।—हरी घास॰, पृ॰ ४८।

झोंपड़ा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ छोपना (= छाना) अथवा प्रा॰ झंप, हिं॰ झोप] [स्त्री॰ अल्पा॰ झोंपड़ी] वह बहुत छोटा सा घर या मनुष्यों के रहने का स्थान जो विशेषतः गाँवों या जंगलों आदि में कच्ची मिट्टी की छोटी छोटी दीवारों को उठाकर और घास फूस से छाकर बना लेते हैं। कुटी। पर्णशाला।

मुहा॰—पेट का झोंपड़ा = पेट। उदर (फकीर॰)। पेट के झोंपड़े में आग लगना = भूख लगना (फकीर॰)।

झोंपड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झोंपड़ा का स्त्री॰ अल्पा॰] छोटा झोंपड़ा। कुटिया। पर्णशाला। मढ़ी। उ॰—कत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत फल ख्याल लंका लाई कपि राँड की सी झोपड़ी।—तुलसी (शब्द॰)।

झोंपा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झब्बा] झब्बा। गुच्छा। उ॰—झूलहि रतन पाट के झोंपा। साजि मदन नेहि का कहँ कोपा।—जायसी (शब्द॰)।

झोक¹†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'झोक'। उ॰—श्याम अमल ते भो मतवाला, झोक में झोक सो आवै।—स॰ दरिया, पृ॰ ११२।

झोखना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ झोंकना] डालना। छोड़ना। देना। उ॰—धम झोखे प्रहुत काल में जोय।—रघु॰ रू॰, पृ॰ २१३।

झोझा—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झोफ] १ किसी वस्तु का वह अनावश्यक लटकता हुआ अंश जो फूला फूला सा भी जान दिखाई दे। उ॰—नितम्ब गुरुत्व कपड़ों के झोझ लटकाए रखना चाहा।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ २६१।

झोझर—संज्ञा पुं॰ [प्रा॰ झोज्झर] पचौनी। झोझर।

झोझा—संज्ञा पुं॰ [प्रा॰ झोज्झर] दे॰ 'झोझर'।

झोटा¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] पेंग। दे॰ 'झोंका'। उ॰—(क) गाजे घण सुण पावणो, प्याला भर मद पाव। झले रेशम रंग फंद, झोटा देर झूलाव।—बाँकी॰ ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ८। (ख) कोउ अंचल छोरि कटि में बाँधि कसिके देत। कोउ किए लोचन की कछौटी चढ़त झोटा देत।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ११८।

झोटिंग¹—वि॰ [हिं॰ झोंटा] झोंटेवाला। जिसके सिर पर बहुत बड़े बड़े और खड़े बाल हों। उ॰—मज्जहि भूत पिशाच बैताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला।—तुलसी (शब्द॰)।

झोटिंग²—संज्ञा पुं॰ बहुत बड़े बड़े और खड़े बालोंवाला। भूत प्रेत या पिशाच आदि।

झोड़—संज्ञा सं॰ [सं॰ झोड] सुपारी का वृक्ष।

झोपड़ा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'झोंपड़ा'।

झोपड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'झोंपड़ी'।

झोपरिया†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झोपड़ी + इया (प्रत्य॰)] दे॰ 'झोपड़ी'। उ॰—खिरकी बैठ गोरी चितवन लागी, उपरां झांप झोपरिया।—कबीर श॰, भा॰ १, पृ॰ ५५।

झोबाझोब—क्रि॰ वि॰ [अनु॰] दे॰ 'झम झम'-१। उ॰—सहजो गुरु ऐसा मिलै समै दृष्टी निलेभि। सिष कूं प्रेम समुद्र में कर दे झोबाझोब।—सहजो॰, पृ॰ १२।

झोर¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'झोल'।

झोरई¹—वि॰ [हिं॰ झोल + ई (प्रत्य॰)] जिसमें झोल हो। रसेदार। उ॰—सूर करवरि सरस तोरई। सेमि सीगरी छमकि झोरई।—सूर (शब्द॰)।

झोरई²—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झोल] रसेदार तरकारी।

झोरना—क्रि॰ स॰ [सं॰ दोलन] १. झटका देकर हिलाना या कंपाना। उ॰—कह्यो कहारनि हमें न सोरि। नयो कहार चलत पग झोरि।—सूर (शब्द॰)। २. किसी चीज को इस प्रकार झटका देकर बार बार हिलाना जिसमें उसके साथ लगी हुई दूसरी चीजें गिर पड़ें। जैसे, पेड़ की डाल झोरना। आम झोरना। इमली झोरना, आदि। उ॰—झोरि से कौन लए बन बाग ये कौन जु आमन को हरियाई।—रसकुसुमाकर (शब्द॰)। ३ तृप्तिपूर्वक भोजन करना। छककर खाना।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

३. इकट्ठा करना । एकत्र करना ।–(क्व०) ।

झोरा(पु)†¹—संज्ञा पुं० [हिं० झोरा] गुच्छा । झब्बा ।

झोरा(पु)†²—संज्ञा पुं० [हिं० झोला] दे० 'झोला' । उ०—लाल मखमली रुचिर पान को झोरा धारे ।—प्रेमघन०, भा०१, पृ० १२ ।

झोरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झोली' ।

झोरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोली] १ झोली । उ०—(क) भाय करी मन की पद्माकर ऊपर नाय अबीर की झोरी ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) हमारे कौन वेद विधि साधे । बटुआ झोरी दंड अधारी इतनेन को आराधे ।—सूर (शब्द०) । २. पेट । झोझर । ओझर । उ०—जो आवै अनगनत करोरी । डारे खाइ भरै नहिं झोरी ।—विश्राम (शब्द०) । ३ एक प्रकार की रोटी । उ०—रोटी बाटी पोरी झोरी । एक कोरी एक घीव चभोरी ।—सूर (शब्द०) । (पु) ४ रस्सी आदि के जालों या फंदों से युक्त झोला के आकार का बड़ा जाल जिसमें आहत लोगों को उठाकर पहुँचाते थे । दे० 'झोली'–७ । उ०—(क) बढ़ाइय दिल्ली नयर अवर सेन जुधमग्ग । घाय घुमत झोरिन घले, श्रवन सुनतह अग्गि ।—पृ० रा०, ६१ । २४६८ । (ख) वाजीद खांन झोरी घरिय, धाउ पंच रघर नृपति ।—पृ० रा० १० । ३४ ।

झोल¹—संज्ञा पुं० [हिं० झालि (= आम का पना)] तरकारी आदि का गाढ़ा रसा । शोरबा । २ किसी अन्न के आटे में मसाले देकर कढ़ी आदि की तरह पकाई हुई कोई पतली लेई । ३ माँड़ । पीच । ४. मुलम्मा या गीलट जो धातुओं पर चढ़ाया जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—चढ़ाना ।—फेरना ।

यौ०—झोलदार ।

झोल²—संज्ञा पुं० [सं० दोल (दोलन), हिं० झूलना] १ पहने या ताने हुए कपड़ों आदि में वह अंश जो ढीला होने के कारण झूल या लटककर झोले की तरह हो जाता है । जैसे, कुरते या कोट में का झोल, छत की चाँदनी में का झोल आदि । २. कपड़े आदि के ढीले होने के कारण उसके झूलने या लटकने का भाव या क्रिया । तनाव या कसाव का उलटा ।

क्रि० प्र०—डालना ।—निकलना ।—निकालना ।—पड़ना ।

३. पल्ला । आँचल । उ०—फूली फिरत जसोदा घर घर उबटि कान्ह अन्हवाय अमोल । तनक बदन दोउ तनक तनक कर तनक चरन पोंछत पट झोल ।—सूर (शब्द०) । ४ परदा । ओट । आड़ । उ०—ऊधो सुनत तिहारो बोल । ल्याए हरि कुसलात धन्य तुम घर घर पारयो गोल । कहन देहु कहा करै हमरो बन उठि जैहे झोल । आवत ही याको पहिचान्यो निपटहि ओछो तोल ।—सूर (शब्द०) । ५ हाथी की चाल का एक ऐब जिसके कारण वह बिल्कुल सीधा न चलकर बराबर झूलता हुआ चलता है ।

झोल³—वि० १. ढीला । जो कसा या तना न हो ।

यौ०—झोलझाल = ढीलाढाला ।

२. निकम्मा । खराब । बुरा ।

झोल⁴—संज्ञा पुं० भूल । गलती । जैसे—गदहे की गोने में नौ मन का झोल ।—(कहा०) ।

झोल⁵—संज्ञा पुं० [हिं० झिल्ली या झोली] १. वह झिल्ली या थैली जिसमें गर्भ से निकले हुए बच्चे या अंडे रहते हैं । जैसे, कुतिया का झोल, मुरगी का झोल, मछली का झोल आदि ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल पशुओं और पक्षियों आदि के संबंध में ही होता है, मनुष्यों आदि के संबंध में नहीं ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

मुहा०—झोल बैठाना = मुरगी के नीचे सेने के लिये अंडे रखना ।

२. गर्भ । उ०—भक्ति बीज बिनसै नहीं आय परै जो झोल । जो कंचन बिष्ठा परै घटै न ताको मोल ।—कबीर (शब्द०) ।

झोल⁶—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाल हिं० झाल] १. राख । भस्म । खाक । उ०—(क) तुम बिन कंता धन हरुई (हुई या हरई) तृन तृन बरमा डोल । तेहि पर बिरह जराइ के चहै उड़ावा झोल ।—जायसी (शब्द०) (ख) आगि जो लगी समुद्र में टुटि टुटि खसै जो झोल । रोवै कबिरा डिंभिया मोरा हीरा जरै अमोल ।—कबीर (शब्द०) । २ दाह । जलन ।

झोलदार—वि० [हिं० झोल + फा० दार] १ जिसमें रसा हो । रसेदार । २. जिसपर गिलट या मुलम्मा किया हो । ३. झोल सबधी । ४. जिसमे झोल पड़ता हो । ढीलाढाला ।

झोलना—क्रि० स० [सं० ज्वलन] जलाना । उ०—हमको तुम्ह बिन सबै सतावत ।' 'पूछ पूछ सरदार सखन के इहि बिधि दई बड़ाई । तिन प्रति बोल झोलि तनु डारयो अनल भँवर की नाई ।—सूर (शब्द०) ।

झोला¹—संज्ञा पुं० [हिं० झलना वा सं० चोल] [स्त्री० अल्पा० झोली] १. कपड़े की बड़ी झोली या थैली । २ ढीलाढाला गिलाफ । खोली । जैसे, बंदूक का झोला । ३. साधुओं का ढीला कुरता । चोला । ४ बात का एक रोग जिसमें कोई अंग (जैसे, हाथ पैर आदि) ढीला पड़कर बेकाम पड़ जाता है । एक प्रकार का लकवा या पक्षाघात ।

मुहा०—किसी को झोला मारना = (१) बात रोग से किसी अंग का बेकाम हो जाना । पक्षाघात होना । (२) सुस्त पड़ जाना । बेकाम हो जाना ।

५ पेड़ों के पाला लू आदि के कारण एकबारगी कुम्हला जाने या सूख जाने का रोग ।

क्रि० प्र०—मारना ।

६. झटका । आघात । धक्का । झोंका । बाधा । आपत्ति । उ०—पाकी खेती देखिके गरवै कहा किसान । अजहूँ झोला बहुत है घर आवै तब जान ।—कबीर (शब्द०) । ७ हाथ का संकेत । इशारा । ८ पाल की गोन या रस्सी को झटका देने या ढीलने की क्रिया ।

झोला¹—संज्ञा पुं० [हिं० झलना] झोका। झँकोरा। हिलोर। उ०—कोई खाहिं पवन कर झोला। कोई करहिं पात अस डोला।—जायसी (शब्द०)।

झोलाहल—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल्, प्रा० झलहल] (युद्ध की) चमक। दीप्ति। प्रकाश। उ०—हय हिंसहि गज चिक्करि मगर सम दिप्पि कुलाहल। बलि पयिनि वेताल नदि नदिय झोलाहल।—पृ० रा०, ८।५४।

झोलिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोली] दे० 'झोली'। उ०—ऊधम प्रति होत जात घुंघट में नहिं लखात छूटत बहुरंग उडन अबिर झोलिका।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३६३।

झोलिहारा—संज्ञा पुं० [हिं० झोली + हारा (प्रत्य०)] १ झोली लटकानेवाला। २ कहार। (सोनारों की बोली)।

झोली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] १. इस प्रकार मोड़कर हाथ में लिया या लटकाया हुआ कपड़ा कि उसके नीचे का भाग एक गोल बरतन के आकार का हो जाय और उसमें कोई वस्तु रखी जा सके। कपड़े को मोड़कर बनाई हुई थैली। धोकरी। जैसे, गुलाल की झोली, साधुओं की झोली।

विशेष—यह किसी चौखूँटे कपड़े के चारो कोनो को लेकर इकट्ठा बाँधने से बन जाती है। कभी कभी इसके नीचे के खुले हुए चारो कोनो को कुछ दूर तक सी भी देते हैं।

मुहा०—झोली छोडना = बुढ़ापे के कारण शरीर के चमड़े का झूल जाना। झोली डालना = भिक्षा माँगने के लिये झोली उठाना। साधु या भिक्षुक हो जाना। झोली भरना = साधु को भरपूर भिक्षा देना।

२. घास बाँधने का जाल। ३ मोट। चरसा। पुर ४ वह कपड़ा जिससे खलिहान में अनाज में मिला हुआ भूसा उड़ाकर अलग किया जाता है। ५ धौरा। कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह पेंच उस समय किया जाता है। जब विपक्षी किसी प्रकार अपनी पीठ पर आ जाता है। इसमें एक हाथ उलटकर उसकी कमर पर देते हैं और दूसरे से उसकी टाँगों की संधि पकड़ कर उठाते हैं।

६. सफरी बिस्तर जो चारों कोनों पर लगी हुई रस्सियों के द्वारा खंभे पेड़ आदि में बाँधकर फैलाया जाता है। ७ रस्सियों का एक प्रकार का फंदा जिसके द्वारा भारी चीजों को उठाते हैं।

झोली²—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल या झाला] राख। भस्म।

मुहा०—झोली बुझाना = सब काम हो चुकने पर पीछे उसे करने चलना। कोई बात हो जाने पर व्यर्थ उसके संबंध में कुछ करना। जैसे,—पचायत तो हो चुकी अब क्या झोली बुझाने आए हो ?

विशेष—यह मुहावरा घर जलने की घटना से लिया गया है अर्थात् जब घर जलकर राख हो गया तब पानी लेकर बुझाने के लिये पहुँचे।

झौंझट(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं० झंझट] दे० 'झंझट'।

झौद—संज्ञा पुं० [हिं० झोंझ] पेट। उदर। उ०—कोई कर्म विहीन या नासा बिन कोई। झौंद फुटे कोई पड़े स्वासा बिनु होई।—सूदन (शब्द०)।

झौंर(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० युग्म, प्रा० जुम्म, हिं० झूमर] १. झुंड। समूह। उ०—छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध। ठौर ठौर झौंरत झपत झौंर झौंर मधु अंध।—बिहारी (शब्द०)। २. फूलों, पत्तियों या छोटे छोटे फलो का गुच्छा। उ०—दाख कैसी झौंर झलकति जोति जोबन की चाटि जाते भौंर जो न होती रंग चपा की।—(शब्द०)। ३ एक प्रकार का गहना जिसमे मोतियों या चाँदी सोने के दानो के गुच्छे लटकते रहते हैं। झब्बा। उ०—कलगी तुर्रा झौंर जगा सरपेच सुकुडल।—सूर (शब्द०)। ४ पेड़ों या झाड़ियों का घना समूह। झापस। कुंज। उ०—बन झौंर गंभीर भीतिकर नहिं सूझत दस आसा।—रघुराज (शब्द०) ५ दे० 'झाँवर'।

झौंर(पु)²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झंझट। उ०—तुम काहे को झौंर करो इतनी, नहिं काज है लाज हिये मढ़िबे को।—नट०, पृ० ५४।

झौंरना—क्रि० अ० [अनु०] १ गूँजना। गुंजारना। उ०—छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध। ठौर ठौर झौंरत झँपत झौंर झौंर मधु अंध।—बिहारी (शब्द०)। २. दे० 'झौरना'।

झौंरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झौंर'।

झौंराना¹—क्रि० अ० [हिं० झोवाँ या झाँवरा] १. झाँवरे रंग का हो जाना। बदरंग हो जाना। काला पड़ जाना। २. मुरझाना। कुम्हलाना।

झौंराना(पु)²—क्रि० अ० [हिं० झूमना] इधर उधर हिलना। झूमना। उ०—सौंठिहि रंक चले झौंराई। निसँठ राव सब कह बौराई।—जायसी (शब्द०)।

झौंसना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झुलसना'। उ०—नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति तात तात तौंसियत झौंसियत झारहीं।—तुलसी (शब्द०)।

झौनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टोकरी। दौरी।

झौर—संज्ञा पुं० [अनु० झाँव झाँव] १. झंझट। बखेड़ा। हुज्जत। तकरार। झौरा। विवाद। उ०—(क) नहीं ढीठ नैनन ते और। कितनौं मैं बरजति समझावति उलटि करत हैं झौर।—सूर (शब्द०)। (ख) महरि तुम ब्रज चाहति कछु और। बात एक में कही कि नाहीं आप लगावति झौर।—सूर (शब्द०)। २ डाँट। फटकार। कहासुनी। ऊँचा नीचा। उ०—और को कैउ झौर सहै पै न आवरी रावरी आस मुलैहै।—द्विजदेव (शब्द०)।

झौरना—क्रि० स० [हिं० झपटना] छोप लेना। दबा लेना। झपट कर पकड़ना।—उ०—हती धाय के युग त्यों बीर झौरयो। मृगाधीश ज्यों मृग के यूह झौरयो।—सूदन (शब्द०)।

झौरा—संज्ञा पुं० [अनु० झावँ झावँ] झंझट। बखेड़ा। हुज्जत। तकरार। हौरा। विवाद।
क्रि० प्र०—करना।—मचाना।
यौ०—हौरा झौरा।

झौरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोल] दे० 'झोलै'। उ०—उलटा कुंभ भरे जल नाहीं बगुला खोजै झौरी।—सं० दरिया, पृ० १२७।

झौरे—क्रि० वि० [हिं० धौरे] १. समीप। पास। निकट। २ साथ। संग। उ०—सौरे अंग सुझत न पौरे खोलि धौरे राति अधिक लौ राधिका के झौरे ई लगे रहैं।—देव (शब्द०)।

झौल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झोल'। उ०—यह नर गरभ भुलाया देखि माया को झौल।—कबीर सा०, पृ० ५४३।

झौवा‡—संज्ञा पुं० हिं० झावा] रहठे की बनी हुई वह छोटी टोरी जिसमे मजदूर लोग खोदी हुई मिट्टी भरकर फेंकने के लिये ले जाते हैं। खँचिया।

झौहाना—क्रि० अ० [अनु०] १. गुर्राना। २. जोर से चिड़चिड़ाना। क्रोध में झल्लाना।

झ्यूलना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झूलना'। उ०—यों कह आप फिर वासुदेव बोले। ज्यों आनंद मद सुँ झ्यूले।—दक्खिनी,० पृ० १२२।

ट

ट—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला मे ग्यारहवाँ व्यंजन जो टवर्ग का पहला वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान मूर्धा है। इसका उच्चारण करने में तालु से जीभ का अग्र भाग लगाना पड़ता है।

टंक¹—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. एक तौल जो चार माशे की होती है।
विशेष—कोई कोई इसे तीन माशे या २४ रत्ती की भी मानते हैं।
२ वह नियत मान या बाट जिससे तौल तौलकर धातु टकसाल में सिक्के बनने के लिये दी जाती है। ३ सिक्का। ४ मोती की तौल जो २१¾ रत्ती की मानी जाती हैं। ५ पत्थर काटने या गढ़ने का औजार। टाँकी। छेनी। ६ कुल्हाड़ी। परशु। फरसा। ७ कुदाल। ८. खड्ग। तलवार। ९. पत्थर का कटा हुआ टुकड़ा। १०. डाँग। ११ नील कपित्थ। नीला कैथ। खटाई। १२. कोप। क्रोध। १३. दर्प। अभिमान। १४ पर्वत का खड्ड। १५ सुहागा। १६ कोष। खजाना। १७ संपूर्ण जाति का एक राग जो श्री, भैरव और कान्हड़ा के योग से बना है।
विशेष—इसके गाने का समय रात १६ दंड से २० दंड तक है। इसमें कोमल ऋषभ लगता है और इसका सरगम इस प्रकार है—सा रे म म प ध नि। हनुमत् के मत से इसका स्वरग्राम है—स ग म म प ध नि सा सा।
१८ म्यान। १९ एक काँटेदार पेड़ जिसमें बेल या कैथ के बराबर फल लगते हैं। २०. सौंदर्य (को०)। २१ गुल्फ (को०)।

टक²—संज्ञा पुं० [अ० टैंक] १ तालाब, पानी रखने का हौज।

टंक(पु)³—संज्ञा पुं० [?] अल्पांश। थोड़ा अंश। उ०—जाको जस टक सातो दीप नव खंड महिमंडल की कहा ब्रह्मंड ना समात है।—भूषण० ग्रं०, पृ० २२२।

टंकक¹—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कक-] १ चाँदी का सिक्का या रुपया। २. टाँकी। छेनी (को०)।

टंकक²—संज्ञा पुं० [हिं० टकण] टकण यत्र पर टकण कार्य करनेवाला व्यक्ति। (अं० टाइपिस्ट)।

टंककपति—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ककपति] दे० 'टकपति' (को०)।

टंककशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ककशाला] टकसाल घर।

टंकटीक—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कटीक] शिव।

टंकण¹—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कण] १ सुहागा। २ धातु की चीज में टाँका मारकर जोड लगाने का कार्य। ३. घोड़े की एक जाति। ४ एक देश जिसका नाम जो बृहत्संहिता में कोंकण आदि के साथ आया है।

टंकण²—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] टाइपराइटर पर टंकित करनेका कार्य। टाइप करना। उ०—छपाई और टकण की कठिनाइयाँ कैसे दूर हो।—भा० शिक्षा, पृ० ५९।

टंकणक्षार—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कणक्षार] सोहागा (को०)।

टंकन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'टंकण'। उ०—एक ओर को प्रेम, ओर करने बरजोरिए। ज्यो टकन तें हेम, पिघरत प्रान मरोरिए।—ब्रज० ग्र० १४१।

टंकणयंत्र—संज्ञा पुं० [हिं० टंकण + सं० यन्त्र] एक प्रकार का छापने का छोटा यत्र जिसपर अक्षरों की पत्तियाँ अलग अलग लगी होती हैं और जब छापना होता है तो उन्हीं पत्तियों को उँगलियों से दबाते जाते हैं और यंत्र के ऊपर लगे हुए कागज पर अक्षर छपते जाते हैं। टाइपराइटर।
विशेष—कार्बन पेपर की सहायता से इस यत्र पर एकाधिक प्रतियाँ टंकित की जा सकती हैं।

टंकना¹—क्रि० अ० दे० [हिं० टाँकना] दे० 'टँकना'।

टंकना(पु)²—क्रि० स० [?] टकना। आवृत करना। उ०—बद्दं न शील कांत छीन ह्वै लज्ज मान टंकनि फिरै।—पृ० रा०, २५।९६।

टंकपति—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कपति] टकसाल का अधिपति।

टंकवान्—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कवत्] एक पहाड़ जिसका नाम वाल्मीकि रामायण में आया है।

टंकवाना—क्रि० स० [हिं० टँकवाना] दे० 'टँकाना'।

टंकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कशाला] टकसाल।

टंका¹—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. पुराने समय में चाँदी की एक तौल

जो एक तोले के बराबर होती थी। २. चाँदी का एक पुराना सिक्का। टका। ३. सिक्का। मुद्रा। उ० पान कसए सोनाक टका चादन क मूल ई धन बिका।—कीर्ति०, पु० ६८।

टंका²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गन्ना या ईख।

टंका³—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्का] १ जंघा। २ तारा देवी। ३ संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो त्रिषड्ज और षादि मूर्च्छना युक्त होती है। हनुमद् के अनुसार इसका स्वरग्राम यों है—स रे ग म प ध नि स।

टंकानक—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कानक] ब्रह्मदारु। शहतूत।

टंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कार] १. वह शब्द जो धनुष की कसी हुई डोरी पर बाण रखकर खींचने से होता है। धनुष की कसी हुई पतंचिका खींच या तानकर छोड़ने का शब्द। २. टनटन शब्द जो कसे हुए तार आदि पर उँगली मारने से होता है।

३. धातुखंड पर आघात लगने का शब्द। ठनाका। झनकार। ४. विस्मय। ५. कीर्ति। नाम। प्रसिद्धि। ६ कोलाहल। शोरगुल (को०)। ७ अपयश। कुख्याति (को०)।

टंकारना—क्रि० स० [सं० टङ्कार + ना (प्रत्य०)] धनुष की डोरी खींचकर शब्द करना। पतंचिका तानकर ध्वनि उत्पन्न करना। चिल्ला खींचकर बजाना।

टंकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कारी] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ संबोतरी होती हैं।

विशेष—फूल के भेद से इसकी कई जातियाँ हैं। किसी में लाल फूल लगते हैं, किसी में गुलाबी और किसी में सफेद। फूल गुच्छों में लगते हैं जिनके झड़ने पर छोटे छोटे फलों के गुच्छे लगते हैं। यह क्षुप जँगलों में बहुत होता है। वैद्यक में इसका स्वाद कटु और गुण वात कफ का नाशक और अग्निदीपक लिखा है। टंकारी उदर रोग और विसर्प रोग में भी दी जाती है।

टंकारी²—वि० [सं० टङ्कारिन्] [वि०स्त्री० टङ्कारिणी] टंकार करनेवाला [को०]।

टंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्किका] पत्थर काटने का औजार। टाँकी। छेनी। उ०—सुतरु सुजन बन ऊख सम खल टंकिका रुखान। परहित अनहित लागि सब साँसति सहत समान।—तुलसी (शब्द०)।

टंकी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] श्री राग की एक रागिनी।

टंकी—संज्ञा स्त्री [सं० टङ्क (=खड्ड या गड्ढा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी भरने का एक छोटा सा कुंड। चौबच्चा। टाँका। २. पानी भरने का बड़ा बर्तन। टब। ३. तेल भरने या संचित करने का पात्र।

टंकृत—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कृत] टंकार की ध्वनि [को०]।

टंकोर—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कार] दे० 'टंकार'। उ०—देखे राम पथिक नाचत मुदित मोर। मानत मनहु सतडित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर।—तुलसी ग्रं० पृ० ३६३।

टंकोरना—क्रि० स० [अनु०] १ धनुष की रस्सी को खींचकर उससे शब्द उत्पन्न करना। टंकारना। २. ठोकर लगाना। ठोकर मारकर शब्द उत्पन्न करना। ३ तर्जनी या मध्यमा उँगली की कुबली बनाकर उसकी नोक को अँगूठे से दबाकर बलपूर्वक छोड़ना जिससे किसी वस्तु में जोर से टक्कर लगे।

टग—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ग] १. टाँग। टँगड़ी। २ कुल्हाड़ी। ३. कुदाल। परशु। फरसा। ४. सुहागा। ५ चार माशे की एक तौल। ६ एक प्रकार की तलवार (को०)।

टंगण—संज्ञा पुं० [सं० टङ्गण] टकण। सोहागा।

टगा—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्गा] टाँग। पैर [को०]।

टंगिनी—संज्ञा स्त्री [सं० टगिनी] पाठा।

टंच¹—वि० [सं० चण्ड, हिं० चंठ] १. सूमड़ा। कंजूस। कृपण। २. कठोरहृदय। निष्ठुर।

टंच²—वि० [हिं० टिचन] तैयार। मुस्तैद।

टंटघंट—संज्ञा पुं० [अनु० टन टन + घंटा] पूजा पाठ का भारी आडंबर। घड़ी घंटा आदि बजाकर पूजा करने का भारी प्रपंच। मिथ्या आडंबर।

क्रि० प्र०—करना।—फैलाना।

टंटा—संज्ञा पुं० [सं० तण्डा (=आक्रमण) अथवा अनु० टनटन] १. उपद्रव। हलचल। दंगा। फसाद।

क्रि० प्र०—मचाना।

मुहा०—टंटा खड़ा करना = उपद्रव करना। झगड़ा मचाना।

२. तकरार। लड़ाई। कलह।

यौ०—झगड़ा टंटा।

३ आडंबर। प्रपंच। बखेड़ा। खटराग। लंबी चौड़ी प्रक्रिया। जैसे,—इस दवा के बनाने में तो बड़ा टंटा है।

टंडर—संज्ञा पुं० [अं० टेंडर] १ वह कागज जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी दूसरे से कुछ काम करने या कोई माल किसी नियत दर पर बेचने खरीदने का इकरार करता है। निविदा। २. अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी के प्रति अपना देना अदालत में दाखिल करे। निविदा।

टंडल¹—संज्ञा पुं० [अं० जेनरल, हिं० जंडैल] मजदूरों का मेठ या जमादार।

टंडल²—संज्ञा पुं० [अं० टेंडर] दे० 'टंडर'।

टंडस (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० टंटा] दिखावटी काम। झूठा काम। उ०—टंडस तें बाढ़े जंजाला।—धरनी०, पृ० ४१।

टंडैल—संज्ञा पुं० [अं० जेनरल, हिं० जंडैल] दे० 'टंडल'।

टंसरी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की वीणा।

टँकना—क्रि० अ० [हिं० टाँकना का अक० रूप] १ टाँका जाना। कील आदि जड़कर जोड़ा जाना। जैसे—एक छोटी सी चिप्पी टँक जायगी तो यह गगरा काम देने लायक हो जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

२ सिलाई के द्वारा जुड़ना। सिलना। सिया जाना। जैसे, फटा जूता टँकना, चकती टँकना, गोटा टँकना।

संयो० क्रि०—जाना।

३ सीकर अटकाया जाना। सिलाई के द्वारा ऊपर से लगाया जाना। जैसे, झालर में मोती टँके हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

४ रेती या सोहन के दाँतों का नुकीला होना। रेती का तेज होना।

संयो० क्रि० – जाना।

५ अंकित होना। लिखा जाना। दर्ज किया जाना। जैसे,—यह रुपया बही पर टँका है या नहीं ?

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—इस अर्थ मे इस क्रिया का प्रयोग ऐसी वस्तु, रकम या नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है।

६ सिल, चक्की आदि का टाँकी से गड्ढे करके खुरदरा किया जाना। छिनना। रेहा जाना। कुटना।

टँकवाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'टँकाना'।

टँकसालिⓅ—सज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'टकसाल'। उ०—घडी और शब्दि रची टँकसालि। —प्राण०, पृ० १०२।

टँकाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकना] १ टाँकने की क्रिया या भाव। २. टाँकने की मजदूरी।

टँकाना—क्रि० स० [टाँकना का प्रे० रूप] १. टाँकों से जोडवाना या सिलवाना। जैसे, जूता टँकाना। २ सिलाकर लगवाना। जैसे, बटन टँकाना। ३. (सिल, जाँता, चक्की आदि) खुरदुरा कराना। कुटाना। ४ लिखवाना। टँकवाना।

टँकाना[२]—क्रि० स० [सं० टङ्क (=सिक्का)] सिक्कों का परखवाना सिक्कों की जाँच कराना।

टँकारना—क्रि० स० [हिं० टकारना] दे० 'टकारना'। उ०—सुफलक बढ़ि विज धनुष टँकार्‍यो। बीस बाण बाह्लीकहि मार्‍यो। —गोपाल (शब्द०)।

टँकावलⓅ—वि० [सं० टङ्क (=सिक्का)+आवल (=वाला)] टकोवाला। बहुमूल्य। उ०—काने कुडल झलमलइ कठ टँकावल हार।—ढोला०, दू० ४८०।

टँकोरⓅ—सज्ञा पुं० [हिं० टँकोर] दे० 'टँकोर'। उ०—प्रभु कीन्ह धनुप टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।—तुलसी (शब्द०)।

टँकोरी—सज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] दे० 'टँकोरी'।

टँकौरी—सज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] सोना, चाँदी आदि तौलने का छोटा तराजू। छोटा काँटा।

टँगड़ी—सज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ग] घुटने से लेकर एँड़ी तक का भाग। टाँग।

मुहा०—टँगडी पर उडाना=लंग मारकर गिराना। कुश्ती में पैर से पैर फँसाकर गिराना। अड़गा मारना।

टँगना[१]—क्रि० अ० [सं० टङ्कण या टङ्गण (=जड़ा जाना)] १. किसी वस्तु का किसी ऊँचे आधार पर बहुत थोडा सा इस प्रकार अटकना या ठहरा रहना कि उसका प्राय. सब भाग उस आधार से नीचे की ओर गया हो। किसी वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार बँधना वा फँसना अथवा उसपर इस प्रकार टिकना या अटकना कि उसका (प्रथम वस्तु का) बहुत सा भाग नीचे की ओर लटकता रहे। लटकना। जैसे,(खूँटी पर) कपड़े टँगना, परदा टँगना, तसवीर टँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अंश आधार पर हो और थोड़ा सा अंश आधार के नीचे लटका हो तो उस वस्तु को टगी हुई नही कहेंगे। 'टँगना' और 'लटकना' मे यह अंतर है कि 'टँगना' क्रिया में वस्तु के फँसने या टिकने या अटकने का भाव प्रधान हैं, और 'लटकना' में उसके बहुत से अंश का नीचे की ओर अधर मे दूर तक जाने का भाव।

सयो० क्रि०—उठना।—जाना।

२ फाँसी पर चढ़ना। फाँसी लटकना।

संयो क्रि०—जाना।

टँगना[२]—सज्ञा पु० १ वह आडी बँधी हुई रस्सी जिसपर कपडे आदि टाँगे या रखे जाते हैं। अलगनी। बिलगनी। २. जुलाहो की वह रस्सी जिसमे उठोनी टाँगी जाती है। ३. वह फंदा जिसे मेटी, लोटे आदि के गले में फँसाकर हाथ में लटकाए हुए ले चलने के लिये बनाते हैं।

टँगरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टँगडी'।

टँगा—सज्ञा पुं० [देश०] मूँज।

टँगारी†—सज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ग] कुल्हाड़ी। कुठार।

टँडⓅ—सज्ञा पुं० [हिं० टटा] झगड़ा। प्रपच। सासारिक माया। उ०— टँड सकट मे ग्रसित है सुत दारा रहसाई।—भीखा श० पृ० ८७।

टँड़िया—सज्ञा स्त्री० [सं० ताड अथवा देश०] बाँह में पहनने का एक गहना जो अनंत के आकार का, पर उससे भारी और बिना घुडी का होता है। टाँड। बहूँटा।

टँडुलिया—सज्ञा स्त्री० [देश०] बनचौलाई जो कुछ काँटेदार होती है। यह साग और दवा दोनो के काम आती है।

टँसहा†—सज्ञा पुं० [हिं० टाँस+हा (प्रत्य०)] वह बैल जो नसों के सिकुड जाने से लँगड़ा हो गया हो।

ट—सज्ञा पुं० [सं०] १. नारियल का खोपड़ा। २. वामन। ३ चौथाई भाग। ४. शब्द।

टईⓅ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठही'।

टक—सज्ञा स्त्री० [सं० टक (=बाँधना) या सं० त्राटक] १. ऐसा ताकना जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे। किसी ओर लगी या बँधी हुई दृष्टि। गडी हुई नजर। स्थिर दृष्टि।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—टक बँधना=स्थिर दृष्टि होना। टक बाँधना=किसी की ओर स्थिर दृष्टि से देखना। टकटक देखना=बिना पलक गिराए लगातार कुछ काल तक देखते रहना। टक लगाना=आसरा देखते रहना। प्रतीक्षा में रहना।

२. लकड़ी आदि भारी बोझों को तौलनेवाले बड़े तराजू का चोखूँटा पलड़ा।

टकझकⓅ—सज्ञा स्त्री० [हिं० टकटकी+झाँकना] ताकझाँक।

उ०—टकझक सों झुकि वदन निहारत अलक सँवारत पलक न मारत जान गई नँदरानी।—नद० ग्र० पृ० ३३८।

टकटक(पु)—क्रि० वि० [हिं० टकटकाना] टकटकी लगाकर देखना। एक टक देखना। उ०—टकटक ताकि रही ठग भूरी आपा आप बिसारी हो।—पलटू० भा० ३, पृ० ८४।

क्रि० प्र०—ताकना।—देखना।

टकटका(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं० टक या सं० त्राटक] [स्त्री० टकटकी] स्थिर दृष्टि। टकटकी। उ०—सुनि सो बात राजा मन जागा। पलक न मार टकटका लागा।—जायसी (शब्द०)।

टकटका[2]—वि० स्थिर या बँधी हुई (दृष्टि)। उ०—रूपासक्त चकोर कवक करि पावक को खात कन। रामचंद्र को रूप निहारत साधि टकाटक तकन।—देवस्वामी (शब्द०)।

टकटकाना[1]—क्रि० स० [हिं० टक] १ एक टक ताकना। स्थिर दृष्टि से देखना। उ०—टकटके मुख फुकी नैनही नागरी, उरहनों देत रुचि अधिक बाढ़ी।—सूर (शब्द०)। २ टकटक शब्द उत्पन्न करना। ३ फल गिराने के लिये किसी पेड़ आदि को हिलाना।

टकटकाना[2]—क्रि० स० [हिं० टका (=सिक्का)] १ रुपए लेना। चालाकी से रुपए लेना। २ धन कमाना। आय करना।

टकटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टक या सं० त्राटकी] ऐसी तकाई जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे। अनिमेष दृष्टि। स्थिर दृष्टि। गड़ी हुई नजर। उ०—टकटकी चंद चकोर ज्यों रहत है। सुरत और निरत का तार बाजे।—कबीर श०, भा० १, पृ० ८८।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—टकटकी बँधना = स्थिर दृष्टि होना। टकटकी बाँधना = स्थिर दृष्टि से देखना। ऐसा ताकना जिसमें कुछ काल तक पलक न गिरे। उ०—ओर की खोट देखती वेला। टकटकी लोग बाँध देते हैं।—चोखे०, पृ० १५।

टकटोना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टकटोलना'। उ०—पुनि पीवत ही कच टकटोवै झूठे जननि रढै।—सूर (शब्द०)।

टकटोरना—क्रि० स० [सं० त्वक् (=चमड़ा)+तोलन (=अंदाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना। स्पर्श द्वारा अनुसंधान या परीक्षा करना। टटोलना। उ०—(क) सूर एकहू अंग न काँचौ मैं देखी टकटोरि।—सूर (शब्द०)। (ख) नहिं सगुन पायउ एक म्सिु करि एक धनु देखन गए। टकटोरि कपि ज्यों नारियर सिर नाइ सब बैठत भए।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३। २ तलाश करना। ढूँढना। खोजना। उ०—मोहि न पत्याहु तो टकटोरी देखी पन दे।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

टकटोलना—क्रि० स० [सं० त्वक् (=चमड़ा)+तोलन (=अंदाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना। टटोलना।

टकटोहन—संज्ञा पुं० [हिं० टकटोना] टटोलकर देखने की क्रिया। स्पर्श। उ०—श्याम श्यामा मन रिझवत पीन कुचन टकटोहन।—सूर (शब्द०)।

टकटोहना(पु)—क्रि० स० [हिं० टकटोना] दे० 'टकटोलना'। उ०—या बानक उपमा दीवे को सुकवि कहा टकटोहै। देखन अंग थके मन मे शशि कोटि मदन छवि मोहै।—सूर (शब्द०)।

टकतंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० हिं० टक + सं० तन्त्री] सितार के ढंग का एक प्राचीन बाजा।

टकना[1]†—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (=टाँग)] घुटना।

टकना[2]†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टकना'।

टकबीड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की भेंट जो किसानों की ओर से विवाहादि के अवसरों पर जमींदारों को दी जाती है। मधवच। शादियाना।

टकराना[1]—क्रि० अ० [हिं० टक्कर] १ एक वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार वेग के साथ सहसा मिलना या छू जाना कि दोनों पर गहरा आघात पहुँचे। जोर से भिड़ना। धक्का या ठोकर लेना। जैसे,—(क) चट्टान से टकराकर नाव चूर चूर होना। (ख) अँधेरे में उसका सिर दीवार से टकरा गया।

संयो० क्रि०—जाना।

२ इधर से उधर मारा फिरना। डाँवाडोल घूमना। कार्यसिद्धि की आशा से कई स्थानों पर कई बार आना जाना। घूमना। जैसे,—उसका घर मालूम नहीं मैं कहाँ टकराता फिरूँगा? उ०—जँह तँह फिरत स्वान की नाईं द्वार द्वार टकरात।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—टकराते फिरना = मारे मारे फिरना। हैरान घूमना।

३ लड़ाई या झगड़ा होना।

टकराना[2]—क्रि० स० १ एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर जोर से मारना। जोर से भिड़ाना। पटकना।

मुहा०—माथा टकराना = (१) दूसरे के पैर के पास सिर पटककर विनय करना। अत्यंत अनुनय विनय करना। (२) घोर प्रयत्न करना। सिर मारना। हैरान होना।

२ किसी को किसी से लड़ा देना।

टकराव—संज्ञा पुं० [हिं० टकर + आव (प्रत्य०)] टक्कर। टकराहट।

टकराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० टकराना] १. टकराने का भाव या क्रिया। उ०—वह स्वर जिसकी तीखी सशक्त टकराहट से, नारी की आत्मा में भी कुछ जग जाता है।—ठंडा०, पृ० ७१। २. संघर्ष। लड़ाई।

टकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम।

टकसरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो आसाम, चटगाँव और बर्मा में होता है। इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं।

टकसार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'टकसाल'। उ०—पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार। पारस से पारस भया, परख भया टकसार।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—टकसार वाणी = प्रामाणिक बात। सच्ची वाणी। उ०—दूसरे कबीर साहब की जो टकसार वाणी है।—कबीर मं०, पृ० १८।

२ जँची या प्रामाणिक वस्तु। उ०—नष्टे का यह राज है न फरक बरतै ठेक। सार शब्द टकसार है हिरदय माँहि विवेक। —कबीर (शब्द०)।

टकसारीⓅ—वि० [हिं० टकसार] दे० 'टकसाली'।

टकसाल—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कशाला] १ वह स्थान जहाँ सिक्के बनाए या ढाले जाते हैं। रुपए पैसे आदि बनने का कार्यालय।

मुहा०—टकसाल का खोटा=नीच। दुष्ट। कमीना। कम असल अशिष्ट। टकसाल के चट्टे बट्टे =टकसाल में ढले हुए। विशिष्ट प्रकृति के। उ०—राज्य के अधिकारी तो वही पुरानी टकसाल के चट्टे बट्टे थे।—किन्नर०, पृ० २५। टकसाल चढ़ना=(१) टकसाल में परखा जाना। सिक्के या धातु-खंड की परीक्षा होना। (२) किसी विद्या या कला कौशल में दक्ष माना जाना। पारगत माना जाना। (३) बुराई में अभ्यस्त होना। कुकर्म या दुष्टता में परिपक्व होना। बदमाशी में पक्का होना। निर्लज्ज होना। टकसाल बाहर=(१) (सिक्का) जो राज्य की टकसाल का न होने के कारण प्रामाणिक न माना जाय। जो प्रचार में न हो। (२) (वाक्य या शब्द) जो प्रामाणिक न माना जाय। जिसका प्रयोग शिष्ट न माना जाय।

२ जँची या प्रामाणिक वस्तु। असल चीज। निर्दोष वस्तु।

टकसाली[1]—वि० [हिं० टकसाल+ई (प्रत्य०)] १. टकसाल का। टकसाल संबंधी। २ जो टकसाल का बना हो। खरा। चोखा। जैसे, टकसाली रुपया। ३. सर्वसमत। अधिकारियों या विज्ञों द्वारा अनुमोदित। माना हुआ। जैसे, टकसाली भाषा। ४ जँचा हुआ। पक्का। प्रामाणिक। परीक्षित। जैसे, टकसाली बात।

मुहा०—टकसाली बात=पक्की बात। ठीक बात। ऐसी बात जो अन्यथा न हो। टकसाली बोली=सर्वसमत भाषा। विज्ञों द्वारा अनुमोदित भाषा। शिष्ट भाषा। ऐसी भाषा जिसमें ग्राम्य आदि दोष न हों।

टकसाली[2]—संज्ञा पुं० टकसाल का अधिकारी। टकसाल का अध्यक्ष।

टकहाई—वि० स्त्री० [हिं० टका] जो टके टके पर व्यभिचार करती हो। जो वेश्याओं में नीच हो। जैसे, टकहाई रंडी।

टका—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. चाँदी का एक पुराना सिक्का। रुपया। उ०—(क) रतन सेन हीरामन चीन्हा। लाख टका बाह्मन कँह दीन्हा।—जायसी (शब्द०) (ख) लाख टका अरु झूमक सारी दे दाई को नेग।—सूर (शब्द०)। २. ताँबे का एक सिक्का जो दो पैसों के बराबर होता है। अधन्ना। दो पैसे। जैसे—अंधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा।

मुहा०—टका पास न होना=निर्धन होना। दरिद्र होना। टका सा जवाब देना=(१) खट से जवाब देना। तुरत अस्वीकार करना। किसी की प्रार्थना, याचना, अनुरोध या आज्ञा को तुरत अस्वीकार करना। साफ इनकार करना। कोरा जवाब देना। जैसे,—मैंने दो दिन के लिये उनसे घोड़ा माँगा तो उन्होंने टका सा जवाब दे दिया। (२) साफ जवाब देना कि मैंने इस काम को नहीं किया है या मैं इस बात को नहीं जानता। साफ निकल जाना। कानों पर हाथ रखना। टका सा मुँह लेकर रह जाना=छोटा सा मुँह लेकर रह जाना। लज्जित हो जाना। खिसिया जाना। टका सी जान=अकेला दम। एक ही जीव। (स्त्रि०)। टके ऐंठना=अनुचित रूप से या धूर्तता से रुपया प्राप्त करना। रुपया ऐंठना। उ०—क्यों टका सा जवाब उसको दें। जिस किसी से सदा टके ऐंठे। —चोखे०, पृ० ८७। टके की औकात=(१) साधारण वित्त का आदमी। गरीब आदमी। (२) अस्तित्वहीनता। उ०—हम गरीब आदमी हैं, टके की हमारी औकात।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८७। टके को न पूछना=लेशमात्र महत्व न देना। महत्वहीन समझना। उ०—भूखों मरते हं कोई टके को भी नहीं पूछता। फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६७। टके कोस का दौड़नेवाला=थोड़ी मजूरी पर अधिक परिश्रम करनेवाला। गरीब नौकर। उ०—टके कोस के दौड़नेवाले, हमको दौड़ने धूपने से काम है।—सैर कु०, भा० १, पृ० ३१। टके गज की चाल=मोटी चाल। किफायत से निर्वाह। †टके गिनना=हुक्के का गुड़ गुड़ बोलना।

३. धन। द्रव्य। रुपया पैसा। जैसे,—जब टका पास में रहेगा, तब सब सुनेंगे। ४ तीन तोले की तौल। दो बालाशाही पैसे भर की तौल। आधी छँटाक का मान। (वैद्यक)।

मुहा०—टका भर=(१) तीन तोले का परिमाण। (२) थोड़ा सा। जरा सा।

५. गढ़वाल की एक तौल जो सवा सेर के बराबर होती है।

टकाई[1]—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'टकाही', 'टकहाई'।

टकाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टकासी'।

टकाउलⓅ—वि० [हिं० टका(=सिक्का) उल (=वाला) (प्रत्य०)] टकावाला। टके का। उ०—माँगिसु कोड़ि टकाउल हार। —बी० रासो, पृ० ३६।

टकाटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टकटकी'।

टकातोप—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की तोप जो जहाजों पर रहती है। —(लश०)।

टकाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टँकाना'।

टकानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टँकना] बैलगाड़ी का जूआ।

टकासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टका] १. टके रुपए का ब्याज। दो पैसे रुपए का सूद। २ वह कर या चंदा जो प्रति मनुष्य से एक एक टके के हिसाब से लिया जाय।

टकाही[1]—वि० [हिं० टका+ही (प्रत्य०)] दे० 'टकहाई'।

टकाही[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'टकासी'।

टकी[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टक] दे० 'टकटकी'।

टकी[2]—वि० [हिं० टकना] टँकी हुई।

टकुआ—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुक, प्रा०, तक्कुअ] १. एक प्रकार का सूआ जो चरखे में लगा रहता है। तकला। २. बिनौला निकालने की चरखी में लगा हुआ लोहे का एक पुरजा। ३. छोटे तराजू या काँटे के पलड़ों में बँधा हुआ तागा।

टकुली[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिमालय की तराई में होनेवाला एक ऐसा पेड़ जिसकी पत्तियाँ झर जाया करती हैं। चपोट सिरीस।

टकुली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. पत्थर काटने का औजार। २. पेचकश की तरह लोहे का एक औजार जो नक्काशी बनाने के काम में आता है।

टकुवा ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुक, प्रा० तक्कुअ] दे० 'टकुआ'। उ०—टिकुली सेंदुर टकुवा चरखा दासी ने फरमाया।—कबीर०, श०, भा० ४, पृ० २५।

टकूचना—क्रि० स० [हि० टौकना] खाना। —(दलाल)।

टकैत[1]—वि० [हि०] दे० 'टकैत'।

टकैत[2]—वि० [हि० टका+ऐत (प्रत्यय)] १ टकेवाला। रुपए पैसेवाला। धनी। २. कम हैसियत या थोड़ी पूँजीवाला।

टकैया—वि० [हि० टका+इया (प्रत्यय)] १. टके का। टके-वाला २ तुच्छ। साधारण।

टकोर—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कार]. १. हलकी चोट। प्रहार। आघात। ठेस। थपेड़।

क्रि० प्र०—देना।

२ डके की चोट। नगाड़े पर का आघात। ३. डके का शब्द। नगाड़े की आवाज। ४ धनुष की डोरी खींचने का शब्द। टंकार। ५. दवा भरी हुई गरम पोटली को किसी अंग पर रखकर छुलाने की क्रिया। सेंक। ६ दाँतों की वह टीस जो किसी वस्तु के खाने से होती है। दाँतों के गुठले होने का भाव। चमक।

क्रि० प्र०—लगना।

७. झाल। चरपराहट। उ०—कबहूँ कौर खात मिरचन की लगी दसन टकोर।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

टकोरना—क्रि० स० [हि० टकोर से नामिक धातु] १ ठोकर लगाना। हलका आघात पहुँचाना। ठेस या थपड़ मारना। २ डके आदि पर चोटे लगाना। बजाना। ३ दवा भरी हुई किसी गरम पोटली को किसी अंग पर रह रहकर छुलाना। सेंकना। सेंक करना।

टकोरा—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कार] डके की चोट। नौबत की आवाज।

टकौना‡—संज्ञा पुं० [हि० टका+औना (प्रत्य०)] दे० 'टका'।

टकौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १ सोना आदि तौलने का छोटा तराजू। छोटा काँटा। २ दे० 'टकासी'।

टक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ कंजूस व्यक्ति। कृपण। २ वाह्लीक जातीय व्यक्ति [को०]।

टक्कदेश—संज्ञा पुं० [सं०] चनाव और व्यास के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम।

विशेष—राजतरंगिणी में टक्क देश को गुर्जर (गुजरात) राज्य के अंतर्गत लिखा है। टक्क जाति किसी समय मे अत्यंत प्रताप-शालिनी थी और सारे पंजाब में राज्य करती थी। चीनी यात्री हुएनसांग ने टक्क राज्य तथा उसके अधिपति मिहिरकुल का उल्लेख किया है। मिहिरकुल का हूण होना इतिहासों मे प्रसिद्ध है। ये हूण पंजाब और राजपूताने में बस गए थे। यशोधर्मन् द्वारा मिहिरकुल के पराजित होने (५२८ ईसवी) के ७८ वर्ष पीछे हर्षवर्धन राजसिंहासन पर बैठे थे जिनके राजत्वकाल मे हुएनसांग आया था। टक्क शायद हूण जाति की ही कोई शाखा रही हो।

टक्कदेशीय[1]—वि० [सं०] टक्कदेश का। टक्क देश में उत्पन्न।

टक्कदेशीय[2]—संज्ञा पुं० बथुआ नाम का साग।

टक्कवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टक+बाई] एक प्रकार का वात-रोग जिसमे रोगी का शरीर सुन्न हो जाता है और वह टक बाँधकर ताकता रहता है।

टक्कर[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठक] १. वह आघात जो दो वस्तुओं के वेग के साथ मिलने या छू जाने से लगता है। दो वस्तुओं के भिड़ने का धक्का। ठोकर।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर खाना = १. किसी कड़ी वस्तु के साथ इतने वेग से भिड़ना या छू जाना कि गहरा आघात पहुँचे। जैसे,—चट्टान से टक्कर खाकर नाव चूर चूर हो गई। २. मारा मारा फिरना। जैसे,—नौकरी छूट जाने से वह इधर उधर टक्करें खाता फिरता है।

२ मुकाबिला। मुठभेड़। भिड़ंत। लड़ाई। जैसे,—दिन भर मे दोनों की एक टक्कर हो जाती है।

मुहा०—टक्कर का = जोड़ का। मुकाबिले का। बराबरी का। समान। तुल्य। जैसे,—उनकी टक्कर का विद्वान् यहाँ कोई नहीं है। टक्कर खाना = (१) मुकाबिला करना। सम्मुख होना। लड़ना। भिड़ना। (२) मुकाबिले का होना। समान होना। तुल्य होना। उ०—इस टोपी का काम सच्चे काम से टक्कर खाता है। टक्कर लड़ना = बराबरी होना। समानता होना। उ०—इस ठाट से रहती है कि अच्छी अच्छी रईस जातियों से टक्कर लड़े।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १। टक्कर झेलना = वार सहना। चोट सहारना। मुकाबिला करना। लड़ना। भिड़ना। पहाड़ से टक्कर लेना = बड़े भारी शत्रु से भिड़ना। अपने से अधिक सामर्थ्यवाले शत्रु से लड़ना।

३ जोर से सिर मारने का धक्का। किसी कड़ी वस्तु पर माथा मारने या पटकने का आघात।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—टक्कर मारना = (१) आघात पहुँचाने के लिये जोर से सिर मारना या पटकना। सिर से धक्का लगाना। (२) माथा मारना। हैरान होना। घोर परिश्रम और उद्योग करना। ऐसा प्रयत्न करना जिसका फल शीघ्र न दिखाई दे। जैसे,—लाख टक्कर मारो अब वह तुम्हारे हाथ नहीं आता। टक्कर लड़ना = दूसरे के सिर पर सिर मारकर लड़ना। माथे से माथा भिड़ाना। जैसे,—दोनों मेढ़े खूब टक्कर लड़ रहे हैं। टक्कर लड़ाना = सिर से धक्का मारना।

४. घाटा। हानि। नुकसान। धक्का। जैसे,—१०) की टक्कर बैठे बैठाए लग गई।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर झेलना = (१) हानि उठाना। नुकसान सहना। (२) संकट या आपत्ति सहना।

टक्कर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

टखना—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (=टाँग)] एड़ी के ऊपर निकली हुई हड्डी की गाँठ। पैर का गट्टा। गुल्फ। पादग्रंथि।

टग(पु)—संज्ञा स्त्री० [?] 'टकटकी'। उ०—विधि चालुक भत वेह टग झुक्कह बाजि जनु डारि।—पृ० रा०, ५।५५।

टगटग(पु)—क्रि० वि० [हिं० टकटकाना] टकटकी लगाकर। एकटक। उ०—कबीर टग टग चोघतों पल पल गई बिहाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७२।

टगटगाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टकटकाना'।

टगटगी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टकटकी'। उ०—पलु एक क्यहूँ न होइ अंतर टगटगी लागी रहै।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २८।

टगट्टग(पु)—क्रि० वि० [हिं० टगटगी] स्थिर दृष्टि से। टकटक। उ०—टट्टग चाहि रहे सब लोई। विष्पो वर तेज अदम्भुत सोई।—पृ० रा०, १२।१३६।

टगण—संज्ञा पुं० [सं०] मात्रिक गणों में से एक। यह छह मात्राओं का होता है और इसके १३ उपभेद हैं। जैसे,—S S S, IISS, इत्यादि।

टगमग(पु)—क्रि० वि० [हिं० टकटकी] एकटक। स्थिर। उ०—टगमग नयन सु मग्ग मग विमग सु भुल्लिय भंग।—पृ० रा०, २।४५७।

टगना(पु)—क्रि० अ० [?] टलना। डिगना। उ०—टगे न टेक टूटि बहि जाई। टलै काम औरहि को पाई।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २२२।

टगर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. टंकण। सोहागा। २. विलास। क्रीड़ा। ३ तगर का पेड़। ४ मेंड़ (को०)। ५ टोला (को०)।

टगर[2]—वि० तिरछी निगाह से देखनेवाला। ऐंचाताना [को०]।

क्रि० प्र०—देखना।

टगरगोड़ा—संज्ञा पुं० [?] लड़कों का एक खेल जिसमें कुछ कौड़ियाँ चित करके जमा कर देते हैं और फिर एक कौड़ी से उन्हें मारते हैं।

टगर टगर(पु)—क्रि० वि० [हिं०] आँखें खोले हुए। ध्यान लगाकर। टकटकी बाँधकर। उ०—सोभासदन वदन मोहन को देखि रही तियँ टगर टगर।—घनानंद, पृ० ४८९।

टगरा—वि० [सं० टेरक] ऐंचाताना। भेंगा।

टगाटगी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टकटकी] समाधि की अवस्था। उ०—टगाटगी जीवन मरण, ब्रह्म बराबरि होइ।—दादू०, पृ० १४४।

टघरना—क्रि० अ० [सं० तप (=गरम करना) + गरण (=पिघलना)] १ घी, चरबी, मोम आदि का आँच खाकर द्रव होना। पिघलना।

संयो० क्रि०—जाना।

२ हृदय का द्रवीभूत होना। चित्त में दया आदि उत्पन्न होना। हृदय पर किसी की प्रार्थना या कष्ट आदि का प्रभाव पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

टघराना—क्रि० स० [हिं० टघरना] घी, मोम, चरबी आदि को आँच पर रखकर द्रव करना। पिघलाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

टचटच(पु)—क्रि० वि० [हिं० टचना (=जलना)] धाँय धाँय। धक धक (आग की लपट का शब्द)। उ०—टच टच तुम बिनु लागि मोहि आगी। पाँचों दाघ बिरह मोहि लागी।—जायसी (शब्द०)।

टचना—क्रि० अ० [हिं० टचटच] आग का जलना।

टचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] लोहे का एक औजार जिससे कसेरे बरतनों पर नक्काशी करते हैं।

टट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तट'। उ०—आएउ माथि समुंद टट तबहूँ न छाँड़े पाथ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३७०।

टटका—वि० [सं० तत्काल] [वि० स्त्री० टटकी] १. तत्काल का। तुरंत का प्रस्तुत या उपस्थित। जिसको वर्तमान रूप में आए हुए बहुत देर न हुई हो। ताजा का। ताजा। उ०—(क) बैठे क्यों हूँ न निरति धार परी टटको।—सूर (शब्द०)। (ख) मनिहार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पिय को टटको।—रसखान (शब्द०)। २. नया। कोरा।

टटड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० टटड़ी] टट्टी। टटिया। टाटी।

टटड़ी—संज्ञा स्त्री० [पंजाबी] १. खोपड़ी। २ दे० 'ठठरी'। ३. दे० 'टट्टी'।

टटपुँज्यौ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'टुटपुँजिया'। उ०—छोड़ो फिरे उद्यमवो जो टटपुँज्यौ होइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७६७।

टटरा—संज्ञा पुं० [हिं० टटड़ा] [स्त्री० टटरी] बड़ी टटिया या टाटी।

टटरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टट्टी'।

टटलबटला—वि० [अनु०] अटपट। अंड बंड। ऊटपटाँग। उ०—टटलबटल बोल पाटल कपोल देव दीपति पटल में अटल ह्वै कै अटको।—देव (शब्द०)।

टटाना—क्रि० अ० [ठठ] सूख जाना।

टटांबरी(पु)—वि० [हिं० टाट + अंबर] टाट पहननेवाला। जिसका वस्त्र टाट हो। उ०—सुंदर यह टटांबरी बहुरि दिगंबर होइ।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ३५।

टटावक(पु)—संज्ञा पुं० [?] टावक। टामक। टामन। टोटका। टोना। उ०—नंददास सखि मेरी कहा बस काम के आए टटावक टोने।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४३।

टटाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'टल' [को०]।

टटावली—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभावली] टिटिहरी नाम की चिड़िया। कुररी।

टटिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टट्टी' उ०—देखत कछु कौतिगु इतै देखौ नैक निहारि। कब की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिनु फारि।—बिहारी र०, दो० ६३४।

टटियाना†—क्रि० अ० [हिं० ठाँठ] सूख जाना। सूखकर अकड़ जाना।

टटीबा—संज्ञा पुं० [अनु०] घिरनी। चक्कर। उ०—खैंचूँ तो आवै नहीं जो छोड़ूँ तो जाय। कबीर मन पूछ रे प्रान टटीबा खाय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खाना।

टटीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिटिहरी'। उ०—चीरती, ज्यों वेदना का तीर, लंबी टटीरी की आह।—इत्यलम् पृ० २१६।

टटुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टट्टू'। उ०—ताके आगे आइकै टटुआ फेरै बाल।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३७।

टटुईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० टट्टू] मादा टट्टू।

टटुवाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टू] दे० 'टट्टू'। उ०—काहे का टटुवा काहे क पाखर काहे क भरी गोनियाँ।—कबीर श०, भा० १, पृ० २२।

टटोना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टटोलना'।

टटोरना†—क्रि० स० [हिं० टटोलना] दे० 'टटोलना'। उ०—कबहूँ कमला चपला पाइ कै टेढ़े टेढ़े जात। कबहुँक मग मग धूरि टटोरत भोजन को बिलखात।—सूर (शब्द०)।

टटोल—संज्ञा स्त्री० [हिं० टटोलना] टटोलने का भाव। उँगलियों से छू या दबाकर मालूम करने का भाव या क्रिया। गूढ़ स्पर्श।

टटोलना—क्रि० स० [सं० त्वक् + तोलन (=अदाज करना)] १ मालूम करने के लिये उँगलियों से छूना या दबाना। किसी वस्तु के तल की अवस्था अथवा उसकी कड़ाई आदि जानने के लिये उसपर उँगलियाँ फेरना या गड़ाना। गूढ़ संस्पर्श करना। जैसे,—ये आम पके हैं, टटोलकर देख लो।

संयो० क्रि०—लेना।—डालना।

२. किसी वस्तु को पाने के लिये इधर उधर हाथ फेरना। ढूँढने या पता लगाने के लिये इधर उधर हाथ रखना। जैसे,—(क) अँधेरे मे क्या टटोलते हो! रुपया गिरा होगा तो सबेरे मिल जायगा। (ख) वह अंधा टटोलता हुआ अपने घर तक पहुँच जायगा। (ग) घर के कोने टटोल डाले कहीं पुस्तक का पता न लगा।

संयो० क्रि०—डालना।

३. किसी से कुछ बातचीत करके उसके विचार या आशय का इस प्रकार पता लगाना कि उसे मालूम न हो। बातों में किसी के हृदय के भाव का अदाज लेना। थाह लेना। थहाना। जैसे,—तुम भी उसे टटोलो कि वह कहाँ तक देने के लिये तैयार है।

मुहा०—मन टटोलना = हृदय के भाव का पता लगाना।

४ जाँच या परीक्षा करना। परखना। आजमाना। जैसे,—(क) हम उसे खूब टटोल चुके हैं, उसमें कुछ विशेष विद्या नहीं है। (ख) मैंने तो सिर्फ तुम्हें टटोलने के लिये रुपए माँगे थे, रुपए मेरे पास हैं।

टटोहनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० टोहना] दे० 'टटोलना'।

टट्टर्†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टट्टर'।

टट्टनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली।

टट्टर—संज्ञा पुं० [सं० तट (= ऊँचा किनारा) या सं० स्थात (= जो खड़ा हो)] बाँस की फट्टियों, सरकडों आदि को परस्पर जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा। जैसे,—(क) कुत्ता टट्टर खोलकर झोपड़े में घुस गया। (ख) टट्टर खोलो निखट्टू आए। (कहावत)।

मुहा०—टट्टर देना या लगाना = टट्टर बंद करना।

टट्टरी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. ढोल का शब्द। नगाड़े आदि का शब्द। २ लंबी चौड़ी बात। ३. चुहलबाजी। ठट्ठा। ४. झूठ (को०)।

टट्टा—संज्ञा पुं० [सं० तट (= ऊँचा किनारा) या सं० स्थाता (= जो खड़ा हो)] [स्त्री० टट्टी] १. बाँस की फट्टियों का परदा या पल्ला। टट्टर। बड़ी टट्टी। २ लकड़ी का पल्ला। बिना पुश्तवान का तख्ता। ३ अंडकोश। -(पंजाबी)।

टट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० तटी (= ऊँचा किनारा) या सं० स्थात्री (= जो खड़ी हो)] १. बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को परस्पर जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा जो आड़, रोक या रक्षा के लिये दरवाजे, बरामदे अथवा और किसी खुले स्थान में लगाया जाता है। बाँस की फट्टियों आदि का बना पल्ला जो परदे, किवाड़ या छाजन आदि का काम दे। जैसे, खस की टट्टी।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—टट्टी की आड़ (या ओट) से शिकार खेलना = (१) किसी के विरुद्ध छिपकर कोई चाल चलना। किसी के विरुद्ध गुप्त रूप से कोई काररवाई करना। (२) छिपाकर बुरा काम करना। लोगों की दृष्टि बचाकर कोई अनुचित कार्य करना। टट्टी का शीशा = पतले दल का शीशा। टट्टी में छेद करना = किसी की बुराई करने में किसी प्रकार का परदा न रखना। प्रकट रूप से कुकर्म करना। खुल खेलना। निर्लज्ज हो जाना। लोकलज्जा छोड़ देना। टट्टी लगाना = (१) आड़ करना। परदा खड़ा करना। (२) किसी के सामने भीड़ लगाना। किसी के आगे इस प्रकार पंक्ति में खड़ा होना कि उसका सामना रुक जाय। जैसे,—यहाँ क्या टट्टी लगा रखी है, क्या कोई तमाशा हो रहा है? धोखे की टट्टी = (१) वह टट्टी जिसकी आड़ में शिकारी शिकार पर वार करते हैं। (२) ऐसी वस्तु जिसे ऊपर से देखने से उससे होनेवाली बुराई का पता न चले। ऐसी वस्तु या बात जिसके कारण लोग धोखा खाकर हानि उठावें। जैसे,—उसकी दूकान वगैरह सब धोखे की टट्टी है; उसे भूलकर भी रुपया न देना। (३) ऐसी वस्तु जो ऊपर से देखने में सुंदर जान पड़े, पर काम देनेवाली न

हो। चटपट टूट या बिगड जानेवाली वस्तु। काम्रू मोम्रू चीज।
२. चिक। चिलमन। ३. पतली दीवार जो परदे के लिये खड़ी की जाती है। ४ पाखाना।
क्रि० प्र०—जाना।
५ फुलवारी का तख्ता जो बरातों में निकलता है। ६ बाँस की फट्टियों आदि की बनी हुई वह दीवार और छाजन जिसपर अंगूर आदि की बेलें चढ़ाई जाती हैं।

टट्टी संप्रदाय—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टी+संप्रदाय] एक धार्मिक वैष्णव संप्रदाय जिसके संस्थापक स्वामी हरिदास जी हैं।

टट्टर—संज्ञा पुं० [सं०] भेरी का शब्द।

टट्टू—संज्ञा पुं० [अनु०] [वि० टटुआनी, टटुई] १ छोटे कद का घोड़ा। टाँगन।
मुहा०—टट्टू पार होना=बेड़ा पार होना। काम निकल जाना। प्रयोजन सिद्ध हो जाना। भाड़े का टट्टू=रुपया लेकर दूसरे की ओर से कोई काम करनेवाला। २. लिंगेंद्रिय।—(बाजारू)
मुहा०—टट्टू भड़कना=कामोद्दीपन होना।

टठिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टाठी'।

टठिया²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भाँग।

टड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड] बाँह में पहनने का एक गहना जो अनंत के आकार का पर उससे मोटा और बिना घुंडी का होता है। टाँड़।

टरण—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टना'।

टन¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घंटा बजने का शब्द। किसी धातु खंड पर आघात पड़ने से उत्पन्न ध्वनि। टनकार। झनकार। जैसे,—टन से घंटा बोला।
विशेष—'खटपट' आदि शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है। अतः इसका लिंग उतना निश्चित नहीं है।
मुहा०—टन हो जाना=चटपट मर जाना।

टन²—संज्ञा पुं० [अं०] एक अंग्रेजी तौल जो अट्ठाईस मन के लगभग होती है।

टनकना—क्रि० अ० [अनु० टन] १ टनटन बजना। २ धूप या गरमी लगने के कारण सिर मे दर्द होना। रह रहकर आघात पड़ने की सी पीड़ा देना। जैसे, माथा टनकना।

टनकार(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टन] दे० 'टंकार'। उ०—कड़ी कमान जब ऐंठि के खैंचिया, तीन बेर टनकार सब्द टका।—कबीर श०, भा० ४, पृ० १३।

टनटन—संज्ञा स्त्री० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

टनटनाना¹—क्रि० स० [हिं० टनटन से नामिक धातु] घंटा बजाना। किसी धातु खंड पर आघात करके उसमे से 'टनटन' शब्द निकालना।

टनटनाना²—क्रि० अ० टनटन बजना।

टनमन¹—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र मन्त्र] तंत्र मंत्र। टोना। जादू।

टनमन²—वि० [हिं० टनमना] दे० 'टनमना'।

टनमना—वि० [सं० तन्मनस्] जो सुस्त न हो। जिसकी चेष्टा मंद न हो। जिसकी तबीयत हरी हो। जो शिथिल न हो। स्वस्थ। चंगा। 'अनमना' का उलटा।

टनमनाना—क्रि० अ० [हिं० टनमना+ना (प्रत्य०)] १. तबीयत हरी होना। स्वस्थ होना। २ कुलबुलाना। टलमलाना।

टना—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] [स्त्री० अल्पा० टनी] १ स्त्रियों की योनि में निकला हुआ वह मांस का टुकड़ा जो दोनो किनारों के बीच मे होता है। २ योनि। भग।

टनाका¹†—संज्ञा पुं० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द।

टनाका²—वि० बहुत कड़ी (धूप)। माथा टनकानेवाली (धूप)।

टनाटन¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] लगातार घंटा बजने का शब्द।

टनाटन²—क्रि० वि० १ भला। चंगा। २. अच्छी हालत में। बढ़िया।
क्रि० प्र०—होना।

टनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टना'।

टनेल—संज्ञा पुं० [अं०] सुरंग खोदकर बनाया हुआ मार्ग। ऐसा रास्ता जो जमीन या किसी पहाड़ आदि के नीचे होकर गया हो।

टन्नाका¹—संज्ञा पुं० [हिं० टनाका] दे० 'टनाका'।

टन्नाका²—वि० दे० 'टनाका'।

टन्नाना¹—क्रि० अ० [हिं० टनटन] टनटन की आवाज करना। टनटन की ध्वनि उत्पन्न होना।

टन्नाना²—क्रि० अ० [हिं०] बिगड़ना। नाराज होना। बकझक करना।

टप¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोप, तोप (=आच्छादन, जैसे, घटाटोप)] १ जोड़ी, फिटन, टमटम या इसी प्रकार की और खुली गाड़ियों का ओहार या सायबान जो इच्छानुसार चढ़ाया या गिराया जा सकता है। कलंदरा। २. लटकनेवाले लैंप के ऊपर की छतरी।

टप²—संज्ञा पुं० [अं० टब] नाँद के आकार का पानी रखने का खुला बरतन। टाँका।

टप³—संज्ञा पुं० [अं० ट्यूब] जहाजों की गति का पता लगाने का एक औजार।—(लश०)।

टप⁴—संज्ञा पुं० [हिं० ठप्पा] एक औजार जिससे डिबरी का पेच घुमावदार बनाया जाता है।

टप⁵—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ बूँद बूँद टपकने का शब्द। उ०—(क) परत अश्रु बूँद टप टपकि आनन बाल भई बेहाल रति मोह भारी।—सूर (शब्द०)। (ख) प्यारी बिनु कटत न कारी रैन। टप टप टपकत दुख भरे नैन।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।
यौ०—टप टप।
२ किसी वस्तु के एकबारगी ऊपर से गिर पड़ने का शब्द। जैसे—आम टप से टपक पड़ा।
यौ०—टप टप।

टप[१]—संज्ञा पुं० [अं० टॉप] कानों में पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण।

टप[२]—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र। तुरत। उ०—कैसें कहै कछु कोई सवाब मिलै बड़ी बेर सौं यांहू मिलची टप।—घनानंद, पृ० १५१।

मुहा०—टप से = चट से। झट से बड़ी जल्दी। जैसे,—(क) बिल्ली ने टप से चूहे को पकड़ लिया। (ख) टप से आओ।

विशेष—खट, पट आदि और अनुकरण शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि०विo वत् ही होता है। अतः इसका लिंग उतना निश्चित नहीं है।

टपक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टपकना] १ टपकने का भाव। २ बूँद बूँद गिरने का शब्द। ३. रुक रुककर होनेवाला दर्द। ठहर ठहरकर होनेवाली पीड़ा। जैसे, फोड़े की टपक।

टपकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० टपकना] १ टपकने की क्रिया या भाव। २ लगातार बूँद बूँद गिरने की स्थिति। ३. रुक रुककर पीड़ा होना। टीसना। टकसना।

टपकना—क्रि० अ० [अनु० टपटप] १ बूँद बूँद गिरना। किसी द्रव पदार्थ का बिंदु के रूप में ऊपर से थोड़ा थोड़ा पड़ना। चूना। रसना। जैसे, घड़े से पानी टपकना, छत टपकना। उ०—टप टप टपकत दुख भरे नैन।—हरिश्चंद (शब्द०)।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो वस्तु गिरती है तथा जिस वस्तु में से कोई वस्तु गिरती है, दोनों के लिये होता है।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

२. फल का पककर आपसे आप पेड़ से गिरना। जैसे, आम टपकना। महुआ टपकना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

३. किसी वस्तु का ऊपर से एकबारगी सीध में गिरना। ऊपर से सहसा पतित होना। टूट पड़ना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

मुहा०—टपक पड़ना = एकबारगी आ पहुँचना। अकस्मात् आकर उपस्थित होना। जैसे,—है ! तुम बीच में कहाँ से टपक पड़े। आ टपकना = दे० 'टपक पड़ना'।

४ किसी बात का बहुत अधिक आभास पाया जाना। अधिकता से कोई भाव प्रगट होना। लक्षण, शब्द, चेष्टा या रूप रंग से कोई भाव व्यंजित होना। जाहिर होना। झलकना। जैसे,—(क) उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी। (ख) मुहल्ले में चारों ओर उदासी टपकती है। (ग) उसकी बातों से बदमाशी टपकती है।

संयो० क्रि०—पड़ना। जैसे,—उसके अंग अंग से यौवन टपका पड़ता था।

५ (चित्त का) तुरत प्रवृत्त होना। (हृदय का) झट आकर्षित होना। ढल पड़ना। फिसलना। लुभा जाना। मोहित हो जाना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

६. स्त्री का संभोग की ओर प्रवृत्त होना। ढल पड़ना।—(बाजारू)।

संयो० क्रि०—पड़ना।

७. घाव, फोड़े आदि का मवाद आने के कारण रह रहकर दर्द करना। चिलकना। टीस मारना। टीसना। ८ फोड़े का पककर बहना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

९. लड़ाई में घायल होकर गिरना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

टपकवाना—क्रि० स० [हिं० टपकाना] किसी को टपकाने के कार्य में प्रवृत्त करना। टपकाने के लिये प्रेरित करना।

टपका—संज्ञा पुं० [हिं० टपकना] १ बूँद बूँद गिरने का भाव।

यौ०—टपका टपकी।

२ वह जो बूँद बूँद करके गिरा हो। टपकी हुई वस्तु। रसाव। ३ पककर आपसे आप गिरा हुआ फल। ४. रह रहकर उठनेवाला दर्द। टीस। ५ चौपायों के खुर का एक रोग। खुरपका। † ६ डाल में पका हुआ आम।

टपका टपकी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टपकाना] १. बूँदाबूँदी। (मेह की) हलकी झड़ी। फुहार। फुही। २ फलों का लगातार एक एक करके गिरना। ३. किसी वस्तु को लेने के लिये आदमियों का एक पर एक टूटना। ४. एक के पीछे दूसरे आदमी की मृत्यु। एक एक करके बहुत से आदमियों की मृत्यु (जैसे हैजे आदि में होती है)।

क्रि० प्र०—लगना।

टपका टपकी[२]—वि० इक्का दुक्का। भूला भटका। एक आध। बहुत कम। कोई कोई।

टपकाना—क्रि० स० [हिं० टपकना] १. बूँद बूँद गिराना। चुआना। २. अरक उतारना। भबके से अरक खींचना। चुआना। जैसे, शराब टपकाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

टपकाव—संज्ञा पुं० [हिं० टपकना] टपकाने का भाव।

टपना[१]—क्रि० अ० [हिं० तपना] १ बिना कुछ खाए पीए पड़ा रहना। बिना दाना पानी के समय काटना। जैसे,—सबेरे से पड़े टप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता। २ बिना किसी कार्यसिद्धि के बैठा रहना। व्यर्थ आसरे में बैठा रहना।—(दलाल)।

विशेष—दे० 'टापना'।

टपना[२]—क्रि० अ० [हिं० टापना] १ कूदना। उछलना। उचकना। फाँदना। २. जोड़ा खाना। प्रसंग करना।

टपना[३]—क्रि० अ० [हिं० तोपना] ढाँकना। आच्छादित करना।

टपनामा—संज्ञा पुं० [हिं० टिप्पन] जहाज पर का वह रजिस्टर जिसमें समुद्रयात्रा के समय तूफान, गर्मी आदि का लेखा रहता है।—(लश०)।

टपमाल—संज्ञा पुं० [अं० टपमाल] एक बड़ा भारी लोहे का घन जो जहाजों पर काम आता है।

टपरा¹†—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना] [स्त्री० टपरी, टपरिया] १ छप्पर। छाजन। २ झोपड़ा।

टपरा²—संज्ञा पुं० [हिं० टप्पा] छोटे छोटे खेतों का विभाग।

टपरियाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टपरा] झोपड़ी। मड़ैया। घास-फूस का मकान।

टपाकⓅ†—वि० [हिं० टप] टप से। शीघ्र। उ०—ऐसे तोहि काल आइ लेइगो टपाकि दै।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ४१२।

टपाटप—क्रि० वि० [अनु० टपटप] १. लगातार टपटप शब्द के साथ (गिरना)। बराबर बूँद बूँद करके (गिरना)। जैसे,—छाते पर से टपाटप पानी गिर रहा। २ झट पट। जल्दी जल्दी। एक एक करके शीघ्रता से। जैसे,—बिल्ली चूहों को टपाटप ले रही है।

टपाना¹—क्रि० स० [हिं० तपाना] १. बिना दाना पानी के रखना। बिना खिलाए पिलाए पड़ा रहने देना। २ व्यर्थ आसरे में रखना। निष्प्रयोजन बैठाए रखना। व्यर्थ हैरान करना।

टपाना²—क्रि० स० [हिं० टाप] कुदाना। फँदाना।

टप्पर†—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना] १ छप्पर। छाजन।

मुहा०—टप्पर उलटना = दे० 'टाट उलटना'।

२. दे० 'टापर'।

टप्पा—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हिं० थाप, टाप] १ किसी सामने फेंकी हुई वस्तु का जाते हुए बीच बीच मे भूमि का स्पर्श। उछल उछलकर जाती हुई वस्तु का बीच में टिकान। जैसे,—गेंद कई टप्पे खाती हुई गई है।

मुहा०—टप्पा खाना = किसी फेंकी हुई वस्तु का बीच में गिरकर जमीन से छू जाना और फिर उछलकर आगे बढना।

२ उतनी दूरी जितनी दूरी पर पर कोई फेंकी हुई वस्तु जाकर पड़े। किसी फेंकी हुई चीज की पहुँच का फासला। जैसे, गोली का टप्पा। ३ उछाल। कूद। फाँद। फलाँग।

मुहा०—टप्पा देना = लबे लंबे डग बढ़ाना। कूदना।

४ नियत दूरी। मुकर्रर फासला। ५ दो स्थानों के बीच पड़नेवाला मैदान। जैसे,—इन दोनो गाँवों के बीच में बालू का बड़ा भारी टप्पा पड़ता है। ६ छोटा भूविभाग जमीन का छोटा हिस्सा। परगने का हिस्सा। ७ अंतर। बीच। फर्क। उ०—पीपर सूना फूल बिन फल बिन सूना राय। एकाएकी मानुषा टप्पा दीया आय। कबीर (शब्द०)।

मुहा०—टप्पा देना = अतर डालना। फर्क डालना।

८ दूर दूर की भद्दी सिलाई। मोटी सीवन (स्त्रि०)।

मुहा०—टप्पे डालना, भरना, मारना = दूर दूर बखिया करना। मोटी और भद्दी सिलाई करना। लंगर डालना।

९ पालकी से जानेवाले कहारों की टिकान जहाँ कहार बदले जाते हैं। पालकीवालों की चौकी या डाक। †१० डाकखाना। पोस्ट आफिस। ११ पाल के जोर से चलनेवाला बेड़ा। १२. एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब से चला है। †१३ एक प्रकार का ठेका जो तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है। १४. एक प्रकार का हुक या काँटा।

टब¹—संज्ञा पुं० [अं०] पानी रखने के लिये नाँद के आकार का खुला बरतन।

टब²—संज्ञा पुं० [अं०] जलाने का एक प्रकार का लप जो छत या किसी दूसरे ऊँचे स्थान पर लटकाया जाता है।

टबलनाⓅ‡—संज्ञा पुं० [?] चलाचली की स्थिति। महाप्रयाण की स्थिति होना। उ०—खबर जुदाई चबला, अब तो इधर भी टबला। ब्रज० ग्र०, पृ० ४३।

टबूकनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० टपकना] टपकना। टप टप करके गिरना। उ०—हियडउ बादल छाइयउ, नयण टबूकई मेह। —ढोला०, दू० ३६०।

टब्बर†—संज्ञा पुं० [सं० कुटुंब] कुटुब। परिवार। (पजाब)।

टमकनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० टमकना] बजना। शब्द करना। उ०—टमकत तबल टामक विहद्द। ठमकंत टाम विनु भुव गरद्द।—सुजान०, पृ० ३८।

टमकी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कार] छोटा नगाड़ा जिसे बजाकर किसी प्रकार की घोषणा की जाती है। डुगडुगिया।

टमटम—संज्ञा स्त्री० [अं० टैंडम] दो ऊँचे ऊँचे पहियों की एक खुली हलकी गाड़ी जिसमें एक घोड़ा लगता है और जिसे सवारी करनेवाला अपने हाथ से हाँकता है।

टमठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बरतन। उ०—गच्या अरु आधार भर्त के बहुत खिलौना। परिया टमटी अतरदान रुपे के सोना।—सूदन (शब्द०)।

टमस—संज्ञा स्त्री० [स० तमसा] टोंस नदी। तमसा।

टमाटर—संज्ञा पुं० [अ० टमैटो] एक प्रकार का फल जो गोलाई लिए हुए चिपटा तथा स्वाद मे खट्टा होता है। विलायती भटा।

विशेष—यह कच्चा रहने पर हरा और पकने पर लाल हो जाता है तथा तरकारी, चटनी, जेली आदि के काम आता है।

टमुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टमकी'।

टर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ कर्कश शब्द। कर्कश वाक्य। कर्णकटु वाक्य। अप्रिय शब्द। कड़ुई बोली।

यौ०—टर टर।

मुहा०—टरटर करना = (१) ढिठाई से बोलते जाना। प्रतिवाद में बार बार कुछ कहते जाना। जबानदराजी करना। जैसे,—टर टर करता जायगा, न मानेगा। (२) बकवाद करना। टर टर लगाना = व्यर्थ बकवाद करना। झूठमूठ बक बक करना। इतना और इस प्रकार बोलना जो अच्छा न लगे।

२ मेढक की बोली।

यौ० —टर टर।

३ घमंड से भरी बात। अविनीत वचन और चेष्टा। ऐंठ।

अकड़। जैसे—शेखों की शेखी, पठानों की टर। ४ हठ। जिद। अड़। ५. तुच्छ बात। पोच बात। बेमेल बात। ६. ईद के बाद का मेला (मुसलमान)। उ०—ईद पीछे टर, बरात पीछे धौंसा।

टरकना—क्रि० अ० [हिं० टरना] १ चला जाना। हट जाना। खिसक जाना। टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—टरक देना = धीरे से चला जाना। चुपचाप हट जाना। जैसे,—जब काम का वक्त आता है तो वह कहीं टरक देता है। ⓟ† (२) टर टर करना। कर्कश स्वर से बोलना। उ०—टरं टरं टरकन लगे दसहु दिसा मंडूक।—गोपाल (शब्द०)।

टरकनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ईख या गन्ने की दूसरी बार की सिंचाई।

टरकाना—क्रि० स० [हिं० टरकना] १ एक स्थान से दूसरे स्थान पर कर देना। हटाना। खिसकाना। जैसे,—(क) देखते रहो, ये चीजें इधर उधर टरकाने न पावें। (ख) जब कोई ढूँढ़ने आवे तब इस लड़के को कहीं टरका दो। २ किसी काम के लिये आए हुए मनुष्य को बिना उसका काम पूरा किए कोई बहाना करके लौटा देना। टाल देना। चलता करना। धता बताना। जैसे,—जब हम अपना रुपया माँगने आते हैं तो तुम यों ही टरका देते हो।

टरकी—संज्ञा पुं० [तुरकी] १ एक प्रकार का मुर्गा जिसकी चोंच के नीचे गले में लाल झालर रहती है और जिसके काले परों पर छोटी छोटी सफेद बुंदकियाँ होती हैं।

विशेष—इसका मांस बहुत स्वादिष्ठ माना जाता है। इसे पेरू भी कहते हैं।

२. एक देश। तुरकी।

टरकुल—वि० [हिं० टरकाना] १ बहुत साधारण। बिलकुल मामूली। घटिया। खराब।

टरगी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में आती है। इसे भैंस बड़े चाव से खाती हैं।

विशेष—यह सुखाकर बारह तेरह बरस तक रखी जा सकती है और घोड़ों के लिये अत्यंत पुष्ट और लाभदायक होती है। हिंदुस्तान में यह घास हिसार, मांटगोमरी (पंजाब) आदि स्थानों में होती है, पर विलायती के ऐसी सुगंधित नहीं होती। इसे पलका या पलवन भी कहते हैं।

टरटराना—क्रि० स० [हिं० टर] १ बक बक करना। २ ढिठाई से बोलना। टर टर करना।

टरना¹†—क्रि० स० [हिं० टलना] दे० 'टलना'। उ०—(क) तृण से कुलिस कुलिस तृण करई। तासु दूत पग कहु किमि टरई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अस विचारि नोचहिं मति माता। सो न टरइ जो रचइ विधाता।—तुलसी (शब्द०)।

टरना²—संज्ञा पुं० [देश०] तेली के कोल्हू में ठोंका और कतरी से बँधी हुई रस्सी।

टरनि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टरना] टरने का भाव।

टरं टरं—संज्ञा स्त्री० [हिं० टर्राना] १. मेंढक की आवाज। २. बे मतलब की बात। बकवाद। उ०—सत्य मधु, सत्य, वहाँ नहीं घरं घरं, नहीं वहाँ भेक, वहाँ नहीं टरं टरं।—अनामिका, पृ० ११।

टर्रा—वि० [अनु० टर टर] १. टर्रानेवाला। ऐंठकर बात करनेवाला। अविनीत और कठोर स्वर से उत्तर देनेवाला। घमंड के साथ चिढ़ चिढ़कर बोलनेवाला। सीधे न बोलनेवाला। २. धृष्ट। कटुवादी।

टर्राना—क्रि० अ० [अनु० टर] ऐंठकर बातें करना। अविनीत और कठोर स्वर से उत्तर देना घमंड के साथ चिढ़ चिढ़कर बोलना। सीधे से न बोलना। घमंड लिए हुए कटु वचन कहना।

टर्रापन—संज्ञा पुं० [हिं० टर्रा] बातचीत में अविनीत भाव। कटुवादिता।

टर्रू—संज्ञा पुं० [हिं० टर टर] १ टर्रा आदमी। २. मेढ़क। ३. चमड़े की झिल्ली मढ़ा हुआ एक खिलौना जो घोड़े की पूँछ के बाल से एक लकड़ी में बँधा होता है। इसे घुमाने से टरं की आवाज निकलती है। मेंढक। भौंरा। कौवा।

टल—संज्ञा पुं० [सं०] घबराहट। परेशानी [को०]।

टलन—संज्ञा पुं० [सं०] घबराहट। परेशानी [को०]।

टलटल—क्रि० वि० [अनु०] कलकल ध्वनि के साथ। उ०—तेरे गीतों को वह जिसमें गाती हैं टल् टल् छल् छल्।—वीणा, पृ० २८।

टलना¹—क्रि० अ० [सं० टल (= विचलित होना)] १. अपने स्थान से अलग होना। हटना। खिसकना। सरकना। जैसे,—वह पत्थर तुमसे नहीं टलेगा।

मुहा०—अपनी बात से टलना = प्रतिज्ञा पूरी न करना। मुकरना।

२. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। अनुपस्थित होना। किसी स्थान पर न रहना। जैसे,—(क) काम के समय तुम सदा टल जाते हो। (ख) जब इसके आने का समय हो, तब तुम कहीं टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. दूर होना। मिटना। न रह जाना। जैसे, आपत्ति टलना, संकट टलना, बला टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

४ (किसी कार्य के लिये) निश्चित समय से और आगे का समय स्थिर होना। (किसी काम के लिये) मुकर्रर वक्त से और आगे का वक्त ठहराया जाना। मुलतवी होना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये होता है। जैसे, तिथि टलना, तारीख टलना, विवाह की सायत टलना, दिन टलना, लग्न टलना, विवाह टलना, इम्तहान टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

५ (किसी बात का) अन्यथा होना। और का और होना। ठीक न ठहरना। खंडित होना। जैसे,—हमारी कही हुई बात कभी नहीं टल सकती। ६. (किसी आदेश या अनुरोध का) न माना जाना। उल्लंघित होना। पूरा न किया जाना। जैसे,—बादशाह का हुक्म कहीं टल सकता है। ७. समय व्यतीत होना। बीतना।

टलमल¹—वि० [हिं० टलमलाना] हिलता हुआ। कंपित। उ०—छोटे युग दल राक्षस पद तल पृथ्वी टलमल।—अपरा, पृ० ३८।

टलमल²—क्रि० वि० [अनु०] कलकल ध्वनि के साथ।

टलमलाना—क्रि० अ० [अनु०] हिलना डुलना। टलमल होना।

टलहा†—वि० [देश०] [वि०स्त्री० टलही] खोटा। खराब। दूषित। जैसे, टलहा रुपया, टलही चाँदी।

टलाटली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टालटूल'। उ०—पति रति की बतियाँ कही, सखी लखी मुसकाइ। कै कै सबै टलाटली, अली चली सुखु पाइ।—बिहारी र०, दो० २४।

टल्ला†—संज्ञा पुं० [अनु०] धक्का। आघात। ठोकर। उ०—तो बस उस एक टल्ले से ही हो जाए जीवन कल्याण।—अपलक, पृ० २६।

मुहा०—टल्ले मारना=ठोकर खाते फिरना। मारा मारा फिरना। इधर से उधर निष्फल घूमना।

टल्ली—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का बाँस। दे० 'टोली'। (पु)† २ आधार। उ०—चद सूर्य दुइ टल्ली लावै। इहि विधि जिंगा खिसनि न पावै।—प्राण०, पृ० ८।

टल्लेनवीसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टल्ला+फा० नवीसी] दे० 'टिल्ले-नवीसी'।

टल्लो†—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव ?] १ हरी टहनी। २ पल्लव।

टवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] ट ठ ड ढ ण—इन पाँच वर्णों का समूह।

टवाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अटन (=घूमना)] आवारगी। व्यर्थ घूमना। उ०—फेर रह्यो पुर करत टवाई। मान्यो नहिं जो जननि सिखाई।—रघुराज (शब्द०)।

टस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ किसी भारी चीज के खिसकने का शब्द। टसकने का शब्द।

मुहा०—टस से मस न होना=(१) किसी भारी चीज का जरा सी भी जगह न छोड़ना। कुछ भी न खिसकना। (२) किसी कड़ी वस्तु का (पकाने या बनाने आदि से) जरा सी भी न गलना।

३ कहने सुनने का कुछ भी प्रभाव न पड़ना। किसी के अनुकूल कुछ भी प्रवृत्त न होना। ४ कपड़े आदि के फटने का शब्द। मसकने का शब्द।

टसक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टसकना] रह रहकर उठनेवाली पीड़ा। कसक। टीस। चसक।

टसकना—क्रि० अ० [सं० तस (=फेंकना)+करण] १. किसी भारी चीज का जगह से हटना। जगह से हिलना। खिसकना। जैसे,—यह पत्थर जरा सा भी इधर उधर नहीं टसकता। २. रह रहकर दर्द करना। टीस मारना। कसकना। ३. प्रभावित होना। हृदय में प्रार्थना या कहने सुनने का प्रभाव अनुभव करना। किसी के अनुकूल कुछ प्रवृत्त होना। किसी की बात मानने को कुछ तैयार होना। जैसे,—उससे इतना कहा सुना पर वह ऐसा कठोर हृदय है कि जरा भी न टसका। ४. पककर गदराना। गुदार होना। † ५ रोना धोना। आँसू बहाना। ६. धसकना। चलना। जाना। उ०—किसी को भी आपके टसकने का पूर्ण विश्वास न था।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३६।

टसकाना—क्रि० स० [हिं० टसकना का प्रे०रूप] किसी भारी चीज को जगह से हटाना। खिसकाना। सरकाना।

टसना†—क्रि० अ० [अनु० टस] कपड़े आदि का फटना। मसक जाना। दरकना।

संयो० क्रि०—जाना।

टसर—संज्ञा पुं० [सं० त्रसर] १ एक प्रकार का कड़ा और मोटा रेशम जो बंगाल के जंगलों में होता है।

विशेष—छोटा नागपुर, मयूरभंज, बालेश्वर, बीरभूम, मेदिनीपुर आदि के जंगलों में साल, बहेड़ा, पियार, कुसुम, बेर इत्यादि वृक्षों पर टसर के कीड़े लगते हैं। रेशम के कीड़ों की तरह इन कीड़ों की रक्षा के लिये अधिक यत्न नहीं करना पड़ता। पालनेवालों को जंगल में साँप से मार होनेवाले कीड़ों को केवल चीटियों और चिड़ियों आदि से बचाना भर पड़ता है। पालनेवाले इनकी वृद्धि के लिये कोश से निकले हुए कीड़ों को जंगल में छोड़ आते हैं जहाँ अपने जोड़े ढूँढ़कर वे अपनी वृद्धि करते हैं। मादा कीड़े पेड़ की पत्तियों पर सरसों के ऐसे पर चिपटे चिपटे अंडे देते हैं जो पत्तियों में चिपक जाते हैं। एक कीड़ा तीन चार दिन के भीतर दो ढाई सौ तक अंडे देता है। अंडे देकर ये कीड़े मर जाते हैं। दस बारह दिनों में इन अंडों से बुँदी या ढोल के आकार के छोटे छोटे कीड़े निकल आते हैं और पत्तियाँ चाट चाटकर बहुत जल्दी बढ़ जाते हैं। इस बीच में ये तीन चार बार कलेवर या खोली बदलते हैं। अधिक से अधिक पंद्रह दिन में ये कीड़े अपनी पूरी बाढ़ को पहुँच जाते हैं। उस समय इनका आकार ८, १० अंगुल तक होता है। ये मटमैले, भूरे, नीले, पीले कई रंगों के होते हैं। पूरी बाढ़ को पहुँचने पर ये कीड़े कोश बनाने में लग जाते हैं और अपने मुँह से एक प्रकार की लार निकालते हैं जो सूखकर सूत के रूप में हो जाती है। सूत निकालते हुए घूम घूमकर ये अपने लिये एक कोश तैयार कर लेते हैं और उसी में बंद हो जाते हैं। ये कोश अंडाकार होते हैं। बड़ा कोश २—२½ अंगुल तक लंबा होता है। कोश के भीतर तीन चार दिनों तक सूत निकालकर ये कीड़े मुरदे की तरह चुपचाप पड़ जाते हैं। पालनेवाले कोशों के पकने पर उन्हें इकट्ठा कर लेते हैं, क्योंकि उन्हें भय रहता है कि पर निकलने पर कीड़े सूत को कुतर कुतरकर निकल जायँगे, अत उड़ने के पहले ही इन कोशों को क्षार के साथ गरम पानी में उबालकर वे कीड़ों को मार डालते हैं। जिन कोशों को उबालना नहीं पड़ता, उनका टसर सबसे अच्छा होता है।

जो कोश पकने के पहले ही तवाले जाते हैं, उनका सूत कच्चा और निकम्मा होता है।

२ टसर का बुना हुआ कपड़ा।

टसुआ—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, हिं० आँसू, अँसुआ] आँसू। अश्रु। (परिहास)

क्रि० प्र०—बहाना।

मुहा०—टसुए बहाना = झूठमूठ आँसू गिराना।

टसूआ—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, हिं० आँसू, अँसुआ] दे० 'टसुआ'

मुहा०—टसूए बहाना = दे० 'टसुए बहाना'। उ०—बड़ी बेगम, अब टसूए पीछे बहाना। पहले हमारी बात का जवाब दो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१५।

टहकां—संज्ञा स्त्री० [हिं० टसक] शरीर के जोड़ों की पीड़ा। रह रहकर उठनेवाली पीड़ा। टसक।

टहकनां—क्रि० अ० [हिं० टसकना] १ रह रहकर दर्द करना। चसकना। टीस मारना। २. (घी, मोम, चरबी आदि का) आँच खाकर तरल होना या बहना। पिघलना।

टहकानां—क्रि० स० [हिं० टहकना] आँच से पिघलाना।

टहटह(पु)—क्रि० वि० [देश०] स्पष्टतापूर्वक। उ०—टहटह मुकुलिय मोर।—प० रासो०, पृ० ८१।

मुहा०—टहटह चाँदनी = निर्मल चाँदनी। श्वेत चाँदनी।

टहटहां—वि० [हिं० टटका] टटका। ताजा।

टहना¹—संज्ञा पुं० [सं० तनु: (=पतला या शरीर)] [स्त्री० टहनी] १ वृक्ष की पतली शाखा। पतली डाल।

टहना²—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीवान्] घुटना। टेहुना। उ०—जल टहुने तक पहुँच गया था।—हुमायूँ०, पृ० ५१।

टहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहना] वृक्ष की बहुत पतली शाखा। पेड़ की डाल के छोर पर की कोमल, पतली और लचीली उपशाखा जिसमें पत्तियाँ लगती हैं। जैसे, नीम की टहनी।

टहरकट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० ठहर + काठ] काठ का टुकड़ा जिसपर टकुए या तकले से उतारा हुआ सूत लपेटा जाता है।

टहरनां—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टहलना'।

टहल—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहलना] १ सेवा। शुश्रूषा। खिदमत।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—टहल टई = सेवा शुश्रूषा। उ०—कपि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत नित टहल टई है।—तुलसी (शब्द०)। टहल टकोर = सेवा शुश्रूषा।

मुहा०—टहल बजाना = सेवा करना।

२. नौकरी चाकरी। काम धंधा।

टहलना—क्रि० अ० [?] १. धीरे धीरे चलना। मंद गति से भ्रमण करना। धीरे धीरे कदम रखते हुए फिरना।

मुहा०—टहल जाना = धीरे से खिसक जाना। चुपचाप अन्यत्र चला जाना। हट जाना। जान बूझकर उपस्थित न रहना।

२. केवल जी बहलाने के लिये धीरे धीरे चलना। हवा खाना। सैर करना। जैसे,—वे संध्या को नित्य टहलने जाते हैं। ३. परलोक गमन करना। मर जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

टहलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहल + नी (प्रत्य०)] १ टहल करनेवाली। सेवा करनेवाली। दासी। मजदूरनी। लौंडी। चाकरानी। उ०—म्हाँसी पाँकि घड़ी टहलनी भँवर कमल फुल बास लुभावे।—घनानंद, पृ० ३३४। २ वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलान—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहलना] टहलने की क्रिया या भाव।

टहलाना—क्रि० स० [हिं० टहलना] १ धीरे धीरे चलाना। घुमाना। फिराना। २. सैर कराना। हवा खिलाना। ३ हटा देना। दूर करना। ४. चिकनी चुपड़ी बातें करके किसी को अपने साथ ले जाना।

मुहा०—टहला ले जाना = उड़ा ले जाना। गायब करना। चोरी करना। उ०—पेशकार, हुजूर कुता कोई जात शरीफ टहला ले गए।—फिसाना०, भा०३, पृ० ४६।

टहलि(पु)†—संज्ञा स्त्री०[हिं० टहलना]दे० 'टहल'। उ०—छोट सी मैंस सोहने सीगनि टहलि करनि को गोली जू।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३७।

टहलुआ—संज्ञा पुं० [हिं० टहल] [स्त्री० टहलुई, टहलनी] टहल करनेवाला। सेवक। नौकर। खिदमतगार।

टहलुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहल] १. दासी। किंकरी। लौंडी। चाकरानी। मजदूरनी। नौकरानी। २ वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलुनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहल] दे० 'टहलनी'। उ०—पहले गाँव में से एक लड़की आई, फिर एक टहलुनी आई, उसके पीछे एक और आई।—ठेठ०, पृ० ३०।

टहलुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टहलुआ'। उ०—और सब व्रजवासी टहलुवान को महाप्रसाद लिवायो।—दो सौ बावन०, भा०२, पृ० १४।

टहलू—संज्ञा पुं० [हिं० टहल] नौकर। चाकर। सेवक।

टहाकां—वि० [देश०] दे० 'टहाटह'।

यौ०—टहाका अंजोरिया = निर्मल चाँदनी।

टहाटहं—वि० [देश०] निर्मल। चटकीला।

यौ०—टहाटह चाँदनी = निर्मल चाँदनी।

टरीं—संज्ञा स्त्री० [हिं० घात, घात] मतलब निकालने की घात। प्रयोजनसिद्धि का ढंग। ताक। युक्ति। जोड़ तोड़।

मुहा०—टही लगाना = जोड़ तोड़ लगाना। टही में रहना = काम निकालने की ताक में रहना।

टहुआटारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] इधर की उधर लगाना। चुगलखोरी।

टहूकड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० टहूकना] शब्द। ध्वनि। उ०—कराइइ किया टहूकड़ा, निद्रा जागी नारि।—ढोला०, दू० ३४५।

टहूकना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] बोलना। आवाज करना। उ०—मोर टहूकइ सोहर थी।—बी० रासो०, पृ० ७०।

टहूका¹—संज्ञा [हिं० ठक या ठहाका] १ पहेली। २. चमत्कारपूर्ण उक्ति। चुटकुला।

टहूका(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० टहूकना] आवाज। स्वर। उ०—टहूका मोर का साले। हिये मे हूक सी चाले।—राम० धर्म०, पृ० ३८।

टहेल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहल] दे० 'टहल'। उ०—सो वह वीरों नित्य अपने हाथ सों श्री ठाकुर जी की सेवा टहेल करती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १२१।

टहोका—संज्ञा पुं० [हिं० ठोकर अथवा ठोका] हाथ या पैर से दिया हुआ धक्का। झटका।

मुहा०—टहोका देना=हाथ या पैर से धक्का देना। झटकना। ढकेलना। ठेलना। टहोका खाना=धक्का खाना। ठोकर सहना। उ०—मैंने इनकी ठंडी साँस की फाँस का टहोका खाकर झुँझलाकर कहा।—इशा अल्ला खाँ (शब्द०)।

टांक—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्क] एक प्रकार की शराब [को०]।

टांकर—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्कर=] १ कामी। लपट। २. कुटना चुगलखोर [को०]।

टांकार—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्कार] दे० 'टकोर' [को०]।

टाँक[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. एक प्रकार की तौल जो चार माशे की (किसी किसी के मत से तीन माशे की) होती है। इसका प्रचार जौहरियों मे है। २ धनुष की शक्ति की परीक्षा के लिये एक तौल जो पचीस सेर की होती थी।

विशेष—इस तौल के बटखरे को धनुष की डोरी में बाँधकर लटका देते थे। जितने बटखरे बाँधने से धनुष की डोरी अपने पूरे तनाव या खिंचाव पर पहुँच जाती थी, उतनी टाँक का, वह धनुष समझा जाता था। जैसे,—कोई धनुष सवा टाँक का, कोई डेढ़ टाँक का, यहाँ तक कि कोई दो या तीन टाँक तक होता था जिसे अत्यंत बलवान पुरुष ही चढ़ा सकते थे।

३. जाँच। कूत। अंदाज। आँक। ४ हिस्सेदारों का हिस्सा। बखरा। ५ एक प्रकार का छोटा कटोरा। उ०—घीउ टाँक मँह सोंध सेरावा। लौंग मिरिच तेहि ऊपर नावा।—जायसी (शब्द०)।

टाँक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकना] १ लिखावट। लिखने का अंक या चिह्न। लिखन। उ०—छतो नेहु कागर हिये भई लखाय न टाँक। विरह तच्यो उघरयो सु अब सेंहुड़ को सो आँक।—बिहारी (शब्द०)। २ कलम की नोक। लेखनी का डंक। उ०—हरि जाय चेत चित सूखि स्याही झरि जाय, बरि जाय कागद कलम टाँक जरि जाय।—रघुनाथ (शब्द०)।

टाँकना—क्रि० स० [सं० टङ्कन] १. एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को कील आदि जड़कर जोड़ना। कील काँटे ठोककर एक वस्तु (धातु की चद्दर आदि) को दूसरी वस्तु में मिलाना या एक वस्तु पर दूसरी को बैठाना। जैसे, फूटे हुए बरतन पर चिप्पी टाँकना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. सुई के सहारे एक ही तागे को दो वस्तुओं के नीचे ऊपर ले जाकर उन्हें एक दूसरे से मिलाना। सिलाई के द्वारा जोड़ना। सीना। जैसे, चकती टाँकना, गोटा टाँकना, फटा जूता टाँकना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. सीकर अटकाना। सुई तागे से एक वस्तु पर दूसरी इस प्रकार लगाना या ठहराना कि वह उसपर से न हटे या गिरे। जैसे, बटन टाँकना। मोती टाँकना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

४ सिल, चक्की आदि को टाँकी से गड्ढे करके खुरदरा करना। कूटना। रेहना। छीलना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

६ किसी कागज, बही या पुस्तक पर स्मरण रखने के लिये लिखना। दर्ज करना। चढ़ाना। जैसे,—ये दस रुपए भी बही पर टाँक लो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—मन मे टाँक रखना=स्मरण रखना। याद रखना।

† ७. लिखकर पेश करना। दाखिल करना। जैसे, अर्जी टाँकना। ८ चट कर जाना। उड़ा जाना। खाना। (बाजारू)। जैसे—देखते देखते वह सब मिठाई टाँक गया।

संयो० क्रि०—जाना।

९ अनुचित रूप से रुपया पैसा आदि ले लेना। मार लेना। उड़ा लेना।—(दलाल)।

टाँकली[1]—संज्ञा स्त्री० [?] पाल लपेटने की घिरनी या गड़ारी। (लश०)।

टाकली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० ढक्का] एक प्रकार का पुराना बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था।

टाँका—संज्ञा पुं० [हिं० टाँकना] १. वह जड़ी हुई कील जिससे दो वस्तुएँ (विशेषतः धातु की चद्दरें) एक दूसरे से जड़ी रहती हैं। जोड़ मिलानेवाली कील या काँटा।

क्रि० प्र०—उखड़ना।—निकालना।—लगना।—लगाना।

सीयन का उतना अंश जितना सुई को एक बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर ले जाने में तैयार होता है। सिलाई का पृथक् पृथक् अंश। डोभ। जैसे,—दो टाँके लगा दो। ज्यादा काम नहीं है।

क्रि० प्र०—उखड़ना।—खुलना।—टूटना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—टाँका चलाना=सीने के लिये कपड़े आदि में आर पार सुई डालना। टाँका भरना=सुई से छेदकर तागा फँसाना या अटकाना। सीना। सिलाई करना। टाँका मारना=दे० 'टाँका भरना'।

३. सिलाई। सीवन। ४ टँकी हुई चकती। थिगली। चिप्पी। ५. शरीर पर के घाव या कटे हुए स्थान की सिलाई जो घाव पूजने के लिये की जाती है। जोड़।

क्रि० प्र०—उखड़ना।—खुलना।—टूटना।—लगना।—लगाना।

६ धातुओं के जोड़ने का मसाला जो उनको गलाकर बनाया जाता है।

क्रि० प्र०—भरना।

टाँका[2]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] [स्त्री० अल्पा० टाँकी] लोहे की कील जो नीचे की ओर चौड़ी और धारदार होती है और पत्थर छीलने या काटने के काम में आती है। पत्थर काटने की चौड़ी छेनी।

टाँका[3]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (=खड्ड या गड्ढा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी इकट्ठा रखने का छोटा सा कुंड। हौज। चहबच्चा। २. पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

टाँकातूक—वि० [हिं० टाँक + तौल] तौल में ठीक ठीक। वजन में पूरा पूरा। ठीक ठीक तुला हुआ। –(दूकानदार)।

टाँकी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. पत्थर गढ़ने का औजार। वह लोहे की कील जिससे पत्थर तोड़ते, काटते या छीलते हैं। छेनी। उ०—यह तेलिया पखान हुठी, कठिनाई याकी। टूटीं याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी।—दीनदयाल (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—बैठना।—मारना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—टाँकी बजना=(१) पत्थर पर टाँकी का आघात पड़ना। (२) पत्थर की गढ़ाई होना। इमारत का काम लगना।

२. तरबूज या खरबूजे के ऊपर छोटा सा चौखूँटा कटाव या छेद जिससे उसके भीतर का (कच्चे, पक्के, सड़े आदि होने का) हाल मालूम होता है।

विशेष—फल बेचनेवाले प्रायः इस प्रकार थोड़ा सा काटकर तरबूज रखते हैं।

३. काटकर बनाया हुआ छेद। ४. एक प्रकार का फोड़ा। दुबल। ५. गरमी या सुजाक का घाव। ६ आरी का दाँत। दाँता। दंदाना।

टाँकी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क=(खड्ड या गड्ढा)] १ पानी इकठा रखने का छोटा हौज। छोटा टाँका। छोटा चहबच्चा। २ पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

टाँकीबंद—वि० [हिं० टाँकी + फ़ा० बंद] (इमारत, दीवार या जुड़ाई) जिसमें लगे हुए पत्थर पहलुओं या दोनों ओर गड़नेवाली कीलों के द्वारा एक दूसरे से खूब जुड़े हों। जैसे, टाँकीबंद जुड़ाई। टाँकीबंद इमारत।

विशेष—दो पत्थरों के जोड़ के दोनों ओर आमने सामने दो छेद किए जाते हैं। इन्हीं छेदों में दो ओर झुकी हुई कीलों को ठोंककर छेदों में गला हुआ सीसा भर देते हैं जिससे पत्थर के दोनों टुकड़े एक दूसरे से जकड़कर मिल जाते हैं। किले की दीवारों, पुल के खंभों आदि में इस प्रकार की जुड़ाई प्रायः होती है।

टाँग—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ग] १. शरीर का वह निचला भाग जिसपर धड़ ठहरा रहता है और जिससे प्राणी चलते या दौड़ते हैं। साधारणतः जाँघ की जड़ से लेकर एड़ी तक का अंग जो पतले खंभे या डंडे के रूप में होता है, विशेषतः घुटने से लेकर एड़ी तक का अंग। जीवों के चलने फिरने का अवयव। (जिसकी संख्या भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों में भिन्न भिन्न होती है)।

मुहा०—टाँग अड़ाना=(१) बिना अधिकार के किसी काम में योग देना। किसी ऐसे काम में हाथ डालना जिसमें उसकी आवश्यकता न हो। फजूल दखल देना। (२) अड़ंगा लगाना। विघ्न डालना। बाधा उपस्थित करना। (३) ऐसे विषय पर कुछ कहना जिसकी कुछ जानकारी न हो। ऐसे विषय में कुछ विचार या मत प्रकट करना जिसका कुछ ज्ञान न हो। अनधिकार चर्चा करना। जैसे,—जिस बात को तुम नहीं जानते उसमें क्यों टाँग अड़ाते हो? टाँग उठाना=(१) स्त्रीसंभोग करना। स्त्री के साथ संभोग करने के लिये प्रस्तुत होना। आसन लेना। (२) जल्दी जल्दी पैर बढ़ाना। जल्दी जल्दी चलना। टाँग उठाकर मूतना=कुत्तों की तरह मूतना। टाँग की राह निकल जाना=दे० 'टाँग तले (या नीचे) से निकलना। उ०—उस अंदर के अखाड़े से कोरे निकल जाओ तो टाँग की राह निकल जाऊँ।—फिसाना०, भा० १, पृ०७। टाँग टूटना=चलने फिरने से थकावट आना। उ०—हर रोज आप दौड़ते हैं। साहब हमपर अलग खफा होते हैं और टाँगें अलग टूटती हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५७। टाँग तले (या नीचे) से निकलना=हार मानना। परास्त होना। नीचा देखना। अधीन होना। टाँग तले (या नीचे) से निकालना=हराना। परास्त करना। नीचा दिखाना। अधीनता या हीनता स्वीकार कराना। टाँग तोड़ना=(१) अंगभंग करना। (२) बेकाम करना। निकम्मा करना। किसी काम का न रखना। (३) किसी भाषा को थोड़ा सा सीखकर उसके टूटे फूटे या अशुद्ध वाक्य बोलना। जैसे,—क्या अंग्रेजी की टाँग तोड़ते हो? (अपना) टाँग तोड़ना=चलते चलते पैर थकना। घूमते घूमते हैरान होना। टाँग पसारकर सोना=(१) निर्द्वंद होकर सोना। बिना किसी प्रकार के खटके के चैन से दिन बिताना। टाँगें रह जाना=(१) चलते चलते पैर दर्द करने लगना। चलते चलते पैरों का शिथिल हो जाना। (२) लकवा या गठिया से पैर का बेकाम हो जाना। टाँग लेना=(१) टाँग का पकड़ना (२) (कुत्ते आदि का) पैर पकड़कर काट खाना। (३) कुत्ते की तरह काटना। (४) पीछे पड़ जाना। सिर होना। पिंड न छोड़ना। टाँग बराबर=छोटा सा। जैसे,—टाँग बराबर लड़का, ऐसी ऐसी बातें कहता है। (किसी की) टाँग से टाँग बाँधकर बैठना=किसी के पास से न हटना। सदा किसी के पास बना रहना। एक घड़ी के लिये भी न छोड़ना। टाँग से टाँग बाँधकर बैठाना=अपने पास से हटने न देना। सदा अपने पास बैठाए रहना। एक घड़ी के लिये भी कहीं आने जाने न देना।

२. कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग मारकर या अड़ाकर उसे चित कर देते हैं।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है। जैसे,—(क) पिछली टाँग=जब विपक्षी पीछे या पीठ की ओर हो तब पीछे से उसके घुटने के पास टाँग मारने को पिछली

टाँग कहते हैं। (ख) बाहरी टाँग=जब दोनों पहलवान आमने सामने छाती से छाती मिलाकर भिड़े हों तब विपक्षी के घुटने के पिछले भाग में जोर से टाँग मारने को बाहरी टाँग कहते हैं। (ग) बगली टाँग=विपक्षी को बगल में पाकर बगल से उसके पैर में टाँग मारने को बगली टाँग कहते हैं। (घ) भीतरी टाँग=जब विपक्षी पीठ पर हो, तब मौका पाकर भीतर ही से उसके पैर में पैर फँसाकर झटका देने को भीतरी टाँग कहते हैं। (च) अड़ानी टाँग=विपक्षी को दोनों टाँगों के बीच में टाँग फँसाकर मारने अड़ानी टाँग कहते हैं।

(३) चतुर्थांश। चौथाई भाग। चहारुम। –(दलाल)।

टाँगन—संज्ञा पुं० [सं० तुरंगम या हिं० ठँगना] छोटी जाति का घोड़ा। वह घोड़ा जो बहुत कम ऊँचा हो। पहाड़ी टट्टू।

विशेष—नैपाल और बरमा के टाँगन बहुत मजबूत और तेज होते हैं।

टाँगना—क्रि० स० [हिं० टँगना] १. किसी वस्तु को किसी ऊँचे आधार से बहुत थोड़ा सा लगाकर इस प्रकार अटकाना या ठहराना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर हो। २. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से इस प्रकार से बाँधना या फँसाना अथवा उसपर इस प्रकार टिकाना या ठहराना कि उसका (प्रथम वस्तु का) सब (या बहुत सा) भाग नीचे की ओर लटकता रहे। किसी वस्तु को इस प्रकार ऊँचे पर ठहराना कि उसका आश्रय ऊपर की ओर हो। लटकाना। जैसे, (खूँटी पर) कपड़ा टाँगना, परदा टाँगना, झाड़ टाँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अंश आधार के नीचे लटकता हो, तो उसे 'टाँगना' नहीं कहेंगे। 'टाँगना' और 'लटकाना' में यह अंतर है कि 'टाँगना' क्रिया में वस्तु के फँसाने, टिकाने या ठहराने का भाव प्रधान है और 'लटकाना' में उसके बहुत से अंश को नीचे की ओर दूर तक पहुँचाने का भाव है। जैसे,—कुएँ में रस्सी लटकाना कहेंगे रस्सी टाँगना नहीं कहेंगे। पर टाँगना के अर्थ में लटकाना का भी प्रयोग होता है।

संयो० क्रि०—देना।

२. फाँसी चढ़ाना। फाँसी लटकाना।

टाँगा[1]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] बड़ी कुल्हाड़ी।

टाँगा[2]—संज्ञा पुं० [सं० टँगना] एक प्रकार की दो पहिए की गाड़ी जिसका ढाँचा इतना ढीला होता है कि वह पीछे की ओर कुछ झुका या लटका या आगे पीछे टेढ़ा भी रहता है। ताँगा।

विशेष—इसमें सवारी प्रायः पीछे की ओर ही मुँह करके बैठती है और जमीन से इतने पास रहती है कि घोड़े के भड़कने आदि पर झट से जमीन पर उतर सकती है। इस गाड़ी के इधर उधर उलटने का भय भी बहुत कम रहता है। यह प्रायः पहाड़ी रास्तों के लिये बहुत उपयुक्त होती है। इसमें घोड़े या बैल दोनों जोते जाते हैं।

टाँगानोचन—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँग+नोचना] नोचखसोट। खींचा-खींची। खींचातानी।

टाँगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँगा] कुल्हाड़ी।

टाँगुन—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० कंकुनी (जैसे ही जैसे किंशुक से टेसू)] बाजरे या कँगनी की तरह का एक अनाज जिसकी फसल सावन भादों में पककर तैयार हो जाती है।

विशेष—इसके दाने महीन और पीले रंग के होते हैं। गरीब लोग इसका भात खाते हैं।

टाँघन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टाँगन'।

टाँच[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकी] ऐसा वचन जिससे किसी का चित्त फिर जाय और वह जो कुछ दूसरे का कार्य करनेवाला हो, उसे न करे। दूसरे का काम बिगाड़नेवाली बात या वचन। भाँजी। उ०—मेरे व्यवहारों में टाँच मारी है, मेरे मित्रों को ठंढा और मेरे शत्रुओं को गर्म किया है।—भारतेंदु० ग्रं०, भाग० १, पृ० ५९९।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँच[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँका] १. टाँका। सिलाई। डोभ। २. टँकी हुई चकती। थिगली। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचो।—तुलसी (शब्द०)। ३. छेद। सुराख।

टाँच†[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] हाथ पैर का सुन्न पड़ जाना या सो जाना। टाँस।

क्रि० प्र—धरना।—पकड़ना।—होना।

टाँचना[1]—क्रि० स० [हिं० टाँच] १. टाँकना। डोभ लगाना। सीना। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचो।—तुलसी (शब्द०)। २. काटना। तराशना। छीलना। छाँटना।

टाँचना—क्रि० अ० फूला फूला फिरना। गुलछर्रे उड़ाते हुए घूमना।

टाँची[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क (=रुपया)] रुपया भरने की लम्बी थैली जिसमें रुपए भरकर कमर में बाँध लेते हैं। न्योजी। न्यौली। मियानी। बसनी।

टाँची[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकी] भाँजी।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँचु†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टाँच'।

टाँट†—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टी] खोपड़ी। कपाल।

मुहा०—टाँट के बाल उड़ना=(१) सिर के बाल उड़ना। (२) सर्वस्व निकल जाना। पास में कुछ न रह जाना। (३) खूब मार पड़ना। भुरकुस निकलना। टाँट के बाल उड़ाना=सिर पर खूब जूते लगाना। मारते मारते सिर पर बाल न रहने देना। टाँट खुजाना=मार खाने को जी चाहना। कोई ऐसा काम करना जिससे मार खाने की नौबत आवे। दंड पाने का काम करना। टाँट गंजी कर देना=(१) मारते मारते सिर गंजा करना। (२) खूब खर्च करवाना। खूब रुपए गलवाना। खर्च के मारे हैरान कर देना। पास का धन निकलवा देना। टाँट गंजी होना=(१) मार खाते खाते सिर गंजा होना। खूब मार पड़ना। (२) खर्च के मारे धुर्रे निकलना। खर्च करते करते पास में धन न रह जाना।

टाँटर—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टर] खोपड़ी । कपाल ।

टाँठ—वि० [अनु० ठन ठन या सं० स्थाणु] १. जो सूखकर कड़ा हो गया हो । करारा । कड़ा । कठोर । उ०—राम सों साम किए नित है हित कोमल काज न कीजिए टाँठे ।—तुलसी (शब्द०) ।
२. दृढ़ । बली । तगड़ा । मुस्टंडा ।

टाँठा—वि० [हिं० टाँठ] [वि० स्त्री० टाँठी] १. करारा । कड़ा कठोर । २ दृढ़ । हृष्ट पुष्ट । तगड़ा ।

टाँड़[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाणु] १. लकड़ी के खंभों पर या दो दीवारों के बीच लकड़ी की पटरियाँ या बाँस के लट्ठे ठहरा कर बनाई हुई पाटन जिसपर चीज असबाब रखते हैं । परछत्ती । २ मचान जिसपर बैठकर खेत की रखवाली करते हैं । ३. गुल्ली डंडे के खेल मे गुल्ली पर डंडे का आघात । टोला ।
क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

टाँड़ा[2]—संज्ञा पुं० [दे० ताड़] बाहु पर पहनने का स्त्रियो का एक गहना । टँडिया ।

टाँड़ा[3]—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हिं० अटाला, टाल] १. ढेर । अटाला । टाल । राशि । २. समूह । पंक्ति । ३. घरो की पंक्ति । ४. दे० 'टाँड़' ।

टाँड़ा[4]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंकड़ मिली मिट्टी । कंकरीली मिट्टी ।

टाँड़ा[5]—संज्ञा पुं० [हिं० टाँड़ (=समूह)] १. अन्न आदि व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलों या पशुओं का झुंड जिसे व्यापारी लेकर चलते हैं । बरदी । बनजारों के बैलो आदि का झुंड । बनजारे के बैल ज्यों टाँड़ो उतरयो आय ।—कबीर (शब्द०) । २. व्यापारियों के माल की चलान । बिक्री के माल का खेप । व्यापारी का माल जो लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय । उ०—अति छीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है । सुई बेह लौं बेह सकी न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है ।—बोधा (शब्द०) ।
मुहा०—टाँड़ा लदना =(१) बिक्री का माल लदना । (२) कूच की तैयारी होना । (३) मरने की तैयारी होना ।
३. व्यापारियो का चलता समूह । बनजारों का झुंड जो एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हो । ४ नाव पर चढ़कर इस पार से उस पार जानेवाले पथिकों और व्यापारियों का समूह । उ०—लीजे बेगि निबेरि सुर प्रभु यह पतितन को टाँड़ो ।—सुर (शब्द०) । ५. कुटुंब । परिवार ।

टाँड़ा[6]—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड, हिं० टूँड़] एक प्रकार का हरा कीड़ा जो गन्ने आदि की जड़ों में लगकर फसल को हानि पहुँचाता है ।
क्रि० प्र०—लगना ।

टाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टिड्डी । उ०—उमड़ि रारि तुरकन त्यो माँड़ी । छूटे तीर उड़ति ज्यों टाँड़ी ।—लाल (शब्द०) ।

टाँय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताड़] दे० 'टाड़ा' । उ०—बारी टाँय सलोनी टूटी ।—जायसी ग्रं०, पृ० १४१ ।

टाँयटाँय—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. कर्कश शब्द । अप्रिय शब्द । कड़ुई बोली । टें टें । २. बक बक । बकवाद । प्रलाप ।
मुहा०—टाँय टाँय करना = बकवाद करना । निरर्थक बोलना । बिना समझे बूझे बोलना । उ०—तुम कुछ समझते तो हो नहीं बेकार टाँय टाँय करते हो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ११५ । टाँय टाँय फिस = (१) बकवाद, पर फल कुछ नहीं । किसी कार्य के संबंध में बातचीत तो बहुत बढ़कर पर परिणाम कुछ नहीं । (२) किसी कार्य के प्रारंभ में तो बड़ी भारी तत्परता पर अंत में सिद्धि कुछ भी नहीं । कार्य का प्रारंभ तो बड़ी धूमधाम के साथ, पर अंत वो होना जाना कुछ नहीं ।

टाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० टानना (= खींचना)] हाथ या पैर के बहुत देर तक मुड़े रहने के कारण नसों की सिकुड़न या तनाव जिससे फँसने की सी असह्य पीड़ा होने लगती है । यह पीड़ा प्राय: क्षणिक होती है ।
क्रि० प्र०—चढ़ना ।

टाँसना†—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'टाँचना', 'टाँकना' ।

टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी । २ शपथ । कसम [को०] ।

टाइटिल पेज—संज्ञा पुं० [अं०] किसी पुस्तक के सबसे ऊपर का पृष्ठ जिसपर पुस्तक और ग्रंथकार का नाम आदि कुछ बड़े अक्षरों में रहता है । आवरण पृष्ठ ।

टाइप—संज्ञा पुं० [अं०] सीसे अथवा सीसे और ताँबे के मिश्रण से ढले हुए अक्षर जिनको मिलाकर पुस्तकें छापी जाती हैं । काँटे का अक्षर ।

टाइपकास्टिंग मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] काँटे का अक्षर ढालने का कल ।

टाइपमोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] काँटे के अक्षर ढालने का साँचा ।

टाइपराइटर—संज्ञा पुं० [अं०] एक कल या यंत्र जिसमें कागज रखकर टाइप के से अक्षर छापे जाते हैं । यह दफ्तरों और कार्यालयों में चिट्ठी पत्री आदि छापने के काम मे आता है । टंकण यंत्र ।

टाइफायड—संज्ञा पुं० [अं० टाइफ़ायड] एक प्रकार का विषैला ज्वर जिसमें सबेरे ताप घट जाता है और संध्या को बढ़ जाता है । मोतीझरा ।

टाइफोन—संज्ञा पुं० [अं० टाइफून, तुलनीय तूफ़ान] एक प्रकार का तूफान जो चीन के समुद्र में और उसके आसपास बरसात के चार महीनों में आया करता है ।

टाइम—संज्ञा पुं० [अं०] समय । वक्त ।
यौ०—टाइमटेबुल । टाइमपीस ।

टाइमटेबुल—संज्ञा पुं० [अं०] वह विवरणपत्र या सारणी जिसमें भिन्न भिन्न कार्यों के लिये निश्चित समय लिखा रहता है । जैसे, स्कूल का टाइमटेबुल, दफ्तर का टाइमटेबुल, रेलवे टाइमटेबुल ।

टाइमपीस—संज्ञा स्त्री॰ [अं०] कमरे में मेज, आलमारी अथवा डेस्क पर रहनेवाली वह छोटी घड़ी जो केवल समय बताती है, बजती नहीं। किसी किसी में जगाने की घंटी समय निर्धारित करने पर बजती है।

टाई—संज्ञा स्त्री॰ [अं०] १. कपड़े की एक पट्टी जो. अंग्रेजी पहनावे में कालर के अंदर गाँठ देकर बाँधी जाती है। नेकटाई। २. जहाज के ऊपर के पाल की वह रस्सी जिसकी मुद्धी मस्तूल के छेदों में लगाई जाती है।

टाउन—संज्ञा पुं॰ [अं०] शहर। कसबा।

टाउन ड्यूटी—संज्ञा स्त्री॰ [अं०] चुंगी। पौंदूटी।

टाउनहाल—संज्ञा पुं॰ [अं०] किसी नगर में वह सार्वजनिक भवन जिसमें नगर की सफाई, रोशनी आदि के प्रबंधकर्ताओं की तथा दूसरी सर्वसाधारण संबंधी सभाएँ होती है।

टाकरी लिपि—संज्ञा स्त्री॰ [हिं० ठाकुरी, ठक्कुरी ?] एक प्रकार की लिपि जो शारदा लिपि का घसीट रूप है।

विशेष—इस लिपि में इ, ई, उ, ए, ग, घ, च, ज, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, भ, म, य, र, ल, और ह वर्ण वर्तमान शारदा लिपि से मिलते जुलते हैं। शेष वर्ण भिन्न हैं, जिसका कारण संभवतः शीघ्रता से लिखना और चलतू कलम है। इसमे 'ख' के स्थान पर 'ष' लिखा जाता है।

टाका(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] कंडाल। दे॰ 'टाँका'। उ०—आगे सगुन सगुनिआँ ताका। दहिउ मच्छ रूपे कर टाका।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २११।

टाकू—संज्ञा पुं॰ [सं० तर्कु] टकुआ। तकला। टेकुरी।

टाकोली[‡]—संज्ञा स्त्री॰ [देश०] भेंट। नजराना। उ०—उन्होंने उड़ीसा के समस्त जमीदारो से टाकोली या पेशकश वसूल किया।—शुक्ल अभि० ग्रं० पृ० ६६।

टाट[1]—संज्ञा पुं॰ [सं० तन्तु] १ सन या पटुए की रस्सियो का बना हुआ मोटा खुरदुरा कपड़ा जो बिछाने, परदा डालने आदि के काम में आता है।

मुहा०—टाट में मूँज का बखिया = जैसी भद्दी चीज, वैसी ही उसमें लगी हुई सामग्री या साज। टाट में पाट का बाखिया = चीज तो भद्दी और सस्ती, पर उसमें लगी हुई सामग्री बढ़िया और बहुमूल्य। बेमेल का साज।

२. बिरादरी। कुल। जैसे,—वे दूसरे टाट के हैं।

मुहा०—एक ही टाट के = (१) एक ही बिरादरी के। (२) एक साथ उठने बैठनेवाले। एक ही मंडली के। एक ही दल के। एक ही विचार के। टाट बाहर होना = बहिष्कृत होना। जाति पाँति से अलग होना।

३ साहूकार के बैठने का बिछावन। महाजन की गद्दी।

मुहा०—टाट उलटना = दिवाला निकालना। दिवालिया होने की सूचना देना।

विशेष—पहले यह रीति थी कि जब कोई महाजन दिवाला बोलता था, तब वह अपनी कोठी या दूकान पर का टाट और गद्दी उलटकर रख देता था जिससे व्यवहार करनेवाले लौट जाते थे।

टाट[2]—वि॰ [अं॰ टाइट] कसा हुआ।—(लश०)।

मुहा॰—टाट करना = मस्तूल खड़ा करना।

टाटका[1]—वि॰ [हिं०] दे० 'टटका'। उ०—(क) घिउ टाटक महँ सोधि सेरावा।—पदमावत, पृ० ५८६। (ख) भीखा पावत मगन रैन दिन टाटक होत न बासी।—भीखा श॰, पृ॰ १२।

टाटक(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्राटक] दे॰ 'त्राटक'। उ०—टाटक ध्यान जपै नोकारा। जब या जीव को होइ उबारा।—घट०, पृ०८५।

यौ०—टाटक टोटक।

टाटबाफ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टाट + फ़ा॰ बाफ़] १. टाट बुननेवाला। २. कपड़ो पर कलाबत्तू का काम करनेवाला।

टाटबाफी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टाट + फ़ा० बाफ़ी] १. कलाबत्तू का काम। २. टाट बुनने का काम।

टाटबाफीजूता—संज्ञा पुं॰ [फ़ा० तारबाफ़ी] वह जूता जिसपर कलाबत्तू का काम हो। कामदार जूता।

टाटर[1]—संज्ञा पुं॰ [सं० स्थातृ (= जो खड़ा हो)] १. टट्टर। टट्टी। २. सिर की हड्डी या परदा। खोपड़ी। कपाल। उ०—टाटर टूट, टूट सिर तासू।—जायसी (शब्द०)।

टाटर[2]—संज्ञा पुं॰ [?] घोड़ों को सजाने की सामग्री। उ०—टाटर पाषर सज्जित कियो राव।—बी॰ रासो०, पृ० ११।

टार्टरिकएसिड—संज्ञा पुं॰ [अं॰] इमली का सत। इमली का चुक।

टाटिका(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टाटी] टट्टी। उ०—बिरचि हरि भक्त को वेष वर टाटिका, कपट दल हरित पल्लवनि छावौं। तुलसी (शब्द०)।

टाटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं० स्थात्री या तटी] छोटा टट्टर। टट्टी। उ०—(क) आँधी आई ज्ञान की ढही भरम की भीति। माया टाटी उड़ि गई भई नाम सो प्रीति।—कबीर (शब्द॰)। (ख) सूरदास प्रभु कहा निहारौ मानत रंक त्रास टाटा को।—सूर (शब्द॰)।

टाठी—संज्ञा स्त्री॰ [सं० स्थाली (= बटलोई), प्रा॰ ठाली, ठाडी] थाली।

टाड़—संज्ञा स्त्री॰ [सं० ताड] भुजा पर पहनने का एक गहना। टाँड़। टँड़िया। बहुँटा। उ०—बाहु टाड़ कर कंकन बाजूबंद एते पर ही तोको।—सूर (शब्द०)।

टाडर—संज्ञा स्त्री॰ [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

टाणौं(पु)—संज्ञा पुं॰ [?] (विवाहादि) उत्सव। उ०—अदता टाणौ ऊपरे, नाणा खरचै नांहि।—बाँकी॰ ग्रं० भा० ३, पृ० ८२।

टान[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं० तान (= फैलाव, खिंचाव)] १. तनाव। खिंचाव। फैलाव। २. खींचने की क्रिया। खींच। ३. सितार के परदे पर उँगली रखकर इस प्रकार खींचने की क्रिया जिससे बीच के सब स्वर निकल आवें। ४. साँप के दाँत

लगने का एक प्रकार जिसमें दाँत धँसता नहीं केवल छीलता या खरोंच डालता हुआ निकल जाता है।

टान²—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु (=थून या लकड़ी का खंभा)] टाँड़। मचान।

टान³—संज्ञा स्त्री० [अं० टर्न] प्रेस में किसी कागज को एकाधिक बार छापने का भाव। एक टान प्राय एक हजार प्रतियों का होता है।

टानना—क्रि० स० [हिं० टान+ना (प्रत्य०)] तानना। खींचना।

टानिक—संज्ञा पुं० [अं० टॉनिक] वह औषध जो शरीर का बल बढ़ाती हो। बलवीर्यवर्धक औषध। पुष्टिकारक औषध। ताकत की दवा। पुष्टई। जैसे,—डाक्टर ने उन्हें कोई टानिक दिया है।

टाप—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, थाप] १ घोड़े के पैर का वह सबसे निचला भाग जो जमीन पर पड़ता है और जिसमें नाखून लगा रहता है। घोड़ों का अर्धचंद्राकार पादतल। सुम। उ०—जे जल चलहिं थलहिं की नाईं। टाप न बूड़ बेग अधिकाईं। तुलसी (शब्द०)। २ घोड़े के पैरों के जमीन पर पड़ने का शब्द। जैसे,—दूर पर घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। ३. पलग के पास का तल भाग जो पृथ्वी से लगा रहता है और जिसका घेरा उभरा रहता है। ४ बेंत या और किसी पेड़ की लचीली टहनियों का बना हुआ मछली पकड़ने का झाबा जिसकी पेंदी मे एक छेद होता है। मछली पकडने का ढाँचा। ५. मुरगियो के बद करने का झाबा।

टापड़—संज्ञा पुं० [हिं० टप्पा] ऊसर मैदान।

टापदार—वि० [हिं० टाप+फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसके सिरे या छोर पर के कुछ भाग का घेरा उभरा हुआ हो। जिसके ऊपर या नीचे का छोर कुछ फैला हुआ हो। जैसे, टापदार पाया।

टापना¹—क्रि० अ० [हिं० टाप+ना (प्रत्य०)] १ घोड़ों का पैर पटकना।

विशेष—प्राय जब दाना पाने का समय होता है, तब घोड़े टाप पटककर अपनी भूख की सूचना देते हैं। इससे 'टापने' का अर्थ कभी कभी 'दाना माँगना' भी लेते हैं।

२ टक्कर मारना। किसी वस्तु के लिये इधर उधर हैरान फिरना। ३. व्यर्थ इधर उधर फिरना। ४ उछलना। कूदना।

टापना²—क्रि० स० कूदना। फाँदना। उछलकर लाँघना। जैसे, दीवार टापना।

टापना³—क्रि० अ० [सं० तप] १ बिना कुछ खाए पिए पड़ा रहना। बिना दाना पानी के समय बिताना। जैसे,—सबेरे से बैठे टाप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता। २. ऐसी बात के आसरे में रहना जो होती हुई न दिखाई दे। व्यर्थ प्रतीक्षा करना। आशा मे पड़े पड़े उद्विग्न और व्यग्र होना। जैसे,—घटों से बैठे टाप रहे हैं कोई आता जाता नहीं दिखाई देता। ३. किसी बात से निराश और दुखी होना। हाथ मलना। पछताना। जैसे,—वह चला गया, मैं टापता रह गया।

टापर¹—संज्ञा पुं० [देश०] १ ओढ़ने का मोटा कपड़ा। चद्दर। २. घोड़ों को शीत से बचाने के लिये ओढ़ाने का मोटा वस्त्र। तप्पड़। जीन के नीचे का मोटा कपड़ा। उ०—(क) जिणि दीहे पालउ पड़इ, टापर तुरी सहाइ।—ढोला०, दू० २७६। (ख) घाली टापर बाग मुखि, फेकयउ राजकुमारि। करहइ किया टहूकड़ा निद्रा जागो नारि।—ढोला०, दू० ३४५। ३. तिरपाल। ४. झोपड़ा।

टापर²—संज्ञा पुं० [हिं० टाप] छोटी मोटी सवारी। टट्टू आदि की सवारी।

टापा—संज्ञा सं० [सं० स्थापन, हिं० थाप] १ टप्पा। मैदान। २. उजाड़ मैदान। ऊसर मैदान। ३. उछाल। कूद। छलाँग। फाँद।

मुहा०—टापा देना = लंबे डग भरना। उ०—कबिरा यह ससार मे घने मनुष मतिहिन। राम नाम जाना नही आए टापा दीन। —कबीर (शब्द०)।

४ किसी वस्तु को ढकने या बंद करने का टोकरा। झाबा।

टापू—संज्ञा पुं० [हिं० टापा या टप्पा] १ स्थल का वह भाग जिसके चारो ओर जल हो। वह भूखंड जो चारो ओर जल से घिरा हो। द्वीप। † २. टप्पा। टापा।

टाबर—संज्ञा पुं० [प० टब्बर] १ बालक। लडका। उ०—घर को सब टाबर मुवौ सुदर कही न जाइ।—सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५२। २. परिवार।

टाबू—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी की बुनी हुई कटोरे के आकार की जाली जिसे बैलो के मुँह पर इसलिये चढ़ा देते हैं जिसमें वे काम करते समय इधर उधर चर न सकें। जाबा।

टामक—संज्ञा पुं० [अनु०] टिमटिमी। डिमडिमी। उ०—दुदुभि पटह मृदंग ढोलकी डफला टामक। मदरा तबला सुमरु खंजरी तबला धामक।—सूदन (शब्द०)।

टामकटोया—संज्ञा पुं० [हिं०] टकटोहना। टटोलना। क्रि० प्र०—मारना = अँधेरे मे टटोलना या भटकना।

टामन—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] तंत्रविधि। टोटका। उ०—जावत हौं जु दई मुँदरी पढ़ि राम कछू जनु टामन कीन्हो।—हनुमान (शब्द०)।

यौ०—टामन टूमन = सर्वस्व। उ०—इतना कहत हाथ तब जोरे। टामन टूमन सब ही तोरे।—राम० धर्म०, पृ० ३४६।

टार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोडा। २ गाँडू। लौंडा। लंग। ३. स्त्री पुरुष का सयोग करानेवाला व्यक्ति। कुटना। दलाल। भँडुआ।

टार²—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हिं० टाल] ढेर। राशि। टाल।

टार³—संज्ञा स्त्री० [हिं० टारना] टालटूल। वि० दे० 'टाल'।

टार⁴—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार हल जिसमें लगी हुई चोंगी से बीज गिरता रहता है।

टारन—संज्ञा पुं० [हिं० टारना] १. टालने या सरकाने की वस्तु।

२ कोल्हू में पड़ा हुआ वह लकडी का डंडा जिससे गँडेरियाँ चलाई या हिलाई जाती हैं।

टारना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टालना'। उ०—(क) भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जियन मूरि जिमि जोगवत रहेऊँ। दीप बाति नहि टारन कहेऊँ।—तुलसी (शब्द०)।

टारपीडो—संज्ञा पुं० [अं०] एक विध्वंसकारी यंत्र जिसमें भीषण विस्फोटक पदार्थ भरा रहता है और जो बड़े समुद्री मत्स्य के आकार का होता है। विस्फोटक बज्र।

विशेष—यह जल के अंदर छिपाया रहता है। युद्ध के समय शत्रु के जहाज पर इसे चलाते हैं। इसके लगने से जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है और वह वहीं डूब जाता है।

टारपीडो कैचर—संज्ञा पुं० [अनु०] तेज चलनेवाला एक शक्तिशाली रणपोत या जंगी जहाज जो टारपीडो बोट के प्रयत्न को विफल करने और उसे नष्ट करने के काम में लाया जाता है।

टारपीडो बोट—संज्ञा पुं० [अं०] तेज चलनेवाली एक छोटी स्टीम बोट जो युद्ध के समय शत्रु के जहाज को नष्ट करने के लिये उसपर टारपीडो या विस्फोटक वज्र चलाती है। नाशक जहाज।

टाल[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टाल, हिं० अटाला] १ नीचे ऊपर रखी हुई वस्तुओं का ढेर जो दूर तक ऊँचा उठा हो। ऊँचा ढेर। भारी राशि। अटाला। गज। जैसे, लकड़ी की टाल, भुस की टाल, पयाल की टाल, घास की टाल। २ लकड़ी, भुस, पयाल आदि की बड़ी दूकान। ३ बैलगाडी के पहिए का किनारा।

मुहा०—टाल मारना = पहिए के किनारों का छीलना।

टाल[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का घंटा जो गाय, बैल, हाथी आदि के गले में बाँधा जाता है।

टाल[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टालना] १ टालने का भाव। २ किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा। ऐसा बहाना जिससे किसी समय किसी काम को करने से कोई बच जाय।

यौ०—टालटूल। टालबटाल। टालमटाल। टालमटूल। टालमटोल।

टाल[4]—संज्ञा पुं० [सं० टार] व्यभिचार के लिये स्त्री पुरुष का समागम करानेवाला। कुटना। भँडुआ।

टालटूल—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाल + टूल] दे० 'टालमटूल'।

टालना—क्रि० स० [हिं० टालना] १. अपने स्थान से अलग करना। हटाना। खिसकाना। सरकाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. दूसरे स्थान पर भेज देना। अनुपस्थित कर देना। दूर करना। भगा देना। जैसे,—जब काम का समय होता है तब तुम उसे कहीं टाल देते हो।

संयो० क्रि०—देना।

३. दूर करना। मिटाना। न रहने देना। निवारण करना। जैसे, आपत्ति टालना, संकट टालना, बला टालना। उ०—मुनि प्रसाद बल तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

४. किसी कार्य का निश्चित समय पर न करके उसके लिये दूसरा समय स्थिर करना। नियत समय से और आगे का समय ठहराना। मुलतबी करना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये होता है। जैसे, तिथि टालना, विवाह की सायत या लग्न टालना, विवाह टालना, इम्तहान टालना।

संयो० क्रि०—देना।

५ समय व्यतीत करना। समय बिताना। ६. किसी (आदेश या अनुरोध) को न मानना। न पालन करना। उल्लंघन करना। जैसे,—(क) हमारी बात वे कभी न टालेंगे। (ख) राजा की आज्ञा को कौन टाल सकता है? ७. किसी काम को तत्काल न करके दूसरे समय पर छोड़ना। मुलतबी करना। जैसे,—जो काम आवे, उसे तुरत कर डालो, कल पर मत टालो। ८. बहाना करके किसी काम से बचना। किसी कार्य के संबंध में इस प्रकार की बातें कहना जिससे वह न करना पड़े।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—किसी पर टालना = स्वयं न करके किसी के करने के लिये छोड़ देना। किसी के सिर मढ़ना। जैसे,—जो काम उसके पास जाता है, वह दूसरों पर टाल देता है।

९. किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा करना। किसी काम को और आगे चलकर पूरा करने की मिथ्या आशा देना या प्रतिज्ञा करना। जैसे,—तुम इसी तरह महीनों से टालते आए हो, आज हम रुपया जरूर लेंगे। १०. किसी प्रयोजन से आए हुए मनुष्य को निष्फल लौटाना। किसी मनुष्य का कोई काम पूरा न करके उसे इधर उधर की बातें कहकर फेर देना। धता बताना। टरकाना। जैसे,—इस समय इसे कुछ कह सुनकर टाल दो, फिर माँगने आवेगा तब देखा जायगा। ११. पलटना। फेरना। और का और करना। १२. कोई अनुचित या अपने विरुद्ध बात देख सुनकर न बोलना। बचा जाना। तरह दे जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

टालबटाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाल + बटाल] दे० 'टालमटाल'।

टालमटाल[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाल + म (प्रत्य०) + टाल] दे० 'टालमटूल'।

टालमटाल[2]—क्रि० वि० [(दलाली) टाली (= अठन्नी)] आधे आध। निस्फा निस्फ।

टालमटूल—संज्ञा पुं० [हिं० टालना] बहाना।

टाला—वि० [(दलाली) टाली (= अठन्नी)] [स्त्री० टाली] आधा। अर्ध (दलाल)।

टालाटूली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टालना] टालटूल। उ०—टालाटूली दिन गया, ब्याज बढ़ंता जाय।—कबीर सा०, पृ० ७५।

टालिमा(पु)—वि० [हिं० टालना ?] चुने हुए। चुनिंदा। उ०—विणि मई सेरमां टालिमा, बाँकड मुहाँ विडंग।—ढोला०, दू० २२७।

टाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ गाय बैल आदि के गले में बाँधने की घंटी। २. जवान गाय या बछिया जो तीन वर्ष से कम की हो और. बहुत चंचल हो। उ०—पाई पाई है मैया कुञ्ज बृंद में टाली। अब के अपनी अट ही चरावहु जैहें हुटकी घाली।—सूर (शब्द०)। ३ एक प्रकार का बाजा। ४. अठन्नी। आधा रुपया। धेनी। -(दलाल)।

टाल्ही—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शीशम जिसके पेड पंजाब में बहुत होते हैं।

विशेष—इसकी हीर की लकड़ी भूरी और बहुत मजबूत होती हैं। यह इमारतों में लगती है तथा गाड़ी, खेती के सामान आदि बनाने के काम में आती हैं।

टावर—संज्ञा पुं० [अं०] १. लाट। मीनार। बुर्ज। २. किला। कोट।

टाहली—संज्ञा पुं० [हिं० टहल] टहल करनेवाला। टहलुआ। दास। सेवक। खिदमतगार। उ०—कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत सबनि सोहात है सेवा सुजान टाहली।—तुलसी (शब्द०)।

टाहुली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाहली] टहलुई। नौकरानी। उ०—पान समारो टाहुली, चोवा चंदन अंग सुहाई।—बी० रासो, पृ० ४६।

टिंगा—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्री की योनि। भग।—(अशिष्ट)।

टिंचर—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर] किसी औषध का सार जो स्पिरिट के योग से तरल रूप में बनाया जाता है।

टिंचर आयोडीन—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर आयोडीन] सूजन आदि पर लगाने के लिये आयोडिन और स्पिरिट आदि का घोल।

टिंचर ओपियाई—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर ओपियाई] अफीम और स्पिरिट आदि का घोल।

टिंचर कार्डिमम—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर कार्डिमम] इलायची का अर्क।

टिंचर स्टील—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर स्टील] फौलाद आदि का स्पिरिट में बनाया हुआ घोल।

टिंटिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्टिनिका] १. जल सिरीस का पेड़। मधु शिरीषिका। दातौन। २. जोंक।

टिंड—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] १. ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें गोल गोल फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी बनती है। ढेंढसी। डेंडसी। २. रहट में लगा हुआ बरतन जिसमें पानी भरकर आता है। डब्बू।

टिंडर—संज्ञा पुं० [सं० टिण्ड (= डेड़सी)] रहट में लगी हुई हँड़िया।

टिंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिश] टिंड नाम की तरकारी। डेंडसी।

टिंडा—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें छोटे खरबूजे के बराबर गोल फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी बनती है। ढेंड़सी। डेंड़सी।

टिंडिश—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] टिंडा। डेंडसी। ढेंडसी।

टिंडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हल को पकड़कर दबानेवाली मुठिया। २ जाँता घुमाने का खूँटा।

टिक—संज्ञा पुं० [?] टिक्कर। लिट। ठोकया। पूआ।

टिकई—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. टीकेवाली गाय। वह गाय जिसके माथे पर सफेद टीका हो। †२. एक छोटी चिड़िया जो तालों में उतरती है और जाड़ा बीतने पर बाहर चली जाती है।

टिकट—संज्ञा पुं० [अं० टिकेट] १. वह कागज का टुकड़ा जो किसी प्रकार का महसूल, भाड़ा, कर या फीस चुकानेवाले को दिया जाय और जिसके द्वारा वह कहीं आ जा सके या कोई काम कर सके। जैसे, रेल का टिकट; डाक का टिकट, थिएटर का टिकट। २. कहीं आने जाने या कोई काम करने के लिये अधिकारपत्र। ३. संसद् या विधानसभा या नगरपालिका के चुनाव के लिये किसी प्रत्याशी को दलविशेष के प्रतिनिधि के रूप में चुनाव लड़ने के लिये दिया जानेवाला अधिकार या स्वीकृति। ४. वह कर, फीस या महसूल जो किसी काम के करनेवालों पर लगाया जाय। जैसे, स्नान का टिकट, मेले का टिकट।।

मुहा०—टिकट लगाना = महसूल लगाना। कर नियत करना।

टिकटघर—संज्ञा पुं० [अं० टिकट + हिं० घर] वह स्थान या कमरा जहाँ टिकट बिकता है।

टिकटिक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ घोड़ों को हाँकने के लिये मुँह से किया हुआ शब्द। २. घड़ी के बोलने का शब्द।

टिकटिकी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकठी] १. तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर बाँधकर उनके शरीर पर बेंत या कोड़े लगाए जाते हैं। ऊँची तिपाई जिसपर अपराधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी लगाते हैं। टिकठी। २. ऊँची तिपाई। टिकठी।

मुहा०—टिकटिकी पर खड़ा करना = लड़ाई में न हटनेवाले चोट खाकर मरे हुए मुरगे को तीन लकड़ियों पर खड़ा करना।

विशेष—मुरगों की लड़ाई में जब कोई बहादुर मुरगा लड़ते ही लड़ते चोट खाकर मर जाता है और मरते दम तक नहीं हटता है, तब उसके शरीर को तीन लकड़ियों पर खड़ा कर देते हैं। यदि दूसरा मुरगा लात मारकर उसे लकड़ी के नीचे गिरा देता है तो उसकी जीत समझी जाती है और यदि वह किसी और तरफ चला जाता है तो मरे हुए मुरगे की जीत समझी जाती है।

टिकटिकी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] आठ नौ अंगुल लंबी एक चिड़िया जिसका रंग भूरा और पैर कुछ लाली लिए होते हैं।

विशेष—जाड़े में यह सारे भारतवर्ष में देखी जाती है और प्रायः जलाशयों के किनारे झाड़ियों में घोंसला बनाती है। यह एक बार में चार अंडे देती है।

टिकटिकी[3]—संज्ञा स्त्री [हिं॰] दे॰ 'टकटकी'।

टिकठी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ त्रिकाष्ठ या हिं॰ तीन काठ] १. तीन तिरछी खडी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर बाँधकर उनके शरीर पर बेत या कोडे लगाए जाते हैं। टिकटिकी। २ ऊँची तिपाई जिसपर अपराधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी का फंदा लगाया जाता है। ३ काठ का आसन जिसमें तीन ऊँचे पाए लगे हों। तिपाई। ४ बुना हुआ कपडा फैलाने के लिये दो लकडियों का बना हुआ एक ढाँचा। यह कपडे की चौड़ाई के बराबर फैल सकता है।—(जुलाहे)। ५. अरथी जिसपर शव को अंत्येष्टि क्रिया के लिए ले जाते हैं।

टिकड़ा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टिकिया] [स्त्री॰ अल्पा॰ टिकड़ी] १ चिपटा गोल टुकड़ा। धातु, पत्थर, खपड़े या और किसी कड़ी वस्तु का चक्राकार खंड। २. आँच पर सेंकी हुई छोटी मोटी रोटी। बाटी। अंगाकडी।

मुहा॰—टिकड़ा लगाना = आग पर बाटी सेंकना या पकाना।

३ जड़ाऊ या ठप्पे के गहनों में कई नगों को जड़कर बनाया हुआ एक एक विभाग या अंश।

टिकड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिकड़ा] छोटा टिकड़ा।

टिकना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ स्थित + √कृ या अ (= नहीं) + टिक (= चलना)] १. कुछ काल तक के लिये रहना। ठहरना। डेरा करना। मुकाम करना। उ॰—टिकि लीजियो रात में काहू अटा जहाँ सोवत होंय परेवा परे। —लक्ष्मण (शब्द॰)।

संयो॰ क्रि॰—जाना।—रहना।—लेना।

२ किसी घुली हुई वस्तु का नीचे बैठना। तल में जमना। तलछट के रूप में नीचे पेंदे मे इकट्ठा होना। ३ स्थायी रहना। कुछ दिनों तक चलना या बना रहना। कुछ दिनों तक काम देना। जैसे,—यह जूता तुम्हारे पैर में कितने दिन टिकेगा। ४ स्थित रहना। अड़ा रहना। इधर उधर न गिरना। ठहरना। सहारे पर रहना। जमना या बैठना। जैसे,—(क) यह गोला डंडे की नोक पर टिका हुआ है। (ख) इसपर तो पैर ही नहीं टिकता, कैसे खड़े हों। ५ युद्ध या लड़ाई में सामना करते हुए जमे रहना। ६. विश्राम के उद्देश्य से थोड़ी देर के लिये कहीं रुकना। ७. प्रतिकूल समय या मौसम में किसी पदार्थ का विकृत न होना। ८. ध्यान या निगाह का स्थिर होना।

टिकरी[1]†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिकिया] १ नमकीन पकवान जो बेसन और मैदे की दो मोयनदार लोइयों को एक में बेलकर और घी में तलकर बनाया जाता है। २. टिकिया। ३. लिट्टी।

टिकरी[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टीका] सिर पर पहनने का एक गहना।

टिकली[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिकिया या टीका] १ छोटी टिकिया। २. पन्नी या काँच की बहुत छोटी बिंदी के आकार की टिकिया जिसे स्त्रियाँ शृंगार के लिये अपने माथे पर चिपकाती हैं। सितारा। चमकी। ३ छोटा टीका। माथे पर पहनने की छोटी बेंदी।

टिकली[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तर्क, हिं॰ तकला] सूत बटने की फिरकी। सूत कातने का एक औजार।

विशेष—यह बाँस या लोहे की सलाई पर लगी हुई काठ की गोल टिकिया होती है जिसे नचाने या फिराने से उसमें लपेटा हुआ सूत ऐंठकर कड़ा होता जाता है।

टिकस—संज्ञा पुं॰ [अं॰ टैक्स] महसूल। कर। जैसे, पानी का टिकस, इनकम टिकस। उ॰—सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ४७३।

मुहा॰—टिकस लगना = महसूल या कर नियत होना।

टिकसार†—वि॰ [हिं॰ टिकना + सार (प्रत्य॰)] टिकाऊ। टिकनेवाला।

टिकाई†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टीका] राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो। युवराज। उत्तराधिकारी राजकुमार।

टिकाऊ—वि॰ [हिं॰ टिक + आऊ (प्रत्य॰)] टिकनेवाला। कुछ दिनों तक काम देनेवाला। चलनेवाला। पायदार।

टिकान—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिकना] १. टिकने या ठहरने का भाव। २ टिकने या ठहरने का स्थान। पडाव। चट्टी।

टिकाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ टिकना] १ रहने के लिये जगह देना। निवासस्थान देना। कुछ काल तक किसी के रहने के लिये स्थान ठीक करना। ठहराना। जैसे,—इन्हें तुम अपने यहाँ टिका लो।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

२. सहारे पर खड़ा करना या रोकना। अडाना। ठहराना। स्थित करना। जमाना। जैसे,—(क) एक पैर जमीन पर अच्छी तरह टिका लो, तब दूसरा पैर उठाओ। (ख) इसे दीवार से टिकाकर खड़ा कर दो। (ग) बोझ को चबूतरे पर टिकाकर थोड़ा दम ले लो।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

† ३. किसी उठाए जाते हुए बोझ में सहारे के लिये हाथ लगाना। बोझ उठाने या ले जाने में सहायता देना। जैसे,—(क) अकेले उससे चारपाई न जायगी, तुम भी टिका लो। (ख) चार आदमी जब उसे टिकाते हैं, तब वह उठता है।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

४ देना। प्रस्तुत करना।

टिकानी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिकाना] छकड़ा गाड़ी की वे दोनों लकड़ियाँ जिनमें पैंजनी डालकर रस्सी से बाँधते हैं।

टिकाव—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टिकना] १. स्थिति। ठहराव। २. स्थिरता। स्थायित्व। ३ वह स्थान जहाँ यात्री आदि ठहरते हों। पड़ाव।

टिकावली(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार का आभूषण। उ॰—टीका टीक टिकावली हीरा हार हुमेल।—छीत॰, पृ॰ २५।

टिकिया[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ वटिका] १ गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा। गोल और चिपटे आकार की छोटी वस्तु। चक्राकार छोटी मोटी वस्तु। जैसे, दवा की टिकिया, कुनैन की टिकिया।

विशेष—चकती और टिकिया में यह अंतर है कि टिकिया का प्रयोग प्रायः ठोस और उभरे हुए मोटे दल की वस्तुओं के लिये होता है, पर चकती का प्रयोग कपड़े, चमड़े आदि महीन परत की वस्तुओं के लिये होता है। जैसे, कपड़े या चमड़े की चकती, मैदे की टिकिया।

२ कोयले की बुकनी को किसी लसीली चीज में सानकर बनाया हुआ चिपटा गोल टुकड़ा जिससे चिलम पर आग सुलगाते हैं। ३. एक प्रकार की चिपटी गोल मिठाई जो मोयनदार मैदे की छोटी लोई को घी में तलने और चाशनी में डुबाने से बनती है। ४. बरतन के साँचे का ऊपरी भाग जिसका सिरा बाहर निकला रहता है। ५. छोटी मोटी रोटी। बाटी। लिट्टी।

टिकिया[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टीका] १. माथा। ललाट। २. माथे पर लगी हुई बिंदी। ३. ऊँगली में चूना, रंग या और कोई वस्तु पोतकर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न।

विशेष—जनपद लोग नित्य प्रति के लेन देन की वस्तु का लेखा रखने के लिये इस प्रकार के चिह्न प्रायः दीवार पर बनाते हैं।

टिकरा†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] टीला। भींटा।

टिकुरी[१]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तर्कु, हिं॰ टकुआ] सूत बटने या कातने की फिरकी। टिकली।

टिकुरी[२]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] निसोथ। तुवुँद।

टिकुला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ठिकोरा'।

टिकुली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'टिकली'।

टिकुवा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'टकुआ', 'टेकुआ'।

टिकैत—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टीका + ऐत (प्रत्य॰)] १. राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो। राजा का उत्तराधिकारी कुमार। युवराज। २. अधिष्ठाता। सरदार।

टिकोर—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'टकोर'।

टिकोरा†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ वटिका, हिं॰ टिकिया] आम का छोटा और कच्चा फल। आम का वह फल जिसमें जाली न पड़ी हो। आम की बतिया।

टिकोला†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'टिकोरा'।

टिकोना, टिकौना—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ √टिक + औना (प्रत्य॰)] आधार। टेक। सहारा। उ॰—जिन टिकौनों से उसने अपने मन को सँभाला था, वे सब इस भूकंप में नीचे आ रहे और वह झोपड़ा नीचे गिर पड़ा।—गोदान, पृ॰ ११४।

टिक्कड़—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टिकिया] १. बड़ी टिकिया। २. हाथ की बनी छोटी मोटी रोटी जो सेंकी गई हो। बाटी। लिट्टी। अंगाकड़ी। ३ मालपूवा। -(साधु)

टिक्कस(पु)—संज्ञा पुं॰ [अं॰ टैक्स] कर। महसूल। उ॰—टिक्कस लगा रे कस कस के छोड़ो अपना रोजगार।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ३६१।

टिक्का[१]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] मूँगफली के पौधे का एक रोग।

टिक्का[२]†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टीका] [स्त्री॰ टिक्की] १. टीका। तिलक। बिंदी। २. उँगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ खड़ा चिह्न।

विशेष—दे॰ 'टिक्की'।

३. सुध। स्मरण। याद।

टिक्का साहब—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टीका (= तिलक) + अ॰ साहब] राजा का वह बड़ा लड़का जिसका यौवराज्याभिषेक होने को हो। युवराज। -(पंजाब)।

टिक्की[१]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिकिया] १. गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा। टिकिया।

मुहा॰—टिक्की जमना, बैठना या लगना = प्रयोजनसिद्धि का उपाय होना। युक्ति लड़ना। प्राप्ति आदि का डौल होना। गोटी जमना।

२. अंगाकड़ी। बाटी। लिट्टी।

टिक्की[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टीका] उँगली में रंग या और कोई वस्तु पोतकर बनाया हुआ गोल चिह्न। बिंदी। २ माथे पर की बिंदी। गोल टीका। ३. ताश की बूटी। ताश में बना हुआ पान आदि का चिह्न।

टिक्की[३]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] काली सरसों।

टिकटिख—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'टिकटिक'।

टिखटी(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिकठी] तख्ती। पटिया। उ॰—कै शिव तंत्र सटीक खुल्यो विलसत टिखटी पर।—का॰ सुषमा, पृ॰ ६।

टिघलना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ तप + गलन] पिघलना। आँच से द्रवीभूत होना।

विशेष—दे॰ 'पिघलना'।

टिघलाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ टिघलना] पिघलाना।

टिच्चन—वि॰ अ॰ अटेंशन] १ तैयार। ठीक। दुरुस्त।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

२. उद्यत। मुस्तैद।

क्रि॰ प्र॰—होना।

टिटकारना—क्रि॰ स॰ [अनु॰] टिक टिक शब्द करके किसी पशु को चलने के लिये उभारना। 'टिक टिक' करके हाँकना। जैसे, घोड़े को टिटकारना।

मुहा॰—टिटकारी पर लगना = (पशु का) इशारा पाकर काम करना। संकेत पाकर या बोली पहचानकर पास चला आना।

टिटकारी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिटकारना] घोड़े या अन्य पशु को टिकटिक करके हाँकने की ध्वनि। उ॰—टमटमवालों ने अपनी टिटकारियाँ भरनी शुरू की।—मैला॰, पृ॰ २०।

टिटिंभा†—संज्ञा पुं॰ [अ॰ ततिम्मह्] १. अनावश्यक झंझट। २. ढकोसला। प्रपंच। ३ आडंबर।

टिटिम्मा†—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह्] दे० 'टिटिंबा'।

टिटिह—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिभ] टिटिहरी चिड़िया का नर। उ०—देखा टिटिह टिटिहरी आई। चोंचें भरि भरि पानी लाई।—नारायणदास (शब्द०)।

टिटिहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ, हिं० टिटिह] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसका सिर लाल, गरदन सफेद, पर चितकबरे, पीठ खैरे रंग की, दुम मिलेजुले रंगों की और चोंच काली होती है। कुररी।

विशेष—इसकी बोली कड़ुई होती है और सुनने में 'टी टी' की ध्वनि के समान जान पड़ती है। स्मृतियों में द्विजातियों के लिये इसके आमभक्षण का निषेध है। इस चिड़िया के संबंध मे ऐसा प्रवाद है कि यह रात को इस भय से कि कहीं आकाश न टूट पड़े, उसे रोकने के लिये दोनों पैर ऊपर करके चित सोती है।

टिटिहा—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिभ] टिटिहरी चिड़िया का नर। उ०—टिटिहा कही जाऊँ लै कहाँ। यहि ते नीक और है जहाँ।—नारायणदास (शब्द०)।

टिटिहारोर—संज्ञा पुं० [हिं० टिटिहा+रोर] १ चिल्लाहट। शोर-गुल। २ रोना पीटना। क्रंदन।

टिटुआ—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टू का अल्पा०] [स्त्री० टिटुई] छोटा टट्टू। उ०—टिटुई ऊँटन को बोझा वहि सकत नहीं जिमि।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५७।

टिट्टिभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० टिट्टिभी] १. टिटिहा। नर टिटिहरी। दे० 'टिटिहरी'। उ०—उमा रावनहिं अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।—तुलसी (शब्द०)। २. टिड्डी।

टिट्टिभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टिट्टिभ की मादा। टिटिहरी।

टिट्टिभी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ] टिट्टिभ की मादा।

टिड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिड्डी] दे० 'टिड्डी'। उ०—भेड़ औ टिड़ी को काज कीजै।—कबीर० रे०, पृ० २६।

टिड़ीबिड़ी†—वि० [देश०] दे० 'तिड़ीबिड़ी'।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

टिड्डा—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिभ] एक प्रकार का परदार कीड़ा जो खेतों में तथा छोटे पेड़ों या पौधों पर दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह चार पाँच अंगुल लंबा और कई तरह का होता है, जैसे,—हरा, भूरा, चित्तीदार। यह नरम पत्ते खाकर रहता है। गुबरैले, तितली, रेशम के कीड़े आदि की तरह इसके जीवन में आकृतिपरिवर्तन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ नहीं होतीं। मक्खियों की तरह इसके मुँह में भी चबाने के लिये दूँड़ होते हैं।

टिड्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ या सं० तत्+डीन (=उड़ना)] एक जाति का टिड्डा या उड़नेवाला कीड़ा जो भारी दल या समूह बाँधकर चलता है और मार्ग के पेड़ पौधे और फसल को बड़ी हानि पहुँचाता है। इसका आकार साधारण टिड्डे के ही समान, पैर और पेट का रंग लाल या नारंगी तथा शरीर भूरापन लिए और चित्तीदार होता है। जिस समय इसका दल बादल की घटा के समान उमड़कर चलता है, उस समय आकाश में अंधकार सा हो जाता है और मार्ग के पेड़ पौधों और खेतों में पत्तियाँ नहीं रह जातीं। टिड्डियाँ हजार दो हजार कोस तक की लंबी यात्रा करती हैं और जिन जिन प्रदेशों में होकर जाती हैं, उनकी फसल को नष्ट करती जाती हैं। ये पर्वत की कदराओं और रेगिस्तानों मे रहती हैं और बालू में अपने अंडे देती हैं। अफ्रिका के उत्तरी तथा एशिया के दक्षिणी भागों में इनका आक्रमण विशेष होता है।

मुहा०—टिड्डी दल = बहुत बड़ा झुंड। बहुत बड़ा समूह। बड़ी भारी भीड़ या सेना।

टिढ़बिंगा—वि० [हिं० टेढ़ा+बंक] जो सीधा और सुडौल न हो। टेढ़ामेढ़ा।

टिढ़बिढंगा—वि० [हिं० टेढ़ा+बेढंगा] टेढ़ामेढ़ा। बेढंगा।

टिन्नाना—क्रि० अ० [हिं०] १. क्रुद्ध होना। रुष्ट होना। २. (शिश्न का) उत्तेजित होना।

टिन्नाफिस्स—संज्ञा पुं० [हिं० टिन्नाना+फिस] आलोचना। निंदा। कहासुनी। उ०—तिस पर भी आपने जो इतना टिन्नाफिस्स किया तो बड़ा परिश्रम पड़ा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३।

टिप[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] साँप के काटने का एक प्रकार। साँप का ऐसा दंश जिसमें दाँत चुभ गए हों और विष रक्त मे मिल गया हो।

टिप[2]—संज्ञा स्त्री० [अं०] पुरस्कार के रूप में अल्प मात्रा में दिया जानेवाला द्रव्य। बख्शीश।

विशेष—भोजनालय और होटलों आदि में बैरों तथा मोटर ड्राइवरों को दिया जानेवाला पुरस्कार 'टिप' कहा जाता है।

टिपकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टपकना'।

टिपका(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० टिपकना] बूँद। कतरा। बिंदु। उ०—नव मन दूध बटोरिया टिपका किया बिनास। दूध फाटि काँजी भया भया घीव का नास।—कबीर (शब्द०)।

टिपकारी—संज्ञा पुं० [हिं० टिप] दीवारों पर ईंटों की बीच की जोड़ाई पर सीमेंट अथवा चूने की लकीर।

टिपटाप—वि० [अं० टिप+टॉप] १ चुस्त। २ साफ सुथरी सुंदर वेशभूषा पहने हुए।

टिपटिप—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बूँद बूँद गिरने का शब्द। टपकने का शब्द। वह शब्द जो किसी वस्तु पर बूँद के गिरने से होता है। २ बूँद बूँद के रूप में होनेवाली वर्षा। हलकी बूँदाबाँदी।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टिप टिप करना = बूँद बूँद गिरना या बरसना।

टिपटिपाना†—क्रि० अ० [हिं० टिपटिप से नामिक धातु] हलकी वर्षा होना।

टिपरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना] बाँस, बेंत या मूँज के छिलके से बना हुआ ढक्कनदार छोटा पिटारा। पिटारी।

टिपवाना—क्रि० स० [हिं० टीपना] १. दबवाना। चँपवाना।

मिसवाना। जैसे, पैर टिपवाना। २ पिटवाना। धीरे धीरे प्रहार करना। ३. लिखवाना। टँकवाना।

टिपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] टीपने की क्रिया। लेखन। अंकन। उ०—इतिहास में भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख और अनुस्मरण रहता है। उसकी टिपाई सच्ची होनी चाहिए।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १।

टिपारा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + फ़ा० पारह् (= टुकड़ा)] मुकुट के आकार की एक टोपी जिसमें कलँगी की तरह तीन शाखाएँ निकली होती हैं, एक सिरे पर, दो बगल में। उ०—और फूल बीनिबे को गए फुलवाई हैं। सीसनि टिपारो, उपवीत पीत पट कटि, दोना बाम करनि सलोने भेसवाई हैं।—तुलसी (शब्द०)।

टिपिर टिपिर—क्रि० वि० [अनु०] टिपटिप की ध्वनि। हवा के साथ पानी की बूँदों के गिरने की ध्वनि। उ०—बूँदें टिपिर टिपिर टपकीं दल बादल से।—क्वासि, पृ० ४५।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

टिपुर—संज्ञा पुं० [देश०] १ गुमान। अभिमान। गुरूर। २ बहुत अधिक आचार विचार। पाखंड। आडंबर।

टिप्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण। टीका। व्याख्या। २ किसी घटना के संबंध मे समाचारपत्रों में संपादक की ओर से लिखा जानेवाला छोटा लेख।

टिप्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १. टीका। व्याख्या। २ जन्मकुंडली। जन्मपत्री।

मुहा०—टिप्पन का मिलान = विवाहसंबंध स्थिर करने के लिये वर कन्या की जन्मपत्रियों का मिलान।

टिप्पनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण। टीका। व्याख्या। उ०—संपादक लोग अपनी अपनी टिप्पनियों में इसपर शोक सूचित करते·····।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २९९।

टिप्पस†—संज्ञा स्त्री० [देश०] अभिप्रायसाधन का ढंग। युक्ति।

क्रि० प्र०—जमना।—जमाना।—बैठना।—भिड़ाना।—लगना।

विशेष—दे० 'टिकड़ी'।

टिप्पा(पु)¹—संज्ञा पुं० [?] १. धावा। उ०—छुटे सठब सिप्पे करैं दिग्ध टिप्पे, सबै सत्रु छिप्पे कहूँ हैं न दिप्पे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११। २ टिप्पस। युक्ति।

टिप्पा†²—संज्ञा पुं० [देश०] पुरुषेंद्रिय। लिंग।—(अशिष्ट)।

टिप्पी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] १. उँगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ चिह्न। २. ताश की बूटी।

विशेष—दे० 'टिक्की'।

टिफ़िन—संज्ञा स्त्री० [अं० टिफिन] अंगरेजों का दोपहर के बाद का जलपान।

टिबरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहाड़ों की छोटी चोटी।

टिबिल—संज्ञा पुं० [अं० टेबुल] मेज। उ०—नाक पर चश्मा देंगे, काँटा और चिमटे से टिबिल पर खाएँगे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८५६।

टिब्बा—संज्ञा पुं० [हिं० टीला] दे० 'टीबा'। उ०—जौनसार और गढ़वाल की नाग टिब्बा शृंखला··· सब भीतरी शृंखला के पहाड़ों के नमूने हैं।—भा० भू०, पृ० १११।

टिमकना†—क्रि० अ० [देश०] १. रुकना। ठहरना। २. चमकना। प्रकाशयुक्त होना।

टिमकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. छोटा मोटा बरतन। २. बच्चों का पेट।

टिमटिम†—वि० [हिं० टिमटिमाना] मद्धिम या मंद (प्रकाश)। उ०—टिमटिम दीपक के प्रकाश में पढ़ते निज गोपी शिशुगण।—रेणुका, पृ० १०।

टिमटिमाना—क्रि० अ० [सं० तिम (= ठंढा होना)] १ (दीपक का) मंद मंद जलना। क्षीण प्रकाश देना। जैसे,—कोठरी में एक दीया टिमटिमा रहा था। २. समान बँधी हुई लौ के साथ न जलना। बुझने पर हो होकर जलना। झिलमिलाना। जैसे,—दीपक टिमटिमा रहा है, बुझा चाहता है।

मुहा०—आँख टिमटिमाना = आँख को थोड़ा थोड़ा खोलकर फिर बंद कर लेना।

२ मरने के निकट होना। कुछ ही घड़ी के लिये और जीना।

टिमटिम्याँ†—संज्ञा पुं० [देश०] ढोल की तरह का एक बाजा। उ०—आहा के मंदिर टिमटिम्याँ बाजाया।—दक्खिनी०, पृ० ७३।

टिमाक—संज्ञा स्त्री० [देश०] बनाव। सिंगार। ठसक। (स्त्रि०)।

टिमिला‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] [स्त्री० टिमिली] लड़का। छोकरा।

टिमिली‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] लड़की। छोकरी।

टिम्मा‡—वि० [देश०] छोटे डील डौल का। नाटा। ठेंगना। बौना।

टिर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टर'।

टिरफिस—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिर + फिस] चींचपड़। प्रतिवाद। विरोध। बात न मानने की ढिठाई। जैसे,—सीधे से जो कहते हैं वह करो, जरा भी टिरफिस करोगे तो मार बैठेंगे।

क्रि० प्र०—करना।

टिरिकबाजी—संज्ञा स्त्री० [अं० ट्रिक + फा० बाजी] चाल की। फरेब। उ०—तुम हमको टिरिकबाजी दिखाती हो।—मैला०, पृ० ३५६।

टिर्रा†—वि० [हिं० टर्रा] दे० 'टर्रा'।

टिर्राना†—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'टर्राना'। उ०—माया को कस के एक थप्पड़ लगाया तो वह टिर्राने लगी।—सैर कु०, भा० १, पृ० १४।

टिलटिलाना†—क्रि० अ० [अनु०] पतला दस्त फिरना। दस्त आना।

टिलटिली†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पतला दस्त फिरने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—माना ।—घुटना ।

टिलिया—संज्ञा पुं० [देश०] १. लकड़ी का वह टुकड़ा जो छोटा, गँठीला और टेढ़ा हो । गठीला और टेढ़ा मेढ़ा कुंदा । २ नाटा या ठिगना आदमी । ३. चापलूस आदमी ।

टिलियाा—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. छोटी मुर्गी । २. मुर्गी का बच्चा ।

टिल्लीलिली—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बीच की उँगली हिला हिलाकर चिढ़ाने का शब्द ।—(लड़के) ।

विशेष—जब एक लड़का कोई वस्तु नहीं पाता या किसी बात में प्रकृतकार्य होता है, तब दूसरे लड़के उसके सामने हथेली सीधी करके और बीच की उँगली हिलाकर 'टिल्लीलिली' कहकर चिढ़ाते हैं ।

टिलेहू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नेवला जिसके शरीर से दुर्गंध निकलती है ।

विशेष—इसका सिर सूअर के ऐसा और दुम बहुत छोटी होती है । यह तलवों के बल चलता है और अपने थूथन से जमीन की मिट्टी खोदता है । सुमात्रा, जावा आदि टापुओं में यह पाया जाता है ।

टिलोरियाा—संज्ञा स्त्री० [देश०] मुर्गी का बच्चा ।

टिल्ला—संज्ञा पुं०[हिं० ठेलना] धक्का । टकोर । चोट ।—(बाजारू) ।

यौ०—टिल्लेनवीसी ।

टिल्लेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिल्ली + फा० नवीसी] १. निकृष्ट सेवा । नीच सेवा । २. व्यर्थ का काम । ऐसा काम जिससे कोई लाभ न हो । निठल्लापन । ३. हीलाहवाली । टाल-मटूल । बहाना ।

क्रि० प्र०—करना ।

टिसुआा—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु] आँसू । —(पंजाबी) ।

टिहुकाा—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठिठक । रुकाव । २. चौंकना । ३. चमक । ४ रूठना । ५. रोना । रुदन । ६. कोयल की कूक ।

टिहुकना—क्रि० अ० [देश०] १. ठिठकना । २ चौंकना । ३. रूठना ४. चमकना । ५ रोना । ६. कोयल का कूकना ।

टिहुकाराा—संज्ञा स्त्री० [देश०] कोयल की कूक ।

टिहुकारना(ꣳ)†—क्रि० अ० [हिं० टिहुकार से नामिक धातु] कोयल का कूकना ।

टिहुनीा—संज्ञा स्त्री० [सं० घुण्ट, हिं० घुटना] घुटना । २. कोहनी ।

टिहूकाा—संज्ञा स्त्री० [देश०] चौंकने की क्रिया या भाव । चौंक । झमक । उ०—एक दाग बनवल, दूसर गैल टूटी । बिसरे काटल, उठलि टिहूकी ।—कबीर (शब्द०) ।

टिहूकनाा—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टिहुकना' ।

टींगाा—संज्ञा पुं० [देश०] भग । योनि ।

टींटीं—संज्ञा स्त्री० [अनु०] एक विशेष प्रकार की ध्वनि । टीं टीं की ध्वनि । उ०—तब एकाकी अग कोई तिनकों के नीड़ में । कर टींटीं चुप हो बैठा अपने सूने पिंजर में ।—दीप०, पृ० ६५ ।

टींड—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश(= टेंड़सी)] रहट में बाँधने की हँड़िया ।

टींड़सी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिश] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें गोल गोल फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी होती है ।

टींड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] १. चाँटा घुमाने का खूँटा । २. दे० 'टिड्डा' ।

टींड़ीा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिड्डी' । उ०—जिमि टींड़ी दल गुहा समाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

टीा—संज्ञा स्त्री० [अं०] चाय ।

टीक—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलक] १. गले में पहनने का सोने का एक गहना जो ठप्पेदार या जड़ाऊ बनता है । २. माथे में पहनने का सोने का एक गहना ।

टी गार्डेन—[अं० टी(= चाय), + गार्डेन (= बाग)] वह जमीन जहाँ चाय होती है । चाय बगीचा । जैसे,—आसाम के टी गार्डेनों के कुलियों की दशा शोचनीय और करुणाजनक है ।

टीकठाा—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना] पेड़ की हड्डी ।

टीकन—संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] थूनी । चाँड़ । वह खंभा या बड़ी लकड़ी जो किसी भार को सँभाले रहने या किसी वस्तु को एक स्थिति में रखने के लिये लगाई जाती है ।

मुहा०—टीकन देना = बड़े पौधों को सीधा और सुडौल रखने के लिये थूनी लगाना ।

टीकना—क्रि० स० [हिं० टीका] १. टीका लगाना । तिलक देना । २ उँगली में रंग आदि पोतकर चिह्न या रेखा बनाना ।

टीका¹—संज्ञा पुं० [सं० तिलक] १. वह चिह्न जो उँगली में गीला चंदन, रोली, केसर, मिट्टी आदि पोतकर मस्तक, बाहु आदि अंगों पर शृंगार आदि या सांप्रदायिक संकेत के लिये लगाया जाता है । तिलक ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टीका टाकना = बकरे को बलिदान करने के पहले टीका लगाना । उ०—घेरी लाए भेड़ी लाए बकरी टीका टाके ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५२ । टीका देना = टीका लगाना । माथे पर घिसे हुए चंदन आदि से चिह्न बनाना ।

विशेष—टीका पूजन के समय तथा अनेक शुभ अवसरों पर लगाया जाता है । यात्रा के समय भी जानेवाले के शुभ के लिये उसके माथे पर टीका लगाते हैं ।

२. विवाह स्थिर होने की रीति जिसमें कन्यापक्ष के लोग वर के माथे में तिलक लगाते हैं और कुछ द्रव्य वरपक्ष के लोगों को देते हैं । इस रीति के हो चुकने पर विवाह का होना निश्चित समझ माना जाता है । तिलक ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।—भेजना ।

३. दोनों भौं के बीच माथे का मध्य भाग (जहाँ टीका लगाते हैं) । ४. किसी समुदाय का शिरोमणि । (किसी कुल, मंडली या जनसमूह में) श्रेष्ठ पुरुष । उ०—समाधान करि सो सबही का । गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ।—तुलसी (शब्द०) । ५. राजतिलक । राजसिंहासन या गद्दी पर बैठने का कृत्य ।

क्रि० प्र०—देना।—होना।

६ † वह राजकुमार जो राजा के पीछे राज्य का उत्तराधिकारी होनेवाला हो। युवराज। जैसे, टीका साहब। ७. प्राधिपत्य का चिह्न। प्रधानता की छाप। जैसे,—क्या तुम्हारे ही माथे पर टीका है और किसी को इसका अधिकार नहीं है ?

मुहा०—टीके का = विशेषता रखनेवाला। अनोखा। जैसे,—क्या वही एक टीके का है जो सब कुछ रख लेगा ? –(लि०)।

८. वह भेंट जो राजा या जमींदार को रैयत या असामी देते हैं। ९. सोने का एक गहना जिसे स्त्रियाँ माथे पर पहनती हैं। १० घोड़े की दोनों आँखों के बीच माथे का मध्य भाग जहाँ भँवरी होती है। ११. धब्बा। दाग। चिह्न। १२. किसी रोग से बचाने के लिये उस रोग के चेप या रस से बनी औषधि को लेकर किसी के शरीर में सुइयों से घुसाकर प्रविष्ट करने की क्रिया। जैसे, शीतला का टीका, प्लेग का टीका।

विशेष—टीके का व्यवहार विशेषत: शीतला रोग से बचाने के लिये ही इस देश में होता है। पहले इस देश में माली लोग किसी रोगी की शीतला का नीर लेकर रखते थे और स्वस्थ मनुष्यों के शरीर में सुई से गोदकर उसका संचार करते थे। संथाल लोग आग से शरीर मे फफोले डालकर उनके फूटने पर शीतला का नीर प्रविष्ट करते हैं। इस प्रकार मनुष्य को शीतला के नीर द्वारा जो टीका लगाया जाता है, उसमें ज्वर वेग से आता है, कभी कभी सारे शरीर में शीतला भी आती हैं और डर भी रहता है। सन् १७९८ में डा० जेनर नामक एक अँगरेज ने गोथन में उत्पन्न शीतला के दानों के नीर से टीका लगाने की युक्ति निकाली जिसमें ज्वर आदि का उतना प्रकोप नहीं होता और न किसी प्रकार का भय रहता है। इंग्लैंड में इस प्रकार के टीके से बड़ी सफलता हुई और धीरे धीरे इस टीके का व्यवहार सब देशों में फैल गया। भारतवर्ष में इस टीके का प्रचार अंग्रेजी शासनकाल मे हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि गोथन शीतला के द्वारा टीका लगाने की युक्ति प्राचीन भारतवासियों को ज्ञात थी। इस बात के प्रमाण में धन्वंतरि के नाम से प्रसिद्ध एक शाक्त ग्रंथ का एक श्लोक देते हैं—

धेनुस्तन्यमसूरिका नराणां च मसूरिका।
तज्जलं बाहुमूलाच्च शस्त्रान्तेन गृहीतवान् ॥
बाहुमूले च शस्त्राणि रक्तोत्पत्तिकराणि च।
तज्जलं रक्तमिलितं स्फोटकज्वर संभवम् ॥

टीका²—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य, पद या ग्रंथ का अर्थ स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ। व्याख्या। अर्थ का विवरण। विवृत्ति। जैसे, रामायण की टीका, सतसई की टीका।

टीकाई—वि० [हिं० टीका] टीका लेनेवाला। टीका किया हुआ। उ०—लालदास जी के बालकृष्ण जो टीकाई चेले गद्दी बैठे। —सुंदर ग्रं०, भा० १, (जी०), पृ० १४०।

टीकाकार—संज्ञा पुं० [सं०] व्याख्याकार। किसी ग्रंथ का अर्थ लिखनेवाला। वृत्तिकार।

टीका टिप्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं० टीका + टिप्पणी] १ आलोचना। तर्क वितर्क। २. अप्रशंसा। निंदा।

टीकारो(पु)—वि० [हिं० टीका] टीकाई। प्रधान। सर्वोच्च। उ०—टीकारो मालक विको श्रीकारो मुख आस। —बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७७।

टीकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] १ टिकुली। २ टिकिया। टिक्की। ३ टीका। उ०—चंद्रभगा से बीच लगावत पिय के टीकी। —नंद० ग्रं०, पृ० ३८६।

टीकुरा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. ऊँची पृथ्वी। नदी के बाहर की ऊँची और रेतीली भूमि। २ जंगल। वन।

टीटा—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों की योनि में वह मांस जो कुछ बाहर निकला रहता है। टना।

टीडरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टींड'। उ०—बाँधे ज्यूँ अरहट की टीडरि, आवत जात बिगूते।—कबीर ग्रं०, पृ० १५५।

टीड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिड्डी'। उ०—(क) कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहा समाई।—मानस, ६।६६। (ख) मानो टीड़ी दल गिरत साँझ अरुण की बार। —शकुंतला, पृ० ३५।

टीन—संज्ञा पुं० [अं० टिन] १ राँगा। २. राँगे की कलई की हुई लोहे की पतली चद्दर। ३. इस प्रकार की चद्दर का बना बरतन या डिब्बा।

टीप¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] १. हाथ से दबाने की क्रिया या भाव। दबाव। दाब। २. हलका प्रहार। धीरे धीरे ठोंकने की क्रिया या भाव। ३. गच कूटने का काम। गच की पिटाई। ४. बिना पलस्तर की दीवार में ईंटों के जोड़ों में मसाला देकर नहले से बनाई हुई लकीर। ५. टंकार। ध्वनि। घोर शब्द। ६. गाने में ऊँचा स्वर। जोर की तान।

क्रि० प्र०—लगाना।

७. हाथी के शरीर पर लेप करने की औषधि। ८ दूध और पानी का शीरा जिससे चीनी का मैल छँटता है। ९. स्मरण के लिये किसी बात को झटपट लिख लेने की क्रिया। टाँक लेने का काम। नोट। १०. वह कागज जिसपर महाजन को मूल और ब्याज के बदले में फसल के समय अनाज आदि देने का इकरार लिखा रहता है। ११ दस्तावेज। १२. हुंडी। चेक। १३. सेना का एक भाग। कपनी। १४. गजीफे के खेल में विपक्षी के एक पत्ते को दो पत्तों से मारने की क्रिया। १५ लड़की या लड़के की जन्मपत्री। कुंडली। टिप्पन।

टीप²—वि० चोटी का। सबसे अच्छा। चुनिंदा। बढ़िया। –(स्त्रि०)।

टीपटाप—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठाटबाट। सजावट। तड़क भड़क। दिखावट। २ दरारों या संधियों में मसाला भरना।

टीपण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पणी] दे० 'टीपना³'। उ०—पोथी पुस्तक टीपणो जग पंडित को काम।—राम० धर्म०, पृ० ५७।

टीपदार—वि० [हिं० टीप + दार (प्रत्य०)] सुरीला। मधुर। उ०—वल्लाह क्या टीपदार आवाज है, बस यह मालुम पड़ता है कि कोई बीन बजा रहा है।—फिसाना०, भा० १, पृ० २।

टीपन¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] शरीर में वह स्थान जहाँ काँटा या कंकड़ चुभने से मांस ऊँचा होकर कड़ा हो जाता है । गाँठ । टाँका । घट्टा ।

टीपन²—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री । टीपना ।

टीपना¹—क्रि० स० [देश० (= फेंकना)] १. हाथ या उँगली से दबाना । चापना । मसलना । जैसे, पैर टीपना । २. धीरे धीरे ठोंकना । हलका प्रहार करना । ३. ऊँचे स्वर में गाना । ४. गंजीफे के खेल में दो पत्तों से एक पत्ता जीतना । ५. दीवाल या फरश की दरारों को मसाले से भरना ।

टीपना²—क्रि० स० [सं० टिप्पनी] लिख लेना । टाँक लेना । अंकित कर लेना । दर्ज कर लेना ।

टीपना³—संज्ञा स्त्री० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री । उ०—श्रीमत गंगाधर राव की जन्मपत्री मिलाकर देखूँ शायद टक्कर खा जाय । टीपना प्राप्त हो गई । मिल गई ।—झाँसी०, पृ० ४२ ।

टीबा—संज्ञा पुं० [हिं० टीला] टीला । ढूह । भीटा ।

टीम—संज्ञा स्त्री० [अं०] खेलनेवालों का दल । जैसे, क्रिकेट की टीम ।

टीमटाम—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बनाव सिंगार । सजावट । २ ठाटबाट । तड़क भड़क । उ०—टीमटाम बाहर बहुतेरे दिल बासी से बँधा ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २५ ।

टीला—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीला (= भार)] १. पृथ्वी का वह उभरा हुआ भाग जो आसपास के तल से ऊँचा हो । ढूह । भीटा । २ मिट्टी या बालू का ऊँचा ढेर । धुस । ३. छोटी पहाड़ी । ४ साधुओं का मठ ।

टीशन—संज्ञा स्त्री० [अं० स्टेशन] रेलगाड़ी के ठहरने का स्थान । स्टेशन । उ०—पुरैनिया टीशन पर गाड़ी पहुँची भी नहीं थी ।—मैला०, पृ० ७ ।

टीस¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] चुभती हुई पीड़ा । रह रहकर उठनेवाला दर्द । कसक । चसक । हूल ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—टीस उठना=दर्द शुरू होना । रह रहकर पीड़ा होना । (घाव आदि का) टीस मारना = रह रहकर दर्द करना ।

टीस²—संज्ञा स्त्री [अं० स्टिच] किताब की सिलाई । जुजबंदी ।

टीसना—क्रि० अ० [हिं० टीस] १. चुभती पीड़ा होना । रह रहकर दर्द उठना । कसक होना । घाव फोड़े आदि का दर्द करना ।

टुंगा—संज्ञा पुं० [सं० उत्तुङ्ग] पहाड़ की चोटी ।

टुंच—वि० [सं० तुच्छ] क्षुद्र । तुच्छ । टुच्चा ।

मुहा०—टुंच भिड़ाना = थोड़ी पूँजी से काम करना । टुंच लड़ाना = (१) थोड़ी पूँजी से काम प्रारंभ करना । (२) थोड़ी पूँजी से जुआ खेलना । धीरे धीरे जीतना ।

टुंटा—वि० [सं० खण्ड या हिं० टूटा] १. जिसका हाथ कटा हो । बिना हाथ का । लूला । २. ठूँठा ।

टुंटुक¹—संज्ञा पुं० [सं० टुण्टुक] १. श्योनाक । सोना पाठा । भालु । टेंटू । २. काला खैर ।

टुंटुक²—वि० १. छोटा । २ क्रूर । दुष्ट । ३. कठोर [को०] ।

टुंटुका—संज्ञा स्त्री० [सं० टुण्टुका] पाठा ।

टुंड—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड (= बिना सिर का धड़), या स्थाणु (= छिन्न वृक्ष)] १. वह पेड़ जिसकी डाल टहनी आदि कट गई हों । छिन्न वृक्ष । ठूँठ । २. वह पेड़ जिसमें पत्तियाँ न हों । ३. कटा हुआ हाथ । ४. एक प्रकार का प्रेत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह घोड़े पर सवार होकर और अपना कटा सिर आगे रखकर रात को निकलता है । ५. धड़ । टुकड़ा । उ०—चंड मुंडन टुंडन टुंड किय । निरखें नभ नारद अच्छरियं ।—प०रा०, पृ० २२० ।

टुंडा¹—वि० [हिं० टुंड] [स्त्री० अल्पा० टुंडी] १. जिसकी डाल टहनी आदि कट गई हो । ठूँठा । २. जिसका हाथ कट गया हो । बिना हाथ का । लूला । लुंजा । ३ (बैल) जिसका सींग टूटा हो । एक सींग का बैल । डूँड़ा ।

टुंडा²—संज्ञा पुं० १. हाथ कटा आदमी । लूला मनुष्य । २. एक सींग का बैल ।

टुंडी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डि] नाभि । ढोंढ़ी ।

टुंडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] बाहुदंड । भुजा । मुश्क ।

मुहा०—टुंडियाँ बाँधना या कसना = मुश्कें बाँधना । टुंडियाँ खिंचना = मुश्कें बाँधना । कसकर पकड़ा जाना ।

टुंडी³—वि० स्त्री० [सं० स्थाणु, हिं० टुंड, टुंड, टुंडा, टुंडी] जिसे हाथ न हो । कटे हाथ की । लूली ।

टुंड्रा—संज्ञा पुं० [अं०] साइबेरिया के उत्तर में स्थित एक हिमप्रदेश ।

टुँगना—क्रि० स० [हिं० टूँगा] १. (चौपायों का) टहनी के सिर की पत्तियों को दाँत से काटना । कुतरना । २. कुतर कर चबाना । थोड़ा सा काटकर खाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

टुइयाँ¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जाति का सुग्गा या तोता । सुग्गी ।

विशेष—इसकी चोंच पीली और गरदन बैंगनी रंग की होती है ।

टुइयाँ²—वि० ठेंगना । नाटा । बौना ।

टुइल—संज्ञा स्त्री० [अं० ट्विल] एक प्रकार का मोटा मुलायम सूती कपड़ा ।

टुक¹—वि० [सं० स्तोक (= थोड़ा)] थोड़ा । जरा । किंचित् । तनिक ।

मुहा०—टुक सा = जरा सा । थोड़ा सा ।

टुक²—क्रि० वि० थोड़ा । जरा । तनिक । जैसे,—टुक इधर देखो । उ०—मात, कातर न हो, यहाँ, टुक धीरज धारो ।—साकेत, पृ० ४०४ ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग क्रि०वि०वत् ही अधिक होता है । कभी कभी यह यों ही बेपरवाई करने के लिये किसी क्रिया के साथ बोला जाता है । जैसे,—टुक जाकर देखो तो ।

टुक टुक¹—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'टुकुर टुकुर' ।

टुक टुक²(पु)—क्रि० वि० [हिं० टुकड़ा] टूक टूक । टुकड़े टुकड़े । उ०—दरजी ने टूक टुक कीन्ह दरद नहिं जाना हो ।—धरनी०, पृ० ३६ ।

क्रि० प्र०—करना ।

टुकड़गदा¹—संज्ञा पुं०[हिं० टुकड़ा + फ़ा० गदा] वह भिखमगा जो घर घर रोटी का टुकड़ा माँगकर खाता हो । भिखारी । मँगता ।

टुकड़गदा²—वि० १ तुच्छ । २ अत्यंत निर्धन । दरिद्र । कंगाल ।

टुकड़गदाई¹—संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा + फ़ा० गदा + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'टुकड़गदा' ।

टुकड़गदाई²—संज्ञा स्त्री० टुकड़ा माँगने का काम ।

टुकड़तोड़—संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा + तोड़ना] दूसरे का दिया हुआ टुकड़ा खाकर रहनेवाला आदमी । दूसरे का आश्रित मनुष्य ।

टुकड़ा—संज्ञा पुं०[सं० स्तोक (= थोड़ा), हिं० टुक, टूक + ड़ा (प्रत्य०), [स्त्री० अल्पा० टुकड़ी] १ किसी वस्तु का वह भाग जो उससे टूट फूट या कट छँटकर अलग हो गया हो । खंड । छिन्न अंश । रेजा । जैसे, रोटी का टुकड़ा, कागज या कपड़े का टुकड़ा, पत्थर या ईंट का टुकड़ा ।

मुहा०—टुकड़े उड़ाना = काटकर कई भाग करना । टुकड़े करना = काटकर या तोड़कर कई भाग करना । खंड करना । टुकड़े (किसी वस्तु को) टुकड़े उड़ाना = काटकर खंड खंड करना । टुकड़े टुकड़े करना = इस प्रकार तोड़ना कि कई खंड हो जायँ । चूर चूर करना । खंडित करना ।

२ चिह्न आदि के द्वारा विभक्त अंश । भाग । जैसे, खेत का टुकड़ा । ३ रोटी का टुकड़ा । रोटी का तोड़ा हुआ अंश । ग्रास । कौर ।

मुहा०—(दूसरे का) टुकड़ा तोड़ना = दूसरे की दी हुई रोटी खाना । दूसरे के दिए हुए भोजन पर निर्वाह करना । जैसे,—वह ससुराल का टुकड़ा तोड़ता है । टुकड़ा तोड़कर जवाब देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना' । टुकड़ा देना = भिखमगे को रोटी या खाना देना । (दूसरे के) टुकड़ों पर पड़ना = दूसरे की दी हुई खाकर रहना । दूसरे के यहाँ के भोजन पर निर्वाह करना । पराई कमाई पर गुजर करना । जैसे,—वह ससुराल के टुकड़े पर पड़ा है । टुकड़ा माँगना = भीख माँगना । टुकड़ा सा जवाब देना = झट और स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करना । संकोच नहीं करना । साफ इनकार करना । लगी लिपटी न रखना । कोरा जवाब देना । टुकड़ा सा तोड़कर हाथ में देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना' । टुकड़े टुकड़े को मुहताज होना = अत्यंत दरिद्रावस्था को पहुँच जाना । उ०—मगर जूए की लत थी सब दौलत दाँव पर रख दी तो टुकड़े टुकड़े को मुहताज । करें तो क्या करें ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६२ ।

टुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ा] १ छोटा टुकड़ा । खंड । जैसे, एक टुकड़ी नमक, काँच की टुकड़ी । २. थान । कपड़े का टुकड़ा । ३ समुदाय । मंडली । दल । जैसे, यारों की टुकड़ी । ४. पशु पक्षियों का दल । झुंड । गोल । जत्था । जैसे, कबूतरों की टुकड़ी । ५ सेना का एक अंश । हिस्सा । ६ स्त्रियों का लहँगा । ७ कार्तिक के स्नान का कपनी । मेला ।

टुकना¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोकनी' ।

टुकना²—संज्ञा पुं० [हिं० टूकाना (प्रत्य०)] टुकड़ा । टूका ।

टुकनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोकनी' ।

टुकनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुक + नी (प्रत्य०)] छोटा टुकड़ा ।

टुकरिया⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ा] छोटा टुकड़ा । टुकड़ी । खंड । टूक । उ०—दरजी और पूँ नाहिं, यहै बाँस की टुकरिया ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५१ ।

टुकरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] सलम की तरह का एक टुकड़ा ।

टुकरी⑤²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टुकड़ी' ।

टुकुर टुकुर—क्रि० वि० [अनु०] निर्निमेष । बिना पलक गिराए हुए । उ०—उडुगण अपना रूप देखते टुकुर टुकुर थे ।—साकेत, पृ० ४०६ ।

मुहा०—टुकुर टुकुर ताकना = दे० 'टुकुर टुकुर देखना' । उ०—चिड़ियाएँ सुख से घोंसलों में बैठी टुकुर टुकुर ताकतीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६ । टुकुर टुकुर देखना = ललचाई हुई दृष्टि से या विवशता के साथ किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर देखना ।

टुक्का—संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा] १ टुकड़ा । २ चौथाई भाग । उ०—दुह टुक्क होइ भुमि अद्ध काय ।—पृ० रासो, पृ० ८२ ।

टुक्कड़ा—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] 'टुकड़ा' ।

टुक्करा—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] दे० 'टुकड़ा' ।

टुक्का—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'टुकड़ा' ।

मुहा०—टुक्का सा जवाब देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना' ।

२ चौथाई भाग या अंश ।

टुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ छोटा टुकड़ा । २ चौथाई अंश ।

टुगर टुगर⑤—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'टुकुर टुकुर' । उ०—टुगर टुगर वेस्या करैं सुंदर बिरहा ऐन ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६८३ ।

टुघलाना—क्रि० अ० [देश०] १. घुमलाना । मुँह में रखकर धीरे धीरे कुँचना । २ जुगाली करना ।

टुचकारा—संज्ञा पुं० [हिं० टुच्चा] निंदा । टुच्ची बात । अपशब्द । उ०—तब अपने मुहल्ले में लौटती समय कई मसखरियाँ, बोलीठोली और टुचकारे उसे सुनने पड़ते ।—अभिशप्त, पृ० १२७ ।

टुच्चा—वि० [सं० तुच्छ, या देश०] १. तुच्छ । ओछा । नीच । नीचाशय । छिछोरा । क्षुद्र प्रकृति का । कमीना । शोहदा । जैसे, टुच्चा आदमी । २ छोटा या बेनाप का (कपड़ा) ।

टुटका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटका' ।

टुट्टुट्—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों के बोलने की एक प्रकार की ध्वनि । उ०—हैं चहक रहीं चिड़ियाँ टी वी टी—टुट्टुट् ।—युगांत, पृ० १९ ।

टुटना¹⑤—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टूटना' । उ०—फिरि फिरि चितु उत ही रहतु टुटी लाज की लाव । अंग अंग छबि झौंर में भयो भौंर की नाव ।—बिहारी र०, दो० १० ।

टुटना²—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० टुटनी] टूटनेवाला ।

टुटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोंटी] झारी या गड़ुवे की पतली नली। छोटी टोंटी।

टुटपुँजिया—वि० [हिं० टूटी + पूँजी] थोड़ी पूँजी का। जिसके पास किसी काम में लगाने के लिये बहुत थोड़ा धन हो।

टुटरूँ—संज्ञा पुं० [अनु०] छोटी पड़की। छोटी फाख्ता।

मुहा०—टुटरूँ सा = अकेला। एकाकी।

टुटरूँ टूँ[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पड़की के बोलने का शब्द। पेंडुकी या फाख्ता की बोली।

टुटरूँ टूँ[2]—वि० १ अकेला। एकाकी। जैसे,—सब लोग अपने अपने घर गए हैं, मैं ही टुटरूँ टूँ रह गया हूँ। २. दुबला पतला। कमजोर। जैसे,—बेचारे टुटरूँ टूँ आदमी कहाँ तक करें।

टुटहा†—वि० [हिं० टूटना] [वि० स्त्री० टुटही] १ टूटा हुआ। २. टूटे (हाथ आदि) वाला। २ जातिबहिष्कृत।

टुटाना[1]—क्रि० स० [हिं० टूटना का प्रेरणा०] टूटने के लिये प्रेरित करना। टुटवा देना। उ० बरसों को वारण है पथ से, कांजे तारे को टुटा दिया।—अर्चना, पृ० ३८।

टुटाना[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा।

टुटियल—वि० [हिं० टूट + इयल (प्रत्य०)] १. टूटा फूटा हुआ या टूटने फूटनेवाला। जीर्णशीर्ण। २. कमजोर। निर्बल।

टुटुहा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

टुटेला†—वि० [हिं० टूट + एला (प्रत्य०)] टूटा हुआ।—(लश०)।

टुट्टना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टूटना'। उ०—पायो पहारे पुहवि कप्प गिरि सेहर टुट्टइ।—कीर्ति, पृ० १०२।

टुडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुडि] १. नाभि। २ ठोढ़ी।

टुडी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ी] टुकड़ी। डली।

टुनकी†—संज्ञा पुं० [देश०] बार बार मूत्रस्राव होने और उसके साथ धातु गिरने का रोग।

टुनका†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक परदार कीड़ा जो धान को हानि पहुँचाता है।

टुनगा†—संज्ञा पुं० [सं० तनु (= पतला) + अग्र (= अगला)- तन्वग्र] [स्त्री० टुनगी] डाल या टहनी के सिरे का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं। टहनी का अगला भाग।

टुनगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुनगा] डाल या टहनी के सिरे पर का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं। टहनी का अगला भाग।

टुनटुना†—संज्ञा पुं० [देश०] मैदे का बना हुआ एक नमकीन पकवान जो मैदे की चिकनी लबी बत्तियों को घी में तलकर बनाया जाता है।

टुनटुनाना—क्रि० अ० [हिं० टुनटुन] घंटियों के बजने की आवाज। टुनटुन की ध्वनि। उ०—और ध्वनि ? कितनी न जाने घंटियाँ, टुनटुनाती थीं, न जाने शंख कितने।—हरी घास० पृ० २०।

टुनहाया†—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० टुनहाई] दे० 'टोनहाया'।

टुनाका—संज्ञा स्त्री [सं०] तालमूली।

टुनियाँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] मिट्टी का टोंटीदार बरतन।

टुनिहाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोनहाई'। उ०—टुनिहाई सब टोल में रही जु सौति कहाय। सुतौ ऐंचि पिय आप त्यौं करी अदोखिल आइ।—बिहारी (शब्द०)।

टुनिहाया†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोनहाया'।

टुन्ना—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] वह नाल जिसमे फल लगते हैं और लटकते हैं। जैसे, कद्दू का टुन्ना।

टुपकना†—क्रि० अ० [अनु०] १ धीरे से काटना या डंक मारना। २ किसी के विरुद्ध धीरे से कुछ कह देना। चुगली खाना। अवांछित रूप से बीच में पड़ना।

संयो० क्रि०—देना।

टुबी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना] गोता। डुब्बी। उ०—टुबी देई पाणी में, डिठो हुंकेई।—दादू०, पृ० ६७।

टुमकना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'टपकना'।

टुम्मा—संज्ञा पुं० [देश०] रुपए पाने की एक गैरमामूली रसीद।

टुरन—क्रि० अ० [पं० टुर] चलना। उ०—शिव शांति सरोवरि संत समाने, फिरन टुरन के गवन मिटाने।—प्राण०, पृ० ६५।

टुर्रा—संज्ञा पुं० [?] १. टुकड़ा। डली। दाना। रवा। कण। २. मोटे अनाज का दाना। ज्वार, बाजरे आदि का दाना।

टुलकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ढुलकना'।

टुलड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो पुरबी बंगाल और आसाम में होता है।

टुसकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टसकना'।

टूँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पादने का शब्द।

टूँकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टूक'।

टूँगना—क्रि० स० [हिं० टूगना] १. (चौपायों का) टहनी के सिरे की कोमल पत्तियों को दाँत से काटना। कुतरना। २. थोड़ा सा फाड़कर खाना। कुतरकर चबाना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

टूँगा—वि० [सं० तुङ्ग] ऊँचा।

टूँटा—वि० [हिं०] जिसके हाथ टूटे हुए या खराब हों। उ०—टूँटा पकरि उठावै पर्वत पंगुल करै नृत्य अहलाद।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० १०८।

टूँड़—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] [स्त्री० अल्पा० टूँड़ी] १. मच्छड़, मक्खी, टिड्डे आदि कीड़ों के मुँह के आगे निकली हुई बाल की तरह दो पतली नलियाँ जिन्हे धँसाकर वे रक्त आदि चूसते हैं। २. जौ, गेहूँ आदि की बाल में दाने के कोश के सिरे पर निकला हुआ बाल की तरह का पतला नुकीला अवयव। सींग। सीगुर।

टूँड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १ जौ, गेहूँ, धान आदि की बाल में दानों के खोलों के ऊपर निकली हुई बाल की तरह पतली नोक। सीगा। २. ढोढ़ी। नाभि। ३. गाजर, मूली आदि की नोक। ४ किसी वस्तु की दूर तक निकली हुई नोक।

टूअर†—वि० [देश०] वह असहाय बालक जिसकी माँ मर गई हो।

टूक†—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] टुकड़ा। खंड। उ०—तिहि मारि करउँ ततकाल टूक।—ह० रासो, पृ० ४८।

यौ०—टूक टूक। उ०—मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक होइ जाय।—कबीर सा०, पृ० ५५।

मुहा०—दो टूक करना = स्पष्ट करना। किसी प्रकार का भेद न रहने देना। = दो टूक जवाब देना = स्पष्ट जवाब देना। साफ साफ नकार देना।

टूकड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टुकड़ा'। उ०—टूकड़ा टूकड़ा होई जावै।—कबीर० रे०, पृ० २३।

टूकरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टुकड़ा'।

टूका†—संज्ञा पुं० [हिं० टूक] १. टुकड़ा। २. रोटी का टुकड़ा। उ०—केचित् घर घर माँगहि टूका। बासी कुसी रूखा सुका।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६१। ३. रोटी का चौथाई भाग। ४. भिक्षा। भीख। उ०—बरु तन राख लगाय चाहु भर, खाय घरन के टूका।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६४।

क्रि० प्र०—माँगना।

टूकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूक] १. टूक। खंड। टुकड़ा। २. अँगिया के मुलकट के ऊपर की चकती।

टूक्यो(पु)—संज्ञा पुं० [(डिं०)] भालू।

टूट¹—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रुटि, हिं० टूटना] १ वह अंश जो टूटकर अलग हो गया हो। खंड। टूटन।

संयो० क्रि०—जाना।

यौ०—टूटफूट।

२. टूटने का भाव। ३. लिखावट में वह भूल से छूटा हुआ शब्द या वाक्य जो पीछे से किनारे पर लिख दिया जाता है। उ०—औ विनती पंडितन मन भजा। टूट सँवारहु मेरवहु सजा।—जायसी (शब्द०)।

टूट²—संज्ञा पुं० टोटा। घाटा। कमी।

मुहा०—टूट में पड़ना = घाटे में पड़ना। हानि उठाना। कमी होना। उ०—टूट में जाय पड़ नहीं कोई। टूटकर भी कमर न टूट सके।—चुभते०, पृ० ४७।

टूटदार—वि० [हिं० टूटना] टूटनेवाला। जोड़ पर से खुलने बंद होनेवाला (कुर्सी, टेबुल आदि)।

टूटना—क्रि० अ० [सं० त्रुट] १. किसी वस्तु का आघात, दबाव या झटके के द्वारा दो या कई भागों में एकबारगी विभक्त होना। टुकड़े टुकड़े होना। खंडित होना। भग्न होना। जैसे,—छड़ी टूटना, रस्सी टूटना।

संयो० क्रि०—जाना।

यौ०—टूटना फूटना।

विशेष—'टूटना' और 'फूटना' क्रिया में यह अंतर है कि फूटना खरी वस्तुओं के लिये बोला जाता है, विशेषत ऐसी जिनके भीतर अवकाश या खाली जगह रहती है। जैसे, घड़ा फूटना, बरतन फूटना, खपड़े फूटना, सिर फूटना। लकड़ी आदि चीमड़ वस्तुओं के लिये 'फूटना' का प्रयोग नहीं होता। पर फूटना के स्थान पर पश्चिमी हिंदी में 'टूटना' का प्रयोग होता है, जैसे, घड़ा टूटना।

२. किसी अंग के जोड़ का उखड़ जाना। किसी अंग का चोट खाकर ढीला और बेकाम हो जाना। जैसे,—हाथ टूटना, पैर टूटना। ३. किसी लगातार चलनेवाली वस्तु का रुक जाना। चलते हुए क्रम का भंग होना। सिलसिला बंद होना। जारी न रहना। जैसे,—पानी इस प्रकार गिराओ कि धार न टूटे। ४. किसी ओर एकबारगी वेग से जाना। किसी वस्तु पर झपटना। झुकना। जैसे, चील का मांस पर टूटना, बच्चे का खिलौने पर टूटना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

५. अधिक समूह में आना। एकबारगी बहुत सा आ पड़ना। पिल पड़ना। जैसे,—दूकान पर ग्राहकों का टूटना, विपत्ति या आपत्ति टूटना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

मुहा०—टूट टूटकर बरसना = बहुत अधिक पानी बरसना। मुसलाधार बरसना।

६. दल बाँधकर सहसा आक्रमण करना। एकबारगी धावा करना। जैसे, फौज का दुश्मन पर टूटना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

७ अनायास कहीं से आ जाना। अकस्मात् प्राप्त होना। जैसे,—दो ही महीने में इतनी संपत्ति कहाँ से टूट पड़ी? उ०—आयो हमारे मया करि मोहन मोकों तो मानो महानिधि टूठो।—देव। (शब्द०)। ८. पृथक् होना। अलग होना। च्युत होना। मेल में न रहना। जैसे, पंक्ति से टूटना, गवाह का टूट जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

९. संबंध छूटना। लगाव न रह जाना। जैसे, नाता टूटना। मित्रता टूटना।

संयो० क्रि०—जाना।

१०. दुर्बल होना। कृश होना। दुबला पड़ना। क्षीण होना। जैसे,—(क) वह खाने बिना टूट गया है। (ख) उसका सारा बल टूट गया।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—(कुएँ का) पानी टूटना = पानी कम होना।

११. धनहीन होना। कंगाल होना। बिगड़ जाना। जैसे,—इस रोजगार में बहुत से महाजन टूट गए।

संयो० क्रि०—जाना।

१२. चलता न रहना। बंद हो जाना। किसी संस्था, कार्यालय आदि का न रह जाना। जैसे, स्कूल टूटना, बाजार टूटना, कोठी टूटना, मुकदमा टूटना

संयो० क्रि०—जाना।

१३. किसी स्थान, जैसे गढ़ आदि का शत्रु के अधिकार में जाना। जैसे, किला टूटना। उ०—मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

१४ रुपए का बाकी पड़ना। वसूल न होना। जैसे,—अभी हिसाब साफ नहीं हुआ, हमारे १०) टूटते हैं। १५. टोटा होना। घाटा होना। हानि होना। १६ शरीर में ऐंठन या तनाव लिए हुए पीडा होना। जैसे,—बुखार चढ़ने पर जोड़ जोड़ टूटता है।

मुहा०—बदन या अंग टूटना = अँगड़ाई आना।

१७ पेड़ों से फल का तोड़ा जाना। फलों का इकट्ठा किया जाना। फल उतरना। जैसे, आम टूटना।

टूटा[1]—वि० [हिं० टूटना] [वि०स्त्री० टूटी] १ टुकड़े किया हुआ। भग्न। खंडित।

यौ०—टूटा फूटा = जीर्ण। निकम्मा।

मुहा०—टूटी फूटी जबान, बात या बोली = (१) असंबद्ध वाक्य। ऐसे वाक्य जो व्याकरण से शुद्ध और संबद्ध न हों। जैसे, टूटी फूटी अंग्रेजी। उ०—क्या कहूँ हालि दिल गरीब जिगर। टूटी फूटी जबान है प्यारे।—वि० भा०। २ अस्पष्ट वाक्य। उ०—शीत, पित्त कफ कंठ निरोधे रसना टूटी फूटी बात। —सूर (शब्द०)। टूटी बाँह गले पड़ना = अपाहिज के निर्वाह का भार अपने ऊपर पड़ना। किसी संबंधी का खर्च अपने जिम्मे होना।

२. दुबला। कमजोर। क्षीण। शिथिल। ३. निर्धन। दरिद्र। दीन।

टूटा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटा'। उ०—करु व्योपार सहज है सोदा, टूटा कबहूँ न परता।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १०।

टूटा फूटा—वि० [हिं० टूटना + फूटना] बिगड़ा हुआ। जिसकी हालत बुरी हो गई हो। उ०—आप भी उन्हीं टूटे फूटे नवाबों में हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५६।

टूठना(पु)—क्रि० अ० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट्ठ, हिं० टूठ + ना (प्रत्य०)] तुष्ट होना। प्रसन्न होना। उ०—हमसों मिले वर्ष द्वादश दिन चारिक तुम सों टूठे। सूर आपने आवन खेलें ऊधव खेलें रूठे।—सूर (शब्द०)।

टूठनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूठना] संतोष। तुष्टि। प्रसन्नता। उ०—ठुमुक ठुमुक पग धरनि नटनि लरखरनि सुहाई। भजनि मिलनि रूठनि टूठनि किलकनि अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई।—तुलसी (शब्द०)।

टूनरोटी—संज्ञा स्त्री० [अं० टाउन ड्यूटी] चुंगी।

टूना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोना'।

टूम—संज्ञा स्त्री० [अनु० टुन टुन] गहना पाता। आभूषण।

यौ०—टूमटाम = (१) गहना पाता। वस्त्राभूषण। (२) बनाव सिंगार। टूम छल्ला = छोटा मोटा गहना। साधारण गहना।

२. सुंदर स्त्री। ३ धनी स्त्री। मालदार स्त्री। ४ नीची। (बाजारू) ५ चालाक और चतुर आदमी। ६. उकसाने या खोदने की क्रिया। झटका। धक्का।

मुहा०—टूम देना = कबूतर को छतरी पर से उड़ाना।

७. ताना। व्यंग्य।

क्रि० प्र०—टूम मारना या तोड़ना = ताना मारना।

टूमना—क्रि० स० [अनु०] १. धक्का देना। झटका देना। खोदना। २. ताना मारना। व्यंग्य बोलना।

टूरनामेंट—संज्ञा पुं० [अं० टूर्नामेंट] खेल जिनमें जीतनेवालों को इनाम मिलता है।

टूल[1]—संज्ञा पुं० [अं०] औजार जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय।

टूल[2]—संज्ञा पुं० [अं० स्टूल] ऊँचे पायों की छोटी चौकी जिसपर लड़के बैठते हैं या कोई चीज रखी जाती है। तिपाई।

टूसा[1]—संज्ञा पुं० [सं० तुष (= भूसी) ?] १ मंदार का फल। बोंडा। २ रेशा। फुचडा। सूत। ३. पक्कड़ का फूल। पाकर का फूल। ४. पतझड़ के बाद टहनियों के सिरे पर पत्तियों का संश्लिष्ट नुकीला आकार जो नीम, पाकर आदि वृक्षों मे मिलता है।

टूसा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] टुकड़ा। खंड।

टूसी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूसा] कली। बिना खिला हुआ फूल।

टेंकिका—संज्ञा स्त्री०[सं० टेङ्किका] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

टेंकी—संज्ञा स्त्री० [सं० टेङ्की] १ शुद्ध राग का एक भेद। २ एक प्रकार का नृत्य।

टेंपरेचर—संज्ञा पुं० [अं०] शरीर या किसी स्थान की उष्णता या गर्मी का मान जो थर्मामीटर से जाना जाता है। तापमान। जैसे,—(क) सवेरे उसका टेंपरेचर लिया था; १०२ डिग्री बुखार था। (ख) इस बार इलाहाबाद में ११८ डिग्री टेंपरेचर हो गया था।

क्रि० प्र०—लेना।—होना।

टें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तोते की बोली। सुए की बोली।

यौ०—टें टें।

मुहा०—टें टें = व्यर्थ की बकवाद। हुज्जत। टें होना या बोलना = उसी तरह चटपट मर जाना जिस प्रकार बिल्ली के पकड़ने पर तोता एक बार टें शब्द निकालकर मर जाता है। झट प्राण छोड़ देना। मर जाना। न बचना।

टेंगड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेंगरा'।

टेंगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेंगरा'।

टेंगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] टेंगरा मछली। उ०—संध सुगध धरे जल बाढ़े। टेंगन मुवे टोय सब काढ़े।—जायसी (शब्द०)।

टेंगना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेंगरा'।

टेंगर—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड (= एक मछली)] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह टेंगरा ही के तरह की पर उससे बहुत बड़ी अर्थात् दो ढाई हाथ तक लंबी होती है। टेंगरा की तरह इसे भी काँटे होते हैं।

टेंगरा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड (= एक प्रकार की मछली)] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह भारत के अनेक भागों में, विशेषकर अवध, बिहार और बंगाल के उत्तर के जलाशयों में पाई जाती है। यह डेढ़ बालिश्त लंबी तथा सफेद या कुछ कालापन लिए बादामी होती है। इसके शरीर में सेहुरा नहीं होता और इसके मुँह के किनारे लंबी मूँछें होती हैं। इसके शरीर मे तीन काँटे होते हैं, दो अगल बगल और एक पीठ में। क्रुद्ध होने पर यह इन काँटों से मारती है। सबसे बड़ी विलक्षणता इस मछली में यह है कि यह मुँह से गुनगुनाहट के ऐसा शब्द निकालती है।

टेंघुना†—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीवान्] [स्त्री० टेंघुनी] घुटना।

टेंघुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टेंघुना'।

टेंचना†—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] खंभा। टेक। चाँड

टेंट¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टट+ऐंठ] धोती की वह मंडलाकार ऐंठन जो कमर पर पड़ती है और जिसमें लोग कभी कभी रुपया पैसा भी रखते हैं। मुर्री।

मुहा०—टेंट मे कुछ होना = पास में कुछ रुपया पैसा होना।

टेंट²—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोंट] १. कपास की ढोढ़। कपास का डोडा जिसमें से रुई निकलती है। २. करील का फल। ३. करील। ४. पशुओं के शरीर पर का ऐसा घाव जो ऊपर से देखने में सूखा जान पड़े पर जिसमें से समय समय पर रक्त बहा करे। ५. दे० 'टेंटर'।

टेंटक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेंटर'।

टेंटर—संज्ञा पुं० [देश०] रोग या चोट के कारण आँख के ढेले पर का उभरा हुआ मांस। ढेंढर।

क्रि० प्र०—निकलना।

टेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पक्षी।

विशेष—इसकी चोंच बालिश्त भर की और पैर डेढ़ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसका बदन चितकबरा पर चोंच काली होती है।

टेंटार—संज्ञा पुं० [हिं० टेंट+आर (प्रत्य०)] दे० 'टेंटा'।

टेंटिहा¹†—वि० [हिं०] दे० 'टेंटी'।

टेंटिहा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के क्षत्रिय जो प्राय. बिहार के शाहाबाद जिले में पाए जाते हैं।

टेंटी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेंट] १. करील। उ०—सूर कहो कैसे रुचि मानै टेंठी के फल खारे।—सूर (शब्द०)। २ करील का फल। कचड़ा।

टेंटी²—वि० [अनु० टें टें] बात बात में बिगड़नेवाला। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला।

टेंटु—संज्ञा पुं० [सं० टुण्टक] श्योनाक। सोनापाठा।

टेंटुवा—संज्ञा पुं० [देश०] १ गला। घेंटू। घीची। २. अँगूठा।

टें टें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ तोते की बोली। २. व्यर्थ की बकवाद। हुज्जत। धृष्टतापूर्ण बात। जैसे,—कहाँ राम राम कहाँ टें टें।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

मुहा०—टें टें लगाना = बकवाद करना। अनावश्यक बोलना। उ०—तुमको इन बातों में क्या दखल है। नाहक बिन नाहक की टें टें लगाई है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३७१।

टेंड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिंडसी'।

टेंव(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टेव'। उ०—गुन गोपाल उचारत रसना, टेंव एह परी।—सतवाणी०, पृ० ४८।

टेउ‡—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'टेव'।

टेउकना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेकन'।

टेउका†—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] [स्त्री० टेउकी] दे० 'टेकन'।

टेउकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] १. किसी वस्तु को लुढ़कने या गिरने से बचाने के लिये उसके नीचे लगाई गई वस्तु। २. जुलाहों की वह लकड़ी जो ताने की डाँडी में इसलिये लगाई जाती है जिसमें ताना जमीन पर न गिरे, ऊपर उठा रहे। ३. साधुओं की अधारी।

टेक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] १. वह लकड़ी या खंभा जो किसी भारी वस्तु को अड़ाए या टिकाए रखने के लिये नीचे या बगल से भिड़ाकर लगाया जाता है। चाँड़। थूनी। थम।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. टिकने या भार देने की वस्तु। ओठंगने की चीज। ढासना। सहारा। ३. आश्रय। अवलंब। उ०—दै मुद्रिका टेक तेहि अवसर सुचि समीरसुत पैर गहे री।—तुलसी (शब्द०)। ४. बैठने के लिये बना हुआ ऊँचा चबूतरा या वेदी। बैठने का स्थान। जैसे, राम टेक। ५. ऊँचा टीला। छोटी पहाड़ी। ६. चित्त में टिका या बैठा हुआ संकल्प। मन में ठानी हुई बात। दृढ़ संकल्प। अड़। हठ। जिद। उ०—सोइ गोसाईं जो विधि गति छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—टेक गहना = दे० 'टेक पकड़ना'। टेक पकड़ना = जिद पकड़ना। हठ करना। टेक निभना = (१) जिस बात के लिये आग्रह या हठ हो उसका पूरा होना। (२) प्रतिज्ञा पूरी होना। टेक निबाहना = दे० 'टेक निभाना।' टेक निभाना = प्रतिज्ञा या आन का पूरा होना। टेक निभाना = प्रतिज्ञा पूरी करना। टेक रहना = दे० 'टेक निभाना'।

७ वह बात जो अभ्यास पड़ जाने के कारण मनुष्य अवश्य करे। बान। आदत। संस्कार।

क्रि० प्र०—पड़ना।

८. गीत का वह टुकड़ा जो बार बार गाया जाय। स्थायी। ९. पृथ्वी की नोक जो पानी मे कुछ दूर तक चली गई हो।—(लश०)।

टेकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक+ड़ी (प्रत्य०)] १. टीला। ऊँचा धुस्स। २. छोटी पहाड़ी। उ०—टेकड़ियों के पार, कहो कैसे चढ़कर आते हो?—हिम०, पृ० १०१।

टेकन—संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] [स्त्री० टेकनी] वह वस्तु जो भारी या लुढ़कनेवाली वस्तु को टिकाए रखने के लिये उसके नीचे

या बगल में लगाई जाय। अठुकन। रोक। जैसे,—पेड़ के नीचे टेकन लगा दो।

क्रि० प्र०—लगाना।

टेकना¹—क्रि० स० [हिं० टेक] १ खड़े खड़े या बैठे बैठे श्रम से बचने लिये शरीर के बोझ को किसी वस्तु पर थोड़ा बहुत डालना। सहारे के लिये किसी वस्तु को शरीर के साथ भिड़ाना। सहारा लेना। ढासना लेना। आश्रय बनाना। जैसे, दीवार या खंभा टेककर खड़ा होना।

संयो० क्रि०—लेना।

२. किसी अंग को सहारे आदि के लिये कहीं टिकाना। ठहराना या रखना।

मुहा०—घुटने टेकना = पराजय स्वीकार करना। हार मानना। माथा टेकना = प्रणाम करना। दंडवत् करना।

३. चलने, चढ़ने, उठने बैठने आदि में शरीर का कुछ भार देने के लिये किसी वस्तु पर हाथ रखना या उसको हाथ से पकड़ना। सहारे के लिये थामना। जैसे, चारपाई टेककर उठना बैठना, लाठी टेककर चलना। उ०—(क) सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत ढहरि।—सूर (शब्द०)। (ख) नाचत गावत गुन की खानि। थकित भए टेकत पिय पानि।—सूर (शब्द०)। ४. चलने में गिरने पड़ने से बचने के लिये किसी का हाथ पकड़ना। हाथ का सहारा लेना। उ०—गृह गृह गृहद्वार फिरयो तुमको प्रभु छाँड़े। अंध अध टेकि चले क्यों न परे गाड़े।—सूर (शब्द०)। † ⓟ ५ टेक करना। हठ करना। ठानना। उ०—सोइ गोसाइँ जेइ विधि गति छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी (शब्द०)। ६ किसी को कोई काम करते हुए बीच में रोकना। पकड़ना। उ०—(क) रोवहिं मातु पिता औ भाई। कोउ न टेक जो कंत चलाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) जनहुँ औटि कै मिलि गए तस दूनो भए एक। कंचन कसत कसौटी हाथ न कोऊ टेक।—जायसी (शब्द०)।

टेकना²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली धान। पनाव।

टेकनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकना] टेकने का आधार, छड़ी आदि। उ०—उन्हीं की टेकनी के सहारे वे चल सकते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७३।

टेकनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकन + ई (प्रत्य०)] दे० 'टेकन'।

टेकर—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] [स्त्री० टेकरी] १ टीला। उठी हुई भूमि। २. छोटी पहाड़ी।

टेकरा—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] दे० 'टेकर'।

टेकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टेकर'। उ०—यमुना अपनी धोती लेकर बजरे से उतरी और बालु की एक ऊँची टेकरी के कोने में चली गई।—कंकाल, पृ० ८८।

टेकला†ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] धुन। रट। उ०—बन बन पुकारूँ एकला, डारूँ गले बिच मेखला। एक नाम की है टेकला, सोहबत की तहँ मैं क्या करूँ।—कबीर (शब्द०)।

टेकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] किसी चीज को उठाने या गिराने का औजार।—(लश०)।

टेकान—संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] १. टेक। वह लकड़ी जो किसी गिरनेवाली धरन या छत आदि को सँभालने के लिये उसके नीचे खड़ी कर दी जाती है। चाँड़। २. ऊँचा चबूतरा या खंभा जिसपर बोझवाले अपना बोझ टिकाकर थोड़ी देर सुस्ता लेते हैं। धरम ढोहा।

टेकाना†—क्रि० स० [हिं० टेकना] १ किसी वस्तु को कहीं ले जाने में सहायता देने के लिये पकड़ना। उठाकर ले जाने में सहारा देने के लिये थामना। जैसे,—चारपाई को टेका लो, भीतर कर दें।

संयो क्रि०—देना।—लेना।

२. उठने बैठने या चलते फिरने में सहायता देने के लिये थामना। जैसे,—वे इतने कमजोर हो गए हैं कि दो आदमी टेकाकर उन्हें भीतर बाहर ले जाते हैं।

टेकानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकना] पहिए को रोकने की कील। किल्ली।

टेकी—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] १. कही हुई बात पर जमा रहनेवाला। प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला। २ अड़नेवाला। हठी। दुराग्रही। जिद्दी। ३. आधार। टेक। सहारा। उ०—कहिं बल्ली टेकी पूनी है, कहिं पास कदंब की पूनी है।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

टेकुआ¹—संज्ञा पुं०[सं० तर्कुक, प्रा० टक्कुअ] चरखे का तकला जिसपर सूत कातकर लपेटा जाता है। तकुआ।

टेकुआ²—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] १. टिकाने या अड़ाने की वस्तु। अडुकन। २. सहारे की वह लकड़ी जो एक पहिया निकाल लेने पर गाड़ी को ऊपर ठहराए रखने के लिये लगाई जाती है।

टेकुरा†—संज्ञा पुं० [देश०] पान।

टेकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कु, हिं० टेकुआ] १. फिरकी लगा हुआ सूआ जिसके घूमने से फंसी हुई रुई का सूत बनकर लिपटता जाता है। सूत कातने का तकला। २. बाँस की डाँड़ी के एक छोर पर लाह लगाकर बनाई हुई जुलाहों की फिरकी जिसमें रेशम फँसाया रहता है। ३. रस्सी बटने का तकला या औजार। ४. चमारों का सूआ जिससे वे तागा खींचते और निकालते हैं। ५. गोप नाम का गहना बनाने के लिये सुनारों की सलाई जिससे तार खींचकर फंदा दिया जाता है। ६. मूर्ति बनानेवालों का चिपटी धार का एक औजार जिससे वे मूर्ति का तल साफ और चिकना करते हैं।

टेकुवाⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेकुआ'। उ०—टेकुवा साधत जो बनि आवे, मँहगो मोल बिकाय।—कबीर श०, भा० २, पृ० ४९।

टेघरना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टिघलना'।

टेघिन—संज्ञा पुं० [अं० स्टिचिंग] एक प्रकार का काँटा जिसके एक ओर माथा होता है और दूसरी ओर डिबरी होती है। यह

किसी चीज को अड़ाने या थामने के काम में आता है। —(शब्द०)।

टेटका†—संज्ञा पुं० [सं० ताटङ्क] कान में पहनने का एक गहना।

टेटुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेंटुवा'। उ०—अजी अब बनाने की बात तो और है पूरी दास्तान भी नहीं सुनी और टेटुए पर चढ़ बैठे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १९६।

टेढ़ही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेढ़ा] टेढ़ी लकड़ी की छड़ी। उ०—लिये हाथ में डाल टेढ़ही।—ग्राम्या, पृ० ४४।

टेढ़[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेढ़ा] १. टेढ़ापन। वक्रता। २. अकड़। ऐंठ। उजड्डपन। नटखटी। शरारत।

मुहा०—टेढ़ की लेना=नटखटी करना। शरारत करना। उजड्डपन करना।

टेढ़[2]—वि० दे० 'टेढ़ा'।

टेढ़बिडंगा—वि० [हिं० टेढ़ा+बेढंगा] टेढ़ामेढ़ा। टेढ़ा और बेढंगा। बेडौल।

टेढ़ा—वि० [सं० तिरस् (=टेढ़ा)] [वि०स्त्री० टेढ़ी] १ जो लगातार एक ही दिशा को न गया हो। इधर उधर झुका या घूमा हुआ। फेर खाकर गया हुआ। जो सीधा न हो। वक्र। कुटिल जैसे, टेढ़ी लकीर, टेढ़ी छड़ी, टेढ़ा रास्ता।

यौ०—टेढ़ा मेढ़ा=जो सीधा और सुडौल न हो। टेढ़ा बाँका=नोक झोक का। बना ठना। छैल चिकनिया।

मुहा०—टेढ़ी चितवन=तिरछी चितवन। भावभरी दृष्टि।

२. जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो। जो समानांतर न गया हो। तिरछा। ३. जो सुगम न हो। कठिन। बेढ़ा। फेरफार का। मुश्किल। पेचीला। जैसे, टेढ़ा काम, टेढ़ा प्रश्न, टेढ़ा मामला। उ०—मगर शेरों का मुकाबिला जरा टेढ़ी खीर है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४।

मुहा०—टेढ़ी खीर=मुश्किल काम। कठिन कार्य। दुष्कर कार्य।

विशेष—इस मुहा० के संबध में लोग एक कथा कहते हैं। एक आदमी ने एक अंधे से पूछा 'खीर खाओगे?'। अंधे ने पूछा 'खीर कैसी होती है?' उस आदमी ने कहा 'सफेद'। फिर अंधे ने पूछा 'सफेद कैसा?'। उसने उत्तर दिया 'जैसा बगला होता है?' इसपर उस आदमी ने हाथ टेढ़ा करके बताया। अंधे ने कहा—'यह तो टेढ़ी खीर है, न खाई जायगी'।

४ जो शिष्ट या नम्र न हो। उद्धत। उग्र। उजड्ड। दुःशील। कोपवान्। जैसे, टेढ़ा आदमी, टेढ़ी बात। उ०—टेढ़े आदमी से कोई नहीं बोलता।—(शब्द०)।

मुहा०—टेढ़ा पड़ना या होना=(१) उग्र रूप धारण करना। जैसे,—कुछ टेढ़े पड़ोगे तभी रुपया निकलेगा, सीधे से माँगने से नहीं। (२) अकड़ना। ऐंठना। टर्राना। जैसे,—वह जरा सी बात पर टेढ़ा हो जाता है। टेढ़ी आँख से देखना=क्रूर दृष्टि करना। शत्रुता की दृष्टि से देखना। अनिष्ट करने का विचार करना। बुरा व्यवहार करने का विचार करना। टेढ़ी आँखें करना=कुपित दृष्टि करना। क्रोध की आकृति बनाना। बिगड़ना। टेढ़ी सीधी सुनाना=ऊँची नीची सुनाना। खरी खोटी सुनाना। भला बुरा कहना। टेढ़ी सुनाना=दे० 'टेढ़ी सीधी सुनाना'।

टेढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेढ़ा] टेढ़ा होने का भाव। टेढ़ापन।

टेढ़ापन—संज्ञा पुं० [हिं० टेढ़ा+पन (प्रत्य०)] टेढ़ा होने का भाव।

टेढ़ामेढ़ा—वि० [हिं० टेढ़ा+अनु० मेढ़ा] जो सीधा न हो। टेढ़ा। वक्र।

टेढ़े—क्रि० वि० [हिं० टेढ़ा] सीधे नहीं। घुमाव फिराव के साथ। जैसे,—वह टेढ़े जा रहा है।

मुहा०—टेढ़े टेढ़े जाना=इतराना। घमंड करना। उ०—(क) कबहूँ कमला चपल पाय के टेढ़े टेढ़े जात। कबहुँक मग मग धूरि टटोरत, भोजन को बिललात।—सूर (शब्द०)। (ख) जो रहीम ओछो बढ़ै तौ अति ही इतरात। प्यादा सों फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जात।—रहीम (शब्द०)।

टेना[1]—क्रि० स० [हिं० टेव+ना (प्रत्य०)] १ किसी हथियार की धार को तेज करने के लिये पत्थर आदि पर रगड़ना। उ०—कुबरी करी कुबलि कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई।—तुलसी (शब्द०)। २. मूँछ के बालों को खड़ा करने के लिये ऐंठना। जैसे, मूँछ टेना।

टेना(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेनी'।

मुहा०—टेना मारना=दे० 'टेनी मारना'। उ०—करै बिवेक दुकान ज्ञान का लेना देना। गादी है संतोष नाम का मारै टेना।—पलटू०, भा० १, पृ० १००।

टेनिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेनी+इया (प्रत्य०) दे० 'टेनी'। उ०—काहे की डंडी काहे का पलरा काहे की मारी टेनिया।—कबीर श०, भा० २, पृ० १५।

टेनिस—संज्ञा पुं० [अ०] गेंद का एक प्रकार का अंगरेजी खेल।

टेनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी उँगली।

मुहा०—टेनी मारना=सौदा तौलने में उँगली को इस तरह घुमाना फिराना कि चीज कम चढ़े। (सौदा) कम तौलना।

टेनेंट—संज्ञा पुं० [अं०] १. किराएदार। २. असामी। पहरेदार। रैयत।

टेप—संज्ञा पुं० [अ०] फीता।

यौ०—टेप रिकार्डर=रिकार्ड करनेवाला वह यंत्र जो बैटरी से चालित होता है और प्रवचनों को फीते पर रिकार्ड करने के काम आता है।

टेपारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठिपारा'। उ०—अरुन अति ललित भाल जटिल लाल टेपारो।—नंद०, ग्रं० पृ० ३९५।

टेबलेट—संज्ञा पुं० [अं०] १. छोटी टिकिया। जैसे, क्विनाइन टेबलेट। २. पत्थर, काँसे आदि का फलक जिसपर किसी की स्मृति में कुछ लिखा या खुदा रहता है। जैसे,—किसान सभा ने उनके स्मारक स्वरूप एक टेबलेट लगाना निश्चित किया है।

टेबिल—संज्ञा पुं० [अं० टेबुल] मेज। उ०—अंगरेजों के साथ एक टेबिल पर खाना न खाएँगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७८।

टेबुल[1]—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १ मेज।
यौ०—टेबुल क्लाथ=मेजपोश।
२. नकशा। ३. वह जिसमें बहुत से खाने या कोष्ठक बने हों। नकशा। सारिणी।

टेम[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिमटिमाना] दीपशिखा। दिए की लौ। दीपक की ज्योति। लाट। उ०—श्यामा की मूरति दीप की टेम में दिखाने लगी।—श्यामा०, पृ० १५६।

टेम[2]—संज्ञा पुं० [ग्रं० टाइम] समय। वक्त।

टेमन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।

टेमा—संज्ञा पुं० [देश०] कटे हुए चारे की छोटी ग्रँटिया।

टेर[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तार (=संगीत में ऊँचा स्वर)] १. गाने में ऊँचा स्वर। तान। टीप।
क्रि० प्र०—लगाना।
२. बुलाने का ऊँचा शब्द। पुकारने की आवाज। बुलाहट। पुकार। हाँक। उ०—(क) टेर लखन सुनि बिकल जानकी अति आतुर उठि धाई।—सूर (शब्द०)। (ख) कुश के टेर सुनी जबै फूलि फिरे शत्रुघ्न।—केशव (शब्द०)।

टेर[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तार(=तै करना)] निर्वाह। गुजर।
मुहा०—टेर करना=गुजारना। बिताना। काटना। जैसे,—जिंदगी टेर करना।

टेर[3]—वि० [सं०] तिरछी निगाह का। ऐंचाताना [को०]।

टेरक—वि० [सं०] ऐंचाताना [को०]।

टेरना[1]—क्रि० स० [हिं० टेर+ना (प्रत्य०)] १. ऊँचे स्वर से गाना। तान लगाना। २. बुलाना। पुकारना। हाँक लगाना। उ०—(क) भई साँझ जननी टेरत है कहाँ गए चारो भाई।—सूर (शब्द०)। (ख) फिरि फिरि राम सीय तन हेरत। तृषित जानि जल लेन लखन गए, भुज उठाय ऊँचे चढ़ि टेरत।—तुलसी।—(शब्द०)।

टेरना[2]—क्रि० स० [सं० तीरण (=तै करना)] १. तै करना। चलता करना। निबाहना। पूरा करना। जैसे,—थोड़ा सा काम और रह गया है किसी प्रकार टेर ले चलो। २ बिताना। गुजारना। काटना। जैसे,—वह इसी प्रकार जिंदगी टेर ले जायगा।
संयो० क्रि०—ले चलना।—ले जाना।

टेरनि[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेरना] टेर। पुकार। उ०—हरि की सी गाइ निबेरनि टेरनि ग्रंबर फेरनि।—नंद० ग्रं०, पृ० २६।

टेरवा—संज्ञा पुं० [देश०] हुक्के की नली जिसपर चिलम रखी जाती है।

टेरा[1]—संज्ञा पुं० [?] १. ढेरा। अंकोल का पेड़। २. पेड़ों का घड़। तना। वृक्षस्तंभ। जैसे, केले का टेरा। ३. शाखा। जैसे,—हाथी के लिये टेरा काटना है।

टेरा[2]—वि० [सं० टेर] ऐंचाताना। टेपरा। भेंगा।

टेरा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० टेरना] बुलावा। उ०—पाछे टेरा आयो। तब यह सावधान ह्वै विचार करने लाग्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २३२।

टेराकोटा—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १. पकी हुई मिट्टी जिससे मूर्तियाँ, इमारतों मे लगाने के लिये बेलबूटे, आदि बनते हैं। २. पकी हुई मिट्टी का रंग। ईंटकोहिया रंग।

टेरिऊल—संज्ञा पुं० [ग्रं०] टेरिलिन और ऊन के मिश्रित धागे या उनसे बना वस्त्र।

टेरिकाट—संज्ञा पुं० [ग्रं० टेरिकॉट] टेरिलिन और सूत के धागे या उनसे बना हुआ वस्त्र।

टेरिटोरियल फोर्स—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] वह सैन्यदल जिसका संबंध अपने स्थान से हो। नागरिक सेना। देशरक्षिणी सेना। देशरक्षक सेना।
विशेष—इन्हें साधारणतः देश के बाहर लड़ने को नहीं जाना पड़ता।

टेरिलिन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] एक प्रकार का कृत्रिम रेशा या उन रेशों से बुना हुआ वस्त्र।

टेरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] टहनी। पतली शाखा। जैसे, नीम की टेरी।

टेरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकुरी] दरी बुनने का सूजा।

टेरी[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक पौधा जिसकी कलियाँ रँगने और चमड़ा सिझाने में काम आती हैं। इसे 'बखेरी' और 'कुंती' भी कहते हैं। २. बक्कम की फली।

टेरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] सरसों का एक भेद। उलटो।

टेलपेल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ठेलठाल। धक्कामुक्की। उ०—हम लोग भी टेल पेलकर रेल पर चढ़ बैठे।—प्रेमघन०, भा०, २ पृ० ११२।

टेलर[1]—वि० [?] नाम मात्र को। कहने भर के लिये। उ०—उन्हें टेलर हिंदू कहलाने की अपकीर्ति से बचाना।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५७।

टेलर[2]—संज्ञा पुं० [ग्रं०] दर्जी। सीने का काम करनेवाला।

टेलिग्राफ—संज्ञा पुं० [ग्रं०] तार जिसके द्वारा खबरें भेजी जाती हैं। दे० तार'।

टेलिग्राम—संज्ञा पुं० [ग्रं०] तार से भेजी हुई खबर। तार।

टेलिपैथी—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] वह मानसिक क्रिया जिसके द्वारा दूसरों की भावनाओं का ज्ञान होता है।

टेलिप्रिंटर—संज्ञा पुं० [ग्रं०] विद्युत् संचालित वह टाइपराइटर या टंकण यंत्र जिसमें तार द्वारा प्राप्त समाचार आदि अपने आप टंकित होते हैं।

टेलिफोटोग्राफी—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] दूरवीक्षण यंत्र द्वारा फोटो लेना।

टेलिफोन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह यंत्र जिसके द्वारा एक स्थान पर कहा हुआ शब्द कितने ही कोस दूर के दूसरे स्थान पर सुनाई पड़ता है।
विशेष—इसकी साधारण युक्ति यह है कि दो चोंगे लो जिनका मुँह एक ओर कागज, चमड़े आदि से मढ़ा हो तथा दूसरी ओर खुला हो। मढ़े हुए चमड़े के बीचोबीच से लोहे का एक लंबा तार ले आकर दोनों चोंगों के बीच लगा दो।

यदि एक चोंगे में कोई बात कही जायगी और दूसरे चोंगे में (जो दूर पर होगा) किसी का कान लगा होगा तो वह बात सुनाई पडेगी। पर यह युक्ति थोडी ही दूर के लिये काम दे सकती है। अधिक दूर के लिये बिजली के प्रवाह का सहारा लिया जाता है। चुबक की एक छड, जिसमें रेशम (या और कोई ऐसा पदार्थ जिससे होकर बिजली का प्रवाह न जा सके) से लिपटा हुआ ताँबे का तार कमानी की तरह घुमाकर जड़ा रहता है, एक नली के भीतर बैठाई रहती है। चुबक के एक छोर के पास लोहे का एक पत्तर बँधा रहता है। यह पत्तर काठ की खोली में रहता है—जिसका मुँह एक ओर चोंगे की तरह खुला रहता है। इस प्रकार दो चोंगों की आवश्यकता टेलीफोन में होती है एक बोलने के लिये, दूसरा सुनने के लिये। इन दोनों चोंगों के बीच तार लगा रहता है। शब्द वायु मे उत्पन्न तरग या कंप मात्र हैं। मुँह से निकला हुआ शब्द चोंगे के भीतर की वायु को कपित करता है जिसके कारण बँधे हुए लोहे के पत्तर में भी कप होता है अर्थात् वह आगे पीछे जल्दी जल्दी हिलता है। इस हिलने से चुंबक की शक्ति एक बार घटती और एक बार बढ़ती रहती है। इस प्रकार तार की मंडलाकार कमानी के एक बार एक ओर दूसरी बार दूसरी ओर बिजली उत्पन्न होती रहती है। इसी बिजली के प्रवाह द्वारा बहुत दूर के स्थानों पर भी शब्द पहुँचाया जाता है। टेलिफोन के द्वारा स्थल पर हजारों कोस दूर तक की और समुद्र में सैकड़ों कोस तक की कही बातें सुनाई पड़ती हैं।

टेलिविजन—संज्ञा पुं० [अ०] किसी वस्तु, दृश्य या घटना के चित्र को बेतार के तार से या तार द्वारा संप्रेषित करने की वह प्रक्रिया जिससे दूरस्थ व्यक्ति भी उसे तत्काल ज्यों का त्यों देख सुन सके।

विशेष—टेलिविजन में प्रकाशतरगों को किसी दृश्य पर से विद्युत् तरगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो बेतार के तार या तार द्वारा सप्रेषित होती हैं और इसके बाद उनको पुनः प्रकाशतरगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो टेलिविजन पट पर उस दृश्य को चित्रित करती हैं।

टेलिस्कोप—संज्ञा पुं० [अ०] वह यत्र जो दूरस्थ वस्तुओं को निकटतर और विशालतर दिखाने का कार्य करता है।

टेली—संज्ञा पुं० [देश०] मझले आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी साफ और मजबूत होती है तथा चारपाई, औजारों के दस्ते आदि बनाने के काम में आती है।

विशेष—यह पेड आसाम, कछार, सिलहट और चटगाँव में बहुत होता है।

टेव—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] अभ्यास। आदत। बान। स्वभाव। प्रकृति। उ०—(क) सुनु मैया याकी टेव लरन की, सकुच बेचि सी खाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुम तो टेव जानतिहि ह्वै हो तऊ मोहि कहि आवै। प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

टेवकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेवकन, टेकन] १. दोनों छोरों पर कुछ दूर तक बाँस की एक चिरी लकड़ी जो जुलाहों की ढरकी में इसलिये लगी रहती है जिसमें तागा गिरने न पावे। २. नाव के पालों में से सबसे ऊपर का छोटा पाल।

टेवना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टेना'।

टेवा—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पन] १ जन्मपत्री। जन्मकुंडली। २. लग्नपत्र जिसमे विवाह की मिति, दिन, घड़ी आदि लिखी रहती है और जिसे लड़की के यहाँ से शकुन के साथ नाई ले जाकर लड़के के पिता को विवाह से १० या बारह दिन पहले देता है।

टेवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० टेवना] १. टेनेवाला। सिल्ली पर धार तेज करनेवाला। २. चोखा करनेवाला। तीक्ष्ण या पैना करनेवाला। उ०—जहाँ जमजातन घोर नदी भट कोटि जलच्चर दत टेवैया।—तुलसी (शब्द०)।

टेसुआ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेसु'।

टेसू—संज्ञा पुं० [सं० किंशुक] १ पलाश का फूल। ढाक का फूल।

विशेष—इसे उबालने से इसमें से एक बहुत अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे पहले कपड़े बहुत रँगे जाते थे। दे० 'पलाश'।

२. पलाश का पेड़। ३. लड़कों का एक उत्सव। उ०—जे कच कनक कचोरा भरि भरि मेलत तेल फुलेल। तिन केसन को भस्म चढ़ावत टेसू के से खेल।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इसमें विजयादशमी के दिन बहुत से लड़के इकट्ठे होकर घास का एक पुतला सा लेकर निकलते हैं और कुछ गाते हुए घर घर घूमते हैं। प्रत्येक घर से उन्हें कुछ अन्न या पैसा मिलता है। इसी प्रकार पाँच दिन तक अर्थात् शरद् पूनो तक करते हैं और जो कुछ भिक्षा मिलती है उसे इकठा करते जाते हैं। पूनों की रात को मिले हुए द्रव्य से खाजा, मिठाई आदि लेकर वे बोए हुए खेतों पर जाते हैं जहाँ बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं और बलाबल की परीक्षा संबंधी बहुत सी कसरतें और खेल होते हैं। सबके अंत में खाजा, मिठाई लड़कों में बँटती है। टेसू के गीत इस प्रकार के होते हैं—इमली के जड़ से निकली पतंग। नौ सौ मोती नौ सौ रंग। रंग रंग की बनी कमान। टेसु आया घर के द्वार। खोलो रानी चंदन किवार।

टेहला†—संज्ञा पुं० [देश०] विवाह के व्यवहार। ब्याह की रीति रस्म।

टेहुना†—संज्ञा पुं० [हिं० घुटना] घुटना।

टेहुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोहुनी'।

टैंक—संज्ञा पुं० [अं०] १ मोटर की तरह का एक युद्धयान जो मजबूत इस्पात का बना होता है और जिसमें तोपें लगी रहती हैं। २. तालाब।

टैंठी(प)—वि० [?] चचल। उ०—पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैंठी।—घनानद, पृ० ३७।

टैयाँ[१]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी कौड़ी जिसकी पीठ साधारण कौडी से कुछ चिपटी होती है और उसपर दो चार उभरे हुए बड़े दाने से होते हैं।

विशेष—इसका रंग नीलापन लिए या बिलकुल सफेद होता है। फेंकने से यह चित अधिक पड़ती है इसी से इसका व्यवहार जुए में अधिक होता है। इसे चित्ती भी कहते हैं।

टैयाँ[2]—वि० नाटा और हृष्ट पुष्ट।

टैक्स—संज्ञा पुं० [अं०] कर या महसूल जो राज्य अथवा नगरपालिका अथवा जिला परिषद् या पंचायत की ओर से किसी वस्तु पर लगाया जाय। जैसे, इनकम टैक्स।

टैक्सी—संज्ञा स्त्री० [अं०] किराए पर चलनेवाली मोटर गाड़ी।

टैन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो चमड़ा सिझाने के काम में आती है।

टैना†—संज्ञा पुं० [देश०] घास का पुतला या डंडे पर रखी हुई काली हाँड़ी आदि जिन्हें खेतों में पक्षियों को डराने के लिये रखते हैं।

टैनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों का झुंड।—(गड़ेरिए)।

टैरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेरा'।

टैरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टेरी'।

टैबलेट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'टेबलेट'।

टोंक[1]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोंका'।

टोंक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोक'। उ०—उलझन की मोठी रोक टोंक, यह सब उसकी है नोक झोंक।—कामायनी, पृ० २३५।

टोंका†—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक (=थोड़ा)] १. छोर। सिरा। किनारा। २. नोक। कोना। ३. जमीन जो नदी में कुछ दूर तक गई हो।—(मल्लाह)।

टोंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टाँगा'।

टोंगू—संज्ञा पुं० [देश०] फैलनेवाली एक झाड़ी जिसकी छाल के रेशों से रस्सी बनाई जाती है। जिती। जक।

टोंच—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोंचना] १. सीयन। सिलाई का टाँका। २. टोंचने की क्रिया।

टोंचना[1]—क्रि० स० [सं० टङ्कन] चुभाना। गड़ाना। धँसाना। कोंचना।

टोंचना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ताना] १. ताना। व्यंग्य। २. उपालंभ। उलाहना।

टोंट—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] ठोर। चोंच। उ०—मारत टोंट भुजा रुधिराना।—जग० बानी, पृ० ८२।

टोंटरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोंटी'।

टोंटा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १. चिड़िया की चोंच के आकार की निकली हुई कोई वस्तु। २. चोंच के आकार के गढ़े हुए काठ के डेढ़ दो हाथ लंबे टुकड़े जो घर की दीवार के बाहर की ओर पंक्ति में बढ़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाए जाते हैं। घोड़िया। ३. पानी आदि डालने के लिये बरतन में लगी हुई नली।

टोंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. पानी आदि ढालने के लिये झारी। लोटे आदि में लगी हुई नली जो दूर तक निकली रहती है। तुलतुली। २. पशुओं का थूथन। जैसे, सूअर की टोंटी।

टोंस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टौंस'।

टोआ[1]—संज्ञा पुं० [सं० तोय (=पानी)] गड्ढा।—(पंजाबी)।

टोआ[2]—संज्ञा पुं० [सं० तोक्म] अंकुर (को०)।

टोआ[3]—संज्ञा पुं० [हिं० टोहना] जहाज या नाव के आगे के भाग पर पानी की थाह लेने के लिये बैठनेवाला मल्लाह।

टोआ†[4]—संज्ञा पुं० [हिं० टोह] दे० 'टोह'।

टोइयाँ—संज्ञा स्त्री० [देश० या *हिं० तोतिया] छोटी जाति का सुआ जिसकी चोंच तक सारा भाग बैंगनी होता है। तोती।

टोई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पोर। पर्व। एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक का भाग।

टोक[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] एक बार में मुँह से निकला हुआ शब्द। किसी पद या शब्द का टुकड़ा। उच्चारण किया हुआ अक्षर। जैसे,—एक टोक मुँह से न निकला।

टोक[2]—संज्ञा स्त्री० १. छोटा सा वाक्य जो किसी को कोई काम करते देख उसे टोंकने या पूछताछ करने के लिये कहा जाय। पूछताछ। प्रश्न आदि द्वारा किसी कार्य में बाधा। जैसे,—'क्या करते हो ?', 'कहाँ जाते हो ?' इत्यादि।

यौ०—टोक टाक=पूछताछ। प्रश्न आदि द्वारा बाधा। जैसे,—बड़े जरूरी काम से जा रहे हैं, टोकटाक न करो। रोक टोक = मनाही। मुमानिअत। निषेध।

२. नजर। बुरी दृष्टि का प्रभाव।—(स्त्रि०)।

मुहा०—टोक में आना = नजर लगानेवाले आदमी के सामने पड़ जाना। जैसे—बच्चा टोक में पड़ गया।

टोक(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] टेक। प्रतिज्ञा। उ०—बिप्र सूद्र जोगी तपी सुकवि कहत करि टोक।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११८।

टोकणी(पु)—संज्ञा स्त्री [?] एक प्रकार का हंडा। उ०—कबीर तष्टा टोकणी लीए फिरै सुभाई।—कबीर ग्रं०, पृ० ३५।

टोकनहार—वि० [हिं० टोकना+हार (प्रत्य०)] टोकनेवाला। बाधा पहुँचानेवाला।—उ०—कोई न टोकनहार वफा घर बैठे पावो।—पलटू०, पृ० १४।

टोकना[1]—क्रि० स० [हिं० टोक] १. किसी को कोई काम करते देखकर उसे कुछ कहकर रोकना या पूछताछ करना। जैसे, 'क्या करते हो ?' 'कहाँ जाते हो ?' इत्यादि। बीच में बोल उठना। प्रश्न आदि करके किसी कार्य में बाधा डालना। उ०—गोपिन के यह ध्यान कन्हाई। नेकु न अंतर होय कन्हाई। घाट बाट जमुना तट रोकै। मारग चलत जहाँ तहँ टोकै।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यात्रा के समय यदि कोई रोककर कुछ पूछता है तो यात्री अपने कार्य की सिद्धि के लिये बुरा शकुन समझता है।

२. नजर लगाना। बुरी दृष्टि डालना। हूँसना। ३. एक पहलवान का दूसरे पहलवान से लड़ने के लिये कहना। ४. गलती बतलाना। अशुद्धि की ओर ध्यान दिलाना। ५. आपत्ति करना। एतराज करना।

टोकना[2]—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० टोकनी] १. टोकरा। डला। २

पानी रखने का धातु का एक बड़ा बरतन। एक प्रकार का हंडा।

टोकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोकना] १. टोकरी। डलिया। उ०—ग्राज के दिन छोटी छोटी टोकनियों में ग्रनाज बोया जाता है और देवी के गीत गाए जाते हैं।—शुक्ल० ग्रभि० ग्रं०, पृ० १३८। २. पानी रखने का छोटा हंडा। ३. बटलोई। देगची।

टोकरा—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० टोकरी] बाँस की चिरी हुई फट्टियों, ग्ररहर, भाऊ की पतली टहनियों ग्रादि को गाँछकर बनाया हुआ गोल और गहरा बरतन जिसमें घास, तरकारी, फल ग्रादि रखते हैं। छावड़ा। झला। झाबा। खाँचा।

मुहा०—टोकरे पर हाथ रहना = इज्जत बनी रहना। परदा न खुलना। भरम बना रहना।

टोकरियाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोकरी का ग्रल्पा०] दे० 'टोकरी'।

टोकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोकरा] १. छोटा टोकरा। छोटा झला या छाबड़ा। झाँपी। झपोली। २. देगची। बटलोई।

टोकवा†—संज्ञा पुं० [देश०] उत्पाती लड़का। नटखट लड़का।

टोकसी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] नरियरी। नारियल की ग्राधी खोपड़ी।

टोका¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो उर्द की फसल को नुकसान पहुँचाता है।

टोका²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोंका'।

यौ०—टोकाटोकी = बाधा। टोकटाक।

टोकानाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टिकाना-४'। उ०—इहि विधि चारि टकोर टोकावै।—कबीर सा०, पृ० १५८४।

टोकारा†—संज्ञा पुं० [हिं० टोक] वह संकेत का शब्द जो किसी को कोई बात चिताने या स्मरण दिलाने के लिये कहा जाय। इशारे के लिये मुँह से निकाला हुग्रा शब्द।

टोट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटा'। उ०—रोम रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा, घूमै मति गति ग्रासैं, प्यास की न टोठ है।—घनानंद, पृ० ६६।

टोटकⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] दे० 'टोटका'। उ०—स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक, ग्रौचट उलटि न हेरो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६३।

टोटका—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] १ किसी बाधा को दूर करने या किसी मनोरथ को सिद्ध करने के लिये कोई ऐसा प्रयोग जो किसी ग्रलौकिक या दैवी शक्ति पर विश्वास करके किया जाय। टोना। यंत्र मंत्र। तांत्रिक प्रयोग। लटका। उ०—तन की सुधि रहि जात जाय मन ग्रतै ग्रटका। बिसरी भूख पियास किया सतगुर ने टोटका।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टोटका करने ग्राना = ग्राकर कुछ भी न ठहरना। थोड़ी देर भी न बैठना। तुरत चला जाना। जैसे,—थोड़ा बैठो, क्या टोटका करने ग्राई थी? —(स्त्रि०)। टोटका होना = किसी बात का चटपट हो जाना। किसी बात का ऐसी जल्दी हो जाना कि देखकर ग्राश्चर्य हो।

२. काली हाँड़ी जिसे खेतों में फसल को नजर से बचाने के लिये रखते हैं।

टोटकेहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोटका + हाई (प्रत्य०)] टोटका करनेवाली। टोना या जादू करनेवाली।

टोटल—संज्ञा पुं० [ग्रं०] जोड़। ठीक। मीजान।

मुहा०—टोटल मिलाना = जोड़ ठीक करना।

टोटा¹—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १ बाँस ग्रादि का कटा हुग्रा टुकड़ा। २. मोमबत्ती का जलने से बचा हुग्रा टुकड़ा। ३ कारतूस। ४. एक प्रकार की ग्रातशबाजी।

टोटा²—संज्ञा पुं० [हिं० टूटना, टूटा] १. घाटा। हानि। उ०—लेन न देन दुकान न जागा। टोटा करज ताहि कस लागा।—घट०, पृ० २७५।

क्रि० प्र०—उठाना। –सहना।

मुहा०—टोटा देना या भरना = नुकसान पूरा करना। घाटा पूरा करना। हरजाना देना।

२. कमी। ग्रभाव। जैसे,—यहाँ कागज का क्या टोटा है!

क्रि० प्र०—पड़ना।

टोटिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] त्रुटि। गलती। उ०—कोटि विनायक जो लिखें, मसि से कागर कोटि। ता परि तेरे पीय के गुन नहिं ग्रावै टोटि।—नंद० ग्रं०, पृ० ६१।

टोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] चोंच के ग्राकार का गढ़ा हुग्रा काठ का डेढ़ हाथ लंबा टुकड़ा जो घर की दीवार के बाहर की ग्रोर पंक्ति में बढ़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाया जाता है। टोंटा।

टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रोटकी] १. एक रागिनी जिसके गाने का समय १० दंड से १६ दंड पर्यंत है।

विशेष—इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स स नि ध प म ग ग रे स। रे सा नि स नि ध ध नि स ग रे स नि स नि ध। प ग ग म रे ग रे स रे नि स नि ध स रे ग म प ध ध प। म ग म ग रे स नि स रे रे स नि ध ध ध नि स। हनुमत मत से इसका स्वरग्राम यह है—म प ध नि स रे ग म ग्रथवा स रे ग म प ध नि स। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें शुद्ध मध्यम ग्रौर तीव्र मध्यम के ग्रतिरिक्त बाकी सब स्वर कोमल होते हैं। यह भैरव राग की स्त्री मानी जाती है ग्रौर इसका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—हाथ में वीणा लिए हुए, प्रिय के विरह में गाती हुई, श्वेत वस्त्र धारण किए ग्रौर सुंदर नेत्रोंवाली।

२. चार मात्राओं का एक ताल जिसमें ३ आघात और १ खाली
\+ ०
रहते हैं। इसका तबले का बोल यह है—धिन् धा, गेदिन,
३ ० +
धिनता, गेदिन, धा। अथवा
\+ • ० ० +
धेद्धा के टे, नेद्धा के टे। धा।

टोनहा†—वि० [हिं० टोना+हा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० टोनही] टोना करनेवाला। जादू मारनेवाला।

टोनहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोना+हाई (प्रत्य०)] १. टोना करनेवाली। जादू मारनेवाली। २ टोना करने की क्रिया।

टोनहाया—संज्ञा पुं० [हिं० टोना+हाया (प्रत्य०)] टोना करनेवाला मनुष्य। जादू करनेवाला मनुष्य।

टोना[1]—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १ मंत्र तंत्र का प्रयोग। जादू।
क्रि० प्र०—करना।—चलाना।—मारना।
२ एक प्रकार का गीत जो विवाह में गाया जाता है और जिसमें 'होना' शब्द कई बार आता है।

टोना[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक शिकारी चिड़िया। उ०—जुर्रा बाज बांसे, कुही, बहरी, लगर लोन टोने जरकटी त्यों सचान सानवारे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

टोना[3]†—क्रि० स० [सं० त्वक् (=स्पर्शेद्रिय)+ना (प्रत्य०)] १ हाथ से टटोलना। छूना। छूकर मालूम करना। उ०—साँप अहै अँधरे को हाथी और साँचे है समरे। हाथ की टोई साधि कहत हैं हैं आँखिन के अँधरे।—कबीर श०, भा०१, पृ० ३४। २ अच्छी तरह समझना। अनुभव करना। उ०—जग में आपन कोई नहीं, देखा सब टोई।—संतवाणी०, पृ० ४२।

टोनाहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोना+हाई (प्रत्य०)] दे० 'टोनहा'।

टोप[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना (=ढाँकना)] १. बड़ी टोपी। सिर का बड़ा पहनावा। उ०—सुंदर सीस सवाह करि तोप दियौ सिर टोप।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७४०।
यौ०—कनटोप।
२ सिर की रक्षा के लिये लड़ाई में पहनने की लोहे की टोपी। शिरस्त्राण। खोद। कूँड़। ३. खोल। गिलाफ। ४. अंगुश्ताना।

टोप[2]†—संज्ञा पुं० [अनु० टप टप या सं० स्तोक] बूँद। कतरा।
यौ०—टोप टोप = बूँद बूँद।

टोपन—संज्ञा पुं० [देश०] टोकरा।

टोपरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोकना'।

टोपरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोकना'।

टोपरी[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोपर] दे० 'टोकरी'।

टोपरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोपा] टोप। शिरस्त्राण विशेष। उ०—फुटत यों सु षोपरी। कि जोग पत्र टोपरी।—पृ० रा० ५।७७।

टोपही—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोप] बरतन के साँचे का सबसे ऊपरी भाग जो कटोरे के आकार का होता है।

टोपा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० टोप] बड़ी टोपी।

टोपा[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना] टोकरा।

टोपा[3]†—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कन, हिं० तोपना, तुरपना] टाँका। डोभ। सीवन।
मुहा०—टोपा भरना = तागा भरना। सीना।

टोपी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना (=ढाकना)] १. सिर पर का पहनावा। सिर पर ढाँकने के लिये बना हुआ आच्छादन।
क्रि० प्र०—पहनना।—लगाना।
मुहा०—टोपी उछलना = निरादर होना। बेइज्जती होना। टोपी उछालना = निरादर करना। बेइज्जती करना। टोपी देना = टोपी पहनना। टोपी बदलना = भाई भाई का संबंध जोड़ना। भाईचारा करना। टोपी बदल भाई = वह जिससे टोपी बदलकर भाई का संबंध जोड़ा गया हो।
विशेष—लड़के खेल में जब किसी से मित्रता करते हैं तब अपनी टोपी उसे पहनाते और उसकी टोपी आप पहनते हैं।
२. राजमुकुट। ताज।
मुहा०—टोपी बदलना = राज्य बदलना। दूसरे राजा का राज्य होना।
३. टोपी के आकार की कोई गोल और गहरी वस्तु। कटोरी। ४ टोपी के आकार का धातु का गहरा ढक्कन जिसे बंदूक की निपुल पर चढ़ाकर घोड़ा गिराने से आग लगती है। बंदूक का पड़ाका। ५. वह थैली जो शिकारी जानवर के मुँह पर चढ़ाई रहती है। ६ लिंग का अग्र भाग। सुपारा। ७ मस्तूल का सिरा। -(लश०)।

टोपीदार—वि० [हिं० टोपी+फ़ा० दार] जिसपर टोपी लगी हो। जो टोपी लगने पर काम दे। जैसे, टोपीदार बंदूक, टोपीदार तमंचा।

टोपीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० टोपी] १ वह आदमी जो टोपी पहने हो। २ अहमदशाह और नादिरशाह के सिपाही जो लाल टोपियाँ पहनकर आए थे। ये टोपीवाले कहलाते थे।
३. अँगरेज या यूरोपियन जो हैट पहनते हैं। ४. टोपी बेचनेवाला।

टोभ†—संज्ञा पुं० [हिं० डोभ] टाँका। टोपा। उ०—बैरिनि जीभही टोभ दै रीं मन बैरी को मूँजि के मौन धरौंगी।—देव (शब्द०)।

टोभा—संज्ञा पुं० [हिं० टोभ] दे० 'टोभ'।

टोया†—संज्ञा पुं० [सं० तोय] गड्ढा। -(पंजाबी)।

टोर[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कटारी। कटार। उ०—तुम सों न ओर घोर भुवन के ओर छप काँकरी को घोर काळ मारो है न टोर कै।—हनुमान (शब्द०)।

टोर[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] शोरे की मिट्टी का वह पानी जो साधारण नमक की कलमों को छानकर निकाल लेने पर बच रहता है और जिसे फिर उबाल और छानकर शोरा निकाला जाता है।

टोर(पु)[3]—संज्ञा पुं० [हिं० ठोर] ठोर। मुँह। उ०—लगो टोर निरहट्ट गरदं मिलायं।—पृ० रासो, पृ० १४१।

टोरना†—क्रि० स० [सं० त्रुट] तोड़ना । उ०—(क) रिझकवार दृग देखि कै मनमोहन की ओर । मोहन मारत रीझि जनु डारत है तन टोर । —रसनिधि (शब्द०) । (ख) कोउ कहुँ टोरन देत न माली । मगिहु पर मुरके हम खाली ।—रघुराज (शब्द०) ।

मुहा०—आँख टोरना = लज्जा आदि से दृष्टि हटाना या अलग करना । आँख मोड़ना । दृष्टि छिपाना । उ०—सूर प्रभु के चरित सखियन कहत लोचन टोरि ।—सूर (शब्द०) ।

टोरा¹—संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों का सूत तौलने का तराजू ।

टोरा²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोड़ा' ।

टोरा†³—संज्ञा पुं० [सं० तोक] [स्त्री० टोरी] लड़का । छोकड़ा ।

टोरी†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोड़ी' ।

टोरी²—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'कसरवेटिव' ।

टोरी³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोली' । उ०—दो दो पजे तो कसा लें इधर या उधर देखिए तो मेरी टोरी कैसी बढ़ बढ़के लात देती है ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ३ ।

टोरी⁴—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] अरहर का वह छिलके सहित खड़ा दाना जो बनाई हुई दाल में रह जाय ।

टोरौ†—संज्ञा पुं० [देश०] १. रोड़ा । कंकड़ । ईंट का टुकड़ा । २ लड़का ।

टोल¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका(= गढ़ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा)] १ मडली । समूह । जत्था । झुंड । उ०—(क) अपने अपने टोल कहत ब्रजवासी आई । भाव भक्ति लै चलौ सुदंपति आसी आई ।— सूर (शब्द०) । (ख) दुनिहाई सब टोल में रही जु सौत कहाय । सुतौ ऐंचि तिय आप त्यों करी अदोखिल आय ।—बिहारी (शब्द०) ।

यौ०—टोल मटोल = झुंड के झुंड ।

२. मुहल्ला । बस्ती । टोला । उ०—आजु भोर तमचुर के रोल । गोकुल में आनंद होत है, मगल धुनि महराने टोल । —सूर०, १०।१४ । ३. चटसार । पाठशाला ।

टोल²—संज्ञा पुं० [देश०] सपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । इसके गाने का समय २५ दंड से २८ दड तक है ।

टोल³—संज्ञा पुं० [अं० टाल] सडक का महसूल । मार्ग का कर । चुगी ।

यौ०—टोल कलेक्टर = कर लेनेवाला । महसूल वसूल करनेवाला

टोलना⑤—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टटोलना' । उ०—नौ ताली दे बमर्वां खोलिया । तब इस गढ़ महि एकौ टोलिया ।—प्राण०, पृ० २८ ।

टोला¹—संज्ञा पुं० [सं० तोलिका(= किसी स्तभ या गढ़ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा)] १ आदमियो की बड़ी बस्ती का एक भाग । महल्ला । उ०—घर में छोटे बड़े और टोला परोसियों के उत्साह भय हो गए ।—श्यामा०, पृ० ४७ । २. एक प्रकार का व्यवसाय करनेवाले या एक जातिवाले लोगों की बस्ती । जैसे, चमरटोला ।

टोला²—संज्ञा पुं० [देश०] बड़ी कौड़ी । कौड़ा । टग्घा ।

टोला³—संज्ञा पुं० [देश०] १. गुल्ली पर डंडे की चोट ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. उँगली को मोड़कर पीछे निकली हुई हड्डी से मारने की क्रिया । ठूँग । उ०—जो वैष्णव आवे तो ताके मूँड में टोला देतो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३३१ । ३. पत्थर या ईंट का टुकड़ा । रोड़ा । ४. बेंत आदि के आघात का पड़ा हुआ चिह्न जो कभी लाल और कभी कुछ नीलापन लिए होता है । साँट । नील ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

टोलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका(= घेरा, हाता)] टोली । छोटा महल्ला ।

टोली—संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका(= हाता, बाड़ा)] १ छोटा महल्ला । बस्ती का छोटा भाग । उ०—नैन बचाय चवाइन के नहिं रैन मे ह्वै निकसी यह टोली ।—सेवक (शब्द०) । २ समूह । झुंड । जत्था । मडली । उ०—इस टोली ते सतगुरु राखे ।—प्राण०, ८८ । ३. पत्थर की चौकोर पटिया । सिल । ४. एक जाति का बाँस जो पूर्वीय हिमालय, सिक्किम और आसाम की ओर होता है ।

विशेष—इसकी आकृति कुछ कुछ पेड़ों की होती है और इसमे ऊपर जाकर टहनियाँ निकलती हैं । यह बाँस बहुत सीधा और सुडौल होता है । टोकरे बनाने के लिये यह बाँस सबसे अच्छा समझा जाता है । यह छप्परों में लगता है और चटाइयाँ बनाने के काम में भी आता है । इसे 'नाल' और 'पकोक' भी कहते हैं ।

टोलीघनवा—संज्ञा पुं० [हिं० टोली + धान] धान की तरह की एक घास जिसके नरम पत्ते घोड़े और चौपाए बड़े चाव से खाते हैं । इसके दानों को भी कहीं कहीं गरीब लोग खाते हैं ।

टोवना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टोना' ।

टोवा—संज्ञा पुं० [देश०] गलही पर बैठनेवाला वह माझी जो पानी की गहराई जाँचता है ।

टोह—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोली] १ टटोल । खोज । ढूँढ । तलाश । पता ।

मुहा०—टोह मिलना = पता लगना । टोह मे रहना = तलाश में रहना । ढूँढते रहना । टोह लगाना या लेना = पता लगाना । सुराग लगाना ।

२. खबर । देखभाल ।

मुहा०—टोह रखना = खबर रखना । देखभाल रखना ।

टोहना—क्रि० स० [हिं० टोह] १. ढूँढना । खोजना । २ हाथ लगाना । छूना । टटोलना । उ०—अब तनको धीरज न लगत हाथ अपनो सो मैं बहुतै टोह्यो ।—घनानद, पृ० ३४० ।

टोहाटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोह] १. छानबीन । ढूँढ । तलाश । २. देखभाल ।

टोहाली ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोहना] टोह। देखभाल। उ०—करि टोहाली नाम की बिगड़न कूं कछु नाँहि।—राम० धर्म०, पृ० ७१।

टोहिया—वि० [हिं० टोह] १. टोह लगानेवाला। ढूंढनेवाला। २. जासूस।

टोहियाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टोहना'।

टोही—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोह] तलाश करनेवाला। पता लगानेवाला।

टौंनाⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोना'। उ०—सुनि सुनि मोही राधिका यों ब्रज सिगरी नारि, मनो टौंना कर्यो।—नंद० ग्रं०, पृ० १६८।

टौंस—संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] १ एक छोटी नदी जो अयोध्या के पश्चिम से निकलकर बलिया के पास गंगा में मिलती है।

विशेष—रामायण में लिखी हुई तमसा यही है जहाँ बन को जाते हुए रामचंद्र जी ने अपना डेरा किया था तथा जिससे आगे चलकर गोमती और गंगा पड़ी थीं। बालकांड के आदि में तमसा के तट पर वाल्मीकि के आश्रम का होना लिखा है। अयोध्याकांड में प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए भी रामचंद्र को वाल्मीकि का आश्रम मिला था पर वहाँ तमसा का कोई उल्लेख नहीं है। इससे संभव है कि वाल्मीकि दो स्थानों पर रहे हों।

२. एक नदी जो मैहर के पास कैमोर पहाड़ से निकलकर रीवाँ होती हुई मिर्जापुर और इलाहाबाद के बीच गंगा से मिलती है।

विशेष—इस नदी के तट पर वाल्मीकि का एक आश्रम बतलाया जाता है जो संभवतः उस आश्रम को सूचित करता हो जिसका उल्लेख अयोध्याकांड में है।

३. एक नदी जो जमुनोत्री पहाड़ से निकलकर टेहरी और देहरादून होती हुई जमुना में जा मिली है।

टौंहनाⓤ—क्रि० स० [हिं० टोहना] दे० 'टोहना'। उ०—टौंहन को पतिया लिखी भेजतु पौंहन कौं सबही धन धामें।—सुदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६३।

टौडिकⓤ—वि० [?] पेटू। उ०—टौडिक ह्वै घनआनंद डाटत काटत क्यों नहीं दीनता सौं दिन।—घनानंद, पृ० २५३।

टौनहाल—संज्ञा पुं० [अं० टाउनहाल] दे० 'टाउनहाल'।

टौना टामनⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० टोना + अनु० टामन] जादू टोना। तंत्र मंत्र। उ०—टौना टामन मंत्र यंत्र सब साधन साधे।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १४।

टौरⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० टोल] समूह। झुंड। यूथ। उ०—यह औसर फाग को नीको फब्यो गिरिधारी हिलै कहूँ टौरनि सौं।—घनानंद, पृ० ५६८।

टौरना—क्रि० स० [हिं० टेरना ?] भली बुरी बात की जाँच करना। २ किसी व्यक्ति या बात की थाह लेना। पता लगाना।

टौरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऊँचा टीला। छोटी पहाड़ी। उ०—वैरी अपनी तोपें ऊँची टौरिया पर चढ़ा ले आवेगा और वहाँ से फाटक और बुर्ज को ध्वस्त करने का उपाय करेगा।—झाँसी०, पृ० ३२०।

टौरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टीला। धुस्स। पहाड़ी।

ट्योंमा—संज्ञा पुं० [देश०] झंझट। बखेड़ा।

ट्रंक—संज्ञा पुं० [अं०] लोहे का सफरी संदूक।

ट्रंप—संज्ञा पुं० [अं०] १. ताश के खेल में वह रंग जो और रंगों के बड़े से बड़े पत्ते को काटने के लिये नियत किया जाता है। हुक्म का रंग। तुरुप। २. ट्रंप का खेल।

ट्रक—संज्ञा स्त्री० [अं०] बोझा ढोनेवाली खुली मोटर।

ट्राम—संज्ञा स्त्री० [अं०] बड़े बड़े नगरों में एक प्रकार की लंबी गाड़ी जो लोहे की बिछी हुई पटरी पर चलती है। इसमें पहले घोड़े लगते थे पर अब यह बिजली से चलाई जाती है।

ट्रेडमार्क—संज्ञा पुं० [अं०] वह चिह्न जो व्यापारी लोग पहचानने के लिये अपने यहाँ के बने या भेजे हुए माल पर लगाते हैं। छाप।

ट्रस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] संपत्ति या दान। संपत्ति को इस विचार या विश्वास से दूसरे व्यक्ति के सुपुर्द करना कि वे संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापढ़ी या दानपत्र के अनुसार करेंगे।

ट्रस्टी—संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जिसके सुपुर्द कोई संपत्ति इस विचार और विश्वास से की गई हो कि वह उस संपत्ति का प्रबंध या उपभोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापढ़ी या दानपत्र के अनुसार करेगा। अभिभावक।

ट्रांसपोर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १ माल असबाब एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना। बारबरदारी। २. वह जहाज जिसपर सैनिक या युद्ध का सामान आदि एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। ३. सवारी। गाड़ी।

ट्रांसलेटर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो एक भाषा का दूसरी भाषा में उल्था करता है। भाषांतरकार। अनुवादक। जैसे, गवर्नमेंट ट्रांसलेटर।

ट्रांसलेशन—संज्ञा पुं० [अं०] एक भाषा में प्रदर्शित भावों या विचारों को दूसरी भाषा के शब्दों में प्रगट करना। एक भाषा को दूसरी में उल्था करना। भाषांतर। अनुवाद। उल्था। तर्जुमा।

ट्रूप—संज्ञा स्त्री० [अं० ट्रूप] १ पलटन। सैन्यदल। जैसे, ब्रिटिश ट्रूप। २ घुड़सवारों का एक दल जिसमें एक कप्तान की अधीनता में प्रायः साठ जवान होते हैं।

ट्रूस—संज्ञा स्त्री० [अं०] दो लड़नेवाली सेनाओं के नायकों की स्वीकृति से लड़ाई का स्थगित होना। कुछ काल के लिये लड़ाई बंद होना। क्षणिक संधि।

ट्रेक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का मशीनी हल।

ट्रेजरर—संज्ञा पुं० [अं० ट्रेजरर] खजानची। कोषाध्यक्ष।

ट्रेडिल—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र।

ट्रेडिल मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र जिसे एक आदमी पैर या बिजली आदि से चलाता तथा हाथ से उसमें कागज रखता जाता है। स्याही इसमें आपसे आप लग जाती है। इसमें (हाफटोन ब्लाक) फोटो की तसवीरें बहुत साफ छपती हैं और कार्य बहुत शीघ्रता से होता है।

ट्रेन—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. रेलगाडी मे लगी हुई गाडियों की पंक्ति। २ रेलगाड़ी।

मुहा०—ट्रेन छूटना = रेलगाड़ी का स्टेशन पर से चल देना।

ट्रैजेडियन—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह अभिनेता जो विषाद, शोक और गंभीर भावव्यंजक अभिनय करता हो। २. वियोगांत नाटक लिखनेवाला। वियोगांत नाटकलेखक।

ट्रैजेडी—संज्ञा स्त्री० [अं०] नाटक का एक भेद जिसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हो, मनोविकारों का खूब संघर्ष और द्वंद्व दिखाया गया हो और जिसका अंत शोक जनक या दुःखमय हो। वह नाटक जिसका अंत करुणोत्पादक और विषादमय हो। दु.खांत नाटक। वियोगांत नाटक।

ठ

ठ—व्यंजनों मे बारहवाँ व्यंजन जिसके उच्चारण का स्थान भारत के प्राचीन वैयाकरणों ने मूर्धा कहा है। इसका उच्चारण करने में बहुधा जीभ का अग्रभाग और कभी कभी मध्य भाग तालु के किसी हिस्से में लगाना पड़ता है। यह अघोष महाप्राण वर्ण है।

ठंकना(पु)—क्रि० स० [हिं० ढाँकना, ढंकना] छुपाना। ढाँकना। उ०—(क) मावडिया मुख ठंकिया, वैसे फाड़े बाक।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६। (ख) गोरख के गुरु महा मछींद्रा तिन्हें पकरि सिर ठंका।—सं० दरिया, पृ० १३१।

ठंखा—संज्ञा पुं० [देश०] वृक्ष। पेड पौधा। उ०—बरनि बान सब ओपहँ बेधे रन बन ठंख।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १८६।

ठंठ—वि० [सं० स्थाणु] १. जिसकी डाल और पत्तियाँ सूखकर या कटकर गिर गई हो। ठूँठा। सूखा (पेड़)। २ दूध न देने वाली (गाय)। ३. धनहीन। निर्धन।

ठंठनाना[1]—क्रि० अ० [ठंठ से नाम०] ठंठ शब्द की ध्वनि होना।

ठंठनाना[2]—क्रि० स० ठंठ की ध्वनि करना।

ठंठसा—संज्ञा स्त्री० [सं० डिण्डिश] ढेंढस। ढेंढसी।

ठंठार(पु)—वि० [हिं० ठंठ+आर (प्रत्य०)] खाली। रीता। छूँछा। उ०—जसु कछु दीजे धरन कहँ आपन लेहु सँभार। तस सिंगार सब लीन्हेंसि कीन्हेसि मोंहि ठंठार।—जायसी (शब्द०)।

ठंठी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठंठ+ई (प्रत्य०)] ज्वार, मूँग आदि का वह अन्न जो दाना पीटने के बाद बाल मे लगा रहता है।

ठंठी[2]—वि० स्त्री० (बूढ़ी गाय या भैंस) जिसके बच्चा और दूध देने की संभावना न हो। जैसे, ठंठी गाय।

ठंठोकना—क्रि० स० [हिं०] ठोकना। पीटना। उ०—तन कूँ जमरो लूटसी लुटै धन कूँ लोक। नान्हौं करि करि वालसी हरिया हाड़ ठंठोक।—राम० धर्म०, पृ० ७०।

ठंड—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठढ'।

ठंडई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठढाई।

ठंडक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठढक'।

ठंडा—वि० [हिं०] दे० 'ठंढा'।

ठंडाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठढाई'।

ठंढ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठंढा] शीत। सरदी। जाड़ा।

मुहा०—ठढ पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना। ठढ लगना = शीत का अनुभव होना।

ठंढई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठढाई'।

ठंढक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठंढा+क (प्रत्य०)] १. शीत। सरदी। उष्णता या गरमी का ऐसा अभाव जिसका विशेष रूप से अनुभव हो।

मुहा०—ठढक पडना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना। ठंढक लगना = शीत का अनुभव होना। शीत का प्रभाव पड़ना।

२ ताप या जलन की कमी। ताप की शांति। तरी।

क्रि० प्र०—आना।

३ प्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति से उत्पन्न संतोष। तृप्ति। प्रसन्नता। तसल्ली।

क्रि० प्र०—पड़ना।

४. किसी उपद्रव या फैले हुए रोग आदि की शांति। किसी हलचल या फैली हुई बीमारी आदि की कमी या अभाव। जैसे,—इधर शहर में हैजे का बड़ा जोर था पर अब ठढक पड़ गई है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ठंढा—वि० [सं० स्तब्ध, प्रा० तद्ध, थड्ड, ठड्ड] [वि० स्त्री० ठंढी] १. जिसमें उष्णता या गरमी का इतना अभाव हो कि उसका अनुभव शरीर को विशेष रूप से हो। सर्द। शीतल। गरम का उलटा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ठंढे ठंढे = ठढ के वक्त मे। धूप निकलने के पहले। तड़के। सवेरे। उ०—रात भर सोओ, सवेरे उठकर ठंढे ठंढे चले जाना।

यौ०—ठंढी आग = (१) हिम। बरफ। (२) पाला। तुषार। ठंढी कड़ाही, ठंढी कड़ाई = हलवाइयों और बनियों में सब पकवान बना चुकने के पीछे हलुआ बनाकर बाँटने की रीति। ठंढी मार = भीतरी मार। ऐसी मार जिसमें ऊपर देखने में कोई टूटा फूटा न हो पर भीतर बहुत चोट आई

हो। गुप्ती मार। (जैसे, लात घुसो आदि की)। ठंढी मिट्टी = (१) ऐसा शरीर जो जल्दी न बढ़े। ऐसी देह जिसमें जवानी के चिह्न जल्दी न मालूम हों। (२) ऐसा शरीर जिसमे कामोद्दीपन न हो। ठंढी साँस = ऐसी साँस जो दुःख या शोक के आवेग के कारण बहुत खींचकर ली जाती है। दुःख से भरी साँस। शोकोच्छ्वास। आह।

मुहा०—ठढी साँस लेना या भरना = दु.ख की साँस लेना।

२. जो जलता हुआ या दहकता हुआ न हो। बुझा हुआ। बुता हुआ। जैसे, ठढा दीया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३. जो उद्दीप्त न हो। जो उद्विग्न न हो। जो भड़का न हो। उद्गाररहित। जिसमे आवेश न हो। शात। जैसे, क्रोध ठढा होना, जोश ठढा होना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग आवेश और आवेश धारण करनेवाले व्यक्ति दोनों के लिये होता है। जैसे, क्रोध ठढा पड़ना, उत्साह ठढा पड़ना, क्रुद्ध मनुष्य का ठढा पड़ना, उत्साह में आए हुए मनुष्य का ठढा पडना, आदि।

क्रि० प्र०—करना।—पडना।—होना।

मुहा०—ठढा करना = (१) क्रोध शात करना। (२) ढाढ़स देकर शोक कम करना। ढाढ़स बँधाना। तसल्ली देना। माता या शीतला ठढी करना = शीतला या चेचक के अच्छे होने पर शीतला की अतिम पूजा करना।

४ जिसे कामोद्दीपन न होता हो। नामर्द। नपुंसक। ५ जो उद्वेगशील या चचल न हो। जिसे जल्दी क्रोध आदि न आता हो। धीर। शात। गभीर। ६ जिसमे उत्साह या उमग न हो। जिसमें तेजी या फुरती न हो। बिना जोश का। धीमा। सुस्त। मद। उदासीन।

यौ०—ठढी गरमी = (१) ऊपर की प्रीति। बनावटी स्नेह का आवेश। (२) बातों का जोश। उ०—बस बस यह ठढी गरमियाँ हमे न दिखाया करो।—सैर०, पृ० १४। ठढा युद्ध, ठढी लड़ाई = आधुनिक राजनीति में दाँव पेंच की लड़ाई। इसे शीत युद्ध भी कहते हैं। यह अंग्रेजी शब्द कोल्ड वार का अनुवाद है।

७. जो हाथ पैर न हिलाए। जो इच्छा के प्रतिकूल कोई बात होते देखकर कुछ न बोले। चुपचाप रहनेवाला। विरोध न करनेवाला। जैसे,—वे बहुत इधर उधर करते थे पर जब खरी खरी सुनाई तब ठंढे पड़ गए।

क्रि० प्र०—पड़ना।—रहना।

मुहा०—ठढे ठढे = चुपचाप। बिना चूँ किए। बिना विरोध या प्रतिवाद किए।

८ जो प्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति से संतुष्ट हो। तृप्त। प्रसन्न। खुश। जैसे,—लो, आज वह चला जायगा, अब तो ठढे हुए।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ठढे ठढे = हँसी खुशी से। कुशल आनद से। ठढे ठढे घर आना = बहुत तृप्त होकर लौटना (अर्थात् असतुष्ट होकर या निराश होकर लौटना (व्यग्य)। ठढे पेटों = हसी खुशी से। प्रसन्नता से। बिना मनमोटाव या लड़ाई झगड़े के। सीधे से। ठढा रखना = आराम चैन से रखना। किसी बात की तकलीफ न होने देना। सतुष्ट रखना। ठढे रहो = प्रसन्न रहो। खुश रहो। (स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त एव आशीर्वादात्मक)।

९. निश्चेष्ट। जड। मृत। मरा हुआ।

मुहा०—ठढा होना = मर जाना। ताजिया ठढा करना = ताजिया दफन करना। (मूर्ति या पूजा की सामग्री आदि को) ठढा करना = जल में विसर्जन करना। डुबाना। (किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को) ठढा करना = (१) जल मे विसर्जन करना। डुबाना। (२) किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को फेंकना या तोड़ना फोड़ना। जैसे, चूड़ियाँ ठढी करना।

१०. जिसमें चहल पहल न हो। जो गुलजार न हो। बेरौनक।

मुहा०—बाजार ठढा होना = बाजार का चलता न होना। बाजार मे लेनदेन खूब न होना।

ठढाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० ठढा + ई (प्रत्य०)] १ वह दवा या मसाला जिससे शरीर की गरमी शात होती है और ठढक आती है।

विशेष—सौंफ, इलायची, कासनी, ककड़ी, कद्दू, खरबूजे आदि के बीज, गुलाब की पँखडी, गोल मिर्च आदि को एक में पीसकर प्राय ठढाई बनाई जाती है।

२. ऊपर लिखे मसालों से युक्त भाँग या शर्बत।

क्रि० प्र०—पीना।—लेना।

ठढा मुलम्मा—सज्ञा पुं० [हिं० ठढा + अ० मुलम्मा] बिना आँच के सोना चाँदी चढ़ाने की रीति। सोने चाँदी का पानी जो बैटरी के द्वारा या तेजाब की लाग से चढ़ाया जाता है।

ठढी[1]—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'ठढा' और उसके मुहा०।

ठढी[2]—सज्ञा स्त्री० शीतला। चेचक (स्त्रि०)।

मुहा०—ठढी लगना = शीतला के दानो का मुरझाना। चेचक का जोर कम होना। ठढी निकलना = शीतला के दाने शरीर पर होना। शीतला या चेचक का रोग होना।

ठंभनां—सज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन, प्रा० ठमन] रुकने की स्थिति। रुकावट। उ०—थिन यो ठभन जग माही, एक हरि बिन दूजा नाही।—राम० धर्म०, पृ० २५३।

ठसरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तंत्रवाद्य (को०)।

ठः—सज्ञा पुं० [सं० अनुध्व०] एक ध्वनि जो किसी धातुपात्र के कड़ी जमीन या सीढ़ियो पर गिरने से अत मे होती है (को०)।

ठ—सज्ञा पुं० [सं०] १ शिव। २. महाध्वनि। ३ चद्रमडल या सूर्यमडल। ४. मंडल। घेरा। ५ शून्य। ६ गोचर। इद्रियग्राह्य वस्तु।

ठई—सज्ञा स्त्री० [हिं० ठह > ठही] स्थिति। थाह। अवस्था।

ठउरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठौर'। उ०—उहाँ सबै सुखा निधि प्रति बिलास है अनंत यानसम ठउरा।—प्राण०, पृ० ६५।

ठऊवाँ†(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठाँव'। उ०—जंगम जोग विचारै जहूवाँ, जीव सीव करि एकै ठऊवाँ।—कबीर ग्रं०, पृ० २२३।

ठक¹—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० ठक] एक वस्तु पर दूसरी वस्तु को जोर से मारने का शब्द। ठोंकने का शब्द।

ठक²—वि० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठड्ढ] स्तब्ध। भौंचक्का। आश्चर्य या घबराहट से निश्चेष्ट। सन्नाटे में आया हुआ।

मुहा०—ठक से होना = स्तब्ध होना। आश्चर्य में होना। उ०—उनकी सौम्य मूर्ति पर लोचन ठक से बँध जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—रह जाना।—हो जाना।

ठक³—संज्ञा पुं० [देश०] चंडूबाजों की सलाई या सूजा जिसमें अफीम का किवाम लगाकर सेंकते हैं।

ठक⁴‡—संज्ञा पुं० [हिं० ठग] दे० 'ठग'। जैसे, ठकमूरी (= ठगमूरी)। उ०—ठाकुर ठक भए गेल चोरें चप्परि घर लिज्झिम।—कीर्ति०, पृ० १६।

ठकठक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० ठक्ठक्] १ लगातार होनेवाली ठक्ठक् की ध्वनि या आवाज। २. झगड़ा। बखेड़ा। टंटा। झंझट। उ०—ठकठक जन्म मरन का मेटै जम के हाथ न आवै।—कबीर० श०, पृ० २६। (ख) उठि ठकठक एती कहा, पावस के अभिसार। जानि परैगी देखि यों दामिनि घन अँधियार।—बिहारी (शब्द०)।

ठकठकाना¹—क्रि० स० [अनुध्व० ठकठक] १. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु पटककर शब्द करना। खटखटाना। २. ठोंकना। पीटना।

ठकठकाना‡²—क्रि० अ० स्तब्ध होना। ठक से होना।

ठकठकिया—वि० [अनुध्व० ठकठक + हिं० इया (प्रत्य०)] १. हुज्जती। थोड़ी सी बात के लिये बहुत दलील करनेवाला। तकरार करनेवाला। बखेड़िया।

ठकठौआ—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १ एक प्रकार की करताल। २. करताल बजाकर भीख माँगनेवाला। ३. एक प्रकार की छोटी नाव।

ठकमूरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] स्तब्ध या निश्चेष्ट करनेवाली बूटी। दे० 'ठगमूरी'। उ०—जा दिन का डर मानता सोइ वेला आई। भक्ति न कीन्ही राम की ठकमूरी खाई।—मलूक०, बानी, पृ० ११।

ठका(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठक (= आघात या धक्का)] धक्का। चोट। आघात। उ०—करै मार पग ठका देत जावै।—प० रासो, पृ० १४४।

ठकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'ठ' अक्षर।

ठकुआ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठोकवा'।

ठकुरई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठकुराई'।

ठकुरसुहाती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर (= मालिक) + सुहाना] ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न करने के लिये कही जाय। लल्लोचप्पो। खुशामद। तोषमोद। उ०—हमहु कहब अब ठकुरसुहाती।—तुलसी (शब्द०)।

ठकुर सोहाती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठकुरसुहाती'। उ०—ठकुर-सोहाती कर रहे हो कि एकाध पत्तल मिल जाय।—मान०, भा० ५, पृ० ३०।

ठकुराइत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठकुरायत'। उ०—जो कही क्यों गई दासी हमारी। तजि तजि गृह ठकुराइत भारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२१।

ठकुराइति, ठकुराइती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठकुरायत + ई (प्रत्य०)] स्वामित्व। प्रभुत्व। आधिपत्य। उ०—रंग उमा सी दासी जाकी। ठकुराइति का कहिये ताकी।—नंद० ग्रं०, पृ० १३०।

ठकुराइन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] १. ठाकुर की स्त्री। स्वामिनी। मालकिन। उ०—नहिं दासी ठकुराइन कोई। जहँ देखो तहँ ब्रह्म है सोई।—सूर(शब्द०)। २. क्षत्रिय की स्त्री। क्षत्राणी। ३ नाइन। नाउन। नाई की स्त्री। उ०—देव स्वरूप की रासि निहारति पाँय ते सीस लौं सीस ते पाइन। ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी सी हँसे कर टोढ़ी दिए ठकुराइन।—देव (शब्द०)।

ठकुराइस†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठकुरायत'।

ठकुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] १ आधिपत्य। प्रभुत्व। सरदारी। प्रधानता। उ०—अब तुलसी गिरधर बिनु गोकुल को करिहै ठकुराई।—तुलसी (शब्द०)। २. ठाकुर का अधिकार। स्वामी होने के अधिकार का उपयोग। जैसे,—खेल में कैसी ठकुराई? उ०—न्याव न किय कीनी ठकुराई। बिना किए लिखि दीनि बुराई।—जायसी (शब्द०)। ३ वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो। राज्य। रियासत। ४ उच्चता। बड़प्पन। महत्व। बड़ाई। उ०—हरि के जन की अति ठकुराई। महाराज ऋषिराज राजहूँ देखत रहे लजाई।—सूर (शब्द०)।

ठकुरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] १. ठाकुर या सरदार की स्त्री। जमींदार की स्त्री। २ रानी। उ०—निज मंदिर लै गई रुक्मिणी पहुनाई विधि ठानी। सूरदास प्रभु तँह पग धारे जहँ दोऊ ठकुरानी।—सूर (शब्द०)। ३. मालकिन। स्वामिनी। अधीश्वरी। ४ क्षत्रिय की स्त्री। क्षत्राणी।

ठकुरानी तीज†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठकुरानी + तीज] श्रावण शुक्ल तृतीया को मनाया जानेवाला एक व्रत। हरियाली तीज।

ठकुराय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर] क्षत्रियों का एक भेद। उ०—गहरवार परहार सकुरे। कलहंस और ठकुराय जूरे।—जायसी (शब्द०)।

ठकुरायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] आधिपत्य। स्वामित्व। प्रभुत्व। उ०—ठकुरायत गिरधर की साँची। कौरव जीति जुधिष्ठिर राजा कीरति तिहूँ लोक में माँची।—सूर०, १।१७। २ वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो। रियासत।

ठकुराल†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर + भाल (प्रत्य०)] दे० 'ठाकुर'। उ०—चल्या ठकुराल्या न लावीय वार। भोज तणी मिलिया असवार।—बी० रासो०, पृ० १६।

ठकुरास—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ठकुराइस। अधिकारक्षेत्र। रियासत। उ०—तुम्हें मिली है मानव हिय की यह चपल ठकुरास। पर, हमको तो मिली अचंचल मस्ती की जागीर।—अपलक, पृ० ७३।

ठकोरा—संज्ञा पुं० [हिं० ठक + ओरा (प्रत्य०)] टकोर। आघात। चोट। उ०—फजर के पहर गजर ठकोरा बगे।—रघु० रू०, पृ० २३८।

ठकोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकना, ठेकना + ओरी (प्रत्य०)] १. सहारा लेने की लकड़ी। उ०—(क) भक्त भरोसे राम के निधरक ऊँची दीठ। तिनको करम न लागई राम ठकोरी पीठ।—कबीर (शब्द०)। (ख) देखादेखी पकरिया गई छिनक मे छूटि। कोई बिरला जन ठाहरे जासु ठकोरी पूठि।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—यह लकड़ी अड्डे के आकार की होती है। पहाड़ी लोग जब बोझ लेकर चलते चलते थक जाते हैं तब इस लकड़ी को पीठ या कमर से भिड़ाकर उसी के बल पर थोड़ी देर खड़े हो जाते हैं। साधु लोग भी इसी प्रकार की लकड़ी सहारा लेने के लिये रखते हैं और कभी कभी इसी के सहारे बैठते हैं। इसे वे वैरागिन या जोगिनी भी कहते हैं।

ठक्क—संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी [को०]।

ठक्कर¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टक्कर'।

ठक्कर²—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] गुजरातियों की एक जातीय उपाधि या अल्ल।

ठक्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। ठाकुर। पूज्य प्रतिमा। २ मिथिला के ब्राह्मणों की एक उपाधि।

ठग—संज्ञा पुं० [सं० स्थग] [स्त्री० ठगनी, ठगिन ठगिनी] १. धोखा देकर लोगों का धन हरण करनेवाला व्यक्ति। वह लुटेरा जो छल और धूर्तता से माल लूटता है। भुलावा देकर लोगों का माल छीननेवाला। उ०—जग हटवारा स्वाद ठग, माया वेश्या लाय। राम नाम गाढ़ा गहो जनि कहुँ जाहु ठगाय।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—डाकू और ठग में यह अंतर है कि डाकू प्राय जबरदस्ती बल दिखाकर माल छीनते हैं पर ठग अनेक प्रकार की धूर्तता करते हैं। भारत में इनका एक अलग सप्रदाय सा हो गया था।

मुहा०—ठग लगना = ठगों का आक्रमण करना या पीछे पड़ना। जैसे,—उस रास्ते में बहुत ठग लगते हैं। ठग के लाडू = दे० 'ठगलाड़ू'।

यौ०—ठगमूरी। ठगमोदक। ठगलाड़ू। ठगविद्या।

२ छली। धूर्त। धोखेबाज। वचक। प्रतारक।

ठगाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + ई (प्रत्य०)] १ ठगपना। ठग का काम। २. धोखा। छल। फरेब।

ठगण—संज्ञा पुं० [सं०] मात्रिक छदों के गणों में से एक। यह पाँच मात्राओं का होता है और इसके ८ उपभेद हैं।

ठगना¹—क्रि० स० [हिं० ठग + ना (प्रत्य०)] धोखा देकर माल लूटना। छल और धूर्तता से धन हरण करना। २. धोखा देना। छल करना। धूर्तता करना। भुलावे में डालना।

मुहा०—ठगा सा, ठगी सी = धोखा खाया हुआ। भूला हुआ। चकित। भौंचक्का। आश्चर्य से स्तब्ध। दग। उ०—(क) करत कछु नाहीं आजु बनी। हरि आए हौं रही ठगी सी जैसे चित्र धनी।—सूर (शब्द०)। (ख) चित्र में काढ़ी सी ठाढ़ी ठगी सी रही कछु देख्यो सुन्यो न सुहात है।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

३. उचित से अधिक मूल्य लेना। वाजिब से बहुत ज्यादा दाम लेना। सौदा बेचने में बेईमानी करना। जैसे,—यह दूकानदार लोगों को बहुत ठगता है।

संयो० क्रि०—लेना।

ठगना²—क्रि० अ० १. ठगा जाना। धोखा खाकर लुटना। २. धोखे में आना। चकित होना। आश्चर्य से स्तब्ध होना। ठक रह जाना। दंग रहना। उ०—(क) तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बिनु देखे बिन ही सुने ठगत न कोउ बाँच्यो।—सूर (शब्द०)।

ठगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] १ ठग की स्त्री। २. ठगनेवाली स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। छलनेवाली स्त्री। ४. कुटनी।

ठगपन—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + पन (प्रत्य०)] दे० ठगपना'।

ठगपना—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + पन + आ (प्रत्य०)] १ ठगने का काम या भाव। २. धूर्तता। छल। चालाकी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठगमूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + मूरि] वह नशीली जड़ी बूटी जिसे ठग लोग पथिकों को बेहोश करके उनका धन लूटने के लिये खिलाते थे।

मुहा०—ठगमूरी खाना = मतवाला होना। होशहवाश में न रहना। उ०—(क) काहू तोहि ठगोरी लाई। बूझति सखी सुनति नहिं नेकहु तुही किधौं ठगमूरी खाई।—सूर (शब्द०)। (ख) ज्यों ठगमूरी खाइके मुखहि न बोलै बैन। टुगर टुगर देख्या करै सुंदर बिरहा ऐन।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६८३।

ठगमूरी²—वि० स्त्री० ठगमूरी से प्रभावित। उ०—टक टक ताकि रही ठगमूरी आपा आप बिसारी हो।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८४।

ठगमोदक—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + सं० मोदक] दे० 'ठगलाड़ू'। उ०—चलत चितै मुसकाय कै मृदु बचन सुनाए। तेही ठगमोदक भए, मन धीर न, हरि तन छूछो छिटकाए।—सूर (शब्द०)।

ठगलाड़ू—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + लाडू (= लड्डू)] ठगों का लड्डू जिसमें नशीली या बेहोशी करनेवाली चीज मिली रहती थी।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि ठग लोग पथिकों से रास्ते में मिलकर उन्हें किसी बहाने से अपना लड्डू खिला देते थे जिसमें विष

या कोई नशीली चीज मिली रहती थी। जब लड्डू खाकर पथिक मूर्छित या बेहोश हो जाते थे तब वे उनके पास जो कुछ होता था सब ले लेते थे।

मुहा०—ठगलाड़ू खाना = मतवाला होना। होशहवास में न रहना। बेसुध होना। उ०—सूर कहा ठगलाड़ू खायो। इत उत फिरत मोह को मातो कबहुँ न सुधि करि हरि चित लायो।—सूर (शब्द०)। ठगलाड़ू देना = बेसुध करनेवाली वस्तु देना। उ०—मनहु दीन ठगलाड़ू देख आय तस मीच।—जायसी (शब्द०)।

ठगलीला—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + लीला] ठगों का मायाजाल। वंचना। धोखाधड़ी। उ०—छूटेगी जग की ठगलीला होंगी आँखें अंत शीला।—वेला, पृ० ७६।

ठगवा(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठग'। उ०—कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो।—कबीर० श०, भा० १, पृ० २।

ठगवाना—क्रि० स० [हिं० ठगना का प्रे० रूप] दूसरे से किसी को धोखा दिलवाना।

ठगविद्या—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + सं० विद्या] ठगों की कला। धूर्तता। धोखेबाजी। छल। वंचकता।

ठगहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + हाई (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगहारी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + हारी (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगाइनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ठगनेवाली स्त्री। ठगिनी। उ०—बंदि परे नर काल के बुद्धि ठगाइनि जानि।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० ८८।

ठगाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + आई (प्रत्य०)] दे० 'ठगपना'।

ठगाठगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] धोखेबाजी। वंचकता। धोखाधड़ी।

ठगाना¹—क्रि० अ० [हिं० ठगना] १ ठगा जाना। धोखे में आकर हानि सहना। २ किसी वस्तु का अधिक मूल्य दे देना। दूकानदार की बातों में आकर ज्यादा दाम दे देना। जैसे,—इस सौदे में तुम ठगा गए। ३. (किसी पर) आसक्त होना। मुग्ध होना।

संयो० क्रि०—जाना।

ठगाही¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठगाई', 'ठगहाई'। उ०—नाहक नर सूली धरि दीन्हों। दिन घन माँहि ठगाही कीन्हों।—विश्राम (शब्द०)।

ठगिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + इन (प्रत्य०)] १ धोखा देकर लूटनेवाली स्त्री। लुटेरिन। २ ठग की स्त्री। ३ धूर्त स्त्री। चालबाज औरत।

ठगिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + इनी (प्रत्य०)] १ लुटेरिन। धोखा देकर लूटनेवाली स्त्री। उ०—ठगति फिरति ठगिनी तुम नारी। जोइ आवति सोइ सोइ कहि डारति जाति जनावति दै दै गारी।—सूर (शब्द०)। २. ठग की स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। चालबाज स्त्री।

ठगिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + इया (प्रत्य०)] दे० 'ठग'। उ०—जुरे सिद्ध साधक ठगिया से बड़ो जाल फैलायो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४६।

ठगिया²—वि० ठगनेवाला। छलनेवाला। उ०—ठगिया तेरे नैन ये छल बल भरे कितेव।—स० सप्तक, पृ० १६३।

ठगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + ई (प्रत्य०)] १. ठग का काम। धोखा देकर माल लूटने का काम। २. ठगने का भाव। ३. धूर्तता। धोखेबाजी। चालबाजी।

ठगोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + बौरी] ठगों की सी माया। मोहित करने का प्रयोग। मोहिनी। सुधबुध भुलानेवाली शक्ति। टोना। जादू। उ०—(क) जानहु लाई काहु ठगोरी। खन पुकार खन बाँधे बोरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) दसन चमक अधरन अरुनाई देखत परी ठगोरी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।—लगाना।

ठगौरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठगोरी] दे० 'ठगोरी'। उ०—रूप ठगौरी डार मन मोहन लेगो साथ। तब तें साँसें भरत हैं नारी नारी हाथ।—स० सप्तक, पृ० १८५।

ठट—संज्ञा पुं० [सं० स्थाता (= जो खड़ा हो), या देश०] १. एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह। एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पंक्ति।

मुहा०—ठट के ठट = झुंड के झुंड। बहुत से। उ०—रात का वक्त था मगर ठट के ठट लगे हुए थे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १०४। ठट लगना = (१) भीड़ जमना। भीड़ खड़ी होना। (२) ढेर लगना। राशि इकट्ठी होना।

२. समूह। झुंड। पंक्ति। उ०—भ्रमर भ्रमर हरखत बरखत फूल सनेह सिथिल गोप गाइन के ठट हैं।—तुलसी (शब्द०)। ३ बनाव। रचना। सजावट। उ०—परखत प्रीति प्रतीति पैज पन रहे काज ठट ठानि हैं।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ठटवारी = सजावटवाली। बनाव वाली।

ठटकीला—वि० [हिं० ठाट] [वि० स्त्री० ठटकीली] सजा हुआ। ठाटदार। सजीला। तड़क भड़कवाला। उ०—आछी चरननि कंचन मुकुट ठटकील बनमाल कर टेके द्रुमडार टेढ़े ठाढ़े नदलाल छबि छाई घट घट।—सूर० (शब्द०)।

ठटना¹—क्रि० स० [सं० स्थाता (= जो खड़ा या ठहरा हो)। हिं० ठाट, ठाढ़] १. ठहराना। निश्चित करना। स्थिर करना। उ०—होत सु जो रघुनाथ ठटी। पचि पचि रहे सिद्ध, साधक, मुनि तऊ बढ़ी न घटी।—सूर (शब्द०)। २. सजाना। सुसज्जित करना। तैयार करना। उ०—(क) नृप बन्यो विकट रन ठाट ठटि मारु मारु धरु मारु रटि।—गोपाल (शब्द०)। (ख) कौक करि जलपान मुरेठा ठटि ठटि बान्हत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४०।

मुहा०—ठटकर बातें करना = बना बनाकर बातें करना। एक एक शब्द पर जोर देते हुए बातें करना।

३. (राग) छेड़ना। आरंभ करना। उ०—नव निकुंज गृह नवल आगे नवल बीना मधि राग गौरी ठटी।—हरिदास (शब्द०)।

ठटना[2]—क्रि० अ० १ खड़ा रहना। अड़ना। डटना। उ०—खैंचत स्वाद स्वान पातर ज्यों चातक रटत ठटी।—सूर (शब्द०)। २ विरोध में जमना। विरोध में डटा रहना। ३ सजना। सुसज्जित होना। तैयार होना। उ०—अबही आइ चढ़ै दल ठटा। देखत जैस गगन घन घटा।—जायसी (शब्द०)। ४ एकत्र होना। जमाव होना। पुंजीभूत होना। उ०—छत्तीस राग रागनि रसनि तत ताल कठन ठटहिं।—पृ० रा०, ८१२। ५. स्थित होना। धरना। करना। साधना। उ०—कोई नांव रटै कोई ध्यान ठटै कोई खोजत ही थक जावता है।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० २९८।

ठटनि, ठटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठटना] बनाव। रचना। सजावट। उ०—नाभि भँवर त्रिवली तरंग गति पुलिन तुलिन ठटनी।—सूर (शब्द०)।

ठटया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली जानवर।

ठटरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाठ] १. हड्डियों का ढाँचा। अस्थिपंजर।

मुहा०—ठटरी होना = दुबला होना। कृशांग होना।

२ घास भूसा आदि बाँधने का जाल। खरिया। खड़िया। ३. किसी वस्तु का ढाँचा। ४. मुरदा उठाने की रथी। अरथी।

ठट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं० ठाठ] बनाव। रचना। सजावट।

ठट्ट—संज्ञा पुं० [सं० तट, हिं० टट्टी या सं० स्थाता] १. एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह। एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पंक्ति। २. समूह। झुंड। समुदाय। पंक्ति। उ०—(क) इम रहहि गणंता विरुद भणंता, भट्टा ठट्टा पेक्खीआ।—कीर्ति०, पृ० ४८। (ख) देखि न जाय कपिन के ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) पियत भट्ट के ठट्ट अरु गुजरातिन के वृंद।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

ठट्टना—क्रि० अ० [हिं० गठना] आयोजन करना। ठाटना। उ०—सु रोमराइ राजई उपंम कव्वि साजई। सुमेर शृंग कंद कै, चढ़ै पपील चंद कै। उभय कव्वि ठट्टई यवक्क मुट्ठि चट्टई। -पृ० रा०, २५। १३९।

ठट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाठ] ठटरी। पंजर। हड्डी का ढाँचा। उ०—उर अंतर धुँधुआइ जरै जस काँच की भट्टी। रक्त मांस जरि जाय रहै पाँजर की ठट्ठी।—गिरधर (शब्द०)।

ठट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं० ठट्ट] दे० 'ठट' और 'ठट्ट'।

ठट्ठई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठट्ठा] ठट्ठा। दिल्लगी। हँसी।

ठट्ठा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अट्टहास या सं० टट्टरी (= उपहास)] हँसी। उपहास। दिल्लगी। मसखरापन। खिल्ली। उ०—तब नीरू ने कहा कि लोग मुझको हँसेंगे और ठट्ठा में उड़ावेंगे।—कबीर मं०, पृ० १०४।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—ठट्ठाबाज, ठट्ठेबाज = दिल्लगीबाज। ठट्ठेबाजी = दिल्लगी।

मुहा०—ठट्ठा उड़ाना = उपहास करना। दिल्लगी करना। उ०—और लोग तरह तरह की नकलें करके उसका ठट्ठा उड़ाने लगे।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १७६। ठट्ठा मारना = खिलखिलाना। अट्टहास करना। ठट्ठा में उड़ाना = किसी की चर्चा या कथन को मजाक समझना। खिल्ली उड़ाना। ठट्ठा लगाना = खिलखिलाकर हँसना। ठठाकर हँसना। अट्टहास करना।

ठठ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठट'। २ 'ठाठ'। उ०— करि पान गंगा जल बिमल फिर ठठे ठठ घमसान के।—हिम्मत०, पृ० २२।

ठठई—संज्ञा स्त्री० [सं० टट्टरी] हँसी। ठट्ठा। मसखरापन। उ०—हुतो न साँचो सनेह मिट्यो मन को, हरि परे उघरि, संदेसहु ठठई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४४३।

ठठकना†—क्रि० अ० [सं० स्थेय + करण] १. एकबारगी रुक या ठहर जाना। ठिठकना। उ०—(क) ठठकति चलै मटकि मुँह मोरै बकट भौंह चलावै।—सूर (शब्द०)। (ख) डग कुडगति सी चलि ठठकि चितई चली निहारि। लिये जाति चित चोरटी वहै गोरटी नारि।—बिहारी (शब्द०)। २ स्तंभित हो जाना। क्रियाशून्य हो जाना। ठक रह जाना। उ०—मन में कछु कहन चहै देखत ही ठठकि रहै सूर श्याम निरखत दुरी तन सुधि बिसराय।—सूर (शब्द०)।

ठठकान†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठकना] ठठकने का भाव।

ठठना†—क्रि० स० क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठटना'। उ०—बाँकि चले, ठठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौं छाँह न छ्वावै।—घनानंद, पृ० २१२।

ठठरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठटरी'।

ठठवा†—संज्ञा पुं० [हिं० टाट] एक प्रकार का रूखा और मोटा कपड़ा। इकतारा। लमगजा।

ठठा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठट्ठा'।

ठठाना[1]—क्रि० स० [अनु० ठक् ठक्] ठोकना। आघात लगाना। पीटना। जोर जोर से मारना। उ०—फले फूले फैले खल, सीदैं साधु पल पल, बाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दत ठठाइ ठोठरे कीने। रहे पठान सकल भय भीने।—लाल (शब्द०)।

ठठाना[2]—क्रि० अ० [सं० अट्टहास] खिलखिलाना। अट्टहास करना। कहकहा लगाना। जोर से हँसना। उ०—दुइ कि होइ इक संग भुआलू। हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।—तुलसी (शब्द०)।

ठठिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठट्टर (= ढाँचा या ठटरी)] हड्डियों का ढाँचा। काया। शरीर। उ०—काहू भए ठठिया के भेटे। जीव दरस बिनु भरम न मेटे।—कबीर सा०, पृ० ४१२।

ठठियार[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठरी (= ढाँचा)] ढाँचा। ठट्टर। अस्थिशेष। उ०—तस सिंगार सब लीन्हेसि मोहि कीन्हेसि ठठियारि।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४१।

ठठियार[2]—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली चौपायों को चरानेवाला। चरवाहा। -(नैपाल तराई)।

ठठिरिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठेरा] ठठेरिन। ठठेरे की स्त्री। उ०—ठठिरिन बहुतइ ठाठर कीन्ही। चली अहीरिन काजर दीन्ही।—जायसी (शब्द०)।

ठठुकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठठकना', 'ठिठकना'। उ०—दूर ही से मुझे घाट में नहाते देख ठठुके।—श्यामा०, पृ० ६७।

ठठेर मंजारिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठेरा + सं० मार्जारिका] ठठेरे की बिल्ली। उ०—अहे बजबी हरिन भ्रम कहा बजावे बीन। या ठठेर मंजारिका सुर सुनि मोहैगी न।—दीनदयाल (शब्द०)।

विशेष—ठठेरों की बिल्ली के सामने रात दिन बरतन पीटे जाने से न तो वह थोड़ी खड़खड़ाहट से डरती है न किसी अच्छे शब्द पर मोहित होती है।

ठठेरा¹—संज्ञा पुं० [अनु० ठन ठन अथवा हिं० ठाठी+एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० ठठेरिन, ठठेरी] धातु को पीट पीटकर बरतन बनानेवाला। बरतन बनानेवाला। कसेरा।

मुहा०—ठठेरे ठठेरे बदलाई=जैसे का तैसा व्यवहार। एक ही प्रकार के दो मनुष्यों का परस्पर व्यवहार। ऐसे दो आदमियों के बीच व्यवहार जो चालाकी, धूर्तता, बल आदि में एक दूसरे से कम न हों। ठठेरे की बिल्ली=ऐसा मनुष्य जो कोई अरुचिकर काम देखते देखते या सुनते सुनते अभ्यस्त हो गया हो। ऐसा मनुष्य जो कोई खटके की बात देखकर न चौंके या न घबराय।

विशेष—ठठेरे की बिल्ली दिन रात बरतन का पीटना सुना करती है। इससे वह किसी प्रकार की आहट या खटका सुनकर नहीं डरती।

ठठेरा²—संज्ञा पुं० [हिं० ठाँठ] ज्वार बाजरे का डंठल।

ठठेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठेरा] १ ठठेरा की स्त्री। २. ठठेरा जाति की स्त्री। ३ ठठेरा का काम। बरतन बनाने का काम।

यौ०—ठठेरी बाजार।

ठठैरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० टट्टर (= रोक)] अवरोध। रोक। आड़। उ०—बीसों तीस गोवांसू ठठैरी तोड़ नाखी। साले तोप राजा की अचंका फोड नांखी।—शिखर०, पृ० ७५।

ठठोल—संज्ञा पुं० [हिं० ठट्ठा] [स्त्री० ठठोलिन] १ ठट्ठेबाज। विनोद प्रिय। दिल्लगीबाज। मसखरा। उ०—मूँछ मरोरत डोलई ऐठ्यौ फिरत ठठोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३१६। २ ठठोली। हँसी। दिल्लगी। उ०—याद परी सब रस की बातैं बढ़ि गयो विरह ठठोलन सों।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३८५।

ठठोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठट्टा] हँसी। दिल्लगी। मसखरापन। मजाक। वह बात जो केवल विनोद के लिये की जाय। उ०—ऐसी भी रही ठठोली।—अर्चना, पृ० ३४।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठड़कना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठठकना', 'ठिठकना'।

ठड़ा†—वि० [सं० स्थातृ] खड़ा। दंडायमान।

यौ०—ठड़िया व्योहार=वह सामाजिक व्यवहार जिसमें रुपयों का लेन देन न होता हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० ठाढ़] वह नैचा जिसकी निगाली बिलकुल खड़ी होती है।

विशेष—ऐसा नैचा लखनऊ में बनता है और मिट्टी की फरशी में लगाया जाता है। मुसलमान इसका व्यवहार अधिक करते हैं।

ठड्ढा—संज्ञा पुं० [हिं० ठड्ढा] १. पीठ की खड़ी हड्डी। रीढ़।

यौ०—ठड्‌डाटूटी=जिसकी कमर झुकी हो। कुबड़ी।—(स्त्रि०)।

२. पतंग में लगी हुई खड़ी कमाची। काँप का उलटा। ३ ढाँचा। टट्टर। उ०—दुर्बीन और केलों के ठड्ढे खड़ा कर देते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६।

ठढ़ा†—वि० [सं० स्थातृ] खड़ा। दंडायमान। उ०—तरकि तरकि प्रति वज्र से डारैं। मदमत इव ठढ़ो फलकारैं।—नंद० ग्रं०, पृ० १६२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठढ़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाढ़ (=खड़ा)] १. काठ की वह ऊँची ओखली जिसमें पड़े हुए धान को स्त्रियाँ खड़ी होकर कूटती हैं। २. मरसा नाम का साक। ३ पशुओं का एक रोग।

ठढ़ियाना†—क्रि० स० [हिं० ठढ़ा (=खड़ा)] खड़ा करना।

ठढ़ुई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठढ़िया'।

ठन—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] धातुखंड पर आघात पड़ने का शब्द। किसी धातु के बजने का शब्द।

यौ०—ठन ठन=चमड़े से मढ़े हुए बाजे का शब्द।

ठनक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० ठन ठन] १. मृदंगादि की ध्वनि। चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात पड़ने का शब्द। उ०—खनक चुरीन की त्यों ठनक मृदंगन की रुनुक झुनुक सुर नूपुर के जाल की।—पद्माकर (शब्द०)। २. रह रहकर आघात पड़ने की सी पीड़ा। टीस। चसक। ३. धातुखंड पर आघात होने से उत्पन्न शब्द। ठन।

मुहा०—ठनककर बोलना=कड़ी आवाज मे कुछ कहना। उ०—सिंह ठवनि होए बोसे ठनकि के, रन जीते फिरि आवे।—सं० दरिया, पृ० ११५।

ठनकना—क्रि० अ० [अनुध्व० ठन ठन] १ ठन ठन शब्द करना। धातुखंड अथवा चमड़े से मढ़े बाजे आदि का आघात पाकर बजना। जैसे, तबला ठनकना। २. रह रहकर आघात पड़ने की सी पीड़ा होना। जैसे, माथा ठनकना।

मुहा०—तबला ठनकना=नृत्य गीत आदि होना। उ०—हम ओ रस्ते रात के आवत रहे तो तबला ठनकत रहा।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३२६। माथा ठनकना=किसी बुरे लक्षण को देखकर चित्त में घोर आशंका उत्पन्न होना। जैसे, तार पाते ही माथा ठनका।

ठनका—संज्ञा पुं० [हिं० ठनक] १ धातुखंड आदि पर आघात पड़ने का शब्द। २. आघात। ठोकर। ३. रह रहकर आघात पड़ने की सी पीड़ा।

ठनकाना—क्रि० स० [हिं० ठनकना] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना। बजाना। जैसे, तबला ठनकाना, रुपया ठनकाना।

मुहा०—रुपया ठनका लेना = रुपया बजाकर ले लेना। रुपया वसूल कर लेना। उ०—जैसे, तुमने रुपए तो ठनका लिए मेरा काम हो या न हो।

ठनकार—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठन ठन] धातुखंड के बजने का शब्द।

ठनकारना†—क्रि० अ० [हिं० ठनकार] फुफकारना। क्रुद्ध सर्प का फन काढ़कर फुफकारना। उ०—सन सन करके रात खनकती झींगुर झनकारैं। कभी कभी दादुर रट कर जिय व्याकुल कर डारैं। साँप खँडहर पर ठनकारैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८६।

ठनगन¹—संज्ञा पुं० [हिं० ठनना] विवाह आदि मंगल अवसरों पर नेगियों या पुरस्कार पानेवालों का अधिक पाने के लिये हठ या अड़। उ०—ठनगन तैं सब वाम वसनन सजि सजि कै गईं।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३३।

क्रि० प्र०—करना।—ठानना।—होना।

२. हठ। अड़। मान। उ०—बनि आएँ ठनगन ठानति है सरोपिर राधे तोहि लहौं।—घनानंद, पृ० ४५६।

ठनठन—क्रि० वि० [अनुध्व०] धातुखंड के बजने का शब्द।

ठनठन गोपाल—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठनठन + गोपाल (=कोई व्यक्ति)] १. छूँछी और निःसार वस्तु। वह वस्तु जिसके भीतर कुछ भी न हो। २ खुक्ख आदमी। निर्धन मनुष्य। वह व्यक्ति जिसके पास कुछ भी न हो।

ठनठनाना¹—क्रि० स० [अनुध्व] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना। बजाना।

ठनठनाना²—क्रि० अ० ठन ठन बजना या आवाज होना। ठनठन की ध्वनि होना।

ठनना—क्रि० अ० [हिं० ठानना] १. (किसी कार्य का) तत्परता के साथ आरंभ होना। दृढ़ संकल्पपूर्वक आरंभ किया जाना। अनुष्ठित होना। समारंभ होना। छिड़ना। जैसे, काम ठनना, झगड़ा ठनना, वैर ठनना, युद्ध ठनना, लड़ाई ठनना। २. (मन में) स्थिर होना। ठहरना। निश्चित होना। पक्का होना। दृढ़ होना। चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण किया जाना। दृढ़ संकल्प होना। जैसे, मन में कोई बात ठनना, हठ ठनना। उ०—हरिचंद जू बात ठनी तो ठनी नित की कलकानि ते छूटनो है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ३. ठहरना। लगना। जमना। धारण किया जाना। प्रयुक्त होना। उ०—दुलरी कल कोकिल कंठ बनी मृग खंजन अंजन भाँति ठनी।—केशव (शब्द०)। ४ उद्यत होना। मुस्तैद होना। सन्नद्ध होना। उ०—रन जीतन काजै सटन निवाजै आनंद छाजै युद्ध ठने।—गोपाल (शब्द०)।

मुहा०—किसी बात पर ठनना = किसी बात या काम को करने के लिये उद्यत होना।

ठनमनाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठनमनाना'।

ठनाका—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठन] ठन ठन शब्द। ठनकार।

ठनाठन—क्रि० वि० [अनुध्व० ठन ठन] ठन ठन शब्द के साथ। झनकार के साथ। जैसे, ठनाठन बजना।

ठप—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १ खुले हुए ग्रंथ को एकाएक बंद करने से उत्पन्न शब्द या ध्वनि। २. किसी कार्य या व्यापार का पूरी तरह बंद रहना या रुक जाना।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

ठपका†—संज्ञा पुं० [देश०] धक्का। ठोकर। ठेस। उ०—यह तन काचा कुंभ है लिया फिरै था साथ। ठपका लाग्या फूटि गया कछू न आया हाथ।—कबीर (शब्द०)।

ठपाका†—संज्ञा पुं० [फा० तपाक] जोश। आवेश। वेग। तेजी। उ०—रामसिंह नशे में थे ही ठपाक से आल्हा की लड़ियाँ गाने लगे।—फाले०, पृ० २४।

ठपोरना—क्रि० स० [हिं० ठप ठप अनुध्व०] थपथपाना। ठोकना। उ०—जन दरिया बालक बना गुरू ठपोरी पूठ।—दरिया० बानी, पृ० १६।

ठप्पा—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हिं० थापन, थाप, अथवा अनुध्व० ठप] १ लकड़ी, धातु, मिट्टी आदि का खंड जिसपर किसी प्रकार की आकृति, बेलबूटे या अक्षर आदि इस प्रकार खुदे हों कि उसे किसी दूसरी वस्तु पर रखकर दबाने से या दूसरी वस्तु को उसपर रखकर दबाने से उस दूसरी वस्तु पर वे आकृतियाँ, बेलबूटे या अक्षर उभर आवें अथवा बन जायँ। साँचा।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. लकड़ी का टुकड़ा जिसपर उभरे हुए बेलबूटे बने रहते हैं और जिसपर रंग, स्याही आदि पोतकर उन बेलबूटों को कपड़े आदि पर छापते हैं। छापा। ३. गोटे पट्टे पर बेलबूटे उभारने का साँचा। ४ साँचे के द्वारा बनाया हुआ चिह्न, बेलबूटा आदि। छाप। नकश। ५ एक प्रकार का चौड़ा नक्काशीदार गोटा।

ठवका†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठपका] आघात। ठोकर। ठेस। उ०—या तनु को कहु गर्व करत है ओला ज्यों गल जावे रे। जैसे बर्तन बनो काँच को ठवक लगे बिनसावे रे।—राम० धर्म०, पृ० ३६०।

ठवकना—क्रि० अ० [हिं० ठवक] ठेस या ठोकर देते हुए चलना। ठसक के साथ चलना। उ०—हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा धीरे धरिबा पावं। गरब न करिबा, सहजैं रहिबा भणत गोरख रावं।—गोरख०, पृ० ११

ठभोली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठोली या देश०] दे० 'ठठोली'।

ठमंकनाⓤ—क्रि० अ० [अनु०] ठम् की ध्वनि के साथ गिरना, ठहरना या रुकना उ०—उरं फुट्ट सन्नाह धरनी ठमंकै।—प० रासो, पृ० ४५।

ठमक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठमकना] १ चलते चलते ठहर जाने का भाव। रुकावट। २. चलने की ठसक। चलने में हावभाव सूचक।

ठमकना—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन] १. चलते चलते ठहर जाना। ठिठकना। रुकना। जैसे,—तुम चलते चलते ठमक क्यों जाते हो? २. ठसक के साथ रुक रुककर चलना। हाव भाव दिखाते हुए चलना। अंग मरोड़ते या मटकाते हुए चलना। लचक के साथ चलना। उ०—ठमकि ठमकि सरकौंही चालन आउ सामुहैं मेरे।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८६।

ठमका[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनुध्व०] ठम् ठम् की स्थिति या क्रिया। ठक ठक। झंझट बखेड़ा। उ०—धमण धमंती रह गई सीला पड़या अंगार। अहरण का ठमका मिटया री ताद चले लोहार।—राम० धर्म०, पृ० १६।

ठमका[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] झोंका। उ०—इसलिये काम सेठानी नींद का ठमका ले रही थी।—जनानी०, पृ० ३८।

ठमकाना—क्रि० स० [हिं० ठमकना] ठहराना। चलते चलते रोकना।

ठमकारना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठमकाना'।

ठमठमाना†—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन] ठमकना। ठिठकना। उ०—दुल्हा जू जरा जरा ठमठयाया।—कौड़ी०, पृ० ३१६।

ठमिकना(पु)†—क्रि० अ० [देश०] दे० 'ठमकना'। उ०—चौथा को लेहुँगो झूला को ताव। ठमिक ठमिक धन देइइ पाव।—वी० रासो, पृ० ११४।

ठमकड़ा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठमुक (=ठमक)+ड़ा (प्रत्य०)] ठक ठक की आवाज। ठपका। ठमका। उ०—धवंति धवती रहि गई, बुझि गए अंगार। अहरणि रह्या ठमुकड़ा जब उठि चले लुहार।—कबीर ग्रं०, पृ० ७५।

ठयना—क्रि० स० [सं० अनुष्ठान] १ ठानना। दृढ संकल्प के साथ आरंभ करना। छेड़ना। उ०—(क) दासी सहस प्रगट तँह भई। इंद्रलोक रचना ऋषि ठई।—सूर (शब्द०)। (ख) जब नैननि प्रीति ठई ठग श्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।—तुलसी (शब्द०)। २ कर चुकना। पूरी तरह से करना। (इसका प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में हुआ है)। उ०—देवता निहोरे महामारिन सों कर जोरे भोरानाथ भोरे आपनी सी कहि ठई है।—तुलसी (शब्द०)। ३ मन में ठहराना। निश्चित करना। उ०—तुलसिदास कौन आस मिलन की? कहि गए सो तो एकौ चित न ठई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ।—मानस, पृ० ७१।

ठयना[2]—क्रि० अ० १ ठनना। दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ होना। २ मन में दृढ़ होना। ३ प्रयोग में आना। कार्य में प्रयुक्त होना।

ठयना[3]—क्रि० स० [सं० स्थापन, प्रा० ठावन] १ स्थापित करना। बैठाना। ठहराना। २ लगाना। प्रयुक्त करना। नियोजित करना। उ०—बिधिना अति ही पोच कियो री। रोम रोम लोचन इक टक करि युवतिन प्रति काहे न ठयो री।—सूर (शब्द०)।

ठयना[4]—क्रि० अ० १. ठहरना। स्थित होना। बैठना। जमना। उ०—राज सख लखि गुरु भूसुर सुआसनन्हि समय समाज की ठवनि भली ठई है। —तुलसी (शब्द०)। २. प्रयुक्त होना। लगना। नियोजित होना।

ठरना—क्रि० अ० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठड्ढ, हिं० ठार+ना (प्रत्य०)] १ अत्यंत शीत से ठिठुरना। सरदी से अकड़ना या सुन्न होना। जैसे, हाथ पाँव ठरना।

संयो० क्रि०—जाना।

२ अत्यंत सरदी पड़ना। बहुत अधिक ठंढ पड़ना।

ठरकना—क्रि० अ० [हिं० ठरूका (=ठोकर, टक्कर)] टकराना। उ०—चकमक ठरकै अगनि झरै यूँ दध मथि घृत करि लीया।—गोरख०, पृ० २०८।

ठरमरुआ—वि० [हिं० ठार+मारना [वि० स्त्री० ठरमरुई] वह फसल जिसे पाला मार गया हो।

ठराना—क्रि० अ० [हिं० ठहरना] टिक जाना। स्थिर होना। ठहरना। उ०—हरि कर चिपका निरखि तियन के नैना छवियहिं ठराई।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८१।

ठराना(पु)—क्रि० स० [हिं० ठढा=(खड़ा)+ना (प्रत्य०), या ठहराना] खड़ा करना। तैयार करना। बनाना। ठहराना। उ०—जमी के तले यक ठरा कर मकान।—दक्खिनी०, पृ० ३३६।

ठरारा—वि० [हिं० ठार] सर्द। ठंढा। उ०—कबहुँ मनहिं मन सोचत, मोचत स्वास ठरारे।—नंद० ग्रं०, पृ० २०१।

ठरुआ†—वि० [हिं० ठार] [वि० स्त्री० ठरुई] फसल जिसे पाला मारा गया हो।

ठरूका†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोकर] ठोकर। आघात। उ०—जिनसौं प्रीति करत है गाढ़ी सो मुख लावै लूको रे, जारि बारि तन खेह करैंगे दे दे मूँड ठरूको रे।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१०।

ठर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० ठढ़ा (=खड़ा)] १. इतना कड़ा बटा हुआ मोटा सूत जो हाथ में लेने से कुछ तना रहे। मोटा सूत। २. बड़ी अधपकी ईंट। ३. महुवे की निकृष्ट कड़ी शराब। फूल का उलटा। ४. अँगिया का बंद। तनी। ५. एक प्रकार का मद्दा जूता। ६ भद्दा और बेडौल मोती।

ठर्री—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ बिना अंकुर उठा हुआ धान का बीज जो छितराकर बोया जाता है। २. बिना अंकुर उठे हुए धान की बोआई।

ठलवारि(पु)†—वि० पुं० [हिं० टिल्ला, टल्ल>टल्लेनवीसी (= बहाना, निठल्लापन] बहाना करनेवाला। किसी बात को हँसी में उड़ा देनेवाला। ठट्ठेबाज। उ०—कहा तेरेई आयी राज लाज तजि औरत औरे काज, कहा तोहि ठलवारि धरबसे न जानत बात बिरानी।—घनानंद, पृ० ४२६।

ठलाना[1]—क्रि० स० [प्रा० ठिल्ल]ठेलना। रखना। उ०—(क) ता पाछे रीति अनुसार सामग्री ठलाइ प्रभुन को पलना झुलाइ भांति करि अनोसर करते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०१। (ख) पाछैं वह सब अन्न तुमकों तुम्हारे बासनन में ठलाइ देउँगी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २५५।

ठलाना[2]—क्रि० स० [हिं० ढालना] गिराना। निकालना।

ठलुआ—वि० [अप० ठल्ल (= रिक्त) या हिं० ठाला + उ आ (प्रत्य०)] निठल्ला। खाली। उ०—मधुवन की बातों ही में मालूम हुआ कि उस घर में रहनेवाले सब ठलुए बेकार हैं।—तितली, पृ० २२७।

ठलुवा—वि० [अप० ठल्ल या हिं० ठाला + उक (प्रत्य०)] दे० 'ठलुआ'।

ठल्ल†Ⓟ—वि० [अप० ठलिय ठल्ल] १ निर्धन। धनरहित। दरिद्र। २. खाली। शून्य। रिक्त। उ०—नमणी खमणी बहु गुणी सगुणी अनइ सियाई। जे धण एही सपजइ, तउ जिम ठल्लउ जाइ।—ढोला०, दू० ४५१।

ठवँका†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठमक] दे० 'ठमक', 'ठसक'। उ०—पदेलिनि ठवँकन्ह पगु ढारा। चली चौहानी होइ झनकारा।—जायसी ग्रं०, पृ० २४६।

ठवक†—संज्ञा पुं० [हिं० ठोंक] आघात। थपकी। ठोका। उ०—पवन ठवक लगि ताहि जगावै। तब ऊरघ को शीश उठावै।—चरण० बानी, पृ० ८०।

ठवन—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापण, प्रा० ठावण] दे० 'ठवनि'।

ठवना†Ⓟ[1]—क्रि० स० [सं० स्थापन] १ स्थापित करना। रखना। उ०—वायस बीजउ नाम, ते आगलि खल्लउ ठवइ। जइ तूँ हुई सुजांण तउ तूँ वहिलउ मोकलइ।—ढोला०, दू० १४२। २. योजना करना। ठानना। उ०—आठम प्रहर सभा समै धण ठव्वै सिणगार।—ढोला०, दू० ५८६।

ठवना[2]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठयना'।

ठवनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, हिं० ठवना (=बैठना) या सं० स्थान] १ बैठक। स्थिति। उ०—राज रुख लखि गुरु भूसुर सुआसनन्हि समय समाज की ठवनि भली ठई है।—तुलसी (शब्द०)। २. बैठने या खड़े होने का ढंग। आसन। मुद्रा। अंग की स्थिति या संचालन का ढब। अंदाज। उ०—(क) कुंजर मनि कंठा कलित उर तुलसी की माल। वृषभ कंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाल।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ठाढ़ भए उठि सहज सुभाए। ठवनि जुवा मृगराज लजाए।—तुलसी (शब्द०)।

ठवरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठौर'। उ०—कथनी कथि कथि बहु चतुराई। चोर चतुर कहि ठवर ना पाई।—स० दरिया, पृ० ८।

ठस—वि० [सं० स्थास्नु (= दृढ़ता से जमा हुआ, दृढ़)] १. जिसके कण परस्पर इतने मिले हों कि उसमें उँगली आदि न धँस सके। जिसके बीच में कहीं रंध्र वा अवकाश न हो। जो भुरभुरा, गीला या मुलायम न हो। ठोस। कड़ा। जैसे, बरफी का सूखकर ठस होना, गीले आटे का ठस होना। २. जो भीतर से पोला या खाली न हो। भीतर से भरा हुआ। ३. जिसके सूत परस्पर खूब मिले हों। जिसकी बुनावट घनी हो। गफ। जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा। उ०—इस टोपी का काम खूब ठस है।—(शब्द०)। ४. दृढ़। मजबूत। ५. भारी। वजनी। गुरु। ६. जो अपने स्थान से जल्दी न टसके। जो हिले डोले नहीं। निष्क्रिय। सुस्त। मट्ठर। आलसी। ७. (रुपया) जिसकी झनकार ठीक न हो। जो खरे सिक्के के ऐसा न हो। जो कुछ खोटा होने के कारण ठीक आवाज न दे। जैसे, ठस रुपया। ८ भरा पूरा। संपन्न। धनाढ्य। जैसे, ठस असामी। ९ कृपण। कंजूस। १०. हठी। जिद्दी। अड़ करनेवाला।

ठसक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठस] १. अभिमानपूर्ण हाव भाव। गर्वीली चेष्टा। नखरा। जैसे,—वह बड़ी ठसक से चलती है। २ अभिमान। दर्प। शान। उ०—कढ़ि गई रैयत के जिय की कसक सब मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की।—भूषण (शब्द०)।

ठसकदार—वि० [हिं० ठसक + फ़ा० दार] १. घमंडी। अभिमानी। २ शानदार। तड़क भड़कवाला। उ०—ठौर ठकुराई को जु ठाकुर ठसकदार नंद के कन्हाई सो सु नंद को कन्हाई है।—पद्माकर (शब्द०)।

ठसका—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. वह खाँसी जिसमें कफ न निकले और गले से ठन ठन शब्द निकले। सूखी खाँसी। २. ठोकर। धक्का।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।—लगना।

ठसाठस—क्रि० वि० [हिं० ठस] ऐसा दबाकर भरा हुआ कि और भरने की जगह न रहे। ठूँसकर भरा हुआ। खूब कसकर भरा हुआ। खचाखच। जैसे,—(क) वह संदूक कपड़ों से ठसाठस भरा हुआ है। (ख) इस कुप्पे में ठसाठस चीनी भरी हुई है।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल चूर्ण या ठोस वस्तुओं के लिये ही होता है, पानी आदि तरल पदार्थों के लिये नहीं। जो वस्तु भरी जाती है और जिस वस्तु मे भरी जाती है दोनों के संबंध में इस शब्द का व्यवहार होता है। जैसे, संदूक ठसाठस भरा है, कपड़े ठसाठस भरे हैं।

ठसा—संज्ञा पुं० [देश०] १ नक्काशी बनाने की एक छोटी रुखानी। २. गर्वपूर्ण चेष्टा। अभिमानपूर्ण हाव भाव। ठसक। ३. घमंड। अहंकार। ४ ठाट बाट। शान। ५ ठवनि। मुद्रा। अदाज।

मुहा०—ठस्से के साथ बैठना = घमंड के साथ बैठना। गर्व भरी मुद्रा मे शान के साथ बैठना। उ०—कोचवान भी ठस्से के साथ बैठा है।—फिसाना०, भा०३, पृ० ३६। ठस्से से रहना=ठाट बाट से रहना या जीवन बिताना। उ०—इस ठस्से से रहती हैं कि अच्छी अच्छी रईस जातियों से टक्कर लड़ें।—फिसाना०, भा०३, पृ० १।

ठह—संज्ञा पुं० [हिं०] ठाँव। ठही। स्थान।

ठहक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] नगारे का शब्द।

ठहकना—क्रि० अ० [देश०] ध्वनि करना। बोलना। आवाज करना। उ०—पिक ठहुकै झरणा पड़ै हरिए डूँगर डाल।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ८।

ठहकानाⓅ—क्रि० स० [हिं० ठह (= स्थान)] किसी वस्तु को उसके ठीक स्थान पर बैठाना या जमाना। उ०—तन बंदूक सुमति के सिंगरा, ज्ञान के गज ठहकाई। सुरति पलीता हरदम

सुलगै, कसपर राख चढ़ाई।—पलटू०, भा० ३, पृ० ४०। (क) दम को दारू सहज को सीसा ज्ञान के गज ठहकाई।—कबीर० श०, भाग २, पृ० १३२।

ठह्ना[1]—क्रि० स० [अनुध्व०] १. हिनहिनाना। घोड़े का बोलना। २ घनघनाना। घंटे का बजाना।

ठह्ना[2]—क्रि० अ० [सं० स्था, प्रा० ठा] किसी काम को करते हुए सोच विचार करने या बनाने सँवारने के लिये बीच बीच में ठहरना। धीरे धीरे धैर्य के साथ करना। बनाना। सँवारना। किसी काम को करने में खूब जमना।

मुहा०—ठह् ठहकर बोलना=हाव भाव के साथ रुक रुककर बोलना। एक एक शब्द पर जोर दे देकर बोलना। मठार मठारकर बोलना। ठहकर=अच्छी तरह जमकर।

ठह्नाना—क्रि० अ० [अनुध्व०] १ घोड़ों का बोलना। हिनहिनाना। उ०—गज अरुढ़ कुरुपति छवि छाई। चहुँदिशि तुरग रहे ठह्नाई।—सबल (शब्द०)। घंटे का बजना। घनघनाना। ठनठनाना उ०—द्वद्व घंट ध्वनि अति ठह्नाई। मारु राग सहित सह्नाई।—सबल (शब्द०)। ३ दे० 'ठह्ना[2]'।

ठहर—संज्ञा पुं० [सं० स्थल या स्थिर]१ स्थान। जगह। उ०—ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ लोक वेद हूँ विदित महिमा ठहर की।—तुलसी (शब्द०)। २. रसोई के लिये मिट्टी से लिपा हुआ स्थान। चौका। ३ रसोईघर आदि मे मिट्टी की लिपाई। पोताई। चौका। उ०—नेम अचार पटकर्म नहीं नौहीं पाँति को पान। चौका चंदन ठहर नहीं मीठा देव निदान।—सं० दरिया०, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—ठहर देना=रसोईघर वा भोजन के स्थान को लीप पोतकर स्वच्छ करना। चौका लगाना।

ठहरना—क्रि० अ० [सं० स्थिर+हिं० ना (प्रत्य०), अथवा सं० स्थल, हिं० ठहर+ना (प्रत्य०)] १ चलना बंद करना। गति में न होना। रुकना। थमना। जैसे,—(क) थोड़ा ठहर जाओ पीछे के लोगों को भी आ लेने दो। (ख) रास्ते में कहीं न ठहरना।

सयो० क्रि०—जाना।

२ विश्राम करना। डेरा डालना। टिकना। कुछ काल तक के लिये रहना। जैसे,—आप काशी मे किसके यहाँ ठहरेंगे?

सयो० क्रि०—जाना।

३ स्थित रहना। एक स्थान पर बना रहना। इधर उधर न होना। स्थिर रहना। जैसे,—यह नौकर चार दिन भी किसी के यहाँ नहीं ठहरता।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—मन ठहरना=चित्त स्थिर और शांत होना। चित्त की आकुलता दूर होना।

४ नीचे न फिसलना या गिरना। अड़ा रहना। टिका रहना। बहने या गिरने से रुकना। स्थित रहना। जैसे, (क) यह गोला डंडे की नोक पर ठहरा हुआ है। (ख) यह घड़ा फूटा हुआ है इसमें पानी नहीं ठहरेगा। (ग) बहुत से योगी देर तक अधर मे ठहरे रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

५ दूर न होना। बना रहना। न मिटना या न नष्ट होना। जैसे,—यह रंग ठहरेगा नहीं, उड जायगा। ६ जल्दी न टूटना फटना। नियत समय के पहले नष्ट न होना। कुछ दिन काम देने लायक रहना। चलना। जैसे,—यह जूता तुम्हारे पैर मे दो महीने भी नहीं ठहरेगा। ७ किसी घुली हुई वस्तु के नीचे बैठ जाने पर पानी या अर्क का स्थिर और साफ होकर ऊपर रहना। थिराना। ८ प्रतीक्षा करना। धैर्य धारण करना। धीरज रखना। स्थिर भाव से रहना। चंचल या आकुल न होना। जैसे,—ठहर जाओ, देते हैं, आफत क्यों मचाए हो। ९ कार्य आरंभ करने में देर करना। प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। जैसे,—अब ठहरने का वक्त नहीं है झटपट काम मे हाथ लगा दो। १० किसी लगातार होनेवाली क्रिया का बंद होना। लगातार होनेवाली बात या काम का रुकना। थमना। जैसे, मेह ठहरना, पानी ठहरना।

सयो० क्रि०—जाना।

११ निश्चित होना। पक्का होना। स्थिर होना। तै पाना। करार होना। जैसे, दाम या कीमत ठहरना, भाव ठहरना। बात ठहरना, व्याह ठहरना।

मुहा०—किसी बात का ठहरना=किसी बात का संकल्प होना। विचार स्थिर होना। ठनना। जैसे,—(क) क्या अब चलने ही की ठहरी? (ख) गप बहुत हुई, अब खाने की ठहरे। ठहरा=है। जैसे,—(क) वह तुम्हारा भाई ही ठहरा कहाँ तक खबर न लेगा? (ख) तुम घर के आदमी ठहरे तुमसे क्या छिपाना? (ग) अपने संबंधी ठहरे उन्हें क्या कहें।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ही होता है जहाँ किसी व्यक्ति या वस्तु के अन्यथा होने पर विरुद्ध घटना या व्यवहार की संभावना होती है।

† ११. (पशुओं के लिये) गर्भ धारण करना।

ठहराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहराना] १ ठहराने की क्रिया। २ ठहराने की मजदूरी। कब्जा। अधिकार।

ठहराउ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठहराव'।

ठहराऊ—वि० [हिं० ठहरना+आऊ (प्रत्य०)] १. ठहरनेवाला। कुछ दिन बना रहनेवाला। जल्दी नष्ट न होनेवाला। २. टिकाऊ। चलनेवाला। दृढ़। मजबूत। † ३ ठहरानेवाला। टिकानेवाला। किसी कार्य को निश्चित करानेवाला। किसी व्यक्ति को कहीं टिकानेवाला।

ठहराना[1]—क्रि० स० [हिं० ठहरना का प्रे०रूप] १. चलने से रोकना। गति बंद करना। स्थिति कराना। जैसे,—(क) वह चला जा रहा है उसे ठहराओ। (ख) यह चलता हुआ पहिया ठहरा दो।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. टिकाना । विश्राम कराना । डेरा देना । कुछ काल तक के लिये निवास देना । जैसे,—इन्हें अपने यहाँ ठहराओ । ३ इस प्रकार रखना कि नीचे न खिसके या गिरे । अड़ाना । टिकाना । स्थित रखना । जैसे, ठडे की नोक पर गोला ठहराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

४ स्थिर रखना । इधर उधर न जाने देना । एक स्थान पर बनाए रखना । ५ किसी लगातार होनेवाली क्रिया को बद करना । किसी होते हुए काम को रोकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

६. निश्चित करना । पक्का करना । स्थिर करना । तै करना । जैसे, बात ठहराना, भाव ठहराना, कीमत ठहराना, ब्याह ठहराना ।

ठहराना(ꣻ)†[2]—क्रि० अ० [हिं० ठहरना] रुकना । टिकना । स्थिर होना । उ०—(क) रूप दुपहरी छाँह कब ठहरानी इक ठौर ।—स० सप्तक, पु० १८३ । (ख) जबै आऊँ साधु संगति कछुक मन ठहराइ ।—सूर (शब्द०) ।

ठहराव—संज्ञा पुं० [हिं० ठहरना] ठहरने का भाव । स्थिरता । २ निश्चय । निर्धारण । नियति । मुकर्ररी । ३ दे० 'ठहरौनी' ।

ठहरू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठहर' ।

ठहरौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहराना, पुं०हिं० ठहरावनो] १ विवाह मे लेन देन का करार । २ किसी भी प्रकार का पारस्परिक करार या निश्चय ।

ठहाका[1]†—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] अट्टहास । जोर की हँसी । कहकहा ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

ठहाका[2]—वि० चटपट । तुरत । तड़ से ।

ठहियाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठह, ठाँव] ठाँह । जगह । ठिकाना । स्थान ।

ठहीं†—संज्ञा स्त्री [हिं० ठह] स्थान । ठाँव । ठाँह ।

ठहोर(ꣻ)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहर] ठहरने योग्य स्थान । विश्राम योग्य स्थल । उ०—कतए भवन कत आगन बाप कतए कत माय । कतहु ठहोर नहि ठेहर ककर एहन जमाय ।—विद्यापति, पु० ३९८ ।

ठाँ[1]—संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] दे० 'ठाँव' । उ०—यों सब ठाँ दरसे बरसे घनआनद भीजि अराधि कृपाई ।—घनानंद, पु० १५० ।

यौ०—ठाँ ठाँ = स्थान स्थान पर । उ०—ठाँ ठाँ मधुर मथानी बजै । जनु नव आनंद बुद अगजै ।—नंद० ग्रं०, पु० २४८ ।

ठाँ[2]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] बदूक की आवाज ।

ठाँई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाँव] स्थान । जगह । उ०—मीन रूप जो कीन बड़ाई । तीन छोड़ रहु चौथे ठाँई ।—कबीर सा०, पु० १७ । २. तईं । प्रति । उ०—पाव भखे मुख नैन रची रुचि आरसी देखि कहैं हम ठाँई ।—केशव (शब्द०) । ३. समीप । पास । निकट ।

ठाँउँ, ठाँऊँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान] १ ठौर । ठाँव । स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—रक सुदामा कियो अजाची, दियो अभयपद ठाँउँ ।—सूर०, १।१६४ । २. पास । समीप । उ०—चार मीत जो मुहमद ठाँऊँ । जिन्हहिं दीन्हि जग निरमल नाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाँठ—वि० [सं० स्थाणु (=ठूँठा पेड़) वा अनु० ठन ठन] १. जो सूखकर बिना रस का हो गया हो । नीरस । २ (गाय या भैंस) जो दूध न देती हो । दूध न देनेवाला (चौपाया) । जैसे, ठाँठ गाय । दे० 'ठठ' ।

ठाँठरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] ठठरी । ढाँचा ।

ठाँठर[2]—वि० [हिं० ठाँठ] दे० 'ठाँठ' ।

ठाँण†—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] थान । जगह । उ०—खूँटइ जीण न मोजड़ी कडयाँ वही केकाँण । साजनिया सालइ नहीं, सालइ आही ठाँण ।—ढोला०, दू० ३७५ ।

ठाँम†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ठाँव । स्थान । उ०—ठगिया रूप निहारि, ठाँम ठाँमि ठाढ़ो खरो ।—ब्रज० ग्रं०, पु० २ ।

ठाँयँ[1]—संज्ञा पुं० स्त्री०, [सं० स्थान, प्रा० ठाण] १. स्थान । जगह । ठिकाना ।

विशेष—दे० 'ठाँव' ।

२ समीप । निकट । पास । उ०—जिन लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़े ठाँय ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठाँयँ[2]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] बदूक छूटने का शब्द । जैसे,—ठाँयँ से गोली मार दो ।

ठाँयँ ठाँयँ—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] १. लगातार बंदूक छूटने का शब्द । २ रगड़ा । झगड़ा । उ०—खैर अब इस ठाँयँ ठाँयँ से क्या मतलब ।—फिसाना०, भा० ३, पु० ७७ ।

ठाँव—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाव] स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—(क) निडर, नीच, निगुँन निर्धन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाँव ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) नाहिन मेरे और कोउ बलि चरन कमल बिनु ठाँव ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय. सब कवियों ने पुं० किया है और अधिक स्थानों मे पुं० ही बोला जाता है पर दिल्ली मेरठ आदि पश्चिमी जिलों में इसे स्त्री० बोलते हैं ।

२ अवसर । मौका । उ०—इहै ठाँव हौं बारति रही ।—जायसी ग्र०, पु० ८४ । ३. रुकने या टिकने का स्थान । ठहराव । उ०—चार कोस लै गाँव, ठाँव एको नहीं ।—धरनी० श०, पु० ४५ ।

ठाँसना[1]—क्रि० स० [सं० स्थास्नु (= दृढ़ता से बैठाया हुआ)] १ जोर से घुसाना । कसकर घुसेड़ना । दबाकर प्रविष्ट करना । २ कसकर भरना । दबा दबाकर भरना । † ३ रोकना । अवरोध करना । मना करना ।

ठाँसना²—क्रि० अ० ठन ठन शब्द के साथ खाँसना। विना कफ निकाले हुए खाँसना। ढाँसना।

ठाँहीँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठाँई'। उ०—मन माया काल गति नाहीं। जीव सहाय बसे तेहि ठाँहीं।—कबीर सा०, पृ० ८२३

ठाउर†—संज्ञा पुं० [हिं० ठावँ+र (प्रत्य०)] ठौर। आश्रयस्थान। ठिकाना। उ०—मनुवाँ मोर भइल रँग बाउर। सहज नगरिया लागल ठाउर।—गुलाल० बानी, पृ० १०४।

ठाक†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्ताघ अथवा स्तम्भन अथवा हिं० थाक (=थकना) अथवा सं० स्था+क(प्रत्य०)] बाधा। रोक। रुकावट। उ०—(क) जब मन गाहि लेत खलवारा। छूटो ठाक मूए सिकदारा।—प्राण०, पृ० ५०। (ख) जाके मन गुरु का उपदेश। तौ को ठाक नहीं उह देश।—प्राण०, पृ० ११।

ठाकना(पु)†—क्रि० स० [हिं० ठाक+ना (प्रत्य०)] ठीक करना। रोकना। स्थिर करना। उ०—दृष्टि को ठाकि मन को समझावै। काम को साधि जाय महलि समावै।—प्राण०, पृ० २९।

ठाकर†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर, गुज० ठक्कर] प्रदेश का स्वामी। सरदार। नायक। उ०—इसलिये कहा गया कि पहले यहाँ कोई राजा या ठाकर रहता था।—किन्नर०, पृ० ४९।

ठाकुर—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] [स्त्री० ठकुराइन, ठकुरानी] १ देवता, विशेषकर विष्णु या विष्णु के अवतारों की प्रतिमा। देवमूर्ति।

यौ०—ठाकुरद्वारा। ठाकुरबाड़ी।

२. ईश्वर। परमेश्वर। भगवान्। ३ पूज्य व्यक्ति। ४ किसी प्रदेश का अधिपति। नायक। सरदार। अधिष्ठाता। उ०—सब कुँवरन फिर खैंचा हाथू। ठाकुर जेंव तो जेंवै साथू।—जायसी (शब्द०)। ५ जमींदार। गाँव का मालिक। ६. क्षत्रियों की उपाधि। ७. मालिक। स्वामी। उ०—(क) ठाकुर ठक भए गेल चोरें चप्परि घर लिज्झिअ।—कीर्ति०, पृ० १६। (ख) निडर, नीच, निर्गुन, निधन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाँव।—तुलसी (शब्द०)। ८. नाइयों की उपाधि। नापित।

ठाकुरद्वारा—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर+सं० द्वार] १ किसी देवता विशेषत विष्णु का मंदिर। देवालय। देवस्थान। २ जगन्नाथ जी का मंदिर जो पुरी में है। पुरुषोत्तम धाम। ३. मुरादाबाद जिले में हिंदुओं का एक तीर्थस्थान।

ठाकुरप्रसाद—संज्ञा पुं० [हिं०] १ देवता को निवेदित वस्तु। नैवेद्य। २ एक प्रकार का धान जो भादों महीने के अंत और क्वार के आरंभ में हो जाया करता है।

ठाकुरबाड़ा—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर+बाड़ा या सं० वाड़ी (=घर)] देवालय। मंदिर।

ठाकुरसेवा—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर+सेवा] १ देवता का पूजन। २ वह संपत्ति जो किसी मंदिर के नाम उत्सर्ग की गई हो।

ठाकुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर+ई (प्रत्य०)] ठकुराई। स्वामित्व। आधिपत्य। शासन। उ०—बिस्नु की ठाकुरी दीख जाई।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० १५। (ख) जम के जसूस विनय जस सौं हमेशा करैं तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है।—पद्माकर (शब्द०)।

ठाट¹—संज्ञा पुं० [सं० स्थातृ (=खड़ा होनेवाला)] १. फूस और बाँस की फट्टियों को एक में बाँधकर बनाया हुआ ढाँचा जो आड़ करने या छाने के काम में आता है। लकड़ी या बाँस की फट्टियों का बना हुआ परदा। जैसे,—इस खपरैल का ठाट उजड़ गया है।

यौ०—ठाटबंदी। ठाटबाट। नवठट=छाने के काम में आनेवाले पुराने ठाट को पूरी तौर से नया करना।

२. ढाँचा। ढड्ढा। पंजर। किसी वस्तु के मूल अंगों की योजना जिनके आधार पर शेष रचना की जाती है।

मुहा०—ठाट खड़ा करना=ढाँचा तैयार करना। ठाट खड़ा होना=ढाँचा तैयार होना।

३ रचना। बनावट। सजावट। वेशविन्यास। शृंगार। उ०—(क) ब्रज बनवारि ग्वाल बालक कहँ कौने ठाट रच्यो।—सूर (शब्द०)। (ख) पहिरि पितंबर, करि आडंबर बहु तन ठाट सिंगारयो।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—ठटना।—बनाना।

मुहा०—ठाट बदलना=(१) वेश बदलना। नया रूप रंग दिखाना। (२) और का और भाव प्रकट करना। प्रयोजन निकालने या श्रेष्ठता प्रकट करने के लिये झूठे लक्षण दिखाना। (३) श्रेष्ठता प्रकट करना। झूठमूठ अधिकार या बड़प्पन जताना। रंग बाँधना। ठाट माँजना=दे० 'ठाट बदलना'।

४ आडंबर। तड़क भड़क। तैयारी। शान शौकत। दिखावट। धूमधाम। जैसे,—राजा की सवारी बड़े ठाट से निकली।

यौ०—ठाट बाट।

५. चैनचान। मजा। आराम।

मुहा०—ठाट मारना=मौज उड़ाना। मजे उड़ाना। चैन करना। ठाट से काटना=चैन से दिन बिताना।

६ ढंग। शैली। प्रकार। ढब। तर्ज। अंदाज। जैसे,—(क) उसके चलने का ठाट ही निराला है। (ख) वह घोड़ा बड़े ठाट से चलता है। ७. आयोजन। सामान। तैयारी। अनुष्ठान। समारंभ। प्रबंध। बंदोबस्त। उ०—(क) पालव बैठि पेड़ एइ काटा। सुख महँ सोक ठाट धरि ठाटा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कासो कहौं, कहो, कैसी करौं अब क्यों निबहै यह ठाट जो ठायो।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।—मानस, २।१३३।

८ सामान। माल असबाब। सामग्री। उ०—सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बनजारा।—नजीर (शब्द०)।

९ युक्ति। ढब। ढंग। उपाय। डौल। जैसे—(क) किसी ठाट से

अपना रुपया वहाँ से निकालते । (ख) वह ऐसे ठाट से माँगता है कि कुछ न कुछ देना ही पड़ता है । उ०—राज करत बिनु काज ही ठटहिं जे कूर कु ठाट । तुलसी ते कुरुराज ज्यों जैहैं बारह बाट ।—तुलसी (शब्द०) । १०. कुश्ती या पटेबाजी में खड़े होने या वार करने का ढंग । पैतरा ।

मुहा०—ठाट बदलना = दूसरी मुद्रा से खड़ा होना । पैतरा बदलना । ठाट बाँधना = वार करने की मुद्रा से खड़ा होना ।

११. कबूतर या मुरगे का प्रसन्नता से पर फड़फड़ाने या झाड़ने का ढंग ।

मुहा०—ठाट मारना = पर फड़फड़ाना । पंख झाड़ना ।

१२. सितार का तार । १३. संगीत में ऐसे स्वरों का समूह जो किसी विशेष राग में ही प्रयुक्त होते हों । जैसे, ईमन का ठाट, भैरवी का ठाट ।

मुहा०—ठाट बाँधना = तंत्र वाद्य में किसी राग में प्रयुक्त होनेवाले स्वरों को उस स्थान पर नियोजित करना जिससे अभीप्सित राग में प्रयुक्त स्वरों की ध्वनि प्राप्त हो । उ०—बाँधकर फिर ठाट, अपने अंक पर झंकार दो ।—अपरा, पृ० ७३ ।

ठाट[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ठट्ट, ठाट] [स्त्री० ठाटी] १. समूह । झुंड । उ०—(क) बिते रजनी हेरए बाट, जनि हरिनी बिछुरल ठाट ।—विद्यापति, पृ० १६८ । (ख) गज के ठाट पचास हजारा । मत्त सहस्र रहै असवारा ।—रघुराज (शब्द०) ।† २. बहुतायत । अधिकता । प्रचुरता । ३. बैल या साँड़ की गरदन के ऊपर का डिल्ला । कूबड़ ।

ठाटना—क्रि० स० [हिं० ठाठ + ना (प्रत्य०)] १. रचना । बनाना । निर्मित करना । संयोजित करना । उ०—बालक को तन ठाटिया निकट सरोवर तीर । सुर नर मुनि सब देखहिं साहेब धरेउ सरीर ।—कबीर (शब्द०) । २. अनुष्ठान करना । ठानना । करना । आयोजन करना । उ०—(क) महतारी को कह्यो न मानत कपट चतुरई ठाटी ।—सूर (शब्द०) । (ख) पावन बैठि पेड़ एइ काटा । सुख महँ सोक ठाठ धरि ठाटा ।—तुलसी (शब्द०) ३. सुसज्जित करना । सजाना । सँवारना ।

ठाटबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाट + फ़ा० बंदी] छाजन या परदे आदि के लिये फूस और बाँस की फट्टियों आदि को परस्पर जोड़कर ढाँचा बनाने का काम । २. इस प्रकार का ढाँचा । ठाट । टट्टर ।

ठाटबाट—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट + बाट (=राह, तरीका)] १. सजावट । बनावट । सजधज । २ तड़क भड़क । आडंबर । शान शौकत । जैसे,—आज बड़े ठाट बाट से राजा की सवारी निकली ।

ठाटर—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] १. बाँस की फट्टियों और फूस आदि को जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा जो छाजन या परदे के काम में आता है । ठाट । टट्टर । टट्टी । २. ठठरी । पंजर । ३ ढाँचा । ४. कबूतर आदि के बैठने की छतरी जो टट्टर के रूप में होती है । ५. ठाटबाट । बनाव । सिंगार । सजावट । उ०—ठठिरिन बहुतय ठाटर कीन्ही । चली अहीरिन काजर दीन्ही ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाट] ठट । समूह । श्रेणी । उ०—अस रथ रेंगि चलइ गज ठाटी । बोहित चले समुद्र गे पाटी ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाठ†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] दे० 'ठाट' ।

ठाठा†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] दे० 'ठाठ' ।

ठाठना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठाटना' ।

ठाठर[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० ठाठरी] ढाँचा । ठठरी । उ०—पाए बौरा जीव चलावा । निकसा जिव ठाठरी पड़ावा ।—कबीर सा०, पृ० ५६३ । दे० 'ठाटर' ।

ठाठर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] नदी में वह स्थान जहाँ अधिक गहराई के कारण बाँस या लग्गी न लगे ।—(मल्लाह) ।

ठाढ़ा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ठाढ़] खेत की वह जोताई जिसमें एक बार जोतकर फिर दूसरे बार जोतते हैं ।

ठाढ़ा[2]—वि० [वि० स्त्री० ठाढ़ी] दे० 'ठाढ़ा' । उ०—नंददास प्रभु जहीं जहीं ठाढ़े होत, तहीं तहीं लटक लटक काहू सों हाँ करी म्यों ना करी ।—नंद०, ग्रं०, पृ० ३४३ ।

ठाढ़†—क्रि० [हिं०] दे० 'ठाढ़ा' । उ०—ठाढ़ रहा अति कंपित गाता ।—मानस, ६।६४ ।

ठाढ़ा†(पु)—वि० [सं० स्थातृ (=जो खड़ा हो)] १ खड़ा । दंडायमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—रहना ।

२. जो पिसा या कुटा न हो । समूचा । साबित । उ०—भूँजि समोसा घिउ महँ काढ़े । लौंग मिर्च तेहि भीतर ठाढ़े । जायसी (शब्द०) । ३ उपस्थित । उत्पन्न । पैदा । उ०—कीन चहत लीला हरि जबहीं । ठाढ़ करत हैं कारन तबहीं ।—विश्राम (शब्द०) ।

मुहा०—ठाढ़ा देना = स्थिर रखना । ठहराना । रखना । टिकाना उ०—बारह वर्ष दयो हम ठाढ़ो यह प्रताप बिनु जाने । अब प्रगटे वसुदेव सुवन तुम गर्ग बचन परिमाने ।—सूर (शब्द०) ।

ठाढ़ा[2]—वि० हट्टा कट्टा । हृष्ट पुष्ट । बली । दृढ़ांग । मजबूत ।

ठाढ़ेश्वरी—संज्ञा पुं० [हिं० ठाढ़ सं० ईश्वर + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो दिन रात खड़े रहते हैं । वे खड़े ही खड़े खाते पीते तथा दीवार आदि का सहारा लेकर सोते हैं ।

ठाढ़र‡—संज्ञा पुं० [देश०] रार । झगड़ा । मुठभेड़ । उ०—देव आपनों नहीं सँभारत करत इंद्र सो ठाढ़र ।—सूर (शब्द०) ।

ठान[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण, ठाणु] स्थान । ठाँव । जगह । उ०—तब तबीब तसलीम करि, लै घरि आइ लुहान । नव दीहे सिर झल्लयो, ढँढोलन गय ठान ।—पृ० रा०, ४।६ । (ख) राजे लोक सब कहे तू आपना । जब कास नहिं पाया ठाना ।—दक्खिनी०, पृ० १०४ ।

ठान[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुष्ठान] १. अनुष्ठान । कार्य का आयोजन । शुभारंभ । काम का छिड़ना । २. छेड़ा हुआ काम ।

कार्य । उ०—जानती इतेक तो न ठानती अठान ठान भूलि पग प्रेम के न एक पग डारती ।—हनुमान (शब्द०) । ३ चेष्टा । मुद्रा । अंगस्थिति या संचालन का ढंग । अंदाज । उ०—पाछे बंक चितै मधुरै हँसि घात किए उलटे सुठान सों ।—सूर (शब्द०) । ४. दृढ़ निश्चय । दृढ़ संकल्प । पक्का इरादा । उ०—क्यों निर्दोषियों को हलाकान करने की ठान ठानते हो ?—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४६७ ।

मुहा०—ठान ठानना = दृढ़ निश्चय करना । पक्का इरादा करना ।

ठानना†—क्रि० स० [सं० अनुष्ठान, हिं० ठान अथवा सं० स्थापन > प्रा० ठावन, > ठाव + ना (प्रत्य०)] १ किसी कार्य को तत्परता के साथ आरंभ करना । दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ करना । अनुष्ठित करना । छेड़ना । जैसे, काम ठानना, झगड़ा ठानना, बैर ठानना, युद्ध ठानना, यज्ञ ठानना । उ०—(क) तब हरि और खेल इक ठान्यो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८५ । (ख) तिन सो कह्यो पुत्र हित हम मख हम दोनो हैं ठानी ।—रघुराज (शब्द०) । २. (मन में) स्थिर करना । (मन में) ठहराना । निश्चित या ठीक करना । पक्का करना । चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करना । दृढ़ संकल्प करना । जैसे, मन में कोई बात ठानना, हठ ठानना । उ०—(क) सदा राम एहि प्रान समाना । कारन कौन कुटिल पन ठाना ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मैंने मन में कुछ ठान उनका हाथ पकड़ बोली ।—श्यामा०, पृ० ९८ ।

ठाना†(पु)—क्रि० स० [हिं० ठान] १ ठानना । दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ करना । छेड़ना । करना । उ०—काहे को सोहैं हजार करो तुम तो कबहूँ अपराध न ठायो ।—मतिराम (शब्द०) । २. मन में ठहराना । निश्चित करना । दृढ़तापूर्वक चित्त में धारण करना । पक्का विचार करना । उ०—विश्वामित्र दुखी ह्वै तँह पुनि करन महा तप ठायो ।—रघुराज (शब्द०) । वि० दे० 'ठयना' । ३. स्थापित करना । रखना । धरना । उ०—मुरली तऊ गोपालहि भावति । अति आधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नार नवावति । आपुन पौढ़ि अधर सज्या पर करपल्लव पदपल्लव ठावति ।—सूर (शब्द०) ।

ठाना^२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'थाना' ।

ठाम(पु)—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] १ स्थान । जगह । उ०—(क) इमर अपुरा को करओ वीरसख निज ठाम ।—कीर्ति०, पृ० ६० । (ख) जो चाहत जित जान उतै ही यह पहुँचावत । बचे बीच के गाम ठाम को नाम भुलावत ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७ ।

विशेष—दे० 'ठाँव' ।

२. अंगस्थिति या अंगसंचालन का ढंग । ठवनि । मुद्रा । अंदाज । ३ अंगेट । अंगलेट ।

ठायँ^१—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] दे० 'ठाँव', 'ठाँयँ^१' ।

ठायँ^२—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ठाँयँ^२' ।

ठार—संज्ञा पुं० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठड्ढ, ठड्ढ या देश०] १. गहरा जाड़ा । अत्यंत शीत । गहरी सरदी । २. पाला । हिम ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

ठार(पु)—[सं० स्थान, प्रा० ठाण; अप० ठाम, ठाव, ठाय] १. स्थान । ठौर । जगह । उ०—(क) राति दिवस करि चालीयउ, पुनरमइ दिवस पहुँतो तिणि ठार ।—बी० रासो, पृ० १०४ । (ख) आओ, तू सालिक राह दिवाने चलते न लाए बार । मुकाम राहे मंजिल बूझे उसका है किस ठार ।—दक्खिनी०, पृ० ५४ । २. खेत या खलिहान का वह स्थान जहाँ किसान अपने सामान आदि रखता है और देखरेख करता है ।

ठार‡—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० ठारि] दे० 'ठाढ़', 'ठाढ़ा' । उ०—(क) तन दाहत कर धोचहि तुरत, ठार रहत है सोई । आसन मारि बिचौरी होवै, तबहूँ भक्ति न होई ।—जग० श०, भा० २, पृ० ३३ । (ख) ठारि भेलिहि धनि आँगो न डोले ।—विद्यापति, पृ० ४९ ।

ठारै†—संख्या पुं०, वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अट्ठार, अट्ठारस, अट्ठारह] दे० 'अट्ठारह' । उ०—ठारै सेरु दुहोतरा अगहन मास सुजान ।—सुजान०, पृ० ७ ।

ठाला^१—संज्ञा स्त्री० [देशी ठलिय (=रिक्त), अथवा हिं० निठल्ला] १ व्यवसाय या काम धंधे का अभाव । जीविका का अभाव । बेकारी । बेरोजगारी । २. खाली वक्त । फुरसत । अवकाश ।

ठाला^२—वि० जिसे कुछ काम धंधा न हो । खाली । निठल्ला ।

ठाला—संज्ञा पुं० [देशी ठल्ल (= निर्धन), वा हिं० निठल्ला] १. व्यवसाय या काम धंधे का अभाव । बेकारी । रोजगार का न रहना । २. रोजी या जीविका का अभाव । आमदनी का न होना । वह दशा जिसमें कुछ प्राप्ति न हो । रुपए पैसे की कमी । जैसे,—आजकल बड़ा ठाला है, कुछ नहीं दे सकते ।

मुहा०—ठाले पड़ना = शून्यता, रिक्तता या खालीपन का अनुभव होना । ठाला बताना = बिना कुछ दिए चलता करना । धता बताना (दलाल) । बैठे ठाले = खाली बैठे हुए । कुछ काम धंधा न रहते हुए । जैसे,—बैठे ठाले यही किया करो, अच्छा है ।

यौ०—ठाला ठुलिया = खाली । रीता । छूँछा । उ०—नैन नचावत वधि मटुकिन को करिकै ठाला ठुलिया ।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० १९४ ।

ठालो†(पु)^१—वि० [देशी० ठलिय (= रिक्त), वा हिं० निठल्ला] १ खाली । जिसे कुछ काम धंधा न हो । निठल्ला । बेकाम । उ०—(क) ऐसी को ठाली बैठी है तोसों मूड़ चरावै । झूठी बात तुसी सी बिनु कन फटकत हाथ न आवै ।—सूर (शब्द०) । (ख) ठाली ग्वालि जानि पठए अलि कह्यो पछोरन छूछो ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) प्लेटफार्म पर ठाली बैठे समय की बरबादी अनुभव करने लगे ।—अस्मा०, पृ० ४३ ।

ठाली(पु)—संज्ञा स्त्री० [?] ढारस । भरोसा । आश्वासन । उ०—कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली, पर मेरे बनमाली को न काली ते छुड़ावहीं ।—रसखान०, पृ० ३० ।

ठावँ—संज्ञा स्त्री०, पुं० [हिं०] दे० 'ठाँव' ।

ठाव—संज्ञा पुं० [हिं०] ठाँव । स्थान । उ०—होरी सब ठावन लै राखी पूजत वै लै रोरी । घर के काठ डारि सब दीने पावत पीत व गोरी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४०७ ।

ठावना—क्रि० स० [हिं० ठाना] दे० 'ठाना'।

ठासा—संज्ञा पुं० [हिं० ठाँसना] लोहारों का एक औजार जिससे तंग जगह में लोहे की कोर निकालते और उभारते हैं। उ०—देवै ठासा बेहद परै सनवाती सीका। धारि खूँट मे चलै बियत एक होय रत्ती का।—पलटू० बानी, पृ० ११५।

यौ०—गोल ठासा = गोल सिरे का ठासा जिससे लोहे की चद्दर को गढ़कर गोला बनाते हैं।

ठाह[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान वा हिं० ठहरना] धीरे धीरे और अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय लगाकर गाने या बजाने की क्रिया।

विशेष—जब गाने या बजानेवाले लोग कोई चीज गाना या बजाना आरंभ करते हैं, तब पहले धीरे धीरे और अधिक समय लगाकर गाते या बजाते हैं। इसी को 'ठार' या 'ठाह' में गाना बजाना कहते हैं। आगे चलकर वह चीज क्रमश जल्दी जल्दी गाने या बजाने लगते हैं। जिसे दून, तिगून या चौगून कहते हैं। वि० दे० 'चौगून'।

२ स्थान। ठाँव। उ०—चल्यो जहाँ सब हथिनी ठाही। गज मकरव देखि तेहि माई।—घट०, पृ० २४१।

ठाह[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्ताघ (= छिछला)] दे० 'थाह'।

ठाहर†—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० ठहर] १. स्थान। जगह। उ०—शुक्रसुता जब आई बाहर। पाए बसन परे तेहि ठाहर।—सूर (शब्द०)। २ निवास स्थान। रहने या टिकने का स्थान। डेरा। उ०—रघुबर कह्यो लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।—तुलसी (शब्द०)।

ठाहरना†—क्रि० अ० [हिं० ठाहर] दे० 'ठहरना'। उ०—घर में सब कोइ बंकुडा मारहि गाल अनेक। सुंदर रण में ठाहरै सूर बीर को एक।—सुंदर ग्रं०, भा०२, पृ० ७३८।

ठाहरू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठाहर'।

ठाहरूपक—संज्ञा पुं० [सं० स्था+रूपक या देश०] मृदंग का एक ताल जो सात मात्राओं का होता है। इसमे और आड़ा चौताल मे बहुत थोड़ा भेद है।

ठाहीँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाह] दे० 'ठाँहीं'।

ठिंगना—वि० [हिं० हेठ + अंग] [वि० स्त्री० ठिंगनी] जो ऊँचाई में कम हो। छोटे कद का। छोटे डील का। नाटा। (जीवधारियों विशेषत मनुष्य के लिये)।

ठिक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया] धातु की चद्दर का कटा हुआ छोटा टुकडा जो जोड़ लगाने के काम में आवे। चिगली। चकती।

ठिक[2]Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'ठीक'। उ०—यातें यह ठिक जान्यो परै। अपनो विभौ आप विस्तरै।—घनानंद, पृ० २७५।

ठिक[3]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थितिक] ठहराव। स्थिरता। उ०—जासों नहीं ठहरै ठिक मान को, क्यो हठ कै सठ रूठनो ठानति।—घनानंद, पृ० १२४।

ठिकठानⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] दे० 'ठिकठैन'। उ०—पतेहू ठिकठान पैं देखति हौं उत सान। यह न सयानी देति हूँ पाती माँगत पान।—स० सप्तक, पृ० २४५।

ठिकठेकⓅ†—वि० [हिं०] ठीक ठीक। ढंग से। उ०—एक शरीर मैं अंग भए बहु एक, धरा पर धाम अनेका। एक शिला महि कोरि किए सब चित्र बनाइ धरे ठिकठेका।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६४६।

ठिकठैनⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक + ठयना] ठीक ठाक प्रबंध। आयोजन। उ०—आज कछू औरै भए ठए नए ठिकठैन। चित के हित के चुगल ये नित के होय न नैन।—बिहारी (शब्द०)।

ठिकठौर†—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना या ठीक + ठौर] टिकने लायक स्थान। ऐसा स्थान जहाँ आश्रय लिया जा सके।

ठिकड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठीकरा'।

ठिकना‡—क्रि० अ० [सं० स्थिति + √कृ > करण] ठिठकना। ठहरना। रुकना। अड़ना। उ०—रस भिजए दोऊ दुहुनि तउ ठिकि रहैं टरैं न। छबि सों छिरकत प्रेम रँग भरि पिचकारी नैन।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

ठिकरा†—संज्ञा पुं० [देशी ठिक्करिया] दे० 'ठीकरा'।

ठिकरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठिकरा] दे० 'ठीकरी'।

ठिकरौर—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जहाँ खपड़े, ठीकरे आदि बहुत पड़े हों।

ठिकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठीक] पाल के जमकर ठीक ठीक बैठने का भाव।—(लश०)।

ठिकान†—संज्ञा पुं० [हिं० टिकान] दे० 'ठिकाना'।

ठिकाना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० टिकान] १ स्थान। जगह। ठौर। २ रहने की जगह। निवासस्थान। ठहरने की जगह।

यौ०—पता ठिकाना।

३ आश्रय। स्थान। निर्वाह करने का स्थान। जीविका का अवलंब।

मुहा०—ठिकाना करना = (१) जगह करना। स्थान निश्चित करना। स्थान नियत करना। जैसे,—अपने लिये कहीं बैठने का ठिकाना करो। (२) टिकना। डेरा करना। ठहरना। (३) आश्रय ढूँढना। जीविका लगाना। नौकरी या काम धंधा ठीक करना। जैसे,—इनके लिये भी कहीं ठिकाना करो, खाली बैठे हैं। (४) ब्याह के लिये घर ढूँढना। ब्याह ठीक करना। जैसे,—इनका भी कहीं ठिकाना करो, घर बसे। ठिकाना ढूँढना = (१) स्थान ढूँढना। जगह तलाश करना। (२) रहने या ठहरने के लिये स्थान ढूँढना। निवास स्थान ठहराना। (३) नौकरी या काम धंधा ढूँढना। जीविका खोजना। आश्रय ढूँढना। (४) कन्या के ब्याह के लिये घर ढूँढना। वर खोजना। (किसी का) ठिकाना लगना = (१) आश्रयस्थान मिलना। ठहरने या रहने की जगह मिलना। उ०—सिपाही जो भागे तो बीच मे कहीं ठिकाना न लगा।—(शब्द०)। (२) जीविका का प्रबंध होना। नौकरी

या काम धंधा मिलना। निर्वाह का प्रबंध होना। जैसे,—इस चाल से तुम्हारा कहीं ठिकाना न लगेगा। ठिकाना लगाना = (१) पता चलाना। ढूँढ़ना। (२) आश्रय देना। नौकरी या काम धंधा ठीक करना। जीविका का प्रबंध करना। ठिकाने आना = (१) अपने स्थान पर पहुँचना। नियत वा वांछित स्थान पर प्राप्त होना। उ०—जो कोउ ताको निकट बतावै। धीरज धरि सो ठिकाने आवै।—सूर (शब्द०)। (२) ठीक विचार पर पहुँचना। बहुत सोच-विचार या बातचीत के उपरांत यथार्थ बात करना या समझना। जैसे, बुद्धि ठिकाने आना। उ०—हाँ इतनी देर के बाद अब ठिकाने आए।—(शब्द०)। (३) मूल तत्व पर पहुँचना। असली बात छेड़ना या कहना। प्रयोजन की बात पर आना। मतलब की बात उठाना। ठिकाने की बात = (१) ठीक बात। सच्ची बात। यथार्थ बात। प्रामाणिक बात। असली बात। (२) समझदारी की बात। युक्तियुक्त बात। (३) पते की बात। ऐसी बात जिससे किसी विषय में जानकारी हो जाय। ठिकाने न रहना = चंचल हो जाना। जैसे, बुद्धि ठिकाने न रहना, होश ठिकाने न रहना। ठिकाने पहुँचाना = (१) यथास्थान पहुँचाना। ठीक जगह पहुँचाना। (२) किसी वस्तु को लुप्त वा नष्ट कर देना। किसी वस्तु को न रहने देना। (३) मार डालना। ठिकाने लगना = (१) ठीक स्थान पर पहुँचना। वांछित स्थान पर पहुँचना। (२) काम में आना। उपयोग में आना। अच्छी जगह खर्च होना। उ०—चलो अच्छा हुआ, बहुत दिनों से यह चीज पड़ी थी, ठिकाने लग गई।—(शब्द०)। (३) सफल होना। फलीभूत होना। जैसे, मिहनत ठिकाने लगना। (४) परम धाम सिधारना। मर जाना। मारा जाना। ठिकाने लगाना = (१) ठीक जगह पहुँचाना। उपयुक्त वा वांछित स्थान पर ले जाना। (२) काम में लाना। उपयोग में अच्छी जगह खर्च करना। (३) सार्थक करना। सफल करना। निष्फल न जाने देना। जैसे, मिहनत ठिकाने लगाना। (४) इधर उधर कर देना। खो देना। लुप्त कर देना। गायब कर देना। नष्ट कर देना। न रहने देना। (५) खर्च कर डालना। (६) आश्रय देना। जीविका का प्रबंध करना। काम धंधे में लगाना। (७) कार्य को समाप्ति तक पहुँचाना। पूरा कराना। (८) काम तमाम करना। मार डालना।

४ निश्चित अस्तित्व। यथार्थता की संभावना। ठीक प्रमाण। जैसे,—उसकी बात का क्या ठिकाना ? कभी कुछ कहता है कभी कुछ। ५ दृढ़ स्थिति। स्थायित्व। स्थिरता। ठहराव। जैसे,—इस टूटी मेज का क्या ठिकाना, दूसरी बनवाओ।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग प्राय. निषेधात्मक या संदेहात्मक वाक्यों ही में होता है। जैसे,—रुपया तो तब लगावें जब उनकी बात का कुछ ठिकाना हो।

५ प्रबंध। आयोजन। बंदोबस्त। डौल। प्राप्ति का द्वार या ढंग। जैसे,—(क) पहले खाने पीने का ठिकाना करो, और बातें पीछे करेंगे। (ख) उसे तो खाने का ठिकाना नहीं है। उ०—दो करोड़ रुपए साल की आमदनी का ठिकाना हुआ।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ठिकाना लगना = प्रबंध होना। आयोजन होना। प्राप्ति का डौल होना। ठिकाना लगाना = प्रबंध करना। डौल लगाना।

६ पारावार। अंत। हद। जैसे,—(क) वह इतना झूठ बोलता है जिसका ठिकाना नहीं। (ख) उसकी दौलत का कहीं ठिकाना है ?

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राय. निषेधार्थक वाक्यों ही में होता है।

ठिकाना[2]—क्रि० स० [हिं० ठिकना] १ ठहराना। अड़ाना। स्थित करना। २. किसी अन्य की वस्तु को गुप्त रूप से अपने पास रख लेना या छिपा लेना।

ठिकानेदार—संज्ञा पुं० [हिं० ठिकाना + दार (प्रत्य०)] १ किसी छोटे भूभाग का अधिपति। जागीरदार। २ स्वामी। मालिक।

ठिगना—वि० [हिं० ठिंगना] नाटा। छोटे कद का। दे० 'ठिंगना'। उ०—इंस्पेक्टर अधेड़, साँवला, लंबा आदमी था, कौड़ी की सी आँखें, फूले हुए गाल और ठिगना कद।—गबन, पृ० २८३।

ठिठकना—क्रि० अ० [सं० स्थित + करण या देश०] १ चलते चलते एकबारगी रुक जाना। एकदम ठहर जाना। उ०—तनिक ठिठक, कुछ मुड़कर दाएँ, देख अजिर में उनकी ओर।—साकेत, पृ० ३६८। २ अंगों की गति बंद करना। स्तंभित होना। न हिलना न डोलना। ठक रह जाना।

ठिठरना—क्रि० अ० [सं० स्थित या हिं० ठार अथवा सं० शीत + स्तृ > सरण] अधिक शीत से संकुचित होना। सरदी से ऐंठना या सिकुड़ना। जाड़े से अकड़ना। बहुत अधिक ठंढ खाना। जैसे, हाथ पाँव ठिठरना।

ठिठुरन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठिठरना] ठिठरने या ठरने का भाव। जाड़े की अधिकता से अंगों की सिकुड़न। ठरन। उ०—दर व दीवार सब बरफ ही बरफ और ठिठुरन इस कयामत की।—सैर०, पृ० १२।

ठिठुरना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठिठरना'।

ठिठोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठोली] दे० 'ठठोली'। उ०—वाह का बोली है कि रोने में भी ठिठोली है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४।

ठिन[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्थिति (= स्थान)] स्थान। स्थल। उ०—पाँच पचीस एक ठिन आहीं, जुगुति ते एह समुझाव।—जग० बा०, भा० २, पृ० २०।

ठिन[2]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] छोटे बच्चों के द्वारा रह रहकर रोने की ध्वनि की तरह उत्पन्न आवाज।

मुहा०—ठिन ठिन करना = रोने की सी ध्वनि करना। रह रह कर धीरे धीरे रुदन का प्रयास करना। (लि०)।

ठिनकना—क्रि० अ० [अनुध्व०] १ बच्चों का रहकर रोने का सा शब्द निकालना। २. ठसक से रोना। रोने का नखरा करना। (स्त्रि०)।

ठिया†—संज्ञा पुं० [सं० स्थित] १. गाँव की सीमा का चिह्न। हद का पत्थर या लट्ठा। २. चाँड। थूनी। ३. दे० 'ठीहा'।

ठिर—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर वा स्तब्ध] १. गहरी सरदी। कठिन शीत। गहरी ठंड। पाला।

क्रि० प्र०—पड़ना।

२. शीत से ठिठुरने की स्थिति या भाव।

क्रि० प्र०—जाना।

ठिरना†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठिर] दे० 'ठरन', 'ठिठरन'।

ठिरना[1]—क्रि० स० [हिं० ठिर] सरदी से ठिठुरना। जाड़े से अकड़ना।

ठिरना[2]—क्रि० अ० गहरा जाड़ा पड़ना। अत्यंत ठंढ पड़ना।

ठिलना—क्रि० अ० [हिं० ठेलना] १. ठेला जाना। ढकेला जाना। बलपूर्वक किसी ओर खिसकाया या बढ़ाया जाना। उ०—फिरैं घर वज्जिय झार करार। ठिलें न ठिलाइ न मन्निय हार।—पृ० रा०, १६।२२१। २ बलपूर्वक बढ़ना। वेग से किसी ओर झुक पड़ना। घुसना। धँसना। उ०—दक्खिन ते उमड़े दोउ भाई। ठिले दोंह दल पुहिम हिलाई।—लाल (शब्द०)। † ३ बैठना। जमना। स्थिर होना।

ठिलाठिल†—क्रि० वि० [हिं० ठिलना] एक पर एक गिरते हुए। धक्कमधक्का करते हुए। घने समूह और बड़े वेग के साथ। उ०—झिलमिल फौज ठिलाठिल धावै। चहुँ दिश छोर छुवन नहिं पावै।—लाल (शब्द०)।

ठिलाना—क्रि० अ० [हिं० ठिलना] ठेला जाना। हटाया जाना। उ०—फिरैं घर वज्जिय झार करार। ठिले न ठिलाइ न मन्निय हार।—पृ० रा०, १६।२२१।

ठिलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली, प्रा० ठाली (=हँड़िया)] छोटा घड़ा। पानी भरने का मिट्टी का छोटा बरतन। गगरी।

ठिलुआ—वि० [हिं० निठल्ला] निठल्ला। निकम्मा। बेकाम। जिसे कुछ काम धधा न हो। उ०—बहुत ठिलुए अपना मन बहलाने के लिये औरों की पचायत ले बैठते हैं।—श्रीनिवास दास (शब्द०)।

ठिल्ला†—संज्ञा पुं० [हिं० ठिलिया] [स्त्री० ठिलिया, ठिल्ली] घड़ा। पानी भरने या रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन। बड़ा गगरा।

ठिल्ली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठिलिया'।

ठिल्ही†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठिल्ली'।

ठिवना(पु)†—क्रि० स० [सं० स्थापय, प्रा० ठव्व] ठोंकना। उ०—सिधराव बंस दूजो सिपर उरस ठिवतो आवियो।—शिखर०, पृ० ७७।

ठिहार†—वि० [सं० स्थिर अथवा हिं० ठीहा] १ विश्वास करने योग्य। एतबार के लायक। २. निवास योग्य। स्थिर होने योग्य।

ठिहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहरना] ठहराव। निश्चय। इकरार। उ०—जैसी हुती हमते तुमते अब होयगी वैसियै प्रीति बिहारी। चाहत जौ चित में हित तो जनि बोलिय कूजन कुंजबिहारी।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

ठींगा†—वि० [हिं० धींगा] जबरदस्त। बलवान्। उ०—सीह थयो बंब सहिब्रो, ठींगारी संकरांत।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६।

ठीक—वि० [सं० स्थितिक या देश०] १. जैसा हो वैसा। यथार्थ। सच। प्रामाणिक। जैसे,—तुम्हारी बात ठीक निकली। २. जैसा होना चाहिए, वैसा। उपयुक्त। अच्छा। भला। उचित। मुनासिब। योग्य। जैसे,—(क) उनका बर्ताव ठीक नहीं होता। (ख) तुम्हारे लिये कहना ठीक नहीं है।

मुहा०—ठीक लगना = भला जान पड़ना।

३. जिसमें भूल या अशुद्धि न हो। शुद्ध। सही। जैसे,—आठ में से तुम्हारे कितने सवाल ठीक हैं? ४. जो बिगड़ा न हो। जो अच्छी दशा में हो। जिसमें कुछ त्रुटि या कसर न हो। दुरुस्त। अच्छा। जैसे,—(क) यह घड़ी ठीक करने के लिये भेज दो। (ख) हमारी तबीयत ठीक नहीं है।

यौ०—ठीक ठाक।

५ जो किसी स्थान पर अच्छी तरह बैठे या जमे। जो ढीला या कसा न हो। जैसे,—यह जूता पैर में ठीक नहीं होता।

मुहा०—ठीक आना = ढीला या कसा न होना।

६ जो प्रतिकूल आचरण न करे। सीधा। सुष्ठु। नम्र। जैसे,—(क) वह बिना मार खाए ठीक न होगा। (ख) हम अभी तुम्हें आकर ठीक करते हैं।

मुहा०—ठीक बनाना = (१) दंड देकर सीधा करना। राह पर लाना। दुरुस्त करना। (२) तग करना। दुर्गति करना। दुर्दशा करना।

७ जो कुछ आगे पीछे, इधर उधर या घटा बढ़ा न हो। जिसकी आकृति, स्थिति या मात्रा आदि में कुछ अंतर न हो। किसी निर्दिष्ट आकार, परिमाण या स्थिति का। जिसमें कुछ फर्क न पड़े। निर्दिष्ट। जैसे,—(क) हम ठीक ग्यारह बजे आवेंगे। (ख) चिड़िया ठीक तुम्हारे सिर के ऊपर है। (ग) यह चीज ठीक वैसी ही है।

मुहा०—ठीक उतरना = जितना चाहिए उतना ही ठहरना। जाँच करने पर न घटना न बढ़ना। जैसे,—अनाज तौलने पर ठीक उतरा।

८ ठहराया हुआ। नियत। निश्चित। स्थिर। पक्का। तै। जैसे, काम करने के लिये आदमी ठीक करना, गाड़ी ठीक करना, भाड़ा ठीक करना, विवाह ठीक करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—ठीक ठाक।

ठीक[2]—क्रि० वि० जैसे चाहिए वैसे। उपयुक्त प्रणाली से। जैसे, ठीक चलना, ठीक पींडना। उ०—(क) यह घोड़ा ठीक नहीं चलता। (ख) यह बनिया ठीक नहीं तौलता।

यौ०—ठीकमठाकों, ठीकमठीक=एकदम ठीक। पूर्णत: ठीक। बिलकुल दुरुस्त।

ठीक³—संज्ञा पुं० १. निश्चय। ठिकाना। स्थिर और असंदिग्ध बात। पक्की बात। दृढ़ बात। जैसे,—उनके आने का कुछ ठीक नहीं, आवें या न आवें।

यौ०—ठीक ठिकाना।

मुहा०—ठीक देना=मन में पक्का करना। दृढ़ निश्चय करना। उ०—(क) नीके ठीक दई तुलसी अवलंब बड़ी उर आखर दू की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कर विचार मन दीन्हीं ठीका। राम रजायसु आपन नीका।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस मुहावरे में 'ठीक' शब्द के आगे 'बात' शब्द लुप्त मानकर उसका प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है।

२. नियति। ठहराव। स्थिर प्रबंध। पक्का आयोजन। बंदोबस्त। जैसे,—खाने पीने का ठीक कर लो, तब कहीं जाओ।

यौ०—ठीक ठाक।

३. जोड़। मीजान। योग। टोटल।

मुहा०—ठीक देना, ठीक लगाना=जोड़ निकालना। योगफल निश्चित करना।

ठीकठाक¹—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] १. निश्चित प्रबंध। बंदोबस्त। आयोजन। जैसे,—इनके रहने का कहीं ठीक ठाक करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. जीविका का प्रबंध। काम धंधे का बंदोबस्त। आश्रय। ठौर ठिकाना। जैसे,—इनका भी कहीं ठीक ठाक लगाओ।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

३. निश्चय। ठहराव। पक्की बात। जैसे,—विवाह का ठीक ठाक हो गया?

ठीकठाक² वि०—अच्छी तरह दुरुस्त। बनकर तैयार। प्रस्तुत। काम देने योग्य।

ठीकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० ठीकरा] दे० 'ठीकरा'।

ठीकरा—संज्ञा पुं० [देशी ठिक्करिआ] [स्त्री० अल्पा० ठीकरी] १. मिट्टी के बरतन का फूटा टुकड़ा। खपरैल आदि का टुकड़ा। सिटकी।

मुहा०—(किसी के माथे या सिर पर) ठीकरा फोड़ना=दोष लगाना। कलंक लगाना। (जैसे किसी वस्तु या रुपए आदि को) ठीकरा समझना=कुछ न समझना। कुछ भी मूल्यवान् न समझना। अपने किसी काम का न समझना। जैसे,—पराए माल को ठीकरा समझना चाहिए। (किसी वस्तु का) ठीकरा होना=अधाधुंध खर्च होना। पानी की तरह बहाया जाना। ठीकरे की तरह बेमोल एवं तुच्छ होना।

२. बहुत पुराना बरतन। टूटा फूटा बरतन। ३ भीख माँगने का बरतन। भिक्षापात्र। ४. सिक्का। रुपया (लघु०)।

ठीकरी¹—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिक्करिआ] १ मिट्टी के बरतन का छोटा फूटा टुकड़ा। २ तुच्छ। निकम्मी चीज। ३. मिट्टी का तवा जो चिलम पर रखते हैं।

ठीकरी²—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिक्क (=पुरुषेंद्रिय)] उपस्थ। स्त्रियों की योनि का उभरा हुआ तल।

ठीका—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] १. कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा। जैसे, मकान बनवाने का ठीका, सड़क तैयार करने का ठीका। २. समय समय पर आमदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह आमदनी वसूल करके और उसमें से कुछ अपना मुनाफा काटकर बराबर मालिक को देता जायगा। इजारा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—पर लेना।

ठीकेदार—संज्ञा पुं० [हिं०] १. ठीके पर दूसरों से काम लेनेवाला व्यक्ति। ठीका देनेवाला। २. किसी काम को कुछ निश्चित नियमों के अनुसार पूरा करा देने का जिम्मा लेनेवाला व्यक्ति।

ठीटा—संज्ञा पुं० [हिं० ठेंठा] दे० 'ठेंठा'।

ठीठी—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] हँसी का शब्द।

यौ०—हाहा ठीठी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठीढ़ी ठाढ़ी Ⓟ—वि० [सं० स्थिति+स्थ] जिस हालत में हो उसी में स्थित। स्पदनहीन। निश्चेष्ट। उ०—सजि सिंगार कुंजन गई जहाँ नहीं बलबीर। ठीढ़ी ठाढ़ी भी तरुन बाढ़ी गाढ़ी पीरं।—स० सप्तक, पृ० ३८९।

ठीलना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठेलना'। उ०—मैं तो मूलि ज्ञान को आयो गयउ तुम्हारे ठीले।—सूर (शब्द०)।

ठीवनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ष्ठीवन] थूक। खखार। कफ। श्लेष्मा। उ०—आमिष अस्थिन चाम को आनन, ठीवन तामें भरो अधिकाई।—रघुराज (शब्द०)।

ठीस—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीस] रह रहकर होनेवाली पीड़ा। टीस। उ०—मृतक होय गुरु पद गहै ठीस करै सब दूर।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २६।

ठीहँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घोड़ों की हींस। हिनहिनाहट का शब्द। उ०—दुहुँ दल ठीहँ तुरंगनि दीनी। दुहुँ दल बुद्धि जुद्ध रस भीनी।—लाल (शब्द०)।

ठीह—संज्ञा पुं० [सं० स्था] दे० 'ठीहा'।

ठीहा—संज्ञा पुं० [सं० स्था] १. जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का कुंदा जिसका थोड़ा सा भाग जमीन के ऊपर रहता है।

विशेष—इस कुंदे पर वस्तुओं को रखकर लोहार, बढ़ई आदि उन्हें पीटते, छीलते या गढ़ते हैं। लोहार, कसेरे आदि धातु का काम करनेवाले इसी ठीहे में अपनी 'निहाई' गाड़ते हैं। पशुओं को खिलाने का चारा भी ठीहे पर रखकर काटा जाता है।

२. बढ़इयों का लकड़ी गढ़ने का कुंदा जिसमें एक मोटी लकड़ी में ढालुआँ गड्ढा बना रहता है। ३. बढ़इयों का लकड़ी चीरने का कुंदा जिसमें लकड़ी को कसकर खड़ा कर देते और चीरते हैं। ४. बैठने के लिये कुछ किया हुआ स्थान। बेदी। गद्दी। ५ दुकानदार के बैठने की जगह। ६. हद। सीमा। ७. चाँड़। थूनी। ८. उपयुक्त स्थान।

ठूंठ—संज्ञा पुं० [देश० ठुंठ या सं० स्थाणु] १. सूखा हुआ पेड़।

२ ऐसे पेड़ की खड़ी लकड़ी जिसकी डाल पत्तियाँ आदि कट या गिर गई हों। ३. कटा हुआ हाथ। ४ वह मनुष्य जिसका हाथ कटा हो। लूला।

ठुंठ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठुंठ] दे॰ 'ठुंठ'।

ठुँकना†(पु)—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ठोंकना] धीरे धीरे हथेली पटककर आघात पहुँचाना। हाथ मारना। उ॰—दिन दिन देन उरहनो आवैं ठुँकि ठुँकि करत लरैया।—सूर (शब्द॰)।

ठुक—संज्ञा स्त्री॰ [अनुध्व॰] किसी चीज पर कड़ी वस्तु से आघात करने का शब्द या ध्वनि।

ठुकठुक—संज्ञा स्त्री॰ किसी वस्तु को ठोकने से लगातार होनेवाली ध्वनि।

क्रि॰ प्र॰—करना।—लगाना।

ठुकना—क्रि॰ अ॰ [अनुध्व॰] १. ताडित होना। ठोंका जाना। पिटना। आघात सहना। २. आघात पाकर धँसना। गड़ना। जैसे, खूँटा ठुकना।

संयो॰ क्रि॰—जाना।

३. मार खाना। मारा जाना। जैसे,—घर पर खूब ठुकोगे। ४. कुश्ती आदि मे हारना। ध्वस्त होना। पस्त होना। ५. हानि होना। नुकसान होना। चपत बैठना। जैसे,—घर से निकलते ही २०) की ठुकी। ६. काठ में ठोंका जाना। कैद होना। पैर में बेड़ी पहनना। ७ दाखिल होना। जैसे, नालिश ठुकना। ८ बजना। ध्वनित होना। उ॰—कहुँ तिमत्त घर घुकत, लुकत कहुँ सुभट छात छल। ठुकत काल कहुँ पत्र, कुकत कहुँ सेन पाइ जल।—पृ॰ रा॰, ८।४२।

ठुकराना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ठोकर] १. ठोकर मारना। ठोकर लगाना। लात मारना। २ पैर से मारकर किनारे करना। तुच्छ समझकर पैर से हटाना। ३ तिरस्कार या उपेक्षा करना। न मानना। अनादर करना। जैसे, बात ठुकराना, सलाह ठुकराना।

ठुकराल†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ठक्कुर] १. दे॰ 'ठाकुर'। उ॰—मनमाने जे पलाणजइ। हिव चालो ठुकराल सौंमहा जानि।—बी॰ रासो, पृ॰ १६। २ नेपाल के एक वर्ग की उपाधि।

ठुकवाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ठोकना का प्रे॰ रूप] १ ठोंकने का काम कराना। पिटवाना। २ गड़वाना। धँसवाना। ३. संभोग कराना (अशिष्ट)।

ठुकाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठुकना] ठोंके जाने या मार खाने की स्थिति, भाव या क्रिया। जैसे,—सुना आज बड़ी ठुकाई हुई।

ठुठकना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'ठिठकना'। उ॰—ठुठकिय रक्किय कायर पाय। रनकत रुड खनकत जाय।—प॰ रासो, पृ॰ ४१।

ठुड्डी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुण्ड] चेहरे में होठ के नीचे का भाग। चिबुक। ठोढ़ी। हनु।

ठुड्डी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठड़ा (=खड़ा)] वह भुना हुआ दाना जो फूटकर खिला न हो। ठोर्री। जैसे, मक्के की ठुड्डी।

ठुनक ठुनक—संज्ञा स्त्री॰ [अनुध्व॰] ठिठककर चलने के कारण आभूषण से निकलनेवाली ध्वनि। उ॰—ठुमक चाल ठठि ठाठ सो, ठेल्यो मदन कटक्क। ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके लाल भटक्क।—ब्रजनिधि ग्र॰, पृ॰ ३।

ठुनकना[1]—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] १ दे॰ 'ठिनकना'। २. प्यार या दुलार के कारण नखरा करना। उ॰—सबको है आपको नहीं है? उसने ठुनकते हुए कहा।—आँधी, पृ॰ ३२।

ठुनकना[2]—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ठोंकना] धीरे से उँगली से ठोंक या मार देना।

ठुनकाना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ठोंकना] धीरे से ठोकना। उँगली से धीरे से चोट पहुँचाना।

ठुनकार—संज्ञा स्त्री॰ [अनुध्व॰] ठुनक की आवाज। उ॰—ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके लाल भटक्क।—ब्रज॰ ग्र॰, पृ॰ ३।

ठुनठुन—संज्ञा पुं॰ [अनुध्व॰] १ धातु के टुकड़ों या बरतनों के बजने का शब्द। २. बच्चों के रुक रुककर रोने का शब्द।

मुहा॰—ठुन ठुन लगाए रहना = बराबर रोया करना।

ठुनुकना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'ठुनकना'। उ॰—वह बालिका के सदृश ठुनुककर बोली।—कंकाल पृ॰ २१७।

ठुमक—वि॰ [अनुध्व॰] १ (चाल) जिसमें उमग के कारण जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलते हैं। बच्चों की तरह कुछ कुछ उछल कूद या ठिठक लिए हुए (चाल)। २ ठसकभरी (चाल)। जैसे, ठुमक चाल।

ठुमक, ठुमक, ठुमुक, ठुमक—क्रि॰ वि॰ [अनुध्व॰] जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए (बच्चों का चलना)। फुदकते या रह रहकर कूदते हुए (चलना)। जैसे, बच्चो का ठुमक ठुमक चलना। उ॰—(क) कोशल्या जब बोलन जाई। ठुमकि ठुमकि प्रभु चलहिं पराई।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) चलत देखि जसुमति सुख पावै। ठुमुक ठुमुक धरनो पर रेंगत जननी देखि दिखावे।—सूर (शब्द॰)।

ठुमकना, ठुमुकना—क्रि॰ अ॰ [अनुध्व॰] १ बच्चो का उमग में जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलना। उ॰—ठुमुकि चलत रामचद्र बाजत पैजनियाँ।—तुलसी (शब्द॰)। २ नाचने मे पैर पटककर चलना जिसमे घुँघुरू बजें।

ठुमका[1]—वि॰ [देश॰] [वि॰ स्त्री॰ ठुमकी] छोटे डील का। नाटा। ठेंगना। उ॰—जाति चली ब्रज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।—पद्माकर (शब्द॰)।

ठुमका[2]—संज्ञा पुं॰ [अनुध्व॰] [स्त्री॰ ठुमकी] झटका। थपका।—(पतग)।

ठुमकारना—क्रि॰ स॰ [देश॰] उँगली से डोरी खीचकर झटका देना। थपका देना।—(पतग)।

ठुमकी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] १ हाथ या उँगली से खीचकर दिया हुआ झटका। थपका।—(पतग)।

क्रि॰ प्र॰—देना।—लगाना।

२ ठिठक। रुकावट। ३. छोटी और खरी पूरी।

ठुमकी²—वि० स्त्री० नाटी। छोटे डील की। छोटी काठी की। उ०—जाति चली व्रज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।—पद्माकर (शब्द०)।

ठुमठुम—वि० क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ठुमक ठुमक'। उ०—भाई बंद सकल परिवारा। ठुमठुम पाव चले तेहि लारा।—घट०, पृ० ३७।

ठुमरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ एक प्रकार का छोटा सा गीत। दो बोलों का गीत जो केवल एक स्थान और एक ही अंतरे में समाप्त हो।

यौ०—सिरपरदा ठुमरी=एक प्रकार की ठुमरी जो 'अद्धा' ताल पर बजाई जाती है।

२. उड़ती खबर। गप। अफवाह।

क्रि० प्र०—उड़ना।

ठुरियाना¹—क्रि० अ० [हिं० ठार (=शीत)] ठिठुर जाना। सिकुड़ जाना। शीत से अकड़ जाना।

ठुरियाना²—क्रि० अ० [हिं० ठुर्री] ठुर्री होना। भुने हुए दाने का न खिलना।

ठुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठड्डा (=खड़ा) या देश०] वह भुना हुआ दाना जो भुनने पर न खिले।

ठुसकना—क्रि० अ० [अनुध्व०] १. दे० 'ठिनकना'। २. ठुस शब्द करके पादना। ठुसकी मारना।

ठुसकी—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] धीरे से पादने की क्रिया।

ठुसना—क्रि० अ० [हिं० ठूसना] १ कसकर भरा जाना। इस प्रकार समाना या अँटना कि कहीं खाली जगह न रह जाय। जैसे,—इस संदूक में कपड़े ठुसे हुए हैं। २ कठिनता से घुसना। ३. भर जाना। समाप्त हो जाना। न रहना। उ०—हिंदीपन भी न निकले, भाखापन भी ठुस जाय जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न पड़े।—ठेठ०, (उपो०), पृ० २।

ठुसवाना—क्रि० स० [हिं० ठूसना का प्रे०रूप] १. कसकर भरवाना। २. जोर से घुसवाना। ३. संभोग कराना। ठुकवाना (अशिष्ट०)।

ठुसाना—क्रि० स० [हिं० ठूसना] १ कसकर भरवाना। २ जोर से घुसवाना। ३. खूब पेट भर खिलाना (अशिष्ट०)।

ठूँग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चोंच। ठोर। २ चोंच से मारने की क्रिया। चोंच का प्रहार। ३ उँगली को मोड़कर पीछे निकली हुई जोड़ की हड्डी की नोक से मारने की क्रिया। टोला।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।

ठूँगना(पु)†—क्रि० स० [हिं० ठूँग+ना (प्रत्य०)] ठूँगना। चुगना। उ०—चौवह तीन्यू लोक सब ठूँगे सासै सास। दादू साधू सब जरे, सतगुरु के वेसास।—दादू० बानी, पृ० १५९।

ठूँगा—संज्ञा पुं० [हिं० ठूँग] दे० 'ठूँग'।

ठूँठ—संज्ञा पुं०[हिं० टूटना, या सं० स्थाणु, या देशी ठुंठ (=स्थाणु)] १. ऐसे पेड़ की खड़ी लकड़ी जिसकी डाल, पत्तियाँ आदि कट गई हों। सूखा पेड़। २. कटा हुआ हाथ। ठुंडा। उ०—विद्या विद्या हरण हित पढ़त होत खल ठूँठ। कह्यो निकारो मीन को घुसि आयो गृह ऊँट।—विश्राम (शब्द०)। ३ एक प्रकार का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, ईख आदि की फसल में लगता है।

ठूँठा—वि० [हिं० ठूँठ वा सं० स्थाणु] [वि०स्त्री० ठूँठी] १. बिना पत्तियों और टहनियों का (पेड़)। सूखा (पेड़)। जैसे, ठूँठा पेड़। २ बिना हाथ का। जिसका हाथ कटा हो। लूला।

ठूँठिया†—वि० [हिं० ठूँठ+इया (प्रत्य०)] १ लुंजा। लँगड़ा। २. हिजड़ा। नपुंसक।

ठूँठि—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठूँठ] ज्वार, बाजरे, अरहर आदि की जड़ के पास का डंठल जो खेत काटने पर पड़ा रह जाता है। खूँटी।

ठूँसना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठूसना'।

ठूँसा—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'ठोसा'। २ मुक्का। घूँसा।

ठूठ—वि० [देशी ठुंठ, हिं० ठूँठ, ठूठ] दे० 'ठूँठ'। उ०—दसा सुने निज बाग की लाल मानिहो झूठ। पावस रितु हूँ में लखे ठाढ़े ठाढ़े ठूठ।—मति० ग्रं०, पृ० ४४९।

ठूठी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजजामुन नाम का वृक्ष। वि० दे० 'राजजामुन'।

ठूनू—संज्ञा पुं० [देश०] पटवों की वह टेढ़ी कील जिसपर वे गहने अँटकाकर उन्हें गूँथते हैं।

विशेष—यह कील पत्थर में बैठाए हुए खूँटे के सिरे पर लगी होती है।

ठूसना—क्रि० स० [हिं० ठस] १. कसकर भरना। इतना अधिक भरना कि इधर उधर जगह न रहे। २. घुसेड़ना। जोर से घुसाना। ३ खूब पेट भरकर खाना। कसकर खाना।

ठेंगना—वि० [हिं० हेठ+अंग] [वि० स्त्री० ठेंगनी] छोटे डील का। जो ऊँचाई में पूरा न हो। नाटा।—(जीवधारियों, विशेषतः मनुष्य के लिये)।

ठेंगा—संज्ञा पुं० [हिं० हेठ+अग वा अँगूठा या देश०] १. अँगूठा। ठोसा।

मुहा०—ठेंगा दिखाना=(१) अँगूठा दिखाना। ठोसा दिखाना। धृष्टता के साथ अस्वीकार करना। बुरी तरह से नहीं करना। (२) चिढ़ाना। ठेंगे से=बला से। कुछ परवाह नहीं।

विशेष—जब कोई किसी से किसी बात की धमकी या कुछ करने या होने की सूचना देता है तब दूसरा अपनी बेपरवाही या निर्भीकता प्रकट करने के लिये ऐसा कहता है।

२. शिश्नेंद्रिय। (अशिष्ट)। ३ सोंटा। डंडा। गदका। जैसे,—जबरदस्त का ठेंगा सिर पर।

मुहा०—ठेंगा बजाना=(१)मारपीट होना। लड़ाई दंगा होना। (२) व्यर्थ की खटखट होना। प्रयत्न निष्फल होना। कुछ

काम न निकलना। उ०—जिसका काम उसी को साजे। और करें तो ठेंगा बाजे।—(शब्द०)।

४. वह कर जो बिक्री के माल पर लिया जाता है। चुंगी का महसूल।

ठँगुर—संज्ञा पुं० [हिं० ठेंगा (=सोटा)] काठ का लंबा कुंदा जो नटखट चौपायों के गले में इसलिये बाँध दिया जाता है जिसमें वे बहुत दौड़ और उछल कूद न सकें।

ठँघा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठेघा'।

ठँठ¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठेंठी'।

ठँठ²—वि० [हिं०] दे० 'ठेठ'।

ठँठा†—संज्ञा पुं० [हिं०] सुखा हुआ डंठल। उ०—रानी एक मजूर से बैलों के लिये जोन्हरी का ठँठा कटवा रही थी।—तितली, पृ० २३८।

ठँठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कान की मैल का लच्छा। कान की मैल। २. कान के छेद में लगाई हुई रूई, कपड़े आदि की डाट। कान का छेद मूँदने की वस्तु।

मुहा०—कान में ठेंठी लगाना=न सुनना।

३. शीशी बोतल आदि का मुँह बंद करने की वस्तु। डाट। काग।

ठँपी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० ठेंठी।

ठेक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] १ सहारा। बल देकर टिकाने की वस्तु। ओठगाने की चीज। २. वह वस्तु जो किसी भारी चीज को ऊपर ठहराए रखने के लिये नीचे से लगाई जाय। टेक। चाँड़। ३. वह वस्तु जिसे बीच में देने या ठोंकने से कोई ढीली वस्तु कस जाय, इधर उधर न हिले। पच्चड़। ४ किसी वस्तु के नीचे का भाग जो जमीन पर टिका रहे। पेंदा। तला। ५. टट्टियों आदि से घिरा हुआ वह स्थान जिसमें अनाज भरकर रखा जाता है। ६. घोड़ों की एक चाल। ७. छड़ी या लाठी की सामी। ८. धातु के बरतन में लगी हुई चकती। ९ एक प्रकार की मोटो महताबी।

ठेकना—क्रि० स० [हिं० टिकना, टेक] १. सहारा लेना। आश्रय लेना। चलने या उठने बैठने में अपना बल किसी वस्तु पर देना। टेकना। २. आश्रय लेना। टिकना। ठहरना। रहना। उ०—नौ, तेरह, चौबीस औ एका। पूरब दखिन कोन तेइ ठेका।—जायसी (शब्द०)। वि० दे० 'टेकना'।

ठेकवा बाँस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह बंगाल और आसाम में होता है और छाजन तथा चटाई आदि के काम में आता है। इसे देवबाँस भी कहते हैं।

ठेका¹—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना, टेक] १ ठेक। सहारे की वस्तु। २ ठहरने या रुकने की जगह। बैठक। अड्डा। ३ तबला या ढोल बजाने की वह क्रिया जिसमें पूरे बोल न निकाले जायँ, केवल ताल दिया जाय। यह बाएँ पर बजाया जाता है।

क्रि० प्र०—बजाना।—देना।

मुहा०—ठेका भरना=घोड़े का उछल कूद करना।

४. तबले का बायाँ। डुग्गी। ५. कौवाली ताल। ६. ठोकर। धक्का। थपेड़ा। उ०—तरल तरंग गंग की राजहिं उछलत छज लगि ठेका।—रघुराज (शब्द०)।

ठेका²—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] १ कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा। ठीका। जैसे, मकान बनवाने का ठेका। सड़क तैयार करने का ठेका। २ समय समय पर आमदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह आमदनी वसूल करके और कुछ अपना निश्चित मुनाफा काटकर बराबर मालिक को देता जायगा। इजारा। पट्टा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—पर लेना।

यौ०—ठेका पट्टा।

मुहा०—ठेका भेंट=वह नजर जो किसी वस्तु को ठेके पर लेनेवाला मालिक को देता है।

ठेकाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़ों की छपाई में काले हाशियों की छपाई।

ठेकाना¹—क्रि० स० [हिं० ठेकना का प्रे० रूप] ओठघाना। किसी वस्तु को किसी वस्तु के सहारे करना। सहारा देना।

ठेकाना²—संज्ञा पुं० [हिं० ठिकाना] दे० 'ठिकाना'।

ठेकुरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठेंकली'। उ०—कहू ठेकुरी ढारि कै वारि ढारै।—प० रासो, पृ० ५५।

ठेकेदार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठीकेदार'।

ठेकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] १ टेक। सहारा। २. चाँड़। ३. विश्राम करने के लिये ऊपर लिए हुए बोझ को कुछ देर कहीं टिकाने या ठहराने की क्रिया।

क्रि० प्र०—लगाना।—लेना।

ठेगड़ी(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] कुत्ता।—(डिं०)।

ठेगना(पु)—क्रि० स० [हिं० टेकना] १ टेकना। सहारा लेना। उ०—पाणि ठेगि मजूषा काहीं। रघुनायक चितयो गुरु पाहीं।—रघुराज (शब्द०)। २ रोकना। बरजना। मना करना। उ०—भँवर भुजग कहा सो पीया। हम ठेगा तुम कान न कीया।—जायसी (शब्द०)।

ठेगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेगना] टेकने की लकड़ी।

ठेघना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठेगना'।

ठेघनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेघना] टेकने की लकड़ी।

ठेघा†—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] टेक। चाँड़। वह खंभा या लकड़ी जो सहारे के लिये लगाई जाय। ठहराव। टिकान। उ०—(क) बरनहिं बरन गगन जस मेघा। तरहिं गगन बैठे जनु ठेघा।—जायसी (शब्द०)। (ख) विरह बजागि बीज को ठेघा।—जायसी ग्र०, पृ० १६१।

ठेघुना†—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीव, हिं० ठेहुना] दे० 'ठेहुना'।

ठेठ¹—वि० [देश०] १. निपट। निरा। बिलकुल। जैसे, ठेठ गँवार। २. खालिस। जिसमें कुछ मेलजोल न हो। जैसे, ठेठ बोली, ठेठ हिंदी। ३ शुद्ध। निर्मल। निर्लिप्त। उ०—मैं उपकारी ठेठ का सतगुरु दिया सोहाग। दिल दरपन दिखलाय के दूर

किया सब ताग।—कबीर (शब्द०)। ४. आरंभ। शुरू। उ०—मैं ठेठ से देखता आता हूँ कि आप मुझको देखकर जलते हैं।—श्रीनिवास दास (शब्द०)।

ठेठ²—संज्ञा स्त्री० सीधी सादी बोली। वह बोली जिसमें साहित्य अर्थात् लिखने पढ़ने की भाषा के शब्दों का मेल न हो।

ठेठर†—संज्ञा पुं० [अं० थिएटर] दे० 'थिएटर'।

ठेना†—क्रि० अ० [?] १ ठहरना। रुकना। २ अकड़ना। ऐंठना। उ०—नाहक का झगड़ा मोल लेना है, सेतमेत का ठेना है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५४।

ठेप¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने चाँदी का इतना बड़ा टुकड़ा जो भठी में आ सके।—(सुनार)।

विशेष—सुनार सोना या चाँदी गायब करने के लिये उसे इस प्रकार भटी में लेते हैं।

क्रि० प्र०—चढाना।—लगाना।

ठेप²—संज्ञा पुं० [सं० दीप] दीपक। चिराग।

ठेपी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. डाट। काग जिससे बोतल वा किसी बरतन का मुँह बंद किया जाता है। २. छोटा ढँकना।

ठेर†—संज्ञा पुं० [हिं० ठहर] ठहराव। रुकाव का स्थान। टेक। उ०—पद नवकल रो ठेर पुणीजै, गीत सतखणो मध गुणी जै।—रघु० रू०, पृ० १३७।

ठेलना—क्रि० स० [हिं० टलना या अप० √ठिल्ल] १ ढकेलना। धक्का देकर आगे बढ़ाना। रेलना।

संयो० क्रि०—देना।

यौ०—ठेलठाल, ठेलमठेल=धक्कम धक्का। ठेलाठेल। ठेलमेल=एक पर एक आगे बढ़ते हुए। ठेलाठेली=धक्कम धक्का।

२. जबर्दस्ती करना। बलात् किसी को धकियाते हुए आगे बढ़ना।

ठेला—संज्ञा पुं० [हिं० ठेलना] १. बगल से लगा हुआ धक्का जिसके कारण कोई वस्तु खिसककर आगे बढ़े। पार्श्व का आघात। टक्कर। २. छिछली नदियों में चलनेवाली नाव जो लग्गी के सहारे चलाई जाती है। ३. बहुत से आदमियों का एक के ऊपर एक गिरना पड़ना। धक्कम धक्का। ऐसी भीड़ जिसमें देह से देह रगड़ खाय। रेला। ४ एक प्रकार की गाड़ी जिसे आदमी ठेल या ढकेलकर चलाते हैं।

यौ०—ठेलागाड़ी।

ठेलाठेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेलना] बहुत से आदमियों का एक के ऊपर एक गिरना पड़ना। रेला पेल। धक्कम धक्का। उ०—ठानि ब्रह्म ठाकुर ठगोरिन की ठेलाठेलि मेला के मझार हित हेला कै भगो गयो।—पद्माकर (शब्द०)।

ठेवका†—संज्ञा पुं० [सं० स्थापक] वह स्थान जहाँ खेत सींचने के लिये पुरवट का पानी गिराया जाता है।

ठेवकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेवका] किसी लुढ़कनेवाली वस्तु को अड़ाने या टिकाने की जगह या वस्तु।

ठेस—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ आघात। चोट। धक्का। ठोकर। उ०—शीशए दिल पर संगेफिराक की ऐसी ठेस लगी कि चकनाचूर हो गया।—फिसाना०, भा० १, पृ० १२।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।—लगाना।

२. सहारा। टेक।

ठेसना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठूसना'।

ठेसमठेस—क्रि० वि० [हिं० ठेस] सब पालों को एकबारगी खोले हुए (जहाज का चलना)।—(लश०)।

ठेहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह छोटी सी लकड़ी जो पुरानी चाल के दरवाजों के पल्लों की चूल के नीचे गड़ी रहती है और जिसपर चूल घूमती है।

ठेही—संज्ञा स्त्री० [देश०] मारी हुई ईख।

ठेहुका†—संज्ञा पुं० [हिं० ठेक] वह जानवर जिसके पिछले घुटने चलते समय आपस में रगड़ खाते हों।

ठेहुना†—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीवान्] [स्त्री० ठेहुनी] घुटना।

ठेहुनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेहुना] हाथ की कुहनी।

ठैंकर—संज्ञा पुं० [देश०] नीबू का सा एक खट्टा फल जिसे हलदी के साथ उबालकर हलका पीला रंग बनाते हैं।

ठैन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान, हिं० ठाँय] जगह। स्थान। बैठने का ठाँव। उ०—क्रीड़त सघन कुंज वृंदावन बंसीवट जमुना की ठैन।—सूर (शब्द०)।

ठैयाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाँय] दे० 'ठाईं'।

ठैरना‡—क्रि० अ० [हिं० ठहरना] दे० 'ठहरना'। उ०—उनकी कोई बात हिकमत से खाली नहीं ठैरती।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १८४।

ठैराई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहराना] दे० 'ठहराई'।

ठैराना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठहराना'। उ०—(क) मैं बीजक दिखाकर इन्हें कीमत ठैरा लूँगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६०। (ख) हे सारथी, तपोवनवासियों के काम में कुछ विघ्न न पड़े इससे रथ यहीं ठैरा दो हम उतर लें।—शकुंतला, पृ० १२।

ठैलपैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेलना] दे० 'ठेलपेल'।

ठैहरना†—क्रि० अ० [हिं० ठहरना] रुकना। ठहरना। उ०—(कछु ठैहरि कैं) प्यारे, जो यैही गति करनी ही तौ अपनायौ क्यों?—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६५।

ठोंक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोकना] ठोंकने की क्रिया या भाव। प्रहार। आघात। २. वह लकड़ी जिससे दरी बुननेवाले सूत ठोंककर ठस करते हैं।

ठोंकना—क्रि० स० [अनुध्व० ठक ठक] १. जोर से चोट मारना। आघात पहुँचाना। प्रहार करना। पीटना। जैसे,—इसे हथौड़े से ठोंको।

संयो० क्रि०—देना।

२. मारना। पीटना। लात, घूँसे डंडे आदि से मारना। जैसे,—घर पर जाओ खूब ठोंके जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

३. ऊपर से चोट लगाकर धँसाना। गाड़ना। जैसे, कील ठोंकना, पत्थर ठोंकना। ४ (नालिश, अरजी आदि) दाखिल करना। दायर करना। जैसे, नालिश ठोंकना, दावा ठोकना।

संयो० क्रि०—देना ।

५ काठ में डालना । बेड़ियों से जकड़ना । ६. धीरे धीरे हथेली पटककर आघात पहुँचाना । हाथ मारना । जैसे, पीठ ठोंकना, ताल ठोंकना, बच्चे को ठोंककर सुलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—ठोक ठोंककर लड़ना = ताल ठोंककर लड़ना । डटकर लड़ना । जबरदस्ती झगड़ा करना । ठोंकना बजाना = हाथ से टटोलकर परीक्षा करना । जाँचना । परखना । जैसे,—लोग दमड़ी की हाँड़ी भी ठोंक बजाकर लेते हैं । उ०—(क) तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय । कोउ काहू का है नहीं (सब) देखा ठोंक बजाय ।—कबीर सा० स०, पृ० ९१ । (ख) ठोंकि बजाय लखे गजराज कहाँ लौं कहौं केहि सो रद काढ़े ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) नंद ब्रज लीजै ठोंकि बजाय । देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी जँह गोकुल के राय ।—सूर (शब्द०) । पीठ ठोंकना = दे० 'पीठ' का मुहा० । रोटी या बाटी ठोंकना = आटे की लोई को हाथ से ठोंकते हुए बढ़ाकर रोटी बनाना ।

७ हाथ से मारकर बजाना । जैसे, तबला ठोंकना । ८ कसकर अटकाना । लगाना । जड़ना । जैसे, ताला ठोंकना । ९. हाथ या लकड़ी से मारकर 'खट खट' शब्द करना । खटखटाना ।

ठोंकवा—संज्ञा पुं० [हिं० ठोंकना] मीठा मिले हुए आटे की मोटी पूरी । पूना ।

ठोंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १ चंचु । चोंच । २. चोंच की मार । ३ उँगली झुकाकर पीछे की ओर निकली हुई नोंक से मारने की क्रिया । उँगली की ठोकर । खुदका ।

ठोंगना—क्रि० स० [हिं० ठोंग] १ चोंच मारना । २ उँगली से ठोकर मारना । खुदका मारना ।

ठोंगा—संज्ञा पुं० [हिं० ठोंग] पतले कागज का नोकदार या गोला एक पात्र जिसमें दुकानदार सौदा देते हैं ।

ठोंचना—क्रि० स० [हिं० ठोंग] दे० 'ठोंगना' ।

ठोंठ—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] चोंच का अगला सिरा । ठोर । उ०—चाटुकारी का रोचक जाल फैलाकर उनकी रणकुशल कठफोरे की सी ठोंठ को बाँध दूँ ।—वीणा, (विज्ञापन) ।

ठोंठा—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो ज्वार, बाजरा और ईख को हानि पहुँचाता है ।

ठोंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चने के दाने का कोश । २ पोस्ते की ढोंढ़ी ।

ठो—अव्य० [देश० या हिं० ठौर] एक शब्द जो पूरबी हिंदी में संख्यावाचक शब्दों के आगे लगाया जाता है । संख्या । अदद । जैसे, एक ठो, दो ठो । इस अर्थ के बोधक अन्य शब्द गो, ठे आदि भी चलते हैं । जैसे, एक ठे, दू गो आदि ।

ठोकचा—संज्ञा पुं० [देश०] आम की गुठली के ऊपर का कड़ा छिलका या आवरण ।

ठोक(पु)—[हिं०] दे० 'ठोंक' । उ०—सुंदर मसकतिदार सों गुरु मथि काढ़े आगि । सदगुरु चकमक ठोकतें तुरत उठै कफ जागि ।—सुंदर० ग्रं०, भा०, २, पृ० ६७१ ।

ठोकना—क्रि० स० [हिं० ठोंकना] दे० 'ठोंकना' ।

यौ०—ठोक पीट करना = ठोकना पीटना । बारबार ठोकना । ठोक पीटकर गढ़ना = ठोक पीटकर दुरुस्त करना । तैयार करना । उ०—जब हम सोने को ठोक पीट गढ़ते हैं, तब मान मूल्य, सौंदर्य सभी बढ़ते हैं ।—साकेत, पृ० २१३ ।

ठोकर—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोकना] १. वह चोट जो किसी अंग विशेषतः पैर में किसी कड़ी वस्तु के जोर से टकराने से लगे । आघात जो चलने में कंकड़, पत्थर आदि के धक्के से पैर में लगे । ठेस ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—ठोकर उठाना = आघात या दुःख सहना । हानि उठाना । ठोकर या ठोकरें खाना = (१) चलने में एकबारगी किसी पड़ी हुई वस्तु की रुकावट के कारण पैर का चोट खाना और लड़खड़ाना । अडुकना । अडुककर गिरना । जैसे,—जो सँभलकर नहीं चलेगा वह ठोकर खाकर गिरेगा (२) किसी भूल के कारण दुःख या हानि सहना । असावधानी या चूक के कारण कष्ट या क्षति उठाना । जैसे,—ठोकर खावे, बुद्धि पावे (३) धोखे में आना । भूलचूक करना । चूक जाना । (४) प्रयोजन सिद्धि या जीविका आदि के लिये चारों ओर घूमना । हीन दशा में भटकना । इधर उधर मारा मारा फिरना । दुर्दशाग्रस्त हो कर घूमना । दुर्गति सहना । कष्ट सहना । जैसे,–यदि वह कुछ काम धंधा नहीं सीखेगा तो आप ही ठोकर खायगा । ठोकर खाता फिरना = इधर उधर मारा मारा फिरना । ठोकर लगना = किसी भूल या चूक के कारण दुःख या हानि पहुँचना । ठोकर लेना = ठोकर खाना । अडुकना । चलने में पैर का कंकड़ पत्थर आदि किसी कड़ी वस्तु से जोर से टकराना । ठेस खाना । जैसे, घोड़े का ठोकर लेना ।

२. रास्ते में पड़ा हुआ उभरा पत्थर या कंकड़ जिसमें पैर रुककर चोट खाता है ।

मुहा०—ठोकर जड़ाऊ कदम में = ठोकर बचाते हुए । रास्ते का कंकड़ पत्थर बचाते हुए । ठोकर पहाड़िया कदम में = धँसा हुआ पत्थर या कंकड़ बचाते हुए ।

विशेष—इन दोनों मुहावरों का प्रयोग पालकी ढोते समय पालकी ढोनेवाले कहार करते हैं ।

३. वह कड़ा आघात जो पैर या जूते के पंजे से किया जाय । जोर का धक्का जो पैर के अगले भाग से मारा जाय । जैसे,—एक ठोकर में होश ठीक हो जायँगे ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—ठोकर देना या जड़ना = ठोकर मारना । ठोकर खाना = पैर का आघात सहना । लात सहना । पैर के आघात से इधर उधर लुढ़कना । ठोकरों पर पड़ा रहना = किसी की सेवा करके और मार गाली खाकर निर्वाह करना । अपमानित होकर रहना ।

४ कड़ा आघात । धक्का । ५. जूते का अगला भाग । ६. कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी (जोड़) खड़े खड़े भीतर घुसता है ।

विशेष—इसमें विपक्षी का हाथ बगल में दबाकर दूसरे हाथ की तरफ से उसकी गरदन पर थपेड़ा देते हैं। और जिधर का हाथ बगल में दबाया रहता है उधर ही की टाँग से धक्का देते हैं।

ठोकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह गाय जिसे बच्चा दिए कई महीने हो चुके हों। इसका दूध गाढ़ा और मीठा होता है। बकेना गाय।

ठोकवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठोंकवा'।

ठोका†—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के हाथ का एक गहना जो चूड़ियों के साथ पहना जाता है। एक प्रकार की पछेली।

ठोठ¹—वि० [हिं० ठूँठ] १. जिसमें कुछ तत्व न हो। २. जड़। मूर्ख। गावदी।

ठोठ²—वि० [हिं० ठोंट] मूर्ख। जड़। व्यवहारशून्य। उ०—(क) दादू आदर भाव का मीठा लागै मोठ। बिन आदर व्यंजन बुरा भोजन वाला ठोठ।—राम० धर्म०, पृ० २७१। (ख) ठग कामेती ठोठ गुरु चुगल न कीजे सेण।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४८।

ठोठरा—वि० [हिं० ठूँठ] [वि० स्त्री० ठोठरी] किसी जमी या लगी हुई वस्तु के निकल जाने से खाली पड़ा हुआ। खाली। पोपला। उ०—सात थोम एहि बिधि लरे बान बाँधि उच्चत। रातिहु दिनहु टटाइ कै करे ठोठरे बन।—लाल (शब्द०)।

ठोड़†—संज्ञा पुं० [हिं० ठौर] स्थान। जगह। उ०—(क) आप टोड जे उमग न आया फिरता ठोड अनेक फिरे।—रघु० रू०, पृ० २५१। (ख) दोनूँ ठोड जैपुर जोधपुर नै जोर थांनूँ।—शिखर०, पृ० ८२।

ठोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] चेहरे में ओठ के नीचे का भाग जो कुछ गोलाई लिये उभरा होता है। ठुड्डी। चिबुक। दाढ़ी।

मुहा०—ठोड़ी पर हाथ धरकर बैठना=चिंता में मग्न होकर बैठना। ठोड़ी पकड़ना, ठोढ़ी में हाथ देना=(१) प्यार करना। (२) किसी चिढ़े हुए आदमी को स्नेह का भाव दिखाकर मनाना। मीठी बातों से क्रोध शांत करना। ठोढ़ी तारा=सुंदरी स्त्री की ठुड्डी पर का तिल या गोदना।

ठोढ़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठोड़ी'। उ०—है मुख अति छबि आगरो, कहा सरद को चंद। पै हित मान समान किय तुव ठोढ़ी को बुंद।—स० सप्तक, पृ० ३४८।

ठोप†—संज्ञा पुं० [अनु० टप् टप्] बूँद। बिंदु।

यौ०—ठोप ठोप, ठोपैठोप=बूँद बूँद। उ०—ज्यों ज्यों नयई होइ सुने संतन की बानी। ठोपै ठोप अघाय ज्ञान के सागर पानी।—पलटू०, पृ० ६१।

ठोर¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार मिठाई या पकवान जो मैदे की मोयनदार बढ़ाई हुई लोई को घी में तलने और चाशनी में पागने से बनता है। वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में इसका भोग प्रायः लगता है।

ठोर²—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] चोंच। चंचु। उ०—कँटिया दूध देवै नहिं कबहीं ठोर चलावै गोंछी।—सं० दरिया, पृ० १२७।

ठोरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोर] कोल्हू का वह स्थान जहाँ से रस अथवा तेल टपककर गिरता है। टोंटी। उ०—उचकूँ कुछ जाती, भरा टाड़ा हटाकर अलग रख लेती और खाली टाड़ा कोल्हू की टोंगी से लगा देती।—नई०, पृ० ८१।

ठोलना (पु)†—क्रि० स० [हिं० डुलाना] डुलाना। चलाना। उ०—दासी होई करि निरखहूँ, पाय पखारसुँ ठोलसुँ बाई।—बी० रासो, पृ० ५२।

ठोला¹—संज्ञा पुं० [देश०] रेशम फेरनेवालों का एक औजार जो लकड़ी की चौकोर छोटी पटरी (एक बित्ता लंबी एक बित्ता चौड़ी) के रूप में होता है। इसमें लकड़ी का एक खूँटा लगा रहता है जिसमें सूआ डालने के लिये दो छेद होते हैं।

ठोला²—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ठोली] मनुष्य। आदमी।—(उर्दू)। उ०—हुन ठोली साथर रख जाना।—घट०, पृ० ३९२।

ठोवड़ौ†—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण; अप० ठाव; राज० ठावड, ठोवड़ों] दे० 'ठौर'। उ०—सिधु परइ सउ जोयणे खिवियाँ चीजलियाँह। सुरहउ लोट महुबिक्याँ, भीनी ठोवड़ियाँह।—ढोला०, पृ० १९०।

ठोस—वि० [हिं० ठस] जिसके भीतर खाली स्थान न हो। जो भीतर से खाली न हो। जो पोला या खोखला न हो। जो भीतर से भरापूरा हो। जैसे, ठोस कड़ा। उ०—यह मूर्ति ठोस सोने की है।—(शब्द०)।

विशेष—'ठस' और 'ठोस' में अंतर यह है कि 'ठस' का प्रयोग या तो चद्दर के रूप की बिना मोटाई की वस्तुओं का घनत्व सूचित करने के लिये अथवा गीले या मुलायम के विरुद्ध कड़ेपन का भाव प्रकट करने के लिये होता है। जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा, गीली मिट्टी का सूखकर ठस होना। और, 'ठोस' शब्द का प्रयोग 'पोले' या 'खोखले' के विरुद्ध भाव प्रकट करने के लिये अतः लंबाई, चौड़ाई, मोटाईवाली (घनात्मक) वस्तुओं के संबंध में होता है।

२. दृढ़। मजबूत।

ठोस²—संज्ञा पुं० [देश०] घमंड। कुढ़न। डाह। उ०—इक हरि के दरसन बिनु मरियत अरु कुबजा के ठोसनि।—सूर (शब्द०)।

ठोसा—संज्ञा पुं० [देश०] अँगूठा। (हाथ का) ठेंगा।

मुहा०—ठोसा दिखाना=अँगूठा दिखाना। इनकार करना। ठोसे में=बला से। ठेंगे से। कुछ परवाह नहीं।

ठोहना (पु)†—क्रि० स० [हिं० टोहना, ढूँढ़ना] ठिकाना ढूँढ़ना। पता लगाना। खोजना। उ०—पायो कहाँ अब हौं कहि को हौं। ज्यों अपनो पद पाऊँ सो ठोहौं।—केशव (शब्द०)।

ठोहरा†—संज्ञा पुं० [हिं० निठोहर] अकाल। गिरानी। महँगी।

ठौंका—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक, हिं० ठाँव+क (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ सिंचाई के लिये तालाब, गड्ढे आदि का पानी दौरी से ऊपर उलीचकर गिराते हैं। ठेकर।

ठौड़†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठौर'। उ०—दिल्ली नयो दूप,

मन दीपो। किए हो टोढ़ सुहाग न कीपो।—रा० रू०, पृ० २६।

ठौनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठवनि'।

ठौर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठान, हिं० ठाँव+र (प्रत्य०)] १. जगह। स्थान। ठिकाना।

यौ०—ठौर ठिकाना=(१) रहने का स्थान। (२) पता ठिकाना।

मुहा०—ठौर कुठौर=(१) अच्छी जगह, बुरी जगह। बुरे ठिकाने। अनुपयुक्त स्थान पर। जैसे—(क) इस प्रकार ठौर कुठौर की चीज न उठा लिया करो। (ख) तुम पत्थर फेंकते हो किसी को ठौर कुठौर लग जाय तो? (२) बेमौका। बिना अवसर। ठौर न आना=समीप न आना। पास न फटकना। उ०—हरि को भजे सो हरिपद पावे। जन्म मरन तेहि ठौर न आवे।—सूर (शब्द)। ठौर न रहना=स्थान या जगह न मिलना। निराश्रय होना। उ०—कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और। हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४। ठौर मारना=तुरंत वध कर देना। उ०—तब शत्रुघ्न ने वाको ठौर मारयो। ता पाछे वाको सीस गाम के द्वार पै बाँध्यो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ९६। ठौर रखना=उसी जगह मारकर गिरा देना। मार डालना। ठौर रहना=(१) जहाँ का तहाँ रह जाना। पड़ रहना। (२) मर जाना। किसी के ठौर=किसी के स्थानापन्न। किसी के तुल्य। उ०—किबले के ठौर बाप बादशाह साहजहाँ ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।—भूषण (शब्द०)

२. मौका। घात। अवसर। उ०—ठौर पाय पवनपुत्र डारि मुद्रिका दई।—केशव (शब्द०)।

ठौहर—संज्ञा पुं० [हिं० ठौर] स्थान। ठाँव। ठौर। उ०—सुंदर भटक्यो बहुत दिन अब तू ठौहर आव फेरि न कबहूँ आइहै यह औसर यह डाव।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७००।

ठ्यापा—वि० [देश०] उपद्रवी। शरारती। उतपाती।

ड

ड—व्यंजनों में तेरहवाँ व्यंजन और टवर्ग का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारण आभ्यंतर प्रयत्न द्वारा तथा जिह्वामध्य को मूर्धा में स्पर्श करने से होता है।

डंक—संज्ञा पुं० [सं० दंश या दंशी] १. भिड़, बिच्छू, मधुमक्खी आदि कीड़ों के पीछे का जहरीला काँटा जिसे वे क्रोध में या अपने बचाव के लिये जीवों के शरीर में धँसाते हैं। उ०—उलटिया सुर प्रह डंक छेदन किया, पोखिया चंद्र तहाँ कला सारी।—राम० धर्म०, पृ० ३१६।

विशेष—भिड़, मधुमक्खी आदि उड़नेवाले कीड़ों के पीछे जो काँटा होता है, वह एक नली के रूप में होता है जिससे होकर जहर की गाँठ से जहर निकलकर चुभे हुए स्थान में प्रवेश करता है। यह काँटा केवल मादा कीड़ों को होता है।

क्रि० प्र०—मारना।

२. कलम की जीभ। निब। ३. डंक मारा हुआ स्थान। डंक का दाग।

डंक(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं०, प्रा० डक्क (=वाद्यविशेष) अथवा अनु०] डमरू। डिगडिगी। उ०—बाजीगर ने डंक बजाया। सब लोग तमाशे आया।—कबीर म०, पृ० ३३८।

डंकदार—वि० [हिं० डंक+फ़ा० दार] डंकवाला। काँटेदार।

डंकना—क्रि० अ० [अनु०] शब्द करना। गरजना। भयानक शब्द करना। उ०—दुपनाल हुंकिय तोप डंकिय पुनि धमंकिय चक्र।—सूदन (शब्द०)।

डंका[1]—संज्ञा पुं० [सं० ढक्का (=दुंदुभि का शब्द)] एक प्रकार का बाजा जो नाँद के आकार के ताँबे या लोहे के बरतनों पर चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है। पहले लड़ाई में डंके का जोड़ा ऊँटों और हाथियों पर चलता था और उसके साथ झंडा भी रहता था।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।—पिटना।—पीटना।

मुहा०—डंके की चोट कहना=खुल्लम खुल्ला कहना। सबको सुनाकर कहना। बेधड़क कहना। डंका डालना=(१) मुरगे से मुरगे को लड़ाना। (२) मुरगे का चोंच मारना। डंका देना या पीटना=(१) दे० 'डंका बजाना'। (२) मुनादी करना। डुग्गी फेरना। ढोंढी फेरना। डंका बजाना=हल्ला करके सबको सुनाना। सबपर प्रकट करना। प्रसिद्ध करना। घोषित करना। किसी का डंका बजना=किसी का शासन या अधिकार होना। किसी की चलती होना। उ०—बजे अभी साकेत, बजे हाँ, जय का डंका। रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लंका।—साकेत, पृ० ४०२।

यौ०—डंका निशान=राजाओं की सवारी में आगे बजनेवाला डंका और ध्वजा।

डंका[2]—संज्ञा पुं० [अं० डाक] जहाजों के ठहरने का पक्का घाट।

डंकिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी'।

डंकिनी बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [अ० दवामी+फ़ा० बंदोबस्त] स्थायी व्यवस्था। दे० 'दवामी बंदोबस्त'।

डंकी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कुश्ती का एक पेंच। २. मालखंभ की एक कसरत।

डंकी[2]—वि० [हिं० डंक] डंकवाला।

डंकुर—संज्ञा पुं० [हिं० टंका] एक प्रकार का पुराना बाजा जिससे ताल दिया जाता था।

डंख[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पलाश। ढाक।

डंस(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० डंक] विष का दाँत। उ०—ये देखो ममता नागन आई रे भाई आई। तिनें तो डस मारा रे मारा। —दक्खिनी०, पृ० ५८।

डंग—संज्ञा पुं० [देश०] अधपका छुहारा।

डंगम—संज्ञा पुं० [देश०] वृक्ष विशेष। एक पेड का नाम।

विशेष—यह पेड बहुत बडा होता है। हर साल जाड़े के दिनों मे इसके पत्ते झड जाते हैं। इसकी लकडी भीतर से भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत निकलती है। दारजिलिंग के आसपास तथा खसिया की पहाडियों में यह अधिक मिलता है।

डंगर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] चौपाया (जैसे, गाय, भैंस)। उ०—मानुष हो कोइ मुवा नहिं, मुवा सो डगर ढूर।—कबीर म०, पृ० ३६४।

डंगर[2]—वि० दे० 'डाँगर'।

डंगू ज्वर—संज्ञा पुं० [अं० डेंगू+सं० ज्वर] एक प्रकार का ज्वर जिसमे शरीर जकड़ उठता है और उसपर चकत्ते पड़ जाते हैं। इसे लँगड़ा ज्वर भी कहते हैं।

डंगोरी†—संज्ञा पुं० [देशी डंगा (= यष्टि)+हिं० ओरी (प्रत्य०)] डडोंकी। यष्टि। छडी। उ०—हथ डंगोरी पग खिसहिं डोकी देहि नीमाणु।—प्राण०, पृ० २५०।

डंटा†—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा] दे० 'डंडा'। उ०—साले मगाइयों ने ठीक सामने कपाल पर ही डटा चलाया था।—मैला०, पृ० ७५।

डंठल—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] छोटे पौधों की पेडी और शाखा। नरम छाल के झाडों और पौधों का धड़ और टहनी। जैसे, ज्वार का डठल, मूली का डठल।

डंठी†—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड] डठल।

डंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डंड] १ डडा। सोंटा। उ०—कथा पहिरि डंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०५। २. बाहुदंड। बाहँ। ३. मेरुदड। रीढ़। उ०—दरिया चढिया मगन को, मेरु उलँघ्या डड। सुख उपजा साँई मिला, भेटा ब्रह्म अखड।—दरिया० बानी, पृ० १५। ४ एक प्रकार का व्यायाम जो हाथ पैर के पंजों के बल पृथ्वी पर पट और सीधा पड़कर किया जाता है। हाथ पैर के पंजों के बल पर पड़कर की जानेवाली कसरत।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—डडपेल। डंड बैठक = डड और बैठक नाम की कसरत।

मुहा०—डड पेलना = खूब डंड करना।

५. दड। सजा। ६ अर्थदड। जुरमाना। वह रुपया जो किसी अपराध या हानि के बदले मे दिया जाय।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—डंड डालना = अर्थदड नियत करना। जुरमाना करना। डड भरना = हानि के बदले मे धन देना। जुरमाना या हरजाना देना। उ०—भूमि आस जो करहिं भरहि तो डड सेव करि।—पृ० रा०, ८।३।

७. घाटा। हानि। नुकसान।

मुहा०—डड पड़ना = नुकसान होना। व्यर्थ व्यय होना। जैसे,—कुछ काम भी नही हुआ, इतना रुपया डंड पड़ा। ८ घड़ी। दड। दे० 'दंड'। उ०—डड एक माया करु मोरें। जोगिनि होउँ चलों सँग तोरें।—पदमावत, पृ० ६५८।

डंडक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] दे० 'दंडक'—। उ०—परे आइ अब बनखँड माहीं। डंडक आरन बीझ बनाहीं।—पदमावत, पृ० १३२।

डंडकारन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दे० 'दडकारण्य'।

डंडण(पु)—वि० [सं० दण्डन] दंड देनेवाला। उ०—अरि डंडण नव खंड अवीहो।—रा० रू०, पृ० १२।

डंडताल—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड+ताल] एक प्रकार का बाजा जिसमें लबे चिमटे में मजीर जड़े रहते हैं। उ०—झाँझ मजीरा डडताल करताल बजावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४।

डंडधारी—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड+हिं० धारी] दंडी। संन्यासी। उ०—स्वामी कि तुम्हे ब्रह्मा कि ब्रह्मचारी। कि तुम्हें बामण पुस्तक कि डडधारी।—गोरख०, पृ० २२७।

डंडन(पु)—वि० [सं० दण्डन, प्रा० डंडण] दड देनेवाला। वह जो दड दे। उ०—पुनि गुज्जर बलिबड लोह अनडडनि डंडन।—पृ० रा०, १३।३०।

डंडना(पु)—क्रि० स० [सं० दण्डन, प्रा० डंडण] दंड देना। जुरमाना लगाना। दडित करना। उ०—डंडयौ (डंड्यूं) साहु साहाबदी मट्ट सहस हैवर सुबर।—पृ० रा०, २०।६९।

डंडपेल—संज्ञा पुं० [हिं० डड+पेलना] १ खूब डड करनेवाला। कसरती पहलवान। २ बलवान या तगड़ा आदमी।

डंडल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह बगाल और बरमा में पाई जाती है। यह मछली पानी के ऊपर अपनी आँखें निकालकर तैरती है। इसकी लबाई १८ इच होती है।

डंडवत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवत्] दे० 'दडवत्'। उ०—(क) सोऊँ तब करुँ डंडवत पूजूँ और न देवा।—कबीर श०, भाग १, पृ० ७२। (ख) डंडवी दौरि पौन्ह जेंह ताईं। आप डंडवत कीन्ह सबाईं।—जायसी (शब्द०)।

डंडा[1]—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] १ लकड़ी या बाँस का सीधा लंबा टुकड़ा। लबी सीधी लकड़ी या बाँस जिसे हाथ में ले सकें। सोंटा। मोटी छड़ी। लाठी।

मुहा०—डडा खाना = डडे की मार सहना। डंडा चलाना = डंडे से प्रहार करना। डडे खेलना = डडों की लड़ाई का खेल खेलना। (भादों बदी चौथ को पाठशालाओं के लड़के यह खेल खेलने निकलते हैं)। डडा चलाना = डंडे से प्रहार करना। डडे देना = विवाह सबंध होने के पीछे भादों बदी चौथ को बेटीवाले का बेटेवाले के यहाँ चाँदी के पत्तर चढ़े हुए कलम, दवात आदि भेजने की रीति करना। डडा बजाते फिरना = मारा मारा फिरना।

२ डाँड। डंडवारा। वह कम ऊँची दीवार जो किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय। चारदीवारी।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—डंडा खींचना = चारदीवारी उठाना।

डंडा(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [देशी डंडय (= रथ्या)] मार्ग। लीक राह। उ०—बाग वृच्छ बेली पर भंभा। सतगुरु सुरति बतावै डंडा।—घट०, पृ० २४७।

डंडाकरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दंडक वन। उ०—परेउ आइ सब बन खँड माहाँ। डंडाकरन बीझ बन जाहाँ।—जायसी (शब्द०)।

डंडाकुंडा—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा + कुंडा] बल वैभव। सत्ता। प्रभाव। उ०—उनके आँख मूँदते साल भी नहीं बीतेगा कि अँगरेजों का डंडाकुंडा उठ जाएगा।—किन्नर०, पृ० २३।

डंडाडोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंडा + डोली] लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के को दो आड़े डंडों पर बैठाकर इधर उधर फिराते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—खेलना।

डंडाधारी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + हिं० धारी] दंडी। सन्यासी। उ०—मोनी उदासी डंडाधारी।—प्राण०, पृ० ६२।

डंडानाच—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा + नाच] वह नृत्य जिसमें डंडा लड़ाते हुए लोग नाचते हैं। उ०—डंडा नाच कुछ अंशों में गुजरात देश के 'गरवा नृत्य' के सदृश होता है। मुख्य अंतर यही है कि डंडा नाच पुरुषों का है और गरबा स्त्रियों का।——शुक्ल अभि० ग्रं० (साहि०), पृ० १३६।

डंडाबेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बेड़ी और उसके साथ लगा लोहे का डंडा जिससे कैदी न भाग सके।

डंडारन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य, प्रा० डंडारण्ण] दे० 'दंडकारण्य'।

डंडाल—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा] नगाड़ा। दुंदुभि। डंका।

डंडिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंडी] १ दे० 'डाँडी–१६'। २. दे० 'डंडी'।

डंडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंडा] १ छोटी लंबी पतली लकड़ी। २ हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो मुट्ठी में लिया या पकड़ा जाता है। दस्ता। हत्था। मुठिया। जैसे, छाते की डंडी। ३ तराजू की वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटका लटकाकर पलड़े बाँधे जाते हैं। डाँडी। उ०—काहे की डंडी काहे का पलरा काहे की मारी टेनिया।—कबीर श०, भा० २, पृ० १५।

मुहा०—डंडी मारना = सौदा देने में चालाकी से कम तौलना।

४ वह लंबा डंठल जिसमें पत्ता, फूल या फल लगा होता है। नाल। जैसे, कमल की डंडी। पान की डंडी। उ०—कमलों के पत्ते जीर्ण होकर झड़ गए हैं, फूलों की कर्णिका और केसर भी गिर गई है, पाले के कारण उसमें डंडी मात्र शेष रह गई है।—हिं० प्र० चि०, पृ० १५। ५ फूल के नीचे का लंबा पतला भाग। जैसे, हरसिंगार की डंडी। ६ हरसिंगार का फूल। ७ आरसी नाम के गहने का वह छल्ला जो उँगली में पड़ा रहता है। ८. डंडे में बँधी हुई झोली के आकार की एक सवारी जो ऊँचे पहाड़ों पर चलती है। झप्पान। ९. लिंगेंद्रिय। १०. दंड धारण करनेवाला सन्यासी।

डंडी[2]—वि० [सं० द्वन्द्व] झगड़ा लगानेवाला। चुगलखोर।

डंडीमार—वि० [हिं०] टेनी मारनेवाला। सौदा कम तौलनेवाला।

डंडूर—संज्ञा पुं० [प्रा० डुंडुल्ल] दे० 'डंडूल'। उ०—अग्नि ज्वाल किन तन उठत, किन तन वरसै मेह। चक्र पवन डंडूर के कैतन कंकर खेह।—पृ० रा०, ६।५५।

डंडूल—संज्ञा पुं० [प्रा० ढुंढुल्ल (= घूमना, चक्कर लगाना)] वात्याचक्र। बवंडर। उ०—कर सेती माला जपैं, हिरदै बहै डंडूल। पग तौ पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल।—कबीर ग्रं०, पृ० ४५।

डंडौत—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डंड + सं० वत्, हिं० औत] दे० 'दंडवत्'। उ०—पलटू उन्हें डंडौत करो, वोही साहब मेरा है जी।—पलटू०, पृ० ५०।

डंबर—संज्ञा पुं० [सं०] १. आयोजन। आडंबर। ढकोसला। धूमधाम। २ विस्तार। उ०—उड्डि रेन डंबर अमर, दिप्यो सेन चहुआन।—पृ० रा०, ६।१३०। ३. समूह। उ०—कुवा वार्वड़ियूँ कि डंबर, बाड़ी बागू कि आडंबर।—रघु० रू०, पृ० २३७। ४ विलास। ५. एक प्रकार का चँदोवा। चदरछत।

यौ०—मेघडंबर = बड़ा शामियाना। दलबादल। अंबर डंबर = वह लाली जो संध्या के समय आकाश में दिखाई पड़ती है। उ०—बिनसत वार न लागई, ओछे जन की प्रीति। अंबर डंबर साँझ के ज्यों बारू की भीति।—स० सप्तक, पृ० ३१२।

डंबल—संज्ञा पुं० [अं० डंबेल] दे० 'डंबेल'।

डंबेल—संज्ञा पुं० [अं०] १. हाथ में लेकर कसरत करने की लोहे या लकड़ी की गुल्ली जिसके दोनों सिरे लट्टू की तरह गोल होते हैं। इसे हाथ में लेकर तानते हैं। यह आवश्यकतानुसार भारी और हलकी होती है। कुछ डंबेलों में स्प्रिंग भी लगी रहती हैं। २. वह कसरत जो इस प्रकार के लट्टू से की जाती है।

क्रि० प्र०—करना।

डंभ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ, प्रा० डंभ] दे० 'दिंभ[2]'। उ०—डंभ भनै मत मानियो सत कहौं परमारथ जानो।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २४।

डंस—संज्ञा पुं० [सं० दंश, प्रा० डंस] एक प्रकार का बड़ा मच्छर जो बहुत काटता है और जिसका आकार बड़ी मक्खी से मिलता जुलता होता है। डँस। वनमशक। जंगली मच्छर। उ०—देव विषय सुख लालसा डंस मसकादि खलु झिल्ली रूपादि सब सर्प स्वामी।—तुलसी (शब्द०) २ वह स्थान जहाँ डंक चुभा हो या साँप आदि विषैले कीड़ों का दाँत चुभा हो।

डँकरना†—क्रि० अ० [हिं० डकार] दे० 'डकारना'।

डँकारना†—क्रि० अ० [हिं० डकारना] डकार लेना। डकार आना।

डँकियाना†—क्रि० स० [हिं० डंक + आना (प्रत्य०)] डंक मारना।

डँकीला†—वि० [हिं० डंक + ईला (प्रत्य०)] डंकवाला।

डँकौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंक + औरी (प्रत्य०)] भिड़। बर्रे। ततैया। हड्डा।

डँगरा†—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गुल] खरबूजा ।

डँगरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डँगरा] लंबी ककड़ी । डाँगरी ।

डँगरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँगर (=दुबला)] एक प्रकार की चुड़ैल । डाइन । उ०—डाइन डँगरी नरन चबावत । गजन घुमाइ अकास पठावत ।—गोपाल (शब्द०) ।

डँगरी[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा बेंत ।

विशेष—यह बेंत पूर्वी हिमालय, सिक्किम, भूटान से लेकर चटगाँव तक होता है । यह सबसे मजबूत होता है और इसमें से बहुत अच्छी छड़ियाँ और डंडे निकलते हैं । टोकरे बनाने के काम में भी यह आता है ।

डँगवारा—संज्ञा पुं० [हिं० डगर (=बैल, चौपाया)] हल बैल आदि की वह सहायता जिसे किसान एक दूसरे को देते हैं । जिता ।

डँगौरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और चमकदार होती है ।

विशेष—इस पेड़ की लकड़ी से सजावट के सामान बहुत अच्छे बनते हैं । यह पेड़ आसाम और कछार में बहुतायत से होता है ।

डँटैया(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० डाँटना] डाँटनेवाला । डाँट बतानेवाला । घुड़कनेवाला । धमकानेवाला । उ०—साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै चहुँ ओर डँटैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

डँठरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डठल] दे० 'डठल' ।

डँड†—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड; प्रा० डड] एक प्रकार का व्यायाम । दे० 'डंड–४' ।

यौ०—डँडबैठक । डँडपेल ।

डँड़का†—संज्ञा पुं० [हिं० डडा] सीढ़ा का डडा ।

डँड़वारा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़+वार (= किनारा)] [स्त्री० अल्पा० डँड़वारी] वह कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय । दूर तक गई हुई खुली दीवार ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

मुहा०—डँडवारा खींचना=डँड़वारा उठाना ।

डँड़वारा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दक्खिन+वार (प्रत्य०)] दक्षिण का वायु । दखनहरा । दखिनैया ।

क्रि० प्र०—चलना ।

डँड़वारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़+वार (=किनारा)] कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाती है ।

मुहा०—डँड़वारी खींचना=डँड़वारी या चारदीवारी उठाना ।

डँड़वी(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दड या राजकर देनेवाला । करद । उ०—डँड़वी डाँड़ दीन्ह जँह ताईं । आप डडवत कीन्ह सवाईं ।—जायसी (शब्द०) ।

डँड़हरा†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की मछली जो बगाल, मध्यभारत और बर्मा मे पाई जाती है । यह तीन इंच लंबी होती है । २. लकड़ी या लोहे का लंबा डंडा जो दरवाजे का खुलना रोकने के लिये किवाड़ के पीछे लगाया जाता है ।

डँड़हरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी मछली जो आसाम, बंगाल, उड़ीसा और दक्षिण भारत की नदियों में पाई जाती है ।

डँड़हरी[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड+हिं० हरी (प्रत्य०)] टहनी ।

डँड़हिया—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा] वह डंडा जिससे बैलों की पीठ पर लदे हुए बोरे फँसाए रहते हैं ।

डँड़िया[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ी (=रेखा)] १. वह साड़ी जिसके बीच में लबाई के बल गोटे टाँककर लकीरें बनी हों । छड़ीदार साड़ी । उ०—(क) लाल चोली नील डँडिया संग युवतिन भोर । सूर प्रभु छबि निरखि रीझे मगन भो मन कोर ।—सूर (शब्द०) । (ख) नख सिख सजि सिंगार युवती तन डँड़िया कुसुमे बोरी की ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इसे प्रायः कुमारी लड़कियाँ पहनती हैं । कभी कभी यह रंग बिरंगे कई पाट जोड़कर बनाई जाती है ।

२ गेहूँ के पौधे में वह लबी सींक जिसमें बाल लगी रहती है ।

डँड़िया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़ (= अर्थदंड; सीमा)] १ महसूल वसूल करनेवाला । कर उगाहनेवाला । २. सीमा या हद पर कर उगाहनेवाला ।

डँड़िया[3]—संज्ञा स्त्री० [कुमा० डाँडी, नेपा० डाँडी(=डोली)] उ०—(क) आलहि बाँस कटाइन डँड़िया फँदाइन हो साधो ।—पलटू०, पृ० ४५ । (ख) छोटि मोटि डँड़िया चंदन कै हो, छोटे चार कहार ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६२ । २ दे० 'डाँड़ी' ।

डँड़ियाना—क्रि० स० [हिं० डाँड़ी] किसी कपड़े के दो या अधिक पाटों को सीकर जोड़ना । दो कपड़ों की लबाई के किनारों को एक मे सीना ।

डँड़ियारा गोला—संज्ञा पुं० [हिं० डडा+गोला] दोहरे सिरे का लंबा (तोप का) गोला । चठिया ।—(लश०) ।

डँडोर—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ी] सीधी लकीर ।

डँडूर डँडूल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डंडूर,' 'डडूल' ।

डँडोरना—क्रि० स० [अनु०] ढूँढ़ना । हिलोरकर ढूँढ़ना । उलट पलटकर खोजना । उ०—अबकै जब हम दरस पावैं देहि लाख करोर । हरि सो हीरा खोई कै हम रही समुद डँडोर ।—सूर (शब्द०) ।

डँभाना(पु)†—क्रि० स० [देश०] दगवाना । दाग दिलाना । उ०—करहउ कुडइ मनि थकइ पँग रासीमउ जाए । ऊकरडी डोका चुगइ अपस डँभायउ आंण । —ढोला०, दू० ३३६ ।

डँव†—संज्ञा पुं० [देश०] या हिं० दाँव] दाँव । मौका । युक्ति । जैसे, कोई डँव बैठ जाय तो काम होते क्या देर ।

डँवरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] वात का एक रोग जिसमें शरीर के जोड़ जकड़ जाते हैं और उनमे दर्द होता है । गठिया । उ०—अहंकार अति दुखद डँवरुआ । दभ कपट मद मान नहरुआ ।—तुलसी (शब्द०) ।

डँवरुआ साल—संज्ञा पुं० [सं० डमरू (=बाजा) +हिं० सालना] धातु या लकड़ी के दो टुकड़ों को मिलाने के लिये डमरू के समान एक प्रकार का जोड़।

विशेष—इसमें एक टुकड़े को एक ओर से चौड़ा और दूसरी ओर से पतला काटते हैं और दूसरे टुकड़े में उसी काट की नाप से गड्ढा करते हैं और उस कटे हुए अंश को उसी गड्ढे में बैठा देते हैं। यह जोड़ बहुत दृढ़ होता है और खींचने से नहीं उखड़ता।

डँवरू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू'। उ०—चँवर घट औ डँवरू हाथा। गौरा पारवती धनि साथा।—जायसी ग्रं०, पृ० ९०।

डँवाडोल—[हिं० डाँव डाँव+डोलना] अस्थिर। चंचल। विचलित। घबराया हुआ। जैसे, चित्त डँवाडोल होना। उ०—पावक पवन पानी भानु हिमवान जम काल लोकपाल मेरे डर डँवाडोल हैं।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—होना।

डँसना—क्रि० स० [सं० दशन, प्रा० डसण] दे० 'डसना'।

ड—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनि। शब्द। २ नगाड़ा। ३. वड़वाग्नि। ४ भय। ५. शिव (को०)।

डउआ†—संज्ञा पुं० [हिं० डोल] दे० 'डोल'।

डऊ†—वि० [हिं० डील] डील डौलवाला। वयस्क। बड़ा। जैसे,—इतने बड़े डऊ हुए, अक्ल नहीं आई।

डक¹—संज्ञा पुं० [अं० डॉक] १. एक प्रकार का पतला सफेद टाट (कनवास) जिससे छोटे दल के जहाजों के पाल बनाते हैं। २ एक प्रकार का मोटा कपड़ा।

डक²—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी बंदरगाह या नदी के किनारे एक घिरा हुआ स्थान, जहाँ जहाज आकर ठहरते हैं और जिसका फाटक पानी में बना होता है। २ अदालत में वह स्थान जहाँ अभियुक्त खड़े किए जाते हैं। कटघरा।

डकइत†—संज्ञा पुं० [हिं० डाका+इत (प्रत्य०)] दे० 'डकैत'।

डकई—संज्ञा पुं० [हिं० ढाका(=एक नगर)] केले की एक जाति जो ढाका में होती है।

डकना(पु)—क्रि० स० [हिं०] 'डाकना'। लाँघना। उ०—कोउक तरुनि गुनमय सरीर तन सहित चली डकि। मात पिता पति बंधु रहे मुकि न रहीं रुकि।—नद ग्रं०, पृ० २६।

डकरना—क्रि० अ० [हिं० डकार] १. दे० 'डकारना'। २. दे० 'डकराना'।

डकरा—संज्ञा पुं० [देश०] काली मिट्टी जो ताल की पेंदिया में पानी सूख जाने पर निकलती है और जिसमें दरार फटे होते हैं।

डकराना—क्रि० अ० [अनु०] बैल या भैंस का बोलना।

डकवाहा†—संज्ञा पुं० [हिं० डाक] डाक का चपरासी। डाकिया।

डकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पेट की वायु का एकबारगी ऊपर की ओर छूटकर कंठ से शब्द के साथ निकल पड़ने का शारीरिक व्यापार। मुँह से निकला हुआ वायु का उद्गार।

क्रि० प्र०—आना।—लेना।

विशेष—योग आदि के अनुसार डकार नाग वायु की प्रेरणा से आती है।

मुहा०—डकार न लेना =(१) किसी का धन या कोई वस्तु उड़ाकर पता न देना। चुपचाप हजम कर जाना। (२) कोई काम करके उसका पता न देना।

२. बाघ सिंह आदि की गरज। दहाड़। गुर्राहट।

क्रि० प्र०—लेना।

डकारना—क्रि० अ० [हिं० डकार+ना (प्रत्य०)] १ पेट की वायु को मुँह से निकालना। डकार लेना। २. किसी का माल उड़ाकर ले लेना। किसी की वस्तु चुपचाप मार लेना। हजम करना। पचा जाना। जैसे,—वह सब माल डकार जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

३. बाघ सिंह आदि का गरजना। दहाड़ना।

डकूरा†—संज्ञा पुं० [देश०] चक्र की तरह घूमती हुई वायु। बवंडर। चक्रवात। बगूला।

डकैत—संज्ञा पुं० [हिं० डाका+ऐत (प्रत्य०)] डाका मारनेवाला। जबरदस्ती माल छीननेवाला। लुटेरा।

डकैती—संज्ञा स्त्री० [हिं० डकैत] डकैत का काम। डाका मारने का काम। जबरदस्ती माल छीनने का काम। लूटमार। छापा।

डकौत—संज्ञा पुं० [देश०] भड्डर। भड्डरी। सामुद्रिक। ज्योतिष आदि का ढोंग रचनेवाला।

विशेष—इनकी एक पृथक् जाति है जो अपने को ब्राह्मण कहती है, पर नीच समझी जाती है।

डक्क(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिन'। उ०—सीत छुट्टे तुरी डक्क नद्द करी।—पृ० रा०, २४। २११।

डक्करना(पु)†—क्रि० अ० [अनु०] हुंकरना। ध्वनि करना। शब्द करना। उ०—बुभुक्खा बहू डाकिनी डक्करतो।—कीर्ति०, पृ० १८६।

डक्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चांडाल वीणा [को०]।

डखना†—संज्ञा पुं० [अनु०] पखना। पख।

डग—संज्ञा पुं० [हिं० डाँकना या सं० दक्ष] १. चलने में एक स्थान से पैर उठाकर दूसरे स्थान पर रखने की क्रिया की समाप्ति। कदम। उ०—मुरि मुरि चितवति नदगली। डग न परत ब्रजनाथ साथ बिनु, बिरह व्यथा मचली।—सूर (शब्द०)। (ख) ज्यों कोउ दूरि चलन कों करे। क्रम क्रम करि डग डग पग भरे।—सूर०, ३१३।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—डग देना =चलने में आगे की ओर पैर रखना। उ०—पुर ते निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दियो मग ज्यों डग द्वै।—तुलसी (शब्द०)। डग भरना =चलने में आगे पैर रखना।

कदम बढ़ाना। उ०—क्यों नहीं बेडिंगे भरे डग हम। पाँव क्यों जाय डगमगा मेरा।—चुभते०, पृ० १०। डग मारना= कदम रखना। लंबे पैर बढ़ाना। उ०—मारि डगै जब फिरि चली सुंदर वेनि दुरै सब अंग। मनहुँ चंद के बदन सुधा को उड़ि उड़ि लगत भुअंग।—सूर (शब्द०)।

२. चलने में जहाँ से पैर उठाया जाय और जहाँ रखा जाय उन दोनों स्थानों के बीच की दूरी। उतनी दूरी जितनी पर एक जगह से दूसरी जगह कदम पड़े। पैंड़।

डगकुⓅ—क्रि० वि० [हिं० डग+एक] एक दो पग। एकाध कदम। उ०—डगकु डगति सी चलि, ठठुकि चितई, चली निहारि। लिए जाति चितु चोरटी, वहै गोरटी नारि।—बिहारी र०, दो० १३६।

डगचालीं—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] डाकिनी। उ०—भूतप्रेत डगचालो माभूँ करत वत।—नट०, पृ० १७०।

डगडगाना—क्रि० अ० [अनु०] हिलना। इधर से उधर हिलना। काँपना।

मुहा०—डगडगाकर पानी पीना तेजी के साथ=एक दम में बहुत सा पानी पीना।

डगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] मार्ग। रास्ता। राह। उ०—बिगड़ी बनती, बन जाय सही। डगड़ी गड़ती, गड़ जाय मही।—अर्चना, पृ० ६।

डगडोलना—क्रि० अ० [हिं० डग+डोलना] डगमगाना। हिलना। काँपना। उ०—भीषम द्रोण करण सुनै कोउ मुखहू न बोले। ए पांडव क्यों काढ़िए धरना डगडोले।—सूर (शब्द०)।

डगडोर—वि० [हिं० डग+डोलना] डाँवाडोल। हिलनेवाला। चलायमान। उ०—श्याम को एक तुही जान्यो दुराचरनी और। जैसे घट पूरन न डोले अधभरो डगडोर।—सूर (शब्द०)।

डगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल में चार मात्राओं का एक गण।

डगनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० दक्ष (=चलना), हिं० डिगना या डग+ना (प्रत्य०)] १ हिलना। टसकना। खसकना। जगह छोड़ना। उ०—डगइ न संभु सरासन कैसे। कामी वचन सती मन जैसे।—तुलसी (शब्द०)। २. चूकना। भूल करना। उ०—तुरँग नचावहिं कुँवर वर अकनि मृदंग निसान। नागर नट चितवहिं चकित, डगहिं न ताल बँधान।—तुलसी (शब्द०)। ३. डगमगाना। लड़खड़ाना। उ०—डगकु डगति सी चलि ठठुकि चितई चली निहारि। लिए जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि।—बिहारी र०, दो० १३६।

मुहा०—डग मारना=हिलना। झटका खाना। जैसे,—उठाने पर आलमारी डग मारती है।

डगवेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डग+बेड़ी] पैर की बेड़ी। उ०—बँध्यो ठान में आप पाय, डगवेड़ी पाय्यो।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६।

डगमग—वि० [हिं० डग+मग] हिलता डुलता। डगमगाता या लड़खड़ाता हुआ। उ०—विहरत विविध बालक संग। डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि, धूसर अंग।—सूर०, १०।१८४। २ विचलित। निश्चयहीन।

डगमगनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० डगमग] दे० 'डगमगाना'।

डगमगाना—क्रि० अ० [हिं० डग+मग] १. इधर उधर हिलना डोलना। कभी इस बल कभी उस बल झुकना। स्थिर न रहना। थरथराना। लड़खड़ाना। जैसे, पैर डगमगाना, नाव डगमगाना। २ विचलित होना। किसी बात पर दृढ़ न रहना।

डगमगाना[2]—क्रि० स० १. हिलाना डुलाना। कंपित करना। २. विचलित करना। दृढ़ न रहने देना।

डगमगीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगमग] डावाँडोल वृत्ति। विचलन। अस्थिरता। उ०—छूटि डगमगी नाहिं संत को बचन न माने।—पलटू०, भा० १, पृ० ३।

डगर—संज्ञा स्त्री० [हिं० डग] मार्ग। रास्ता। पथ। पैंड़ा। उ०—नगरक धेनु डगर कि संचर। कुमुदिनि वधु मकरन्द।—विद्यापति, पृ० ३३२।

मुहा०—डगर बताना=(१) रास्ता बताना।(२)उपाय बताना। उपदेश देना। डगर पाना=निकास पाना। स्थान पाना। उ०—प्रथमहिं गए डगर तिन पायो। पाछे के लोगनि पछितायो।—सूर०, १०।६१६।

डगरनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० डगर] १ चलना। रास्ता लेना। धीरे धीरे चलना। उ०—तातें इतें डगरी द्विजदेव न जानती कान्ह अजौं मग सूढें। —द्विजदेव (शब्द०)। २. लुढ़कना। गिरते पड़ते आगे बढ़ना। जे फूलन तुलतीं सुखिन अतुल तीं अति ही खुलतीं ते डगरीं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८६।

डगरबगर—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर+अनु० बगर] राह कुराह। उ०—जगर मगर महिं, डगर बगर नहिं, रवि ससि, निसु दिन, भाव नहीं। —केशव अमी०, पृ० १०।

डगरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० डगर] रास्ता। मार्ग। उ०—गुरु कह्यो राम नाम नीको मोहिं लागत राम राज डगरो सो।—तुलसी (शब्द०)।

डगरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की पतली फट्टियों का बना हुआ छिछला डला। डलरा। छाबड़ा।

डगराना—क्रि० स० [हिं० डगरना] १. रास्ते पर ले जाना। ले चलना। चलाना। २ हाँकना। ३ लुढ़काना।

डगरिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] दे० 'डगर'।

डगरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] दे० 'डगर'। उ०—(क) जमुन भरन जल हम गईं तहँ रोकत डगरी।—सूर०, १०।१४२०। (ख) तू चला चले पकड़ी डगरी।—आराधना, पृ० १८।

डगा†—संज्ञा पुं० [हिं० डागा] डागा। डुग्गी बजाने की लकड़ी। नगाड़ा बजाने की लकड़ी। चोब। उ०—हुउँ सब कबितन्ह कर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा।—जायसी (शब्द०)।

डगाना—क्रि० स० [हिं० डग] दे० 'डिगाना'।

डगाल†—संज्ञा पुं० [देश०] टहनी। छोटी डाल। पतली शाखा। उ०—जहाँ झाड़ियाँ अधिक घनी होती हैं वहाँ वृक्षों की डगालों को काटकर वे जलाते हैं और फिर पानी बरस जाने के बाद बीज बोते हैं।—भूतत्व० प्रभि० ग्रं० (विवि०), पृ० ४०।

डगावना(पु)—क्रि० स० [हिं० डिगाना] दे० 'डिगाना'। उ०—कवि बोधा प्रभो भयो नेमहु ते पहिं धावे न चित डगावनो है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६१८।

डगार—संज्ञा पुं० [सं० तरक्षु] १. कुत्ते या भेड़िये की तरह का एक मांसाहारी पशु।

विशेष—यह पशु रात को शिकार की खोज में निकलता है और कभी कभी बस्ती से कुत्तों, बकरी के बच्चों आदि को उठा ले जाता है। यह कई प्रकार का होता है; पर मुख्य भेद दो हैं—चित्तीवाला और धारीवाला। यह एशिया और अफ्रीका के बहुत से भागों में पाया जाता है। यह देखने में बड़ा डरावना जान पड़ता है। इसका पिछला पैर छोटा और अगला भारी होता है। गरदन लंबी और मोटी होती है, कंधे पर खड़े खड़े बाल होते हैं। इसके दाँत बहुत पैने और तेज होते हैं। यह जानवर डरपोक भी बड़ा होता है। यह मुरदे खाकर भी रहता है। इसका कब्र में से गड़े मुरदे ले जाना प्रसिद्ध है।

२. लंबी टाँगों का दुबला घोड़ा।

डग्गा—संज्ञा पुं० [हिं० डग] लंबी टाँगों का दुबला घोड़ा।

डच¹—संज्ञा पुं० [अं०] हालैंड प्रदेश। हालैंड का निवासी।

डट—संज्ञा पुं० [देश०] निशाना।

डटना¹—क्रि० अ० [सं० स्थातृ, हिं० ठाट या ठाढ़] १. जमकर खड़ा होना। अड़ना। ठहरा रहना। जैसे,—वे सबेरे से मेले में डटे हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना। —आ डटना।

मुहा०—डटा रहना = सामना करने या कठिनाई झेलने के लिये खड़ा रहना। न हटना। मुँह न मोड़ना। डटकर खाना = खूब पेट भर खाना।

२. भिड़ना। लग जाना। छू जाना। ३. अच्छा लगना। फबना।

डटना(पु)†²—क्रि० स० [सं० दृष्टि, हिं० डीठ] ताकना। देखना। उ०—(क) उर मानिक की उरबसी डटत घटत दृग दाग। झलकत बाहर कढ़ि मनो पिय हिय को अनुराग। (ख) लटकि लटकि लटकत चलत डटत मुकुट की छाँह। चटक भरयो नट मिलि गयो, अटक भटक बन माँह।—बिहारी (शब्द०)।

डटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० डटाना] १ डटाने का काम। २. डटाने की मजदूरी।

डटाना—क्रि० स० [हिं० डटना] १ एक वस्तु को दूसरी वस्तु से सटाना। सटाना। भिड़ाना। २ एक वस्तु को दूसरी वस्तु से सटाकर आगे की ओर ठेलना। जोर से भिड़ाना। ३ जमाना। खड़ा करना।

डट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० डाटना] १. हुक्के का नैचा। टेरुआ। २. डाट। काग। गट्टा। ३. बड़ी मेख। ४. छींट छापने का ठप्पा। साँचा।

डडकना¹—क्रि० अ० [अनु०] जोर से बजना या शब्द उत्पन्न होना। उ०—डडकंत डोरू चहूँ फेर सद्द।—पृ० रासो, पृ० ८२।

डडकना²—क्रि० स० [अनु०] जोर से बजाना।

डडहा†—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] एक सर्प। डेड़हा।

डड़ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

डड़ियाना†—क्रि० स० [हिं० डाँड़ा] बनाना। डाँड़े के समान करना।

डड़ीचा†—संज्ञा स्त्री० [देश०, या हिं० डाँड़ी] पंक्ति। उ०—मन में आवे तो दो डड़ीच लिख भेजना।—श्यामा०, पृ० ६२।

डड्ढ—वि० [सं० दग्ध, प्रा० दड्ढ, डड्ढ] दग्ध। जला हुआ। तप्त। संतप्त [को०]।

डड्ढार¹—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्राल, प्रा० डड्ढाल] दे० 'डड्ढाल'। उ०—छिति न रहे डड्ढार बाघ बनचर बन हुल्लिय।—सूदन (शब्द०)।

डड्ढार²—वि०[सं० दंष्ट्रा, हिं० डाढ़, डाढ़ी] बड़ी डाढ़ी रखनेवाला।

विशेष—मध्य काल में और आज भी बड़ी डाढ़ी रखना वीरों का वेश समझा जाता है।

डड्ढाल†—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्राल, प्रा० डड्ढाल] वाराह। शूकर। उ०—डुलत डढाल डड्ढाल जिय घुरकारत बहु घुरघुरहिं।—पृ० रा०, ६। १०२। पृ० (उ०), पृ० १२२।

डड़ढ़ार³—वि० [सं० दृढ़, प्रा० डिढ; हिं० डिढ़] दृढ़ हृदय का। साहसी।

डढ़न(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ, या सं० दहन] जलन। ताप। उ०—भक्ति लता फैलन लगी दिन दिन होत पाप को डढन।—देवस्वामी (शब्द०)।

डढ़ना(पु)—क्रि० अ० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ+ना (प्रत्य०)] जलना। सुलगना। बलना। उ०—डढ़े मनु रूप लगैं इह रूप। गड़े जिमि कैयक हैं महि भूप।—सूदन (शब्द०)। २ जलना। ताप से पीड़ा होना। जलन होना। उ०—अँचवत पय तातो जब लाग्यो रोवत जीभि डढे।—सूर०, १०।१७४।

डढ़ार¹—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्राल] दे० 'डड्ढार'¹।

डढ़ार²—वि० [हिं० डाढ़] १. डाढ़वाला। जिसे डाढ़ हो। २ डाढ़ीवाला।

डढ़ारा—वि० [हिं० डाढ] १. डाढ़वाला। वह जिसके डाढ़ें हों। दाँतवाला। २. वह जिसे डाढ़ी हो।

डढ़ाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्राल, प्रा० डड्ढाल] दे० 'डढ़ार'। उ०—सोमेस सुतन आवेट डर इम डढ़ाल उस सद्द घसहि।—पृ० रा०, ६।१०१। पृ० रा० (उ०), पृ० १२३।

डढ़ियल—वि० [हिं० डाढ़ी] डाढ़ीवाला। जिसके बड़ी डाढ़ी हो।

डढ़ुआ†—संज्ञा पुं० [सं० दृढ़] बरें, गेहूँ, चने का ठेल जो भोज में मजबूती के लिये लगाया जाता है।

डढ़ना—क्रि० स० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ + हिं० ना (प्रत्य०)] जलाना।

डढ्योरा(पु)—वि० [हिं० डाढ़ी] डाढ़ीवाला। उ०—सित असित डढ्योरे दीह तन सजि सनेह रोसन सने।—सूदन (शब्द०)।

डपट[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्प] डाँट। झिड़की। घुड़की।

डपट[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० रपट] दौड़। घोड़े की तेज चाल। सरपट चाल।

डपटना[1]—क्रि० स० [हिं० डपट + ना (प्रत्य०)] डाँटना। क्रोध में जोर से बोलना। कड़े स्वर से बोलना।

डपटना[2]—क्रि० अ० [हिं० रपटना] तेज दौड़ना। वेग से जाना।

डपोरसंख—संज्ञा पुं० [अनु० डपोर (= बड़ा) + सं० शङ्ख, प्रा० संख] १. जो कहे बहुत, पर कर कुछ न सके। डींग मारनेवाला।

विशेष—इस शब्द के संबंध में एक कहानी प्रचलित है। एक ब्राह्मण ने दरिद्रता से दुखी हो समुद्र की आराधना की। समुद्र ने प्रसन्न होकर उसे एक बहुत छोटा सा संख दिया। और कहा कि यह ५००) रोज तुम्हें दिया करेगा। जब उस ब्राह्मण ने उस संख से बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया तब एक दिन अपने गुरु जी को बुलाया और बड़ी धूम धाम से उनका सत्कार किया। गुरु जी ने उस संख का हाल जान लिया और वे धीरे से उसे उठा ले गए। ब्राह्मण फिर दरिद्र हो गया और समुद्र के पास गया। समुद्र ने सब हाल सुनकर एक बहुत बड़ा सा संख दिया और कहा कि 'इससे भी गुरु जी के सामने रुपया माँगना, यह खूब बढ़ बढ़कर बातें करेगा, पर देगा कुछ नहीं। जब गुरु जी इसे माँगें तो दे देना और पहलेवाला छोटा संख माँग लेना'। ब्राह्मण ने ऐसा ही किया। जब ब्राह्मण ने गुरु जी के सामने उस संख से ५००) माँगा तब उसने कहा—'५००) क्या माँगते हो, दस बीस पचास हजार माँगो'। गुरु जी को यह सुनकर लालच हुआ और उन्होंने वह संख लेकर छोटा संख ब्राह्मण को लौटा दिया। गुरु जी एक दिन उस बड़े संख से माँगने बैठे। पर वह उसी प्रकार और माँगने के लिये कहता जाता, पर देता कुछ नहीं था। जब गुरु जी बहुत व्यग्र हुए, तब उस बड़े संख ने कहा—'गता सा शंखिनी, विप्र! या ते कामान् प्रपूरयेत्। अहं डपोरशङ्खोऽस्मि वदामि न ददामि ते'।

२ बड़े डीलडौल का पर मूर्ख। देखने में सयाना पर बच्चा की सी समझवाला।

डप्पू—वि० [देश०] बहुत बड़ा। बहुत मोटा।

डफ—संज्ञा पुं० [अ० दफ़] १. चमड़ा मढ़ा हुआ एक प्रकार का बड़ा बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है। डफला। उ०—(क) बिन डफ ताल मृदंग बजावत गात भरत परस्पर छिन छिन होरी।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। (ख) कहै पदमाकर ग्वालन के डफ बाजि उठे गलगाजत गाढ़े।—पद्माकर (शब्द०)। २. लावनीबाजों का बाजा। चंग।

विशेष—यह लकड़ी के गोल बड़े मेंडरे पर चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है। होली में इसे बजाते हुए निकलते हैं।

डफनी—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ] दे० 'डफली'। उ०—मद्दि मद्दि मृदंग डफनी डफ दुंदुभि ढोल सु पीट बजाया है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २९७।

डफर—संज्ञा पुं० [अं० ड्रापर] जहाज के एक तरफ का पाल।

डफला—संज्ञा पुं० [अ० दफ़] डफ नाम का बाजा।

डफली—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ़] छोटा डफ। खँजरी।

मुहा०—अपनी अपनी डफली अपना अपना राग = जितने लोग उतनी राय।

डफाण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दम्भन, दम्भना, फा० डमणा, कुमा० डफाण, पु० हिं० डमान] पाखंड। आडंबर। दंभ। उ०—काहे रे नर करहु डफाण, अंतिकालि घर गोर मसाण।—दादू०, पृ० ४८४।

डफार†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिग्घाड़। जोर से रोने या चिल्लाने का शब्द। उ०—ततखन रतनसेन मति पबरा। छाँड़ि डफार पाँय लै परा।—जायसी (शब्द०)।

डफारना†—क्रि० अ० [अनु०] चिल्लाना। दहाड़ मारना। जोर से रोना या चिल्लाना। उ०—जाय विहंगम समुद डफारा। जरे मच्छ, पानी भा खारा।—जायसी (शब्द०)।

डफालची—संज्ञा पुं० [हिं० डफला] दे० 'डफाली'।

डफाली—संज्ञा पुं० [हिं० डफला] डफला बजानेवाला। एक मुसलमान जाति।

विशेष—यह जाति डफला बजाती तथा डफ, ताशे ढोल आदि चमड़े के बाजों की मरम्मत करती है। अवध में डफाली डफला बजाकर गाजी मियाँ के गीत गाते और भीख माँगते फिरते हैं।

डफोरना†—क्रि० अ० [अनु०] हाँक देना। चिल्लाना। ललकारना। गरजना। उ०—वचन विनीत कहि सीता को प्रबोध करि तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।—तुलसी (शब्द०)।

डफोल†—संज्ञा पुं० [हिं० डपोर] बकवास। निरर्थक बात। उ०—मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३१३।

डफ्फ(पु)—संज्ञा पुं० [अ० दफ़, हिं० डफ] दे० 'डफ'। उ०—बीती जात बहार संबत लगने पर आया। लीजै उपफ बजाय सुभग मानुष तनया या।—पलटू०, भा० १, पृ० २०।

डब[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्रव] तरल। जैसे, आँखों का डब डब होना।

विशेष—इस शब्द का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता। डबक, डबकना, डबकौंहाँ आदि प्रचलित शब्दों में इसका रूप मिलता है।

डब[2]—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] १. जेब। थैला।

मुहा०—डब पकड़कर कुछ कराना = गरदन पकड़कर कुछ काम कराना। गला दबाकर काम कराना। जैसे,—रुपया देगा कैसे नहीं, डब पकड़कर लूँगा। डब में आना = वश में होना। काबू में आना।

२ कुप्पा बनाने का चमड़ा।

डबकना¹—क्रि० स० [हिं० डब] किसी धातु की चद्दर को कटोरी के आकार का गठन करना।

डबकना²—क्रि० अ० [अनु०] १. पीड़ा करना। टपकना। दर्द देना। टीस मारना। २. लँगड़ाकर चलना।

डबकना³—क्रि० अ० [सं० द्रव या द्रवक] तरलित होना। अश्रुपूर्ण होना। (नेत्रों में) आँसू भर आना।

डबकौंहाँ†—वि० [अनु० या हिं० डबकना] [वि० स्त्री० डबकौंहीं] आँसू भरा हुआ। डबडबाया हुआ। अश्रुपूरित। गीला। उ०—बिलखी डबकौंहैं चखन, तिय लखि गमन बराय। पिय गहबर आयो गरो राखी गरे लगाय।—बिहारी (शब्द०)।

डबडबाना—क्रि० अ० [अनु०, या हिं० डब डब] आँसू से आँखें भर आना। आँसू से (आँखों का) गीला होना। अश्रुपूर्ण होना। जैसे, आँखें डबडबाना। उ०—(क) जब जब सुरति करत तब तब डबडबाइ दोउ लोचन उमगि भरत।—सूर (शब्द०)। (ख) उ०—डबडबाय आँखन में पानी। बूड़े तन भौं यही निशानी।—सहजो०, पृ० ३०।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'आँख' के साथ तो होता ही है, 'आँसू' के साथ भी होता है।

डबर†—संज्ञा पुं० [सं० डम्बर] आडंबर। उ०—डेरायो साजै डबर, यह हम सीध पयाण। करवा सुरां सहायकाज असुरां सुं आराण।—रघु० रू०, पृ० १०३।

डबरा—संज्ञा पुं० [सं० दभ्र (=समुद्र या झील)] [स्त्री० अल्पा० डबरी] १. छिछला नया गड्ढा जिसमें पानी जमा रहे। कुंड। हौज। २ वह नीची भूमि का टुकड़ा जिसमें पानी लगता हो। ३ खेत का कोना जो जोतने में छूट जाता है। †४. कटोरा। पात्र।

डबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डबरा] छोटा गड्ढा या ताल।

डबल¹—वि० [अं०] दोहरा। दूना। दोगुना। उ०—डबल जीन और गर्मी में भी फलालीन।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५६।

डबल²—संज्ञा पुं० [सं० द्रम्य ?] पैसा। अंग्रेजी राज्य का पैसा।

डबलरोटी—संज्ञा स्त्री० [अं० डबल+हिं० रोटी] पावरोटी।

डबलविक—वि० [अं०] दोहरी बत्ती।

डबला—संज्ञा पुं० [देश०, तुल० हिं० डबरा] मिट्टी का पुरवा। कुल्हड़। चुक्कड़।

डबा†—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] दे० 'डब्बा', 'डिब्बा'।

डबारीⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डबरा] गड्ढी। उ०—को है कूप, गगासागर को है, को है गलित डबारी।—सुनाम०, पृ० ५२।

डबिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डब्बा] छोटा डिब्बा। डिबिया।

डबिरना³—क्रि० स० [देश०] खेत में से ढेलों को निकाल लाना। (बहेलियों की बोली)।

डबीⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डबा] दे० 'डब्बी', 'डिब्बी'। उ०—कंचन की रूप डबीन में खोल धरी मनो नील नगी है।—सुंदरी सर्वस्व (शब्द०)।

डबुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डबुलिया'। उ०—मिट्टी का कुल्हड़ या डबुआ बुरा नहीं मालूम होता।—आधुनिक०, पृ० १६५।

डबुलिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुल्हिया। छोटा पुरवा।

डबोना—क्रि० स० [अनु० डब डब, या सं० द्रवण] १. डुबाना। गोता देना। बोरना। मग्न करना। २. बिगाड़ना। नष्ट करना। चौपट करना।

मुहा०—नाम डबोना=नाम में धब्बा लगाना। ख्याति नष्ट करना। वंश डबोना=वंश की मर्यादा नष्ट करना। कुल में कलंक लगाना। लुटिया डबोना=महत्व नष्ट करना। प्रतिष्ठा खोना।

डब्बल‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डबल'।

डब्बा—संज्ञा पुं० [तैलंग। या सं० डिम्ब(=गोल)] १. ढक्कनदार छोटा गहरा बरतन जिसमें ठोस या भुरभुरी चीजें रखी जाती हैं। संपुट। २ रेलगाड़ी की एक गाड़ी जो अलग हो सकती हो।

डब्बू—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा तुल० देशी डोम, गुज० डोयो] डाँड़ी लगा हुआ एक प्रकार का कटोरा जिससे परोसने का काम लिया जाता है।

डभक—वि० [सं० स्तवक, या देश०] ताजा। पेड़ या पौधे से तत्काल तोड़ा हुआ। उ०—एक पीला सा डभक अमरूद उसने हाथ बढ़ाकर उठा लिया।—नई०, पृ० १२६।

डभकना†—क्रि० अ० [अनु० डभ डभ या सं० द्रव] १ पानी में डूबना, उतराना। डुबकी लेना। २ (आँखों का) डबडबाना। (नेत्रों में) जल भर आना। उ०—बदन पियर जल डभकहिं नैना। परगट दुओ पेम के बैना।—जायसी (शब्द०)।

डभका¹—संज्ञा पुं० [हिं० डभकना] कुएँ से ताजा निकाला हुआ (पानी)। ताजा। †२ अश्रु। नेत्रजल।

डभका†²—संज्ञा पुं० [देश०] १ भुना हुआ मटर या चना जो फूटा न हो। कोहरा।

डभकौरीⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० डभकना] उरद की पीठी की बरी जो बिना तले हुए कढ़ी में डाल दी जाती है। डुभकी। उ०—पानौरा राइता पकौरी। डभकौरी मुंगछी सुठि सौंरी।—सूर (शब्द०)।

डभकौहाँ—वि० [हिं०] दे० 'डबकौहाँ'।

डम—संज्ञा पुं० [सं०] एक नीच या वर्णसंकर जाति जिसे ब्रह्मवैवर्त पुराण ने लेट और चांडाली से उत्पन्न माना है। डोम।

डमकना¹—क्रि० अ० [अनु०] ध्वनि या शब्द करना (ढोल आदि का)।

डमकनाⓤ²—क्रि० अ० [हिं० दमकना] चमकना। द्योतित होना। उ०—चौपग चिंतामणि चणक, वे डमक्या बरबार।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५।

डमडम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] डमरू बजाने से होनेवाली आवाज। उ०—एक नाद का यही मत हो, डम डम डमरू बजे फिर गाँव।—बीणा, पृ० ४८।

डमर—संज्ञा पुं० [सं०] १ भय से पलायन। भगेड़। भगदड़। २ हलचल। उपद्रव। ३ गाँवों के साधारण संघर्ष (को०)।

डमरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'डमरू'। उ०—खुनखुनाकर हँसत हरि, हर हँसत डमरु बजाइ।—सूर०, १०।१६०।

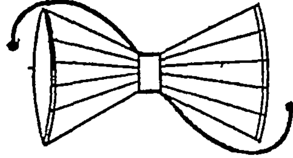
डमरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरू] वात का एक रोग जिससे जोड़ों में दर्द होता है। गठिया।

यौ०—डमरुआ साल = दे० 'डँवरुआ साल'।

डमरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथों की एक तांत्रिक मुद्रा (को०)।

डमरू—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] १. एक बाजा जिसका आकार बीच में पतला और दोनों सिरों की ओर बराबर चौड़ा होता जाता है।

विशेष—इस वाद्य के दोनों सिरों पर चमड़ा मढ़ा होता है। इसके बीच में दो तरफ बराबर बढ़ी हुई डोरी बँधी होती है जिसके दोनों छोरों पर एक एक कौड़ी या गोली बँधी होती है। बीच में पकड़कर जब बाजा हिलाया जाता है तब दोनों कौड़ियाँ चमड़े पर पड़ती हैं और शब्द होता है। यह बाजा शिव जी को बहुत प्रिय है। बंदर नचानेवाले भी इस प्रकार का एक बाजा अपने साथ रखते हैं।



२ डमरू के आकार की कोई वस्तु। ऐसी वस्तु जो बीच में पतली हो और दोनों ओर बराबर चौड़ी (उलटी गावदुम) होती गई हो।

यौ०—डमरूमध्य।

३. एक प्रकार का दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ३२ लघु वर्ण होते हैं। जैसे,—रहत रजत नग नगर न गज तट गज खल कलगर गरल तरल धर। भिखारीदास ने इसी का नाम जलहरण लिखा है।

डमरूमध्य—संज्ञा पुं० [सं० डमरु + मध्य] धरती का वह तंग पतला भाग जो दो बड़े बड़े भूखंडों को मिलाता हो।

यौ०—जलडमरूमध्य = जल का वह तंग पतला भाग जो जल के दो बड़े भागों को मिलाता हो।

डमरूयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० डमरु + यन्त्र] एक प्रकार का यंत्र या पात्र जिसमें अर्क खींचे जाते तथा सिंगरफ का पारा, कपूर, नौसादर आदि उड़ाए जाते हैं।

विशेष—यह दो घड़ों का मुँह मिलाकर और कपड़मिट्टी से जोड़कर बनाया जाता है। जिस वस्तु का अर्क खींचना होता है उसे घड़ों का मुँह जोड़ने के पहले पानी के साथ एक घड़े में रख देते हैं और फिर सारे यंत्र को (अर्थात् दोनों जुड़े घड़ों को) इस प्रकार आड़ा रखते हैं कि एक घड़ा आँच पर रहता है और दूसरा ठंढी जगह पर। आँच लगने से वस्तु मिले हुए पानी की भाप उड़कर दूसरे घड़े में जाकर टपकती है। यही टपका हुआ जल उस वस्तु का अर्क होता है। सिंगरफ से पारा उड़ाने के लिये घड़ों को खड़े बल नीचे ऊपर रखते हैं। नीचे के घड़े के पेंदे में आँच लगती है और ऊपर के घड़े के पेंदे को गीला कपड़ा आदि रखकर ठंढा रखते हैं। आँच लगने पर सिंगरफ से पारा उड़कर ऊपरवाले घड़े के पेंदे में जम जाता है।

डयन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उड़ान। उड़ने की क्रिया। २ पालकी (को०)।

डर—संज्ञा पुं० [सं० दर] १ दुःखपूर्ण मनोवेग जो किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से उत्पन्न होता और उस (अनिष्ट या हानि) से बचने के लिये आकुलता उत्पन्न करता है। भय। भीति। खौफ। त्रास। उ०—नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सँकोच डर प्रकट न कहहीं।—मानस, १।२१८।

क्रि० प्र०—लगना।—खाना। उ०—पैग पैग मुँह चाँपत आवा। पखिन्ह देखि सबन्हि डर खावा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६५।

मुहा०—डर के मारे = भय के कारण।

२. अनिष्ट की संभावना का अनुमान। आशंका। जैसे,—हमें डर है कि वह कहीं भटक न जाय।

डरना—क्रि० अ० [हिं० डर + ना (प्रत्य०)] १. किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से आकुल होना। भयभीत होना। खौफ करना। सशंक होना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

२ आशंका करना। अंदेशा करना।

डरपक—वि० [हिं० डार + सं० पक्व] डार में ही पका हुआ (फल)। उ०—किधौं सु डरपक आम में मनि ह्वै मिल्यो मलिंद। किधो तनक ह्वै तम रह्यो कै ठोढ़ी को बिंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २००।

डरपना†—क्रि० अ० [हिं० डर] डरना। भयभीत होना। उ०—(क) इंद्रहु को कछु दूषन नाहीं। राजहेतु डरपत मन माहीं।—सूर (शब्द०)। (ख) एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु मोहि देब साप अति घोरा।—तुलसी (शब्द०)।

डरपाना†—क्रि० स० [हिं० डरपना] डराना। भयभीत करना।

डरपुकना—वि० [हिं० डरपोकना] दे० 'डरपोक'। उ०—सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोलै बात अकासी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

डरपोक—वि० [हिं० डरना + पोकना] बहुत डरनेवाला। भीरु। कायर।

डरपोकना†—वि० [हिं० डरना + पोंकना] दे० 'डरपोक'।

डरवाना¹—क्रि० स० [हिं० डर] दे० 'डराना'।

डरवाना†²—क्रि० स० [हिं० डालना] दे० 'डलवाना'।

डरा†—संज्ञा पुं० [हिं० डला] [स्त्री० डरी] ढोका। डला। टुकड़ा।

डराकू†—वि० [हिं० डरना]। १ बहुत डरनेवाला। भीरु। २ डराने या भय उत्पन्न करनेवाला।

डराडरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० डर] दे० 'डराडरी'। उ०—जब मानि

घेरत कटक काम को तब जिय होत डराडरि ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

डराडरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डर] डर । भय । आशंका ।

डरान—वि० [हिं० डरावना] भयदायक । भयावना । भयकर । उ०—डहकत डक डाइन डरान । गहकत गिद्धि सिद्धनिय थान ।—पृ० रा०, १ । ६६१ ।

डराना—क्रि० स० [हिं० डरना] डर दिखाना । भयभीत करना । खौफ दिलाना ।

संयो० क्रि०—देना

डरानी—वि० [हिं० डरना] १ खौफ पैदा करनेवाली । भयावनी । २ डरी हुई । भयभीत । उ०—बोलें यों डरानी भावसिंह प्रभु के डर मैं ।—मति० ग्रं०, पृ० ४१८ ।

डरापना—क्रि० स० [हिं० डर] किसी को डरा देना । भयभीत करना ।

डराराⓊ†—वि० [हिं० डोरा+आर (प्रत्य०)] (आँख) जिसमें डोरे या हलकी ललाम रेखा हो । मस्त (आँख) । उ०—मीन मधुर पंकज मृग हारे । निरखत लोचन सुगम डरारे ।—माधवानल०, पृ० १९० ।

डरावना—वि० [हिं० डर+आवना (प्रत्य०)][वि०स्त्री० डरावनी] जिससे डर लगे । जिससे भय उत्पन्न हो । भयानक । भयकर । उ०—कारी घटा डरावनी आई । पापिनि साँपिनि सी घरि छाई ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१ ।

डरावा—संज्ञा पुं० [हिं० डराना] १. वह लकड़ी जो फलदार पेड़ों में चिड़ियाँ उड़ाने के लिये बँधी रहती है । इसमें एक लंबी रस्सी बँधी होती है जिसे खींचने से खट खट शब्द होता है । खटखटा । धड़का । † २ डराने की दृष्टि से कही बात ।

डराहुक†—वि० [हिं० डरना] डरपोक ।

डरिया¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डार+इया (प्रत्य०)] दे० 'डार' या 'डाल' । उ०—अबके राखि लेहु भगवान । हम अनाथ बैठे द्रुम डरिया पारधि साधे बान ।—सूर (शब्द०) ।

डरिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० डलिया] दे० 'डलिया' । उ०—सीसनि धरैं छाक की डरियनि । तकति गुपाल भूख की बरियनि ।—घनानंद, पृ० ३१७ ।

डरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डली] दे० 'डली' । उ०—परतीति दै कीनी अनीति महा, विष दीनो दिखाय मिठास डरी ।—घनानंद, पृ० ८१ ।

डरीला†¹—वि० [हिं० डार] डारवाला । शाखायुक्त । टहनीदार । उ०—छोवन चचीले तरु टूटत डरीले, शैल होत हैं फटीले शेष फन चमकीले हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

डरीला†²—वि० [हिं० डर+ईला (प्रत्य०)] दे० 'डरैला' ।

डरेरना†—क्रि० स० [हिं० दरेरना] दे० 'दरेरना' । उ०—भुजा जोरि कै तोर मुक्की डरेरे ।—प० रासो, पृ० ४५ ।

डरैला‡—वि० [हिं० डर] डरावना । भयानक । खौफनाक । उ०—बिटरन अडा धरत नाद उच्चरत डरैला ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) ।

डल¹—संज्ञा पुं० [हिं० डला(=टुकड़ा)] टुकड़ा । खंड ।

मुहा०—डल का डल = ढेर का ढेर । बहुत सा ।

डल²—संज्ञा स्त्री० [सं० तल्ल] १. झील । २. काश्मीर की एक झील । उ०—धनि सागर सम तूल, विमल विस्तृत डल कूलर ।—काश्मीर०, पृ० १ ।

डलई—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] दे० 'डलिया' ।

डलक—संज्ञा पुं० [सं०] दौरा । डला । बाँस आदि की बनी बड़ी डलिया [को०] ।

डलना—क्रि० अ० [हिं० डालना] डाला जाना । पड़ना । जैसे, झूला डलना ।

डलरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डलिया] छोटी डलिया । मूँज की बनी हुई छोटी पिटारी । उ०—नए बसन आभूषन सजि डलरी गुड़िया ले ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २६ ।

डलवा—संज्ञा पुं० [हिं० डला] 'डला²' ।

डलवाना—क्रि० स० [हिं० डालना का प्रे०रूप] डालने का काम कराना । डालने देना ।

डला¹—संज्ञा पुं० [सं० दल] [स्त्री० अल्पा० डली] १. टुकड़ा । ढोंका । खड । उ०—रीठ पड़े धाख जली, अर घड डला उधेड़ ।—रा० रू०, पृ० २६० ।

विशेष—साधारणतः इसका प्रयोग नमक, मिस्री आदि के लिये अधिक होता है । जैसे, नमक का डला, मिस्री की डली ।

२ लिंगेंद्रिय ।—(बाजारू) ।

डला²—संज्ञा पुं० [सं० डलक][स्त्री० अल्पा० डलिया] बाँस, बेंत आदि की पतली फट्टियों या कमचियों को गाँठकर बनाया हुआ बरतन । टोकरा । दौरा । उ०—डला भरि हौ लाल । कैसें कै उठाऊँ । पठवी ग्वाल छाक लै आवें ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६० ।

यौ०—डला खुलवाई = बनियों के यहाँ विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा दुलहिन के यहाँ एक टोकरा लाता है ।

डलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] छोटा डला । छोटा टोकरा । दौरी । उ०—प्रेम के परवर धरो डलिया में, आदि की आवी लाई । ज्ञान के गजरा हड़ करि राखो गगन में हाट लगाई ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४८ ।

डली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] १. छोटा टुकड़ा । छोटा ढेला । खड । जैसे, मिश्री की डली, नमक की डली । २. सुपारी ।

डली²—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] दे० 'डलिया' । उ०—चुने डली में सुथरे, बड़े बड़े भरे भरे ।—बेला, पृ० १६ ।

डल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] डला । दौरा ।

डल्ला†—संज्ञा पुं० [सं० डल्लक] दौरा ।

डवँरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डँवरुआ' ।

डवँरू—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू' ।

डवँरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू' ।

डवाⓊ†—संज्ञा पुं० [हिं० डवा] दे० 'डिब्बा' । उ०—विष को डवा है कै उदेग को अँवा है, कल पलको न बाहै अथवा है चक्र बात को ।—घनानंद, पृ० ८० ।

डसित्य—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना हुआ मृग ।

डस—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की शराब । रम । २ तराजू की डोरी जिसमें पलड़े बँधे रहते हैं । जोती । ३. कपड़े की थान का छोर जिसमें ताने और बाने के पूरे तागे नहीं बुने रहते । छीर ।

डसण†—संज्ञा पुं० [सं० दशन, प्रा० डसण] दाँत । दशन । उ०—हीर डसण बिद्रम अधर, मारू भ्रुकुटि मयंक ।—ढोला०, दू० ४५४ ।

डसन—संज्ञा स्त्री० [सं० दंशन] १. डसने की क्रिया या भाव । २. डसने या काटने का ढंग । उ०—यह अपराध बड़ो उन कीनो । तक्षक डसन साप मैं दीनो ।—सूर (शब्द०) ।

डसना[1]—क्रि० स० [सं० दंशन] १. किसी ऐसे कीड़े का दाँत से काटना जिसके दाँत में विष हो । साँप आदि जहरीले कीड़ों का काटना । उ०—अरे अरे कान्हु कि रमसि वोरि । मदन भुजंग डसु बालहि तोरि ।—विद्यापति, पृ० ३६६ । २ डंक मारना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

डसना[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डासन', 'दसना' । उ०—सुंदर सुमनन सेज बिछाई । अरगज मरगजि डसनि डसाई ।—नंद ग्रं०, पृ० १४१ ।

डसनी—वि० [सं० दंश, प्रा० डस] काटनेवाली । उ०—सिसु-घातिनी परम पापिनी । सतनि की डसनी जु साँपिनी ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३६ ।

डसवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'डसाना' ।

डसा†—संज्ञा पुं० [सं० दश] दाढ़ । चौभड़ ।

डसाना[1]—क्रि० स० [हिं० डासना] बिछाना । उ०—'हे राम' खचित यह वही चौतरा भाई । जिसपर बापू ने अंतिम सेज डसाई ।—सूत०, पृ० १३७ ।

डसी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दसी] दे० 'दसी' ।

डसी[2]—संज्ञा स्त्री० पहचान या परिचय की वस्तु । पहचान के लिये दिया हुआ चिह्न । चिन्हानी । निशानी । सहदानी ।

डस्टर—संज्ञा पुं० [अं०] गर्द झाड़ने का कपड़ा । झाड़न ।

डहँकना—क्रि० स० [हिं० डहकना] दे० 'डहकना' । उ०—कह दरिया मन डहँकत फिरै ।—दरिया० बानी, पृ० ३५ ।

डहक—वि० [?] सख्या में छह । ६ ।—(दलाल) ।

डहकना[1]—क्रि० स० [हिं० डाका] १ छल करना । धोखा देना । ठगना । जटना । उ०—डहकि डहकि परचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी वस्तु को देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना । उ०—खेलत खात, परस्पर डहकत, छीनत कहत करत रग-देया ।—तुलसी (शब्द०) ।

डहकना[2]—क्रि० अ० [हिं० दहाड़, धाड़] १ रोने में रह रहकर शब्द निकालना । बिलखना । विलाप करना । उ०—काल बदन ते राखि लीनो इंद्र गर्व जे खोइ । गोपिनी सब ऊधो आगे डहकि दीनो रोइ ।—सूर (शब्द०) । २. हुंकारना । डकार लेना । दहाड़ मारना । गरजना । उ०—इक दिन कंस असुर इक प्रेरा । आवा घटि वपु विरषभ केरा । डहकत फिरत उडावत छारा । पकरि सींग तुरतै प्रभु मारा ।—विश्राम (शब्द०) ।

डहकना(पु)[3]—क्रि० अ० [देश०] छितराना । छिटकना । फैलना । उ०—चंदन कपूर जल धौत कलधौत धाम उज्जल जुन्हाई डहडही डहकत है ।—देव (शब्द०) ।

डहकलाय—वि० [?] सोलह । १६ ।—(दलाल) ।

डहकाना[1]—क्रि० स० [सं० दस (= खोना), हिं० डाका] खोना गँवाना । नष्ट करना । उ०—वाद विवाद यज्ञ व्रत साधे । कतहूँ जाय जन्म डहकावे ।—सूर (शब्द०) ।

डहकाना[2]—क्रि० अ० किसी के धोखे मे आकर अपने पास का कुछ खोना । किसी के छल के कारण हानि सहना । धोखे में आना वंचित या प्रतारित होना । ठगा जाना । जैसे, इस सौदे में तुम डहका गए । उ०—(क) इनके कहे कौन डहकावे, ऐसी कौन अजानी ?—सूर (शब्द०) । (ख) डहके ते डहकाइबो भलो जो करिय विचार ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

डहकाना[3]—क्रि० स० १. ठगना । धोखे से किसी की कोई वस्तु ले लेना । धोखा देना । जटना । २ किसी को कोई वस्तु देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना ।

डहकावनि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० डहकाना] [स्त्री० डहकावनि] ललचाना या धोखा देने का कार्य या स्थिति । उ०—लै लै व्यंजन चखनि चखावनि । हँसनि, हँसावनि, पुनि डहकावनि । —नंद ग्रं०, पृ० २६४ ।

डहडह—वि० [अनु०] दे० 'डहडहा' ।

डहडहा—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० डहडही] १ हरा भरा । ताजा । लहलहाता हुआ । जो सूखा या मुरझाया न हो । (पेड़, पौधे, फूल, पत्ते आदि) । उ०—(क) जो काटै तो डहडही, सींचे तो कुम्हिलाय । यहि गुनवंती बेल का कुछ गुन कहा न जाय ।—कबीर (शब्द०) । २ प्रफुल्लित । प्रसन्न । आनंदित । उ०—तुम सौतिन देखत दई अपने हिय ते लाल । फिरति सबनि मे डहडही वहै मरगजी बाल ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) सेवती चरन चारु सेवती हमारे जान, ह्वै रही डहडही लहि आनँद कंद को ।—देव (शब्द०) । (ग) डहडहे इनके नैन अबहिं कतहूँ चितए हरि ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५ । ३ तुरंत का । ताजा । उ०—सहसही इंदीवर श्यामता शरीर सोही डहडही चदन की रेखा राजै भाल में ।—रघुराज (शब्द०) ।

डहडहाट(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डहडहा] हरापन । ताजगी ।

डहडहाना—क्रि० अ० [हिं० डहडहा] १ हरा भरा होना । ताजा होना । (पेड़, पौधे, आदि का) । उ०—दूर दमकत श्रवन शोभा जलज युग डहडहत ।—सूर (शब्द०) । २ प्रफुल्लित होना । आनंदित होना ।

डहडहाव—संज्ञा पुं० [हिं० डहडहा] हराभरा होने का भाव। ताजगी। प्रफुल्लता।

डहन[1]—संज्ञा पुं० [सं० डयन (=उड़ना)] डैना। पर। पंख। उ०—विषवाना कित देइ अँगूरा। जिहि भा मरन डहन धरि चूरा।—जायसी (शब्द०)।

डहन[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन। दाह।

डहना[1]—संज्ञा पुं० [सं० डयन] दे० 'डैना'। उ०—जौं पंखी कहवाँ थिर रहना। ताकै जहाँ जाइ जौं डहना।—पदमावत, पृ० २५८।

डहना[2]—क्रि० अ० [सं० दहन] १ जलना। भस्म होना। २. कुढ़ना। चिढ़ना। द्वेष करना। बुरा मानना।

डहना[3]—क्रि० स० १. जलाना। भस्म करना। उ०—रावन लंका हौं डही वेइ मोहि डाढ़न आइ।—जायसी (शब्द०)। २. संतप्त करना। दु:ख पहुँचाना। उ०—डहइ चह उठ चदन चीरू। दगध करइ तन विरह गभीरू।—जायसी (शब्द०)। ३. ताड़ना। बजाना। उ०—डहरु संकर डहै करै जोगण किलकारी।—रघु० रू०, पृ० ४७।

डहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] १ रास्ता। मार्ग। पथ। उ०—जिहि डहरत डहर करत कहुरो। चित चख चोरत चेटक चेहरो।—रघुराज (शब्द०)। २. आकाशगंगा। ३. पगडंडी।

डहरना—क्रि० अ० [हिं० डहर] चलना। फिरना। टहलना। उ०—जिहि डहरत डहर करत कहुरो। चित चख चोरत चेटक चेहरो।—रघुराज (शब्द०)।

डहरा—संज्ञा पुं० [हिं० डहर] मार्ग। डगर। उ०—सखी री आज घन बरसी बन देसा। अब डहरा मेवात मँझारे हरि आए जन भेसा।—सहजो०, पृ० ५७।

डहराना—क्रि० स० [हिं० डहरना] चलाना। दौड़ाना। फिराना। उ०—कोऊ विरचि रही भाल चंदन इक चित लाई। कोऊ विरचि त्रिपुरी भृकुटि पर नैन डहराई।—सूर (शब्द०)।

डहरि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दधि, हिं० दहेंड़ी] दही जमाने के काम में प्रयुक्त मिट्टी की हँडिया। उ०—सुत को बरजि राखहु महरि। डहर चलन न देत काहुहिं फोरि डारत डहरि।—सूर०, १०।१४२१।

डहरि[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डहर] राह। उ०—अघ धरत कोउ माहि पावत रोकि राखत डहरि।—सूर०, १०।१४२१।

डहरिया—संज्ञा पुं० [हिं० डहर] गाय बैल का घूमकर व्यापार करनेवाला व्यक्ति।

डहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'कुठिला'।

डहरू—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० डमरु। उ०—डहरु संकर डहै, करै जोगण किलकारी।—रघु० रू०, पृ० ४७।

डहार—वि० [हिं० डाहना] डाहनेवाला। तंग करनेवाला। कष्ट पहुँचानेवाला। उ०—फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़ुक पहार। कायर क्रूर कपूत कलि घर घर सहस डहार।—तुलसी (शब्द०)।

डहीली—वि० स्त्री० [हिं० डाह+ली (प्रत्य०)] डाह पैदा करनेवाली। उ०—पग द्वै चलति ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि के रस गीली। धरनी नख चरननि कुरवारति, सौतिनि भाग सुहाग डहीली।—सूर० १०।१७७२।

डहु, डहू—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्षविशेष। लकुच। २. बड़हर।

डहोला—संज्ञा पुं० [देश०] हलचल। उपद्रव। भय। उ०—महा डहोलो मेदनी विसतरियो तिण वार। साह तपस्या अगलो अकबर सेण अपार।—रा० रू०, पृ० ११।

डांकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० डाङ्कृति] घंटी आदि बजने की ध्वनि [को०]।

डाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० डा] डाकिनी। डाइन।

डाँक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमक, दबँक अथवा देश०] ताँबे या चाँदी का बहुत पतला कागज की तरह का पत्तर।

विशेष—देशी डाँक चाँदी की होती है जिसे घोटकर नगीनों के नीचे बैठाते हैं। अब ताँबे के पत्तर की विदेशी डाँक भी बहुत आती है जिसके बोल और चमकीले टुकड़े काटकर स्त्रियों की टिकली, कपड़ों पर टाँकने की चमकी आदि बनती हैं। डाँक घोटने की सान ८-९ अंगुल लंबी और ३-४ अंगुल चौड़ी पटरी होती है जिसपर डाँक रखकर चमकाने के लिये घोटते हैं।

डाँका[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँकना] कै। वमन। उलटी।

क्रि० प्र०—होना।

डाँका[3]—संज्ञा पुं० [हिं० डंका] नगाड़ा। दे० 'डंका'। उ०—दान डाँक बाजे दरबारा। कीरति गई समुंदर पारा।—जायसी (शब्द०)।

डाँक[4]—संज्ञा पुं० [हिं० डंक] विषैले जंतुओं के काटने का डंक। आर। उ०—जे तव होत दिखादिखी भई अमी इक आँक। दगै तीरछी डीठि अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी (शब्द०)।

डाँकना—क्रि० स० [सं० तक (=चलना)] १. कूदकर पार करना। लाँघना। फाँदना। २ पार कर जाना। लाँघ जाना। उ०—अजगर उड़ा सिखर को डाँका, गरुड़ चकित होय बैठा।—दरिया० बानी पृ० ५९। २ वमन करना। उलटी करना। ३. जोर से पुकारना। आवाज देना।

डाँकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी'। उ०—परहु नरक, फलचारि सिसु, मीच डाँकिनी खाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११०।

डाँगा[1]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (=पहाड़ का किनारा और चोटी)] १ पहाड़ी। जंगल। वन। २. पहाड़ की ऊँची चोटी।

डाँग[2]—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, हिं० डाँडा] मोटे बाँस का डंडा। लट्ठ।

डाँगा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० डाँकना] कूद। फलाँग।

डाँग[4]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डंका'।

डाँगर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. चौपाया। ढोर। गाय, भैंस आदि पशु। † २ मरा हुआ चौपाया। (गाय, बैल आदि) चौपाए की लाश (पूरब)।

मुहा०—डाँगर घसीटना = चमारों की तरह मरा हुआ चौपाया खींचकर ले जाना। अशुचि कर्म करना।

३ एक नीच जाति का नाम।

डाँगर[2]—वि० १. दुबला पतला। जिसकी हड्डी हड्डी निकली हो। २. मूर्ख। जड़। गावदी।

डाँगा—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] १. जहाज के मस्तूल में रस्सियाँ को फैलाने के लिये आड़ी लगी हुई धरन। २. लगड़ के बीच का मोटा डंडा। (लश०)।

डाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति (=दमन, वश) या सं० दण्ड] १. शासन। वश। दाब। दबाव। जैसे,—(क) इस लड़के को डाँट में रखो। (ख) इस लड़के पर किसी की डाँट नहीं है।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मानना।—रखना।

मुहा०—डाँट में रखना = शासन में रखना। वश में रखना। किसी पर डाँट रखना = किसी पर शासन या दबाव रखना। डाँट पर = पालकी के कहारों की एक बोली। (जब तंग और ऊँचा नीचा रास्ता आगे होता है तब अगला कहार कुछ बचकर चलने के लिये कहता है 'डाँट पर')।

२ डराने के लिये क्रोधपूर्वक कर्कश स्वर से कहा हुआ शब्द। घुड़की। डपट।

क्रि० प्र०—बताना।

डाँटना[1]—क्रि० स० [हिं० डाँट + ना (प्रत्य०) अथवा सं० दण्डन] १. डराने के लिये क्रोधपूर्वक कड़े स्वर से बोलना। घुड़कना। डपटना। उ०—(क) जैसे मीन किलकिला दरसत, ऐसे रहौ प्रभु डाँटत। पुनि पाछें अघसिंधु बढ़त है सूर खाल किन पाटत। —सूर०, १। १०७। (ख) जानै ब्रह्म सो विप्रवर आँखि दिखावहि डाँटि।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सोई इहाँ जेंवरी बाँधे, जननि साँटि लै डाँटे।—सूर०, १०। ३४६।

संयो० क्रि०—देना।

२ ठाठ से वस्त्र आदि पहनना। दे० 'डाटना'–६। उ०—चाकर भी वर्दी डाँटे है। —फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६।

डाँठा—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] डंठल।

डाँड़—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डंड] १ सीधी लकड़ी। डंडा। २ गदका। उ०—सीखत पटकी डाँड़ विविध लकड़ी के दांवन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २८।

यौ०—डाँड़ पटा = (१) फरी गतका। (२) गतके का खेल।

३. नाव खेने का लंबा बल्ला या डंडा। चप्पू।

क्रि० प्र०—खेना।—चलाना।—मारना।—भरना।–(लश०)।

४. प्रकुश का हत्था। ५. जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिसमें ढरी फँसाई रहती है। † ६ सीधी लकीर। ७ रीढ़ की हड्डी। ८. ऊँची उठी हुई तंग जमीन जो दूर तक लकीर की तरह चली गई हो। ऊँची मेंड़।

मुहा०—डाँड़ मारना = मेंड़ उठाना।

९. रोक, आड़ आदि के लिये उठाई हुई कम ऊँची दीवार। १०. ऊँचा स्थान। छोटा भीटा या टीला। उ०—सो कर जै पंडा छिति गाड़े। उपज्यो द्रुत द्रुम इक तेहि डाँड़े।—रघुराज (शब्द०)। ११ दो खेतों के बीच की सीमा पर की कुछ ऊँची जमीन जो कुछ दूर तक लकीर की तरह गई हो और जिसपर लोग आते जाते हों। मेंड़।

क्रि० प्र०—डाँड़ मारना = मेंड बनाना। सीमा या हदबंदी करना।

यौ०—डाँड़ मेंड़ = दे० 'डाँड़ामेंड़'।

१२ समुद्र का ढालुआँ रेतीला किनारा। १३. सीमा। हद। जैसे, गावँ का डाँड़ा। १४ वह मैदान जिसमें का जंगल कट गया हो। १५. अर्थदंड। किसी अपराध के कारण अपराधी से लिया जानेवाला धन। जुरमाना।

क्रि० प्र०—लगाना।

१६ वह वस्तु या धन जिसे कोई मनुष्य दूसरे से अपनी किसी वस्तु के नष्ट हो जाने या खो जाने पर ले। नुकसान का बदला। हरजाना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

१७. लंबाई नापने का मान। कट्ठा। बाँस।

डाँड़ना—क्रि० स० [हिं० डाँड़ + ना (प्रत्य०), या सं० दण्डन] अर्थदंड देना। जुरमाना करना। उ०—(क) उदधि अपार उतरतहूँ न लागी बार केसरीकुमार सो अदंड ऐसो डाँड़िगो। —तुलसी (शब्द०)। (ख) पड़ा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा। का निचिंत माटी के भाँड़ा ?–जायसी (शब्द०)।

डाँड़र—संज्ञा पुं० [हिं० डाँठ] बाजरे के डंठल का गड़ा हुआ भाग जो फसल कट जाने पर भी खेतों में पड़ा रहता है। बाजरे की खूँटी।

डाँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़] १ छड़। डंडा। २. गतका। उ०—बज्र की साँग बज्र का डाँड़ा। उठी आगि तस बाजे खाँड़ा। —जायसी (शब्द०)। ३. नाव खेने का डाँड़। ४. समुद्र का ढालुआँ रेतीला किनारा (लश०)। ५. हद। सीमा। मेंड़।

यौ०—डाँडा मेंडा। डाँडा मेंडी।

मुहा०—होली का डाँडा = लकड़ी, घास फूस आदि का ढेर जो वसंत पंचमी के दिन से होली जलाने के लिये इकट्ठा किया जाने लगता है।

डाँड़ामेंड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड + मेंड] १ एक ही डाँड या सीमा का अंतर। परस्पर अत्यंत सामीप्य। लगाव। २. अनबन। झगड़ा।

क्रि० प्र०—रहना।

डाँड़ामेंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डाँडामेंडा'।

डाँडाशाहेल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप जो बंगाल में होता है।

डाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँडा] १. लंबी पतली लकड़ी। २ हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो हाथ में लिया या पकड़ा जाता है। लंबा हत्था या दस्ता। जैसे, करछी की डाँड़ी। उ०—हरि जु की आरती बनी। अति विचित्र रचना रचि राखी परति न गिरा गनी।

कच्छप अथ आसन अनूप अति, डाँडी शेष फनी।—सूर (शब्द०)। ३ तराजू की वह सीधी लकड़ी जिसमे रस्सियाँ लटकाकर पलड़े बाँधे जाते हैं। डंडी। उ०—साँई मेरा बानिया सहज करै व्यवहार। बिन डाँडी बिन पालड़े तौले सब संसार।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—डाँडी मारना = सौदा देने में कम तौलना। डाँडी सुभीते से रहना = बाजारभाव अनुकूल होना। उ०—भगवान कहीं गौं से बरखा कर दें और डाँडी भी सुभीते से रहे तो एक गाय जरूर लेगा।—गोदान, पृ० ३०।

४ टहनी। पतली शाखा। ५. वह लंबा डंठल जिसमें फूल या फल लगा होता है। नाल। उ०—तेहि डाँडी सह कमलहि तोरी। एक कमल की दूनौ जोरी।—जायसी (शब्द०)। ६. हिंडोले में लगी हुई वे चार सीधी लकड़ियाँ या डोरी की लड़ें जिनसे लगी हुई बैठने की पटरी लटकती रहती है। उ०—पटुली लगे नग नाग बहुरंग बनी डाँडी चारि। भौरा भँवै भजि केलि भूले नवल नागर नारि।—सूर (शब्द०)। ७ जुलाहों की वह लकड़ी जो चरखी की पवनी मे डाली जाती है। ८ शहनाई की लकड़ी जिसके नीचे पीतल का घेरा होता है। ९ अनवट नामक गहने का वह भाग जो दूसरी और तीसरी उँगली के नीचे इसलिये निकाला रहता है जिसमे अनवट घूम न सके। १० डाँड़ खेनेवाला आदमी (लश०)। ११ मट्ठर या सुस्त आदमी (लश०)। † १२ सीधी लकीर। लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खींचना।

१३. लीक। मर्यादा। १४ सीमा। हद। उ०—डरे लोग वन डाँडियाँ, सूते ही खादूल। जे सूते ही जागता, सबलाँ माथा सूल।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २४। १५. चिड़ियों के बैठने का अड्डा। १६ फूल के नीचे का लंबा पतला भाग। १७ पालकी के दोनों ओर निकले हुए लंबे डंडे जिन्हें कहार कधे पर रखते हैं। १७ पालकी। १९. डंडे मे बँधी हुई झोली के आकार की एक सवारी जो ऊँचे पहाड़ों पर चलती है। झप्पान।

डाँड़री—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ, हिं० डाढ़ा + री (प्रत्य०)] भूनी हुई मटर की फली।

डाँबू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरकट जो दलदल में उत्पन्न होता है।

डाँभ—संज्ञा पुं० [सं० दाह प्रा० डाह, या सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ, या हिं० दागना] १ जलने का दाग। दाग। २ जलने से उत्पन्न पीड़ा या कष्ट। उ०—बाँधउँ बड़री छाहड़ी, नीरूँ नागर बेल। डाँभ सँभालूँ करहला, चोपड़िसूँ चपेल।—ढोला०, दू० ३२०।

डाँवरा—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भ] [स्त्री० डाँवरी] लड़का। बेटा। पुत्र।

डाँवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँवरा] लड़की। बेटी। उ०—(क) कवन अन रतन जटित रामचंद्र पाँवरी। दाहिन सो राम वाम जनक राय डाँवरी।—देवस्वामी (शब्द०)। (ख) बाहिर पौरि न दीजिए पाँवरी बाउरी होय सो डाँवरी डोलै।—देव (शब्द०)। दे० 'डाबरी'।

डाँवरू—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भ] बाघ का बच्चा।

डाँवाडोल—वि० [हिं० डोलना] इधर उधर हिलता डोलता हुआ। एक स्थिति पर न रहनेवाला। चचल। विचलित। अस्थिर। जैसे, चित्त डाँवाडोल होना।

डाँवो—क्रि० वि० [प्रा० डाव, गुज० डाबो] बाईं ओर। बाईं तरफ। उ०—डाँवो सांड छटूकतो आई।—बी० रासो, पृ० ६०।

डाँशपाहिड़—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक जिसमें पाँच आघात के पश्चात् एक शून्य (खाली) होता है।

डाँस—संज्ञा पुं० [सं० दश] १. बड़ा मच्छड़। दश। २. एक प्रकार की मक्खी जो पशुओं को बहुत दुःख देती है। उ०—जरा बछड़े को देखता हूँ...बेचारे को डाँस परेशान कर रहे हैं।—नई०, पृ० ३०। ३. कुकरौंधी।

डाँसर—संज्ञा पुं० [देश०] इमली का बीज। चियाँ।

डा¹—संज्ञा पुं० [अनु०] सितार की गत का एक बोल। जैसे—डा डिड़ डा ड़ा डा डा ड़ा।

डा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डाकिनी। २. टोकरी जो ढोकर ले जाई जाय (को०)।

डाइचा—संज्ञा पुं० [सं० दाय] दे० 'दायजा'। उ०—डाइचो दिढ दाहिन दुहम, भुज भुजग कीरति करे।—पृ० रा०, १६.१५।

डाइन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकनी] १ भूतनी। चुड़ैल। राक्षसी। उ०—ओझा डाइन डर से डरपैं।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८। २ टोनहाई। वह स्त्री जिसकी दृष्टि आदि के प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं। ३ कुरूपा और डरावनी स्त्री।

डाइनामाइट—संज्ञा पुं० [सं०] एक विस्फोटक पदार्थ का नाम।

डाइनिंग रूम—संज्ञा पुं० [अं०] भोजन कक्ष। उ०—भाभी ने हम लोगों को डाइनिंग रूम में बुलाया।—जिप्सी, पृ० ४२३।

डाइबीटी—संज्ञा पुं० [अं० डाइबिटीज] बहुमूत्र रोग। मधुमेह।

डाइरेक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १. प्रबंध चलानेवाला। कार्यसंचालक। निर्देश । निदेशक। मुतजिम। इंतजाम करनेवाला। २ मशीन में वह पुरजा जिसकी क्रिया से गति उत्पन्न होती है।

डाइरेक्टरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह पुस्तक जिसमें किसी नगर या देश के मुख्य निवासियों या व्यापारियों आदि की सूची अक्षर क्रम से हो।

डाइवोर्स—संज्ञा पुं० [अं०] तलाक। पति पत्नी का संबंधविच्छेद।

डाई—संज्ञा पुं० [अं०] १. पासा। २. ठप्पा। साँचा। ३. रंग।

डाईप्रेस—संज्ञा पुं० [अं०] ठप्पा उठाने की कल। उभरे हुए अक्षर उठाने की कल जिससे मोनोग्राम आदि छपते हैं।

डाक¹—संज्ञा पुं० [हिं० उडाँक या उलाँक या डाँकना (= फाँदना)] १. सवारी का ऐसा प्रबंध जिसमें एक एक टिकाव पर बराबर जानवर आदि बदले जाते हों। घोड़े गाड़ी आदि का जगह जगह इंतजाम।

मुहा०—डाक बैठाना = शीघ्र यात्रा के लिये स्थान स्थान पर सवारी बदलने की चौकी नियत करना। डाक लगाना = शीघ्र संवाद पहुँचाने या यात्रा करने के लिये मार्ग में स्थान स्थान पर आदमियों या सवारियों का प्रबंध रहना। डाक लगाना = दे० 'डाक बैठाना'।

यौ०—डाक चौकी = मार्ग में वह स्थान जहाँ यात्रा के घोड़े बदले जायँ या एक हरकारा दूसरे हरकारे को चिट्ठियों का थैला दे। उ०—पाछे राजा ने द्वारिका सों मेरता सों डाक चौकी बेठारि दीनी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २४६।

२. राज्य की ओर से चिट्ठियों के आने जाने की व्यवस्था। वह सरकारी इंतजाम जिसके मुताबिक खत एक जगह से दूसरी जगह बराबर आते जाते हैं। जैसे, डाक का मुहकमा। उ०—यह चिट्ठी डाक में भेजेंगे, नौकर के हाथ नहीं।

यौ०—डाकखाना। डाकगाड़ी।

३. चिट्ठी पत्री। कागज पत्र आदि जो डाक से आवे। डाक से आनेवाली वस्तु। जैसे,—तुम्हारी डाक रखी है, ले लेना।

डाक[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वमन। उलटी। कै।

क्रि० प्र०—होना।

डाक[3]—संज्ञा पुं० [अं० डॉक] समुद्र के किनारे जहाज ठहरने का वह स्थान जहाँ मुसाफिर या माल चढ़ाने उतारने के लिये बाँध या चबूतरे आदि बने होते हैं।

डाक[4]—संज्ञा पुं० [बग० डाकना (= चिल्लाना)] नीलाम की बोली। नीलाम की वस्तु लेनेवालों की पुकार जिसके द्वारा वे दाम लगाते हैं।

डाकखाना—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + फ़ा० खाना] वह स्थान या सरकारी दफ्तर जहाँ लोग भिन्न भिन्न स्थानों पर भेजने के लिये चिट्ठी पत्री आदि छोड़ते हैं और जहाँ से आई हुई चिट्ठियाँ लोगों को बाँटी जाती हैं।

डाकगाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाक + गाड़ी] वह रेलगाड़ी जिसपर चिट्ठी पत्री आदि भेजने का सरकार की तरफ से इंतजाम हो। डाक ले जानेवाली रेलगाड़ी जो और गाड़ियों से तेज चलती है।

डाकघर—संज्ञा पुं० [हिं० डाक+घर] दे० 'डाकखाना'।

डाकनवारो—संज्ञा पुं० [हिं० डाकना + वाला (प्रत्य०)] पुकारनेवाला। बुलानेवाला। प्रियतम। उ०—जब डाकनवारो चढ़यो सिर पै तब, लाज कहा खर के चढ़िये की।—नट०, पृ० ५४।

डाकना[1]—क्रि० अ० [हिं० डाक] कै करना। वमन करना।

डाकना[2]—क्रि० स० [हिं० उड़ाक, डाँक + ना (प्रत्य०)] फाँदना। लाँघना। कूदकर पार करना। उ०—मृग हाथ बीस दश डाकै। तृण हालि उठै तब ताकै।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १४१। (ख) सुंदर सूर न गासणा डाकि पड़ै रण माँहि। घाव सहै मुख साँमहाँ पीठि फिरावै नाँहि।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३८।

संयो०क्रि०—जाना।

डाकबँगला—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + बँगला] वह बँगला या मकान जो सरकार की ओर से परदेसियों के लिये बना हो।

विशेष—ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में इस प्रकार के बँगले स्थान स्थान पर बने थे। पहले जब रेल नहीं थी तब इन्हीं स्थानों पर डाक ली जाती और बदली जाती थी। अतः सवारियों का भी यहीं अड्डा रहता था जिससे मुसाफिरों को ठहरने आदि का सुबीता रहता था।

डाकमहसूल—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + अ० महसूल] वह खर्च जो चीज को डाक द्वारा भेजने या मँगाने में लगे। डाकव्यय।

डाकमुंशी—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + फ़ा० मुंशी] डाकघर का अफसर। पोस्टमास्टर।

डाकर—संज्ञा पुं० [देश०] तालों की वह मिट्टी जो पानी सूख जाने पर चिटखकर कड़ी हो जाती है।

डाकव्यय—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाक+सं० व्यय] डाक का खर्च। डाक महसूल।

डाका—संज्ञा पुं० [हिं० डाकना (= कूदना) वा सं० दस्यु अथवा देश०] वह आक्रमण जो धन हरण करने के लिये सहसा किया जाता है। माल असबाब जबरदस्ती छीनने के लिये कई आदमियों का दल बाँधकर धावा। बटमारी।

मुहा०—डाका डालना = लूटने के लिये धावा करना। जबरदस्ती माल छीनने के लिये चढ़ दौड़ना। डाका पड़ना = लूट के लिये आक्रमण होना। जैसे,—उस गाँव पर आज डाका पड़ा। डाका मारना = जबरदस्ती माल लूटना। बलपूर्वक धन हरण करना।

डाकाजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाका + फ़ा० जनी] डाका मारने का काम। बटमारी।

डाकिन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी'।

डाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक पिशाची या देवी जो काली के गणों में समझी जाती है। २ डाइन। चुड़ैल।

डाकिया—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + इया (प्रत्य०)] डाक से आई चिट्ठियाँ आदि लोगों के पास पहुँचानेवाला कर्मचारी।

डाकी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाक] वमन। कै।

डाकी[2]—संज्ञा पुं० १. बहुत खानेवाला। पेटू। २ डाकू। उ०—सुंदर तृष्णा डाइनी डाकी लोभ प्रचंड। दोऊ कार्ज आँषि जब, कपि उठै ब्रह्मंड।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७१४।

डाकी[3]—वि० सबल। प्रचंड (डिं०)।

डाकू—संज्ञा पुं० [हिं० डाका + ऊ (प्रत्य०), वा सं० दस्यु] १. डाका डालनेवाला। जबरदस्ती लोगों का माल लूटनेवाला। लुटेरा। बटमार। २ अधिक खानेवाला। पेटू।

डाकेट—संज्ञा पुं० [अं०] किसी बड़ी चिट्ठी या आज्ञापत्र आदि का सारांश। चिट्ठी का खुलासा।

डाकोर—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर, हिं० ठाकुर] ठाकुर। विष्णु भगवान् (गुजरात)।

डाक्टर—संज्ञा पुं० [अं०]१. आचार्य। अध्यापक। विद्वान्। २. वैद्य। चिकित्सक। हकीम।

डाक्टरी—संज्ञा स्त्री० [अं० डाक्टर+ई (प्रत्य०)] १. चिकित्सा-शास्त्र। २. योरप का चिकित्साशास्त्र। पाश्चात्य आयुर्वेद। ३. डाक्टर का पेशा या काम। ४ वह परीक्षा जिसे पास करने पर आदमी डाक्टर होता है।

डाक्डर—संज्ञा पुं० [अं० डाक्टर] दे० 'डाक्टर'।

डाखा†—संज्ञा पुं० [हिं० ढाख] ढाक। पलाश। उ०—तरवर झर्राहं झर्राहं बन डाखा। भई उपत फूल कर साखा।—जायसी (शब्द०)।

डाखिपी㉊†—संज्ञा पुं० [?] भूखा सिंह (डिं०)।

डागरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] दे० 'डगर'।

डागल†—संज्ञा पुं० [देशी डुगर] शैल। पर्वत। उ०—जन दरिया इस झूठ की, डागल ऊपर दौड़।—दरिया० बानी, पृ० ३१

डागा㉊—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] नगाड़ा बजाने का डंडा। चोब।

डागुर—संज्ञा पुं० [देश०] जाटों की एक जाति। उ०—डागुर पछौंदरे धरि मरोर। वहु बहुठ ठट्ठ वट्टे सजोर।—सूदन (शब्द०)।

डागुल†—संज्ञा पुं० [देशी डुगर, हिं० डागल] शैल। पर्वत। उ०—काहे को फिरत नर भटकत ठौर ठौर। डागुल की दौर देवी देव सब जानिए।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४७६।

डाघा†—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्र, प्रा० डड्ढ, या देश०] मुख। उ०—(क) लोह घणी ऊखज छरा, केहर फाड़ै डाघ।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ११। (ख) खलकाया रत खात भरे, डाघा पल भक्खे।—रघु० रू०, पृ० ४०।

डाट¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति] १ वह वस्तु जो किसी बोझ को ठहराए रखने या किसी वस्तु को खड़ी रखने के लिये लगाई जाती है। टेक। चाँड।

क्रि० प्र०—लगाना।

२ वह कील या खूँटा जिसे ठोककर कोई छेद बंद किया जाय। छेद रोकने या बंद करने की वस्तु।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. बोतल, शीशी आदि का मुँह बंद करने की वस्तु। ठेंठी। काग। गट्टा।

क्रि० प्र०—कसना।—लगाना।

४. मेहराब को रोके रखने के लिये ईंटों आदि की भरती। लदाव की रोक। लदाव का ढोला।

डाट²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डाँट'।

डाट³—संज्ञा पुं० [अं०] नुकता। बिंदु। उ०—इन कसबियों पर डाट लगाकर।—प्रेमघन, भा० २, पृ० ४५५।

डाटना—क्रि० स० [हिं० डाट] १. किसी वस्तु को किसी वस्तु पर रखकर जोर से ढकेलना। एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कसकर दबाना। भिड़ाकर ठेलना। जैसे,—(क) इसे इस डंडे से डाटो तब पीछे खिसकेगा। (ख) इस डंडे को डाटे रहो तब पत्थर इधर न लुढ़केगा।

संयो० क्रि०—देना।

२ किसी खंभे, डंडे आदि को, किसी बोझ या भारी वस्तु को ठहराए रखने के लिये उससे भिड़ाकर लगाना। टेकना। चाँड लगाना। ३. छेद या मुँह बंद करना। मुँह कसना। मुँह बंद करना। ठेंठी लगाना। ४ कसकर भरना। ठसकर भरना। कसकर घुसेड़ना। उ०—ज्ञान गोली बहुँ खूब डाटी।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६८। ५. खूब पेट भर खाना। कस कर खाना। उ०—अगनित तरु फल सुगंध मधुर मिष्ट खाटे। मनसा करि प्रभुहिं अर्पि भोजन को डाटे।—सूर (शब्द०)। ६. ठाट से कपड़ा, गहना आदि पहनना। जैसे, कोट डाटना, अँगरखा डाटना। ७ भिड़ाना। डाटना। मिलाना। उ०—रच न साव सुधे सुख को बिन राधिके आधिक लोचन डाटे।—केशव (शब्द०)।

डाठी㉊†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दुर्वासना। बुरी आदत। उ०—अगुआ भयो काम की डाठी। जस कोइ गहे अंध की लाठी।—चित्रा०, पृ० २७।

डाड़ना¹—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ढाडना,' 'धाड़ना'।

डाड़ना²—क्रि० स० [हिं० डाँडना] डाँडना'।

डाढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रंष्ट्रा, प्रा० डड्ढ] १ चबाने के चौड़े दाँत। चौभड़। दाढ़। उ०—हम वो दो रुपए नहीं बचते। मिठाई खाए तो डाढ़ तक गरम न हो। इतने में होता ही क्या है!—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४। २ वट आदि वृक्षों की शाखाओं से नीचे की ओर लटकी हुई जटाएँ। बरोह।

डाढ़ना㉊†—क्रि० स० [सं० दग्ध, प्रा० डट्ठ+हिं० ना (प्रत्य०)] जलाना। भस्म करना। उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ आगि लागे डाढ़न।—तुलसी (शब्द०)।

डाढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ] १. दावानल। वन की आग। २ अग्नि। आग। उ०—रामकृपा कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लागि अति डाढ़ा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

३ ताप। दाह। जलन।

क्रि० प्र०—फूँकना।

डाढार㉊—संज्ञा पुं० [हिं० डाढ़] फण। फन उ०—सेस सीस लखि भार डिढय डाढार करक्किय।—रसर०, पृ० १०४।

डाढ़ी㉊¹—वि० [सं० दग्ध] दग्ध। पीड़ित। उ०—सखी संग की निरखति यह छवि भई व्याकुल मन्मथ को डाढ़ी।—सूर०, १०। ७३६।

डाढ़ी²—संज्ञा स्त्री० [प्रा० डड्ढ, हिं० डाढ़+ई(प्रत्य०)] १ चेहरे पर ओठ के नीचे का गोल उभरा हुआ भाग। ठोड़ी। ठुड्डी। चिबुक। २ ठुड्डी और कनपटी पर के बाल। चिबुक और गंडस्थल पर के लोम। दाढ़ी। उ०—दाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिंदुवाने की।—भूषण (शब्द०)।

मुहा०—डाढ़ी छोड़ना = डाढ़ी न मुँड़वाना। डाढ़ी बढ़ाना। डाढ़ी का एक एक बाल करना = डाढ़ी उखाड़ लेना। अपमानित करना। दुर्दशा करना। डाढ़ी को कलंक लगाना = बूढ़े आदमी को कलंक लगाना। श्रेष्ठ और वृद्ध को दोष लगाना। पेट में डाढ़ी होना = छोटी ही अवस्था में बड़ों की सी जानकारी प्रकट करना या बातें करना। पेशाब से डाढ़ी मुड़वाना = अत्यंत

अपमान करना। अप्रतिष्ठा करना। दुर्गति करना। डाढ़ी फटकारना = (१) हाथ से डाढ़ी के बालों को झटकारना। (२) संतोष और उत्साह प्रकट करना। डाढ़ी रखना = डाढ़ी के बाल न मुँडवाना। डाढ़ी बढ़ने देना।

डाढ़ीजार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दाढ़ीजार। उ०—धमिरती देवी ने पूछा—कौन है डाढ़ीजार, इतनी रात को जगावत है?—मान०, भा०५, पृ० २३।

डाब—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्भ] १. डाभ नाम की घास। २. कच्चा नारियल। ३ परतला।

डाबक—वि० [अनु०] दे० 'डाभक'।

डाबर[1]—संज्ञा पुं० [सं० दभ्र (= समुद्र या झील)] १ नीची जमीन। गहरी भूमि जहाँ पानी ठहरा रहे। २. गड्ढी। पोखरी। तलैया। गड्ढा जिसमें बरसाती पानी जमा रहता है। उ०—(क) सुरसर सुभग बनज वनचारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) धो मैं बरषि कहाँ विधि केहीं। डाबर कमठ की मंदर देहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३. हाथ धोने का पात्र। चिलमची। ४. मैला पानी।

डाबर[2]—वि० मटमैला। गदला। कीचड़ मिला। उ०—भूमि परत भा डाबर पानी।—तुलसी (शब्द०)।

डाबा—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] दे० 'डब्बा'। उ०—पंच प्रहित धूमन के डाबा। अमल अरघ भाजन छवि छावा।—पद्माकर (शब्द०)।

डाबी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्भ] कटी हुई घास या फसल का पूला।

डाभ—संज्ञा पुं० [सं० दर्भ] १. कुश की जाति की एक घास जो प्राय रेह मिली हुई ऊसर जमीन में अधिक होती है। एक प्रकार का कुश। २. कुश। उ०—प्रथम डाभ, तिल पाल यों अंसुवन को परवाह। दीर्दाहे देत तिलांजली, नैना तुम बिनु नाह।—मुबारक (शब्द०)। ३ आम का मौर। आम की मंजरी। उ०—जउ लहि आमहि डाभ न होई। तउ लहि सुगंध बसाय न सोई।—जायसी (शब्द०)। ४ कच्चा नारियल।

डाभक—वि० [अनु० डभक डभक] कुएँ से तुरत का निकला हुआ। ताजा (पानी)। जैसे, डाभक पानी।

डाभर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दभ्र] दे० 'डाबर'।

डामचा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में खड़ा किया हुआ वह मचान जिसपर से खेत की रखवाली करते हैं। मैडा। माचा।

डामर—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिवकथित माना जानेवाला एक तंत्र जिसके छह भेद किए गए हैं—योग डामर, शिव डामर, दुर्गा डामर, सारस्वत डामर, ब्रह्म डामर और गंधर्व डामर। २ हलचल। धूम। ३ आडंबर। ठाटबाट। ४ चमत्कार। ५. दुर्ग के शुभाशुभ जानने के लिये बनाए जानेवाले चक्रों में से एक। ६ क्षेत्रपाल। ४६ भैरवों में से एक। ७ एक मिश्रित या संकर जाति।

डामर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. साल वृक्ष का गोंद। राल। २. एक प्रकार का गोंद या कहरुवा जो दक्षिण में पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर होनेवाले एक पेड़ से निकलता है और सफेद डामर कहलाता है। दे० 'कहरुवा'। ३. कहरुवा की तरह का एक प्रकार का लसीला राल या गोंद जो छोटी मधुमक्खियों के छत्ते से निकलता है। ४. वह छोटी मधुमक्खी जो इस प्रकार का राल बनाती है। ५. दे० 'डामल'[3]।

डामरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्ब] दे० 'डाँवरी'। उ०—उन पाबि गह्यो हुतो मेरो जबै सबै गाय उठी ब्रज डामरियाँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८८।

डामल[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० दायमुल्हब्स] १ जनम कैद। उम्र भर के लिये कैद। २. देशनिकाला का दंड।

विशेष—भारतवर्ष में अँगरेजी सरकार भारी भारी अपराधियों को अंडमन टापू में भेजा करती थी। उसी को डामल कहते थे।

डामल[2]—संज्ञा पुं० [अं० डायमंड] दे० 'डायमंड कट'।

यौ०—डामल कट। डामल काट।

क्रि० प्र०—छीलना।

डामल[3]—संज्ञा पुं० [देश०] अलकतरा। तारकोल। उ०—इस बड़े के पीछे इंच भर मोटा डामल का पलस्तर था जो माल या सील को रोकता था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १७।

डामाडोल—वि० [हिं०] दे० 'डावाँडोल'।

डामिल(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० डामल] दे० 'डामल'। उ०—कितने गुड़े डामिल गएल, कितने पापन फँसिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३।

डायँ डायँ—क्रि० वि० [अनु०] व्यर्थ इधर से उधर (घूमना)। व्यर्थ धूम छावते हुए। जैसे,—वह यों ही दिन भर डायँ डायँ फिरा करता है।

डायट—संज्ञा स्त्री० [अं] १. व्यवस्थापिका सभा। राज्यसभा। जैसे, जापान की इंपीरियल डायट। २. पथ्य। ३. भोजन। खाद्य पदार्थ।

डायन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी, प्रा० डाइणी] १. डाकिनी। पिशाचिनी। चुड़ैल। भूतिन। २ कुरूपा स्त्री।

डायनामो—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा एंजिन जिससे बिजली पैदा की जाती है।

डायरिया—संज्ञा पुं० [अ०] दस्त की बीमारी। अतिसार।

डायल—संज्ञा पुं० [अं०] १. घड़ी के सामने का वह गोल भाग जिसके ऊपर अंक बने होते हैं और सूइयाँ घूमती हैं। घड़ी का चेहरा। २. पहिए का टेढ़ा हो जाना (विशेषतः साइकिल आदि का)। अपनी जगह पर ठीक न बैठना।

डायलाग—संज्ञा पुं० [अं० डायलॉग] संवाद। कथोपकथन। वार्तालाप। उ०—अबकी दफे अपना डायलाग अच्छी तरह याद कर लो।—आकाश०, पृ० १५२।

डायस—संज्ञा पुं० [अं०] वह ऊँचा स्थान या चबूतरा जिसपर किसी सभा के सभापति का आसन रखा जाता है। मंच।

डायमंड कट—संज्ञा पुं० [अं०] गहनों की धातु को इस प्रकार छीलकर

जिसमें हीरे की सी चमक पैदा हो जाय। हीरे की सी काट। डामल काट।

डायार्की—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह शासनप्रणाली या सरकार जिसमें शासन अधिकार दो व्यक्तियों के हाथों में हो। द्वैध शासन। दुहत्था शासन।

विशेष—भारत में सन् १९१९ ई० के गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट के अनुसार प्रादेशिक शासनप्रणाली इसी प्रकार की कर दी गई थी। शासन के सुभीते के लिये प्रदेशों से संबंध रखनेवाले विषय दो भागों में बाँट दिए गए थे। एक रिजर्व्ड या रक्षित विषय जो गवर्नर और उनकी शासनसभा के अधिकार में था, और दूसरा ट्रांसफर्ड या हस्तांतरित विषय, जो मिनिस्टरों या मंत्रियों के अधिकार में (जो निर्वाचित सदस्यों में से चुने जाते हैं) था। 'रक्षित विषयों' की सुव्यवस्था के लिये गवर्नर और उनकी शासनसभा भारत सरकार और भारत सचिव द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से पार्लमेंट अथवा ब्रिटिश मतदाताओं के सामने उत्तरदाता थी और हस्तांतरित विषयों के लिये गवर्नर के मंत्री अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय मतदाताओं के सामने उत्तरदायी थे। यद्यपि विशेष अवस्थाओं में इनके मत के विरुद्ध कार्य करने का गवर्नर को अधिकार था, परंतु शासनसभा के बहुमत के विरुद्ध गवर्नर आचरण नहीं कर सकता था। शासनसभा के सदस्यों और मंत्रियों में एक अंतर यह भी था कि वे सम्राट् के आज्ञापत्र द्वारा नियुक्त होते थे, परंतु मंत्री को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार गवर्नर को ही था। मंत्री का वेतन निर्दिष्ट करने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को था।—भारतीय शासनपद्धति।

डार(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दारु(=लकड़ी)] १ डाल। शाखा। उ०—(क) रत्नजटित कंकन बाजूबंद नगन मुद्रिका सोहै। डार डार मनु मदन विटप तरु विकच देखि मन मोहै।—सूर (शब्द०)। (ख) जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीत बहार। अब अलि रही गुलाब में अपत कँटीली डार।—बिहारी (शब्द०)। फानूस जलाने के लिये दीवार में लगाने की खूँटी।

डार(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० डलक] डलिया। चँगेर। डाली। उ०—चली पाउन सब गोहनै फूल डार लेइ हाथ। बिस्सुनाथ कइ पूजा पदुमावति के साथ।—जायसी (शब्द०)।

डार³—संज्ञा स्त्री० [प० डार(=झुंड)] समूह। झुंड।

डारना(पु)—क्रि० स० [हिं० डालना] दे० 'डालना'। उ०—(क) जिन्ने जन्म डारा है तुज कूँ। बिसर गया उनका ध्यान तू।—दक्खिनी०, पृ० १४। (ख) बूँद डारी धरनि सरन जल पूरि डारे धूर करि डारे सुख विरही तियान के।—ठाकुर०, पृ० १९।

डारा—संज्ञा पुं० [हिं० डालना (=फैलना)] कपड़ा सुखाने के लिये बँधी रस्सी या बाँस। अरगनी।

डारियास—संज्ञा पुं० [देश०] बाबून बंदर की एक जाति।

डारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डार] दे० 'डार', 'डाल'।

डाल¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दारु (=लकड़ी), हिं० डार] १. पेड़ के धड़ से इधर उधर निकली हुई वह लंबी लकड़ी जिसमें पत्तियाँ और कल्ले होते हैं। शाख। शाखा।

मुहा०—डाल का टूटा =(१) डाल से पककर गिरा हुआ ताजा (फल)। (२) बढ़िया। अनोखा। चोखा। जैसे,—तुम्हीं एक डाल के टूटे हो जो सब कुछ तुम्ही को दिया जाय। (३) नया आया हुआ। नवागतुक। डाल का पका =पेड़ ही में पका हुआ। डालवाला =बंदर। शाखामृग।

२. फानूस जलाने के लिये दीवार में लगी हुई एक प्रकार की खूँटी। ३. तलवार का फल। तलवार के मूठ के ऊपर का मुख्य भाग। ४ एक प्रकार का गहना जो मध्यभारत और मारवाड़ में पहना जाता है।

डाल—संज्ञा स्त्री० [सं० डलक, हिं० डला] १. डलिया। चँगेरी। २. फूल, फल या खाने पीने की वस्तु जो डलिया में सजाकर किसी के यहाँ भेजी जाय। ३ कपड़ा और गहना जो एक डलिया में रखकर विवाह के समय वर की ओर से वधू को दिया जाता है।

डालना—क्रि० स० [सं० तलन (=नीचे रखना)] १. पकड़ी या ठहरी हुई वस्तु को इस प्रकार छोड़ देना कि वह नीचे गिर पड़े। नीचे गिराना। छोड़ना। फेंकना। गेरना। जैसे,—ऐसी चीज क्यों हाथ में लिए हो ? उधर डाल दो।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—डाल रखना =(१) किसी वस्तु को रख छोड़ना। (२) किसी काम को लेकर उसमें हाथ न लगाना। रोक रखना। देर लगाना। झुलाना।

२ एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कुछ दूर से गिराना। छोड़ना। जैसे, हाथ पर पानी डालना, थूक पर राख डालना।

संयो० क्रि०—देना।

३. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में रखने, ठहराने या मिलाने के लिये उसमें गिराना। किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह उसमें ठहर या मिल जाय। स्थित या मिश्रित करना। रखना या मिलाना। जैसे, घड़े में पानी डालना, दूध में चीनी डालना, दाल में घी डालना, चूर्ण में नमक डालना।

संयो० क्रि०—देना।

४ घुसाना। घुसेड़ना। प्रविष्ट करना। भीतर कर देना या ले जाना। जैसे, पानी में हाथ डालना, कुएँ में डोल डालना, बिल या मुँह में हाथ डालना।

संयो० क्रि०—देना।

५ परित्याग करना। छोड़ना। खोज खबर न लेना। भुला देना। उ०—केहि अघ औगुन आपनो करि डारि दिया रे।—तुलसी (शब्द०)। ६ अंकित करना। लगाना। चिह्नित करना। जैसे, लकीर डालना, चिह्न डालना।

संयो० क्रि०—देना।

७. एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु इस प्रकार फैलाना जिसमें

वह कुछ ढक जाय। फैलाकर रखना। जैसे, मुँह पर चादर डालना, मेज पर कपड़ा डालना, सूखने के लिये गीली धोती डालना।

संयो० क्रि०—देना।

६. शरीर पर धारण करना। पहनना। जैसे, अँगरखा डालना।

संयो० क्रि०—लेना।

१० किसी के मत्थे छोड़ना। जिम्मे करना। भार देना। जैसे,—(क) तुम सब काम मेरे ही ऊपर डाल देते हो। (ख) उसका सारा खर्च मेरे ऊपर डाल दिया गया है।

सयो०— क्रि०—देना।

११ गर्भपात करना। पेट गिराना। (चौपायों के लिये)।

संयो० क्रि०—देना।

१२ (किसी स्त्री को) रख लेना। पत्नी की तरह रखना।

संयो० क्रि०—लेना।

१३ लगाना। उपयोग करना। जैसे, किसी व्यापार में रुपया डालना। १४. किसी के अंतर्गत करना। किसी विषय या वस्तु के भीतर लेना। जैसे,—यह रुपया ब्याह के खर्च मे डाल दो। १५ अव्यवस्था आदि उपस्थित करना। बुरी बात घटित करना। मचाना। जैसे,—गड़बड़ डालना, आपत्ति डालना, विपत्ति डालना। १६. बिछाना। जैसे, खटिया डालना, पलग डालना, चारा डालना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग सयो० क्रि० के रूप मे भी, समाप्ति की ध्वनि व्यजित करने के लिये, सकर्मक क्रियाओं के साथ होता है, जैसे, मार डालना, कर डालना, काट डालना, जला डालना, दे डालना, आदि।

डालफिन—सज्ञा स्त्री० [अं०] ह्वेल मछली का एक भेद।

डालर—सज्ञा पुं० [अं०] अमेरिका का सिक्का। यह १०० सेंट या टके का होता है। रुपयों में इसका मूल्य विनिमय दर के आधार पर सदा बदलता रहता है। कभी एक डालर तीन रुपए दो आने के बराबर था। सप्रति उसकी दर भारतीय रुपयो मे लगभग ४ ८७ न. पैसे है।

डाला†—सज्ञा पुं० [सं० डलक] दे० 'डला', 'डाल'।

डालिम—सज्ञा पुं० [सं०] दे० दाडिम' [को०]।

डाली[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० डाला] १ डलिया। चँगेरी। २ फल फूल, मेवे तथा खाने पीने की वस्तुएँ जो डलिया मे सजाकर किसी के पास सम्मानार्थ भेजी जाती हैं। जैसे,—बड़े दिन में साहब लोगों के पास बहुत सी डालियाँ आती हैं।

क्रि० प्र०—भेजना।

मुहा०—डाली लगाना = डलिया में मेवे आदि सजाकर भेजना।

डाली[2]—सज्ञा स्त्री० [हिं० डाल] दे० 'डाल[1]'

डाव(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाँव'।—उ०—पाका काचा ह्वै गया, जीत्या हारै डाव। अंत काल गाफिल भया, दादू फिसले पाव।—दादू०, पृ० २१२।

डावड़ा[1]—सज्ञा पुं० [देश०] पिठवन।

डावड़ा[2]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डावरा'।

डावड़ी(पु)†—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'डावरी'।

डावरा—सज्ञा पुं० [सं० डिम्भ ?] [स्त्री० डावरी] लड़का। बेटा। उ०—दशरथ को डावरो साँवरो ब्याहे जनककुमारी।—रघुराज (शब्द०)।

डावरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० डावरा] लड़की। बेटी। कन्या। उ०—(क) ठाढ़े भए रघुवशमणि तिमि जनक भूपति डावरी।—रघुराज (शब्द०)। (ख) जिन पानि गह्यो हुतो मेरो तबै सब गाय उठी ब्रज डावरियाँ।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०)।

डास—सज्ञा पुं० [देश०] चमारों का एक औजार जिससे चमड़े के भीतर का रुख साफ करते हैं।

डासन—सज्ञा पुं० [सं० दर्भासन, हिं० डाभ + आसन] बिछाने की चटाई, वस्त्र आदि। बिछावन। बिछौना। बिस्तर। उ०—सोवइ ओढ़न लोमइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।—तुलसी (शब्द०)।

डासना[1]—क्रि० स० [हिं० डासन] बिछाना। डालना। फैलाना। उ०—(क) निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहि सभु कृपाला।—तुलसी (शब्द०)। (ख) डासत ही गइ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ नीद भरि सोयो।—तुलसी (शब्द०)

डासना(पु)‡—क्रि० स० [हिं० डसना] डसना। काटना। उ०—डासी वा बिसासी विषमेषु विषधर उठै आठहू पहर विषै विष की लहर सी।—देव (शब्द०)।

डासनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० डासन] १. खाट। पलग। चारपाई। २ बिछौना।

डाह—सज्ञा स्त्री० [सं० दाह] १ जलन। ईर्ष्या। द्वेष। द्रोह। उ०—इनके मन में औरों की डाह बडी प्रबल थी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २१२।

क्रि० प्र०—करना। रखना।

२ ताप। जलन। उ०—फूहकर डाह वियोग, प्रान विरह बस होहिं जब। का समझावहिं लोग, अग्नि न थिर पारो रहै।—रसरतन, पृ० ६४।

डाहना—क्रि० स० [सं० दाहन] जलाना। सताना। दिक करना। तग करना। उ०—काहे को मोहि डाहन आए रैनि देत सुख वाको ?—सूर (शब्द०)।

डाहल, डाहाल—सज्ञा पुं० [सं०] एक देश। त्रिपुर देस [को०]।

डाही—वि० [हिं० डाह] डाह करनेवाला। ईर्ष्या करनेवाला। ईर्ष्यालु। जैसे,—वह बडा डाही है,

डाहुक—सज्ञा पुं० [सं० दाहुक ? या देश०] १. एक पक्षी जो टिटिहरी के आकार का होता है और जलाशयों के निकट रहता है। २ चातक। पपीहा।

डिंगर[1]—सज्ञा पुं०[सं० टिङ्गर] १. मोटा आदमी। मोटासा। २ दुष्ट।

बदमाश। ठग। ३ दास। गुलाम। ४. नीच मनुष्य। निम्न कोटि का व्यक्ति। ५. फेंकना। क्षेपण (को०)। ६. तिरस्कार (को०)।

डिंगर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बाँध दिया जाता है। ठिंगुरा। उ०—कबिरा माला काठ की पहिरी मुगद डुलाय। सुमिरन की सुध है नहीं ज्यों डिंगर बाँधी गाय।—कबीर (शब्द०)।

डिंगल[1]—वि० [सं० डिङ्गर] नीच। दूषित।

डिंगल[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजपूताने की वह भाषा जिसमें भाट और चारण काव्य और वंशावली आदि लिखते चले आते हैं।

डिंगसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चीड़।

विशेष—इसके पेड़ खासिया पर्वत तथा चटगाँव और बर्मा की पहाड़ियों में बहुत होते हैं। इससे बहुत बढ़िया गोंद या राल निकलती है। तारपीन का तेल भी इससे निकलता है।

डिंडस—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] डिंड या टिंडसी नाम की तरकारी।

डिंडिक—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिक] हँसोड़ भिखारी [को०]।

डिंडिभ—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिभ] जलसर्प। डेड़हा [को०]।

डिंडिम—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिम] १. प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था। डिमडिमी। डुगडुगिया। २ करौंदा। कृष्णपाक फल।

यो०—डिंडिमघोष। डिंडिमनाद।

डिंडिमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिमडिमी] दे० 'डिंडिम'।

डिंडिर—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिर] १ समुद्रफेन। २ पानी का झाग।

डिंडिर मोदक—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिरमोदक] १. गृंजन। गाजर। २ लहसुन।

डिंडिश—संज्ञा पुं०[सं० डिण्डिश] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी। डेंडसी।

डिंडी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली फँसाने का चारा। (विशेषत:) छोटी मछली।

डिंडीर—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डीर] दे० 'डिंडिर'।

डिंब—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] १ हलचल। पुकार। वावैला। २ भयध्वनि। ३ दंगा। लड़ाई। ४ अंडा। ५ फेफड़ा। फुफ्फुस ६ प्लीहा। तिल्ली। ७. कीड़े का छोटा बच्चा। ८. प्रारंभिक अवस्था का भ्रूण। ९ गर्भाशय (को०)। १०. कंदुक। गेंद (को०)। ११ भय। डर। भीति (को०)। १२ शरीर (को०)। १३ सद्योजात शिशु वा प्राणी (को०)। १४. मूर्ख (को०)।

डिंबयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० डिम्बयुद्ध] दे० 'डिंबाहव' [को०]।

डिंबाशय—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब+आशय] गर्भाशय।

डिंबाहव—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब+आहव] सामान्य युद्ध। ऐसी लड़ाई जिसमें राजा आदि सम्मिलित न हों।

डिंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्बिका] १. मदमाती स्त्री। २. सोनापाठा। श्योनाक। ३ फेन। बुलबुला। बुल्ला (को०)।

डिंभ[1]—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भ] १. बच्चा। छोटा बच्चा। उ०—अब तू, हौ डिंभ, सो न बूझिए बिलंब अब अवलंब नाहीं आन राखत हो तेरिये।—तुलसी (शब्द०)। २ पशु का छोटा बच्चा (को०)। ३ मूर्ख या जड़ मनुष्य। ४. एक प्रकार का उदर रोग जो धीरे धीरे बढ़ता हुआ अंत में बहुत भयानक हो जाता है।

डिंभ[2]—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ] १ आडंबर। पाखंड। २. अभिमान। घमंड। उ०—करे नहिं कछु डिंभ कबहूँ, डारि में तै खोइ।—जग० बानी, पृ० ३५।

डिंभक—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भक] १. [स्त्री० डिंभिका] बच्चा। छोटा बच्चा। २. पशु का छोटा बच्चा (को०)।

डिंभचक्र—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भचक्र] स्वरोदय में वर्णित मनुष्यों के शुभाशुभ फल का सूचक एक तांत्रिक चक्र [को०]।

डिंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्भा] छोटी बालिका। नन्ही बच्ची [को०]।

डिंभिया—वि० [सं० दम, हिं० डिंभ] आडंबर रखनेवाला। पाखंडी। २ अभिमानी। घमंडी।

डिंड़सी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिश] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी।

डिकामाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जो मध्य भारत तथा दक्षिण में होता है।

विशेष—इसमें एक प्रकार की गोंद या राल निकलती है जो हींग की तरह मृगी रोग में दी जाती है। इसके लगाने से घाव जल्दी सूखता है और उसपर मक्खियाँ नहीं बैठतीं।

डिक्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवा औरत। युवती [को०]।

डिक्को—संज्ञा स्त्री० [हिं० धक्का] १ सींगो का धक्का। (जैसे मेढे देते हैं)। २. झपट। वार। आक्रमण।

डिक्टेटर—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार प्राप्त हो। प्रधान नेता या पथप्रदर्शक। शास्ता। २ वह मनुष्य जिसे शासन की अबाधित सत्ता प्राप्त हो। निरंकुश शासक। उ०—देवता रूप वे डिक्टेटर, लोहू से जिनके हाथ सने।—मानव०, पृ० ५६।

विशेष—डिक्टेटर दो प्रकार के होते हैं—(१) राष्ट्रपक्ष का और (२)राज्य या शासनपक्ष का। जब देश मे संकट उपस्थित होता है तब देश या राष्ट्र उस मनुष्य को, जिसपर उसका पूरा विश्वास होता है, पूर्ण अधिकार दे देता है कि वह जो चाहे सो करे। यह व्यवस्था संकट काल के लिये है। जैसे, सं० १९८०-८१ मे महात्मा गाधी राष्ट्र के डिक्टेटर या शास्ता थे। पर राज्य या शासनपक्ष का डिक्टेटर वही होता है जो बड़ा जबरदस्त होता है। जिसका सब लोगों पर बड़ा आतंक छाया रहता है। जैसे, किसी समय इटली का डिक्टेटर मुसोलिनी था।

यौ०—डिक्टेटरशिप = निरंकुश शासन। अधिनायकवाद।

डिक्टेशन—संज्ञा पुं० [अं०] वह वाक्य जो लिखने के लिये बोला जाय। इमला।

डिक्री—संज्ञा स्त्री० [अं०] १ आज्ञा। हुक्म। फरमान। २. न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षो में से किसी पक्ष

को किसी संपत्ति का अधिकार दिया जाय। उ०—अदालत डिक्री न दे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७३। वि० दे० 'डिगरी'।

डिक्लरेशन—संज्ञा पुं० [अं०] वह लिखा हुआ कागज जिसमें किसी मजिस्ट्रेट के सामने कोई प्रेस खोलने, रखने या कोई समाचार-पत्र या पत्रिका छापने और निकालने की जिम्मेवारी ली या घोषित की जाती है। जैसे,—(क) उन्होंने अपने नाम से प्रेस खोलने का डिक्लरेशन दिया है। (ख) वे अग्रदूत के मुद्रक और प्रकाशक होने का डिक्लरेशन देनेवाले हैं।

डिक्शनरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] शब्दकोश। अभिधान।

डिगंबर(पु)—वि० [सं० दिगम्बर] वस्त्ररहित। नग्न। दिगबर। उ०—अंबर छाँड़ डिगंबर होई। उहि अगमन मग निबहै सोई।—रसरतन, पृ० २४६।

डिगना—क्रि० अ० [सं० टिक (=हिलना। डोलना)] १ हिलना। टलना। खिसकना। हटना। सरकना। जगह छोड़ना। जैसे,—उस भारी पत्थर को कई आदमी उठाने गए पर वह जरा भी न डिगा। उ०—असवार डिगत वाहन फिरैं, भिरैं भूत भैरव विकट।—हम्मीर०, पृ० ५८।

संयो० क्रि०—जाना।

२ किसी बात पर स्थिर न रहना। प्रतिज्ञा छोड़ना। संकल्प या सिद्धांत पर दृढ़ न रहना। बात पर जमा न रहना। विचलित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

डिगमिगाना[1]—क्रि० अ०[हिं० डगमगाना] दे० 'डगमगाना'। उ०—रणधीर के आने से ये सभा ऐसी डिगमिगाने लगी थी जैसे हाथी के चढ़ने से नाव डिगमिगाती है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ८६। (ख) डिगमिगात पग चलन दुखारो। यही लकुट अब देति सहारो।—शकुंतला, पृ० ८२।

डिगमिगाना[2]—क्रि० स० १. हिलाना। डिगाना। २. विचलित करना।

डिगरी—संज्ञा स्त्री० [अं० डिग्री] १. विश्वविद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण होने की पदवी।

क्रि० प्र०—मिलना।—लेना।

२. अंश। कला। समकोण का $\frac{1}{90}$ भाग।

डिगरी[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० डिक्री] अदालत का वह फैसला जिसके जरिए से किसी फरीक को कोई हक मिलता है। न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार प्राप्त होता है। जैसे,—उस मुकदमें में उसकी डिगरी हो गई।

यौ०—डिगरीदार।

मुहा०—डिगरी जारी कराना=फैसले के मुताबिक किसी जायदाद पर कब्जा वगैरह करने की कार्रवाई कराना। न्यायालय के निर्णय के अनुसार किसी संपत्ति पर अधिकार करने का उपाय कराना। डिगरी देना=अभियोग में किसी के पक्ष में निर्णय करना। फैसले के जरिए से हक कायम करना। डिगरी पाना=अपने पक्ष में न्यायालय की आज्ञा प्राप्त करना। जर डिगरी=वह रुपया जो अदालत एक फरीक से दूसरे फरीक को दिलावे।

डिगरीदार—संज्ञा पुं० [अं० डिक्री+फ़ा० दार] वह जिसके पक्ष में डिगरी हुई हो।

डिगलाना[1](पु)—क्रि० अ० [हिं० डग, डिगना] डगमगाना। हिलना डोलना। लड़खड़ाना।

डिगलाना[2]—क्रि० स० [हिं० डिगना] डिगाना। चालित करना।

डिगवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

डिगाना—क्रि० स० [हिं० डिगना] १. हटाना। खसकाना। जगह से टालना। सरकाना। हिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बात पर जमा न रहना। किसी संकल्प या सिद्धांत पर स्थिर न रखना। विचलित करना। उ०—सुर नर मुनि देय डिगाय करे यह सबकी हाँसी।—पलटू०, पृ० २६।

संयो० क्रि०—देना।

डिगुलाना(पु)—क्रि० अ०[हिं० डग] दे० 'डिगलाना[1]'। उ०—टिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल। कपि किसोरी दरसि कै खरैं लजाने लाल।—बिहारी (शब्द०)।

डिग्गी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घिका, बँग० दीघी (=बावली या तालाब)] पोखरा। बावली। जैसे, लालडिग्गी।

डिग्गी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिम्मत। साहस। जिगरा।

डिजाइन—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. तर्ज। बनावट। खाका।

डिटेक्टिव—संज्ञा पुं० [अं०] जासूस। मुखबिर। गुप्तचर। भेदिया।

यौ०—डिटेक्टिव पुलिस=वह पुलिस जो छिपकर मामलों का पता लगावे। खुफिया पुलिस।

डिठार—वि० [हिं० डीठ+आरा (प्रत्य०)] [वि० डिठारी] दृष्टिवाला। देखनेवाला। आँखवाला। जिसकी आँख से सूझे।

डिठि—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'। उ०—अधर सुधा मिठी, दुधे धवरि डिठि, मधुसम मधुरे बानि रे।—विद्यापति, पृ० १०३।

डिठियार, डिठियारा—वि० [हिं०] दे० 'डिठार'। उ०—(क) तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तन पीठि। अंध कहे दुख पाइहै डिठियारो केहि डीठि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अटकर सेती अंध डिठियारे राह बतावे।—पलटू०, पृ० ७४।

डिठौना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डिठौना'। उ०—सब बचाती हैं सुतों के पात्र। किंतु देती हैं डिठौना मात्र।—साकेत, पृ० १८०।

डिठोहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डीठि+हरना अथवा देश०] एक जंगली पेड़ के फल का बीज जिसे तागे में पिरोकर बच्चों के गले में उन्हें नजर से बचाने के लिये पहनाते हैं।

विशेष—दे० 'बजरबट्टू' या 'नजरबट्टू'।

डिठौना—संज्ञा पुं० [हिं० डीठ] काजल का टीका जिसे लड़कों के मस्तक पर नजर से बचाने को स्त्रियाँ लगा देती हैं। उ०—(क) पहिरायो पुनि बसन रँगीलो। दीन्हों भाल डिठौना

नीला।—रघुराज (शब्द०)। (ख) सखि कजन को परम सलोना भाल डिठौना देही। मनु पकज कोना पर बैठो अलि-छौना मधु लेही।—रघुराज (शब्द०)।

डिडो†—वि० [सं० दृढ़] दे० 'दृढ़'। उ०—नहिं बाल वृद्ध किस्सोर तुम धुम्र समान पै डिड खरो।—पृ० रा०, २।५१०।

डिडिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] मुहाँसा।

डिडकार†, डिडकारी—सज्ञा स्त्री० [अनु०] पशुओं का गुर्राना।

डिड़ई—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

डिड़वा—सज्ञा पुं० [देश०] डिडई नाम का धान जो अगहन मे तैयार होता है।

डिडिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें युवावस्था में ही बाल पकने लगते हैं।

डिडियाना†—क्रि० अ० [अनु०] शोक के आवेग में गाय का रँभाना। उ०—परी धरनि धुकि यो बिललाइ। ज्यों मृतबच्छ गाइ डिडियाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४२।

डिढ†—वि० [सं० दृढ़, प्रा० डिढ] दृढ़। पक्का। मजबूत। उ०—सुनि दुदुभि धुकार धराधर धरधर डुल्लिय। डिढ न रहे डड्ढार, बाघ बनचर वन डुल्लिय।—सुजान०, पृ० २६।

डिढय(पु)—वि० [सं० दृढ़] दे० 'डिढ'। उ०—सेस सीस लचि भार डिढय डाढार करक्किय।—रसरतन, पृ० १०४।

डिढाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० डिढ़] १. पक्का करना। मजबूत करना। २ ठानना। निश्चित करना। मन मे दृढ विचार करना।

डिढ्या†—सज्ञा स्त्री० [देश०] अत्यत लालच। लालसा। कामना। तृष्णा। उ०—सग्रह करने की लालसा प्रबल हुई तो जोरी से, चोरी से, छल स, खुशामद से, कमाने की डिढ्या पडेगी और खाने खर्चने के नाम से जान निकल जायगी।—श्रीनिवास दास (शब्द०)।

डित्थ—सज्ञा पुं० [सं०] १ काठ का बना हाथी। २ विशेष लक्षणों-वाला पुरुष।

विशेष—साँवले, सुदर, युवा और सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुष को डित्थ कहते हैं।

डिनर—सज्ञा पुं० [अ०] रात का भोजन। उ०—कहो, सुना तुमने भी है कुछ, सेठ हमारे रामचद्र ने, आज दिया हम सब लोगो को, है फरपो में एक डिनर।—मानव, पृ० ६८।

डिपटी—सज्ञा पुं० [अ० डेपुटी] नायब। सहायक। सहकारी। जैसे, डिपटी कलक्टर, डिपटी पोस्टमास्टर, डिपटी इंसपेक्टर।

डिपाजिट—सज्ञा पुं० [अ०] धरोहर। अमानत। तहवील।

डिपार्टमेंट—सज्ञा पुं० [अ०] मुहकमा। सरिश्ता। विभाग। गुदाम। अमानतखाना। जखीरा। भांडार। जैसे, बुकडिपो।

डिप्टी—सज्ञा पुं० [अ० डिपटी] दे० 'डिपटी'। जैसे, डिपटी कट्रोलर।

डिप्थीरिया—सज्ञा पुं० [अ०] छोटे बच्चों का एक सक्रामक रोग जिसे कठरोहिणी कहते हैं। उ०—कीर्ति का छोटा भाई अकस्मात् एक विचित्र रोग का शिकार बन गया है। डाक्टरों ने कहा डिप्थीरिया हो गया है। औरतों ने कहा हुब्बा डब्बा।—सन्यासी, पृ० १६०

डिप्लोमा—सज्ञा पुं० [अ०] विद्यासबधिनी योग्यता का प्रमाणपत्र। सनद।

डिप्लोमेसी—सज्ञा स्त्री० [अ०] १. वह चातुरी या कौशल जो कार्यसाधन के लिये, विशेषकर राजनीतिक कार्यसाधन के लिये किया जाय। कूटनीति। २. स्वतत्र राष्ट्रों मे आपस का व्यवहार सबध। राजनीतिक सबध।

डिप्लोमेट—सज्ञा पुं० [अ०] वह जो डिप्लोमेसी या कूटनीति में निपुण हो। कूटनीतिज्ञ।

डिफेंस—सज्ञा पुं० [अं०] आरक्षा। बचाव। सुरक्षा। २. सफाई (पक्ष सबधी)।

डिफेमेशन—सज्ञा पुं० [अ०] किसी की अप्रतिष्ठा या अपमान करने के लिये गर्हित शब्दों का प्रयोग। ऐसे गदे शब्दों का प्रयोग जिससे किसी की मानहानि या बेइज्जती होती हो। हतक इज्जत। जैसे,—इधर महीनो से उनपर डिफेमेशन केस चल रहा है।

डिबिया[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा + इया (लघ्वर्थक प्रत्य०)] वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने डुलाने से न गिरे। छोटा डिब्बा। छोटा सपुट। जैसे, सुरती की डिबिया।

डिबिया†[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'। उ०—राँम, राँम राँम, रतँन लागी डिबिया।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६६७।

डिबिया टँगड़ो—सज्ञा स्त्री० [हिं०] कुश्ती का एक पेच।

विशेष—यह पेंच उस समय किया जाता है जब जोड (विपक्षी) कमर पर होता है और उसका दाहिना हाथ कमर में लिपटा होता है। इसमें विपक्षी को दाहिने हाथ से जोड का बायाँ हाथ कमर के पास से दाहिने जाँघ तक खींचते हुए और बाँए हाथ से लगोट पकडते हुए बाँए पैर से भीतरी टाँग मारकर गिराते हैं।

डिबचर—सज्ञा पुं० [अ०] १ वह कागज या दस्तावेज जिसमे कोई अफसर किसी कंपनी या म्युनिसिपैलिटी आदि के लिए हुए ऋण को स्वीकार करता है। ऋण स्वीकारपत्र। २. माल की रपतनी के महसूल का रवन्ना। परमट का वसीका। बहती।

डिब्बा—सज्ञा पुं० [तैलग या सं० डिम्ब (=गोला)] १ वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमे रखी हुई चीज हिलाने डुलाने से न गिरे। सपुट। २ रेलगाडी की एक गाडी। ३ पसली के दर्द की बीमारी जो प्राय बच्चों को हुआ करती है। पसली चलने की बीमारी।

डिब्बी—सज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा] दे० 'डिबिया'।

डिभगना(पु)—क्रि० स० [देश०] मोहित करना। मोहना। छलना।

डहकना। उ०—दुरजोधन अभिमानहि गयऊ। पंडव केर मरम नहि भयऊ। माया के डिमगे सब राजा। उत्तम मध्यम बाजन बाजा।—कबीर (शब्द०)।

डिम—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक या दृश्य काव्य का एक भेद।

विशेष—इसमें माया, इंद्रजाल, लड़ाई और क्रोध आदि का समावेश विशेष रूप से होता है। यह रौद्र रस प्रधान होता है और इसमें चार अंक होते हैं। इसके नायक देवता, गंधर्व, यक्ष आदि होते हैं। भूतों और पिशाचों की लीला इसमें दिखाई जाती है। इसमें शांत, शृंगार और हास्य ये तीनों रस न आने चाहिए।

डिमडिम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] डमरू से निकलनेवाली आवाज। उ०—डिम डिम डमरु बजा निज कर में नाचो नयन तृतीय तरेरे।—रेणुका, पृ० ३।

डिमडिमी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिण्डिम] चमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है। डुगडुगिया। डुग्गी। उ०—डिमडिमी पटह ढोल डफ बीणा मृदंग उमंग चंगतार।—सूर (शब्द०)।

डिमरेज—संज्ञा पुं० [अं०] १ बंदरगाह में जहाज के ज्यादा ठहरने का हर्जाना। २ स्टेशन पर आए हुए माल के अधिक दिन पड़े रहने का हर्जा, जो पानेवाले को देना पड़ता है।

क्रि० प्र०—लगना।

डिमाई—संज्ञा स्त्री० [अं०] कागज या छापने के कल की एक नाप जो १८"×२२" इंच होती है।

डिमाक(पु)—संज्ञा पुं० [अ० दिमाग] मस्तिष्क। दिमाग। सिर। उ०—डिमाक नाक चून के कि नाक नाक सों हरें।—पद्माकर ग्रं० पृ० २८४।

डिमोक्रेसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] जनतांत्रिक शासन।

डिला[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो गीली भूमि में उत्पन्न होती है। मोथा।

डिला[2]—संज्ञा पुं० [सं० दल] ऊन का लच्छा।

डिलारी—वि० [फ़ा० दिलावर या दिलेर] जवाँमर्द। शूर। वीर।

डिलारा—वि० [हिं० डील] बड़े कद का। डीलडौल वाला। उ०—बलक्कैं झलक्कैं ललक्कैं उमंडै। बुखारेहु के हैं डिलारे घुमंडैं।—पद्माकर ग्रं० पृ० २८०।

डिलिवरी, डिलेवरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १ डाकखानों में आई हुई चिट्ठियों, पारसलों, मनीआर्डरों की बँटाई जो नियत समय पर होती है। २. किसी चीज का बाँटा या दिया जाना। ३ प्रसव होना।

डिल्ला[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ और अंत में भगण होता है। जैसे,—राम नाम निशि बासर गावहु। जन्म लेन कर फल जग पावहु। सीख हमारी जो हिय लावहु। जन्म मरण के फंद नशावहु। २ एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (।।ऽ) होते हैं। इसके अन्य नाम तिलका, तिल्ला और तिल्लाना भी हैं। जैसे,—ससि वाल धरो। शिव भाल भरो। भ्रमरा हुरवे। तिलका निरखे।

डिल्ला[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ढीला] बैलों के कंधों पर उठा हुआ कूबड़। कुब्बा। ककुत्य।

डिविजनल—वि० [अं०] डिवीजन का। उस भूभाग, कमिश्नरी या किस्मत का जिसके अंतर्गत कई जिले हों। जैसे, डिवीजनल कमिश्नर।

डिविडेंड—संज्ञा पुं० [अं०] वह लाभ या मुनाफा जो ज्वायंट स्टाक कंपनी या सम्मिलित पूँजी से चलनेवाली कपनी को होता है, और जो हिस्सेदारों में, उनके हिस्से के मुताबिक बँट जाता है। जैसे,—कृष्ण काटन मिल ने इस बार अपने हिस्सेदारों को पाँच सैकड़े डिविडेंड बाँटा।

डिवीजन—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह भूभाग जिसके अंतर्गत कई जिले हों। कमिश्नरी। जैसे, बनारस डिविजन। २. विभाग। श्रेणी। जैसे,—वह मैट्रिकुलेशन परीक्षा में फर्स्ट डिवीजन पास हुआ।

डिसकाउंट—संज्ञा पुं० [अं०] वह कमी जो व्यवहार या लेनदेन में किसी वस्तु के मूल्य में की जाती है। बट्टा। दस्तूरी। कमीशन।

डिसमिस—वि० [अं०] १. बरखास्त। २. खारिज। जैसे, अपील डिसमिस करना।

डिसलायल—वि० [अं०] अराजभक्त। राजद्रोही। उ०—डिसलायल हिंदुन कहत कहाँ मूढ़ ते लोग।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७६५।

डिसीप्लिन—संज्ञा पुं० [अं०] १. नियम या कायदे के अनुसार चलने की शिक्षा या भाव। अनुशासन। २. आज्ञानुवर्तित्व। नियमानुवर्तित्व। फरमाबरदारी। ३. व्यवस्था। पद्धति। ४. शिक्षा। तालीम। ५ दंड। सजा।

डिस्ट्रायर—संज्ञा पुं० [अं०] नाशक जहाज। वि० दे० 'टारपीडो बोट'।

डिस्ट्रिक—संज्ञा पुं० [अं० डिस्ट्रिक्ट] दे० 'डिस्ट्रिक्ट'।

डिस्ट्रिक्ट—संज्ञा पुं० [अं०] किसी प्रदेश या सूबे का वह भाग जो एक कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। जिला।

यौ०—डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जिला बोर्ड'।

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जिला मजिस्ट्रेट'।

डिस्पेंसरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] दवाखाना। औषधालय। उ०—पोस्ट आफिस से पहले यहाँ एक डिस्पेंसरी खुलवाना जरूरी था।—मैला०, पृ० ७।

डिस्पेप्सिया—संज्ञा पुं० [अं०] मंदाग्नि। अग्निमांद्य। पाचन शक्ति की कमी।

डिस्ट्रिब्यूट (करना)—क्रि० स० [अं०] छापेखाने में कंपोज किए हुए टाइपों (अक्षरों) को केसों (खानों) में अपने स्थान पर रखना।

डिस्ट्रिब्यूटर—संज्ञा पुं० [अं०] १ कंपोज टाइपों को अपने स्थान पर रखनेवाला। २. वितरक। वितरण करनेवाला।

जैसे बन रहा डीह ।—कामायनी, पृ० १४५ । ३. ग्राम देवता ।

डीहदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डीह + फा० दारी] एक तरह का हक जो उन जमींदारों को मिलता है जो अपनी जमीन बेच डालते हैं । खरीददार उनको गाँव का कोई अंश दे देता है जिससे उनका निर्वाह हो ।

डुंगा—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (= ऊँचा)] १ ढेर । अटाला । उ०—धर्ती स्वर्ग असूझ मा तबहुँ न आग बुझाय । उठहि वज्र जरि डुंग वे धूम रहो जग छाय ।—जायसी (शब्द०) २ टीला । भीटा । पहाड़ी ।

डुंडा—संज्ञा पुं० [सं० या स्कन्ध (=तना)] १. ठूंठ । पेड़ों की सूखी डाल जिसमें पत्ते आदि न हों । उ०—देव तू अनग अंग होमि कै भसम संग अग अंग उमह्यो अखेवर ज्यौं डुंड मैं ।—देव (शब्द०) । २ शिररहित अग । धड़ । उ०—उडि मुंड परत कहुँ हय सु तुंड । कहुँ हुथ्थ चरन कहुँ परिय डुंड ।—सुजान०, पृ० २२ ।

डुंडु—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] दे० 'डुडुभ' ।

डुंडुभ—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] पानी में रहनेवाला साँप जिसमें बहुत कम विष होता है । डेढ़हा साँप । डयोढ़ा साँप ।

डुंडुम—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुम] दे० 'डुंडुभ' ।

डुंडुल—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुल] छोटा उल्लू ।

डुंढुक—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढुक] दे० 'ढाहुक' [को०] ।

डुंब—संज्ञा पुं० [सं० डुम्ब, देशी] डोम [को०] ।

डुंबर—संज्ञा पुं० [सं० डुम्बर] डंबर । आडंबर ।

डुंक—संज्ञा पु० [अनु०] घूंसा । मुक्का ।

डुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ी] दो घोड़ों की बग्घी । उ०—खुद डुकड़ी पर चढ़ के निकलती थी ।—सैर कु०, पृ० १४ ।

डुकाडुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डुकना] १. आँखमिचौनी । ढुकौवल । ढुकाढुकी । उ०—अति गह्वर तहँ व्रज के बाल । डुकाडुकी खेलें बहुकाल ।—नद० ग्रं०, २६२ ।

डुकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोका] दे० 'डोकिया' ।

डुकियाना—क्रि० स० [हिं० डुक] घूँसों से मारना । घूँसा लगाना ।

डुक्का डुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं०] घूसेबाजी । आपस में घूंसों की मार । उ०—डुक्का डुक्की होन लगी ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २७ ।

डुगडुगाना—क्रि० स० [अनु०] किसी चमड़ा मढ़े बाजे को लकडी से बजाना ।

डुगडुगी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमड़ा मढ़ा हुआ एक छोटा बाजा । डौंगी । डुग्गी । उ०—डुगडुगी सहर में बाजी हो ।—कबीर श० भा० २, पृ० १४१ ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—फेरना ।

मुहा०—डुगडुगी पीटना = डौंडी बजाकर घोषित करना । मुनादी करना । चारों ओर प्रकट करना । डुगडुगी फेरना = दे० 'डुगडुगी पीटना' । उ०—आपने पत्रावलम्बन ग्रंथ करके विश्वेश्वर के द्वार पर भी डुगडुगी फेर दी थी जिसको हमसे शास्त्रार्थ करना हो पहले जाकर वह पत्र देख ले ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ५७४ ।

डुग्गी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'डुगडुगी' ।

डुघना—क्रि० अ० [हिं० डूबना] दबना । चुकता न होना । उ०—नाचता है सूदखोर जहाँ कहीं ब्याज डुघता ।—कुकुर०, पृ० १० ।

डुडला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे दूदला भी कहते हैं ।

डुड्डा—संज्ञा पुं० [सं० दादुर] मेंढक ।

डुढका—संज्ञा पुं० [देश०] धान के पौधों का एक रोग ।

डुडुहा—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़] खेत में दो नालियों (बरहों) के बीच की मेंड़ ।

डुपटना—क्रि० स० [हिं० दो + पट] चुनना । चुनियाना । उ०—अन्हवाइ तन पहिराइ भूषन वसन सुंदर डुपटि कै ।—विश्राम (शब्द०) ।

डुपटा—संज्ञा पुं० [हिं० दुपट्टा] दे० 'दुपट्टा' । उ०—डुपटा है रँग किरमची मनु मदके दई कमची ।—ब्रज ग्र०, पृ० ५८ ।

डुपट्टा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुपट्टा' ।

डुप्लीकेट—वि० [अं०] द्वितीय । दूसरी । उ०—कमरा बंद करके, चाबी अपने परिचित किसी एक मेस महाराज को दे दी, डुप्लीकेट उमादत्त के पास थी ।—सन्यासी, पृ० १२३ ।

डुबकना—क्रि० अ० [हिं० डुबकी] १ डूबना उतराना । २. चिंताकुल होना । घबराना । उ०—इनही से सब डुबकत डोलें मुकद्दम और दीवान । खान पान सब न्यारा राखें, मन में उनके मान ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६४ ।

डुबकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना] १. पानी में डूबने की क्रिया । डुब्बी । गोता । बुड़की । उ०—डुबकी खाइ न काहुय पावा । डूब समुद्र में जीउ गँवावा ।—इंद्रा०, पृ० १५६ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—मारना ।—लगाना ।—लेना ।

मुहा०—डुबकी मारना या लगाना = गायब हो जाना ।

२. पीठी की बनी हुई बिना तली वरी जो पीठी ही की कढ़ी में डुबाकर रखी जाती है । ३ एक प्रकार का बटेर ।

डुबडुभी—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] दे० 'दुंदुभि' । उ०—बाजा बाजइ डुबडुभी, परगवा चाल्यो बीसलराव ।—बी० रासो, पृ० ३७ ।

डुबवाना—क्रि० स० [हिं० डुबाना का प्रे०रूप] डुबाने का काम कराना ।

डुबाना—क्रि० स० [हिं० डूबना] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ के भीतर डालना । मग्न करना । गोता देना । बोरना । २ चौपट करना । नष्ट करना । सत्यानाश करना । बरबाद करना । ३ मर्यादा कलंकित करना । यश में दाग लगाना ।

मुहा०—नाम डुबाना = नाम को कलंकित करना । यश को बिगाड़ना । किसी कर्म या त्रुटि के द्वारा प्रतिष्ठा नष्ट करना । मर्यादा खोना । लुटिया डुबाना = महत्व खोना । बड़ाई न

रखना । प्रतिष्ठा नष्ट करना । वंश डुबाना = वंश की मर्यादा नष्ट करना । कुल की प्रतिष्ठा खोना ।

डुबाव—संज्ञा पुं० [हिं० डूबना] पानी की उतनी गहराई जितनी में एक मनुष्य डूब जाय । डूबने भर की गहराई । जैसे,—यहाँ हाथी का डुबाव है ।

डुबुकी—संज्ञा स्त्री [हिं० डूबना] दे० 'डुबकी' । उ०—परन जलज काढ़ै कहूँ जाऊँ । डुबुकी खाऊँ सुमिरि वह नाउँ ।—इंद्रा०, पृ० ८२ ।

डुबोना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'डुबोना' ।

डुब्बा—संज्ञा पुं० [हिं० डूबना] दे० 'पनडुब्बा' ।

डुब्बी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डुबकी' । उ०—व्यर्थ लगाने को डुब्बी हाँ ! होगा कौन भला राजी ।—झरना, पृ० १० ।

डुबकौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डुबकी + बरी] दे० 'डुभकौरी' । उ०—चौराई तोराई मुरई मुरब्बा भारी जी । डुबकौरी मुँगछौरी रिकवछ ईंडहर छीर छँछौरी जी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

डुभकौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना, डुबकी + बरी] पीठी की बिना तली बरी जो पीठी ही के झोल में पकाई और डुबाकर रखी जाती है । उ०—खँड़रा बचका जायसी और डुभकौरी । ग्रं०, पृ० १२४ ।

डुमई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का चावल जो कछार मे होता है ।

डुरी†—संज्ञा स्त्री [हिं० डोरी] दे० 'डोरी' । उ०—काम की पुरी नेह में जुरी मानो किसी ने उसी की डुरी से बाँध दिया हो । श्यामा०, पृ० ३१ ।

डुलना(पु)†—क्रि० अ० [सं० दोलन] दे० 'डोलना' । उ०—मंद मंद मैगल मतंग लौं चलेई भले भुजन समेत भुज भूषन डुलत जात ।—पद्माकर (शब्द०) ।

डुलाना—क्रि० स० [हिं० डोलना] १ हिलाना । चलाना । गति में लाना । चलायमान करना । जैसे, पखा डुलाना । २ हटाना । भगाना । उ०—कारे भए करि कृष्ण को ध्यान डुलाएँ ते काहू के डोलत ना ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । ३ चलाना । फिराना । ४. घुमाना । टहलाना ।

डुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमठी । कछुई । कच्छपी ।

डुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजन के आकार की एक चिड़िया [को०] ।

डुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ला साग । लाल पत्ती का बथुआ ।

डूँगर—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (= पहाड़ी)] १ टीला । भीटा । दूह । उ०—सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि कैसे दुरत दुराय कहौं धौं डुंगरन की ओट सुमेर ।—सूर (शब्द०) । २ छोटी पहाड़ी । उ०—छिनही में ब्रज धोइ बहावैं । डूँगर को कहुँ नावँ न पावैं ।—सूर (शब्द०) ।

डूँगर फल—संज्ञा पुं० [हिं० डूँगर + फल] बबाल का फल । देवदाली का फल जो बहुत कड़ुवा होता है और सरदी में घोड़ों को खिलाया जाता है ।

डूँगरी—संज्ञा स्त्री [हिं० डूँगर] छोटी पहाड़ी ।

डूँगा[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] १. चम्मच । चमचा । २. एक लकड़ी की नाव । डोंगा (लश०) । ३. रस्से का गोल लपेटा हुआ लच्छा (लश०) ।

डूँगा†[2]—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] छोटी पहाड़ी । टीला । उ०—विविध ससार कौन बिधि तिरबो, जे दृढ़ नाव न गहे रे । नाव छाड़ि दे डूँगे बैसे तो दूना दुःख सहे रे ।—रै० बानी, पृ० ३८ ।

डूँगा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत की २४ शोभाओं में से एक ।

डूँजा†—संज्ञा स्त्री० [देश०] आँधी । तेज हवा (डिं०) ।

डूँड़ा[1]—वि० [सं० तुण्ड, हिं० टूटना] एक सींग का (बैल) । (बैल) जिसका एक सींग टूट गया हो । २. जिसके हाथ कटे हों । लूला । बिना हाथ पावँ का । ३ शिरविहीन (धड़) ।

डूँम—संज्ञा पुं० [देश० डुब या डोंब] दे० 'डोम' । उ०—डूँम न जाँणे देवजस सूँम न जाँणे मोज । मुगल न जाँणे मोदया चुगल न जाँणे चोज ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४८ ।

डूँमणी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूँम] दे० 'डोमनी—३' । उ०—पीहर सदी डूँमणी, ऊँमर हुवइ सथ्य ।—ढोला०, दू० ६३० ।

डूक—संज्ञा स्त्री० [देश०] पशुओं के फेफड़ों की एक बीमारी ।

डूकना†—क्रि० स० [सं० त्रुटिकरण, या हिं० चूकना] त्रुटि करना । भूल करना । गलती करना । मौका खोना । चूकना ।

डूबना—क्रि० अ० [अनु० डुब डुब] १ पानी या और किसी द्रव पदार्थ के भीतर समाना । एकबारगी पानी के भीतर चला जाना । मग्न होना । गोता खाना । बूड़ना । जैसे, नाव डूबना, आदमी डूबना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—डूबकर पानी पीना = धोखाधड़ी करना । औरो से छिपकर बुरा काम करना । उ०—हमी में डूबकर पानी पीनेवाले हैं ।—चुभते० (दोदो०), पृ० ४ । डूब मरना = लज्जा के मारे मर जाना । शरम के मारे मुँह न दिखाना । उ०—उन्हें डूब मरने को ससार मे चुल्लू भर पानी मिलना मुश्किल हो जाता ।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ३४१ ।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग विधि और आदेश के रूप मे ही प्राय. होता है । जैसे, तू डूब मर ? तुम डूब क्यों नहीं मरते ?

चुल्लू भर पानी में डूब मरना = दे० 'डूब मरना' । डूबते को तिनके का सहारा होना = निराश्रय व्यक्ति के लिये थोड़ा सा आश्रय भी बहुत होना । संकट मे पड़े हुए निस्सहाय मनुष्य के लिये थोड़ी सी सहायता भी बहुत होना । डूबा नाम उछालना = (१) फिर से प्रतिष्ठा प्राप्त करना । गई हुई मर्यादा को फिर से स्थापित करना । (२) अपसिद्धि से प्रसिद्धि प्राप्त करना । डूबना उतराना = (१) चिंता मे मग्न होना । सोच में पड जाना । (२) चिंताकुल होना । घबराना । जी डूबना = (१) चित्त विह्वल होना । चित्त व्याकुल होना । जी घबराना । (२) बेहोशी होना । मूर्छा आना ।

विशेष—पद्माकर ने 'प्राण' शब्द के साथ भी इस मुहा० का प्रयोग किया है, जैसे, ऊबत हौ, डूबत हौ, डगत हौ, डोलत हौ, बोलत न काहे प्रीति रीतिन रितै चले ।···एरे मेरे प्राण !

कान्ह प्यारे की चलाचल में तब तों चले न, प्राव चाहत किते चले ।

२. सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि का अस्त होना । सूर्य या किसी तारे का अदृश्य होना । जैसे, सूर्य डूबना, शुक्र डूबना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. चौपट होना । सत्यानाश जाना । बरबाद होना । बिगड़ना । नष्ट होना । जैसे, वंश डूबना । उ०—डूबा वंश कबीर का, उपजे पूत कमाल ।—(शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना । उ०—आवत जावत कोई न देखा डूब गया बिन पानी ।—कबीर श०, पृ० ३१ ।

मुहा०—नाम डूबना = मर्यादा बिगड़ना । प्रतिष्ठा नष्ट होना । कुख्याति होना ।

४ किसी व्यवसाय में लगाया हुआ धन नष्ट होना या किसी को दिया हुआ रुपया न वसूल होना । मारा जाना । जैसे,—(क) उसने जितना रुपया इधर उधर कर्ज दिया था सब डूब गया । (ख) जिसने जिसने हिस्सा खरीदा सबका रुपया डूब गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. बेटी का बुरे घर ब्याहा जाना । कन्या का ऐसे घर पड़ना जहाँ बहुत कष्ट हो ।

संयो० क्रि०—जाना ।

६. चिंतन में मग्न होना । विचार में लीन होना । अच्छी तरह ध्यान डटाना । जैसे, डूबकर सोचना । ७ लीन होना । तन्मय होना । लिप्त होना । अच्छी तरह लगना । जैसे, विषय वासना में डूबना, ध्यान में डूबना ।

डूम†—संज्ञा पुं० [सं० डुम्ब] दे० 'डोम' । उ०—सुंदर यहु मन डूम है, माँगत करै न संक । दीन भयो जाचत फिरै, राजा होइ कि रंक ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७२६ ।

डूमा—संज्ञा पुं० [रूसी] रूस की पार्लमेंट या राजसभा का नाम ।

डूमना†—क्रि० अ० [हिं० डुलना] दे० 'डोलना' । उ०—पहिवै पोहुरे रैण कै, दिवला अवर डूल । धण कस्तूरी हुइ रही, प्रिव चंपारौ फूल ।—ढोला०, दू० ५८२ ।

डेंटिस्ट—संज्ञा पुं० [अं० डेन्टिस्ट] दंतचिकित्सक । दाँत का डाक्टर । दाँत बनानेवाला ।

डेंड़सी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिश] ककड़ी की तरह की एक तरकारी जिसके फल कुम्हड़े की तरह गोल पर छोटे होते हैं ।

डेउढा†—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डेवढ़ा', 'ड्योढ़ा' ।

डेउढ़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ड्योढ़ी' ।

डेक[1]—संज्ञा पुं० [देश०] महानिंब । बकायन ।

डेक[2]—संज्ञा पुं० [अं०] जहाज पर लकड़ी से पटा हुआ फर्श या छत ।

डेक्करना(पु)†—क्रि० अ० [अनु०] ध्वनि करना । दे० 'डकरना' । उ०—सब दिसे डाकिनि डेक्करइ ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

डेक्कार†—संज्ञा पुं० [अनु०] डमरू ध्वनि । उ०—उच्छलि डमरु डेक्कार कर ।—कीर्ति० पृ० १०८ ।

डेग†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० डग] दे० 'डग' । उ०—बात बात में गाली और डेग डेग पर डाली ।—मैला०, पृ० २३ ।

डेग[2]—संज्ञा पुं० [हिं० देग] दे० 'देग' ।

डेगची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'देगची' ।

डेट—संज्ञा स्त्री० [अं०] तिथि । तारीख ।

डेडरा†—संज्ञा पुं० [सं० दादुर] दे० 'दादुर' । उ०—डेडरा से डरै, सींगी मच्छ को मरोड़ डारै । कानन के बीच जाय कुंजर को पक्करे ।—राम० धर्म०, पृ० ८१ ।

डेडरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० डेडरा] दे० 'डेडरा' । उ०—डेडरिया खिण मइ हुवइ धण बूढइ सरजित ।—ढोला०, पृ० ५४८ ।

डेडहा†—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] पानी का साँप जिसमें बहुत कम विष होता है ।

डेढ़—वि० [सं० अध्यर्द्ध, प्रा० डिवड्ढ] एक और आधा । सार्द्धैक । जो गिनती में $1\frac{1}{2}$ हो । जैसे, डेढ़ रुपया, डेढ़ पाव, डेढ़ सेर, डेढ़ बजे ।

मुहा०—डेढ़ ईंट की जुदा मसजिद बनाना = खरेपन या अक्खड़पन के कारण सबसे अलग काम करना । मिलकर काम न करना । डेढ़ गाँठ = एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी आधी गाँठ । रस्सी तागे आदि की वह गाँठ जिसमें एक पूरी गाँठ लगाकर दूसरी गाँठ इस प्रकार लगाते हैं कि तागे का एक छोर दूसरे छोर की दूसरी ओर बाहर नहीं खींचते, तागे को थोड़ी दूर ले जाकर बीच ही में कस देते हैं । इसमें दोनों छोर एक ही ओर रहते हैं और दूसरे छोर को खींचने से गाँठ खुल जाती है । मुद्धी । डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाना = अपनी राय सबसे अलग रखना । बहुमत से भिन्न मत प्रकट करना । डेढ़ चुल्लू = थोड़ा सा । डेढ़ चुल्लू लहू पीना = मार डालना । खूब दंड देना । (क्रोधोक्ति, स्त्रि०) ।

विशेष—जब किसी निर्दिष्ट संख्या के पहले इस शब्द का प्रयोग होता है तब उस संख्या को एकाई मानकर उसके आधे को जोड़ने का अभिप्राय होता है । जैसे, डेढ़ सौ = सौ और उसका आधा पचास अर्थात् १५०, डेढ़ हजार = हजार और उसका आधा पाँच सौ, अर्थात् १५०० । पर, इस शब्द का प्रयोग दहाई के आगे के स्थानों को निर्दिष्ट करनेवाली संख्याओं के साथ ही होता है । जैसे, सौ, हजार, लाख, करोड़, अरब इत्यादि । पर अनपढ़ और गँवार, जो पूरी गिनती नहीं जानते, और संख्याओं के साथ भी इस शब्द का प्रयोग कर देते हैं । जैसे, डेढ़ बीस अर्थात् तीस ।

डेढ़खम्मन—संज्ञा स्त्री० [हिं० डेढ़ + फ़ा० खम] एक प्रकार का बिरका या गोल रुखानी ।

डेढ़खम्मा—संज्ञा पुं० [हिं० डेढ़ + फ़ा० खम (= टेढ़ा)] तमाकू पीने का वह सस्ता नैचा जिसमें कुलफी नहीं होती । इसके घुमाव पर केवल एक लोहे की टेढ़ी सलाई रखकर उसे पयाल और चिथड़े आदि से लपेट देते हैं ।

डेढ़गोशी—संज्ञा पुं० [हिं० डेढ़ + फ़ा० गोशह (= कोना)] एक बहुत छोटा और मजबूत बना हुआ जहाज ।

डेढ़ा[1]—वि० [हिं० डेढ़] डेढ़ गुना। किसी वस्तु से उसका आधा और अधिक। ड्योढ़ा।

डेढ़ा[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें प्रत्येक संख्या की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

डेढ़िया[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पुन्नाले की जाति का एक बहुत ऊँचा पेड़ जिसके पत्ते सुगंधित होते हैं।

विशेष—यह वृक्ष दारजिलिंग, सिक्किम और भूटान आदि में पाया जाता है। इसके पत्तों से एक प्रकार की सुगंध निकलती है। इसकी लकड़ी मकानों में लगाने तथा चाय के संदूक और खेती के सामान (हल, पाटा आदि) बनाने के काम में आती है। यह पेड़ पुन्नाले की जाति का है।

डेढ़िया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डेढ़] दे० 'डेढ़ी'।

डेढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डेढ़] किसानों को बोआई के समय इस शर्त पर अनाज उधार देने की रीति कि वे फसल कटने पर लिए हुए अनाज का ड्योढ़ा देंगे।

डेना[प्रा]—क्रि० स० [पं०] देना। प्रदान करना। उ०—तन भी डेवाँ, मन भी डेवाँ डेवाँ पिंड पराण वे।—दादू०, पृ० ५१३।

डेपूटेशन—संज्ञा पुं० [अं०] चुने हुए प्रधान प्रधान लोगों की वह मंडली जो जनसाधारण या किसी सभा संस्था की ओर से सरकार, राजा महाराजा अथवा किसी अधिकारी या शासक के पास किसी विषय में प्रार्थना करने के लिये भेजी जाय। प्रतिनिधि मंडल। विशिष्ट मंडल।

डेबरा—वि० [देश०] बँहत्था। बाएँ हाथ से काम करनेवाला।

डेबरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेत का वह कोना जो जोतने में छूट जाता है। कोंवर।

डेबरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बी] डिब्बी के आकार का टीन, शीशे आदि का एक बरतन जिसमें तेल भरकर रोशनी के लिये बत्ती जलाते हैं। डिब्बी।

डेमोक्रेसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. वह सरकार या शासनप्रणाली जिसमें राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और उस सत्ता या शक्ति का प्रयोग वे स्वयं या उनके निर्वाचित प्रतिनिधि करें। वह सरकार जो जनसाधारण के अधीन हो। सर्वसाधारण द्वारा परिचालित सरकार। लोकसत्ताक राज्य। लोकसत्तात्मक राज्य। प्रजासत्तात्मक राज्य। २. वह राष्ट्र जिसमें समस्त राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और वह सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों। प्रजातंत्र। ३ राजनीतिक और सामाजिक समानता। समाज की वह अवस्था जिसमें कुलीन अकुलीन, धनी दरिद्र, ऊँच नीच या इसी प्रकार का और भेद नहीं माना जाता।

डेमोक्रैट—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह जो डेमोक्रेसी या प्रजासत्ता या लोकसत्ता के सिद्धांत का पक्षपाती हो। वह जो सरकार को प्रजासत्ताक या लोकसत्ताक बनाने के सिद्धांत का पक्षपाती हो। २. वह जो राजनीतिक और प्राकृतिक समानता का पक्षपाती हो। वह जो कुलीनता अकुलीनता या ऊँच नीच का भेद न मानता हो।

डेर[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डर'।

डेर[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डेरा'। उ०—रहे खेत पर ठाढ़ भक्ति की डेर मँहै।—पलटू० पृ० ८७।

डेरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ठैरना, ठैराव या हिं० दर (=स्थान)] १. टिकान। ठहराव। थोड़े काल के लिये निवास। थोड़े दिन के लिये रहना। पड़ाव। जैसे,—आज रात को यहीं डेरा करो, सवेरे उठकर चलेंगे।

क्रि० प्र०—होना।—लेना = स्थान तजवीजकर टिक जाना या निवास करना। उ०—सालह महल हूँ ढूकड़ा, ठाढ़ो डेरउ लीध।—ढोला०, दू० १८७।

२. टिकने का आयोजन। टिकान का सामान। ठहरने या रहने के लिये फैलाया हुआ सामान। जैसे, बिस्तर, बरतन, भाँड़ा, छप्पर, तंबू इत्यादि। छावनी। जैसे—यहाँ से चटपट डेरा उठाओ।

यौ०—डेरा डंडा = टिकने का सामान। बोरिया बँधना। निवास का सामान। उ०—तसल्ली से असबाब वगैरह रखा गया और डेराडंडा ठीक हुआ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५९।

मुहा०—डेरा डालना = सामान फैलाकर टिकना। ठहरना। रहना। डेरा पड़ना = टिकान होना। छावनी पड़ना। उ०—(क) भरि चौरासी कोस परे गोपन के डेरा।—सूर (शब्द०)। (ख) पास मेरे इधर उधर आगे। है दुखों का पड़ा हुआ डेरा।—चुभते०, पृ० ४। डेरा डंडा उखाड़ना = टिकने का सामान हटाकर चला जाना।

३ टिकने के लिये साफ किया हुआ और छाया बनाया हुआ स्थान। ठहरने का स्थान। छावनी। कैंप। उ०—नौबत झरहि बहु नृपति डेरन दुंदुभी धुनि ह्वै रही।—रघुराज (शब्द०)। ४ खेमा। तंबू। छोलदारी। शामियाना।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

५ नाचने गानेवालों का दल। मंडली। गोल। ६ मकान। घर। निवासस्थान। जैसे,—तुम्हारा डेरा कितनी दूर है ?

डेरा[प्रा][2]—वि० [सं० डहर (=छोटा) ?] [स्त्री० डेरी] बायाँ। सव्य। जैसे, डेरा हाथ। उ०—(क) कहमैं आगे कहमैं पाछे, कहमैं दहिने डेरे।—कबीर (शब्द०) (ख) सुर श्याम सम्मुख रति मानत गए मग बिसरि दाहिने डेरे।—सूर (शब्द०)।

डेरा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा जंगली पेड़ जिसकी सफेद और मजबूत लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है।

विशेष—यह पेड़ पंजाब, अवध, बंगाल तथा मध्य प्रदेश और मदरास में भी होता है। इसे 'धरोली' भी कहते हैं। इसकी छाल और जड़ साँप काटने पर पिलाई जाती है।

डेराना—क्रि० अ० [हिं० डर] दे० 'डरना'। उ०—जहाँ पुहुप देखत अलि सगू। जिउ डेराइ काँपत सब अगू।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४०।

डेरावाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डेरा + वाली] रखैल। उ०—खेलावन

की डेरावाली खुद आकर बालदेव की बुढ़िया मौसी से कह गई थी।—मैला० पृ० १२।

डेरी—संज्ञा स्त्री० [अं० डेयरी] वह स्थान जहाँ गौएँ, भैंसें रखी और दूध मक्खन आदि बेचा जाता है।

यौ०—डेरीफार्म।

डेरीफार्म—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'डेरी'।

डेरु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० डर] दे० 'डर'। उ०—जप को देखि मोहि डेरु लाग्यो।—जग०, बानी०, पृ० २८।

डेरूँ‡—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू'। उ०—सिव सखी भेख साजिकै, आए गौरा को तजिकै। नाचै हैं डेरूँ लैकै, ब्रजबाल देखि झिझिकै।—ब्रज ग्र०, पृ० ६१।

डेल[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जो रबी की फसल के लिये जोतकर छोड़ दी जाय। परेल।

डेल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] कटहल की तरह का एक बड़ा ऊँचा पेड़ जो लंका में होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी चमकदार और मजबूत होती है, इसलिये वह मेज कुरसी तथा सजावट के अन्य सामान बनाने के काम में आती है। नावें भी इसकी अच्छी बनती हैं। इस पेड़ में कटहल के बराबर बड़े फल लगते हैं जो खाए जाते हैं। बीज भी खाने के काम में आते हैं। इन बीजों में से तेल निकलता है जो दवा और जलाने के काम में आता है।

डेल[3]—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुल] उल्लू पक्षी। उ०—घननाद. जोबन, राजमद ज्यों पच्छिन महँ डेल।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

डेल[4]—संज्ञा पुं० [सं० दल, हिं० डला] ढेला। पत्थर, मिट्टी या ईंट का टुकड़ा। रोड़ा। उ०—(क) नाहिं न रास रसिक रस चाख्यो तातें डेल सो डारो।—सूर (शब्द०)। (ख) डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो हैं।—इतिहास, पृ० ३५४।

क्रि० प्र०—डेल करना = नष्ट करना। ढेला या रोड़ा कर देना। समाप्त करना। उ०—औरो खर आप रिस भीने। तेऊ सबै डेल से कीने।—नंद० ग्र०, पृ० २७७।

डेला[5]—संज्ञा पुं० [हिं० डला] वह डला जिसमें बहेलिए पक्षी आदि बंद करके रखते हैं। उ०—कित नैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल। आपु आपु कहँ होइहि, परब पंखि जस डेल।—जायसी (शब्द०)।

डेलआयरियन—संज्ञा स्त्री० [आयरिश] (स्वतंत्र) आयरलैंड की पार्लमेंट या व्यवस्थापिका परिषद् जिसमें उस देश के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं।

डेल्टा—संज्ञा पुं० [यू०, अं०] नदियों के मुहाने या संगमस्थान पर उनके द्वारा लाए हुए कीचड़ और बालू के जमने से बनी हुई वह भूमि जो धारा के कई शाखाओं में विभक्त होने के कारण तिकोनी होती है।

डेला[1]—संज्ञा पुं० [सं० दल] १. ढेला। रोड़ा। २. आँख का सफेद उभरा हुआ भाग जिसमें पुतली होती है। आँख का कोया। ३. एक जंगली वृक्ष। दे० 'डेरा'। उ०—डेले, पीलू, आक और जड़ के कुड़मुड़ाए वृक्ष।—ज्ञानदान, पृ० १०३।

डेला—संज्ञा पुं० [हिं० ठेलवा] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बाँध दिया जाता है। ठेंगुर।

डेलिगेट—संज्ञा पुं० [अं०] वह प्रतिनिधि जो किसी सभा में किसी स्थान के निवासियों की ओर से मत देने के लिये भेजा जाय।

डेलिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है। इसका फूल लाल या पीला होता है।

डेली[1]—संज्ञा स्त्री०[हिं० डला]डलिया। बाँस की झाँपी। दे० 'डेल[5]'। उ०—बँधिगा सुआ करत सुख केली। चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली।—जायसी (शब्द०)।

डेली[2]—वि० [अं०] दैनिक (अखबार आदि)।

डेवढ़ा[1]—वि० [हिं० डेवढ़ा] डेढ़ गुना। डेवढ़ा। उ०—सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ सुलोचन लाहू।—तुलसी (शब्द०)।

डेवढ़ा[2]—संज्ञा स्त्री० तार। सिलसिला। क्रम।

क्रि० प्र०—लगना।

डेवढ़ना[1]—क्रि० अ० [हिं० डेवढ़ा] आँच पर रखी हुई रोटी का फूलना।

डेवढ़ना[2]—क्रि० स० १ कपड़े को मोड़ना। कपड़ों की तह लगाना। किसी वस्तु में उसका आधा और मिलाना। डेवढ़ा करना। ३ आँच पर रखी हुई रोटी को फुलाना।

डेवढ़ा—वि० [हिं० डेढ़] आधा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा। डेढ़गुना।

डेवढ़ा—संज्ञा पुं० १. ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे ढाल या गढ़ा हो (पालकी के कहार)। २ गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ अधिक ऊँचा हो। ३. एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से अंकों की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

डेवढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'ड्योढ़ी'। उ०—पल पाँवड़े डारि रहौंगी डटी डेवढ़ी डर छोड़ि अधीरतियाँ।—श्यामा०, पृ० १६६।

डेवलप करना—क्रि० अ० [अं० डेवलप + हिं० करना] फोटोग्राफी में प्लेट को मसाले मिले हुए जल से धोना जिसमें अंकित चित्र का आकार स्पष्ट हो जाय।

डेसिमल—संज्ञा पुं० [अं०] दशमलव। उ०—अपना आप हिसाब लगाया। पाया महा दीन से दीन। डेसिमल पर दस शून्य जमाकर, लिखे जहाँ तीन पर तीन।—हिम त०, पृ० ७०।

डेस्क—संज्ञा पुं० [अं०] लिखने के लिये छोटी ढालुआँ मेज।

डेहरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दरवाजे के नीचे की उठी हुई जमीन जिसपर चौखट के नीचे की लकड़ी रहती है। दहलीज। सतमदी।

डेहरी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दह] अन्न रखने के लिये कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन।

डेहुल—संज्ञा पुं० [सं० देहली] देहली। दहलीज।

डेंगू फीवर—संज्ञा पुं० [अं० डेंगे फीवर] दे० 'डगू ज्वर'। उ०—वै० १९२९ का डेंगू फीवर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३।

डेंगना—संज्ञा पुं० [हिं० डेग] काठ का लंबा टुकड़ा जो नटखट चौपायों के गले में इसलिये बाँध दिया जाता है जिसमें वे अधिक भाग न सकें। ठेंगुर। लंगर।

डैन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० डयन (=उड़ना)] दे० 'डैना'। उ०—गरजे गगन पखि जब बोला। डोल समुद्र डैन जब डोला।—जायसी ग्रं०, पृ० ६३।

डैना—संज्ञा पुं० [सं० डयन (=उड़ना)] चिड़ियों का वह फैलने और सिमटनेवाला अंग जिससे वे हवा में उड़ती हैं। पंख। पक्ष। पर। बाजू।

डैमफूल—संज्ञा पुं० [अं०] एक अँगरेजी गाली। अभागा मूर्ख। नारकी। सत्यानाशी। उ०—और इसपर बदमाशों को डैमफूल। तहजीब के साथ बात करना जानते ही नहीं।—झाँसी०, पृ० २५१।

डैरू†—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—सरप मरै बाँबी उठि नाचै कर बिनु डैरू बाजै।—गोरख०, पृ० २०८।

डैश—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अंग्रेजी विरामचिह्न जिसका प्रयोग कई उद्देश्यों से किया जाता है।

विशेष—यदि किसी वाक्य के बीच डैश देकर कोई वाक्य लिखा जाता है तो उस वाक्य का व्याकरणसंबंध मुख्य वाक्य से नहीं होता। जैसे,—जो शब्द बोलचाल में आते हैं—चाहे वे फारसी के हों, चाहे अरबी के, चाहे अँगरेजी के—उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता। डैश का चिह्न इस प्रकार का—होता है।

डोंगर—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (=पहाड़ी) या देशी डुंगर] [स्त्री० अल्पा० डोंगरी] पहाड़ी। टीला। भीटा। उ०—(क) एक फूक विष ज्वाल के जल डोंगर जरि जाहि।—सूर (शब्द०)। (ख) डोंगर को बल उनहिं बताऊँ। ता पाछे ब्रज खोजि बहाऊँ।—सूर (शब्द०)। (ग) चित्र विचित्र विविध मृग डोलत डोंगर डाँग। जनु पुर बीथिनि बिहरत छैल सँवारे स्वाँग।—तुलसी (शब्द०)।

डोंगा—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० अल्पा० डोंगी] १ बिना पाल की नाव। २. बड़ी नाव।

मुहा०—डोंगा पार होना या लगाना = काम निबटना। छुटकारा होना।

डोंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोंगा] १. बिना पाल की छोटी नाव। २. छोटी नाव। ३ वह बरतन जिसमे लोहार लोहा लाल करके बुझाते हैं।

डोंड़हा—संज्ञा पुं० [हि] दे० 'डोड़हा'।

डोंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १. बड़ी इलायची। २. टोंटा। कारतूस। उ०—चद्रबाण सतएँ बिराजे। मनु हने सोइ बचे जू भागे। भरि बंदूक अठारह छोड़े। इतने उदिय होय तब डोंड़े।—हनुमान (शब्द०)।

डोंडी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. पोस्ते का फल जिसमें से अफीम निकलती है। कपास की कली। उ०—सोजा, मणिपुर राजकुमार। ज्यों कपास की डोंडी में सोता है पैर पसार। एक कीट नन्हा सा श्वेत, मृदुल सुकुमार।—बदन०, पृ० ९५। २. उभरा मुँह। टोंटी।

डोंडी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोणी] डोंगी। छोटी नाव।

डोंडो[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डोंडी'।

डोँव—संज्ञा पुं० [देशी] दे० 'डोम'।

डोई—संज्ञा स्त्री० [देशी डोआ; हिं० डोको] काठ की डाँडी की बड़ी करछी जिससे कड़ाह में दूध, घी चाशनी आदि चलाते हैं।

विशेष—यह वास्तव में लोहे या पीतल का एक कटोरा होता है जिसमे काठ की लंबी डाँड़ी खड़े बल लगी रहती है।

डोक—संज्ञा पुं० [देश०] छुहारा जो पककर पीला हो जाय। पकी हुई खजूर।

डोकनी‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] कठौती। उ०—बाँस का ठोंगा, काठ की डोकनी तथा बेंत की डलिया।—नेपाल०, पृ० ३१।

डोकर—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० डोकरी] दे० 'डोकरा'।

डोकरडो†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डोकरा'।

डोकरा—संज्ञा पुं० [सं० दुष्कर, प्रा० डुक्कर ?] [स्त्री० डोकरी] १. बुड्ढा आदमी। अशक्त और वृद्ध मनुष्य। † २ पिता।

डोकरिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०डोकरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'डोकरी'।

डोकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोकरा] बुड्ढी स्त्री। उ०—तहाँ मार्ग मे एक डोकरी को घर मिल्यौ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३२०।

डोकरो†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डोकरा'।

डोका[१]—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणक] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं।

डोका‡[२]—संज्ञा पुं० [देश०] डंठल। उ०—उकरड़ी डोका चुगइ, अपस डँभायउ भाँण।—ढोला०, दू० ३३६।

डोकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोका] काठ या छोटा कटोरा या बरतन जिसमे तेल, उबटन आदि रखते हैं।

डोकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोका] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं।

डोगर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डोंगर'।

डोगरा—संज्ञा पुं० [हिं० डोंगर] जम्मू, कश्मीर, काँगड़ा आदि में बसी एक प्रसिद्ध जाति या उस जाति के व्यक्ति।

डोगरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. डोगरा जाति के लोगों की बोली जो पंजाबी की एक शाखा है। २. छोटे छोटे घर। उ०—काम करने के लिये मीलों दूर साधारण से छोटे छोटे घर बना लिए हैं, जिन्हें डोगरी कहते हैं।—किन्नर०, पृ० ९६।

डोज—संज्ञा स्त्री० [अं० डोज] मात्रा। खुराक। मोताद।

डोड़हथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँडा + हाथ] तलवार (डिं०)।

डोड़हा—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] पानी में रहनेवाला साँप।

डोड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता जो औषध के काम में आती है।
विशेष—वैद्यक के अनुसार यह मधुर, शीतल, नेत्रों को हितकारी, त्रिदोषनाशक और वीर्यवर्धक मानी जाती है। इसे जीवती भी कहते हैं।

डोडो—संज्ञा पुं० [अं०] एक चिड़िया जो अब नहीं मिलती।
विशेष—यह चिड़िया मारिशस (मिरिच के) टापू में जुलाई १६८१ तक देखी गई थी। इसके चित्र यूरोप के भिन्न भिन्न स्थानों में रखे मिलते हैं। सन् १८६६ में इसकी बहुत सी हड्डियाँ पाई गई थीं। डोडो भारी और बेढंगे शरीर की चिड़िया थी। डीलडौल में बत्तख के बराबर होती थी, न अधिक उड़ सकती थी, न और किसी प्रकार अपना बचाव कर सकती थी। मारिशस में यूरोपियनों के बसने पर इस दीन पक्षी का समूल नाश हो गया।

डोढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'ड्योढ़ी'। उ०—(क) इनके मिलने में डोढ़ी पहरा नहीं लगता। —श्रीनिवास ग्रं० (नि०), पृ० ५। (ख) देसोतारी डोढ़ियाँ गोला करै गसार।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ८७।

डोब—संज्ञा पुं० [हिं० डूबना] डुबाने का भाव। गोता। डुबकी।
मुहा०—डोब देना = गोता देना। डुबाना। जैसे, कपड़े को रंग में दो तीन डोब देना। कलम को स्याही में डोब देना।

डोबना—क्रि० स० [हिं० डुबाना] डुबकी देना। डुबाना। गोता देना। उ०—आगल डोबै पाछल तारे।—प्राण०, पृ० ४६।

डोबा—संज्ञा पुं० [हिं० डुबाना] गोता। डुबकी।
मुहा०—डोबा देना या भरना = डुबाना। गोता देना। जैसे, कपड़े को रंग में डोबा देना, कलम को स्याही में डोबा देना।

डोभरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताजा महुआ।

डोम—संज्ञा पुं० [सं० डम, देशी डुब, डोंब] [स्त्री० डोमिनी, डोमनी] १. अस्पृश्य नीच जाति जो पंजाब से लेकर बंगाल तक सारे उत्तरी भारत में पाई जाती है। उ०—यह देखो डोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ पकड़कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २६७।
विशेष—स्मृतियों में इस जाति का उल्लेख नहीं मिलता। केवल मत्स्यसूक्त तंत्र में डोमों को अस्पृश्य लिखा है। कुछ लोगों का मत है कि ये डोम बौद्ध हो गए थे और इस धर्म का संस्कार इनमें अब तक बाकी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी समय यह जाति प्रबल हो गई थी, और कई स्थान डोमों के अधिकार में आ गए थे। गोरखपुर के पास डोमनगढ़ का किला डोम राजाओं का बनवाया हुआ था। पर अब यह जाति प्रायः निकृष्ट कर्मों ही के द्वारा अपना निर्वाह करती है। श्मशान पर शव जलाने के लिये आग देना, शव के ऊपर का कफन लेना, सूप, डले आदि बेचना आजकल डोमों का काम है। पंजाब के डोम कुछ इनसे भिन्न होते हैं और जंगलों से फल और जड़ी बूटी लाकर बेचते हैं।
२ एक नीच जाति जो मंगल के अवसरों पर लोगों के यहाँ गाती बजाती है। ढाढी। मीरासी।

डोमकौआ—संज्ञा पुं० [हिं० डोम + कौआ] बड़ी जाति का कौआ जिसका सारा शरीर काला होता है। डोम काक या डोम काग नाम भी इसके हैं।

डोमड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० डोम + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'डोम'। उ०—श्मशान के डोमड़ों तक की नौकाएँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११३।

डोमतमौटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी जाति जो पीतल ताँबे आदि का काम करती है।

डोमनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोम] १. डोम जाति की स्त्री। २. डोम की स्त्री। ३. उस नीच जाति की स्त्री जो उत्सवों पर गाने बजाने का काम करती है। ये स्त्रियाँ गाने बजाने के अतिरिक्त कहीं कहीं वेश्यावृत्ति भी करती हैं।

डोमसाल—संज्ञा पुं० [हिं० डोम + साल] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसे गीदड़ रूख भी कहते हैं। वि० दे० 'गीदड़ रूख'।

डोमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।

डोमाकागⓅ—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण + काक] दे० 'डोमकौआ'। उ०—भँवर पतंग जरैं औ तागा। कोइल, भुजइल, डोमाकागा।—जायसी ग्रं०, पृ० १६३।

डोमिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोम] १. डोम जाति की स्त्री। २. मीरासियों की स्त्री। दे० 'डोमनी'[२]। उ०—नटिनी डोमिन ढाढ़िनी सहनायन परकार। निरतत नाद बिनोद सौं विहँसत खेलत नार।—जायसी (शब्द०)।

डोमीनियन—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. स्वतंत्र शासन या सरकार। २. स्वतंत्र शासनवाला देश या साम्राज्य। जैसे, ब्रिटिश डोमीनियन। ३. उपनिवेश। अधिराज्य। उ०—पर भारत को सन् १९३५ के अधिनियम द्वारा डोमीनियन का दर्जा नहीं मिला था।—भारतीय०, पृ० २९।
यौ०—डोमीनियन स्टेट = अधिराज्य का दरजा। औपनिवेशिक राज्य का पद।

डोर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डोरा। तागा। धागा। रस्सी। सूत। उ०—डीठि डोर नैना दही, छिरकि रूप रस तोय। मथि मो घट प्रीतम लियो मन नवनीत बिलोय।—रसनिधि (शब्द०)। २ पतंग या गुड्डी उड़ाने का माँझेदार तागा। ३. सिलसिला। कतार। ४ अवलंब। सहारा। लगाव।
मुहा०—डोर पर लगाना = रास्ते पर लाना। प्रयोजनसिद्धि के अनुकूल करना। ढब पर लाना। प्रवृत्त करना। परचाना। डोर भरना = कपड़े के किनारे को कुछ मोड़कर उसके भीतर तागा भरकर सीना। फलीता लगाना। डोर मजबूत होना = जीवन का सूत्र दृढ़ होना। जिंदगी बाकी रहना। डोर होना = मुग्ध होना। मोहित होना। लट्टू होना। वि० दे० 'डोरी'।

डोरक—संज्ञा पुं० [सं०] डोरा । तागा । सूत्र । धागा ।

डोरड़ा‡—संज्ञा पुं० [देश०] धागे का कंकन, जो ब्याह में बँधता है और जिसे खोलकर वर वधू को जुआ खेलाने की रीति चलती है । उ०—खेले जुवा डोरड़ा खोलि. यह सुभ कारज सारिया । —रघु० रू०, पृ० ८७ ।

डोरना†—संज्ञा पुं० [हिं० डोर] दे० 'डोरा' । उ०—हरीचंद यह प्रेम डोरना को कैसे करि छूटै ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६२।

डोरही—संज्ञा स्त्री० [देश०] बड़ी कटाई । बड़ी भटकटैया ।

डोरा¹—संज्ञा पुं० [सं० डोरक] १. रूई, सन, रेशम आदि को बटकर बनाया हुआ ऐसा खंड जो चौड़ा या मोटा न हो, पर लंबाई में लकीर के समान दूर तक चला गया हो । सूत्र । सूत । तागा । धागा । जैसे, कपड़ा सीने का डोरा, माला गूँथने का डोरा । २ धारी । लकीर । जैसे,—कपड़ा हरा है, बीच बीच में लाल डोरे हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—होना ।

३ आँखों की बहुत महीन लाल नसें जो साधारण मनुष्यों की आँख में उस समय दिखाई पड़ती हैं जब वे नशे की उमंग में होते हैं या सोकर उठते हैं । जैसे,—आँखों में लाल डोरे कानो मे बालियाँ । ४. तलवार की धार । उ०—डोरन में आछे चीनी आछे आगे पाछे अति भारी ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८७ । ५ तपे घी की धार, जो दाल आदि में ऊपर से डालते समय बँध जाती है ।

मुहा०—डोरा देना = तपा हुआ घी ऊपर से डालना ।

६. एक प्रकार की करछी जिसकी डाँड़ी खड़े बल लगी रहती हैं और जिससे घी निकालते हैं या दूध आदि कड़ाह में चलाते हैं । परी । ७ स्नेहसूत्र । प्रेम का बंधन । लगन ।

मुहा०—डोरा डालना = प्रेमसूत्र में बद्ध करना । प्रेम में फँसाना । अपनी ओर प्रवृत्त करना । परचाना । उ०—यह डोरे कहीं और डालिए, समझे आप ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२५ । डोरा लगना = स्नेह का बंधन होना । प्रीति संबंध होना ।

८. वह वस्तु जिसका अनुसरण करने से किसी वस्तु का पता लगे । अनुसंधान सूत्र । सुराग । उ०—जुवति जोन्ह में मिलि गई नेकु न देत लखाय । सौंधे के डोरे लगी, अली चली सँग जाय ।—बिहारी (शब्द०) । † ९. काजल या सुरमे की रेखा । १०. नृत्य में कंठ की गति । नाचने में गरदन हिलाने का भाव ।

डोरा²—संज्ञा पुं० [हिं० ढोंढ़] पोस्ते का ढोंढ़ । ढोंढा ।

डोरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोर] दे० 'डोरी' । उ०—ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर कन कन कौं चौहटैं नचायौ ।—सूर०, १।३२६ ।

डोरिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० डोरा] १. एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें कुछ मोटे सूत की लंबी धारियाँ बनी हों । २ एक प्रकार का बगला जिसके पैर हरे होते हैं । यह ऋतु के अनुसार रंग बदलता है । ३ जुलाहों के यहाँ तागा उठानेवाला लड़का । ४. एक नीच जाति जो राजाओं के यहाँ शिकारी कुत्तों की रक्षा पर नियुक्त रहती थी । ये लोग कुत्तों को शिकार पर लगाते थे ।

डोरिया†(पु)²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डोरी' । उ०—सुरत सुहागिनि जल भरि लावै बिन रसरी बिन डोरिया ।—धरम०, पृ० ३५ ।

डोरियाना‡—क्रि० स० [हिं० डोरी+आना (प्रत्य०)] पशुओं को रस्सी से बाँधकर ले चलना । बागडोर लगाकर घोड़ों को ले जाना । उ०—गवने भरत पयादेहि पाये । कोतल संग जाहि डोरियाये ।—तुलसी (शब्द०) । २. परचाना । हिलगाना ।

डोरिहार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० डोरी + हारा] [स्त्री० डोरिहारिन] पटवा ।

डोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोरा] १. कई डोरों या तागों को बटकर बनाया हुआ खंड जो लंबाई मे दूर तक लकीर के रूप में चला गया हो । रस्सी । रज्जु । जैसे, पानी भरने की डोरी, पंखा खींचने की डोरी ।

मुहा०—डोरी खींचना = सुध करके दूर से अपने पास बुलाना । पास बुलाने के लिये स्मरण करना । जैसे,—जब भगवती डोरी खींचेंगी तब जायँगी (स्त्रि०) । डोरी लगना = (१) किसी के पास पहुँचने या उसे उपस्थित करने के लिये लगातार ध्यान बना रहना । जैसे,—अब तो घर की डोरी लगी हुई है । उ०—आरति अरज लेहु सुनि मोरी । चरनन लागि रहे दृढ़ डोरी ।—जग० श०, पृ० ५८ ।

२ वह तागा जिसे कपड़े के किनारे को कुछ मोड़कर उसके भीतर डालकर सीते हैं ।

क्रि० प्र०—भरना ।

३ वह रस्सी जिसे राजा महाराजाओं या बादशाहों की सवारी के आगे आगे हद बाँधने के लिये सिपाही लेकर चलते हैं ।

विशेष—यह रास्ता साफ रखने के लिये होता है जिसमें डोरी की हद के भीतर कोई जा न सके ।

क्रि० प्र०—आना ।—चलना ।

४. बाँधने की डोरी । पाश । बंधन । उ०—मैं मेरी करि जनम गँवावत जब लगि परत न जम की डोरी ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—डोरी टूटना = संबंध टूटना । उ०—का तकसीर भई प्रभु मोरी । काहे टूटि जाति है डोरी ।—जग० श०, पृ० ६४ । डोरी ढीली छोड़ना = देखरेख कम करना । चौकसी कम करना । जैसे,—जहाँ डोरी ढीली छोड़ी कि बच्चा बिगड़ा ।

५ डाँड़ीदार कटोरा जिससे कड़ाह में दूध, चाशनी आदि चलाते हैं ।

डोरे(पु)—क्रि० वि० [हिं० डोर] साथ पकड़े हुए । साथ साथ । संग संग । उ०—(क) अमृत निचोरे कल बोलत निहोरे नैक, सखिन के डोरे 'देव' डोलै जित तित कों ।—देव (शब्द) । (ख) बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि, शिव को समाज कैधौं ऋषि को सदन है ।—केशव (शब्द०) ।

डोल¹—संज्ञा पुं० [सं० दोल (= झूलना, लटकाना)] १. लोहे का एक गोल बरतन जिसे कुएँ मे लटकाकर पानी खींचते हैं ।

२. हिंडोला। झूला। पालना। उ०—(क) सघन कुंज में डोल बनायो झूलत है पिय प्यारी।—सूर (शब्द०)। (ख) प्रभुहि चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल। खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधि मंडल डोल।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—डोल उत्सव=दे० 'दोलोत्सव'। उ०—सो इतने ही उनको सुधि आई जो आजु तो डोल उत्सव को दिन है।—दो सौ बावन,० भा० १, पृ० २२६।

३. डोली। पालकी। शिविका। उ०—महा डोल दुलहिन के चारी। बेहु बताय हीहु उपकारी।—रघुराज (शब्द०)। † ४. धार्मिक उत्सवों में निकलनेवाली चौकियाँ या विमान। ६ जहाज का मस्तूल (लश०)।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

७. कंप। खलभली। हलचल। उ०—बादशाह कहूँ ऐस न बोलु। चढ़े तो परै जगत महँ डोलु।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

डोल²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की काली मिट्टी जो बहुत उपजाऊ होती है।

डोल³—वि० [हिं० डोलना] डोलनेवाला। चंचल। उ०—तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल। तेहि पर बिरह जराइकै, चहै उड़ावा झोल।—जायसी (शब्द०)।

डोलक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का ताल देने का एक प्रकार का बाजा।

डोलची—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोल+ची (प्रत्य०)] १ छोटा डोल। २ फूल या फल आदि रखकर हाथ में लटकाकर ले चलने योग्य बाँस, बेंत आदि का पात्र।

डोलडाल—संज्ञा पुं० [देश०] १ चलना फिरना। २. दिशा के लिये जाना। पाखाने जाना।

क्रि० प्र०—करना।

डोलढाक—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक ?] पँगरा नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी के तख्ते बनते हैं। वि० दे० 'पँगरा'।

डोलदहल—संज्ञा पुं० [हिं०] हलचल। उ०—डोलदहल क्षणभंगुर है, मत व्यर्थ डरो। सौ बार उजड़ने पर भी है दुनिया बसती।—सुत०, पृ० ४८।

डोलना¹—क्रि० अ० [सं० दोलन (=लटकना, हिलना)] १. हिलना। चलायमान होना। गति में होना। २ चलना। फिरना। टहलना। जैसे,—चौपाए चारों ओर डोल रहे हैं। उ०—(क) भक्तबिरह कातर करुनामय, डोलत पाछें लागे।—सूर०, १।८। (ख) जाहि बन केसो न डोल रे। ताहि बन पिया हसि बोल रे।—विद्यापति०, पृ० ३१६।

यौ०—डोलना फिरना=चलना घूमना।

३. चला जाना। हटना। दूर होना। जैसे,—वह ऐसा अकड़कर माँगता है कि डुलाने से नहीं डोलता। ४. (चित्त) विचलित होना। (चित्त का) दृढ़ न रह जाना। (चित्त का) किसी बात पर) जमा न रहना। डिगना। उ०—(क) मर्म बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।—तुलसी (शब्द)। (ख) बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ। अचल सुता मनु अचल बयारि कि डोलई ?—तुलसी (शब्द०)।

डोलना²—संज्ञा पुं० [सं० दोलन] दे० 'डोला'।

डोलनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोलना] डोलने की स्थिति या कार्य। उ०—बैसिऐ हँसनि, चहनि पुनि बोलनि। बैसिऐ लटकनि, मटकनि, डोलनि।—नंद० ग्रं०, २६५।

डोलरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोल+री (प्रत्य०)] पलंग। खाट। झोली।

डोला—संज्ञा पुं० [सं० डोल] [स्त्री० अल्पा० डोली] १. स्त्रियों के बैठने की वह बंद सवारी जिसे कहार कंधों पर लेकर चलते हैं। पालकी। मियाना। शिविका।

मुहा०—(किसी का) डोला भेजना=दे० 'डोला देना' उ०—डोला भेजि दीबै जौन माँगत दिल्ली को पति, मोलहन कहत सीख मेरी सीस धर रे।—हम्मीर०, पृ० २०। डोला माँगना=ब्याह के लिये कन्या माँगना। उ०—मुसलमानों द्वारा डोला की माँग को अस्वीकार करने पर उनपर आक्रमण किया गया तथा उनका किला जीत लिया गया।—स० दरिया (भू०), पृ० १०। (किसी का) डोला (किसी के) सिर पर या चौड़े पर उछलना=किसी दूसरी स्त्री का संबंध या प्रेम किसी स्त्री के पति के साथ होना। डोला देना=(१) किसी राजा या सरदार को भेंट की तरह पर अपनी बेटी देना। (२) शूद्रों और नीची जातियों में प्रचलित एक प्रथा। अपनी बेटी को वर के घर पर ले जाकर ब्याहना। डोला निकालना=दुलहिन को विदा करना। डोला लेना=भेंट में कन्या लेना।

२. वह झोंका जो झूले में दिया जाता है। पेंग।

डोलाना—क्रि० स० [हिं० डोलना] १ हिलाना। चलाना। गति में रखना। जैसे, पंखा डोलना।

संयो० क्रि०—देना।

२ हटाना। दूर करना। भगाना।

डोलायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दोलायन्त्र] दे० 'दोलायंत्र'।

डोलिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोली] डोली। पालकी। उ०—छोट मोट डोलिया चंदन कै छोटे चार कहार हो।—धरम०, पृ० ६२।

डोलियाना—क्रि० स० [हिं० डोलना] १. किसी वस्तु को चुपके से हटा देना। किसी चीज को गायब कर देना। २ दे० 'डोली करना'।

डोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोला] स्त्रियों के बैठने की एक सवारी जिसे कहार कंधों पर उठाकर ले चलते हैं। पालकी। शिविका। उ०—गाँव चाँपासर की डोली के बाबत जो हाल महकमे बंदोबस्त से मिला उसकी नकल आपकी सेवा में भेजता हूँ।—सुंदर ग्रं० (भी०), भा० १, पृ० ७५।

डोली करना—क्रि० स० [हिं० डोलना] धता बताना। हटाना। टालना।—(दलाल)।

डोली डंडा—संज्ञा पुं० [हिं०] बालकों का एक खेल।

डोलू—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. रेवँद चीनी।

विशेष—इसका पेड़ हिमालय के काँगड़ा, नेपाल, सिक्किम आदि प्रदेशों के जंगल में होता है। वहाँ से इसकी जड़, जो पीली पीली होती है, नीचे की ओर भेजी जाती है और बाजारों में बिकती है। पर, गुण में यह चीन की रेवँद (रेवँद चीनी), खुतन की रेवँद (रेवँद खताई) या विलायती रेवँद के समान नहीं होती। इसे पदमचल और चुकरी भी कहते हैं।

२. एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह बाँस पूर्वी बंगाल, आसाम और भूटान से लेकर बरमा तक होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक छोटी, दूसरी बड़ी। यह चोंगे और छाते बनाने के काम में अधिकतर आती है। टोकरे और पान रखने के डब्बे भी इससे बनते हैं।

डोलोत्सव—संज्ञा पुं० [सं० दोलोत्सव] दे० 'दोलोत्सव'। उ०—तब श्री गुसाईं जी या वैष्णव सों कहे, जो अब को तुम डोलोत्सव कौन ठौर कौन प्रकार करयो ?—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २३१।

डोसा—संज्ञा पुं० [देश०] उड़द या चावल को पीसकर खमीर उठने पर बनाया जानेवाला चिलड़ा या उलटा।

डोहरा—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन जिससे कोल्हू से गिरा हुआ रस निकाला जाता है।

डोहली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोली, मध्यगम डोहली (जैसे, भमहर = भंवर] दे० 'डोली'। उ०—मीरों गयो डोहली माँहे। ठाकुर पगाँ तणों बल साहे।—रा० रू०, पृ० ३३५।

डोहि(पु), **डोही**—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोई] दे० 'डोई'। उ०—छननी चलनी डोहि और करछी बहु करछा।—सूदन (शब्द०)।

डोहीजना(पु)‡—क्रि० स० [देश०, तुल० हिं० टोहना] अन्वेषण करना। ढूँढ़ना। खोजना। उ०—मन सीचाणउ जइ हुवइ पाँखाँ हुवइ त आण। जाइ मिलीजइ साजणाँ डोहीजइ महिराँण।—ढोला०, पृ० २११।

डौंड़ा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] डोंगा। नाव। उ०—जसके पहार भार प्रगट्यो पहार जस डोंगरनि डौंड़ा चले समद सुखाने हैं। रसरतन, पृ० १०।

डौंड़ाना—क्रि० अ० [हिं० डाँवाडोल] डाँवाडोल रहना। विचलित होना। घबराना।

—संज्ञा स्त्री० [सं० डिण्डिम] १. एक प्रकार का ढोल जिसे किसी बात की घोषणा की जाती है। डिंढोरा। । उ०—चित डौंड़ी बुधि फेरी लावै। मन दुनो कै।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७४।

। —बजना। —बजाना।

=(१) ढोल बजाकर सर्वसाधारण को सूचित करना। (२) सब किसी से कहते फिरना।

१) घोषणा होना। (२) दुहाई फिरना। । चलती होना। उ०—लौंड़ी के घर डौंड़ी बजानो।—सूर (शब्द०)।

२. वह सूचना जो सर्वसाधारण को ढोल बजाकर दी जाय। घोषणा। मुनादी।

क्रि० प्र०—फिरना।—फेरना। उ०—तब ब्रज के गामन डौंड़ी फेरी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३००।

डौंरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो खेतों में पैदा हो जाती है। इसमें साँवाँ की तरह दाने पड़ते हैं जो खाने में कड़ुए होते हैं।

डौंरु(पु), **डौंरू**—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू'। उ०—नील पाठ परोइ मणिगण फणिग धोखे जाइ। खुनखुनाकरि हँसत मोहन नचत डौंर बजाइ।—सूर (शब्द०)।

डौआ—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का चमचा। काठ की डाँड़ी की बड़ी करछी। उ०—मकड़ी डोआ कठपुतरी सरस काजु अनुहारि। सुप्रभु सग्रहहिं परिहरहिं सेवक सखा बिचारि।—तुलसी (शब्द०)।

डौका, **डौकी**—संज्ञा स्त्री० [देश०] पंडुक पक्षी। पडुकी। उ०—अभिसारिकाओं को नोका ऐसो प्रगल्भ मानो डौका।—श्यामा० पृ० ३१।

डौर१—संज्ञा पुं० [हिं० डौल] डौल। ढंग। प्रकार। उ०—(क) औरै डौर झौरन पै बौरन के वै गए।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६१। (ख) पदमाकर चाँदनी चदहु के कछु और ही डौरन पै गए हैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०९।

डौर(पु)२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डोर' उ०—सुरती डौर सुरति के भोरे मेरा सुभक्त मिलाही।—राम० धर्म०, पृ० ३७५।

डौरु, **डौरू**(पु)—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू'। उ०—(क) कहू वज्जियं डोरु रुद्र समारी।—पृ० रासो पृ० १७७। (ख) बजे डफ डौरू डमक डहक्के। धकै भेद धुज्जै हुके गेन हक्के।—पृ० रा० १।३९०।

डौल१—संज्ञा पुं० [हिं० डौल ?] किसी रचना का प्रारंभिक रूप। ढाँचा। आकार। ढड्ढा। ठाट। ठट्टर।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

मुहा०—डौल डालना = ढाँचा खड़ा करना। रचना का प्रारंभ करना। बनाने में हाथ लगाना। लग्गा लगाना। डौल पर लाना = काठ छाँटकर सुडौल बनाना। दुरुस्त करना।

२. बनावट का ढंग। रचना। प्रकार। ढब। जैसे,—इसी डौल का एक गिलास मेरे लिये भी बना दो।

मुहा०—डौल से लगाना = ठीक क्रम से रखना। इस प्रकार रखना जिससे देखने में अच्छा लगे।

३. तरह। प्रकार। भाँति। किस्म। तौर। तरीका। ४. अभिप्राय के साधन की युक्ति। उपाय। तदबीर। ब्योंत। आयोजन। सामान। उ०—कबीर राम सुमिरिए क्यों फिरे और की डौल।—कबीर ग्रं०, पृ० ३६५।

यौ०—डौलडाल।

मुहा०—डौल पर लाना = अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना। ऐसा करना जिससे कोई मतलब निकल सके। इस प्रकार

प्रवृत्त करना जिससे कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सके। डौल बाँधना = दे० 'डौल लगाना'। डौल लगाना = उपाय करना। युक्ति बैठाना। जैसे,—कहीं से सौ रुपए १००) का डौल लगाओ।

५ रग ढग। लक्षण। आयोजन। सामान। जैसे,—पानी बरसने का कुछ डौल नहीं दिखाई देता। ६. बदोबस्त मे जमा का तकदमा। तखमीना।

डौल²—सज्ञा स्त्री० खेतों की मेड़। डाँड।

डौलडाल—सज्ञा पुं० [हिं० डौल] उपाय। प्रयत्न। युक्ति। ब्योंत।

डौलदार—वि० [हिं० डौल + फा० दार (प्रत्य०)] सुडौल। सुंदर। खूबसूरत।

डौलना†—क्रि० स० [हिं० डौल] गढ़ना। किसी वस्तु को काट छाँट या पीट पाटकर किसी ढाँचे पर लाना। दुरुस्त करना।

डौला†—सज्ञा पुं० [देश०] हाथ का गट्टा। उ०—(क) मन्वन की बाँह के डौले मे गोली लगी थी।—फूलो०, पृ० ६१। (ख) करि हिकमत रहकला बनाई। डौलि तले ले धरी कलाई।—प्राण०, पृ० २२।

डौलियाना†—क्रि० स० [हिं० डौल] १. ढग पर लाना। कह सुनकर अपनी प्रयोजन सिद्धि के अनुकूल करना। काट छाँटकर किसी ठीक आकार का बनाना। गढकर दुरुस्त करना।

डौवर—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जिसके पर, छाती और पीठ सफेद, दुम काली और चोंच लाल होती है।

डौवा—सज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डोआ'।

ड्यंभक(Ⓟ)†—सज्ञा पुं० [सं० डिम्भक] दे० 'डिंभक'। उ०—भेष बिबर्जित भीख बिबर्जित, बिबर्जित ड्यंभक रूप। कहै कबीर तिहूँ लोग बिबर्जित, ऐसा तत्त अनूप।—कबीर ग्र०, पृ० १६३।

ड्यूक—सज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० डचेज] १. इंगलैंड, फ्रास, इटली आदि देशों के सामंतों और भूम्यधिकारियो की वंशपरपरागत उपाधि। इगलैंड के सामंतों और भूम्यधिकारियों को दी जानेवाली सर्वोच्च उपाधि जिसका दर्जा प्रिंस के नीचे है। जैसे, कनाट के ड्यूक, विंडसर के ड्यूक।

विशेष—जैसे हमारे देश मे सामत राजाओं तथा बड़े बड़े जमीदारों को सरकार से महाराजाधिराज, महाराजा, राजाबहादुर, राजा आदि उपाधियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार इगलैंड में सामंतों तथा बड़े बड़े जमीदारों को ड्यूक, मार्क्विस, अर्ल, वाइकौंट, बैरन आदि की उपाधियाँ मिलती हैं। ये उपाधियाँ वशपरपरा के लिये होती हैं। उपाधि पानेवाले के मरने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र या उत्तराधिकारी उपाधि का भी अधिकारी होता है। इस प्रकार अधिकारी क्रम से उस वंश में उपाधि बनी रहती है। अब यह भी नियम हो गया है कि जिसे सरकार चाहे केवल जीवन भर के लिये यह उपाधि प्रदान करे। मार्क्विस, अर्ल, वाइकौंट और बैरन उपाधिधारी लार्ड कहलाते हैं। मार्क्विस, बैरन आदि उपाधियाँ जापान में भी प्रचलित हो गई हैं।

२ सामंत। सरदार। राजा।

ड्यूटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. करने योग्य कार्य। कर्तव्य। धर्म। फर्ज। जैसे,—स्वयसेवकों ने बड़ी तत्परता से अपनी ड्यूटी पूरी की। २ वह काम जो सुपुर्द किया गया हो। सेवा। खिदमत। पहरा। जैसे,—(क) स्वयसेवक अपनी ड्यूटी पर थे। (ख) कल सबेरे वहाँ उसकी ड्यूटी थी। ३. नौकरी का काम। जैसे,—वह अपनी ड्यूटी पर चला गया। ४. कर। चुंगी। महसूल। जैसे,—सरकार ने नमक पर ड्यूटी कम नहीं की।

ड्योढ़ा¹—वि० [हिं० डेढ़] [स्त्री० ड्योढ़ी] आधा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा। डेढ़गुना।

यौ०—ड्योढ़ी गाँठ = एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी आधी गाँठ। डेढ़गाँठ। मुद्दी।

ड्योढ़ा²—संज्ञा पुं० १ ऐसा तग रास्ता जिसके एक किनारे पर ढाल या गड्ढा हो।—(पालकी के कहार)। २. गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ ऊँचा हो। ३. एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से अकों की डढ़गुनी सख्या बतलाई जाती है।

ड्योढ़ी—सज्ञा स्त्री० [सं० देहली] १. द्वार के पास की भूमि। वह स्थान जहाँ से होकर किसी घर के भीतर प्रवेश करते हैं। चौखट। दरवाजा। फाटक। २. वह स्थान जो पटे हुए फाटक के नीचे पड़ता है या वह बाहरी कोठरी जो किसी बड़े मकान में घुसने के पहले ही पड़ती है। उ०—महरी ने दरोगा साहब को ड्योढ़ी पर जगाया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४। ३. दरवाजे में घुसते ही पड़नेवाला बाहरी कमरा। पौरी। पँवरी।

यौ०—ड्योढ़ीदार। ड्योढ़ीवान।

मुहा०—(किसी की) ड्योढ़ी खुलना = दरबार में आने की इजाजत मिलना। आने जाने की आज्ञा मिलना। (किसी की) ड्योढ़ी बद होना = किसी राजा या रईस के यहाँ आने जाने की मनाही होना। आने जाने का निषेध होना। ड्योढ़ी लगना = द्वार पर द्वारपाल बैठना जो बिना आज्ञा पाए लोगों को भीतर नहीं जाने देता। ड्योढ़ी पर होना = दरवाजे पर या अधीनता में होना। नौकरी में होना। उ०—बन्नो : हुजूर, हमने यह बात किसी रईस के घर मे आजतक देखी ही नहीं। यहाँ चाहे बढ़ बढ़ के जो बातें बनाएँ, किसी और की ड्योढ़ी पर होती तो बड़े बड़े निकलवा दी जाती।—सैर कु०, पृ० १२।

ड्योढ़ी—[हिं० डेढ़] डेढ़गुनी। दे० ड्योढ़ा।

ड्योढ़ीदार—सज्ञा पुं० [हिं० ड्योढ़ी + फ़ा दार] दे० 'ड्योढ़ीवान'।

ड्योढ़ीवान—संज्ञा पुं० [हिं० ड्योढ़ी] ड्योढ़ी पर रहनेवाला सिपाही या पहरेदार। द्वारपाल। दरबान उ०—जहाँ न ड्योढ़ीवान पायजामा तम धारे।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

ड्यौढ़, ड्योढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० डेढ़] [वि० स्त्री० ड्योढी] १. एक और आधा अधिक। उ०—वह जिसके न, दून ड्योढ़, पौन। जो वेदों में है सत्य, साम।—आराधना, पृ० २०।

ड्योढ़ी—संज्ञा पुं० [हिं० ड्योढ़िया] द्वारपाल। ड्योढ़ीदार। दरबान। उ०—सीधा ड्योढ़ी प्रीत सवाई।—रा० रू०, पृ० ३१५।

ड्रम—संज्ञा पुं० [अं०] १. एक प्रकार का अँगरेजी बाजा। ढोल। नगाड़ा। २ ढोल जैसे आकार का बड़ा पात्र या पीपा।

ड्राइंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] रेखाओं के द्वारा अनेक प्रकार की आकृति बनाने की कला। लकीरों से चित्र या आकृति बनाने की विद्या।

ड्राइंगरूम—संज्ञा पुं० [अं०] बैठने का कमरा। जिस कमरे में आनेवालों को बैठाया जाय। उ०—उनके लिये ड्राइंगरूम बनाकर सजाना पड़ता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७७।

ड्राइवर—संज्ञा पुं० [अं०] गाड़ी हाँकने या चलानेवाला। जैसे, रेल का ड्राइवर।

ड्राई प्रिंटिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] सूखी छपाई। छापेखाने में वह छपाई जो भिगोए हुए सूखे कागज पर की जाती है।

विशेष—इस प्रकार की छपाई से कागज की चमक नहीं जाती है और छपाई साफ होती है।

ड्रान—वि० [अं०] बराबर। हारजीतशून्य। उ०—बाजी ड्रान रही।—गोदान, पृ० १३२।

ड्राप—संज्ञा पुं० [अं०] १ बूँद। बिंदु। २. दे० 'ड्राप सीन'।

ड्राप सीन—संज्ञा पुं० [अं०] १. नाट्यशाला या थियेटर के रंगमंच के आगे का परदा जो नाटक का एक अंक पूरा होने पर गिराया जाता है। यवनिका।

ड्राफ्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १. मसविदा। मसौदा। खर्रा। जैसे,—अपील का ड्राफ्ट तैयार कर कमिटी में भेज दिया गया। २. चेक। हुंडी।

ड्राफ्ट्समैन—संज्ञा पुं० [अं०] नकशा बनानेवाला। स्थूल मानचित्र प्रस्तुत करनेवाला। जैसे,—ड्राफ्ट्समैन ने मकान का नक्शा इंजीनियर के पास भेजा।

ड्राम—संज्ञा पुं० [अं०] पानी आदि द्रव पदार्थों को नापने का एक अंग्रेजी मान जो तीन माशे के बराबर होता है।

ड्रामा—संज्ञा पुं० [अं०] १. रंगमंच पर पात्रों या नटों का आकृति, हाव भाव, वचन आदि द्वारा किसी घटना या दृश्य का प्रदर्शन। रंगमंच पर किसी घटना या घटनाओं का प्रदर्शन। अभिनय। २ वह रचना जिसमें मानव जीवन का चित्र अंकों और गर्भांकों आदि में चित्रित हो। नाटक।

ड्रिंक—संज्ञा पुं० [अं०] मद्यपान। उ०—कैलाश ने कहा पहले ड्रिंक चले, फिर खाना मँगाया जायगा।—सन्यासी, पृ० १४०।

ड्रिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] बहुत से सिपाहियों या लड़कों को कई प्रकार के क्रम से खड़े होने, चलने, अंग हिलाने आदि की नियमित शिक्षा। कवायद। जैसे,—स्कूल में ड्रिल नहीं होती।

यौ०—ड्रिल मास्टर = कवायद सिखानेवाला शिक्षक।

ड्रेटनाट—संज्ञा पुं० [अं०] जंगी जहाज का एक भेद जो साधारण जंगी जहाजों से बहुत अधिक बड़ा, शक्तिशाली और भीषण होता है।

ड्रेन—संज्ञा पुं० [अं०] नगर के गंदे पानी के निकास का परनाला। मोरी। गंदगी के बहाववाली नाली।

ड्रेस—संज्ञा पुं० [अं०] पोशाक। वेशभूषा।

ड्रेस करना—क्रि० स० [अं० ड्रेस + हिं० करना] घाव में दवा आदि भरकर बाँधना। मरहम पट्टी करना। पत्थर आदि को चिकना और सुडौल करना। ३ बाल छाँटना।

ड्रैगून—संज्ञा पुं० [अं०] १. सवार। सिपाही।

विशेष—पहले ड्रैगून पैदल और सवार दोनों का काम देते थे। पर अब वे सवार ही होते हैं।

२ रिसाले का नौकर। ३. क्रूर या उद्दंड व्यक्ति। जंगली आदमी। ४. पक्षदार साँप। सपक्ष नाग।

ढ

ढ—हिंदी वर्णमाला का चौदहवाँ व्यंजन और टवर्ग का चौथा अक्षर। इसका उच्चारण स्थान मूर्धा है।

ढंक—संज्ञा पुं० [सं० आषाढक, हिं० ढाक] पलाश या खिरल की एक किस्म। उ०—जरी सो धरती ठाँवहि ठाँवाँ। ढंक परास जरे तेहि ठाँवाँ।—पदमावत, पृ० १७।

ढंकनी—संज्ञा पुं० [प्रा० ढक्कण, हिं० ढकना] दे० 'ढक्कन'।

ढंकना—क्रि० स० [सं० छादन, प्रा०भा० ढक्क, ढंक] दे० 'ढकना'। उ०—(क) बिमरल केस पुरुष नहिं अकिय। प्रथीराज देखत सिर ढकिय।—पृ० रा०, ६१। ७१४। (ख) समभि हासि सिर बर तिन ढंकयो।—पृ० रा०, ६१। ७१६।

ढंकेउ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०-ढँकना] ढकना। आच्छादन। उ०—भेद कतेब न खाणी बाणी। सब ढकी तजि आणी।—गोरख०, पृ० २।

ढंख(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक] पलाश। ढाक। उ०—बरुनी बान अस अनी बेधी रन बन ढख। सउजहि तन सब रोवाँ पखिहि तन सब पख।—जायसी (शब्द०)।

ढंग—संज्ञा पुं० [सं० तङ्ग, तङ्गन (= चाल, गति ?)] १ क्रिया। प्रणाली। शैली। ढब। रीति। तौर। तरीका। जैसे,—(क) बोलने चालने का ढंग, बैठने उठने का ढंग। (ख) जिस ढंग से तुम काम करते हो वह बहुत अच्छा है। २. प्रकार। भाँति। तरह। किस्म। ३. रचना। प्रकार। बनावट। गढ़न। ढाँचा। जैसे,—वह गिलास और ही ढंग का है। ४.

अभिप्रायसाधन का मार्ग । युक्ति । उपाय । तदबीर । डौल । जैसे,—कोई ढग ऐसा निकालो जिसमें रुपया मिल जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—निकालना ।—बताना ।

मुहा०—ढग पर चढ़ना = अभिप्रायसाधन के अनुकूल होना । किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ अर्थ सिद्ध हो । जैसे,—उससे भी कुछ रुपया लेना चाहता हूँ, पर वह ढग पर नहीं चढ़ता है । ढग पर लाना = अभिप्राय साधन के अनुकूल करना । किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना जिससे कुछ मतलब निकले । ढंग का = कार्यकुशल । व्यवहार-दक्ष । चतुर । जैसे,—वह बडे ढंग का आदमी है ।

५. चाल ढाल । आचरण । व्यवहार । जैसे,—यह मार खाने का ढग है ।

मुहा०—ढंग बरतना = शिष्टाचार दिखाना । दिखाऊ व्यवहार करना ।

६ धोखा देने की युक्ति । बहाना । हीला । पाखड । जैसे,—यह तुम्हारा ढंग है ।

क्रि० प्र०—रचना ।

७ ऐसी बात जिससे किसी होनेवाली बात का अनुमान हो । लक्षण । आसार । जैसे,—रग ढंग अच्छा नही दिखाई देता । ८. दशा । अवस्था । स्थिति । उ०—नैनन को ढग सो अनग पिचकारिन ते, गातन को रग पीरे पातन तें जानबी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

ढंगउजाड़—संज्ञा पुं० [हिं० ढग + उजाड़] घोड़ों के दुम के नीचे की एक भौंरी जो ऐबों में समझी जाती है ।

ढगी—वि० [हिं० ढंग] चालबाज । चतुर । चालाक ।

ढंटस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढँढरच' । उ०—ढढस करु मन ते दूर, सिर पर साहुब सदा हुजूर ।—गुलाल०, पृ० १३७ ।

ढढार—वि० [देश०] बड़ा ढढ्ढा । बहुत बड़ा और बेढग ।

ढढेरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढिंढोरा' । उ०—ता पाछे राजा जेमलजी ने सगरे ग्राम मे ढढेरा पिटाइ दियो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २५७ ।

ढंढोलना(पु)—क्रि० स० [प्रा० ढढुल्ल, ढढोल(=खोजना)] दे० 'ढँढोरना' । उ०—अह फूटी दिसि पु बरी हुणहुणिया हय थट्ट । ढोलइ धण ढढोलियउ, धीतल सुदर घट्ट ।—ढोला०, दू० ६०२ ।

ढँकना‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढकना', 'ढक्कन' ।

ढँकना¹—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढकना' ।

ढँकना²—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० ढँकनी] दे० 'ढकना' ।

ढँकुली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंकली' ।

ढँग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ढंग] अभिप्राय साधने का उपाय । डौल । दे० 'ढग' । उ०—वाही के जैए बलाय लौं, बालम ! हैं तुम्हे नीको बतावति हौ ढंग ।—देव (शब्द०) ।

ढँगलाना†—क्रि० स० [हिं० ढाल] लुढ़काना ।

ढँगियाना‡—वि० [हिं० ढग + इया (प्रत्य०)] दे० 'ढगी' ।

ढँढरच—संज्ञा पुं० [हिं० ढग + रचना] धोखा देने का आयोजन । पाखड । बहाना । हीला ।

ढँढोर—संज्ञा पुं० [अनु० धायँ धायँ] १. आग की लपट । ज्वाला । लौ । उ०—(क) रहै प्रेम मन उरझा लटा । बिरह ढँढोर परहिं सिर जटा ।—जायसी (शब्द०)।(ख) कथा जरे अगिनि जनु लाए । बिरह ढँढोर जरत न जराए ।—जायसी (शब्द०) २ काले मुँह का बंदर । लगूर ।

ढँढोरची—संज्ञा पुं० [हिं० ढँढोर + फ़ा० ची (प्रत्य०)] ढँढोरा फेरनेवाला । मुनादी फेरनेवाला । उ०—लेकिन रूसकी ओर मोरावियन धर्मप्रचारकों से ढँढोरची मुक्ति सैनिकों की तुलना नही की जा सकती ।—किन्नर०, पृ० ६४ ।

ढँढोरना†—क्रि० स० [हिं० ढूँढना] टटोलकर ढूँढना । हाथ डालकर इधर उधर खोजना । उ०—(क) तेरे लाल मेरो माखन खायो । दुपहर दिवस जानि घर सूनो ढूँढ़ि ढँढोरि आपही आयो ।—सूर (शब्द०) । (ख) बेद पुरान भागवत गीता चारों बरन ढँढोरी—कबीर० श०, भा० १, पृ० ८५ ।

ढँढोरा—संज्ञा पुं० [अनु० ढम+ढोल] १ घोषणा करने का ढोल । डुगडुगी । डौंड़ी ।

मुहा०—ढँढोरा पीटना = ढोल बजाकर चारों ओर जताना । मुनादी करना ।

२ वह घोषणा जो ढोल बजाकर की जाय । मुनादी ।

मुहा०—ढँढोरा फेरना = दे० 'ढढोरा पीटना' ।

ढँढोरिया—संज्ञा पुं० [हिं० ढँढोरा] ढढोरा पीटनेवाला । डुगडुगी बजाकर घोषणा करनेवाला । मुनादी करनेवाला ।

ढँढोलना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढढोरना' उ०—रतन निराला पाइया, जगत ढँढोला बादि ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५ ।

ढँपना¹—क्रि० अ० [हिं० ढकना] किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई न देना । किसी वस्तु के ऊपर से छेक लेने के कारण उसकी ओट मे छिप जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

ढँपना²—संज्ञा पुं० ढाकने की वस्तु । ढक्कन ।

ढ—संज्ञा पुं० [सं०] १ बड़ा ढोल । २. कुत्ता । ३ कुत्ते की पूँछ । ४ ध्वनि । नाद । ५. साँप ।

ढई देना—क्रि० अ० [हिं० धरना ?] किसी के यहाँ किसी काम से पहुँचना और जबतक काम न हो जाय तबतक न हटना । धरना देना ।

ढकई¹—वि० [हिं० ढाका] ढाके का ।

ढकई²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का केला जो ढाके की ओर होता है ।

ढकना¹—संज्ञा पुं० [सं० ढक् (=छिपाना)] [स्त्री० अल्पा० ढकनी] वह वस्तु जिसे ऊपर डाल देने या बैठा देने से नीचे की वस्तु छिप जाय या बद हो जाय । ढक्कन । चपनी ।

ढकना²—क्रि० अ० किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई न देना । छिपना । जैसे—मिठाई कपड़े से ढकी है ।

संयो० क्रि०—जाना ।

ढकना[3]—क्रि० स० दे० 'ढाँकना'।

ढकनिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढकनी'। उ०—सुभग ढकनिया ढाँपि पट जतन राखि छीके समदायो।—सूर (शब्द०)।

ढकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकना] १ ढाँकने की वस्तु। ढक्कन। २. फूल के आकार का एक प्रकार का गोदना जो हथेली के पीछे की ओर गोदा जाता है।

ढकपन्ना—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक+पन्ना(=पत्ता)] पलास पापड़ा।

ढकपेडरु—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

ढकसा†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. सूखी खाँसी में गले से होनेवाला ढन ढन शब्द। २. सूखी खाँसी।

ढका[1]—संज्ञा पुं० [सं० आढक] तीन सेर की एक तौल या बाट।

ढका[2]—संज्ञा पुं० [अ० डाक] घाट। जहाज ठहरने का स्थान। (लश०)।

ढका(पु)†[3]—संज्ञा पुं० [सं० ढक्का] बड़ा ढोल। उ०—नदति दुंदुभि ढका बदन मारु हुका, चलत लागत धका कहुत आगे।—सूदन (शब्द०)।

ढका[4]—संज्ञा पुं० [अनु०] धक्का। टक्कर। उ०—(क) ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चढ़ि गढ़ मढ़ दृढ़ कोट के कँगूरे कोपि नेकु ढका देहैं ढेलन की ढेरी सी।—तुलसी (शब्द०)।

ढकिल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकेलना] एक दूसरे को ढकेलते हुए वेग के साथ धावा। चढ़ाई। आक्रमण। उ०—ढकिल करी सब ते अधिकाई। ओड़ी गुरु लोगन की धाई।—लाल कवि (शब्द०)।

ढकेलना—क्रि० सं० [हिं० धक्का] १ धक्के से गिराना। ठेलकर आगे की ओर गिराना।

संयो० क्रि०—देना।

२ धक्के से हटाना। ठेलकर सरकना। जैसे,—भीड़ को पीछे ढकेलो।

ढकेला ढकेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकेलना] ठेलमठेला। आपस में धक्का धुक्की।

क्रि० प्र०—करना।

ढकोरना†—क्रि० स० [अनु०] पी जाना। दे० 'ढकोसना'।

ढकोसना—क्रि० स० [अनु० ढक ढक] एकबारगी पीना। बहुत खानापीना। जैसे,—इतना दूध मत ढकोस लो कि कै हो जाय।

संयो० क्रि०—जाना। —लेना।

ढकोसला—संज्ञा पुं० [हिं० ढग+सं० कौशल] ऐसा आयोजन जिससे लोगों को धोखा हो। धोखा देने का या मतलब साधने का ढंग। आडंबर। मिथ्या जाल। कपट व्यवहार। पाखंड। उ०—इन ढकोसलों में क्या तथ्य है।—कंकाल, पृ० १०४। (ख) मगर यह इश्क सब ढकोसला ही ढकोसला है।—फिसाना०, भा० १, पृ० ११।

क्रि० प्र०—करना। —फैलाना।

ढक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम। (कदाचित् 'ढाका')। २. विशाल आराधना मंदिर। बड़ा मंदिर (को०)।

ढक्कन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढाकने की वस्तु। वह वस्तु जिसे ऊपर से डाल देने या बैठा देने से कोई वस्तु छिप जाय या बंद हो जाय। जैसे, डिबिया का ढक्कन, बरतन का ढक्कन। २. (दरवाजा आदि) बंद करना या ढक देना (को०)।

ढक्का[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक बड़ा ढोल। २. नगाड़ा। डंका। उ०—शंख भेरी पणव मुरज ढक्का बाद धनित। घटा नाद बिंब बिंब गुजरत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६०५। २. डमरू। ३. छिपाव। दुराव (को०)। ४ अदर्शन। लोप (को०)।

ढक्का(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ढका[4]'।

ढक्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की उपासना में तारा देवी का एक नाम [को०]।

ढक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाल] पहाड़ की ढाल जिससे होकर लोग चढ़ते उतरते हैं। -(पंजाब)।

ढगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल में एक मात्रिक गण जो तीन मात्राओं का होता है। इसके तीन भेद हो सकते हैं, यथा—ıS, Sı, ııı इनमें से पहले की संज्ञा रसवास और ध्वजा, दूसरे की पवन, नंद, ग्वाल, ताल और तीसरे की वलय है।

ढचर—संज्ञा पुं० [हिं० ढाँचा] १. किसी वस्तु को बनाने या ठीक करने का सामान या ढाँचा। आयोजन और सामान।

क्रि० प्र०—फैलाना। बाँधना।

२. टंटा। बखेड़ा। जंजाल। धंधा। कारबार। ३ आडंबर। झूठा आयोजन। ढकोसला।

क्रि० प्र०—फैलाना।

४. बहुत दुबला पतला और बूढ़ा।

ढटींगड़—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर (=मोटा आदमी), हिं० धींग, धींगड़ा] १. बड़े डीलडौल का। ढींग। जैसे,—इतने बड़े ढटींगड़ हुए पर कुछ शऊर न हुआ। २. हृष्ट पुष्ट। मुस्टंडा। मोटा ताजा।

ढटींगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढटींगड़'।

ढटींगर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढटींगड़'।

ढट्ठा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ढाढ़ या देश०] वह भारी साफा या मुरेठा जो सिर के अतिरिक्त डाढ़ी और कानों को भी ढाँके हो।

ढट्ठा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० डाट] छेद या मुँह कसकर बंद करने की वस्तु। डाट। ठेंपी। काग।

ढट्ठी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाढ़] डाढ़ी बाँधने की पट्टी।

ढट्ठी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाट] किसी छेद को बंद करने की वस्तु। डाट। ठेंपी।

ढड़काना(पु)—क्रि० स० [हिं०] आगे बढ़ाना। जोर लगाकर ठेलना। ढकावा। उ०—गाड़ी बाकी मार्ग में, बछड़न करी न पेश। अब गाड़ी ढड़काय दे, धवल धग हिरदेश।—शुक्ल अभि० ग्रं० (इति०), पृ० ८८।

ढड्ढा[1]—वि० [देश०] बहुत बड़ा। आवश्यकता से अधिक बड़ा। बड़ा और बेढंगा।

ढड्ढा²—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] १ ढाँचा। अंगों की वह स्थूल योजना जो किसी वस्तु की रचना के प्रारंभ में की जाती है।
क्रि० प्र०—खड़ा करना।
२. आडंबर। दिखावट का सामान। झूठा ठाट बाट।
क्रि० प्र०—खड़ा करना।

ढड्ढो—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढड्ढा] १. बुड्ढी स्त्री। वह बूढ़ी स्त्री जिसके शरीर में हड्डी का ढाँचा ही रह गया हो। २ बकवादिन स्त्री। ३ मटमैले रंग की एक चिड़िया जिसकी चोंच पीली होती है। यह बहुत लड़ती और चिल्लाती है। चरखी।
मुहा०—ढड्ढो का ढड्ढोवाला=मूर्ख। बेवकूफ।

ढढ़ेसुरी†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाढ+सं० ईश्वर] दे० 'ठाढेश्वरी'। उ०—कोउ बाँह को उठाय ढढेसुरी कहाइ, जाइ कोउ तो मवन कोउ नगन बिचार है।—भीखा श०, पृ० ५५।

ढढ्ढर—संज्ञा पुं०[हिं०]शरीर। देह। टट्टर। उ०—चहुआन तुच्छ ढढ्ढर बहिय ढुरिग मीर बिय सिर ढरयौ।—पृ० रा०, १०।२७।

ढनढन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढन ढन का शब्द।
क्रि० प्र०—करना।

ढनक†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढोल, नगाड़ा, आदि बाजों की ध्वनि। उ०—पैज रुपनि दुहुँ ओर चोप चुहल चाचरि सोर ढोल ढनक घोप मंगल सुनत सफल होत कान।—घनानंद, पृ० ४०४।

ढनमनाना†—क्रि० अ० [अनु०] लुढ़कना। ढुलकना। उ०—मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी।—तुलसी (शब्द०)।

ढप†—संज्ञा पुं० [अ० दफ़, हिं० डफ] दे० 'डफ'।

ढपना¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढाँपना] ढाकने की वस्तु। ढक्कन।

ढपना²—क्रि० अ० [हिं० ढकना] ढका होना। उ०—लसतु सेत सारी ढप्यो, तरल तरौना कान। परयौ मनो सुरसरि सलिल रवि प्रतिबिंबु बिहान।—बिहारी (शब्द०)।

ढपना³—क्रि० स० [हिं० ढापना] ढाकना। ऊपर से ओढ़ाना। छिपाना।

ढपरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुपहरिया'। उ०—चार पहर पैंडा माँ रगड़ो खरी ढपरिया पैहौं।—कबीर श०, भा० पृ० २२।

ढपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाँपना] चूड़ीवालों की अँगीठी का ढकना।

ढपला‡—संज्ञा पुं० [अ० दफ़, हिं० डफ, ढप] दे० 'डफला'।

ढपली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डफला] दे० 'डफली'।

ढपील†—वि० [हिं० ढाँपना] आच्छादित करनेवाली। ढापनेवाली। उ०—यौवन के वसंत स्मृति को उपमा पेंडे की काली, बोझिल, ढपील, ढाल से देना अनुचित प्रतीत होता है।—आधुनिक०, पृ० २३।

ढप्पू—वि० [देश०] बहुत बड़ा। ढड्ढा।

ढफ‡—संज्ञा पुं० [हिं० डफ] दे० 'डफ'। उ०—रुंज मुरज ढफ ताल बाँसुरी, झालर की झंकार।—सूर (शब्द०)।

ढफला—संज्ञा पुं० [हिं० डफला] [स्त्री० ढफली] दे० 'डफला'। उ०—डमकत ढोल ढफला अपार। धमकंत धरनि भौसा फुंकार।—सुजान०, पृ० १८।

ढफार†—संज्ञा पुं० [अनु०] चिग्घाड़। जोर से रोने या चिल्लाने का शब्द। डकार। उ०—ढव याकुब सु छाड़ि ढफारा। कहै लाग का तोर बिगारा।—हिंदी प्रेम०, पृ० २४५।

ढब—संज्ञा पुं०[सं० धव(=चलना, गति)या देश०] १. क्रियाप्रणाली। ढंग। रीति। तौर तरीका। जैसे, काम करने का ढब। उ०—ताकन को ढब नाहिं तकन की गति है न्यारी।—पलटू०, पृ० ४४। २. प्रकार। भाँति। तरह। किस्म। जैसे,—वह न जाने किस ढब का आदमी है। ३. रचना-प्रकार। बनावट। गढन। ढाँचा। जैसे,—वह गिलास और ही ढब का है। ४ अभिप्रायसाधन का मार्ग। युक्ति। उपाय। तदबीर। जैसे,—किसी ढब से रुपया निकालना चाहिए।
मुहा०—ढब पर चढ़ना=अभिप्रायसाधन के अनुकूल होना। किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ अर्थ सिद्ध हो। किसी का ऐसी अवस्था में होना जिससे कुछ मतलब निकले। जैसे,—कहीं यह ढब पर चढ़ गया तो बहुत काम होगा। ढब पर लगाना या लाना=अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना। किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना कि उससे कुछ अर्थ सिद्ध हो। अपने मतलब का बनाना।
५ गुण और स्वभाव। प्रकृति। आदत। बान। टेव।
मुहा०—ढब डालना=(१) आदत डालना। अभ्यस्त करना। (२) अच्छी आदत डालना। आचार व्यवहार की शिक्षा देना। शऊर सिखाना। ढब पड़ना=आदत होना। बान या टेव पड़ना।

ढबका(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] उपाय। युक्ति। उ०—चेतनि असवार ग्यांन गुरु करि और तजो सब ढबका।—गोरख०, पृ० १०३।

ढबरा†—वि० [हिं० डाबर] दे० 'डाबर'।

ढबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढिबरी] मिट्टी का तेल जलाने की गुम्मीदार डिबिया। ढिबरी। उ०—धुँआ अधिक देती है, टिन की ढबरी, कम करती उजियाला।—ग्राम्या, पृ० ६५।

ढबीला†—वि० [हिं० ढब+ईला (प्रत्य०)] ढब का। ढबवाला। चालाक। चतुर।

ढबुआ†¹—संज्ञा पुं० [देश०] खेतों के मचान के ऊपर का छप्पर।

ढबुआ²—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का ताँबे का अप्रचलित देसी सिक्का जिसकी चलन बंद कर दी गई है। २. पैसा।

ढबैला—वि० [हिं० डाबर+एला (प्रत्य०)] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी)। मटमैला। गँदला।

ढमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढम ढम शब्द।

ढमकना—क्रि० अ० [अनु०] ढम ढम शब्द होना। ढम ढम की आवाज होना।

ढमकाना—क्रि० स० [हिं० ढमकना] १. ढोल, नगाड़ा आदि वाद्य बजाना। २. ढम ढम शब्द उत्पन्न करना।

ढमढम—संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल का अथवा नगारे का शब्द।

ढमलाना¹—क्रि० अ० [देश०] लुढ़कना।

ढमलाना²—क्रि० स० लुढ़काना।

ढयना—क्रि० अ० [सं० ध्वंसन, हिं० ढहना] १. किसी दीवार, मकान आदि का गिरना। ध्वस्त होना। २ पस्त होना। शिथिल होना। उ०—ढीले से ढए से फिरत ऐसे कौन पै ढहे हौ।—नद० ग्रं०, पृ० ३५६।

सयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा० – ढय पड़ना = उतर पड़ना। सहसा आकर टिक जाना। एकबारगी आकर डेरा डाल देना (व्यंग्य)।

ढरकना†—क्रि० अ० [हिं० ढार या ढाल] १ पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना। गिरकर बह जाना। उ०—वाके पानी पत्र न लागै ढरकि चलै जस पारा हो।—कबीर श०, भा० १, पृ० २७।

सयो० क्रि०—जाना।—पडना।

२. नीचे की ओर जाना। उ०—(क) सकल सनेह शिथिल रघुवर के। गए कोस दुइ दिनकर ढरके।—तुलसी (शब्द०)। (ख) परसत भोजन प्रातहि ते सब। रवि माथे ते ढरकि गयो अब।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—दिन ढरकना = सूर्यास्त होना। दिन डूबना।

३ आराम करना। शय्या पर शयन करना। लेटना।

ढरका—सज्ञा पुं० [हिं० ढरकना] १. आँख का एक रोग जिसमें आँख से आँसू बहा करता है। २ आँख से अश्रु बहना।

क्रि० प्र०—लगना।

२ सिरे पर कलम की तरह छीली हुई बाँस की नली जिससे चौपायों के गले मे दवा उतारते है। बाँस की नली से चौपायों के गले में दवा उतारने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना।

ढरकाना†—क्रि० स० [हिं० ढरकना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिराकर बहाना। जैसे, पानी ढरकाना।

संयो० क्रि०—देना।

ढरकी—सज्ञा स्त्री० [हिं० ढरकना] जुलाहों का एक औजार जिससे वे लोग बाने का सूत फेंकते हैं। उ०—सबद ढरकी चलै नाहि छीनै।—पलटू०, पृ० २५।

विशेष—ढरकी की आकृति करताल की सी होती है और यह भीतर से पोली रहती है। खाली स्थान में एक काँटे पर लपेटा हुआ सूत रखा रहता है। जब ढरकी को इधर से उधर फेंकते हैं तब उसमें से सूत खुलकर बाने में भरता जाता है। इसे भरनी भी कहते हैं।

यौ०—जुलाहे की ढरकी = अस्थिरमति आदमी। कभी इधर कभी उधर होनेवाला व्यक्ति।

ढरकीला—वि० [हिं० ढरकना + ईला (प्रत्य०)] बह जानेवाला। ढरक जानेवाला। उ०—रजनी के श्याम कपोलो पर ढरकीले श्रम के कन।—यामा, पृ० १६।

ढरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० ढलना] १. दे० 'ढलना'। २. बहना। प्रवाहित होना। उ०—(क) मलिन कुसुम तनु चीरे, करतल कमल नयन ढर नीरे।—विद्यापति, पृ० ५५४। (ख) ऊपर तैं दधि दूध, सीसन गागरि गन ढरै।—नद० ग्रं०, पृ० ३३४।

ढरनि(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० ढरना] १ गिरने या पड़ने की क्रिया। पतन। उ०—सखो बचन सुनि कौसिला लखि सुंदर पासे ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। २. हिलने डोलने की क्रिया। गति। स्पदन। उ०—कठसिरी दुलरी हीरन की नासा मुक्ता ढरनि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। ३ चित्त की प्रवृत्ति। झुकाव। उ०—रिस औ रुचि हौं समुझि देखिहौं वाके मन की ढरनि, वाकी भावती बात चलाय हौं।—सूर (शब्द०)। ४. किसी की दशा पर हृदय द्रवीभूत होने की क्रिया। दीन दशा दूर करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति। स्वाभाविक करुणा। दयाशीलता। सहज कृपालुता। उ०—(क) राम नाम सो प्रतीत प्रीति राखे कबहुँक तुलसी ढरैंगे राम अपनी ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कृपासिंधु कोसल धनी सरनागत पालक ढरनि अपनी ढरिए।—तुलसी (शब्द०)।

ढरहरना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० ढरना] खसकना। सरकना। ढलना। झुकना। उ०—दीनदयाल गोपाल गोपपति गावत गुण आवत ढिग ढरहरि।—सूर (शब्द०)।

ढरहरा†—वि० [हिं० ढार + हार (प्रत्य०)] [स्त्री० ढरहरी] ढालुवाँ। ढालु।

ढरहरी[1]—सज्ञा स्त्री० [देश०] पकौड़ी। उ०—रायभोग लियो भात पसाई। मूँग ढरहरी हींग लगाई।—सूर (शब्द०)।

ढरहरी†[2]—वि० स्त्री० [हिं० ढरहरा] ढालु। ढालुवाँ।

ढराई†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढलाई'।

ढराना†—क्रि० स० [हिं०] १. दे० 'ढलाना'। उ०—खैंचि खराद चढ़ाए नहीं न सुढार के ढारनि मध्य ढराए।—सरदार (शब्द०)। २ दे० 'ढरकाना'।

ढरारा—वि० [हिं० ढार] [वि०स्त्री० ढरारी] १. ढलनेवाला। ढरकनेवाला। गिरकर बह जानेवाला। २ लुढ़कनेवाला। थोड़े आघात से पृथ्वी पर आपसे आप सरकनेवाला। जैसे, गोली।

यौ०—ढरारा रवा = गहना बनाने मे सोने चाँदी का वह गोल दाना जो जमीन पर रखने से लुढ़क जाय।

३ शीघ्र प्रवृत्त होनेवाला। झुक पड़नेवाला। आकर्षित होनेवाला। चलायमान होनेवाला। उ०—जोबन रग रँगीली, सोने से ढरारे नैना, कंठपोत मखतूली।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

ढरैया†—सज्ञा पुं० [हिं० ढारना] १ ढालनेवाला। २ ढलनेवाला। किसी ओर प्रवृत्त होनेवाला।

ढर्रा—सज्ञा पुं० [हिं० या देश०] १ मार्ग। रास्ता। पथ। २ किसी कार्य के निर्वाह की प्रणाली। शैली। ढंग। तरीका। ३. युक्ति। उपाय। तदबीर। जैसे,—कोई ढर्रा ऐसा निकालो जिसमें इन्हें भी कुछ लाभ हो जाय।

क्रि० प्र०—निकालना।

४ आचरणपद्धति। चाल चलन। जैसे,—यह लड़का बिगड़ रहा है, इसे अच्छे ढर्रे पर लगाओ।

ढलकना—क्रि० अ० [हिं० ढाल] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना।

संयो० क्रि०—जाना।

२ लुढ़कना। नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए सरकना। ३ हिलना। उ०—कुंडल झलक ढलक सीसनि की।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ३८३।

ढलका—संज्ञा पुं० [हिं० ढलकना] आँख का एक रोग जिसमें आँख से बराबर पानी बहा करता है। ढरका।

ढलकाना—क्रि० स० [हिं० ढलकना] १ पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। लुढकाना।

संयो० क्रि०—देना।

ढलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढरकी'।

ढलना—क्रि० अ० [हिं० ढाल] १ पानी या और किसी द्रव पदार्थ का नीचे की ओर सरक जाना। ढरकना। गिरकर बहना। जैसे, पत्ते पर की बूँद का ढलना। उ०—अधरन चुवाइ लेउँ सिगरो रस तनिको न जान देउँ इत उत ढरि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—जवानी ढलना = युवावस्था का जाता रहना। छाती ढलना = स्तनों का लटक जाना। जोवन ढलना = युवावस्था के चिह्नों का जाता रहना। जवानी का उतार होना। दिन ढलना = सूर्यास्त होना। संध्या होना। दिन ढले = संध्या को। शाम को। सूरज या चाँद ढलना = सूर्य या चंद्रमा का अस्त होना।

२ बीतना। गुजरना। निकल जाना। उ०—काहे न प्रगट करो जदुपति सों दुसह दोष की अवधि गई ढरि।—सूर (शब्द०)। ३. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से गिरना। पानी, रस आदि का एक बरतन से दूसरे बरतन में डाला जाना। उड़ेला जाना।

मुहा०—बोतल ढलना = खूब शराब पिया जाना। मद्य पिया जाना। शराब ढलना = मद्य पिया जाना।

४ लुढ़कना। ५. झुकना। अनुकूल होना। मान जाना। उ०—मुसलमान इसपर ढल भी गए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४५। ६ किसी सूत या डोरी के रूप की वस्तु का इधर से उधर हिलना। लहर खाकर इधर उधर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर ढलना। ७ किसी ओर आकर्षित होना। प्रवृत्त होना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

८ अनुकूल होना। प्रसन्न होना। रीझना। उ०—देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के, भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

९. पिघली या गली हुई सामग्री से साँचे के द्वारा बनना। साँचे में ढालकर बनाया जाना। ढाला जाना। जैसे खिलौने ढलना, बरतन ढलना।

मुहा०—साँचे में ढला हुआ = बहुत सुंदर और सुडौल।

ढलमल—वि० [अनु०] १ श्रांत। शिथिल। २. अस्थिर। चंचल। कभी इधर कभी उधर होना।

ढलवाँ—वि० [हिं० ढालना] जो पिघली हुई धातु आदि को साँचे में ढालकर बनाया गया हो। जैसे, ढलवाँ बरतन।

ढलवाइक†—संज्ञा पुं० [सं० ढाल + वाहक] ढालवाले सिपाही। ढाल धारण करनेवाले सैनिक। ढलैत। उ०—कोटि धनुद्धर धावधि पायक। लख्ख सख्ख चलिअउँ ढलवाइक।—कीर्ति०, पृ० ८८।

ढलवाना—क्रि० स० [हिं० ढालना का प्रे०रूप] ढालने का काम कराना।

ढलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढालना] १ साँचे में ढालकर बरतन आदि बनाने का काम। ढालने का काम। २. ढालने की मजदूरी।

ढलान¹—वि० [हिं० ढाल] दे० 'ढालवाँ'

ढलान²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढालना] ढालने का काम। ढलाई।

ढलाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढलवाना'। उ०—नाम अगर पूछे कोई तो कहना बस पीनेवाला। काम, ढालना और ढलाना, सबको मदिरा का प्याला।—मधुबाला, पृ० ८४।

ढलुवाँ—वि० [हिं०] १ दे० 'ढलवाँ'। २, दे० 'ढालवाँ'।

ढलैत—संज्ञा पुं० [हिं० ढाल] ढाल बाँधनेवाला। सिपाही।

ढलैया†—संज्ञा पुं० [हिं० ढालना] धातु आदि को ढालनेवाला कारीगर।

ढवका†—संज्ञा पुं० [देश० ?] धोखा। उ०—ढूँढे चौपडि बुधि मिलि जाई। ढवका तब काहे को खाई।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २२२।

ढवरी(पु)—[देश०] धुन। ढोरी। लौ। लगन। रट। दे० 'ढोरी'। उ०—सूरदास गोपी पड़ भागी। हरि दरसन की ढवरी लागी।—सूर (शब्द०)।

ढसक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में गले से निकलता है। २. सूखी खाँसी जिसमें गले से ठन ठन शब्द निकलता है।

ढहना—क्रि० अ० [सं० ध्वसन या वह] १ दीवार, मकान आदि का गिर पड़ना। ध्वस्त होना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. नष्ट होना। मिट जाना। उ०—तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो, कोल कलमल्यो ढहि कमठ को बल गो।—तुलसी (शब्द०)।

ढहरना†—क्रि० अ० [हिं० ढार] १ लुढ़कना। गिरना। २ (किसी की ओर) गिरना झुकना या अनुकूल होना। उ०—ढीले से ढए से फिरत ऐसे कौन पै ढहे हो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५६।

ढहराना†—क्रि० स० [हिं० ढार] १ लुढ़काना। २ सूप के अन्न में से गोल दाने की ककड़ी, मिट्टी आदि को लुढ़काकर अलग करना। पछोरना। फटकना।

ढहरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] डेहरी। देहली। दहलीज। उ०—सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहु टेकत ढहरि।—सूर (शब्द०)।

ढहरी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का बरतन। मटका। उ०—डगर न देत काहुहि फोरि डारत ढहरि।—सूर (शब्द०)।

ढहवाना—क्रि० स० [हिं० ढहाना का प्रे०रूप] ढहराने का काम करना। गिरवाना।

ढहाना—क्रि० स० [सं० ध्वंसन या दह्] दीवार मकान आदि गिराना। ध्वस्त करना। उ०—एक ही बान को, पाषान को कोट सब हुतो चहुँ ओर, सो दियो ढहाई।—सूर (शब्द०)।

ढहावना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढहाना'। उ०—तोपै वई फेरि अति मारी। मदर मेरु ढहावन हारी।—हम्मीर०, पृ० ३०।

ढाँक—संज्ञा पुं० [देश०] १. कुश्ती के एक पेंच का नाम। २. पलाश। ढाक।

ढाँकना—क्रि० स० [सं० ढक(=छिपाना)] १ किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के इस प्रकार नीचे करना जिसमें वह दिखाई न दे या उसपर गर्द आदि न पड़े। ऊपर से कोई वस्तु फैला या डालकर (किसी वस्तु को) ओट में करना। कोई वस्तु ऊपर से डालकर छिपाना। जैसे,—(क) पानी का बरतन खुला मत छोड़ो, ढाँक दो। (ख) मिठाई को कपड़े से ढाँक दो।

संयो० क्रि०—देना।

२. इस प्रकार ऊपर डालना या फैलाना जिसमें कोई वस्तु नीचे छिप जाय। जैसे,—इसपर कपड़ा ढाँक दो।

संयो० क्रि०—देना।

ढाँखा†—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक] दे० 'ढाक'। उ०—तरिवर झरहिं झरहिं बन ढाँखा। भई अनपत्त फूलि कर साखा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५६।

ढाँगा†—वि० [देश०] दे० 'ढालुवाँ'।

ढाँच—संज्ञा पुं० [हिं० ढाँचा] दे० 'ढाँचा'।

ढाँचा—संज्ञा पुं० [सं० देश० या हिं० ठाट] १. किसी वस्तु की रचना की प्रारंभिक अवस्था में स्थूल रूप से सयोजित अंगों की समष्टि। किसी चीज को बनाने के पहले परस्पर जोड़ जाड़कर बैठाए हुए उसके भिन्न भिन्न भाग जिनसे उस वस्तु का कुछ आकार खड़ा हो जाता है। ठाट। टट्टर। डौल। जैसे,—अभी तो इस पालकी का ढाँचा खड़ा हुआ है, तख्ते आदि नहीं जड़े गए हैं।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—बनाना।

२. भिन्न भिन्न रूपों से परस्पर इस प्रकार जोड़े हुए लकड़ी आदि के बल्ले या छड़ कि उनमें बीच में कोई वस्तु जमाई या जड़ी जा सके। जैसे, चौखटा, बिना बुनी चारपाई, कुरसी आदि। ३. पजर। ठटरी। ४ चार लकड़ियों का बना हुआ वह खड़ा चौखटा जिसमें जुलाहे 'नचनी' लटकाते हैं। ५ रचनाप्रकार। गढ़न। बनावट। जैसे,—इस गिलास का ढाँचा बहुत अच्छा है। ६ प्रकार। भाँति। तरह। जैसे,—वह न जाने किस ढाँचे का आदमी है।

ढाँढा†—वि० [देशी ढढ (=निकम्मा। कपटी)] कपटी। तुच्छ। पशु। नीच। उ०—रे ढाँढा करि छोहड़ी करइ करहाँरी काणि।—ढोला० (परि०२), पृ० २९९।

ढाँपना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढाँकना'। उ०—श्यामा हू तन पुलकित पल्लव अगुरिन मुख निज ढाँपि।—श्यामा०, पृ० १०७।

ढाँस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह 'ठन/ठन' शब्द जो सूखी खाँसी आने पर गले से निकलता है। ठसक।

ढाँसना—क्रि० अ० [हिं० ढाँस] सूखी खाँसी खाँसना।

ढाँसी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाँस] सूखी खाँसी।

ढाई[1]—वि० [सं० अर्द्धद्वितीय, प्रा० अड्ढाइय, हिं० अढ़ाई] दो और आधा। जो गिनती में दो से आधा अधिक हो। उ०—ऐसी उनकी गुफ्तगू थी समझते। वह अपनी कहते थे, यह अपने ढाई चावल गला रहे थे।—किसाना०, भा० ३, पृ० २४२।

मुहा०—ढाई घड़ी की आना = चटपट मौत आना। (स्त्रियों का कोसना) जैसे,—तुझे ढाई घड़ी की आवे। ढाई चुल्लू लहू पीना = मार डालना। कठिन दंड देना (क्रोधवाक्य)। जैसे,—तेरा ढाई चुल्लू लहू पीऊँ तब मुझे कल होगी। ढाई दिन की बादशाहत करना = (१) थोड़े दिनों के लिये खूब ऐश्वर्य भोगना। (२) दूल्हा बनना।

ढाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाना] १. लड़कों का एक खेल जिसे वे कौड़ियों से खेलते हैं। इसमें कौड़ियों का समूह एक घेरे में रखकर उसे गोलियों से मारते हैं। २. वह कौड़ी जो इस खेल में रखी जाती है।

ढाक[1]—संज्ञा पुं० [सं० आषाढक (=पलाश)] १. पलाश का पेड़। छिउला। छीउल। उ०—आनदघन ब्रजजीवन जेंवत हिलमिलि ग्वार तोरि पतानि ढाक।—घनानद, पृ० ४७३।

मुहा०—ढाक के तीन पात = सदा एक सा निर्धन। कभी भरा पूरा नहीं।—(निर्धन मनुष्य के संबंध मे बोलते हैं)। ढाक तले की फूहड़, महुए तले की सुघड़ = जिसके पास धन नहीं रहता वह निर्गुणी, और धनवाला सर्वगुणसपन्न समझा जाता है।

२ कुश्ती का एक पेच। दे० 'ढाँक'। उ०—उस्ताद सम्हले रहते हैं। मगर जोर वे मनोहर के जैसे दो तीन को करा सकते हैं। बस्ती, उतार, लोकान, पट, ढाक, कलाजग, विस्से आदि दाँव चले और कटे।—काने०, पृ० ४।

ढाक[2]—संज्ञा पुं० [सं० ढक्का] लड़ाई का बड़ा ढोल। उ०—गोमुख, ढाक, ढोल पणवानक। बाजत रव अति होत भयानक।—सबल (शब्द०)।

ढाकन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढक्कन'।

ढाकना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढाँकना'।

ढाका—संज्ञा पुं० [सं० ढक्क] पुराने समय मे महीन सूती कपड़ों के लिये प्रसिद्ध पूर्वी बंगाल का एक नगर। जैसे, ढाके की चद्दर, ढाके की मलमल।

ढाकापाटन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फूलदार महीन कपड़ा।

ढाकेवाल पटेल—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक + पटेल (=पटी नाव)] एक प्रकार की पूरबी नाव जिसके ऊपर बराबर छप्पर छाया रहता है। छप्पर के नीचे बैठकर माँझी नाव खेते हैं।

ढाटा—संज्ञा पुं० [हिं० ढाढ़ी] १. कपड़े की वह पट्टी जिससे डाढ़ी बाँधी जाती है।

क्रि० प्र०—बांधना।

२. वह बड़ा साफा जिसका एक फेंट डाढ़ी और गाल से होता हुआ जाता है। ३. वह कपड़ा जिससे मुरदे का मुँह इसलिये बाँध देते हैं जिससे कफन सरकने से मुँह खुल न जाय।

ढाठा—संज्ञा पुं० [हिं० डाढ़ी] दे० 'ढाटा'। उ०—चारों ने खाना खाया और ढाठे बांधा, बांधकर तलवारें लटकाकर चले।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४४।

ढाड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ चिग्घाड़। चीख। गरज (बाघ, सिंह आदि की)। दे० 'दहाड़'। २ चिल्लाहट।

मुहा०—ढाड़ मारना = चिल्लाकर रोना।

विशेष—दे० 'धाड़'।

ढाड़सा—संज्ञा पुं० [सं० दृढ] दे० 'ढाढस'।

ढाड़ी—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डाढ़ी'। उ०—धुन किसी ढाड़ी बच्चे से पूछिए। मैं धुन उन नहीं जानता।—फिसाना०, भा० १, पृ० २।

ढाढ़¹—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० धाड़] चिल्लाहट। उ०—क्यों भला काम लें न ढाढ़स से। क्यों लगे ढाढ़ मारकर रोने।—चुभते०, पृ० ५२।

ढाढ़(ढ)ा²—संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का बाजा जिसे ढाढ़ी बजाते हैं। उ०—ढाढ़िनि मेरी नाचै गावै हौं हूँ ढाढ़ बजाऊँ।—सूर०, १०।३७।

ढाढ़ना—क्रि० स० [हिं० डाढ़ना] दे० 'डाढना'। उ०—एक परे गाढ़े, एक ढाढ़त ही काढ़े, एक देखत हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।—तुलसी (शब्द०)।

ढाढ़स—संज्ञा पुं० [सं० दृढ़, प्रा० डिढ] १ संकट, कठिनाई या विपत्ति के समय चित्त की स्थिरता। धैर्य। धीरज। शांति। आश्वासन। सांत्वना। तसल्ली। उ०—क्यों भला काम लें न ढाढ़स से। क्यों लगे ढाढ़ मारकर रोने।—चुभते०, पृ० ५२।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ढाढ़स देना या बांधना = वचनों से दुखी चित्त को शांत करना। तसल्ली देना।

२. दृढ़ साहस। हिम्मत।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ढाढ़स बाँधना = साहस उत्पन्न करना। उत्साहित करना।

ढाढ़िन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाढ़ी] ढाढ़ी की स्त्री। उ०—कृष्ण जनम सुनि अपने पति सों हँसि ढाढ़िन यों बोली जू।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६।

ढाढी—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ढाढ़िन] एक प्रकार के नीच गवैए जो जन्मोत्सव के अवसर पर लोगों के यहाँ जाकर बधाई आदि के गीत गाते हैं। उ०—ढाढ़ी और ढाढ़िनि गावैं हरि के ठाढ़े बजावैं हरषि असीस देत मस्तक नवाई कै।—सूर (शब्द०)।

ढाढ़ौन—संज्ञा पुं० [सं० ढिण्ढिणी] जल सिरिस का पेड़।

विशेष—यह पेड़ पानी के किनारे होता है और जंगली सिरिस से कुछ छोटा होता है। वैद्यक के अनुसार यह त्रिदोष, कफ, कुष्ट और बवासीर को दूर करता है।

ढाण¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऊँट की तेज चाल। गति। उ०—क्रम क्रम, ढोला पथ कर, ढाण म चूके ढाल। आ मारू बीजी महल, आवइ भूठ एवाल।—ढोला०, दू० ४४०।

मुहा०—ढाण घालना = तेज चलाना। उ०—ऊंट ने चढ़ता ही ढाण नहीं घालणो।—ढोला० (परि० १), पृ० २५४।

ढाना—क्रि० स० [हिं० ढाहना] १. दीवार, मकान आदि को गिराना। ऊँची उठी हुई वस्तु को तोड़ फोड़कर गिराना। ध्वस्त करना। उ०—जब मैं बनाकर प्रस्तुत करता हूँ तब वह आकर ढा जाता है।—कबीर म०, पृ० ७६।

संयो० क्रि०—जाना।—देना।

२. गिराना। गिराकर जमीन पर डालना। जैसे, किसी को मारकर ढाना।

संयो० क्रि०—देना।

ढापना—क्रि० स० [देश०] दे० 'ढाँपना'।

ढाबर¹—वि० [हिं० डाबर (= गड्ढा)] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी)। मटमैला। गंदला। उ०—भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी।—तुलसी (शब्द०)।

ढाबा—संज्ञा पुं० [देश०] १ ओलती। २. जाल। ३. परछत्ती। ४ रोटी आदि की दूकान। वह दूकान जहाँ लोग दाम देकर भोजन करते हैं।

ढामक—संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल नगारे आदि का शब्द। उ०—डमकंत ढोल डमाक डफला तबल ढामक जोर।—सूदन (शब्द०)। ५. बाँस, मिट्टी आदि से बनी कच्ची छत।

ढामना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।

ढामरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसिनी। हंसी। मादा हंस [को०]

ढार¹—संज्ञा पुं० [सं० धार या सं० अवधार, *प्रा० ओढार>ढार] १ वह स्थान जो बराबर क्रमशः नीचा होता गया हो और जिसपर से होकर कोई वस्तु नीचे फिसल या बह सके। उतार। उ०—सकुच सुरत आरंभ ही बिछुरी लाज लजाय। ढरकि ढार ढुरि ढिग भई ढीठ ढिठाई आय।—बिहारी (शब्द०)। २ पथ। मार्ग। प्रणाली। उ०—(क) सब तें पावैं अपने ढार। मीत मिलन दुर्लभ संसार।—नंद० ग्रं०, पृ० २१६। (ख) ढेर ढार तेही ढरत, दूजे ढार ढरै न। क्यो हूँ आनन आन सौं नैना लागत नैन।—बिहारी (शब्द०)। ३. प्रकार। ढाँचा। ढंग। रचना। बनावट। उ०—(क) दृग धरकौहैं अधखुले, देह थकौहैं ढार। सुरति सुखी सी देखियत, दुखित गरभ के भार।—बिहारी (शब्द०)। (ख) तिय को मुख सुंदर बन्यो, विधि फेन्यो परगार। तिलन बीच को बिंदु है, गाल गोल इक ढार।—मुबारक (शब्द०)।

ढार²—संज्ञा स्त्री॰ १ ढाल के आकार का, कान में पहनने का एक गहना। बिरिया। २. पछेली नामक गहना।

ढार³—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] रोने का घोर शब्द। आर्तनाद। चिल्ला-कर रोने की ध्वनि।

मुहा॰—ढार मारना या ढार मारकर रोना = आर्तनाद करना। चिल्ला चिल्लाकर रोना।

ढारना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ धार, हिं॰ ढार+ना (प्रत्य॰)] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिरा-कर बहाना। उ॰—(क) ऊतरु देइ न, लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) उरग नारि आगे भई ठाढ़ी नैननि ढारति नीर।—सूर॰, १०।५७५। २. गिराना। ऊपर से छोड़ना। डालना। जैसे, पासा ढारना।

विशेष—दे॰ 'डालना'।

३. चारो ओर घुमाना। डुलाना (चँवर के लिये) उ॰—रचि बिवान सो साजि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहिं सब ढारा।—जायसी (शब्द॰)। ४ धातु आदि को गला कर साँचे के द्वारा तैयार करना। दे॰ 'ढालना'–६।

ढारस—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ढाढ़स'। उ॰—हुजूर दिल को जरा ढारस दीजिए।—फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ २७।

ढाल—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] तलवार, भाले आदि का वार रोकने का अस्त्र जो चमड़े, धातु आदि का बना हुआ थाली के आकार का गोल होता है। फरी। चर्म। आड़। फलक।

विशेष—ढाल गैंडे के पुट्ठे, कछुए की पीठ, धातु आदि कई चीजों की बनती है। जिस ओर इसे हाथ से पकड़ते हैं उधर यह गहरी और आगे की ओर उभरी हुई होती है। आगे की ओर इसमें ४–५ काँटे या मोटी फुलियाँ जड़ी होती हैं।

मुहा॰—ढाल बाँधना = ढाल हाथ में लेना।

२ एक प्रकार बड़ा झंडा जो राजाओं की सवारी के साथ चलता है। उ॰—बैरख ढाल गगन गा छाई। चला कटक धरती न समाई।—जायसी ग्रं॰, पृ॰ २२४।

ढाल²—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अवधार] १ वह स्थान जो आगे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु नीचे की ओर खिसक या लुढ़क या बह सके। उतार। जैसे,—(क) पानी ढाल की ओर बहेगा। (ख) वह पहाड़ की ढाल पर से फिसल गया। २. ढंग। प्रकार। तौर तरीका। उ॰—(क) सदा मति ज्ञान मे सु ऐसो एक ढाल है।—हनु-मान (शब्द॰)। (ख) ढाल धरो सतसय उबारा।—धरनी॰, पृ॰ ४१। † ३ उगाही। चंदा। बेहरी।—(पंजाब)।

ढालना—क्रि॰ स॰ [सं॰ धार] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ को गिराना। उँडेलना। जैसे,—(क) हाथ पर पानी ढाल दो। (ख) घड़े का पानी इस बरतन में ढाल दो। (ग) बोतल की शराब गिलास मे ढाल दो।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

मुहा॰—बोतल ढालना = शराब पीना। मद्यपान करना।

२ शराब पीना। मद्यपान करना। मदिरा पीना। जैसे,—आज-कल तो खूब ढालते हो। ३ बेचना। बिक्री करना (दलाल)। ४ थोड़े दाम पर माल निकालना। सस्ता बेचना। लुटाना। ५ ताना छोड़ना। व्यंग्य बोलना। † ६. चंदा उतारना। उगाही करना।—(पंजाब)। ७. पिघली हुई धातु आदि को साँचे में ढालकर बनाना। पिघली हुई सामग्री से साँचे के द्वारा निर्मित करना। जैसे, लोटा ढालना, खिलौने ढालना। उ॰—कोउ ढालत गोली कोउ बुँदवव बैठि बनावत।—प्रेम-घन॰, भा॰ १, पृ॰ २४।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

ढालवाँ—वि॰ [हिं॰ ढाल] [वि॰ स्त्री॰ ढालवीं] जो आगे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु जल्दी से लुढ़क, फिसल या बह सके। जिसमें ढाल हो। ढालदार। ढालू। जैसे,—यह रास्ता ढालवाँ है, सँभल-कर चलना। उ॰—हाँ इसी ढालवें को जब, बस सहज उतर जावें हम। फिर सम्मुख तीर्थ मिलेगा, वह अति उज्वल पावनतम।—कामायनी, पृ॰ २७६। २ ढाला हुआ। साँचे के अनुरूप तैयार किया हुआ।

ढालिया—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढालना] फूल, पीतल, ताँबा, जस्ता इत्यादि पिघली धातुओं को साँचे में ढालकर बरतन, गहने आदि बनानेवाला। भरिया। ढलैया। साँचिया।

ढाली—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ढालिन्] ढाल से सुसज्ज योद्धा (को॰)।

ढालुआँ—वि॰ [हिं॰ ढालना] दे॰ 'ढालवाँ'।

ढालुवाँ—वि॰ [हिं॰ ढालना] दे॰ 'ढालवाँ'।

ढालू—वि॰ [हिं॰ ढाल] दे॰ 'ढालवाँ'।

ढावना†—क्रि॰ स॰ [देश॰] गिराना। ढाहना।

ढासा†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दस्यु] ठग। लुटेरा। डाकू। उ॰—बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर। संकर निज पुर राखिए, चिते सुलोचन कोर।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ १२२।

ढासना—संज्ञा पुं॰ [सं॰ √धा (= धारण करना) + आसन] १ वह ऊँची वस्तु जिसपर बैठने में पीठ या शरीर का ऊपरी भाग टिक सके। सहारा। टेक। उठँगन। उ॰—वह अलिंद की एक स्तंभ का ढासना लगाकर सो गया।—वै॰ न॰, पृ॰ २५४।

२. तकिया। शिरोपधान।

ढाहना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ ध्वंसन] दीवार, मकान आदि को गिराना। ध्वस्त करना। ढाना। उ॰—(क) ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली विपति वारिधि अनुकूला।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) वृक्ष वन काटि महलात ढाहन लग्यो नगर के द्वार दीनो गिराई।—सूर (शब्द॰)।

विशेष—दे॰ 'ढाना'।

ढाहा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढाहना] नदी का ऊँचा करारा।

ढिंग(पु)—अव्य॰ [हिं॰ ढिग] दे॰ 'ढिग'। उ॰—झरना झरै दसो दिस द्वारे, कस ढिंग आवो साहेब तुम्हारे।—धरम॰ श॰, पृ॰ १६।

ढिँगलाना[1]—क्रि० अ० [देश०] लुढ़कना। गिरना।

ढिगलाना[2]‡—क्रि० स० [पूर्वी रूप ढँगिलाना] ढहाना। लुढ़काना। गिराना। उ०—कैहर हायल घाव कर, कुंजर ढिगलो कीध।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १८।

ढिँढ़—संज्ञा पुं० [हिं० ढोंढी (=नाभि)] पेट। उदर। उ०—भरि ढिंढ़ खाइन जनम गवाइन, काहु न आपु सँभार।—गुलाल०, पृ० १५।

ढिँढोरना—क्रि० स० [अनु०] १. मंथन करना। मथना। बिलोड़न करना। २. हाथ डालकर ढूँढ़ना। खोजना। तलाश करना। उ०—(क) क्यो बचिए भजिहूँ घनआनद, बैठी रहैं घर पैठि ढिंढ़ोरत।—घनानंद (शब्द०)। (ख) भूलि गई माखन की चोरी खात रहे घर सकल ढिंढोरी।—विश्राम (शब्द०)।

ढिँढोरा—संज्ञा पुं० [अनु० ढम+ढोल] १. वह ढोल जिसे बजाकर सर्वसाधारण को किसी बात की सूचना दी जाती है। घोषणा करने की भेरी। डुगडुगिया।

मुहा०—ढिंढोरा पीटना या बजाना=ढोल बजाकर किसी बात की सूचना सर्वसाधारण को देना। चारो ओर घोषित करना। मुनादी करना। उ०—खुदा जाने इन्सान क्या बातें करता है। तुम जाकर ढिंढोरा पिटवा दो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२०।

२. वह सूचना जो ढोल बजाकर सर्वसाधारण को दी जाय। घोषणा। मुनादी। उ०—जो मैं ऐसा जानती प्रीति किए दुख होय। नगर ढिंढोरा फेरती, प्रीति करो जनि कोय।—(प्रचलित)।

क्रि० प्र०—फेरना।

ढिएं—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ढिग'। उ०—एकै हँसै हँसावैं एकै। सहित प्रवाब जाति ढिए एकै।—हम्मीर०, पृ० ९।

ढिकचन—संज्ञा पुं० [देश०] गन्ने का एक भेद।

ढिकलना‡—क्रि० अ० [हिं० ढकेलना] धक्के से आगे जाना। आगे होना। उ०—बिना धड़े ही मैं आगे को जाने किस बल से ढिकला।—आर्द्रा, पृ० ५४।

ढिकुली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेकुली'।

ढिग[1]—क्रि० वि० [सं० दिक् (=ओर)] पास। समीप। निकट। नजदीक। उ०—मुरली धुनि सुनि सबै ग्वालिनी हरि के ढिग चलि आई।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यद्यपि यह संज्ञा शब्द है, तथापि, इसका प्रयोग सप्तमी विभक्ति का लोप करके प्राय. क्रि०वि० वत् ही होता है।

ढिग[2]—संज्ञा स्त्री० १. पास। सामीप्य। २. तट। किनारा। छोर। उ०—सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपालु, सिंधु बहुताई।—तुलसी (शब्द०)। ३. कपड़े का किनारा। पाड़। कोर। हाशिया। उ०—(क) लाल ढिगन की सारी ताको पीत ओढ़निया कीनी।—सूर (शब्द०)। (ख) पट की ढिग कत ढाँपियत सोभित सुभग सुबेस। हद रद छद छवि देखियत सद रदछद की देख।—बिहारी (शब्द०)।

ढिटौना‡—संज्ञा पुं० [हिं० ढोटा] दे० 'ढोटा'। उ०—रूपमती मन होत बिरागो, बाजबहादुर कै नद ढिटौना।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३५६।

ढिठपन—संज्ञा पुं० [हिं० ढीठ+पन (प्रत्य०)] धृष्टता। ढिठाई। उ०—न घर केस न कर ढिठपन। भलपे भलापे करह निधुवन।—विद्यापति, पृ० ४५३।

ढिठाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीठ+आई (प्रत्य०)] गुरुजनों के समक्ष व्यवहार की अनुचित स्वच्छंदता। संकोच का अनुचित अभाव। धृष्टता। चपलता। गुस्ताखी। उ०—छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।—तुलसी (शब्द०)। २. लोकलज्जा का अभाव। निर्लज्जता। उ०—गोने की चूनरी वैसियै है, दुलही अबही से ढिठाई बगारी।—मति० ग्रं०, पृ० २९९।

क्रि० प्र०—बगारना=(१) धृष्टता करना। (२) निर्लज्जता करना।

३. अनुचित साहस।

ढिठोना‡—संज्ञा पुं० [हिं० ढोटा] पुत्र। उ०—डगर डगमगे डोलने, परी डीठि डहकाय। निडर ढिठोना नंद के, डरे उठै बरराय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५।

ढिपुनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फल या पत्ते के साथ लगा हुआ टहनी का पतला नरम भाग। २. किसी वस्तु के सिरे पर दाने की तरह उभरा हुआ भाग। ठोंठी। ३. कुच का अग्रभाग। बोंडी। चूचुक।

ढिबरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा] १. टीन, शीशे, या पकी मिट्टी की डिबिया या कुप्पी जिसके मुँह पर बत्ती लगाकर मिट्टी का तेल जलाते हैं। मिट्टी का तेल जलाने की गुच्छीदार डिबिया। २. बरतन के साँचे के पल्ले के तीन भागों में से सबसे नीचे का भाग। साँचे की पेंदी का भाग।

ढिबरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढपना] १ किसी कसे जानेवाले पेच के सिरे पर लगा हुआ लोहे का चौकोर टुकड़ा जिससे पेच बाहर नहीं निकलता। २. चमड़े या मूँज की वह चकती जो चरखे में इसलिये लगाई जाती है जिसमें तकला न घिसे।

ढिबुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढेबुआ'। उ०—गछत गछत जब आगे आवा। बित उनमान ढिबुवा इक पावा।—कबीर ग्रं०, पृ० २३७।

ढिमका, ढिमाका—सर्व० [हिं० अमका का अनु०] [स्त्री० ढिमकी] अमुक। अमका। फलाँ। फलाना।

यौ०—फलाना ढिमका=अमुक अमुक मनुष्य। ऐसा ऐसा आदमी।

ढिलड़‡—वि० [हिं० ढीला] दे० 'ढीला'। उ०—जन रैदास कहै बनजरिया तेरे ढिलड़े परे परान बे।—रै० बानी, पृ० २७।

ढिलढिल—वि० [हिं० ढीला] दे० 'ढिलढिला'।

ढिलढिला—वि० [हिं० ढीला] १ ढीला ढाला। २. (रस आदि) जो गाढ़ा न हो। पानी की तरह पतला।

ढिलाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीला] १ ढीला होने का भाव। कसा न रहने का भाव। २. शिथिलता। सुस्ती। आलस्य। किसी

कार्य के करने में अनुचित विलंब । जैसे,—तुम्हारी ही ढिलाई से यह काम पिछड़ा है ।

ढिलाई२—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीलना] ढीलने की क्रिया या भाव । ढीला करने का काम ।

ढिलाना१—क्रि० स० [हिं० ढीलना का प्रे०रूप] १ ढीलने का काम कराना । २. ढीला कराना ।

ढिलाना†२—क्रि० स० १ ढीला करना । २ कसी या बँधी हुई वस्तु को खोलना । उ०—जसु स्वामी जब उठे प्रभाता । बैलन बँधे लखे सुखदाता । खेती हित लै गए ढिलाई । भेद न जान्यो गए चोराई ।—रघुराज (शब्द०) ।

ढिल्लड़—वि० [हिं० ढीला] १. ढील करनेवाला । मट्ठर । सुस्त ।

ढिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीला] दिल्ली का एक पुराना नाम ।

ढिल्लीवै—संज्ञा पुं० [हिं० ढिल्ली+वै=(पति)] दिल्ली का नरेश । दिल्लीपति ।

ढिल्लेस—संज्ञा पुं० [हिं० ढिल्ली+ईस] दिल्ली का राजा ।

ढिसरना†—क्रि० अ० [सं० ध्वसन] १. फिसल पड़ना । सरक पड़ना । २. प्रवृत्त होना । झुकना । उ०—उक्ति युक्ति सब तबहीं बिसरै । जब पंडित पढ़ि तिय पै ढिसरै ।—निश्चल (शब्द०) । ३ फलों का कुछ कुछ पकना ।

ढींकुा—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'ढेंकुली' । उ०—ल्यौ की लेज, पवन का ढींकू, मन मटका ज बनाया । सत की पाटि, सुरत का चाठा, सहजि नीर मुकलाया ।—कबीर ग्रं०, पु० १६१ ।

ढींगर†—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर] १. बड़े डील डौल का आदमी । मोटा मुस्टंडा आदमी । २. पति या उपपति । उ०—कह कबीर ये हरि के काज । जोइया के ढींगर कौन है लाज ।—कबीर (शब्द०) ।

ढींढ़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढींढ़ा' ।

ढींढस—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] डिंडसी नाम की तरकारी । टिंडा ।

ढींढा†—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढि (=लंबोदर, गणेश)] १. बड़ा पेट । निकला हुआ पेट ।

मुहा०—ढींढा फूलना=पेट में बच्चा होने के कारण पेट निकलना २. गर्भ । हमल ।

मुहा०—ढींढा गिराना=गर्भपात करना ।

ढींगे†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ढिग' ।

ढीकुली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंकली' । उ०—सुरति ढीकुली लै जल्यो, मन नित ढोलनहार । कँवल कुवाँ में प्रेम रस पीवै बारंबार ।—कबीर ग्रं०, पु० १८ ।

ढीँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीह या ढीह] दे० 'ढीह' ।

ढीचा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. कूबड़ । २. सफेद चील ।

ढीट†—संज्ञा स्त्री० [देश०] रेखा । लकीर । डंडीर । उ०—रेख छाँड़ि जाऊँ तो डराऊँ लछिमन जी तें भीख बिनु दिए भीख मीख हौं न पावती । कोऊ मदभागी यह राम के न आगे आयो, दरसन पावत हौं देत न सकावती । ढीट मेट देऊँ फिर ढीट ही मिलाय लेऊँ, ह्वैं है बात सोई भगवंत जू को भावती ।—हनुमान (शब्द०) ।

ढीठ—वि० [सं० धृष्ट, प्रा० ढिट्ठ] १ वह जो गुरुजनों के सामने ऐसा काम करे जो अनुचित हो । बड़ों का संकोच या डर न रखनेवाला । बड़ों के सामने अनुचित स्वच्छंदता प्रकट करनेवाला । बेअदब । शोख । उ०—बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं । सेवक समय न ढीठ ढिठाई ।—तुलसी (शब्द०) २. किसी काम को करने में उसके परिणाम का भय न करनेवाला । ऐसे कामों में आगा पीछा न करनेवाला जिनसे लोगों का विरोध हो । अनुचित साहस करनेवाला । बिना डर का । उ०—ऐसे ढीठ भए हैं कान्हा दधि गिराय मटकी सब फोरी ।—सुर (शब्द०) । ३. साहसी । हिम्मतवर । हियाववाला । किसी बात से जल्दी न डर जानेवाला ।

ढीठता—संज्ञा स्त्री० [सं० धृष्टता] ढिठाई ।

ढीठा१—वि० [हिं० ढीठ] दे० 'ढीठ' ।

ढीठा†२—संज्ञा पुं० [सं० धृष्ट] ढिठाई । धृष्टता ।

ढीठ्यो—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढीठा' ।

ढीड़‡—संज्ञा पुं० [देश०] आँख का कीचड़ । उ०—मोड़े मुख लार बहै आँखिन में ढीड, राधि कान में, सिनक रेंट भीतन में डार देति ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पु० १६३ ।

ढीठिपन—संज्ञा पुं० [हिं० ढीठ+पन (प्रत्य०)] धृष्टता । ढिठाई । उ०—तखनक ढीठिपन रहइ न जाय लाजे विमुखी धनि रहलि लजाय ।—विद्यापति, पु० ५२ ।

ढीमा†—संज्ञा पुं०[देश०] १. पत्थर का बड़ा टुकड़ा । पत्थर का ढोंका । उ०—सिला ढीम ढाहै, इला वीर वाहै । घड़ा भड्ड सद्दं, भड़ा भड्ड हूँ हैं ।—सुदन (शब्द०) ।

ढीमड़ो†—संज्ञा पुं० [देश०] कूप । कुआँ ।—(डिंगल) ।

ढीमर—संज्ञा स्त्री० [सं० धीवर, या देश०] १. धीमर या धीवर जाति की स्त्री । २. वह स्त्री जो जल आदि भरती है । उ०—ढीमर वह धीमर पहिरि लूमर मदन अरेर । चितहि चुरावत पाहिकै बँधत बेर सुरेर ।—स० सप्तक, पु० ३८१ ।

ढीमा—संज्ञा पुं० [देश०] ढेला । ईंट पत्थर आदि का टुकड़ा । ढोंका ।

ढील—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीला] १. कार्य में उत्साह का अभाव । शिथिलता । अतत्परता । नामुस्तैदी । सुस्ती । अनुचित विलंब । जैसे,—इस काम में ढील करोगे तो ठीक न होगा । उ०—ब्याह जोग रंभावती, बरष त्रयोदस माँहि । तातै वेगि विवाहिजे कामु ढील को नाँहि ।—रसरतन, पु० ८७ ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—ढील देना=ध्यान न देना । दत्तचित्त न होना । बेपरवाही करना । उ०—हुजूर तो गजब करते हैं, अब फरमाइए ढील किसकी है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२३ । २. बंधन को ढीला करने का भाव । डोरी को कड़ा या तना न रखने का भाव ।

मुहा०—ढील देना=(१) पतंग की डोर बढ़ाना जिससे वह

आगे बढ़ सके। (२) स्वच्छंदता देना। मनमाना करने का अवसर देना। वश में न रखना।

ढील[2]—वि० दे० 'ढीला'।

ढील[3]—संज्ञा पुं० [देश०] बालों का कीड़ा। जूँ।

ढीलना—क्रि० स० [हिं० ढीला] १. ढीला करना। कसा या तना हुआ न रखना। बंधन आदि की लंबाई बढ़ाना जिससे बँधी हुई वस्तु और आगे या इधर उधर बढ़ सके। जैसे, पतंग की डोरी ढीलना, रास ढीलना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बंधनमुक्त करना। छोड़ देना। उ०—तापै सुर सबहुवन ढीलत बन बन फिरत बहे।—सूर (शब्द०)। ३ (पकड़ी हुई रस्सी आदि को) इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह आगे या नीचे की ओर बढ़ती जाय। डोरी आदि को बढ़ाना या डालना। जैसे, कुएँ में रस्सी ढीलना। ४. किसी गाढ़ी वस्तु को पतला करने के लिये उसमें पानी आदि डालना। ५. संभोग करना। प्रसंग करना। (बाजारू)। † ६. धारण करना। जैसे,—आज वे धोती ढीलकर निकले हैं।

ढीलमढाला—वि० [हिं० ढीला + ढाला] जो ठोस न हो। शिथिल। उ०—ढीलमढाला फूला हुआ घास का गट्ठर।—आधुनिक०, पृ० १।

ढीला—वि० [सं० शिथिल, प्रा० सिढिल] १. जो कसा या तना हुआ न हो। जो सब ओर से खूब खिंचा न हो। (डोरी, रस्सी तागा आदि) जिसके ठहरे या बँधे हुए छोरों के बीच झोल हो। जैसे, लगाम ढीली करना, डोरी ढीली करना, चारपाई (की बुनावट) ढीली होना।

मुहा०—ढीली छोड़ना या देना = बंधन ढीला करना। अंकुश न रखना। मनमाना इधर उधर करने के लिये स्वच्छंद करना।

२. जो खूब कसकर पकड़ा हुआ न हो। जो अच्छी तरह जमा या बैठा न हो। जो दृढ़ता से बँधा या लगा हुआ न हो। जैसे, पेंच ढीला होना, जँगले की छड़ ढीली होना। ३ जो खूब कसकर पकड़े हुए न हो। जैसे, मुट्ठी ढीली करना, गाँठ ढीली होना, बंधन ढीला होना। ४ जिसमें किसी वस्तु को डालने से बहुत सा स्थान इधर उधर छूटा हो। जो किसी सामनेवाली चीज के हिसाब से बड़ा या चौड़ा हो। फराख। कुशादा। जैसे, ढीला जूता, ढीला अंगा, ढीला पायजामा। ५. जो कड़ा न हो। बहुत गीला। जिसमें जल का भाग अधिक हो गया हो। पनीला। जैसे, रसा ढीला करना, चाशनी ढीली करना। ६ जो अपने हठ पर अड़ा न रहे। प्रयत्न या संकल्प में शिथिल। जैसे,—ढीले मत पड़ना, बराबर अपने रुपए का तकाजा करते रहना।

क्रि० प्र०—पड़ना।

७. जिसके क्रोध आदि का वेग मंद पड़ गया हो। धीमा। शांत। नरम। जैसे —जरा भी ढीले पड़े कि वह सिर पर चढ़ जायगा।

क्रि० प्र०—पड़ना।

८ मंद। सुस्त। धीमा। शिथिल। जैसे, उत्साह ढीला पड़ना।

मुहा०—ढीली आँख = मंद मंद दृष्टि। अधखुली आँख। रसपूर्ण या मदभरी चितवन। उ०—देह लग्यो ढिग गेहपति तऊ नेह निरबाहि। ढीली अँखियन ही इतै गई कनखियन चाहि।—बिहारी (शब्द०)।

९ मट्ठर। सुस्त। आलसी। काहिल। १० जिसमें काम का वेग कम हो। नपुंसक।

ढीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० ढीला + पन (प्रत्य०)] ढीला होने का भाव। शिथिलता।

ढीली[1]—वि० स्त्री० [हिं० ढीला] दे० 'ढीला'।

ढीली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीला] दे० 'दिल्ली'। उ०—ढीली मंडल पुणि जोईयउ। जउभो छई मथुरी मंडण राय। बी० रासो, पृ० ८।

ढीह—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घ, हिं० दीह] ऊँचा टीला। डूह।

ढीहा—संज्ञा पुं० [हिं० ढीह] डूह। ढीह। ढोला। उ०—सो नाग जी के वश को तो उहाँ कोऊ हतो नाहीं। और अरहू गिरयो परयो ढीहा होइ रह्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २६।

ढुंढ†—संज्ञा पुं० [हिं० ढूँढ़ना] धाई। उचक्का। ठग। लुटेरा। उ०—चोर ढुंढ बटपार अन्याई अपमारगी कहावै जे।—सूर (शब्द०)।

ढुंढन—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढनम्] तलाश। खोज। पता लगाना [को०]।

ढुंढपाणि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाणि] १. शिव के एक गण का नाम। २. दंडपाणि भैरव। उ०—पुनि काल भैरव ढुंढपाणिहि और सिगरे देव को।—कबीर (शब्द०)।

ढुंढपानि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ढुंढपाणि] दे० 'ढुंढपाणि'।

ढुंढा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ढुण्ढा] १. पुराण के अनुसार एक राक्षसी का नाम जो हिरण्यकशिपु की बहिन थी।

विशेष—इसको शिव से यह वर प्राप्त था कि अग्नि में न जलेगी। जब प्रह्लाद को मारने के अनेक उपाय करके हिरण्यकशिपु हार गया तब उसने ढुंढा को बुलाया। वह प्रह्लाद को लेकर आग में बैठी। विष्णु भगवान् की कृपा से प्रह्लाद तो न जले, ढुंढा जलकर भस्म हो गई।

† २ भुने अन्न लाई आदि का चाशनी के साथ बना लड्डू।

ढुंढा†[2]—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढन (= अन्वेषण, खोजना)] पृथ्वीराज रासो में वर्णित एक राक्षस। उ०—ढूँढ़ि ढूँढ़ि खाए नरनि तातें ढुंढा नाम।—पृ० रा०, १। ५१७।

ढुंढाहर(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] जयपुर राज्य का एक पुराना नाम। उ०—आयो पत्र उताल सौं ताहि बाँचि ब्रजएस। सुत सुरज सौं तब कह्यो थंभि ढुंढाहर देस।—सुजान०, पृ० २५।

विशेष—इस राज्य की भाषा जो जयपुर, अलवर, हाड़ोती आदि में बोली जाती है, आज भी 'ढूँढाणी' या 'जयपुरी' कही जाती है। राजस्थानी गद्य साहित्य का अधिकांश इसी भाषा में प्राप्त होता है, राठौर पृथ्वीराज की 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' की

टीका जो १६७३ में लिखी गई थी, इसी भाषा के गद्य मे प्राप्त होती है।

ढुंढि—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढि] गणेश का एक नाम। ये ५६ विनायकों मे से हैं।

विशेष—काशीखड में लिखा है कि सारे विषय इनके ढूंढे हुए या अन्वेषित हैं। इसी से इनका नाम ढुंढि या ढुंढिराज है।

ढुंढित—वि० [सं० ढुण्ढित] अन्वेषित। १ ढूंढ़ा हुआ (को०)।

ढुंढिराज—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढिराज] दे० 'ढुंढि'।

ढुंढी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ बाँह। बाहु। मुसुक।

ढुंढी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोंढ़] दे० 'ढोंढी'।

मुहा०—ढुंढिया चढ़ाना=मुसकें बाँधना। उ०—उसने झट उसकी पगडी उतार ढुंढिया चढाय मुछ, डाढ़ी और सिर मुंड रथ के पीछे बाँध लिया।—लल्लू (शब्द०)।

ढुँढवाना—क्रि० स० [हिं० ढूँढ़ना का प्रे० रूप] ढूँढने का काम कराना। खोजवाना। तलाश कराना। पता लगवाना।

ढुँढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढूँढना] ढूढ़ने का काम।

ढुँढाहरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढूढ़ना] खोज। तलाश।

ढुकना—क्रि० अ० [देश०] १ घुसना। प्रवेश करना।

संयो० क्रि०—जाना।

२ झुक पड़ना। टूट पड़ना। पिल पडना। एकबारगी किसी ओर धावा करना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

३ किसी बात को सुनने या देखने के लिये आड़ में छिपना। लुकना। घात में छिपना। जैसे, ढुककर कोई बात सुनना। किसी को पकड़ने के लिये ढुकना। उ०—(क) ढुकी रही जहँ तहँ सब गोरी। (ख) जउ न होत चारा कइ आसा। कित चिरिहार ढुकत लेइ लासा।—जायसी (शब्द०)।

ढुकास—संज्ञा स्त्री० [अनु० ढुक ढुक] पानी पीने की बहुत अधिक इच्छा। अधिक प्यास।

क्रि० प्र०—लगना।

ढुक्का—संज्ञा पुं० [देश० ढूका] दे० 'ढूका'।

ढुच्चा—संज्ञा पुं० [देश०] घूँसा। मुक्का।

ढुटौना—संज्ञा पुं० दे० 'ढोटा'।

ढुनमुनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढनमनाना] १ लुढ़कने की क्रिया या भाव। २ सावन में कजली गाने का एक ढग। जिसमें स्त्रियाँ एक मडल में घुमती हुई गोल बाँधकर हाथ से तालियाँ बजाती हुई गाती हैं और बीच बीच में झुकती और खड़ी होती हैं।

क्रि० प्र०—खेलना। उ०—रात को कजली गाती कुछ ढुनमुनिया भी खेलती हैं।—प्रेमघन०; भा० २, पृ० ३२९।

ढुरकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० ढार] १ लुढ़कना। फिसलकर सरकना या गिरना। उ०—खोय चढ़ी अति मोहन की गति मोह महा गिरि तें ढुरकी।—देव (शब्द०)। २ झुकना। उ०—सग में सईस तें रईस तें नफीस बेस सीस उसनीस बना बाम ओर ढुरकी।—गोपाल (शब्द०)। ३ ढरकना। टपकना। बहना।

ढुरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरकना] लेटकर किया जानेवाला विश्राम। लेटने या शयन करने की स्थिति। झपकी।

ढुरना¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढार] दे० 'ढुनमुनिया'–२।

ढुरना²—क्रि० अ० [हिं० ढार] १. गिरकर बहना। ढरकना। ढलना। टपकना। नैनन ढुरहिं मोति और मूंगा। कस गुड़ खाय रहा ह्वै गूंगा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—पड़ना।

२. कभी इधर कभी उधर होना। इधर उधर डोलना। डग-मगाना। ३ सूत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना। लहर खाकर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर ढुरना। उ०—जोवन मदमाती इतराती बेनी ढुरत कटि पै छबि बाढी।—सूर (शब्द०)। ४ लुढ़कना। फिसल पडना। ५ प्रवृत्त होना। ६ झुकना। उ०—कभी ढुर ढुर कर स्त्रियों की भाँति ढुनमुनिया भी खेलते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४४।

संयो० क्रि०—पड़ना।

६. अनुकूल होना। प्रसन्न होना। कृपालु होना। उ०—बिन करनी मोपे ढुरो कान्ह गरीब निवाज।—रसनिधि (शब्द०)।

ढुरढुरिया—वि० [हिं० ढुरना] ढलवाँ। चढ़ाव उतारवाला। उ०—मग ओके पातर मुँह ढुरढुरिया, चूहै, मेखन के रेख।—शुक्ल० अभि० ग्र० (सा०), पृ० १४०।

ढुरहुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरना] १ लुढकने की क्रिया का भाव। नीचे ऊपर होते हुए फिसलने या बढ़ने की क्रिया। उ०—लूटि सी करति कलहस जुग देव कहे, तुटि मोतिसिरि छिति छुटि ढुरहुरी लेति।—देव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

२. पगडडी। पतला रास्ता। नथ में लगी हुई सोने के गोल दानों की पक्ति।

ढुराना—क्रि० स० [हिं० ढुरना] १ गिराकर बहाना। ढरकाना। ढुलकाना। टपकाना। २ इधर उधर हिलाना। लहराना। उ—ध्वजा फहराइ छत्र चौंर सो ढुराय बागे बीरन बताय यो चलाइ बाम धाम के।—हनुमान (शब्द०)। ३ लुढकना। फिसलकर गिरना।

ढुरावना(पु)—क्रि० स० [हिं० ढुराना] दे० 'ढुरना–१'। उ०—पलक न लावति, रहत ध्यान धरि, बारबार ढुरावति पानी।—सूर (शब्द०)।

ढुरुआ—संज्ञा सं० [हिं० ढुरना] गोल मटर। केराव मटर।

ढुरुकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० ढुलकना] दे० 'ढुलकना'।

ढुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरना] वह पतला रास्ता जो लोगों के चलते चलते बन जाय। पगडंडी।

ढुलकना—क्रि० अ० [हिं० ढाल+कना (प्रत्य०), या सं० लुठन,

[हिं० लुढ़कना] १. नीचे ऊपर होते हुए फिसलना या सरकना। ऊपर नीचे चक्कर खाते हुए बढ़ना या चल पड़ना। लुढ़कना। ढँगलाना। २ दे० 'ढुरना२'।

संयो० क्रि०—जाना।

ढुलकाना—क्रि० स० [हिं० ढुलकना] टपकाना। गिराना। बहाना। लुढ़काना। ढँगलाना। उ०—जिसे भ्रोस जल ने ढुलकाया। धवल धूलि ने नहलाया।—वीणा पृ० १२।

ढुलढुल—वि० [हिं० ढुलना] एक ओर स्थिर न रहनेवाला। लुढकनेवाला। अस्थिर। कभी इधर कभी उधर होनेवाला।

ढुलना१—क्रि० अ० [हिं० ढाल] १ गिरकर बहना। ढरकना।

संयो० क्रि०—जाना।

२ लुढ़कना। फिसल पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

३ प्रवृत्त होना। झुकना।

संयो० क्रि०—आना।—पड़ना।

४. अनुकूल होना। प्रसन्न होना। कृपालु होना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

५ कभी इधर कभी उधर होना। इधर उधर डोलना। इधर से उधर हिलना। उ०—ढुलहि ग्रीव, लटकति नकबेसरि, मद मद गति आवै।—सूर (शब्द०)। ६. सूत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना। लहर खाकर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर ढुलना।

ढुलना†२—संज्ञा पुं० [सं० ढोल] एक वाद्य। दे० 'ढोल'। उ०—ढुलना सुनो घघकारी। महलों उठे झनकारी।—घट०, पृ० ३७१।

ढुलमुल—वि० [हिं० ढुलना, या अनु०] दे० 'ढुलढुल'। उ०—गा गया फिर भक्त ढुलमुल भावुता से वासना को झनमलाकर।—इत्यलम्, पृ० १६७।

ढुलमुलाना—क्रि० अ० [हिं० ढुलना] कंपित होना। हिलना। उ०—पत्तियों की चुतकियाँ झट दीं बजा, डालियाँ कुछ ढुलमुलाने सी लगीं। किस परम आनंदनिधि के चरण पर, विश्व साँसें गीत पाने सी लगीं।—हिमत०, पृ० ४०।

ढुलवाई१—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोना] १. ढोने का काम। २. ढोने की मजदूरी।

ढुलवाई —संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] १ ढुलाने की क्रिया। २ ढुलाने की मजदूरी।

ढुलवाना१—क्रि० स० [हिं० ढोना का प्रे० रूप] ढोने का काम कराना। बोझ लेकर जाने का काम कराना।

ढुलवाना२—क्रि० स० [हिं० ढुलाना का प्रे० रूप] ढुलाने का काम कराना।

ढुलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलाना] १ ढुलने की क्रिया। २ ढोए जाने की क्रिया। जैसे,—आजकल सामान की ढुलाई हो रही है। ३ ढोने की मजदूरी।

ढुलाना१—क्रि० स० [हिं० ढाल] १. गिराकर बहाना। ढरकाना। ढालना।

संयो० क्रि०—देना।

२. नीचे ढालना। ठहरा न रहने देना। गिराना। उ०—स्यंदन खंडि, महारथ खंडौं कपिध्वज सहित ढुलाऊँ।—सूर (शब्द०)। ३ लुढ़काना। ढँगलाना। ४. पीड़ित करना। जलाना। जलन या दाह उत्पन्न करना। उ०—रमैया बिन नींद न आवे। नींद न आवे बिरह सतावे, प्रेम की आँच ढुलावे।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ७३।

संयो० क्रि०—देना।

५ प्रवृत्त करना। झुकाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

६ अनुकूल करना। प्रसन्न करना। कृपालु करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

७. कभी इधर, कभी उधर करना। इधर उधर डुलाना। इधर से उधर हिलाना। जैसे, चँवर ढुलाना। ८. चलाना। फिराना। उ०—सूर स्याम स्यामा वश कीनो ज्यों सँग छाँह ढुलावे हो।—सूर (शब्द०)। (पु)† ९. फेरना। पोतना। उ०—ऊँचा महल चिनाइया चूना कली ढुलाय।—कबीर (शब्द०)।

ढुलाना२—क्रि० स० [हिं० ढोना] ढोने का काम कराना।

ढुलियाँ१—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल+इया (प्रत्य०)] दे० 'ढोलकिया'। उ०—जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, ढुलिया ढोल बजावै।—कबीर० श०, भा० १, पृ० १०२।

ढुलियाँ†२—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] १ छोटी ढोलक। २ छोटा पालना या डोलो। सज्जा सहित इक ढुलिया लैयो औ पानन की डोली छू।—नद० ग्रं०, पृ० ३३१।

ढुलुआ†—संज्ञा स्त्री० [देश०] खजूर या ताड़ की बनी शकर।

ढुवारा†—संज्ञा पुं० [देश०] घुन नाम का कीड़ा।

ढूँकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ढुकना'।

ढूँका —संज्ञा पुं० [हिं० ढुँकना] किसी बात या वस्तु को गुप्त रूप से देखने के लिये आड में छिपने का कार्य। बिना अपनी आहट दिए कुछ देखने की घात में छिपने का काम।

क्रि०प्र०—लगना।

ढूँढ़—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढूँढ़ना] खोज। तलाश। अन्वेषण।

मुहा०—ढूँढ़ ढाँढ़ = खोज। तलाश।

ढूँढ़ना—क्रि० स० [सं० ढुण्ढन] खोजना। तलाश करना। अन्वेषण करना। पता लगाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना (दूसरे के लिये)।—लेना (अपने लिये)।

यौ०—ढूँढ़ना ढाँढना = खोजना। तलाश करना।

ढूँढला†—संज्ञा स्त्री० [सं० ढुण्ढा] ढुंढा नाम की राक्षसी।

ढूँढी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ किसी चीज का गोल पिंड या लौंदा। २ भुने हुए आटे आदि का बड़ा गोल लड्डू जिसमें गुड़ और तिल आदि मिले रहते हैं। अधिकतर यह देहातों में बनती है।

ढुकड़ां†—अव्य० [सं० √ढौक, प्रा० ढुक्क] पास। निकट। समीप। उ०—आगरवान विचारियउ, ए मति उत्तिम कीध। साल्ह मढुनई ढुकड़ा, डाढ़ी डेरउ दीध।—ढोला०, दू० १८७।

ढुकना—क्रि० अ० [सं० √ढौक, प्रा० ढुक्क, हिं० ढुकना] १. पास आना। समीप जाना। उ०—पहुर रंग रत्तउ हुवइ, मुख काजल मसि भन्न। जोइयउ गुजाहल पवइ, तेण न ढूकउ मन्न।—ढोला०, दू० ५७२।

ढुका¹—संज्ञा पुं० [देश०] ढठल, घास आदि के बोझ का एक मान जो दस पूले का होता है।

ढुका²—संज्ञा पुं० [हिं० ढुकना] दे० 'ढूंका'।

ढुंढिया—संज्ञा पुं० [देश०] श्वेतांबर जैनों का एक भेद।

विशेष—इस संप्रदाय के लोग मूर्ति नहीं पूजते और भोजन स्नान के समय को छोड़ सदा मुँह पर पट्टी बाँधे रहते हैं।

ढूमर—संज्ञा पुं० [देश०] बनियों की एक जाति।

ढूसा—संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच जिसमें ऊपर आया हुआ पहलवान नीचेवाले की गरदन पर हाथ मारकर उसे चित करता है।

ढूहा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] १. ढेर। अटाला। २. टीला। भीटा। उ०—नहिं रफवा को नाम, धाम गिरि ढूह भयो बनि।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११। ३ मिट्टी का छोटा टीला जो सीमा या हद सूचित करने के लिये खड़ा किया जाता है।

ढूहा†—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] दे० 'ढूह'।

ढेंक—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेङ्क] दे० 'ढेंक'।

ढेंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेङ्किका] एक प्रकार का नृत्य।

ढेंक¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेङ्क, प्रा० ढेंक] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसकी चोंच और गरदन लंबी होती है। उ०—(क) केवा सोन ढेंक बक लेदी। रहे अपूरि मीन जल भेदी।—जायसी (शब्द०)। (ख) हंसक पिक मानहु गजमाते। ढेंक महोख ऊँट बिसराते।—तुलसी (शब्द०)।

ढेंक²—संज्ञा पुं० [देश०] धान कूटने का लकड़ी का एक यंत्र। ढेंकली।

ढेंकली—संज्ञा स्त्री० [देश०। अथवा हिं० ढेंक (= चिड़िया, जिसकी गरदन लंबी होती है)] १. सिंचाई के लिये कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र।

विशेष—इसमें एक ऊँची खड़ी लकड़ी के ऊपर एक आड़ी लकड़ी बीचोबीच से इस प्रकार ठहराई रहती है कि उसके दोनों छोर बारी बारी से नीचे ऊपर हो सकते हैं। इसके एक छोर में, मिट्टी थोपी रहती है। या पत्थर बँधा रहता है और दूसरे छोर में जो कुएँ के मुँह की ओर होता है, डोल की रस्सी बँधी होती है। मिट्टी या पत्थर के बोझ से डोल कुएँ में से ऊपर आती है।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. एक प्रकार की सिलाई जो जोड़ की लकीर के समानांतर नहीं होती, आड़ी होती है। आड़े डोभ की सिलाई।

क्रि० प्र०—मारना।

३. धान कूटने का लकड़ी का यंत्र जिसका आकार सींचने की ढेंकली ही से मिलता जुलता पर बहुत छोटा और जमीन से लगा हुआ होता है। धनकुट्टी। ढेंकी। ४. भभके से अर्क उतारने का यंत्र। बकतुंड यंत्र। ५. सिर नीचे और पैर ऊपर करके उलट जाने की क्रिया। कलाबाजी। कलैया।

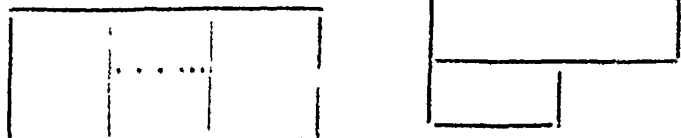
क्रि० प्र०—खाना।

ढेंका—संज्ञा पुं० [हिं० ढेंक (= पक्षी)] १. कोल्हू में वह बाँस जो जाट के सिरे से कतरी तक लगा रहता है। २. बड़ी ढेंकी।

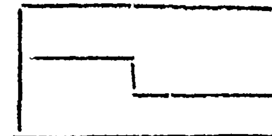
ढेंकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंकी] ढेढपटी चद्दर बनाने में कपड़े की एक प्रकार की काट और सिलाई जिससे कपड़े की लबाई एक तिहाई घट जाती है और चौड़ाई एक तिहाई बढ़ जाती है।

विशेष—इस काट की विशेषता यह है कि इसमें आड़ा जोड़ किनारे तक नहीं आता, बीच ही तक रह जाता है। इसमें कपड़े की लबाई को तीन बराबर भागों में तह करके आड़े निशान डाल देते हैं। फिर एक आड़ी लकीर पर आधी दूर तक एक किनारे की ओर से फाड़ते हैं। इसी प्रकार दूसरे किनारे की ओर दूसरी आड़ी लकीर पर भी आधी दूर तक फाड़ते हैं। इसके उपरांत बीच में पड़नेवाले भाग को बड़े बल आधेआध काट देते हैं। इस तरह जो दो टुकड़े निकलते हैं उन्हें खाली स्थान को पूरा करते हुए जोड़ देते हैं।

पूरा कपड़ा   कटा हुआ कपड़ा



दोनों जुड़े हुए कपड़े



ढेंकी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंक (= एक पक्षी)] अनाज कूटने का लकड़ी का एक यंत्र। ढेंकली।

ढेंकी²—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेङ्किका, ढेङ्की] दे० 'ढेंकिका'।

ढेंकुर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंकली'।

ढेंकुली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंकली'।

ढेंटी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] धन का पेड़।

ढेंढ़¹—संज्ञा पुं० [देश०] १ कौवा। २ एक नीच जाति जो मरे जानवरों का मांस खाती है। उ०—मांस खाय ते ढेंढ़ सब मद पीवै सो नीच।—कबीर (शब्द०)। ३. मूर्ख। मूढ़। जड़।

ढेंढ़²—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड, हिं० ढोढ़] कपास आदि का डोडा। ढोंढ़। उ०—सेमर सुगना सेइए दुइ ढेंढ़ की आस।—कबीर (शब्द०)।

ढेंटर—संज्ञा पुं० [हिं० ढेंट] आँख के ढेले का निकला हुआ बिगड़ा मांस। टेंटर।

ढेंढवा—संज्ञा पुं० [देश०] काले मुँह का बंदर। लंगूर।

ढेंढा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] दे० 'ढेंढ' ।

ढेंढी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंढा] १. कपास का ढोंढा । २ पोस्ते का ढोंढा । ३ कान का एक गहना । तरकी । उ०—सीस फूल जड़ाव जूड़ा अंजन ज्ञान लगावन। मानसी नथुनी ढेंढ़ी शब्द माँग भरावन ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६४ ।

ढेंप—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फल या पत्ते के छोर पर का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है । २ कुचाग्र । बोंड़ी ।

ढेंपी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंप' ।

ढेउआ†—संज्ञा पुं० [देश०] पैसा ।

ढेऊ†—संज्ञा पुं० [देश०] पानी की लहर । तरंग । हिलोरा ।

ढेकुसा—संज्ञा पुं० [देशी] दे० 'ढेंकली' ।

ढेढ़†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दृष्टि । नजर । आँख । उ०—रात दिवस घनी पहरीयो । तोही मूँसारो मूँसी गयो ढेढ़ ।—बी० रासो, पृ० ९७ ।

ढेढ़स—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंडसी' ।

ढेपनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंपनी' ।

ढेपुनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंप] १ पत्ते या फल का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है । ढेंप । २. किसी वस्तु की दाने की तरह उभरी हुई नोक । ठोंठ । ३ कुचाग्र । चूचुक ।

ढेबरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डिबरी' ।

ढेबरी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चौरी, मामरी और रुही भी कहते हैं । वि० दे० 'रुही' ।

ढेबुआ†—संज्ञा पुं० [सं० ढेब्बुका; या देश०] दे० 'ढेबुक'

ढेबुक†—संज्ञा पुं० [सं० ढेब्बुका या देश०] ढेउआ । पैसा । उ०—यथा ढेबुक मुद्रा जग माहीं । है सब एक पविक सम नाहीं ।—विश्राम (मैंन्द०) ।

ढेबुवा†—संज्ञा पुं० [सं० ढेब्बुका, देश०] पैसा । ढेउआ । ताम्रमुद्रा ।

ढेममौज—संज्ञा स्त्री० [देश० ढेऊ + फ़ा० मौज] बड़ी लहर । समुद्र की ऊँची लहर (लश०) ।

ढेर¹—संज्ञा पुं० [हिं० धरना] नीचे ऊपर रखी हुई बहुत सी वस्तुओं का समूह जो कुछ ऊपर उठा हुआ हो । राशि । अटाला । अंबार । गंज । टाल ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

मुहा०—ढेर करना=मारकर गिरा देना । मार डालना । उ०—होश की दवा करो । ढेर कर दूँगा ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३७। ढेर रखना = मारकर रख देना । जीता न छोड़ना । ढेर रहना = (१) गिरकर मर जाना । (२) थककर चूर हो जाना । अत्यंत शिथिल हो जाना । ढेर हो जाना = (१) गिरकर मर जाना । मर जाना । (२) ध्वस्त होना । गिर पड़ जाना । जैसे, मकान का ढेर होना । (३) शिथिल हो जाना ।

ढेर†²—वि० बहुत । अधिक । ज्यादा ।

ढेरना—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० ढुरना (=घूमना)] सूत या रस्सी बटने की फिरकी ।

ढेरा¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. सुतली बटने की फिरकी जो परस्पर काटती हुई दो आड़ी लकड़ियों के बीच में एक खड़ा डंडा जड़कर बनाई जाती है । २ मोट के मुँह पर का लकड़ी या लोहे का घेरा जो मोट का मुँह खुला रखने के लिये लगा रहता है । ३. अंकोल का पेड़ (वैद्यक) ।

ढेरा²—वि० [देश०] जिसकी आँखों की पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों । भेंगा । अंबर तक्कु ।

ढेराढोंक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली । दे० 'ढोंक' ।

ढेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेर] ढेर । समूह । अटाला । राशि ।

ढेरु(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढेर' । उ०—कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है ।—भूषण ग्रं०, पृ० ४६ ।

ढेल—संज्ञा पुं० [हिं० डला] दे० 'ढेला' ।

ढेलवाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेला + सं० पाश] रस्सी का एक फंदा जिससे ढेला फेंकते हैं । गोफना । उ०—इस सभ्यता के लोगों के अस्त्र शस्त्र, भाले, कटार, परशु, गदा, तीर, धनुष, ढेलवाँस आदि थे ।—आदि० भा०, पृ० ४८ ।

ढेला—संज्ञा पुं० [सं० दल, हिं० डला] १. ईंट, मिट्टी, कंकड़, पत्थर आदि का टुकड़ा । चक्का । जैसे, ढेला फेंककर मारना ।

यौ०—ढेला चौथ ।

२ टुकड़ा । खंड । जैसे, नमक का ढेला । ३. एक प्रकार का धान । उ०—कपूर काट कजरी रतनारी । मधुकर ढेला जीरा सारी ।—जायसी (शब्द०) ।

ढेलाचौथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेला + चौथ] भादों सुदी चौथ । भाद्र शुक्ल चतुर्थी ।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि इस दिन चद्रमा देखने से कलंक लगता है । यदि कोई चंद्रमा देख ले तो उसे लोगों की कुछ गालियाँ सुन लेनी चाहिए । गालियाँ सुनने की सीधी युक्ति दूसरों के घरों पर ढेला फेंकना है । अतः लोग इस दिन ढेला फेंकते हैं । यह प्रायः एक प्रकार का विनोद या खेलवाड़ सा हो गया है ।

ढेव्बुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पैसे का सिक्का [को०] ।

ढेंकली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंकली' ।

ढेंकुरी(५)†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का युद्धयंत्र । ढेलवाँस । गोफन । उ०—मार ढेंकुरी जत्र निवान । गढ़ पर पंछि न पावै जान ।—छिताई०, पृ० ५६ ।

ढेंचा—संज्ञा पुं० [देश०] चकवँड़ की तरह का एक पेड़ जिसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं । हरी खाद के रूप में भी इसका प्रयोग होता है। जयंती । २ नाव के पीठे पर छाजन के लिये सन या पटवे का ठाठ ।

ढेंक(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंक] दे० 'ढेंक¹' । उ०—ढेंकि पंखि मटामरे घने । जलकुकरी आदि अनगने ।—छिताई०, पृ० ६३ ।

ढैया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढाई] १. ढाई सेर की बाट। ढाई सेर तौलने का बटखरा। २. ढाई गुने का पहाड़ा। ३ शनैश्चर के एक राशि पर स्थित रहने का ढाई वर्ष का काल।

ढोंक²—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] दे॰ 'ढोक'।

ढोंकना—क्रि॰ स॰ [अनु॰] पीना। पी जाना। (अशिष्ट या विनोद)।

ढोंका—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. पत्थर या और किसी कड़ी वस्तु का बड़ा अनगढ़ टुकड़ा। २ वह बाँस जो कोल्हू में जाट के सिरे से लेकर कोल्हू तक बँधा रहता है। ३. दो ढोली पान। चार सौ पान (तमोली)।

ढोंग—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढंग] ढकोसला। पाखंड। झूठा आडंबर।

क्रि॰ प्र॰—करना।—रचना।

ढोंगधतूरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढोंग+सं॰ धूर्त] धूर्त विद्या। धूर्तता। पाखंड।

ढोंगबाज—वि॰ [हिं॰ ढोंग+फ़ा॰ बाज] दे॰ 'ढोंगी'।

ढोंगबाजी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढोंग+फ़ा॰ बाजी] पाखंड। आडंबर। ढोंग।

ढोंगा²—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढोंगा] नाप। तौल। मान। चोंगा। उ॰—बाँस का ढोंगा, काठ की ढोकनी तथा बेंत की डलिया द्वारा नाप जोख का प्रचलन उठाकर उनके स्थान पर ताँबे का माना (आध सेर), पाथी (चार सेर) इत्यादि को प्रमाणित पैमाना माना जायगा।—नेपाल॰, पृ॰ ३१।

ढोंगी—वि॰ [हिं॰ ढोंग] पाखंडी। ढकोसलेबाज। झूठा आडंबर करनेवाला।

ढोंटा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ढोटा'।

ढोंढ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुण्ड] कपास, पोस्ते आदि का डोडा। २. कली।

ढोंढी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढोंढ] १. नाभि। धुन्नी। २. कली। ढोंढी।

[illegible]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार की मछली जो १२ इंच लंबी होती है। ढरी। ढोका।

ढोकना¹—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ ढुकना] झुकना। मग्न रहना। उ॰—दसा मदन ने राखि गुपत के चरनन ढोकत।—ब्रज॰ ग्र॰ पृ॰ ११८।

ढोका—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] १ दे॰ 'ढोंका'। २. पर्दा। खोल। उ॰—नीक भाँति के चमन (पैनल) के ढोके लगाए।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ २५८।

ढोटा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दुहितृ (=लड़की), हिं॰ ढोटी] [स्त्री॰ ढोटी] १ पुत्र। बेटा। उ॰—देखत छोट खोट नृपढोटा।—तुलसी (शब्द॰)। २ लड़का। बालक। उ॰—गोकुल के मंडल एक नागरि सों ढोटा माई पेंगियन के पैंड पैठि जी के रहे अड़ो वे।—सूर (शब्द॰)।

ढोटी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दुहितृ] लड़की। पुत्री। बालिका।

ढोटौना, ढोटौनाⓤ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढोटा] दे॰ 'ढोटा'। उ॰—स्याम बरन इक मिल्यो ढोटौना तेहि मानो मोहिनी लगाई।—सूर (शब्द॰)।

ढोड़ा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] ऊँट। (डिं॰)।

ढोड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दुहितृ] दे॰ 'ढोटी'। उ॰—दुच्ची बुच्ची ढोडियाँ संटूरी पर खोसे भुलसे पाखी सी, खिसियाए मुँह बाए।—इत्यलम्, पृ॰ २१०।

ढोना—क्रि॰ स॰ [सं॰ वोढ (=वहन करना, ले जाना), प्राकृत वर्णविपर्यय>ढोव] १ बोझ लादकर ले जाना। भार ले चलना। भारी वस्तु को ऊपर लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाना।

संयो॰ क्रि॰—देना।—ले जाना।

२. उठा ले जाना। जैसे,—चोर सारा माल ढो ले गए।

ढोर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढुरना] गाय, बैल, भैंस आदि पशु। चौपाया। मवेशी। उ॰—जब हरि मधुबन को जु सिधारे धीरज धरत न ढोर।—सूर (शब्द॰)।

ढोरनाⓤ¹—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ढारना] १ पानी या और कोई द्रव पदार्थ गिराकर बहाना। ढरकाना। ढालना उ॰—(क) रीते भरे, भरे पुनि ढोरै, चाहे फेरि भरे। कबहुँक तृण बूड़ै पानी में कबहूँ सिला तरै।—सूर (शब्द॰)। (ख) जननी प्रति रिस जानि बधायो चितै वदन लोचन जल ढोरै।—सूर (शब्द॰)। (ग) वै अक्रूर क्रूर कृत जिनके रीते भरे भरे गहि ढोरे।—सूर (शब्द॰)। २ लुढ़काना। ३ फेरना। डालना। उ॰—यमुनाप्रसाद ने आँखें ढोरी। कहा, 'पहलवान, मामला हमारा नहीं और अब बिलकुल वक्त नहीं रहा'।—काले॰, पृ॰ ४१। ४. डुलाना। हिलाना। उ॰—(क) चँवर चारु ढोरत ह्वै ठाढ़ी।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २१३। (ख) लेकर चाउ विजन कर ढोरौं।—रसरतन, पृ॰ २१५। (ग) पान खवावत चरन पलोटत ढारत बिजन चौर।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ५६६। ५ नम्र करना। नमाना। नीचा करना। उ॰—ऐसो बचनु सुन्यो सुलितान। सीसु ढोरि कै मूँदे कान।—छिताई॰, पृ॰ ६१।

ढोरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ढोर'।

ढोरी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढोरना] १ ढालने का भाव। ढरकाने की क्रिया या भाव। उ॰—कनक कलस केसरि भरि ल्याई ढारि दियो हरि पर ढोरी की। अति आनंद भरी ब्रज युवती गावति गीत सबै होरी की।—सूर (शब्द॰)। २. रट। धुन। बान। लौ। लगन। उ॰—सूरदास गोपी बड़भागी। हरि दरसन की ढोरी लागी। (ख) ढोरी लाई सुनन की, कहि गोरी मुसकात। थोरी थोरी सकुच सों भोरी भोरी बात।—बिहारी (शब्द॰)।

क्रि॰ प्र॰—लगना।

ढोरी²—वि॰ [हिं॰ ढोरना] १ ढुरी हुई। ढली हुई। २ हिलती डुलती। मत्त। उ॰—ब्रज वनिता बौरी भई ढोरी फिरत निलाज। रस ढोरी दौरी फिरत निरखत हैं ब्रजराज।—ब्रज॰ ग्रं॰, पृ॰ ३१।

ढोल¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का बाजा जिसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है।

विशेष—लकड़ी के गोल कटे हुए लंबोतरे कुदे को भीतर से खोखला करते हैं और दोनों ओर मुँह पर चमड़ा मढ़ते हैं। छोटा ढोल हाथ से और बड़ा ढोल लकड़ी से बजाया जाता है। दोनों ओर के चमड़ों पर दो भिन्न भिन्न प्रकार का शब्द होता है। एक ओर तो 'ढब ढब' की तरह गभीर ध्वनि निकलती है और दूसरी ओर टनकार का शब्द होता है।

यौ०—ढोल ढमक्का = बाजा गाजा। धूम धाम।

मुहा०—ढोल पीटना या बजाना = घोषणा करना। प्रसिद्ध करना। प्रकट करना। प्रकाशित करना। चारों ओर कहते या जताते फिरना। उ०—(क) नाचो घूँघट खोलि, ज्ञान की ढोल बजाओ।—पलटू०, पृ० ६१। (ख) ब्रजमंडल में बदनामी के ढोल, निसंक ह्वै आज बजै तौ बजै।—नट०, पृ० ५८।

२ कान का परदा। कान की वह झिल्ली जिसपर वायु का आघात पड़ने से शब्द का ज्ञान होता है।

ढोल(पु)³—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] एक वाद्य। दे० 'ढोल'—१। उ०—नाचो घूँघट खोलि ज्ञान की ढोल बजाओ।—पलटू०, पृ० ६१

ढोलक—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] छोटा ढोल। ढोलकी।

ढोलकिया—संज्ञा पुं० [हिं० ढोलक] ढोल बजानेवाला।

ढोलकिहा†—संज्ञा पुं० [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलकिया'। उ०—फटत ढोल वह ढोलकिहन की अँगुरिन तर तर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३६।

ढोलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलक'।

ढोलढमक्का—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल + अनु० ढमक्का] दे० 'ढोल' का यौ०।

ढोलन¹—संज्ञा पुं० [सं० ढोलन] दे० 'ढोलना'²।

ढोलना²—संज्ञा पुं० [अप०] दूल्हा। प्रिय। प्रियतम। उ०—ढोलन मेरा भावता वेगि मिलहु मुझ आइ। सुंदर व्याकुल विरहनी तलफि तलफि जिय जाय।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८६।

ढोलनहार—वि० [हिं० ढोलना] ढालने या ढलकानेवाला। उ०—मन नित ढोलनहार।—कबीर ग्रं०, पृ० १८।

ढोलना¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] १ ढोलक के आकार का छोटा जंतर जो तागे में पिरोकर गले में पहना जाता है। उ०—आने गढि सोना ढोलना पहिराए चतुर सुनार।—सूर (शब्द०)। २ ढोल के आकार का बड़ा बेलन जिसे पहिए की तरह लुढ़का कर सड़क का कंकड़ पीटते या खेत के ढेले फोड़कर जमीन चौरस करते हैं।

ढोलना²—संज्ञा पुं० [सं० दोलन] बच्चों का छोटा झूला। पालना।

ढोलना³†—क्रि० स० [सं० दोलन] १ ढरकाना। ढालना। उ०—(क) रे घटवासी, मैंने वे घट तेरे ही चरणों पर ढोले, कौन तुम्हारी बातें खोले।—हिमत०, पृ० २६। (ख) चोवा फेरे कूँपले ढोली साहिब सीस।—ढोला०, दू० ५६२। २ इधर उधर हिलाना। डुलाना। झलना। जैसे, चँवर ढोलना।

ढोलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दोलन] बच्चो का झूला। पालना। उ०—अगर चंदन को पालनो गढ़ई गुर ढार सुढार। लै आयो गढ़ि ढोलनी बिसकर्मा सो सुतधार।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह झूला रस्सी से लटका हुआ एक छोटा घेरेदार खटोला सा होता है।

ढोलवाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] दे० 'ढुलवाई'।

ढोला—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] १ बिना पैर का रेंगनेवाला एक प्रकार का छोटा सुफेद कीड़ा जो आध अंगुल से दो अंगुल तक लंबा होता है और सड़ी हुई वस्तुओं (फल आदि) तथा पौधों के हरे डंठलों में पड़ जाता है। २ वह हद या छोटा चबूतरा जो गाँवों की सीमा सूचित करने के लिये बना रहता है। हद का निशान।

यौ०—ढोलाबंदी।

३ गोल मेहराब बनाने का डाट। लदाव। ४ पिंड। शरीर। देह। उ०—जो लगि ढोला तौ लगि बोला तौ लगि धनव्यवहार।—कबीर (शब्द०)। ५ डंका या दमामा। उ०—वामसेनि राजा तब बोला। चहुँ दिसि देहु जुद्ध कहँ ढोला।—हिंदी प्रेम०, पृ० २२३।

ढोला²—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, दुल्लह, राज०, प्रं ढोला] १ पति। प्यारा। प्रियतम। २ एक प्रकार का गीत। ३ मूर्ख मनुष्य। जड़।

ढोलिअरा‡—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—ढेलिअरा के होलें—होलें ढोलु बजाइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१८।

ढोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] दे० 'ढोल'। उ०—संग राधिका सुजान गावत सारंग तान, बजत बाँसुरी मृदंग बीन ढोलिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३६३।

ढोलिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलिया] ढोल बजानेवाली। डफालिन। उ०—नटिनि डोमिनी ढोलिनी सहनाइनि भेरिकारि। निरतंत तत विनोद सऊं बिहँसत खेलत नारि।—जायसी (शब्द०)।

ढोलिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] [स्त्री० ढोलिनी] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—मीर बड़े बड़े जात बहे तहाँ ढोलिये पार लगावत को है।—ठाकुर (शब्द०)।

ढोलिया(पु)²—[हिं० ढुलकना या ढुलना] एक जगह स्थिर न रहनेवाला। गतिशील। रमता। उ०—ढोलिया साधु सदा ससारा।—धरनी०, पृ० ४१।

ढोली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोल] २०० पानों की गड्डी। उ०—ढोलिन ढोलिन पान बिकाना भीटन के मैदाना।—कबीर (शब्द०)।

ढोली²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठोली, ठोली] हँसी। दिल्लगी। ठठोली। ठट्ठा। उ०—सूर प्रभु की नारि राधिका नागरी चरचि लीनो मोहिं करवि ढोली।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ढोव—संज्ञा पुं० [हिं० ढोवना] वह पदार्थ जो किसी मंगल के अवसर पर लोग सरदार या राजा को भेंट ले जाते हैं। डाली। नजर उ०—लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार।—तुलसी (शब्द०)।

ढोवना†—क्रि० स० [हिं० ढोवा] दे० 'ढोना'।

ढोवा†¹—संज्ञा पुं० [?] धावा। आक्रमण। हमला। उ०—पंच पंच मन की हार्थनि गुरज। ढोवा ढारि ढहावै बुरज।—छिताई०, पृ० ३४। (ख) निसि वासर ढोवा करै सोणित बहै प्रवाह।—छिताई०, पृ० ४२।

ढोवा†²—संज्ञा पुं० [हिं० ढोना] १ ढोए जाने की क्रिया। ढोवाई। २. लूट। उ०—सुनहि सुन सँवरि यह रोवा। कस होइहि जो होइहि ढोवा।—जायसी (शब्द०)।

ढोवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलाई] दे० 'ढुलाई'।

ढोहना—क्रि० स० [हिं० टोह] टोह लेना। खोजना।

ढौंचा—संज्ञा पुं० [सं० अर्द्ध, प्रा० अद्ध+हिं० चार] वह पहाड़ा जिसमें क्रम से एक एक अंक का साढ़े चार गुना अंक बतलाया जाता है। साढ़े चार का पहाड़ा।

ढौंसना—क्रि० अ० [अनु०, हिं० धौंस] मानदध्वनि करना। उ०—तियनि को तल्ला पिय तियन पियल्ला त्यागे ढौंसत प्रबल्ला मल्ला धाए राजद्वार को।—रघुराज (शब्द०)।

ढौकन—संज्ञा पुं० [सं०] घूस। रिश्वत।

ढौकना—क्रि० स० [देश०] पीना।—(अशिष्ट)।

ढौकित—वि० [सं०] समीप या निकट लाया हुआ [को०]।

ढौरी(पु)†²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] रट। धुन। लौ। लगन। उ०—(क) रसिक सिर मौर ढौरि लगावत गावत राधा राधा नाम।—सूर (शब्द०)। (ख) रूखिए खात नहीं अनखात भखैं दिन राति रही परि ढौरी।—देव (शब्द०)।

ढौरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरना] दे० 'ढुर्री'।

ण

ण—हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का पंद्रहवाँ व्यंजन। इसका उच्चारण-स्थान मूर्धा है। इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न स्पृष्ठ और सानुनासिक है। बाह्य प्रयत्न संवार नाद घोष और अल्पप्राण है। इसका संयोग मूर्धन्य वर्ण, अंतस्थ तथा म और ह के साथ होता है।

ण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ बिंदुदेव। एक बुद्ध का नाम। २. आभूषण। ३ निर्णय। ४. ज्ञान। ५. शिव का एक नाम। ६ पानी का घर। ७ दान। ८ पिंगल में एक गण का नाम। वि० दे० 'जगण'। ९ बुरा व्यक्ति। खराब आदमी (को०)। १०. अस्वीकारसूचक शब्द। न। नहीं (को०)।

ण²—वि० गुणरहित। गुणशून्य।

णगण—संज्ञा पुं० [सं०] दो मात्राओं का एक मात्रिक गण। इसके दो रूप हो सकते हैं—जैसे, 'श्री (ऽ) और हरि' (।।)।

णय—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मलोक का एक समुद्र [को०]।

त

त—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का १६वाँ और तवर्ग का पहला अक्षर जिसका उच्चारणस्थान दंत है। इसके उच्चारण में विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न लगते हैं। इसके उच्चारण में आधी मात्रा का समय लगता है।

त—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाव। नौका। २ पुण्य। पवित्रता।

तंक—संज्ञा पुं० [सं० तङ्क] १ भय। डर। वह दुःख जो किसी प्रिय के वियोग से हो। ३ पत्थर काटने की टाँकी। ४ पहनने का कपड़ा। ५. कष्टपूर्ण जीवन। विपत्तिमय जीवन (को०)।

तंकन—संज्ञा पुं० [सं० तङ्कन] कष्टमय जीवन। दुःख के साथ जीवन व्यतीत करना [को०]।

तंका(पु)—वि० [हिं० तंक] भयकारी। आतंक उत्पन्न करनेवाला। उ०—नरवल भो चित्तौड़ सु तंका।—हु० रासो, पृ० ५६।

तंग¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़ों की जीन कसने का तस्मा। घोड़ों की पेटी। कसन।

तंग²—वि० १ कसा। दृढ़। २ आजिज। दुखी। दिक। विकल। हैरान।

मुहा०—तंग आना, तंग होना = घबरा जाना। थक जाना। तंग करना = सताना। दुःख देना। हाथ तंग होना = पल्ले पैसा न होना। धनहीन होना।

३ सँकरा। संकुचित। पतला। चुस्त। संकीर्ण। ओछा। छोटा। सिकुड़ा हुआ। सकेत। उ०—कहै पदमाकर त्यों उन्नत उरोजन पै तंग अँगिया है तनी तनिन तनाइकै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२६।

तंगदस्त—वि० [फ़ा०] १. कृपण। कंजूस। २ दरिद्री। धनहीन। गरीब।

तंगदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. कृपणता। कंजूसी। २. दरिद्रता। धनहीनता। गरीबी।

तंगदिल—वि० [फ़ा] कंजूस। उ०—हुआ मालूम यह मुझे से हमको। जो कोई जरदार है सो तंगदिल है।—कविता को०, भाग० ४, पृ० ३०।

तंगनजर—वि० [फ़ा० तंग+अ० नजर] १ तुच्छ दृष्टि का। सीमित दृष्टिवाला। बहुत कम देखनेवाला। उ०—उसने उनकी तुलना उन तंगनजर चीटियों से की, जो किसी प्रतिमा के सौंदर्य को इसलिये नहीं देख पातीं क्योंकि उसपर रेंगते समय वे केवल उसके छोटे मोटे उतार चढ़ावों पर ही दृष्टि केंद्रित रखती हैं।—प्रेम० और गोर्की, पृ० 'च'। २ अनुदार। दकियानूस।

तंगनजरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तंगनजर+ई (प्रत्य०)] १. दृष्टि की संकीर्णता। दृष्टि की अल्पता। २. अनुदारता। दकियानूसी।

तंगहाल—वि० [फ़ा०] १. निर्धन । गरीब । २ विपद्‌ग्रस्त । कष्ट में पड़ा हुआ । ३ बीमार । रोगग्रस्त । मरणासन्न ।

तगहाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तग+अ० हाल+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. तग होने की स्थिति । कठिनाई । २ अभाव । ३ परेशानी । दिक्कत । ४ अर्थाभाव की स्थिति [को०] ।

तंगा—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का पेड । २. अधन्ना । डबल पैसा ।

तंगिश—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तगी' ।

तंगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ तग या सँकरे होने का भाव । सकीर्णता । सकोच । २ दु ख । तकलीफ । क्लेश । ३ निर्धनता । गरीबी । ४ कमी । उ०—वध ते निर्बंध कीन्हा तोड सब तगी । कहै कबीर अगम गम कीया नाम रग रगी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७७ ।

तंजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियाना] दे० 'ताजन' । उ०—जल बिनु पदुम प्रानि बिनु चपा विद्या चतुर घोड बिनु तजन ।—स० दरिया, पृ० ६० ।

तंजेब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनज़ेब] एक प्रकार का महीन और बढिया मलमल ।

तंड¹—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] नृत्य । नाच । उ०—बहुत गुलाब के सुगध के समीर सने परत कुही है जल जत्रन के तड की । —रसकुसुमाकर (शब्द०) ।

तंड²—संज्ञा पुं० [सं० तण्ड] एक ऋषि का नाम ।

तंड³ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० तण्डा] १ वध । सहार । २ आक्रमण । प्रहार । उ०—जिन बीरन बसि करन दुद माराधत तडहि ।—पृ० रा० ६।५६ ।

तंडक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डक] १. खजन पक्षी । २ फेन । ३. पेड का तना । ४ वह वाक्य जिसमें बहुत से समास हों । ५. बहुरूपिया । ६ सज्जा । सजावट (को०) । ७. ऐंद्रजालिक । बाजीगर (को०) । ८ पूर्वाभ्यास अथवा पूर्व अभिनय (को०) ।

तंडनाⓟ—क्रि० स० [सं० तण्ड] नष्ट करना । समाप्त करना । उ०—तोप नगारो तडियो, असुराँ वेव समाप ।—शिखर०, पृ० ६५ ।

तंडवⓟ—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] नृत्यविशेष । एक प्रकार का नाच । जैसे,—दोऊ रति पडित अखडित करत काम तडव सो मडित कला कहूँ पूरन की ।—देव (शब्द०) ।

तंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डा] १. मार डालना । वध । २. आक्रमण । प्रहार [को०] ।

तंडि—संज्ञा पुं० [सं० तण्डि] एक बहुत प्राचीन ऋषि का नाम जिनका वर्णन महाभारत मे आया है । इनके पुत्र के बनाए हुए मंत्र यजुर्वेद मे हैं ।

तडीरⓟ—संज्ञा पुं० [सं० तूणीर] तूणीर । तरकस । उ०—तीन पनच धुनही करन सजे कटन तडीर ।—पृ० रा०, ७।७६ ।

तंडु—संज्ञा पुं० [सं० तण्डु] महादेव जी के नदिकेश्वर । नदी ।

तंडुरण—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुरण] १ चावल का पानी । २. कीड़ा मकोड़ा ।

तंडुरीण—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुरीण] १ वह पानी जिसमें चावल धोया गया हो । चावल का धोवन । २. माँड । ३ बज्र मूर्ख । बर्बर व्यक्ति । ४. कीड़ा मकोड़ा [को०] ।

तंडुल—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुल] १ चावल । २ वायबिडग । ३ तंडुली शाक । चौलाई का साग । ४. प्राचीन काल की हीरे की एक तौल जो आठ सरसों के बराबर होती थी ।

तंडुलजल—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलजल] चावल का पानी जो वैद्यक में बहुत हितकर बतलाया गया है । यह दो प्रकार से तैयार किया जाता है—(१) चावल को कूटकर अठगुने पानी मे पकाकर छान लेते हैं, यह उत्तम तडुलजल है । (२) चावल को थोडी देर तक भिगोकर छान लेते हैं । यह तंडुलजल साधारण है ।

तंडुलांबु—संज्ञा पुं०[सं० तण्डुलाम्बु]१. तडुलजल । २ माँड़ । पीच ।

तंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुला] १. वायबिडग । ककड़ी का पौधा । २ चौलाई का साग ।

तंडुलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुल] चौलाई । चौराई ।

तंडुली—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुली] १. एक प्रकार की ककड़ी । २. चौलाई का साग । ३. यवतिक्ता नाम की लता ।

तंडुलीक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीक] चौलाई का साग ।

तंडुलीय—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीय] चौलाई का साग ।

तंडुलीयक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीयक] १. वायबिडग । २. चौलाई का साग ।

तंडुलीयिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुलीयिका] वायविडंग ।

तंडुलू—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुल] वायविडंग । बिडग ।

तंडुलेर—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेर] चौलाई का साग ।

तडुलेरक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेरक] चौलाई का साग ।

तंडुलोत्थ—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थ] चावल का पानी । दे० 'तडुलजल' ।

तंडुलोत्थक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थक] दे० 'तडुलोत्थ' [को०] ।

तंडुलोदक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोदक] चावल का पानी । दे० 'तडुलजल' ।

तडुलौघ—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलौघ] १. एक प्रकार का बाँस । कटवाँसी । २ अनाज का ढेर (को०) ।

तंत¹ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० तन्तु] 'तन्तु' । उ०—किंगरी हाथ गहे बैरागी । पाँच तत धुनि यह एक लागी ।—जायसी (शब्द०)।

तंत²—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरंत] किसी बात के लिये जल्दी । आतुरता । उतावली । उ०—ध्यान की मूरति आँखि ते आगे जानि परत रघुनाथ ऐसे कहति हैं तत सों ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

तंत³—संज्ञा पुं० [सं० तत्व] दे० 'तत्व' । उ०—योगिहि कोह न चाही तब न मोहि रिस लाग । योग तत ज्यों पानी काहि करे तेहि आग ।—जायसी (शब्द०) ।

तंत⁴—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों । जैसे,—सितार, बीन, सारगी । उ०—(क) बटिनी

डोमिनि ढोलिनी सहनाइनि भेरिकार। निरतत तत विनोद सउँ विहँसत खेलति नारि।—जायसी (शब्द०)। (ख) तंनन की झनकार बजत झीनी झीनी।—सतवाणी०, पृ० २३। २. क्रिया। उ०—जनु उन योग तंत अब खेला।—जायसी (शब्द०)। ३ तंत्रशास्त्र। उ०—कह जीउ तंत मंत सउ हेरा। गयउ हेराय सो वह भा मेरा।—जायसी (शब्द०) ४ इच्छा। प्रबल कामना। उ०—(क) दिसि परजत भनत ख्यात जय विजय तंत जिय।—गोपाल (शब्द०)। (ख) बुद्धिमंत दुतिमंत तंत जय मय निरधारत।—गोपाल (शब्द०)। ५ वश। अधीनता। उ०—त्यों पदमाकर आइगो कंत इकंत जबै निज तंत मैं जानी। पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—दे० 'तंत्र'।

तंत[6]—वि० जो तौल में ठीक हो। जो वजन में बराबर हो।

तंतमंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रमन्त्र] दे० 'तंत्र मंत्र'। उ०—कह जिउ तंत मंत सौं हेरा। गयउ हिराय जो वह भा मेरा—जायसी (शब्द०)।

तंतरी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्री] वह जो तारवाले बाजे बजाता हो। उ०—आयो दुसह बसंत री कंत न आए बीर। जन मन वेधत तंतरी मदन सुमन के तीर।—शृं० सत० (शब्द०)।

तंताल(पु)—संज्ञा पुं० [?] पाताल। उ०—नभ नाल तंताल धराल मिले त्रयलोक सुरप्पति विद्धि सही।—राम० धर्म०, पृ० ३००।

तंति—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्ति] १ गौ। गाय। २. रस्सी (को०)। ३. पंक्ति (को०)। ४ शृंखला (को०)। ५ फैलाव। प्रसार (को०)।

तंति[2]—संज्ञा पुं० जुलाहा।

तंति(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्री] १ तंत्री। वीणा। उ०—नृत्तन एक संगीत भंति। नारद रिझझ कर धरत तंति।—पृ० रा०, ६।४१। २ ताँत। प्रत्यंचा। डोरी। गुण। उ०—नव पुहुपन के धनुप बनावे। मधुप पाँति तिनि तंति चढ़ावे।—नंद० ग्रं०, पृ० १६४।

तंतिपाल—संज्ञा पुं० [तन्तिपाल] १ सहदेव का वह नाम जिससे वह अज्ञातवास के समय विराट के यहाँ प्रसिद्ध थे। २. वह जो गौ की रक्षा या पालन करता हो।

तंती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तंत्री'। उ०—तंतिनाद। तँबोल रस सुरहि सुगंधत जोह।—ढोला०, दू० २२३।

तंतु[1]—संज्ञा पुं० [सं० तन्तु] १. सूत। डोरा। तागा।

यौ०—तंतुकीट।

२. ग्राह। ३ संतति। संतान। बाल बच्चे। ४. विस्तार। फैलाव। ५ यज्ञ की परंपरा। ६. वंशपरंपरा। ७ ताँत। ८ मकड़ी का जाला।

तंतु[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] तंत्र। उ०—जिहि मुरि औषद लगे, जाहि तंतु नहिं मंतु। पिय पऊष पावै नहीं, व्याधि कहत इमि जंतु।—रस र०, पृ० ५०।

तंतुक[1]—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुक] १ सरसों। २. (केवल समासांत में) सूत्र। रस्सा (को०)। ३ सर्प (को०)।

तंतुक[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी।

तंतुकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुकाष्ठ] जुलाहों की एक लकड़ी जिसे तूली कहते हैं।

तंतुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी।

तंतुकीट—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुकीट] १. मकड़ी। २ रेशम का कीड़ा।

तंतुजाल - संज्ञा पुं० [सं० तन्तुजाल] नसों का समूह (वैद्यक)।

तंतुण—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुण] १. एक बड़ी मछली। २ मगर (को०)।

तंतुन—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुन] दे० 'तंतुण' (को०)।

तंतुनाग—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुनाग] मगर।

तंतुनाभ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुनाभ] मकड़ी।

तंतुनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुनिर्यास] ताड़ का पेड़।

तंतुपर्व—संज्ञा पुं० [सं० तंतुपर्व्वन्] श्रावण की पूर्णिमा जिस दिन राखी बाँधी जाती है। रक्षाबंधन।

तंतुभ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुभ] १ सरसों। २ बछड़ा।

तंतुमत्—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुमत्] आग।

तंतुमान्—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुमत्] आग (को०)।

तंतुर—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुर] मृणाल। भसींड़। मुरार। कमल की जड़। कमलनाल।

तंतुल—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुल] दे० 'तंतुर'।

तंतुवर्धन[1]—वि० [सं० तन्तुवर्धन] जाति को बढ़ानेवाला (को०)।

तंतुवर्धन[2]—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ शिव (को०)।

तंतुवादक—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवादक] तंत्री। बीन आदि तार के बाजे बजानेवाला। उ०—बहुरि तंतुवादक रघुराई। गान करन में निपुन बनाई।—रामाश्वमेध (शब्द०)।

तंतुवाद्य—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाद्य] १ तारवाला बाजा (को०)।

तंतुवाप—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाप] १ ताँत। २. ताँती। दे० 'तंतुवाय'।

तंतुवाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ कपड़े बुननेवाला। ताँती।

विशेष—भिन्न भिन्न स्मृतियों में इनकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार से बतलाई गई है। किसी में इन्हें मणिबंध पुरुष और मणिकार स्त्री से और किसी में वैश्य पिता और क्षत्रियाणी माता के गर्भ से उत्पन्न बतलाया गया है। इनकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ भी हैं।

२ मकड़ी। उ०—आकाश जाल सब ओर तना, रवि तंतुवाय है आज बना। करता है पदप्रहार वही, मक्खी सी भिन्ना रही मही।—साकेत, पृ० २६७।

तंतुवायदंड—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवायदण्ड] करघा (को०)।

तंतुविग्रह—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुविग्रह] केले का पेड़।

तंतुविग्रहा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुविग्रहा] केले का पेड़ (को०)।

तंतुशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुशाला] जुलाहे का कपड़ा बुनने का स्थान (को०)।

तंतुसंतत—वि० [सं० तन्तुसन्तत] बुना हुआ [को०]।

तंतुसंतति—संज्ञा स्त्री [सं० तन्तुसन्तति] बुनाई [को०]।

तंतुसतान—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुसन्तान] बुनाई [को०]।

तंतुसार—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुसार] सुपारी का पेड।

तंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १ तंतु। तांत। २ सूत। ३. जुलाहा। ४. कपडा बुनने की सामग्री। ५ कपडा। वस्त्र। ६ कुटुंब के भरण और पोषण आदि का कार्य। ७ निश्चित सिद्धांत। ८ प्रमाण। ९. औषध। दवा। १० झाड़ने फूँकने का मत्र। ११. कार्य। १२ कारण। १३ उपाय। १४ राजकर्मचारी। १५ राज्य। १६ राज का प्रबंध। १७. सेना। फौज। १८ अधिकार। १९. कार्य का स्थान। पद। २०. समूह। २१ प्रसन्नता। आनंद। २२ घर। मकान। २३. धन। संपत्ति। २४. अधीनता। परवश्यता। २५. श्रेणी। वर्ग। कोटि। २६ दल। २७. उद्देश्य। २८ कुल। खानदान। २९ शपथ। कसम। ३० हिंदुओं का उपासना संबंधी एक शास्त्र।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि यह शास्त्र शिवप्रणीत है। यह शास्त्र तीन भागों मे विभक्त है—आगम, यामल और मुख्य तंत्र। वाराही तंत्र के अनुसार जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, सब कार्यों के साधन, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन और चार प्रकार के ध्यानयोग का वर्णन हो, उसे आगम और जिसमें सृष्टितत्व, ज्योतिष, नित्य कृत्य, क्रम, सूत्र, वर्णभेद और युगधर्म का वर्णन हो उसे यामल कहते हैं, और जिसमे सृष्टि, लय, मंत्रनिर्णय, देवताओं के संस्थान, यंत्रनिर्णय, तीर्थ, आश्रम, धर्म, कल्प, ज्योतिष संस्थान, व्रतकथा, शौच और अशौच, स्त्री पुरुष-लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन हो, वह तंत्र कहलाता है। इस शास्त्र का सिद्धांत है कि कलियुग में वैदिक मंत्रों, जपों और यज्ञों आदि का कोई फल नहीं होता। इस युग में सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये तंत्रशास्त्र में वर्णित मंत्रों और उपायों आदि से ही सहायता मिलती है। इस शास्त्र के सिद्धांत बहुत गुप्त रखे जाते हैं और इसकी शिक्षा लेने के लिये मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है। आजकल प्राय मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि के लिये तथा अनेक प्रकार की सिद्धियों आदि के साधन के लिये ही तंत्रोक्त मंत्रों और क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। यह शास्त्र प्रधानत शाक्तों का ही है और इसके मंत्र प्राय अर्थहीन और एकाक्षरी हुआ करते हैं। जैसे,—ह्रीं, क्लीं, श्रीं, स्यीं, शूं, क्रूं आदि। तांत्रिकों का पंचमकार—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—और चक्रपूजा प्रसिद्ध है। तांत्रिक सब देवताओं का पूजन करते हैं पर उनकी पूजा का विधान सबसे भिन्न और स्वतंत्र होता है। चक्रपूजा तथा अन्य अनेक पूजाओं मे तांत्रिक लोग मद्य, मांस और मत्स्य का बहुत अधिकता से व्यवहार करते हैं और धोबिन, तेलिन आदि स्त्रियों को नंगी करके उनका पूजन करते हैं। यद्यपि अथर्ववेद संहिता मे मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण आदि का वर्णन और विधान है तथापि आधुनिक तंत्र का उसके साथ कोई संबंध नहीं है। कुछ लोगों का विश्वास है कि कनिष्क के समय मे और उसके उपरांत भारत में आधुनिक तंत्र का प्रचार हुआ है। चीनी यात्री फाहियान और हुएनसांग ने अपने लेखों में इस शास्त्र का कोई उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तंत्र का प्रचार कब से हुआ पर तो भी इसमें संदेह नहीं कि यह ईसवी चौथी या पाँचवीं शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है। हिंदुओं की देखादेखी बौद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और तत्संबंधी अनेक ग्रंथ बने। हिंदू तांत्रिक उन्हें उपतंत्र कहते हैं। उनका प्रचार तिब्बत तथा चीन मे है। वाराही तंत्र में यह भी लिखा है कि जैमिनि, कपिल, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि ऋषियों ने भी कई उपतंत्रों की रचना की है।

तंत्रक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रक] नया कपड़ा।

तंत्रकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रकाष्ठ] दे० 'तंतुकाष्ठ' [को०]।

तंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रण] शासन या प्रबंध आदि करने का काम।

तंत्रता—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रता] कई कार्यों के उद्देश्य से कोई एक कार्य करना। कोई ऐसा कार्य करना जिससे अनेक उद्देश्य सिद्ध हों। जैसे, यदि किसी ने अनेक प्रकार के पाप किए हों तो उनमें प्रत्येक पाप के लिये प्रायश्चित्त न करके एक ऐसा प्रायश्चित्त करना जिससे सब पाप नष्ट हो जायँ अथवा बार बार अस्पृश्य होने की दशा में प्रत्येक बार स्नान न करके सबके अंत में एक ही बार स्नान कर लेना। (धर्मशास्त्र)।

तंत्रधारक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रधारक] यज्ञ आदि कार्यों में वह मनुष्य जो कर्मकांड आदि की पुस्तक लेकर याज्ञिक आदि के साथ बैठता हो।

विशेष—स्मृतियों के अनुसार यज्ञ आदि में ऐसे मनुष्य का होना आवश्यक है।

तंत्रमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र + मन्त्र] जादूगीरी। जादू टोना। २ उपाय। युक्ति। ढंग। ३. साधक द्वारा साधना में प्रयुक्त तंत्रादि।

तंत्रयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रयुक्ति] वह युक्ति जिसकी सहायता से किसी वाक्य का अर्थ आदि निकालने या समझने में सहायता ली जाय।

विशेष—सुश्रुत संहिता में तंत्रयुक्तियाँ इस प्रकार की बताई गई हैं—अधिकरण, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, प्रदेश, अतिदेश, अपवर्ग, वाक्यशेष, अर्थापत्ति, विपर्यय, प्रसंग, एकांत, अनेकांत, पूर्व पक्ष, निर्णय, अनुमत, विधान, अनागतवेक्षण, अतिक्रांतावेक्षण, संशय, व्याख्यान, स्वसंज्ञा, निर्वचन, निदर्शन, नियोग, विकल्प, समुच्चय और ऊह्य।

तंत्रवाद्य—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाद्य] तारवाले वाद्य यंत्र। जैसे, वीणा, सारंगी आदि।

तंत्रवाप—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाप] १. तंतुवाय। ताँती। २. मकड़ी।

तंत्रवाय—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाय] १. तंतुवाय। ताँती। २. मकड़ी। ३. ताँत।

तंत्रसंस्था—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रसंस्था] वह संस्था जो राज्य का शासन या प्रबंध करे। गवर्नमेंट। सरकार।

तंत्रस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रस्कन्द] ज्योतिष शास्त्र का वह अंग जिसमे गणित के द्वारा ग्रहों की गति आदि का निरूपण होता है। गणित ज्योतिष।

तंत्रस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रस्थिति] राज्य के शासन की प्रणाली।

तंत्रहोम—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रहोम] वह होम जो तंत्रशास्त्र के मत से हो।

तंत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रा] दे० 'तंद्रा'।

तन्त्रायी—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रायिन्] सूर्य [को०]।

तंत्रि—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रि] १ तंत्री। २. तंद्रा। ३. तार। तंत्र (को०)। ४. वीणा का तार (को०)। ५. नस। शिरा (को०)। ६ पूँछ। दुम (को०)। ७. विचित्र गुणों से युक्त स्त्री (को०)। ८ वीणा (को०)। ९ मधुता। गुडूची (को०)।

तंत्रिपाल—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिपाल] दे० 'तंतिपाल'।

तंत्रिपालक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिपालक] जयद्रथ का एक नाम।

तंत्रिमुख—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिमुख] हाथ की एक मुद्रा या स्थिति [को०]।

तंत्रिल—वि० [सं० तन्त्रिल] राजकार्य में दक्ष [को०]।

तंत्री[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्री] १. बीन, सितार आदि बाजों मे लगा हुआ तार। २. गुडूची। गुरुच। ३ शरीर की नस। ४ एक नदी का नाम। ५. रज्जु। रस्सी। ६. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों। तंत्र। जैसे, सितार, बीन, सारंगी आदि। ७ वीणा।

तंत्री[२]—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिन्] १ वह जो बाजा बजाता हो। २ वह जो गाता हो। गवैया। उ०—तन्त्री काम क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति। दुविधा दुदुंभि है निसिवासर उपजावति विपरीत।—सूर (शब्द०)। ३ सैनिक (को०)।

तंत्री[३]—वि० १. जिसमें तार लगे हों। तार का बना हुआ। २ जो तारवाला हो (जैसे, वीणा)। ३. तंत्र का अनुसरण करनेवाला [को०]।

तंत्री[४]—वि० [सं० तन्त्रिन्] १. आलसी। २. अधीन।

तंत्रीभांड—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रीभाण्ड] वीणा [को०]।

तंत्रीमुख—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रीमुख] हाथ की एक मुद्रा या अवस्थान।

तंद्रा(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रा] दे० 'तंद्रा'। उ०—ढारकेश तरणि जुन्हाई ज्यों तरुण तम तरुणी तपी ज्यों तरुण ज्वर तदरा।—देव (शब्द०)।

तंद्रान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया अंगूर जो क्वेटा के आसपास होता है और जिसको सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

तदिही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनदिही] दे० 'तदेही'। उ०—मगर कोशिश व तदिही करने से वह सब आसानी रफा हो सकती है।—श्रीनिवास० ग्र०, पु० ३२।

तंदुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बारहमासी घास जो ऊसर जमीन मे ही जमती है और चारे के काम मे आती है। यह ऊसर जमीन में खाद का भी काम देती है।

तंदुरुस्त—वि० [फा०] जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। जिसे कोई रोग या बीमारी न हो। निरोग। स्वस्थ।

तंदुरुस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. शरीर की आरोग्यता। निरोग होने की अवस्था या भाव। २. स्वास्थ्य।

तंदुल(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुल] १ दे० 'तडुल'। उ०—(क) तदुल माँगि दो विधाई सो दीन्हीं उपहार। फाटे बसन बाँधि कै।रजवर अति दुर्बल तनहार।—सूर (शब्द०) (ख) तिम तदुल के न्याय सों है ससृष्टि बखान। छीर नीर के न्याय सों सकर कहत सुजान।—पद्माकर ग्र०, पु० ७४। २ दे०'तडुल'। उ०—आठ श्वेत सरसों को तदुल जानिये। दश तदुल परिमाण सुगुजा मानिये।—रत्नपरीक्षा (शब्द०)।

तंदुल(पु)[२]—संज्ञा पुं० [फा० तंदूर] गर्जन। आवाज। ध्वनि। उ०—पज चिक्कार फिक्कार सबद्द। तंदुल तबल मृदंग रवद्द।—पृ० रा०, ६।१२७।

तंदुलीयक—संज्ञा पुं० [सं० तडुलीयक] चौलाई का शाक। चौराई का साग।

तंदूर—संज्ञा पुं० [फा० तनूर] अंगीठी, चूल्हे या भट्ठी आदि की तरह का बना हुआ एक प्रकार का मिट्टी का बहुत बड़ा, गोल और ऊँचा पात्र जिसके नीचे का भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है। उ०—आज तदूर से गरम रोटी उपककर भूखे की झोली में आ गिरी।—बदनवार, पृ० ५६।

विशेष—इसमें पहले लकड़ी आदि की खूब तेज आँच सुलगा देते हैं और जब वह खूब तप जाता है तब उसकी दीवारों पर भीतर की ओर मोटी रोटियाँ चिपका देते हैं जो थोड़ी देर में सिककर लाल हो जाती हैं। कभी कभी जमीन में गड्ढा खोदकर भी तदूर बनाया जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—तदूर झोंकना = भाड़ झोंकना। निकृष्ट काम करना।

तंदूरी[१]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशम जो मालदह से आता है।

विशेष—इसका रंग पीला होता है और यह अत्यंत बारीक और मुलायम होता है। यह किरची से कुछ घटिया होता है।

तंदूरी[२]—वि० [हिं० तदूर+ई (प्रत्य०)] तदूर संबंधी। जैसे, तदूरी रोटी।

तंदेही—संज्ञा स्त्री० [फा० तनदिही] १ परिश्रम। मेहनत। २. प्रयत्न। कोशिश। ३ किसी काम को करने के लिये बार बार चेतावनी। ताकीद।

क्रि० प्र०—करना। रखना।

तंद्र—वि० [सं० तद्र] १. थकित। क्लांत। २ सुस्त। आलसी [को०]।

तंद्रवाप, तद्रवाय—संज्ञा पुं० [सं० तन्द्रवाय, तन्द्रवाय] दे० 'तंतुवाय'।

तंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रा] १ वह अवस्था जिसमें बहुत अधिक नींद मालूम पड़ने के कारण मनुष्य कुछ कुछ सो जाय। उँघाई।

ऊँघ। २. वह हलकी बेहोशी जो चिंता, भय, शोक या दुर्बलता आदि के कारण हो।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इसमें मनुष्य को व्याकुलता बहुत होती है, इंद्रियों का ज्ञान नहीं रह जाता, जँभाई आती है, उसका शरीर भारी जान पड़ता है, उससे बोला नहीं जाता तथा इसी प्रकार की दूसरी बातें होती हैं। तंद्रा कटुतिक्त या कफनाशक वस्तु खाने और व्यायाम करने से दूर होती है।

क्रि० प्र०—आना।

तंद्रालस—वि० [सं० तन्द्रा + अलस] १ तंद्रालीन। आलस्ययुक्त। सुस्त। २ क्लांत। थकित। ३ निद्रित। उ०—भीतर नदराम और प्रेमा का स्नेहालाप बंद हो चुका था। दोनों तंद्रालस हो रहे थे।—इंद्र०, पृ० २२।

तंद्रालु—वि० [सं० तन्द्रालु] जिसे तंद्रा आती हो।

तंद्रि—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रि] दे० 'तंद्रा'।

तंद्रिक—संज्ञा पुं० [सं० तन्द्रिक] एक प्रकार का ज्वर [को०]।

तंद्रिक सन्निपात—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा सन्निपात ज्वर जिसमें उँघाई विशेष आए, ज्वर वेग से चढ़े, प्यास विशेष लगे, जीभ काली होकर खुरखुरी हो जाय, दम फूले, दस्त विशेष हों, जलन न हो और कान में दर्द रहे। इसकी अवधि २५ दिन है।

तंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रिका] दे० 'तंद्रा'।

तंद्रित—वि० [सं० तन्द्रित] तंद्रा युक्त। अलसाया हुआ। उ०—थक तंद्रित रात रोग है, अब जो जाग्रत है वियोग है।—साकेत, पृ० ३२१।

तंद्रिता—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रिता] तंद्रा में होने का भाव।

तंद्रिल—वि० [सं० तन्द्रिल] १ जिसे तंद्रा आती हो। आलसी। २. तंद्रा या आलस्य से युक्त। ३ अलसाया हुआ। तंद्रित। सुस्त। उ०—तंद्रिल तरुतल, छाया शीतल, स्वप्निल मर्मर। हो साधारण खाद्य उपकरण, सुरा पात्र भर।—मधुज्वाल, पृ० ६०।

तंद्री[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्री] १ तंद्रा। २ भृकुटी। भौंह।

तंद्री[2]—वि० [सं० तन्द्रिन्] १. थका हुआ। क्लांत। २ आलसी [को०]

तंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्पा] गौ। गाय।

तंफना—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन] स्तंभना। स्तंभित होना। उ०—धरि ध्यान ध्यान तिन अगनि ईस। पडे सु जग्गि तफै जगीस।—पृ० रा० १।४८८।

तंबा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्बा] गौ। गाय।

तंबा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० तंबान] बहुत चौड़ी मोहरी का एक प्रकार का पायजामा। उ०—तंबा सूथन सरो जाँघिया तनियाँ धवला। पगरी चीरा ताजगोस बदा सिर अगला।—सूदन (शब्द०)।

तंबाकू—संज्ञा पुं० [अं० टोबैको] दे० 'तमाकू'।

तंबाकूगर—संज्ञा पुं० [हिं० तंबाकू + फ़ा० गर] तमाकू बनानेवाला।

तंबालू[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा। उ०—निकस आया मूँ तबालु के सार।—दक्खिनी० पृ० ६०।

तंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्बिका] गौ। गाय।

तंबिया—संज्ञा पुं० [हिं० ताँबा + इया (प्रत्य०)] १ ताँबे का बना हुआ छोटा तसला या इसी प्रकार का और कोई गोल बरतन। २. किसी प्रकार का तसला।

तंबीर—संज्ञा पुं० [सं० तम्बीर] ज्योतिष का एक योग। उ०—होय तबीर जब कठिन कुंदी करै चामदल कष्ट तहाँ परै गाढ़ी।—राम० धर्म०, पृ० ३८१।

तंबीह—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ ऐसी सूचना या क्रिया आदि जिसके कारण कोई मनुष्य आगे के लिये सावधान रहे। नसीहत। शिक्षा। २ दंड। सजा। (लश०)।

तंबू—संज्ञा पुं० [हिं० तनना] १. कपड़े, टाट, कनवास, आदि का बना हुआ वह बड़ा घर जो खंभों और खूँटों पर तना रहता है और जिसे एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान तक ले जा सकते हैं। खेमा। डेरा। शिविर। शामियाना।

विशेष—साधारणतः तंबू का व्यवहार जंगलों में शिकार आदि के समय रहने अथवा नगरों में सार्वजनिक सभाएँ, खेल, तमाशे और नाच आदि करने के लिये होता है।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—तानना।

२ एक प्रकार की मछली जो बाँस की तरह होती है।

तंबुआ[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तम्बू] दे० 'तंबू'। उ०—हाथी घोड़ा तंबुआ आवै केहि कामा। फूलन सेज बिछावते फिर गोर मुकामा।—पलटू०, भा०, ३, पृ० ६७।

तंबूर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का छोटा ढोल।

तंबूर[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंबूरा'।

तंबूरची—संज्ञा पुं० [फ़ा० तम्बूर+ची (प्रत्य०)] तंबूर बजानेवाला।

तंबूरा—संज्ञा पुं० [हिं० तानपूरा या तुम्बुरु (गंधर्व)] बीन या सितार की तरह का एक बहुत पुराना बाजा जो अलापचारी में केवल सुर का सहारा देने के लिये बजाया जाता है। तानपूरा। उ०—अजब तरह का बना तंबूरा, तार लगे सौ साठ रे। खूँटी टूटी तार बिलगाना कोई न पूछे बात रे।—कबीर श०, पृ० ४७।

विशेष—इससे राग के बोल नहीं निकाले जाते। इसमें बीच में लोहे के दो तार होते हैं जिनके दोनों ओर दो और तार पीतल के होते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इसे तुंबुरु गंधर्व ने बनाया था, इसी से इसका नाम तंबूरा पड़ा। इसकी जवारी पर तारों के नीचे सूत रख देते हैं जिसके कारण उनसे निकलनेवाले स्वर में कुछ झनझनाहट आ जाती है।

तंबूरा तोप—संज्ञा स्त्री० [हिं० तंबूरा + तोप] एक प्रकार की बड़ी तोप।

तंबूल[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] पान। तांबूल।

तंबेरम—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्बेरम] हाथी [डिं०]।

तंबेरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्बेरम] हाथी उ०—पानहु दीन्ह समुद्र हलोरा, लहट मनुज तवेरम घोरा -इंद्रा०, पृ० ६६।

तंबोल—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] १ दे० 'तांबू और 'तमोल'। उ०—अपु सरूप सजि झगरहिं ऐकु त न अरु तेल्लु।—अकबरी०, पृ० ३१२। २ एक प्र का पेड जिसके पत्ते लिसोड़े के पत्तों से मिलते जुल होते हैं। ३ वह धन जो बरात के समय वर को दिया ा है। (पंजाब)। ४ वह धन जो विवाह या बरात के ेते के साथ मार्गव्यय के लिये भेजा जाता है। (बु र वंड)। ५. वह खून जो लगाम की रगड के कारण घोड़े के मुंह से निकलता है। (साईस)।

क्रि० प्र०—आना।

तंबोलिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तम्बोली का स्त्री०] पा बनेवाली स्त्री। बरइन।

तंबोलिया—संज्ञा स्त्री०[हिं० तम्बूल + इया (प्रत्य०) पान के आकार की एक प्रकार की मछली जो प्राय गंगा और जमुना मे पाई जाती है।

तंबोली—संज्ञा पुं० [हिं० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] जो पान बेचता हो। पान बेचनेवाला। बरई।

तंभ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] शृंगार रस के १० वों में से एक। स्तभ। उ०—मोहति मुरति आँसू स्वेत प पुलक विवर्न कप सुरभग मुरछि परति है।—देव (शब्द० ।

न—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन] शृंगार रस के १ ात्विक भावों में से एक। स्तभन। उ०—आरभन तभन रभ परिरभन कचगृह सरभन चुंबन घनेरे ई।—देव (शब्द० ।

ावती—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्भावती या हिं०] संपूर्ण ाति की एक रागिनी जो रात सरे पहर में गाई जाती है

मोल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोल'। उ०—(क) अधराम रागु तमोल जीभ।—पृ० रासो०, पृ० ६५। (ख) दुति बसन हीर तमो र रंग। दाडिमी बीज मान तुरग।—रसरतन०, पृ० २४ ।

तँई—प्रत्य० [हिं०] दे० 'तइं ।

तँकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टकारी'।

तँगिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० तन ा] दे० 'ी'।

तँडलना(पु)—क्रि० स० [सं तएड] ोड़ना। उ०— ाह झोक आयचक, तेग आवल क र तँडला।—रा० रू०, पृ ८५।

तँबरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] 'तबला'। उ०—डीग र तँबरा बाजा, देखो फिरंगी का —पोद्दार अभि० ग्रं०, ९१।

तँबियाना—क्रि० अ० [हिं० ता] १ तावे के रग का । २. तावे के बरतन में रहने कारण किसी पदार्थ मे वि का स्वाद या गंध आ जाना

तँबुआ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तबू 'तंबू'।

तँबूरची—संज्ञा पुं० [फा० तबू ची (प्रत्य०)] दे० 'तबूरची'। उ०—कहै पदमाकर तिलंगी भीर भूगन को मेजर तँबूरची मयूर गुन गायो है।—पद्माकर ग्र०, पृ०, ३२०।

तँबोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोर'। उ०—दग अनुरागे पागे रंग तँबोर।—घनानंद, पृ० ३३४।

तँबोल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तांबूल'। उ०—मुख तँबोल रंग धारहिं रासा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६०।

तँबोलिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तम्बोली] दे० 'तंबोलिन'।

तँबोलिया—संज्ञा स्त्री०[हिं० तंबोल + इया (प्रत्य०)] दे० 'तबोलिया'।

तँबोली—संज्ञा पुं० [हिं० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] दे० 'तबोली'।

तँमोर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमोर'। उ०—मगल अरसाबे दग राजत अधर मगल रुचि रच्यो तँमोर।—घनानद, पृ० ३२६।

तँवकना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तौंकना'। उ० –तँवकि निखड खड ह्वै गयऊ।—माधवानल०, पृ० २०२।

तँवचुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] दे० 'ताम्रचूड'। उ०—गिध मजूर तँवचुर जो हारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६४।

तँवर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर' ५। उ०—कमध्वज कूरम गोड तँवर परिहार अमानो।—ह० रासो०, पृ० १२२।

तँवाना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० तमकना] आवेश में आना। क्रुद्ध होना। उ०—सवति भौजिया और जेठनिया ठाढ़ी रहलि तँवाई।—गुलाल०, पृ० ५७।

तँवार—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] १ सिर में आनेवाला चक्कर। घुमटा। घुमेर। २ हरारत। ज्वारांश।

क्रि० प्र०—आना।—खाना।

तँवारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तँवार'।

तँवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तँवार'।

तँवाना(पु)—क्रि० स० [?] १ स्तुति करना। २. प्रतीक्षा करना। उ०—राउत राना ठाढ़ तँवाही।—चित्रा०, पृ० १७६।

तँह(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तहाँ'। उ०—ललित लसैं सिर पागु तकैं, तक तँह तँह मुरझै।—नंद० ग्रं०, पृ० २०७।

त¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ नौका। नाव। २ पुण्य। ३ चोर। ४. झूठ। ५ पूंछ। दुम। ६ गोद। ७ म्लेच्छ। ८. गर्भ। ९. शठ। १० रत्न। ११. बुद्ध। १२ अमृत। १३ योद्धा (को०)। १४. रत्न (को०)। १५. एक पिंगल (को०)।

त†(पु)²—क्रि० वि० [सं० तद्, हिं० तो] तो। उ०—(क) अउ पाएउं मानुस कइ भाखा। नाहिं त पखि मूठि भर पाँखा।—जायसी (शब्द०)। (ख) हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती।—तुलसी (शब्द०) (ग) करतेहु राज त तुमहिं न दोसू। रामहिं होत सुनत सतोसू।—तुलसी (शब्द०)।

तअज्जुब—संज्ञा पुं० [अ० तअज्जुब] आश्चर्य। विस्मय। अचभा।

क्रि० प्र०—करना।—में आना।—होना।

तअम्मुल—संज्ञा पुं० [अ० तअम्मुल] १. सोच। फिक्र। विचार।

उ०—लिहाजा बिला तअमुल हँसी और मजाक की बातें कर चलते।—प्रेमघन०, भाग० २, पृ० ६३।
२. देर। भरसा। ३. सब्र। धैर्य।

तअमुल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तअम्मुल'।

तअल्लुकः—संज्ञा पुं० [अ० त अल्लुक़ह्] बहुत से मौजों की जमींदारी। बड़ा इलाका।
यौ०—तअल्लुक दार।

तअल्लुकःदार—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़ह्+फ़ा० दार (प्रत्य०)] इलाकेदार। तअल्लुके का मालिक।

तअल्लुक़दारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तअल्लुक़ह्+फा० दारी (प्रत्य०)] तअल्लुक दार का पद।

तअल्लुक—संज्ञा पुं०[अ० तअल्लुक़] १. इलाका। २ संबंध। लगाव।

तअल्लुका—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़ा] दे० 'तअल्लुकः'।

तअल्लुकादार—संज्ञा पुं० [अ० अल्लुक़ह्+फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तअल्लुक दार'।

तअल्लुकेदार—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़ह्+फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तअल्लुकादार'।

तअल्लुकेदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तअल्लुक़ह्+फ़ा० दारी(प्रत्य०)] तअल्लुक दारी'।

तअस्सुब—संज्ञा पुं० [अ०] पक्षपात, विशेषत धर्म या जाति संबंधी पक्षपात। उ०—तअस्सुब मे हुए हैवान बिलशादा।—कबीर ग्र०, पृ० २०८।

तइँ(पु)[1]—प्रत्य० [हिं० तें अथवा सं० तस् (तसिल्), त, तह्, तइ, तइँ] से। उ०—कीन्हेसि कोइ निभरोसी कीन्हेसि कोइ बरियार। छारहि तइँ सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार।—जायसी (शब्द०)।

तइँ[2]—प्रत्य० [प्रा०] प्रति। को। से। (क्व०)। जैसे,—मैने आपके तइँ कह रखा था।

तइँ(पु)[3]—सर्व [सं० त्वया, प्रा० तइँ] दे० 'तुम'। उ०—तइँ अणदिट्ठा सज्जणा, किउँ करि लग्गा पेम।—ढोला०, पृ० ६।

तइ(पु)—सर्व० [सं० तत्] वह। उस। उ०—तइ हुंती चन्दउ कियइ, लइ रचियउ आकाश।—ढोला०, दू० ४३७।

तइक—संज्ञा पुं० [देश०] चमार। (सोनारों की बोली)।

तइनात—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तैनात'।

तइस(पु)†—वि० [सं० तादृश, अप० तइस] दे० 'तैसा'।

तइसन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तइसा'। उ०—तनु पसेव पसाहनि भासलि, पुलक तइसन जागु।—विद्यापति, पृ० ३१।

तइसा†—वि० [सं० तादृश] दे० 'तैसा' या 'वैसा'। उ०—जस हीछा मन जेहि कइ सो तइसन फल पाउ।—जायसी (शब्द०)।

तईं[1]—अव्य० [सं० तावत्] लिये। वास्ते।

तईं†[2]—क्रि० वि० [हिं०] तभी। तब। उ०—हम जरा सेंडल पर पालिस करके तईं भीतर गयेन।—अभिशप्त, पृ० ८८।

तई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा या तया का स्त्री०] इसका आकार थाली का सा होता है और इसमें कड़े लगे होते हैं। इसमें प्राय. जलेबी या मालपुआ ही बनाया जाता है।

तई(पु)[2]—प्रत्य० [हिं०] ति। को। से। उ०—कोऊ कहै हरि रीझि सब तई। और मिलन का सब सुख दई।—सूर (शब्द०)।

तउ(पु)†—अव्य० [हिं० सं० तद्यपि (तद्+अपि) या तदपि अथवा तदपि (तद् अपि)] १. दे० 'तब'। २ दे० 'त्यों'। उ०—भा परलउ नियराना जउ ही। मरइ सो ता कहु पालउ तउ हीं।—जायसी (शब्द०)।

तऊ(पु)†—अव्य० [हिं० तउ] तो भी। तिस पर भी। तब भी। तथापि।

तए—वि० [हिं० तया का बहुव०] गरम किए हुए। गरमाए हुए।

तक[1]—अव्य० [सं० तावत्क, तावत्क, तक्क, तक] एक विभक्ति जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा अथवा अवधि सूचित करती है। पर्यंत। जैसे,—वे दिल्ली तक गए हैं। परसों तक ठहरो। दस रुपए तक दे देंगे। उ०—जो पल तकिया छोड़ि दृग सकै न तुव तक आइ। दरस भीख उनकौं कहाँ दीजत नहिं पहुँचाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

तक[2]—संज्ञा स्त्री० [पं० तकड़ी] १ तराजू। २. तराजू का पल्ला।

तक[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टक'। उ०—प्रति बल जल बरसत दोउ लोचन दिन भरु रहत रहत एकहि तक।—तुलसी (शब्द०)।

तकड़ा—वि० [हिं०] दे० 'तगड़ा'।

तकड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो रेतीली जमीन में बारह महीने खूब पैदा होती है। चरमरा। हेंग।
विशेष—इसे घोड़े बहुत चाव से खाते हैं। इसकी फसल साल में ६ या ७ बार हुआ करती है।

तकड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] तराजू (पंजाब)। उ०—तकड़ी के एक पलड़े में तो उसके सब पाप रखे और एक पलड़े में भगवन्नाम रखा, तो पापवाला पलड़ा हलका हो गया।—राम० धर्म०, पृ० २६५।

तकत(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्त] दे० 'तख्त'। उ०—बाट एतरि तिरहुत पइट्ठ। तकत चढ़िह सुरतान बइट्ठ।—कीर्ति०, पृ० ८५।

तकथ(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्त] दे० 'तख्त'। उ०—हाजीर हुजूर बैठे तकथ ताहीं कों क्यो न जाचिये रे।—सं० दरिया, पृ० ६८।

तकदमा—संज्ञा पुं० [अ० तक़दमह्] किसी चीज की तैयारी का वह हिसाब जो पहले से तैयार किया जाय। तखमीना।

तकदीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तक़दीर] १ अदाजा। मिकदार। २. भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत। नसीब।
यौ०—तकदीरवर।
विशेष—'तकदीर' के मुहाविरों के लिये देखो 'किस्मत' के मुहाविरे।

तकदीरवर—वि० [अ० तकदीर+फ़ा० वर] जिसका भाग्य बहुत हो। भाग्यवान्।

तकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तकना] ताकने की क्रिया या भाव। देखना। दृष्टि।

तकना†(पु)—क्रि० अ० [हिं० ताकना (सं० तर्कण)] १. देखना। निहारना। अवलोकन करना। उ०—(क) देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकइ लेऊँ केहि भाँती।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहि हरिदास जानि ठाकुरी बिहारी तकत न भोर पाट।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। (ग) तेरे लिये तजि ताकि रहे तकि हेत किए बलबीर बिहारी।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। २ शरण लेना। पनाह लेना। आश्रय लेना। उ०—देवन तके मेरु गिरि खोहा।—तुलसी (शब्द०)।

तकबर(पु)—वि० [अ० तकब्बुर] मानी। अभिमानी। उ०—शाह हुमायूँ को नंदन बदन एक देव एक बोबा तकबर।—अकबरी०, पृ० १०६।

तकबीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ किसी को बड़ा मानना या कहना। २. ईश्वर की प्रशंसा। उ०—ऊँ लोहा पीर। ताँबा तकबीर। गोरख०, पृ० ४१।

तकब्बरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [?] एक तरह की तलवार। उ०—रिपु-मलन झकोरें मुख नहिं मोरें बखतर तोरें तकब्बरी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

त[कब्]बुर—संज्ञा पुं० [अ०] १ घमंड। अभिमान। २. अकड़। ३ ३ शोखी (को०)।

[तक]मा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमगा'। २ दे० 'तुकमा'।

[तक]मील—संज्ञा स्त्री० [अ०] पूरा होने की क्रिया या भाव। पूर्णता।

[तक]रमल्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों के ऊपर से ऊन काटने का हँसिया। (गढ़वाल)।

[तक]रार—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी बात को बार बार कहना। २ हुज्जत। विवाद। ३ झगड़ा। टंटा। लड़ाई। ४ कविता में किसी वर्णन को दोहराना। ४ चावल का वह खेत जो फसल काटने के बाद फिर खाद दे के जोता गया हो। ५ वह खेत जिसमें जौ, चना, गेहूँ इत्यादि एक साथ बोया गया हो।

[तक]रारी—वि० [अ० तकरार+हिं० ई(प्रत्य०)] तकरार करनेवाला। झगड़ालू। लड़ाका।

[तक]रीब—संज्ञा स्त्री० [अ० तक्रीब] वह शुभ कार्य जिसमे कुछ लोग संमिलित हों। उत्सव। जलसा।

[तक]रीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तक़रीर] १ बातचीत। गुफ्तगू। उ०—दमे तकरीर गोया बाग में बुलबुल चहकते हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ८४७। २. वक्तृता। भाषण।

[तक]र्रुरी—संज्ञा स्त्री० [अ० तकर्रुरी] मुकर्रर होने की क्रिया या भाव। नियुक्ति।

[तक]ला—संज्ञा पुं० [सं० तर्कु] १ लोहे की वह सलाई जो सूत कातने के चरखे में लगी होती है और जिसपर सूत लिपटता जाता है। टेकुआ। २. बिटैयों की टेकुरी की सलाई जिसपर कला-बत्तू बटकर चढ़ाते जाते हैं। ३. सुनारों को सिकरी बनाने की सलाई। ४ रस्सा या रस्सी बनाने की टिकुरी।

मुहा०—किसी के तकले से बल निकालना=सारी शेखी या पाजीपन दूर करना। अच्छी तरह दुरुस्त या ठीक करना।

तकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तकला] छोटा तकला या टेकुरी।

तकलीद—संज्ञा स्त्री० [अ० तक्लीद] अनुसरण। अनुकरण। देखा देखी कोई काम करना। नकल। उ०—क्यों अंग्रेजियत की तकलीद की जाय।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१।

तकलीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तकलीफ़] १ कष्ट। क्लेश। दुःख। आपत्ति। मुसीबत। जैसे,—(क) आजकल वह बड़ी तकलीफ से अपने दिन बिताते हैं। (ख) इस तोते को पिंजड़े में बड़ी तकलीफ है। २ विपत्ति। मुसीबत।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—देना।—पाना।—भोगना।—मिलना।—सहना।

२ खेद। शोक (को०)। ३ आमय। रोग। मर्ज (को०)। ४ मनोव्यथा (को०)। ५ निर्धनता। मुफलिसी (को०)।

तकल्लुफ—संज्ञा पुं० [अ० तकल्लुफ] १ शिष्टाचार। दिखावा। दिखाने के लिये कष्ट उठाकर कोई काम करना। २ टीमटाम। बाहरी सजावट।

मुहा०—तकल्लुफ का=बहुत अच्छा। बढ़िया या सजा हुआ।

३ संकोच। पसोपेश (को०)। ४ शील संकोच। लिहाज (को०)। ५ लज्जा। शर्म (को०)। ६ बेगानगी। परायापन (को०)। ७ कष्ट सहन करना। तकलीफ उठाना (को०)।

तकवा—संज्ञा पुं० [अ० तक्वह्] संयम। इंद्रियनिग्रह। परहेजगारी। शुद्ध रहना। उ०—तूँ तो नफस सूँ तकवा राखे शरअ मुहम्मदी आवे।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

तकवाना—क्रि० स० [हिं० तकना का प्रे० रूप] ताकने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को ताकने मे प्रवृत्त करना।

तकवाहा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं ताकना] खेतों या बागो का रखवाला। देखभाल करनेवाला। निगरानी करनेवाला व्यक्ति। उ०—बड़ी चारपाई जिसपर बैठा तकवाहा।—अपरा, पृ० १६८।

तकवाही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तकवाह+ई (प्रत्य०)] १ देखभाल। रखवाली। किसी चीज की रक्षा के लिये उसपर बराबर नजर रखना। २ दे० 'तकाई'।

तकसी†—संज्ञा स्त्री० [?] नाश। दुर्दशा।

तकसीम—संज्ञा स्त्री० [अ० तक़सीम] बाँटने की क्रिया या भाव। बँटवारा। विभाजन। बँटाई। २ गणित में वह क्रिया जिससे कोई संख्या कई भागों में बाँटी जाय। बड़ी संख्या का छोटी संख्या से विभाजन। भाग।

क्रि० प्र०—देना।

यौ०—तकसीमेकार=हर एक को अलग अलग काम का बाँटना। तकसीमे मुल्क, तकसीमे वतन=देश का विभाजन या बँटवारा।

तकसीर[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० तक़सीर] १. अपराध । दोष । कसूर । २. भूल । चूक । त्रुटि । उ०—सच तो यों है कि हमें इश्क सजावार नहीं । तेरी तकसीर है क्या ।—श्यामा०, पृ० १०२ । ३ कर्तव्य में कमी (को०) । ४ न्यूनता । कमी (को०) ।

तकसीर[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ प्रचुरता । अधिकता । २. वृद्धि करना । आधिक्य करना [को०] ।

तकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना + ई (प्रत्य०)] ताकने की क्रिया या भाव । २ वह धन जो ताकने के बदले में दिया जाय ।

तकाजा—संज्ञा पुं० [अ० तक़ाजा] १ ऐसी चीज माँगना जिसके पाने का अधिकार हो । तगादा । जैसे,—जाओ, उनसे रुपयों का तकाजा करो । २ कोई ऐसा काम करने के लिये कहना जिसके लिये वचन मिल चुका हो । जैसे,—बहुत दिनों से उनका तकाजा है । चलो आज उनके यहाँ हो आएँ । ३ किसी प्रकार की उत्तेजना या प्रेरणा । जैसे, उम्र या वक्त का तकाजा । ४ आवश्यकता । जरूरत (को०) । ५. किसी काम के लिये किसी से बराबर कहना (को०) ।

यौ०—तकाजाए उम्र = (१) उम्र की माँग । (२) उम्र के लिहाज से कोई काम करना या न करना । तकाजाए वक्त = समय की माँग । किसी समय क्या करना है यह माँग ।

तकातक—क्रि० वि० [हिं० तकना] देखते हुए । देखकर निशान लेते हुए । उ०—धनुष बान ले चढ़ा पारधी धनुआ के परच नहीं है रे । सरसर बान तकातक मारे मिरगा के घाव नहीं है रे ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६९ ।

तकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकान] दे० 'थकान' या 'थकावट' ।

तकाना[1]—क्रि० स० [हिं० ताकना का प्रे० रूप] १. ताकने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना । दिखाना । २ प्रतीक्षा करना । किसी को आशा में रखना ।

तकाना[2]—क्रि० अ० किसी ओर को रुख करना । किसी ओर को भागना या जाना । जैसे, उसने घने जंगल का रास्ता तकाया ।

तकावी—संज्ञा स्त्री० [अ० तक़ावी] वह धन जो जमींदार, राजा या सरकार की ओर से गरीब खेतिहरों को खेती के औजार बनवाने, बीज खरीदने या कुआँ आदि बनवाने के लिये ऋण स्वरूप दिया जाय ।

क्रि० प्र०—बाँटना ।—देना ।

२ इस प्रकार का ऋण देने की क्रिया ।

तकित(पु)—वि० [हिं०] १. चकित । थका । २ ताकता हुआ । देखता हुआ । उ०—हिय धरक्क धुधरह वदन लोइन जल निभभ्भर । तकित चकित सभीत समग सकरिय दुख्खभर ।—पृ० रा०, ६।१०० ।

तकिया—संज्ञा पुं० [फ़ा० तकियह्] १ कपड़े का बना हुआ लंबोतरा, गोल या चौकोर थैला जिसमें रूई, पर आदि भरते हैं और जिसे सोने लेटने आदि के समय सिर के नीचे रखते हैं । बालिश । उपधान । २ पत्थर की वह पटिया आदि जो छज्जे, रोक या सहारे के लिये लगाई जाती है । मुतक्का । ३. विश्राम करने या आश्रय लेने का स्थान । ४ आश्रय । सहारा । आसरा । भरोसा । उ०—तहँ तुलसी के कौल को काको तकिया रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—तकियाकलाम ।

५ वह स्थान विशेषतः शहर के बाहर या कब्रिस्तान के पास का स्थान जहाँ कोई मुसलमान फकीर रहता हो । कब्रिस्तान का स्थान । ६. चारजामा । (लश०) ।

तकिया कलाम—संज्ञा पुं० [फा० तकियह् + अ० कलाम] दे० 'सखुनतकिया' ।

तकियागाह्—संज्ञा स्त्री० [फा० तकियह् + गाह्] फकीर का निवास । पीर या फकीर का स्थान [को०] ।

तकियादार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मजार पर रहनेवाला मुसलमान फकीर ।

तकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ धूर्त । २ औषध ।

तकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ औषध । दवा । २ एक जड़ी (को०) ।

तकी—वि० [अ० तक़ी] संयमी । इंद्रियनिग्रही ।

तकुआ—[1]—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुक] दे० 'तकला' ।

तकुआ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ताकना + उआ (प्रत्य०)] ताकनेवाला । देखनेवाला ।

तकैया†—संज्ञा पुं० [हिं० ताकना + ऐया (प्रत्य०)] ताकने या देखनेवाला ।

तकोली†—संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष, जिसे पस्सी भी कहते हैं । वि० दे० 'पस्सी' ।

तक्कर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तक्र' । उ०—कै गए मुक्कि पाइल अगय वीर छंडि तक्कर परत । दिख्खयौ लग लगावली बियौ न कोई धीरज धरत ।—पृ० रा०, १७ । ५ ।

तक्कह्(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तर्क' । उ०—सय सुपथ वर विप्र, वेद मंत्रं अधिकारिय । उभय सहस कोविद्, छंद तक्कह् अनुसारिय । पृ० रा०, १२ । ९३ ।

तक्की†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना] ताकते रहने की क्रिया या भाव । दे० 'टकटकी' ।

तक्कोल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ ।

तक्मा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्मन्] १ वसंत नामक चर्मरोग । २ शीतला देवी ।

तक्मा†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तमगा] दे० 'तमगा' ।

तक्मा†[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुकमा' ।

तक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मट्ठा । छाछ । मठा । उ०—छसकत तक्र उफनि अँग आवत नहिं जानति तेहि कालहि सों ।—सूर (शब्द०) । २ शहतूत के पेड़ का एक रोग ।

तक्रकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटा हुआ दूध । छेना ।

तक्रपिंड—संज्ञा पुं० [सं० तक्रपिण्ड] फटा हुआ दूध । छेना ।

तक्रप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषों का एक रोग जिसमें छाछ का सा श्वेत मूत्र होता है, और मट्ठे की सी गंध आती है ।

तक्रभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] कैथ । कपित्थ ।

तक्रमांस—संज्ञा पुं० [सं०] मांस का रसा। यखनी।

तक्रवामन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरंग।

तक्रसंधान—संज्ञा पुं० [सं० तक्रसन्धान] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की कांजी।

विशेष—इसे सौ टके भर छाछ मे एक एक टके भर साँभर नमक, राई और हल्दी का चूर्ण डालकर बनाते हैं। यह काँजी पहले पंद्रह दिन पड़ी रहने दी जाती है, तब तैयार होती है। ऐसा कहते हैं कि यदि २१ दिनों तक यह नित्य दो दो टक पी जाय तो तापतिल्ली अच्छी हो जाती है।

तक्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन।

तक्राट—संज्ञा पुं० [सं०] मथानी।

तक्रार—संज्ञा स्त्री० [अ० तकरार] दे० 'तकरार'।

तक्रारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक मे एक प्रकार का अरिष्ट जो मट्ठे में हड़ और आँवले आदि का चूर्ण मिलाकर बनाया जाता है।

विशेष—यह संग्रहणी रोग का नाशक और अग्निदीपक माना जाता है।

तक्राह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप।

तक्वा—संज्ञा पुं० [सं० तक्वन्] १. चोर। २ शिकारी चिड़िया [को०]।

तक्वीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ सीधा करना। २ मूल्य निश्चित करना। ३ पंचांग। जंतरी। उ०—मुनज्जिम अक्ल का देखा ताजा तक्वीम। किया है बात सूँ उस वक्त तरकीम। —दक्खिनी०, पृ० २७६।

तक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ रामचंद्र के भाई भरत का बड़ा पुत्र। २ वृक के पुत्र का नाम। ३ पतला करने की क्रिया।

तक्ष[2]—वि० काटनेवाला (केवल समासांत में प्राप्त)।

तक्षक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल के आठ नागों में से एक नाग जो कश्यप का पुत्र था और कद्रू के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

विशेष—शृंगी ऋषि का शाप पूरा करने के लिये राजा परीक्षित को इसी ने काटा था। इसी कारण राजा जनमेजय इससे बहुत बिगड़े और उन्होंने संसार भर के साँपों का नाश करने के लिये सर्पयज्ञ प्रारंभ किया। तक्षक इससे डरकर इंद्र की शरण में चला गया। इसपर जनमेजय ने अपने ऋषियों को आज्ञा दी कि इंद्र यदि तक्षक को न छोड़ें, तो उसे भी तक्षक के साथ खींच मँगाओ और भस्म कर दो। ऋत्विकों के मंत्र पढ़ने पर तक्षक के साथ इंद्र भी खिंचने लगे। तब इंद्र ने डरकर तक्षक को छोड़ दिया। जब तक्षक खिंचकर अग्निकुंड के समीप पहुँचा, तब आस्तीक ने आकर जनमेजय से प्रार्थना की और तक्षक के प्राण बच गए।

आजकल के विद्वानों का विश्वास है कि प्राचीन काल मे भारत में तक्षक नाम की एक जाति ही निवास करती थी। नाग जाति के लोग अपने आपको तक्षक की संतान ही बतलाते हैं। प्राचीन काल में ये लोग सर्प का पूजन करते थे। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में कुछ विशिष्ट अनार्यों को हिंदू लोग तक्षक या नाग कहा करते थे। और ये लोग संभवतः शक थे। तिब्बत, मंगोलिया और चीन के निवासी अबतक अपने आपको तक्षक या नाग के वंशधर बतलाते हैं। महाभारत के युद्ध के उपरांत धीरे धीरे तक्षकों का अधिकार बढ़ने लगा और उत्तरपश्चिम भारत मे तक्षक लोगों का बहुत दिनों तक, यहाँ तक कि सिकंदर के भारत आने के समय तक राज्य रहा। इनका जातीय चिह्न सर्प था। ऊपर परीक्षित और जनमेजय की जो कथा दी गई है, उसके संबंध मे कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि तक्षकों के साथ एक बार पांडवों का बड़ा भारी युद्ध हुआ था जिसमें तक्षकों की जीत हुई थी और राजा परीक्षित मारे गए थे, और अंत से जनमेजय ने फिर तक्षशिला में युद्ध करके तक्षकों का नाश किया था और यही घटना जनमेजय के सर्पयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुई है।

२ साँप। सर्प। ३ विश्वकर्मा। ४. सूत्रधार। ५ दस वायुओं मे से एक। नागवायु। उ०—प्रान, अपान, व्यान, उदान और कहियत प्राण समान। तक्षक, धनंजय पुनि देवदत्त और पौंड्रक शंख द्युमान।—सूर (शब्द०)। ६ एक प्रकार का पेड़। ७. प्रसेनजित् के पुत्र का नाम जिसका वर्णन भागवत मे आया है। ८. एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति सूचिक पिता और ब्राह्मणी माता से मानी गई है।

तक्षक[2]—वि० छेदनेवाला। छेदक।

तक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ लकड़ी को साफ करने का काम। रंदा करने का काम। २ बढ़ई। ३ लकड़ी पत्थर आदि में खोदकर मूर्तियाँ और बेल बूटे बनाने का काम। लकड़ी पत्थर आदि गढ़कर मूर्तियाँ बनाना।

तक्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़इयों का वह औजार जिससे वे लकड़ी छीलकर साफ करते हैं। रंदा।

तक्षशिल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] तक्षशिला का निवासी [को०]।

तक्षशिल[2]—वि० तक्षशिला संबंधी [को०]।

तक्षशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत प्राचीन नगरी का नाम जो भरत के पुत्र तक्ष की राजधानी थी।

विशेष—विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल मे इसके आसपास के प्रदेश में तक्षक लोगों का राज्य था, इसलिये इस नगरी का नाम भी तक्षशिला पड़ा था। महाभारत मे लिखा है कि यह स्थान गांधार मे है। अभी हाल में यह नगर रावलपिंडी के पास जमीन खोदकर निकाला गया है। वहाँपर बहुत से बौद्ध मंदिर और स्तूप भी पाए गए हैं। महाभारत मे लिखा है कि जनमेजय ने यहीं सर्पयज्ञ किया था। सिकंदर जिस समय भारत में आया था, उस समय यहाँ के राजा ने उसे अपने यहाँ ठहराया था और उसका बहुत आदर सत्कार किया था। कुछ समय तक इसके आस पास का प्रदेश अशोक के शासन मे था। अनेक यूनानी और चीनी यात्रियों ने तक्षशिला के वैभव और विस्तार आदि का बहुत अच्छा वर्णन किया है। बहुत दिनों तक यह नगरी पश्चिम भारत का प्रधान विद्यापीठ थी। दूर दूर से यहाँ विद्यार्थी आते थे। चाणक्य यहीं का था।

तक्षा—संज्ञा पुं० [सं० तक्षन्] बढ़ई।

तखड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तकड़ी] तराजू ।

तखत—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्त] दे० 'तख्त' । उ०—दीवें भेजि हुरम हजूर मरहट्टी वेगि, चाहियै जो कुसल तखत सिरताजी कौं ।—हम्मीर०, पृ० २१ ।

मुहा०—तखत पलटना = तख्ता उलटना । उ०—जब निबल हो बने सबल प्रगी । तब पलटते न किस तरह तखते । तो चले क्यों बराबरी करने । बल बराबर प्रगर नहीं रखते ।—चुभते० पृ० ६८ ।

तखतनसीन—वि० [फ़ा० तख्तनशीन] दे० 'तख्तनशीन' । उ०—जो है दिल्ली तखतनसीन । पातसाह प्रालाउद्दीन ।—हम्मीर०, पृ० १७ ।

तखफीफ—संज्ञा स्त्री० [प्र० तखफ़ीफ़] कमी । न्यूनता ।

तखमीनन्—क्रि० वि० [प्र० तखमीनन्] प्रदाज से । प्रटकल से । प्रनुमान से ।

तखमीना—संज्ञा पुं० [प्र० तखमीनह्] प्रदाज । प्रनुमान । प्रटकल ।
क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

तखय्यल—संज्ञा पुं० [प्र० तखय्युल] १ विचारना । २. कल्पना । ३. काव्यविषय ।

तखरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तखड़ी' ।

तखलिया—संज्ञा पुं० [प्र० तख्लियह्] एकात स्थान । निर्जन स्थान ।

तखल्लुस—संज्ञा पुं० [प्र० तखल्लुस] कवि या शायर का वह नाम जो वह प्रपनी कविता मे लिखता है । उपनाम ।

तखान†—संज्ञा पुं० [सं० तक्षण] बढ़ई ।

तखिया—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताक़ी] लबी टोपी, जो मत लोग लगाते थे । उ०—बिनु हरि भजन को- भेष लिए कहा दिए तिलक सिर तखिया ।—मीखा० श०, पृ० ७१ ।

तखिहा—वि० [प्र० ताक] वह बैल जिसकी दोनों प्राँखें दो रग की हों ।

तखीत—संज्ञा स्त्री० [प्र० तह्कीक़] १ तलाशी । २ तहकीकात । (लश०) ।

तख्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्त] १. राजा के बैठने का प्रासन । सिंहासन । २ तख्तों की बनी हुई बडी चौकी ।
यौ०—तख्त की रात = सोहागरात । (मुसल०)
३ राज्य । शासन । हुकूमत (को०) । ४ पलग । चारपाई (को०) । ५ जीन (को०) ।

तख्तगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्तगाह] राजधानी [को०] ।

तख्त ताऊस—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्त + प्र० ताऊस] एक प्रसिद्ध राजसिंहासन जिसे शाहजहाँ ने ६ करोड़ रुपया लगवाकर बनवाया था । इसके ऊपर एक जडाऊ मोर पख फैलाए हुए खडा था । इस तख्त को सन् १७३९ ई० में नादिरशाह लूटकर ले गया ।

तख्तनशीन—वि० [फ़ा० तख्तनशीन] जो राजसिंहासन पर बैठा हो । सिंहासनारूढ़ ।

तख्तनशीनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्तनशीन + ई (प्रत्य०)] राज्याभिषेक । उ०—प्रौर तख्तनशीनी के दरबार का तो फिर कहना ही क्या है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५४ ।

तख्तपोश—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तपोश] १ तख्त या चौकी पर बिछाने की चादर । २ चौकी । तख्त ।

तख्तबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तबद] १ बदी । कैदी । २ कारावास । कैद । ३ लकडी की वह खपची जो टूटी हड्डी को जोड़ने के लिये बाँधी जाती है [को०] ।

तख्तबदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्तबदी] १ तख्तो की बनी हुई दीवार । २ तख्तों की दीवार बनाने की क्रिया । ३ बाग की क्यारियों प्रादि को ढंग से सजाना (को०) ।

तख्तरवाँ—संज्ञा पुं० [फा० तख्तरवाँ] १ वह तख्त जिसपर बादशाह सवार होकर निकलता हो । हवादार । २ वह तख्त या बड़ी चौकी जिसपर शादियो मे बरात के प्रागे रडियाँ, नाचनेवाले या लौंडे नाचते हुए चलते हैं । ३. उड़नखटोला ।

तख्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तह्] १, लकड़ी का वह चीरा हुप्रा लबा चौडा प्रौर चौकोर टुकड़ा जिसकी मोटाई प्रधिक न हो । बड़ा पटरा । पल्ला ।
मुहा०—तख्ता उलटना = (१) किसी प्रबध का नष्ट भ्रष्ट हो जाना । किसी बने बनाए काम का बिगड़ जाना । (२) किसी प्रबंध को नष्ट भ्रष्ट करना । बना बनाया काम बिगाड़ना । तख्ता हो जाना = ऐंठ या प्रकड़ जाना । तख्ते की तरह जड़ हो जाना ।
२ लकड़ी की बडी चौकी । तख्त । ३ प्ररथी । टिखटी । ३. कागज का ताव । ५ खेतो या बागों में जमीन का वह प्रलग टुकड़ा जिसमे बीज बोए या पौधे लगाए जाते हैं । कियारी ।
यौ०—तख्तए कागज = कागज का ताव । तख्तए ताबूत = वह संदूक या पलग जिसमें शव ले जाते हैं । तख्तए तालीम = वह काला पटरा जिसपर बच्चों को प्रक्षर, गिनती प्रादि सिखाते हैं । शिक्षापटल । ब्लैक बोर्ड । तख्तए नर्द = चौसर खेलने का तख्ता । तख्तए मय्यत = मुर्दे को नहलाने का तख्ता । तख्तए मश्क = (१) बच्चो की तख्ती । (२) वह चीज जो बहुत प्रयुक्त हो । तख्तए मीना = प्राकाश । प्रासमान ।

तख्तापुल—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्तह् + पुल] पटरो का पुल जो किले की खदक पर बनाया जाता है । यह पुल इच्छानुसार हटा भी लिया जा सकता है ।

तख्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख्ती] १. छोटा तख्ता । २ काठ की वह पटरी जिसपर लड़के प्रक्षर लिखने का प्रभ्यास करते हैं । पटिया । ३ किसी चीज की छोटी पटरी ।

तख्तोताज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] शासनसूत्र । राज्यभार । शासनप्रबध [को०] ।

तख्मीना—संज्ञा पुं० [प्र० तखमीनह्] दे० 'तखमीना' ।

तग—प्रव्य० [हिं०] दे० 'तक' । उ०—राजा के हीन हयात तग बादशाह के तावे नहीं हुप्रा ।—दक्खिनी०, पृ० ४४३ ।

तगड़ा—वि० [हिं० तन + कड़ा] [वि० स्त्री० तगड़ी] १. जिसमें ताकत ज्यादा हो । सबल । बलवान् । मजबूत । २. प्रच्छा प्रौर बड़ा ।

तगड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तागड़ी'।

तगड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तखड़ी'।

तगण—संज्ञा पुं० [सं०] छंदःशास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो गुरु और तब एक लघु (ऽऽ।) वर्ण होता है।

तगदमा, तगदम्मा—संज्ञा पुं० [अ० तक़द्दुम] १ व्यय आदि का किया हुआ अनुमान। तखमीना। २. दे० 'तकदमा'।

तगना—क्रि० अ० [हिं० तागना] तागा जाना।

तगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागना] तागने का भाव। तगाई।

तगपहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागा + पहनना] जुलाहों का एक औजार जो टूटा हुआ सूत जोड़ने मे काम आता है।

तगमा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमगा'।

तगर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का पेड़ जो अफगानिस्तान, कश्मीर, भूटान और कोंकण देश में नदियों के किनारे पाया जाता है।

विशेष—भारत के बाहर यह मडागास्कर और जंजीबार में भी होता है। इसकी लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और उसमें से बहुत अधिक मात्रा में एक प्रकार का तेल निकलता है। यह लकड़ी अगर की लकड़ी के स्थान पर तथा औषध के काम में आती है। लकड़ी काले रग की और सुगंधित होती है और उसका बुरादा जलाने के काम में आता है। भावप्रकाश के अनुसार तगर दो प्रकार का होता है, एक मे सफेद रग के और दूसरे मे नीले रग के फूल लगते हैं। इसकी पत्तियों के रस से आँख के अनेक रोग दूर होते हैं। वैद्यक मे इसे उष्ण, वीर्यवर्धक, शीतल, मधुर, स्निग्ध, लघु और विष, अपस्मार, शूल, दृष्टिदोष, विषदोष, भूतोन्माद और त्रिदोष आदि का नाशक माना है।

पर्या०—वक्र। कुटिल। शठ। महोरग। नत। दीपन। विनम्र। कुंचित। घट। नहुष। पार्थिव। राजहर्पण। क्षत्र। दीन। कालानुसारिवा। कालानुसारक।

२ इस वृक्ष की जड़ जिसकी गिनती गंधद्रव्यों में होती है। इसके चबाने से दाँतों का दर्द अच्छा हो जाता है। ३. मदनवृक्ष। मैनफल।

तगर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की शहद की मक्खी।

तगला—संज्ञा पुं० [हिं० तकला] १ तकला। २ दो हाथ लंबा सरकंडे का एक छड़ जिससे जोलाहे साँथी मिलाते हैं।

तगसा—संज्ञा पुं० [देश०] वह लकड़ी जिससे पहाड़ी प्रांतो में ऊन को कातने से पहले साफ करने के लिये पीटते हैं।

तगा[1]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तागा'। उ०—प्रफुल्लित ह्वै के आन दीन है यशोदा रानी भीनी ए झगुली तामें कंचन को तगा।—सूर (शब्द०)।

तगा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति जो रुहेलखंड मे बसती है। इस जाति के लोग जनेऊ पहनते और अपने आपको ब्राह्मण मानते हैं।

तगाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागना] १. तागने का काम। २ तागने का भाव। ३. तागने की मजदूरी।

तगाड़—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'तगार'। २ वह चौकोर ईंटों का घेरा जिसमें गारा या सुरखी चूना सानते हैं।

तगाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गारा] [स्त्री० तगाड़ी] वह तसला या लोहे का छिछला बरतन जिसमें मसाला या चूना गारा रखकर जोड़ाई करनेवालों के पास ले जाते हैं। अड़िया।

तगादा—संज्ञा पुं० [अ० तक़ाज़ा] दे० 'तकाजा'।

क्रि० प्र०—करना।

तगाना—क्रि० स० [हिं० तागना का प्रे० रूप] तागने का काम कराना। दूसरे को तागने में प्रवृत्त करना।

तगाफुल—संज्ञा पुं० [अ० तग़ाफ़ुल] १. गफलत। उपेक्षा। ध्यान। न देना। असावधानी। उ०—हमने माना कि तगाफुल न करोगे लेकिन, खाक हो जायँगे हम तुमको खबर होने तक।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४६१।

तगार—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगारी'।

तगारा—संज्ञा पुं० [हिं० तगर] १. हलवाइयों का नाद। २. तरकारी बेचनेवाले का नाद।

तगारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. उखली गाड़ने का गड्ढा। २. हलवाइयों का मिठाई बनाने का मिट्टी का बड़ा बरतन या नाँद। ३. चूना गारा इत्यादि ढोने का तसला।

तगियाना—क्रि० स० [हिं० तागा से नामिक धातु] दे० 'तागना'।

तगीरⓅ—संज्ञा पुं० [अ० तगीर, तग़ईर] बदलने की क्रिया या भाव। परिवर्तन। बदलना। कुछ का कुछ कर देना। तब्दीली। उ०—(क) महदी गह रोग अनता। जागीर तगीर करता।—विश्राम (शब्द०)। (ख) जोबन आमिल आइ कै भूपन कर तदवीर। घट बढ़ रकम बनाइ कै सिसुता करी तगीर।—रसनिधि (शब्द०)।

तगीरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० तगय्युर, हिं० तगीर] बदली। परिवर्तन। उ०—गैरहाजिरी लिखिहै कोई। मनसब घटै तगीरी होई।—लाल कवि (शब्द०)।

तगैय्युर—संज्ञा स्त्री० [अ० तग़य्युर] बहुत बड़ा परिवर्तन। उ०—मुझको मारा ये मेरे हाल तगैय्युर न कि है, कुछ गुमाँ और ही धड़के से दिले नुक्तिरके।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० ८५।

तग्गनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तगना'।

तघार, तघारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगार'।

तचना—क्रि० अ० [हिं० तपना] तपना। तप्त होना। उ०—(क) तापन ओ तपती विरमैं दिन काज वृथा मन माँहि बिदूषहीं।—प्रताप (शब्द०)। (ख) मानों विधि सब उलटि रची री। जानत नहीं सखी काहे ते बहो नरतेज तची री।—सूर (शब्द०)।

तचा†—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वचा] चमड़ा। खाल। त्वचा। उ०—तुम बिन लागि रहै पै तचा। अब नहिं बिरह गरुड़ै बचा।—जायसी (शब्द०)।

तचाना—क्रि० स० [हिं० तपाना] तपाना। जलाना। तप्त करना। संतप्त करना। उ०—अनल उचाट रूप जाउ मैं तचाई भारी कारीगर काम ने सुधारी अभिराम सान।—दीनदयालु (शब्द०)।

तच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तक्ष] दे० 'तक्ष'।

तच्छक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तक्षक] दे० 'तक्षक'।

तच्छना(पु)—क्रि० स० [सं० तक्षण] १ फाड़ना। २. नष्ट करना। काटकर टुकड़े करना।

तच्छप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तक्षक'।

तच्छिन(पु)—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण] उसी समय। तत्काल।

तछन(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तत्क्षण'। उ०—कैधुँ राखि आवने लयें। भगिनिहिं तछन भक्षन करि गये।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१०।

तछिन(पु)†—अव्य० [सं० तत्क्षण] दे० 'तच्छिन'। उ०—जाके डर तहँ जात न कोई। तछिन भक्षन करि डारै ओई।—नंद० ग्रं०, पृ० २७७।

तज—संज्ञा पुं० [सं० त्वच्] १ तमाल और दारचीनी की जाति का मझोले कद का एक सदाबहार पेड़ जो कोचीन, मलाबार, पूर्व बंगाल, खासिया की पहाड़ियों और बरमा में अधिकता से होता है।

विशेष—भारत के अतिरिक्त यह चीन, सुमात्रा और जावा आदि स्थानों में भी होता है। खासिया और जयतिया की पहाड़ियों में यह पेड़ अधिकता से लगाया जाता है। जिन स्थानों पर समय समय पर गहरी वर्षा के उपरांत कड़ी धूप पड़ती है, वहाँ यह बहुत जल्दी बढ़ता है। इसके पेड़ प्राय पाँच पाँच हाथ की दूरी पर बीज से लगाए जाते हैं और जब पेड़ पाँच वर्ष के हो जाते हैं, तब वहाँ से हटाकर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। छोटे पौधे प्राय बड़े पेड़ों या झाड़ियों आदि की छाया में ही रखे जाते हैं। बाजारों में मिलनेवाला तेजपात या तेजपत्ता इस पेड़ का पत्ता और तज (लकड़ी) इसकी छाल है। कुछ लोग इसे और दारचीनी के पेड़ को एक ही मानते हैं, पर वास्तव में यह उससे भिन्न है। इस वृक्ष की डालियों की फुनगियों पर सफेद फूल लगते हैं जिनमें गुलाब की सी सुगंध होती है। इससे फल करौंदे के से होते हैं जिनमें से तेल निकाला जाता है और इन तथा मद्य बनाया जाता है। यह वृक्ष प्राय दो वर्ष तक रहता है।

२, इस पेड़ की छाल जो बहुत सुगंधित होती है और ओषध के काम में आती है। वैद्यक में इसे चरपरा, शीतल, हलका, स्वादिष्ट, कफ, खाँसी, आम, कंडु, अरुचि, कृमि, पीनस आदि को दूर करनेवाला, पित्त तथा धातुवर्धक और बलकारक माना जाता है।

पर्या०—भृग। वराँग। रामेष्ट। चिच्छुल। त्वच। उत्कट। चोल। सुरभिवल्कल। सुतकट। मुखशोधन। सिंहल। सुरस। कामवल्लभ। बहुगंध। वनप्रिय। लटपर्ण। गंधवल्कल। वर। शीत। रामवल्लभ।

तजकिरा—संज्ञा पुं० [अ० तज्किरह्] १ चर्चा। जिक्र।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—छिड़ना।—होना।

२. वार्तालाप। बातचीत (को०)। ३. ख्याति। प्रसिद्धि (को०)। ४. प्रसंग। सिलसिला (को०)।

तजगरी—संज्ञा स्त्री० [फा० तेजगरी] सिकलीगरों की वो अंगुल चौड़ी और अनुमानत डेढ़ बालिश्त लंबी लोहे की पटरी जिसपर तेल गिराकर रदा तेज करते हैं।

तजदीद—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्दीद] १ नया करना। नवीनीकरण। २. नवीनता। नयापन (को०)।

तजन(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्यजन] तजने की क्रिया या भाव। त्याग। परित्याग।

तजन[2]—संज्ञा पुं० [सं० तर्जन] कोड़ा या चाबुक।

तजना—क्रि० स० [सं० त्यजन] त्यागना। छोड़ना। उ०—(क) सब तज। हर भज। —(शब्द०)। (ख) तजहु आस निज निज गृह जाहू।—मानस, १।२५२।

तजरबा—संज्ञा पुं० [अ० तज्रबह्, तज्रिबह्, तज्रुबह्] १ वह ज्ञान जो परीक्षा द्वारा प्राप्त किया जाय। अनुभव। जैसे,—मैंने सब बातें अपने तजरबे से कही हैं।

यौ०—तजरबेकार = जिसने परीक्षा द्वारा अनुभव प्राप्त किया हो। अनुभवी।

२ वह परीक्षा जो ज्ञान प्राप्त करने के लिये की जाय। जैसे,—आप पहले तजरबा कर लीजिए, तब लीजिए।

तजरबाकार—संज्ञा पुं० [अ० तज्रुबह् + फ़ा० कार] जिसने तजरबा किया हो। अनुभवी।

तजरबाकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्रुबह् + फ़ा कारी (प्रत्य०)] अनुभव।

तजरीद—संज्ञा [अ० तज्रीद] १. उद्घाटित कर किसी चीज को असली दशा में कर देना। नया कर देना। २. (काट छाँटकर) सजाना या सँवारना। ३ सुधार करना। ४ एकाकी जीवन। ब्रह्मचर्य। उ०—कोई तजरीद तफरीद बोलते हैं कोई नफी।—दक्खिनी०, पृ० ४३३।

तजरुबा—संज्ञा पुं० [अ० तज्रुबह्] दे० 'तजरबा'।

तजरुबाकार—संज्ञा पुं० [अ० तज्रुबह् + फा० कार] दे० 'तजरबाकार'।

तजरुबाकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्रुबह् + फा० कारी] दे० 'तजरबाकारी'।

तजल्ली—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ प्रकाश। रोशनी। नूर। २ प्रताप। जलाल। ३. अध्यात्म ज्योति। उ०—कीजै फहम फना को ले के, नूर तजल्ली अपना। —पलटू०, भा० ३, पृ० ६२।

तजवीज—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्वीज] १ सम्मति। राय। २. फैसला। निर्णय। ३ बंदोबस्त। इंतिजाम। प्रबंध।

तजवीजसानी—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्वीज + सानी] किसी अदालत में उसी अदालत के किए हुए किसी फैसले पर फिर से होनेवाला विचार। एक ही हाकिम के सामने होनेवाला पुनर्विचार।

तजावुज—संज्ञा पुं० [अ० तजावुज] १ सीमा का उल्लंघन। २. अपने इख्तियार से बाहर कोई काम करना। ३. अवज्ञा। हुक्मउदूली। उ०—शरीयत के माने हुकमाँ और हदाँ है जो इस हद से तजावुज न करे।—दक्खिनी०, पृ० ४२६। ४. धृष्टता। गुस्ताखी (को०)।

तजुब(पु)—अव्य० [अ० तग्रज्जुब] आश्चर्य । विस्मय । अचंभा । उ०—तजुब नही कि खोपरी टूट जाय ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५५ ।

तज्जनित—वि० [सं०] उससे उत्पन्न ।

तज्जन्य—वि० [सं०] उससे उत्पन्न । उ०—कविता हमारे मन पर पड़े हुए सामाजिक प्रतिबंधो और तज्जन्य विचारों की प्रतिक्रिया है ।—नया०, पृ० ३ ।

तज्जातपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] काम निपुण श्रमी । होशियार कारीगर ।

तज्जी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री ।

तज्ञ—वि० [सं० तज् + ज्ञ (तत् + ज्ञ)] १. तत्व का जाननेवाला । तत्वज्ञ । उ०—देवतज्ञ सर्वज्ञ जज्ञेश अच्युत विभो विस्व भवदश संभव पुरारी ।—तुलसी (शब्द०) । २ ज्ञानी ।

तटंक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताटङ्क] कर्णफूल नामक कान का आभूषण । कर्णफूल । उ०—चलि चलि आवत श्रवण निकट अति सकुचि तटक फंदा ते । —सूर (शब्द०) ।

तट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्षेत्र । खेत । २ प्रदेश । ३ तीर । किनारा । कूल । ४ शिव । महादेव । ५ जमीन या पर्वत का ढाल (को०) । ६. आकाश (को०) ।

तट²—क्रि० वि० समीप । पास । नजदीक । निकट ।

तटक—संज्ञा पुं० [सं०] नदी, तालाब आदि का किनारा [को०] ।

तटका—वि० [हिं०] [वि०स्त्री० तटकी] दे० 'टटका' । उ०—निसि के उनींदे नैना तैसे रहे टरि टरि । किधौं कहूँ प्यारी को तटकी लागी नजरि ।—सूर (शब्द०) ।

तडक्कना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़कना' । उ०—तटक्क टुट्ट छोह लोह चलावै ।—प० रासो, पृ० ८३ ।

तटग—संज्ञा पुं० [सं०] तड़ाग ।

तटनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तटिनी] (तटवासी) नदी । सरिता । दरिया । उ०—(क) मदाकिनि तटनि तीर मजु मृग विहग भीर धीर मुनि गिरा गंभीर साम गान की ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कदम विटप के निकट तटनी के आय अटा चढ़ि चाहि पीतपट फहरानी सो ।—रसखान (शब्द०) ।

तटवर्ती—वि० [सं०] तट से संबंध रखनेवाला या होनेवाला [को०] ।

तटस्थ¹—वि० [सं०] १ तीर पर रहनेवाला । किनारे पर रहनेवाला । २ समीप रहनेवाला । निकट रहनेवाला । ३. किनारे रहनेवाला । अलग रहनेवाला । ४ जो किसी का पक्ष न ग्रहण करे । उदासीन । निरपेक्ष ।

यौ०—तटस्थ वृत्ति ।

तटस्थ²—संज्ञा पुं० किसी वस्तु का वह लक्षण जो उसके स्वरूप को लेकर नहीं बल्कि उसके गुण और धर्म आदि को लेकर बतलाया जाय । दे० 'लक्षण' ।

यौ०—तटस्थ लक्षण ।

तटस्थित—वि० [सं०] दे० 'तटस्थ' ।

तटाक—संज्ञा पुं० [सं०] तड़ाग । तालाब ।

तटाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बडा तालाब [को०] ।

तटाघात—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओ का अपने सींगो या दाँतो से जमीन खोदना ।

तटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी । सरिता । दरिया ।

तटी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीर । कूल । किनारा । तट । २ नदी । सरिता । उ०—ताहि समै पर नामि तटी को गयो उड़ि सेवक पौन प्रसंग में ।—सेवक (शब्द०) । ३ तराई । घाटी ।

तटी²—संज्ञा स्त्री० समाधि ।

तठै†—अव्य० [सं० तत्र] वहाँ । उस जगह पर ।

तठना—क्रि० वि० [सं० तत्र, प्रा० तत्थ] वहाँ । उ०—जुध वेल लगे रिए छोड़ जठे । तन पाथ जिसो रुघनाथ तठे ।—रा० रू०, पृ० ३५ ।

तड़¹—संज्ञा पुं०[सं० तट] १ समाज में हो जानेवाला विभाग । पक्ष ।

यौ०—तड़वदी ।

२ स्थल । खुश्की । जमीन ।—(लश०) ।

तड़²—संज्ञा पुं० [अनु०] १. थप्पड़ आदि मारने या कोई चीज पटकने से उत्पन्न होनेवाला शब्द ।

यौ०—तड़ातड़ ।

२ थप्पड़ ।—(दलाल) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—देना ।—लगाना ।

३ लाभ का आयोजन । आमदनी की सूरत ।—(दलाल) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—बैठाना ।

तड़क¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़कना] १. तड़कने की क्रिया या भाव । २. तड़कने के कारण किसी चीज पर पड़ा हुआ चिह्न । ३ भोजन के साथ खाए जानेवाले अचार, चटनी आदि चटपटे पदार्थ । चाट ।

तड़क²—संज्ञा स्त्री० [सं० तरण्ड = (धरन)]वह बडी लकड़ी जो दीवार से बंडेर तक लगाई जाती है और जिसपर ठाठ रखकर छप्पर छाया जाता है ।

तड़कना¹—क्रि० अ० [अनु० तड़] १. 'तड़' शब्द के साथ फटना, फूटना या टूटना । कुछ आवाज के साथ टूटना । चटकना । कड़कना । जैसे, शीशा तड़कना, लकड़ी तड़कना । २. किसी चीज का सूखने आदि के कारण फट जाना । जैसे, छिलका तड़कना, जखम तड़कना । ३ जोर का शब्द करना । उ०—कहि योगिनि निशि हित अति तड़की । विंध्याचल के ऊपर खड़की ।—गोपाल (शब्द०) । ४ क्रोध से बिगड़ना । झुँझलाना । बिगड़ना । ५ जोर से उछलना या कूदना । तड़पना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

तड़कना†²—क्रि० स० तड़का देना । छौंकना । बघारना ।

तड़क भड़क—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वैभव, शान आदि की दिखावट ।

तड़कली—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताटक । तरौना । कर्णाभूषण । तरकी । उ०—नाग फण का तडकली, छोटि कसण पयोहर खीची ।—बी० रासो०, पृ० ७२ ।

तड़का—संज्ञा पुं० [हिं० तड़कना] १. सवेरा । सुबह । प्रातःकाल । प्रभात । २ छौंक । बघार ।

क्रि० प्र०—देना ।

तड़काना—क्रि० स० [हिं० तड़कना का सक० रूप] १ किसी वस्तु को इस तरह से तोड़ना जिससे 'तड' शब्द हो । २. किसी पदार्थ को सुखाकर या और किसी प्रकार बीच में से फाड़ना ।

३ जोर का शब्द उत्पन्न करना । ४ किसी को क्रोध दिलाना या खिजाना ।

तड़कीला†—वि० [हिं० तड़कना + ईला (प्रत्य०)] १. चमकीला । भड़कीला । २ तड़कनेवाला । फट जानेवाला । ३ फुर्तीला ।

तड़क्का¹—संज्ञा पुं० [अनु० तड़] तड़ का शब्द ।

तड़क्का†²—क्रि० वि० [हिं० तड़ाका] जल्दी । झटपट । उ०—चेतहु काहे न सबेर यमन सों रारिहै । काल के हाथ कमान तड़क्का मारिहै ।—कबीर (शब्द०)।

तड़ग—संज्ञा पुं० [सं० तड़ग] तालाब । तड़ाग [को०] ।

तड़तड़ाना¹—क्रि० अ० [अनु०] तड़ तड़ शब्द होना ।

तड़तड़ाना²—क्रि० स० तड़ तड़ शब्द उत्पन्न करना ।

तड़तड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़तड़ाने की क्रिया या भाव ।

तड़ता पु—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित] बिजली । विद्युत ।—(डिं०) ।

तड़प—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़पना] १ तड़पने की क्रिया या भाव । २ चमक । भड़क ।

तड़प झड़प—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'तड़क भड़क' । उ०—केवल ऊपरी तड़पझड़प रखनेवाली पश्चिमीय सभ्यता ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१५ ।

तड़पदार—वि० [हिं० तड़प + फा० दार] चमकीला । भड़कदार । भड़कीला ।

तड़पन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तड़प' ।

तड़पना—क्रि० अ० [अनु०] १ बहुत अधिक शारीरिक या मानसिक वेदना के कारण व्याकुल होना । छटपटाना । तड़फड़ाना । तलमलाना ।
संयो० क्रि०—जाना ।
२ घोर शब्द करना । भयंकर ध्वनि के साथ गरजना । जैसे, किसी से तड़पकर बोलना, शेर का तड़पकर झाड़ी में से निकलना ।

तड़पवाना—क्रि० स० [हिं० तड़पाना का प्रे०रूप] किसी को तड़पाने का काम दूसरे से कराना ।

तड़पाना—क्रि० स० [हिं० तड़पना का स०रूप] १ शारीरिक या मानसिक वेदना पहुँचाकर व्याकुल करना । २ किसी को गरजने के लिये बाध्य करना ।
संयो० क्रि०—देना ।

तड़फड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़फड़ाना] तड़पने की क्रिया ।

तड़फड़ाना—क्रि० अ० [हिं०] तड़पना । छटपटाना । तलमलाना ।

तड़फड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़फड़ + आहट (प्रत्य०)] १ छटपटाहट । तलमलाहट । बेचैनी । २ मारे जाने या जलकर मरने के समय की बेचैनी या तड़पन ।

तड़फना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़पना' ।

तड़भड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] हड़बड़ । जल्दी जल्दी । उ०—पातसाह अजमेर परस्से । कूच कियो तड़भड़ भड़ कस्से ।—रा० रू०, पृ० २५ ।

तड़बंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़ + फ़ा० बंदी] समाज, बिरादरी या ... अलग अलग तड़ बनाना ।

तड़ाक¹—संज्ञा पुं० [सं० तडाक] तड़ाग । तालाब । सरोवर ।

तड़ाक²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाके का शब्द । किसी चीज के टूटने का शब्द ।

तड़ाक³—क्रि० वि० १ 'तड़' या 'तड़ाक' शब्द के सहित । २ जल्दी से । चटपट । तुरंत ।
यौ०—तड़ाक पड़ाक = चटपट । तुरत ।

तड़ाका¹—संज्ञा पुं० [अनु०] १. 'तड़' शब्द । जैसे,—न जाने कहाँ कल रात को बड़े जोर का तड़ाका हुआ । २. कमखाब बुननेवालों का एक डंडा जो प्रायः सवा गज लंबा होता है और लपेट में बँधा रहता है । इसके नीचे तीन और डंडे बँधे होते हैं । ३ पेड़ । वृक्ष ।—(कहारों की परि०) ।

तड़ाका²—क्रि० वि० [हिं० तड़ाक] चटपपट । जल्दी से । तुरत । जैसे,—तड़ाका जाकर बाजार से सौदा ले आओ (बोलचाल) ।

तड़ाग—संज्ञा पुं० [सं० तडाग] १ तालाब । सरोवर । ताल । पुष्कर । पोखरा । पद्मादियुक्त सर । उ०—(क) भरतु हंस रबि बंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ।—मानस, ३।२३१ । (ख) अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंजकलीं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६७ ।
विशेष—प्राचीनों के अनुसार तडाग पाँच सौ धनुष लंबा, चौड़ा और खूब गहरा होना चाहिए । उसमें कमल आदि भी होने चाहिए ।

तड़ागना—क्रि० अ० [अनु०] १. गर्जन तर्जन करना । तड़फड़ाना । २ डींग मारना । ३ प्रयास करना । उ०—पहुँचेंगे तब कहेंगे वही देश की सोच । अबही कहा तड़ागिए बेड़ी पायन बीच ।—संतवाणी०, पृ० ३५ ।

तड़ागी—संज्ञा स्त्री० [सं० तडाग] १. करधनी । २ कमर ।

तडाघात—संज्ञा पुं० [सं० तडघात] दे० 'तटाघात' [को०] ।

तड़ातड़—क्रि० वि० [अनु०] १ तड़तड़ शब्द के साथ । इस प्रकार जिसमे तड़तड़ शब्द हो । जैसे, तड़ातड़ चपत जमाना । उ०—आगे रघुबीर के समीर के तनय के संग तारी दे तड़ाक तड़ातड़ कै तमका मे ।—पद्माकर (शब्द०) । २ जल्दी से ।

तड़ातड़ी—क्रि० वि० [अनु० मि० बँगला ताड़ाताड़ी] जल्दी मे । शीघ्रता में । उ०—ओ कुछ सुना नेई और घड़ा तड़ातड़ी मे भाग ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४५ ।

तड़ाना¹—क्रि० स० [हिं० ताड़ना का प्रे०रूप] किसी दूसरे को ताड़ने में प्रवृत्त करना । भँपाना ।

तड़ाना²—क्रि० स० [हिं०] जल्दी मचना ।

तड़ावा—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़ाना (= दिखाना)] १ ऊपरी तड़क भड़क । वह चमक दमक जो केवल दिखाने के लिये हो । २ धोखा छल ।—(क्व०) ।
क्रि० प्र०—देना ।

तड़ि¹—संज्ञा [सं० तडि] आघात [को०] ।

तडि²—वि० आघात करनेवाला [को०] ।

तड़ि³—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली । उ०—मेघनि बिबँ अलप जल परे । तड़ि भई अलुप नेह परिहरे ।—नद० ग्रं०, पृ० २९० ।

तड़ित—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली । विद्युत् । उ०—उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत उढ़ाए । नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छिपाए । —तुलसी (शब्द०) ।

तड़िता—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित्] दे० 'तड़ित्' । उ०—तड़पै तड़िता चहुँ ओरन तें छिति छाई समीरन की लहरैं । मदमाते महा गिरि शृंग गनि पै गन मंजु मयूरन के कहरैं ।—इतिहास, पृ० ३१८ ।

तड़ित्कुमार—संज्ञा पुं० [सं० तडित्कुमार] जैनों के एक देवता जो भुवनपति देवगण में से हैं ।

तड़ित्पति—संज्ञा पुं० [सं० तडित्पति] बादल । मेघ ।

तड़ित्प्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित्प्रभा] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

तड़ित्वान्—संज्ञा पुं० [सं० तडित्वान्] १ नागरमोथा । २ बादल ।

तड़िद्गर्भ—संज्ञा पुं० [सं० तडिद्गर्भ] बादल ।

तड़िद्दाम—संज्ञा पुं० [सं० तडिद्दामन्] बिज्जुलता । विद्युल्लता । बिजली चमकते समय दीखनेवाली रेखा [को०] ।

तड़िन्मय—वि० [सं० तडिन्मय] बिजली की तरह चमकनेवाला [को०] ।

तड़िया—संज्ञा स्त्री० [देश०] समुद्र के किनारे की हवा ।—(लश०) ।

तड़ियाना¹—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़पना' ।

तड़ियाना²—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तड़पाना' ।

तड़ियाना³—क्रि० अ० [हिं०] जल्दी करना । जल्दी मचाना ।

तड़िल्लता—संज्ञा स्त्री० [सं० तडिल्लता] विद्युल्लता [को०] ।

तड़िल्लेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० तडिल्लेखा] बिजली की रेखा [को०] ।

तड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [तड़ से अनु०] १ चपत । धौल ।
क्रि० प्र०—जड़ना ।—जमाना ।—देना ।—लगाना ।
२. धोखा । छल ।—(दलाल) ३ बहाना । हीला ।
क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।

तड़ी²—संज्ञा स्त्री [देश०] जल्दी । शीघ्रता ।

तड़ीत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तड़ित' ।

तण(पु)—अव्य० [हिं० तनु] की तरफ । ओर का ।

तणाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] कन्या । पुत्री ।

तणमीट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] मुसलमान ।

तणी¹—अव्य० [हिं०] दे० 'तड़' ।

तणी²—अव्य० [हिं० तनिक] थोड़ा । अल्प ।

तणु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनु' ।

तणौ(पु)—अव्य० [हिं० तनु] के लिये । की तरफ ।

तत्¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्म या परमात्मा का एक नाम । जैसे,—ओं तत् सत् । २ वायु । हवा ।

तत्²—सर्व० उस ।

विशेष—इसका प्रयोग केवल संस्कृत के समस्त शब्दों के साथ उनके आरंभ में होता है । जैसे,—तत्काल, तत्क्षण, तत्पुरुष, तत्पश्चात्, तदनंतर, तदाकार, तद्द्वारा, तत्पूर्व, तत्प्रथम ।

तत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु । २. विस्तार । ३. पिता । ४. पुत्र । संतान । ५ वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों । जैसे, सारंगी, सितार, बीन, एकतारा, बेहला आदि ।

विशेष—तत बाजे दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो खाली उँगली या मिजराब आदि से बजाए जाते हैं, जैसे, सितार बीन, एकतारा आदि । ऐसे बाजों को अंगुलित्र यंत्र कहते हैं और जो कमानी की सहायता से बजाए जाते हैं, जैसे, सारंगी, बेला आदि, वे धनु यंत्र कहलाते हैं ।

तत²—वि० १ विस्तृत । फैला हुआ । २ विस्तारित । ३ ढका हुआ । छिपा हुआ । ४ झुका हुआ । ५ अंतररहित । लगातार [को०] ।

तत(पु)†³—वि० [सं० तप्त] तपा हुआ । गरम । उ०—नखत अकासहिं चढ़इ दिपाई । तत तत लूका परहिं बुझाई ।—जायसी (शब्द०) ।

तत(पु)⁴—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व] दे० 'तत्त्व' ।

तत(पु)⁵—सर्व० [सं० तत्] उस । जैसे,—ततखन = तत्क्षण ।

ततकरा—क्रि० वि० [सं० तत्काल] तुरंत । उ०—ततकरा अपवित्र कर मानिए जैसे कागदगर करत बिचार ।—रैदास०, पृ० ३७ ।

ततकार†—अव्य० [हिं०] दे० 'तत्काल' ।

ततकाल(पु)†—अव्य० [हिं०] दे० 'तत्काल' ।

ततखण—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण, प्रा० तक्खण] दे० 'तत्क्षण' । उ०—ततखण मालवणी कहइ साँभलि कत सुरंग ।—ढोला०, दू० ६५४ ।

ततखन(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तत्क्षण' । उ०—ततखन आइ बिवाँन पहुँचा । मन तें अधिक गगन ते ऊँचा ।—जायसी (शब्द०) ।

ततच्छन—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण] दे० 'तत्क्षण' । उ०—(क) राज काज आश्रय विद्यालय बीच ततच्छन ।—प्रेमघन०, पृ० ४१५ । (ख) अरज गरज सुनि देत उचित आदेश ततच्छन ।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० १५ ।

ततछन(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तत्क्षण' ।

ततछिन(पु)—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण, हिं० ततछन] दे० 'तत्क्षण' । उ०—सिंघ पौरि वृषभानु की, ततछिन पहुँचे जाइ ।—नंद० ग्रं०, पृ० १९८ ।

ततताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नृत्य का शब्द । नाच के बोल ।

ततत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. विलंबित काल । मंद काल ।—(संगीत) । २. नैरंतर्य । निरंतरता [को०] ।

ततपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का वृक्ष ।

ततपर—वि० [सं० तत्पर] दे० 'तत्पर' ।

ततवाउ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाय] दे० 'तंतुवाय' ।

ततबीर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० तदबीर] दे० 'तदबीर' । उ०—कोउ गई जल पैठि तरुनी और ठाढ़ी तीर । तिनहिं खई बोलाइ राधा करत सुख ततबीर ।—सूर (शब्द०) ।

ततबेत्ता—वि० [सं० तत्त्ववेत्ता] ज्ञानी । उ०—जैसा ढूँढ़त मैं फिरी, तैसा मिला न कोय । ततबेता निरगुन रहित, निरगुन से रत होय ।—कबीर सा० सं०, पृ० १८ ।

ततरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फलदार पेड़ ।

ततवर—वि० [सं० तत्ववर] तत्वज्ञानी। तत्व की बात जाननेवाला। उ०—ततबर मित्र कृष्न तेहि भागे। ऊधो रोह बप तप को लागे।—घट०, पृ० २६२।

ततसार(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० तप्तशाला] तापने का स्थान। प्रांच देने या तपाने की जगह। उ०—सतगुर तो ऐसा मिला ताते लोह लुहार। कसनी दे कंचन किया ताय लिया ततसार।—कबीर (शब्द०)।

ततहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तप्त+हिं० हाँड़ी] [स्त्री० अल्पा० ततहड़ी] वह बरतन विशेषतः मिट्टी का बरतन जिसमें देहातवाले नहाने का पानी गरम करते हैं।

तताई†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० तत्ता] तप्त होने की क्रिया या भाव गरमी। उ०—बरनि बताई छिति व्योम की तताई, जेठ आयो आतताई पुटपाक सी करत है।—कविता०, पृ० ५६।

ततामह—संज्ञा पुं० [सं०] पितामह। दादा।

ततारना—क्रि० स० [हिं० तत्ता (=गरम)] १ गरम जल से धोना। २ तरेरा देकर धोना। धार देकर धोना। उ०—मनहु बिरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीर ततारति।—तुलसी (शब्द०)।

तति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ श्रेणी। पंक्ति। ताँता। २. समूह। सेना। भीड़। ३. विस्तार ४ यज्ञ का समारोह। उत्सव (को०)।

तति²—वि० [सं०] लंबा चौड़ा। विस्तृत। उ०—यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति।—तुलसी (शब्द०)।

ततुबाऊ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाय] दे० 'तंतुवाय'।

ततुरि¹—वि० [सं०] १ हिंसा करनेवाला। २. तारनेवाला। ३ जीतनेवाला (को०)। ४ रक्षण या पालन करनेवाला (को०)।

ततुरि²—संज्ञा पुं० १ अग्नि। २ इंद्र (को०)।

ततैया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्त या तप्त (=तत)+हिं० ऐया (प्रत्य०)] १ बर्रे। भिड़। हड्डा। २ जवा मिर्च जो बहुत कड़ुई होती है।

ततैया²—वि० [हिं० तीता अथवा तत्ता] १ तेज। फुरतीला। २ चालाक। बुद्धिमान।

ततोधिक—वि० [सं० ततोऽधिक] उससे अधिक (को०)।

ततौ(पु)—अव्य० [हिं०] तो। उ०—जो हम सो हित हानि कियो। ततौ भूलिबो वा हरि कौन सौं साह यो।—नट०, पृ० ३४।

तत्काल—क्रि० वि० [सं०] तुरत। फौरन। उसी समय। उसी वक्त।

तत्कालीन—वि० [सं०] उसी समय का।

तत्क्षण—क्रि० वि० [सं०] उसी समय। तत्काल। फौरन। उसी दम।

तत्त(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० तत्व, हिं०] दे० 'तत्व'।

तत्त(पु)²—वि० [सं० तप्त, हिं०] दे० 'तप्त'। उ०—कुरंगी सु तत्तं, वर सिंघ रत्त। मिल्यौ वथ्थ मान, दुप मल्ल जान।—पृ० रा०, १।६४५।

तत्तद्¹—वि० [सं०] भिन्न भिन्न (को०)।

तत्तद्²—सर्व० वह वह। उन उन (को०)।

तत्तमत्त(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तत्त्वमंत्र'। उ०—हृथ्य जोर अल्हन सो बुल्लिव। तत्तमत्त अतर कब खुल्लिव।—प० रासो, पृ० १७२।

तत्ता(पु)—वि० [सं० तप्त] जलता या तपता हुआ। गरम। उष्ण।

मुहा०—तत्ता तवा = जो बात बात पर लड़े। लड़ाका। झगड़ालू।

तत्ताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नाच का बोल।

तत्ती—वि० स्त्री० [हिं० तत्ता] तीक्ष्ण। तप्त। उ०—जगपत्ती उण जोस मै, रत्ती आप समाण। वनसपती सल चालवा, कर तत्ती केवाण।—रा० रू०, पृ० १२६।

तत्तोथंबो—संज्ञा पुं० [हिं० तत्ता (=गरम)+थामना] १ दम दिलासा। बहलावा २ दो लड़ते हुए आदमियों को समझा बुझाकर शांत करना। बीच बचाव।

तत्व—संज्ञा पुं० [सं० तत्व] १ वास्तविक स्थिति। यथार्थता। वास्तविकता। असलियत। २ जगत् का मूल कारण।

विशेष—सांख्य मे २५ तत्व माने गए हैं—पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व (बुद्धि), अहंकार, चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। मूल प्रकृति से शेष तत्वों की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—प्रकृति से महत्तत्व (बुद्धि), महत्तत्व से अहंकार, अहंकार से ग्यारह इंद्रियाँ (पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ और मन) और पाँच तन्मात्र, पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, आदि)। प्रलय काल में ये सब तत्व फिर प्रकृति मे क्रमशः विलीन हो जाते हैं। योग में ईश्वर को और मिलाकर कुल २६ तत्व माने गए हैं। सांख्य के पुरुष से योग के ईश्वर मे विशेषता यह है कि योग का ईश्वर क्लेश, कर्मविपाक आदि से पृथक् माना गया है। वेदांतियों के मत से ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ तत्व है। शून्यवादी बौद्धों के मत से शून्य या अभाव ही परम तत्व है, क्योंकि जो वस्तु है, वह पहले नहीं थी और आगे भी न रहेगी। कुछ जैन तो जीव और अजीव ये ही दो तत्व मानते हैं और कुछ पाँच तत्व मानते हैं—जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल और अस्तिकाय। चार्वाक् के मत में पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये ही तत्व माने गए हैं और इन्हीं से जगत् की उत्पत्ति कही गई है। न्याय में १६, वैशेषिक में ६, शैवदर्शन मे ३६; इसी प्रकार अनेक दर्शनों की भिन्न भिन्न मान्यताएँ तत्व के संबध में हैं।

यूरोप में १६वीं शती मे रसायन के क्षेत्र का विस्तार हुआ। पेरासेल्सस ने तीन या चार तत्व माने, जिनके मूलाधार लवण गंधक और पारद माने गए। १७वीं शती में फ्रांस एवं इंग्लैंड में भी इसी प्रकार के विचारों को प्रश्रय मिलता रहा। तत्व के संबंध में सबसे अधिक स्पष्ट विचार राबर्ट बायल (१६२७-१६९१ ई०) ने १६६१ ई० में रखा। उसने परिभाषा की कि तत्व उन्हें कहेंगे जो किसी यांत्रिक या रासायनिक क्रिया से अपने से भिन्न दो पदार्थों में विभाजित न किए जा सकें। १७७४ ई० में प्रीस्टली ने आक्सिजन गैस तैयार की। कैवेंडिश ने १७८१ ई० में आक्सिजन और हाइड्रोजन के योग से पानी तैयार करके दिखा दिया और तब पानी तत्व न रहकर यौगिकों की श्रेणी में आ गया। लाव्वाज्ये ने १७८९ ई० में यौगिक और तत्व के प्रमुख अंतरों को बताया। उसके

समय तक तत्वों की संख्या २३ तक पहुंच चुकी थी। १६वीं शती में सर हफ्री डेवी ने नमक के मूल तत्व सोडियम को भी पृथक् किया और कैल्सियम तथा पोटासियम को भी यौगिकों में से अलग करके दिखा दिया। २०वीं शती में मोजली नामक वैज्ञानिक ने परमाणु संख्या की कल्पना रखी जिससे स्पष्ट हो गया कि सबसे हलके तत्व हाइड्रोजन से लेकर प्रकृति में प्राप्त सबसे भारी तत्व यूरेनियम तक तत्वों की संख्या लगभग १०० हो सकती है। प्रयोगों ने यह भी संभव करके दिखा दिया है कि हम अपनी प्रयोगशालाओं में तत्वों का विभाजन और नए तत्वों का निर्माण भी कर सकते हैं।

३ पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश)। ४ परमात्मा। ब्रह्म। ५ सार वस्तु। साराश। जैसे,—उनके लेख में कुछ तत्व नहीं है।

यौ०—तत्त्वमसि=यह उपनिषद् का एक वाक्य है जिसका तात्पर्य है हर व्यक्ति ब्रह्म है।

तत्वज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञ] १ वह जो ईश्वर या ब्रह्म को जानता हो। तत्वज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी। २ दार्शनिक। दर्शन शास्त्र का ज्ञाता।

तत्वज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञान] ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि आदि के संबंध का यथार्थ ज्ञान। ऐसा ज्ञान जिससे मनुष्य को मोक्ष हो जाय। ब्रह्मज्ञान।

विशेष—सांख्य और पातंजल के मत से प्रकृति और पुरुष का भेद जानना और वेदांत के मत से अविद्या का नाश और वस्तु का वास्तविक स्वरूप पहचानना ही तत्वज्ञान है।

यौ०—तत्वज्ञानार्थ दर्शन= तत्वज्ञान का विमर्श या आलोचना।

तत्वज्ञानी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञानिन्] १ जिसे ब्रह्म, सृष्टि और आत्मा आदि के संबंध का ज्ञान हो। तत्वज्ञ। दार्शनिक।

तत्वतः—अव्य०[सं० तत्त्वत] वस्तुतः। यथार्थतः। वास्तव में (को०)।

तत्वता—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्वता] १ तत्व होने का भाव या गुण। २ यथार्थता। वास्तविकता।

तत्वदर्श—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वदर्श] १ तत्वज्ञानी। २ सावर्णि मन्वंतर के एक ऋषि का नाम।

तत्वदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वदर्शिन्] १ जो तत्व को जानता हो। तत्वज्ञानी। रैवत मनु के एक पुत्र का नाम।

तत्वदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्वदृष्टि] वह दृष्टि जो तत्व का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो। ज्ञानचक्षु। दिव्य दृष्टि।

तत्वनिष्ठ—वि० [सं० तत्त्वनिष्ठ] तत्व में निष्ठा रखनेवाला (को०)।

तत्वन्यास—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वन्यास] तंत्र के अनुसार विष्णुपूजा में एक अंगन्यास जो सिद्धि प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

तत्वभाव—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वभाव] प्रकृति। स्वभाव।

तत्वभाषी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वभाषिन्] वह जो स्पष्ट रूप से यथार्थ बात कहता हो।

तत्वभूत—वि० [सं० तत्त्वभूत] तत्व या सार रूप (को०)।

तत्वरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार स्त्री देवता का बीज। वधूबीज।

तत्ववाद—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववाद] दर्शनशास्त्र संबंधी विचार।

तत्ववादी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववादिन्] १ जो तत्ववाद का ज्ञाता और समर्थक हो। २ जो यथार्थ और स्पष्ट बात कहता हो।

तत्वविद्—संज्ञा पुं० [तत्त्वविद्] १ तत्ववेत्ता। २ परमेश्वर।

तत्वविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दर्शनशास्त्र।

तत्ववेत्ता—संज्ञा पुं० [तत्त्ववेत्तृ] १ जिसे तत्व का ज्ञान हो। तत्वज्ञ। २. दर्शनशास्त्र का ज्ञाता। फिलासफर। दार्शनिक।

तत्वशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वशास्त्र] १ दर्शनशास्त्र। २ वैशेषिक दर्शनशास्त्र।

तत्वावधान—संज्ञा पुं० [तत्त्वावधान] निरीक्षण। जाँच पड़ताल। देख रेख।

तत्वावधानक—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वावधानक] देखरेख करनेवाला। निरीक्षक।

तत्थ[1]—वि० [सं० तत्त्व] मुख्य। प्रधान।

तत्थ[2]—संज्ञा पुं० शक्ति। बल। ताकत।

तत्पत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ केले का पेड़। २. तमालपत्री नाम की घास।

तत्पद—संज्ञा पुं० [सं०] परम पद। निर्वाण।

तत्पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टिकर्ता। परमात्मा।

तत्पर[1]—वि० [सं०] [संज्ञा तत्परता] १. जो कोई काम करने के लिये तैयार हो। उद्यत। मुस्तैद। सन्नद्ध। २ निपुण। ३. चतुर। होशियार। ४ उसके बाद का (को०)।

तत्पर[2]—संज्ञा पुं० समय का एक बहुत छोटा मान। एक निमेष का तीसरा भाग।

तत्परता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तत्पर होने की क्रिया या भाव। सन्नद्धता। मुस्तैदी। २. दक्षता। निपुणता। ३. होशियारी।

तत्परायण—वि० [सं०] किसी वस्तु या ध्यान में पूरी तरह से लीन या दत्तचित्त (को०)।

तत्पश्चात्—अव्य० [सं०] उसके बाद। अनंतर (को०)।

तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। परमेश्वर। २ एक रुद्र का नाम। ३ मत्स्य पुराण के अनुसार एक कल्प (काल विभाग) का नाम। ४ व्याकरण में एक प्रकार का समास जिसमें पहले पद में कर्ता कारक की विभक्ति को छोड़कर कर्म आदि दूसरे कारकों की विभक्ति लुप्त हो और जिसमें पिछले पद का अर्थ प्रधान हो। इसका लिंग और वचन आदि पिछले या उत्तर पद के अनुसार होता है। जैसे,- जलचर, नरेंद्र, हिमालय, यज्ञशाला।

तत्प्रतिरूपक व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से एक अतिचार जो खरे के खरे पदार्थों में खोटे पदार्थ की मिलावट करने में होता है।

तत्फल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुट नामक ओषधि। २ बेर का फल। ३ कुवलय। नील कमल। ४ चोर नामक गंधद्रव्य। ५ श्वेत कमल (को०)।

तत्र—क्रि० वि० [सं०] उस स्थान पर। उस जगह। वहाँ।

तत्रक—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो योरप, अरब, फारस से लेकर पूर्व में अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष—यह अनार के पेड़ के बराबर या उससे कुछ बड़ा होता है। इसकी पत्तियाँ नीम की पत्ती की तरह कटावदार और कुछ लबाई लिए होती हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें मसूर के से बीज पड़ते हैं। ये बीज बाजार में पसारों के यहाँ समाक के नाम से बिकते हैं और हकीमी दवा में काम आते हैं। बीज के छिलके का स्वाद कुछ खट्टा और रुचिकर होता है। इसकी पत्तियों से एक प्रकार का रंग निकलता है। डठल और पत्तियों से चमड़ा बहुत अच्छा सिझाया जाता है। हिंदुस्तान में चमड़े के बड़े बड़े कारखानों में ये पत्तियाँ सिसली से मँगाई जाती हैं।

तत्रत्य—वि० [सं०] वहाँ रहनेवाला (को०)।

तत्रभवान्—संज्ञा पुं० [सं०] माननीय। पूज्य। श्रेष्ठ।

विशेष—अत्रभवान् की तरह इस शब्द का प्रयोग भी प्रायः संस्कृत नाटकों में अधिकता से होता है।

तत्रस्थ—वि० [सं०] वहाँ स्थित। वहाँ का निवासी।

तत्रापि—अव्य० [सं०] तथापि। तो भी।

तत्संबंधी वि० [सं० तत्सबंधिन्] उससे संबंध रखनेवाला (को०)।

तत्सम—संज्ञा पुं० [सं०] भाषा में व्यवहृत होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जो अपने शुद्ध रूप में हो। संस्कृत का वह शब्द जिसका व्यवहार भाषा में उसके शुद्ध रूप में हो। जैसे—दया, प्रत्यक्ष, स्वरूप, सृष्टि आदि।

तत्सामयिक—वि० [सं०] उस समय से संबंधित। उस समय का (को०)।

तथ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तत्व'। उ०—उह मनु कैसा जो कथै अकथु। उह मनु कैसा जो उलटै सुनि तथु।—प्राण०, पृ० ३४

तथता—संज्ञा पुं० [सं० तथ+ता] १ सत्यता। वस्तु का वास्तविक स्वरूप में निरूपण। २ तथा का भाव। उ०—यदि आप चाहें तो असंस्कृतों को धर्मता, तथता का प्रज्ञप्तिवत् मान सकते हैं।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३३५।

तथा[1]—अव्य० [सं०] १ और। व। २ इसी तरह। ऐसे ही। जैसे—यथा नाम तथा गुण।

यौ०—तथारूप। तथारूपी। तथावादी। तथाविध। तथाविधान। तथावृत। तथाविधेय। तथास्तु=ऐसा ही हो। इसी प्रकार हो। एवमस्तु।

विशेष—इस पद का प्रयोग किसी प्रार्थना को स्वीकार करने अथवा माँगा हुआ वर देने के समय होता है।

तथा[2]—संज्ञा पुं० १ सत्य। २ सीमा। हद। ३ निश्चय। ४ समानता।

तथा[3]—संज्ञा स्त्री० [स० तथ्य] दे० 'तथ्य'।

तथाकथित—वि० [सं०] जो मूलतः न हो परंतु उस नाम से प्रचलित हो। नामधारी।

तथाकथ्य—वि० [सं०] दे० 'तथाकथित' (को०)।

तथाकृत—वि० [सं०] इसी या उसी प्रकार किया हुआ या निर्मित (को०)।

तथागत—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुद्ध का एक नाम। २. जिन (को०)।

तथागुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैसा ही गुण। २. सत्य। वस्तुस्थिति (को०)।

तथाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तथता' (को०)।

तथानुरूप—वि० [सं०] दे० 'तदनुरूप'। उ०—सत्ता के जो नियम होती है वह तत्वों का समधर्मीय होना और उ... और उनसे निकाले हुए नियमों का तथानुरूप होता है।—दा० भा० सि०, पृ० ५।

तथापि—अव्य० [सं०] तो भी। तिस पर भी। तब भी। उ०—प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम जनु होउँ असोकी।—मानस, १। १६४।

विशेष—इसका प्रयोग यद्यपि के साथ होता है। जैसे,—यद्यपि हम वहाँ नहीं गए, तथापि उनका काम हो गया।

तथाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ वैसा भाव या स्थिति। २ सत्यता (को०)।

तथाभूत—वि० [सं०] १. उस प्रकार के गुण या प्रकृति का। २. उस स्थिति का (को०)।

तथाराज—संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध।

तथेई तथेइ ताथे—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ताताथेई'। उ०—सख्यो कान्ह के आनि, तथेई तथेइ ताथे। ब्रजनिधि को चित चूर चूर करि डारयो राधे।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६।

तथैव—अव्य [सं०] वैसा ही। उसी प्रकार।

तथोक्त—वि० [सं०] वैसा वर्णित। जैसा कहा गया है। २ तथाकथित। उ०—भारत की तथोक्त ऊँची जातियाँ चाहे कितना ही अभिमान करें पर उनकी आकृतियाँ और इतिहास पुकार पुकार कर कहते हैं कि वह सांकर्य दोष से बची नहीं हैं।—आर्या०, पृ० १३।

तथ्य[1]—वि० [सं०] १. सत्य। सचाई। यथार्थता। २ रहस्य (को०)।

तथ्यो[2]—अव्य० [सं० तत्र] उस जगह। वहाँ (को०)।

तथ्यत—क्रि० वि० [सं०] सत्य या सचाई के अनुसार (को०)।

तथ्यभाषी—वि० [सं० तथ्यभाषिन्] साफ और सच्ची बात कहनेवाला।

तथ्यवादी—वि० [सं० तथ्यवादिन्] दे० 'तथ्यभाषी'।

तद्—वि० [सं०] वह।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के आरंभ में होता है। जैसे,—तदनंतर, तदनुसार।

तदा—क्रि० वि० [सं० तदा] उस समय। तब।

तदंतर—क्रि० वि० [सं० तदन्तर] इसके बाद। इसके उपरांत।

तदनंतर—क्रि० वि० [सं० तदनन्तर] उसके पीछे। उसके बाद। उसके उपरांत।

तदनन्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य और कारण में अभेद। कार्य और कारण की एकता। (वेदांत)।

तदनु—क्रि० वि० [सं०] १ उसके पीछे। तदनंतर। उसके अनुसार २. उसी तरह। उसी प्रकार।

तदनुकूल—वि० [सं०] उसके अनुसार। तदनुसार।

तदनुरूप—वि० [सं०] उसी के जैसा। उसी के रूप का। उसी के समान।

तदनुसार—वि० [सं०] उसके मुताबिक। उसके अनुकूल।

तदन्यथाधितार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] नव्य न्याय में, तर्क के पाँच प्रकारों में से एक।

तदपि—अव्य० [सं०] तो भी। तिसपर भी। तथापि।

तदबीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] अभीष्ट सिद्धि करने का साधन। उक्ति। तरकीब। यत्न।

तदर्थ—अव्य० [सं०] उसके लिये। उसके वास्ते [को०]।

तदर्थी—वि० [सं० तदर्थिन्] दे० 'तदर्थीय'।

तदर्थीय—वि० [सं०] उसके अर्थ की तरह अर्थ रखनेवाला। समानार्थक [को०]।

तदा—क्रि० वि० [सं०] उस समय। तब। तिस समय।

तदाकार—वि० [सं०] १ वैसा ही। उसी आकार का। उसी आकृतिवाला। तद्रूप। २ तन्मय।

तदारुक—संज्ञा पुं० [अ०] १, खोई हुई चीज या भागे हुए अपराधी आदि की खोज या किसी दुर्घटना आदि के संबंध में जाँच। २ किसी दुर्घटना को रोकने के लिये पहले से किया हुआ प्रबंध। पेशबंदी। बंदोबस्त। ३ सजा। दंड।

तदि(पु)—क्रि० [हिं०] तदा। तब। उस समय। उ०—तदि करयो बोध वह विधि सुताहि।—ह० रासो, पृ० ४६।

तदीय—सर्व० [सं०] उससे संबंध रखनेवाला। उसका।

यौ०—तदीय समाज। तदीय सर्वस्व।

तदुत्तर—वि० [सं०] उसके बाद। उसके अतिरिक्त। उ०—कठिन है अपना तर्क तुम्हें समझाना। इह मेरा है पूर्ण, तदुत्तर परलोकों का कौन ठिकाना।—इत्यलम्, पृ० २१८।

तदुपरांत—क्रि० वि० [सं० तद् + उपरान्त] उसके पीछे। उसके बाद।

तदुपरि—वि० [सं०] उसके ऊपर। उसके बाद। उ०—कष्टों में अल्प उपशम भी क्लेश को है घटाना। जो होती है तदुपरि व्यथा सो महादुर्गमा है।—प्रिय०, पृ० १२२।

तद्गत—वि० [सं०] १ उससे संबंध रखनेवाला। उसके संबंध का। २ उसके अंतर्गत। उसमें व्याप्त।

तद्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक वस्तु का अपना गुण त्याग करके समीपवर्ती किसी दूसरे उत्तम पदार्थ का गुण ग्रहण कर लेना वर्णित होता है। जैसे,—(क) अधर धरत हरि के परत ओंठ दीठ पट जोति। हरित बाँस की बाँसुरी इंद्रधनुष सी होती।—बिहारी (शब्द०)। इसमें बाँस की बाँसुरी का अपना गुण छोड़कर इंद्रधनुष का गुण ग्रहण करना वर्णित है। (ख) जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी। त्यों पदमाकर हीर के हारन गंग तरंगन को सुख देनी। पायन के रँग सों रँगि जात सुभाँतिहि भाँति सरस्वति देनी। पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहँ ताल में होत त्रिबेनी।—पद्माकर (शब्द०)। यहाँ ताल के जल का बालों, हीरे, मोती के हारों और तलवों के संसर्ग से कारण त्रिबेणी का रूप धारण करना कहा गया है।

तदपि(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तदपि'। उ०—अब उद्ध भम्यो बहु कमलि नाल। नहिं पार लह्यो तद्दपि मुहाल।—ह० रासो, पृ० ४।

तद्धन—संज्ञा पुं० [सं०] कृपण। कंजूस।

तद्धर्म—वि० [सं० तद्धर्मन्] जिनका वह धर्म हो। उस धर्मवाला। उ०—किंतु आप कहेंगे कि यद्यपि जाति का तद्धर्मत्व नहीं है तथापि तीक्ष्णत्व और कपिलत्व का अग्निजाति से अविनाभाव है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३३७।

तद्धित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याकरण में एक प्रकार का प्रत्यय जिसे संज्ञा के अंत में लगाकर शब्द बनाते हैं।

विशेष—यह प्रत्यय पाँच प्रकार के शब्द बनाने के काम में आता है—(१) अपत्यवाचक, जिससे अपत्यता या अनुयायित्व आदि का बोध होता है। इसमें या तो संज्ञा के पहले स्वर की वृद्धि कर दी जाती है अथवा उसके अंत में 'ई' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे, शिव से शैव, विष्णु से वैष्णव, रामानंद से रामानंदी आदि। (२) कर्तृवाचक—जिससे किसी क्रिया के कर्ता होने का बोध होता है। इसमें 'वाला' या 'हारा' अथवा इन्हीं का समानार्थक और कोई प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे, कपड़ा से कपड़ेवाला, गाड़ी से गाड़ीवाला, लकड़ी से लकड़ीवाला या लकड़हारा। (३) भाववाचक—जिससे भाव का बोध होता है। इसमें 'आई', 'ई', 'त्व', 'ता', 'पन', 'पा', 'वट', 'हट', आदि प्रत्यय लगाते हैं। जैसे, ढीठ से ढिठाई, ऊँचा से ऊँचाई, मनुष्य से मनुष्यत्व, मित्र से मित्रता, लड़का से लड़कपन, बूढ़ा से बुढ़ापा, मिलान से मिलावट, चिकना से चिकनाहट आदि। (४) ऊनवाचक—जिससे किसी प्रकार की न्यूनता या लघुता आदि का बोध होता है। इसमें संज्ञा के अंत में 'क', 'इया' आदि लगा देते हैं और 'आ' को 'ई' से बदल देते हैं। जैसे,—वृक्ष से वृक्षक, फोड़ा से फोड़िया, डोला से डोली। (५) गुणवाचक—जिससे गुण का बोध होता है। इसमें संज्ञा के अंत में 'आ', 'इक', 'इत', 'ई', 'ईला,' 'एला', 'लु', 'वत', 'वान', 'दायक', 'कारक', आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं। जैसे, ठंढ से ठंढा, मैल से मैला, शरीर से शारीरिक, आनंद से आनंदित, गुण से गुणी, रँग से रँगीला, घर से घरेलू, दया से दयावान्, सुख से सुखदायक, गुण से गुणकारक आदि।

२ वह शब्द जो इस प्रकार प्रत्यय लगाकर बनाया जाय।

तद्धित[2]—वि० उसके लिये उपयुक्त [को०]

तद्बल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाण।

तद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] भाषा में प्रयुक्त होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जिसका रूप कुछ विकृत या परिवर्तित हो गया हो। संस्कृत के शब्द का अपभ्रंश रूप। जैसे, हस्त का हाथ, अश्रु का आँसू, अर्ध का आधा, काष्ठ का काठ, कर्पूर का कपूर, घृत का घी।

तद्यपि—अव्य० [सं०] तथापि। तो भी।

तद्रूप—वि० [सं०] समान। सदृश। वैसा ही। उसी प्रकार का।

तद्रूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सादृश्य। समानता। उ०—जानि जुग जूप में भूप तद्रूपता बहुरि करिहै कलुष भूमि भारी।—सूर (शब्द०)।

तद्वत्—वि० [सं०] उसी के जैसा। उसके समान। ज्यों का त्यों।
यौ०—तद्वत्ता=तद्वत् होने का भाव या स्थिति।

तघी†—क्रि० वि० [सं० तदा] तभी (क्व०)।

तन¹—संज्ञा पुं० [सं० तनु। तुल० फ़ा० तन] १. शरीर। देह। गात। जिस्म।
यौ०—तनताप=(१) शारीरिक कष्ट। (२) भूख। क्षुधा।
मुहा०—तन को लगाना=(१) हृदय पर प्रभाव पड़ना। जी में बैठना। जैसे,—चाहे कोई काम हो, जब तन को न लगे तब तक वह पूरा नहीं होता। (२) (खाद्य पदार्थ का) शरीर को पुष्ट करना। जैसे,—जब चिंता छूटे, तब खाना पीना भी तन को लगे। तन तोड़ना=अँगड़ाई लेना। तन देना=ध्यान देना। मन लगाना। जैसे,—तन देकर काम किया करो। तन मन मारना=इंद्रियों को वश में रखना। इच्छाओं पर अधिकार रखना।
२. स्त्री की मूत्रेंद्रिय। भग।
मुहा०—तन दिखाना=(स्त्री का) संभोग करना। प्रसंग कराना।

तन²—क्रि० वि० तरफ़ ओर। उ०—बिहँसे करुना अयन चितइ जानकी लखन तन।—मानस, २। १००।

तन³—संज्ञा पुं० [सं० स्तन, प्रा० थण, हिं० थन; राज० तन,] दे० 'स्तन'। उ०—तिया मारू रा तन खिस्या पंडर हुवा ज केस।—ढोला०, दू० ४४२

तनक¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रागिनी का नाम जिसे कोई कोई मेघ राग की रागिनी मानते है।

तनक†²—वि०[हिं०] दे० 'तनिक'। उ०—अबही देखे नवल किशोर। घर आवत ही तनक भये हैं ऐसे तन के चोर—सूर (शब्द०)।

तनकना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिनकना'।

तनकीद—संज्ञा स्त्री०[अ० तनकीद] १ आलोचना। २ परख। [को०]।

तनकीह—संज्ञा स्त्री० [अ० तन्क़ीह] १. जाँच। खोज। तहकीकात। २ न्यायालय मे किसी उपस्थित अभियोग के संबध में विचारणीय और विवादास्पद विषयों को ढूँढ़ निकालना। अदालत का किसी मुकदमे की उन बातों का पता लगाना जिनके लिये वह मुकदमा चलाया गया हो और जिनका फैसला होना जरूरी हो।
विशेष—भारत में दीवानी अदालतों में जब कोई मुकदमा दायर होता है, तब पहले उसमें अदालत की ओर से एक तारीख पड़ती है। उस तारीख को दोनों पक्षों के वकील बहस करते हैं जिससे हाकिम को विवादास्पद और विचारणीय बातों को जानने में सहायता मिलती है। उस समय हाकिम ऐसी सब बातों की एक सूची बना लेता है। उन्हीं बातो को ढूँढ़ निकालना और उनकी सूची बनाना तनकीह कहलाता है।

तनक्कना(पु)—क्रि० वि० [हिं० तनक]दे० 'तनिक'। उ०—रहे तनक्क पौरि जाय फेरि अग्गि हल्लिय।—ह० रासो, पु० ११।

तनखाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनख्वाह] वह धन जो प्रति सप्ताह, प्रति मास या प्रति वर्ष किसी को नौकरी करने के उपलक्ष्य में मिलता है। वेतन। तलब।

तनखाहदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो तनखाह पर काम करता हो। तनखाह पानेवाला नौकर। वेतनभोगी।

तनख्वाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनख्वाह] दे० 'तनखाह'।

तनख्वाहदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० तनख्वाहदार] दे० 'तनखाहदार'।

तनगना(पु)†—क्रि० अ०[हिं०]दे० 'तिनकना'। उ०—अनतहि बसत अनत ही डोलत आवत किरिन प्रकास। सुनहु सुर पुनि तौ कहि आवे तनगि गए ता पास।—सूर (शब्द०)।

तनगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] शरीर ढँकने का मामूली वस्त्र। उ०—छई तनगरी तोरि कै सु हरि बोलो हरि बोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३१७।

तनज—संज्ञा पुं० [अ० तज] १ ताना। २ मजाक।

तनजीम—संज्ञा स्त्री० [अ० तन्ज़ीम] अपने वर्ग को संघटित करना। संघटन [को०]।

तनजील—संज्ञा स्त्री० [अ० तनजील] १ आतिथ्य करना। २. उतारना [को०]।

तनजेब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनजेब] एक प्रकार का बहुत ही महीन बढ़िया सूती कपड़ा। महीन चिकनी मलमल।

तनज्जुल—संज्ञा पुं० [अ० तनज्जुल] तरक्की का उलटा। अवनति। उतार। घटाव।

तनज्जुली—संज्ञा स्त्री० [अ० तनज्जुल+फ़ा० ई (प्रत्य०)] अवनति। उतार। तरक्की का उलटा।

तनतनहा—क्रि० वि० [हिं० तन+फा० तनहा] बिलकुल अकेला। जिसके साथ और कोई न हो। जैसे,—वह तनतनहा दुश्मन की छावनी से चला गया।

तनतना—संज्ञा पुं० [हिं० तनतनाना या अ० तनतनह्] १. रोबदाब। दबदबा। २ क्रोध। गुस्सा। (क्व०)।
क्रि० प्र०—दिखाना।

तनतनाना—क्रि० अ० [अनु० या अ० तन्तनह्] १ दबदबा दिखलाना। शान दिखाना। २ क्रोध करना। गुस्सा दिखलाना।

तनत्राण—संज्ञा पुं० [सं० तनुत्राण] १ वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो। २ कवच। बखतर।

तनदिही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'तनदेही'।

तनधर—संज्ञा पुं० [सं० तनु+धर] दे० 'तनुधारी'।

तनधारी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनुधारी'।

तनना¹—क्रि० अ० [सं० तन या तनु] १. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का इस प्रकार आगे की ओर बढ़ना जिसमें उसके मध्य भाग का झोल निकल जाय और उसका विस्तार कुछ बढ़ जाय। झटके, खिचाव या खुश्की आदि के कारण किसी पदार्थ का विस्तार बढ़ना। जैसे, चादर या चाँदनी तनना, घाव पर की पपड़ी तनना। २. किसी चीज का जोर से किसी

ओर खिंचना। आकर्षित या प्रवृत्त होना। ३ किसी चीज का अकड़कर सीधा खड़ा होना। जैसे,—यह पेड़ कल झुक गया था, पर आज पानी पाते ही फिर तन गया। ४ कुछ अभिमानपूर्वक रुष्ट या उदासीन होना। ऐंठना। जैसे,—इधर कई दिनों से वे हमसे कुछ तने रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

तनना²—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तानना'। उ०—ग्रहपथ के आलोकवृत्त से कालजाल तनता अपना।—कामायनी, पृ० ३४।

तनना³—संज्ञा पुं० [हिं० ताना] वह रस्सी जिससे तानने का कार्य किया जाता है।

तनपात(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनुपात'।

तनपोषक—वि० [सं० तन+पोषक] जो केवल अपने ही शरीर या लाभ का ध्यान रखे। स्वार्थी।

तनबाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश जिसका नाम महाभारत में आया है।

तनमय—वि० [सं० तन्मय] दे० 'तन्मय'। उ०—अपनो अपनो भाग सखी री तुम तनमय मैं कहूँ न नेरे।—सूर (शब्द०)।

तनमात्रा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्मात्रा] दे० 'तन्मात्रा'।

तनमानसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान की सात भूमिकाओं में तीसरी भूमिका।

तनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र। बेटा। लड़का। २. जन्मलग्न से पाँचवाँ स्थान जिससे पुत्र भाव देखा जाता है।

तनया—संज्ञा स्त्री०[सं०]१. लड़की। बेटी। पुत्री। २ पिठवन लता।

तनराग—संज्ञा पुं० [सं० तनु+राग] दे० 'तनुराग'।

तनरुह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तनूरुह] दे० 'तनूरुह'। उ०—हरषवंत बर अधर भूमिसुर तनरुह पुलकि जनाई।—तुलसी (शब्द०)।

तनवाद—संज्ञा पुं० [सं०] भौतिकवाद। शरीर को मुख्य माननेवाला सिद्धांत। उ०—वह ठेठ तनवाद और कर्मवाद है।—सुखदा, पृ० १६१।

तनवाना—क्रि० स० [हिं० तानना का प्रे०रूप] तानने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना। तनाना।

तनवाल—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

तनसल—संज्ञा पुं० [देश०] स्फटिक। बिल्लौर।

तनसिज—संज्ञा पुं० [सं०] उरोज। उ०—सब गनना चित चोर सों, बनी सुनत यह बोल। भरके तनसिज तरुनि के, फरके गोल कपोल।—स० सप्तक, पृ० २४२।

तनसीख—संज्ञा स्त्री० [अ० तनसीख] रद्द करना। खारिज करना। नाजायज करना। मसूखी।

तनसुख—संज्ञा पुं० [हिं० तन+सुख] तजेब या मलमल की तरह का एक प्रकार का बढ़िया फूलदार कपड़ा। उ०—(क) तनसुख सारी लही अँगिया अतलस अतरौटा छबि चारि चारि चूरी पहुँचीनि पहुँची छमकी बनी नकफूल जेब मुख बीरा चौके कोधे संभ्रम भूली।—हरिदास (शब्द०)। (ख) कोमलता पर रसाल तनसुख की सेज लाल मनहुँ सोम सूरज पर सुधाबिंदु बरषै।—

तनहा¹—वि० [फ़ा०] १. जिसके संग कोई न हो। बिना साथी का। अकेला। एकाकी। २ रिक्त। खाली (को०)।

तनहा²—क्रि० वि० बिना किसी संगी साथी का। अकेले

तनहाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. तनहा होने की दशा या भाव। २ वह स्थान जहाँ और कोई न हो। एकांत।

यौ०—तनहाई कैद।

तना¹—संज्ञा पुं० [फा० तनह्] वृक्ष का जमीन से ऊपर निकला हुआ वहाँ तक का भाग जहाँ तक डालियाँ न निकली हों। पेड़ का धड़। मंदल।

तना²—क्रि० वि० [हिं० तन] ओर। तरफ। दे० 'तन'। उ०—नील पट झपटि लपेटि छिगुनी पै धरि टेरि टेरि कहै हँसि हेरि हरिजू तना।—देव (शब्द०)।

तना³—संज्ञा पुं० [हिं० तन] शरीर। जिस्म। उ०—तना सुख में पड़ा तब से गुरू का शुक्र क्यों भूला।—कबीर म०, पृ० ५४३।

तनाइ‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनाव'।

तनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तनाव'।

तनाउ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तनाव'। उ०—फटिक छरी सी किरन कुंजरंध्रनि जब आई। मानो बितनु बितान सुदेस तनाउ तनाई।—नंद० ग्रं०, पृ० ७।

तनाउल—संज्ञा पुं० [अ० तनावुल] भोजन करना। उ०—हुजूर को खासा तनाउल फर्माने को नावक्त हुआ जाता है।—प्रेमघन०, पृ० ८५।

तनाऊ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनाव'।

तनाक—वि० [हिं०] दे० 'तनिक'। उ०—दर, स्तोक, ईखत, अलप, रंचक, मद, मनाक। तब प्रिय सहचरि तन चितै, मुसकी कुँअरि तनाक।—नंद० ग्रं० पृ० १००।

तनाकु(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'तनिक'।

तनाजा—संज्ञा पुं० [अ० तनाजअ्] १ बखेड़ा। झगड़ा। टंटा। दंगा। संघर्ष। फसाद। २ अदावत। कशाकश। शत्रुता। वैर। वैमनस्य।

तनाना—क्रि० स० [हिं० तानना का प्रे०रूप] तानने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना। उ०—कलस चरन तोरन ध्वजा सुबितान तनाए।—तुलसी (शब्द०)।

तनाब—संज्ञा स्त्री० [अ० तिनाब] १ खेमे की रस्सी। २ बाजीगरों का रस्सा जिसपर वे चलते तथा दूसरे खेल करते हैं।

यौ०—तनाबे अमल=(१) आशा रूपी डोर। (२) आशा। तनाबे उम्र=आयुसूत्र। आयु। जीवनकाल।

तनाय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनाव'।

तनाव—संज्ञा पुं० [हिं० तनना] १ तनने का भाव या क्रिया। २ वह रस्सी जिसपर धोबी कपड़े सुखाते हैं। ३ रस्सी। डोरी। जेवरी। रज्जु।

तनासुख—संज्ञा पुं० [अ० तनासुख] आवागमन (को०)।

तनि¹—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तनिक'। उ०—तनि सुख तौ चहियत हुतो हुर विध विधिहि मनाय। भली भई जो सखि भयो मोहन मयुरे आय।—रसनिधि (शब्द०)।

तनि²—अव्य० तरफ। ओर।

तनि³—संज्ञा पुं० [सं० तनु] शरीर। देह।

तनिक¹—वि० [सं० तनु (= अल्प)] १ थोड़ा। कम। २ छोटा। उ०—इहाँ हुती मेरी तनिक मड़ैया को नृप आइ छयो।—सूर (शब्द०)।

तनिक²—क्रि० वि० जरा। टुक।

तनिका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रस्सी जिससे कोई चीज बाँधी जाय।

तनिका²—सर्व० [हिं० तिनका] उसका। उ०—भनइ विद्यापति कवि कठहार। तनिका दोसर काम प्रहार। —विद्यापति०, पृ० २८।

तनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिमन्] १ कृशता। २ नजाकत। उ०—तनिमा ने हुर लिया तिमिर, अगों में लहरी फिर फिर, तनु में तनु भारति सी स्थिर, प्राणों की पावनता बन।—गीतिका, पृ० ६६।

तनियाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तनी] १. लँगोट। लँगोटी। कोपीन। २. कछनी। जाँघिया। उ०—तनिया ललित कठि विचित्र टिपारो सीस मुनि मन हरत बचन कहै तोतरात।—तुलसी (शब्द०)। ३ चोली। उ०—तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न घामै घुमरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की।—भूषन (शब्द०)।

तनिष्ठ—वि० [सं०] जो बहुत ही दुबला पतला, छोटा या कमजोर हो।

तनिसा—संज्ञा पुं० [देश०] पुआल।

तनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हिं० तानना] १. डोरी की तरह बटा या लपेटा हुआ वह कपड़ा जो अँगरखे, चोली आदि में उनका पल्ला तानकर बाँधने के लिये लगाया जाता है। बंद। बंधन। उ०—कंचुकि ते कुचकलस प्रगट ह्वै टूटि न तरक तनी।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'तनिया'।

तनी‡²—क्रि० वि० [सं० तनु] दे० 'तनिक'।

तनी†³—वि० दे० 'तनिक'।

तनीदार—वि० [हिं० तनी + फ़ा० दार] तनी या बंदवाला।

तनु¹—वि० [सं०] १. कृश। दुबला पतला। २ अल्प। थोड़ा। कम। ३. कोमल। नाजुक। ४. सुंदर। बढ़िया। ५. तुच्छ (को०)। ६. छिछला (को०)।

तनु²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शरीर। देह। बदन। २. चमड़ा। खाल। त्वक्। ३ स्त्री। औरत। ४ केंचुली। ५. ज्योतिष में लग्नस्थान। जन्मकुंडली में पहला स्थान। ६ योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद जिसमें चित्त में क्लेश की अवस्थिति तो होती है, पर साधन या सामग्री आदि के कारण उस क्लेश की सिद्धि नहीं होती।

तनुक(प)†¹—वि० [सं० तनु + क (प्रत्य०)] दे० 'तनिक'।

तनुक²—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तनिक'।

तनुक³—संज्ञा पुं० [सं० तनु] दे० 'तनु'।

तनुक⁴—वि० [सं०] १. पतला। क्षीण। कृश। २. छोटा [को०]।

तनुकूप—संज्ञा पुं० [सं०] रोमछिद्र [को०]।

तनुकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर बालोंवाली स्त्री [को०]।

तनुक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार वह लाभ जो मन मात्र से साध्य हो।

तनुक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] आमड़े का पेड़।

तनुगृह—संज्ञा पुं० [सं०[अश्विनी नक्षत्र [को०]।

तनुच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। बकतर।

तनुच्छाय¹—संज्ञा पुं० [सं०] लाल बबूल का पेड़।

तनुच्छाय²—वि० अल्प या कम छायावाला [को०]।

तनुज—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुत्र। बेटा। लड़का। २ जन्मकुंडली में लग्न से पाँचवाँ स्थान जहाँ से पुत्रभाव देखा जाता है।

तनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। लड़की। पुत्री। बेटी।

तनुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लघुता। छोटाई। २. दुर्बलता। दुबलापन। कृशता।

तनुत्याग—वि० [सं०] कम खर्च करनेवाला। कृपण [को०]।

तनुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तनुत्राण'।

तनुत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो। २. कवच। बकतर।

तनुत्रान(प)—संज्ञा पुं० [सं० तनुत्राण] दे० 'तनुत्राण'।

तनुत्वचा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी अरणी।

तनुत्वचा²—संज्ञा स्त्री० जिसकी छाल पतली हो।

तनुदान—संज्ञा स्त्री० [सं०] अल्पदान। शरीरदान (संभोग के लिये)।

तनुधारी—वि० [सं०] शरीरधारी। देहधारी। शरीर धारण करनेवाला। उ०—कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह येहु रूप निहारी।—मानस, १।२२१।

तनुधी—वि० [सं०] क्षीणमति। अल्पबुद्धि [को०]।

तनुपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गोंदनी या गोंदी का पेड़। इंगुआ वृक्ष।

तनुपात—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से प्राण निकलना। मृत्यु। मौत।

तनुपोषक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपने ही शरीर या परिवार का पोषण करता हो। स्वार्थी। उ०—तनुपोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मों बगरे।—मानस, ७।१०२।

तनुप्रकाश—वि० [सं०] धुँधले या मंद प्रकाशवाला [को०]।

तनुबीज¹—संज्ञा पुं० [सं०] राजबेर।

तनुबीज²—वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुभव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तनुभवा] पुत्र। बेटा। लड़का।

तनुभस्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नाक [को०]।

तनुभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध श्रावकों के जीवन की एक अवस्था।

तनुभृत्—वि० [सं०] देहधारी, विशेषतः मनुष्य [को०]।

तनुमत्—वि० [सं०] १. समाहित। सन्निहित। २. शरीर युक्त। शरीरवाला।

तनुमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] कमर या कटि [को०]।

तनुमध्य—वि० क्षीण कटि या कमरवाला [को०]।

तनुमध्यमा—वि० [सं०] पतली कमरवाली [को०]।

तनुमध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे एक तगण और यगण (SSI—ISS) होता है। इसको चौरस भी कहते हैं। जैसे,—तू यों किमि आली, घूमै मतवाली।—(शब्द०)।

तनुरस—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनुराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. केसर, कस्तूरी, चंदन, कपूर, अगर आदि को मिलाकर बनाया हुआ उबटन। २ वे सुगंधित द्रव्य जिनसे उक्त उबटन बनाया जाता है।

तनुरुह—संज्ञा पुं० [सं०] रोआँ। रोम।

तनुल—वि० [सं०] विस्तृत। फैला हुआ [को०]।

तनुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लता सदृश सुकुमार पतला शरीर [को०]।

तनुवात—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह स्थान जहाँ हवा बहुत ही कम हो। २ एक नरक का नाम।

तनुवार—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। बखतर।

तनुवीज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] राजबेर।

तनुवीज[2]—वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक रोग। फीलपाँव।

तनुशिरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० तनुशिरस] एक वैदिक छंद।

तनुशिरा[2]—वि० छोटे सिरवाला [को०]।

तनुसर—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनू—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुत्र। बेटा। लड़का। २ शरीर। ३ प्रजापति। ४ गो। गाय। ५ अंग। अवयव (को०)।

तनूज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तनुज'।

तनूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तनुजा'।

त[illegible]नि—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा [को०]।

तनूजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० तनूजन्मन्] पुत्र [को०]।

तं[illegible]त्र—संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक माप जो एक हाथ के बराबर थी [को०]।

तनूताप—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनुताप' [को०]।

तनूतप—संज्ञा पुं० [सं०] घृत। घी।

तनूनपात्, तनूनपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। आग। २ चीते का वृक्ष। चीता। चीतावर। चित्रक। ३ प्रजापति के पोते का नाम। ४ घी। घृत। ५ मक्खन।

तनूनप्ता—संज्ञा पुं० [सं० तनूनप्तृ] वायु [को०]।

तनूपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिससे खाया हुआ अन्न पचता है। जठराग्नि।

तनूपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शरीर की रक्षा करता है। अंगरक्षक।

तनूपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सोमयाग।

तनूर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] खमीरी रोटी पकाने की गहरी कुहरनुमा भट्ठी। तंदूर।

तनूरुह—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोम। लोम। रोआँ। २. पक्षियों का पर। पंख। ३. पुत्र। लड़का। बेटा।

तनें—अव्य० [हिं० तनै] की ओर। की तरफ।

तनेनना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तानना'। उ०—तू इत बैठी भौंह तनेनत नहिं सोहात मोहिं यह रूखो कलि।—भा० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८३।

तनेना—वि० [हिं० तनना + एना (प्रत्य०)] [वि०स्त्री० तनेनी] १ खिंचा हुआ। टेढा। तिरछा। उ०—बात के बूझत ही मतिराम कहा करती अब भौंह तनेनी।—मतिराम (शब्द०)। २ क्रुद्ध। जो नाराज हो। उ०—आली हौं गई ही आजु भूमि बरसाने कहूँ तापै तू परै है पद्माकर तनेनी क्यो।—पद्माकर (शब्द०)।

तनै[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनय'।

तनै[2]—वि० [हिं० तन (= ओर, तरफ)] तईं। लिये। उ०—दोउ जंघ रंभ कंचन दिपत, थरी कमल हाटक तनौ।—हृ० रासो, पृ० २५।

तनैना—संज्ञा पुं० [हिं०] [वि०स्त्री० तनैनी] दे० 'तनेना'। तना हुआ। खिंचा हुआ।

तनैया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] पुत्री। बेटी। कन्या। लड़की।

तनैया[2]—वि० [हिं० तानना + ऐया (प्रत्य०)] ताननेवाला।

तनैला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसके फूल खुशबूदार और सफेद होते हैं।

तनो—वि० [हिं० तन (= तरफ)] तई। के लिये। वास्ते। उ०—नहिं तजूँ सेख को प्रण कारिव, सरन धरम छत्रिय तनों।—हृ० रासो, पृ० ५७।

तनोआ—संज्ञा पुं० [हिं० तानना] १ वह वस्त्र जिसे तानकर छाया की जाती है। २ चँदोआ।

तनोजा—संज्ञा पुं० [सं० तनूज] १. रोम। लोम। रोआँ। उ०—अंग थरहरे क्यो भरे खरे तनोज पसेव।—शृ० सत० (शब्द०)। २ लड़का। बेटा।

तनोरुह—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनूरुह'।

तनोवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनोआ'।

तन्ना—संज्ञा पुं० [हिं० तानना] १. बुनाई में ताने का सूत जो लंबाई में ताना जाता है। २. वह जिसपर कोई चीज तानी जाय।

तन्नाना—क्रि० अ० [हिं० तनना] अकड़ना। ऐंठना। अकड़ दिखाना। बिगड़ना। क्रुद्ध होना।

तन्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिठवन। २. काश्मीर की चंद्रतुल्या नदी का नाम।

तन्नी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हिं० तानना या तनी] १. तराजू में जोती की रस्सी। वह रस्सी जिसमें तराजू के पल्ले लटकते हैं। जोती। २. एक प्रकार की अंकुसी जिससे जोहे की मैल खुरचते हैं। ३. जहाज के मस्तूल की जड़ में बँधा हुआ एक प्रकार का रस्सा जिसकी सहायता से पाल आदि चढ़ाते हैं (लश०)।

तन्नी[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तरनी] किसी व्यापारी जहाज का वह अफसर जो यात्राकाल में उसके व्यापार संबंधी कार्यों का प्रबंध करता हो।

तन्नी[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरनी'।

तन्मनस्क—वि० [सं०] तन्मय। तल्लीन [को०]।

तन्मय—वि० [सं०] जो किसी काम में बहुत ही मग्न हो। लवलीन। लीन। लगा हुआ। दत्तचित्त। उ०—कबहूँ कहति कौन हरि को मैं यों तन्मय ह्वै जाही।—सूर (शब्द०)।

तन्मयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लिप्तता। एकाग्रता। लीनता। तदाकारता। लगन।

तन्मयासक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान् मे तन्मय हो जाना। भक्ति में अपने आपको भूल जाना और अपने को भगवान् ही समझना।

तन्मात्र—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार पंचभूतों का अविशेष मूल। पंचभूतों का आदि, अमिश्र और सूक्ष्म रूप। ये संख्या में पाँच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

विशेष—सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति का जो क्रम दिया है, उसके अनुसार पहले प्रकृति से महत्तत्व की उत्पत्ति होती है। महत्तत्व से अहंकार और अहंकार से सोलह पदार्थों की उत्पत्ति होती है। ये सोलह पदार्थ पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ, एक मन और पाँच तन्मात्र हैं। इनमें भी पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। अर्थात् शब्द तन्मात्र से आकाश उत्पन्न होता है और आकाश का गुण शब्द है। शब्द और स्पर्श दो तन्मात्राओं से वायु उत्पन्न होती है और शब्द तथा स्पर्श दोनो ही उसके गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस तन्मात्र के संयोग से जल उत्पन्न होता है और जिसमें ये चारो गुण होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पाँचों तन्मात्रों के संयोग से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है जिसमे ये पाँचो गुण रहते हैं।

तन्मात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्र'।

तन्मात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्रा'। वेदांत शास्त्र की एक संज्ञा। पाँच विषयों की पाँच तन्मात्राएँ। उ०—इनि तन्मात्रिका सहेता। ये पंच विषय को होता।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६७।

तन्मूलक—वि० [सं०] उससे निकला हुआ [को०]।

तन्य—वि० [हिं० तनना] तानने या खीचने योग्य।

तन्युत—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु। हवा। २ रात्रि। रात। ३ गर्जन। गरजना। ४ प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

तन्वंग—वि० [सं० तन्वङ्ग] सुकुमार या क्षीण शरीरवाला [को०]।

तन्वंगिनी—वि० स्त्री० [सं०] तन्वंगी। उ०—विवसना लता सी, तन्वंगिनि, निर्जन में क्षणभर की संगिनि।—युगांत, पृ० ३७।

तन्वंगी—वि० [सं० तन्वंगी] कृशांगी। दुबली पतली।

तन्वि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काश्मीर की चंद्रकुल्या नदी का एक नाम।

तन्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्वी'।

तन्वी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से भगण, तगण, नगण, सगण, भगण, भगण, नगण और यगण (ऽ।।–ऽऽ।–।।।–।।ऽ–ऽ।।–ऽ।।–।।।–।ऽऽ) होते हैं। इसमें ५ वें, १२ वें और २४ वें अक्षर पर यति होती है। २ कोमलांगी। कृशांगी (को०)।

तन्वी[2]—वि० दुबले पतले और कोमल अंगोंवाली। जिसके अंग कृश और कोमल हों।

तप.कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ तपस्वी। २ तपसी मछली।

तप.कृश—वि० [सं०] तप से क्षीण।

तप.पूत—वि० [सं०] तपस्या करके जो शरीर एवं मन से पवित्र हो गया हो [को०]।

तप.प्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] तप द्वारा की हुई शक्ति [[को०]]।

तप.भूत— वि० [सं०] तपस्या द्वारा आत्मशुद्धि प्राप्त करनेवाला [को०]।

तप.साध्य—वि० [सं०] जो तप द्वारा सिद्ध हो [को०]।

तप.सुत—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर [को०]।

तप.स्थल—संज्ञा पुं० [सं०] तप करने का स्थान। तपोभूमि [को०]।

तप.स्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०]।

तप—संज्ञा पुं० [सं० तपस्] १. शरीर को कष्ट देने वाले वे व्रत और नियम आदि जो चित्त को शुद्ध और विषयों से निवृत्त करने के लिये किए जायँ। तपस्या।

क्रि० प्र०—करना।—साधना।

विशेष—प्राचीन काल में हिंदुओं, बौद्धों, यहूदियों और ईसाइयों आदि में बहुत से ऐसे लोग हुआ करते थे जो अपनी इंद्रियों को वश में रखने तथा दुष्कर्मों से बचने के लिये, अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार बस्ती छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में जा रहते थे। वहाँ वे अपने रहने के लिये घास फूस की छोटी मोटी कुटी बना लेते थे और कंद मूल आदि खाकर और तरह तरह के कठिन व्रत आदि करते रहते थे। कभी वे लोग मौन रहते, कभी गरमी सरदी सहते और उपवास करते थे। उनके इन्हीं सब आचरणों को तप कहते हैं। पुराणों आदि मे इस प्रकार के तपो और तपस्वियों आदि की अनेक कथाएँ हैं। कभी किसी अभीष्ट की सिद्धि या किसी देवता से वर की प्राप्ति आदि के लिये भी तप किया जाता था। जैसे, गंगा को लाने के लिये भगीरथ का तप, शिव जी से विवाह करने के लिये पार्वती का तप। पातंजल दर्शन मे इसी तप को क्रियायोग कहा है। गीता के अनुसार तप तीन प्रकार का होता है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देवताओं का पूजन, बड़ों का आदर सत्कार, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक तप के अंतर्गत हैं, सत्य और प्रिय बोलना, वेदशास्त्र का पढ़ना आदि वाचिक तप हैं और मौनावलंबन, आत्मनिग्रह आदि की गणना मानसिक तप मे है।

२. शरीर या इंद्रिय को वश मे रखने का धर्म। ३. नियम। ४. माघ का महीना। ५ ज्योतिष में लग्न से नवाँ स्थान।

६ अग्नि। ७ एक कल्प का नाम। ८ एक लोक का नाम। वि० दे० 'तपोलोक'।

तप[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप। गरमी। २ ग्रीष्म ऋतु। ३. बुखार। ज्वर।

तपकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० टपकना या तमकना] १ धड़कना उछलना। उ०—रतिया अँधेरी धीर न तिया धरति मुख बतिया कढ़ति उठै छतिया तपकि तपकि।—देव (शब्द०) २ दे० 'टपकना'।

तपचाक—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का तुर्की घोड़ा।

तपच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तपनच्छद'।

तपड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. दूह। छोटा टीला। २. एक प्रकार का फल जो पकने पर पीलापन लिए लाल रंग का हो जाता है। यह जाड़े के अंत में बाजारों में मिलता है।

तपत†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपन[2]'।

तपति—वि० [देश०] बूढ़ी। वृद्ध। उ०—भोग रहे भरपूरि आयु यह बीति गई सब। तप्यो नाहिं तप मूढ़ अवस्था तपति भई अब।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १०६।

तपती—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सूर्य की कन्या का नाम।

विशेष—यह छाया के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। सूर्य ने कुरुवंशी संवरण की सेवा आदि से प्रसन्न होकर तपती का विवाह उन्हीं के साथ कर दिया था।

तपतोदक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तप्त+उदक] गरम पानी। उ०—यह दोनों रसजर के नेती। पीस पिए तपतोदक सेती।—इंद्रा०, पृ० १५२।

तपन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ तपने की क्रिया या भाव। ताप। जलन। आँच। दाह। २. सूर्य। आदित्य। रवि। ३ सूर्यकांत मणि। सूरजमुखी। ४ ग्रीष्म। गरमी। ५ एक प्रकार की अग्नि। ६ पुराणानुसार एक नरक जिसमें जाते ही शरीर जलता है। ७ धूप। ८. भिलावे का पेड़। ९. मदार। आक। १० अरनी का पेड़। ११ वह क्रिया या हाव भाव आदि जो नायक के वियोग में नायिका करे या दिखलावे। इसकी गणना अलकार में की जाती है।

यौ०—तपनयौवन=सूर्य का यौवन। सूर्य की प्रखरता। उ०—प्रखर से प्रखरतर हुआ तपनयौवन सहसा।—अपरा, पृ० ६१।

तपन[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तपना] तपने की क्रिया या भाव। ताप। जलन। गरमी।

मुहा०—तपन का महीना=वह महीना जिसमें गरमी खूब पड़ती हो। गरमी।

तपनकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण। रश्मि।

तपनच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] मदार का पेड़।

तपनतनय—संज्ञा पुं०[सं०]सूर्य के पुत्र—यम, कर्ण, शनि, सुग्रीव आदि।

तपनतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शमी वृक्ष। २ यमुना नदी।

तपनमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि।

तपनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण। रश्मि।

तपना[1]—क्रि० अ० [सं० तपन] १ बहुत अधिक गर्मी, आँच या धूप आदि के कारण खूब गरम होना। तप्त होना। उ०—निज अघ समुझि न कुछ कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—रसोई तपना=दे० 'रसोई' के मुहाविरे।

२. संतप्त होना। कष्ट सहना। मुसीबत झेलना। जैसे,—हम घंटों से यहाँ आप के आसरे तप रहे हैं। उ०—सीप सेवाति कहँ तपइ समुद मँझ नीर।—जायसी (शब्द०)। ३. तेज या ताप धारण करना। गरमी या ताप फैलाना। उ०—जइस भानु जग ऊपर तापा।—जायसी (शब्द०)। ४ प्रबलता, प्रभुत्व या प्रताप दिखलाना। आतंक फैलाना। जैसे,—आजकल यहाँ के कोतवाल खूब तप रहे हैं। उ०—(क) सेरसाहि दिल्ली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू।—जायसी (शब्द०)। (ख) कर्मकाल, गुन, सुभाउ सबके सीस तपत।—तुलसी (शब्द०)।

तपना[2]—क्रि० अ० [सं० तप्] तपस्या करना। तप करना।

तपनाराधना—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्या [को०]।

तपनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपन'।

तपनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तपना] १ वह स्थान जहाँ बैठकर लोग आग तापते हों। कौड़ा। अलाव।

क्रि० प्र०—तापना।

२ तपस्या। तप। ३. तपन (को०)।

तपनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गोदावरी नदी। २. पाठा लता (को०)।

तपनीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

तपनीय[2]—वि० तपने या तापने योग्य [को०]।

तपनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तपनीय'।

तपनेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

तपनोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि।

तपभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्+हिं० भूमि] दे० 'तपोभूमि'।

तपराशि—संज्ञा पुं० [सं० तपोराशि] दे० 'तपोराशि'।

तपरासी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपोराशि'। उ०—ब्रह्म के उपासी तपरासी बनबासी बर विपुल मुनीशन के आश्रम सिधायो मैं।—राम० धर्म०, पृ० २६०।

तपलोक—संज्ञा पुं० [सं० तपोलोक, हिं०] दे० 'तपोलोक'।

तपवाना—क्रि० स० [हिं० तपाना का प्रे० रूप] १. गरम करवाना। तपाने का काम दूसरे से कराना। २. किसी से व्यर्थ व्यय कराना। अनावश्यक व्यय कराना।

तपवृद्ध(पु)—वि० [सं० तपोवृद्ध, हिं०] दे० 'तपोवृद्ध'।

तपशील—वि० [सं० तप शील] तपस्या करनेवाला [को०]।

तपश्चरण—संज्ञा पुं० [सं०] तप। तपस्या।

तपश्चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या । तपश्चरण ।

तपस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २ सूर्य । ३ पक्षी ।

तपस²—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्] तप । तपस्या । उ०—न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे, ये प्राणी चमकीले लगते । इस निदाघ मरु में सूखे से, स्रोतों के तट जैसे जगते ।—कामायनी, पृ० २७० ।

तपसा³—संज्ञा पुं० तपस्वी ।

तपसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्विनी' । उ०—काम कुमत्तौ उप्पनौ दीय तपसनी स्राप । बीसल दे बुधि चल विचल प्रगटि पुब्व को पाप ।—पृ० रा०, १।४६५ ।

तपसरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्विनी' । उ०—भय दिवाहु पाहुट्टु दुति तपसरनी को कोप । जल वेली विहु भाग व्रिप । ते जिन भए अलोप ।—पृ० रा०, १।५०७ ।

तपसा—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या] १. तपस्या । तप । २. तापती नदी का दूसरा नाम जो बैतूल के पहाड़ से निकलकर खंभात की खाड़ी में गिरती है ।

तपसालि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तप+साली] दे० 'तपसाली' ।

तपसाली—संज्ञा पुं० [सं० तप.शालिन्] वह जिसने बहुत तपस्या की हो । तपस्वी । उ०—आए मुनिवर निकर तब कौशिकादि तपसालि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तपसी—संज्ञा पुं० [सं० तपस्वी] तपस्या करनेवाला । तपस्वी । उ०— तपसी तुमको तप करि पावैं । मुनि भागवत गृही गुन गावैं ।—सूर (शब्द०) ।

तपसी मछली—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या मत्स्य] एक बालिश्त लंबी एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह बंगाल की खाड़ी में होती है । बैसाख या जेठ के महीने में अंडे देने के लिये यह नदियों में चली जाती है ।

तपसोमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार बारहवें मन्वंतर के चौथे सावर्णि के सप्तर्षियों में से एक ।

तपस्तक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

तपस्तति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

तपस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंद पुष्प । २. तपस्या । तप । ३. हरिवंश के अनुसार तामस मनु के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम । ४. फागुन का महीना । ५ अर्जुन ।

विशेष—अर्जुन का एक नाम फाल्गुन भी था, इसीलिये तपस्य भी अर्जुन का एक नाम हो गया ।

तपस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तप । व्रतचर्या । २ फागुन मास । ३ दे० 'तपसी मछली' ।

तपस्वत्—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी ।

तपस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्वी होने की अवस्था या भाव ।

तपस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तपस्या करनेवाली स्त्री । २ तपस्वी की स्त्री । ३. पतिव्रता या सती स्त्री । ४ जटामासी । ५. वह स्त्री जो अपने पति के मरने पर केवल अपनी संतान का पालन करने के लिये सती न हो और कष्टपूर्वक अपना जीवन बितावे । ६ दीन और दुखिया स्त्री । ७ बड़ी गोरखमुंडी । ८ कुटकी । कटुरोहिणी ।

तपस्विपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दमनक वृक्ष । दौने का पेड़ ।

तपस्वी¹—संज्ञा पुं० [सं० तपस्विन्] [स्त्री० तपस्विनी] १ वह जो तप करता हो । तपस्या करनेवाला । २ दीन । ३. दया करने योग्य । ४ घीकुआर । ५ तपसी मछली । ६ तपसोमूर्ति का एक नाम ।

तपस्स(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तपस] दे० 'तपस्वी' । उ०— धर्मकी धरा धंम धर्म धरक्की । कठं पिठु कमंडु गट्टं करक्की । किये अट्टिगं सो दिगंपाल वस्सं । तरक्के थके मुं नि जंन तपस्सं ।—पृ० रा०, ६।१११ ।

तपा¹—संज्ञा पुं० [हिं० तप] तपस्वी । उ०—मठ मंडप चहुँपास सँवारे । तपा जपा सब आसन मारे ।—जायसी (शब्द०) ।

तपा²—वि० तप में मग्न । जो तपस्या में लीन हो । उ०—फेरे भेख रहै भा तपा । धूरि लपेटा मानिक छपा ।—जायसी (शब्द०) ।

तपाक—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ आवेश । जोश । जैसे,—आते ही यह बड़े तपाक से बोला ।

मुहा०—तपाक बदलना = नाराज होना । बिगड़ जाना । तेवर बदलना ।

२ वेग । तेजी ।

तपात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म का अंत या वर्षाकाल । बरसात ।

तपानल—संज्ञा पुं० [सं०] तप से उत्पन्न तेज । वह तेज जो तप करने के कारण उत्पन्न हो ।

तपाना—क्रि० स० [हिं० तपना] १ बहुत अधिक गर्मी, भाप, धूप आदि की सहायता से गरम करना । तप्त करना । २. संतप्त करना । दुःख देना । क्लेश देना । ३ तप करके शरीर को कष्ट देना । तप करने में शरीर को प्रवृत्त करना ।

तपायमान—वि० [सं० तप] तप्त । दुखी । उ०—एक काल में भृगु की स्त्री जात रही थी, तिसके वियोग कर वह ऋषि तपायमान हुआ ।—योग०, पृ० ७ ।

तपारी—संज्ञा पुं० [हिं०] तपस्वी [को०] ।

तपावंत—संज्ञा पुं० [हिं० तप+वंत (प्रत्य०)] तपस्वी । तपसी । वह जो तपस्या करता हो । उ०—तपावंत छाला लिखि दीन्हा । बेग चलाव चहूँ सिधि कीन्हा ।—जायसी (शब्द०) ।

तपाव—संज्ञा पुं० [हिं० तपना+आव (प्रत्य०)] तपने की क्रिया या भाव । गरमाहट । ताप ।

तपावस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपस्या' । उ०—करै तपावस सबको आपै । उग्रम कालु कव मारै थापै ।—प्राण०, पृ० २२७ ।

तपित(पु)†—वि० [सं०] तपा हुआ । गरम । तप्त ।

तपिय—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपी' । उ०—सुनत बखान कालिंजर ईसु । तपिय चरव पर डारेउ सीसु ।—इंद्रा०, पृ० १६ ।

तपिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो मध्यभारत, बंगाल तथा आसाम में होता है ।

विशेष—इसकी छाल तथा पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसे बिरमी भी कहते हैं।

तपिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गरमी। तपन। आँच। ताव।

तपी—संज्ञा पुं० [हिं० तप + ई (प्रत्य०)] १. तप करनेवाला। तपस्वी। तापस। ऋषि। उ०—धनवत कुलीन मलीन अपी। द्विज चीन्ह जनेउ उघार तपी।—मानस, ७।१०१। २ सूर्य (डिं०)।

तपीसर—वि० [सं० तपीश्वर] तपस्या करनेवाला। उ०—न सोहागनि महापवीत। तपे तपीसर डाले चीत।—कबीर ग्रं०, पृ० २८४।

तपु¹—संज्ञा पुं०[सं० तपुस्]१ अग्नि। आग। २ सूर्य। रवि ३ शत्रु।

तपु²—वि० १. तप्त। उष्ण। गरम। २ तापने या गरम करनेवाला।

तपुराग्र—वि० [सं०] जिसका अगला भाग तपा या तपाया हुआ हो [को०]।

तपुराग्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी या भाला [को०]।

तपेदिक—संज्ञा पुं० [फ़ा० तप + अ० दिक] राजयक्ष्मा। क्षयी रोग।

तपेस्सा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्या'।

तपोज—वि० [सं०] १ जो तपस्या से उत्पन्न हुआ हो। २ जो अग्नि से उत्पन्न हुआ हो।

तपोजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल। पानी।

विशेष—प्राचीन आर्यों का विश्वास था कि यज्ञ आदि की अग्नि की सहायता से ही मेघ बनता है, इसीलिये जल का एक नाम 'तपोज' पड़ा।

तपोड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन। —(लश०)।

तपोदान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पुण्यतीर्थ जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

तपोद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मन्वतर के एक ऋषि [को०]।

तपोधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तपस्या के अतिरिक्त और कुछ भी न करता हो। तपस्वी। उ०—सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर मुनि वृंद।—मानस, १।१०५। २ दौने का पेड़।

तपोधना—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

तपोधनी—वि० [सं० तपोधनिन्] दे० 'तपोधन'। उ०—तपोधनी मैं जात कहायो। तैं नहिं जान्यो सन्मुख आयो।—शकुंतला, पृ० ६२।

तपोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोधाम—संज्ञा पुं० [सं० तपोधामन्] १ तप करने का स्थान। २ एक प्राचीन तीर्थ [को०]।

तपोधृति—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मन्वतर के चौथे सावर्णि के सप्तर्षियों में से एक ऋषि।

तपोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] तपोनिष्ठ। तपस्वी।

तपोनिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोबन—संज्ञा पुं० [सं० तपोवन] दे० 'तपोवन'।

तपोबल—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्या से प्राप्त बल, तेज या शक्ति [को०]।

तपोभंग—संज्ञा पुं० [सं० तपोभङ्ग] विघ्नादि के कारण तप का भंग होना [को०]।

तपोभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप करने का स्थान। तपोवन।

तपोमय—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

तपोमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १ परमेश्वर। २ तपस्वी। ३ पुराणानुसार बारहवें मन्वतर के चौथे सावर्णि के समय के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।

तपोराज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

तपोराशि—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा तपस्वी।

तपोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चौदह लोकों में से ऊपर के सात लोकों में से छठा लोक जो जनलोक और सत्य लोक के बीच में है।

विशेष—पद्मपुराण में लिखा है कि यह लोक तेजोमय है; और जो लोग अनेक प्रकार की कठिन तपस्याएँ करके भी कृष्ण भगवान् को संतुष्ट करते हैं; वे इस लोक में भेजे जाते हैं।

तपोवट—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मावर्त देश।

तपोवन—संज्ञा पुं० [सं०] वह एकांत स्थान या वन जहाँ तप बहुत अच्छी तरह हो सकता हो। तपस्वियों के रहने या तपस्या करने के योग्य वन।

तपोवरण—वि० [देशी०] तप से च्युत कर देनेवाली। उ०—एक तेरी तपोवरण।—अर्चना, पृ० ३।

तपोवल—संज्ञा पुं० [सं०] तप का प्रभाव या शक्ति।

तपोवृद्ध¹—वि० [सं०] जो तपस्या द्वारा श्रेष्ठ हो।

तपोवृद्ध²—संज्ञा पुं० बहुत बड़ा तपस्वी [को०]।

तपोव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १ तपस्या संबंधी व्रत। २ वह जिसने तपस्या का व्रत धारण कर लिया हो [को०]।

तपोशहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ तामस मनु के पुत्र तपस्य का एक नाम २ तपसोमूर्ति का एक नाम।

तपौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तापना] १ ठगों की एक रसम जो मुसाफिरों के गिरोह को लूट मार चुकने और उनका माल ले लेने पर होती है। इसमें सब ठग मिलकर देवी की पूजा करते हैं और गुड़ चढ़ाकर उसी का प्रसाद आपस में बाँटते हैं।

मुहा०—तपौनी का गुड़ = (१) तपौनी की पूजा के प्रसाद का गुड़ जो किसी नए आदमी को पहले पहल अपनी मंडली में मिलाने के समय ठग लोग खिलाते हैं। (२) किसी नए आदमी को अपनी मंडली में मिलाने के समय किया जानेवाला काम या दिया जानेवाला पदार्थ।

२ दे० 'तपनी'।

तप्त—वि० [सं०] १ तपाया या तपा हुआ। जलता हुआ। तापित। गरम। उष्ण। २ दुःखित। क्लेशित। पीड़ित।

यौ०—तप्त शरीर = जलती हुई देह। उ०—कभी यहाँ देखे ये जिनके, श्याम बिरह से तप्त शरीर।—अपरा, पृ० १०२।

तप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाही [को०]।

तप्तकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुण्ड] वह प्राकृतिक जलधारा जिसका पानी गरम हो । गरम पानी का सोता या कुंड ।

विशेष—पहाड़ों तथा मैदानों आदि में कहीं कहीं ऐसे सोते मिलते हैं जिनका पानी गरम होता है। भिन्न भिन्न स्थानों में ऐसे सोतों का पानी साधारण गरम से लेकर खौलता हुआ तक होता है। पानी के गरम होने का मुख्य कारण यह है कि यह पानी या तो बहुत अधिक गहराई से, या भूगर्भ के अंदर की अग्नि से तपी हुई चट्टानों पर से होता हुआ आता है। ऐसे सोतों के जल में बहुधा अनेक प्रकार के खनिज द्रव्य (जैसे, गंधक, लोहा, अनेक प्रकार के क्षार) भी मिले होते हैं जिनके कारण उन जलों में बहुत से रोगों को दूर करने का गुण आ जाता है। भारतवर्ष में तो ऐसे सोते कम हैं, पर यूरोप और अमेरिका में ऐसे सोते बहुत पाए जाते हैं, जिन्हें देखने तथा उनका जल पीने के लिये बहुत दूर दूर से लोग आते हैं। बहुत से लोग अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिये महीनों उनके किनारे रहते भी हैं। प्रायः जल जितना अधिक गरम होता है, उसमें गुण भी उतना ही अधिक होता है। ऐसे सोतों के जल में दस्त लाने, बल बढ़ाने या रक्तविकार आदि दूर करनेवाले खनिज द्रव्य मिले हुए होते हैं।

तप्तकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुम्भ] पुराणानुसार एक बहुत भयानक नरक जिसके विषय में यह माना जाता है कि वहाँ खौलते हुए तेल के कड़ाहे रहते हैं। उन्हीं कड़ाहों में दुराचारियों को यम के दूत फेंक दिया करते हैं।

तप्तकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो बारह दिनों में समाप्त होता और प्रायश्चित्तस्वरूप किया जाता है।

विशेष—इसमें व्रत करनेवालों को पहले तीन दिन तक प्रतिदिन तीन पल गरम दूध, तब तीन दिन तक नित्य एक पल घी, फिर तीन दिन तक रोज छह पल गरम जल और अंत में तीन दिन तक गरम वायु सेवन करना होता है। गरम वायु से तात्पर्य गरम दूध से निकलनेवाली भाप का है। यह व्रत करने से द्विजों के सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। किसी किसी के मत से यह व्रत केवल चार दिनों में किया जा सकता है। इसमें पहले दिन तीन पल गरम दूध, दूसरे दिन एक पल गरम घी और तीसरे दिन छह पल गरम जल पीना चाहिए और चौथे दिन उपवास करना चाहिए।

तप्तपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

तप्तवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्तमाष—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे व्यवहार या अपराध आदि के संबंध में किसी मनुष्य के कथन की सत्यता मानी जाती थी।

विशेष—इसमें लोहे या ताँबे के बरतन में घी या तेल खौलाया जाता था और परीक्षार्थी उस खौलते हुए घी या तेल में अपनी उँगली डालता था। यदि उसकी उँगली में छाले आदि न पड़ते तो वह सच्चा समझा जाता था।

तप्तमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारका के शंख चक्रादि के छापे जो तपाकर वैष्णव लोग अपनी भुजा तथा दूसरे अंगों पर दाग लेते हैं। चक्रमुद्रा।

विशेष—यह धार्मिक चिह्न माना जाता है और वैष्णव लोग इसे मुक्तिदायक मानते हैं।

तप्तरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] तपाई हुई और साफ चाँदी।

तप्तशूर्मी—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसमें अगम्या स्त्री के साथ संभोग करनेवाले पुरुष और अगम्य पुरुषों के साथ संभोग करनेवाली स्त्रियाँ भेजी जाती हैं।

विशेष—इसमें उन पुरुषों और स्त्रियों को जलते हुए लोहे के खंभे आलिंगन करने पड़ते हैं।

तप्तसुराकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तसुराकुण्ड] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं० तप्त] १. तवा। २. भट्ठी। उ०—निदान कई भट्ठे और एक भारी तप्ता जलाकर आवश्यक कृत्य आरंभ हो गया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५२।

तप्ता[2]—वि० तप्त करनेवाला।

तप्ताभरण—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध सोने का गहना [को०]।

तप्तायन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तप्तायनी' [को०]।

तप्तायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो दीन दुखियों को बहुत सताकर प्राप्त की जाय।

तप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप्त होने की अवस्था या भाव। गरमी। ताप [को०]।

तप्प(पु)†—पुं० [हिं० तप] दे० 'तप' उ०—साधक सिद्धि न पाय जो लहि साधि न तप्प। सोई जानहि बापुरो सीस जो करहि कलप्प।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२३।

तप्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

तप्य[2]—वि० [सं०] जो तपने या तपाने योग्य हो।

तफक्कुर—संज्ञा पुं० [अ० तफ़क्कुर] १ चिंता। फिक्र। २. भयाशंका। उ०—मेरी खुराक आगे से इस तफक्कुर में आधी हो गई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२२।

तफज्जुल—संज्ञा पुं० [अ० तफ़ज़्ज़ुल] बड़ाई। बड़प्पन [को०]।

तफतीश—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़तीश] छानबीन। खोज। गवेषणा। उ०—मैं दौड़ा हुआ पिता जी के पास गया। वह कहीं तफतीश पर जाने को तैयार खड़े थे। मान०, पृ० ३८।

तफरका—संज्ञा पुं० [अ० तफ़र्क़ह] विरोध। वैमनस्य।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

तफराक†—संज्ञा पुं० [हिं०] तमचा। उ०—होर मुसल्मनाँ के मूँ पर तफराक मारना गुनाह कबीरा है।—दक्खिनी०, पृ० ४०१।

तफरीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़रीक़] १ जुदाई। भिन्नता। अलहदगी। २ बाकी निकालना। घटाना (गणित)।

क्रि० प्र०—निकालना।

३. फरक। अंतर। ४. बँटवारा। बाँट। बँटाई (कानून)।

तफरीह—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़रीह] १ खुशी । प्रसन्नता । फरहत । २ दिलबहलाव । दिल्लगी । हँसी । ठट्ठा । ३ हवाखोरी । सैर । तावापन । ताजगी ।

तफरीहन—अव्य० [अ० तफ़रीहन] १ मनबहलाव के लिये । २. हँसी खेल के लिये [को०] ।

तफर्का—संज्ञा पुं० [अ० अफ़र्क़ह् या तफ़िक़ह्] १ फूट । परस्पर विरोध । २ शत्रुता । दुश्मनी । ३ पृथकता । अलगाव । उ०—अगर इन बातों में जिस कदर तफर्का पड़ता जायगा, सुननेवाले के दिल का असर बदलता चला जायगा । प्रे०, पृ० ११ ।

यौ०—तफर्का अंगसेज, तफर्का अंगेज, तफर्का परदाज, तफर्का पर्वर=फूट डालनेवाला । तफर्का अंगेजी, तफर्का अंदाजी, तफर्का परदाजी, तफर्का पर्वरी=फूट या विरोध डालना ।

तफर्रुज—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़र्रुज] १ दरिद्रता और हीनता से समृद्धि और उन्नति की ओर जाना । २. सैर । आनंद विहार । क्रीड़ा । कौतुक । तमाशा । उ०—तफर्रुज उठे शाहजादा निकल । चल्या कामरानी का घर दिल अमल ।—दक्खिनी०, पृ० २७० ।

यौ०—तफर्रुज गाह=सैर तमाशे का स्थान । क्रीड़ास्थल विनोदस्थल ।

तफसील—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ्सील] १. विस्तृत वर्णन । २. टीका । तशरीह । ३ सूची । फेहरिस्त । फर्द । ४ कैफियत । ब्योरा । विवरण ।

तफसीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तफसीर] कुरान शरीफ की टीका । उ०—जो आलिम तफसीर सूरत नवम में यह लिखता है । —कबीर म०, पृ० ८७ ।

तफाउत—संज्ञा पुं० [अ० तफ़ावुत] दे० 'तफावत' । उ०—पिदर पर देखकर बख्शो मुझे अब, अमानत में तफाउत में करो सब । —दक्खिनी०, पृ० ३१६ ।

तफावज—संज्ञा पुं० [अ० तफ़ावत] फर्क । तफावत । उ०— उ०—सुकवि सुँम सम दाखिए, नहीं तफावज रेह ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ८७ ।

तफावत—संज्ञा पुं० [अ० तफ़ावत] १ अंतर । फर्क । २. दूरी । फासिला ।

तफ्सीर—संज्ञा पुं० [अ० तफ़्सीर] १ व्याख्या । तशरीह । २ किसी धर्मग्रंथ की व्याख्या या भाष्य । उ०—है तारीख व तफ्सीर बहुतर, के अवहा बामी एक या चार ।—दक्खिनी०, पृ० २२० ।

तब—अव्य० [सं० तदा] १ उस समय । उस वक्त ।

विशेष—इस क्रि० वि० का प्रयोग प्राय जब के साथ होता है । जैसे,—जब तुम आओगे, तब मैं चलूँगा ।

२. इस कारण । इस वजह से । जैसे,—मेरा उधर काम था तब मैं गया, नहीं तो क्यों जाता ?

तब[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. ताप । तपन । गर्मी । २ ज्वर । बुखार [को०] ।

तबई(९)†—क्रि० वि० [सं० तदैव] तभी । उ०—जबई प्रानि परे तहाँ, तबई ता सिर देहि ।—नद० ग्रं०, पृ० १३५ ।

तबक—संज्ञा पुं० [अ० तबक] १ आकाश के वे कल्पित खंड जो पृथ्वी के ऊपर और नीचे माने जाते हैं । लोक । तल । २ परत । तह । ३ चाँदी, सोने आदि धातुओं के पत्तरों को पीटकर कागज की तरह बनाया हुआ पतला वरक जो बहुधा मिठाइयों आदि पर चपकाया और दवाओं में डाला जाता है । ४ चौड़ी और छिछली थाली । ५ वह पूजा या उपचार जो मुसलमान स्त्रियाँ परियों की बाधा से बचने के लिये करती हैं । परियों की नमाज ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

६. घोड़ों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर सूजन हो जाती है । ७ रक्तविकार के कारण शरीर पर पड़ा हुआ दाग । चकत्ता ।

तबकगर—संज्ञा पुं० [अ० तबक+फ़ा० गर] वह जो सोने चाँदी आदि के तबक का पत्तर बनाता हो । तबकिया ।

तबकड़ी†—संज्ञा स्त्री० [अ० तबक़+ड़ी (प्रत्य०)] छोटी रिकाबी ।

तबकचा—संज्ञा पुं० [अ० तबक़+फा० चह्] छोटा रिकाबी [को०] ।

तबकफाड़—संज्ञा पुं० [अ० तबक+हिं० फाड] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—जब शत्रु पेट में घुस जाता है, तब पहलवान अपनी दाहिनी टाँग से उसके बाएँ पाँव को भीतर से बाँधते हैं और दोनों हाथों से उसकी दाहिनी टाँग को जाँघ की जगह पकड़कर उसके दोनों पाँव फाड़ते हैं और मौका पाकर उसे चित कर देते हैं ।

तबका—संज्ञा पुं० [अ० तबक़ह्] १. खंड । विभाग । २ तह । परत । ३. लोक । तल । ४ आदमियों का गरोह । ५ पद । रुतबा ।

तबकिया[१]—संज्ञा पुं० [अ० तबक+इया (प्रत्य०)] वह जो सोने चाँदी आदि के तबक या पत्तर बनाता हो । तबकगर ।

तबकिया[२]—वि० तबक संबंधी । जिसमें तबक या परत हों । जैसे तबकिया हरताल ।

तबकिया हरताल—संज्ञा पुं० [हिं० तबकिया+हरताल] एक प्रकार की हरताल जिसके टुकड़ों में तबक या परत होते हैं । इसके टुकड़े में से अलग अलग पपड़ियाँ सी उतरती हैं ।

तबदील—वि० [अ० तब्दील] जो बदला गया हो । परिवर्तित ।

यौ०—तबदील आबोहवा=जलवायु का बदलना । एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना । तबदीले सूरत=(१) रूप या शक्ल बदल जाना । (२) हुलिया बदलना । बहुरूपिया बनना ।

तबदीली—संज्ञा स्त्री० [अ० तब्दील+फा० ई (प्रत्य०)] १ बदले जाने या परिवर्तित होने की क्रिया । बदली । परिवर्तन । २. स्थानांतरण (को०) । ३ उथल पुथल । क्रांति ।

इनकिलाब (को०)। ५ किसी चीज के बदले में कोई दूसरी चीज लेना (को०)।

तबद्दुल—संज्ञा पुं० [अ०] १ बदल जाना। बदलना। २ क्रांति। इनकिलाब।

तबर¹—संज्ञा पुं० [फा०] १ कुल्हाड़ी। बाँगी। २ कुल्हाड़ी की तरह का लड़ाई का एक हथियार।

तबर²—संज्ञा पुं० [देश०] मस्तूल के सबसे ऊपरी भाग में लगाई जानेवाली पाल जिसका व्यवहार बहुत हलकी हवा चलने के समय होता है।

तबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कुल्हाड़ी या तबर चलानेवाला।

तबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तबर, कुल्हाड़ी या फरसा चलाने का काम।

तबर्रक—संज्ञा पुं० [अ०] प्रसाद। आशीर्वाद रूप में प्राप्त हुई वस्तु [को०]।

तबर्रा—[अ०] १. घृणा प्रकट करना। नफरत। २ वे दुर्वचन जो शिया लोग सुन्नियों के पैगंबरों को कहते हैं। ३. मजहब विरोधियों के लिये गाया जानेवाला गीत [को०]।

तबल—संज्ञा पुं० [फा०] १. बड़ा ढोल। २. नगाड़ा। डंका।

तबलची—संज्ञा पुं० [अ० तबलह् + ची (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो। तबलिया।

तबला—संज्ञा पुं० [अ० तबलह्] १ ताल देने का एक प्रसिद्ध बाजा जिसमें काठ के लबोतरे और खोखले कूँड़ पर गोल चमड़ा मढ़ा रहता है।

विशेष—यह चमड़ा 'पूरी' कहलाता है और इसपर लोहचून, झावेँ, लोई, सरेस, मँगरैले और तेल को मिलाकर बनाई हुई स्याही की गोल टिकिया अच्छी तरह जमाकर चिकने पत्थर से घोटी हुई होती है। इसी स्याही पर आघात पड़ने से तबले में से आवाज निकलती है। कूँड़ पर रखकर यह पूरी चारों ओर चमड़े के फीते से, जिसे 'बद्धी' कहते हैं, कसकर बाँध दी जाती है। इस बद्धी और कूँड़ के बीच में काठ की गुल्लियाँ भी रख दी जाती हैं जिनकी सहायता से तबले का स्वर आवश्यकतानुसार चढ़ाते या उतारते हैं। वातावरण अधिक ठंढा हो जाने के कारण भी तबला आपसे आप उतर जाता और अधिक गरमी के कारण आपसे आप चढ़ जाता है। यह बाजा अकेला नहीं बजाया जाता, इसी तरह के और दूसरे बाजे के साथ बजाया जाता है जिसे 'बायाँ', 'ठेका' या 'डुग्गी' कहते हैं। साधारणतः बोलचाल में लोग तबले और बाएँ को एक साथ मिलाकर भी केवल तबला ही कहते हैं। तबला दाहिने हाथ से और बायाँ बाएँ हाथ से बजाया जाता है।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।

मुहा०—तबला उतरना = तबले की बद्धी का ढीला पड़ जाना जिसके कारण तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे। तबला उतारना = तबले की बद्धी को ढीला करके या और किसी प्रकार पूरी पर का तनाव कम कर देना जिससे तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे। तबला खनकना = दे० 'तबला ठनकना'। तबला चढ़ना = तबले की बद्धी का कस जाना जिससे पूरी पर तनाव अधिक पड़ता है और स्वर ऊँचा निकलने लगता है। तबला चढ़ाना = तबले की बद्धी को कसकर पूरी पर का तनाव अधिक करना जिसमें तबले में से स्वर निकलने लगे। तबला ठनकना = (१) तबला बजना। (२) नाच रंग होना। तबला मिलाना = तबले की गुल्लियों को ऊपर नीचे हटा बढ़ाकर ऐसी स्थिति में लाना जिसमें पूरी पर चारों ओर से समान तनाव पड़े और तबले में से चारों ओर से कोई एक ही विशिष्ट स्वर निकले।

Ⓟ२. एक तरह का बर्तन। ताँबे या पीतल का एक पात्र। उ०—पुनि चरवा चरई तस्टी तवला झारी लोटा गार्वहि।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ७४।

तबलिया—संज्ञा पुं० [हिं० तबला + इया (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो। तबलची।

तबलीग—संज्ञा पुं० [अ० तब्लीग़] प्रचार। प्रसार। उ०—क्या यही वह इस्लाम है जिसकी तबलीग का तूने बीड़ा उठाया है?—मान०, भा० १, पृ० १८४।

तबल्ल—संज्ञा पुं० [अ० तबलह्] दे० 'तबला'। उ०—किते बीर तोरा तबल्ल बनाए।—ह० रासो, पृ० १४६।

तबस्ताⓅ—संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का नाम। उ०—बन उनये हरियर होय फूला। केतक भिरंग तबस्ता फूला।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७७।

तबस्सुम—संज्ञा पुं० [अ०] मुस्कुराहट [को०]।

तबह—वि० [फ़ा० तबाह का लघु रूप] दे० 'तबाह' [को०]।

यौ०—तबहकार = तबाहकार। तबहहाल = तबाह हाल।

तबा—संज्ञा पुं० [अ० तिबाअ] १ प्रकृति। २ प्रतिभा। उ०—मिसाल हर के तन यो अमृत है जान, तबा बाव की दौड़कर कर पछान।—दक्खिनी०, पृ० २४३।

तबाअत—संज्ञा स्त्री० [अ०] मुद्रण। छपाई। उ०—'प्रेम बत्तीसी' की तबाअत अभी शुरू नहीं हुई।—प्रेम० गो०, पृ० ५२।

तबाक—संज्ञा पुं० [अ० तबाक़] बड़ा थाल। परात।

यौ०—तबाकी कुत्ता = केवल खाने पीने का साथी। वह जो केवल अच्छी दशा में साथ दे और आपत्ति के समय अलग हो जाय।

तबाख—संज्ञा पुं० [अ० तबाक़, हिं०] दे० 'तबाक'।

तबाखी—संज्ञा पुं० [हिं० तबाख] वह जो परात में रखकर सौदा बेचता है।

यौ०—तबाखी कुत्ता = स्वार्थी मित्र।

तबादला—संज्ञा पुं० [अ० तबादुल या तबादलह्] १ बदली स्थानांतरण। २ परिवर्तन। उ०—मामले को सच समझा हो या झूठ, मुन्शी का बहरहाल तबादला हो गया। बरखास्त होते होते बचे, यह उन्होंने अपना सौभाग्य समझा।—काले०, पृ० ९७।

तबाबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] चिकित्सा। वैद्यक।

तबाशीर—संज्ञा पुं० [सं० तवक्षीर] बंसलोचन।

तबाह—वि० [फ़ा०] १. जो नष्टभ्रष्ट या बिलकुल खराब हो गया हो। नष्ट। बरबाद। चौपट। २. जनशून्य। निर्जन (को०)। ३. निकृष्ट। खराब (को०)। ४ दुर्दशाग्रस्त। बदहाल (को०)।

यौ०—तबाहकार = (१) तबाही मचानेवाला। विनाशकारी। अत्याचारी। (२) कदाचारी। बदचलन। तबाह रोजगार = कालचक्रग्रस्त। दुर्दशापीड़ित। तबाह हाल = (१) दुर्दशाग्रस्त (२) निर्धन। दरिद्र।

तबाही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नाश। बरबादी। अधःपतन।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—तबाही खाना = जहाज का टूट फूटकर रद्दी होना।—(लश०)। तबाही पड़ना = जहाज का काम के लिये मुहताज रहना। जहाज को काम न मिलना। —(लश०)।

तबिअत—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीअत] दे० 'तबीअत'।

तबी—अव्य० [हिं०] तभी। तब ही उ०—"तो तबी कि अब उनपर"""।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० २५३।

तबीअत—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीयत] १. चित्त। मन। जी।

मुहा०—(किसी पर) तबीअत आना = (किसी पर) प्रेम होना। आशिक होना। (किसी चीज पर) तबीअत आना = (किसी चीज को) लेने की इच्छा होना। तबीअत उलझना = जी घबराना। तबीअत खराब होना = (१) बीमारी होना। स्वास्थ्य बिगड़ना। (२) जी मिचलाना। तबीअत फड़क उठना = चित्त का उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो जाना। उमंग के कारण बहुत प्रसन्न होना। तबीअत फड़क जाना = दे० 'तबीअत फड़क उठना'। तबीअत फिरना = जी हटना। अनुराग न रहना। तबीअत बिगड़ना = दे० 'तबीअत खराब होना'। तबीअत भरना = (१) संतोष होना। तसल्ली होना। (२) संतोष करना। तसल्ली करना। जैसे,—हमने अच्छी तरह उनकी तबीअत भर दी, तब उन्होंने रुपए लिए। (३) मन भरना। अनुराग या इच्छा न रहना। जैसे,—अब इन कामों से हमारी तबीअत भर गई। तबीअत लगना = (१) मन में अनुराग उत्पन्न होना। (२) ख्याल लगा रहना। ध्यान लगा रहना। जैसे,—इधर कई दिनों से उनकी चिट्ठी नहीं आई, इससे तबीअत लगी हुई है। तबीअत लगाना = (१) चित्त को किसी काम में प्रवृत्त करना। जैसे,—तबीअत लगाकर काम किया करो। (२) प्रेम करना। मुहब्बत में फँसना। तबीअत होना = अनुराग या प्रवृत्ति होना। जी चाहना।

२ बुद्धि। समझ। भाव।

मुहा०—तबीअत पर जोर डालना = विशेष ध्यान देना। तवज्जह करना। जैसे,—जरा तबीअत पर जोर डाला करो, अच्छी कविता करने लगोगे। तबीअत लड़ाना = दे० 'तबीअत पर जोर डालना'।

यौ०—तबीअतदार। तबीअतदारी।

तबीअतदार—वि० [अ० तबीअत + फ़ा० दार (प्रत्य०)] १ जो भावों को चट ग्रहण करता हो। समझदार। २. भावुक। रसिक। रसज्ञ।

तबीअतदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीअत + फ़ा० दारी (प्रत्य०)] १. होशियारी। समझदारी। २. भावुकता। रसज्ञता।

तबीब—संज्ञा पुं० [अ०] वैद्य। चिकित्सक। हकीम। उ०—तब तबीब तसलीम करि लै घरि।

तबीन—संज्ञा पुं० [अ० ताबअ्] ताबेदार। सेवक। उ०—पलटू ऐसी साहिबी साहब रहे तबीन। दुइ पातसाही फकर की इक दुनियाँ इक दीन।—पलटू०, भा० १, पृ० ६३।

तबेला¹—संज्ञा पुं० [अ० तवेलह्] वह स्थान जहाँ घोड़े बाँधे जाते और गाड़ी, एक्के आदि सवारियाँ रखी जाती हों। अस्तबल। घुड़साल।

मुहा०—तबेले में लत्ती चलाना = विशिष्ट कार्य करने में अड़चन उपस्थित होना।

तबेला²—संज्ञा पुं० [हिं० ताँबा] ताँबे का एक पात्र।

तबेली⁽ᵖ⁾—क्रि० अ० [फ़ा० ताब (= ताप) + हिं० एली (प्रत्य०)] छटपटाना। तालावेली। उ०—कहा करौं कैसें मन समझाऊँ व्याकुल जियरा धीर न धरत लागियै रहति तबेली।—घनानंद, पृ० ४८०।

तबोताब—संज्ञा पुं० [सं० तप + फ़ा० ताब] रजोगम। गरमी। उ०—माल से उसको बस है वह तबोताब। के होय महशर में उसको तूले हिसाब।—दक्खिनी०, पृ० २१६।

तबोरी⁽ᵖ⁾—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बोल] पान। लगाया हुआ पान। उ०—अधर अधर सो भीज तबोरी। अलका उरि मुरि मुरि गो मोरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४२।

तबौ⁽ᵖ⁾—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तऊ'। उ०—सहस अठासी मुनि जो जेंवें तबौ न घटा बाजै। कहहिं कबीर सुपच के जेंए, घट मगन ह्वै गाजै।—कबीर (शब्द०)।

तब्ब—अव्य० [हिं०] दे० 'तब'। उ०—गही क्यो न अब्ब। कहै बैन तब्बं।—ह० रासो, पृ० १३६।

तब्बर⁽ᵖ⁾—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तबर'।

तभी—अव्य० [हिं० तब + ही] १ उस समय। २ उसी वक्त। उसी घड़ी। जैसे,—जब तुम नहीं आए, तभी मैंने समझ लिया कि दाल में कुछ काला है। ३. इसी कारण। इसी वजह से। जैसे,—तुम्हारा उधर काम था, तभी तुम गए।

तमंग—संज्ञा पुं० [सं० तमङ्ग] १ रंगमंच। २ मंच (को०)।

तमंगक—संज्ञा पुं० [सं० तमङ्गक] छत या छाजन का आगे निकला हुआ भाग (को०)।

तमचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमंचह्] १. छोटी बंदूक। पिस्तौल।

क्रि० प्र०—चलाना।—दागना।—मारना।—छोड़ना।

यौ०—तमचे की टाँग = कुश्ती का एक पेंच जिसमें शत्रु के पेट में घुस आने पर बाएँ हाथ से कमर पर से उसका लँगोट पकड़ लेते हैं और उसकी दाहिनी बगल से अपना बायाँ पाँव बढ़ाकर पीठ पर से उसकी बाई जाँघ फँसाते और उसे चित कर देते हैं २. एक लंबा पत्थर जो दरवाजों की मजबूती के लिये बगल में लगाया जाता है।

तमः—संज्ञा पुं० [सं०] तमस् का समस्तपदों में प्रयुक्त रूप।

यौ०—तम प्रभ, तम.प्रभा=एक नरक। तमःप्रवेश=(१) अँधेरे में टटोलना। (२) विषाद।

तम¹—संज्ञा पुं० [सं० तम, तमस्] १. अंधकार। अँधेरा। २. पैर का अगला भाग। ३ तमाल वृक्ष। ४. राहु। ५. वराह। सुअर। ६ पाप। ७. क्रोध। ८. अज्ञान। ९. कालिख। कालिमा। श्यामता। १०. नरक। ११. मोह। १२. सांख्य के अनुसार अविद्या। १३ सांख्य के अनुसार प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना गया है।

विशेष—जब मनुष्य में इस गुण की अधिकता होती है, तब उसकी प्रवृत्ति काम, क्रोध, हिंसा आदि नीच और बुरी बातों की ओर होने लगती है।

तम²—वि० १ काला। दूषित। बुरा [को०]।

तम³—वि० [सं० तमप्] एक प्रकार का प्रत्यय, जो विशेषण शब्दों में लगने पर अतिशय या सबसे अधिक का अर्थ प्रकट करता है जैसे, क्रूरतम, कठिनतम।

तम⁴—सर्व० [सं० त्वाम्, हिं० तुम, गुज० तम] दे० 'तुम'। उ०—हाहुलि राय हमीर सलष पामार जैत सम। कह्यौ राज हम मात तात अप्पी दिल्ली तम।—पृ० रा०, १८।८६।

तमअ—संज्ञा स्त्री० [अ० तमअ] १ लालच। लोभ। हिर्स। २ चाह। इच्छा। ख्वाहिश।

तमक¹—संज्ञा पुं० [हिं० तमकना] १. जोश। उद्वेग। २. तेजी। तीव्रता। ३. क्रोध। गुस्सा।

तमक²—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार श्वास रोग का एक भेद।

विशेष—इसमें दम फूलने के साथ साथ बहुत प्यास लगती है, पसीना आता है, जी मिचलाता है और गले में घरघराहट होती है। जिस समय आकाश में बादल छाए हों, उस समय इसका प्रकोप अधिक होता है।

तमकनत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. इज्जत। प्रतिष्ठा। २ गौरव। ३ गौरव का अनुचित प्रदर्शन। ४ आडंबर। ५. घमंड। गरूर [को०]।

तमकना—क्रि० अ० [अनु०] १ क्रोध का आवेश दिखलाना। क्रोध के कारण उछल पड़ना। उ०—अंजन त्रास तजत तमकत तकि तानत दरसन डीठि। हारेहु नहिं हटत अमित बल बदन पयोधि पईठ।—सूर (शब्द०) २. दे० 'तमतमाना'।

तमकश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दमा जिसमें कंठ रुक जाता है और घरघराहट होती है।

विशेष—इसके उत्पन्न होने से प्राय रोगी के मर जाने का भी भय होता है।

तमका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी। भुइँ आँवला [को०]।

तमकाना—क्रि० स० [हिं० तमकना का प्रे०रूप] तमकने में प्रवृत्त कराना।

तमकि—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमक] दे० 'तमक'¹। उ०—सतगुर मिलिमैं तमकि मिटि जाई। नानक तपसी को मिली बडाई।—प्राण०, पृ० ६०।

तमगा—संज्ञा पुं० [तु० तमगह्] पदक। तगमा। मेडल।

तमगुन—संज्ञा पुं० [सं० तमोगुण] दे० 'तमोगुण'।

तमगेही¹—वि० [सं० तमगेहिन्] अंधकार में घर बनानेवाला। अंधकार में रहनेवाला [को०]।

तमगेही²—संज्ञा पुं० पतंगा।

तमचर—संज्ञा पुं० [सं० तमीचर] १. राक्षस। निशाचर। २. उलूक। उल्लू।

तमचुर†—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] मुरगा। कुक्कुट। उ०—(क) सुनि तमचुर को सोर घोस की बागरी। नवसत साजि सिंगार चलीं ब्रज नागरी।—सूर (शब्द०)। (ख) ससि कर हीन छीन दुति तारे। तमचुर मुखर सुनहु मोरे प्यारे।—तुलसी (शब्द०)।

तमचूर—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड, हिं० तमचुर] दे० 'तमचुर'। उ०—(क) बोले लागे ठौर ठौर तमचूर। हुहि बोली री पिक बैनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६७। (ख) बिल राखे नहिं होव अँगूरू। सबद न देइ बिरह तमचूरू।—जायसी (शब्द०)।

तमचोर†—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] दे० 'तमचुर'।

तमच्छन्न—वि० [सं० तमस् (स्) + छन्न] तम से आच्छादित। अंधकारमय। उ०—धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न। पृथ्वी के उदय शिखर पर, तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।—युगवाणी, पृ० ३८।

तमजित्—वि० [सं०] अंधकार को जीतनेवाला। उ०—बाँधो, बाँधो किरणें चेतन, तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन।—अपरा, पृ० २०६।

तमत—वि० [सं०] १. इच्छुक। अभिलाषी। २ वांछित। चाहा हुआ [को०]।

तमतमाना—क्रि० अ० [सं० ताम्र] १ धूप या क्रोध आदि के कारण चेहरा लाल हो जाना। २ चमकना। दमकना। (क्व०)।

तमतमाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमतमाना] तमतमाने का भाव।

तमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तम का भाव। २ अँधेरा। अंधकार।

तमद्दुन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शहर में एक स्थान पर मिल जुलकर रहना और वहाँ की व्यवस्था करना। नागरिकता। २. किसी की वेशभूषा, रहन सहन का ढंग और आचार व्यवहार। सभ्यता [को०]।

तमन—संज्ञा पुं० [सं०] दम घुटने की अवस्था [को०]।

तमना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तमकना'।

तमन्ना—संज्ञा स्त्री० [अ०] आकांक्षा। इच्छा। ख्वाहिश। कामना। अभिलाषा। उ०—दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज्यादा हवस। फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिये।—तुरसी० श०, पृ० ४।

तमप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तमयी—संज्ञा स्त्री० [सं० तमी अथवा तममयी] रात।

तमरंग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नीबू जिसे 'तुरंज' कहते हैं।
विशेष—दे० 'तुरंज'।

तमर¹—संज्ञा पुं० [सं०] बंग।

तमर²—संज्ञा पुं० [सं० तम] अंधकार। अंधेरा।

तमराज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की खाँड़ जो वैद्यक में ज्वर, वायु तथा पित्तनाशक मानी गई है।

तमलूक—संज्ञा पुं० [हिं० तामलुक] दे० 'तामलुक'।

तमलेट—संज्ञा पुं० [अं० टम्लर] १. लुक फेरा हुआ टीन या लोहे का बरतन। २. फौजी सिपाहियों का लोटा।

तमस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। २. अज्ञान का अंधकार। ३. प्रकृति का एक गुण। तमोगुण। वि० दे० 'गुण'।

तमस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंधकार। २. अज्ञान का अंधकार। ३. पाप। ४ नगर। ५. कूप। कुआँ।

तमस²—वि० काले रंग का। श्याम वर्ण का [को०]।

तमस(पु)³—संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] ६. तमसा नदी। टोंस। उ०—आयो तमस नदी के तीरा। तब लाडिल परिहार सुबीरा।—रघुराज (शब्द०)।

तमसना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तमकना'। उ०—तमसि तमति सामंत जाइ वर बीर सुरभ्यो। उभय पुरा इक बघु भोम भगीरथ बल बंध्यो।—पृ० रा०, १२।१५३।

तमसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टोंस नाम की नदी। दे० 'टोंस'।
विशेष—इस नाम की तीन नदियाँ हैं।

तमसाच्छन्न—वि० [सं०] अंधकार से ढका हुआ। उ०—उसे अपनी माता के तत्काल न मर जाने पर झुंझलाहट सी हो रही थी। समीर अधिक शीतल हो चला। प्राची का आकाश स्पष्ट होने लगा, पर जग्गैया का अदृष्ट तमसाच्छन्न था।—इंद्र०, पृ० ११०।

तमसावृत—वि० [सं०] अंधकार से घिरा हुआ। उ०—मानव उर का मंदिर, कब से भीतर है तमसावृत !—युगपथ, पृ० १०३।

तमसील—संज्ञा स्त्री० [अ० तम्सील] १. उपमा। तुलना। २ समानता। बराबरी। ३ दृष्टांत। उदाहरण। मिसाल। उ०—याने इसका तमसील यूँ है।—दक्खिनी०, पृ० ३९५।

तमस्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधेरा। २. विषाद। म्लानता [को०]।

तमस्कांड—संज्ञा पुं० [सं० तमस्काण्ड] घना अंधेरा। भारी अंधेरा [को०]।

तमस्खुर—संज्ञा पुं० [अ० तमस्खुर] मसखरापन। उ०—उसके मिजाज में जराफत और तमस्खुर जियादा है'''—प्रेमघन०, भाग २, पृ० १०२।

तमस्तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकार की अधिकता। अंधकार का बाहुल्य। [को०]।

तमस्तरण—वि०[सं०]अंधकार को तरने या पार करनेवाला। उ०—मग डगमग पग, तमस्तरण जागे जग।—अर्चना, पृ० १४।

तमस्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तमस्विन्'।

तमस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि। रात। रजनी। २. हल्दी।

तमस्वी—वि० [सं० तमस्विन्] अंधकारयुक्त। अंधकारपूर्ण [को०]।

तमस्सुक—संज्ञा पुं० [अ०] वह कागज जो ऋण लेनेवाला ऋण के प्रमाण स्वरूप लिखकर महाजन को देता है। दस्तावेज। ऋणपत्र। लेख।

तमहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँबा + हाँडी] हाँड़ी के आकार का ताँबे का एक प्रकार का छोटा बरतन।

तमहर—संज्ञा पुं० [हिं० तम + हर] दे० 'तमोहर'।

तमछाया—वि० [सं० तम + हिं० छाया] १ अंधकारवाला। २ तमोगुणी।

तमहीद—संज्ञा स्त्री० [अ० तम्हीद] वह जो कुछ किसी विषय को आरंभ करने से पहले किया जाय। भूमिका। दीबाचा।
क्रि० प्र०—बाँधना।

तमाँचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमाचह्] दे० 'तमाचा'।

तमा¹—संज्ञा पुं० [सं० तमा, तमस्] राहु।

तमा²—संज्ञा स्त्री० रात। रात्रि। रजनी।

तमा³—संज्ञा स्त्री० [अ० तमअ] दे० 'तमअ'।

तमा⁴—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तमाम] दे० 'तमाम'। उ०—तमा दुनिया की जर पर कर वह बदजात। उठाया दीन से इकबारगी हात।—दक्खिनी०, पृ० १६०।

तमाइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० तमअ] दे० 'तमअ'। उ०—(क) लोक परलोक बिसोक सो तिलोक ताहि तुलसी तमाइ कहा काहू बीर बान की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आप कीन तप खप कियो न तमाइ जोग जाग न बिराग त्याग तीरथ न तन को।—तुलसी (शब्द०)।

तमाई¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेत जोतने से पूर्व उसमें की घास आदि साफ करना।

तमाई²—संज्ञा स्त्री० [सं० तम + हिं० आई (प्रत्य०)] १ अंधेरा। श्यामता। ताम्रता। २ अज्ञान। उ०—साहब मिन साहब भए कछु रही न तमाई। कहँ मलूक तिस घर गए जँह पवन न जाई।—मलूक० पृ० ७।

तमाकू—संज्ञा पुं० [पुर्त० टबैको] १. तीन से छह फुट तक ऊँचा एक प्रसिद्ध पौधा जो एशिया, अमेरिका तथा उत्तर युरोप मे अधिकता से होता है। तंबाकू।
विशेष—इसकी अनेक जातियाँ हैं, पर खाने या पीने के काम में केवल ५-६ तरह के पत्ते ही आते हैं। इसके पत्ते २-३ फुट तक लंबे, विषाक्त और नशीले होते हैं। भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों में इसके बोने का समय एक दूसरे से अलग है, पर बहुधा यह कुआर, कातिक से लेकर पूस तक बोया जाता है। इसके लिये वह जमीन उपयुक्त होती है जिसमें खार अधिक हो। इसमे खाद की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। जिस जमीन में यह बोया जाता है, उसमें साल मे बहुधा केवल इसी की एक फसल होती है। पहले इसका बीज बोया जाता है और जब इसके अंकुर ५-६ इंच के ऊँचे हो जाते हैं, तब इसे दूसरी जमीन में, जो पहले से कई बार बहुत

अच्छी तरह जोती हुई होती है, तीन तीन फुट की दूरी पर रोपते हैं। प्रारंभ से इसमें सिंचाई की भी बहुत अधिक आवश्यकता होती है। इसके फूलने से पहले ही इसकी कलियाँ और नीचे के पत्ते छाँट दिए जाते हैं। जब पत्ते कुछ पीले रंग के हो जाते हैं और उसपर चित्तियाँ पड़ जाती हैं, तब या तो ये पत्ते काट लिए जाते हैं या पूरे पौधे ही काट लिए जाते हैं। इसके बाद वे पत्ते धूप मे सुखाए जाते हैं और अनेक रूपो मे काम में लाए जाते हैं। इसके पत्तों में अनेक प्रकार के कीड़े लगते हैं और रोग होते हैं।

सोलहवीं शताब्दी से पहले तबाकू का व्यवहार केवल अमेरिका के कुछ प्रांतो के आदिम निवासियो मे ही होता था। सन् १४६२ में जब कोलंबस पहले पहल अमेरिका पहुँचा, तब उसने वहाँ के लोगो को इसके पत्ते चबाते और इसका धूआँ पीते हुए देखा था। सन् १५३६ मे स्पेनवाले इसे पहले पहल यूरोप में गए थे। भारत में इसे पहले पहल पुर्तगाली पादरी लाए थे। सन् १६०५ में इसे असदबेग ने बीजापुर (दक्षिण भारत) में देखा था और वहाँ से वह अपने साथ दिल्ली ले गया था। वहाँ उसने हुक्के और चिलम पर रखकर इसे अकबर को पिलाना चाहा था, पर हकीमों ने मना कर दिया। पर आगे चलकर धीरे धीरे इसका प्रचार बहुत बढ़ गया। प्रारंभ में इंगलैंड, फ्रांस तथा भारत आदि सभी देशो में राज्य की ओर से इसका प्रचार रोकने के अनेक प्रयत्न किए गए थे, धर्माधिकारियो और चिकित्सकों ने भी इसका प्रचार रोकने के अनेक उद्योग किए थे, पर वे सब निष्फल हुए। अब समस्त संसार में इसका इतना अधिक प्रचार हो गया है कि स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे और बुड्ढे प्रायः सभी किसी न किसी रूप में इसका व्यवहार करते हैं। भारत की गलियों मे छोटे छोटे बच्चे तक इसे खाते या पीते हुए देखे जाते हैं।

२. इस पेड़ का पत्ता। सुरती।

विशेष—इसका व्यवहार लोग अनेक प्रकार से करते हैं। चूर करके खाते हैं, सूँघते हैं, धूआँ खींचने के लिये नली में या चिलम पर जलाते हैं। इसमें नशा होता है। भारत में धूआँ पीने के लिये एक विशेष प्रकार से तमाकू तैयार किया जाता है (दे० तीसरा अर्थ)। इसका बहुत महीन चूर्ण सुंघनी कहलाता है जिसे लोग सूंघते हैं। भारत के लोग इसके पत्तों को सुखाकर पान के साथ अथवा यों ही खाने के लिये कई तरह का चूरा बनाते हैं, जैसे, सुरती, जरदा आदि। पान के साथ खाने के लिये इसकी गीली गोली बनाई जाती है और एक प्रकार का अवलेह भी बनाया जाता है जिसे 'किवाम' कहते हैं। इस देश मे लोग इसके सूखे पत्तो को चूने के साथ मलकर मुँह में रखते हैं। चूना मिलाने से यह बहुत तेज हो जाता है। इस रूप में इसे 'खैनी' या 'सुरती' कहते हैं। युरोप, अमेरिका आदि देशो मे इसके चूरे को कागज या पत्तो आदि मे लपेटकर सिगार या सिगरेट बनाते हैं। इसका व्यवहार नशे के लिये किया जाता है और इससे स्वास्थ्य और विशेषत आँखो को बहुत हानि पहुँचती है। वैद्यक में यह तीक्ष्ण, गरम, कड़ुआ, मद और वमनकारक तथा दृष्टि को हानि पहुँचानेवाला माना जाता है।

३. इन पत्तों से तैयार की हुई एक प्रकार की गीली पिंडी जिसे चिलम पर जलाकर मुँह से धूँआ खींचते हैं।

विशेष—पत्तियों के साथ रेह मिलाकर जो तमाकू तैयार होता है, वह 'कड़ुआ' कहलाता है, गुड़ मिलाकर बनाया हुआ 'मीठा' कहलाता है, और कटहल, बेर आदि की खमीर मिलाकर बनाया हुआ 'खमीरा' कहलाता है। इसे चिलम पर रखकर उसके ऊपर कोयले की आग या सुलगती हुई टिकिया रखते हैं और खाली हाथ गौरिए अथवा हुक्के पर रखकर नली से धूआँ खाचते हैं।

मुहा०—तमाकू चढ़ाना = तमाकू को चिलम पर रखकर और उसपर आग या टिकिया रखकर उसे पीने के लिये तैयार करना। तमाकू पीना = तमाकू का धूँआँ खींचना। तमाकू भरना = दे० 'तमाकू चढ़ाना'।

तमाखू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमाकू'।

तमाचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमचह] हथेली और उँगलियो से गाल पर किया हुआ प्रहार। थप्पड़। झापड़।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

तमाचारी—संज्ञा पुं० [सं० तमाचारिन्] राक्षस। दैत्य। निशिचर।

तमादी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. अवधि बीत जाना। मुद्दत या मियाद गुजर जाना। २. उस अवधि का बीत जाना जिसके अंदर लेन देन संबंधी कोई कानूनी कारंवाई हो सकती हो। उस मुद्दत का गुजर जाना जिसके अंदर अदालत मे किसी दावे की सुनवाई हो सकती हो।

क्रि० प्र०—होना।

तमान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घेरदार पाजामा जिसकी मोहरी नीचे से तंग होती है।

तमाना†—क्रि० अ० [सं० तम से नामिक धातु] ताव में आना। आवेश में आना।

तमाम—वि० [अ०] १. पूरा। संपूर्ण। कुल। सारा। बिल्कुल। जैसे,—(क) दो ही बरस मे तमाम रुपए फूँक दिए। (ख) तमाम शहर में बीमारी फैली है। २ समाप्त। खतम।

मुहा०—तमाम होना = (१) पूरा होना। समाप्त होना। (२) मर जाना।

तमामी—संज्ञा स्त्री० [अ० तमाम + फ़ा० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का देशी रेशमी कपड़ा।

विशेष—इसपर कलाबत्तू की धारियाँ होती हैं। यह प्राय गोट लगाने के काम में आता है।

तमारा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तँवार'।

तमारि¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। दिनकर। रवि।

तमारि²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तँवार'। उ०—पल में पल रूप बीतिया लोगन लगी तमारि।—कबीर (शब्द०)।

तमारी¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमारि'। उ०—सत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।—मानस, ५। १२१।

तमारी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तांवरा'।

तमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीस पचीस फुट ऊँचा एक बहुत सुंदर सदाबहार वृक्ष जो पहाड़ों पर और जमुना के किनारे भी कहीं कहीं होता है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है, एक साधारण और दूसरा श्याम तमाल। श्याम तमाल कम मिलता है। उसके फूल लाल रंग के और उसकी लकड़ी आबनूस की तरह काली होती है। तमाल के पत्ते गहरे हरे रंग के होते हैं और शरीफे के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। वैसाख के महीने में इसमें सफेद रंग के बड़े फूल लगते हैं। इसमें एक प्रकार के छोटे फल भी लगते हैं जो बहुत अधिक खट्टे होने पर भी कुछ स्वादिष्ट होते हैं। ये फल सावन भादों में पकते हैं और इन्हें गीदड़ बड़े चाव से खाते हैं। श्याम तमाल को वैद्यक में कसैला, मधुर, बलवीर्यवर्धक, भारी, शीतल, श्रम, शोष और दाह को दूर करनेवाला तथा कफ और पित्तनाशक माना है।

पर्या०—कालस्कंध। तापिच्छ। असितद्रुम। लोकस्कंध। नीलध्वज। नीलताल। तापिंज। तम। तया। कालताल। महाबल।

२ तेजपत्ता। ३. काले खैर का वृक्ष। ४. बाँस की छाल। ५. वरुण वृक्ष। ६ एक प्रकार की तलवार। ७. तिलक का पेड़। ८. हिमालय तथा दक्षिण भारत में होनेवाला एक प्रकार का सदाबहार पेड़।

विशेष—इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो घटिया रेवद चीनी की तरह का होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का बढ़िया पीला रंग निकता है। पूस, माघ में इसमें फल लगता है जिसे लोग यों ही खाते अथवा इमली की तरह दाल तरकारियों मे डालते हैं। इसका व्यवहार औषध में भी होता है। लोग इसे सुखाकर रखते और इसका सिरका भी बनाते हैं। इसे मन्होला और उमवेल भी कहते है।

९. सुरती (को०)। १० तमाल के बीज के रस और चंदन का तिलक (को०)।

तमालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ तेजपत्ता २. तमाल वृक्ष। ३. बाँस की छाल। ४ चौपतिया साग। सुसना साग।

तमालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल का पत्ता। २ सुरती का पत्ता। ३. सांप्रदायिक तिलक (को०)।

तमाशा—संज्ञा पुं० [हिं० तमारा] आँखों में अँधियारी छा जाना। चकाचौंध। उ०—होस उडे फाटे हियो, पड़े तमाशा आय। देखे जुथ तसवीर अग, भावड़िया मुरझाय।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ३७।

तमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मुई आँवला। भूम्यामलकी। २ ताम्रवल्ली नाम की लता।

तमालिनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ताम्रलिप्त देश का एक नाम। २. भूम्यामलकी। मुई आँवला। ३ काले खैर का वृक्ष। कृष्ण खदिर। ४. वह भूमि जहाँ तमाल के वृक्ष अधिक हों (को०)।

तमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वरुण वृक्ष। २ ताम्रवल्ली नाम की लता जो चित्रकूट में बहुत होती है।

तमाशगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमाश+गीर] दे० 'तमाशबीन'।

तमाशबीन—संज्ञा पुं० [अ० तमाशा+फ़ा० बीन] १ तमाशा देखनेवाला। सैलानी। २ रंडीबाज। वेश्यागामी। ऐयाश।

तमाशबीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमाशबीन+ई (प्रत्य०)] रंडीबाजी। ऐयाशी। बदकारी। उ०—फारसी पढ़ने से इश्कबाजी तमाशबीनी और अय्याशी।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ८२।

तमाशा—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह दृश्य जिसे देखने से मनोरंजन हो। चित्त को प्रसन्न करनेवाला दृश्य। जैसे, मेला, थिएटर, नाच, आतिशबाजी आदि। उ०—मद भोलक जब खुलत हैं तेरे दृग गजराज। आइ तमासे जुरत हैं नेही नैव समाज।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—देखना।—दिखाना।—होना।

२ अद्भुत व्यापार। विलक्षण व्यापार। अनोखी बात।

मुहा०—तमाशे की बात = आश्चर्य भरी और अनोखी बात।

यौ०—तमाशागर = तमाशा करनेवाला। तमाशागाह = क्रीड़ास्थल। कौतुकागार। तमाशबीन = तमाशा देखनेवाला।

तमाशाई—संज्ञा पुं० [अ० तमाशा+फ़ा० ई (प्रत्य०)] तमाशा देखनेवाला। वह जो तमाशा देखता हो।

तमास(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमाशा'। उ०—काहू सग मोह चहिं ममता देखहिं निपंथ भये तमास।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १५५।

तमासा(पु)—संज्ञा पुं० [अ० तमाशा]। उ०—मेहर की आसा तमासा भी मेहर का, मेहर का आब दिल को पिलाइए।—कबीर रे०, पृ० ३४।

तमाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र (को०)।

तमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ रात। २. मोह।

तमिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा।

तमिल¹—संज्ञा पुं० [देश०] तमिल भाषा का प्रदेश। २ तमिल भाषाभाषी।

तमिल²—संज्ञा स्त्री० १. तमिल जाति। २. तमिल जाति की भाषा। वि० दे० 'तामिल'।

तमिल³—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला (को०)।

तमिसरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तमिस्रा'। उ०—रवि परभात झरोखे उवा। गयउ तमिसरा बासर हुआ।—इंद्रा०, पृ० ८०।

तमिस्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधकार। अँधेरा। २ क्रोध। गुस्सा। ३ पुराणानुसार एक नरक का नाम। ४ अज्ञान। मोह (को०) ५ कृष्ण पक्ष (को०)।

तमिस्रपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] किसी मास का कृष्ण पक्ष। अँधेरा पक्ष।

तमिस्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अँधेरी रात। २ गहरा अँधेरा या अधकार (को०)।

तमी—संज्ञा स्त्री [सं०] १ रात। रात्रि। निशा। २ हरिद्रा। हलदी।

तमीचर¹—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर। राक्षस। दैत्य। दनुज।

तमीचर²—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला (को०)।

तमीज—संज्ञा स्त्री० [अ० तमीज] १ भले और बुरे को पहचानने की शक्ति। विवेक। २ पहचान। ३ ज्ञान। बुद्धि। ४. अदब। कायदा।

यौ०—तमीजदार = (१) बुद्धिमान। समझदार (२) शिष्ट। सभ्य।

तमीपति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। निशाकर। क्षपाकर।

तमीश—संज्ञा पुं० [सं० तमी + ईश] चंद्रमा। क्षपाकर। उ०—तो लौं तम राजै तमी जो लौं नहिं रजनीश। केशव ऊगे तरणि के तमु न तमी न तमीश।—केशव (शब्द०)।

तमु—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तम'।

तमूरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंबूरा'।

तमूला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तांबूल'।

तमे†—सर्व० [गुज० तमे (=तुम)] तुम।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१८।

तमोंत्य—वि० [सं० तमोऽन्त्य] सूर्य और चंद्रमा के दस प्रकार के ग्रासों में से एक।

विशेष—इसमें चंद्रमंडल की पिछली सीमा में राहु की छाया बहुत अधिक और बीच के भाग में बहुत थोड़ी सी जान पड़ती है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से फसल को हानि पहुँचती है और चोरों का भय होता है।

तमोंध—वि० [सं० तमोऽन्ध] १ अज्ञानी। २ क्रोधी।

तमोगुण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तमस्'-३।

तमोगुणी—वि० [सं०] जिसकी वृत्ति में तमोगुण हो। अधम वृत्तिवाला। उ०—तमोगुणी चाहै या भाई। मम वैरी क्यों ही मर जाई।—सूर (शब्द०)

तमोघ्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २ चंद्रमा। ३ सूर्य। ४ बुद्ध। ५ बौद्ध मत के नियम आदि। ६ विष्णु। ७ शिव। ८. ज्ञान। ९ दीपक। दीया। चिराग।

तमोघ्न[2]—वि० जिससे अँधेरा दूर हो।

तमोज्योति—संज्ञा पुं० [सं० तमोज्योतिस्] जुगनू [को०]।

तमोदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हो।

तमोनुद—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर। २ चंद्रमा। ३. अग्नि। आग।

तमोभिद्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जुगनू।

तमोभिद्[2]—वि० अंधकार दूर करनेवाला।

तमोमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुगनू। २ गोमेदक मणि।

तमोमय[1]—वि० [सं०] १ तमोगुणयुक्त २ अज्ञानी। ३ क्रोधी।

तमोमय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] राहु।

तमोर†—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] तांबूल। पान। उ०—(क) यार तमोर दूध दधि रोचन हरषि यशोदा लाई।—सूर (शब्द०)। (ख) सुरंग अधर औ मीन तमोरा। सोहै पान फूल कर जोरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १४३।

तमोरि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तमोरी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंबोली'।

तमोल†—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] १ पान का बीड़ा। उ०—बदी भाल तमोल मुख सीस सिलसिले बार। दृग आँजे राजे खरी ये ही सहज सिंगार।—बिहारी (शब्द०)। २ दे० 'तंबोल'।

तमोलिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमोली का स्त्री०] दे० 'तंबोलिन'।

तमोलिप्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताम्रलिप्त'।

तमोली—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंबोली'।

तमोविकार—संज्ञा पुं० [सं०] तमोगुण के कारण उत्पन्न होनेवाला विकार। जैसे, नींद, आलस्य आदि।

तमोहंत—संज्ञा पुं० [सं० तमोहन्त] दस प्रकार के ग्रहणों में से एक।

विशेष—दे० 'तमोंत्य'।

तमोहपह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २ चंद्रमा। ३ अग्नि। ४ दीपक। दीआ।

तमोहपह[2]—वि० १ मोहनाशक। २ अंधकार दूर करनेवाला।

तमोहर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। २ सूर्य। ३ अग्नि। आग। ४ ज्ञान।

तमोहर[2]—वि० [सं०] अंधकार दूर करनेवाला। २ अज्ञान दूर करनेवाला।

तमोहरि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमोहर'।

तम्मना—क्रि० अ० [हिं० तमकना] तप्त होना। क्रुद्ध होना। उ०—परि लरपरै उट्ठ एक। तम्मी उकसि भारै नेक (तेक)।—पृ० रा०, ६१।१६४।

तय[1]—वि० [अ०] १ पूरा किया हुआ। निबटाया हुआ। समाप्त। जैसे, रास्ता तय करना। काम तय करना। २ निश्चित। स्थिर। ठहराया हुआ। मुकर्रर। जैसे,—सोमवार को चलना तय हुआ है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—तय पाना = निश्चित होना। ठहराना।

तय[2]—अव्य० [हिं० तहँ] तहाँ। वहाँ। उ०—बुल्लाय वास सुदर षित्रिय। पठ्यौ प्रति पहुमान तय।—पृ० रा०, ६६।

तय[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षा। २ रक्षक [को०]।

तयना†[1]—क्रि० अ० [सं० तपन] १ बहुत गरम होना। तपना। उ०—निसि बासर तया तिहूँ ताय।—तुलसी (शब्द०)। २. संतप्त होना। दुखी होना। पीड़ित होना।

विशेष—दे० 'तपना'।

तयना†[2]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तपाना'।

तयनात†—वि० [हिं०] दे० 'तैनात'।

तया†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'तवा'।

तयार—वि० [हिं०] दे० 'तैयार'।

तयारी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तैयारी'।

तय्यार—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'तैयार'। उ॰—फोर्मा ऐसा तजीज तैयार हुआ।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ८४।

तरंग—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तरङ्ग] १. पानी की वह उछाल जो हवा लगने के कारण होती है। लहर। हिलोर। २ मौज।

क्रि॰ प्र॰—उठना।

पर्या॰—भंग। ऊर्मि। उर्मी। विचि। वीची। हृली। लहरी। भृ मि। उत्कलिका। जललता।

२ संगीत में स्वरों का चढ़ाव उतार। स्वरलहरी। उ॰—बहु भांति तान तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजही।—तुलसी (शब्द॰)। ३. चित्त की उमंग। मन की मौज। उत्साह या आनंद की अवस्था में सहसा उठनेवाला विचार। जैसे,—(क) मन की तरंग उठी कि नदी के किनारे चलना चाहिए। ४. वस्त्र। कपड़ा। ५. घोड़े आदि की फलाँग या उछाल। ६ हाथ में पहनने की एक प्रकार की चूड़ी जो सोने का तार उमेठकर बनाई जाती है। ७. हिलना डुलना। इधर उधर घूमना (को॰)। (८) किसी ग्रंथ का विभाग या अध्याय जैसे—कथासरित्सागर में।

तरंगक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तरङ्गक] [स्त्री॰ तरंगिका] १. पानी की लहर। हिलोर। २ स्वरलहरी।

तरंगभीरु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तरङ्गभीरु] चौदहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

तरंगवती—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तरङ्गवती] नदी। तरंगिणी।

तरंगायित—वि॰ [सं॰ तरङ्गायित] दे॰ 'तरंगित'। उ॰—सुंदर बने तरङ्गायित ये सिंधु से, लहराते जब वे मारुतवश झूम के।—करुणा॰, पृ॰ २।

तरंगालि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तरङ्गालि] नदी।

तरंगिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तरङ्गिका] १. लहर। हिलोर। २. स्वरलहरी। उ॰—स्वर मंद बाजत बाँसुरी गति मिलत उठत तरंगिका।—राधाकृष्ण दास (शब्द॰)।

तरंगिणी¹—संज्ञा स्त्री [सं॰ तरङ्गिणी] नदी। सरिता।

यौ॰—तरंगिणीनाथ, तरंगिणीभर्ता=समुद्र।

तरंगिणी²—वि॰ तरंगवाली।

तरंगित—वि॰ [सं॰ तरङ्गित] हिलोर मारता हुआ। लहराता हुआ। नीचे ऊपर उठता हुआ।

तरंगिनी—संज्ञा सं॰ [सं॰ तरङ्गिणी] नदी।

तरंगी—वि॰ [सं॰ तरङ्गिन्] [स्त्री॰ तरंगिणि] १ तरंगयुक्त। जिसमें लहर हो। २ जैसा मन में आवे, वैसा करनेवाला। मनमौजी। आनंदी। लहरी। बेपरवाह। उ॰—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।—मानस, १। ९३।

तरंड—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तरण्ड] १ नाव। नौका। २ मछली मारने की डोरी में बँधी हुई लकड़ी जो पानी के ऊपर तैरती रहती है। ३. नाव खेने का डाँडा। ४ बेड़ा (को॰)।

यौ॰—तरंडपादा=एक प्रकार की नाव।

तरंडा, तरंडी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तरण्डा, तरण्डी] १. नौका। नाव। २. बेड़ा (को॰)।

तरंत—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तरन्त] १. समुद्र। २. मेढक। ३. राक्षस। ४. जोर की वर्षा (को॰)। ५ भक्त (को॰)।

तरंती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तरन्ती] नाव। किश्ती।

तरंतुक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तरन्तुक] कुरुक्षेत्र के अंतर्गत एक स्थान का नाम।

तरंबुज—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तरम्बुज] तरबूज।

तरँहुत¹—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ तर+हुँत (प्रत्य॰)] १. नीचे। २ नीचे की तरफ।

तरँहुत²—वि॰ १ नीचेवाला। नीचे की तरफ का। २. नीचा।

तर¹—वि॰ [फा॰] १. भीगा हुआ। आर्द्र। गीला। जैसे, पानी से तर करना, तेल से तर करना।

यौ॰—तर बतर=भीगा हुआ।

२. शीतल। ठढा। जैसे,—(क) तर पानी, तर माल। (ख) तरबूज खालो, तबीयत तर हो जाय। ३ जो सुखा न हो। हरा।

यौ॰—तर व ताजा=टटका। तुरत का।

४. भरा पूरा। मालदार। जैसे, तर असामी।

तर²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पार करने की क्रिया। २ अग्नि। ३ वृक्ष। ४ पथ। ५ गति। ६ नाव की उतराई। ७. घाट की नाव (को॰)। ८ बढ़ जाना (को॰)। ९ पराजित करना। परास्त करना (को॰)।

तर³—क्रि॰ वि॰ [सं॰ तल] तले। नीचे। उ॰—कौन बिरिछ तर भीजत ह्वैहैं राम लषन दूनो भाई।—गीत (शब्द॰)।

तर⁴—प्रत्य॰ [सं॰] एक प्रत्यय जो गुणवाचक शब्दों में लगकर दूसरे की अपेक्षा आधिक्य (गुण में) सूचित करता है। जैसे, गुरुतर, अधिकतर, श्रेष्ठतर।

तरई—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तारा] नक्षत्र।

तरक¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तडक] दे॰ 'तड़क'।

तरक²—संज्ञा स्त्री [हिं॰ तड़कना] दे॰ 'तड़क'।

तरक³—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तर्क] १. विचार। सोच विचार। उधेड़बुन। ऊहापोह। उ॰—होइहि सोई जो राम रचि राखा। को करि तरक बढ़ावहि साखा।—तुलसी (शब्द॰)।

क्रि॰ प्र॰—करना।

२. उक्ति। तर्क। चतुराई का वचन। चोज की बात। उ॰—(क) सुनत हँसि चले हरि सकुचि भारी। यह कह्यो आज हम आइहैं गेह तुव तरक जिनि कहो हम समुझि डारी।—सूर (शब्द॰)। (ख) प्यारी को मुख धोई कै पट पोंछि सँवारयो तरक बात बहुतै कही कछु सुधि न सँभारयो।—सूर (शब्द॰)।

तरक⁴—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तर (=पथ ?)] वह अक्षर या शब्द जो पृष्ठ या पन्ना समाप्त होने पर उसके नीचे किनारे की ओर आगे के पृष्ठ के आरंभ का अक्षर या शब्द सूचित करने के लिये लिखा जाता है।

विशेष—हाथ की लिखी पुरानी पोथियों में इस प्रकार अक्षर या शब्द लिख देने की प्रथा थी जिससे पत्र लगाए जा सकें। पृष्ठों पर अंक देने की प्रथा नहीं थी।

तरक[1]—संज्ञा पुं० [सं० तर्क (=सोच विचार)] १ अड़चन। बाधा। २ व्यतिक्रम। भूल चूक।

क्रि० प्र०—पड़ना।

तरक[2]—संज्ञा पुं० [अ० तर्क] १. त्याग। परित्याग। २. छूटना।

क्रि० प्र०—करना।

तरकना(पु)[1]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़कना'।

तरकना[2]—वि० तड़कना। भड़कनेवाला।

तरकना[3]—क्रि० अ० [सं० तर्क] १ तर्क करना। सोच विचार करना। २. अनुमान करना। उ०—तरकि न सकहिं बुद्धि मन बानी। तुलसी (शब्द०)।

तरकना[4]—क्रि० अ० [अनु०] उछलना। कूदना। झपटना। उ०—बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी। —तुलसी (शब्द०)।

तरकश—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कश] तीर रखने का चोंगा। भाथा। तूणीर।

तरकशबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कशबंद] तरकश रखनेवाला व्यक्ति।

तरकस—संज्ञा पुं० [फा० तर्कश] दे० 'तरकश'।

तरकसी—संज्ञा स्त्री० [फा० तर्कश] छोटा तरकश। छोटा तूणीर। उ०—धरे धनु सर कर कसे कटि तरकसी पीरे पट ओढ़े चलें चारु चालु। अंग अंग भूषन जराय के जगमगत हरत जन के जी को तिमिर जालु।—तुलसी (शब्द०)।

तरका(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तड़का'।

तरका[2]—संज्ञा पुं० [अ०] मरे हुए मनुष्य की जायदाद। वह जायदाद जो किसी मरे हुए आदमी के वारिस को मिले।

तरका(पु)[3]—संज्ञा पुं० [हिं० ताड़] बड़ी तरकी।

तरकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तरह (=सब्जी, शाक) + कारी] १. वह पौधा जिसकी पत्ती, जड़, डंठल, फल फूल आदि पकाकर खाने के काम में आते हैं। जैसे, पालक, गोभी, आलू, कुम्हड़ा इत्यादि। शाक। सागपात भाजी। सब्जी। २. खाने के लिये पकाया हुआ फल फूल, कंद मूल, पत्ते आदि। शाक भाजी। ३ खाने योग्य मांस।—(पंजाब)।

क्रि० प्र०—बनाना।

तरकी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडङ्की] कान में पहनने का फूल के आकार का एक गहना।

विशेष—इस गहने का वह भाग जो कान के अंदर रहता है, ताड़ के पत्ते को गोल लपेटकर बनाया जाता है। इससे यह शब्द 'ताड़' से निकला हुआ जान पड़ता है। सं० शब्द 'ताडङ्क' से भी यही सूचित होता है। इसके अतिरिक्त इस गहने को तालपत्र भी कहते हैं। इसे आजकल छोटी जाति की स्त्रियाँ अधिक पहनती हैं। पर सोने के कर्णफूल आदि के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

तरकीब—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. संयोग। मिलान। मेल। २. बनावट। रचना। ३ युक्ति। उपाय। ढंग। ढब। जैसे,—उन्हें यहाँ लाने की कोई तरकीब सोचो। ४. रचना प्रणाली। शैली। तौर। तरीका। जैसे,—इनके बनाने की तरकीब मैं जानता हूँ।

तरकुल—संज्ञा पुं० [सं० ताल + कुल] ताड़ का पेड़।

तरकुला—संज्ञा पुं० [हिं० तरकुल] कान में पहनने का एक गहना। तरकी।

तरकुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरकुल] कान का एक गहना। तरकी। उ०—लछिमन संग बूझै कमल कदंब कहूँ देखी सिय कामिनी तरकुली कनक की।—हनुमान (शब्द०)।

तरक्कना—क्रि० अ० [हिं०] तड़कना। उछलना। चमकना। उ०—नव जद्द नक्केरि भेरी सभालं। तरक्कंत तेगं मनो बिज्जु नालं।—पृ० रा०, १२।८८०।

तरक्की—संज्ञा स्त्री० [अ० तरक्की] वृद्धि। बढ़ती। उन्नति। (शरीर, पद एवं वस्तु आदि में)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

तरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ लकड़बग्घा। २. चीता (को०)।

तरक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाघ। लकड़बग्घा। चरग। २. चीता (को०)।

तरखा†—संज्ञा पुं० [सं० तरंग] जल का तेज बहाव। तीव्र प्रवाह।

तरखान—संज्ञा पुं० [सं० तक्षण] लकड़ी का काम करनेवाला। बढ़ई।

तरगुलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] अक्षत रखने का एक प्रकार का छिछला बरतन।

तरचखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो सजावट के लिये बगीचों में लगाया जाता है।

तरच्छी—वि० स्त्री० [हिं०] तिरछी। टेढ़ी। उ०—सजम जप तप सौंपरत, व्रत जुत जोग विनोद। आँख तरच्छी ईश की जीता समझा जाए।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ३४।

तरछत(पु)[1]—क्रि० वि० [हिं० तर] नीचे। नीचे की ओर।

तरछत[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट'।

तरछन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट'।

तरछा—संज्ञा पुं० [हिं० तर (=नीचे)] वह स्थान जहाँ तेली गोबर इकट्ठा करते हैं।

तरछाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० तिरछा] तिरछी आँख से इशारा करना। इंगित करना। उ०—अरध जाम जामिनि गए सखिन सकुचि तरछाय। देति बिदा तिय इतहि पिय चितवत चित ललचाय।—देव (शब्द०)।

तरछी—वि० [हिं०] तिरछी। उ०—झलकत बरछी तरछी तरवारि बहै। मार मार करत परत पलभल है।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८५।

तरज—संज्ञा पुं० [अ० तर्ज] दे० 'तर्ज'।

तरजना—क्रि० अ० [सं० तर्जन] १. ताड़न करना। डाँटना।

डपटना। उ०—गरजति तरजनिन्ह तरजत बरजत सयन नयन के कोए।—तुलसी (शब्द०) २ भला बुरा कहना। बिगड़ना। ३ गरजना। उ०—सिंह व्याघ्रों का तरजना जिसे सुन विचारी कोमल बालाओं के हृदय का लरजना—इस दुर्ग के पुर्खों ही से बैठे बैठे सुन को।—श्यामा०, पृ० ७८।

तरजनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जनी] अँगूठे के पास की उँगली। उ०—(क) इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सरस बरजि तर्जिय तरजनी कुम्हिलैहै कुम्हड़े को जई है।—तुलसी (शब्द०)।

तरजनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जन] भय। डर। उ०—अहो रे विहगम बनवासी। तेरे बोल तरजनी बाढ़ति श्रवनन सुनत नींदऊ नासी।—सूर (शब्द०)।

तरजीला—वि० [सं० तर्जन + हिं० ईला (प्रत्य०)] १ तर्जन करनेवाला। २. क्रोध में भरा हुआ। ३ प्रचंड। तेज। उग्र।

तरजीह—संज्ञा स्त्री० [अ० तर्जीह] वरीयता। प्रधानता। श्रेष्ठता। उ०—वे व्यापकता के ऊपर गहराई को तरजीह देते हैं।—इति० और आलो०, पृ० ८।

तरजुई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तराज़ू] छोटी तराजू।

तरजुमा—संज्ञा पुं० [अ० तर्जुमह्] अनुवाद। भाषांतर। उल्था।

तरजुमान—संज्ञा पुं० [अ० तर्जुमान] वह जो अनुवाद करता है [को०]।

तरजौहाⓊ—वि० [हिं०] दे० 'तरजीला'।

तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी आदि को पार करने का काम। पार करना। २ पानी पर तैरनेवाला तख्ता। बेड़ा। ३ निस्तार। उद्धार। ४ स्वर्ग। ५ नौका (को०)। ६ पराजित करना। (को०)।

तरणतारण—वि० [सं०] १ संसार सागर से पार करनेवाला उ०—मोक्ष धारण करण कारण, तरण तारण विष्णु शंकर।—अर्चना, पृ० ८८। २ नदी या जलाशय से पार करनेवाला।

तरणातप—संज्ञा पुं० [हिं० तरण + सं० आतप] सूर्य की धूप। उ०—तरणातप टोप बगत्तरयं। प्रतबब चमक्कत पक्खरियं।—रा० रू०, पृ० ८१।

तरणापण—संज्ञा पुं० [सं० तरुण, राज० तरण + आपण, हिं० तरणा प्रा० पउ] दे० 'तारुण्य'। उ०—जिम जिम मन अमले किपइ सार पउती जाइ। तिम तिम मारवणी तणइ, तन तरणापउ थाइ।—ढोला०, दू० १२।

तरणि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ मदार। ३ किरन।

तरणि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरणी'।

तरणिकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत'।

तरणिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सूर्य की कन्या, यमुना। २ एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे एक नगण और एक गुरु होता है। इसका दूसरा नाम 'सती' है। जैसे,—नगपती। परसती।

तरणितनय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत'।

तरणितनूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री, यमुना।

तरणिधन्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

तरणिपेटक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र या कठौता जिससे नाव का पानी उलीचा जाता है [को०]।

तरणिरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] माणिक्य [को०]।

तरणिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य का पुत्र। २. यम। ३. शनि। ४ कर्ण।

तरणिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री। यमुना [को०]।

तरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका। नाव। २. घीकुमार। ३. स्थल कमलिनी।

तरतर—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'तड़तड़'। उ०—बरखै प्रलय को पानी, न जात काहू पै बखानी, ब्रज हू तैं भारी टूटत है तरतर।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६२।

तरतराता—वि० [हिं० तर] घी में अच्छी तरह डूबा हुआ (पकवान)। जिसमें से घी निकलता या बहता हो (खाद्यपदार्थ)।

तरतरानाⓊ[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़तड़ाना। उ०—फहरात भुजा मनु असभानु, के तडित चहूँ दिस तरतरात।—सुजान०, पृ० १७।

तरतरानाⓊ[2]—क्रि० अ० [अनु०] तड़तड़ शब्द करना। तोड़ने का सा शब्द करना। तड़तड़ाना। उ०—घहरात तरतरात गररात हहरात पररात झहरात माथ नाथे।—सूर (शब्द०)।

तरतीब—संज्ञा स्त्री० [अ०] वस्तुओं की अपने ठीक ठीक स्थानों पर स्थिति। यथास्थान रखा या लगाया जाना। क्रम। सिलसिला। जैसे,—किताबें तरतीब से लगा दें।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—सजाना।

मुहा०—तरतीब देना = क्रम से रखना या लगाना। सजाना।

तरत्समंदीय—संज्ञा स्त्री० [सं० तरत्समन्दीय] वेद के पवमान सूक्त के अंतर्गत एक सूक्त।

विशेष—मनु ने लिखा है कि अप्रतिग्राह्य धन ग्रहण करने या निषिद्ध अन्न भक्षण करने पर इस सूक्त का जप करने से दोष मिट जाता है।

तरदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कँटीला पेड़।

तरदीद—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ काटने या रद करने की क्रिया। मंसूखी। २ खंडन। प्रत्युत्तर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरद्दुद—संज्ञा पुं० [अ०] सोच। फिक्र। अँदेशा। चिंता। खटका। उ०—एक कमरे तक सीमित रहने पर भी आने जानेवाले यात्रियों और मुझे भी तरद्दुद रहता।—किन्नर०, पृ० ५६।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—तरद्दुद में पड़ना = चिंता मे पड़ना।

तरद्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो घी और दही के साथ माड़े हुए आटे की गोलियों को पकाने से बनता है।

तरनⓊ[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरण'।

तरन[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरौना'।

तरनतार—संज्ञा पुं० [सं० तरण] निस्तार । मोक्ष । मुक्ति ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरनतारन—संज्ञा पुं० [सं० तरण, हिं० तरना] १ उद्धार । निस्तार । मोक्ष । २. उद्धार करनेवाला । वह जो भवसागर से पार करे ।

तरना[1]—क्रि० स० [सं० तरण] पार करना ।

तरना[2]—क्रि० अ० १ भवसागर से पार होना । मुक्त होना । सद्गति प्राप्त करना । जैसे,—तुम्हारे पुरखे तर जायँगे । २. तैरना न डूबना ।

तरना[3]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तलना' ।

तरना[4]—संज्ञा पुं० [देश०] व्यापारी जहाज का वह अफसर जो यात्रा में व्यापार संबंधी कार्यों का निरीक्षण करता है ।

तरनाग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तरनाल—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सा जिसकी सहायता से पाल को लोहे की धरन में बाँधते हैं । —(लश०) ।

तरनि[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरणी' ।

तरनि[2]—संज्ञा पुं० दे० 'तरणि' । उ०—तरनि तेय तुलाधार परताप गहिओरे ।—विद्यापति, पृ० ६ ।
यौ०—तरनितनया = सूर्य की पुत्री । यमुना । उ०—तरनितनया तीर जगमगत ज्योतिमय भूहमि पै प्रगट सब लोक सिरताजै ।—घनानंद, पृ० ४६३ ।

तरनिजा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरणिजा' ।

तरन्नि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरणि' । उ०—भूषन तीखन तेज तरन्नि सों वैरिन को कियो पानिप हीनो ।—भूषण ग्रं०, पृ० ४८ ।

तरनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तरणी] १ नाव । नौका । उ०—रातिहि घाट घाट की तरनी । आई अगनित जाहि न बरनी ।—मानस, २।२२० । २. वह छोटा मोढ़ा जिसपर मिठाई का थाल या खोंचा रखते हैं । दे० 'तन्नी' ।

तरनी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] डमरू के आकार की बनी हुई चीज जिसपर खोमचेवाले अपनी थाली रखते हैं ।

तरन्नुम—संज्ञा पुं० [अ०] आलाप ।

तरपा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तड़प' ।

तरपट[1]—वि० [हिं० तिरपट] (चारपाई) जो टेढ़ी हो । जिसमें तीन ही पाटी सीधी हो ।

तरपट[2]—संज्ञा पुं० टेढ़ापन । भेद ।

तरपत—संज्ञा पुं० [सं० तृप्ति] १. सुपास । सुबीता । २ आराम । चैन । उ०—बूँदी सम सर तजत खड मंडल पर तरपत ।—गोपाल (शब्द०) ।

तरपटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—जुग पानि नाभि तालो बनाय । रमि दिट्ठ सिट्ठ गिरवान राय । तरपटी साथ सिख कमल मूर । दृष्टि भति माथ तप तपनि जुर ।—पृ० रा०, १ । ४०४ ।

तरपन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तर्पण' । उ०—तरपन होम करहिं विधि नाना ।—मानस, २ । १२६ ।

तरपना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़पना' उ०—तरपै जिमि विज्जुल सी पिय पै झरपै मननाय सबै घर में ।—सुंदरी-सर्वस्व (शब्द०) ।

तरपर—क्रि० वि० [हिं० तर + पर] १ नीचे ऊपर । २ एक के पीछे दूसरा ।

तरपरिया—वि० [हिं०] १ नीचे ऊपर का । २ पहला और दूसरा (संतान) । क्रम से पहला और बाद का (बच्चा) ।

तरपीला—वि० [हिं० तड़प + ईला प्रत्य०] तड़पवाला । चमकदार ।

तरपू—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ ।
विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है और मकानों मे लगती है । यह पेड़ मलाबार और पश्चिमी घाट के पहाड़ों में पाया जाता है ।

तरफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तरफ] १ ओर । दिशा । अलंग । जैसे, पूरब तरफ । पश्चिम तरफ । २ किनारा । पार्श्व । बगल । जैसे, दाहिनी तरफ । बाईं तरफ । ३ पक्ष । पासदारी । जैसे,—(क) लड़ाई में तुम किसकी तरफ रहोगे ? (ख) हम तुम्हारी तरफ से बहुत कुछ कहेंगे ।
यौ०—तरफदार ।

तरफदार—वि० [अ० तरफ + फ़ा० दार (प्रत्य०)] पक्ष में रहनेवाला । साथी या सहायता देनेवाला । पक्षपाती । हिमायती । समर्थक ।

तरफदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तरफ + फा० दारी (प्रत्य०)] पक्षपात ।
क्रि० प्र०—करना ।

तरफना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़फना' । उ०—यातें घनि भीलनि की तिया । हसनि कछू तरफति है हिया ।—नंद० ग्रं०, पृ० २९६ ।

तरफराना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'तड़फड़ाना' ।

तरब—संज्ञा पुं० [हिं० तरपना, तड़पना] सारंगी में वे तार जो तांत के नीचे एक विशेष क्रम से लगे रहते हैं और सब स्वरों के साथ गूँजते हैं ।

तर बतर—वि० [फ़ा०] भीगा हुआ । आर्द्र । शराबोर ।

तरबन्ना[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताल + हिं० बन] ताड़ का वन ।

तरबन्ना[2]—संज्ञा पुं० [सं० ताडपर्ण] दे० 'तरवन' ।

तरबहना—संज्ञा पुं० [हिं० तर + बहना] थाली के आकार का तांबे या पीतल का एक बरतन जो प्रायः ठाकुरजी को स्नान कराने के काम मे लाया जाता है ।

तरबियत—संज्ञा स्त्री० [अ० तर्बियत] १ पालन पोषण करना । देखरेख या परवरिश करना । २ शिक्षा । ३ सभ्यता और शिष्टाचार की शिक्षा (को०) ।

तरबूज—संज्ञा पुं० [फ़ा० तरबुज, तरबुजह्] एक प्रकार की बेल जो

जमीन पर फैलती है और जिसमें बहुत बडे बड़े गोल फल लगते हैं। कलींदा। काखिद। कलिंग।

विशेष—ये फल खाने के काम में आते हैं। पके फलों को काटने पर इनके भीतर झिल्लीदार लाल या सफेद गूदा तथा मीठा रस निकलता है। बीजों का रंग लाल या काला होता है। गरमी के दिनों में तरबूज तरावट के लिये खाया जाता है। पकने पर भी तरबूज के छिलके का रंग गहरा हरा होता है। यह बलुए खेतों में, विशेषतः नदी के किनारे के रेतीले मैदानों में जाड़े के अंत में बोया जाता है। संसार के प्रायः सब गरम देशों में तरबूज होता है। यह दो तरह का होता है—एक फसली या वार्षिक, दूसरा स्थायी। स्थायी पौधे केवल अमेरिका के मेक्सिको प्रदेश में होते हैं जो कई साल तक फलते फूलते रहते हैं।

तरबूजई—वि०,संज्ञा पुं० [फ़ा० तरबूजह्+ई (प्रत्य०)] दे० 'तरबूजिया'।

तरबूजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तरबुज़ह्] १ दे० 'तरबूज'। २. ताजा फल।

तरबूजिया[1]—वि० [हिं० तरबूज] तरबूज के छिलके के रंग का। गहरा हरा। काही।

तरबूजिया[2]—संज्ञा पुं० गहरा हरा रंग।

तरबोना[1]—क्रि० स० [हिं० तर+बोरना] तर करना। अच्छी तरह भिगोना।

तरबोना[2]—क्रि० अ० तर होना। भीगना।

तरबोर—वि० [हिं०] दे० 'तराबोर'। उ०—डूबे गए तरबोर को कहुँ खोज न पाया।—मलूक० पृ० १८।

तरभरा—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ तड़मड़ की आवाज। २. खलबली।

तरमाची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरवाँची'।

तरमाना[1]—क्रि० अ० [देश०] बिगड़ना। नाखुश होना।

तरमाना[2]—क्रि० स० किसी को नाराज या नाखुश करना।

तरमाना[3]—क्रि० अ० [हिं० तर+माना (प्रत्य०)] तर होना।

तरमाना[4]—क्रि० स० तर करना।

तरमानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह तरी जो जोती हुई भूमि में आती है।

क्रि० प्र०—आना।

तरमिरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है और पश्चिमी भारत मे जौ या चने के साथ बोया जाता है। तिरा। तिउरा।

विशेष—इसके बीजों से तेल निकलता है जो प्रायः जलाने के काम में आता है।

तरमीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] संशोधन। दुरुस्ती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरय्या—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरई'। उ०—जो विशाखा की तरय्याँ चंद्रकला को बडाई करें तो क्या अचभा है।—शकुतला, पृ० ५१।

तरराना—क्रि० अ० [अनु०] ऐंठना। ऐंड़ाना।

तरलंग—वि० [सं० तरलङ्ग] चपल, चंचल। उ०—मैं जेहल कीना अमर, तैं दीना तरलंग।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७।

तरल[1]—वि० [सं०] १. हिलता डोलता। चलायमान। चंचल। चल। उ०—लसत सेत सारी ढक्यो तरल तरौना कान।—बिहारी (शब्द०)। २ अस्थिर। क्षणभंगुर। ३. (पानी की तरह) बहनेवाला। द्रव। ४. चमकीला। भास्वर। कांतिवान्। ५. खोखला। पोला। ६. विस्तृत (को०)। ७. लपट (को०)।

तरल[2]—संज्ञा पुं० १. हार के बीच की मणि। २ हार। ३. हीरा। ४ लोहा। ५. एक देश तथा वहाँ के निवासियों का नाम (महाभारत)। ६. तल। पेंदा। ७. घोड़ा।

तरलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंचलता। २. द्रवत्व।

तरलनयन—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण होते हैं। उ०—नचत मुघर सखिन सहित। विरचि विरचि फिरत मुदित।

तरलभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पतलापन। २. चंचलता। चपलता।

तरला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यवागू। जौ की माँड़। २. मदिरा। ३. मधुमक्षिका। शहद की मक्खी।

तरला[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तर] छाजन के नीचे का बाँस।

तरलाई(ए)—संज्ञा स्त्री० [सं० तरल+हिं० आई (प्रत्य०)] १. चंचलता। चपलता। २. द्रवत्व।

तरलायित[1]—वि० [सं०] हिलाया हुआ। कँपाया हुआ। [को०]।

तरलायित[2]—संज्ञा स्त्री० लहर। तरंग। हिलोर [को०]।

तरलित—वि० [सं०] १. तरल किया हुआ। उ०—कहो कैसे मन को समझा लूँ, झंझा के द्रुत आघातों या युति के तरलित उत्पातों सा, था वह प्रणय तुम्हारा प्रियतम।—इत्यलम्, पृ० २७।

तरवँछ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर+वँछ (प्रत्य०)] जुए के नीचे की लकड़ी जो बैलो के गले के नीचे रहती है। तरवाँची।

तरवट—संज्ञा पुं० [सं०] एक क्षुप। आहुल्य। दतकाष्ठक [को०]।

तरवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला+ड़ी (प्रत्य०)] छोटी तराजू का पलड़ा।

तरवन—संज्ञा पुं० [सं० तालपर्ण] १ कान मे पहनने का एक गहना। तरकी। २. कर्णफूल।

तरवर[1]—संज्ञा पुं० [सं० तरुवर] बड़ा पेड़। वृक्ष।

तरवर[2]—संज्ञा पुं० [सं० तरुवर] एक प्रकार का लबा पेड़ जिसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

विशेष—यह मध्यभारत और दक्षिण में बहुत पाया जाता है। इसे तरोता भी कहते हैं।

तरवरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिरमिला'।

तरवरिया—संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] तलवार चलानेवाला।

तरवरिहा—संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] दे० 'तरवरिया'।

तरवाँची—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर+माचा] जुए के नीचे की लकड़ी । मचेरी ।

तरवाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरवाँची' ।

तरवा—संज्ञा पुं० [हिं० तलवा] दे० 'तलवा' । उ०—अंगुरीन लौं जाय भुलाय तहीं फिरि आय लुभाय रहै तरवा । धपि घायनि धूर ह्वै एड़िनि छ्वै धपि धाय छकै छवि छाय सवा । —घनानंद, पु० ८ ।

तरवाई, सिरवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर+सिर] ऊँची जमीन और नीची जमीन । पहाड़ और घाटी ।

तरवाना[1]—क्रि० अ० [हिं० तरवा+आना] १ बैलों के तलवों का चलते चलते घिस जाना जिससे वे लँगड़ाते हैं । २. बैलो का लँगड़ाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

तरवाना[2]—क्रि० स० [हिं० तारना का प्रे०रूप] तारने की प्रेरणा करना ।

तरवार[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तलवार' ।

तरवार(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरवर' ।

तरवार[3]—वि० [हिं० तर (=नीचा, तले)+वार (प्रत्य०)] निचली । खलार (भूमि) ।

तरवारि—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग का एक भेद । तलवार । उ०—रोष न रसना जनि खोलिए बरु खोलिए तरवारि ।—तुलसी (शब्द०)

तरवारी—संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] तलवार चलानेवाला ।

तरस्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बल । २ वेग । ३. बानर । ४ रोग । ५ तीर । तट ।

तरस[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रस(=डरना) अथवा फ़ा० तर्स (=भय, डर, खौफ)] दया । करुणा । रहम ।

क्रि० प्र०—आना ।

मुहा०—(किसी पर) तरस खाना =दयार्द्र होना । दया करना । रहम करना ।

विशेष—इस शब्द का यह अर्थ विपर्यय द्वारा आया हुआ जान पड़ता है । जो मनुष्य भय प्रकाशित करता है, उसपर दया प्रायः की जाती है ।

तरस[2]—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०] ।

तरसना[1]—क्रि० अ० [सं० तर्षण(=अभिलाषा)] किसी वस्तु के अभाव में उसके लिये इच्छुक और आकुल रहना । अभाव का दु ख सहना । (किसी वस्तु को) न पाकर बेचैन रहना । जैसे,—(क) वहाँ लोग दाने दाने को तरस रहे हैं । (ख) कुछ दिनों में तुम उन्हें देखने के लिये तरसोगे । उ०—दरसन बिनु अँखियाँ तरस रही । —(गीत) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

तरसना[2]—क्रि० अ० [सं० √त्रस्] त्रस्त होना ।

तरसना[3]—क्रि० स० त्रस्त करना । त्रास देना ।

तरसा—क्रि० वि० [सं० तरस्] शीघ्र । उ०—कमललोचन क्या कल आ गए, पलट क्या कुकपाल क्रिया गई । मुरलिका फिर क्यों वन मे बजी । वन रसा तरसा बरसा सुधा ।—प्रिय० पृ० २२८ ।

तरसान—संज्ञा पुं० [सं०] नौका [को०] ।

तरसाना—क्रि० स० [हिं० तरसना] १. अभाव का दु ख होना किसी वस्तु को न देकर या न प्राप्त कराकर उसके लिये बेचैन करना । २. किसी वस्तु की इच्छा और आशा उत्पन्न करा उससे वंचित रखना । व्यर्थ ललचाना ।

संयो० क्रि ०—डालना ।—मारना ।

तरसि—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तरसा' । उ०—तरसि पधार हुए सय्यारी । वीर तरुण आयो व्रतधारी ।—रा० रू०, पु० १८ ।

तरसौंहाँ(पु)—वि० [हिं० तरसना+औहाँ (प्रत्य०)] तरसनेवाला उ०—तिय तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह । घर परसौं ह्वै रहे झर बरसौंहैं मेह ।—बिहारी (शब्द०) ।

तरस्वान्[1]—वि०[सं० तरस्वत्]१ तेज गतिवाला । वेगवान् । २ वीर ३ बीमार तरुण [को०] ।

तरस्वान्[2]—संज्ञा पुं० १ शिव । २ गरुड । ३ वायु [को०] ।

तरस्वी[1]—वि० [सं० तरस्विन्] [वि० स्त्री० तरस्विनी] १. दृढ़ बली । उ०—बली, मनस्वी, तेजस्वी, सुर, तरस्वी जानि ऊर्ज, प्रवणि, मास्वरि, सुभट, राखै जिन करि मान ।—नद ग्रं०, पु० ११३ । २ वेगवान् । फुर्तीला ।

तरस्वी[2]—संज्ञा पुं० १. धावक । दूत । २. नायक । वीर । ३. पवन वायु । ४ गरुड़ [को०] ।

तरह—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रकार । भाँति । किस्म । जैसे,—यहाँ त तरह की चीजें मिलती हैं ।

मुहा०—किसी की तरह=किसी के सदृश । किसी के समान जैसे,—उसकी तरह काम करनेवाला यहाँ कोई नहीं है ।

२. रचना प्रकार । ढाँचा । शैली । डौल । पद्धति । बनावट रूपरंग । जैसे,—इस छींट की तरह अच्छी नहीं है । ३ ढ तर्ज । प्रणाली । रीति । ढंग । जैसे,—वह बहुत बुरी तरह पढ़ता है ।

मुहा०—तरह उड़ाना = ढग की नकल करना ।

४ युक्ति । ढग । उपाय । जैसे,—किसी तरह से रुपया निकालो ।

मुहा०—तरह देना =(१) खयाल न करना । जाना जान विरोध या प्रतिकार न करना । क्षमा करना । जाने देन उ०—इन तेरह तें तरह दिए बनि आवे साईं ।—गिरि (शब्द०) । (२) टालटूल करना । ध्यान न देना ।

५. हाल । दशा । अवस्था । जैसे,—आजकल उनकी तरह है ?

६ समस्या । पद्य का एक चरण ।

मुहा०—तरह देना = पूर्ति के लिये समस्या देना ।

७ न्यास । नींव । बुनियाद । ८ घटाना । बाकी । व्यवकल तफरीक । ९ वेशभूषा । पहनावा ।

तरहटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर (=नीचे)+हटी (प्रत्य०)] १ नी भूमि । २. पहाड़ की तराई ।

तरहदार—वि० [अ० तरह्+फा० दार (प्रत्य०)] १ सुंदर बनावट का। अच्छी चाल या ढाँचे का। जिसकी रचना मनोहर हो। जैसे, तरहदार छींट। २ सजधजवाला। शौकीन। वजादार। जैसे, तरहदार आदमी।

तरहदारी†—संज्ञा स्त्री० [फा०] वजादारी। सजधज का ढंग।

तरहर¹—क्रि० वि० [हिं० तर+हर (प्रत्य०)] तले। नीचे। उ०—भ्रम करि मुँह तरहर परयो इहि घर हरि चित लाइ। विषय त्रिषा परिहरि अजौं नर हरि के गुन गाइ।—बिहारी (शब्द०)।

तरहर²—वि० १ नीचा। तले का। नीचे का। २ निकृष्ट। बुरा।

तरहरि(पु)—क्रि० वि० [हिं० तर+हरि (प्रत्य०)] नीचे।

तरहा—संज्ञा पुं० [हिं० तर + हा (प्रत्य०)] १. कुआँ खोदने में एक माप जो प्रायः एक हाथ की होती है। २. वह कपड़ा जिसपर मिट्टी फैलाकर कड़ा ढालने का साँचा बनाते हैं।

तरहारि(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तरहर'।

तरहेल(पु)†—वि० [हिं० तर + हर, हल (प्रत्य०)] १. अधीन। निम्नस्थ। २ वश में आया हुआ। पराजित। उ०—जौ चौपड़ खेलौं करि हीया। जो तरहेल होय सो तीया।—जायसी (शब्द०)।

तरांधु—संज्ञा पुं० [सं० तरान्धु] चौड़े पेंदे की नाव [को०]।

तराँ¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तराना'।

तराँ²—अव्य० [सं० तदा] तब। उ०—मन्तो जरा विवाह री, तरां विचारी ढील।—रा० रू०, पृ० ८२।

तरा†¹—संज्ञा पुं० [देश०] पटुआ। पटसन।

तरा²—संज्ञा पुं० [हिं० तला] १ दे० 'तला'। २ दे० 'तलवा'।

तराई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर(=नीचे)+आई (प्रत्य०)] १ पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ के नीचे का वह मैदान जहाँ सीड़ या तरी रहती है। जैसे, नैपाल की तराई। २. पहाड़ों की घाटी। ३ मूँज के मुट्ठे जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं।

तराई†²—संज्ञा स्त्री० [सं० तारा] तारा। नक्षत्र।

तराई†³—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलाई] छोटा ताल। तलैया।

तराच(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तराश (=काट छाँट)] दे० 'तराश'। उ०—अचर फारि कागज करूँ, एजी कोई ऊँगली तराच कलम।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० ९४५।

तराजू—संज्ञा स्त्री०, पुं० [फ़ा० तराजू] रस्सियों के द्वारा एक सीधी डाँडी के छोरों से बँधे हुए दो पल्लों का एक यंत्र जिससे वस्तुओं की तौल मालूम करते हैं। तौलने का यंत्र। तुला। तकड़ी।

मुहा०—तराजू हो जाना = (१) तीर का निशाने के इस प्रकार आरपार घुसना कि उसका आधा भाग एक ओर, और आधा दूसरी ओर निकला रहे। (२) दो सैनिक दलों का इस प्रकार ठीक ठीक बराबर होना कि एक दूसरे को परास्त न कर सके।

तराटक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्राटक] दे० 'त्राटक'। उ०—त्रिकुटी संग भ्रूभंग तराटक नैन नैन लगि लागे।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० ११८।

तरातर(पु)†—वि० [फा० तर (=गीला)] अत्यंत गीला। आर्द्र। उ०—चलत पिचुका अरु पिचकारी करत तरातर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३४।

तरात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] बिना आज्ञा लिए नदी पार करने का जुरमाना [को०]।

तराना¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० तरानह्] १. एक प्रकार का चलता गाना जिसका बोल इस प्रकार का होता है—दिर दिर ता दि आ आ रे दे दी मु ता दी मु ता ना ना दे रे ता दा रे ना नि ता ना ना दे रे ना ता ना ना ना ता ना ना तोम् दिर ता रे दा नी।

विशेष—तराना हर एक राग का हो सकता है। इसमें कभी कभी सरगम और तबले के बोल भी मिला दिए जाते हैं।

२. कोई अच्छा गाना। बढ़िया गीत।—(क्व०)।

तराना²—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तैराना'।

तराना†³—क्रि०अ० [हिं० तर से नामिक धातु] दे० 'तरिआना'।

तराप(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाक शब्द। बंदूक, तोप आदि का शब्द। उ०—सैन अफगान सैन सगर सुतन लागी कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की।—भूषण (शब्द०)।

तरापा¹—संज्ञा पुं० [अनु०] हाहाकार। कुहराम। त्राहि त्राहि। उ०—परो धर्मसुत शिविर तरापा। गजपुर सकल शोकबस काँपा।—सबलसिंह (शब्द०)।

तरापा²—संज्ञा पुं० [हिं० तरना] पानी में तैरता हुआ शहतीर। बेड़ा।—(लश०)।

तराबोर—वि० [फ़ा० तर+हिं० बोरना, शुद्ध रूप फ़ा० शराबोर] खूब भीगा हुआ। खूब डूबा हुआ। सराबोर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरामल—संज्ञा पुं० [हिं० तर (=नीचे)] १ मूँज के वे मुट्ठे जो छाजन में खपरैल के नीचे दिए जाते हैं। २ जुए के नीचे की लकड़ी।

तरामीरा—संज्ञा पुं० [देश०] सरसों की तरह का एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है।

विशेष—उत्तरीय भारत में जाड़े की फसल के साथ इसके बीज बोए जाते हैं। रबी की फसल के साथ इसके दाने भी पक जाते हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। तेल निकाले हुए बीजों की खली भी चौपायों को खिलाई जाती है। इसे दुआँ भी कहते हैं।

तरायल†—वि० [देश०] तेज। वेगवान्। फुर्तीला। त्वरावान्। शीघ्रग। उ०—आगे आगे तरुन तरायले चलत चले।—भूषण ग्रं०, पृ० ७३।

तरारा[1]—संज्ञा पुं० [देश० या अनु० ?] १ उछाल । छलांग । कुलाँच ।

क्रि० प्र० —भरना ।—मारना ।

मुहा०—तरारा भरना = जल्दी जल्दी काम करना । फर्राटे के साथ काम करना । तरारा मारना = डींग हाँकना । बढ़ बढ़कर बातें करना ।

२ पानी की धार जो बराबर किसी वस्तु पर गिरे ।

तरारा(पु)[2]—वि० [फ़ा० तर + हिं० आरा (प्रत्य०)] गीला । सजल । आर्द्र । उ०—आए जब मोहन रँग भरे । क्यों मो नैन तरारे करे ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५२ ।

तरालु—संज्ञा पुं० [सं०] छिछले पेंदे की एक बड़ी नाव [को०] ।

तरावट—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तर + हिं० आवट (प्रत्य०)] १ गीलापन । नमी । २ ठढक । शीतलता । जैसे,—सिर पर पानी पड़ने से तरावट आ गई ।

क्रि० प्र०—आना ।

३. शरीर या चित्त को स्वस्थ करनेवाला शीतल पदार्थ । शरीर की गरमी शांत करनेवाला आहार आदि । ४ स्निग्ध भोजन । जैसे, घी, दूध आदि ।

तराश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ काटने का ढंग । काट । २. काट-छाँट । बनावट । रचनाप्रकार ।

यौ०—तराश खराश ।

३ ढंग । तर्ज । ४ ताश या गंजीफे का वह पत्ता जो ... के बाद हाथ में आवे ।

तराश खराश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] काटछाँट । कतरब्योंत । व

तराशना—क्रि० स० [फ़ा०] काटना । कतरना । कलम कर...

तरास‡[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास' ।

तरास[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तराश] दे० 'तराश' ।

तरासना(पु)†—क्रि० स० [सं० त्रास + ना (प्रत्य०)] भय दिखलाना डराना । त्रस्त करना । उ०—चमक बीजु घन गरजि तरासा । बिरह काल होइ जीव गरासा ।—जायसी (शब्द०) ।

तरासा†[1]—वि० [सं० तृषित] प्यासा ।

तरासा‡[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] प्यास ।

तराहि‡—अव्य० [सं० त्राहि] दे० 'त्राहि' ।

तराहीं†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तरे' ।

तरिंदा—संज्ञा पुं० [हिं० तरना + इंदा (प्रत्य०)] वह पीपा जो समुद्र में किसी स्थान पर लंगर के द्वारा बाँध दिया जाता है और लहरों के ऊपर उतराया रहता है ।—(लश०) ।

विशेष—ये पीपे चट्टान आदि की सूचना के लिये बाँधे जाते हैं और कई आकार प्रकार के होते हैं । इनमें से किसी किसी में घंटा, सीटी आदि भी लगी रहती है ।

तरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका । नाव । २ कपड़ों का पिटारा । ३ कपड़े का छोर । दामन ।

तरिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल में तैरनेवाली लकड़ी । बेड़ा । २. नाव का महसूल लेनेवाला । उतराई लेनेवाला । ३ मल्लाह । केवट । माँझी ।

तरिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव । नौका । २. मक्खन [को०]

तरिका[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली । विद्युत ।

तरिकी—संज्ञा पुं० [सं० तरिकिन्] माँझी । मल्लाह [को०] ।

तरिकौ†—संज्ञा पुं० [सं० ताडङ्क] कान का एक गहना । तरकी । तरौना । उ०—तैं क्त तोरयो हार नौसरि को मोती बगरि रहे सब बन में गयो कान को तरिको ।—सूर (शब्द०) ।

तरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरणी [को०] ।

तरिता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तर्जनी उँगली । २ भाँग । ३ गाँजा ।

तरिता(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित्] बिजली । उ०—झरपै झपै काँपै कहुँ तरिता तरपै पुनि लाल छटा में घिरी ।—पजनेस (शब्द०) ।

तरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तरित्री] बड़ी नाव । नौका । पोत । [को०] ।

तरित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव । नौका [को०] ।

तरिया†—[हिं० तरना] तैरनेवाला ।

तरियाना†—क्रि० स० [हिं० तरे (= नीचे)] १. नीचे कर देना । नीचे डाल देना । तह में बैठा देना । २ ढाँकना । छिपाना । ३ घड़ए के पेंदे में मिट्टी राख आदि पोतना जिससे आँच पर चढ़ाने मे उसमें कालिख न जमे । लेवा लगाना ।

तरियाना[2]—क्रि० अ० तले बैठ जाना । तह में जमना ।

तरियाना[3]—क्रि० स० [फ़ा० तर से नामिक धातु] तर करना । गीला करना ।

तरिवन—संज्ञा पुं० [हिं० ताड़] १ कान का एक गहना । जो फूल के आकार का होता है । तरकी ।

विशेष—इसका वह भाग जो कान के छेद मे रहता है, ताड़ के पत्ते को लपेटकर बनाया जाता है ।

२ कर्णफूल ।

तरिवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तरु + वर] दे० 'तरुवर' ।

तरिहँत +—क्रि० वि० [हिं० तर + अत, हँत (प्रत्य०)] नीचे । तले । उ०—बुधि जो गई दे हिय बौराई । गर्व गयो तरिहँत सिर नाई ।—जायसी (शब्द०) ।

तरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाव । नौका । २. गदा । ३. कपड़ा रखने का पिटारा । पेटी । ४. धुआँ । धूम । ५ कपड़े का छोर । दामन ।

तरी[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ गीलापन । आर्द्रता । २ ठंढक । शीतलता । ३. वह नीची भूमि जहाँ बरसात का पानी बहुत दिनों तक इकट्ठा रहता हो । कछार । ४. तराई । तलहटी । ५. समृद्धि । धनाढ्यता । मालदारी ।

तरी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर(= नीचे)] १. जूते का तला । २. तलछट । तलौंछ ।

तरी ⑤[४]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताड़] कान का एक गहना। तरिवन। कर्णफूल। उ०—काने कनक तरी बर बेसरि सोहहि।—तुलसी (शब्द०)।

तरी[५]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नाल। मृणाल। उ०—जैसे सुंदर कमल को हंस ग्रहण करे तैसे पिता का चरण ग्रहण किया। जैसे कमल के तरे कोमल तरियाँ होती हैं, तिन तरियों सहित कमल को हंस पकड़ता है, तैसे दशरथ जी की अँगुरीन को राम जी ने ग्रहण किया।—योग०, पृ० १३।

तरीक[१]—क्रि० वि० [देश० तड़का, तड़के] प्रात.काल। तड़का। सबेरा। उ०—कहे साहि गोरी गरम ग्रहो षांन ततार। कल्हि तरीक सुउंच दिन चढ़ि अरि सद्धी सार।—पृ० रा०, ६।६३।

तरीक[२]—संज्ञा पुं० [अ० तरीक़] १. मार्ग। रास्ता। शैली। रविश। उ०—वाद चवे हुजरते शेखे शफीक, वाक़िफ़े असरारे हक हादी तरीक।—दक्खिनी०, पृ० २०३। २. परपरा। रिवाज। ३ धर्म। मजहब। ४. युक्ति। तरकीब। ५ नियम। दस्तूर।

तरीकत—संज्ञा स्त्री० [अ० तरीकत] १ आत्मशुद्धि। अंत.शुद्धि। दिल की पवित्रता। २. ब्रह्मज्ञान। अध्यात्म। तसव्वुफ। उ०—यूँ ले निद्रा सुख सपने का जागा कन बैठे, राह तरीकत मारग उनके मुस्तैद होकर उठे।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

तरीका—संज्ञा पुं० [अ० तरीक़ह्] १. ढग। विधि। रीति। प्रकार। ढब। २. चाल। व्यवहार। ३. युक्ति। उपाय। तदबीर। तरकीब।

तरीष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूखा गोबर। २ नौका। नाव। ३ पानी में बहनेवाला तख्ता। बेड़ा। ४. समुद्र। ५. व्यवसाय। ६. स्वर्ग। ७ कुशल व्यक्ति (को०)। ८. सजावट (को०)। ९ सुंदर आकार या आकृति (को०)।

तरीषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या।

तरु[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष। पेड़। २ गति। वेग (को०)। ३ काठ का एक पात्र जिसमें सोम लिया जाता था (को०)। ४. एक प्रकार का चीड़ जिसके पेड़ खसिया की पहाड़ी, चटगाँव और बरमा में होते हैं।

विशेष—इसमें से जो विरोजा या गोंद निकलता है, वह सबसे अच्छा होता है। तारपीन का तेल भी इससे बहुत अच्छा निकलता है।

तरु[२]—वि० रक्षक। रक्षा करनेवाला।

तरुआ[१]—संज्ञा पुं० [देश०] उबाले हुए धान का चावल। भुजिया चावल।

तरुआ[२]—संज्ञा पुं० [हिं० तलवा] दे० 'तलवा'।

तरुटी‡—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'त्रुटि'। उ०—भंडारा समाप्त हो गया। कोई तरुटी नहीं हुई।—मैला०, पृ० ४८।

तरुण[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तरुणी] १ युवा। जवान। २. नया। नूतन।

तरुण[२]—संज्ञा पुं० १. बड़ा जीरा। स्थूल जीरक। २ एरड। रेंड़। ३. कुब्जा का फूल। मोतिया।

तरुणक—संज्ञा पुं० [सं०] अंकुर [को०]।

तरुणज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो सात दिन का हो गया हो।

तरुणतरणि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरुण सूर्य'।

तरुणदधि—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच दिन का दही।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ऐसा दही खाना हानिकारक है।

तरुणपीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

तरुणसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न का सूर्य।

तरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती। उ०—भव अर्णव की तरणी तरुणा। बरसीं तुम नयनों से करुणा।—अर्चना०, पृ० १।

तरुणाई⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + आई (प्रत्य०)] युवावस्था। जवानी।

तरुणाना⑤—क्रि० अ० [सं० तरुण + आना (प्रत्य०)] जवानी पर आना। युवावस्था में प्रवेश करना।

तरुणास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतली लचीली हड्डी।

तरुणिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणिमन्] जवानी [को०]।

तरुणी[१]—वि० स्त्री० [सं०] युवती। जवान स्त्री।

तरुणी[२]—संज्ञा स्त्री० १. युवती। जवान स्त्री।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार १६ वर्ष से लेकर ३२ वर्ष तक की स्त्री को तरुणी कहना चाहिए।

२. घीकुआर। ग्वारपाठा। ३ दंती। जमालगोटा। ४ चीड़ा नामक गंधद्रव्य। ५ कुब्जा का फूल। मोतिया। ६ मेघ राग की एक रागिनी।

तरुणीकटाक्षमाल—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष।

विशेष—कवि समय के अनुसार तिलक का वृक्ष तरुणियों की कटाक्ष दृष्टि से पुष्पित होता है। अतः इसका एक नाम 'तरुणीकटाक्षमाल' है।

तरुतूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

तरुन⑤†—संज्ञा पुं० [सं० तरुण] दे० 'तरुण'।

तरुनई⑤‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरुन+ई (प्रत्य०)] दे० 'तरुनाई'।

तरुना⑤—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तरुण'। उ०—ऐसेँ बिरह बिकल कल बैन। सुनि कै तरुना करुना ऐन।—नंद ग्रं०, पृ० ३२१।

तरुनाई⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + हिं० आई (प्रत्य०)] तरुणावस्था। जवानी।

तरुनापा⑤—संज्ञा पुं० [सं० तरुण + हिं० आपा (प्रत्य०)] युवावस्था। जवानी। उ०—बालापन खेलत में खोयो तरुनापै गरबानो।—सूर (शब्द०)।

तरुनी⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणी] दे० 'तरुणी'। उ०—ब्रज तरुनि रमन आनंदघन चातकी निसद अवभुत अखंडित जगत जानी।—घनानंद, पृ० ३८६।

तरुबाँही⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० तरु + हिं० बाँह] पेड़ की भुजा। शाखा। डाल। उ०—इक संशय फल है तरु माहीं। पाँच कोटि दल हैं तरुबाँही।—सबल मिश्र (शब्द०)।

तरुभुक्—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुक्] बदाक। बाँदा।

तरुभुज—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुक्] दे० 'तरुभुक्'।

तरुराग—संज्ञा पुं० [सं०] नया कोमल पत्ता। किसलय।

तरुराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्पवृक्ष। २. ताड़ का वृक्ष।

तरुरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा।

तरुरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा। बदाक।

तरुवर—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष।

तरुवरियाॅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरवारि] तलवार।

तरुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका लता। पानड़ी।

तरुवासिनी—वि० [सं० तरु + वासिनी] पेड़ पर रहनेवाली। उ०—कूक उठी सहसा तरुवासिनी ! गा तू स्वागत का गाना। किसने तुझको अतर्यामिनि ! बतलाया उसका आना ?—वीणा, पृ० ५८।

तरुसार—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तरुस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा।

तरुट, तरूट—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़। भसींड़। मुरार।

तरेंदा—संज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १. पानी में तैरता हुआ काठ। बेड़ा। २. वह तैरनेवाली वस्तु जिसका सहारा लेकर पार हो सकें। उ०—सिंह तरेंदा जेइ गहा पार भयो तिहि साथ। ते पय बूड़े वारि ही भेंड पूँछ जिन हाथ।—जायसी (शब्द०)।

तरे[1]—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे। तले।

मुहा०—(किसी के) तरे बैठना = (किसी को) पति बनाना।

तरे[2]†—वि० [हिं०] दे० 'तरह'। उ०—खाने की लाज राख्यो तुमसे है सब इलाखो। गलबाहियाँ आनि नाखो रस उस तरे ही चाखो।—ब्रज ग्रं०, पृ० ४४।

तरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० तर + एट (प्रत्य०)] नाभि के नीचे का हिस्सा। पेड़ू।

तरेटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर] पर्वत के नीचे की भूमि। तराई। तरहटी। तलहटी। घाटी।

तरेड़ा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'तरेरा', 'तरारा'।

तरेरना—क्रि० स० [सं० तर्ज (= डाटना) + हिं० हेरना (= देखना)] आँखों को इस प्रकार करना जिससे क्रोध या अप्रसन्नता प्रकट हो। दृष्टि कुपित करना। आँख के इशारे से डाँट बताना। दृष्टि से असम्मति या असतोष प्रकट करना। उ०—सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम।—मानस, १।२७८।

विशेष—कर्म के रूप में इस शब्द के साथ आँख या उसके पर्यायवाची शब्द आते हैं।

तरेरा[1]—संज्ञा [अ० तरारह्] लहरों का थपेड़ा।

तरेरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तरेरना] क्रुद्ध दृष्टि।

तरेस—संज्ञा पुं० [सं० तरु + ईश, या देश०] कल्प वृक्ष। उ०—दड-काल करगा तरेस सी गणेस देत।—रघु० रू०, पृ० २४६।

तरैनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर (= नीचे) + ऐनी (प्रत्य०)] वह पत्थर जो हरिस और हल को मिलाने के लिये दिया जाता है।

तरैयाॅ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरई'।

तरैला—संज्ञा पुं० [हिं० तरे] किसी स्त्री के दूसरे पति का पुत्र।

तरैली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरैनी'।

तरौंचा—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे + औंच (प्रत्य०), या देश०] १ कंघी के नीचे की लकड़ी। २. दे० 'तरौंछ'।

तरौंचा—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)][स्त्री० तरौंची] जुए के नीचे की लकड़ी।

तरौंडा—संज्ञा पुं० [देश०] फसल का उतना अनाज जितना हलवाहे आदि मजदूरों को देने के लिये निकाल दिया जाता है।

तरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई'।

तरोता—संज्ञा पुं० [सं० तरवट] एक लंबा पेड जो मध्यभारत और दक्षिण भारत में पाया जाता है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम मे आती है। इसे 'तखर' भी कहते हैं।

तरोना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरौना'। उ०—प्रभा तरोना लाल की परी कपोलन आनि। कहा छपावत चतुर तिय कत दत छत जानि।—नद० ग्रं०, पृ० ३३५।

तरोवर, तरोवर—संज्ञा पुं० [सं० तरुवर] दे० 'तरुवर'। उ०—रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै गई साँवरे गात। काम तरोवर साँवरी, ब्रज बनिता ही पात।—नद० ग्रं०, पृ० १८६।

तरौंछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + औंछ (प्रत्य०)] तलछट।

तरौंछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + औंछी (प्रत्य०)] १ वह लकड़ी जो हत्थे में नीचे की तरफ लगी रहती है। (जुलाहे)। २. बैलगाड़ी में लगी हुई वह लकड़ी जो धुजावा के नीचे रहती है।

तरौंटा—संज्ञा पुं० [हिं० तर + पाट] आटा पीसने की चक्की का नीचेवाला पाट। जाँते के नीचे का पत्थर।

तरौंता—संज्ञा पुं० [हिं० तर + औंता (प्रत्य०)] छाजन मे वे लकड़ियाँ जो ठाठ के नीचे दी जाती हैं।

तरौंस†—संज्ञा पुं० [हिं० तर + औंस (प्रत्य०)] तट। तीर। किनारा। उ०—स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा तीर। अँसुवनि करति तरौंस को छिनक खरौंहो नीर।—बिहारी (शब्द०)।

तरौना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ताड + बना] १ कान में पहनने का एक गहना जो फूल के आकार का गोल होता है। तरकी। (इसका वह अंश जो कान के छेद में रहता है, ताड़ के पत्ते को गोल लपेटकर बनाया जाता है)।

विशेष—दे० 'तरकी', 'ताडक'।

२ कर्णफूल नाम का आभूषण। उ०—लसत सेत सारी ढक्यो तरल तरौना कान।—बिहारी (शब्द०)।

तरौना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)] वह मोढ़ा जिसपर मिठाई का खोंचा रखा जाता है।

तर्क[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी वस्तु के विषय में अज्ञात तत्व को ...ति द्वारा निश्चित करनेवाली उक्ति या विचार। ...क। विवेचना। दलील।

विशेष—तर्क न्याय के सोलह पदार्थों (विषयों) में से एक है। जब किसी वस्तु के संबंध मे वास्तविक तत्व ज्ञात नहीं होता, तब उस तत्व के ज्ञानार्थ (किसी निगमन के पक्ष में) कुछ हेतुपूर्ण युक्ति दी जाती है जिसमें विरुद्ध निगमन की अनुपपत्ति भी दिखाई जाती है। ऐसी युक्ति को तर्क कहते हैं। तर्क में शंका का होना भी आवश्यक है, क्योंकि जब यह शंका होगी कि बात ऐसी है या वैसी, तभी वह हेतुपूर्ण युक्ति दी जायगी जिसमें यह निरूपित किया जायगा कि बात का ऐसा होना ही ठीक है वैसा नहीं। जैसे, शंका यह है कि आत्मा नित्य है या अनित्य। यहाँ आत्मा का यथार्थ रूप ज्ञात नहीं है। उसका यथार्थ रूप निश्चित करने के लिये हम इस प्रकार विवेचना करते हैं,—यदि आत्मा अनित्य होती तो अपने कर्म का फल न प्राप्त कर सकती और उसका आवागमन या मोक्ष न हो सकता। पर इन सब बातों का होना प्रसिद्ध ही है। अतः आत्मा नित्य है, ऐसा मानना ही पड़ता है।

२ चमत्कारपूर्ण उक्ति। चुहल की बात। चोज की बात। चतुराई से भरी बात। उ०—प्यारी को मुख धोइके पट पोंछि सँवारयो। तरक बात बहुतै कही कुछ सुधि न सँभारयो।—सुर (शब्द०)। ३ व्यंग्य। ताना। उ०—ऐ सब तर्क बोलिहैं मोकों तासों बहुत डेराऊँ।—सुर (शब्द०) ४ धारणा। अनुमान (को०)। ५ विचार। विचारणा। ऊहा। वितर्क (को०)। ६ शुद्ध या स्वतंत्र चिंतन के आधार पर स्थापित विचार व्यवस्था (को०)। ७ छह की संख्या (को०)। ८ कारण (को०)। ९ इच्छा। आकांक्षा (को०)। १० न्यायशास्त्र (को०)। ११ ज्ञान (को०)। १२ अर्थवाद (को०)।

यौ०—तर्कशील = तर्क में प्रवीण। तार्किक। तर्क करनेवाला। उ०—प्राचीन हिंदू बड़े तर्कशील थे।—हिंदु० सभ्यता पृ० ९२।

तर्क[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १ त्याग। छोड़ना। २ छूटना।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—तर्कअदब = अशिष्टता। असभ्यता। तर्केदुनिया = साधु या फकीर हो जाना।

तर्कक—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क करनेवाला। तर्कशास्त्री। तार्किक। २ याचक। मँगता।

तर्कण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्कणीय, तर्क्य] तर्क करने की क्रिया। बहस करने का काम।

तर्कणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार। विवेचना। ऊहा। २. युक्ति। दलील।

तर्कना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कणा] दे० 'तर्कणा'।

तर्कना†(पु)[2]—क्रि० अ० [सं० तर्क + ना (प्रत्य०)] तर्क करना।

तर्कना(पु)[3]—क्रि० अ० [हिं०] उछलना। कूदना।

तर्कमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा।

तर्कवितर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊहापोह। विवेचना। सोच विचार। २ वाद विवाद। बहस।

क्रि० प्र०—करना।

तर्कविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्कशास्त्र। (को०)।

तर्कश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] तीर रखने का चोंगा। भाथा। तूणीर।

तर्कशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह शास्त्र जिसमें ठीक तर्क या विवेचना करने के नियम आदि निरूपित हों। सिद्धांतों के खंडन मंडन की शैली बतानेवाली विद्या। २ न्याय शास्त्र।

तर्कस—संज्ञा पुं० [फ़ा० तरकश] दे० 'तर्कश'।

तर्कसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तरकश] छोटा तरकश।

तर्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्क (को०)।

तर्काट—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षुक। याचक (को०)।

तर्कातीत—वि० [सं०] तर्क से परे। उ०—तर्कातीत श्रद्धा से हटकर एक बुद्धिसंगत, लौकिक, मानववादी नैतिक बोध का रूप लिया।—नदी०, पृ० १०१।

तर्काभास—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तर्क जो ठीक न हो। कुतर्क।

तर्कारी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अँगेथू का वृक्ष। अरणी वृक्ष। २ जैत का पेड़।

तर्कारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरकारी'।

तर्किण—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड। पँवार।

तर्किल—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़। पँवार।

तर्की[1]—संज्ञा पुं० [सं० तर्किन्] [स्त्री० तर्किनी] तर्क करनेवाला।

तर्की[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] टरकी। पक्षी।

तर्की†[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरकी'।

तर्कीब—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरकीब] दे० 'तरकीब'।

तर्कु—संज्ञा पुं० [सं०] तकला। टेकुआ।

यौ०—तर्कुशाण = सान धरने का पत्थर।

तर्कुक—वि० [सं०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी (को०)।

तर्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] कातना (को०)।

तर्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तकला। टेकुआ। २ कातना (को०)।

तर्कुपिंड, तर्कुपीठ, तर्कुपीठी—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुपिण्ड] तकले की फिरकी।

तर्कुल—संज्ञा पुं० [सं० ताड + कुल] १ ताड़ का पेड़। २ ताड़ का फल।

तर्क्य—वि० [सं०] जिसपर कुछ सोच विचार करना आवश्यक हो। विचार्य। चिंत्य।

तर्क्षु—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदुआ या चीता नामक जंतु।

तर्क्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार नमक।

तर्गश—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तर्कश'। उ०—ना तर्गश न धव खडो नीं सिपर तलवारि।—प्राण०, पृ० २८९।

तर्ज—संज्ञा पुं०, स्त्री० [अ० तर्ज़] १ प्रकार। किस्म। तरह। २ रीति। शैली। ढंग। ढब। जैसे, बातचीत करने का तर्ज। जैसे,—इस छींट का तर्ज अच्छा नहीं है।

तर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्जित] १. धमकाने का कार्य। भयप्रदर्शन। २. क्रोध। ३. तिरस्कार। फटकार। डाँट डपट।

यौ०—तर्जन गर्जन = डाँट फटकार। क्रोधप्रदर्शन।

तर्जना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तर्जन' (को०)।

तर्जना[2]—क्रि० प्र० [सं० तर्जन] डाँटना। धमकाना। झपटना।

तर्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगूठे के पास की उँगली। अँगूठे और मध्यमा के बीच की उँगली। प्रदेशिनी। उ०—इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तर्जनी देखि मरि जाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसी उँगली से किसी वस्तु की ओर दिखाते या इशारा करते हैं।

तर्जनीमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा जिसमें बाएँ हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी और मध्यमा को फैलाते हैं।

तर्जिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम। ताजिक देश।

तर्जित—वि० [सं०] १. डाँटा या फटकारा हुआ। धमकाया हुआ। २ अपमानित। तिरस्कृत (को०)।

तर्जुमा—संज्ञा पुं० [अ०] भाषांतर। उल्था। अनुवाद।

तर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का बछड़ा। बछवा।

तर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुरत जन्मा हुआ गाय का बछड़ा। २ शिशु। बच्चा।

तर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरणि'।

तर्तरीक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] नाव।

तर्तरीक[2]—वि० १. पार जानेवाला। २ पार ले जानेवाला (को०)।

तर्द—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई (को०)।

तर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पणीय, तर्पित, तर्पी] १. तृप्त करने की क्रिया। संतुष्ट करने का कार्य। २. कर्मकांड की एक क्रिया जिसमें देव, ऋषि और पितरों को तुष्ट करने के लिये हाथ या अरघे से पानी देते हैं।

विशेष—मध्याह्न स्नान के पीछे तर्पण करने का विधान है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ यज्ञ की अग्नि का ईंधन (को०)। ४. भोजन। आहार (को०)। ५ आँख में तेल डालना (को०)।

तर्पणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खिरनी का वृक्ष। २. गंगा नदी।

तर्पणी[2]—वि० तृप्ति देनेवाली।

तर्पणीय—वि० [सं०] तृप्ति के योग्य।

तर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मचारिणी लता। स्थल कमलिनी। स्थलपद्म।

तर्पणेच्छु[1]—वि० [सं०] १ तर्पण करने की इच्छा। २ तर्पण कराने की इच्छा (को०)।

तर्पणेच्छु[2]—संज्ञा पुं० भीष्म (को०)।

तर्पित—वि० [सं०] तृप्त किया हुआ। संतुष्ट किया हुआ।

तर्पी—वि० [सं० तर्पिन्] [वि० स्त्री० तर्पिणी] १ तृप्त करनेवाला। संतुष्ट करनेवाला। २ तर्पण करनेवाला।

तर्फ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरफ'। उ०—क्या हुआ यार छिप गया किस तर्फ। इक झलक ही मुझे दिखा करके।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २२०।

तर्बट—संज्ञा पुं० [सं०] १ चकवँड़। पँवार। २ चाद्र वत्सर। वर्ष।

तर्बियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] शिक्षा दीक्षा। उ०—आप ही की तालीम और तर्बियत का यह असर है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ९१।

तर्बूज—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरबूज'।

तर्यौना(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरौना'।

तर्यौना(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० तरौना] दे० 'तरौना'। उ०—अजौ तरयौना ही रह्यो श्रुति सेवत इक रंग। नाक बास बेसरि लह्यो बसि मुकुतनि कै संग।—बिहारी र०, दो० २०।

तर्रा—संज्ञा पुं० [देश०] चाबुक का फीता या डोरी जो छड़ी में बँधी रहती है।

तर्राना—संज्ञा पुं० [फ़ा० तरानह्] एक प्रकार का गाना। दे० 'तराना'

तर्राना†[2]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'चर्राना'।

तर्री—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे भैंसें बड़े प्रेम से खाती हैं।

तर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिलाषा। २ तृष्णा। असंतोष। उ०—देव शोक संदेह भय हर्ष तम तर्ष गन साधु सद्युक्ति विच्छेदनकारी।—तुलसी (शब्द०)। ३. बेड़ा। ४. समुद्र। ५ सूर्य।

तर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] कफ का एक भेद।—माधव०, पृ० ५८।

तर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्षित] १ पिपासा। प्यास। २ अभिलाषा। इच्छा।

तर्षित—वि० [सं०] १ प्यासा। २. जो लालसा किए हो। इच्छुक।

तर्षुल—वि० [सं०] दे० 'तर्षित' (को०)।

तर्स—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरस'। उ०—तर्स है यह देर से, आँखें पड़ी श्रृंगार में।—बेला, पृ० ६७।

तर्ह—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तरह'।

यौ०—तर्ह अदाज = तर्ह अफगन = नींव डालनेवाला। बुनियाद रखनेवाला।

तर्हदारी—संज्ञा स्त्री०[अ० तरह+फ़ा० दारी(प्रत्य०)] १. बाँकापन। छबीलापन। साजसज्जा। २ हाव भाव। नाज नखरा। ३. हुस्न। सौंदर्य। उ०—है नई सजावट नई तर्हदारी है। सच कहो किससे आजकल नई यारी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६४।

तर्हे(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० तर्ह] दे० 'तरह'। उ०—फाणी पड़त घरो पाव बहोत तर्हे से मनाव।—दक्खिनी०, पृ० ४६।

तल—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का भाग। २. पेंदा। तला। ३. जल के नीचे की भूमि। ४ वह स्थान जो किसी वस्तु के नीचे पड़ता हो। जैसे, तरुतल।

मुहा०—तल करना = नीचे दबा लेना। छिपा लेना।—(जुआरी)।

५ पैर का तलवा। ६ हथेली। ७ चपत। थप्पड़। ८ किसी वस्तु का बाहरी फैलाव। बाह्य विस्तार। पृष्ठदेश। सतह। जैसे,—भूतल, धरातल, समतल। ९. स्वरूप। स्वभाव। १०.

कानन । जंगल । ११ गड्ढा । गड्हा । १२. चमड़े का बल्ला जो धनुष की डोरी की रगड बचाने के लिये बाईं बाँह में पहना जाता है । १३. घर की छत । पाटन । जैसे, चार तला मकान । १४ ताड़ का पेड । १५. मुठिया । मूठ । दस्ता । १६ बाएँ हाथ से वीणा बजाने की क्रिया । १७. गोधा । गोह । १८ कलाई । पहुँचा । १९ बालिश्त । बित्ता । २० आधार । सहारा । २१. महादेव । २२ सप्त पातालों मे से पहला । २३ एक नरक का नाम । २४ उद्देश्य (को०) । २५. मूल । कारण (को०) । २६ ताल । तलाव (को०) ।

तलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताल । पोखरा । २ एक फल का नाम ३. सिगड़ी । अँगीठी (को०) ।

तलक‡²—अव्य० [हिं० तक] तक । पर्यंत ।

तलकर—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर या लगान जो जमींदार ताल की वस्तुओं (जैसे, सिंघाड़ा, मछली आदि) पर लगाता है ।

तलकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ ।

विशेष—यह पंजाब, अवध, बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में होता है । इसकी लकडी ललाई लिए भूरी होता है और खेती के सामान बनाने तथा मकानों मे लगाने के काम में आती है ।

तलकीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तल्क़ीन] १ शिक्षा । उपदेश । २ दीक्षा देना । गुरुमंत्र देना । पीर का मुरीद को अमल आदि पढ़ाना (को०) ।

तलख—वि० [फ़ा० तल्ख़] १ कड़ुआ । अप्रिय । २ अरुचिकर । नागवार । उ०—तेरी जैसी राक्षसिन के हाथ में पड़कर जिंदगी तलख हो गई ।—गोदान, पृ० ५७ ।

तलखी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तल्ख़ी] कड़वाहट । कटुता । कड़ुवापन । उ०—हिज्र की तलखी नहीं है जिसमे तलख जिंदगानी वह है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६९ ।

तलग(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तलक', 'तक' । उ०—तूँ आये तलग अक्ल ते कर इलाज । चलाउँगी में सब तेरा मुल्को राज ।—दक्खिनी०, पृ० १४५ ।

तलगू—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलंग] तैलंग देश की भाषा । तेलगू भाषा ।

तलघरा—संज्ञा पुं० [सं० तल + हिं० घर] तहखाना ।

तलछट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तल + छँटना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ के नीचे बैठी हुई मैल । तलौंछ । गाद ।

तलछत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट' । उ०—तिमि उडत कोट पब्बै सहित दल बब्बै तलछत परे ।—हम्मीर०, पृ० ४३ ।

तलठी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट' । उ०—तिल तिल भार कबीर लए तलठी भारे लोग ।—कबीर० म०, पृ० ३२५ ।

तलत्र, तलत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्धर का दस्ताना (को०) ।

तलना—क्रि० स० [सं० तरण (=तिराना)] कड़कड़ाते हुए घी या तेल में डालकर पकाना । जैसे, पापड़ तलना, घुँघनी तलना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

विशेष—भावप्रकाश में 'घी में भुना हुआ' के अर्थ में 'तलित' शब्द आया है, पर वह संस्कृत नहीं जान पड़ता ।

तलप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तल्प] दे० 'तल्प' । उ०—तुम जानकी, जनकपुर जाहु । कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहबर बन दुख-सिंधु अथाहु । तजि वह जनक राज भोजन सुख, कत तृन-तलप, बिपिन फल खाहु ।—सूर०, ९ । ३४ ।

तलपट—वि० [देश०] नाश । बरबाद । चौपट ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तलपट²—संज्ञा पुं० [सं०] कोठा । आयव्यय फलक ।

तलपत्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] बिछौने की चादर । उ०—हरि मग्गहि हरनछ्छ करहि तलपत्त पत्त धर ।—पृ० रा०, २ । ३०८ ।

तलपना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तलफना' । उ०—तलपन लागे प्रान नगल ते छिनहु होहु जो न्यारे ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३३ ।

तलफ—वि० [अ० तलफ़] नष्ट । बर्बाद ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—मुहर्रिर तलफ ।

तलफना—क्रि० अ० [हिं० तड़पना अथवा अनु०] १ कष्ट या पीड़ा से अंग टपकना । छटपटाना । २ व्याकुल होना । बेचैन होना । विकल होना ।

तलफाना—क्रि० स० [अनु०] तड़पाना ।

तलफी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तलफ़ी] १. खराबी । बरबादी । नाश । २ हानि ।

यौ०—हक तलफी = स्वत्व का मारा जाना ।

तलफ्फुज—संज्ञा पुं० [अ० तलफ़्फ़ुज़] उच्चारण (को०) ।

तलब—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. खोज । तलाश । २. चाह । पाने की इच्छा । ३. आवश्यकता । माँग ।

मुहा०—तलब करना = माँगना या मँगाना ।

४ बुलावा । बुलाहट ।

मुहा०—तलब करना = बुला भेजना । पास बुलाना ।

५ तनखाह । वेतन ।

क्रि० प्र०—खाना ।—चुकाना ।—देना ।—पाना । मिलना । —लेना ।—माँगना ।—चाहना ।

तलबगार—वि० [फ़ा०] चाहनेवाला । माँगनेवाला ।

तलबदार—वि० [फ़ा०] चाहनेवाला ।

तलबदास्त—संज्ञा पुं० [अ० तलब + फ़ा० दास्त] समन ।

तलबनामा—संज्ञा पुं० [अ० तलब+फ़ा० नामह्] समन । अदालत मे उपस्थित होने का लिखित आज्ञापत्र ।

तलबाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० तलबानह्] १ वह खर्च जो गवाहों को तलब करने के लिये टिकट के रूप में अदालत मे दाखिल किया जाता है । २ वह खर्च जो मालगुजारी समय पर न जमा करने पर जमींदार से दंड के रूप मे लिया जाता है ।

विशेष—चपरासियों को खाने पीने आदि के लिये जो भेंट या खर्च जमींदार देते हैं, उसको भी तलबाना कहते हैं।

तलबी—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ तलब + फ़ा॰ ई (प्रत्य॰)] १. बुलाहट। २. माँग।

क्रि॰ प्र॰—होना।

तलबेली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तलफना] किसी वस्तु के लिये आतुरता या बेचैनी। छटपटी। घोर उत्कंठा। उ॰—काम्ह उठे अति प्रात ही तलबेली लागी। प्रिया प्रेम के रस भरे रति अंतर खागी।—सूर (शब्द॰)

तलमल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तलछट। तरौंछ। गाद।

तलमलाना†[1]—क्रि॰ अ॰ [देश॰] तड़फड़ाना। तड़पना। बेचैन होना।

तलमलाना†[2]—क्रि॰ अ॰ दे॰ 'तिलमिलाना'।

तलमलाहट[1]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] व्याकुलता। तड़पने का भाव। बेचैनी।

तलमलाहट[2]—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ 'तिलमिलाहट'।

तलमाना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'तलमलाना'।—(क्व॰)। उ॰—लगे दिवस कई वेग पाया न आन, थी जान उसकी भोर लगी तलमान।—दक्खिनी॰, पृ॰ ८७

तलव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गानेवाला।

तलवकार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. सामवेद की एक शाखा। २ एक उपनिषद् का नाम।

तलवा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तल] पैर के नीचे का भाग जो चलने या खड़े होने में जमीन पर पड़ता है। पैर के नीचे की ओर का वह भाग जो एँड़ी और पंजों के बीच मे होता है। पादतल।

मुहा॰—तलवा खुजलाना=तलवे में खुजली होना जिससे यात्रा का शकुन समझा जाता है। तलवे चाटना=बहुत खुशामद करना। अत्यत सेवा शुश्रूषा में लगा रहना। तलवे छलनी होना=चलते चलते पैर घिस जाना। चलते चलते शिथिल हो जाना। बहुत दौड़ धूप की नौबत आना। तलवे तले आँखें मलना=दे॰ 'तलवों से आँखें मलना'। तलवों तले मेटना=कुचलकर नष्ट करना। रौंद डालना।-(स्त्रि॰)। तलवे धो धोकर पीना=अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। अत्यत श्रद्धा भक्ति प्रकट करना। अत्यत प्रेम प्रकट करना। तलवा न टिकना=पैर न टिकना। जमकर बैठा न रहा जाना। आसन न जमाना। एक जगह कुछ देर बैठे न रहा जाना। तलवा न भरना=दे॰ 'तलवा न टिकना'।—(स्त्रि॰)। तलवों से आँखें मलना=(१) अत्यत दीनता प्रकट करना। बहुत अधिक अधीनता दिखाना। (२) अत्यत प्रेम प्रकट करना। (३) दे॰ 'तलवों तले मेटना'। तलवों से आग लगना=क्रोध से शरीर भस्म होना। अत्यत क्रोध चढ़ना। तलवों से मलना=पैर से कुचलना। रौंदना। कुचलकर नष्ट करना। तलवों से लगना=(१) क्रोध चढ़ना। (२) बुरा लगना। अत्यत अप्रिय लगना। कुढ़न होना। चिढ़ होना। तलवों से लगना, सिर मे जाकर बुझना=सिर से पैर तक क्रोध चढ़ना। क्रोध से शरीर भस्म होना। तलवे सहलाना=(१) अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। (२) बहुत खुशामद करना।

तलवार—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तरवारि] लोहे का एक लंबा धारदार हथियार जिसके आघात से वस्तुएँ कट जाती हैं। खड्ग। असि। कृपाण।

पर्या॰—असि। विशसन। खड्ग। तीक्ष्णवर्मा। दुरासद। श्रीगर्भ। विजय। धर्मपाल। धर्ममार। निस्त्रिंश। चंद्रहास। रिष्टि। करवाल। कौक्षेयक। कृपाण।

क्रि॰ प्र॰—चलना। —चलाना। —मारना। —लगना।—लगाना।—करना।

मुहा॰—तलवार करना=तलवार चलाना। तलवार का वार करना। तलवार कसाना=तलवार झुकाना। तलवार का खेत=लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र। तलवार का घाट=तलवार में वह स्थान जहाँ से उसका टेढ़ापन आरंभ होता है। तलवार का छाला=तलवार के फल मे उभरा हुआ दाग। तलवार का डोरा=तलवार की धार जो पतले सूत की तरह दिखाई देती है। तलवार का पट्ठा=तलवार की चौड़ी धार। तलवार का पानी=तलवार की आभा या दमक। तलवार का फल=मूठ के अतिरिक्त तलवार का सारा भाग। तलवार का बल=तलवार का टेढ़ापन। तलवार का मुँह=तलवार की धार। तलवार का हाथ=(१) तलवार चलाने का ढग। (२) तलवार का वार। खड्ग का आघात। तलवार की आँच=तलवार की चोट का सामना। तलवार की माला=तलवार का वह जोड जो दुवाले से कुछ दूर पर होता है। तलवारों की छाँह में=ऐसे स्थान में जहाँ अपने ऊपर चारो ओर तलवार ही तलवार दिखाई देती हो। रणक्षेत्र में। तलवार के घाट उतरना=लड़ते लड़ते मर जाना। तलवार के घाट उतारा जाना=मारा जाना। वीरगति पाना। उ॰—ल्हासा मे बहुत से लामा और विद्वान् तलवार के घाट उतारे गए हैं।—किन्नर॰, पृ॰ ९१। तलवार खींचना=म्यान से तलवार बाहर करना। तलवार जड़ना=तलवार मारना। तलवार से आघात करना। तलवार तौलना=तलवार को हाथ में लेकर अंदाज करना जिससे वार भरपूर बैठे। तलवार सँभालना। तलवार पर हाथ रखना=(१) तलवार निकालने के लिये तैयार होना। (२) तलवार की शपथ होना। तलवार बाँधना=तलवार को कमर में लटकाना। तलवार साथ में रखना। तलवार सौंतना=तलवार म्यान से निकालना। वार करने के लिये तलवार खींचना।

विशेष—तलवार का व्यवहार सब देशों में अत्यंत प्राचीन काल से होता आया है। धनुर्वेद आदि ग्रथों को देखने से जाना जाता है कि भारतवर्ष में पहले बहुत अच्छी तलवारें बनती थीं जिनसे पत्थर तक कट सकता था। प्राचीन काल में खट्टर देश, अग, वंग, मध्यग्राम, सह्यग्राम, कालिंजर इत्यादि स्थान खड्ग के लिये प्रसिद्ध थे। ग्रथों में लोहे की उपयुक्तता, खड्गों के विविध परिमाण तथा उनके बनाने का विधान भी

दिया हुआ है। पानी देने के लिये लिखा है कि धार पर नमक या क्षार मिली गीली मिट्टी का लेप करके तलवार को आग में तपावे और फिर पानी मे बुझा दे। उशना और शुक्राचार्य ने पानी के अतिरिक्त रक्त, घृत, ऊँट के दूध आदि में बुझाने का भी विधान बतलाया है। तलवार की झनकार (ध्वनि) तथा फल पर आपसे आप पड़े हुए चिह्नों के अनुसार तलवार के शुभ, अशुभ या अच्छे बुरे होने का निर्णय किया गया है। ऐसे निर्णय के लिये जो परीक्षा की जाती है, उसे अष्टांग परीक्षा कहते हैं। तलवार चलाने के हाथ ३२ गिनाए गए हैं। जिनके नाम ये हैं—भ्रांत, उद्भ्रांत, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, संपात, समुदीर्ण, निग्रह, प्रग्रह, पदावकर्षण, संधान, मस्तक भ्रामण, भुज भ्रामण, पाश, पाद, विबंध, भूमि, उद्भ्रमण, गति, प्रत्यागति, आक्षेप, पातन, उत्थानक-प्लुति, लघुता, सौष्ठव, शोभा, स्थैर्य, दृढ़मुष्टिता, तिर्यक् प्रचार और ऊर्ध्व प्रचार। इसी प्रकार पट्टिक, मौष्टिक, महिपाल आदि तलवार के १७ भेद भी बतलाए गए हैं। आजकल भी तलवारों के कई भेद होते हैं, जैसे खाँड़ा, जो सीधा और छोर पर चौड़ा होता है, सैफ, जो लंबी पतली और सीधी होती है, दुधारा, जिसके दोनों ओर धार होती है। इसके अतिरिक्त स्थानभेद से भी तलवारों के कई नाम हैं। जैसे, सिरोही, बँवरी, जुनूनी इत्यादि। एक प्रकार की बहुत पतली और लचीली तलवार ऊना कहलाती है जिसे राजा तकिए में रख सकते या कमर मे लपेट सकते हैं। तलवार दुर्गा का प्रधान अस्त्र है, इसी से कभी कभी तलवार को दुर्गा भी कहते हैं।

तलवारण—[सं॰] तलवार। असि [को॰]।

तलवारिया—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] तलवार चलाने में निपुण व्यक्ति।

तलवारी—वि॰ [हिं॰ तलवार] तलवार संबंधी।

तलहटी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तल+घट्ट] पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ की तराई।

तलहट्टी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तलहटी'। उ॰—तलहट्टी सुरताण, रहे जोधाण महल्ले। भजन प्राग तप अकल।

तलहा—वि॰ [हिं॰ ताल] १ ताल संबंधी। ताल का या ताल में होनेवाला।

तलही—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ताल+ही (प्रत्य॰)] ताल में रहनेवाली चिड़िया। उ॰—कोउ तलही, मुर्गाबी कोऊ कराकुल मारे।—प्रेमघन॰, पृ॰ २६।

तलांगुलि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तलाङ्गुलि] पैर का अँगूठा [को॰]।

तला[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तल] १ किसी वस्तु के नीचे की सतह। पेंदा। २. जूते के नीचे का चमड़ा जो जमीन पर रहता है।

तला[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'तलत्राण' [को॰]।

तला[3]—वि॰ [सं॰ तम] दे॰ 'तल्ला'।

तलाई[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ताल] छोटा ताल। तलैया। बावली।

तलाई[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ √तल+आई (प्रत्य॰)] तलने की क्रिया या भाव।

तलाई[3]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तलाना] १. तलाने का भाव। २. तलाने की मजदूरी।

तलाउ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तलाव'।

तलाक—संज्ञा पुं॰ [अ॰ तलाक़] पति पत्नी का विधानपूर्वक संबंधत्याग।

क्रि॰ प्र॰—देना।

तलाची—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] चटाई।

तलातल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सात पातालों में से एक पाताल का नाम।

तलाफी—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ तलाफ़ी] क्षतिपूर्ति। हानि की पूर्ति। नुकसान का बदला। तदारुक [को॰]।

तलाब†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तालाब'।

तलाबेली(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तलबेली'।

तलामली[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तलाबेली'।

तलामली[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तलमल'। उ॰—दिन पहाड़ सा मालूम होने लगा खासकर डाक की बड़ी तलामली लग रही थी।—श्रीनिवास ग्रं॰, पृ॰ १८१।

तलाया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ताल] तलैया। तलाई। उ॰—कहँ तलायाँ गोठ जुरे जहँ चक्कवे। परची विश्व है आछु काम है सक्कवे।—राम॰ धर्म॰, पृ॰ २८२।

तलार(पु)—वि॰ [सं॰ तल+हिं॰ आर (प्रत्य॰)] दे॰ 'तलहार'। उ॰—वे पानी में सूँ जो निकसे भार। रखे हैं जो पत्थर हुआँ उस तलार।—दक्खिनी॰, पृ॰ ३३७।

तलार(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्थल (=तल)+रक्षक] नगररक्षक। - - ार।

तलार- [illegible] पुं॰ [हिं॰] नगररक्षक अधिकारी या कोतवाल। उ॰—प्राचीन शिलालेखों तथा पुस्तकों में तलारक्ष और तलार शब्द नगररक्षक अधिकारी (कोतवाल) के अर्थ में प्रयुक्त किए जाते थे। सोड्ढल रचित 'उदयसुंदरी कथा' मे एक राक्षस का वर्णन करते हुए लिखा है कि घृणा उत्पन्न करनेवाले उसके रूप के कारण वह नरक नगर के तलार के समान था।—राज॰ इति॰, पृ॰ ४५६।

तलाव[1]†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तड़ाग>प्रा॰ तलाअ>तलाव, या सं॰ तल्ल] वह लंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें सामन्यत. बरसात का पानी जमा रहता है। ताल। तालाब। पोखरा। उ॰—सिमिटि सिमिटि जल भरइ तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पँह आवा।—तुलसी (शब्द॰)।

मुहा॰—तलाव जाना = शौच जाना। पाखाने जाना।

तलाव[2]†—वि॰ [हिं॰ तलना] तला हुआ। जैसे, तलाव हींग।

तलाव[3]—संज्ञा पुं॰ तलने की क्रिया या भाव।

तलावड़ी(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तड़ाग, तड़ागिका, प्रा॰ तलाग, तलाइया, तलाय, तलाई, तलाव+ड़ी (प्रत्य॰)] दे॰ 'तलैया'। उ॰—जोबण फट्टि तलावड़ी, पालि न बंधइ कोइ।—ढोला॰, दू॰ १२२।

तलावरी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तलाव+री (='ड़ी' प्रत्य॰)] तलाई। छोटा ताल। उ॰—ताल तलावरि बरनि न जाहीं। सूझै वारपार तेन्ह नाहीं।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ १४१।

तलाश—संज्ञा स्त्री॰ [तु॰] १. खोज। ढूँढ़ढाँढ़। अन्वेषण। अनुसंधान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. आवश्यकता। चाह।

क्रि० प्र०—होना।

तलाशना‡—क्रि० स० [फा० तलाश+हिं० ना (प्रत्य०)] ढूँढ़ना। खोजना।

तलाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

तलाशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गुम की हुई या छिपाई हुई वस्तु को पाने के लिये घर बार, चीज, वस्तु आदि की देखभाल। जैसे—पुलिस ने घर की तलाशी ली, तब बहुत सी चोरी की चीजें निकलीं।

मुहा०—तलाशी देना=गुम या छिपाई हुई वस्तु को निकालने के लिये संदेह करनेवाले को अपना घर बार, कपड़ा लत्ता आदि ढूँढ़ने देना। तलाशी लेना=गुम या छिपाई वस्तु को निकालने के लिये ऐसे मनुष्य के घर बार आदि की देखभाल करना जिस पर उस वस्तु को छिपाने या गुम करने का संदेह हो।

तलास†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तलाश] दे० 'तलाश'। उ०—तुलसी बिना तलास आस अग ना लगी। हिंदू तुरक पै जबर लाय जम की जो जगी।—तुरसी श०, पृ० १४३।

तलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तोबड़ा। २. तंग (को०)।

तलित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तडित्' [को०]।

तलित¹—संज्ञा पुं० [सं०] भुना हुआ मांस [को०]।

तलित²—वि० घी या चिकने के साथ भुना हुआ। तला हुआ।

विशेष—यह शब्द संस्कृत नहीं जान पड़ता, संस्कृत ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। केवल भावप्रकाश में भुने हुए मांस के लिये आया है।

तलित³—वि० तल युक्त [को०]।

तलिन—वि० [सं०] १. दुबला। क्षीण। दुर्बल।

यौ०—तलिनोदरी=क्षीण कटिवाली स्त्री।

२ विरल। छितराया हुआ। अलग अलग। ३ थोड़ा। कम। ४ साफ। स्वच्छ। शुद्ध। ५ नीचे या तल में स्थित (को०)। ६ आच्छादित। ढका हुआ (को०)।

तलिन²—संज्ञा स्त्री० [सं०] शय्या। सेज। पलँग।

तलिम—संज्ञा पुं०[सं०] १. छत। पाटन। २ शय्या। पलँग। ३. खड्ग। ४ चँदवा। ५ बड़ी छुरी या छुरा (को०)। ६. जमीन का पक्का फर्श (को०)।

तलिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] समुद्र की थाह।—(डिं०)।

तलिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल] छोटा तालाब। उ०—मानसरोवर की कथा बकुला का जानै। उनके चित तलिया बसे, कहो कैसे मानै।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४।

तलियार(पु)—संज्ञा पुं० [देशी] कोतवाल। नगररक्षक।

तली—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] १. किसी वस्तु के नीचे की सतह। पेंदी। २ तलछट। तलौंछ। †३ पैर की एड़ी। †४. विवाह में वर वधू के आसन के नीचे रखा हुआ रुपया पैसा।

तलीचरैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल+चरैया (=चरनेवाला)] एक पक्षीविशेष। उ०—धोबइन, तलीचरैया, कौड़ैनी, चवा इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३०।

तलुआ¹‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे०० 'तलवा'।

तलुआ²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तालू'।

तलुन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु। २. युवा पुरुष।

तलुन²—वि० [वि०स्त्री० तलुनी] युवा। तरुण [को०]।

तलुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती। तरुणी [को०]।

तले—क्रि० वि०[सं० तल]नीचे। ऊपर का उलटा। जैसे, पेड़ के तले।

मुहा०—तले ऊपर=(१) एक के ऊपर दूसरा। जैसे,–किताबों को तले ऊपर रख दो। (२) नीचे की वस्तु ऊपर और ऊपर की वस्तु नीचे। उलट पलट किया हुआ। गड्ड मड्ड। जैसे,—सब कागज लगाकर रखे हुए थे; तुमने तले ऊपर कर दिए। तले ऊपर के=आगे पीछे के। ऐसे दो जिनमें से एक दूसरे के उपरांत हुआ हो। जैसे,—ये तले ऊपर के लड़के हैं। इसी से लड़ा करते हैं।—(स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसे लड़कों में नहीं बनती।)। तले ऊपर होना=(१) उलट पुलट हो जाना। (२) संभोग में प्रवृत्त होना। जी तले ऊपर होना=(१) जी मचलाना। (२) जी ऊबना। चित्त घबराना। तले की साँस तले और ऊपर की साँस ऊपर रह जाना=(१) ठक रह जाना। स्तब्ध रह जाना। कुछ कहते सुनते या करते धरते न बन पड़ना। (२) भौचक रह जाना। हक्का बक्का रह जाना। चकित रह जाना। तले की दुनिया ऊपर होना=(१) भारी उलट फेर हो जाना। (२) जो चाहे सो हो जाना। असंभव से असंभव बात हो जाना। जैसे,—चाहे तले की दुनिया ऊपर हो जाय, हम अब वहाँ न जायँगे। (मादा चौपाए के) तले बच्चा होना=साथ में थोड़े दिनों का बच्चा होगा। जैसे,—इस गाय के तले एक बछड़ा है।

तलेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] शूकर। सूअर।

तलेटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तल+हिं० एटी (प्रत्य०)] १. पेंदी। २. पहाड़ के नीचे की भूमि। तलहटी।

तलौंड—वि० [सं०] १ नीचे रहनेवाला। २ हीन। तुच्छ। गया गुजरा। ३ किसी द्वारा शासित।

तलैचा—संज्ञा पुं० [हिं० तले] इमारत में मेहराब से ऊपर का और छत से नीचे का भाग।

तलैटी—संज्ञा स्त्री०[हिं० तलहटी]दे० 'तलेटी'। उ०—एक गाँव पहाड़ की तलैटी में तो दूसरा उसकी ढलवान पर।—फूलो०, पृ० ७।

तलैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल] छोटा ताल।

तलोदर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तलोदरी] तोंदवाला [को०]।

तलोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। भार्या।

तलोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दरिया। नदी।

तलौंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० तल (= नीचे) + हिं० औंछ (प्रत्य०)] नीचे जमी हुई मैल आदि। तलछट।

तलौंवन—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह परिवर्तन जो मत, सिद्धांत एवं विचार में हो जाता है। २. रंग बदलना। ३. छिछोरापन [को०]।

तल्क—संज्ञा पुं० [सं०] वन।

तल्ख—वि० [फ़ा० तल्ख] १. कडुआ। कटु। २. बदमजा। बुरे स्वाद का।

तल्खी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तल्खी] कडुवाहट। कडुआपन।

तल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ शय्या। पलंग। सेज। २ अट्टालिका। अटारी। ३. (लाक्ष०) पत्नी। भार्या। जैसे, गुरुतल्पग (को०)।

तल्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पर्यंक। २ वह सेवक जो पलंग पर बिस्तर आदि लगाता है [को०]।

तल्पकीट—संज्ञा पुं० [सं०] मत्कुण। खटमल।

तल्पज—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज पुत्र।

तल्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी की पीठ पर की मांसपेशियाँ। २ हाथी की पीठ या उसका मांस [को०]।

तल्बाना—संज्ञा पुं० [फा० तल्बानह्] गवाहों को तलब कराने का खर्च। दे० 'तलबाना'। उ०—स्टांप, तल्बाने वगैरे के हिसाब में लोगों को धोका दे दिया करता था।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० २१०।

तल्पल—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का मेरुदंड, रीढ़ या पृष्ठवंश [को०]।

तल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिल। गड्ढा। २. ताल। पोखरा।

तल्लह—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

तल्ला¹—संज्ञा पुं० [सं०] तल १ तले की परत। अस्तर। भितल्ला। २ ढिग। पास। सामीप्य। उ०—तियन को तल्ला पिय, नियन पियल्ला त्यागे ढौसत प्रबल्ला भल्ला धाए राजद्वार को।—रघुराज (शब्द०)।

तल्ला²—संज्ञा पुं० [सं० तल्प] मकान का मंजिल। जैसे, तीन तल्ला मकान।

तल्लास(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तलाश] दे० 'तलाश'। उ०—फौज तल्लास कर हारी। आप जहाँ भूप बेजारी।—तुरसी श०, पृ० ६५।

तल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताली। कुंजी

तल्ली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जूते का तला। २ नीचे की तलछट जो नाँद मे बैठ जाती है।

तल्ली²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तरुणी। युवती। २ नौका। नाव। ३ वरुण की पत्नी।

तल्लीन—वि० [सं०] उसमे लीन। उसमें लग्न। दत्तचित [को०]।

तल्लुआ—संज्ञा पुं० [देश०] गाढ़े की तरह का एक कपड़ा। महमूदी। सुकरी। सल्लम।

तल्लो—संज्ञा पुं० [सं० तल] जाँते के नाचे की पाट।

तल्वकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तलवकार'।

तल्हार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तला। नीचे। उ०—जिता गंज है यो जमीं के तल्हार। तो यक बोल पर ते सट्टूँ उसकूँ वार।—दक्खिनी०, पृ० १५२।

तवँचुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूर्ण, हिं० तमचुर] मुर्गा।

तव—सर्व० [सं०] तुम्हारा।

तवक—संज्ञा पुं० [सं०] धोखा। वंचना। प्रतारणा [को०]।

तवक्का(पु)—संज्ञा स्त्री [अ० तवक्कअ्] १ विश्वास। २ आशा। ३ प्रार्थना। उ०—नहिं तूँ मेरा सगी भया। तुलसी तवक्का ना किया।—तुरसी श०, पृ० २४।

तवक्कुफ़—संज्ञा पुं० [अ० तवक्कुफ़] १ विलंब। देर। २ ढीलापन [को०]।

तवखीर—संज्ञा पुं० [सं० फ़ा० तबाशीर] तबाशीर। तीखुर।

तवखीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनकचूर जिसकी जड़ से एक प्रकार का तीखुर बनता है। अबीर इसी तीखुर का बनता है।

तवज्जह—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ ध्यान। रुख।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

२. कृपादृष्टि।

तवन(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तपन] १ गर्मी। तपन। २ आग।

तवन(पु)†²—सर्व० [हिं० तौन] वह।

तवन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्तवन' उ०—चित अनेकहु बिधि बिवर बिल नदिनी निकास। मन्त्र रूप गंगा तवन लगे करन रिप तास।—पृ० रा०, १। १५४

तवना(पु)†¹—क्रि० अ० [सं० तपन] १ तपना। गरम होना। २. ताप से पीड़ित होना। दुख से पीड़ित होना। उ०—(क) काल के प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४२। (ख) जबते न्हान गई तई ताप भई बेहाल। भली करी या नारि की नारी देखी लाल।—शृं० सत० (शब्द०)। ३ प्रताप फैलाना। तेज पसारना। उ०—छतर गगन लग ताकर सूर तवइ जस आप।—जायसी (शब्द०)। ४ क्रोध से जलना। गुस्से से लाल होना। क्रुद्ध जाना। उ०—(क) भरत प्रसंग ज्यो कालिका लहू देखि तन मे तई।—नाभादास (शब्द०)। (ख) महादेव बैठे रहि गए। दक्ष देखि के तेहि दुख तए।—सूर (शब्द०)।

तवना(पु)²—क्रि० स० [सं० तापन] दे० 'तपाना'।

तवना(पु)³—क्रि० अ० [स्तवन] स्तुति करना।

तवना†⁴—संज्ञा पुं० [हिं० तवा] हलका तवा।

तवना(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० ताना (= ढकना, मूँदना)] ढक्कन। मूँदने का साधन जो छेद या किसी वस्तु के मुँह को बंद करे।

तवर(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तल'। उ०—अवनी के तवरे अगनिज अवरे मजा कँवरे बिच भवरे। सिरियादे सिवरे हरि हित हिवरे ग्राही निवरे जो जिवरे।—राम० धर्म०, पृ० १७६।

तवर²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर'।

तवरक—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] एक पेड़ जो समुद्र और नदियों के तट पर होता है।

विशेष—इसमें इमली के ऐसे फल लगते हैं जिन्हें खाने से चौपायों का दूध बढ़ता है।

तवरना—क्रि० स० [?] कहना। उ०—वचन एक सहस दुय सहस रसना वरणो। तिको फरणपत्ती गुण यकं तवरो।—रघु० रू०, पृ० ५७।

तवराज—संज्ञा पुं० [सं०] तुरंजबीन। यवास शर्करा।

तवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] त और न के मध्य के समस्त अक्षर समूह।

तवल—संज्ञा पुं० [अ० तब्ल] तबल। उ०—तवल भ्रात वाज कत भेरि भरे फुक्किया।—कीर्ति०, पृ० ६६।

तवलची—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तबलची'।—कीर्ति०, पृ० ६६।

तवल्ल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तवला'।

तवल्लह—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तवल'। उ०—धरै इक एक अनेक सुप्रान। झलक्कत मुक्ख तवल्लह मान।—पृ० रा०, ६। ६६।

तवस्सल—संज्ञा पुं० [अ० तवस्सुल] सहायता। उ०—सोलह वर्ग के हुक्म जारी करें। जो सतगुरु तवस्सल तयारी करें।—कबीर म०, पृ० १३१।

तवस्सुत—संज्ञा पुं० [अ०] मध्यस्थता। बीच में पड़ने का कार्य। उ०—आपके तवस्सुत की मार्फत मेरी ५०० जिल्दों में से भी कुछ निकल जाय तो क्या कहना।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ५८।

तवा—संज्ञा पुं० [हिं० तवना (=जलना)] १. लोहे का एक छिछला गोल बरतन जिसपर रोटी सेंकते हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

मुहा०—तवा सा मुँह=कालिख लगे हुए तवे की तरह काला मुँह। तवा सिर से बाँधना=सिर पर प्रहार सहने के लिये तैयार होना। अपने को खूब दृढ़ और सुरक्षित करना। तवे का हँसना=तवे के नीचे जमी हुई कालिख का बहुत जलते जलते लाल हो जाना जिससे घर में विषाद होने का कुशकुन समझा जाता है। तवे की बूँद=(१) क्षणस्थायी। देर तक न टिकनेवाला। नश्वर। (२) जो कुछ भी न मालूम हो। जिससे कुछ भी तृप्ति न हो। जैसे,—इतने से उसका क्या होगा है, इसे तवे की बूँद समझो।

२ मिट्टी या खपड़े का गोल ठिकरा जिसे चिलम पर रखकर तमाखू पीते हैं। ३ एक प्रकार की लाल मिट्टी जो हींग में मेल देने के काम में आती है। ३ तवे के आकार का साधन जो युद्ध में बचाने के विचार से छाती पर रहता था।

तवाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तबाही'। उ०—दुश्मन देख के तवाई धरना। भुखा मिल के खाव खाना।—दक्खिनी०, पृ० ६५।

तवाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताप] ताप।

तवाक्षीर—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्क्षीर] वंशरोचन। बंसलोचन।

तवाजा—संज्ञा स्त्री० [अ० तवाजह] १. आदर। मान। आवभगत। २. मेहमानदारी। दावत। ज्याफत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तवाना¹—वि० [फ़ा०] बली। मोटा ताजा। मुस्टंडा।

तवाना²—क्रि० स० [सं० तापन, हिं० ताना] तप्त करना। गरम कराना।

तवाना³—क्रि० स० [हिं० ताना] ढक्कन को चिपकाकर बरतन का मुँह बंद कराना।

तवाना⁴—क्रि० अ० [हिं० ताव से नामिक धातु] ताव या आवेश में आना।

तवायफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तवायफ] वेश्या। रंडी।

विशेष—यद्यपि यह शब्द तायफह का बहु० है, पर हिंदी में एक-वचन बोला जाता है। कहीं कहीं तायफा भी बोला जाता है।

तवारा—संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० ताव + रा (प्रत्य०)] जलन। दाह। ताप। उ०—तबते इन सबहिन सचुपायो। जबतें हरि संदेश तुम्हारो सुनत तवारो आयो।—सूर (शब्द०)।

तवारीख—संज्ञा स्त्री० [अ० तवारीख] इतिहास।

विशेष—यह 'तारीख' शब्द का बहुवचन है।

तवारीखी—वि० [अ० तवारीख + फ़ा० ई (प्रत्य०)] ऐतिहासिक [को०]।

तवालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ लंबाई। दीर्घत्व। २ आधिक्य। अधिकता। अधिकाई। ज्यादती। ३ बखेड़ा। तूल तवील। झंझट।

तविष¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग। २ समुद्र। ३ व्यवसाय। ४ शक्ति।

तविष²—वि० १ वृद्ध। महत्। २. बलवान। दृढ़। बली। ३ पूज्य (को०)।

तविषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. नदी। ३. शक्ति। ४. इंद्र की एक कन्या का नाम [को०]।

तविष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति। बल। तेज [को०]।

तवी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा] १ छोटा तवा। २ पतले किनारेवाली लोहे की थाली। ३ कश्मीर की एक नदी।

तवीयन—संज्ञा पुं० [अ० तबीब] वैद्य। चिकित्सक।

तवीष—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ग। २ समुद्र। ३. सोना [को०]।

तवेला—संज्ञा पुं० [हिं० तबेला] दे० 'तबेला'।

तवै—अव्य० [हिं०] दे० 'तब'। उ०—तवै बाजि तें सेख भू पै जु आयो। कछू वस्त्र ही अग ताको उढ़ायो।—हम्मीर०, पृ० ३८।

तशख़ीश—संज्ञा स्त्री० [अ० तश्ख़ीस] १. ठहराव। निश्चय। २. मर्ज की पहचान। रोग का निदान। ३ लगान निर्धारित करने की क्रिया या स्थिति (को०)।

तशद्दुद—संज्ञा पुं० [अ०] १. आक्रमण। २ कठोर व्यवहार। ज्यादती। सख्ती [को०]।

तशफ्फी—संज्ञा स्त्री० [अ० तशफ़्फ़ी] १. ढ़ाढ़स। सांत्वना। उ०—

ऐसे पाठकों को प्रेमचंद से पूरी तशफ्फी हासिल होती है।—प्रेम० और गोर्की, पृ० २१७। २. रोगमुक्ति (को०)।

तशरीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तशरीफ़] बुजुर्गी। इज्जत। महत्व। बड़प्पन।

मुहा०—तशरीफ रखना = विराजना। बैठना (आदरार्थक)। तशरीफ लाना = पदार्पण करना। आना (आदरार्थक)। तशरीफ ले जाना = प्रस्थान करना। चला जाना :

तश्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. थाली के आकार का हलका छिछला बरतन। २. परात। लगन। ३. ताँबे का वह बड़ा बरतन जो पाखानों में रखा जाता है। गमला।

तश्तरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] थाली के आकार का हलका छिछला बरतन। रिकाबी।

तश्वीश—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चिंता। फिक्र। २. भय। डर। त्रास। उ०—किसी किस्म के तरद्दुद और तश्वीश की गुंजाइश नहीं है। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३५।

तषति(पु) संज्ञा पुं० [फा० तख्त] दे० 'तख्त'। उ०—तषति निवास की आ मनि आई।—प्राण०, पृ० ५३।

तषते—संज्ञा पुं० [अ० तख्त] दे० किवाड़'। उ०—सुरति बारी के तषते खोले। तब नानक बिनसे सगले ओले।—प्राण०, पृ० ३७।

तष्ट—वि० [सं०] १. छीला हुआ। २. कुटा हुआ। पीसकर दो दलों में किया हुआ। ३ पीटा हुआ।

तष्टा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. छीलनेवाला। २. छील छालकर गढ़नेवाला। ३. विश्वकर्मा। ४. एक आदित्य का नाम।

तष्टा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० तश्त] ताँबे की एक प्रकार की छोटी तश्तरी जिसका व्यवहार ठाकुर पूजन के समय मूर्तियों को नहलाने के लिये होता है।

तष्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तष्टा'[2]। एक प्रकार का बरतन। धातुपात्र। उ०—पुनि चरवा चरई तष्टी तबला झारी लोटा गावहिं।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० ७४।

तष्षना(पु)—क्रि० स० [हिं० ताकना] ताकना। देखना। उ०—प्रथिराज राज राजग गुर तष्षि तरक्कस तष्षियौ।—पृ० रा०, १२। ५४।

तष्षि(पु)संज्ञा स्त्री० [सं० तक्षिणी] नागिन। सर्पिणी। उ०—नयन सुकज्जल रेष, तष्षि तिष्षन छवि कारिय। श्रवनन सहज कटाछ, चित्त कर्षन नर नारिय।—पृ० रा, १४, १५६।

तस(पु)[1]—वि० [सं० तादृश, प्रा० तारिस, पुहिं० तइस] तैसा। वैसा। उ०—किएँ जाहि छाया जलद सुखद बहइ बर बात। तस मगु भयेउ न राम कहँ जस भा भरतहिं जात।—मानस, २। २१५।

तस(पु)[2]—क्रि० वि० तैसा। वैसा। उ०—तस मति फिरी रही जस भावी।—तुलसी (शब्द०)।

तस(पु)[3]—सर्व [सं० तत, तस्य] उसका। तत् शब्द का संबंधकारक एकवचन। उ०—इंद्रां वाहुण वासिका, वासु तणइ डणिहार। तस भख हुवइ प्राहुणउ, तिणि सिणगार उतार।—ढोला०, दू० ५८०।

तसकर—संज्ञा पुं० [सं० तस्कर] दे० 'तस्कर'। उ०—सग तेहिं बहुरंग तसकर, बड़ा अजुगुति कीन्ह।—जग० बानी, पृ० ४५।

तसकीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्कीन] तसल्ली। ढारस। दिलासा।

तसगर—संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों के ताने में नौलक्खी के पास की दो लकड़ियों में से एक।

तसगीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्गीर] १. संक्षेप करना। २ संक्षेप करने की क्रिया या भाव [को०]।

तसदीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्दीक] १ सचाई। २. सचाई की परीक्षा या निश्चय। समर्थन। प्रमाणों के द्वारा पुष्टि। ३ साक्ष्य। गवाही।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तसदीह(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्दीअ] १ दर्दे सर। २. तकलीफ। दुःख। क्लेश। उ०—नहिं चून घीव सबील ही तसदीह सब ही की सही।—सूदन (शब्द०)। ३ परेशानी। झंझट (को०)।

तसद्दुक—संज्ञा पुं० [अ० तसद्दुक़] १ निछावर। सदका। २ बलिप्रदान। कुरबानी।

तसनीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्नीफ़] ग्रंथ की रचना।

तसबी—सं० स्त्री० [अ० तस्बीह] दे० 'तसबीह'। उ०—फेरै न तसबी जपै न माला।—पलटू०, पृ० ६१।

तसबीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीर] दे० 'तसवीर'। उ०—विखे-चितेरे चित्र में पिय विचित्र तसबीर। दरसत दृग परसत हियै परसत तिय घर धीर।—स० सप्तक, पृ० ३६७।

तसवीरगर—संज्ञा पुं० [अ० तस्वीर + फ़ा० गर (प्रत्य०)] चित्रकार। उ०—डीठि मिचि जात मिचि इचत ना ऐंचो खैंचो खिचत न तसवीर तसवीरगर पै।—पजनेस०, पृ० ७।

तसबीह—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्बीह] सुमिरिनी। माला। जपमाला। (मुसल०)। उ०—मन मनि के तहँ तसबी फेरइ। तब साहब के वह मन भेवइ।—दादू (शब्द०)।

मुहा०—तसबीह फेरना = ईश्वर का नामस्मरण या उच्चारण करते हुए माला फेरना।

तसमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तस्मह्] १. चमड़े की कुछ चौड़ी डोरी के आकार की लंबी धज्जी जो किसी वस्तु को बाँधने या कसने के काम में आवे। चमड़े का चौड़ा फीता।

मुहा०—तसमा खींचना = एक विशेष रूप से गले में फंदा डालकर मारना। गला घोटना। तसमा लगा न रखना = गरदन साफ उड़ा देना। साफ दो टुकड़े करना।

२. जूते का फीता (को०)। ३. चमड़े का कोड़ा या दुर्रा (को०)।

तसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुलाहों की ढरकी। २ एक प्रकार का घटिया रेशम। वि० दे० 'टसर'।

तसरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुनाई [को०]।

तसला—संज्ञा पुं० [फ़ा० तश्त + ला (प्रत्य०)] कटोरे के आकार

का पर उससे बड़ा गहरा बरतन जो लोहे, पीतल, ताँबे आदि का बनता है।

तसली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तसला] छोटा तसला।

तसलीम—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्लीम] १. सलाम। प्रणाम। २ किसी बात की स्वीकृति। हामी। जैसे,—गलती तसलीम करना।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

तसल्ली—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ ढारस। सांत्वना। आश्वासन। २. व्यग्रता की निवृत्ति। व्याकुलता की शांति। धैर्य। धीरज। ३. संतोष। सब्र।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

मुहा०—तसल्ली दिलाना = धीरज या संतोष देना। धैर्य धारण कराना।

तसवीर¹—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीर] १. वस्तुओं की आकृति जो रंग आदि के द्वारा कागज, पटरी आदि पर बनी हो। चित्र।

क्रि० प्र०—खींचना।—बनाना।—लिखना।

मुहा०—तसवीर उतारना = चित्र बनाना। तसवीर निकालना = चित्र बनाना।

२. किसी घटना का यथातथ्य विवरण।

तसवीर²—वि० चित्र सा सुंदर। मनोहर।

तसवीस(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० तश्वीश] १ चिंता। सोच। फिक्र। २. भय। डर। त्रास। ३ व्याकुलता। घबराहट। उ०—ना तसवीस खिराज न माल खौफ न खता न तरस जवाल।—संत रै०, पृ० ११०।

तसव्वुर—संज्ञा पुं० [अ०] कल्पना। उ०—तसव्वुर से तेरे रुख के गई है नींद आँखों से। मुकाबिल जिसके हो खुरशीद क्यों कर उसको ख्वाब आवे।—कविता कौ०, भाग ४, पृ० २६।

तसाना—क्रि० स० [हिं० त्रासना] त्रस्त करना। डराना। उ०—हाय दई घनआनंद ह्वै करि को लौं वियोग के ताप तसायहो।—घनानंद, पृ० ९६।

तसि(पु)†¹—वि० [हिं० तस] वैसी। उस प्रकार की।

तसि(पु)†²—क्रि० वि० [हिं० तस] तैसी। वैसी। उ०—(क) जनु भादौं निसि दामिनी दीसी। चमकि उठी तसि भीनि बतीसी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९१। (ख) तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फाबी।—मानस, २।१७।

तसिल्दार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तहसीलदार'। उ०—बड़ी बटी मूली पठवायो तसिल्दार तब।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४१६।

तसीं†—संज्ञा स्त्री० [देश०] तीन बार जोता हुआ खेत।

तसील†—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसील] १. तहसील। २. वसूली। प्राप्ति।

तसीलना—क्रि० स० [अ० तहसील, हिं० तसील से नामिक धातु] वसूल करना। पाना। उ०—बक तसीलत कितो, महाजन कितो कोउ धन।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० ५४।

तसू—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + शूक = जौ की तरह का एक कदन्न] लंबाई की एक माप। इमारती गज का २४ वाँ अंश जो १⅛ इंच के लगभग होता है।

तस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ चोर। २ श्रवण। कान। ३. मैनफल। मदन वृक्ष। ४ बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार के केतु जो लंबे और सफेद होते हैं। ये ५१ हैं और बुध के पुत्र माने जाते हैं। ५ चोर नामक गंधद्रव्य। ६ कान (को०)।

तस्करता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोर का काम। चोरी। २ श्रवण। सुनना (को०)।

तस्करवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चोर। पाकेटमार (को०)।

तस्करस्नायु—संज्ञा पुं० [सं०] काकनासा लता। कौवा ठोंठी।

तस्करी—संज्ञा स्त्री० [सं० तस्कर] १. चोर का काम। चोरी। २. चोर की स्त्री। ३ वह स्त्री जो चोर हो। ४. उग्र स्वभाव की स्त्री (को०)।

तस्कीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तसकीन'। उ०—फिराके यार में होने से क्या तस्कीन होती है।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० १६७

तस्थु—वि० [सं०] एक ही स्थान पर रहनेवाला। स्थावर। अचल।

तस्नीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्नीफ] १ पुस्तक लेखन। किताब बनाना। २ लिखित पुस्तक। बनाई हुई कविता। ३. मनगढ़ंत या कपोलकल्पित बात (को०)।

तस्फिया—संज्ञा पुं० [अ० तस्फ़िय़ह्] १, आपस का निपटारा या समझौता। २. निर्णय। फैसला। ३. शुद्ध करना। साफ करना। शुद्धि। सफाई। ४ दिलों की सफाई। मेल (को०)।

यौ०—तस्फिया तलब = वे बातें जिनकी सफाई होनी आवश्यक हैं। तस्फियानामा = वह कागज जिसमें आपस के तस्फिए की लिखापढ़ी हो।

तस्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तस्मह्] १ चमड़े की कम चौड़ी और लंबी पट्टी। २ जूते का फीता। ३ चमड़े का कोड़ा या दुर्रा (को०)।

यौ०—तस्मापा = जिसका पाँव तस्मे से बँधा हो। तस्माबाज = (१) धूर्त। वंचक। मक्कार। छली। (२) द्यूतकार। जुआरी। तस्माबाजी = (१) छल। कपट। (२) एक प्रकार का जुआ।

तस्मात्—अव्य० [सं०] इसलिये।

तस्य—सर्व० [सं०] उसका।

तस्लीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ सलाम करना। प्रणाम करना। २. स्वीकार करना। कबूल करना। ३. सौंपना। सिपुर्द करना। ४ आज्ञा का पालन करना। (को०)।

तस्वीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ चित्र। प्रतिकृति। २ चित्र बनाना। मूर्ति बनाना। ३ बहुत ही सुंदर शक्ल। ४ प्रतिमा। मूर्ति।

यौ०—तस्वीरकशी = चित्रण। चित्रकर्म। तस्वीरखाना = (१) वह स्थान जो चित्रों के लिये हो या जहाँ चित्र बनाए गए हों। चित्रशाला। (२) वह स्थान जहाँ बहुत सी सुंदर स्त्रियाँ हों। परीखाना। तस्वीरे अक्सी = छायाचित्र। फोटो।

तस्वीरे खयाली=चित्त या खयाल में आई हुई आकृति। काल्पनिक चित्र। तस्वीरे गिली=मिट्टी की मूर्ति। तस्वीरे नीम रुख=एक तरफ से लिखा हुआ चित्र जिसमें मुख का एक ही रुख आए।

तस्सवीर(ए)—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीह्] दे० 'तसवीह'। उ०—संमे साह्वि गोरी बही तस्सवीर। वहै राज चौहान न्योतै सरीर।—पृ० रा०, २१।११८।

तस्सू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तसू'।

तहँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तहाँ'।

यौ०—तहँ तहँ=वहाँ वहाँ। उस उस स्थान पर। उ०—जँह जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती।—मानस, १।३३३।

तहँवाँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तहाँ'।

तह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ किसी वस्तु की मोटाई का फैलाव जो किसी दूसरी वस्तु के ऊपर हो। परत। जैसे, कपड़े की तह, मलाई की तह, मिट्टी की तह, चट्टान की तह। उ०—(क) इसपर अभी मिट्टी की कई तहें चढ़ेंगी (शब्द०)। (ख) इस कपड़े को चार पाँच तहों में लपेटकर रख दो (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—जमना।—जमाना।—लगाना।

यौ०—तहदार=जिसमें कई परत हों। तह ब तह=एक के नीचे एक। परत पर परत।

मुहा०—तह करना=किसी फैली हुई (चद्दर आदि के आकार की) वस्तु के भागों को कई ओर से मोड़ और एक दूसरे के ऊपर फैलाकर उस वस्तु को समेटना। चौपरत करना। तह कर रखो=छिपा रखो। मत निकालो या दो। नहीं चाहिए। तह जमाना या बैठाना=(१) परत के ऊपर परत दबाना। (२) भोजन पर भोजन किए जाना। तह तोड़ना=(१) झगड़ा निबटाना। समाप्ति को पहुँचाना। कुछ बाकी न रखना। निबटना। (२) कुएँ का सब पानी निकाल देना जिससे जमीन दिखाई देने लगे। (किसी चीज की) तह देना=(१) हलकी परत चढ़ाना। थोड़ी मोटाई में फैलाना या बिछाना। (२) हलका रंग चढ़ाना। (३) अतर बनाने मे जमीन देना। आधार देना। जैसे,—चंदन की तह देना। तह मिलाना=जोड़ा लगाना। नर और मादा एक साथ करना। तह लगाना=चौपरत करके समेटना।

२ किसी वस्तु के नीचे का विस्तार। तल। पेंदा। जैसे, इस गिलास में घुली दवा तह में जाकर जम गई है।

मुहा०—तह का सच्चा=वह कबूतर जो बराबर अपने छत्ते पर चला आवे, अपना स्थान न भूले। तह की बात=छिपी हुई बात। गुप्त रहस्य। गहरी बात। (किसी बात की) तह को पहुँचना=दे० 'तह तक पहुँचना'। (किसी बात की) तह तक पहुँचना=किसी बात के गुप्त अभिप्राय का पता पाना। यथार्थ रहस्य जान लेना। असली बात समझ जाना।

३. पानी के नीचे की जमीन। तल। थाह। ४. महीन पटल। वरक। झिल्ली।

क्रि० प्र०—उचड़ना।

तहकीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तह्क़ीक] १. सत्य। यथार्थता। २. सचाई की जाँच। यथार्थ बात का अन्वेषण। खोज। अनुसंधान। ३ जिज्ञासा। पूछताछ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहकीकात—संज्ञा स्त्री० [अ० तह्कीक़ात, तह्क़ीक़ का बहु व०] किसी विषय या घटना की ठीक ठीक बातों की खोज। अनुसंधान। अन्वेषण। जाँच। जैसे, किसी मामले की तहकीकात, किसी इल्म की तहकीकात।

मुहा०—तहकीकात आना=किसी घटना या मामले के संबंध में पुलिस के अफसर का पता लगाने के लिये आना।

तहखाना—संज्ञा पुं० [फा० तहखानह्] वह कोठरी या घर जो जमीन के नीचे बना हो। भुइँहरा। तलगृह।

विशेष—ऐसे घरों या कोठरियों में लोग धूप की गरमी से बचने के लिये जा रहते या धन रखते हैं।

तहजर्द—वि० [फ़ा० तहजर्द] दे० 'तहदरज' [को०]।

तहजीब—संज्ञा स्त्री० [अ० तह्जीब] शिष्ट व्यवहार। शिष्टता। सभ्यता।

तहदरज—वि० [फा० तहदर्ज] (कपड़ा आदि) जिसकी तह तक न खोली गई हो। बिलकुल नया। ज्यों का त्यों नया रखा हुआ।

तहनशीं—वि० [फ़ा०] तरल पदार्थ में नीचे बैठनेवाली (वस्तु)।

तहनिशाँ—संज्ञा पुं० [फा०] लोहे पर सोने चाँदी की पच्चीकारी।

तहपेच—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पगड़ी के नीचे का कपड़ा।

तहपोशी—संज्ञा स्त्री [फा०] साड़ी के नीचे पहनने का पाजामा [को०]

तहबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] लुंगी [को०]।

तहबाजारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तहबाजारी] वह महसूल जो सट्टी में सौदा बेचनेवालों से जमीदार लेता है। झरी।

तहमत—संज्ञा पुं० [फ़ा० तहबंद या तहमद] कमर में लपेटा हुआ कपड़ा। अँगोछा। लुंगी। अँचला।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

तहम्मुल—संज्ञा पुं० [अ०] १ सहिष्णुता। सहनशीलता। २ गंभीरता। सजीदगी। ३ धैर्य। सब्र। ४ नम्रता। नर्मी [को०]।

तहरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ततहँडा'।

तहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पेठे की बरी और चावल की खिचड़ी। २ मटर की खिचड़ी। ३. कालीन बुननेवालों की ढरकी।

तहरीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ लिखावट। लेख। २. लेखशैली। जैसे,—उसकी तहरीर बड़ी जबरदस्त होती है। ३ लिखी हुई बात। लिखा हुआ मजमून। ४ लिखा हुआ प्रमाणपत्र। लेखबद्ध प्रमाण। ५ लिखने की उजरत। लिखाई। लिखने का मिहनताना। जैसे,—इसमें १) तहरीर लगेगी। ६. गेरू की कच्ची छपाई जो कपड़ों पर होती है। कट्टर की कटाई। (छीपी)।

तहरीरी—वि० [फ़ा०] लिखा हुआ। लिखित। लेखबद्ध। जैसे, तह्रीरी सबूत, तहरीरी बयान।

तहलका—संज्ञा पुं० [अ० तह्लकह्] १. मौत। मृत्यु। २. बरबादी। ३ खलबली। धूम। हलचल। विप्लव।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

४ कोलाहल। शोरगुल (को०)।

तहलील—संज्ञा स्त्री० [अ० तह्लील] १. पचना। हजम होना। २ घुलना। मिलना (को०)। उ०—जो खाना तहलील करने और हरारत मिटाने को लेटे।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० १५६

यौ०—तहवाँ जहवाँ।

तहवाँ—अव्य० [हिं० तहँ+वाँ (प्रत्य०)] वहाँ। उ०—(क) बधु समेत गए प्रभु तहवाँ।—मानस, ३। २४। (ख) जायस नगर धरम अस्थानू। तहवाँ यह कवि कीन्ह बखानू।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १३४।

तहवील—संज्ञा स्त्री० [अ० तहवील] १ सुपुर्दगी। २ अमानत। धरोहर। ३ किसी मद की आमदनी का रुपया जो किसी के पास जमा हो। खजाना। जमा। रोकड़। ४ फिरना (को०)। ५ फिराना (को०)। ६. प्रवेश करना। दाखिल होना (को०)। ७ किसी ग्रह का किसी राशि में प्रवेश (को०)।

यौ०—तहवीलदार। तहवीले आफ्ताब=सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश। संक्रांति।

तहवीलदार—संज्ञा पुं० [अ० तह्वील+फ़ा० दार (प्रत्य०)] वह आदमी जिसके पास किसी मद की आमदनी का रुपया जमा होता हो। खजानची। रोकड़िया।

तहशिया—संज्ञा पुं० [अ० तह्शियह] किसी पुस्तक आदि पर पार्श्व मे टिप्पणी लिखना [को०]।

तहस नहस—वि० [देश०] विनष्ट। बरबाद। नष्ट भ्रष्ट। ध्वस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहसीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तह्सीन] प्रशंसा। तारीफ। श्लाघा। उ०—यहाँ कदरदानी और तहसीन, इससे मेरा काम न चला।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ५६।

तहसील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ बहुत से आदमियों से रुपया पैसा वसूल करके इकट्ठा करने की क्रिया। वसूली। उगाही। जैसे,—पोत तहसील करना।

क्रि० प्र०—करना—होना।

२ वह आमदनी जो लगान वसूल करने से इकट्ठी हो। जमीन की सालाना आमदनी। जैसे,—इनकी पचास हजार की तहसील है। ३. वह दफ्तर या कचहरी जहाँ जमींदार सरकारी मालगुजारी जमा करते हैं। तहसीलदार की कचहरी। माल की छोटी कचहरी।

तहसीलदार—संज्ञा पुं० [अ० तहसील+फ़ा० दार (प्रत्य०)] १ कर वसूल करनेवाला। २. वह अफसर जो किसानों से सरकारी मालगुजारी वसूल करता है और माल के छोटे मुकदमों का फैसला करता है।

तहसीलदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसील+फ़ा० दार या महसूल वसूल करने का काम। मालगुजारी वसूल करने का काम। तहसीलदार का काम। २ तहसीलदार का पद।

क्रि० प्र०—करना।

तहसीलना—क्रि० स० [अ० तहसील से नामिक धातु] उगाहना। वसूल करना (कर, लगान, मालगुजारी, चंदा आदि)।

तहाँ—क्रि० वि० [सं० तत्+स्थान, प्रा० थाण, थान] वहाँ। उस स्थान पर। उ०—तहाँ जाए देखी बन सोभा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—लेख में अब इसका प्रयोग उठ गया है, केवल 'जहाँ का तहाँ' ऐसे दो एक वाक्यो में रह गया है।

तहाना—क्रि० स० [फ़ा० तह से नामिक धातु] तह करना। घरी करना। लपेटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

तहिआ—क्रि० वि० [हिं०] तब। उस समय। उ०—भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं विष्णु मनुज तनु तहिआ।—मानस, १।१३६।

तहियाँ†—क्रि० वि० [सं० तदाहि] तब। उस समय। उ०—कहु कबीर कछु अछिलो न जहियाँ। हरि बिरवा प्रतिपालेसि तहियाँ।—कबीर (शब्द०)।

तहियाना—क्रि० स० [फा० तह] तह लगाकर लपेटना।

तहीं—क्रि० वि० [हिं० तहाँ] वहीं। उसी जगह। उसी स्थान पर। उ०—दुलु सुलु जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं।—मानस, १।६७।

तहू ⓟ—क्रि० वि० [सं० तदपि] तब भी। उ०—खंड ब्रह्मंड सूखा पड़े, तहू न विष्फल जाय।—कबीर सा०, पृ० ७।

तहोबाला—वि० [फा०] नीचे ऊपर। ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर। उलट पलट। क्रमभग्न।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहौं ⓟ†—क्रि० वि० [हिं० वहाँ+औं (प्रत्य०)] वहाँ भी। उ०—तहौं प्रतीपहि कहत हैं कवि कोबिद सब कोय।—मति० ग्र०, पृ० ३७२।

तांडव—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] १ पुरुषों का नृत्य।

विशेष—पुरुषों के नृत्य को तांडव और स्त्रियों के नृत्य को लास्य कहते हैं। तांडव नृत्य शिव को अत्यंत प्रिय है। इसी से कोई तंडु अर्थात् नंदी को इस नृत्य का प्रवर्तक मानते हैं। किसी किसी के अनुसार तांडव नामक ऋषि ने पहले पहल इसकी शिक्षा दी, इसी से इसका नाम तांडव हुआ।

२ वह नाच जिसमें बहुत उछल कूद हो। उद्धत नृत्य। ३ शिव का नाम। ४ एक तृण का नाम।

तांडवतालिक—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डवतालिक] नंदीश्वर [को०]।

तांडवप्रिय—संज्ञा पु० [सं० ताण्डवप्रिय] शंकर [को०]।

तांडवित—वि० [सं० ताण्डवित] १ नृत्यशील। २ तांडव नृत्य गोलाई में घूमता हुआ। ३ चक्कर खाता हुआ। ४. द्रु [को०]।

तांडवी—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डवी] संगीत के चौदह तालों में से एक।

तांडि—संज्ञा पुं० [सं० तण्डि] तंडि मुनि का निकला हुआ नृत्य शास्त्र।

तांडी—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डिन्] १. सामवेद की तांड्य शाखा का अध्ययन करनेवाला। २ यजुर्वेद का एक कल्पसूत्रकार।

तांड्य—संज्ञा पुं० [सं० ताण्ड्य] १. तंडि मुनि के वंशज। २ सामवेद के एक ब्राह्मण का नाम।

तांत—वि० [सं० तान्त] १. श्रांत। थका हुआ। २. जिसके अंत में त् हो। ३. मुरझाया हुआ। (को०)। ४. कष्टमय (को०)।

तांतव[1]—वि० [सं० तान्तव] [वि० स्त्री० तांतवी] जिसमें तंतु या तार हो। जिसमें से तार निकल सके।

तांतव[2]—संज्ञा पुं० १ बुनना। २ बुना हुआ कपड़ा। ३ जाल। ४ सूत कातना। [को०]।

तांतुवायि, तांतुवाय्य—स्त्री० पुं० [सं० तान्तुवायि, तान्तुवाय्य] तंतुवाय या बुनकर का पुत्र [को०]।

तांत्रिक[1]—वि० [सं० तान्त्रिक] [स्त्री० तान्त्रिकी] तंत्र संबंधी।

तांत्रिक[2]—संज्ञा पुं० १ तंत्र शास्त्र का जाननेवाला। यंत्र मंत्र आदि करनेवाला। मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के प्रयोग करनेवाला। २. एक प्रकार का सन्निपात।

तांबूल—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] १ पान। नागवल्ली दल। २. पान का बीडा। ३ किसी प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो भोजनोत्तर खाया जाय (जैन)। ४. सुपारी।

तांबूलकरंक—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलकरङ्क] १ पान रखने का बरतन। बट्टा। बिलहरा। २ पान के बीडे रखने का डिब्बा। पनडिब्बा।

तांबूलद—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलद] पान रखने और तैयार करके देनेवाला नौकर [को०]।

तांबूलधर—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलधर] तांबूलद [को०]।

तांबूलनियम—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलनियम] पान, सुपारी, लवंग, इलायची आदि खाने का नियम। (जैन)।

तांबूलपत्र—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलपत्र] १ पान का पत्ता। २ अरुआ नाम की लता जिसके पत्ते पान के से होते हैं। पिंडालु।

तांबूलबीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूलवीटिका] पान का बीड़ा। बीडी।

तांबूलराग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलराग] १ पान की पीक। २ मसूर।

तांबूलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूलवल्ली] पान की बेल। नागवल्ली।

तांबूलवाहक—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलवाहक] पान खिलानेवाला सेवक। पान का बीड़ा लेकर चलनेवाला सेवक।

तांबूलवीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा [को०]।

तांबूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] पान बेचनेवाला। तमोली।

तांबूली[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलिन्] पान बेचनेवाला। तमोली।

तांबूली[2]—वि० तांबूल संबंधी [को०]

तांबूली[3]Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूल] पान की बेल। उ०—तांबूली, अहिवल्लरी, द्विजा, पान की बेलि।—नंद० ग्रं०, पृ० १०६।

तांबेल—संज्ञा पुं० [?] कछुवा। कच्छप।

तांमुलⓊ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तांबूल'। उ०—घृत बिन भोजन ज्यो चून बिन तामुल जटा बिन जोगी जैसे पुंछ बिन लोथरा।—अकबरी०, पृ० ५३।

ताँⓊ[1]—अव्य० [?] तब तक। उ०—जौ जसराज प्रतप्पियौ ताँ सुरपुज अकाल।—रा० रू०, पृ० १६।

ताँⓊ[2]—अव्य० [सं० तत्र, प्रा० तइँ, तया; राज० ताँ] वहाँ। उ०—सज्जण अलगा ताँ लगई, जाँ लग नयणे दिट्ठ।—ढोला०, दू० ४२०।

ताँईं—अव्य० [सं० तावत् या फ़ा० ता] १. तक। पर्यंत। २. पास। तक। समीप। निकट। ३. (किसी के) प्रति। समक्ष। लक्ष्य करके। जैसे, किसी के ताँईं कुछ कहना। उ०—कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के साईं। इन तेरह तें तरह दिए बनि आवै साईं।—गिरिधर (शब्द०)। ४. विषय मे। संबंध में। लिये। वास्ते। निमित्त। उ०—दीन्ह रूप औ जोति गोसाईं। कीन्ह खंभ दुहुँ जग के ताँईं।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—अपने ताँईं = अपने को।

विशेष—दे० 'तईं'।

ताँगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टाँगा'।

ताँडा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टाँडा[2]'। उ०—राम नाम सौदा किया दूजा दाम चुकाय। जन हरिया गुरुज्ञान का ताँडा देह लदाय।—राम० धर्म०, पृ० ५३।

ताँणⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तान'। उ०—जहाँ तुपक तरवारि अरु सेल टकटूक ह्वै बाँण की ताँण चहुँ फेर हुई।—सुंदर० ग्रं०, भाग २, पृ० ८८१।

ताँत—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तु] १. भेड़ बकरी की अँतड़ी, या चौपायों के पुट्ठों को बटकर बनाया हुआ सूत। चमड़े या नसों की बनी हुई डोरी। इससे धनुष की डोरी, सारंगी आदि के तार बनाए जाते हैं।

मुहा०—ताँत सा = बहुत दुबला पतला। ताँत बाजी और राग बूझा = जरा सी बात पाकर खूब पहचान लेना। उदा०—घर की टपकी बासी साग। हम तुम्हारी जात बुनियाद से वाकिफ हैं। ताँत बाजी और राग बूझा।—सैर कु०, पृ० ४४।

२ धनुप की डोरी। ३. डोरी। सूत। ४. सारंगी आदि का तार। जैसे, ताँत बाजी राग बूझा। उ०—(क) सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सेइ साधु गुरु मुनि पुरान श्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति।—तुलसी (शब्द०)। ५. जुलाहों का राछ।

ताँवड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँत का अल्पा०] ताँत ।
मुहा०—ताँवड़ी सा = ताँत की तरह दुबला पतला ।

ताँतवा—संज्ञा पुं० [हिं० आँत] आँत उतरने का रोग ।

ताँता—संज्ञा पुं० [सं० तति (= श्रेणी) अथवा सं० ताति (= क्रम)] श्रेणी । पंक्ति । कतार ।
मुहा०—ताँता बाँधना = पंक्ति में खड़ा होना । ताँता लगना = तार न टूटना । एक पर एक बराबर चला चलना ।

ताँति†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँत] दे० 'ताँत' ।

ताँतिया¹—वि० [हिं० ताँत] ताँत की तरह दुबला पतला ।

ताँतिया²—संज्ञा पुं० [हिं०] ताँत बजानेवाला । तंतुवादक । उ०—कहैं कबीर मस्तान माता रहै, बिना कर ताँतिया नाद गावै ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६५ ।

ताँती¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँता] १. पंक्ति । कतार । २. बाल बच्चे । औलाद ।

ताँती²—संज्ञा पुं० जुलाहा । कपड़ा बुननेवाला ।

ताँती(पु)³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताँत' । उ०—उनमनी ताँती बाजन लागी, यही विधि तृष्नाँ षाँडी । गोरख०, पृ० १०६ ।

ताँन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तान²' । उ०—गोपी रीझि रही रस ताँनन सों सुध बुध सब बिसराई ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १५१ ।

ताँबा—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र] लाल रंग की एक धातु जो खानों में गधक, खोहे तथा और द्रव्यों के साथ मिली हुई मिलती है ।
विशेष—यह पीटने से बढ़ सकती है और इसका तार भी खींचा जा सकता है । ताप और विद्युत् के प्रवाह का संचार ताँबे पर बहुत अधिक होता है, इससे उसके तारों का व्यवहार टेलिग्राफ आदि में होता है । ताँबे में और दूसरी धातुओं को निर्दिष्ट मात्रा में मिलाने से कई प्रकार की मिश्रित धातुएँ बनती हैं, जैसे, राँगा मिलाने से काँसा, जस्ता मिलाने से पीतल । कई प्रकार के विलायती सोने भी ताँबे से बनते हैं । खूब ठढी जगह में ताँबा और जस्ता बराबर बराबर लेकर गला डाले । फिर गली हुई धातु को खूब घोटे और थोड़ा सा जस्ता और मिला दे । घोटते घोटते कुछ देर में सोने की तरह पीला हो जायगा । ताँबे की खानें ससार में बहुत स्थानों में हैं जिनमें भिन्न भिन्न यौगिक द्रव्यों के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार का ताँबा निकलता है । कहीं धूमले रंग का, कहीं बैंगनी रंग का, कहीं पीले रंग का । भारतवर्ष में सिंहभूमि, हजारीबाग, जयपुर, अजमेर, कच्छ, नागपुर, नेल्लोर इत्यादि अनेक स्थानों में ताँबा निकलता है । जापान से बहुत अच्छे ताँबे के पत्तर बाहर जाते हैं ।
हिंदुओं के यहाँ ताँबा बहुत पवित्र धातु माना जाता है, अत. उसके अरघे, पचपात्र, कलश, झारी आदि पूजा के बरतन बहुत बनते हैं । डाक्टरी, हकीमी और वैद्यक तीनों मत की चिकित्साओं में ताँबे का व्यवहार अनेक रूपों में होता है । आयुर्वेद में ताँबा शोधने की विधि इस प्रकार है । ताँबे का बहुत पतला पत्तर करके आग में तपाकर लाल कर डाले । फिर उसे क्रमश: तेल, मट्ठे, काँजी, गोमूत्र और कुलथी की पीठी में तीन तीन बार बुझावे । बिना शोधा हुआ ताँबा विष से अधिक हानिकारक होता है ।
पर्या०—ताम्रक । शुल्व । म्लेच्छमुख । द्वयष्ट । वरिष्ठ । उदुंबर । द्विष्ट । मबक । तपनेष्ट । अरविंद । रविलोह । रविप्रिय । रक्त । नैपालिक । मुनिपित्तल । अर्क । लोहितायस ।

ताँबा²—संज्ञा पुं० [अ० तअमह्] मास का वह टुकड़ा जो बाज आदि शिकारी पक्षियों के आगे खाने के लिये डाला जाता है ।

ताँबिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताँबी' ।

ताँबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँबा] १ चौडे मुँह का ताँबे का एक छोटा बरतन । २ ताँबे की करछी ।

ताँबेकारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लाल रंग ।

ताँम(पु)—क्रि० वि० [?] तब । उ०—बज्जिय निसाँन गज्जिय सु ताँम ।—पृ० रासो, पृ० ५० ।

ताँवत(पु)—क्रि० वि० [सं० तावत्] दे० 'तावत्' । उ०—जैत फूल फल पत्रिय चाही । ताँवत आगमपुर मों आही ।—इंद्रा०, पृ० १४ ।

ताँवर—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव] १ ताप । ज्वर । हरारत । २. जाड़ा देकर आनेवाला बुखार । जूड़ी । ३ मूर्छा । पछाड़ । घुमटा । चक्कर ।
क्रि० प्र०—आना ।

ताँवरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताँवर' । उ०—फिरत सीस चखु भा अँधियारा । ताँवरि आइ परी बिकरारा ।—चित्रा०, पृ० १२३ ।

ताँवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताँवर' ।

ताँवरो†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताँवर' । उ०—ज्यो सुक सेव आस लगि निसि बासर हठि चित्त लगायो । रीतो परयो जबै फल चाख्यो, उडि गयो तूल ताँवरो आयो ।—सूर०, १ । ३२६ ।

ताँसना†—क्रि० स० [सं० त्रास] १ डाँटना । त्रास देना । धमकाना । आँख दिखाना । २ कुव्यवहार करना । सताना । जैसे, सास का बहू को ताँसना ।

ताँसा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा । झाँझ ।

ताँह(पु)—सर्व०—[सं० तत्] वो । सो (वह) सर्वनाम के कर्मकारक का बहुवचन । उ०—आडा डूँगर वन घणा, ताँह मिलिज्जइ किम ।—ढोला०, दू०, २१२ ।

ताँहीं(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ताई' । उ०—जो अंतरजामी. ढिग आही । का करि सकै इद्र इन ताँही ।—नद० ग्र०, पृ० १९२ ।

ता¹—प्रत्य० [सं०] एक भाववाचक प्रत्यय जो विशेषण और सज्ञा शब्दों के आगे लगता है । जैसे,—उत्तम, उत्तमता, शत्रु, शत्रुता, मनुष्य, मनुष्यता ।

ता²—अव्य० [फ़ा०] तक । पर्यंत । उ०—(क) केस मेघावरि सिर ता पाई । चमकहिं दसन बीजु की नाईं ।—जायसी

(शब्द०)। (ख)। रूठता हूँ इस सबब हर बार मैं। ता गले तेरे लगूँ ऐ यार मैं। कविता कौ०, भाग ४, पृ० २६।

ता@³—सर्व० [सं० तद्] उस।

विशेष—इस रूप में यह शब्द विभक्ति के साथ ही आता है। जैसे,—ताकों, तासों, तापै इत्यादि।

ता@†⁶—वि० उस। उ०—तब शिव उमा गए ता ठौर।—सूर (शब्द०)

विशेष—इसका प्रयोग विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ ही होता है।

ता⁴—क्रि० वि० [फा०] जब तक। उ०—फरे ता मो अल्लाह का नायब करम। हमारा सभी जाय ये दर्दो गम।—दक्खिनी०, पृ० २१४।

ता⁵—संज्ञा पुं० [अनु०] नृत्य का बोल। उ०—रास में रसिक दोऊ आनँद भरि नाचत, गतादिम द्रि ता ततथेइ ततथेइ गति बोले।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६६।

ताईं@—अव्य० [सं० तावत् या फा० ता] दे० 'ताईं'-३। उ०—अमृत छोड़ विषय रस पीवैं, धृग धृग तिनके ताईं।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४५।

ताई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताय+ई (प्रत्य०)] १. ताप। हरारत। हलका ज्वर। २ जाड़ा देकर आनेवाला बुखार। जूड़ी।

क्रि० प्र०—आना।

३ एक प्रकार की छिछली कड़ाही जिसमें मालपूआ, जलेबी आदि बनाते हैं।

ताई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताऊ का स्त्रीलिंग] बाप के बड़े भाई की स्त्री। जेठी चाची।

ताई@³—अव्य० [सं० तावत् या फ़ा० ता] दे० 'ताईं'-३। उ०—भूत खानि में रहो समाई। सब जग जाने तेरे ताई।—कबीर सा०, पृ० १५१८।

ताई@⁴—वि० [सं० तावत्] वही। उ०—साजे सार छत्रीस सिपाई। त्यार हुआ रण मंडण ताई।—रा० रू०, पृ० ६५।

ताईत†—संज्ञा पुं० [फा० तावीज] तावीज। जतर। यंत्र।

ताईद¹—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. पक्षपात। तरफदारी। २ अनुमोदन। समर्थन। पुष्टि। उ०—आखिर मिरजा साहब झूठ क्यो बोलते और मुंशी मुख्तर साहब इनकी ताईद क्यो करते?—सैर०, पृ० १२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ताईदा²—संज्ञा पुं० १. सहायक कर्मचारी। नायब। २ किसी कर्मचारी के साथ काम सीखने के लिये उम्मेदवार की तरह काम करनेवाला व्यक्ति।

ताउ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताव'।

ताउला†—वि० [हिं० उतावला] उतावला। अधीर।

ताऊ—संज्ञा पुं०[सं० ताततु] बाप का बड़ा भाई। बड़ा चाचा। ताया।

मुहा०—बछिया के ताऊ=बैल। मूर्ख। जड़।

ताऊन—संज्ञा पुं० [अ०] एक घातक संक्रामक रोग जिसमें गिलटी निकलती और बुखार आता है। प्लेग।

ताऊस—संज्ञा पुं० [अ०] १. मोर। मयूर।

यौ०—तख्त ताऊस=शाहजहाँ के बहुमूल्य रत्नजटित राजसिंहासन का नाम जो कई करोड़ की लागत से मोर के आकार का बनाया गया था।

२. सारंगी और सितार से मिलता जुलता एक बाजा जिसपर मोर का आकार बना होता है।

विशेष—इसमें सितार के से तरब और परदे होते हैं और यह सारंगी की कमानी से रेतकर बजाया जाता है।

ताऊसी—वि० [अ०] १. मोर का सा। मोर की तरह का। २ गहरा ऊदा। गहरा बैंगनी।

ताक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना] १ ताकने की क्रिया। अवलोकन।

यौ०—ताक झाँक।

मुहा०—ताक रखना=निगाह रखना। निरीक्षण करते रहना। २. स्थिर दृष्टि। टकटकी।

मुहा०—ताक बाँधना=दृष्टि स्थिर करना। टकटकी लगाना।

३ किसी अवसर की प्रतीक्षा। मौका देखते रहने का काम। घात। जैसे,—बंदर आम लेने की ताक में बैठा है।

मुहा०—(किसी की) ताक में बैठना=(किसी का) अहित चेतना। उ०—जो रहे ताकते हमारा मुँह। हम उन्हीं की न ताक में बैठें।—चोखे०, पृ० २७। ताक में रहना=उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहना। मौका देखते रहना। ताक रखना=घात में रहना। मौका देखते रहना। ताक लगाना=घात लगाना। मौका देखते रहना।

४ खोज। तलाश। फिराक। जैसे,—(क) किस ताक में बैठे हो? (ख) उसी की ताक में जाते हैं।

ताक²—संज्ञा पुं० [अ० ताक] दीवार में बना हुआ गड्ढा या खाली स्थान जो चीज वस्तु रखने के लिये होता है। आला। ताखा।

मुहा०—ताक पर धरना या रखना=पड़ा रहने देना। काम में न लाना। उपयोग न करना। जैसे,—(क) किताब ताक पर रख दी और खेलने के लिये निकल गया। (ख) तुम अपनी किताब ताक पर रखो, मुझे उसकी जरूरत नहीं। ताक पर रहना या होना=पड़ा रहना। काम में न आना। अलग पड़ा रहना। व्यर्थ जाना। जैसे, यह दस्तावेज ताक पर रह जायगा, और उसकी डिगरी हो जायगी। ताक भरना=किसी देवस्थान पर मनौती की पूजा चढ़ाना।—(मुसल०)।

ताक³ – वि० १. जो संख्या में सम न हो। जो बिना खंडित हुए दो बराबर भागों में न बँट सके। विषम। जैसे, एक, तीन, पाँच, सात, नौ, ग्यारह आदि।

यौ०—जुफ्त ताक या जूस ताक।

२ जिसके जोड़ का दूसरा न हो। अद्वितीय। एक या अनुपम। जैसे, किसी फन में ताक होना। उ०—जो था अपने फन में ताक था।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४६।

ताकजुफ्त—संज्ञा पुं० [अ० ताक़+फ़ा० जुफ़्त] एक प्रकार का जूआ जिसमें मुट्ठी के भीतर कुछ कौड़ियाँ या और वस्तुएँ लेकर बुझाते हैं कि वस्तुओं की संख्या सम है या विषम। यदि बूझनेवाला ठीक बतला देता है तो वह जीत जाता है।

ताकझाँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना+झाँकना] १ रह रहकर बार बार देखने की क्रिया। कुछ प्रयत्नपूर्वक दृष्टिपात। जैसे,—क्या ताक झाँक लगाए हो, अभी वे यहाँ नहीं आए हैं। २ छिपकर देखने की क्रिया। ३. निरीक्षण। देखभाल। निगरानी। ४. अन्वेषण। खोज।

ताकत—संज्ञा स्त्री०[अ० ताक़त] १ जोर। बल। शक्ति। २. सामर्थ्य। जैसे,—किसी की क्या ताकत जो तुम्हारे सामने आवे।

ताकतवर—वि० [अ० ताक़त+फा० वर (प्रत्य०)] १ बलवान्। बलिष्ठ। २ शक्तिमान्। सामर्थ्यवान्।

ताकना—क्रि० स० [सं० तर्कण (=विचारना)] १ सोचना। विचारना। चाहना। उ०—जो राउर अनि अनभल ताका। सो पाइहि यह फल परिपाका।—तुलसी (शब्द०)। २ अवलोकन करना। दृष्टि जमाकर देखना। टकटकी लगाना। ३ ताड़ना। समझ जाना। लखना। ४ पहले से देख रखना। (किसी वस्तु को किसी कार्य के लिये) देखकर स्थिर करना। तजवीज करना। जैसे,—(क) यह जगह मैंने पहले से तुम्हारे लिये ताक रखी है, यहीं बैठो। (ख) कोई अच्छा आदमी ताककर यहाँ लाओ। ५. दृष्टि रखना। रखवाली करना। जैसे,—मैं अपना असबाब यहीं छोड़े जाता हूँ, जरा ताकते रहना।

ताकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्क (=एक देश या एक जाति)] एक लिपि का नाम जो नागरी से मिलती जुलती होती है।

विशेष—अटक के उस पार से लेकर सतलज और जमुना नदी के किनारे तक यह लिपि प्रचलित है। काश्मीर और काँगड़े के ब्राह्मणों में इसका प्रचार अब तक है। इसके अक्षरों को खुड़े या मुंडे भी कहते हैं।

ताकवना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ताकना'। उ०—कायर सेरी ताकवै, सुरा माँडै पाँव।—कबीर० सा०, स०, पु० २६।

ताकि—अव्य० [फ़ा०] जिसमें। इसलिये कि। जिससे। जैसे,—यहाँ से हट जाता हूँ ताकि वह मुझे देखने न पावे।

ताकीद—संज्ञा स्त्री० [अ०] जोर के साथ किसी बात की आज्ञा या अनुरोध। किसी को सावधान करके दी हुई आज्ञा। खूब चेताकर कही हुई बात। ऐसा अनुरोध या आदेश जिसके पालन के लिये बार बार कहा गया हो। जैसे,—मुहर्रिरों से ताकीद कर दो कि कल ठीक समय पर आवें। उ०—क्या तूने सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव हो?—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १७६।

क्रि० प्र०—करना।

ताकीद कामिल—संज्ञा स्त्री० [अ० ताकीद+कामिल] पूर्ण चेतावनी। सावधानी। उ०—जरा इसकी ताकीदे कामिल रहे कि कहीं वह बूढ़ा चर्खा मोलवी न घुस आए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८८।

ताकोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधे का नाम।

ताक्षण्य, ताक्ष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] बढ़ई का लड़का [को०]।

ताख—संज्ञा पुं० [अ० ताक़] दे० 'ताक'[२]। उ०—पढ़ सुगना सत नाम, बैठ तन ताख में।—धरम०, पृ० ४३।

ताखड़ा[१]—वि० [देश०] दे० 'तगड़ा'।

ताखड़ा[२]—वि० [?] उत्साहित। उ०—ताखड़ा, नत्रीठा प्रोडिया घायलाँ। घणा घायल किया आप घण घायलाँ।—रघु० रू०, पृ० १८३।

ताखड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि+हिं० कड़ी] तराजू। काँटा।

ताखन—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तत्क्षण'। उ०—ताखन उठलिउँ जागि रे।—धरनी०, पृ० २८।

ताखा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताक'।

ताखो—वि० [अ० ताक़] १ जिसकी दोनों आँखें एक तरह की न हों। जिसकी एक आँख एक रंग या ढंग की हो और दूसरी आँख दूसरे रंग ढंग की हो। (घोड़ों, बैलों आदि के लिये। ऐसे जानवर ऐबी समझे जाते हैं)। २ साधुओं के पहनने की नोकदार एक टोपी। उ०—गुरू का सबद दोउ कान में मुद्रिका, उनमुनी तिलक सिर तत्त ताखी।—पलटू०, भा० २, पृ० २५।

ताखीर—संज्ञा स्त्री० [अ० ताखीर] विलंब। देर। उ०—देख नाचार कर न कुछ ताखीर।—कबीर ग्रं०, पृ० ३७४।

ताग—संज्ञा पुं० [हिं० तागा] दे० 'तागा'। उ०—सत रज तम तीनों ताग तोरि डारिए।—सुदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६११।

तागड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताग+कड़ी] १. तागे में पिरोए हुए सोने चाँदी के घुँघुरुओं का बना हुआ कमर में पहनने का एक गहना। करधनी। काँची। किंकिणी। क्षुद्रघटिका।

विशेष—तागड़ी सीकड़ या जंजीर के आकार की भी बनती है।

२. कमर मे पहनने का रंगीन डोरा। कटिसूत्र। करगता।

तागत—संज्ञा स्त्री० [अ० ताक़त] दे० 'ताकत'। उ०—तागत बिना हवास होस तुलसी मैं मरूँ।—संत० तुरसी, पृ० १४३।

तागना—क्रि० स० [हिं० तागा+ना (प्रत्य०)] सुई से तागा डालकर फँसाना। स्थान स्थान पर डोभ या लंगर डालना। दूर दूर की मोटी सिलाई करना। जैसे, दुलाई या रजाई तागना। उ०—ज्ञान गूदरी मुक्ति मेखला सहज सुई लै तागी।—कबीर ग्रं०, भा० ३, पृ० ४२।

तागपहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागा+पहनाना] एक पतली लकड़ी जिसका एक सिरा नोकदार और दूसरा चिपटा होता है। चिपटा सिरा बीच से फटा रहता है जिसमें तागा रखकर बय में पहनाया जाता है। (जुलाहे)।

तागपाट—संज्ञा पुं० [हिं० तागा+पाट (=रेशम)] एक प्रकार का गहना।

विशेष—यह रेशम के तागे में सोने के तीन ठासे या जंतर डालकर बनाया जाता है। यह विवाह मे काम आता है।

मुहा०—तागपाट डालना=विवाह की रीति के अनुसार गणेश-

पूजन आदि के पीछे वर के बड़े भाई (दुलहिन के जेठ) का वधू को तागपाट पहनाना ।

तागरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागडी] दे० 'तागडी'–२ । उ०—विरगठ फारि पटरा ले गयो तरी तागरी छूठी ।—कबीर ग्र ०, पृ० २७७ ।

तागा—संज्ञा पुं० [सं० तार्कव, प्रा० तग्गो, प०हिं० तागो] १. रूई, रेशम आदि का वह अंश जो तकले आदि पर बटने से लंबी रेखा के रूप में निकलता है । सूत । डोरा । धागा ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पिरोना ।

मुहा०—तागा डालना = सिलाई के द्वारा तागा फँसाना । दूर दूर पर सिलाई करना । तागना ।

२ वह कर या महसूल जो प्रति मनुष्य के हिसाब से लगे ।

विशेष—मनुष्य करधनी, जनेऊ आदि पहनते हैं; इसी से यह अर्थ लिया गया है ।

तागीर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तगीर' । उ०—तब देसाधिपति ने उन सों परगना तागीर करि उनको अपने पास बुलाए ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २०१ ।

तागड़दि(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] तडतड़ शब्द । उ०—हुह ओडौं दल गार्जे, तागड़दि तबल बाजै रिणातूर ।—रघु०, रू०, पृ० २१६ ।

ताचना(पु)—क्रि० स० [हिं० तचाना] जलाना । तपाना । उ०—विस्फुलिंग से जग दुःख तजि तब विरह अगिन तन ताचौं ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६ ।

ताज[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १ बादशाह की टोपी । राजमुकुट ।

यौ०—ताजपोशी ।

२ कलगी । तुर्रा । ३ मोर, मुर्गे आदि पक्षियों के सिर पर की चोटी । शिखा । ४ दीवार की कँगनी या छज्जा । ५ वह बुर्जी जिसे मकान के सिरे पर शोभा के लिये बना देते हैं । ६ गजीफे के एक रंग का नाम । ७ आगरे का ताजमहल ।

ताज(पु)[2]—संज्ञा पुं० [फा० ताजियाना] घोडे को मारने का चाबुक । उ०—तीख तुखार चाँड औ बाँके । सँचरहिं पौरि ताज बिनु हाँके ।—जायसी (शब्द०) ।

ताजक—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ एक ईरानी जाति जो तुर्किस्तान के बुखारा प्रदेश से लेकर बदख्शाँ, काबुल, बिलोचिस्तान, फारस आदि तक पाई जाती है ।

विशेष—बुखारा में यह जाति सर्त, अफगानिस्तान में देहान और बिलोचिस्तान में देहवार कहलाती है । फारस में ताजक एक साधारण शब्द ग्रामीण के लिये हो गया है ।

२ ज्योतिष का एक ग्रंथ जो यावनाचार्य कृत प्रसिद्ध है ।

विशेष—यह पहले अरबी और फारसी में था, राजा समरसिंह, नीलकंठ आदि ने इसे संस्कृत में किया । इसमें बारह राशियों के अनेक विभाग करके फलाफल निश्चित करने की रीतियाँ बतलाई गई हैं । जैसे, मेष, सिंह और धनु का पित्त स्वभाव और क्षत्रिय वर्ण, मकर, वृष और कन्या का वायु स्वभाव और वैश्य वर्ण, मिथुन, तुला और कुंभ का सम स्वभाव और शूद्र वर्ण; कर्कट, वृश्चिक और मीन का कफ स्वभाव और ब्राह्मण वर्ण । इस ग्रंथ में जो संज्ञाएँ आई हैं, वे अधिकांश अरबी और फारसी की हैं, जैसे, इक्कबाल योग, इतिहा योग इत्थशाल योग, इशराक योग, गैरकबूल योग इत्यादि ।

ताजकुला—संज्ञा पुं० [अ० ताज + फ़ा० कुलाह] रत्नजटित मुकुट । उ०—बादशाह बाबर लिखता है कि जिस समय सुलतान महमूद राणा साँगा के हाथ कैद हुआ, उस समय प्रसिद्ध 'ताजकुला' (रत्नजटित मुकुट) और सोने की कमर पेटी उसके पास थी ।—राज० इति०, पृ० ६६७ ।

ताजगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताजगी] १ शुष्कता या कुम्हलाहट का अभाव । ताजापन । हरापन । २ प्रफुल्लता । स्वस्थता । शिथिलता या श्रांति का अभाव । ३ सद्य प्रस्तुत होने का भाव । नयापन ।

ताजदार[1]—वि० [फा०] १ ताज के ढंग का । २. ताजवाला ।

ताजदार[2]—संज्ञा पुं० ताज पहननेवाला बादशाह । उ०—सत्ताईस वंश हैं उनके ताजदार ।—कबीर म०, पृ० १३१ ।

ताजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियाना] १. कोड़ा । चाबुक । उ०—लाज न आवति मोर समाजन लागे अलोक के ताजन ताहू ।—केशव ग्रं०, पृ० ७२ । २ दंड । सजा (को०) । ३. उत्तेजना प्रदान करनेवाली वस्तु (को०) ।

ताजना—संज्ञा पुं० [हिं० ताजन] दे० 'ताजन' । उ०—तनक ताजना लगत ही, छाड़ देत भुव पग ।—प० रासो, पृ० ११७ ।

ताजपोशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] राजमुकुट धारण करने या राजसिंहासन पर बैठने की रीति या उत्सव ।

ताजबख्श—संज्ञा पुं० [अ० ताज + फा० बख्श] बादशाह बनानेवाला या हारे हुए बादशाह को बादशाह बनानेवाला सम्राट् [को०] ।

ताजबीबी—संज्ञा स्त्री० [अ० ताज + फा० बीबी] शाहजहाँ की अत्यंत प्रिय और प्रसिद्ध बेगम मुमताज महल जिसके लिये आगरे में ताजमहल नाम का मकबरा बनाया गया था ।

ताजमहल—संज्ञा पुं० [अ०] आगरे का प्रसिद्ध मकबरा जिसे शाहजहाँ बादशाह ने अपनी प्रिय बेगम मुमताज महल की स्मृति में बनवाया था ।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि बेगम ने एक रात को स्वप्न देखा कि उसका गर्भस्थ शिशु इस प्रकार रो रहा है जैसा कभी सुना नहीं गया था । बेगम ने बादशाह से कहा—'मेरा अंतिम काल निकट जान पड़ता है । आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे मरने पर किसी दूसरी बेगम के साथ निकाह न करें, मेरे लड़के को ही राजसिंहासन का अधिकारी बनावें और मेरा मकबरा ऐसा बनवावें जैसा कहीं भूमंडल पर न हो' । प्रसव के थोड़े दिन पीछे ही बेगम का शरीर छूट गया । बादशाह ने बेगम की अंतिम प्रार्थना के अनुसार यमुना के किनारे यह विशाल और अनुपम भवन निर्मित कराया जिसके जोड़ की इमारत संसार में कहीं नहीं है । यह मकबरा बिल्कुल संगमरमर का है । जिसमें नाना प्रकार के बहुमूल्य

रंगीन पत्थरों के टुकड़े जड़कर बेल बूटों का ऐसा सुंदर काम बना है कि चित्र का धोखा होता है। रंग बिरंग के फूल पत्ते पच्चीकारी के द्वारा खचित हैं। पत्तियों की नसें तक दिखाई गई हैं। इस मकबरे को बनाने में ३० वर्ष तक हजारों मजदूर और देशी विदेशी कारीगर लगे रहे। मसाला, मजदूरी आदि आजकल की अपेक्षा कई गुनी सस्ती होने पर भी इस इमारत में उस समय ३१७३८०२४ रुपए लगे। टेवर्नियर नामक फ्रेंच यात्री उस समय भारतवर्ष ही में था जब यह इमारत बन रही थी। इस अनुपम भवन को देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जाता है। ठगों को दमन करनेवाले प्रसिद्ध कर्नल स्लीमन जब ताजमहल को देखने सस्त्रीक गए, तब उनकी स्त्री के मुँह से यही निकला कि 'यदि मेरे ऊपर भी ऐसा ही मकबरा बने, तो मैं आज मरने के लिये तैयार हूँ।

ताजा—वि० [फ़ा० ताज़ह्] [वि० स्त्री० ताजी] १ जो सूखा या कुम्हलाया न हो। हरा भरा। जैसे, ताजा फूल, ताजी पत्ती, ताजी गोभी। २ (फल आदि) जो डाल से टूटकर तुरत आया हो। जिसे पेड़ से अलग हुए बहुत देर न हुई हो। जैसे, ताजे आम, ताजे अमरूद, ताजी फलियाँ। ३. जो श्रांत या शिथिल न हो। जो थका माँदा न हो। जिसमें फुरती और उत्साह बना हो। स्वस्थ। प्रफुल्लित। जैसे,–(क) थोड़ा जलपान कर लो ताजे हो जाओगे। (ख) शरबत पी लेने से तबीयत ताजी हो गई।

यौ०—मोटा ताजा = हृष्ट पुष्ट।

४ तुरत का बना। सद्य प्रस्तुत। जैसे, ताजी पुरी, ताजी जलेबी, ताजी दवा, ताजा खाना।

मुहा०—हुक्का ताजा करना = हुक्के का पानी बदलना।

५. जो व्यवहार के लिये अभी निकाला गया हो। जैसे, ताजा पानी, ताजा दूध। ६ जो बहुत दिनों का न हो। नया। जैसे—ताजा माल।

मुहा०—(किसी बात को) ताजा करना = (१) नए सिरे से उठाना। फिर छेड़ना या चलाना। फिर से उपस्थित करना। जैसे,—दबा दबाया झगड़ा क्यों ताजा करते हो? (२) स्मरण दिलाना। याद दिलाना। फिर चित्त में लाना। जैसे,—गम ताजा करना। (किसी बात का) ताजा होना = (१) नए सिरे से उठना। फिर छिड़ना या चलना। फिर उपस्थित होना। जैसे,—उनके आने से मामला फिर ताजा हो गया। (२) स्मरण आना। फिर चित्त में उपस्थित होना। जैसे, गम ताजा होना।

ताजातम—वि० [फ़ा० ताज़ा + सं० तम (प्रत्य०)] बिल्कुल नवीन। नवीनतम। उ०—'फड़ी में कोयला' 'उग्र लिखित ताजातम उपन्यास है।—फड़ी० (प्रकाशकीय), पृ० ८।

ताजि—वि० [हिं० ताजी] दे० 'ताजी'। उ०—अनेक पाजि तेजि ताजि साजि साजि आनिआ।—कीर्ति०, पृ० ८४।

ताजिणौ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताजन'। उ०—हयि लगामी ताजिणौ पार कह सेवह राजकुमार।—बी० रासो, पृ० ६६।

ताजिया—संज्ञा पुं० [अ० ताज़ियह्] बाँस की कमचियों पर रंग बिरंगे कागज, पन्नी आदि चिपकाकर बनाया हुआ मकबरे के आकार का मंडप जिसमें इमाम हुसेन की कब्र बनी होती है।

विशेष—मुहर्रम के दिनों में शीया मुसलमान इसकी आराधना करते और अंतिम दिन इमाम के मरने का शोक मनाते हुए इसे सड़क पर निकालते और एक निश्चित स्थान पर ले जाकर दफन करते हैं।

मुहा०—ताजिया ठंढा होना = (१) ताजिया दफन होना। (२) किसी बड़े आदमी का मर जाना।

विशेष—ताजिया निकालने की प्रथा केवल हिंदुस्तान के शीया मुसलमानों में है। ऐसा प्रसिद्ध है कि तैमूर कुछ जातियों का नाश करके जब करबला गया था तब वहाँ से कुछ चिह्न लाया था जिसे वह अपनी सेना के आगे आगे लेकर चलता था। तभी से यह प्रथा चल पड़ी।

ताजियादारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताजिया + फ़ा० दारी (प्रत्य०)] ताजिया के प्रति समानप्रदर्शन। उ०—दुर्गाबाई सुन्नी मुसलमान थी। वह ताजियादारी करती थी और नाचना उनका पेशा था।—झाँसी०, पृ० ३१०।

ताजियाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताज़ियान] १. चाबुक। कोड़ा। उ०—हर नफस गोया उसे एक ताजियाना हो गया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५०।

ताजी[1]—वि० [फ़ा० ताज़ी] अरबी। अरब का। अरब संबंधी।

ताजी[2]—संज्ञा पुं० १. अरब का घोड़ा। उ०—सुंदर घर ताजी बँधे तुरकिन की घुरसाल।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३७। २ शिकारी कुत्ता।

ताजी[3]—संज्ञा स्त्री० अरब की भाषा। अरबी भाषा।

ताजी[4]—वि० ताजा का स्त्री० रूप।

ताजीम—संज्ञा स्त्री [अ० ताज़ीम] किसी बड़े के सामने उसके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना, झुककर सलाम करना इत्यादि। संमानप्रदर्शन। उ०—सिजदा सिरजनहार कों मुरसिद को ताजीम।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २८६।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

ताजीमी—वि० [अ० ताज़ीम + फ़ा० ई (प्रत्य०)] ताजीम। उ०—और रसुल पर करो यकीना। उन फकीर ताजीमी कीन्हा।—घट०, पृ० २११।

ताजीमी सरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजीमी + अ० सरदार] वह सरदार जिसके आने पर राजा या बादशाह उठकर खड़े हो जायँ या जिसे कुछ आगे बढ़कर लें। ऐसा सरदार जिसकी दरबार में विशेष प्रतिष्ठा हो।

ताजीर—संज्ञा स्त्री० [अ० ताज़ीर] सजा। दंड [को०]।

ताजीरात—संज्ञा पुं० [अ० ताज़ीरात, अ० ताज़ीर का बहु व०] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह। दंडविधि। जैसे, ताजीरात हिंद।

ताजीरी—वि० [अ० ताज़ीर + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १ दंड से संबंधित। २ दंड रूप में लगाया हुआ या तैनात किया हुआ (कर या पुलिस आदि)।

ताजीस्त—अव्य० [फा० ताजीस्त] जीवन भर। आजीवन। आजन्म। उ०—ताजीस्त सनारव्वां ही तू इस कातिल अपने।—कबीर म०, पृ० ४६८।

ताजुवा—संज्ञा पुं० [अ० तअज्जुब] दे० 'तअज्जुब'।

ताज्जुब—संज्ञा पुं० [अ० तअज्जुब] दे० 'तअज्जुब'।

ताटंक—संज्ञा पुं० [सं० ताटङ्क] १ कान में पहनने का एक गहना। करनफूल। तरकी। उ०—चलि चलि जात निकट स्रवननि के उलटि पलटि ताटंक फँदाते।—सतवाणी०, पृ० ५५। २ छप्पय के २४वें भेद का नाम। ३ एक छद जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १४ के विराम से ३० मात्राएँ होती हैं और अंत में मगण होता है। किसी किसी के अंत में एक गुरु का ही नियम रखा है। लावनी प्राय इसी छंद में होती है।

ताटका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताड़का' (को०)।

ताटस्थ—संज्ञा पुं० [सं० ताटस्थ्य] १ समीपता। निकटता। २ तटस्थता। उदासीनता। निरपेक्षता (को०)।

ताड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताडङ्क] कान का एक गहना। तरकी। करनफूल।

विशेष—पहले यह गहना ताड़ के पत्तों का ही बनता था। अब भी तरकी ताड़ के पत्ते ही की बनती है।

ताड़—संज्ञा पुं० [सं० ताड] १ शाखारहित एक बड़ा पेड़ जो खंभे के रूप में ऊपर की ओर बढ़ता चला जाता है और केवल सिरे पर पत्ते धारण करता है।

विशेष—ये पत्ते चिपटे मजबूत डठलों में, जो चारो ओर निकले रहते हैं, फैले हुए पर की तरह लगे रहते हैं और बहुत ही कड़े होते हैं। इसकी लकड़ी की भीतरी बनावट सूत के ठोस लच्छों के रूप की होती है। ऊपर गिरे हुए पत्तों के डंठलो के मुल रह जाते हैं जिससे छाल खुरदुरी दिखाई पड़ती है। चैत के महीने में इसमें फूल लगते हैं और वैशाख में फल, जो भादों में खूब पक जाते हैं। फलो के भीतर एक प्रकार की गिरी और रेशेदार गूदा होता है जो खाने के योग्य होता है। फूलो के कच्चे अकुरों को पाछने से बहुत सा रस निकलता है जिसे ताड़ी कहते हैं और जो धूप लगने पर नशीला हो जाता है। ताड़ी का व्यवहार नीच श्रेणी के लोग मद्य के स्थान पर करते हैं। बिना धूप लगा रस मीठा होता है जिसे नीरा कहते हैं। महात्मा गांधी ने नीरा का प्रयोग उचित बताया था। नीरा तथा ताड़ी दोनों में विटामिन बी प्रचुर मात्रा में होता है। बेरी बेरी रोग में दोनो अत्यंत लाभकारी होते हैं। ताड़ प्राय सब गरम देशों में होता है। भारतवर्ष, अरब, बरमा, सिंहल, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपपुंज तथा फारस की खाड़ी के तटस्थ प्रदेश में ताड़ के पेड़ बहुत पाए जाते हैं। ताड़ की अनेक जातियाँ होती हैं। तमिल भाषा में तालविलास नामक एक ग्रंथ है जिसमें ७०१ प्रकार के ताड़ गिनाए गए हैं और प्रत्येक का अलग अलग गुण बतलाया गया है। दक्षिण में ताड़ के पेड़ बहुत अधिक होते हैं। गोदावरी आदि नदियों के किनारे कहीं कहीं तालवनों की विलक्षण शोभा है। इस वृक्ष का प्रत्येक भाग किसी न किसी काम में आता है। पत्तों से पखे बनते हैं और छप्पर छाए जाते हैं। ताड़ की खड़ी लकड़ी मकानों में लगती है। लकड़ी खोखली करके एक प्रकार की छोटी सी नाव भी बनाते हैं। डंठल के रेशे चटाई और जाल बनाने के काम में आते हैं। कई प्रकार के ऐसे ताड़ होते हैं जिनकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। सिंहल के जफना नामक नगर से ताड़ की लकड़ी दूर दूर भेजी जाती थी। प्राचीन काल में दक्षिण के देशों में तालपत्र पर ग्रंथ लिखे जाते थे। ताड़ का रस औषध के काम में भी आता है। ताड़ी की पुलटिस फोड़े या घाव के लिये अत्यंत उपकारी है। ताड़ी का सिरका भी पड़ता है। वैद्यक में ताड़ का रस कफ, पित्त, दाह और शोथ को दूर करनेवाला और कफ, वात, कृमि, कुष्ट और रक्तपित्त नाशक माना जाता है। ताड़ ऊँचाई के लिये प्रसिद्ध है। कोई कोई पेड़ तीस, चालीस हाथ तक ऊँचे होते हैं, पर घेरा किसी का ६-७ बित्ते से अधिक नहीं होता।

पर्या०—तालद्रुम। पत्री। दीर्घस्कंध। ध्वजद्रुम। तृणराज। मधुरस। मदाढ्य। दीर्घपादप। चिरायु। तरुराज। दीर्घपत्र। गुच्छपत्र। आसवद्रु। लेख्यपत्र। महोन्नत।

२ ताड़न। प्रहार। ३ शब्द। ध्वनि। धमाका। ४ घास, अनाज के डंठल आदि की अँटिया जो मुट्ठी में आ जाय। जुट्टी। पूला। ५ हाथ का एक गहना। ६. मूर्ति-निर्माण-विद्या में मूर्ति के ऊपरी भाग का नाम। ७ पहाड़। पर्वत (को०)।

ताड़क[1]—वि० [सं० ताडक] ताडना या आघात करनेवाला (को०)।

ताड़क[2]—संज्ञा पुं० वधिक। जल्लाद (को०)।

ताड़का—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडका] एक राक्षसी जिसे विश्वामित्र की आज्ञा से श्री रामचंद्र ने मारा था।

विशेष—इसकी उत्पत्ति के संबंध में कथा है कि यह सुकेतु नामक एक वीर यक्ष की कन्या थी। सुकेतु ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके इस बलवती कन्या को पाया था जिसे हजार हाथियों का बल था। यह सुंद को ब्याही थी। जब अगस्त्य ऋषि ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला, तब यह अपने पुत्र मारीच को लेकर अगस्त्य ऋषि को खाने दौड़ी। ऋषि के शाप से माता और पुत्र दोनो घोर राक्षस हो गए। उसी समय से ये अगस्त्य जी के तपोवन का नाश करने लगे और उसे इन्होंने प्राणियों से शून्य कर दिया। यह सब व्यवस्था दशरथ से कहकर विश्वामित्र रामचंद्र जी को लाए और उनके हाथ से ताड़का का वध कराया।

ताड़काफल—संज्ञा पुं० [सं० ताडकाफल] बड़ी इलायची।

ताड़कायन—संज्ञा पुं० [सं० ताडकायन] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

ताड़कारि—संज्ञा पुं० [सं० ताडकारि] (ताड़का के शत्रु) श्री रामचंद्र।

ताड़केय—संज्ञा पुं० [सं० ताडकेय] (ताडका का पुत्र) मारीच।

ताड्य—संज्ञा पुं० [सं० ताड्य] १ बेंत या कोड़ा मारनेवाला। २ जल्लाद।

ताड़घात—संज्ञा पुं० [सं० ताडघात] हथौड़े आदि से पीटकर काम करनेवाला। लोहार।

ताड़न—संज्ञा पुं० [सं० ताडन] १ मार। प्रहार। आघात। २. डाँट डपट। घुड़की। ३. शासन। दंड। ४. मंत्रों के वर्णों को चंदन से लिखकर प्रत्येक मंत्र को जल से वायुबीज पढ़कर मारने का विधान। ५ गुणन। ६. खड ग्रहण (को०)।

ताड़ना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडन] १ प्रहार। मार। उ०—देह ताड़ना चित्त की तुचक सर चाहे मास हो।—कबीर सा०, पृ० ८६।

क्रि० प्र०—करना। —होना।

२ उत्पीड़न। कष्ट।

ताड़ना[2]—क्रि० स० १. मारना। पीटना। दंड देना। २ डाँटना। डपटना। शासित करना।

ताड़ना[3]—क्रि० स० [सं० तर्कण (=सोचना)] १ किसी ऐसी बात को जान लेना जो जान बूझकर प्रकट न की गई हो या छिपाई गई हो। लक्षण से समझ लेना। अदाज से मालूम कर लेना। भाँपना। लख लेना। जैसे,—मैं पहले ही ताड़ गया कि तुम इसी लिये आए हो। उ०—लिहा जौहरी ताड़ फिरा है गाहक खाली। थैली लई छमेटि दिहा गाहक को टाली।—पलटू०, भा० १, पृ० ५६।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

२ मार पीटकर भगाना। हटा देना। हाँकना।

संयो० क्रि०—देना।

ताड़नी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडनी] चाबुक। कोड़ा (को०)।

ताड़नीय—वि० [सं० ताडनीय] दंड देने योग्य। दडनीय।

ताड़पत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताडपत्र] ताडंक। तरौना।

ताड़पत्र[2]—संज्ञा पुं० [सं० तालपत्र] दे० 'तालपत्र'।

ताड़बाज—वि० [हिं० ताड़ना + फ़ा० बाज़] ताड़नेवाला। भाँपनेवाला। समझ जानेवाला।

ताड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडि] दे० 'ताड़ी' (को०)।

ताड़िका(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तारा। तारिका। उ०—परे जजराय भर राग मिल्लें। मनों नौ ग्रहं ताडिका छोड पिल्लें।—पृ० रा०, १२।३१६।

ताड़ित—वि० [सं० ताडित] १. मारा हुआ। जिसपर प्रहार पड़ा हो। २ जो डाँटा गया हो। जिसने घुड़की खाई हो। ३ दंडित। शासित। ४ मारकर भगाया हुआ। निकाला हुआ। हाँका हुआ।

ताड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडी] १ एक प्रकार का छोटा ताड़। २ एक आभूषण।

ताड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताड + ई (प्रत्य०)] ताड़ के फूलते हुए डठलों से निकला हुआ नशीला रस जिसका व्यवहार मद्य के रूप में होता है।

विशेष—ताड़ के सिरे पर फूलते हुए डठलों या अकुरों को छुरी आदि से काट देते हैं और पास ही मिट्टी का बरतन बाँध देते हैं। दूसरे दिन सवेरे जब बरतन रस से भर जाता है, तब उसे खाली करके रस ले लेते हैं।

ताड़ी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० तार] संतों की तारी। संतों की ध्यानावस्था। ध्यान। समाधि। उ०—ध्यान रूप होय मरण पाए। साच नाम ताडी चित लाए।—प्राण०, पृ० १३१।

ताड़ुल—वि० [सं०] मारने पीटनेवाला। आघात करनेवाला (को०)।

ताड़ू—वि० [हिं० ताड़ना] ताडनेवाला। भाँपने या अनुमान करनेवाला।

ताड्य—वि० [सं०] १ ताड़ने के योग्य। २. डाँटने डपटने लायक। ३. दंड्य। दंड के योग्य।

ताड्यमान[1]—वि० [सं०] १ जो पीटा जाता हो। जिसपर प्रहार पड़ता हो। २ जो डाँटा जाता हो।

ताड्यमान[2]—संज्ञा पुं० ढोल। ढक्का।

ताढ(पु)—वि० [सं० स्तब्ध, प्रा० थड्ढ, मरा० तडा, थडा, हिं० ठंढा] ठढा। शीतल। उ०—जिण दीहे पावस झरइ बाबइ, ढाढो वाय। तिण रिति मेल्हे मालविण प्री परदेस म जाय।—ढोला०, दू० २९६।

ताणना(पु)†—क्रि० स० [हिं० तानना] १ खींचना। २ ठहराना। उ०—बाजिद ताण विमाण थाण तक रहैं अचभा।—रघु० रू०, पृ० ४७।

तात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पिता। बाप। २ पूज्य व्यक्ति। गुरु। ३ प्यार का एक शब्द या संबोधन जो भाई, बधु, इष्ट मित्र, विशेषत. अपने से छोटे के लिये व्यवहृत होता है। उ०—तात जनक तनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई।—तुलसी (शब्द०)। ४ वह व्यक्ति जिसके प्रति दया का उदय हो (को०)।

तात[2]—वि० [सं० तप्त, प्रा० तत्त] १ तपा हुआ। गरम। २ दुखी। चिंतित। उ०—मालवणी म्हे चालिस्याँ, म करि हमारा ताउ।—ढोला०, दू० २७८।

तातगु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा।

तातगु[2]—वि० १ पिता के लिये स्वीकार्य। २ पैतृक (को०)।

ताततुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा या अत्यत पूज्य व्यक्ति (को०)।

तातन—संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी। खिड़रिच।

तातनी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ताँत] दे० 'ताँत'। उ०—ज्ञान की काछनी तान में तातनी, सत्त के सबद की कथा बानी।—पलटू०, भा० २, पृ० ३३।

तातरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

तातल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पितृ तुल्य सबधी। २ रोग। ३. लोहे का काँटा। ४ पाक। पक्वता। ५ उष्णता। गर्मी (को०)।

तातल[2]—वि० १ तप्त। गरम। २ पैतृक (को०)।

ताता†—वि० [सं० तप्त, प्रा० तत्त] [वि० स्त्री० ताती] १ तपा हुआ। गरम। उष्ण। उ०—(क) जहँ लगि नाथ नेह

प्रद नाते । पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ।—मानस, २ । ६५ । (ख)मीठे प्रति कोमल हैं नीके । ताते तुरत चभोरे घी के ।—सूर०, १०।३६१ । २. बुरा । दुखदायी । कष्टदायक ।

तातायेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ नृत्य मे एक प्रकार का बोल । २. नाचने में पैर के गिरने आदि का अनुकरण शब्द । जैसे, तातायेई तातायेई नाचना ।

तातार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मध्य एशिया का एक देश ।

विशेष—हिंदुस्तान और फारस के उत्तर कैस्पियन सागर से लेकर चीन के उत्तर प्रांत तक तातार देश कहलाता है । हिमालय के उत्तर लद्दाख, यारकंद, खुतन, बुखारा, तिब्बत आदि के निवासी तातारी कहलाते हैं । साधारणतः समस्त तुर्क या मोगल तातरी कहलाते हैं ।

तातारी[1]—वि० [फ़ा०] तातार देश संबंधी । तातार देश का ।

तातारी[2]—संज्ञा पुं० तातार देश का निवासी ।

ताति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । लड़का ।

ताति㉑[2]—वि० [सं० तप्त]गरम । उ०—ताति वाउ लागै नहीं, आठो पहर अनंद । —संतवाणी०, पृ० १३५ ।

ताती[1]—वि० [सं० तप्त] गरम । उष्ण । उ०—ताती श्वासन विनास्यो रूप होठन । —शकुंतला, पृ० १०९ ।

ताती[2]—क्रि० वि० [?] जल्दी । उ०—तई मुझे घो भाग्या ताती । —रा० रू०, पृ० ३०३ ।

तातील—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह दिन जिसमें काम काज बंद रहे । छुट्टी का दिन । छुट्टी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तातील मनाना=छुट्टी के दिन विश्राम लेना या आमोद प्रमोद करना ।

तात्कालिक—वि० [सं०] तत्काल का । तुरत का । उसी समय का ।

तात्पर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह भाव जो किसी वाक्य को कहकर कहनेवाला प्रकट करना चाहता हो । अर्थ । आशय । मतलब । अभिप्राय ।

विशेष—कभी कभी शब्दार्थ से तात्पर्य भिन्न होता है । जैसे, 'काशी गंगा पर है' वाक्य का शब्दार्थ यह होगा कि काशी गंगा के जल के ऊपर बसी है, पर कहनेवाले का तात्पर्य यह है कि गंगा के किनारे बसी है ।

२ तत्परता ।

तात्पर्यवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० तात्पर्य+वृत्ति] वाक्य के भिन्न पदों के वाच्यार्थ को एक में समन्वित करनेवाली वृत्ति । उ०—पहले उन्होंने तात्पर्यवृत्ति को लिया है और बताया है कि नैयायिकों की तात्पर्यवृत्ति बहुत समय से प्रसिद्ध थी ।—आचार्य, पु० १११ ।

तात्पर्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वाक्य से निकलनेवाले अर्थ से भिन्न अर्थ जो वक्ता या लेखक का होता है [को०] ।

तात्विक—वि० [सं० तात्त्विक] १. तत्व संबंधी । २ तत्वज्ञान युक्त । जैसे, तात्विक दृष्टि । ३ यथार्थ ।

तात्स्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी के बीच में रहने का भाव । एक वस्तु के बीच दूसरी वस्तु की स्थिति । २. एक व्यंजनात्मक उपाधि जिसमे जिस वस्तु का कथन होता है, उस वस्तु में रहनेवाली वस्तु का ग्रहण होता है । जैसे, 'सारा घर गया है' से अभिप्राय है कि घर के सब लोग गए हैं ।

तार्थे㉑—सर्व० [हिं० ता+थें (प्रत्य०)] इससे । इस कारण से । उ०—धरे रूप जेते तिते सर्व जानौं । लगे वार कहते न तार्थे बखानौं ।—पृ० रा०, २ । १९५ ।

ताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'तातायेई' ।

तादर्थिक—वि० [सं०] उसके अर्थ से संबद्ध [को०] ।

तादर्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उद्देश्य या लक्ष्य की एकता । २ अर्थ की समानता । ३ उद्देश्य [को०] ।

तादात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक वस्तु का मिलकर दूसरी वस्तु के रूप में हो जाना । तत्स्वरूपता । अभेद संबंध ।

यौ०—तादात्म्यानुभूति=तादात्म्य की अनुभूति । तत्स्वरूप की अनुभूति । उ०—प्रकृति से तादात्म्यानुभूति को सरल कामना की कई पंक्तियों में प्रतिबिंबित हुई है ।—सा० समीक्षा, पृ० २६० ।

तादात्विक (राजा)—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार । वह राजा जिसका खजाना खाली रहता हो । जितना धन राजकर आदि मे मिले, उसको खर्च कर डालनेवाला ।

विशेष—आजकल के राज्य बहुधा इसी प्रकार के होते हैं । ये प्रबंध में व्यय करने के लिये ही धन एकत्र करते हैं ।

तादाद—संज्ञा स्त्री० [अ० तअदाद] संख्या । गिनती । शुमार ।

तादृक्ष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृक्षी] दे० 'तादृश' [को०] ।

तादृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृशी] उसके समान । वैसा ।

तादृसो㉑—वि० [सं० तादृशी] तादृश । वैसी ही । उ०—जो याहू गाम मे एक वैष्णव तादृसो चर्चा करन और श्रीकृष्ण स्मरन करन आवत है । दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २९५ ।

ताधा—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तातायेई' । उ०—भृकुटी धनुष नैन सर साधे वदन विकास अगाधा । चंचल चपल चारु अवलोकनि काम नचावति ताधा ।—सूर (शब्द०) ।

तान—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तानने का भाव या क्रिया । खींच । फैलाव । विस्तार । जैसे, भौंरों की तान । उ०—जल मैं मिलि के नभ मवनी लौं तान तनावति ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५५ ।

यौ०—खींचतान ।

२ गाने का एक अंग । अनुलोम विलोम गति से गमन । मूर्छना आदि द्वारा राग या स्वर का विस्तार । अनेक विभाग करके सुर का खींचना । लय का विस्तार । आलाप । उ०—छूटे तान पखेरा दीन्हा । ठाढ़े भगत तहँ गावन लीन्हा ।—कबीर म०, पृ० ४६६ ।

विशेष—संगीत दामोदर के मत से स्वरों से उत्पन्न तान ४९ हैं । इन ४९ तानों से भी ८३०० कूट तान निकले हैं । किसी किसी मत से कूट तानों की संख्या ५०४० भी मानी गई है ।

मुहा०—तान उड़ाना=गीत गाना । अलापना । तान तोड़ना=लय को खींचकर झटके के साथ समय पर विराम देना ।

किसी पर तान तोड़ना = किसी को लक्ष्य करके खेद या क्रोधसूचक बात कहना। आक्षेप करना। बौछार छोड़ना। तान भरना, मारना, लेना = गाने में लय के साथ सुरों को खींचना। अलापना। तान की आन = साराश। खुलासा। सौ बात की एक बात।

३ ज्ञान का विषय। ऐसा पदार्थ जिसका बोध इंद्रियों आदि को हो। ४ कबच का तान। -(गडेरिए)। ५ आटे का हलड़ा। लहर। तरग। -(लश०)। ६. लोहे की छड़ जिसे पलंग या हौदे में मजबूती के लिये लगाते हैं। (७) एक प्रकार का पेड़। (८) सूत्र। सूत। धागा (को०)। (६) एकरस स्वर। एक ही प्रकार का स्वर (को०)।

तानकर्म—सञ्ञा पुं० [सं० तानकर्मन्] १ गाने के पहले किया जानेवाला आलाप। २. मूल स्वर को ग्रहण करने के लिये स्वर-साधना [को०]।

तानटप्पा—संज्ञा पुं० [हिं० तान + टप्पा] संगीत। गाना बजाना। उ०—और यहाँ होता क्या है? वही समस्यापूर्ति, वही या तो खड़खड़ भड़भड़ और तानटप्पा।—कुकुम (भू०), पृ० २।

तानतरंग—सज्ञा स्त्री० [सं० तानतरङ्ग] अलापचारी। लय की लहर।

तानना—क्रि० स० [सं० तान (= विस्तार)] १. किसी वस्तु को उसकी पूरी लबाई या चौड़ाई तक बढ़ाकर ले जाना। फैलाने के लिये जोर से खींचना। किसी वस्तु को जहाँ की तहाँ रखकर उसके किसी छोर, कोने या अंश को जहाँ तक हो सके, बलपूर्वक आगे बढ़ाना। जैसे, रस्सी तानना। उ०—इक दिन द्रौपदि नग्न होत है, चीर दुसासन तान।—सतवाणी० पृ० ६७।

विशेष—'तानना' और 'खीचना' में यह अतर है कि तानने में वस्तु का स्थान नहीं बदलता। जैसे, खूँटे में बँधी हुई रस्सी तानना। पर खींचना' किसी वस्तु को इस प्रकार बढ़ाने को भी कहते हैं जिसमें वह अपना स्थान बदलती है। जैसे, गाड़ी खीचना, पखा खीचना।

सयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर = बलपूर्वक। जोर से। जैसे, तानकर तमाचा मारना। उ०—सतगुरु मारा तानकर, सब्द सुरंगी बान।—कबीर सा०, पृ० ८।

२ किसी सिमटी या लिपटी हुई वस्तु को खीचकर फैलाना। बलपूर्वक विस्तीर्ण करना। जोर से बढ़ाकर पसारना। जैसे, पाल तानना, छाता तानना, चद्दर तानकर सोना, कपड़े को तानकर झोल मिटाना।

विशेष—'तानना' और 'फैलाना' में यह अतर है कि 'तानना' क्रिया में कुछ बल लगाने या जोर से खींचने का भाव है।

सयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर सुतना = दे० 'तानकर सोना'। उ०—भेद वह जो कि भेद खो देवे, ज्ञान पाया न तानकर सुते।—चोखे०, पृ० ४। तानकर सोना = खूब हाथ पैर फैलाकर निश्चित सोना। आराम से सोना।

३. किसी परदे की सी वस्तु को ऊपर फैलाकर बाँधना या ठहराना। छाजन की तरह ऊपर किसी प्रकार का परदा लगाना। जैसे, चँदोवा तानना, चाँदनी तानना, तबू तानना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

४ डोरी, रस्सी आदि को एक आधार से दूसरे आधार तक इस प्रकार खीचकर बाँधना कि वह ऊपर अधर में एक सीधी लकीर के रूप में ठहरी रहे। एक ऊँचे स्थान से दूसरे ऊँचे स्थान तक ले जाकर बाँधना। जैसे,—(क) यहाँ से वहाँ तक एक डोरी तान दो तो कपड़ा फैलाने का सुबीता हो जाय। (ख) जुलाहे का सूत तानना।

संयो० क्रि०—देना।

५. मारने के लिये हाथ या कोई हथियार उठाना। प्रहार के लिये अस्त्र उठाना। जैसे, तमाचा तानना, डडा तानना। ६ किसी को हानि पहुँचाने या दंड देने के अभिप्राय से कोई बात उपस्थित कर देना। किसी के खिलाफ कोई चिट्ठी पत्री या दरखास्त आदि भेजना। जैसे,—एक दरखास्त तान देंगे, रह जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

७ कैदखाने भेजना। जैसे,—हाकिम ने उसे दो बरस को तान दिया। ८ ऊपर उठाना। ऊँचे ले जाना।

संयो० क्रि०—देना।

तानपूरा—सज्ञा पुं० [सं० तान + हिं० पूरा] सितार के आकार का एक बाजा जिसे गवैए कान के पास लगाकर गाने के समय छेड़ते जाते हैं या उनके पार्श्व में बैठकर कोई छेड़ता जाता है।

विशेष—यह गवैयों को सुर बाँधने में बड़ा सहारा देता है; अर्थात् सुर में जहाँ विराम पड़ता है, वहाँ यह उसे पूरा करता है। इसमें चार तार होते हैं दो लोहे के और दो पीतल के।

तानबाज—सज्ञा पुं० [हिं० तान + बाज] सगीताचार्य। उ०—गंग ते न गुनी तानसेन ते न तानबाज, मान ते न राजा औ न दाता बीरबर ते।—अकबरी०, पृ० ३५।

तानबान(५)†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तानाबाना'। उ०—जोलहा तानबान नहिं जानै फाट बिनै दस ठाईं हो।—कबीर (शब्द०)

तानव—सज्ञा पुं० [सं०] १ तनुता। कृशता। २ स्वल्पता। लघुता। छोटाई [को०]।

तानसेन—सज्ञा पुं० [?] अकबर बादशाह के समय का एक प्रसिद्ध गवैया जिसके जोड़ का आजतक कोई नहीं हुआ।

विशेष—अबुलफजल ने लिखा है कि इधर हजार वर्षों के बीच ऐसा गायक भारतवर्ष में नहीं हुआ। यह जाति का ब्राह्मण था। कहते हैं, पहले इसका नाम त्रिलोचन मिश्र था। इसे सगीत से बहुत प्रेम था, पर गाना इसे नहीं आता था। जब वृंदावन के प्रसिद्ध स्वामी हरिदास के यहाँ गया और उनका शिष्य हुआ, तब यह सगीत

में कुशल हुआ। धीरे धीरे इसकी ख्याति बढ़ने लगी। पहले यह भाट के राजा रामचंद्र बघेला के दरबार में नौकर हुआ। कहा जाता है, वहाँ इसे करोड़ों रुपए मिले। इब्राहीम लोदी ने इसे अपने यहाँ बहुत बुलाना चाहा पर यह नहीं गया। अंत में अकबर ने राजसिंहासन पर बैठने के दस वर्ष पीछे इसे अपने दरबार में सम्मानपूर्वक बुलाया। जिस दिन पहले पहल इसने अपना गाना बादशाह को सुनाया, बादशाह ने इसे दो लाख रुपए दिए। बादशाह के दरबार में आने के कुछ दिन पीछे यह ग्वालियर जाकर और मुहम्मद गौस नामक एक मुसलमान फकीर से कलमा पढ़कर मुसलमान हो गया। तब से यह मियाँ तानसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके मुसलमान होने के संबंध में एक जनश्रुति है। कहते हैं, पहले बादशाह के सामने यह गाता ही नहीं था। एक दिन बादशाह ने अपनी कन्या को इसके सामने खड़ा कर दिया। उसके सौंदर्य पर मुग्ध होने के कारण इसकी प्रतिभा विकसित हो गई और इसने ऐसा अपूर्व गाना सुनाया कि बादशाहजादी भी मोहित हो गई। अकबर ने दोनों का विवाह कर दिया। तानसेन की मृत्यु के संबंध में भी एक अलौकिक घटना प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसकी अद्वितीय शक्ति को देखकर दरबार के और गवैए इससे जला करते थे और इसे मार डालने के यत्न में रहा करते थे। एक दिन सबने मिलकर यह सोचा कि यदि तानसेन दीपक राग गावे तो आपसे आप भस्म हो जायगा। इस परामर्श के अनुसार एक दिन सब गवैयों ने दरबार में दीपक राग की बात छेड़ी। बादशाह को अत्यंत उत्कंठा हुई और उसने दीपक राग गाने के लिये कहा। सब गवैयों ने एक स्वर से कहा कि तानसेन के सिवा दीपक राग और कोई नहीं गा सकता। तब बादशाह ने तानसेन को आज्ञा दी। तानसेन ने बहुत कहा कि यदि आप मुझे चाहते हों तो दीपक राग न गवावें। जब बादशाह ने न माना तब उसने अपनी लड़की को मलार राग गाने के लिये पास ही बैठा लिया जिसमें दीपक राग से प्रज्वलित अग्नि का मलार राग द्वारा शमन हो जाय। दीपक राग गाते ही दरबार के सब बुझे हुए दीपक जल उठे और तानसेन भी जलने लगा। तब उसकी लड़की ने मलार राग छेड़ा। पर अपने पिता की दुर्दशा देख उसका सुर बिगड़ गया और तानसेन जलकर भस्म हो गया। उसका शव ग्वालियर में ले जाकर दफन किया गया। उसकी कब्र के पास एक इमली का पेड़ है। आज दिन भी गवैए इस कब्र पर जाते हैं और इमली के पत्तों को चबाते हैं। उनका विश्वास है कि इससे कंठरस उत्पन्न होता है। गवैयों में तानसेन का यहाँ तक सम्मान है कि उसका नाम सुनते ही वे अपने कान पकड़ते हैं। तानसेन का बनाया हुआ एक ग्रंथ भी मिला है।

ताना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तानना] १ कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल होता है। वह तार या सूत जिसे जुलाहे कपड़े की लंबाई के अनुसार फैलाते हैं। उ०—अस जोलहा कर मरम न जाना। जिन जग आइ पसारल ताना।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—ताना बाना।

क्रि० प्र०—तानना।—फैलाना।

२ दरी, कालीन बुनने का करघा।

ताना[2]—क्रि० स० [हिं० ताव + ना (प्रत्य०)] १. ताव देना। तपाना। गरम करना। उ०—(क) कर कपोल अंतर नहिं पावत अति उसास तन ताइए (शब्द०)। (ख) देव दिखावति कंचन सो तन औरन को मन तावै अगोनी।—देव (शब्द०)। २ पिघलाना। जैसे, घी ताना। ३. तपाकर परीक्षा करना (सोना आदि धातु)। ४ परीक्षा करना। जाँचना। आजमाना।

ताना[3]—क्रि० स० [हिं० तावा, तवा] गीली मिट्टी, आटे आदि से ढक्कन चिपकाकर किसी बरतन का मुँह बंद करना। मूँदना। उ०—तिन श्रवनन पर दोष निरंतर सुनि भरि भरि तावो।—तुलसी (शब्द०)।

ताना[4]—संज्ञा पुं० [अ० तग्रनह्] वह लगती हुई बात जिसका अर्थ कुछ छिपा हो। आक्षेप वाक्य। बोली ठोली। व्यंग्य। कटाक्ष। २. उपालंभ। गिला (को०)। ३ निंदा। बुराई (को०)।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

मुहा०—ताने देना = व्यंग्य करना। कटु बात कहना। उ०—मुँह खोल के दर्द दिल किसी से कह नहीं सकती कि हमजोलियाँ ताने देंगी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३३।

तानापाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताना = पाई (= ताने का सूत फैलाने का ढाँचा)] बार बार किसी स्थान पर आना जाना। उसी प्रकार लगातार फेरे लगाना जिस प्रकार जुलाहे ताने का सूत पाई पर फैलाने के लिये लगाते हैं।

तानाबाना—संज्ञा पुं० [हिं० ताना + बाना] कपड़ा बुनने में लंबाई और चौड़ाई के बल फैलाए हुए सूत।

मुहा०—ताना बाना करना = व्यर्थ इधर से उधर आना जाना। हेरा फेरी करना।

तानारीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तान + अनु० रीरी] साधारण गाना। राग। अलाप।

तानाशाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ अब्बुलहसन बादशाह का दूसरा नाम। यह बादशाह स्वेच्छाचारी था। २ ऐसा शासक जो मनमाने ढंग से शासन करता हो और शासितों के हित का ध्यान न रखता हो। निरंकुश शासक। ३ स्वेच्छाचारी व्यक्ति। मनमाने ढंग से और जोर जबर्दस्ती काम करनेवाला आदमी।

तानाशाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० तानाशाह] स्वेच्छाचारिता। मनमानी। जोर जबर्दस्ती। उ०—जातीय जनतांत्रिक संयुक्त मोर्चा कांग्रेसी सरकार की तानाशाही को समाप्त करने तथा देश को विदेशी हस्तक्षेप से बचाने के निमित्त खड़ा हुआ था।—नेपाल०, पृ० १८९।

तानी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताना] कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल हो।

तानी[2]—संज्ञा स्त्री [हिं० तानना] अँगरखे या चोली आदि की

तनी। बंद। उ०—कंचुकि चूर, चूर भइ तानी। टूटे हार मोति छहरानी।—जायसी (शब्द०)।

तानूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का भँवर। २ वायु का भँवर।

तानो—संज्ञा पुं० [देश०] जमीन का टुकड़ा जिसमें कई खेत हों। चक।

तान्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. तनुज। पुत्र। २ एक ऋषि का नाम जो तनु के पुत्र थे।

ताप—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्राकृतिक शक्ति जिसका प्रभाव पदार्थों के पिघलने, भाप बनने आदि व्यापारो में देखा जाता है और जिसका अनुभव अग्नि, सूर्य की किरण आदि के रूप मे इद्रियो को होता है। यह अग्नि का सामान्य गुण है जिसकी अधिकता से पदार्थ जलते या पिघलते हैं। उष्णता। गर्मी। तेज।

विशेष—ताप एक गुण मात्रा है, कोई द्रव्य नही है। किसी वस्तु को तपाने से उसकी तौल में कुछ फर्क नही पड़ता। विज्ञानानुसार ताप गतिशक्ति का ही एक भेद है। द्रव्य के अणुओं मे जो एक प्रकार की हलचल या क्षोभ उत्पन्न होता है, उसी का अनुभव ताप के रूप में होता है। ताप सब पदार्थों मे थोड़ा बहुत निहित रहता है। जब विशेष अवस्था में वह व्यक्त होता है, तब उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। जब शक्ति के संचार मे रुकावट होती है, तब वह ताप का रूप धारण करती है। दो वस्तुएँ जब एक दूसरे से रगड़ खाती हैं तब जिस शक्ति का रगड़ में व्यय होता है, वह उष्णता के रूप मे फिर प्रकट होती है। ताप की उत्पत्ति कई प्रकार से होती है। ताप का सबसे बड़ा आधार सूर्य है जिससे पृथ्वी पर धूप की गरमी फैलती है। सूर्य के अतिरिक्त ताप संघर्षण (रगड़), ताड़न तथा रासायनिक योग से भी उत्पन्न होता है। दो लकड़ियों को रगड़ने से और चकमक पत्थर आदि पर हथौड़ा मारने से आग निकलते बहुतों ने देखा होगा। इसी प्रकार रासायनिक योग से अर्थात् एक विशेष द्रव्य के साथ दूसरे विशेष द्रव्य के मिलने से भी आग या गरमी पैदा हो जाती है। चूने की डली में पानी डालने से, पानी में तेजाब या पोटाश डालने से गरमी या लपट उठती है।

ताप का प्रधान गुण यह है कि उससे पदार्थों का विस्तार कुछ बढ़ जाता है अर्थात् वे कुछ फैल जाते हैं। यदि लोहे की किसी ऐसी छड़ को लें जो किसी छेद में कसकर बैठ जाती हो और उसे तपावें तो वह उस छेद में नहीं घुसेगी। गरमी में किसी तेज चलती हुई गाड़ी के पहिए की हाल जब ढीली मालूम होने लगती है, तब उसपर पानी डालते हैं जिसमें उसका फैलाव घट जाय। रेल की लाइनों के जोड़ पर जो थोड़ी सी जगह छोड़ दी जाती है, वह इसीलिये जिसमें गरमी में लाइन के लोहे फैलकर उठ न जायँ। जीवों को जो ताप का अनुभव होता है वह उनके शरीर की अवस्था के अनुसार होता है, अत: स्पर्शेंद्रिय द्वारा ताप का ठीक ठीक अंदाज सदा नहीं हो सकता। इसी से ताप की मात्रा नापने के लिये थर्मामीटर नाम का एक यंत्र बनाया गया है जिसके भीतर पारा रहता है जो अधिक गरमी पाने से ऊपर चढ़ता है और गरमी कम होने से नीचे गिरता है।

२. आँच। लपट। ३ ज्वर। बुखार।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

यौ०—तापतिल्ली।

४ कष्ट। दुःख। पीड़ा।

विशेष—ताप तीन प्रकार का माना गया है—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। वि० दे० 'दुःख'। उ०—दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। रामराज काहुहि नहिं। ब्यापा।—तुलसी (शब्द०)।

५ मानसिक कष्ट। हृदय का दुःख (जैसे, शोक, पछतावा आदि)। उ०—एकही अलख जाप ताप कूँ हरतु है।—संतवाणी०, पृ० १०७।

तापक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताप उत्पन्न करनेवाला। उ०—तापक जो रवि सोषत है नित कज ज्यूँ ताहि देख्यां विकसाहीं।—राम० धर्म०, पृ० ६२। २. रजोगुण।

विशेष—रजोगुण ही ताप या दु:ख का प्रतिकारण माना जाता है।

३ ज्वर। बुखार।

तापक्रम—संज्ञा पुं० [सं० ताप+क्रम] १ शरीर के तापमान का चढ़ाव उतार। २ वायुमंडल की गरमी का उतार चढ़ाव [को०]।

तापड़ना—क्रि० स० [हिं० ताप] संताप देना। उ०—सेन अकब्बर तापड़े आप गयो खह मग्ग।—रा० रू०, पृ० १०२।

तापति—अव्य० [सं० तत्पश्चात्] उसके बाद। तत्पश्चात्। उ०—सुरत रस सुचेतन बालमु तापति सबे असार।—विद्यापति, पृ० २३६।

तापतिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताप (=ज्वर) + तिल्ली] ज्वरयुक्त प्लीहा रोग। पिलही बढ़ने का रोग।

तापती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सूर्य की कन्या तापी। २, एक नदी का नाम जो सतपुड़ा पहाड़ से निकलकर पश्चिम की ओर को बहती हुई खंभात की खाड़ी में गिरती है।

विशेष—स्कंदपुराण के तापी खंड मे तापती के विषय में यह कथा लिखी है। अगस्त्य मुनि के शाप से वरुण संवरण नामक सोमवंशी राजा हुए। उन्होंने घोर तप करके सूर्य की कन्या तापी से विवाह किया जो अत्यंत रूपवती और तापनाशिनी थी। वही तापी के नाम से प्रवाहित हुई। जो लोग उसमें स्नान करते हैं, उनके सब पातक छूट जाते हैं। आषाढ़ मास में इसमें स्नान करने का विशेष माहात्म्य है। तापीखंड में तापती के तट पर गजतीर्थ, अक्षमाला तीर्थ आदि अनेक तीर्थों का होना लिखा है। इन तीर्थों के अतिरिक्त १०८ महालिंग भी इस पुनीत नदी के तट पर भिन्न भिन्न स्थानों में स्थित बतलाए गए हैं।

तापत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के ताप—आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक।

तापत्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का एक नाम [को०]।

तापत्य[2]—वि० तापती संबंधी [को०]।

तापद—वि० [सं०] कष्टदायक [को०]।

तापदुःख—संज्ञा पुं० [सं०] पातंजल दर्शन के अनुसार दुःख का एक भेद।

विशेष—पातंजल दर्शन में तीन प्रकार के दुःख माने गए हैं, तापदुःख, संस्कारदुःख और परिणामदुःख। दे० 'दुःख'।

तापन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप देनेवाला। २. सूर्य। ३. कामदेव के पाँच बाणों में से एक। ४. सूर्यकांत मणि। ५ अर्क वृक्ष। मदार। ६. ढोल नाम का बाजा। ७. एक नरक का नाम। ८ तंत्र में एक प्रकार का प्रयोग जिससे शत्रु को पीडा होती है। ९ सुवर्ण। सोना (को०)। १०. कष्ट देनेवाला (को०)। ११. ग्रीष्म ऋतु (को०)। १२ जलानेवाला (को०)। १३. भर्त्सना करनेवाला (को०)। १४ अवसाद। कष्ट। विषाद (को०)।

तापन[2]—वि० १. कष्टद। कष्टकारक। २ गरमी देनेवाला। तापकारक [को०]।

तापना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्रता। शुद्धता [को०]।

तापना[2]—क्रि० अ० [सं० तापन] आग की आँच से अपने को गरम करना। अपने को आग के सामने गरमाना। कहीं कहीं धूप लेने के अर्थ में भी बोलते हैं, जैसे, वह ताप रहा है।

विशेष—'आग तापना' आदि प्रयोगों को देख अधिकांश लोगों ने इस क्रिया को सकर्मक माना है। पर आग इस क्रिया का कर्म नहीं है, क्योंकि आग नहीं गरम की जाती है, गरम किया जाता है शरीर। 'शरीर तापते हैं', 'हाथ पैर तापते हैं' ऐसा नहीं बोला जाता। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि इस क्रिया का फल कर्ता से अन्यत्र कहीं नहीं देखा जाता, जैसे कि 'तपाना' में देखा जाता है। 'आग तापना' एक संयुक्त क्रिया है जिसमें आग तृतीयांत पद (करण) है।

तापना[3]—क्रि० स० १ शरीर गरम करने के लिये जलाना। फूँकना।

संयो० क्रि०—डालना।

२. उड़ाना। नष्ट करना। बरबाद करना। जैसे,—वे सारा धन फूँक तापकर किनारे हो गए।

यौ०—फूँकना तापना।

तापना(पु)[4]—क्रि० स० तपाना। गरम करना। उ०—तापी सब भूमि यों कृपान भासमान सों।—भूषण ग्रं०, पृ० ४१।

तापनीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक उपनिषद्। २ एक प्राचीन तौल जो एक निष्क के बराबर थी [को०]।

तापनीय[2]—वि० सोने से युक्त। सुनहला [को०]।

तापमान—संज्ञा पुं० [सं० ताप+मान] थर्मामीटर या गरमी मापने के यंत्र द्वारा मापी गई शरीर या वायुमंडल की ऊष्मा।

तापमान यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तापमान+यन्त्र] उष्णता की मात्रा मापने का एक यंत्र। गरमी मापने का एक यंत्र। गरमी मापने का एक औजार।

विशेष—यह यंत्र शीशे की एक पतली नली में कुछ दूर तक पारा भरकर बनाया जाता है। अधिक गरमी पाकर यह पारा लकीर के रूप में ऊपर की ओर चढ़ता है और कम गरमी पाकर नीचे की ओर घटता है। गली हुई बरफ या बरफ के पानी में नली को रखने से पारे की लकीर जिस स्थान तक नीचे आती है, एक चिह्न वहाँ लगा देते हैं और खौलते हुए पानी में रखने से जिस स्थान तक ऊपर चढ़ती है, दूसरा चिह्न वहाँ लगा देते हैं। इन दोनों के बीच की दूरी को १०० अथवा १८० बराबर भागों में चिह्नों के द्वारा बाँट देते हैं। ये चिह्न अंश या डिग्री कहलाते हैं। यंत्र को किसी वस्तु पर रखने से पारे की लकीर जितने अंशों तक पहुँची रहती है, उतने अंशों की गरमी उस वस्तु में कही जाती है।

तापयान—वि० [सं०] उष्ण। जलता हुआ [को०]।

तापला[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताप] क्रोध।—(डिं०)।

तापल[2]—वि० गरम। उत्तप्त। तपा हुआ। उ०—एक कहा यह जीउ पियारा। तापल रहइ सरीर मझारा।—इंद्रा०, पृ० ५८।

तापव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० तापव्यञ्जन] वे गुप्तचर या खुफिया पुलिस के आदमी जो तपस्वियों या साधुओं के वेश में रहते थे।

विशेष—कौटिल्य के समय में ये समाहर्ता के अधीन होते थे। ये किसानों, गोपों, व्यापारियों तथा भिन्न भिन्न अध्यक्षों के ऊपर दृष्टि रखते थे तथा शत्रु राजा के गुप्तचरों और चोर डाकुओं का पता भी लगाया करते थे।

तापश्चित—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम।

तापस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तापसी] १ तप करनेवाला। तपस्वी। उ०—सखी! कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६८४। २ तमाल। तेजपत्ता। ३ दमनक। दौना नामक पौधा। ४ एक प्रकार की ईख। ५ बक। बगला।

तापस[2]—वि० तपस्या या तपस्वी से संबंधित।

तापसक—संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य या छोटा तपस्वी। वह तपस्वी जिसकी तपस्या थोड़ी हो।

तापसज—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता। तेजपात।

तापसतरु—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगोट वृक्ष। इंगुआ का पेड़। इंगुदी वृक्ष।

विशेष—तपस्वी लोग वन में इंगुदी का ही तेल काम में लाते थे, इसी से इसका ऐसा नाम पड़ा।

तापसद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी वृक्ष।

तापसप्रिय[1]—वि० [सं०] १. जो तपस्वियों का प्रिय हो। २ जिसे तपस्वी प्रिय हों।

तापसप्रिय[2]—संज्ञा पुं० १ इंगुदी वृक्ष। २ चिरौंजी का पेड़।

तापसप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर या मुनक्का। दाख।

तापसवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तापसतरु'।

तापसव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० तापसव्यञ्जन] दे० 'तापव्यंजन'।

तापसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तपस्या करनेवाली स्त्री। २. तपस्वी की स्त्री।

तापसेक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईख।

तापसेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनक्का। दाख [को०]।

तापस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ तापस धर्म। तपस्या। २. वैराग्य। सन्यास [को०]।

तापस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी प्रकार की उष्णता पहुँचाकर उत्पन्न किया हुआ या ज्वरादि की उष्णता के कारण उत्पन्न पसीना। २ गरम बालू, नमक, वस्त्र, हाथ, आग की आँच आदि से सेंककर पसीना निकालने की क्रिया।

तापस्स(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तापस-१'। उ०—जगम इक तापस्स मिल्यो वरदार सुदृध मन।—पृ० रा०, ६। १८२।

तापहर—वि० [सं० ताप + हिं० हरना] तपन या दाह को दूर करनेवाला। उ०—तापहर हृदयवेग लग्न एक ही स्मृति में, कितना अपनाव।—अनामिका, पृ० ६६।

तापहरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्यजन का नाम। एक पकवान। (भावप्रकाश)।

विशेष—उरद की बरी मिले हुए धोए चावल को हलदी के साथ घी मे तले या पकावे। तल जाने पर उसमे थोड़ा जल डाल दे। जब रसा तैयार हो जाय, तब उसे अदरक और हींग से बघारकर उतार ले।

तापा—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना ?] १ मछली मारने का टक्षा (लश०)। २. मुरगी का दरबा।

तापायन—संज्ञा पुं० [सं०] वाजसनेयी शाखा का एक भेद।

तापिंछ—संज्ञा पुं० [सं० तापिञ्छ] दे० 'तापिंज'।

तापिंज—संज्ञा पुं० [सं० तापिञ्ज] १ सोनामक्खी। २ श्याम तमाल।

तापिच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] तमाल वृक्ष। उ०—बड़ी तापिच्छ शाखा सी भुजाएँ—अनुज की ओर दाएँ ओर बाएँ।—साकेत, पृ० ६३।

तापित—वि० [सं०] १ तापयुक्त। जो तपाया गया हो। २. दुःखित। पीड़ित।

तापिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप ?] अनाहत चक्र की एक मात्रा।

तापी[1]—वि० [सं० तापिन्] १ ताप देनेवाला। २ जिसमें ताप हो।

तापी[2]—संज्ञा पुं० बुद्धदेव।

तापी[3]—संज्ञा स्त्री० १ सूर्य की एक कन्या। दे० 'तापती'। २ तापती नदी। ३ यमुना नदी।

तापीज—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी। माक्षिक धातु।

तापुर—संज्ञा पुं० [पालि ?] महाबोधिसत्व का दूसरा नाम। उ०—नवदीक्षित भिक्षु बोधिसत्व होने की प्रतिज्ञा करते हैं और उसके बाद से उनके शिष्य उन्हें 'तापुर' या महाबोधिसत्व कहकर संबोधित करते हैं।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २१४।

तापेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० तापेन्द्र] सूर्य। उ०—नमो पातु तापेंद्र देव प्रतीच। नमो मे रवि रक्ष रक्षेंदु दीर्च।—विश्राम (शब्द०)

ताप्ती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तापती] दे० 'तापती'।

ताप्ती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताफ्ता'

ताप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी।

ताफता—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताफ्तह्] दे० 'ताफ्ता'। उ०—छुटी न सिसुता की झलक झलक्यो जोवन अंग। दीपत देह दुहून मिलि दिपति ताफता रंग।—बिहारी (शब्द०)।

ताफ्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताफ्तह्] एक प्रकार का चमकदार रेशमी कपड़ा। धूप छाँह रेशमी कपड़ा।

ताव—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. ताप। गरमी। २ चमक। आभा। दीप्ति। ३. शक्ति। सामर्थ्य। हिम्मत। मजाल। जैसे,—उनकी क्या ताब कि आपके सामने कुछ बोलें? ४. सहन करने की शक्ति। मन को वश में रखने की सामर्थ्य। धैर्य। जैसे,—अब इतनी ताब नहीं है कि दो घड़ी ठहर जायँ।

तावड़तोड़—क्रि० वि० [अनु०] एक के उपरांत तुरंत दूसरा, इस क्रम से। अखंडित क्रम से। लगातार। बराबर।

तावनाक—वि० [फा०] प्रकाशमान। ज्योतिर्मय। चमकता हुआ। उ०—बचन का अजब मय यो है तावनाक। फहमदार के गोश का जिस्म खुश्क।—दक्खिनी०, पृ० २६७।

तावाँ—वि० [फ़ा०] ज्योतिर्मय। प्रकाशमान। दीप्त। रोशन।

तावा[1]—वि० [अ० तावम्] दे० 'ताबे'।

तावा[2]—संज्ञा पुं० अधिकार। हक। उ०—राके वंश जाया भूमि ताबा की अढाई।—शिखर०, पृ० २७।

ताविश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गर्मी। उष्णता। तपन। उ०—बुज हुस्न के खुरशीद का तिरलोक मे ताविश पड़े।—दक्खिनी०, पृ० ३२१।

तावी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताब] ताप। गरमी। उष्णता। उ०—मक्का मिस्त हुज्ज को देखा। अबरा आब और ताबी।—घट०, पृ० २११।

तावीज—संज्ञा पुं० [अ० ताअवीज़] दे० 'तावीज'। उ०—हीरा मुज तावीज में सोहत है यह बान।—स० सप्तक, पृ० १८६।

तावीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्वप्न आदि का शुभाशुभ वर्णन। उ०—इबादत मे रहता है रोशन जमीर। बतावेगा ताबीर वह मर्द पीर।—दक्खिनी०, पृ० ३००।

तावूत—संज्ञा पुं० [अ०] वह संदूक जिसमें मुरदे की लाश रखकर गाड़ने को ले जाते हैं। मुरदे का संदूक। उ०—कुश्तए हसरते दीदार हैं या रब किसके। नख्ल तावूत में जो फूल लगे नरगिस्के।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० ८५।

तावे[1]—वि० [अ० ताबअ] १ वशीभूत। अधीन। मातहत। जैसे,—जो तुम्हारे ताबे हो, उसे आँख दिखाओ। २. आज्ञानुवर्ती हुक्म का पाबंद।

यौ०—ताबेदार।

तावेगम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताब + अ० ग़म] दुःख सहने की शक्ति [को०]।

तावेजब्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताब + अ० ज़ब्त] प्रेम की पीड़ा या दुःख सहने की शक्ति [को०]।

ताबेदार¹—वि० [अ० ताबअ्+फा० दार (प्रत्य०) ।] आज्ञाकारी । हुक्म का पाबंद ।

ताबेदार²—संज्ञा पुं० नोकर । सेवक । अनुचर ।

ताबेदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ सेवकाई । नौकरी । २. सेवा । टहल ।

क्रि० प्र०—करना ।—बजाना ।

ताम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष । विकार । उ०—ऊढ़त रहत बिना पर जामे त्यागी कनक ले ताम ।—गुलाल०, पृ० १६ । २. मनोविकार । चित्त का उद्वेग । व्याकुलता । बेचैनी । उ०—(क) मिटयो काम तनु ताम तुरत ही रिझई मदन गोपाल ।—सूर (शब्द०) । (ख) तरुतमाल तर तरुन कन्हाई दूरि करन युवतिन तनु ताम ।—सूर (शब्द०) । ३. दु.ख । क्लेश । व्यथा । कष्ट । उ०—देखत पय पीवत बलराम । तातो लगत डारि तुम दीनो दावानल पीवत नहिं ताम ।—सूर (शब्द०) । ४. ग्लानि । ५ इच्छा । चाहना (को०) । ६. थकान । क्लाति (को०) ।

ताम²—वि० १. भीषण । डरावना । भयंकर । २ दु.खी । व्याकुल । हैरान । उ०—अति सुकुमार मनोहर मूरति ताहि करति तुम ताम । —सूर (शब्द०) ।

ताम³—संज्ञा पुं० [सं० तामस] १ क्रोध । रोष । गुस्सा । उ०—(क) सूरदास प्रभु मिलहु कृपा करि दूरि करहु मन तामहि ।—सूर (शब्द०) । (ख) सूर प्रभु जेहि सदन जात न सोइ करति तनु ताम ।—सूर (शब्द०) । २ अंधकार । अँधेरा । उ०—जननि कहति उठहु श्याम, विगत जानि रजनि ताम, सूरदास प्रभु कृपालु तुमको कछु लैवे ।—सूर (शब्द०)

ताम(पु)—अव्य० [प्राकृत] १. तब तक । २. तब । उस समय । उ०—ताम हस आयो समपि कह्यो अहो शशिवृत्त ।—पृ० रा०, २५ । २९३ ।

तामजान—संज्ञा पुं० [हिं० थामना+सं० यान (=सवारी)] एक प्रकार की छोटी खुली पालकी । एक हलकी सवारी जो काठ की लबी कुरसी के आकार की होती है और जिसे कहार उठाकर ले चलते हैं ।

तामझाम—संज्ञा पुं० [हिं० तामजान] धूमधाम । शान शौकत । दिखावटी प्रदर्शन ।

तामड़ा¹—वि० [सं० ताम्र, हिं० ताँबा+ड़ा (प्रत्य०)] ताँबे के रग का । ललाई लिए हुए भूरा । जैसे, तामड़ा रग, तामड़ा कबूतर ।

तामड़ा²—संज्ञा पुं० १. ऊदे रंग का एक प्रकार का पत्थर या नगीना । २. एक तरह का कागज । ३ खल्वाट मस्तक । गजी खोपड़ी । ४. स्वच्छ आकाश । ५ बहुत पकी हुई ईंट ।

तामदान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तामजान' । उ०—श्री दर्शनेश्वरनाथ को पुष्पांजलि चढ़ाने के लिये तामदान पर सवार होकर गए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८१ ।

तामना†—क्रि० स० [देश०] खेत जोतने के पूर्व खेत की घास उखाड़ना ।

तामर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी । २ घी ।

विशेष—यह शब्द 'तामरस' शब्द को संस्कृत सिद्ध करने के लिये गढ़ा हुआ जान पड़ता है ।

तामरस—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल । उ०—सियरे बदन सूखि गए कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द वेदों में आया है तथापि आर्यभाषा का नहीं है । 'पिक' आदि के समान यह अनार्य भाषा से आया हुआ माना गया है । शबर भाष्य में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है ।

२ सोना । ३. ताँबा । ४. धतूरा । ५ सारस । ६. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण, दो जगण और एक यगण (।।।, ।ऽ।, ।ऽ।, ।ऽऽ) होता है । जैसे,—निज जय हेतु करौ रघुबीरा । तब नुति मोरी हरौ भव पीरा ।

तामरसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सरोवर जिसमें कमल हों । कमलोंवाला ताल [को०] ।

तामलकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी । भुइँआवला ।

तामलूक—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रलिप्त] वंग देश के अतर्गत एक भूभाग जो मेदिनीपुर जिले में है । वि० दे० 'ताम्रलिप्त' ।

विशेष—यह परगना गगा के मुहाने के पास पड़ता है । इस प्रदेश का प्राचीन नाम ताम्रलिप्त है । ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक यह वाणिज्य का एक प्रधान स्थल था ।

तामलेट—संज्ञा पुं० [अ० टाम+प्लेट या टंबलर] लोहे का गिलास या बरतन जिसपर चमकदार रोगन या लुक फेरा रहता है । एनेमल किया हुआ बरतन ।

तामलोट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तामलेट' ।

तामस¹—वि० [सं०] [वि०स्त्री० तामसी] १ जिसमें प्रकृति के उस गुण की प्रधानता हो जिसके अनुसार जीव क्रोध आदि नीच वृत्तियों के वशीभूत होकर आचरण करता है । तमोगुण युक्त । उ०—(क) होइ भजन नहिं तामस देहा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) विप्र साप तें दूनउँ भाई । तामस असुर देह तिन पाई । —तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—पद्मपुराण में कुछ शास्त्र तामस बतलाए गए हैं । कणाद का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल का सांख्य, जैमिनि की मीमांसा, इन सब की गणना उक्त पुराण के अनुसार तामस शास्त्रों में की गई है । इसी प्रकार बृहस्पति का चार्वाक दर्शन, शाक्य मुनि का बौद्ध शास्त्र, शकर का वेदांत इत्यादि तत्वज्ञान संबंधी ग्रंथ भी सांप्रदायिक दृष्टि से तामस माने जाते हैं । पुराणों में मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, अग्नि और स्कद ये छह तामस पुराण कहे गए हैं । सामुद्र, शख, यम, औशनस आदि कुछ स्मृतियों तथा जैमिनि, कणाद, बृहस्पति, जमदग्नि, शुक्राचार्य आदि कुछ मुनियों को भी तामस कह डाला है । इसी प्रकार प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार अनेक वस्तुओं और व्यापारों के विभाग किए गए हैं । निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि से उत्पन्न सुख को तामस सुख; पुरोहिताई, असत्प्रति-

द्रह, परनिंदा, लोभ, मोह, अहंकार आदि को तामस कर्म कहा है। विष्णु सत्वगुणमय, ब्रह्मा रजोगुणमय और शिव तमोगुणमय माने जाते हैं। उ०—ब्रह्मा राजस गुण अधिकारी शिव तामस अधिकारी।—सूर (शब्द०)।

२. अंधकार युक्त। अंधकारमय (को०)। ३. तमस् से प्रभावित या उपहत (को०)। ४ अज्ञ (को०)। ५. दुष्ट। कुटिल (को०)।

तामस²—संज्ञा पुं० १ सर्प। साँप। २. खल। ३. उल्लू। ४ क्रोध। गुस्सा। चिढ़। उ०—कहु लोकों केते पावत है सिसु पै तामस एत ?—सूर (शब्द०)। ५ अंधकार। अँधेरा। उ०—तू मन कूप दलीक पुन हिय तामस बाढ़ा।—दीनदयाल (शब्द०)। ६. अज्ञान। मोह। ७ चौथे मनु का नाम। ८. एक असुर का नाम।—(वाल्मीकि रामायण)। ९. तैंतीस प्रकार के केतु जो सूर्य और चंद्रमा के भीतर दृष्टिगोचर होते हैं। —(बृहत्संहिता)। वि० दे० 'तामसकीलक'। १० तमोगुण। उ०—भूठा है संसार सो तामस परिहरी।—परम०, पृ० ४०। ११ राहु का एक पुत्र (को०)। १२. अंधकार (को०)। १३. वह योद्धा जिसमें तमोगुण हो (को०)।

तामसकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के केतु जो राहु के पुत्र माने जाते हैं और संख्या में ३३ हैं।

विशेष—सूर्यमंडल में इनके वर्ण, आकार और स्थान को देखकर फल का निर्णय किया जाता है। ये यदि सूर्यमंडल में दिखाई पड़ते हैं, तो इनका फल अशुभ और चंद्रमंडल में दिखाई पड़ते हैं तो शुभ माना जाता है।

तामसमद्य—संज्ञा पुं० [सं०] कई बार की खींची हुई शराब।

तामसबाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र का नाम।

तामसाहंकार—संज्ञा पुं० [सं० तामसाहङ्कार] एक प्रकार का अहंकार अहंकार का एक भेद। उ०—तिहि तामसाहंकार तें दस तत्व उपजे आइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६०।

तामसिक—वि० [सं०] [वि०स्त्री० तामसिकी] १. तामसयुक्त। तमोगुणवाली। उ०—या विविध तामसिक बातें। उठती हैं अधिक रसाती।—परिजात, पृ० ७२। २ तमस् से उत्पन्न या तमस् से लगा (डिं०)।

तामसी¹—वि० स्त्री० [सं०] तमोगुणवाली। जैसे, तामसी प्रकृति।

यौ०—तामसी पीना = धनयोग के प्रकारों में से एक (गोस्व)।

तामसी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अँधेरी रात। २. महाकाली। ३ जटामासी। बालछड़। ४. एक प्रकार की माया विद्या जिसे शिव ने निकुंभिला यज्ञ से प्रसन्न होकर मेघनाद को दिया था।

तामा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताँबा'।

तामि—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वास का नियमन (डिं०)।

तामियाँ—वि० [हिं० तामा + इया (प्रत्य०)] दे० 'तामिया'।

तामिया—वि० [हिं० तामा + इया (प्रत्य०)] १ ताँबे के रंग का। २. ताँबे का। ताँबे से निर्मित।

तामिल—संज्ञा स्त्री० [तमिल; तमिष्] १. भारत के सुदूर दक्षिण प्रांत की एक जाति जो आधुनिक मद्रास प्रांत के अधिकांश भाग में निवास करती है। यह द्रविड़ जाति की ही एक शाखा है।

विशेष—बहुत से विद्वानों की राय है कि तामिल शब्द संस्कृत 'द्राविड़' से निकला है। मनुसंहिता, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में द्रविड़ देश और द्रविड़ जाति का उल्लेख है। मागधी प्राकृत या पाली में इसी 'द्राविड़' शब्द का रूप 'दामिलो' हो गया। तामिल वर्णमाला में त, द, ट आदि के एक ही उच्चारण के कारण 'दामिलो' का 'तामिलो' या 'तामिल' हो गया। शंकराचार्य के शारीरक भाष्य में 'द्रमिल' शब्द आया है। हुएनसांग नामक चीनी यात्री ने भी द्रविड़ देश को चि-मो-लो करके लिखा है। तामिल व्याकरण के अनुसार द्रमिल शब्द का रूप 'तिरमिड़' होता है। आजकल कुछ विद्वानों की राय हो रही है कि यह 'तिरमिड़' शब्द ही प्राचीन है जिससे संस्कृतवालों ने 'द्रविड़' शब्द बना लिया। जैनों के 'शत्रुंजय माहात्म्य' नामक एक ग्रंथ में 'द्रविड़' शब्द पर एक विलक्षण कल्पना की गई है। उक्त पुस्तक के मत से आदि तीर्थंकर ऋषभदेव को 'द्रविड़' नामक एक पुत्र जिस भूभाग में हुआ, उसका नाम 'द्रविड़' पड़ गया। पर भारत, मनुसंहिता आदि प्राचीन ग्रंथों से विदित होता है कि द्रविड़ जाति के निवास के ही कारण देश का नाम द्रविड़ पड़ा। (दे० द्राविड़)।

तामिल जाति अत्यंत प्राचीन है। पुरातत्वविदों का मत है कि यह जाति अनार्य है और आर्यों के आगमन से पूर्व ही भारत के अनेक भागों में निवास करती थी। रामचंद्र ने दक्षिण में जाकर जिन लोगों की सहायता से लंका पर चढ़ाई की थी और जिन्हें वाल्मीकि ने बंदर लिखा है, वे इसी जाति के थे। उनके काले वर्ण, भिन्न आकृति तथा विकट भाषा आदि के कारण ही आर्यों ने उन्हें बंदर कहा होगा। पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि तामिल जाति आर्यों के आगमन के पूर्व ही बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर चुकी थी। तामिल लोगों के राजा होते थे जो किले बनाकर रहते थे। वे हजार तक गिन लेते थे। वे नाव, छोटे मोटे जहाज, धनुष, बाण, तलवार इत्यादि बना लेते थे और एक प्रकार का कपड़ा बुनना भी जानते थे। रांगे, सीसे और जस्ते को छोड़ और सब धातुओं का ज्ञान भी उन्हें था। आर्यों के आगमन के उपरांत उन्होंने आर्यों की सभ्यता पूर्ण रूप से ग्रहण की। दक्षिण देश में ऐसी जनश्रुति है कि अगस्त्य ऋषि ने दक्षिण में आकर वहाँ के निवासियों को बहुत सी विद्याएँ सिखाईं। बारह तेरह सौ वर्ष पहले दक्षिण में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था। चीनी यात्री हुएनसांग जिस समय दक्षिण में गया था, उसने वहाँ दिगंबर जैनों की प्रधानता देखी थी।

२. द्रविड़ भाषा। तामिल लोगों की भाषा।

विशेष—तामिल भाषा का साहित्य भी अत्यंत प्राचीन है। दो हजार वर्ष पूर्व तक के काव्य तामिल भाषा में मिलते हैं। पर वर्णमाला ब्राह्मी लिपि की सुगमता से अधूरी है। अनुनासिक पंचम वर्ण को छोड़ प्रत्येक के एक एक वर्ण का

उच्चारण एक ही सा है। क, ख, ग, घ, चारों का उच्चारण एक ही है। व्यंजनों के इस प्रभाव के कारण जो संस्कृत शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे विकृत हो जाते हैं, जैसे, 'कृष्ण' शब्द तामिल में 'किट्टिनन' हो जाता है। तामिल भाषा का प्रधान ग्रंथ कवि तिरुवल्लुवर रचित कुरल काव्य है।

तामिल लिपि—संज्ञा स्त्री० [हिं० तामिल + सं० लिपि] एक प्रकार की लिपिविशेष।

विशेष—यह लिपि मद्रास अहाते के जिन हिस्सों में प्राचीन ग्रंथ-लिपि प्रचलित थी वहाँ के, तथा उक्त अहाते के पश्चिमी तट अर्थात् मलाबार प्रदेश के तामिल भाषा के लेखों में ई० स० की सातवीं शताब्दी से बराबर मिलती चली आती है। ('तामिल' शब्द की उत्पत्ति देश और जातिसूचक 'द्रमिल' (द्रविड) शब्द से हुई है। (दे० भारतीय प्राचीन लिपि-माला, पृ० १३२।)

तामिस्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक नरक का नाम जिसमें सदा घोर अंधकार बना रहता है। २ क्रोध। ३. द्वेष। ४ एक अविद्या का नाम। भोग की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने से जो क्रोध उत्पन्न होता है उसे तामिस्र कहते हैं। -(भागवत)। ५ घृणा (को०)। ७ एक राक्षस (को०)।

तामी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तामि' (को०)।

तामी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँबा] १ ताँबे का तसला। २. द्रव पदार्थों को नापने का एक बरतन।

तामीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ निर्माण। बनाना। रचना। इमारत का निर्माण। वास्तुक्रिया। ३ सुधार। इस्लाह। ४ इमारत। भवन बनावट (को०)।

यौ०—तामीरे कौम=(१) राष्ट्रनिर्माण। (२) जाति का निर्माण। कौम या जाति का सुधार। तामीर मुल्क = राष्ट्रनिर्माण।

तामीरी—वि० [हिं० तामीर + ई (प्रत्य०)] इस्लाही। रचनात्मक (को०)।

तामील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ (आज्ञा का) पालन। जैसे, हुक्म की तामील होना।

यौ०—तामीले हुक्म=आज्ञा का पालन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. किसी परवाने, सम्मन या वारंट का निष्पादन (को०)।

तामेसरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँबा] एक प्रकार का तामड़ा रंग जो गेरू के योग से बनता है।

ताम्मुल—संज्ञा पुं० [अ० तअम्मुल] सोच विचार। असमंजस। उ०—हुजूर, इन जरा जरा सी बातों पर इतना सा ताम्मुल करेंगे तो काम क्योंकर चलेगा?—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ५०।

ताम्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताँबा। २ एक प्रकार का कोढ़। ३ अंजना या ताँबिया लाल रंग (को०)।

ताम्र[2]—वि० १. ताँबे का बना हुआ। २. ताँबे के रंग का। ताँबे जैसा (को०)।

पुं० [सं०] ताँबा।

ताम्रकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम के दिग्गज अंजन की पत्नी। अंजना।

ताम्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबे के बरतन बनानेवाला। ठठेरा।

ताम्रकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रकार' (को०)।

ताम्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] तमाकू का पेड़ या पौधा।

विशेष—यह शब्द गढ़ा हुआ है और कुलावर्ण तंत्र में आया है।

ताम्रकृमि—संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी नाम का कीड़ा।

ताम्रगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] तुत्थ। तूतिया।

ताम्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] १ कुकरौंधा नाम का पौधा। २ मुरगा। उ०—टूर बोला ताम्रचूड गभीर, क्रूर भी है काल निर्झर धीर।—साकेत, पृ० १९५।

ताम्रचूड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूडक] हाथ की एक मुद्रा (को०)।

ताम्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताँबे जैसा लाल रंग (को०)।

ताम्रतुंड—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रतुण्ड] एक प्रकार का बंदर (को०)।

ताम्रत्रपुज—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल (को०)।

ताम्रदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखदुद्धी। छोटी दुद्धी। अमर सजीवनी।

ताम्रद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] लालचंदन (को०)।

ताम्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल। लंका (को०)।

ताम्रधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाल खड़िया। २. ताँबा (को०)।

ताम्रपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र।

ताम्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताँबे की चद्दर का एक टुकड़ा जिसपर प्राचीन काल में अक्षर खुदवाकर दानपत्र आदि लिखते थे। २ ताँबे की चद्दर। ताँबे का पत्तर।

ताम्रपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + पर्ण] लाल रंग का पत्ता। उ०—ताम्रपर्ण पीपल से, शतमुख झरते चंचल स्वर्णिम निर्झर।—ग्राम्या, पृ० ६३।

ताम्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बावली। तालाब। २ दक्षिण देश की एक छोटी नदी जो मदरास प्रांत के तिनवल्ली जिले से होकर बहती है।

विशेष—इसकी लंबाई ७० मील के लगभग है। रामायण, महाभारत तथा मुख्य मुख्य पुराणों में इस नदी का नाम आया है। अशोक के एक शिलालेख में भी इस नदी का उल्लेख है। टालमी आदि विदेशी लेखकों ने भी इसकी चर्चा की है।

ताम्रपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

ताम्रपाकी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रपाकिन्] पाकर का पेड़।

ताम्रपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबे का बरतन (को०)।

ताम्रपादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी। लाल रंग की लजालू।

ताम्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूल का कचनार।

ताम्रपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल फूल की निसोत।

ताम्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धातकी। धव का पेड़। २ पाटल। पाड़र का पेड़।

ताम्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल वृक्ष। ढेरा। ढेरा।

ताम्रफलक—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र। तांबे का पत्तर [को०]।

ताम्रमुख[1]—वि० [सं० ताम्र+मुख] जिसका मुख तांबे के रंग का हो

ताम्रमुख[2]—संज्ञा पुं० यूरोपीय व्यक्ति।

ताम्रमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जवासा। धमासा। २. लज्जालु। छुईमुई। ३. किवांच। कौंच। कपिकच्छु।

ताम्रमृग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लाल हिरन [को०]

ताम्रय—संज्ञा पुं० [सं०] लाली। ललाई [को०]।

ताम्रयुग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र+युग] ऐतिहासिक विकासक्रम में वह युग जब मनुष्य तांबे की बनी वस्तुओं का व्यवहार करता था।

ताम्रयोग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र+योग] एक प्रकार की रासायनिक दवा [को०]।

ताम्रलिप्त—संज्ञा पुं० [सं०] मेदिनीपुर (बंगाल) जिले के तमलूक नामक स्थान का प्राचीन नाम।

विशेष—पूर्व काल में यह व्यापार का प्रधान स्थल था। बृहत्कथा को देखने से विदित होता है कि यहाँ से सिंहल, सुमात्रा, जावा चीन इत्यादि देशों की ओर बराबर व्यापारियों के जहाज रवाना होते रहते थे। महाभारत में ताम्रलिप्त को कलिंग से लगा हुआ समुद्र तटस्थ एक देश लिखा है। पाली ग्रंथ महावंश से पता लगता है कि ईसा से ३६० वर्ष पूर्व ताम्रलिप्त नगर भारतवर्ष के प्रसिद्ध बंदरगाहों में से था। यहीं जहाज पर चढ़कर सिंहल के राजा ने प्रसिद्ध बोधिद्रुम को लेकर स्वदेश की ओर प्रस्थान किया था और महाराज अशोक ने समुद्रतट पर खड़े होकर उसके लिये आँसू बहाए थे। ईसा की पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान बौद्ध ग्रंथों की नकल आदि लेकर ताम्रलिप्त ही से जहाज पर बैठ सिंहल गया था।

रामायण में ताम्रलिप्त का कोई उल्लेख नहीं है, पर महाभारत में कई स्थानों पर है। वहाँ के निवासी ताम्रलिप्तक भारतयुद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़े थे। पर उनकी गिनती म्लेच्छ जातियों के साथ हुई है। यथा—शका किराता दरदा बर्वरा ताम्रलिप्तका। अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणय.। (द्रोणपर्व)।

ताम्रलेख—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रपत्र' [को०]।

ताम्रवर्ण[1]—वि० [सं०] १ तांबे के रंग का। २. लाल।

ताम्रवर्ण[2]—संज्ञा पुं० १ वैद्यक के अनुसार मनुष्य के शरीर पर की चौथी त्वचा का नाम। २. पुराणों के अनुसार भारतवर्ष के अंतर्गत एक द्वीप। सिंहल द्वीप। सीलोन।

विशेष—प्राचीन काल में सिंहल द्वीप इसी नाम से प्रसिद्ध था। मेगास्थनीज ने इसी द्वीप का नाम तप्रोबेन लिखा है।

विशेष—दे० 'सिंहल'।

ताम्रवर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़हर का पेड़। अड़हुल। ओड्रपुष्प।

ताम्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मजीठ। २ एक लता जो चित्रकूट प्रदेश में होती है।

ताम्रबीज—संज्ञा पुं० [सं०] कुलथी।

ताम्रवृंत—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रवृन्त] कुलथी।

ताम्रवृंता—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रवृन्ता] कुलथी।

ताम्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुलथी। २. लाल चंदन का पेड़।

ताम्रशासन—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र+शासन] ताम्रपत्र। दानपत्र। उ०—राजाओं तथा सामंतों की तरफ से मंदिर, मठ, ब्राह्मण साधु आदि को दान में दिए हुए गाँव, खेत, कुएँ आदि की सनदें तांबे पर प्राचीन काल से ही खुदवाकर दी जाती थीं और अबतक दी जाती हैं जिनको 'दानपत्र', 'ताम्रपत्र', 'ताम्रशासन' या 'शासनपत्र' कहते हैं।—भा० प्रा० लि०, पृ० १५२।

ताम्रशिखी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रशिखिन्] कुक्कुट। मुरगा।

ताम्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन का वृक्ष।

ताम्रसारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाल चंदन का पेड़। २ लाल खैर।

ताम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सिंहली पीपल। २ दक्ष प्रजापति की कन्या जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी। इससे ये ५ कन्याएँ उत्पन्न हुई थी—(१) क्रौंची, (२) भासी, (३) श्येनी, (४) धृतराष्ट्री और (५) शुकी। (रामायण)।

ताम्राक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोयल। २ कौआ [को०]।

ताम्राक्ष[2]—वि० लाल आँखोंवाला [को०]।

ताम्राभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।

ताम्राभ[2]—वि० तांबे का आभावाला [को०]।

ताम्रार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] कांसा।

ताम्राश्मा—संज्ञा पुं० [सं० ताम्राश्मन्] पद्मराग मणि [को०]।

ताम्रिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ताम्रिकी] ताम्रकार [को०]।

ताम्रिक[2]—वि० [वि० स्त्री० ताम्रिकी] तांबे का। ताम्रनिर्मित। तांबे से बना हुआ [को०]।

ताम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुंघची।

ताम्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रिमन्] लालिमा। ललाई [को०]।

ताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का बाजा। २ जलघड़ी का कटोरा। जलघड़ी का पात्र [को०]।

ताम्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रभस्म। तांबे की राख।

ताम्रोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रोपजीविन्] ताम्रकार [को०]।

तायँ(पु)†—अव्य० [हिं०] तक।

ताय(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० ताव] १ ताप। गरमी। २. जलन। ३ धूप।

ताय(पु)[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'ताहि'। उ०—अहे सूम री बँसुरिया, तैं कहु दीनो ताय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५२।

तायदाद†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तादाद'।

तायन(पु)¹—संज्ञा पुं० [फा० ताजियानह्] चाबुक। कोड़ा। उ०—तीख तुखार चाँड़ औ बाँके। तरपहिं तबहिं तायन बिनु हाँके। २. वृद्धि।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५०।

तायन²—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्रगता। आगे बढ़नेवाला व्यक्ति। विकास [को०]।

तायना(पु)†—क्रि० स० [हिं० ताव] तपाना। गरम करना। उ०—पायन बजति उतायल तायन कीन। पुनि करि कायल घायल हायल कीन।—सेवक (शब्द०)।

तायफा—संज्ञा पुं० स्त्री० [अ० तायफह्] १. नाचने गानेवाली वेश्याओं और समाजियों की मंडली। २. वेश्या। रंडी। उ०—तन मन मिलयो तायफे, छाँकी हिलियो छैल।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृष्ठ ३।

तायब(पु)—वि० [अ० तौबह्] तौबा करनेवाला। पश्चात्ताप करनेवाला। उ०—गुनह से हो सब आदमी तायब।—कबीर ग्रं०, पृ० १३३।

तायल—वि० [हिं० ताव] तेज। तावदार। उ०—तायल तुरंगम उड़त जनु बाज।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५।

ताया¹—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० ताई] बाप का बड़ा भाई। बड़ा चाचा।

ताया²—वि० [हिं० ताना] १ गरमाया हुआ। २ पिघलाया हुआ। जैसे, ताया घी।

तार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ रूपा। चाँदी। २ (सोना, चाँदी ताँबा, लोहा इत्यादि), धातुओं का सूत। तपी धातु को पीट और खींचकर बनाया हुआ तागा। रस्सी या तागे के रूप में परिणत धातु। धातुतंतु।

विशेष—धातु को पहले पीटकर गोल बत्ती के रूप में करते हैं। फिर उसे तपाकर जंती के बड़े छेद में डालते और सँड़सी से दूसरी ओर पकड़कर जोर से खींचते हैं। खींचने से धातु लकीर के रूप में बढ़ जाती है। फिर उस छेद में से सूत या बत्ती को निकालकर उससे और छोटे छेद में डालकर खींचते जाते हैं जिससे वह बराबर महीन होता और बढ़ता जाता है। खींचने में धातु बहुत गरम हो जाती है। सोने, चाँदी, आदि धातुओं का तार गोटे, पट्ठे, कारचोबी आदि बनाने के काम आता है। सीसे और राँगे को छोड़ और प्रायः सब धातुओं का तार खींचा जा सकता है। जरी, कारचोबी आदि में चाँदी ही का तार काम में लाया जाता है। तार को सुनहरी बनाने के लिये उसमें रत्ती दो रत्ती सोना मिला देते हैं।

क्रि० प्र०—खींचना।

यौ०—तारकश।

मुहा०—तार दबकना=गोटे के लिये तार को पीटकर चिपटा और चौड़ा करना।

३. धातु का वह तार या डोरी जिसके द्वारा बिजली की सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर समाचार भेजा जाता है। टेलिग्राफ। जैसे,—उन दोनों गाँवों के बीच तार लगा है। उ०—तड़ित तार के द्वार मिल्यो शुभ समाचार यह।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८००।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

यौ०—तारघर।

विशेष—तार द्वारा समाचार भेजने में बिजली और चुंबक की शक्ति काम में लाई जाती है। इसके लिये चार वस्तुएँ आवश्यक होती हैं—बिजली उत्पन्न करनेवाला यंत्र या घर, बिजली के प्रवाह का संचार करनेवाला तार, संवाद को प्रवाह द्वारा भेजनेवाला यंत्र और संवाद को ग्रहण करनेवाला यंत्र। यह एक नियम है कि यदि किसी तार के घेरे में से बिजली का प्रवाह हो रहा हो और उसके भीतर एक चुंबक हो, तो उस चुंबक को हिलाने से बिजली के बल में कुछ परिवर्तन हो जाता है। चुंबक के रहने से जिस दिशा को बिजली का प्रवाह होगा, उसे निकाल लेने पर प्रवाह उलटकर दूसरी दिशा की ओर हो जायगा। प्रवाह के इस दिशापरिवर्तन का ज्ञान कपास की तरह के एक यंत्र द्वारा होता है जिसमें एक सुई लगी रहती है। यह सुई एक ऐसे तार की कुंडली के भीतर रहती है जिसमें बाहर से भेजा हुआ विद्युत्प्रवाह संचरित होता है। सुई के इधर उधर होने से प्रवाह के दिक् परिवर्तन का पता लगता है। आजकल चुंबक की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस तार में से बिजली का प्रवाह जाता है, उसके बगल में दूसरा तार लगा होता है जिसे विद्युद्घट से मिला देने से थोड़ी देर के लिये प्रवाह की दिशा बदल जाती है। अब समाचार किस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, स्थूल रूप से यह देखना चाहिए। भेजनेवाले तारघर में जो विद्युद्घटमाला होती है, उसके एक ओर का तार तो पृथ्वी के भीतर गड़ा रहता है और दूसरी ओर का पानेवाले स्थान की ओर गया रहता है। उसमें एक कुंजी ऐसी होती है जिसके द्वारा जब चाहे तब तारों को जोड़ दें और जब चाहें तब अलग कर दें। इसी के साथ उस तार का भी संबंध रहता है जिसके द्वारा बिजली के प्रवाह की दिशा बदल जाती है। इस प्रकार बिजली के प्रवाह की दिशा को कभी इधर कभी उधर फेरने की युक्ति भेजनेवाले के हाथ में रहती है जिससे संवाद ग्रहण करनेवाले स्थान की सुई को वह जब जिधर चाहे, बटन या कुंजी दबाकर कर सकता है। एक बार में सुई जिस क्रम से दाहिने या बाएँ होगी, उसी के अनुसार अक्षर का संकेत समझा जायगा। सुई के दाहिने घूमने को डाट (बिंदु) और बाएँ घूमने को डैश (रेखा) कहते हैं। इन्हीं बिंदुओं और रेखाओं के योग से मार्स नामक एक व्यक्ति ने अँगरेजी वर्णमाला के सब अक्षरों के संकेत बना लिए हैं। जैसे,—

A के लिये ·—

B के लिये —· · ·

D के लिये —·—·इत्यादि।

तार के संवाद ग्रहण करने की दो प्रणालियाँ हैं—एक दर्शन प्रणाली, दूसरी श्रवण प्रणाली। ऊपर लिखी रीति पहली

प्रणाली के अंतर्गत है। पर अब अधिकतर एक खटके (Sounder) का प्रयोग होता है जिसमें सुई लोहे के टुकड़ों पर मारती है जिससे भिन्न भिन्न प्रकार के खट खट शब्द होते हैं। अभ्यास हो जाने पर इन खट खट शब्दों से ही सब अक्षर समझ लिए जाते हैं।

४. तार से आई हुई खबर। टेलिग्राफ के द्वारा आया हुआ समाचार।

क्रि० प्र०—आना।

५. सूत। तागा। तंतु। सूत्र।

यौ०—तार तोड़।

मुहा०—तार तार करना = किसी बुनी या बटी हुई वस्तु की धज्जियाँ अलग अलग करना। नोचकर सूत सूत अलग करना। उ०—तार तार कीन्ही फारि सारी जरतारी की।—दिनेश (शब्द०)। तार तार होना = ऐसा फटना कि धज्जियाँ अलग अलग हो जायँ। बहुत ही फट जाना। ६. सुतड़ी (लश०)। ७ बराबर चलता हुआ क्रम। अखंड परंपरा। सिलसिला। जैसे,—दोपहर तक लोगों के आने जाने का तार लगा रहा।

मुहा०—तार टूटना = चलता हुआ क्रम बंद हो जाना। परंपरा खंडित हो जाना। लगातार होते हुए काम का बंद हो जाना। तार बँधना = किसी काम का बराबर चला चलना। किसी बात का बराबर होते जाना। सिलसिला जारी होना। जैसे,—सवेरे से जो उनके रोने का तार बँधा, वह अब तक न टूटा। तार बाँधना = (किसी बात को) बराबर करते जाना। सिलसिला जारी करना। तार लगाना = दे० 'तार बाँधना'। तार ब तार = छिन्न भिन्न। अस्त व्यस्त। बेसिलसिले।

७ ब्योंत। सुबीता। व्यवस्था। जैसे,—जहाँ चार पैसे का तार होगा वहाँ जायँगे, यहाँ क्यों आवेंगे।

मुहा०—तार बैठना या बँधना = ब्योंत होना। कार्यसिद्धि का सुबीता होना। तार लगना = दे० 'तार बैठना'। तार जमना = दे० 'तार बैठना'।

८. ठीक माप। जैसे,—(क) अपने तार का एक जूता ले लेना। (ख) यह कुरता तुम्हारे तार का नहीं है। ९ कार्यसिद्धि का योग। युक्ति। ढब। जैसे,—कोई ऐसा तार लगाओ कि हम भी तुम्हारे साथ आ जायँ।

यौ०—तारघाट।

१०. प्रणव। ओंकार। ११ राम की सेना का एक बंदर जो तारा का पिता था और बृहस्पति के अंश से उत्पन्न था। १२ शुद्ध मोती। १३ नक्षत्र। तारा। उ०—रवि के उदय तार भौ छीना। चर बीहर दूनौं महँ लीना।—कबीर बी०, पृ० १३०। १४ सांख्य के अनुसार गौण सिद्धि का एक भेद। गुरु से विधिपूर्वक वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त सिद्धि। १५ शिव। १६. विष्णु। १७ संगीत में एक सप्तक (सात स्वरों का समूह) जिसके स्वरों का उच्चारण कंठ से उठकर कपाल के आभ्यंतर स्थानों तक होता है। इसे उच्च भी कहते हैं। १८. आँख की पुतली। १९. अठारह अक्षरों का एक वर्णवृत्त। जैसे,—तह प्रात के नाथ प्रसन्न बिलोकी। २०. तौल। उ०—तुलसी नृपहिं ऐसो कहि न बुझावै कोउ पन और कुँअर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु।—तुलसी (शब्द०)। २१. नदी का तट। तीर।

विशेष—दिशावाचक शब्दों के साथ संयोग होने पर 'तीर' शब्द 'तार' बन जाता है। जैसे दक्षिणतार।

२२. मोती की शुभ्रता या स्वच्छता (को०)। २३ सुंदर या बड़ा मोती (को०)। २४ रक्षा (को०)। २५. पारगमन। पार जाना (को०)। २६ चाँदी (को०)। २७. बीज का भाग (विशेषतः कमल का)।

तार(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० ताल] १. ताल। मजीरा उ०—काहू के हाथ अघोरी, काहू के बीन, काहू के मृदंग, कोऊ गहे तार।—हरिदास (शब्द०)। २. करताल नामक बाजा।

तार(पु)³—संज्ञा पुं० [सं० तल] तल। सतह। जैसे, करतार। उ०—सोकर माँगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारयो।—केशव (शब्द०)।

यौ०—करतार = हथेली।

तार(पु)⁴—संज्ञा पुं० [हिं० ताड़] १ कान का एक गहना। ताटंक। तरौना। उ०—श्रवनन पहिरे उलटे तार।—सूर (शब्द०)।

तार(पु)⁵—संज्ञा पुं० [सं० ताल, ताड] ताड़ नामक वृक्ष। उ०—कीन्हेसि बनखँड औ जरि मूरी। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी।—जायसी (शब्द०)।

तार⁶—वि० [सं०] १ जिसमें से किरनें फूटी हों। प्रकाशयुक्त। प्रकाशित। स्पष्ट। २. निर्मल। स्वच्छ। ३. उच्च। उदात्त। जैसे, स्वर (को०)। ४ अति ऊँचा। उ०—जिम जिम मन अमले कियइ तार चढंती जाइ।—ढोला०, दू० १२। ५. तेज। उ०—माह वदि पंचमि दिवस चढ़ि चलिए तुर तार।—पृ० रा० २५।२२५। ६. अच्छा। उत्तम। प्रिय (को०)। ७ शुद्ध। स्वच्छ (को०)।

तार(पु)⁷—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारा'। उ०—अव्वल औ मारफत हासिल न पावे। दोयम तार के दिल गुमराह होवे।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

तार(पु)⁸—अव्य० [सं० तार (= तीव्र, पतला)] किंचिन्मात्र। जरा भी। उ०—मौगउ खारा लून कर तू माण न उर तार।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७५।

तार⁹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताल'। उ०—बाजत बट सौं पटरी तारन ग्वारन गावत संग।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८८।

तारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ नक्षत्र। तारा। २. आँख। ३. आँख की पुतली। ४. इंद्र का शत्रु एक असुर। इसने जब इंद्र को बहुत सताया, तब नारायण ने नपुंसक रूप धारण करके इसका नाश किया। (गरुड़पुराण)। ५. एक असुर जिसे कार्तिकेय ने मारा था। दे० 'तारकासुर'।

यौ०—तारकजित्, तारकरिपु, तारकवैरी, तारकसूदन = कार्तिकेय।

६. राम का षडक्षर मंत्र जिसे गुरु शिष्य के कान में कहता है और

जिससे मनुष्य तर जाता है। 'ओं रामाय नम' का मंत्र। ७ मिलावा। भेलक। ८ वह जो पार उतारे। ९ कर्णधार। मल्लाह। १० भवसागर से पार करनेवाला। तारनेवाला। उ०—नृप तारक हरि पद भजि साँच बड़ाई पाइय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६९७। ११. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार सगण और एक गुरु होता है (।।ऽ।।ऽ ।।ऽ।।ऽ ऽ)। १२. एक वर्ग का नाम, जो अत्येष्टि कराता है—'महाब्राह्मण'। उ०—यह फतहपुर का महाब्राह्मण (तारक का आचारज) था।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ८५। १३ गरुड़। उ०—अंधा जातियाँ लखमण गीता मुनि विहगा तारक ससि माथ।—रघु०, रू०, पृ० २५५। १४. कान (को०)। १५ महादेव (को०)। १६ हठयोग में तरने का उपाय (को०)। १७ एक उपनिषद् (को०)। १८ मुद्रण में तारे का चिह्न-*।

तारकजित्—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

तारक टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तारक + हिं० टोड़ी] एक राग जिसमे ऋषभ और कोमल स्वर लगते हैं और पचम वर्जित होता है। (संगीत रत्नाकर)।

तारक तीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] गया तीर्थ, जहाँ पिंडदान करने से पुरखे तर जाते हैं।

तारक ब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं०] राम का षडक्षर मंत्र। रामतारक मंत्र। 'ओं रामाय नमः' यह मंत्र।

तार कमानी—संज्ञा स्त्री० [फा० तार + कमानी] धनुष के आकार का एक औजार।

विशेष—इसमें डोरी के स्थान पर लोहे का तार लगा रहता है। इससे नगीने काटे जाते हैं।

तारकश—संज्ञा पुं० [फ़ा० तार + कश = (खींचनेवाला)] धातु का तार खींचनेवाला।

तारकशी—संज्ञा स्त्री० [फा० तारकश + हिं० ई (प्रत्य०)] तार खींचने का काम।

तारका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नक्षत्र। तारा। उ०—तुम्हारे उर हैं अमर मर, दिवाकर, शशि, तारकागण।—अर्चना, पृ० ८। २. कनीनिका। आँख की पुतली। ३ इंद्रवारुणी। ४. नाराच नामक छंद का नाम। ५ बालि की स्त्री तारा। उ०—सुग्रीव को तारका मिलाई बध्यो बालि भयमंत।—सूर (शब्द०)। ६. उल्का (को०)। ७ बृहस्पति की पत्नी का नाम (को०)।

तारका(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताड़का'।

तारकाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तारकासुर का बड़ा लड़का।

विशेष—यह उन तीन भाइयों में से एक था जो ब्रह्मा के वर से तीन पुर (त्रिपुर) बसाकर रहते थे।

विशेष—दे० 'त्रिपुर'।

तारकामय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

तारकायण—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

तारकारि—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

तारकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जिसका पूरा वृत्तांत शिवपुराण में दिया हुआ है।

विशेष—यह असुर तार का पुत्र था। इसने जब एक हजार वर्ष तक घोर तप किया और कुछ फल न हुआ, तब इसके मस्तक से एक बहुत प्रचंड तेज निकला जिससे देवता लोग व्याकुल होने लगे, यहाँ तक कि इंद्र सिंहासन पर से खिंचने लगे। देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा तारक के समीप वर देने के लिये उपस्थित हुए। तारकासुर ने ब्रह्मा से दो वर माँगे। पहला तो यह कि 'मेरे समान संसार में कोई बलवान् न हो', दूसरा यह कि 'यदि मैं मारा जाऊँ, तो उसी के हाथ से जो शिव से उत्पन्न हो'। ये दोनों वर पाकर तारकासुर घोर अन्याय करने लगा। इसपर सब देवता मिलकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा—'शिव के पुत्र के अतिरिक्त तारक को और कोई नहीं मार सकता। इस समय हिमालय पर पार्वती शिव के लिये तप कर रही हैं। जाकर ऐसा उपाय रचो कि शिव के साथ उनका संयोग हो जाय'। देवताओं की प्रेरणा से कामदेव ने जाकर शिव के चित्त को चंचल किया। अंत में शिव के साथ पार्वती का विवाह हो गया। जब बहुत दिनों तक शिव को पार्वती से कोई पुत्र नहीं हुआ, तब देवताओं ने घबराकर अग्नि को शिव के पास भेजा। कपोत के वेश में अग्नि को देख शिव ने कहा—'तुम्हीं हमारे वीर्य को धारण करो' और वीर्य को अग्नि के ऊपर डाल दिया। उसी वीर्य से कार्तिकेय उत्पन्न हुए जिन्हें देवताओं ने अपना सेनापति बनाया। घोर युद्ध के उपरांत कार्तिकेय के बाण से तारकासुर मारा गया।

तारकिणी[1]—वि० स्त्री० [सं०] तारों से भरी। तारकापूर्ण।

तारकिणी[2]—संज्ञा स्त्री० रात्रि। रात।

तारकित—वि० [सं०] तारायुक्त। तारों से भरा हुआ। जैसे, तारकित गगन।

तारकी—वि० [सं० तारकिन्] [स्त्री० तारकिणी] तारकित।

तारकूट—संज्ञा पुं० [सं० तार (= चाँदी) + कूट (= नकली)] चाँदी और पीतल के योग से बनी एक धातु।

तारकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। २ एक शिवलिंग जो कलकत्ते के पास है। ३. एक रसौषध।

विशेष—पारा, गंधक, लोहा, वंग, अभ्रक, जवासा, जवाखार, गोखरू के बीज और इन सबको बराबर लेकर घिसते हैं और फिर पेठे के पानी, पंचमूल के काढ़े और गोखरू के रस की भावना देकर प्रस्तुत औषध की दो दो रत्ती की गोलियाँ बना लेते हैं। इन गोलियों को शहद में मिलाकर खाते हैं। इस औषध के सेवन से बहुमूत्र रोग दूर होता है।

तारकोल—संज्ञा पुं० [अं० टार + कोल] अलकतरा। कोलतार।

तारक्षिति—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम दिशा का एक देश जहाँ म्लेच्छों का निवास है। (बृहत्संहिता)।

तारख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] गरुड़। (डिं०)।

तारखो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] घोड़ा। (डिं०)।

तारग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारक'-१०'। उ०—मुक्ति पथ का पाया मारग। दादू राम मिल्या गुरु तारग।—राम० धर्म०, पृ० २०८।

तारघर—संज्ञा पुं० [हिं० तार+घर] वह स्थान जहाँ से तार की खबर भेजी जाय।

तारघाट—संज्ञा पुं० [हिं० तार+घात] कार्यसिद्धि का योग। मतलब निकलने का सुबीता। व्यवस्था। आयोजन। जैसे,—वहाँ कुछ मिलने का तारघाट होगा, तभी वह गया है।

तारचरबी—संज्ञा पुं० [देश०] मोमचीना का पेड़।

विशेष—यह पेड़ छोटा होता है और चीन, जापान आदि देशों में बहुत लगाया जाता है। इसके फल में तीन बीजकोश होते हैं जो एक प्रकार के चिकने पदार्थ से भरे रहते हैं जिसे चरबी कहते हैं। चीन और जापान में इसी पेड़ की चरबी से मोमबत्तियाँ बनती हैं। चरबी के अतिरिक्त बीजों से भी एक प्रकार का पीला तेल निकलता है जो दवा और रोगन (वारनिश) के काम में आता है।

तारचो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तार(=ऊँचा)+(च=गति करनेवाला)] तारक। तारा। उ०—तारचो सट्टुल, बाई सुरख।—पृ० रा०, २६। ७०।

तारछ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] गरुड़। उ०—गरुत्मान, तारछ, गरुड़, वैनतेय, शकुनीश।—नंद० ग्रं०, पृ० १११।

तारट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तारक] तारा। तरैया। उ०—सित दुकूल विभूत नीलकंठी नग तारट।—पृ० रा०, २। ४२४।

तारण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ (दूसरे को) पार करने का काम। पार उतारने की क्रिया। २ उद्धार। निस्तार। ३. उद्धार करने या तारनेवाला व्यक्ति। ४ विष्णु। ५. साठ संवत्सरों में से एक। ६ शिव (को०)। ७ नाव। नौका (को०)। ८. विजय (को०)।

तारण[2]—वि० १. उद्धार करनेवाला। पार करनेवाला। २. पार करानेवाला।

यौ०—तारण तिरण=पार उतारनेवाला। उ०—तारण तिरण जबै लग कहिए।—कबीर ग्रं०, पृ० १०५।

तारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कश्यप की एक पत्नी जो याज और उपयाज की माता कही जाती हैं। २ नौका। नाव (को०)।

तारतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० तारतण्डुल] सफेद ज्वार।

तारतखाँना(पु)—संज्ञा पुं० [अ० तहारत+फ़ा० खानह्] शुद्ध स्थान। पवित्र स्थल। वह स्थान जहाँ पर शुद्ध होकर नमाज आदि पढ़ने के लिये जाया जाता है। उ०—अति सोभै पतसाह मर्छाने। खिण सज्या खिण तारतखाने।—रा० रू०, पृ० ६६।

तारतम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारतम्य'। उ०—चौथा अकिल भेंद को लेखा। वो तारतम ले करै विवेखा।—कबीर सा०, पृ० ११३।

तारतमिक—वि० [सं० तारतम्यिक] परस्पर न्यूनाधिक्य क्रम का या कमी बेशीवाला। क्रमबद्ध।

तारतम्य—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तारतम्यिक] १. न्यूनाधिक्य। परस्पर न्यूनाधिक्य का संबंध। एक दूसरे से कमी बेशी का हिसाब। २ उत्तरोत्तर न्यूनाधिक्य के अनुसार व्यवस्था। कमी बेशी के हिसाब से तरतीब। ३. दो या कई वस्तुओं में परस्पर न्यूनाधिक्य आदि संबंध का विचार। गुण, परिमाण आदि का परस्पर मिलान।

तारतम्यबोध—संज्ञा पुं० [सं०] कई वस्तुओं में से एक का दूसरे से बढ़कर होने का विचार। कई वस्तुओं में से भले बुरे आदि की पहचान। सापेक्ष संबंध ज्ञान।

तार तार[1]—वि० [हिं० तार] जिसकी धज्जियाँ अलग अलग हो गई हों। टुकड़ा टुकड़ा। फटा फटा। उधड़ा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।

तर तार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार एक गौण सिद्धि। पठित आगम आदि की तर्क द्वारा युक्तियुक्त परीक्षा से प्राप्त सिद्धि।

तारतोड़—संज्ञा पुं० [हिं० तार+तोड़ना] एक प्रकार का सुई का काम जो कपड़े पर होता है। कारचोबी। उ०—दिखावे कोई गोखरू मोड़ मोड़। कहीं सूत बूटे कहीं तारतोड़।—मीर हसन (शब्द०)।

तारदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का काँटेदार पेड़। तरदी वृक्ष।

पर्या०—खदुंरा। तीव्रा। रक्तबीजका।

तारन[1]—संज्ञा पुं० [सं० तारण] दे० 'तारण'। उ०—(क) हम तुम्ह तारन तेज घन सुंदर, नीके सों निरबहिये।—दादू०, पृ० ५५१। (ख) जग कारन, तारन भव, भजन धरनी भार।—तुलसी (शब्द०)।

तारन[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तर(=नीचे ?)] १ छत की ढाल। छाजन की ढाल। २ छप्पर का वह बाँस जो कौड़ियों के नीचे रहता है।

तारना[1]—क्रि० स० [सं० तारण] १ पार लगाना। पार करना। २ संसार के क्लेश आदि से छुड़ाना। भवबाधा दूर करना। उद्धार करना। निस्तार करना। सद्गति देना। मुक्त करना। उ०—काहू के न तारे जिन्हैं गंगा तुम तारे और जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं।—पद्माकर (शब्द०)। ३. पानी की धारा देना। तरेरा देना। उ०—मनहुँ बिरह के सद्य घाव हिए लखि तकि तकि धरि धीरज तारति।—तुलसी (शब्द०)। ४. तैराना।

तारना[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडना] दे० 'ताड़ना'।

तारनो(पु)†[3]—क्रि० स० [हिं०] १. ताड़ना करना। दंड देना। पीड़ित करना। २. देखना। निरीक्षण करना।

तारपट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तलवार [को०]।

तारपतन—संज्ञा पुं० [सं०] उल्कापात [को०]।

तारपीन—संज्ञा पुं० [अं० टरपेंटाइन] चीड़ के पेड से निकाला हुआ तेल ।

विशेष—चीड के पेड़ में जमीन से कोई दो हाथ ऊपर एक खोखला गड्ढा काटकर बना देते हैं और उसे नीचे की ओर कुछ गहरा कर देते हैं । इसी गहरे किए हुए स्थान में चीड़ का पसेव निकलकर गोंद के रूप में इकट्ठा होता है जिसे गंदा-बिरोजा कहते हैं । इस गोंद से भबके द्वारा जो तेल निकाल लिया जाता है, उसे तारपीन का तेल कहते हैं । यह औषध के काम में आता है और दर्द के लिये उपकारी है ।

तारपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पेड़ ।

तारबर्की—संज्ञा पुं० [हिं० तार + अ० बर्क + फ़ा० ई० (प्रत्य०)] बिजली की शक्ति द्वारा समाचार पहुँचानेवाला तार ।

तारमाक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] रूपामक्खी नाम की उपधातु ।

तारयिता—संज्ञा पुं० [सं० तारयितृ] [स्त्री० तारयित्री] तारनेवाला । उद्धार करनेवाला ।

तारल¹—वि० [सं०] १ चपल । चंचल । अस्थिर । २ लपट । विलासी [को०] ।

तारल²—संज्ञा पुं० विट [को०] ।

तारल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल, तेल आदि के समान प्रवाहशील होने का धर्म । द्रवत्व । २ चचलता । चपलता । ३. लपटता । कामुकता (को०) ।

तारवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०]तेज या जोर की आवाजवाली हवा [को०] ।

तारविमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपामक्खी नाम की उपधातु ।

तारशुद्धिकर—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा [को०] ।

तारसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

तारस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँचा स्वर । ऊँची आवाज [को०] ।

तारहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुंदर या बड़े मोतियों का हार । उ०—डोलो के चल करतल पसार, भर भर मुक्ताफल फेन स्फार, बिखराती जल मे तार हार ।—गुंजन, पृ० ६५ । २ चमकीला हार । तेजोमय हार (को०) ।

तारहेमाभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की धातु [को०] ।

तारा¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ नक्षत्र । सितारा ।

यौ०—तारामडल ।

मुहा०—तारे खिलना = तारों का चमकते हुए निकलना । तारों का दिखाई देना । तारे गिनना = चिंता या आसरे मे बेचैनी से रात काटना । दुःख से किसी प्रकार रात बिताना । तारे छिटकना = तारो का दिखाई पड़ना । आकाश स्वच्छ होना और तारों का दिखाई पडना । तारा टूटना = चमकते हुए पिंड का आकाश में वेग से एक ओर से दूसरी ओर को जाते हुए या पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ना । उल्कापात होना । तारा डूबना = (१) किसी नक्षत्र का अस्त होना । (२) शुक्र का अस्त होना ।

विशेष—शुक्रास्त में हिंदुओं के यहाँ मंगल कार्य नहीं किए जाते ।

तारे तोड़ लाना = (१) कोई बहुत ही कठिन काम कर दिखाना । (२) बडी चालाकी का काम करना । तारे दिखाना = प्रसूता स्त्री को छठी के दिन बाहर लाकर आकाश की ओर इसलिये तकाना जिसमे जिन, भूत आदि का डर न रह जाय ।

विशेष—मुसलमान स्त्रियों मे यह रीति है ।

तारे दिखाई दे जाना = कमजोरी या दुर्बलता के कारण आँखों के सामने तिरमिराहट दिखाई पड़ना । तारा सी आँखें हो जाना = ललाई, सूजन, कीचड़ आदि दूर होने के कारण आँख का स्वच्छ हो जाना । तारो की छाँह = बड़े सवेरे । तड़के, जब कि तारो का धुँधला प्रकाश रहे । जैसे,—तारों की छाँह यहाँ से चल देंगे तारा हो जाना = (१) बहुत ऊँचे पर हो जाना । इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाना कि तारे की तरह छोटा दिखाई दे । (२) इतनी दूर हो जाना कि छोटा दिखाई पड़े । बहुत फासले पर हो जाना ।

२. आँख की पुतली । उ०—देखि लोग सब भए सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे ।—मानस, १।२४४ ।

मुहा०—नयनो का तारा = दे० 'आँख का तारा' । मेरे नैनों का तारा है मेरा गोविंद प्यारा है ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

३. सितारा । भाग्य । किसमत । उ०—ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे भए मूँदि तुरकन के । —भूषण (शब्द०) । ४. मोती । मुक्ता (को०) । ५ छह स्वरोंवाले एक राग का नाम (को०) ।

तारा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्र के अनुसार दस महाविद्याओं में से एक । २ बृहस्पति की स्त्री का नाम जिसे चंद्रमा ने उसके इच्छानुसार रख लिया था ।

विशेष—बृहस्पति ने जब अपनी स्त्री को चंद्रमा से माँगा, तब चंद्रमा ने देना अस्वीकार किया । इसपर बृहस्पति अत्यंत क्रुद्ध हुए और घोर युद्ध आरंभ हुआ । अंत में ब्रह्मा ने उपस्थित होकर युद्ध शांत किया और तारा को लेकर बृहस्पति को दे दिया । तारा को गर्भवती देख बृहस्पति ने गर्भस्थ शिशु पर अपना अधिकार प्रकट किया । तारा ने तुरत शिशु का प्रसव किया । देवताओं ने तारा से पूछा—'ठीक ठीक बताओ, यह किसका पुत्र है ?' तारा ने बड़ी देर के पीछे बताया—'यह दस्युहंतम नामक पुत्र चंद्रमा का है ।' चंद्रमा ने अपने पुत्र को ग्रहण किया और उसका नाम बुध रखा ।

३ जैनो की एक शक्ति । ४. बालि नामक बंदर की स्त्री और सुषेन की कन्या ।

विशेष—इसने बालि के मारे जाने पर उसके भाई सुग्रीव के साथ रामचंद्र के आदेशानुसार विवाह कर लिया था । तारा पंचकन्याओं में मानी जाती है और प्रात.काल उसका नाम लेने का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है । यथा—

अहल्या द्रौपदी तारा कुंती मंदोदरी तथा ।
पंच कन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

५ सिर में बाँधने का चीरा। ५ राजा हरिश्चंद्र की पत्नी का नाम। तारामती (को०)। ६ बौद्धों की एक देवी (को०)।

तारा⁽ᵖ⁾³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताला'। उ०—हिय भँडार नग आहि जो पूँजी। खोलि जीभ तारा कै कूँजी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३५।

मुहा०—तारा मारना=ताला बंद करना। उ०—ता पाछे वह ब्राह्मन ने अपने बेटा कों घर में मूँदि घर को तारयो मारयो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २७६।

तारा⁴—संज्ञा पुं० [सं० ताल (=सर)] तालाब।

ताराकुमार—संज्ञा पुं० [सं० तारा+कुमार] १ तारा का पुत्र, अंगद। २. चंद्रमा का पुत्र बुध जो तारा के गर्भ से उत्पन्न हुआ है।

ताराकूट—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वर कन्या के शुभाशुभ फल को सूचित करनेवाला एक कूट जिसका विचार विवाह स्थिर करने के पहले किया जाता है।

ताराक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तारकाक्ष दैत्य।

तारागण—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रसमूह। तारों का समूह।

ताराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन पाँच ग्रहों का समूह। (बृहत्संहिता)।

ताराचक्र—संज्ञा पुं० [सं० तारा+चक्र] दीक्षा मंत्र के शुभाशुभ फल का निर्णायक एक तांत्रिक चक्र (को०)।

ताराज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लूटपाट। लूटमार। -(लश०)। २. नाश। ध्वंस। विनाश। बरबादी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तारात्मक नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश में क्रांतिवृत्त के उत्तर और दक्षिण ओर के तारों का समूह जिनमें अश्विनी, भरणी आदि हैं।

ताराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। २ शिव। ३. बृहस्पति। ४ बालि। ५. सुग्रीव।

ताराधीश—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताराधिप'।

तारानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। २. बृहस्पति। ३ बालि। ४ सुग्रीव।

तारापति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तारानाथ'।

तारापथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

तारापीड़—संज्ञा पुं० [सं० तारापीड] १ चंद्रमा। २. मत्स्य पुराण के अनुसार अयोध्या के एक राजा का नाम। ३. काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम।

ताराभ—संज्ञा पुं० [सं०] पारद। पारा।

ताराभूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

ताराभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तारामंडल—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डल] १. नक्षत्रों का समूह या घेरा। उ०—नाचते ग्रह, तारामंडल, पलक में उठ गिरते प्रतिपल।—अनामिका, पृ० ९३। २ एक प्रकार की आतशबाजी। ३. एक प्रकार का कपड़ा (को०)। ४. एक प्रकार का शिव का मंदिर (को०)।

तारामंडूर—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डूर] वैद्यक मे एक विशेष प्रकार का मंडूर जो अनेक द्रव्यों के योग से बनता है।

तारामँडल⁽ᵖ⁾—संज्ञा पुं० [सं० तारा+हिं० मंडल] तारा बूटी की छपाईवाला एक वस्त्र। उ०—तारामँडल पहिरि भल चोला। भरे सीस सब नखत अमोला।—जायसी ग्रं०, पृ० ८०।

तारामती—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा हरिश्चंद्र की पत्नी जिसका तारा नाम भी है (को०)।

तारामृग—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र।

तारामैत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन मात्र से होनेवाला प्रेम (को०)।

तारायण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ आकाश। २ वट का पेड़ (को०)।

तारायण⁽ᵖ⁾²—संज्ञा पुं० [सं० तारा+गण] तारकसमूह। तारे। उ०—जू तारायण मोती सो चंद, गोवल माँहि मिलइ ज्यूँ गोव्यंद।—बी० रासो०, पृ० ११३।

तारारि—संज्ञा पुं० [सं०] विटमाक्षिक नाम की उपधातु।

तारालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारों की श्रेणी। तारकपंक्ति। उ०—तृण, तरु से तारालि सत्य है एक अखंडित।—ग्राम्या, पृ० ७०।

तारावर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] उल्कापात (को०)।

तारावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दुर्गा (को०)।

तारावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारकपंक्ति। तारों का समूह (को०)।

तारि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताली'। उ०—ग्वाल नाचैं तारि दै दै देत बहुत बनाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१०।

तारिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी आदि पार उतारने का भाड़ा या महसूल। उतराई। २ नदी से माल को पार करवाने और कर वसूल करनेवाला कर्मचारी। उ०—घाट पर तारिक नामक कर्मचारी नियुक्त किया जाता था जो माल को पार उतारने मे सहायता करता तथा उचित टैक्स वसूल करता था।—पू० म० भा०, पृ० १३०। ३ मल्लाह (को०)।

तारिक⁽ᵖ⁾²—वि० [अ०] १ तर्क करनेवाला। त्यागी। त्याग करनेवाला। छोड़नेवाला। उ०—अहंकारी। घमंडी (को०)।

यौ०—तारिके दुनिया=संसार से विरक्त। तारिके लज्जात=सांसारिक आनंद का त्याग करनेवाला। निस्पृह।

तारिका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी नामक मद्य।

तारिका²—संज्ञा स्त्री० [सं० तारका] १. दे० 'तारका'। उ०—तारिका दुरानी, तमचुर बोले, श्रवन भनक परी ललिता के तान की।—सूर (शब्द०)। २ सिनेमा में काम करनेवाली अभिनेत्री। अभिनेत्री। ३ तारीख।

तारिका⁽ᵖ⁾³—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडका] दे० 'ताड़का'। उ०—तरुनि नाम तारिका ध्यान हरि परसी रामं।—पृ० रा०, २।२६७।

तारिणी¹—वि० स्त्री० [सं०] १. तारनेवाली। उद्धार करनेवाली। २ ४८ हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी और ४½ हाथ ऊँची नाव।

तारिणी²—संज्ञा स्त्री० तारा देवी। वि० दे० 'तारा'।

तारित—वि॰ [सं॰] १. तारा हुआ। पार किया हुआ। २ जिसका उद्धार हुआ हो [को॰]।

तारी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. निद्रा। ३ समाधि। ध्यान। उ॰—(क) विकल अचेत तारी तुम ही क्यों लगी रहै।—घनानंद, पृ॰ २००। (ख) सुनि समाधि लागि गइ तारी।—जायसी ग्रं॰, पृ॰ १००।

तारी†[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ताली'। उ॰—चुटकी तारी थाप दे गऊ खिलाई वेग।—कबीर मं॰, पृ॰ ११४।

तारी(पु)†[3]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ताड़ी'।

तारी—वि॰ [सं॰ तारिन्] १. उद्धार के योग्य बनानेवाला। २ उद्धार करनेवाला। उद्धारक [को॰]।

तारीक—वि॰ [फ़ा॰] १ स्याह। काला। २ धुँधला। अँधेरा। उ॰—उस के तारीक अपनी आँखों में जमाना हो गया।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ८४६।

तारीकी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] १ स्याही। २ अंधकार। उ॰—इस्लाम कि आफताब कि आगे कुफ्र की तारीकी कभी ठहर सकती है?—भारतेंदु, भा॰ १, पृ॰ ५२६।

तारीख—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] १ महीने का हर एक दिन (२४ घंटों का)। तिथि।

मुहा॰—तारीख डालना = तिथि वार आदि लिखना।

२ वह तिथि जिसमें पूर्व काल के किसी वर्ष में कोई विशेष घटना हुई हो, विशेषत ऐसी जिसका उत्सव या शोक मनाया जाता हो अथवा जिसके लिये कुछ रीति व्यवहार प्रति वर्ष करना पड़ता हो। ३ नियत तिथि। किसी काम के लिये ठहराया हुआ दिन। जैसे,—कल मुकदमे की तारीख है।

मुहा॰—तारीख डालना = तारीख मुकर्रर करना। दिन नियत करना। तारीख टलना = किसी काम के लिये पहले से नियत दिन के और आगे कोई दिन नियत होना। जैसे,—उनके मुकदमे की तारीख टल गई। तारीख पड़ना = किसी काम के लिये दिन मुकर्रर होना। तिथि नियत होना।

४ इतिहास। उ॰—मैंने सुना है कि तारीख अकबरी में कबीर साहब और नानक साहब के विषय में अनेक बातें लिखी हैं।—कबीर म॰, पृ॰ ५२४।

तारीफ—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ तारीफ़] १. लक्षण। परिभाषा। २ वर्णन। विवरण। ३ बखान। प्रशंसा। श्लाघा।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

४ प्रशंसा की बात। विशेषता। गुण। सिफत। जैसे,—यही तो इस दवा में तारीफ है कि जरा भी नहीं लगती।

मुहा॰—तारीफ के पुल बाँधना = बहुत अधिक प्रशंसा करना। अतिरंजित प्रशंसा करना। उ॰—मुबारक कदम ने तो तारीफ के पुल ही बाँध दिए।—फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ ३५।

तारु[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तारी] दे॰ 'तारी[1]'। उ॰—दसवँ दुवार तारु का लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।—जायसी ग्रं॰, (गुप्त), पृ॰ २६५।

तारु[2]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तालु'।

तारुण—वि॰ [सं॰] युवा। जवान [को॰]।

तारुण्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] यौवन। जवानी। उ॰—झलकता आता अभी तारुण्य है। आ गुराई से मिला आरुण्य है।—साकेत, पृ॰ ११।

तारुन(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तरुणी'। उ॰—तरु ग्रंब गोप तारुन त्रिविध सपिय गोप उभिय सरस। प्रतिबिंब मुग्ध राका दरस मुद्द गावत चहुआन जस।—पृ॰ रा॰, १।६७१।

तारू(पु)†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तालु'।

तारूणी(पु)—वि॰ [हिं॰ तारना] तारनेवाला। उद्धार करनेवाला। उ॰—तारूणी टट देखिहौं, ताहाँ अस्थाना।—दादू॰, पृ॰ ५६२।

तारेय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. तारा या बालि का पुत्र अंगद। २. बृहस्पति की स्त्री तारा का पुत्र बुध। ३. मंगल ग्रह (को॰)।

तार्कव—वि॰ [सं॰] बुना हुआ [को॰]।

तार्किक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ तर्कशास्त्र का जाननेवाला। २ तत्ववेत्ता। दार्शनिक।

तार्क्ष[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कश्यप।

तार्क्ष(पु)[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तार्क्ष्य] कश्यप के पुत्र गरुड़।

तार्क्षज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रसांजन।

तार्क्षी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पातालगरुड़ी लता। छिरेंटो। छिरिहटा।

तार्क्ष्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ तृक्ष मुनि के गोत्रज। २ गरुड़। ३ गरुड़ के बड़े भाई अरुण। ४. घोड़ा। ५. रसांजन। ६. सर्प। ७. अश्वकर्ण वृक्ष। एक प्रकार का शालवृक्ष। ८. एक पर्वत का नाम। ९ महादेव। १० सोना। स्वर्ण। ११ रथ। १२. पक्षी (को॰)।

तार्क्ष्यज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रसौत। रसांजन।

तार्क्ष्यध्वज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] विष्णु [को॰]।

तार्क्ष्यनायक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गरुड़ [को॰]।

तार्क्ष्यनाशक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बाज पक्षी [को॰]।

तार्क्ष्यपुत्र, तार्क्ष्यसुत—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गरुड़ [को॰]।

तार्क्ष्यप्रसव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अश्वकर्ण वृक्ष।

तार्क्ष्यशैल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रसांजन। रसौत।

तार्क्ष्यसाम—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तार्क्ष्यसामन्] सामवेद [को॰]।

तार्क्ष्यी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक वनलता का नाम।

तार्ण[1]—वि॰ [सं॰] [वि॰स्त्री॰ तार्णी] तृण से निर्मित [को॰]।

तार्ण[2]—संज्ञा पुं॰ १. घास का कर। २ अग्नि [को॰]।

तार्णस—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का चंदन जिसका रंग सुआपंखी होता है और गंध खट्टी होती है [को॰]।

तार्तीय[1]—वि॰ [सं॰] १ तृतीय। तीसरा। २ तृतीय संबंध रखनेवाला [को॰]।

तार्तीय[2]—संज्ञा पुं॰ तृतीय अंश या भाग [को॰]।

तार्तीयीक—वि॰ [सं॰] तृतीय [को॰]।

तार्प्य—संज्ञा पुं० [सं०] तृपा नामक लता से बनाया हुआ वस्त्र जिसका व्यवहार वैदिक काल में होता था।

तार्य[1]—वि० [सं०] १. तारने योग्य। उद्धार करने योग्य। २. पार करने योग्य। ३. जीतने योग्य [को०]।

तार्य[2]—संज्ञा पुं० नाव आदि का भाड़ा [को०]।

तालंक—संज्ञा पुं० [सं० तालङ्क] दे० 'तडंक' [को०]।

ताल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ का तल। करतल। हथेली। २. वह शब्द जो दोनों हथेलियों को एक दूसरी पर मारने से उत्पन्न होता है। करतलध्वनि। ताली। उ०—हुलुक, चुटुकुल, प्रतिगीत, वाद्य, ताल, नृत्य, होइतें अछ।—वर्ण-रत्नाकर, पृ०२। ३ नाचने या गाने में उसके काल और क्रिया का परिमाण, जिसे बीच बीच में हाथ पर हाथ मारकर सूचित करते जाते हैं। उ०—माँगणहारी सीख दी ढोलइ तिणहि ज ताल।—ढोला०, दू० २०१।

विशेष—संगीत के संस्कृत ग्रंथों मे ताल दो प्रकार के माने गए हैं—मार्ग और देशी। भरत मुनि के मत से मार्ग ६० हैं—चच्चत्पुट, चाचपुट, षट्पितापुत्रक, उद्घट्टक, संनिपात, कंकण, कोकिलारव, राजकोलाहल, रंगविद्याधर, शचीप्रिय, पार्वतीलोचन, राजचूड़ामणि, जयश्री, वादकाकुल, कदर्प, नलकूबर, दर्पण, रतिलीन, मोक्षपति, श्रीरंग, सिंहविक्रम, दीपक, मल्लिकामोद, गजलील, चर्चरी, कुहक्क, विजयानंद, वीरविक्रम, टेंगिक, रंगाभरण, श्रीकीर्ति, वनमाली, चतुर्मुख, सिंहनंदन, नंदीश, चंद्रबिंब, द्वितीयक, जयमंगल, गंधर्व, मकरंद, त्रिभंगी, रतिताल, बसंत, जगझंप, गारुड़ि, कविशेखर, घोष, हरवल्लभ, भैरव, गतप्रत्यागत, मल्लताली, भैरव-मस्तक, सरस्वतीकंठाभरण, क्रीड़ा, निःसारु, मुक्तावली, रंग-राज, भरतानंद, आदितालक, संपर्केष्टक। इसी प्रकार १२० देशी ताल गिनाए गए हैं। इन तालों के नामों में भिन्न भिन्न ग्रंथों में विभिन्नता देखी जाती है। इन नामों में से आजकल बहुत प्रचलित हैं। संगीत में ताल देने के लिये तबले, मृदंग ढोल और मँजीरे आदि का व्यवहार किया जाता है।

क्रि० प्र०—देना।—बजाना।

यौ०—तालमेल।

मुहा०—ताल बेताल = (१) जिसका ताल ठिकाने से न हो। (२) अवसर या बिना अवसर के। मौके। बेमौके। ताल से बेताल होना = ताल के नियम से बाहर हो जाना। उखड़ जाना। (गाने बजाने में)।

४. अपने जंघे या बाहु पर जोर से हथेली मारकर उत्पन्न किया हुआ शब्द। कुश्ती आदि लड़ने के लिये जब किसी को ललकारते हैं, तब इस प्रकार हाथ मारते हैं।

मुहा०—ताल ठोंकना = लड़ने के लिये ललकारना।

५ मँजीरा या झाँझ नाम का बाजा। उ०—ताल भेरि मृदंग बाजत सिंधु गरजन जान।—चरण० बानी, पृ० १२२। ६. चश्मे के पत्थर या काँच का एक पल्ला। ७. हरताल। ८. तालीश पत्र। ९. ताड़ का पेड़ या फल। १०. बेल। बिल्वफल (अनेकार्थ०) ११ हाथियों के कान फटफटाने का शब्द। १२. लंबाई की एक माप। बित्ता। १३. ताला। १४. तलवार की मूठ। १५. एक नरक। १६. महादेव। १७. दुर्गा के सिंहासन का नाम। १८. पिंगल में डगण के दूसरे भेद का नाम जो एक गुरु और एक लघु का होता है—ऽ। १९. ताड़ की ध्वजा (को०)। २०. ऊँचाई का एक परिमाण (को०)। २१. एक नृत्य (को०)।

ताल[2]—संज्ञा पुं० [सं० तल्ल] वह नीची भूमि या लंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें बरसात का पानी जमा रहता है। जलाशय। पोखरा। तालाब। उ०—कौन ताल और कौन द्वारा। कहँ होइ हंसा करे बिहारा। कबीर मं०, पृ० ५५५।

ताल (पु)[3]—संज्ञा पुं० [हिं० तार] उपाय। दाँव। उ०—वास विकट निबला बसे सबल न लागे ताल।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६६।

ताल (पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० ताल] क्षण। समय। उ०—ढाढी गुणी बोलाविया, राजा तिणही ताल।—ढोला०, दू० १०५।

ताल[5]—वि० स्त्री० [सं० उत्ताल] ऊँची। उ०—व्याकुल थीं निस्सीम सिंधु की ताल तरंगें।—अनामिका, पृ० ५६।

तालकंद—संज्ञा पुं० [सं० तालकन्द] ताल मूली। मुसली।

तालक (पु)[1]—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़] दे० 'तअल्लुक'। उ०—हौं तो एक बालक न मोहि कछू तालक पै देखो तात तुमहूँ को कैसी लघुताई है।—हनुमान (शब्द०)।

तालक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरताल। २. ताला। ३. गोपीचंदन। ४. ताड़ का पेड़ या फल (को०)। ५ अरहर (को०)।

तालक (पु)[3]—अव्य० [हिं०] दे० 'तलक'। उ०—त्रिकुटी संधि नासिका तालक, सुष्मनि जाय समाई।—प्राण०, पृ० ६४।

तालकट—संज्ञा पुं० [सं०] वृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण का एक देश जो कदाचित् बीजापुर के पास का तालीकोट हो।

तालकाभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हरा रंग [को०]।

तालकाभ[2]—वि० हरा [को०]।

तालकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी। तालरस।

तालकूटा—संज्ञा पुं० [हिं० ताल + कूटना] झाँझ बजाकर भजन आदि गानेवाला।

तालकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जिसकी पताका पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो। २. भीष्म। ३. बलराम।

तालकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध जो कुष्ट, फोड़ा फुंसी आदि में दी जाती है।

विशेष—दो माशे हरताल में पेठे के रस, घीकुआर के रस और तिल के तेल की भावना देते हैं। फिर दो माशे गंधक और एक माशे पारे को मिलाकर कज्जली करते और उसमें भावना दी हुई हरताल मिलाकर फिर सब में क्रम से बकरी के दूध, नीबू के रस और घीकुआर के रस की तीन दिन भावना देते हैं। अंत में सब का गोल कतरा बनाकर उसे हाँड़ी में डाल

के भीतर रख बारह पहर तक पकाते हैं और फिर ठंढा होने पर उतार लेते हैं।

तालकोशा—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तालक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर या ताड़ की चीनी। २. तालरस। ताड़ी (को०)।

तालक्षीरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालक्षीर' [को०]।

तालखजूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल + हिं० खजूर] केतकी। उ०—तालखजूरी, तृनद्रुमा, केतकि पकरति पाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६५।

तालगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ी [को०]।

तालचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम। २. उक्त देश का निवासी। ३. उक्त देश का राजा (को०)।

तालजंघ—संज्ञा पुं० [सं० तालजङ्घ] १. एक देश का नाम। २. उस देश का निवासी। ३. एक यदुवंशी राजा जिसके पुत्रों ने राजा सगर के पिता असित को राज्यच्युत किया था। ४. एक प्रकार का ग्रह (को०)। ५. महाभारत का एक पात्र या नायक (को०)।

तालजटा—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ की जटा [को०]।

तालज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत की तालों का जानकार [को०]।

तालधारक—संज्ञा पुं० [सं०] नर्तक [को०]।

तालध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसकी ध्वजा पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो। २. भीष्म। ३. बलराम। ४. एक पर्वत का नाम।

तालनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों शुक्ला नवमी।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ व्रत रखती और तालपत्र आदि से गौरी का पूजन करती हैं।

तालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पत्ता।

विशेष—प्राचीन समय में, जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ था, ताड़ के पत्ते पर ही लिखा जाता था।

२ एक प्रकार का कान का गहना। ताटंक [को०]।

तालपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूली। मुसली।

तालपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूसाकर्णी। मूषकपर्णी। मूसाकानी। २ विधवा [को०]।

तालपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कपूरकचरी।

तालपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सौंफ। २. कपूरकचरी। ३ तालमूली। मुसली। ४. सोया। सोया नाम का साग।

तालपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] पुंडरिया। प्रपौंडरीक।

तालप्रलंब—संज्ञा पुं० [सं० तालप्रलम्ब] ताड़ की जटा [को०]।

तालयंद—संज्ञा पुं० [अ० तालेअ + फा० बंद] वह लेख जिसमें आमदनी की हर एक मद दिखलाई गई हो।

तालबद्ध—वि० [सं०] तालयुक्त [को०]।

तालबृंत—संज्ञा पुं० [सं० ताल + वृंत (=डंठल)] ताड़। उ०—तालवृंत फल खाय के दंत हरयो नंदलाल।—अनेकार्थ०, पृ० १३३।

तालवेन—संज्ञा स्त्री० [सं० तालवेणु] एक प्रकार का बाजा।

ताल वैताल—संज्ञा पुं० [सं० ताल+वैताल] दो देवता या यक्ष।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने इन्हें सिद्ध किया था और ये बराबर उनकी सेवा में रहते थे।

तालभंग—संज्ञा पुं० [सं० ताल+भङ्ग] गाने और बजाने में ताल स्वर की विषमता।

तालमखाना—संज्ञा पुं० [हिं० ताल + मखाना] १ एक पौधा जो गीली या सीड़ जमीन में होता है, विशेषतः पानी या दलदलों के निकट।

विशेष—इसकी पत्तियाँ ५ या ६ अंगुल लंबी और अंगुल सवा अंगुल चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ से चारों ओर बहुत सी टहनियाँ निकलती हैं जिनमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गूमें के पौधे की गाँठों की ऐसी गाँठें होती हैं। इन गाँठों पर काँटे होते हैं। इन्हीं गाँठों पर फूल या बीजों के कोशों के अंकुर होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर गाँठ के कोशों में जीरे के ऐसे बीज पड़ते हैं, जो दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में ये बीज मधुर, शीतल, बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा पथरी, वातरक्त, प्रमेह आदि को दूर करनेवाले माने जाते हैं। वात और गठिया में भी तालमखाने के बीज उपकारी होते हैं। डाक्टरों ने भी परीक्षा करके इन्हें मूत्रकारक, बलकारक और जननेंद्रिय संबंधी रोगों के लिये उपकारक बताया है। तालमखाने का पौधा दो प्रकार का होता है—एक लाल फूल का, दूसरा सफेद फूल का। सफेद फूल का अधिक मिलता है। कहीं कहीं इसकी पत्तियों का साग भी खाया जाता है।

पर्या०—कोकिलाक्ष। काकेक्षु। इक्षुर। क्षुरक। भिक्षु। कांडेक्षु। इक्षुगंधा। शृगाली। शृखलिक। क्षुरक। शृगालघंटी। वज्रास्थि। भृखला। वनकंटक। वज्र। त्रिक्षुर। शुक्लपुष्प (सफेद तालमखाना)। छत्रक और प्रतिच्छद (तालमखाना)।

२. दे० 'मखाना'।

तालमर्दल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा [को०]।

तालमूल—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की ढाल।

तालमूलिका—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तालमूली'।

तालमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुसली।

तालमेल—संज्ञा पुं० [हिं० ताल+मेल] १. ताल सुर का मिलान। २ मिलान। मेलजोल। उपयुक्त योजना। ठीक ठीक संयोग।

मुहा०—तालमेल खाना = ठीक ठीक संयोग होना। प्रकृति आदि का मेल होना। मिलना। मेल पटना। तालमेल बैठना = दे० 'तालमेल खाना'।

२ उपयुक्त अवसर। अनुकूल संयोग। जैसे—तालमेल देखकर काम करना चाहिए।

तालयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तालयन्त्र] १. चीर फाड़ करने का एक प्राचीन औजार। २. ताला। ३ ताला और ताली [को०]।

तालरंग—संज्ञा पुं० [सं० तालरङ्ग] एक प्रकार का बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

तालरस—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ के पेड़ का मद्य। ताड़ी। उ०—तालरस बलराम चाख्यो मन भयो आनंद। गोपसुत सब टेरि लीन्हें सुधि भई नंदनंद।—सूर (शब्द०)।

तालरेचनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक। २. अभिनेता (को०)।

काललक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] तालध्वजी, बलराम।

तालवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताड़ के पेड़ों का जंगल। २. व्रज मंडल के अंतर्गत एक वन जो गोवर्धन के उत्तर जमुना के किनारे पर है। कहते हैं, यहीं पर बलराम ने धेनुकवध किया था। उ०—सखा कहन लागे हरि सों तब। चलो तालवन कौं जैये अब।—सूर (शब्द०)।

तालवाही—संज्ञा पुं० [सं०] वह बाजा जिससे ताल दिया जाय। जैसे, मँजीरा, झाँझ आदि।

तालवृंत—संज्ञा पुं० [सं० तालवृन्त] १. ताड़ के पत्ते का पत्ता। उ०—ठहर अरी, इस हृदय में लगी विरह की आग। तालवृंत से और भी धधक उठेगी जाग।—साकेत, पृ० २६६। २ एक प्रकार का सोम। -(सुश्रुत)।

तालवृंतक—संज्ञा पुं० [सं० तालवृन्तक] दे० 'तालवृंत' (को०)।

तालव्य—वि० [सं०] १ तालु संबंधी। २. तालु से उच्चारण किया जानेवाला वर्ण।

विशेष—इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श—ये वर्ण तालव्य कहलाते हैं।

तालसंपुटक—संज्ञा पुं० [सं० ताल + सम्पुटक] ताड़ के पत्ते की बनी हुई झाँपी जो फल आदि रखने के काम आती है। उ०—हे तात, तालसंपुटक तनिक ले लेना। बहनों को वन उपहार मुझे है देना।—साकेत, पृ० २४६।

तालसाँस—संज्ञा पुं० [सं० ताल + देश० साँस (= गूदा)] ताड़ के फल के भीतर का गूदा जो खाने के काम आता है।

तालस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० तालस्कन्ध] एक अस्त्र जिसका नाम वाल्मीकि रामायण में आया है।

तालांक—संज्ञा पुं० [सं० तालाङ्क] १ वह जिसका चिह्न ताड़ हो। २. बलराम। ३ एक प्रकार का साग। ४ आरा। ५. शुभलक्षणवान् मनुष्य। ६ पुस्तक। ७. महादेव। ८ ताड़पत्र जो लिखने के काम आता था (को०)।

तालांकुर—संज्ञा पुं० [सं० तालाङ्कुर] मैनसिल।

ताला¹—संज्ञा पुं० [सं० तलक] लोहे, पीतल आदि की वह कल जिसे बंद किवाड़, संदूक आदि की कुंडी में फँसा देने से किवाड़ या संदूक बिना कुंजी के नहीं खुल सकता। कपाट अवरुद्ध रखने का यंत्र। जदरा। कुलफ।

क्रि० प्र०—खुलना। —खोलना। —बंद होना। —करना। —लगना। —लगाना।

यौ०—ताला कुंजी।

मुहा०—ताला जकड़ना = ताला लगाकर बंद करना। ताला तोड़ना = किसी दूसरे की वस्तु को चुराने या लूटने के लिये उसके घर, संदूक आदि में लगे हुए ताले को तोड़ना। ताला भिड़ना। ताला बंद होना। ताला भेड़ना = ताला लगाना।

ताला⑤²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ताल। उ०—बिरही ताला ताल बजावै।—कबीर ग्र०, पृ० १४०।

ताला³—संज्ञा पुं० [अ०, तालै] भाग्य। उ०—मेरे ताले फेरा आया सो एक बार। यकायक झाँककर देखे मुंज नार।—दक्खिनी० पृ० २६२।

ताला⁴—संज्ञा पुं० [देश०] उरस्त्राण। छाती का कवच। उ०—तोरत रिपु ताले आले आले रुधिर पनाले चालत हैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० २७।

ताला⑤⁵—संज्ञा स्त्री० [?] देरी। उ०—चाहे दुरग तकूँ तजि ताला।—रा० रू०, पृ० ३४४।

तालाकुंजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताला + कुंजी] १. किवाड़, संदूक, आदि बंद करने का यंत्र।

क्रि० प्र०—लगाना।

२ लड़कों का एक खेल।

तालाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूरकचरी।

तालापचर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालावचर' (को०)।

तालाब—संज्ञा पुं० [हिं० ताल+फ़ा० आब, अथवा सं० तडाग, प्रा० तलाअ, तलाव, हिं० तालाब] जलाशय। सरोवर। पोखरा।

तालाबेलि⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] व्याकुलता। तड़पन। पीड़ा। उ०—तालाबेलि होत घट भीतर, जैसे जल बिन मीन।—कबीर श०, भा० २ पृ० ६२।

तालाबेलिया—संज्ञा पुं० [हिं० तालाबेलि] तड़पने या छटपटानेवाला व्यक्ति। विरही पुरुष। उ०—जा घट तालाबेलिया, ताको लावो सोधि।—कबीर सा० सं०, पृ० ४०।

तालाबेली⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तालाबेलि'। उ०—दादू साहिब कारणै, तालाबेली मोहि।—दादू०, पृ० ३७८।

तालावचर—संज्ञा पुं० [सं०] १ नर्तक। २ अभिनेता (को०)।

तालिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ फैली हुई हथेली। २ चपत। तमाचा। ३. नत्थी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज बँधे हों। ४. तालपत्र या कागज का पुलिंदा। ५ ताली। करतल की ध्वनि (को०)।

तालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ताली। कुंजी। २. नत्थी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज अलग अलग बँधे हों। तालपत्र या कागज का पुलिंदा। ३ नीचे ऊपर लिखी हुई वस्तुओं का क्रम। नीचे ऊपर लिखे हुए नाम जिनमें अलग अलग चीजें गिनाई गई हों। सूची। फेहरिस्त। ४. चपत। तमाचा। ५. ताड़ मूली। मुसली। ६. मजीठ।

तालिव—संज्ञा पुं० [सं०] १. रंगीन कपड़ा। २. वाद्य। बाजा। ३. रस्सी। डोरी (को०)।

तालिब—संज्ञा पुं० [अ०] १. ढूँढनेवाला। तलाश करनेवाला। चाहनेवाला। २ शिष्य। चेला। उ०—तालिब मतलूब को पहुँचे तोक करे दिल मदूर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

तालिबइल्म—संज्ञा पुं० [अ०] विद्यार्थी।

तालिबा⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तालिब'। उ०—कबीरा

तालिबा तेरा। किया दिल बीच में डेरा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ९४।

तालिम(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तल्प] शय्या। बिस्तर। (डिं०)।

तालिमागार—संज्ञा पुं० [हिं० ताली+मारना] जहाज या नाव का अगला भाग जो पानी काटता है। गलही। –(लश०)।

तालिश—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ [को०]।

ताली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोहे की वह कील जिससे ताला खोला और बंद किया जाता है। कुंजी। चाबी। उ०—तरक ताली खुले ताला।—घट०, पृ० ३७०। २. ताड़ी। ताड़ का मद्य। ३. तालमूली। मुसली। ४. भूम्यामलकी। भुम्यामलकी। ५. अरहर। ६. ताम्रवल्ली लता। ७. एक प्रकार का छोटा ताड़ जो बंगाल और बरमा में होता है। बजरबट्टू। बट्टू। उ०—ताली तृनद्रुम केतकी खर्जूरी यह आहि।—अनेकार्थ०, पृ० २२। ८. एक वर्णवृत्त। ९. मेहराब के बीचोबीच का पत्थर या ईंट। १०. दोनों फैली हुई हथेलियों को एक दूसरी पर मारने की क्रिया। करतलों का परस्पर आघात। थपेड़ी। उ०—रानी नीलदेवी ताली बजाती है। तंबू फाड़कर शस्त्र खींचे हुए कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४६।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

मुहा०—ताली पीटना या बजाना = हँसी उड़ाना। उपहास करना। ताली बज जाना = उपहास होना। निरादर होना। एक हाथ से ताली नहीं बजती = बैर या प्रीति एक ओर से नहीं होती। दोनों के करने से लड़ाई झगड़ा या प्रेम का व्यवहार होता है।

११. दोनों हथेलियों को फैलाकर एक दूसरे पर मारने से उत्पन्न शब्द। करतलध्वनि। १२. नृत्य का एक भेद।

विशेष—मृदंगी दढिका ताली कहलौं श्रुत धुर्धरी। नृत्य गीत प्रबंध च अष्टांगो नृत्य उच्यते।—पृ० रा०, २५। १२।

ताली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल(= जलाशय)] छोटा ताल। तलैया। गड़ही। उ०—फरह कि कोदव बालि सुसाली। मुकुता प्रसव कि संबुक ताली।—तुलसी (शब्द०)।

ताली[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] पैर की बिचली उँगली का पोर या ऊपरी भाग।

ताली[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] समाधि तारी। उ०—(क) भूले सुधि बुधि ज्ञान ध्यान सों लागी ताली।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १५। (ख) जुग पानि नाभि ताली लगाय। रवि द्रिष्टि द्रष्टि थिरि बंध राय।—पृ० रा०, १। ४८९।

ताली[5]—संज्ञा पुं० [सं० तालिन्] शिव [को०]।

तालीका—संज्ञा पुं० [अ० तअलीका] १. माल असबाब की जब्ती। मकान की कुर्की। २. कुर्क किए हुए असबाब की फिहरिस्त। ३. परिशिष्ट (को०)।

तालीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तालीश पत्र।

तालीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] शिक्षा। अभ्यासार्थ उपदेश। जैसे,—उसकी तालीम अच्छी नहीं हुई है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—लेना।

तालीशपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल या तेजपत्ते की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह हिमालय पर सिंध से सतलज तक थोड़ा बहुत और उससे पूर्व सिक्किम तक बहुत अधिक होता है। आसाम में खसिया की पहाड़ियों से लेकर बरमा तक इसके पेड़ पाए जाते हैं। इसके पत्ते एक लंबे डंठल के दोनों ओर लगते हैं और तेजपत्ते से लंबे होते हैं। डंठल में खजूर की तरह चौकोर खाने से होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत खरी होती है। पत्ते बाजारों में तालीशपत्र के नाम से बिकते हैं और दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में तालीशपत्र मधुर, गरम, कफवातनाशक तथा गुल्म, क्षय रोग और खाँसी को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—धात्रीपत्र। शुकोदर। ग्रंथिकापत्र। तुलसीछद। अर्कवेध। पत्राख्य। करिपत्र। करिच्छद। नील। नीलांबर। तालीपत्र। तमाह्वय।

२. दो ढाई हाथ ऊँचा एक पौधा जो उत्तरी भारत, बंगाल तथा समुद्र के किनारे के देशों में होता है।

विशेष—यह भुम्यांवला की जाति का है। इसकी सूखी पत्तियाँ भी दवा के काम में आती हैं। इसे पनिया आमला भी कहते हैं। इसका पौधा भुम्यांवले से बड़ा और चिलबिल से मिलता जुलता होता है।

तालीशपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालीशपत्र।

तालु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तालव्य] तालू।

तालुकंटक—संज्ञा पुं० [सं० तालुकण्टक] एक रोग जो बच्चों के तालु में होता है।

विशेष—इसमें तालु में काँटे से पड़ जाते हैं और तालु धँस जाता है। इसके कारण बच्चा स्तन बड़ी कठिनाई से पीता है। जब यह रोग होता है, तब बच्चे को पतले दस्त भी आते हैं।

तालुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालु। २. तालु का एक रोग [को०]।

तालुका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालु की नाड़ी।

तालुका[2]—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुकह्] दे० 'तअल्लुका'।

तालुज—वि० [सं०] तालु से उत्पन्न [को०]।

तालुजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] घड़ियाल।

तालुपाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें गरमी से तालु पक जाता है और उसमें घाव सा हो जाता है।

तालुपुप्पुट—संज्ञा पुं० [सं०] तालुपाक रोग।

तालुशोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालु सूख जाता है और उसमें फटकर घाव से हो जाते हैं।

तालू—संज्ञा पुं० [सं० तालु] १. मुँह के भीतर की ऊपरी छत जो ऊपरवाले दाँतों की पंक्ति से लेकर छोटी जीभ या कौवे तक होती है।

विशेष—इसका ढाँचा कुछ दूर तक तो कड़ी हड्डियों का होता है उसके पीछे फिर मुलायम मांस की तहों के कारण कोमल होता है, जो नाक के पीछेवाले कोश और मुखविवर के बीच एक परदा सा जान पड़ता है।

मुहा०—तालू उठाना = तुरंत के जनमें हुए बच्चे के तालु को दबाकर ठीक करना। (दाइयाँ या चमारिनें यह काम करती हैं)। तालू में दाँत जमना = ग्रदृष्ट आना। बुरे दिन आना।

विशेष—प्रायः क्रोध में दूसरे के प्रति लोग इस वाक्य का व्यवहार करते हैं। बच्चों को तालू में काँटा या अंकुर सा निकल आता है जिसे तालू में दाँत निकलना कहते हैं। इसमें बच्चों को बड़ा कष्ट होता है।

तालू लटकना = रोग के कारण तालु का नीचे लटक आना। तालू से जीभ न लगाना = चुपचाप न रहा जाना। बके जाना।

२. खोपड़ी के नीचे का भाग। दिमाग।

मुहा०—तालू चटकना = (१) सिर में बहुत अधिक गरमी जान पड़ना। (२) प्यास से मुँह सूखना। जैसे,—प्यास से तालू चटकना।

३. घोड़े का एक ऐब।

तालूफाड़—संज्ञा पुं० [हिं० तालू + फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें हाथी के तालु में घाव हो जाता है।

तालूर—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर [को०]।

तालूषक—संज्ञा पुं०[सं०]दे० 'तालु' [को०]।

तालेवर—वि० [अ० ताला(= भाग्य) + फ़ा० वर(प्रत्य०)] धनाढ्य। धनी।

ताल्लुक—संज्ञा पुं० [अ० तग्रल्लुक़] संबंध। लगाव। उ०—हमारे ताल्लुक भलेमानुस शरीफों से हैं। हमने ऐसे एक एक दफे के दस दस रुपए लिए हैं।—ज्ञानदान, पृ० १२६।

ताल्लुका—संज्ञा पुं० [अ० तग्रल्लुक़ह्] दे० 'तग्रल्लुक'।

ताल्लुकात—संज्ञा पुं० [अ० तग्रल्लुक का बहु व०] संबंध। मेल जोल [को०]।

ताल्लुकेदार—संज्ञा पुं० [अ० तग्रल्लुकह्+फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तग्रल्लुकेदार'।

ताल्वर्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालू में कमल के आकार का एक बड़ा सा अंकुर या काँटा सा निकल आता है जिसमें बहुत पीड़ा होती है।

ताव¹—संज्ञा पुं० [सं० ताप, प्रा० ताव] १. वह गरमी जो किसी वस्तु को तपाने या पकाने के लिये पहुँचाई जाय।

क्रि० प्र०—लगना।

यौ०—तावबंद। ताव भाव।

मुहा०—(किसी वस्तु में) ताव आना = (किसी वस्तु का) जितना चाहिए, उतना गरम हो जाना। जैसे,—अभी ताव नहीं आया है, पूरियाँ कड़ाही में मत डालो। ताव खाना = (१) आँच में गरम होना। (२) आवेश में आना। क्रुद्ध हो जाना। ताव खा जाना = (१) आँच पर चढ़े हुए कड़ाहे के घी, चाशनी, पाग इत्यादि का आवश्यकता से अधिक गरम हो जाना। किसी पाग या पकवान आदि का कड़ाह में जल जाना। जैसे, चाशनी का ताव खा जाना, पाग का ताव खा जाना ३. किसी खौलाई, तपाई या पिघलाई हुई वस्तु का आवश्यकता से अधिक ठढा होना। दे० 'ताव खाना'। ताव देखना = आँच का अंदाज देखना। ताव देना = (१) आँच पर रखना। गरम रखना। (२) आग में लाल करना। तपाना। —(धातु आदि का) ताव बिगड़ना = पकाने में आँच का कम या अधिक हो जाना (जिससे कोई वस्तु बिगड़ जाय)। मूछों पर ताव देना = सफलता आदि के अभिमान में मूछें ऐंठना। पराक्रम, बल आदि के घमंड में मूछों पर हाथ फेरना।

२ अधिकार मिले हुए क्रोध का आवेश। घमंड लिए हुए गुस्से की झोंक।

मुहा०—ताव दिखाना = अभिमान मिला हुआ क्रोध प्रकट करना। बड़प्पन दिखाते हुए बिगड़ना। आँख दिखाना। ताव में आना = अभिमान मिले हुए क्रोध के आवेग मे होना। अहंकार मिश्रित क्रोध के वश में होना। जैसे,—ताव में आकर कहीं मेरी चीजें भी न फेंक देना।

३ अहंकार का वह आवेश जो किसी के बढ़ावा देने, ललकारने आदि से उत्पन्न होता है। शेखी की झोंक। जैसे,—ताव में आकर इतना चंदा लिख तो दिया, पर दोगे कहाँ से ? ४. किसी वस्तु के तत्काल होने की घोर इच्छा या उत्कंठा। ऐसी इच्छा जिसमें उतावलापन हो। चटपट होने की चाह या आवश्यकता। उ०—वीछुणिया साजण मिलइ, वलि किउ ताढउ ताव।—ढोला०, दू० ५५६।

मुहा०—ताव चढ़ना = (१) प्रबल इच्छा होना। ऐसी इच्छा होना कि कोई बात चटपट हो जाय। (२) कामोद्दीपन होना। ताव पर = जब इच्छा या आवश्यकता हो, उसी समय। जरूरत के मौके पर। जैसे,—तुम्हारे ताव पर तो रुपया नहीं मिल सकता।

ताव²—संज्ञा पुं० [फ़ा० ता (= संख्या)] कागज का एक तख्ता। जैसे, चार ताव कागज।

तावड़ियाँ॥—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, प्रा० ताव + डी (प्रत्य०)] घाम। धूप। उ०—सूखे जेठ मँझार सर तीखा तावड़ियाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६।

तावण—वि० [सं० तावान्] तितना। उतना। उ०—तिल ज्यों घाणी पीड़िए तावण तत्ते तेल।—प्राण०, पृ० २५५।

तावत्—क्रि० वि० [सं०] १. उतने काल तक। उतनी देर तक। तब तक। २. उतनी दूर तक। वहाँ तक। ३ उतने परिमाण तक। उतने तक।

विशेष—यह 'यावत्' का संबंधपूरक शब्द है।

तावतौम॥—संज्ञा पुं० [हिं० ताव + अनु० तौम] आवेश। क्रोध। गुस्सा। उ०—दागी सु तोप लखि ताव तौंम।—ह० रासो, पृ० १०८।

तावदार—वि० [हिं० ताव + फ़ा० दार] १. वह (व्यक्ति)

जिसमें ताव हो। जो आवेश में आकर या साहसपूर्वक काम करता हो। २ (वस्तु) जो कड़ी और सुंदरता लिए हुए हो।

तावना(पु)†—क्रि० स० [सं० तापन] १ तपाना। गरम करना। उ०—मदन तनक ही मैं तापन तें तावैगो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३७६। २ जलाना। ३ संताप पहुँचाना। दुःख पहुँचाना। डाहना।

तावबंद—संज्ञा पुं० [हिं० ताव + फा० बंद] वह औषध जिसके प्रयोग से चाँदी का खोटापन तपाने पर भी प्रकट न हो।

तावभाव—वि० थोड़ा सा। जरा सा। हलका सा।

तावर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तावरी'।

तावरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव + री (प्रत्य०)] १. ताप। दाह। जलन। उ०—फिरत हो उतावरी लगत नहीं तावरी।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४८०। २. धूप। घाम। आतप ३. बुखार। ज्वर। हरारत। ४ गरमी से आया हुआ चक्कर। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

तावरो(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० ताव + रा (प्रत्य०)] १ ताप। दाह। जलन। २ सूर्य की गरमी। धूप। घाम। आतप। उ०—मैं जमुना जल भरि घर आवति मो को लागो तावरो।—सुर (शब्द०) ३ गरमी से आया हुआ चक्कर। घमेर। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

तावला†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] जल्दी। उतावलापन। हड़बड़ी।

तावा—संज्ञा पुं० [हिं० ताव] १ दे० 'तवा'। २ वह कच्चा खपड़ा या थपुआ जिसके किनारे अभी मोड़े न गए हों। ३ तवा।

तावर—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी। प्रत्यंचा [को०]।

तावान—संज्ञा पुं० [फा०] १ वह चीज जो नुकसान भरने के लिये दी या ली जाय। क्षतिपूर्ति। नुकसान का मुआवजा। २ अर्थदंड। डाँड़।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

३. वह धन या सामान आदि जो हारा हुआ राष्ट्र विजेता को देता है [को०]।

यौ०—तावाने जंग = युद्ध की क्षतिपूर्ति जो पराजित राष्ट्र को करनी पड़ती है।

तावाना(पु)—क्रि० स० [सं० ताप, हिं० तावना] आँच में ताप देना। अग्नि में तपाना। दे० 'तावना'। उ०—ठुक ठुक करिके गढ़े ठठेरा बार बार तावाई। वा सूरत के रही भरोसे, पछिला धरम नसाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५४।

ताविप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तावीष'।

ताविषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ देवकन्या। २ नदी। ३ पृथिवी। ४ समुद्र (को०)। ५. स्वर्ग (को०)। ६. सोना। सुवर्ण (को०)।

तावीज—संज्ञा पुं० [अ० ताम्वीज] १ यंत्र, मंत्र या कवच जो किसी संपुट के भीतर रखकर गले में या बाँह पर पहना जाय। रक्षाकवच। कवच। उ०—यंत्र मंत्र जती करि लागे, करि तावीज गले पहिराए।—कबीर सा०, पृ० ५४०। २. सोने, चाँदी, ताँबे आदि का चौकोर या अठपहला, गोल या चिपटा संपुट जिसे तागे में लगाकर गले या बाँह पर पहनते हैं। जंतर।

विशेष—ये संपुट यों ही गहने की तरह भी पहने जाते हैं और इनके भीतर यंत्र भी रहता है।

मुहा०—तावीज बाँधना = रक्षा के लिये देवता का मंत्र आदि लिखकर बाँधना। कवच बाँधना।

३ कब्र पर बना हुआ ईंटों या पत्थर का निशान (को०)। ४ गले का एक आभूषण (को०)।

तावील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ स्पष्टीकरण। २. किसी बात का असली अर्थ से हटकर दूसरा अर्थ। ३. किसी बात का ऐसा अर्थ बताना जो लगभग ठीक जान पड़े। ४. स्वप्नफल कहना [को०]।

तावीष—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना। स्वर्ण। २ स्वर्ग। ३ समुद्र।

तावीषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताविषी' [को०]।

तावुरि—संज्ञा पुं० [यूनी टारस] वृष राशि।

ताश—संज्ञा पुं० [अ० तास (= तश्त या चौड़ा बरतन)] १ एक प्रकार का जरदोजी कपड़ा जिसका ताना रेशम का और बाना बादले का होता है। जरबफ्त। २. खेलने के लिये मोटे कागज का चौखूँटा टुकड़ा जिसपर रंगों की बूटियाँ या तसवीरें बनी रहती हैं। खेलने का पत्ता।

विशेष—खेलने के ताश में चार रंग होते हैं—हुकुम, चिड़ी, पान और ईंट। एक एक रंग के तेरह तेरह पत्ते होते हैं। एक से दस तक तो बूटियाँ होती हैं जिन्हें क्रमश एक्का, दुक्की (या दुड़ी), तिक्की, चौकी, पंजी, छक्का, सत्ता, अट्ठा, नहला और दहला कहते हैं। इनके अतिरिक्त तीन पत्तों में क्रमश गुलाम, बीबी और बादशाह की तसवीरें होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक रंग के तेरह पत्ते और सब मिलाकर बावन पत्ते होते हैं। खेलने के समय खेलनेवालों में ये पत्ते उलटकर बराबर बाँट दिए जाते हैं। साधारण खेल (रंगमार) में किसी रंग की अधिक बूटियोंवाला पत्ता उसी रंग की कम बूटियोंवाले पत्ते को मार सकता है। इसी प्रकार दहले को गुलाम मार सकता है और गुलाम को बीबी, बीबी को बादशाह और बादशाह को एक्का। एक्का सब पत्तों को मार सकता है। ताश के खेल कई प्रकार के होते हैं, जैसे, ट्रंप, गन, गुलामचोर इत्यादि।

ताश का खेल पहले किस देश में निकला, इसका ठीक पता नहीं है। कोई मिस्र देश को, कोई काबुल को, कोई अरब को और कोई भारतवर्ष को इसका आदि स्थान बतलाता है। फारस और अरब में गजीफे का खेल बहुत दिनों से प्रचलित है जिसके पत्ते रुपए के आकार के गोल गोल होते हैं। इसी से उन्हें ताश कहते हैं। अकबर के समय हिंदुस्तान में जो ताश प्रचलित थे, उनके रंगों के नाम और थे। जैसे, अश्वपति गजपति, नरपति, गढ़पति, दलपति इत्यादि। इनमें घोड़े, हाथी आदि पर सवार तसवीरें बनी होती थीं। पर आजकल जो ताश खेले जाते हैं वे यूरप से ही आते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

३ ताश का खेल। ४. कड़े कागज या दफ्ती की चकती जिस-पर सीने का तागा लपेटा रहता है।

ताशा—संज्ञा पुं० [अ० तास] चमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा जो गले में लटकाकर दो पतली लकड़ियों से बजाया जाता है।

विशेष—यह धूमधाम सूचित करने के लिये ही बजाया जाता है।

तास¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक सुनहरे तारों का जड़ाऊ कपड़ा। उ०—ये तास का सब वस्त्र पहने थी और मुँह पर भी तास का नकाब पड़ा हुआ था।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पु० १८८। २. बड़ा तश्त। परात (को०)। ३. वह कटोरा जो जलघड़ी की नाँद में पड़ता था (को०)।

तास²—सर्व० [हिं०] दे० 'तासु'। उ०—मनस पंथि चढ़ि चढ़ि आकाश, थकित भई हूँ छोर न तास।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८४८।

तासना†—क्रि० स० [हिं०] १ प्यासना। २. प्यास के कारण कंठ सूख जाने से ताव खा जाना।

तासला—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सी जिसे भालुओं को नचाने के समय कलंदर उनके गले में डाले रहते हैं।

तासा¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताशा'।

तासा²—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि+कर्ष, अथवा देश०] तीन बार की जोती हुई भूमि।

तासा³—वि० [हिं०] तृषित। प्यासा। जैसे, पियासा तासा।

तासीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] असर। प्रभाव। गुण। जैसे,—दवा की तासीर, सोहबत की तासीर। उ०—जिसके दर्द दिल में कुछ तासीर है। गर खवाँ भी है तो मेरा पीर है।—कविता० कौ०, भा० ४, पु० २८।

तासुⓅ†—सर्व० [सं० तस्य अथवा हिं० ता+सु (प्रत्य०)] उसका।

तासूँ†—सर्व० [हिं०] दे० 'तासों'।

तासोंⓅ†—सर्व० [हिं० ता+सों (प्रत्य०)] उससे।

तासौंⓅ†—सर्व० [हिं०] दे० 'तासों'।

तास्कर्य—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी (को०)।

ताहम—अव्य० [फ़ा०] तो भी। तिस पर भी। उ०—ताहम मेरा यह दावा जरूर है कि मेरे चंद ढीले ढीले नहीं होते।—कुकुम (भू०), पृ० १६।

ताहराⓅ—सर्व० [हिं० तुम्हारा] तेरा। तुम्हारा। उ०—मीत हमारा अब पियारा, ताहरा रंगी राती।—दादू०, पृ० ५२२

ताहरीⓅ—सर्व० स्त्री० [हिं०] दे० 'ताहरा'। उ०—करणी ताहरी सोधसी, होसी रे सिर हेलि।—दादू०, पृ० ५३६।

ताहरूⓅ—सर्व० [हिं० तुम्हारा] तेरा। तुम्हारा। त्वदीय। उ०—माहरू पूँ आपूँ ताहरू छै तू तैं आपूँ।—दादू०, पृ० ६७२

ताहरौⓅ—सर्व० [हिं० ताहरा] तिसका। उसका। उ०—दुही पग्गाह सुजस ताहरौ के मरसी के मरे।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ८८५।

ताहाँⓅ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'वहाँ'। उ०—जेहाँ तोहे ताहाँ अति-लाल, पदुम-पेलिअ तुज्झु फरमान।—कीर्ति०, पृ० ५८।

ताहिⓅ†—सर्व० [हिं० ता+हि (प्रत्य०)] उसको। उसे। उ०—काहिक सुंदरि के ताहि जान। आकुल कए गेलि हमर परान।—विद्यापति, पृ० १७६।

ताहीं—अव्य० [हिं०] दे० 'ताईं', 'तईं'।

ताहीⓅ—सर्व० [हिं०] दे० 'ताहि'। उ०—परम प्रेम की पद्धति इक आही। 'नंद' जथामति बरनत ताही।—नंद० ग्रं०, पृ० ११७।

ताहूⓅ—सर्व० [हिं० ताहि] तिसे भी। उसको भी। उ०—जहाँ बर्न्य सों औरको उपमा बचन न होय। ताहू कहत प्रतीप हैं कबि कोबिद सब कोय।—मति० ग्रं०, पृ० ३७३।

तिंडुकⓅ—संज्ञा पुं० [? अथवा कोल (परि०)] तमाल। उ०—कालबंध, तापिच्छ पुनि, तिंडुक सहस तमाल।—नंद० ग्रं०, पृ० १०३।

तिंतिड़—संज्ञा पुं० [सं० तिन्तिड] १. इमली का पेड़ या फल। २. इमली की चटनी (को०)। ३. एक राक्षस (को०)।

तिंतिड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिडिका] १. इमली। २ इमली की चटनी (को०)।

तिंतिड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिडीक] १. इमली। २. इमली की चटनी (को०)।

तिंतिड़ीक—संज्ञा पुं० [सं० तिन्तिडीक] १. इमली। २. इमली की चटनी (को०)।

तिंतिड़ीका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिडीका] १. इमली। २. इमली की चटनी (को०)।

तिंतिड़ीद्यूत—संज्ञा पुं० [सं० तिन्तिडी+द्यूत] एक प्रकार का जुआ जो हाथ में इमली के बीज लेकर खेला जाता है (को०)।

तिंतिरांग—संज्ञा पुं० [सं० तिन्तिराङ्ग] इस्पात। विड़लौह।

तिंतिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिलिका] दे० 'तिंतिड़िका'।

तिंतिली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिली] दे० 'तिंतिड़ी'।

तिंतिलीका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिलीक] इमली (को०)।

तिंदिश—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दिश] टिंडसी नाम की तरकारी। डेंडसी।

तिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़।

तिंदुⓅ²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेंदुआ'। उ०—व्याघ्र, तिंदु, रिछ बाल संगावह। प्रवर डोर ईहामृग ल्यावह।—पृ० रासो, पृ० १७।

तिंदुक—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दुक] १. तेंदू का पेड़। २. कर्षप्रमाण। दो तोला।

तिंदुकतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दुक तीर्थ] ब्रजमंडल के अंतर्गत एक तीर्थ।

तिंदुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्दुकी] तेंदू का पेड़।

तिंदुकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्दुकिनी] आवर्तकी। भगवत वल्ली।

तिंदुल—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दुल] तेंदू का पेड़।

तिंसⓅ—वि० [सं० त्रिंश] दे० 'तीस'। उ०—तिंस सहस हिंदुव चमू, तिंस सहस पट्टान।—पृ० रासो, पृ० १३४।

तिँवाल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तमाला, तमारा] चक्कर। उ०—आवै जोही ईखियाँ, तन ज्यों भड़ा तिंवाल।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २३।

ति(पु)—वि० [सं० तद् या त] वह। उ०—ति न नगरि ना नागरी, प्रति पद हंसक हीन।—केशव (शब्द०)।

तिअ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिय'। उ०—रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिअ सुभग सिंगारू।—मानस १। ३२।

तिआ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिया'।

तिआगी†—वि० [हिं०] दे० 'त्यागी'। उ०—बलि औ बिक्रम दानि बड़ अहे। हेतिम करन तिआगी कहे।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० १३१।

तिआस(पु)—सर्व० [हिं० ता] वा। उसे। उ०—ज्यों आया त्यों जायसी जम सहहि तिआस सहाम।—प्राण०, पृ० २५२।

तिआह†[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविवाह] १ तीसरा विवाह। २. वह पुरुष जिसका तीसरा ब्याह हो रहा हो।

तिआह[2]—संज्ञा पुं० [सं० त्रि+पक्ष] वह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु के पतालीसवें दिन किया जाता है।

तिउरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] खेसारी नाम का कदन्न। केसारी।

तिउरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकाला जाता है जो जलाने के काम में आता है।

तिउरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी। खेसारी।

तिउरी(पु)—संज्ञा [हिं०] दे० 'त्योरी'। उ०—तिरछी तिउरी देख तुम्हारी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६१।

तिउहार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार'। उ०—सखि मानैं तिउहार सबु, गाइ देवारी खेलि। हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि।—जायसी (शब्द०)।

तिए(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तितना'। उ०—बियो मल्हन मग इत्तो प्रकारं। तिए तात के नग्ग लिन्ने सुधारं।—पृ० रा०, २१। ११६।

तिकट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिकठी'। उ०—जाय तन तिकट पर डारा। वदन बन बीच ले मारा।—संत तुरसी०, पृ० ४८।

तिकड़म—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि+क्रम] १ चाल। षड्यंत्र। उ०—मानों श्री लल्लूलाल जी को इसी तिकड़म के हेतु फोर्ट विलियम कालेज में चाकरी मिली थी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८५। २. तरकीब। उपाय।

तिकड़मबाज—वि० [हिं० तिकड़म+फ़ा० बाज] दे० 'तिकड़मी'।

तिकड़मी—वि० [हिं० तिकड़म] १ तिकड़मबाज। चालाक। होशियार। २ धोखेबाज। धूर्त।

तिकड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+कड़ी] १. जिसमें तीन कड़ियाँ हों। २ चारपाई आदि की वह बुनावट जिसमें तीन रस्सियाँ एक साथ हों।

तिकड़ी[2]—वि० तीन कड़ी या लड़ीवाली।

तिकतिक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सवारी में पशुओं को हाँकने के लिये किया जानेवाला शब्द।

विशेष—बच्चे जाँघों के बीच में एक लकड़ी ले जाते हुए पकड़ लेते हैं और उसे घोड़ा मानकर तथा अपने को सवार मानकर 'तिक तिक घोड़ा' कहते हुए खेलते हैं।

तिकानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+कान] वह तिकोनी लकड़ी जो पहिए के बाहर धुरी के पास पहिए की रोक के लिये लगी रहती है।

तिकार†—संज्ञा पुं० [सं० त्रि+कार] खेत की तीसरी जोताई।

तिकुरा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन+कूरा] फसल की उपज की तीन बराबर बराबर राशियाँ जिनमें से एक जमींदार लेता है।

तिके(पु)—सर्व० [हिं० ति] वे। उ०—देह जिकण वार्तां में दोई, तिके सदाई तीखा।—रघु० रू०, पृ० २४।

तिकोन(पु)[1]—वि० [सं० त्रिकोण] दे० 'तिकोना'। उ०—बाँस पुराना साज सब अटपट सरल तिकोन खटोला रे।—तुलसी (शब्द०)।

तिकोन[2]—संज्ञा पुं० दे० 'त्रिकोण'।

तिकोना[1]—वि० [सं० त्रिकोण] [वि० स्त्री० तिकोनी] जिसमें तीन कोने हों। तीन कोनों का। जैसे, तिकोना टुकड़ा।

तिकोना[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का नमकीन पकवान। समोसा। २ तिकोनी नक्काशी बनाने की छेनी।

तिकोना[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योरी'।

तिकोनिया[1]—वि० [हिं० तिकोन+इया (प्रत्य०)] दे० तिकोना'।

तिकोनिया[2]—संज्ञा स्त्री० तीन कोनोंवाला स्थान।

विशेष—यह स्थान प्राय दो दीवालों के बीच कोने में तिकोना पत्थर या लकड़ी गढ़कर बनाया जाता है जिसपर छोटे मोटे सामान रखे जाते हैं।

तिक्का†—संज्ञा पुं० [फ़ा० तिक्कह्] मांस की बोटी। लोथ।

मुहा०—तिक्का बोटी करना = टुकड़े टुकड़े करना। धज्जी धज्जी अलग करना।

तिक्की—संज्ञा स्त्री० [सं० तृ] १ ताश का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ बनी हों। २. गंजीफे का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ हो।

तिक्ख(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण, प्रा० तिक्ख] १ तीखा। चोखा। तेज। २. तीव्रबुद्धि। तेज। चालाक।

तिक्खा(पु)†—वि० [हिं०] तिरछा। टेढ़ा।

तिक्खे†—क्रि० वि० [हिं०] तिरछे।

तिक्त[1]—वि० [सं०] तीता। कड़ुआ। जिसका स्वाद नीम, गुरुच, चिरायते आदि के समान हो।

तिक्त[2]—संज्ञा पुं० १. पित्तपापड़ा। २. सुगंध। ३. कुटज। ४ वरुण वृक्ष। ५. छह रसों में से एक।

विशेष—तिक्त छह रसों में से एक है। तिक्त और कटु में भेद यह कि तिक्त स्वाद अरुचिकर होता है; जैसे, नीम, चिरायते आदि का; पर कटु स्वाद चरपरा और रुचिकर होता है।

पैसे, सोंठ, मिर्च आदि का। वैद्यक के अनुसार तिक्त रस छेदक, रुचिकारक, दीपक, शोधक तथा मूत्र, मेद, रक्त, वसा आदि का शोषण करनेवाला है। ज्वर, खुजली, कोढ़, मूर्च्छा आदि में यह विशेष उपकारी है। अमिलतास, गुरुच, मजीठ, कनेर हल्दी, इद्रजव, भटकटैया, अशोक, कुटकी, बरियारा, ब्राह्मी, गदहपुरना (पुनर्नवा) इत्यादि तिक्त वर्ग के अंतर्गत हैं।

तिक्तकंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तकन्दिका] वनशठ। गंधपत्रा। वनकचूर।

तिक्तक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पटोल। परवल। २. चिरतिक्त। चिरायता। ३ काला खैर। ४ इंगुदी। ५. नीम। ६ कुटज। कुरैया। ७ तिक्त रस (को०)।

तिक्तक[2]—वि० तीता [को०]।

तिक्तकांड—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तकाण्ड] चिरायता।

तिक्तका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुतुंबी। कड़ुआ कद्दू।

तिक्तगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगन्धा] १ वराहक्रांता। वराही कंद। २ सरसों (को०)।

तिक्तगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगन्धिका] १. वराहक्रांता। वराही कंद। २. सर्षप। सरसों (को०)।

तिक्तगुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगुञ्जा] कंजा। करंज। करजुआ।

तिक्तघृत—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कई तिक्त ओषधियों के योग से बना हुआ एक घृत जो कुष्ठ, विषम ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी आदि में दिया जाता है।

तिक्ततंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततण्डुला] पिप्पली। पीपल।

तिक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिताई। कड़ुआपन। तीतापन।

तिक्ततुंडी—संज्ञा स्त्री [सं० तिक्ततुण्डी] कड़ुई तुरई।

तिक्ततुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततुम्बी] कडुआ कद्दू। तितलौकी।

तिक्तदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिरनी। २ मेढ़ासिंगी।

तिक्तधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (शरीर के भीतर की कड़ई धातु, अर्थात्) पित्त।

तिक्तपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ककोड़ा। खेखसा।

तिक्तपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कचरी। पेहँटा।

तिक्तपर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूब। २. हुलहुल। हुरहुर। ३ गिलोय। गुर्च। ४. मुलेठी। जेठी मधु।

तिक्तपुष्पा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

तिक्तपुष्पा[2]—वि० जिसके फूल का स्वाद तीखा हो [को०]।

तिक्तफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ रीठा। निर्मल फल। २ यवतिक्ता लता (को०)। ३ निर्मली। कतक वृक्ष (को०)।

तिक्तफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भटकटैया। २ कचरी। ३. खरबूजा। ४. यवतिक्ता लता (को०)। ५ वार्ता की (को०)।

तिक्तबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तितलौकी [को०]।

तिक्तभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] परवल। पटोल।

तिक्तयवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखिनी।

तिक्तरोहिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'तिक्तरोहिणी'।

तिक्तरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

तिक्तवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता। मुर्रा। मरोडफली। चुरनहार।

तिक्तबीजा—संज्ञा स्त्री [सं०] कडुआ कद्दू। तितलौकी।

तिक्तशाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खैर का पेड़। २. वरुण वृक्ष। ३. पत्रसुंदर शाक।

तिक्तसार—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोहिष नाम की घास। २ खैर का पेड़।

तिक्तांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ताङ्गा] पातालगारुड़ी लता। छिरेटा।

तिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुटकी। कटुका। २. पाठा। ३ यवतिक्ता लता। ४ खरबूजा। ५ छिकनी नाम का पौधा। नकछिकनी।

तिक्ताख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कडुआ कद्दू। तितलौकी।

तिक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तितलौकी। २. काकमाची। ३ कुटकी।

तिक्तिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुमड़ी या महुअर नाम का बाजा जिसे प्राय सँपेरे बजाते हैं।

तिच्छ(पु)†—वि० [सं० तीक्ष्ण] १. तीक्ष्ण। तेज। २ चोखा। पैना। उ०—धनु बान तिच्छ कुठार केशव मेखला मृगचर्म सों। रघुवीर को यह देखिए रस वीर सात्विक धर्म सों।—केशव (शब्द०)।

तिच्छता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] तेजी। उ०—सूर बाजिन की खुरी अति तिच्छता तिनकी हुई।—केशव (शब्द०)।

तिच्छि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—गणनाथ हथ्थ लिए तिच्छि फर्सी। पिनाकी पिनाकं किए भाव दर्सी।—हु० रासो, पृ० ८४।

तिख—वि० [सं० त्रि+कर्ष] तीन बार का जोता हुआ। तिबहा (खेत)।

तिखटी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिकठी'।

तिखरा—वि० [हिं०] दे० 'तिख'।

तिखराना†—क्रि० स० [हिं० तिखारना का प्रे० रूप] तिखारने का काम दूसरे से कराना।

तिखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीखा] तीखापन। तीक्ष्णता। तेजी।

तिखारना†—क्रि० स० [सं० त्रि+हिं० आखर] किसी बात को पक्ष या निश्चित करने के लिये तीन बार पूछना। पक्का करने के लिये कई बार कहलाना।

विशेष—तीन बार कहकर जो प्रतिज्ञा की जाती है, वह बहुत पक्की समझी जाती है।

तिखूँट(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तिखूँटा'। उ०—बेलदार लहरा छवि छूटे। चौतमवाले और तिखूँटे।—भक्ति प०, पृ० १७५।

तिखूँटा—वि० [हिं० तीन+खूँट] तीन कोने का। जिसमें तीन कोने हों। तिकोना।

तिगना¹—क्रि० स० [देश०] देखना। नजर डालना। भाँपना। (दलाली)।

तिगना²—वि० [हिं०] दे० 'तिगुना'।

तिगुना—वि० [सं० त्रिगुण] [वि० स्त्री० तिगुनी] तीन बार अधिक। तीन गुना।

तिगुचना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तिगना'।

तिगून—संज्ञा पुं० [हिं० तिगुना] १ तिगुना होने का भाव। २ आरंभ में जितना समय किसी चीज के गाने या बजाने में लगाया जाय, आगे चलकर वह चीज उसके तिहाई समय में गाना। साधारण से तिगुना। जल्दी गाना या बजाना। वि० दे० 'चौगून'।

तिग्मंस(पु)—संज्ञा सं० [हिं०] दे० 'तिग्मांशु'। उ०—मिहिर तिमिरहर प्रभाकर उस्नरश्मि तिग्मंस।—अनेकार्थ०, पृ० १०२।

तिग्म¹—वि० [सं०] १. तीक्ष्ण। खरा। तेज। प्रखर। उ०—खोल गए संसार नया तुम मेरे मन में, क्षण भर। जन संस्कृति का तिग्म स्फीत सौंदर्य स्वप्न दिखलाकर।—ग्राम्या, पृ० ४७। २ तप्त। तप्त करनेवाला (को०)।

यौ०—तिग्मकर। तिग्मदीधिति। तिग्ममन्यु। तिग्मरश्मि। तिग्मांशु।

३. प्रचंड। उग्र (को०)।

तिग्म²—संज्ञा पुं० १ वज्र। २ पिप्पली।—(अनेकार्थ)। ३ पुरुवंशीय एक क्षत्रिय।—(मत्स्य)। ४. ताप (को०)। ५. तीक्ष्णता। तीखापन (को०)।

तिग्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिग्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुववंशीय एक राजा जो वत्सर और सुवीथी के पुत्र थे। (भागवत)।

तिग्मगंभ—संज्ञा पुं० [सं० तिग्मगन्ध] अग्नि (को०)।

तिग्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्णता। तेज। उग्रता। प्रचंडता। उ०—परतंत्रता ने साधारणों को निर्बल और दरिद्र बना दिया है इनमें वह तिग्मता, जो विजयी जाति में होती है, कभी आ ही नहीं सकती।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८१।

तिग्मतेज¹—वि० [सं० तिग्मतेजस्] १. तीक्ष्ण। तीखा। २. बैठनेवाला। प्रविष्ट होनेवाला। ३. उग्र। प्रचंड। ४ तेजस्क। तेजस्वी (को०)।

तिग्मतेज²—संज्ञा पुं० सूर्य (को०)

तिग्मदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिग्मद्युति, तिग्मभास—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०)।

तिग्ममन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तिग्ममयूखमाली—संज्ञा पुं० [सं० तिग्ममयूखमालिन्] सूर्य (को०)।

तिग्मयातना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंड या असह्य पीड़ा (को०)।

तिग्मरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिग्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिघरा†—संज्ञा पुं० [सं० त्रिघट] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन जिसमें दूध दही रखा जाता है। मटकी।

तिचिया—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज पर के वे आदमी जो आकाश में नक्षत्रों को देखते हैं (लश०)।

तिच्छ(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'।

तिच्छन(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'।

तिच्छना(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—कनक काँच ना भेद ज्ञान में तिच्छना। अरे हाँ रे पलटू ऊधो से हरि कहैं संत के लच्छना।—पलटू०, भा० २, पृ० ७७।

तिजरा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजारी।

तिजवाँसा—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (=तीसरा) + मास (=महीना)] वह उत्सव जो किसी स्त्री को तीन महीने का गर्भ होने पर उसके कुटुंब के लोग करते हैं।

तिजहरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] तीसरा पहर।

तिजहरिया—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (=तीसरा)+पहर] तीसरा पहर। अपराह्न।

तिजहरी†—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (=तीसरा)+माव (=महीना)] तीसरा पहर। अपराह्न।

तिजारा†—संज्ञा पुं० [सं० त्रि+ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर।

तिजारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] वाणिज्य। बनिज। व्यापार। रोजगार। सौदागरी।

तिजरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिजार] तीसरे दिन जाड़ा देकर आनेवाला ज्वर।

तिजिया†—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (=तीसरा)] वह मनुष्य जिसका तीसरा विवाह हो।

तिजिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। २ राक्षस (को०)।

तिजड़ना(पु)—क्रि० स० [सं० त्यजन] तजना। छोड़ना। उ०—कइ म्हारइ हीरा अपहइ, नहीं तो गोरी ! तिजहूँ पराण।—बी० रासो, पृ० ३३।

तिजोरी—संज्ञा स्त्री० [अं० ट्रेजरी] लोहे की मजबूत छोटी आलमारी, जिसमें रुपए, गहने आदि सुरक्षित रखे जाते हैं।

तिड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि (=तीन)] ताश का वह पत्ता जिसमें तीन बूटियाँ हों।

मुहा०—तिड़ी करना = गायब करना। उड़ा ले जाना। तिड़ी होना = (१) चुपके से चले जाना। गायब होना। (२) भाग जाना।

तिड़ीबिड़ी†—वि० [देश०] तितर बितर। छितराया हुआ। अस्तव्यस्त।

तिड्डु(पु)—संज्ञा वि० [हिं०] दे० 'टिड्डी'। उ०—ऊ चालउ क अवरसणउ कइ फाकउ कइ तिड्डु।—ढोला०, दू०, ६६०।

तिण(पु)†¹—सर्व० [हिं०] दे० 'तिन'। उ०—चहुँ दिसि दामिनि सघन घन, पीउ तजो तिण वार।—ढोला०, दू० ३७।

तिण(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० तृण] तृण। तिनका।

तिणा⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका'। उ०—दंत तिणा लीने कहै रे पिय आप बिसाइ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८२।

तित⑤¹—क्रि० वि० [सं० तत्र] १ तहाँ। वहाँ। उ०—श्रीनिवास कों निज निवास छबि का कहियै तित।—नंद० ग्रं०, पृ० २०२। २ उधर। उस ओर। उ०—जित देखौं तित स्याममयी है।—सूर (शब्द०)।

तित²—वि० [हिं० तीत का समासगत रूप] तिक्त। तीता। जैसे, तितलौकी।

तितउ—संज्ञा पुं० [सं०] १ चलनी। २ छत्र। छाता [को०]।

तितना†—क्रि० वि० [सं० तति, ततीनि] उतना। उसके बराबर। उ०—तब वाकी सास एक ही बेर वाकी पातरि में परोसे। तितनो ही वह क्षरिकिनी चरनामृत मिलाय के खाहि।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १८।

विशेष—'जितना' के साथ आए हुए वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। पर अब गद्य में इसका प्रचार नहीं है।

तितर⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीतर'। उ०—हुकुम स्वामि छुट्टत सु इम, मनों तितर पर बाज।—पृ० रा०, ५।४।

तितर बितर—वि० [हिं० तिधर+ अनु० बितर] १ जो इधर उधर हो गया हो। छितराया हुआ। बिखरा हुआ। जो एकत्र न हो। जैसे,—तोप की आवाज सुनते ही सब सिपाही तितर बितर हो गए। २. जो क्रम से लगा न हो। अव्यवस्थित। अस्त व्यस्त। जैसे,—तुमने सब पुस्तकें तितर बितर कर दी।

तितरात—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ ओषध के काम में आती है।

तितरोखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

तितली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर, पु०हिं० तितिल (चित्रित डैनों के कारण)] १. एक उड़नेवाला सुंदर कीड़ा या फतिंगा जो प्राय बगीचों में फूलों के पराग और रस आदि पर निर्वाह करता है।

विशेष—तितली के छह पैर होते हैं और मुँह से बाल के ऐसी दो सूँड़ियाँ निकली होती हैं जिनसे यह फूलों का रस चूसती है। दोनों ओर दो दो के हिसाब से चार बड़े पख होते हैं। भिन्न भिन्न तितलियों के पख भिन्न भिन्न रंग के होते हैं और किसी किसी में बहुत सुंदर बूटियाँ रहती हैं। पख के अतिरिक्त इसका और शरीर इतना सूक्ष्म या पतला होता है कि दूर से दिखाई नहीं देता। गुबरैले, रेशम के कीड़े आदि फतिंगों के समान तितली के शरीर का भी रूपांतर होता है। अंडे से निकलने के उपरांत यह कुछ दिनों तक गाँठदार ढोले या सूँड़े के रूप में रहती है। ऐसे ढोले प्राय पौधों की पत्तियों पर चिपके हुए मिलते हैं। इन ढोलों का मुँह कुतरने योग्य होता है और ये पौधों को कभी कभी बड़ी हानि पहुँचाते हैं। छह असली पैरों के अतिरिक्त इन्हें कई और पैर होते हैं। ये ही ढोले रूपांतरित होते होते तितली के रूप में हो जाते हैं और उड़ने लगते हैं।

२ एक घास जो गेहूँ आदि के खेतों में उगती है।

विशेष—इसका पौधा हाथ डेढ़ हाथ तक ऊँचा होता है। पत्तियाँ पतली पतली होती हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं।

तितलौआ—संज्ञा पुं० [हिं० तीत + लौआ] कडुआ कद्दू।

तितलौकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीता+लौकी] कडुई तुंबी। कड़वा कद्दू।

तितारा¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रि+हिं० तार] वह सितार की तरह का एक बाजा जिसमें तीन तार लगे रहते हैं। उ०—बाजे चंग, नगारा, बीन, बाँसुरी सितारा तारितारा त्यों तितारा सुर लावता निसक हैं।—रघुराज (शब्द०)। २. खेत की तीसरी बार की सिंचाई।

तितारा—वि० तीन तारवाला। जिसमें तीन तार हों।

तितिंबा—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह्] १. ढकोसला। २. फेर। ३. लेख का वह भाग जो अंत में उसी पुस्तक के संबंध में बढ़ा देते हैं। परिशिष्ट। उपसंहार।

तितिक्ष—वि० [सं०] सहनशील। क्षमाशील।

तितिक्ष²—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

तितिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सरदी, गरमी आदि सहने की सामर्थ्य। सहिष्णुता। २. क्षमा। शांति। उ०—पाने दूसरे आज शत्रु भी ऐसी शिक्षा, जिसका भय हो दर और दंड दया तितिक्षा।—साकेत, पृ० ४२२।

तितिक्षु—वि० [सं०] क्षमाशील। शांत। सहिष्णु। २. त्यागने की इच्छावाला (को०)।

तितिक्षु²—संज्ञा पुं० पुरुवंशीय एक राजा जो महामना का पुत्र था।

तितिभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुगनू। २ बीरबहूटी [को०]।

तितिम्मा—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह्] १. बचा हुआ भाग। अवशिष्ट अंश। २ किसी ग्रंथ के अंत में लगाया हुआ प्रकरण। परिशिष्ट।

तित्तिर, तित्तिरि—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी [को०]।

तित्तिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष में सात करणों में से एक। दे० 'तैतिल'। २ नाँद नाम का मिट्टी का बरतन। ३ तिल की खली (को०)।

तितो⑤—क्रि० वि० [सं० तति, ततीनि] उतनी। उ०—तब भी हरि वह माया जिती। अंतरध्यान करी तहँ तिती।—नंद० ग्रं०, पृ० २६७।

तितीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तैरने या पार करने की इच्छा। २. तर जाने की इच्छा।

तितीर्षु—वि० [सं०] १ तैरने की इच्छा करनेवाला। उ०—कवि अल्प, उडुप मति, भव तितीर्षु दुस्तर अपार। कल्पनापुत्र मैं भावी द्रष्टा, निराधार। —ग्राम्या, पृ० ५८। २ तरने का अभिलाषी।

तितुला†—संज्ञा पुं० [देश०] गाड़ी के पहिए का आरा।

तिते⑤†—वि० [सं० तति] उतने (संख्यावाचक)। उ०—मंदर

तिगना[1]—क्रि० स० [देश०] देखना । नजर डालना । भाँपना । (दलाली) ।

तिगना[2]—वि० [हिं०] दे० 'तिगुना' ।

तिगुना—वि० [सं० त्रिगुण] [वि० स्त्री० तिगुनी] तीन बार अधिक । तीन गुना ।

तिगुचना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तिगना' ।

तिगून—संज्ञा पुं० [हिं० तिगुना] १. तिगुना होने का भाव । २ आरंभ में जितना समय किसी चीज के गाने या बजाने में लगाया जाय, आगे चलकर वह चीज उसके तिहाई समय में गाना । साधारण से तिगुना । जल्दी गाना या बजाना । वि० दे० 'चौगून' ।

तिग्मंस(पु)—संज्ञा सं० [हिं०]दे० 'तिग्मांशु' । उ०—मिहिर तिमिरहर प्रभाकर उस्नरश्मि तिग्मंस ।—अनेकार्थ०, पृ० १०२ ।

तिग्म[1]—वि० [सं०] १. तीक्ष्ण । खरा । तेज । प्रखर । उ०—खोल गए ससार नया तुम मेरे मन में, क्षण भर । जन संस्कृति का तिग्म स्फीत सौंदर्य स्वप्न दिखलाकर ।—ग्राम्या, पृ० ४७ । २ तप्त । तप्त करनेवाला (को०) ।

यौ०—तिग्मकर । तिग्मदीधिति । तिग्ममन्यु । तिग्मरश्मि । तिग्मांशु ।

३ प्रचंड । उग्र (को०) ।

तिग्म[2]—संज्ञा पुं० १ वज्र । २ पिप्पली ।—(अनेकार्थ)। ३. पुरुवंशीय एक क्षत्रिय ।—(मत्स्य) । ४. ताप (को०) । ५. तीक्ष्णता । तीखापन (को०) ।

तिग्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिग्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुववंशीय एक राजा जो वत्सर और सुवीथी के पुत्र थे । (भागवत) ।

तिग्मजंभ—संज्ञा पुं० [सं० तिग्मजम्भ] अग्नि (को०) ।

तिग्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्णता । तेज । उग्रता । प्रचंडता । उ०—परतंत्रता ने साधारणों को निर्बल और दरिद्र बना दिया है इनमें वह तिग्मता, जो विजयी जाति में होती है, कभी आ ही नहीं सकती ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८१ ।

तिग्मतेज[1]—वि० [सं० तिग्मतेजस्] १. तीक्ष्ण । तीखा । २. बैठनेवाला । प्रविष्ट होनेवाला । ३. उग्र । प्रचंड । ४ तेजस्क । तेजस्वी (को०) ।

तिग्मतेज[2]—संज्ञा पुं० सूर्य (को०)

तिग्मदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिग्मद्युति, तिग्मभास—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०) ।

तिग्ममन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

तिग्ममयूखमाली—संज्ञा पुं० [सं० तिग्ममयूखमालिन्] सूर्य (को०) ।

तिग्मयातना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंड या असह्य पीड़ा (को०) ।

तिग्मरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिग्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिघरा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिघट] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन जिसमें दूध दही रखा जाता है । मटकी ।

तिचिया—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज पर के वे आदमी जो आकाश में नक्षत्रों को देखते हैं (लश०) ।

तिच्छ(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तिच्छन(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तिच्छना(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—कनक काँच का भेद ज्ञान में तिच्छना । अरे हाँ रे पलटू ऊधो से हरि कहँ सत के लच्छना ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७७ ।

तिजरा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर । तिजारी ।

तिजवाँसा—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)] वह उत्सव जो किसी स्त्री को तीन महीने का गर्भ होने पर उसके कुटुंब के लोग करते हैं ।

तिजहर्रा—संज्ञा पुं० [हिं०] तीसरा पहर ।

तिजहरिया—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (= तीसरा)+पहर] तीसरा पहर । अपराह्न ।

तिजहरी—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (= तीसरा)+मास (= महीना)] तीसरा पहर । अपराह्न ।

तिजारा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर ।

तिजारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] वाणिज्य । बानेज । व्यापार । रोजगार । सौदागरी ।

तिजरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिजार] तीसरे दिन जाड़ा देकर आनेवाला ज्वर ।

तिजिया—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (= तीसरा)] वह मनुष्य जिसका तीसरा विवाह हो ।

तिजिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ राक्षस (को०) ।

तिजड़ना(पु)—क्रि० स० [सं० त्यजन] तजना । छोड़ना । उ०—बर म्हारइ हीरा अपहइ, नहीं तो गोरी ! तिजहूँ पराण ।—बी० रासो, पृ० ३३ ।

तिजोरी—संज्ञा स्त्री० [अं० ट्रेजरी] लोहे की मजबूत छोटी आलमारी, जिसमें रुपए, गहने आदि सुरक्षित रखे जाते हैं ।

तिड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि (= तीन)] ताश का वह पत्ता जिसमें तीन बूटियाँ हों ।

मुहा०—तिड़ी करना = गायब करना । उड़ा ले जाना । तिड़ी होना = (१) चुपके से चले जाना । गायब होना । (२) भाग जाना ।

तिड़ीबिड़ी†—वि० [देश०] तितर बितर । छितराया हुआ । अस्तव्यस्त ।

तिट्ठ(पु)—संज्ञा वि० [हिं०] दे० 'टिट्ठो' । उ०—ऊ चालउ क प्रवरसणउ कइ फाकउ कइ तिट्ठ ।—ढोला०, दू०, ६६० ।

तिण(पु)†[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'तिन' । उ०—चहुँ दिसि दामिनि सघन घन, पीउ तजी तिण वार ।—ढोला०, दू० ३७ ।

तिण(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० तृण] तृण । तिनका ।

तिणा⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका'। उ०—दंत तिणा लीमे कहै रे पिय प्राप विसाह।—सुदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८२।

तित⑤¹—क्रि० वि० [सं० तत्र] १ तहाँ। वहाँ। उ०—श्रीनिवास कों निज निवास छबि का कहियै तित।—नंद० ग्रं०, पृ० २०२। २ उधर। उस ओर। उ०—जित देखों तित श्याममयी है।—सूर (शब्द०)।

तित²—वि० [हिं० तीत का समासगत रूप] तिक्त। तीता। जैसे, तितलौकी।

तितउ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चलनी। २ छत्र। छाता [को०]।

तितना†—क्रि० वि० [सं० तति, ततीनि] उतना। उसके बराबर। उ०—तब वाकी सास एक ही बेर वाकी पातरि में परोसे। तितनो ही वह क्षत्रिनी चरनामृत मिलाय कै खाँहि।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १८।

विशेष—'जितना' के साथ आए हुए वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। पर अब गद्य में इसका प्रचार नहीं है।

तितर⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीतर'। उ०—हुकुम स्वामि छुट्टव सु इम, मनों तितर पर बाज।—पृ० रा०, ५।४।

तितर बितर—वि० [हिं० तिथर + अनु० बितर] १ जो इधर उधर हो गया हो। छितराया हुआ। बिखरा हुआ। जो एकत्र न हो। जैसे,—तोप की आवाज सुनते ही सब सिपाही तितर बितर हो गए। २. जो क्रम से लगा न हो। अव्यवस्थित। अस्त व्यस्त। जैसे,—तुमने सब पुस्तकें तितर बितर कर दीं।

तितराज—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ औषध के काम में आती है।

तितरोखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

तितली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर, पूर्व्हिं० तितिल (चित्रित डैनों के कारण)] १. एक उड़नेवाला सुंदर कीड़ा या फतिंगा जो प्राय बगीचों में फूलों के पराग और रस आदि पर निर्वाह करता है।

विशेष—तितली के छह पैर होते हैं और मुँह से बाल के ऐसी दो सूँड़ियाँ निकली होती हैं जिनसे यह फूलों का रस चूसती है। दोनों ओर दो दो के हिसाब से चार बड़े पख होते हैं। भिन्न भिन्न तितलियों के पख भिन्न भिन्न रग के होते हैं और किसी किसी में बहुत सुंदर बूटियाँ रहती हैं। पख के अतिरिक्त इसका और शरीर इतना सूक्ष्म या पतला होता है कि दूर से दिखाई नहीं देता। गुबरैले, रेशम के कीड़े आदि फतिंगों के समान तितली के शरीर का भी रूपांतर होता है। अंडे से निकलने के उपरांत यह कुछ दिनों तक गाँठदार ढोले या सूँड़े के रूप में रहती है। ऐसे ढोले प्राय पौधों की पत्तियों पर चिपके हुए मिलते हैं। इन ढोलों का मुँह कुतरने योग्य होता है और ये पौधों को कभी कभी बड़ी हानि पहुँचाते हैं। छह असली पैरों के अतिरिक्त इन्हें कई और पैर होते हैं। ये ही ढोले रूपांतरित होते होते तितली के रूप में हो जाते हैं और उड़ने लगते हैं।

२ एक घास जो गेहूँ आदि के खेतों में उगती है।

विशेष—इसका पौधा हाथ सवा हाथ तक का होता है। पत्तियाँ पतली पतली होती हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं।

तितलौआ—संज्ञा पुं० [हिं० तीत + लौआ] कड़वा कद्दू।

तितलौकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीता+लौआ] कटु तुंबी। कड़वा कद्दू।

तितारा¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० तार] वह सितार की तरह का एक बाजा जिसमें तीन तार लगे रहते हैं। उ०—बाजें डफ, नगारा, बीन, बाँसुरी सितारा चारितारा त्यों तेतारा मुख लावता निसक हैं।—रघुराज (शब्द०)। २. फसल की तीसरी बार की सिंचाई।

तितारा—वि० तीन तारवाला। जिसमें तीन तार हों।

तितिंबा—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह] १. ढकोसला। २ शेष। ३. लेख का वह भाग जो अंत में उसी पुस्तक के संबंध में लगा देते हैं। परिशिष्ट। उपसंहार।

तितिक्ष—वि० [सं०] सहनशील। क्षमाशील।

तितिक्षु²—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

तितिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरदी गरमी आदि सहने की सामर्थ्य। सहिष्णुता। २ क्षमा। शांति। उ०—पायें तुमसे आज शत्रु भी ऐसी शिक्षा, जिसका अथ हो दड और इति दया तितिक्षा।—साकेत, पृ० ४२२।

तितिक्षु—वि० [सं०] क्षमाशील। शांत। सहिष्णु। २. त्यागने की इच्छावाला (को०)।

तितिक्षु²—संज्ञा पुं० पुरुवंशीय एक राजा जो महामना का पुत्र था।

तितिभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुगनू। २ बीरबहूटी [को०]।

तितिम्मा—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह] १. बचा हुआ भाग। अवशिष्ट अंश। २ किसी ग्रंथ के अंत में लगाया हुआ प्रकरण। परिशिष्ट।

तितिर, तितिरि—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी [को०]।

तितिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष में सात करणों में से एक। दे० 'तैतिल'। २ नाँद नाम का मिट्टी का बरतन। ३ तिल की खली (को०)।

तितीक⑤—क्रि० वि० [सं० तति, ततीनि] उतनी। उ०—तब श्री हरि वह माया जिती। अंतरध्यान करी तहँ तिती।—नंद० ग्रं०, पृ० २६७।

तितीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तैरने या पार करने की इच्छा। २. तर जाने की इच्छा।

तितीर्षु—वि० [सं०] १ तैरने की इच्छा करनेवाला। उ०—कवि अल्प, उडुप मति, भव तितीर्षु दुस्तर अपार। कल्पनापुत्र मैं भावी द्रष्टा, निराधार।—ग्राम्या, पृ० ५८। २ तरने का अभिलाषी।

तितुला†—संज्ञा पुं० [देश०] गाड़ी के पहिए का आरा।

तिते⑤†—वि० [सं० तति] उतने (संख्यावाचक)। उ०—अवर

मांझ प्रमरगन जिते। देखत हैं घट प्रोटनि तिते।—नद० ग्र०, पृ० २६८।

तितेक(पु)†—वि० [हिं० तितो+एक] उतना। उ०—गोकुल गोपी गोप जितेक। कृष्ण चरित रस मगन तितेक।—नद० ग्र०, पृ० २५६।

तितै(पु)†—क्रि० वि० [हिं० तित+ई (प्रत्य०)] १. वहाँ ही। वहीं। २ वहाँ। ३ उधर।

तितो(पु)†—वि० [सं० तावत्] उस मात्रा या परिमाण का।

तितो²—क्रि० वि० उतना।

तितौ(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तितो'। उ०—(क) जब सब लोक चराचर जितौ। प्रलय उदधि मधि मज्जत तितौ।—नद० ग्र०, पृ० २७१। (ख) जदपि सुंदर सुघर पुनि सगुनौ दीपक देहु। तऊ प्रकासु करै तितौ भरियै जितैं सनेहु।—बिहारी र०, दो० ६५८।

तित्तिर—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिरी] १ तीतर नाम का पक्षी। २. तितली नाम की घास।

तित्तरि—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीतर पक्षी। २. यजुर्वेद की एक शाखा का नाम। द० वि० 'तैत्तिरीय'। ३. यास्क मुनि के एक शिष्य जिन्होंने तैत्तिरीय शाखा चलाई थी।—(प्रात्रेय प्रनुक्रमणिका)।

विशेष—भागवत आदि पुराणों के अनुसार वैशपायन के शिष्य मुनियों ने तितर पक्षी बनकर याज्ञवल्क्य के उगले हुए यजुर्वेद को चुगा था।

तित्थूँ—अव्य० [प०] तहाँ। उ०—अहो अहो घनआनंद जानी तित्थूँ जाँदा है।—घनानंद० पृ० १८१।

तिथि—संज्ञा पुं० [सं०] १ चद्रमा की कला के घटने या बढ़ने के अनुसार गिने जानेवाले महीने का दिन। चांद्रमास के अलग अलग दिन जिनके नाम संख्या के अनुसार होते हैं। मिति। तारीख।

यौ०—तिथिपक्ष। तिथिवृद्धि।

विशेष—पक्षों के अनुसार तिथियाँ भी दो प्रकार की होती हैं। कृष्ण और शुक्ल। प्रत्येक पक्ष में १५ तिथियाँ होती हैं। जिनके नाम ये हैं—प्रतिपदा (परिवा), द्वितीया (दूज), तृतीया (तीज), चतुर्थी (चौथ), पचमी, षष्ठी (छठ), सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी (ग्यारस), द्वादशी (दुवास) त्रयोदशी (तेरस), चतुर्दशी (चौदस), पूर्णिमा या अमावस्या। कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि अमावस्या और शुक्लपक्ष की पूर्णिमा कहलाती है। इन तिथियों के पाँच वर्ग किए गए हैं—प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी का नाम नंदा, द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी का नाम भद्रा, तृतीया अष्टमी और त्रयोदशी का नाम जया, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी का नाम रिक्ता, और पचमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावस्या का नाम पूर्णा है। तिथियों का मान नियत होता है अर्थात् सब तिथियाँ बराबर दडों की नहीं होती। २ पंद्रह की संख्या।

तिथिकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष तिथि पर किया जानेवाला धार्मिक कृत्य [को०]।

तिथिक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] तिथि की हानि। किसी तिथि का गिनती में न आना।

विशेष—ऐसा तब होता है जब एक ही दिन में अर्थात् दो सूर्योदयों के बीच तीन तिथियाँ पड जाती हैं। ऐसी अवस्था में जो तिथि सूर्य के उदयकाल में नहीं पड़ती है, उसका क्षय माना जाता है।

तिथिदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जो तिथि का अधिष्ठाता होता है [को०]।

तिथिपति—संज्ञा पुं० [सं०] तिथियों के स्वामी देवता।

विशेष—भिन्न भिन्न ग्रंथों के अनुसार ये अधिपति भिन्न भिन्न हैं। जिस तिथि का जो देवता है, उसका उक्त तिथि को पूजन होता है।

तिथि	देवता	
	बृहत्संहिता	वशिष्ठ
१	ब्रह्मा	अग्नि
२	विधाता	विधाता
३	हरि	गौरी
४	यम	गणेश
५	चद्रमा	सर्प
६	षडानन	षडानन
७	शक्र	सूर्य
८	वसु	महेश
९	सर्प	दुर्गा
१०	धर्म	यम
११	ईश	विश्वेदेवा
१२	सविता	हरि
१३	काम	काम
१४	कलि	शर्व
पूर्णिमा	विश्वेदेवा	चद्रमा
अमावस्या	पितर	पितर

तिथिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पत्रा। पचांग। जत्री।

तिथिप्रणी—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा।

तिथियुग्म—संज्ञा पुं० [सं०] दो तिथियों का योग [को०]।

तिथिवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो दो सूर्योदयों तक चले [को०]।

तिथ्यर्घ—संज्ञा पुं० [सं०] करण।

तिदरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+फ़ा० दर] वह कोठरी जिसमे तीन दरवाजे या खिड़कियाँ हों।

तिदारी—संज्ञा पुं० [देश०] जल के किनारे रहनेवाली बत्तख की तरह की एक चिड़िया।

विशेष—यह बहुत तेज उड़ती है और जमीन पर सूखी घास का घोंसला बनाती है। इसका लोग शिकार करते हैं।

तिद्वारी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिद्वार] वह कोठरी जिसमें तीन दरवाजे या खिड़कियाँ हों।

तिधर—क्रि० वि० [सं० तत्र] उधर। उस ओर।

तिधरिⓅ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तिधर'। उ०—जिधरि देखौं नैन भरि तिधरि सिरजनहारा।—दादू०, ६८।

तिधारा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधार] एक प्रकार का थूहर (सेंहुड) जिसमें पत्ते नहीं होते।

विशेष—इसमें उँगलियों की तरह शाखाएँ ऊपर को निकलती हैं। इसे बगीचों आदि की बाढ़ या टट्टी के लिये लगाते हैं। इसे वज्री या नरसेज भी कहते हैं।

तिधारीकांडवेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिधारी + सं० काण्डवेल] हड़जोड़।

तिनंगा—पुं० [हिं०] दे० 'तिलंगा'। उ०—सार तिनंगा वारयो।—पृ० रा०, १०।३२।

तिन[1]—सर्व० [सं० तेन (= उनसे)] 'तिस' शब्द का बहुवचन। जैसे, तिनने, तिनको, तिनसे इत्यादि। उ०—तिन कवि केशवदास सों कीनो धर्म सनेह।—केशव (शब्द०)।

विशेष—अब गद्य में इस शब्द का व्यवहार नहीं होता।

तिन[2]—संज्ञा पुं० [सं० तृण] तिनका। तृण। घासफूस। उ०—ह्वै कपूर मनिमय रही मिलति न दुति मुकुतालि। छिन छिन खरो बिचच्छनो लखति छाय तिन आलि।—बिहारी (शब्द०)।

तिनउर—संज्ञा पुं० [सं० तृण + उर या और (प्रत्य०) अथवा सं० तृण + आकर] तिनकों का ढेर। तृणसमूह। उ०—तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी।—जायसी (शब्द०)।

तिनक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका'। उ०—लाज तिनक जिमि तोरि ही दीनी।—नंद० ग्रं०, पृ० १५२।

तिनकना—क्रि० अ० [अ० चिनगारी, चिनगी, या अनु०] चिढ़चिढ़ाना। चिढ़ना। झल्लाना। बिगड़ना। नाराज होना।

तिनका—संज्ञा पुं० [सं० तृणक] तृण का टुकड़ा। सूखी घास या डाँठी का टुकड़ा। उ०—तिनका सों अपने जन को गुन मानत मेरु समान।—सूर०, १।८।

मुहा०—तिनका दाँतों में पकड़ना या लेना = विनती करना। क्षमा या कृपा के लिये दीनतापूर्वक विनय करना। गिड़गिड़ाना हा हा खाना। तिनका तोड़ना = (१) संबंध तोड़ना। (२) बलाय लेना। बलैया लेना।

विशेष—बच्चे को नजर न लगे, इसलिये माता कभी कभी तिनका तोड़ती है।

तिनके चुनना = बेसुध हो जाना। अचेत होना। पागल या बावला हो जाना। (पागल प्रायः व्यर्थ के काम किया करते हैं)। उ०—रजे फिराक में तिनके चुनने की नौबत आई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६८। तिनके चुनवाना = (१) पागल बना देना। (२) मोहित करना। तिनके का सहारा = (१) थोड़ा सा सहारा। (२) ऐसी बात जिससे कुछ थोड़ा बहुत ढारस बँधे। तिनके को पहाड़ करना = छोटी बात को बड़ी कर डालना। तिनके को पहाड़ कर दिखाना = थोड़ी सी बात को बहुत बढ़ाकर कहना। तिनके की ओट पहाड़ = छोटी सी बात में किसी बड़ी बात का छिपा रहना। सिर से तिनका उतारना = (१) थोड़ा सा एहसान करना। २ किसी प्रकार का थोड़ा बहुत काम करके उपकार का भार करना।

तिनगना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिनकना'।

तिनगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पकवान। उ०—पेठा पाक जलेबी पेरा। गोंदपाग तिनगरी गिंदौरा।—सूर (शब्द०)।

तिनतागⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + ताग] तीन तागे (जनेऊ)। उ०—आह्वान कहिए ब्रह्मरत है ताका बड़ भाग। नाहित पसु अज्ञानता गर डारे तिन ताग।—भीखा० श०, पृ० १०१।

तिनतिरिया—संज्ञा पुं० [देश०] मनुवा कपास।

तिनधरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] तीन धार की रेती जिससे आरी के दाँत चोखे किए जाते हैं।

तिनपतिया—वि० [हिं० तीन + पात] तीन पत्तेवाले (बेलपत्र आदि)।

तिनपहल—वि० [हिं० तीन + पहल] दे० 'तिनपहला'।

तिनपहला—वि० [हिं० तीन + पहल] [वि० स्त्री० तिनपहली] जिसमें तीन पहल हों। जिसके तीन पार्श्व हों।

तिनमिना—संज्ञा पुं० [हिं० तिन + मनिया] माला जिसके बीच में सोने का जड़ाऊ जुगनू हो।

तिनवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह बरमा में बहुत होता है। आसाम और छोटा नागपुर में भी यह पाया जाता है। यह इमारतों में लगता है और चटाइयाँ बनाने के काम में आता है। इसके पोरों में बरमा, मनीपुर आदि के लोग भात भी पकाते हैं।

तिनष्षनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिनकना'। उ०—मुरघो साहि गोरी महावीर धीर। तसब्बी तिनष्षी लिए षिषिन्न तीरं।—पृ० रा० १३।६५।

तिनस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनिश'।

तिनसुना—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का पेड़।

तिनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश वृक्ष।

तिनास—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनिश'।

तिनिⓅ—वि० [हिं०] दे० 'तीन'। उ०—तिहि नारी के पुत तिनि भाऊ। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नाऊँ।—कबीर बी०, पृ० ५।

तिनिश—संज्ञा पुं० [सं०] सीसम की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शमी या खैर की सी होती हैं।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है और किवाड़, गाड़ी आदि बनाने के काम में आती है। इसे तिनास या तिनसुना भी कहते हैं। वैद्यक में यह कसैला और गरम माना जाता है। रक्तातिसार, कोढ़, दाह, रक्तविकार आदि में इसकी छाल, पत्तियाँ आदि दी जाती हैं।

पर्या०—स्यंदन। नेमी। रथद्रु। अतिमुक्तक। चित्रकृत। चक्री। शतांग। शकट। रथिक। भस्मगर्भ। मेषी। जलधर। अक्षक। तिनाशक।

तिनुक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनुका'। उ०—हम स्वामि काज सामंत मरन तन तिनुक विचारों।—पृ० रा०, १२।१६८।

तिनुका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका'। उ०—टूट जाय श्रोट तिनुका की रसक रहै ठहराई।—कबीर श०, भा० २, पृ० २।

तिनुवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तृणवर] तिनका।

तिनूका(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका'। उ०—होय तिनूका वज्र वज्र तिनका ह्वै टूटै।—गिरिधर (शब्द०)।

तिन्नक—संज्ञा पुं० [हिं० तनिक] १. तुच्छ चीज। २ छोटा लड़का।

तिन्ना—संज्ञा पुं० [सं०] १. सती नामक वर्णवृत्त। २ रोटी के साथ खाने की रसेदार वस्तु। ३. तिन्नी के धान का पौधा।

तिन्नी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तृण, हिं० तिन, अथवा सं० तृणान्न] एक प्रकार का जंगली धान जो तालों में आपसे आप होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ जड़हन का सी ही होती हैं। पौधा तीन चार हाथ ऊँचा होता है। कातिक मे इसकी बाल फूटती है जिसमें बहुत खड़े खड़े टूँड़ होते हैं। बाल के दाने तैयार होने पर गिरने लगते हैं, इससे इकट्ठा करनेवाले या तो झटके मे दानों को झाड़ लेते हैं अथवा बहुत से पौधों के सिरों को एक में बाँध देते हैं। तिन्नी का धान लंबा और पतला होता है। चावल खाने मे नीरस और रूखा लगता है और व्रत आदि में खाया जाता है।

तिन्नी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] नीवी। फुफुँदी।

तिन्हाँ—सर्व० [हिं०] दे० 'तिन'।

तिपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + पट] कमखाब बुननेवालों के करघे की वह लकड़ी जिसमें तागा लपेटा रहता है और जो दोनों बैसरों के बीच में होती है।

तिपतास(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० तृप्ति + आशय]। तृप्ति प्रदान करनेवाली वस्तु। उ०—काया सो जौका कवल विचास। ज्ञान संपूरण है तिपतास।—प्राण०, पृ० १०।

संज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति'। उ०—सद्दस एक साजि वासि विय तिपति इक्क मधि।—पृ० रा०, १४।११६।

तिप्—संज्ञा पुं० [अनु०] तिप् तिप् की ध्वनिपूर्वक टपकने का भाव। उ०—भोर वेला, सिची छत से ओस की तिप् तिप् पहाड़ी काक।—हरी घास०, पृ० १४।

तिपल्ला—वि० [हिं० तीन+पल्ला] १ तीन पल्लों का। जिसमें तीन पर्त या पार्श्व हों। २. तीन तागे का। जिसमे तीन तागे हों।

तिपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + पाया] १ तीन पायों की बैठने की ऊँची चौकी। स्टूल। २. पानी के घड़े रखने की ऊँची चौकी। टिकठी। तिगोड़िया। ३ लकड़ी का एक चौखठा जिसे रँगरेज काम में लाते हैं।

तिपाड़—संज्ञा पुं० [हिं० तीन+पाड़] १. जो तीन पाट जोड़कर बना हो। उ०—दक्षिण चीर तिपाड़ को लहँगा। पहिरि विविध पट मोलन महँगा।—सूर (शब्द०)। २. जिसमें तीन पल्ले हो। ३ जिसमें तीन किनारे हो।

तिपारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा जो बरसात में आपसे आप इधर उधर जमता है। मकोय। परपोटा। छोटी रसभरी।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी और सिर पर नुकीली होती हैं। इसमें सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं। फल संपुट के आकार के एक झिल्लीदार कोश में रहते हैं जिसमे नसों के द्वारा कई पहल बने रहते हैं।

तिपुर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० | दे० 'त्रिपुर']। उ०—काली सुर महिवास तिपुर जित्ति, महिषासुर।—पृ० रा०, ६।६२।

तिपैरा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + पुर] वह बड़ा कुआँ जिसमें तीन चरसे एक साथ चल सकें।

तिप्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—सो मुक्त तिप्त हरि दर्शन पावै। साध संगति महि हरि लिव लावै।—प्राण०,पृ० २२४।

तिप्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—तिप्ति संतोषि रहे लिउ लाई। नानक जोती जोति मिलाई।—प्राण० पृ० १७७।

तिफली(पु)—संज्ञा पुं० [अ० तिफल + फा० ई (प्रत्य०)] बचपन। उ०—पायद हुआ तिफली जवानी व बुढ़ापा।—कबीर ग्रं०, पृ० १५०।

तिफ्ल—संज्ञा पुं० [अ० तिफ्ल्] बच्चा। उ०— कहे आए तिफल मेरे नूर ऐनी। जो यक सोंजन कूँ लाओ होर तागा।—दक्खिनी०, पृ० ११५।

यौ०—तिफल मिजाज = बाल्य प्रकृतिवाला। तिफले अश्क = अश्रुबिंदु। तिफले आतश = चिनगारी। तिफले मकतब = निरक्षर। मूर्ख। अनभिज्ञ। अनाड़ी। तिफले शीरख्वार = दुधमुँहा बच्चा। तिफलेहिंदु = आँख की पुतली। कनीनिका।

तिब—संज्ञा स्त्री० [अ०] यूनानी चिकित्सा। हकीमी [को०]।

तिबद्धी—वि० स्त्री० [हिं० तीन + बाध] (चारपाई की बुनावट) जिसमे तीन बाध या रस्सियाँ एक साथ एक एक बार खींची जायँ।

तिबाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] आटा माड़ने का छिछला बड़ा बरतन।

तिबारा¹—वि० [हिं० तीन + बार] तीसरी बार।

तिबारा²—संज्ञा पुं० तीन बार उतारा हुआ मद्य।

तिबारा³—संज्ञा पुं०[हिं० तीन + बार (= दरवाजा)][स्त्री० तिबारी] वह घर या कोठरी जिसमे तीन द्वार हों।

तिबारी—संज्ञा स्त्री० [हिं] तीन द्वारवाला घर या कोठरी। उ०—वह मचलती हुई बिसात के बाहर तिबारी में चली आई। पाँसे हाथ मे लिए अकबर उसकी ओर देखने लगे।—इरा०, पृ० ३६।

तिबासी—वि० [हिं० तीन + बासी] तीन दिन का बासी (खाद्य पदार्थ)।

तिविक्रम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिविक्रम'। उ०—तरेई तीर तिविक्रम, ताकि दया करि दै विदिसा अनिमेषी। —घनानंद, पृ० १४८।

तिवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी।

तिब्ब—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ यूनानी चिकित्सा शास्त्र। हकीमी। २ चिकित्सा शास्त्र [को०]।

यौ०—तिब्बे कदीम = प्राचीन चिकित्सापद्धति। तिब्बे जदीद = नवीन चिकित्सापद्धति या पाश्चात्य चिकित्सापद्धति।

तिब्बत—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + भोट] एक देश जो हिमालय पर्वत के उत्तर पड़ता है।

विशेष—इस देश को हिंदुस्तान में भोट कहते हैं। इसके तीन विभाग माने जाते हैं। छोटा तिब्बत, बड़ा तिब्बत और खास तिब्बत। तिब्बत बहुत ठंढा देश है, इससे वहाँ पेड़ पौधे बहुत कम उपजते हैं। यहाँ के निवासी तातारियों से मिलते जुलते होते हैं और अधिकतर ऊन के कंबल, कपड़े आदि बुनकर अपना निर्वाह करते हैं। देश कस्तूरी और चँवर के लिये प्रसिद्ध है। सुरा गाय और कस्तूरी मृग यहाँ बहुत पाए जाते हैं। तिब्बत के रहनेवाले सब महायान शाखा के बौद्ध हैं। बौद्धों के अनेक मठ और मंदिर हैं। कैलास पर्वत और मानसरोवर झील तिब्बत ही में है। ये हिंदू और बौद्ध दोनों के तीर्थ स्थान हैं। कुछ लोग 'तिब्बत' को त्रिविष्टप् का अपभ्रंश बतलाते हैं। स्वतंत्र भारत ने इसे चीन को दे दिया और यह देश अब पूर्णतः चीनी शासन में है और वहाँ के प्रमुख दलाई लामा भारत में निवास करते हैं।

तिब्बती¹—वि० [हिं० तिब्बत] तिब्बत संबंधी। तिब्बत का। तिब्बत में उत्पन्न। जैसे, तिब्बती आदमी, तिब्बती भाषा।

तिब्बती²—संज्ञा स्त्री० तिब्बत की भाषा।

तिब्बती³—संज्ञा पुं० तिब्बत देश का रहनेवाला।

तिब्बिया—वि० [अ० तिब्बियह] तिब्ब संबंधी। हकीमी [को०]।

तिभुवन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—तुम तिभुवन तिहूँ काल बिचार बिसारद।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३०।

तिमंगल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिमिंगिल'। उ०—पाठ दिसा चित हुरे उताला। ताँता चाँपा तिमगल बाला।—रा० रू०, पृ० २१३।

तिमंजिला—वि० [हिं० तीन + अ० मंजिल][वि० स्त्री० तिमंजिली] तीन खंडों का। तीन मरातिब का। जैसे, तिमंजिला मकान।

तिम¹—संज्ञा पुं० [हिं० डिम] नगाड़ा। डंका। दुंदुभी (डिं०)।

तिम(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तिमि'। उ०—ता उप्पर चालुक्क वीर बंधी तिम सीमह।—पृ० रा०, १२। ३०।

तिमर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिमिर'। उ०—बूझ बिन सूझ पर तिमर लागी।—तुलसी० श०, पृ० १८।

तिमाना—क्रि० स० [देश०] भिगोना। तर करना।

तिमाशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+माशा] १ तीन माशे की एक तौल। २. ४ जौ की एक तौल जो पहाड़ी देशों में प्रचलित है।

तिमिंगल—संज्ञा पुं० [सं० तिमिङ्गल] १. समुद्र में रहनेवाला मत्स्य के आकार का एक बड़ा भारी जंतु जो तिमि नामक बड़े मत्स्य को भी निगल सकता है। बड़ा भारी ह्वेल। उ०—रत्न सौध के वातायन, जिनमें आता मधु मदिर समीर। टकराती होगी अब उनमें तिमिंगलों की भीड़ अधीर।—कामायनी, पृ० १२।

तिमिंगलाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दक्षिण का एक देशविभाग जिसके अंतर्गत लंका आदि हैं और वहाँ के निवासी तिमिंगल मत्स्य का मांस खाते हैं (बृहत्संहिता)। २ उक्त देश का निवासी।

तिमिंगिल—संज्ञा पुं० [सं० तिमिङ्गिल] दे० 'तिमिंगल' [को०]।

तिमि¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र में रहनेवाला मछली के आकार का एक बड़ा भारी जंतु।

विशेष—लोगों का अनुमान है कि यह जंतु ह्वेल है।

२. समुद्र। ३. आँख का एक रोग जिसमें रात को सुझाई नहीं पड़ता। रतौंधी। ४ मछली (को०)।

तिमि(पु)²—अव्य० [सं० तद् + इव = इमि] उस प्रकार। वैसे। उ०—तिमि तिमि मारवणीतणइ तन तरुण पण थाइ। ढोला०, पृ० १२।

विशेष—इसका व्यवहार 'जिमि' के साथ होता है।

तिमिकोश—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

तिमिघाती—संज्ञा पुं० [सं० तिमिघातिन्] मछेरा। मछुआ [को०]।

तिमिज—संज्ञा पुं० [सं०] मोती [को०]।

तिमित¹—वि० [सं०] १ निश्चल। अचल। स्थिर। २ क्लिन्न। भीगा। आर्द्र। ३ शांत। धीर (को०)।

तिमित(पु)²—वि० [सं० तम] काला। उ०—नयन सरोज दुहू बह नीर। काजर पखरि पखरि पर चीर। ऐँछि तिमित भेज उरज सुवेस।—विद्यापति, पृ० ३७१।

तिमिधार—संज्ञा पुं० [सं० तम + धार] अंधकार। अँधेरा। उ०—मनो कमल मुकलित खचित छयो सघन तिमिधार।—सं० सप्तक, पृ० ३४५।

तिमिध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] शंबर नामक दैत्य जिसे मारकर रामचंद्र ने ब्रह्मा से दिव्यास्त्र प्राप्त किया था।

तिमिमाली—संज्ञा पुं० [सं० तिमिमालिन्] समुद्र [को०]।

तिमिर—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंधकार। अँधेरा। उ०—काल गरज है तिमिर अपारा।—कबीर सा०, पृ० २। २ आँख का एक रोग।

विशेष—इसके अनेक भेद सुश्रुत ने बतलाए हैं। आँखों से धुंधला दिखाई पड़ना, चीजें रंग बिरंग की दिखाई पड़ना, रात को न दिखाई पड़ना आदि सब दोष इसी के अंतर्गत माने गए हैं।

३ एक पेड़। (वाल्मीकि०)।

तिमिरजा—वि० स्त्री० [सं० तिमिर+जा] अंधकार से उत्पन्न। उ०—लहराई दिग्भ्रांति तिमिरजा स्रोतस्विनी कराली। —मधुपर्क, पृ० ५१।

तिमिरजाल—संज्ञा पुं० [सं० तिमिर+जाल] अंधकारसमूह। घना अंधकार। उ०—गत स्वप्न निशा का तिमिरजाल नव किरणों से धो धो।—अपरा, पृ०१६।

तिमिरनुद्[1]—वि० [सं०] अंधकार का नाश करनेवाला।

तिमिरनुद्[2]—संज्ञा पुं० सूर्य।

तिमिरभिद्[1]—वि० [सं०] अंधकार को भेदने या नाश करनेवाला।

तिमिरभिद्[2]—संज्ञा पुं० सूर्य।

तिमिरमय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राहु। २. ग्रहण [को०]।

तिमिरमय[2]—वि० अंधकारयुक्त [को०]।

तिमिररिपु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। भास्कर।

तिमिरार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिमिरारि'। उ०—होइ मधुकर जोगी रस लेई। होइ तिमिरार जोत तोहि देई।—इंद्रा०, पृ० ७६

तिमिरारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार का शत्रु। २ सूर्य।

तिमिरारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तिमिराली] अंधकार का समूह। अँधेरा। उ०—मधुप से नैन वर वधुवल ऐस होठ श्री फल से कुच कच वेलि तिमिरारी सी।—देव (शब्द०)।

तिमिरावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकार का समूह। उ०—तिमिरावलि साँवरे दंतन कै छिति मैन धरे मनो दीपक ह्वै।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

तिमिर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिमिर'। उ०—जय गुरु तेज प्रचंड तिमिरि पाखंड विहंडन।—नट०, पृ० ६।

तिमिरी—संज्ञा पुं० [सं० तिमिरिन्] एक कीड़ा [को०]।

तिमिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वाद्य यंत्र [को०]।

तिमिष—संज्ञा पुं० [सं०] १ ककड़ी। फूट। २ पेठा। सफेद कुम्हड़ा। ३ तरबूज।

तिमी—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिमि मत्स्य। २. दक्ष की एक कन्या जो कश्यप की स्त्री और तिमिंगलों की माता थी।

तिमीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तिमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+फा० मुहाना] १ वह स्थान जहाँ तीन ओर जाने को तीन फाटक या मार्ग हों। तिरमुहानी। उ०—त्रिविध त्रास त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी।—मानस, १।४०। २ वह स्थान जहाँ तीन ओर से तीन नदियाँ आकर मिली हों।

तिम्मगत(पु)—वि० [?] १ अस्तमित। २ प्रखर गतिवाला। उ०—भर विभ्भर लग मग हय गह्य। रहिय तिम्मगत जुद्ध ह्य।—पृ० रा०, ७।१८१।

तिय(पु)—संज्ञा स्त्री' [सं० स्त्री] १ स्त्री। औरत। उ०—कै ब्रज तिय गन बदनकमल की झलकत झाईं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५५। २ पत्नी। भार्या। जोरू।

तियतरा†—वि० [सं० त्रि+अन्तर] [स्त्री० तियतरी] वह बेटा जो तीन बेटियों के बाद पैदा हो। तेतर।

तियरासि—वि० [हिं० तिय+राशि] कन्या राशि। उ०—ससि मीन तीस कटि एक अंस। तियरासि कह्यौ सुरभानुतंस।—हृ० रासो, पृ० २२।

तियला—संज्ञा पुं० [सं० तिय+ला (प्रत्य०)] स्त्रियों का एक पहनावा। उ०—ब्राह्मणियों को इच्छा भोजन करवाय सुथेर तियले पहराय दक्षिणा दी।—लल्लू० (शब्द०)।

तियलिंग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तिय+लिंग] दे० 'स्त्रीलिंग'। उ०—धारादिक तियलिंग ए, कवि भाषा के माँहि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३२।

तिया[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रि १ गंजीफे या ताश का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ हुती हैं। तिक्की। तिड़ी। २ नक्कीपूर के खेल में वह दाँव जो पूरे पूरे गडों के गिनने के बाद तीन कौड़ियाँ बचने पर होता है।

तिया(पु)[2]—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'तिय'। उ०—पुनि चौपर खेलौं कै हिया। जो तिर हेल रहै सो तिया।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३२।

तियाग(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्याग'। उ०—तीखो खाग तियाग, जेहल वेड़ो जनमियो।—बाँकी०, भा० ३, पृ० १२।

तियागना(पु)—क्रि० स० [सं० त्याग+ना (प्रत्य०)] त्याग करना। छोड़ना। उ०—मात पिता सब कुटुँब तियागे, सुरत पिया पर लावे।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०३।

तियागी(पु)†—वि० [सं० त्यागी] त्याग करनेवाला। छोड़नेवाला। उ०—बलि विक्रम दानी बड़ कहे। हातिम करन तियागी भई।—जायसी (शब्द०)।

तिरंग—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिरंगा'। उ०—फहर तिरंग चक्रदल प्रतिपल। हरता जन मन भय संशय, जय जय हे!—युगपथ, पृ० ८६।

तिरंगा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तीन+रंग] तीन रंगोवाला राष्ट्रीय ध्वज। उ०—आज तिरंगे से रे अंबर रंग तरंगित।—युगपथ, पृ० ६१।

तिरंगा[2]—वि० तीन रंगवाला। तीन रंगों का।

तिरकट—संज्ञा पुं० [?] आगे का पाल। अगला पाल (लश०)।

तिरकट गावी सवाई—संज्ञा पुं० [?] आगे का और सबसे ऊपरी सिरे पर का पाल (लश०)।

तिरकट गावी—संज्ञा पुं० [?] सिरे पर का पाल। (लश०)।

तिरकट डोल—संज्ञा पुं० [?] आगे का मस्तूल (लश०)।

तिरकट तवर—संज्ञा पुं० [?] वह छोटा चौकोर आगे का पाल जो सबसे बड़े मस्तूल के ऊपर आगे की ओर लगाया जाता है। इसका व्यवहार बहुत धीमी हवा चलने के समय होता है (लश०)।

तिरकट सवर—संज्ञा पुं० [?] सबसे ऊपर का पाल (लश०)।

तिरकट सवाई—संज्ञा पुं० [?] आगे का वह पाल जो उस रस्से में बँधा रहता है जो मस्तूल के सहारे के लिये लगाया जाता है (लश०)।

तिरकना†—क्रि० अ० [अनु०] तड़कना। चटखना। फट जाना।

तिरकस†—वि० [उ० तिरस्] टेढ़ा।

तिरकाना—क्रि० स० [अनुध्व०] १. ढीला छोड़ना। -(लश०)। २. रस्सी ढीली करना। लहासी छोड़ना (लश०)।

तिरकुटा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकटु] सोंठ, मिर्च, पीपल इन तीन कड़ुई ओपधियों का समूह।

तिरकुटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी'। उ०—झिलिमिलि झलकै नूर तिरकुटी महल मे।—पलटू०, पु० ६४।

तिरकोन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकोण'। उ०—त्रिगुन रूप तिरकोन यत्र वनि मध्य विंदु शिवदानी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४६।

तिरखा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] दे० 'तृषा'।

तिरखित(पु)—वि० [सं० तृषित] दे० 'तृषित'।

तिरखूँटा—वि० [सं० त्रि + हिं० खूँट] [वि० स्त्री० तिरखूँटी] जिसमें तीन खूँट या कोने हों। तिकोना।

तिरगुण(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिगुण'। उ०—नौ गुण सुत संयोग वखानूं तिरगुण गाँठ दवानी।—कबीर ग्रं०, पृ० १७५।

तिरच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिस वृक्ष।

तिरछई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा] तिरछापन।

तिरछ उड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा + उड़ना] मालखम की एक कसरत जिसमें खेलाड़ी के शरीर का कोई भाग जमीन पर नहीं लगता, एक कधा झुकाकर और एक पाँव उठाकर वह शरीर को चक्कर देता है। इसे छलाँग भी कहते हैं।

तिरछन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तिरछा'। उ०—हंस उवारे औ भ्रम टार तरनी तिरछन सो मारिए।—स० दरिया०, पृ० १०।

तिरछा—वि० [सं० तिर्यक् या तिरस्] [स्त्री० तिरछी] १ जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो। जो न बिलकुल खड़ा हो और न बिलकुल आड़ा हो। जो न ठीक ऊपर की ओर गया हो और न ठीक बगल की ओर। जो ठीक सामने की ओर न जाकर इधर उधर हटकर गया हो। जैसे, तिरछी लकीर।

विशेष—'टेढ़ा' और 'तिरछा' में अंतर है। टेढ़ा वह है जो अपने लक्ष्य पर सीधा न गया हो, इधर उधर मुड़ता या घूमता हुआ गया हो। पर तिरछा वह है जो सीधा तो गया हो, पर जिसका लक्ष्य ठीक सामने, ठीक ऊपर या ठीक बगल में न हो। (टेढ़ी रेखा ~; तिरछी रेखा /)।

यौ०—बाँका तिरछा = छबीला। जैसे, बाँका तिरछा जवान।

मुहा०—तिरछी टोपी = बगल में कुछ झुकाकर सिर पर रखी टोपी। तिरछी चितवन = विना सिर फेरे हुए बगल की ओर दृष्टि।

विशेष—जब लोगों की दृष्टि बचाकर किसी ओर ताकना होता है, तब लोग, विशेषत प्रेमी लोग, इस प्रकार की दृष्टि से देखते हैं।

तिरछी नजर = दे० 'तिरछी चितवन'। उ०—हुए एक आन मे जख्मी हजारो। जिधर उस यार ने तिरछी नजर की।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६। तिरछी बात या तिरछा वचन = कटु वाक्य। अप्रिय शब्द। उ०—हरि उदास सुनि तिरीछे।—सबल (शब्द०)।

२ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्राय अस्तर के काम मे आता है।

तिरछाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा + ई (प्रत्य०)] तिरछापन।

तिरछाना—क्रि० अ० [हिं० तिरछा] तिरछा होना।

तिरछापन—संज्ञा पुं० [हिं० तिरछा + पन (प्रत्य०)] तिरछा होने का भाव।

तिरछी[1]—वि० स्त्री० [हिं० तिरछा] दे० 'तिरछा'।

तिरछी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] अरहर के वे अपरिपक्व दाने जिनकी दाल नहीं बन सकती। इनको अलगाने के बाद चूनी बनाकर रोटी बनाते हैं या जानवरों को खिला देते हैं।

तिरछी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछी + बैठक] मालखम की एक कसरत जिसमें दोनों पैर रस्सी को ऐंठन की तरह परस्पर गुथकर ऊपर उठते हैं।

तिरछे—क्रि० वि० [हिं० तिरछा] तिरछेपन के साथ। तिरछापन लिए हुए।

तिरछौहाँ—वि० [हिं० तिरछा + औहाँ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तिरछौंही] कुछ तिरछा। जो कुछ तिरछापन लिए हो। जैसे, तिरछौहीं डीठ।

तिरछौहैं(पु)—क्रि० वि० [हिं० तिरछौहाँ] तिरछापन लिए हुए। तिरछेपन के साथ। वक्रता से। जैसे, तिरछौहैं ताकना।

तिरणिका(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तृण] दे० 'तिनका'। उ०—तिरणिका ओट सिष्ट का करता जुग देपि लुकाना।—रामानंद०, पृ० १६।

तिरतालीस†—वि० [हिं०] दे० 'तैंतालीस'।

तिरतिराना†—क्रि० अ० [अनु०] बूँद बूँद करके टपकना।

तिरथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ'। उ०—पहली भँवरिया वेद पढ़ै मुनि ज्ञानी हो। दुसरि भँवरिया तिरथ, जाको निरमल पानी हो।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ४।

तिरदंडी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदंडी-१'। उ०—नेम अचार करै कोउ कितनौ, कवि कोबिद सब खुक्ख। तिरदंडी सरबंगी नागा, मरे पियास औ भुक्ख।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११।

तिरदश(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदश] दे० 'त्रिदश'-१। उ०—ताकी कन्या रुक्मिनी मोहे तिरदशै।—अकबरी०, पृ० ३३४।

तिरदेव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदेव'। उ०—निराकार यम तहाँ न जाई। तिरदेवन की कौन चलाई।—कबीर सा०, पृ० ४१२।

तिरनⓊ—संज्ञा पुं० [हिं० तिरना] तैरने की क्रिया या भाव। उ०—बूड़बे के डर तें तिरन को उपाइ करै।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ०६५५।

तिरना—क्रि० अ० [सं० तरण] १ पानी के ऊपर आना या ठहरना। पानी में न डूबकर सतह के ऊपर रहना। उतराना। उ०—जल तिरिया पाहण सुजड़, पतखिय नाम प्रताप।—रघु० रू०, पृ०२। २ तैरना। पैरना। ३ पार होना। ४ तरना। मुक्त होना।

संयो० क्रि०—जाना

तिरनी—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० तिन्नी] १ वह डोरी जिससे घाघरा या धोती नाभि के पास बँधी रहती है। नीवी। तिन्नी। फुबती। २ स्त्रियों के घाघरे या धोती का वह भाग जो नाभि के नीचे पड़ता है। उ०—वेनी सुभग नितंबनि डोलत मंदगामिनी नारी। सूथन जघन बाँधि नाराबँद तिरनी पर छवि भारी।—सूर (शब्द०)।

तिरप—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि] नृत्य में एक प्रकार का ताल जिसे त्रिसम या तिहाई कहते हैं। उ०—तिरप लेति चपला सी चमकति झमकति भूषण अंग। या छवि पर उपमा कहुँ नाहीं निरखत विवस अनग।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

तिरपटा—वि० [देश०] १ तिरछा। टेढ़ा। टिड़बिड़गा। २ मुश्किल। कठिन। विकट।

तिरपटा—वि० [देश०] तिरछा ताकनेवाला। भेंगा। ऐंचाताना।

तिरपतⓊ—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—दरिया पीवै मौत कर, सो तिरपत हो जाय।—दरिया० बानी, पृ०३१।

तिरपतिⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृप्ति'-१। उ०—पायो पानी बुंद चोंच ते तिरपति प्यास न जाई।—जग० श०, पृ० ९६।

तिरपन[१]—वि० [सं० त्रिपञ्चाशत्, प्रा० तिपण्ण] जो गिनती में पचास से तीन और अधिक हो। पचास से तीन ऊपर।

तिरपन[२]—संज्ञा पुं० १ पचास से तीन अधिक की संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है. —५३।

तिरपाई—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपाद या त्रि + पदी] तीन पायों की ऊँची चौकी। स्टूल।

तिरपाल—संज्ञा पुं० [सं० तृण + हिं० पालना (= बिछाना)] फूस या सरकंडों के लंबे पूले जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं। मुट्ठा।

तिरपाल[२]—संज्ञा पुं० [अ० टारपालिन] रोगन चढ़ा हुआ कनवस। राल चढ़ाया हुआ टाट।

तिरपितⓊ‡—वि० [सं० तृप्त] दे० 'तृप्त'।

तिरपुटीⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुटी] दे० 'त्रिकुटी'। उ०—तिरपुटिय भाल मिल कमल सूर। इह भाँति तात्र त्रा तपनि पूर।—पृ० रा०, १। ४८६।

तिरपौलिया—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० पोल(= फाटक)] वह स्थान जहाँ बराबर से ऐसे तीन बड़े फाटक हों जिनसे होकर हाथी, घोड़े, ऊँट इत्यादि सवारियाँ अच्छी तरह निकल सकें।

विशेष—ऐसे फाटक किलों या महलों के सामने या बड़े बाजारों के बीच होते हैं।

तिरफला—संज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] दे० 'त्रिफला'।

तिरबेनी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिवेणी] दे० 'त्रिवेणी'।

तिरबो[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरना] सिंध देश की एक प्रकार की नाव का नाम।

तिरबोⓊ†[२]—संज्ञा पुं० [हिं० तरना] तिरने की क्रिया। मुक्तिप्राप्ति। मोक्ष। उ०—जपै समुझ नित जाय, सागरभव तिरबो सहल।—रघु० रू०, पृ० २।

तिरभंगीⓊ—वि० [हिं०] दे० 'त्रिभंगी'।—उ०—का बहुधाना किति कंत धीरज तिरभंगी।—पृ० रा०, १। ७६७।

तिरमिरा—संज्ञा पुं० [सं० तिमिर] १ दुर्बलता के कारण दृष्टि का एक दोष जिसमें आँखें प्रकाश के सामने नहीं ठहरती और ताकने में कभी अँधेरा, कभी अनेक प्रकार के रंग, और कभी छिटकती हुई चिनगारियाँ या तारे से दिखाई पड़ते हैं। २. कमजोरी से ताकने में जो तारे से छिटकते दिखाई पड़ते हैं, उन्हें भी तिरमिरे कहते हैं। ३ तीक्ष्ण प्रकाश या गहरी चमक के सामने दृष्टि की अस्थिरता। तेज रोशनी में नजर का न ठहरना। चकाचौंध।

क्रि० प्र०—लगना।

तिरमिरा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + मिलना] घी, तेल या चिकनाई के छींटे जो पानी, दूध या और किसी द्रव पदार्थ (जैसे, दाल, रसा आदि) के ऊपर तैरते दिखाई देते हैं।

तिरमिराना—क्रि० अ० [हिं० तिरमिरा] (दृष्टि का) प्रकाश के सामने न ठहरना। तेज रोशनी या चमक के सामने (आँखों का) झपना। चौंधना। चौंधियाना।

तिरमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिमुहानी'।

तिरलोक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोक] दे० 'त्रिलोक'। उ०—सकल तिरलोक लौं गावैं।—घट०, पृ० ३६९।

तिरलोकी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरलोक] दे० 'त्रिलोकी'।

तिरवट—संज्ञा [देश०] एक प्रकार का राग जो तराने या तिल्लाने का एक भेद है।

तिरवरⓊ—वि० [हिं० तिरवराना] झिलमिल। चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला। उ०—दादू जोति चमकै तिरवरै।—दादू०, पृ० २४०।

तिरवराना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिरमिराना'।

तिरवा—संज्ञा पुं० [फा०] उतनी दूरी जहाँ तक एक तीर जा सके।

तिरवाह†—संज्ञा पुं० [सं० तीर + वाह] नदी के तीर की भूमि।

तिरवाह[२]—क्रि० वि० किनारे किनारे। तट से

तिरश्चीन—वि० [सं०] १ तिरछा। २ टेढ़ा। कुटिल।

तिरश्चीन गति—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लयुद्ध की एक गति। कुश्ती का एक पैतरा।

तिरसंकु(प)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कु] दे० 'त्रिशंकु'। उ०—तिरसंकु गेहूँ लहू, दाऊ सम ए जान।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३४।

तिरस्—प्र० [सं०] अंतर्धान, तिरस्कार, आच्छादन, तिरछापन आदि अर्थों का बोधक शब्द [को०]।

तिरसठ¹—वि० [सं० त्रिषष्ठि, प्रा० तिसट्ठि] जो गिनती में साठ से तीन अधिक हो। साठ से तीन ऊपर। उ०—तिरसठ प्रकार की राग रागिनी छेड़ी।—कबीर ग्रं०, पृ० ४३।

तिरसठ²—संज्ञा पुं० १. वह सख्या जो साठ से तीन अधिक हो। २ उक्त सख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६३।

तिरसना†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—तिरसना के वश में पड़कर आदमी इसी तरह अपनी जिंदगी चौपट करता है।—गोदान, पृ० २८५।

तिरसा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० रस ?] वह पाल जिसका एक सिरा चौड़ा और एक सँकरा होता है (लश०)।

तिरसूत(प)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसूत्र] तीन तागों का यज्ञोपवीत। यज्ञोपवीत। उ०—ताके परछों पाँय ब्रह्म अपने को पावै। मर्म जनेऊ तोरि प्रेम तिरसूत बनावै।—पलटू०, भा० १, पृ० ११३।

तिरसूल‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिशूल'। उ०—जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल। तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसुल।—संतवाणी०, पृ० ४४।

तिरसूली(प)—संज्ञा पुं० [हिं० तिरसूल] दे० 'त्रिशूली'। उ०—महा मोहनी मय माया मोहे तिरसूली।—नंद०, ग्रं०, पृ० ३८।

तिरस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] आच्छादक। परदा करनेवाला। ढाँकनेवाला।

तिरस्करिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ओट। आड़। परदा। कनात। चिक। २ वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य अदृश्य हो सकता है।

तिरस्करी—संज्ञा पुं० [सं० तिरस्करिन्] [स्त्री० तिरस्करिणी] आच्छादन। परदा।

तिरस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तिरस्कृत] १. अनादर। अपमान। २ भर्त्सना। फटकार। ३ अनादरपूर्वक त्याग। ४ साहित्य के अंतर्गत एक अर्थालंकार जिसमें गुणान्वित वस्तु में दुर्गुण दिखाकर उसका तिरस्कार किया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तिरस्कार्य—वि० [सं०] तिरस्कार योग्य। तिरस्कृत होने लायक।

तिरस्कृत—वि० [सं०] १. जिसका तिरस्कार किया गया हो। अनादृत। २ अनादरपूर्वक त्याग किया हुआ। ३ आच्छादित। परदे में छिपा हुआ। ४ तंत्र के अनुसार (वह मंत्र) जिसके मध्य में वकार हो और मस्तक पर दो कवच और अस्त्र हों।

तिरस्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तिरस्कार। अनादर। २ आच्छादन। ३. वस्त्र। पहरावा।

तिरहा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक फतिंगा जो धान के फूल को नष्ट कर देता है।

तिरहुत—संज्ञा पुं० [सं० तीरभुक्ति] [वि० तिरहुतिया] मिथिला प्रदेश जिसके अंतर्गत आजकल बिहार के दो जिले हैं—मुजफ्फरपुर और दरभंगा। उ०—तिरहुत देस धनौती गाई।—घट पृ० ३५१।

तिरहुति—संज्ञा स्त्री० [सं० तीरभुक्ति] १ एक प्रकार का गीत जो तिरहुत मे गाया जाता है। २ दे० 'तिरहुत'।

यौ०—तिरहुतिनाथ = राजा जनक। उ० देखे सुने भूपति अनेक झूठें झूठें नाम, साँचे तिरहुतिनाथ साखि देति मही है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१४।

तिरहुतिया¹—वि० [हिं० तिरहुत] तिरहुत का। तिरहुत सबधी।

तिरहुतिया²—संज्ञा पुं० तिरहुत का रहनेवाला।

तिरहुतिया³—संज्ञा स्त्री० तिरहुत की बोली।

तिरहुती—वि०, संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं०] दे० 'तिरहुतिया'।

तिरहेल—वि० [सं० त्रि] क्रम में तीसरा। जो तीसरे स्थान पर हो।

तिरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसके बीजो से तेल निकलता है। एक तेलहन। तिउरा।

तिराटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोत।

तिरानबे¹—वि० [सं० त्रिनवति, प्रा० तिन्नवइ] जो गिनती में नब्बे से तीन अधिक हो। तीन ऊपर नब्बे।

तिरानबे²—संज्ञा पुं० १ नब्बे से तीन अधिक की सख्या। २ उक्त सख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९३।

तिराना¹—क्रि० स० [हिं० तिरना] १ पानी के ऊपर ठहराना। २. पानी के ऊपर चलाना। तैराना। ३. पार करना। ४. उबारना। तारना। निस्तार करना।

तिराना(प)²—क्रि० अ० [हिं० तिरना] पानी के ऊपर रहना। उतराना।—उ०—पानी पत्थर आज तिराना।—घट०, पृ० २३३।

तिराना³—क्रि० अ० [सं० तीर से नामिक धातु] तीर पर या किनारे आ जाना।

तिरावण(प)—संज्ञा पुं० [हिं० तिरना] तिरने की क्रिया या भाव। उ०—सो धीदाता पलक मैं तिरै, तिरावण जोग।—दादू०, पृ० ६।

तिरास—संज्ञा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास'। उ०—कई बार भागे गए छप्पन जहाँ तिरास।—सहजो० बानी०, पृ० ३३।

तिरासना‡¹—क्रि० स० [सं० त्रासन] त्रास दिखाना। डराना। भयभीत करना।

तिरासना†²—क्रि० अ० [सं० तृषित] प्यासा होना। प्यास लगना।

तिरासी¹—वि० [सं० त्र्यशीति, प्रा० तियासीति] जो गिनती में अस्सी से तीन अधिक हो। तीन ऊपर अस्सी।

तिरासी²—संज्ञा पुं० १ अस्सी से तीन अधिक की संख्या। २. उक्त सख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८३।

तिराहा—संज्ञा पुं० [हिं० ती < सं० त्रि + फा० राह] वह स्थान जहाँ से तीन रास्ते तीन ओर को गए हों। तिरमुहानी।

तिराही—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिराह] तिराह नामक स्थान की बनी कटारी या तलवार।

तिरि(पु)—वि० [सं० त्रि] तीन। उ०—पुनि तिहि ठाउँ परी तिरि रेखा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६४।

तिरिआ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिरिया'।

तिरिगत्त(पु)—संज्ञा पुं०[हिं०] दे० 'त्रिगर्त'। उ०—तिरिगत्त राज तामस बुझ्यौ दिपिय पंग सजोगि मुष।—पृ० रा०, ६१।२४५८।

तिरिजिह्वक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

तिरिन‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृण'।

तिरिम—संज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद। एक प्रकार का धान।

तिरिय(पु)[1]—वि० [सं० तिर्यक्] वक्र। कुटिल। उ०—तिरिय वक्र अधवक्र न ऊरध वक्र प्रमान।—पृ० रा०, ७। १७०।

तिरिय†[2]—संज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद। एक प्रकार का धान।

तिरिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री। औरत। उ०—तुम तिरिया मति हीन तुम्हारी।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—तिरिया चरित्तर = स्त्रियों का रहस्य या कौशल।

तिरिया[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो नेपाल में होता है। इसे ओला भी कहते हैं।

तिरिविष्टप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविष्टप] दे० 'त्रिविष्टप'। उ०—स्वर्ग, नाक, स्वर, द्यौ, त्रिदिवि, दिव, तिरिविष्टप होइ।—नद० ग्र०, पृ० १०८।

तिरिसना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—लोभ मोह हंकार तिरिसना, सग लीन्हे कोर।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ३१।

तिरीछन(पु)†—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० तीक्ष्ण। उ०—रीपी ध्यान छोरि के ताका। नैन तिरीछन भईं अति बाँका।—स० दरिया, पृ० ३।

तिरीछा(पु)†—वि० [हिं०] 'तिरछा'।

तिरीछो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तिरछा'। उ०—आपुन इनके अतर बरचो। ऊखल तनक तिरीछो करचो।—नद० ग्र०, पृ० २५४

तिरीट—संज्ञा पुं० [सं०] १ लोध्र। लोध। २ किरीट।

तिरीफल—संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीफल] वती वृक्ष।

तिरीबिरी—वि० [हिं०] दे० 'तिड़ीबिड़ी'।

तिरँदा—संज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १ समुद्र में तैरता हुआ पीपा जो सकेत के लिये किसी ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ पानी छिछला होता है, चट्टानें होती हैं, या इसी प्रकार की और कोई बाधा होती है।

विशेष—ये पीपे कई आकार प्रकार के होते हैं। किसी किसी के ऊपर घंटा या सीटी लगी रहती है।

२ मछली मारने की बसी मे कँटिया से हाथ डेढ़ हाथ ऊपर बँधी हुई पाँच छह अगुल की लकड़ी जो पानी पर तैरती रहती है और जिसके डूबने से मछली के फँसने का पता लगता है। तरँदा।

तिरै—संज्ञा पुं० [अनु०] फीलवानों का एक शब्द जिसे वे नहाते हुए हुए हाथियों को लेटाने के लिये बोलते हैं।

तिरोजनपद—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार राष्ट्र का मनुष्य। विदेशी।

तिरोधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतर्धान। अदर्शन। गोपन। आच्छादन। पर्दा। आवरण। परिधान (को०)।

तिरोधायक—संज्ञा पुं० [सं०] आड़ करनेवाला। छिपानेवाला गुप्त करनेवाला।

तिरोभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतर्धान। अदर्शन। गोपन। छिपाव।

तिरोभूत—वि० [सं०] गुप्त। छिपा हुआ। अदृष्ट। अतर्हित। गायब

तिरोहित—वि० [सं०] १. छिपा हुआ। अंतर्हित। अदृष्ट। उ०—आज तिरोहित हुआ कहाँ वह मधु से पूर्ण अनंत वसत ?—कामायनी, पृ० १०। २. आच्छादित। ढका हुआ।

तिरौंछा†—वि० [हिं०] दे० 'तिरछा'। उ०—कठिन वचन सु श्रवन जानकी सकी न वचन सहार। तृण अतर दै तिरौंछी दई नैन जलधार।—सूर (शब्द०)।

तिरौंदा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिरँदा'।

तिर्यंच[1]—वि० [सं० तिर्यञ्च] १ तिरछा। टेढा। वक्र। आड़ा [को

तिर्यंच[2]—संज्ञा पुं० [स्त्री० तिर्यंची] १ पक्षी। २ पशु। ३. जो जगत् या वनस्पति (जैव)।

तिर्यंचानुपूर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिर्यञ्चानुपूर्वी] जैन शास्त्रानुसार जी की वह गति जिसमें उसे तिर्यग्योनि मे जाते हुए कुछ काल त रहना पड़ता है।

तिर्यंची—संज्ञा स्त्री० [सं० तिर्यञ्ची] पशु पक्षियों की मादा।

तिर्गुन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिगुण'। उ०—इ कहै ठगा न को लिए है तिर्गुन गाँसी।—पलटू०, भा० १, पृ० ८३।

तिर्देव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०]दे० 'त्रिदेव'। उ०—कहैं कबीर यह ज्ञा तिर्देव का।—कबीर रे०, पृ० ३४।

तिर्पित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—विन मुंड के बहु करे अ तिर्पित कियो त्रिपुरारि है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २१।

तिर्यक्[1]—वि० [सं०] तिरछा। आड़ा। टेढ़ा।

विशेष—मनुष्य को छोड़ पशु पक्षी आदि जीव तिर्यक् कहलाते हैं क्योंकि खड़े होने मे उनके शरीर का विस्तार ऊपर की ओर नहीं रहता, आड़ा होता है। इनका खाया हुआ अन्न सीधे ऊपर से नीचे की ओर नहीं जाता, बल्कि आड़ा होकर पेट में जाता है।

तिर्यक्[2]—क्रि० वि० वक्रतापूर्वक। टेढ़ेपन के साथ [को०]।

तिर्यक्[3]—संज्ञा पुं० १ पशु। २ पक्षी [को०]।

तिर्यक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरछापन। आड़ापन।

तिर्यक्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] तिरछापन। आडापन।

तिर्यक्पाती—वि० [सं० तिर्यक्पातिन्] [वि०स्त्री० तिर्यक्पातिनी] आड़ा फैलाया या रखा हुआ। बेंड़ा रखा हुआ।

तिर्यक्प्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] चौड़ाई [को०]।

तिर्यक्प्रेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] तिरछी चितवन [को०]।

तिर्यक्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] दो सहारों पर टिकी हुई वस्तु का बीच में दबाव पड़ने से टूटना।

तिर्यक्स्रोतस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसका फैलाव आड़ा हो। २ जीव जिसके पेट में खाया हुआ आहार आड़ा होकर जाता हो। वह जीव जिसका आहार निगलने का नल खड़ा न हो, आड़ा हो। पशु पक्षी।

विशेष—पुराणों में जीव सृष्टि के ऊर्ध्वस्रोतस्, तिर्यक्स्रोतस् आदि कई वर्ग किए गए हैं। भागवत में तिर्यक्स्रोतस् २८ प्रकार के माने गए हैं—(१) द्विखुर (दो खुरवाले)—गाय, बकरी, भैंस, कृष्णसार मृग, सूअर, नीलगाय, रुरु नामक मृग। (२) एकखुर—गदहा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग, शरभ, सुरागाय। (३) पंचनख—कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरहा, सिंह, बंदर, हाथी, कछुवा, मेढक इत्यादि। (४) जलचर—मछली। (५) खेचर—गीध, बगला, मोर, हंस, कौवा आदि पक्षी। ये सब जीव ज्ञानशून्य और तमोगुणविशिष्ट कहे गए हैं। इनके अंत करण में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं बतलाया गया है।

तिर्यगयन—संज्ञा पुं० [सं० तिर्यक् + अयन] सूर्य की वार्षिक परिक्रमा [को०]।

तिर्यगीक्ष—वि० [सं०] तिरछा देखनेवाला [को०]।

तिर्यगीश—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०]।

तिर्यग्गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरछी या टेढ़ी चाल। २. कर्मवश पशु योनि की प्राप्ति।

तिर्यग्गामी[1]—संज्ञा पुं० [सं० तिर्यग्गामिन्] केकड़ा [को०]।

तिर्यग्गामी[2]—वि० तिरछी या टेढी चाल चलनेवाला [को०]।

तिर्यग्दिक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा [को०]।

तिर्यग्दिश—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा।

तिर्यग्यान—संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

तिर्यग्योनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशुपक्षी आदि जीव। दे० 'तिर्यक्स्रोतस्'।

तिर्यञ्च—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिर्यक्'।

तिलंगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + अगिनी] एक प्रकार की मिठाई जो चीनी में तिल पागकर बनती है।

तिलंगसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो हिमालय पर नैपाल से होकर पंजाब तक होता है। अफगानिस्तान में भी यह पेड़ पाया जाता है।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है, इमारतों में लगती है तथा हल, झप्पान का डंडा आदि बनाने के काम में आती है। शिमले के आसपास के जंगलों में इसकी लकडी का कोयला फूँका जाता है।

तिलंगा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तिलगाना, सं० तैलङ्ग] १ अंगरेजी फौज का देशी सिपाही।

विशेष—पहले पहल ईस्ट इंडिया कंपनी ने मदरास में किला बनाकर वहाँ के तिलंगियों को अपनी सेना में भरती किया था। इससे अंगरेजी फौज के देशी सिपाही मात्र तिलगे कहे जाने लगे।

२ सिपाही। सैनिक।

तिलंगा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + लंग] एक प्रकार का कनकौवा।

तिलंगा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० तिलंगी] आग का बडा कण। बड़ी चिनगारी।

तिलंगाना—संज्ञा पुं० [सं० तैलंग] तैलंग देश।

तिलंगी[1]—संज्ञा पुं० [सं० तैलग] तिलंगाने का निवासी। तैलंग। उ०—नहिं जालंधर थार बंग अंगी न तिलंगी—पृ० रा०, १२।१३०।

तिलंगी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + लंग] एक प्रकार की पतंग।

तिलंगी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिलंगा] आग का छोटा कण। चिनगारी

तिलंजुलि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलांजलि'। उ०—लोक लाज की गैल को देहु तिलंजुलि दान।—श्यामा०, पृ० ९०।

तिलंतुद—संज्ञा पुं० [सं० तिलन्तुद] तेली [को०]।

तिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रति वर्ष बोया जानेवाला हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा एक पौधा जिसकी खेती संसार के प्राय सभी गरम देशों में तेल के लिये होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आठ दस अंगुल तक लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी होती हैं। ये नीचे की ओर तो ठीक आमने सामने मिली हुई लगती हैं, पर थोड़ा ऊपर चलकर कुछ अंतर पर होती हैं। पत्तियों के किनारे सीधे नहीं होते, टेढ़े मेढ़े होते हैं। फूल गिलास के आकार के ऊपर चार दलों में विभक्त होते हैं। ये फूल सफेद रंग के होते है, केवल मुँह पर भीतर की ओर बैंगनी धब्बे दिखाई देते हैं। बीजकोश लंबोतरे होते हैं जिनमें तिल के बीज भरे रहते हैं। ये बीज चिपटे और लबोतरे होते हैं। हिंदुस्तान में तिल दो प्रकार का होता है—सफेद और काला। तिल की दो फसलें होती हैं—कुवारी और चैती। कुवारी फसल बरसात में ज्वार, बाजरे, धान आदि के साथ अधिकतर बोई जाती हैं। चैती फसल यदि कार्तिक में बोई जाय तो पूस माघ तक तैयार हो जाती है।

उद्भिद् शास्त्रवेत्ताओं का अनुमान है कि तिल का आदिस्थान अफ्रिका महाद्वीप है। वहाँ आठ नौ जाति के जंगली तिल पाए जाते हैं। पर तिल शब्द का व्यवहार संस्कृत में प्राचीन है, यहाँ तक कि जब और किसी बीज से तेल नहीं निकाला गया था, तब तिल से निकाला गया। इसी कारण उसका नाम ही तैल (तिल से निकला हुआ) पड़ गया। अथर्ववेद तक में तिल और धान द्वारा तर्पण का उल्लेख है। आजकल भी पितरों के तर्पण मे तिल का व्यवहार होता है। वैद्यक में तिल भारी, स्निग्ध, गरम, कफ-पित्त-कारक, बलवर्धक, केशों को हितकारी, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला, मलरोधक और वातनाशक माना जाता है। तिल का तेल यदि कुछ अधिक पिया जाय, तो रेचक होता है।

पर्या०—होमधान्य। पवित्र। पितृतर्पण। पापघ्न। पूतधान्य। जटिल। वनोद्भव। स्नेहफल। तैलफल।

यौ०—तिलकुट । तिलपट्टा । तिलभुग्गा । तिलशकरी ।

२ छोटा अश या भाग जो तिल के परिमाण का हो ।

मुहा०—तिल की ओझल पहाड = किसी छोटी बात के भीतर बड़ी भारी बात । तिल का ताड़ करना = किसी छोटी बात को बहुत बढ़ा देना । छोटे से मामले को बहुत बड़ा करना या दिखाना । तिल का ताड़ बनना = अतिरंजित होना । उ०—श्रद्धा के उत्साह वचन, फिर काम प्रेरणा मिल के । भ्रांत अर्थ बन आगे आए बने ताड थे तिल के ।—कामायनी, पृ० ११० । तिलचावले बाल = कुछ सफेद और कुछ काले बाल । खिचड़ी बाल । तिल चाटना = मुसलमानों के यहाँ विवाह में बिदाई के समय दूल्हे का दुलहिन के हाथ पर रखे हुए काले तिलों का चाटना ।

विशेष—यह टोटका इसलिये होता है जिसमें दूल्हा सदा अपनी स्त्री के वश में रहे ।

तिल तिल = थोड़ा थोड़ा । उ०—घरि स्वामि धर्म सुरग । बढ़ि रहे तिल तिल अग ।—ह० रासो, पृ० १२३ । तिल धरने की जगह न होना = जरा सी भी जगह खाली न रहना । पूरा स्थान छिका रहना । तिल बाँधना = सूर्यकांत शीशे से होकर आए हुए सूर्य के प्रकाश का केंद्रीभूत होकर बिंदु के रूप में पड़ना । तिल भर = (१) जरा सा । थोड़ा सा । उ०—रहा चढ़ाउब तोरब भाई । तिल भर भूमि न सकेउ छुड़ाई ।—तुलसी (शब्द०) ।† (२) क्षण भर । थोड़ी देर । (किसी के) तिलों से तेल निकालना = किसी से किसी प्रकार रुपया लेकर वही उसके काम में लगाना ।

३ काले रंग का छोटा दाग जो शरीर पर होता है । उ०—चिबुक कूप रसरी अलक तिल सु चरस दृग बैल । बारी बयस गुलाब की सींचत मन्मथ छैल ।—रसलीन (शब्द०) ।

विशेष—सामुद्रिक में तिलों के स्थान भेद से अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल बतलाए जाते हैं । पुरुष के शरीर में दाहिनी ओर और स्त्री के शरीर में बाईं ओर का तिल अच्छा माना जाता है । हथेली का तिल सौभाग्यसूचक समझा जाता है ।

४. काली बिंदी के आकार का गोदना जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये गाल, ठुड्डी आदि पर गोदाती हैं ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—लगाना ।

५ आँख की पुतली के बीचो बीच की गोल बिंदी जिसमें सामने पड़ी हुई वस्तु का छोटा सा प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है ।

तिलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलकण्ठी] विष्णुकांची । काली कौवाठोंठी ।

तिलक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह चिह्न जिसे गीले चदन, केसर आदि से मस्तक, बाहु आदि अगों पर सांप्रदायिक संकेत या शोभा के लिये लगाते हैं । टीका । उ०—छापा तिलक बनाइ करि दगध्या लोक अनेक ।—कबीर ग्रं०, पृ० ४६ ।

विशेष—भिन्न भिन्न सप्रदायों के तिलक भिन्न भिन्न आकार के होते हैं । वैष्णव खड़ा तिलक या ऊर्ध्व पुंड्र लगाते हैं जिसके सप्रदायानुसार अनेक आकृति भेद होते हैं । शैव आड़ा तिलक या त्रिपुंड्र लगाते हैं । शाक्त लोग रक्त चदन का आड़ा टी लगाते हैं । वैष्णवों में तिलक का माहात्म्य बहुत अधिक ब्रह्मपुराण में ऊर्ध्व पुंड्र तिलक की बड़ी महिमा गाई है । वैष्णव लोग तिलक लगाने के लिये द्वादश अग मा हैं—मस्तक, पेट, छाती, कठ, (दोनों पार्श्व) दोनों कां दोनों बाँह, कधा, पीठ और कटि । तिलक प्राचीन काल शृंगार के लिये लगाया जाता था, पीछे से उपासना का चि समझा जाने लगा ।

क्रि० प्र०—धारण करना ।—धारना ।—लगाना ।—सारना

२ राजसिंहासन पर प्रतिष्ठा । राज्याभिषेक । गद्दी ।

यौ०—राजतिलक ।

क्रि० प्र०—सारना = राज्य पर अभिषिक्त करना । गद्दी राजसिंहासन को प्रतिष्ठा देना । उ०—मिला जाइ जब अनु तुम्हारा । जातहि राम तिलक तेहि सारा ।—मानस, ५।५४ ३ विवाह संबध स्थिर करने की एक रीति जिसमें कन्या प के लोग वर के माथे में दही अक्षत आदि का टीका लगा और कुछ द्रव्य उसके साथ देते हैं । टीका ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।

मुहा०—तिलक देना = तिलक के साथ (धन) देना । जैसे, उसने कितना तिलक दिया । तिलक भेजना = तिलक सामग्री के साथ वर के घर तिलक चढ़ाने लोगों को भेजना ।

४ माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना । टीका । ५ शिर मणि । श्रेष्ठ व्यक्ति । किसी समुदाय के बीच श्रेष्ठ या उत्त पुरुष ।

विशेष—इसका समास के अत में प्रयोग बहुधा मिलता है जैसे, रघुकुलतिलक ।

६ पुन्नाग की जाति का एक पेड जिसमें छत्ते के आकार के वसत ऋतु मे लगते हैं ।

विशेष—यह पेड़ शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है इसकी लकडी और छाल दवा के काम आती है ।

७ मूँज का फूल या घूआ । ८. लोध्र वृक्ष । लोध का पेड़ । ९ मरुवक । मरुवा । १०. एक प्रकार का अश्वत्थ । ११. ए जाति का घोड़ा । घोडे का एक भेद । १२ तिल्ली जो पेट भीतर होती है । क्लोम । १३ सोवर्चल लवण । सोंच नमक । १४ संगीत में ध्रुवक का एक भेद जिसमे एक एक चरण पचीस पचीस अक्षरो के होते हैं । १५ किसी ग्रंथ की अर्थसूचक व्याख्या । टीका । १६ एक रोग (को०) । १७ पीपल का एक प्रकार या भेद (को०) । १८ तिल का पौधा या फूल (को०) ।

तिलक[2]—संज्ञा पुं० [तु० तिरलीक का सक्षिप्त रूप] १. एक प्रकार का ढीला ढाला जनाना कुरता जिसे प्राय मुसलमान स्त्रियाँ सूथन के ऊपर पहनती हैं । उ०—तनिया न तिलक, सुथनिया पगनिया न घामैं घुमराती छोड़ि सेजिया सुखन की ।—भूषण (शब्द०) । २. खिलअत ।

तिलक कामोद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रागिनी जो कामोद और

विचित्र प्रथवा कान्हड़ा कामोद प्रौर षड्योग से मिलकर बनी है।

तिलकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का चूर्ण। २ एक मिठाई जो तिल के चूर्ण के योग से बनती है।

तिलकधारी—संज्ञा पुं० [हिं० तिलक + धारी] तिलक लगानेवाला। उ०—दास पलटू कहै तिलकधारी सोई, उदित तिहु लोक रजपूत सोई।—पलटू०, भा० २, पृ० १६।

तिलकना[1]—क्रि० प्र० [हिं० तड़कना] गीली मिट्टी का सूखकर स्थान स्थान पर दरकना या फटना। ताल आदि की मिट्टी का सूखकर दरार के साथ फटना।

तिलकना(पु)[2]—क्रि० प्र० [हिं०] बिछलना। फिसलना। उ०—करहउ कादिम तिलकस्यइ पंथी पूगल दूर।—ढोला०, दू० २५६।

तिलक मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंदन आदि का टीका प्रौर शंख चक्र आदि का छापा जिसे भक्त लोग लगाते हैं।

तिलकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का चूर्ण। तिलकुट।

तिलकहरू—संज्ञा पुं० [सं० तिलक + हिं० हरू (प्रत्य०)] दे० 'तिलकहार'।

तिलकहार—संज्ञा पुं० [हिं० तिलक + हार (प्रत्य०)] वह मनुष्य जो कन्या के पिता के यहाँ से वर को तिलक चढ़ाने के लिये भेजा जाता है।

तिलका—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे दो सगण (।।ऽ) होते हैं। इसे 'तिल्ला', 'तिल्लाना' और 'डिल्ला' भी कहते हैं। २ कंठ में पहनने का एक आभूषण।

तिलकार्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खेती करनेवाला व्यक्ति [को०]।

तिलकालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ देह पर का तिल के आकार का काला चिह्न। तिल। २ सुश्रुत के अनुसार एक व्याधि जिसमे पुरुष की इंद्रिय पक जाती है और उसपर काले काले दाग से पड़ जाते हैं।

तिलकावल—वि० [सं०] चिह्नों से युक्त। चिह्नोंवाला [को०]।

तिलकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] माथा। ललाट [को०]।

तिलकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खली। पीना।

तिलकित—वि० [सं०] १ तिलक लगाए हुए। २ जिसको तिलक लगाया गया हो। जैसे, सिंदूर तिलकित भाल। ३ चित्ती-दार। बिंदीवाला [को०]।

तिलकुट—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलकट] कूटे हुए तिल जो खाँड की चाशनी में पगे हो।

तिलखली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + खली] तिल की खली [को०]।

तिलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तिलचटा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + चाटना] एक प्रकार का झींगुर। चपड़ा।

तिलचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी [को०]।

तिलचाँवरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हिं० चाँवरी] दे० 'तिलचावली'।

तिलचावली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + चावल] तिल और चावल की खिचड़ी।

तिलचावली[2]—वि० स्त्री० जिसका कुछ अंश सफेद और कुछ काला हो। जैसे, तिलचावली दाढ़ी।

तिलचित्रपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंद।

तिलचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] तिलकल्क। तिलकुट।

तिलछना—क्रि० प्र० [अनु०] विकल रहना। छटपटाना। बेचैन रहना।

तिलड़ा[1]—वि० [हिं० ती < सं० त्रि + हिं० लड़] [वि०स्त्री० तिलड़ी] जिसमें तीन लड़े हों। तीन लड़ो का।

तिलड़ा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] पत्थर गढ़नेवालो की एक छेनी जिससे टेढ़ी लकीर या लहरदार नक्काशी बनाई जाती है।

तिलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + लड] तीन लड़ों की माला जिसके बीच में एक जुगनी लटकती है।

तिलतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० तिल+तण्डुल] १ तिल और चावल। २ ऐसा मेल जिसमें मिलनेवालों का अस्तित्व स्पष्ट दिखाई दे।

यौ०—तिलतंडुल न्याय = दे० 'न्याय'।

तिलतुंडुलक—संज्ञा पुं० [सं० तिलतण्डुलक] १ भेंट। मिलन। २ आलिंगन। गले से लगाना [को०]।

तिलतैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल [को०]।

तिलदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल्ला+सं० आधान] कपड़े की वह थैली जिसमें दरजी सुई, तागा, अंगुश्ताना आदि औजार रखते हैं।

तिलद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी विशेष मास की द्वादशी तिथि (जो उत्सव के लिये निश्चित हो)।

तिलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें तिलों की गाय बनाकर दान करते हैं।

तिलपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + पट्टी] खाँड़ या गुड़ में पगे हुए तिलो का जमाया हुआ कतरा।

तिलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + पपडी] तिलपट्टी।

तिलपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंदन। २ सरल का गोंद। ३ तिल का पत्ता [को०]।

तिलपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तिलपर्णी'।

तिलपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रक्त चंदन। २ एक नदी [को०]।

तिलपिंज—संज्ञा पुं० [सं० तिलपिञ्ज] तिल का वह पौधा जिसमें फल नहीं लगते। बझा तिल वृक्ष।

तिलपिच्चट—संज्ञा पुं० [सं०] तिलो की पीठी। तिलकुटा।

तिलपीड़—संज्ञा पुं० [सं० तिलपीड] तिल पेरनेवाला, तेली।

तिलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ तिल का फूल। २. व्याघ्रनख। बघ-नखी। ३ नाक [को०]

तिलपुष्पक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहेड़ा । २. तिल का फूल (को०) । ३. नाक (क्योंकि इसकी उपमा तिल के फूल से दी जाती है) ।

तिलपेज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिलपिंज' ।

तिलफरा—संज्ञा पुं०[देश०] एक प्रकार का छोटा सुंदर सदाबहार वृक्ष ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय में ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और चमकीली होती हैं ।

तिलबढ़ा—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जिसमें गले के भीतर के मांस के बढ़ आने से वे कुछ खा पी नहीं सकते ।

तिलबर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

तिलभार—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम । —(महाभारत) ।

तिलभाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका (को०) ।

तिलभुग्गा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + सं० भुक्त] खाँड़ मिले हुए भुने तिल जो खाए जाते हैं । तिलकुट ।

तिलभृष्ट—वि० [सं०] तिल के साथ भुना या पकाया हुआ ।

विशेष—महाभारत में तिल के साथ भुनी हुई वस्तु के खाने का निषेध है । स्मृतियों में तिल मिला हुआ पदार्थ बिना देवार्पित किए खाना वर्जित है ।

तिलभेद—संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ते का दाना ।

तिलमनियाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हिं० मनिया] गले में पहना जानेवाला एक आभूषण । उ०—गले तिलमनिया पहुँचि विराजित बाजुबन फुंदन सुधारी री ।—सं० दरिया, पृ० १७० ।

तिलमयूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी देह पर तिल के समान काले चिह्न होते हैं ।

तिलमापट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण में बिलारी और करनूल में होनेवाली एक कपास ।

तिलमिल—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरमिर] चकाचौंध । तिरमिराहट ।

तिलमिलाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिरमिराना' ।

तिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिलमिलाना + आहट (प्रत्य०)] तिलमिलाने की क्रिया या भाव । व्याकुलता । बेचैनी ।

तिलमिली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिलमिलाना] तिलमिलाहट ।

तिलरस—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] टेढ़ी लकीर बनाने की छेनी जिसे कसेरे काम में लाते हैं ।

तिलरा[2]—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] [वि०स्त्री० तिलरी] दे० 'तिलड़ा' ।

तिलरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलड़ी' ।

तिलवट—संज्ञा पुं० [हिं० तिल] तिलपट्टी । तिलपपडी ।

तिलवन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधा जो जंगलों और बगीचों में होता है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—एक सफेद फूल का, दूसरा नीलापन लिए पीले फूल का । इसमें लंबी फलियाँ लगती हैं । इसके बीज, फूल आदि दवा के काम में आते हैं । वैद्यक में तिलवन गरम और वात गुल्म आदि को करनेवाली मानी जाती है । पीली तिलवन आँख के में पड़ती है ।

पर्या०—अजगंधा । खरपुष्पा । सुगंधिका । कावरी । तुगी ।

तिलवा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + वा (प्रत्य०)] तिलों का लड्डू ।

तिलशकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + शकर] तिल और की बनाई हुई मिठाई । तिलपपडी ।

तिलशिखी—संज्ञा पुं० [सं० तिलशिखिन्] तिलमयूर (को०) ।

तिलशैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का पर्वताकार ढेर जो दिया जाता है ।

तिलषिवक—संज्ञा पुं० [?] तेली । उ०—तेली को कहा जाता था ।—आर्य० भा०, पृ० २९२ ।

तिलसुषमा—संज्ञा पुं० [सं० तिल + सुषमा] सृष्टि के सभी पदार्थों से थोड़ा थोड़ा करके एकत्र किया गया उ०—निर्मित सबकी तिलसुषमा से, तुम निखिल सृष्टि चिर निरुपम ।—युगांत, पृ० ४६ ।

विशेष—तिलोत्तमा नामक अप्सरा को सृष्टि ब्रह्मा ने प्रकार की थी । सुंद और उपसुंद नाम के दो असुर भाई तिलोत्तमा के लिये आपस में ही लड़कर मर गए ।

तिलस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलस्म—संज्ञा पुं० [अ० तिलिस्म] १. जादू । इंद्रजाल । २ या अलौकिक व्यापार । करामात । चमत्कार । ३. (को०) ४. वह मायारचित विचित्र स्थान जहाँ अजीबो व्यक्ति और चीजें दिखलाई पड़ें और जहाँ जाकर आदमी जाय और उसे घर पहुँचने का रास्ता न मिले ।

मुहा०—तिलस्म तोड़ना = किसी ऐसे स्थान के रहस्य का लगा देना जहाँ जादू के कारण किसी की गति न हो ।

यौ०—तिलस्म बंद = तिलस्म और जादू के असर में आया मायारस्ता । तिलस्म बंदी = जादू के असर में आ जाना ।

तिलस्मात—संज्ञा पुं० [अ० तिलिस्म का बहु व०] मायारचित स्थान । मायाजाल (को०) ।

तिलस्माती—वि० [अ० तिलिस्मात + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. मायापूर्ण । तिलस्मी । २. मायावी । जादूगर (को०) ।

तिलस्मी—वि० [अ० तिलिस्म + फ़ा० ई० (प्रत्य०)] १. तिलस्म संबंधी । जादू का । २ मायानिर्मित । माया संबंधी (को०) ।

तिलहन—संज्ञा पुं० [हिं० तेल+धान्य] फसल के रूप में बोए जानेवाले पौधे जिनके बीजों से तेल निकलता है । जैसे, तिल, सरसों, तीसी इत्यादि ।

तिलांकित दल—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंद ।

तिलांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जलि] दे० 'तिलांजली' (को०) ।

तिलांजली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जली] मृतक संस्कार का एक अंग ।

विशेष—हिंदुओं में मृतक संस्कार की एक क्रिया जो मुरदे के जल चुकने पर स्नान करके की जाती है। इसमें हाथ की अंजुली में जल भरकर और उसमें तिल डालकर उसे मृतक के नाम से छोड़ते हैं।

मुहा०—तिलांजली देना = बिलकुल त्याग देना। जरा भी संबंध न रखना।

तिलांबु—संज्ञा पुं० [सं० तिलाम्बु] तिलांजली।

तिला¹—संज्ञा पुं० [अ०] सुवर्ण। सोना (को०)।

तिला²—संज्ञा पुं० [अ० तिलाअ] वह तेल जो लिंगेंद्रिय पर उसकी शिथिलता दूर करने के लिये लगाया जाय। लिंगलेप। २ दे० 'तिल्ला'।

तिलाक—संज्ञा पुं० [अ० तलाक़] १ पति-पत्नी-संबंध का भंग। स्त्री पुरुष के नाते का टूटना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

विशेष—ईसाइयों, मुसलमानों आदि में यह नियम है कि वे आवश्यकता पड़ने पर अपनी विवाहिता स्त्री से एक विशेष नियम के अनुसार संबंध तोड़ देते हैं। उस दशा में स्त्री और पुरुष दोनों को अलग अलग विवाह करने का अधिकार हो जाता है।

यौ०—तिलाकनामा।

२ परित्याग। त्याग देना। छोड़ देना। उ० —वाहि तिलाक याहि जो खोवै।—चरण० बानी, पृ० ३१०।

तिलाकार—वि० [अ० तिला + फ़ा० कार (प्रत्य०)] सोने की चित्रकारीवाला। उ०—बाद मुद्दत के हैं देहली के फिरे दिन या रब। तख्त ताऊस तिलाकार मुबारक होवे।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७४७।

तिलादानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलदानी'।

तिलान्न—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खिचड़ी।

तिलापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला जीरा।

तिलावा¹—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + लावना, लाना ?] वह बड़ा कूआँ जिसपर एक साथ तीन पुरवट चल सकें।

तिलावा²—संज्ञा पुं० [अ० तलायह] रात के समय कोतवाल आदि का शहर में गश्त लगाना। रौंद।

तिलिंग—संज्ञा पुं० [सं० तिलिङ्ग] एक देश का नाम (को०)।

तिलिंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलंगा'।

तिलित्स—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का साँप जिसे गोनस भी कहते हैं। २ अजगर (को०)।

तिलिया—संज्ञा पुं० [देश०] १ सरपत। २ दे० 'तेलिया' (विष)।

तिलिस्म—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'तिलस्म' (को०)।

तिलिस्मात—संज्ञा पुं० [अ० तिलिस्म का बहु व०] दे० 'तिलस्मात' (को०)।

तिलिस्माती—वि० [अ० तिलिस्मात + फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्माती' (को०)।

तिलिस्मी—वि० [अ० तिलिस्म + फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्मी' (को०)।

तिली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'तिल'। २. दे० 'तिल्ली'।

तिली²—संज्ञा स्त्री० [हिं० तितली का संक्षिप्त रूप] दे० 'तितली'।

तिलेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेलहन + एती (प्रत्य०)] तेलहन की खूँटी जो फसल काटने पर खेत में बच जाती है।

तिलेदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलदानी'।

तिलेगू—संज्ञा स्त्री० [तेलु० तेलुगु] दे० 'तेलगू'।

तिलोक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिलोक'।

तिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकपति] विष्णु। उ०—तुलसी बिलोक ह्वै तिलोकपति लोगो नाम को प्रताप बात विदित है जग में।—तुलसी (शब्द०)।

तिलोकी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकी] इक्कीस मात्राओं का एक उपजाति छंद जो प्लवंगम और चांद्रायण के मेल से बनता है। इसके प्रत्येक चरण के अंत में लघु गुरु होता है।

तिलोचन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिलोचन'।

तिलोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक परम रूपवती अप्सरा जिसके विषय में यह कहा जाता है कि ब्रह्मा ने संसार भर के सब उत्तम पदार्थों में से एक एक तिल अंश लेकर इसे बनाया था।

विशेष—इसकी उत्पत्ति हिरण्याक्ष के सुंद और उपसुंद नामक दोनों पुत्रों के नाश के लिये हुई थी जिन्होंने बहुत तपस्या करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि हम लोग किसी दूसरे के मारने से न मरें, और यदि मरें भी तो आपस में ही लड़कर मरें। इन दोनों भाइयों में बहुत स्नेह था और इन्होंने देवताओं तथा इंद्र को बहुत तंग कर रखा था। इन्हीं दोनों में विरोध कराने के लिये ब्रह्मा ने तिलोत्तमा की सृष्टि की और उसे सुंद तथा उपसुंद के निवासस्थान विंध्याचल पर भेज दिया। इसी को पाने के लिये दोनों भाई आपस में लड़ मरे थे।

तिलोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिल मिला अंजुली भर जल जो मृतक के उद्देश्य से दिया जाता है। तिलांजली। उ०—पुत्र न रहता, तो क्या होता कौन फिर देता पिंड तिलोदक।—करुणा०, पृ० १६।

तिलोरि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलोरी'। उ०—पियरि तिलोरि आव जलहंसा। बिरहा पैठि हिए कत नसा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३६३।

तिलोरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना जिसे तेलिया मैना भी कहते हैं। उ०—पेडु तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठ बिरह लग निसा।—जायसी (शब्द०)।

तिलोरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हिं० औरी (प्रत्य०)] दे० 'तिलौरी'।

तिलोहरा†—संज्ञा पुं० [देश०] पटसन का रेशा।

तिलौंछना—क्रि० स० [हिं० तेल + औंछना (प्रत्य०)] थोड़ा

तेल लगाकर चिकना करना। उ०—पुनि पोंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अँगोछे मे आछे अँगोछनि कै।—देव ग्रं०, पृ० २०।

तिलौंछा—वि० [हिं० तेल+औंछा (प्रत्य०)] जिसमें तेल का सा स्वाद या रंग हो। जैसे, तिलौंछा फल।

तिलौनी㉤—वि० [हिं० तेल] सुगंधित। उ०—आछी तिलौनी लसै अँगिया गसि चोवा की बेलि बिराजति सोहन।—घनानंद, पृ० २११।

तिलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल+बरी] उर्द या मूँग की वह बरी जिसमें कुछ तिल भी मिला हो।

विशेष—इसमें नमक भी पड़ा रहता है और यह घी में तलकर खाई जाती है।

तिल्य[1]—संज्ञा पुं० [सं० तिल] तिल का खेत। उ०—तिल, उड़द, अलसी अर्थात् और चीना के खेतों को क्रमशः तिल्य तैलीन... कहते थे।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

तिल्य[2]—वि० तिल की खेती के योग्य [को०]।

तिल्लना—संज्ञा पुं० [?] तिल्का नाम का वर्णवृत्त।

तिल्लर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसे लोवर भी कहते हैं।

तिल्ला[1]—संज्ञा पुं० [अ० तिला] १ कलाबत्तू या बादले आदि का काम।

यौ०—तिल्लेदार।

२ पगड़ी दुपट्टे या साड़ी आदि का वह अंचल जिसमें कलाबत्तू या बादले आदि का काम किया हो। ३ वह सुंदर पदार्थ जो किसी वस्तु की शोभा बढ़ाने के लिये उसमे जोड़ दिया जाय। (क्व०)।

यौ०—दबरा तिल्ला।

तिल्ला[2]—संज्ञा पुं० दे० 'तिलका' (वर्णवृत्त)।

तिल्लाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तराना'–१।

तिल्ली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलक, तुलनीय अ० तिहाल (= तिल्ली)] पेट के भीतर का अवयव जो मांस की पोली गुठली के आकार का होता है और पसलियों के नीचे पेट की बाईं ओर होता है।

विशेष—इसका संबंध पाकाशय से होता है। इसमें खाए हुए पदार्थ का विशेष रस कुछ काल तक रहता है। जबतक यह रस रहता है, तबतक तिल्ली फैलकर कुछ बड़ी हुई रहती है, फिर जब इस रस को रक्त सोख लेता है, तब यह फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। तिल्ली मे पहुँचकर रक्तकणिकाओं का रंग बैंगनी हो जाता है।

ज्वर के कुछ काल तक रहने से तिल्ली बढ़ जाती है, उसमें रक्त अधिक आ जाता है और कभी कभी छूने से पीड़ा भी होती है। ऐसी अवस्था में उसे छेदने से उसमे से लाल रक्त निकलता है। ज्वर आदि के कारण बार बार अधिक रक्त आते रहने से ही तिल्ली बढ़ती है। इस रोग में मनुष्य दिन दिन दुबला होता जाता है, उसका मुँह सूखा रहता है और पेट निकल आता है। वैद्यक के अनुसार जब दाहकारक तथा कफकारक पदार्थों के विशेष सेवन से रुधिर कुपित होकर कफ द्वारा प्लीहा को बढ़ाता है, तब तिल्ली बढ़ जाती और मंदाग्नि, जीर्ण ज्वर आदि रोग साथ लग जाते हैं। जवाखार, पलाश का क्षार, शंख की भस्म आदि प्लीहा आयुर्वेदोक्त औषध हैं। डाक्टरी में तिल्ली बढ़ने पर कु[illegible] तथा आर्सेनिक (संखिया) और लोहा मिली हुई दवाएँ जाती हैं।

पर्या०—प्लीहा। पिलही।

तिल्ली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल] तिल नाम का अन्न या तेलहन वि० दे० 'तिल'।

तिल्ली[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो आसाम और बरमा में ऊँची पहाड़ियों पर होता है।

विशेष—ये बाँस पचास साठ फुट तक ऊँचे होते हैं और इ[illegible] गाँठें दूर दूर पर होती हैं, इससे ये चोंगे बनाने के काम अधिक आते हैं।

तिल्ली[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तीली'।

तिल्लोतमा㉤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलोत्तमा'। उ०—ति[illegible] ऊपर तिल्लोतमा वार बई सौ बार।—बाँकी० ग्रं०, भा० पृ० ११।

तिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] लोध्र। लोध।

तिल्वक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोध। २ तिनिश।

तिल्हारी†—संज्ञा स्त्री० [?] झालर की तरह का वह परदा [illegible] घोड़ो के माथे पर उनकी आँखों को मक्खियों से बचाने लिये बाँधा जाता है। नुकता।

तिवहार㉤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार'। उ०—होली तिवह[illegible] की बसंत पञ्चमी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८।

तिवाड़ी‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिवारी'।

तिव㉤—अव्य० [हिं०] दे० 'तिमि'। उ०—उच्छइ पाणी ज[illegible] माछली जिव जागु तिव उठुछु झवि।—बी० रासो[illegible] पृ० ४८।

तिवइ㉤†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।

तिवई㉤†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।

तिवाना㉤—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तेवाना'। उ०—तब जुलह[illegible] मन किया तिवाना।—कबीर सा०, पृ० ७४।

तिवार㉤—अव्य० [?] तदा। तब। उस बार। उस समय। उ०—सम राज पठिय चली तिवार। नृपराज एह अद्भुत विचार —पृ० रा०, २४। ११३।

तिवारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठी] [स्त्री० तिवराइन] त्रिपाठी वि० दे० 'त्रिपाठी'।

तिवारी㉤[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिवारा] वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों। उ०—फूलनि के खंभ फूलनि की तिवारी।— छीत०, पृ० २७।

तिवास†—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवासर] तीन दिन। उ०—मन फाटे बायक बरे मिटै सगाई साक। जैसे दूध तिवास को उलटि हुआ जो आक।—कबीर (शब्द०)।

तिवासी—वि० [हिं०] दे० 'तिवासी'।

तिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविक्रम] दे० 'त्रिविक्रम'। उ०—दुज कनोज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर। बसत तिविक्रम पुर सदा, तरनि तनूजा तीर।—भूषण ग्रं०, पृ० १८।

तिवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी।

तिशाना^१—संज्ञा पुं० [अ० तअनीम् (=बुरा भला कहना)] ताना। मेहना।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

यौ०—ताना तिशना।

तिशना^२—वि० [फ़ा० तिश्नह्] १. प्यासा। तृषित। २. अतृप्त। असंतुष्ट।

यौ०—तिश्ना काम=(१) तृषित। (२) असफलमनोरथ। तिश्ना जिगर=(१) असफलकाम। (२) अभिलाषी। तिशना खूँ=खून का प्यासा। जान का गाहक। तिश्नए दीदार=दर्शन की तृषा।

तिशनाखब—वि० [फ़ा० तिश्नह् लब] १. बहुत प्यासा। तृषित। २. इच्छुक। उ०—मारद्ध ए चश्मए कौसर नहीं। तिश्नालब हूँ शरबते दीदार का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६।

तिश्नाह—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—बहु तरंग तिश्नाह राग बहु ग्रेह कुरतो।—पृ० रा०, ११७६७।

तिष—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'। उ०—जब सूखे तब ही तिष जावै।—प्राण०, पृ० १५।

तिष्टी—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठित] स्थापित। निर्मित। उ०—कोउ कहै यह काज उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्टी।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१६।

तिष्ठद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जिसमें गौएँ चरकर अपने खूँटे पर आ जाती हैं। संध्या। सायंकाल। गोधूली।

तिष्ठद्धोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक होम या यज्ञ जिसमें पुरोहित खड़ा रहकर आहुति प्रदान करता है (को०)।

तिष्ठना—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठ] ठहरना। उ०—चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं कोई।—तुलसी (शब्द०)।

तिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिस्ता नाम की नदी जो हिमालय के पास से निकलकर नवाबगंज के पास गंगा से मिलती है।

तिष्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्य नक्षत्र। २. पौष मास। ३. कलियुग। ४. अशोक के एक भाई का नाम (को०)।

तिष्य^२—वि० १. मांगल्य। कल्याणकारी। २. भाग्यवान (को०)। ३. तिष्य नक्षत्र में उत्पन्न (को०)।

तिष्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पौष मास।

तिष्यकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०)।

तिष्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी।

तिष्यफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी (को०)।

तिष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी। २. दीप्ति। चमक (को०)।

तिष्यन—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—खग्ग में पग्गर तिष्यन तेज जे सूर समाज में यान गने हैं।—तुलसी (शब्द०)।

तिष्षिय—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—असिय मुष्ष दंतलिय तरल तिष्षिय आधारिय।—पृ० रा० २।१५३।

तिस^१—सर्व० [सं० तस्य, पा० तिस्सं, प्रा० तस्स, तिस्स] 'ता' का एक रूप जो उसे विभक्ति लगने के पूर्व प्राप्त होता है। जैसे, तिसने, तिसको, तिससे इत्यादि।

विशेष—अब इस शब्दप्रकार का व्यवहार गद्य में नहीं होता, केवल 'तिसपर' का प्रयोग होता है।

मुहा०—तिस पर=(१) उसके पीछे। उसके उपरांत। (२) इतना होने पर। ऐसी अवस्था में। जैसे,-(क) हमारी चीज भी ले गए, तिसपर हमीं को बातें भी सुनाते हो। (ख) इतना मना किया, तिसपर भी वह चला गया।

तिस^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष] दे० 'तृषा'। उ०—चित हितमय उदार आनंदघन रस बरसत चातक तिस तें रे।—घनानंद, पृ० १६४।

तिसखुटा—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसी+खूँटी] तीसी के पौधों के छोटे छोटे डंठल जो फसल कटने पर जमीन में गड़े रह जाते हैं। तीसी की खूँटी।

तिसखुर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिसखुट'।

तिसटना—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठ] स्थित रहना। उ०—ज्यारै घोड़ा सँग जग, वैरी घणा वसंत। तिसटै दिन घोड़ा तिके, पाखे घत प्रसत।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६६।

तिसडौ†—वि० [हिं० तिस+डौ(प्रत्य०)] वैसी। उस तरह की। उ०—नारी इक वीर उर्में नर में, तिसडी न सखी सुपनतर में।—रघु० रू०, पृ० १३३।

तिसना—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] दे० 'तृष्णा'।

तिसरा†—वि० [हिं० तीसरा] [वि० स्त्री० तिसरी] दे० 'तीसरा'। उ०—सो प्रगटित बिज रूप करि इहि तिसरे अध्याइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३१।

तिसराना—क्रि० स० [हिं० तिसरा से नामिक धातु] तीसरी बार करना।

तिसरायत†—क्रि० वि० [हिं० तिसरा] तीसरी बार।

तिसरायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसरा+आयत (प्रत्य०)] १. तीसरा होने का भाव। गैर होने का भाव। २. मध्यस्थ। बिचला।

तिसरैत—संज्ञा पुं० [हिं० तीसरा+एत (प्रत्य०)] १. दो आदमियों के झगड़े से अलग एक तीसरा मनुष्य। तटस्थ। मध्यस्थ। २. तीसरे हिस्से का मालिक।

तिसा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'। उ०—तातें तिसा अजौं न बिधारे। विषयन दीन देह प्रतिपारे।—नंद० ग्रं०, पृ० २१२।

तिसाना—क्रि० प्र० [सं० तृषा] प्यासा होना। तृषित होना। उ०—देखि के विभूति सुख उपज्यो अभूत कोऊ (चल्यो मुख माधुरी के लोचन तिसाये हैं।—प्रिया (शब्द०)।

तिसाया†—वि० [हिं० तिसाना] तृषित। प्यासा। उ०—बेगम ने रहिल्खेवाँ सलवा में कहाया। सारा कामणीनी खून मेटा का तिसाया।—बिखर०, पृ०५७।

तिसिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० तृषित, प्रा० तिसिय] तृषित। प्यासा। उ०—या रहनी तैं पैकबर निपजे, तिसियाँ मरै संसारा। —गोरख०, पृ० २१३।

तिसी(पु)—वि० [हिं० तिस + ई (प्रत्य०)] उसी। उ०—लाहो लेता जनम गो तुय करै तिसी तोयी होई।—बी० रासो, पृ०४४।

तिसु(पु)—सर्व० [सं० तस्य, हिं० तिस] उसको। उसे। उ०—जिनि चाखिया तिसु आया स्वादु। नानक बोलै इहु बिसमाद।—प्राण०, पृ० १३४।

तिसो(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तिस'। उ०—तक खीजो सोना तिसो पातर वालो प्रेम।—वाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५।

तिसूत—संज्ञा पुं० [?] एक दवा का नाम।

तिसूती¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + सूत] तीन तीन सूत के ताने बाने से बुना हुआ कपड़ा।

तिसूती²—वि० तीन तीन सूत के ताने बाने से बुना हुआ।

तिस्टा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—नहिं भोजन नहिं प्रास नही इंद्री की तिस्टा।—पलटू०, भा० १, पृ० ५६।

तिस्ना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—काम क्रोध तिस्ना मद माया। पाँचौ चोर न छाड़हिं काया।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० २०४।

तिस्रा——संज्ञा स्त्री० [सं०] शखपुष्पी।

तिस्स—संज्ञा पुं० [सं० तिष्य] राजा अशोक के सगे भाई का नाम।

तिह(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तिया। स्त्री। उ०—चदनह बन्न-ज्यों पाय खिल्ल। तिह नाह पिष्ष ज्यों सुभग सिल्ल।—पृ० रा०, ३।४६।

तिहत्तर¹—वि० [सं० त्रिसप्तति, पा० तिसत्तति, प्रा० तिहत्तरि] जो गिनती में सत्तर से तीन अधिक हो। तीन ऊपर सत्तर।

तिहत्तर²—संज्ञा पुं० १ सत्तर से तीन अधिक की संख्या। २ उक्त सख्यासूचक अक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७३।

तिहद्दा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + अ० हद्द] वह स्थान जहाँ तीन हदें मिलती हों।

तिहरा¹—वि० [हिं०] दे० 'तेहरा'।

तिहरा²—संज्ञा स्त्री० [देश०] [स्त्री० अल्पा० तिहरी] दही जमाने या दूध दुहने का मिट्टी का बरतन।

तिहराना—क्रि० [हिं० तेहरा] (किसी बात या काम को) तीसरी बार करना। दो बार करके एक बार फिर और करना।

तिहरी¹—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तेहरी'।

तिहरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + हार] तीन लड़ों की माला।

तिहरी³—संज्ञा स्त्री० [हिं० ती ? + हड़ी] दूध दुहने या दही जमाने का मिट्टी का छोटा बरतन।

तिहवार—संज्ञा पुं० [स० तिथिवार] पर्व या उत्सव का दिन। त्योहार वि० दे० 'त्योहार'।

तिहवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योहारी'।

तिहा—संज्ञा पुं० [स० तिहन] १. रोग। २ चावल। ३ धनुष। ४. अच्छाई। सद्भाव [को०]।

तिहाई¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + भाग] १. तृतीयांश। तीसरा भाग। तीसरा हिस्सा।

तिहाई²—संज्ञा स्त्री० खेत की उपज। फसल। (पहले खेत की उपज का तृतीयांश काश्तकार लेता था, इसी से यह नाम पड़ा)। उ०—नई तिहाई के अँखुआ खेतन ज्यों ऊगत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४४।

मुहा०—तिहाई काटना = फसल काटना। तिहाई मारी जाना = फसल का न उपजना।

तिहाउ†—संज्ञा पुं० [हिं०] १ क्रोध। तेह। २ वैर। बिगाड़। उ०—हित सों हित रति राम सों रिपु सो वैर तिहाउ। उदासीन सब सो सरल तुलसी सहज सुभाउ।—तुलसी (शब्द०)।

तिहानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बालिश्त लंबी और तीन अंगुल चौड़ी लकड़ी जिसका काम चूड़ियाँ बनाने में पड़ता है।

तिहायत¹—संज्ञा पुं० [हिं० तिहाई (= तीसरा)] दो आदमियों के झगड़े से अलग एक तीसरा आदमी। तिसरैत। तटस्थ। मध्यस्थ।

तिहायत(पु)²—वि० [हिं०] तीन गुना। उ०—जन रज्जब सुरता बनी लगी तिहाइत तेज।—रज्जब० बानी, पृ० ५।

तिहाना(पु)—वि० [सं० तृषित] १ प्यासा होना। २. अतृप्त होना। उ०—तबहूँ तूं किछु पीता फिर रहता तिहाय।—प्राण०, पृ० ६८।

तिहारा†—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'।

तिहारो(पु)—सर्व० [हिं०] दे० तुम्हारा'। उ०—और तुम तो काहू के घर जात आवत नाहीं। और आज तिहारो आवनो कैसे भयो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६३।

तिहारौ(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—हो पिय, यह कल गीत तिहारौ। महा अनिल के बान अनिवारौ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२०।

तिहाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास की बोंड़ी।

तिहाव†—संज्ञा पुं० [हिं० तेह (=गुस्सा, ताव)] १ क्रोध। कोप। २. बिगाड़। अनबन।

तिहि—सर्व० [हिं०] दे० 'तेहि'। उ०—कालीदह तों पकरि ल्याय नाच्यो तिहि सिर पर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६३।

तिहीं(पु)—वि० सर्व० [हिं०] दे० 'तेहि'। उ०—अवरजभी साँवरो, तिहीं बेर गयो आइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १।

तिही(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तेहि'। उ०—पटुली कनक की तिही बानक की बनी मनमोहनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७५।

तिहुँलोक—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + हूँ (प्रत्य०) + लोक] तीन लोक स्वर्ग, मर्त्य, पाताल। उ०—राम रहा तिहुँलोक समाई। कर्म भोग भी खानि रहाई।—घट०, पृ० २२२।

तिहूँ†—वि० [हिं० तीन + हूँ(प्रत्य०)] तीन। तीनों जैसे, तिहूँ लोक।

तिहुयन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—करिअ विनति सौं ए आयब जन्हि बिनु तिहुयन तीत।—विद्यापति, पृ० १६६।

तिहैया—संज्ञा पुं० [हिं० तिहाई] १ तीसरा भाग। तृतीयांश। २. तबले मृदंग आदि की वे तीन थापें जिनमें से प्रत्येक थाप

अंतिम या समवाले ताल को तीन भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग पर दी जाती है और जिसकी अंतिम थाप ठीक समय पर पड़ती है।

तिहुनउ—सर्व॰ [हिं॰] दे॰ 'तिन'। उ॰—तिहुन के मरत नहिं मुएउ लाज गहि बनन सिधाएउ।—अकबरी॰, पृ॰ ६६।

तीउ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री] १ स्त्री। औरत। उ॰—द्यौं कम आवत ती इतै सखी लियाई घेरि।—स॰ सप्तक, पृ॰ ३७६। २ जोरू। पत्नी। ३ मनोहरण छंद का एक नाम। अमरावली। नलिनी।

तीअन्ना—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तृणान्न] शाक। भाजी। तरकारी।

तीकरा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] बीज से फूटकर निकला हुआ अंकुर। अंखुआ।

तीकुर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तीन+कूरा (=अंश)] फसल की वह बँटाई जिसमें एक तिहाई अंश जमींदार और दो तिहाई काश्तकार लेता है। तिहाई।

तीक्षणउ—वि॰ [सं॰ तीक्ष्ण] दे॰ 'तीक्ष्ण'।

तीछनउ—वि॰ [सं॰ तीक्ष्ण] दे॰ 'तीक्ष्ण'। उ॰—आयस क्रिय तीछन अतिय सेस मंडप अगभीन।—पृ॰ रासो, पृ॰ ३।

तीक्ष्ण¹—वि॰ [सं॰] १ तेज नोक या धारवाला। जिसकी धार या नोक इतनी चोखी हो जिससे कोई चीज कट सके। जैसे, तीक्ष्ण बाण। २ तेज। प्रखर। तीव्र। जैसे, तीक्ष्ण औषध, तीक्ष्ण बुद्धि। ३ उग्र। प्रचंड। तीखा। जैसे, तीक्ष्ण स्वभाव। ४. जिसका स्वाद बहुत चटपटा हो। तेज या तीखे स्वादवाला। ५ जो (वाक्य या बात) सुनने में अप्रिय हो। कर्णकटु। जैसे, तीक्ष्ण वाक्य, तीक्ष्ण स्वर। ६. आत्मत्यागी। ७ निरालस्य। जिसे आलस्य न हो। ८ जो सहन न हो। असह्य।

तीक्ष्ण²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ उत्ताप। गरमी। २ विष। जहर। ३. इस्पात। लोहा। ४ युद्ध। लड़ाई। ५ मरण। मृत्यु। ६ शास्त्र। ७ समुद्री नमक। करकच। ८ मुष्कक। मोखा। ९ वत्सनाभ। बछनाग। १० चव्य। चाव। ११ महामारी। मरी। १२ यवक्षार। जवाखार। १३ सफेद कुशा। १४ कुंदुर गोंद। १५. योगी। १६ ज्योतिष में मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रों में बुध की गति।

तीक्ष्णकंटक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तीक्ष्णकण्टक] १ धतूरे का पेड़। २ बबूल का पेड़। ३ इंगुदी का पेड़। ४ करील का पेड़।

तीक्ष्णकंटका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तीक्ष्णकण्टका] एक प्रकार का वृक्ष जिसे ककारी कहते हैं।

तीक्ष्णकंद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तीक्ष्णकन्द] पलांडु। प्याज।

तीक्ष्णक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ मोखा वृक्ष। २. सफेद सरसों।

तीक्ष्णकर्मा¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तीक्ष्णकर्मन्] उत्साही व्यक्ति [को॰]।

तीक्ष्णकर्मा²—वि॰ उत्साही [को॰]।

तीक्ष्णकल्क—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तुंबरु वृक्ष।

तीक्ष्णकांता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तीक्ष्णकान्ता] कालिकापुराण के अनुसार तारा देवी का नाम।

विशेष—इनका ध्यान कृष्णवर्णा, लंबोदरी और एक जटाधारिणी है। इनके पूजन से अभीष्ट का सिद्ध होना माना जाता है।

तीक्ष्णक्षीरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बंसलोचन।

तीक्ष्णगंध—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तीक्ष्णगन्ध] १ सहिजन का पेड़। २. लाल तुलसी। ३ लोबान। ४. छोटी इलायची। ५. सफेद तुलसी। ६ कुंदुरु नामक गंधद्रव्य।

तीक्ष्णगंधक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तीक्ष्णगन्धक] सहिजन।

तीक्ष्णगंधा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तीक्ष्णगन्धा] १. श्वेत वच। सफेद वच। २. कथारी का वृक्ष। ३. राई। ४ जीवंती। ५. छोटी इलायची।

तीक्ष्णतंडुला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तीक्ष्णतण्डुला] पिप्पली। पीपल।

तीक्ष्णता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] तीक्ष्ण होने का भाव। तीव्रता। तेजी।

तीक्ष्णताप—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महादेव। शिव।

तीक्ष्णतेल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'तीक्ष्णतैल'।

तीक्ष्णतैल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ राल। २ सेहुँड़ का दूध। ३. मदिरा। शराब। ४. सरसों का तेल।

तीक्ष्णत्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'तीक्ष्णता'। उ॰—इन दोनों के साधारण धर्म कपिलत्व या तीक्ष्णत्व के होने पर यह उपचार होता है कि अग्नि माणवक है।—संपूर्णा॰, अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ३३६।

तीक्ष्णदंत—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तीक्ष्णदन्त] वह जानवर जिसके दाँत बहुत तेज या नुकीले हों।

तीक्ष्णदंष्ट्र¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बाघ।

तीक्ष्णदंष्ट्र²—वि॰ तेज दाँतोंवाला। जिसके दाँत तेज हों।

तीक्ष्णदृष्टि—वि॰ [सं॰] जिसकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात पर पड़ती हो। सूक्ष्मदृष्टि।

तीक्ष्णधार¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] खड्ग।

तीक्ष्णधार²—वि॰ जिसकी धार बहुत तेज हो।

तीक्ष्णपत्र¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. तुंबुरु। धनिया। २ एक प्रकार का गन्ना।

तीक्ष्णपत्र²—वि॰ जिसके पत्तों में तेज धार हो।

तीक्ष्णपुष्प—संज्ञा पुं॰ [सं॰] लवंग। लौंग।

तीक्ष्णपुष्पा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] केतकी।

तीक्ष्णप्रिय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] जौ।

तीक्ष्णफल¹—संज्ञा [सं॰] तुंबुरु। धनिया।

तीक्ष्णफल²—वि॰ जिसका फल कड़ुआ हो [को॰]।

तीक्ष्णफला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] राई।

तीक्ष्णबुद्धि—वि॰ [सं॰] जिसकी बुद्धि बहुत तेज हो। कुशाग्रबुद्धिवाला। बुद्धिमान्।

तीक्ष्णमंजरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तीक्ष्णमञ्जरी] पान का पौधा।

तीक्ष्णमार्ग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तलवार [को॰]।

तीक्ष्णमूल¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ कुलंजन। २. सहिजन।

तीक्ष्णमूल²—वि॰ जिसकी जड़ में बहुत तेज गंध हो।

तीक्ष्णरश्मि¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तीक्ष्णरश्मि²—वि० जिसकी किरणें बहुत तेज हों ।

तीक्ष्णरस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ यवक्षार । जवाखार । २ शोरा ।

तीक्ष्णरस²—वि० चरपरे रसवाला [को०] ।

तीक्ष्णलौह—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात ।

तीक्ष्णशूक¹—संज्ञा पुं० [सं०] यव । जौ ।

तीक्ष्णशूक²—वि० जिसके टूँड पैने हों [को०] ।

तीक्ष्णशृंग—वि० [सं० तीक्ष्णशृङ्ग] जिसके सींग पैने या नुकीले हों [को०] ।

तीक्ष्णसार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा [को०] ।

तीक्ष्णसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ ।

तीक्ष्णांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तीक्ष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बच । २ केवाँच । ३. सर्पकंकाली पुष्प । ४. बड़ी मालकँगनी । ५ मत्स्यमत्स्यपर्णी लता । ६. मिर्च । ७. जोंक । ८ तारा देवी का एक नाम ।

तीक्ष्णाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रबल जठराग्नि । २ अजीर्ण रोग ।

तीक्ष्णाग्र—वि० [सं०] जिसका अगला भाग तेज या नुकीला हो । पैनी नोकवाला ।

तीक्ष्णायस—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात लोहा ।

तीख(५)†—वि० [हिं] दे० 'तीखा' । उ०— अनिल प्रबल वन मलयज तीख । जेहु छल सीतल सेहु भेल तीख ।—विद्यापति, पृ० १९९

तीखन(५)†—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तीखर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीखुर' ।

तीखल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीखुर' ।

तीखा¹—वि० [सं० तीक्ष्ण] [वि० स्त्री० तीखी] १ जिसकी धार या नोक बहुत तेज हो । तीक्ष्ण । २ तेज । तीव्र । प्रखर । ३ उग्र । प्रचंड । जैसे, तीखा स्वभाव । ४. जिसका स्वभाव बहुत उग्र हो । जैसे,—(क) तुम तो बड़े तीखे दिखाई पड़ते हो । (ख) यह लड़का बहुत तीखा होगा । ५ जिसका स्वाद बहुत तेज या चरपरा हो । जो वाक्य या बात सुनने में अप्रिय हो । ७. चोखा । बढ़िया । अच्छा । जैसे,—यह कपड़ा उससे तीखा पड़ता है ।

तीखा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तीखापन—संज्ञा पुं० [हिं० तीखा + पन] पैनापन । तीक्ष्णता [को०] ।

तीखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीखा] रेशम फेरनेवालों का काठ का एक औजार जिसके बीच में गज डालकर उसपर रेशम फेरते हैं ।

तीखुर—संज्ञा पुं० [सं० तवक्षीर] हलदी की जाति का एक प्रकार का पौधा जो पूर्व, मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है ।

विशेष—अच्छी तरह जोती हुई जमीन में जाड़े के आरंभ में इसके कंद गाड़े जाते हैं और बीच बीच में बराबर सिंचाई की जाती है । पूस माघ में इसके पत्ते झड़ने लगते हैं और तब यह पक्का समझा जाता है । उस समय इसकी जड़ खोदकर पानी में खूब धोकर कूटते हैं और इसका सत्त निकालते हैं जो बढ़िया मैदे की तरह होता है । यही सत्त बाजारों में तीखुर के नाम से बिकता है और इसका व्यवहार कई तरह की मिठाइयाँ, लड्डू, सेव, जलेबी आदि बनाने में होता है । हिंदू लोग इसकी गणना 'फलाहार' में करते हैं । इसे पानी में घोलकर दूध में छोड़ने से दूध बहुत गाढ़ा हो जाता है, इसलिये लोग इसकी खीर भी बनाते हैं । अब एक प्रकार का तीखुर विलायत से भी आता है जिसे अराख्ट कहते हैं । वि० दे० 'अराख्ट' ।

तीखुल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीखुर' ।

तीच्छन(५)—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—उत्तमांग नहिं छिपुछिय करत न तीच्छन दंत ।—प० रासो, पृ०२ ।

तीछन(५)†—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—कनक कामिनी बड़ी दोऊ है तीछन धारा । तब बचिहै तरबूज रहै छूरी से न्यारा ।—पलटू०, भा०१, पृ०५३ ।

तीछनता(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] दे० 'तीक्ष्णता' ।

तीछे(५)—वि० [हिं०] दे० 'तिरछा' । उ०—दूरि तें दूर नजीक तें नीरे हि अंडे तें बाहरी है तीछे तें तीछो ।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ०१५७७ ।

तीज—संज्ञा स्त्री० [सं० तृतीया] १. प्रत्येक पक्ष की तीसरी तिथि । २. हरतालिका तृतीया । भादों सुदी तीज । वि० दे० 'हरतालिका' । उ०—इद्रावति मन प्रेम पियारा । पहुँचा आइ तीज तेवहारा ।—इंद्रा०, पृ० ६० ।

तीजना(५)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तजना' । उ०—मुरिख राजा अपढ़ अयाण हूँ किम चालूँ एकलो ? आ गइ गोरी तीजइ परीण ।—बी० रासो, पृ०८६ ।

तीजा¹—संज्ञा पुं० [हिं० तीज] मुसलमानों में किसी के मरने के दिन से तीसरा दिन ।

विशेष—इस दिन मृतक के संबंधी गरीबों को रोटियाँ बाँटते और कुछ पाठ करते हैं ।

तीजा²—वि० [वि० स्त्री० तीजी] तीसरा । तृतीय । उ०—के दिन सिरजे सो सह्यो, तीजा कोई नाँहि ।—रज्जब०, पृ०३ ।

तीजापन(५)—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा + पन (प्रत्य०)] तीसरी अवस्था । उ०—तीजापन में कुटुंब भयो तब अति अभिमान बढ़ायो रे ।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ०९९ ।

तीजी(५)—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तीजा²' । उ०—तीजी रानी है मनयोई । ताया कारण न माने कोई ।—कबीर सा०, पृ० ५५१ ।

तीड़ा(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिड्डी' । उ०—तीड़ा करसण सूँदियाँ, बानरड़ा नूँ बाग ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६३ ।

तीड़ी(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिड्डी' । उ०—मंत्र सकती मन सूँ, ज्यों तीड़ी ले जाय ।—रा० रू०, पृ० १७६ ।

तीत॒†—वि० [सं० तिक्त] दे० 'तीता'। उ०—करिश्र विनति सौं एं प्रायब जन्हि बिनु विहुसम तीत।—विद्यापति, पृ० १६६।

तीतना॒†—क्रि० अ० [हिं०] भीगना। गीला होना। उ०—अलकहिं तीतल तेंहि अति सोभा। अलिकुल कमल वेढल मुख सोभा।—विद्यापति, पृ० ३१६।

तीतर—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिर] एक प्रसिद्ध पक्षी जो समस्त एशिया और यूरोप में पाया जाता है और जिसकी एक जाति अमेरिका में भी होती है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है और केवल सोने के समय को छोड़कर बराबर इधर उधर चलता रहता है। यह बहुत तेज दौड़ता है और भारत में प्रायः कपास, गेहूँ या चावल के खेतों में जाल में फँसाकर पकड़ा जाता है। इसका घोसला जमीन पर ही होता है और इसके अंडे चिकने और धब्बेदार होते हैं। लोग इसे लड़ाने के लिये पालते, इसका शिकार करते और मांस खाते हैं। वैद्यक में इसके मांस को रुचिकारक, लघु, वीर्य-बल-वर्धक, कषाय, मधुर, ठंढा और श्वास, कास, ज्वर तथा त्रिदोषनाशक माना है। भावप्रकाश के अनुसार काले तीतर के मांस की अपेक्षा चितकबरे तीतर का मांस अधिक उत्तम होता है।

तीता¹—वि० [सं० तिक्त] १ जिसका स्वाद तीखा और चरपरा हो। तिक्त। जैसे, मिर्च।

विशेष—यद्यपि प्राचीनों ने तिक्त और कटु में भेद माना है, पर आजकल साधारण बोलचाल में 'तीता' और 'कड़ुआ' दोनों शब्दों का एक ही अर्थ में व्यवहार होता है। कुछ प्रांतों में केवल 'कड़ुआ' शब्द का व्यवहार होता है और उससे तात्पर्य भी बहुधा एक ही रस का होता है। जिन प्रांतों में 'तीता' और 'कड़ुआ' दोनों शब्दों का व्यवहार होता है, वहाँ भी इन दोनों में कोई विशेष भेद नहीं माना जाता।

२ कड़ुआ। कटु।

तीता²—संज्ञा पुं० [देश०] १ जोतने बोने की जमीन का गीलापन। २ ऊसर भूमि। ३ ढेकी या रहट का अगला भाग। ४ ममीरे के झाड़ का एक नाम।

तीता³—वि० [हिं०] भीगा हुआ। गीला। नम।

तीति॒†—वि० स्त्री० [हिं० तीत] तिक्त। उ०—आजु रसलि कामिनि जइ अँदसवि तीति होइति मधु जामिनि रे।—विद्यापति, पृ० ६८।

तीतिर॒—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीतर'। उ०— तीतिर को जोबन के वास्ते घुमाया करते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३।

तीती॒—वि० [हिं०] दे० 'तीता'। उ०--सदव और सुनी है जथा अब, पाए हैं स्याम यहाँ कोऊ तीती।—नट०, पृ० ३५।

तीतुरो॒†—संज्ञा पुं० [हिं० तीतर] दे० 'तीतर'।

तीतुरी॒†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तितली'।

तीतुरी॒†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर] मादा तीतर। तीतरी। उ०—हुआ हरेई वाजि। तीतुरिय तांबी साजि।—ह० रासो, पृ० १२५।

तीतुल॒—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० तीतुली] दे० 'तीतर'।

तीन¹—वि० [सं० त्रीणि] जो दो और एक हो। जो गिनती में चार से एक कम हो।

तीन²—संज्ञा पुं० १ दो और चार के बीच की संख्या। दो और एक का जोड़। २ उक्त संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३।

यौ०—तीन तार = जनेऊ। यज्ञोपवीत। उ०—ना मे तीन तार गहि नाऊँ। ना मैं सुनत करि बोराऊँ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ (भू०), पृ० ४८।

मुहा०—तीन पाँच करना = इधर उधर करना। चुनाव फिराव या हुज्जत की बात करना।

तीन³—संज्ञा पुं० सरयूपारी ब्राह्मणों में तीन गोत्रों का एक वर्ग।

विशेष—सरयूपारी ब्राह्मणों में सोलह गोत्र होते हैं जिनमें से तीन गोत्रवालों का प्रथम वर्ग है और तेरह गोत्रवालों का दूसरा वर्ग है।

मुहा०—तीन तेरह करना = तितर बितर करना। इधर उधर छितराना या अलग अलग करना। उ०—कियो तीन तेरह सबै चौका चौका लाय।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। न तीन में, न तेरह में = जो किसी गिनती में न हो। जिसे कोई पूछता न हो। उ०—कुंभ कान नाम कहाँ पैये मोतें जानराय सदु तुम प्यारे हैं न तेरह न तीन में।—हनुमान (शब्द०)।

तीन⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तिन्नी का चावल।

तीनपान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत मोटा रस्सा जिसकी मोटाई कम से कम एक फुट होती है (लश०)।

तीनपास—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीनपान'।

तीनलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + लड़ी] गले में पहनने की एक प्रकार की माला जिसमें तीन लड़ियाँ होती हैं। तिलड़ी।

तीनि॒†¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीन'

तीनि॒²—वि० [हिं०] दे० 'तीन'। उ०—बर बरनी, तरुनी रँग भीनी। दासी कीनि तीनि सत तीनी।—नंद० ग्रं०, पृ० २२१।

तीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिन्नी] तिन्नी का चावल।

तीपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] रेशमी कपड़ा बुननेवालों का एक औजार जिसके नीचे ऊपर दो लकड़ियाँ लगी रहती हैं जिन्हें बेसर कहते हैं।

तीमार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रोगी की देखभाल। सेवा शुश्रूषा (को०)।

तीमारदार—वि० [फ़ा०] परिचर्या करनेवाला। उ०—पड़िए गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार। और अगर मर जाइए तो नौहाख्वाँ कोई न हो।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४७१।

तीमारदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रोगियों की सेवा शुश्रूषा का काम।

तीय॒—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्री। औरत। नारी। उ०—पति देवता तीय जगधन धन गावत वेद पुरान।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६७६।

तीय॒—वि० [सं० तृतीय] तीसरा।

तीया¹ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'तीय' ।

तीया²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिक्की' या 'तिडी' ।

तीरंदाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० तीरंदाज] वह जो तीर चलाता हो। तीर चलानेवाला ।

तीरंदाजी—संज्ञा स्त्री [फ़ा० तीरंदाजी] तीर चलाने की विद्या या क्रिया ।

तीर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ नदी का किनारा । कूल । तट । उ०—बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा । जनु सरि तीर तीर बन बागा ।—मानस, १।४० ।

२ पास । समीप । निकट ।

विशेष—इस अर्थ में इसका उपयोग विभक्ति का लोप करके क्रियाविशेषण की तरह होता है ।

३ सीसा नामक धातु । ४. रांगा । ५ गंगा का तट (को०) । ६ एक प्रकार का बाण (को०) ।

तीर²—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाण । शर । उ०—तीरों उपर तीर चहि, सेलाँ उपर सेज ।—हम्मीर०, पृ० ४८ ।

विशेष—यद्यपि पंचदशी आदि कुछ आधुनिक ग्रंथों में तीर शब्द बाण के अर्थ में आया है, तथापि यह शब्द वास्तव में है फारसी का ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—छोड़ना ।—फेंकना ।—लगना ।

मुहा०—तीर चलाना = युक्ति भिड़ाना । रंग ढंग लगाना । जैसे,—तीर तो गहरा चलाया था, पर खाली गया । तीर फेंकना = दे० = 'तीर चलाना' । लगे तो तीर नहीं तो तुक्का = कार्यसिद्धि पर ही साधन की उपयोगिता है ।

तीर³—संज्ञा पुं० [?] जहाज का मस्तूल ।

तीर⁴—वि० [हिं० तिरना (= पार करना)] पारंगत । जानकार । उ०—बादशाह करे जिकीर सच्च हिंदू फकीर । ब्रह्मज्ञान में तीर रणधीर आए हैं ।—दक्खिनी०, पृ० ५० ।

तीरकसⓟ—संज्ञा पुं० [फ़ा० तीरकश] तरकश । उ०—लिए लगाइ तीरकस भारे ।—हम्मीर०, पृ० ३० ।

तीरकारीⓟ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तीर + कारी] बाणों की वर्षा । उ०—भई तीरकारी छुटे नाल बान । परी सोर की धुंध सुमझै न आनं ।—पृ० रा०, १।४५१ ।

तीरगर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो तीर बनाता हो । तीर बनानेवाला कारीगर । उ०—गुरु कीन्हों इक्कीसवों ताहि तीरगर जान ।—मनविरक्त०, पृ० २६७ ।

तीरज—संज्ञा पुं० [सं०] किनारे पर का वृक्ष (को०) ।

तीरण—संज्ञा पुं० [सं०] करंज ।

तीरथ—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ' । उ०—तीरथ अनादि पचगंगा मनीकर्निकादि सात आवरण मध्य पुन्य रूपी धसी है ।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० २८१ ।

विशेष—तीरथ के यौगिक शब्दों के लिये दे० 'तीर्थ' के यौगिक शब्द ।

तीरथपतिⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० तीरथ + पति] तीर्थराज । प्रयाग । उ०—माघ मकर गत रबि जब होई । तीरथपतिहि आव सब कोई ।—मानस, १।४४ ।

तीरभुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा, गंडकी और कौशिकी इन तीन नदियों से घिरा हुआ तिरहुत देश ।

तीरवर्ती—वि० [सं० तीरवर्तिन्] १. तट पर रहनेवाला । किनारे पर रहनेवाला । २ समीप रहनेवाला । पास रहनेवाला । पड़ोसी । ३ तीरस्थ । तीर पर स्थित ।

तीरस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ नदी के तीर पहुँचाया हुआ मरणासन्न व्यक्ति ।

विशेष—अनेक जातियों में यह प्रथा है कि रोगी जब मरने को होता है, तब उसके संबंधी पहले ही उसे नदी के तीर पर ले जाते हैं, क्योंकि धार्मिक दृष्टि से नदी के तीर पर मरना अधिक उत्तम समझा जाता है ।

२. तीर पर स्थित । तीर पर बसा हुआ ।

तीराⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीर' ।

तीराट—संज्ञा पुं० [सं०] लोध ।

तीरित¹—वि० [सं०] निर्णय किया हुआ । तै किया हुआ (को०) ।

तीरित²—संज्ञा पुं० १ कार्य की पूर्णता या समाप्ति । २ रिश्वत या अन्य साधनों से दंडित होने से बचना (को०) ।

तीरु—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । महादेव । २ शिव की स्तुति ।

तीर्ण—वि० [सं०] १ जो पार हो गया हो । उत्तीर्ण । २ जो सीमा का उल्लंघन कर चुका हो । ३. जो भीगा हुआ हो । तरबतर ।

तीर्णपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूल । मुसली ।

तीर्णपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तीर्णपदा' ।

तीर्णप्रतिज्ञ—वि० [सं०] जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हो (को०) ।

तीर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुरु (।।।ऽ) होता है । इसको 'सती', 'तिन्न' और 'तरणिजा' भी कहते हैं । जैसे, नगपती । बनसती । शिव कहो । सुख लहो ।

तीर्थंकर—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थङ्कर] १. जैनियों के उपास्य देव जो देवताओं से भी श्रेष्ठ और सब प्रकार के दोषों से रहित, मुक्त और मुक्तिदाता माने जाते हैं । इनकी मूर्तियाँ दिगंबर बनाई जाती हैं और इनकी आकृति प्रायः बिलकुल एक ही होती है । केवल उनका वर्ण और उनके सिंहासन का आकार ही एक दूसरे से भिन्न होता है ।

विशेष—गत उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर हुए ये जिनके नाम ये हैं—१ केवलज्ञानी । २ निर्वाणी । ३ सागर । ४ महायश । ५ विमलनाथ । ६ सर्वानुभूति । ७ श्रीधर । ८ दत्त । ९ दामोदर । १० सुतेज । ११. स्वामी । १२. मुनिसुव्रत । १३ सुमति । १४. शिवगति । १५ अस्ताग । १६ नेमीश्वर । १७ अनल । १८ यशोधर । १९ कृतार्थ । २०. जिनेश्वर । २१ शुद्धमति । २२ शिवकर । २३ स्यंदन और । २४. संप्रति । वर्तमान अवसर्पिणी के आरंभ में जो चौबीस तीर्थंकर हो गए हैं उनके नाम ये हैं—

१. ऋषभदेव । २ अजितनाथ । ३ संभवनाथ । ४ अभिनंदन । ५. सुमतिनाथ । ६ पद्मप्रभ । ७ सुपार्श्वनाथ । ८ चंद्रप्रभ । ९ सुबुधिनाथ । १०. शीतलनाथ । ११. श्रेयासनाथ । १२. वासुपूज्य स्वामी । १३ विमलनाथ । १४ अनंतनाथ । १५. धर्मनाथ । १६ शांतिनाथ । १७ कुंथुनाथ । १८ अमरनाथ । १९ मल्लिनाथ । २०. मुनि सुव्रत । २१. नमिनाथ । २२. नेमिनाथ । २३ पार्श्वनाथ । २४ महावीर स्वामी । इनमें से ऋषभ, वासुपूज्य और नेमिनाथ की मूर्तियाँ योगाभ्यास में बैठी हुई और बाकी सब की मूर्तियाँ खड़ी बनाई जाती हैं ।

२ विष्णु (को०) । ३. शास्त्रकर्ता (को०) ।

तीर्थंकृत्—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थङ्कृत्] १ जैनियों के देवता । जिन । २. शास्त्रकार ।

तीर्थ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पवित्र वा पुण्य स्थान जहाँ धर्मभाव से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिये जाते हों । जैसे, हिंदुओं के लिये काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, गया, द्वारका आदि, अथवा मुसलमानों के लिये मक्का और मदीना ।

विशेष—हिंदुओं के शास्त्रों में तीर्थ तीन प्रकार के माने गए हैं,—(१) जंगम, जैसे, ब्राह्मण और साधु आदि, (२) मानस, जैसे, सत्य, क्षमा, दया, दान, संतोष, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, धैर्य, मधुर भाषण आदि; और (३) स्थावर, जैसे, काशी, प्रयाग, गया आदि । इस शब्द के अंत में 'राज', 'पति' अथवा इसी प्रकार का और शब्द लगाने से 'प्रयाग' अर्थ निकलता है,—तीर्थराज या तीर्थपति = प्रयाग । तीर्थ जाने अथवा वहाँ से लौट आने के समय हिंदुओं के शास्त्रों मे सिर मुँड़ाकर श्राद्ध करने और ब्राह्मणों को भोजन कराने का भी विधान है ।

२ कोई पवित्र स्थान । ३ हाथ में के कुछ विशिष्ट स्थान ।

विशेष—दाहिने हाथ के अँगूठे का ऊपरी भाग ब्रह्मतीर्थ, अँगूठे और तर्जनी का मध्य भाग पितृतीर्थ, कनिष्ठा उँगली के नीचे का भाग प्राजापत्य तीर्थ और उँगलियों का अगला भाग देवतीर्थ माना जाता है। इन तीर्थों से क्रमश: आचमन, पिंडदान, पितृकार्य और देवकार्य किया जाता है ।

४ शास्त्र । ५. यज्ञ । ६ स्थान । स्थल । ७ उपाय । ८ अवसर । ९. नारीरज । रजस्वला का रक्त । १० अवतार । ११ चरणामृत । देव-स्नान-जल । १२ उपाध्याय । गुरु । १३ मंत्री । अमात्य । १४ योनि । १५ दर्शन । १६. घाट । १७. ब्राह्मण । विप्र । १८ निदान । कारण । १९ अग्नि । २० पुण्यकाल । २१ सन्यासियों की एक उपाधि । २२. वह जो तार दे । तारनेवाला । २३ वैरभाव को त्यागकर परस्पर उचित व्यवहार । २४ ईश्वर । २५ माता पिता । २६. अतिथि । मेहमान । २७ राष्ट्र की अठारह संपत्तियाँ ।

विशेष—राष्ट्र की इन अठारह संपत्तियों के नाम हैं,—(१) मंत्री, (२) पुरोहित, (३) युवराज, (४) भूपति, (५) द्वारपाल, (६) अंतर्वंसिक, (७) कारागाराध्यक्ष, (८) द्रव्यसंचयकारक, (९) कृत्याकृत्य अर्थ का विनियोजक, (१०) प्रदेष्टा, (११) नगराध्यक्ष, (१२) कार्य निर्माणकारक, (१३) धर्माध्यक्ष, (१४) सभाध्यक्ष, (१५) दंडपाल, (१६) दुर्गपाल, (१७) राष्ट्रांतपाल और (१८) अटवीपाल ।

२८. मार्ग । पथ (को०) । २९ जलाशय (को०) । ३०. साधना । माध्यम (को०) । ३१ स्रोत । मूल (को०) । ३२. मंत्रणा । परामर्श । जैसे कृततीर्थ = जो मंत्रणा कर चुका हो । ३३. चात्वाल और उत्कर के बीच का वेदी का पथ (को०) ।

तीर्थ²—वि० १ पवित्र । पावन । पूत । २ मुक्त करनेवाला । रक्षक [को०] ।

तीर्थक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्राह्मण । उ०—युवानच्वांग कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि के तीर्थक भी ऐसा ही कहते हैं ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३५४ । २ तीर्थंकर । ३. वह जो तीर्थों की यात्रा करता हो ।

तीर्थक²—वि० १ पवित्र । २. पूज्य [को०] ।

तीर्थकमंडलु—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थकमण्डलु] वह कमंडल जिसमें तीर्थजल हो [को०] ।

तीर्थंकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. जिन । ३. शास्त्रकार (को०) ।

तीर्थकाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर्थ का कौवा । २ अत्यंत लोभी व्यक्ति [को०] ।

तीर्थकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिन । २ शास्त्रकार [को०] ।

तीर्थचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थयात्रा [को०] ।

तीर्थदेव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

तीर्थपति—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीर्थराज' ।

तीर्थपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

तीर्थपादीय—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव ।

तीर्थपुरोहित—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ का पंडा [को०] ।

तीर्थयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्र स्थानों में दर्शन स्नानादि के लिये जाना । तीर्थाटन ।

तीर्थराज—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग ।

तीर्थराजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०] ।

तीर्थराजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी ।

विशेष—काशी में सब तीर्थ हैं, इसी से यह नाम पड़ा है ।

तीर्थवाक—संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बाल [को०] ।

तीर्थवायस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तीर्थकाक' [को०] ।

तीर्थविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थ में करणीय कार्य । जैसे, क्षौरकर्म [को०] ।

तीर्थशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] घाट तक जानेवाली पत्थर की सीढ़ियाँ [को०] ।

तीर्थशौच—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थस्थल पर घाट आदि का परिष्कार करने या कराने की क्रिया [को०] ।

तीर्थसेनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

तीर्थसेवी¹—वि० [सं० तीर्थसेविन्] धार्मिक भाव से तीर्थ में रहनेवाला [को०]।

तीर्थसेवी²—संज्ञा पुं० बगुला [को०]।

तीर्थाटन—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थयात्रा।

तीर्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर्थ का ब्राह्मण। पंडा। २ बौद्धों के अनुसार बौद्धधर्म का विद्वेषी ब्राह्मण। ३ तीर्थंकर।

तीर्थिया—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ + हिं० इया (प्रत्य०)] तीर्थंकरों को माननेवाला, जैनी।

तीर्थीभूत—वि० [सं०] १. पवित्र। शुद्ध। २. पूज्य [को०]।

तीर्थोदक—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ का पवित्र जल [को०]।

तीर्थ्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रुद्र का नाम। २ सहपाठी।

तीर्थ्य²—वि० तीर्थ से संबंधित [को०]।

तीर्न—संज्ञा पुं० [सं० तीर्ण] दे० 'तीर्ण'।

तील(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० तिल'। उ०—उलटि तील तेल करये भौर भरगे धाई। नाव बिच भाँठी पछिता मनवा कहीं न जाई। —रामानंद०, पृ० १५।

तीलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तीला—संज्ञा पुं० [फ़ा० तीर] तिनका। विशेषतः बड़ा तिनका।

तीली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ती(= बाण)] १ बड़ा तिनका। सींक। २. धातु आदि का पतला, पर कड़ा तार। ३ करघे में ढरकी की वह सींक जिसमें नरी पहनाई जाती है। ४ तीलियों की वह कूँची जिससे जुलाहे सूत साफ करते हैं। ५ पतवों का वह औजार जिससे वे रेशम लपेटते हैं। इसमें लोहे का एक तार होता है जिसके एक सिरे पर लकड़ी का एक गोल टुकड़ा लगा रहता है।

तीव(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री। औरत।

तीवइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तीव'। उ०—तीवइ कंवल सुगंध शरीरू। समुद लहरि सोहै तन चीरू।—जायसी (शब्द०)।

तीवन†—संज्ञा पुं० [सं० तेमन(= व्यंजन)] १ पकवान। २ रसेदार तरकारी।

तीवर—संज्ञा पुं०[सं०]१ समुद्र। २ व्याधा। शिकारी। ३ धीवर। मछुवा। ४. एक वर्णसंकर अंत्यज जाति।

विशेष—यह ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार राजपूत माता और क्षत्रिय पिता के गर्भ से तथा पराशर के मत से राजपूत माता और शूद्र पिता के गर्भ से उत्पन्न है। कुछ लोग तीवर और धीवर को एक ही मानते हैं। स्मृति के अनुसार तीवर को स्पर्श करने पर स्नान करने की आवश्यकता होती है।

तीव्र¹—वि० [सं०] १ अतिशय। अत्यंत। २ तीक्ष्ण। तेज। ३. बहुत गरम। ४ नितांत। बेहद। ५ कटु। कड़वा। ६ दुःसह। असह्य। न सहने योग्य। ७ प्रचंड। ८ तीखा। ९ वेगयुक्त। तेज। १० कुछ ऊँचा और अपने स्थान से बढ़ा हुआ (स्वर)।

विशेष—संगीत में ५ स्वरों—ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत और निषाद के तीव्र रूप होते हैं। वि० दे० 'कोमल'।

तीव्र²—संज्ञा पुं० १. लोहा। २ इस्पात। ३ नदी का किनारा। ४ शिव। महादेव।

तीव्रकंठ—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रकण्ठ] सूरन। जमीकंद। ओल।

तीव्रकंद—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रकन्द] सूरन [को०]।

तीव्रगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तीव्रगन्धा] अजवायन। यवानी।

तीव्रगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तीव्रगन्धिका] दे० 'तीव्रगंधा'।

तीव्रगति¹—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं०] वायु। हवा।

तीव्रगति²—वि० तेज चालवाला [को०]।

तीव्रगामी—वि० [सं० तीव्रगामिन्] [वि० स्त्री० तीव्रगामिनी] तेज चलनेवाला। तेज चाल का।

तीव्रज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का फूल जिसके छूने से फोप पड़ते हैं, शरीर में घाव हो जाता है।

तीव्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीव्र का भाव। तीक्ष्णता। तेजी। तीखापन। प्रखरता।

तीव्रद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

तीव्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रबन्ध] तमोगुण [को०]।

तीव्रवेदना—संज्ञा,पुं० [सं०] अत्यधिक पीड़ा। भयंकर दुःख [को०]।

तीव्रसंवेग—वि० [सं०] दृढ़ निश्चयवाला। अटल [को०]।

तीव्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

तीव्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. षड्ज स्वर की चार श्रुतियों में से पहली श्रुति। २ महाकारिणी। खुरासानी अजवायन। ३. राई। ४ गाँडर दूब। ५ तुलसी। ६ बड़ी मालकँगनी। ७. कुटकी। ८. तरवी वृक्ष।

तीव्रानंद—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रानन्द] महादेव। शिव [को०]।

तीव्रानुराग—संज्ञा पुं० [सं०] १ वैद्यों के अनुसार एक प्रकार का अतिचार। परस्त्री या परपुरुष से अत्यंत अनुराग करना अथवा काम की वृद्धि के लिये अफीम, कस्तूरी आदि खाना। २ अत्यधिक प्रेम (को०)।

तीस¹—वि० [सं० त्रिंशति, पा० तीसा] जो गिनती में उनतीस के बाद और इकतीस के पहले हो। जो दस का तिगुना हो। बीस और दस।

यौ०—तीसों दिन या तीस दिन = सदा। हमेशा। तीसमार खाँ = बहुत वीर। बड़ा बहादुर (व्यंग्य)।

तीस²—संज्ञा पुं० दस की तिगुनी संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३०।

तीस³—संज्ञा पुं० [?] शालमली। उ०—रचि बिपन बाटिका तीस द्रुम छाँह रवति तरु।—पृ० रा०, २५। ३।

तीसना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टीसना'।

तीसर¹—वि० [हिं०] दे० 'तीसरा'। उ०—तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा।—मानस, १।८७।

तीसर[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तीसरा] खेत की तीसरी जुताई।

तीसरा—वि॰ [हिं॰ तीन+सरा (प्रत्य॰)] १. क्रम में तीन के स्थान पर पड़नेवाला। जो दो के उपरांत हो। जिसके पहले दो और हों। उ॰—दूसरे तीसरे पाँचमे सातमे आठमें तो भला आइबो कीजिए।—ठाकुर॰, पृ॰ ३। २. जिसका प्रस्तुत विषय से कोई संबंध न हो। संबंध रखनेवालों से भिन्न, कोई और। जैसे,—न हमारी बात, न तुम्हारी बात, तीसरा जो कहे, वही हो।

यौ॰—तीसरा पहर=दोपहर के बाद का समय। दिन का तीसरा पहर। अपराह्न।

तीसवाँ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तीस+वाँ (प्रत्य॰)] क्रम में तीस के स्थान पर पड़नेवाला। जो उनतीस के उपरांत हो। जिसके पहले उनतीस और हों।

तीसी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अतसी] अलसी नामक तेलहन। वि॰ दे॰ 'अलसी'।

तीसी[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तीस+ई (प्रत्य॰)] १. फल आदि गिनने का एक मान जो तीस गाहियों अर्थात् एक सौ पचास का होता है। २. एक प्रकार की छेनी जिससे लोहे की थालियों आदि पर नकाशी करते हैं।

तीहा[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुष्टि ?] १. तसल्ली। आश्वासन। २. धैर्य। धीरता। ३. संतोष।

तीहा[2]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तिहाई] तिहाई। जैसे, आधा तीहा।

विशेष—इसका प्रयोग समास ही में होता है।

तु(पु)—सर्व॰ [हिं॰] दे॰ 'तुम'। उ॰—तुं भाता करतार तुं भरता हरता देव।—पृ॰ रा॰, १।२१।

तुंग[1]—वि॰ [सं॰ तुङ्ग] १. उन्नत। ऊँचा। उ॰—सारा पर्वत धाम द्रुम सरल सदाहरित देवदारुओं से ढँका था।—किन्नर॰, पृ॰ ४३। २. उग्र। प्रचंड। उ॰—तुंग फकीर शाह सुल्तानै सिर सिर हुकुम चलावै।—प्राण॰, पृ॰ २६१। ३. प्रधान। मुख्य।

तुंग[2]—संज्ञा पुं॰ १. पुन्नाग वृक्ष। २. पर्वत। पहाड़। ३. नारियल। ४. किंजल्क। कमल का केसर। ५. शिव। ६. बुध ग्रह। ७. ग्रहों की उच्च राशि। दे॰ 'उच्च'। ८. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और दो गुरु होते हैं। जैसे,—न नग गहु बिहारी। कहत अहि पियारी। ९. एक छोटा झाड़ या पेड़ जो सुलेमान पहाड़ तथा पश्चिमी हिमालय पर कुमाऊँ तक होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी, छाल और पत्ती रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसकी लकड़ी से यूरोप में तसवीरों के नक्काशीदार चौखटे आदि भी बनते हैं। हिमालय पर पहाड़ी लोग इसकी टहनियों के टोकरे भी बनाते हैं। यह पेड़ समाक या सुमाक जाति का है। इसे आमी, दरेंगड़ी और घरंडी भी कहते हैं।

१०. सिंहासन (को॰)। ११. चतुर या निपुण व्यक्ति (को॰)। १२. पुंज। भुंड। समूह (को॰)।

तुंगक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गक] १. पुन्नाग वृक्ष। नागकेसर। २. महाभारत के अनुसार एक तीर्थ।

विशेष—पहले यहीं सारस्वत मुनि ऋषियों को वेद पढ़ाया करते थे। एक बार जब वेद नष्ट हो गए, तब अंगिरा के पुत्र ने एक 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण किया। इस शब्द के उच्चारण के साथ ही भूला हुआ सब वेद उपस्थित हो गया। इस घटना के उपलक्ष्य में इस स्थान पर ऋषियों और देवताओं ने बड़ा भारी यज्ञ किया था।

तुंगता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गता] ऊँचाई।

तुंगत्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गत्व] उच्चता। ऊँचाई।

तुंगनाथ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गनाथ] हिमालय पर एक शिवलिंग और तीर्थस्थान।

तुंगनाभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गनाभ] सुश्रुत के अनुसार एक कीड़ा जो विषैले जंतुओं में गिनाया गया है। इसके काटने से जलन और पीड़ा होती है।

तुंगनास—वि॰ [सं॰ तुङ्गनास] लंबी नाकवाला (को॰)।

तुंगबाहु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गबाहु] तलवार के ३२ हाथों में से एक।

तुंगबीज—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गबीज] पारा (को॰)।

तुंगभद्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गभद्र] मतवाला हाथी।

तुंगभद्रा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गभद्रा] दक्षिण की एक नदी जो सह्याद्रि पर्वत से निकलकर कृष्णा नदी में जा मिली है।

तुंगमुख—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गमुख] गैंडा (को॰)।

तुंगरस—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गरस] एक प्रकार का गंधद्रव्य (को॰)।

तुंगला—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है।

विशेष—गढ़वाल में लोग इसकी पत्तियों का तमाकू या सुरती के स्थान पर व्यवहार करते हैं। इसके फल खट्टे होते हैं और इमली की तरह काम में लाए जाते हैं।

तुंगवेणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गवेणा] महाभारत के अनुसार एक नदी जिसका नाम महानदी, (वेण गंगा) आदि के साथ आया है। कदाचित् यह तुंगभद्रा का दूसरा नाम हो।

तुंगा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गा] १. वंशलोचन। २. शमी वृक्ष। ३. तुंग नामक वर्णवृत्त। ४. मैसूर की एक नदी (को॰)।

तुंगारण्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गारण्य] झाँसी से ६ कोस ओड़छा के पास का एक जंगल। इस स्थान पर एक मंदिर है और मेला लगता है। यह बेतवा नदी के तट पर है। उ॰—नदी बेतवै तीर जहँ तीरथ तुंगारन्य। नगर ओड़छो तहँ बसै धरनी तल मे धन्य।—केशव (शब्द॰)।

तुंगारन्न(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गारण्य] दे॰ 'तुंगारण्य'।

तुंगारि—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गारि] सफेद कनेर का पेड़।

तुंगिनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गिनी] महा शतावरी। बड़ी सतावर।

तुंगिमा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गिमन्] तुंगता। ऊँचाई (को॰)।

तुंगी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गी] १. हलदी। २. रात्रि। ३. वनतुलसी। बबई। ममरी।

तुंगी२—वि० [सं० तुङ्गिन्] ऊँचा [को०]।

तुंगी३—संज्ञा पुं० ऊँचाई पर स्थित ग्रह [को०]।

तुंगीनास—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गीनास] दे० 'तुंगनाभ'।

तुंगीपति—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गीपति] चंद्रमा।

तुंगीश—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गीश] १ शिव। २ कृष्ण। ३ सूर्य।

तुंज१—संज्ञा पुं० [सं० तुञ्ज] १ वज्र। २ आघात। धक्का (को०)। ३. आक्रमण (को०)। ४ राक्षस (को०)। ५ दान देना (को०)। ६. दबाव। दाब (को०)।

तुंज२—वि० दुष्ट। फितरती। हानिकर [को०]।

तुंजाल—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्ग + जाल] एक प्रकार का जाल जो घोडों के ऊपर उन्हें मक्खियों आदि से बचाने के लिये डाला जाता है। इसके नीचे फुंदने भी लगते हैं।

तुंजीन—संज्ञा पुं० [सं० तुञ्जीन] काश्मीर देश के कई प्राचीन राजाओं का नाम जिनका वर्णन राजतरंगिणी में है।

तुंड—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १ मुख। मुँह। उ०—दो दो दृढ़ रद् दंड दबाकर निज तुंडों मे।—साकेत, पृ० ४१३। २ चंचु। चोंच। ३ निकला हुआ मुँह। थूथन। ४ तलवार का अगला हिस्सा। खग का अग्र भाग। उ०—फुट्टत कपाल कहूँ गज मुंड। टुट्टत कहूँ तरवारिन तुंड।—सूदन (शब्द०)। ५ शिव। महादेव। ६ एक राक्षस का नाम। ७ हाथी की सूँड़ (को०)। ८. हथियार की नोक (को०)।

तुंडकेरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डकेरिका] कपास वृक्ष।

तुंडकेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डकेरी] १ कपास। २ कुंदरू। बिंबाफल।

तुंडकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० तुण्डकेशरी] मुख का एक रोग जिसमे तालु की जड़ में सूजन होती और दाह पीड़ा आदि उत्पन्न होती है।

तुंडनाय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड + नाद] तुंडनाद। शुंडाध्वनि। चिघाड़। उ०—तुंडनाय सुनि गरजत गुंजरत भौंर।—शिखर०, पृ० ३३१।

तुंडला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डिल ?] पीपर। उ०—कोला, कृष्णा, मागधी, तिग्म, तुंडला होइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०४।

तुंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डि] १ मुँह। २ चोंच। ३ बिंबाफल। ४ नाभि।

तुंडिक—वि० [सं० तुण्डिक] तुंडवाला। थूथनवाला [को०]।

तुंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डिका] १ टोंटी। २ चोंच। ३ बिंबाफल। कुंदरू। ४ नाभि (को०)।

तुंडिकेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डिकेर] १ कपास वृक्ष। २ तालु में अत्यधिक सूजन का होना [को०]।

तुंडिकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डिकेशी] कुंदरू।

तुंडिभ—वि० [सं० तुण्डिभ] १ तोंदल। जिसका पेट बड़ा हो। २ तुंदिल। जिसकी नाभि उभरी हुई हो [को०]।

तुंडिल—वि० [सं० तुण्डिल] १ तोंदवाला। निकले हुए पेटवाला। २. जिसकी नाभि निकली हुई हो। निकली हुई ढोढवाला। ढोंढू। ३ बकवादी। मुँहजोर।

तुंडी१—वि० [सं० तुण्डिन्] १ मुँहवाला। चोंचवाला। ३ थूथनवाला। ४ सूँड़वाला।

तुंडी२—संज्ञा पुं० १ गणेश। उ०—हरिहर विधि रवि शक्ति समेता। तुंडी ते उपजत सब तेता।—निश्चल (शब्द०)। २ शिव के वृषभ का नाम। नंदी (को०)।

तुंडी३—संज्ञा स्त्री० १ नाभि। ढोढ़ी। २ एक प्रकार का कुम्हड़ा [को०]।

तुंडीगुदपाक—संज्ञा पुं० [सं० तुण्डीगुदपाक] एक रोग जिसमें बच्चों की गुदा पक जाती है और नाभि में पीड़ा होती है।

तुंडीरमंडल—संज्ञा पुं० [सं० तुण्डीरमण्डल] दक्षिण के एक देश का नाम। उ०—पुनि तुंडीर मंडल इक देसा। तहँ बिलमंगल ग्राम सुदेसा।—रघुराज (शब्द०)।

तुंद१—संज्ञा पुं० [सं० तुन्द] पेट। उदर।

तुंद२—वि० [फ़ा०] १ तेज। प्रचंड। घोर। २ आवेगपूर्ण। पुरजोश (को०)। ३ क्रुद्ध। कुपित (को०)।

यौ०—तुंदमिजाज=दे० 'तुंदखू'।

४ शीघ्र। त्वरित। तेज। जैसे,—हवा का तुंद झोंका।

यौ०—तुंदरफ्तार, तुंदरौ = द्रुतगामी। बहुत तेज चलनेवाला।

तुंदकूपिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दकूपिका] नाभि का गड्ढा [को०]।

तुंदकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दकूपी] नाभि का गड्ढा [को०]।

तुंदखू—वि० [फ़ा० तुंदखू] कड़े मिजाज का। गुस्सैल। क्रोधी। उ०—उस तुंदखू सनम से जब से लगा हूँ मिलने। हर कोई मानता है मेरी दिलावरी को।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४८।

तुंदबाद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आँधी। झक्कड़। झंझावात [को०]।

तुंदर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ बादल की गरज। मेघगर्जन। २ मधुर स्वरवाली एक प्रसिद्ध चिड़िया। बुलबुल [को०]।

तुंदि—संज्ञा पुं० [सं० तुन्दि] १ नाभि। २ एक गंधर्व का नाम। ३ उदर। पेट (को०)।

तुंदिक—वि० [सं० तुन्दिक] १ तोंदवाला। बड़े पेटवाला। तुंदिल। २ बड़ा। विशाल (को०)।

तुंदिकफला—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दिकफला] खीरे की बेल।

तुंदिकर—संज्ञा पुं० [सं० तुन्दिकर] नाभि। ढोढ़ी [को०]।

तुंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दिका] नाभि।

तुंदित—वि० [सं० तुन्दित] दे० 'तुंदिक' [को०]।

तुंदिभ—वि० [सं० तुन्दिभ] दे० 'तुंदिक' [को०]।

तुंदिल१—वि० [सं० तुन्दिल] तोंदवाला। बड़े पेटवाला।

तुंदिल२—संज्ञा पुं० गणेश जी [को०]।

तुंदिलफला—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दिलफला] १ खीरा। २. ककड़ी [को०]।

तुंदिलित—वि० [सं० तुन्दिलित] तोंदवाला। तोंदियल [को०]।

तुंदिलीकरण—संज्ञा पुं० [सं० तुन्दिलीकरण] फुलाना। बड़ा करना [को०]।

तुंदी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दी] नाभि।

तुंदी²—वि० [सं० तुन्दिन्] दे० 'तुंदिक' [को०]।

तुंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ तीव्रता। तेजी। २ आवेग। जोश। ३ स्वभाव की तीव्रता। बदमिज़ाजी। ४ लिंग का उत्थान। ५. कोप। गुस्सा [को०]।

तुंदैल—वि० [हिं० तुंद+ऐल (प्रत्य०)] दे० 'तुंदैला'।

तुंदैला—वि० [सं० तुन्द+हिं० ऐला (प्रत्य०)] तोंदवाला। बड़े पेटवाला। लबोदर।

तुंब—संज्ञा पुं० [सं० तुम्ब] १. लौकी। लौवा। घीया। २ लौवे का सूखा फल। तूंबा। ३. आँवला (को०)।

तुंबर—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बर] १. दे० 'तुंबरु'। २. एक वाद्ययंत्र। तानपूरा। उ०—विसद जत सुर सुद्ध तत्र तुंबर जुत सो है। —ह० रासो, पृ० १।

तुंबरु—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बरु] एक गंधर्व।

तुंबरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बरी] एक प्रकार का अन्न [को०]।

तुंबरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूंबी'।

तुंबवन—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो दक्षिण दिशा में है।

तुंबा—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बा] [स्त्री० अल्पा० तुंबी] १. कड़ुआ कद्दू। गोल कड़ुआ घीया। २ कड़ुए कद्दू की खोपड़ी का पात्र। ३. एक प्रकार का जंगली धान जो नदियों या तालों के किनारे आपसे आप होता है। ४ दुधार गाय (को०)। ५ दूध का बर्तन (को०)।

तुंबार—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बार] तूंबी [को०]।

तुंबि—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बि] लौकी [को०]।

तुंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बिका] दे० 'तुंबी'। उ०—पानी माहिं तुंबिका बूड़ी पाहन तिरत न लागी बेर।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५१३।

तुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बी] १. छोटा कड़वा कद्दू। छोटा कड़वा घीया। तितलौकी। २. गोल कद्दू का खोपड़ा। गोल घीए का बना हुआ पात्र।

तुंबुक—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुक] कद्दू का फल। घीया।

तुंबुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बुरी] १ धनिया। २ कुतिया।

तुंबुरु—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुरु] १ धनिया। २ एक प्रकार के पौधे का बीज जो धनिया के आकार का पर कुछ कुछ फटा हुआ होता है।

विशेष—इसमें बड़ी झाल होती है। मुँह में रखने से एक प्रकार की चुनचुनाहट होती है और लार गिरती है। दाँत के दर्द में इस बीज को लोग दाँत के नीचे दबाते हैं। वैद्यक में यह गरम, कड़ुवा, चरपरा, अग्निदीपक तथा कफ, वात, शूल आदि को दूर करनेवाला माना जाता है। इसे बंगाल में नैपाली धनिया कहते हैं।

३ एक गंधर्व जो चैत के महीने में सूर्य के रथ पर रहते हैं।

विशेष—ये विष्णु के एक प्रिय पार्श्वचर और संगीत विद्या में अति निपुण हैं।

४. एक जिन उपासक का नाम। ५. तानपूरा (को०)।

तुंदियाना—क्रि० अ० [हिं० तोंद से नामिक धातु] तोंद का बढ़ना।

तुंदैला—वि० [हिं० तोंद+ऐला (प्रत्य०)] बड़े पेटवाला। तोंदियल।

तुंबड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूंबड़ी'।

तुंबड़ी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी अंदर से सफेद, नर्म और चिकनी निकलती है।

विशेष—इस पेड़ की लकड़ी मकानों में लगती है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं।

तुंबर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] एक गंधर्व तुंबुरु। उ०—जोगनी जोगमाया जगी नारद तुंबर निहसिया। दस एक रुद्र दारिद्र गत दानव तामर हुसिया।—पृ० रा०, २। १३०।

तुंवरी(पु)†—संज्ञा [सं० तुम्ब+हिं० री० (प्रत्य०)] दे० 'तूंबरी'।

तुअ(पु)‡—सर्व० [हिं०] दे० 'तुव'। उ—सज्जा आवै गोत्र पुनि, छेम धाम तुअ नाम।—नंद० ग्रं०, पृ० ८६।

तुअना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० चूना, चुवना] १ चूना। टपकना। २. गिर पड़ना। खड़ा न रह सकना। ठहरा न रहना। उ०—निकरे सी निकाई निहारे नई रति रूप लुभाई तुई सी परे। —सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। ३ गर्भपात होना। बच्चा गिर पड़ना।

संयो क्रि०—पड़ना।

तुअर†—संज्ञा पुं० [सं० तुवरी] अरहर। आढ़की। उ०—और चावर, सीधो, नए बासन में बूरा तुअर आदि सर्व सामान घर में हतो सो हरिवंस जो को सर्व वस्तु दिखाई।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ७५।

तुआर(पु)—सर्व [हिं०] दे० 'तुम्हारे'। उ०—नाथ तुमारे कुशल कुशल सब लेखिहिं।—अकबरी०, पृ० ३३७।

तुइँ(पु)—सर्व [हिं०] दे० 'तू'। उ०—अबहिं मारि तुइँ पेम न खेला। का जानसि कस होइ दुहेला,—जायसी ग्रं०, पृ० ७४।

तुइ¹—सर्व० [हिं०] दे० 'तू'।

तुइ(पु)²—सर्व० [हिं० तू] तुझे। तुझको। उ०—भूलि कुरंगिनी कसि भई मनहुँ सिंघ तुइ डीठ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २३४।

तुई¹—संज्ञा स्त्री० [?] कपड़े पर बुनी हुई एक प्रकार की बेल जिसे दुल्हा स्त्रियाँ दुपट्टों पर लगाती हैं।

तुई²—सर्व० [हिं०] दे० 'तू'।

तुक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूक (=टुकड़ा)] १. किसी पद्य या गीत का कोई खंड। कड़ी। २. पद्य के चरण का अंतिम अक्षरों का परस्पर मेल। अक्षरमैत्री। अंत्यानुप्रास। काफ़िया।

यौ०—तुकबंदी।

मुहा०—तुक जोड़ना = (१) वाक्यों को जोड़कर और चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल मिलाकर पद्य खड़ा करना। (२)

भद्दा पद्य बनाना। भद्दी कविता करना। तुक बैठाना = दे० 'तुक जोड़ना'।

तुक२—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] मेल। सामंजस्य। जैसे,—आपकी बात का कोई तुक नहीं है।

तुकना—क्रि० स० [अनु०] एक अनुकरण शब्द जो 'तकना' शब्द के साथ बोलचाल में आता है। उ०—तकि कै तुकि कै उर पावनि को लखि कै द्विज देवन आपनि को।—रघुराज (शब्द०)।

तुकतुकाना—क्रि० अ० [हिं०] तुक जोड़ते हुए कविता का अभ्यास करना। भद्दी तुकें जोड़ना।

तुकबंद—संज्ञा पुं० [हिं० तुक + बंद (= बाँधना)] तुक बाँधनेवाला। तुक्कड़। उ०—बहुत से तुकबंद प्रत्येक युग में रहते हैं और जीवन पर्यंत इसी भ्रम मे बने रहते हैं कि वे कवि हैं।—काव्यशास्त्र, पृ० ७।

तुकबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुक + फ़ा० बंदी] १ तुक जोड़ने का काम। भद्दी कविता करने की क्रिया। २ भद्दा पद्य। भद्दी कविता। ऐसा पद्य जिसमें काव्य के गुण न हों। उ०—बहुत दिनों के बाद आज मेरी यह पुरानी तुकबंदियाँ संग्रह के रूप में सामने आ रही हैं।

तुकमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुक्मह्] घुंडी फँसाने का फंदा। मुद्धी।

तुकांत—संज्ञा पुं० [हिं० तुक + सं० अन्त] पद्य के दो चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल। अंत्यानुप्रास। काफिया।

तुका—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुक्कह्] वह तीर जिसमें गाँसी न हो। वह तीर जिसमें गाँसी के स्थान पर घुंडी सी बनी हो। उ०—काम के तुका से फूल डोलि डोलि डारैं मन औरे किये डारैं ये कदंबन की डारैं री।—कविंद (शब्द०)।

तुकार—संज्ञा पुं० [हिं० तू + सं० कार] अशिष्ट संबोधन। मध्यम पुरुष वाचक अशिष्ट सर्व० का प्रयोग। 'तू' का प्रयोग जो अपमानजनक समझा जाता है।

मुहा०—तू तुकार करना = अशिष्ट शब्द से संबोधन करना। 'तू' आदि अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करना।

तुकारना—क्रि० स० [हिं० तुकार] तू तू करके संबोधन करना। अशिष्ट संबोधन करना। उ०—वारों हौं कर जिन हरि को बदन, छुवारी। वारों वह रसना जिन बोल्यो तुकारी।—सूर (शब्द०)।

तुक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० तुक + अक्कड़ (प्रत्य०)] तुक जोड़नेवाला। तुकबंदी करनेवाला। भद्दी कविता बनानेवाला।

तुक्कल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुक्कह्] एक प्रकार की बड़ी पतंग जो मोटी डोर पर उड़ाई जाती है।

तुक्का—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुक्कह्] १ वह तीर जिसमें गाँसी के स्थान पर घुंडी सी बनी होती है। २ टीला। छोटी पहाड़ी। टेकरी। ३ सीधी खड़ी वस्तु।

मुहा०—तुक्का सा = सीधा उठा हुआ। ऊपर उठा हुआ। जैसे,—जब देखो तब रास्ते में तुक्का सी बैठी रहती है।

तुक्ख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुच्छ'। उ०—ज्ञान कथै बहुभेष बनावै इहो बात सब तुक्ख।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११।

तुक्खार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुखार' [को०]।

तुख—संज्ञा पुं० [सं० तुष] १ भूसी। छिलका। उ०—भटकत पट अद्वैतता अटकत ज्ञान गुमान। सटकत वितरन तें बिहरि फटकत तुख अभिमान।—तुलसी (शब्द०)। २ अंडे के ऊपर का छिलका। उ०—अंड फोरि किय चेंटुआ तुख पर नीर निहारि। गहि चंगुल चातक चतुर डारेउ बाहर बारि।—तुलसी (शब्द०)।

तुखार१—संज्ञा पुं०[सं०] १ एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख अथर्ववेद परिशिष्ट, रामायण, महाभारत इत्यादि में है।

विशेष—अधिकांश ग्रंथों के मत से इसकी स्थिति हिमालय के उत्तरपश्चिम में होनी चाहिए। यहाँ के घोड़े प्राचीन काल में बहुत अच्छे माने जाते थे।

२. तुखार देश का निवासी।

विशेष—हरिवंश के अनुसार जब महर्षियों ने वेणु का मथन किया था, तब इस अधर्मरत असभ्य जाति की उत्पत्ति हुई थी, पर उक्त ग्रंथ में इस जाति का निवासस्थान विंध्य पर्वत लिखा है जो और ग्रंथों के विरुद्ध पड़ता है।

३ तुखार देश का घोड़ा। ४. घोड़ा। उ०—(क) तीख तुखार चाँड़ औ बाँके। तरपहिं तबहिं तायन बिनु हाँके।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५०। (ख) आवा काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ भा असवारू।—जायसी (शब्द०)।

तुखार२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुषार'।

तुख्म—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुख्म] १ बीज। दाना। २ गुठली (को०)। ३. अंडा (को०)। ४ संतान। औलाद (को०)। ५ वीर्य (को०)।

यौ०—तुख्मपाशी = बीजारोपण। खेत मे बीज बोना। तुख्मरेजी = बीज बोना।

तुख्मी—वि० [फ़ा० तुख्मी] १ जो बीज बोकर उत्पन्न किया गया हो। २ देशी आम जो कलमी न हो [को०]।

तुगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।

तुगाक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।

तुग्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक राजर्षि का नाम जो अश्विनीकुमारों के उपासक थे।

विशेष—इन्होंने द्वीपांतरों के शत्रुओं को परास्त करने के लिये अपने पुत्र भुज्यु को जहाज पर चढ़ाकर समुद्रपथ से भेजा था। मार्ग मे जब एक बड़ा तूफान आया और वायु नौका को उलटने लगी, तब भुज्यु ने अश्विनीकुमारों की स्तुति की। अश्विनीकुमारों ने संतुष्ट होकर भुज्यु को सेना सहित अपनी नौका पर लेकर तीन दिनों में उसके पिता के पास पहुँचा दिया।

तुग्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुग्र के वंश का पुरुष। तुग्र वंशज। २. तुग्र के पुत्र भुज्यु।

तुग्र्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी। जल [को०]।

तुच(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० त्वच्] चमड़ा। छाल। उ०—बहु चील नोचि ले जात तुच मोद मढ़यो सबको हियो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २९५।

तुचा[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ त्वचा] दे॰ 'त्वचा'। उ॰—आवे तन बाँधी बदि आई। सर्प तुचा छाती लपटाई।—शकुंतला, पृ॰ १३६।

तुचु(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ त्वच] दे॰ 'त्वचा'। उ॰—आँखि नाक जिभ्या तुचु काना। पाँचो इंद्री ज्ञान प्रधाना।—स॰ दरिया, पृ॰ २६।

तुच्छ[1]—वि॰ [सं॰] १ भीतर से खाली। खोखला। निःसार। शून्य। २ क्षुद्र। नाचीज। उ॰—जिन्हें तुच्छ कहते हैं, उनसे माया क्यों, डरकर ऐसा?—साकेत, पृ॰ ३८८। ३ ओछा। छोटा। नीच। ४ अल्प। थोड़ा। ५ शीघ्र। उ॰—छिन्न सु सरवर तुच्छ लघु राजा रमा सोइ।—अनेकार्थ॰ पृ॰ ६८। ६ छोड़ा हुआ। त्यक्त (को॰)। ७ गरीब। दरिद्र (को॰)। ८ दयनीय। दुखी (को॰)।

तुच्छ[2]—संज्ञा पुं॰ १ सारहीन छिलका। भूसी। २ तूतिया। ३ नील का पौधा।

तुच्छक[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] काले और भूरे रंग का मरकत या पन्ना जो शूद्र या निम्न कोटि का माना जाता है।

तुच्छक[2]—वि॰ शून्य। खाली। रिक्त (को॰)।

तुच्छता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ हीनता। नीचता। २ ओछापन। क्षुद्रता। ३ अल्पता।

तुच्छदय—वि॰ [सं॰] दयाशून्य। निर्दय (को॰)।

तुच्छना(पु)—वि॰ [सं॰ तक्षण] छीलना। काटना। हराना। उ॰—बहुधान तुच्छ ठकुर वहिय।—पृ॰ रा॰, १०।२७।

तुच्छत्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ हीनता। क्षुद्रता। २ ओछापन।

तुच्छद्रु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रेंड़ का पेड़।।

तुच्छधान्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भूसी। तुष (को॰)।

तुच्छधान्यक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भूसी। तुस।

तुच्छप्राय—वि॰ [सं॰] महत्वहीन (को॰)।

तुच्छवित(पु)—वि॰ [सं॰ तुच्छ+वित्त] तुच्छ। अल्प। उ॰—इकसौं इक अधिके भए तुमहूँ तिनमैं तुच्छवित।—ब्रज॰ ग्र॰, पृ॰ ११०।

तुच्छा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ नील का पौधा। २ तूतिया। ३ गुजराती इलायची। छोटी इलायची। ४. कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि (को॰)।

तुच्छातितुच्छ—वि॰ [सं॰] छोटे से छोटा। अत्यंत हीन। अत्यंत क्षुद्र।

तुच्छीकरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुच्छ] तुच्छ होने या करने की क्रिया या भाव।

तुच्छीकृत—वि॰ [सं॰ तुच्छ] तुच्छ किया हुआ। उ॰—समस्त भावों को तुच्छीकृत करना।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ १०६।

तुच्छ्य—वि॰ [सं॰] रिक्त। शून्य। व्यर्थ (को॰)।

तुछ(पु)—वि॰ [सं॰ तुच्छ] दे॰ 'तुच्छ'। उ॰—तुछ बुद्धि भट्ट देखत भुल्यो कवि सुमति कहै का बरन।—पृ॰ रा॰, ६।६५।

तुज[1]—वि॰ [सं॰] दुष्ट। कष्टप्रद (को॰)।

तुज[2]—संज्ञा पुं॰ दे॰ 'तुजं' (को॰)।

तुज(पु)[3]—सर्व॰ [हिं॰] दे॰ 'तुझ'। उ॰—जिनने जन्म डारा है तुज कूँ, बिसर गया उनका ध्यान तू।—दक्खिनी॰, पृ॰ १४।

तुजनूँ(पु)—सर्व॰ [पं॰] तुझे। तुझको। उ॰—मैं तैडी लटकन फँदा क्या तुजनूँ कीया।—घनानंद, पृ॰ १७८।

तुजीह—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] धनुष। कमान।

तुजुक—संज्ञा पुं॰ [तु॰ तुज़ुक] १ सज्जा। सजावट। २ प्रबंध। व्यवस्था। इंतिजाम। ३ सैन्य-सज्जा। फौज की तरतीब। ४ राजसभा की सजावट। उ॰—भूषन भनत जहाँ सरजा सिवाजी गाजी, तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा।—भूषण ग्रं॰, पृ॰४४। ५. आत्मचरित। जैसे, तुजुक जहाँगीरी।

तुझ—सर्व॰ [प्रा॰ तुज्झ] 'तू' शब्द का वह रूप जो उसे प्रथमा और षष्ठी के अतिरिक्त और विभक्तियाँ लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, तुझको, तुझसे, तुझपर, तुझमें।

तुझे—सर्व॰ [हिं॰ तुझ] 'तू' का कर्म और संप्रदान रूप। तुझको।

तुमक—सर्व॰ [हिं॰] तुम्हारा। तेरा। उ॰—साल्ह कुँवर सुहिणइ मिलइ, सु वरि सउ वर तुमक।—ढोला॰, दू॰४४।

तुट(पु)—वि॰ [सं॰ त्रुट (=टूटना)] टुकड़ा। लेशमात्र। जरा सा।

तुटना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'टूटना'। उ॰—तुटे तब आरी। परे गे विहारी। परे भूमि पाव। कर्यं कुट घाव।—पृ॰ रा॰, १।६४१।

तुटि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] छोटी इलायची (को॰)।

तुटितुट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिव।

तुटुम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मूषक। मूस। चूहा (को॰)।

तुट्टना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ टूटना] दे॰ 'टूटना'। उ॰—दरिया दधि किय मथन भोम फट्टिय पहु तुट्टिय।—पृ॰ रा॰, १।६१६।

तुट्ठना(पु)[1]—क्रि॰ स॰ [सं॰ तुष्ट, प्रा॰ तुट्ठ+ना (प्रत्य॰)] तुष्ट करना। प्रसन्न करना। राजी करना।

तुट्ठना(पु)[2]—क्रि॰ अ॰ तुष्ट होना। प्रसन्न होना। राजी होना।

तुठना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'तुष्टना'। उ॰—स्नेह तुठौ राजा ओलगणी मेलही।—बी॰ रासो, पृ॰४८।

तुड़ताँण(पु)—क्रि॰ वि॰ [सं॰ त्वरित?] शीघ्र। उ॰—मरवई मारुणी वास री, विण वेला तुड़ताँण।—रा॰ रू॰, पृ॰ ३३३।

तुड़वाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तुड़वाना] दे॰ 'तुड़ाई'।

तुड़वाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ तोड़ना का प्रे॰ रूप] तोड़ने का काम कराना। तोड़ने में प्रवृत्त करना। तोड़ने देना।

तुड़ाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तुड़ाना] १ तुड़ाने की क्रिया या भाव। २ तोड़ने की क्रिया या भाव। ३ तोड़ने की मजदूरी।

तुड़ाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ तोड़ने का प्रे॰ रूप] १ तोड़ने का काम कराना। तुड़वाना। २ बँधी हुई रस्सी आदि को तोड़ना। बंधन छुड़ाना। जैसे,—घोड़ा रस्सी तुड़ाकर भागा। ३. अलग करना। संबंध तोड़ना। जैसे, बच्चे को माँ से तुड़ाना। ४. एक बड़े सिक्के को बराबर मूल्य के कई छोटे छोटे सिक्कों से

बदलना। भुनाना। जैसे, रुपया तुड़ाना। ५ दाम कम कराना। मूल्य घटवाना।

तुडुम—संज्ञा पुं० [सं० तुरम्] तुरही। बिगुल।

तुणि—संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़।

तुतरा㉿†—वि० [हिं० तोतला] [वि०स्त्री० तुतरी] दे० 'तोतला'। उ०—मन मोहन की तुतरी बोलन मुनिमन हरत सुहँसि मुसकवियाँ।—सूर (शब्द०)।

तुतराना㉿—क्रिया अ० [हिं० तुतरा+ना (प्रत्य०)] दे० 'तुतलाना'। उ०—श्रवणन नहिं उपकंठ रहत हैं अरु बोलत तुतरात री।—सूर (शब्द०)।

तुतरानि㉿—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तुतलाने की क्रिया या भाव।

तुतरानी㉿—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुतरा+ई (प्रत्य०)] तोतली। तुतलाती हुई। उ०—जननि वचन सुनि तुरत उठे हरि कहत बात तुतरानी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३७।

तुतरी㉿—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तुतली'। उ०—काव ह्वै प्राण सुधा सींचति धारस भरि बोलनि तुतरी।—घनानंद, पृ० ४३।

तुतरौहाँ†㉿—वि० [हिं० तुतरा+औहाँ (प्रत्य०)] दे० 'तोतला'।

तुतला— वि० [हिं०] दे० 'तोतला'। उ०—मा के तन्मय उर से मेरे जीवन का तुतला उपक्रम।—पल्लव, पृ० १०६।

तुतलान—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुतलाना] तुतलाने की क्रिया या भाव।

तुतलाना —क्रि० अ० [सं० त्रुट (=टूटना) या अनु०] शब्दों और वर्णों का अस्पष्ट उच्चारण करना। रुक रुककर टूटे फूटे शब्द बोलना। साफ न बोलना। शब्द बोलने में वर्ण ठीक ठीक मुँह से न निकालना। जैसे,—बच्चों का तुतलाना बहुत प्यारा लगता है। उ०—लागति अनूठी मीठी बानी तुतलान की।—शकुंतला०, पृ० १४०।

तुतली—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तोतली'। उ०—फर पद से चलते देख उन्हें सुनकर तुतली वाणी रसाल।—सागरिका, पृ० ११३।

तुतुई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुतुही'।

तुतु लूम लूल㉿—संज्ञा पुं० [अनु०] बच्चों का एक खेल। उ०—मचत कबहुँ झाबरि कबहूँ तुतु लूम लूल भल।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४७८।

तुतुही‡—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १ टोंटीदार छोटी घटी। छोटी सी झारी जिसमें टोंटी लगी हो। २ एक वाद्य। तुरही।

तुत्त—सर्व० [सं० त्वत्] तुम। उ०—तिहि वंस भीम अरु अम्म तुत्त। तिहि बंस बली अनगेस तुत्त।—पृ० रा०, ३।३२।

तुत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ तूतिया। नीला थोथा। २ अग्नि (को०)। ३ पत्थर (को०)।

तुत्थक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुत्थ'।

तुत्थांजन—संज्ञा पुं० [सं० तुत्थाञ्जन] तूतिया। नीला थोथा।

तुत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नील का पौधा। २ छोटी इलायची।

तुद¹—वि० [सं०] आघातकारी। पीड़ादायी। कष्टकर जैसे,— मर्मंतुद। अरुंतुद।

तुद²㉿—संज्ञा पुं० [?] तुख। उ०—कदन, विधुर, अक, दुन, तुद, गहुन, व्रजिन पुनि आहि।—नंद० ग्रं०, पृ० १००।

तुदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यथा देने की क्रिया। पीड़न। २. व्यथा। पीड़ा। उ०—कृपादृष्टि करि तुदन मिटावा। सुमन माल पहिराय पठावा।—विश्राम० (शब्द०)। ३. चुभाने या गड़ाने की क्रिया।

तुन—संज्ञा पुं० [सं० तुन्न] एक बहुत बड़ा पेड़ जो साधारणतः सारे उत्तरीय भारत में सिंध नदी से लेकर सिक्किम और भूटान तक होता है।

विशेष—इसकी ऊँचाई चालीस से लेकर पचास साठ हाथ तक और लपेट दस बारह हाथ तक होती है। पत्तियाँ इसकी नीम की तरह लंबी लंबी पर बिना कटाव की होती हैं। शिशिर में यह पेड़ पत्तियाँ झाड़ता है। बसंत के आरंभ में ही इसमें नीम के फूल की तरह के छोटे छोटे फूल गुच्छों में लगते हैं जिनकी पंखुड़ियाँ सफेद पर बीच की घुडियाँ कुछ बड़ी और पीले रंग की होती हैं। इन फूलों से एक प्रकार का पीला बसंती रंग निकलता है। झड़े हुए फूलों को लोग इकट्ठा करके सुखा लेते हैं। सूखने पर केवल कड़ी कड़ी घुडियाँ सरसों के दाने के आकार की रह जाती हैं जिन्हें साफ करके कूट डालते या उबाल डालते हैं। तुन की लकड़ी लाल रंग की और बहुत मजबूत होती है। इसमें दीमक और घुन नहीं लगते। मेज कुरसी आदि सजावट के सामान बनाने के लिये इस लकड़ी की बड़ी माँग रहती है। आसाम में चाय के बकस भी इसके बनते हैं।

तुनक—वि० [फ़ा० तुनुक] दे० 'तुनुक'।

यौ०—तुनक मिजाज = दे० 'तुनुकमिजाज'। तुनकमिजाजी = दे० 'तुनुकमिजाजी'। तुनकहवास = दे० 'तुनुकहवास'।

तुनकना —क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिनकना'। उ०—स्त्रियाँ प्रायः तुनक जाने का कारण सब बातों में निकाल लेती हैं।—कंकाल, पृ० १६५।

तुनकामौज—संज्ञा पुं० [?] छोटा समुद्र। (लश०)।

तुनकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुनुक+ई (प्रत्य०)] एक तरह की खस्ता रोटी।

तुनतुनी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ वह बाजा जिसमें तुनतुन शब्द निकले। २ सारंगी।

तुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुन] तुन का पेड़।

तुनीर—संज्ञा पुं० [सं० तूणीर] दे० 'तूणीर'। उ०—हिम कौं हरष मरुधरनि कौं नीर भो री, जियरो मदन तीरगन को तुनीर भो।—भिखारी० ग्रं०, पृ० १०१।

तुनुक—वि० [फ़ा०] १. सूक्ष्म। बारीक। २ अल्प। थोड़ा। ३ मृदुल। नाजुक। ४ क्षीण। दुबला पतला (को०)।

यौ०—तुनुकजर्फ = (१) छिछोरा। लोफर। (२) अकुलीन। कमीना। (३) पेट का हलका। जो भेद खोल दे। (४) जो थोड़ी सी शराब पीकर बहक जाय। (५) जो किसी

बड़े आदमी को निकटता या ऊँचा पद पाकर घमंड के कारण आदमी न रहे। तुनुकदिल = बहुत छोटे दिल का। अनुदार।

तुनुकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिनकना'। उ०—अंकुर ने तुनुककर कहा।—इरावलम्, पृ० १६५।

तुनुकमिजाज—वि० [फ़ा० तुनुकमिजाज] चिड़चिड़ा। शीघ्र क्रोध में आनेवाला। छोटी छोटी बातों पर अप्रसन्न होनेवाला। उ०—पिछलगुओं की खुशामद ने हमें इतना अभिमानी और तुनुकमिजाज बना दिया है।—गोदान, पृ० १५।

तुनुकमिजाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० तुनुकमिजाजी] छोटी बातों पर शीघ्र अप्रसन्न होने का भाव। चिड़चिड़ापन।

तुनुकसब्र—वि० [फ़ा० तुनुक + अ० सब्र] आतुर। त्वरावान्। बेसब्र। जल्दबाज [को०]।

तुनुकहवास—वि० [फ़ा० तुनुक + अ० हवास] तीक्ष्णबुद्धि [को०]।

तुन्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुन का पेड़। २. फटे हुए कपड़े का टुकड़ा।

तुन्न[2]—वि० १ कटा या फटा हुआ। छिन्न। २ पीड़ित (को०)। ३ चुभा हुआ (को०)। ४ आहत। घायल (को०)।

तुन्नवाय—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ा सीनेवाला। दरजी।

तुन्नसेवनी—संज्ञा पुं० [सं०] जर्राह। वह जो घाव को सीने का काम करता हो [को०]।

तुपक—संज्ञा स्त्री० [तु० तोप का अल्पा० रूप] १. छोटी तोप। उ०—तुपक तोप जरजाल करारे। भरि भरि मारु गज गुजारे।—हम्मीर०, पृ० ३०। २ बंदूक। कड़ाबीन।

क्रि० प्र०—चलना। छूटना।

तुफंग—संज्ञा स्त्री० [तु० तोप, हिं० तुपक, अथवा फ़ा० तुफ़ग] १. बंदूक। तुपक। हवाई बंदूक। उ०—कोदंड चढ़ करकटि निषंग। इक चाड भुसुंडी लै तुफंग।—सुजान०, पृ० ३८। २ वह लंबी नली जिसमें मिट्टी या आटे की गोलियाँ, छोटे तीर आदि डालकर फूँक के जोर से चलाए जाते हैं।

यौ०—तुफग अदाज = बंदूकची। निशानेबाज। तुफगची = (१) बंदूक चलानेवाला। (२) बंदूक रखनेवाला। (३) निशानची। तुफगेतहपुर = कारतूसी बंदूक। तुफगे दहनपुर = टोपीदार बंदूक। तुफगे सीजनी = कारतूसी बंदूक जिसमें घोड़ा नहीं होता।

तुफ—अव्य० [फ़ा० तुफ़] धिक्कार। धिक् [को०]।

तुफक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुफ़क] बंदूक। तुफंग। तुपक।

तुफान‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूफान'।

तुफानी㉦—वि० [हिं०] दे० 'तूफानी'। उ०—सासु बुरी घर ननद तुफानी देखि सुहाग हमार जरै।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७६।

तुफैल—संज्ञा पुं० [अ० तुफ़ैल] द्वारा। कारण। जरिया।

यौ०—तुफैल से = के द्वारा।—की कृपा से।

तुफैली—संज्ञा पुं० [अ० तुफ़ैली] १ वह व्यक्ति जो बिना निमन्त्रण के अथवा किसी निमन्त्रित व्यक्ति के साथ किसी के यहाँ जाय। २ आश्रित व्यक्ति। वह जो किसी के सहारे हो [को०]।

तुबक㉦—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुपक'। उ०—दल समूह तजि चलियै तुबक यही तुर तब—पृ० रा०, २५।६१।

तुभना—क्रि० अ० [सं० स्तुभ, स्तोभन (= स्तब्ध रहना, ठक रहना)] स्तब्ध रहना। ठक रह जाना। अचल रह जाना। उ०—टरति न टारे यह छबि मन में चुभी। स्याम सघन पीतांबर दामिनि, अखियाँ चातक ह्वै आय तुभी।—सूर (शब्द०)।

तुम—सर्व० [सं० त्वम्] 'तू' शब्द का बहुवचन। वह सर्वनाम जिसका व्यवहार उस पुरुष के लिये होता है जिससे कुछ कहा जाता है। जैसे,—तुम यहाँ से चले जाओ।

विशेष—संबंध कारक को छोड़ शेष सब कारकों की विभक्तियों के साथ शब्द का यही रूप बना रहता है, जैसे, तुमने, तुमको, तुमसे, तुममें, तुमपर। संबंध कारक में 'तुम्हारा' होता है। शिष्टता के विचार से एकवचन के लिये भी बहुवचन 'तुम' का ही व्यवहार होता है। 'तू' का प्रयोग बहुत छोटों या बच्चों के लिये ही होता है।

मुहा०—तुम जानो तुम्हारा काम जाने = अब जिम्मेवारी तुम्हारी है। मन में जो आए सो करो। उ०—और तरफ इस वक्त ध्यान न बटाओ। आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने।—सैर०, पृ० २८।

तुमड़िया㉦—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुमड़ी'। उ०—हरी बेल की कोरी तुमड़िया सब तीरथ कर आई। जगन्नाथ के दरसन करके, अजहुँ न गई कड़वाई।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४६।

तुमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बर + हिं० ई (प्रत्य०)] १ कड़ुए गोल कद्दू का सूखा फल। गोल घीए का सूखा फल। २ सूखे गोल कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ पात्र जिसमें प्राय साधु पानी पीते हैं। ३. सूखे कद्दू का बना हुआ एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है। महुवर।

विशेष—यह बाजा कद्दू के खोखले पेट में नरकट की दो नलियाँ घुसाकर बनाया जाता है। सँपेरे इसे प्रायः बजाते हैं।

तुमकना—क्रि० अ० [अनु०] दिखाई देना। प्रकट होना। उ०—एक झोंका वायु से ले, सिर हिलाकर तुमक जाना।—हिमकि०, पृ० ६४।

तुमतड़ाक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुमतड़ाक'।

तुमतराक—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुमतराक़] १ वैभव। शानशौकत। २ धूमधाम। तड़कभड़क। अहंकार। घमंड [को०]।

तुमरा—सर्व० [हिं०] [स्त्री० तुमरी] दे० 'तुम्हारा'।

तुमरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुमड़ी] दे० 'तुमड़ी'।

तुमरू—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुरु] दे० 'तुंबुरु'।

तुमल㉦—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुमुल'।

तुमहियै㉦—सर्व० [हिं० तुम] तुम ही। तुम्ही। उ०—रीझि

हूँसि हाथी हमें सब कोऊ देत, कहा रीझि हूँसि हाथी एक तुमहियें देत हो।—भूषण ग्रं०, पृ० ३६।

तुमही—सर्व० [तुम+ही (प्रत्य०)] तुमको।

तुमाना—क्रि० स० [हिं० तूमना का प्रे० रूप] तूमने का काम कराना। दबी या जमकर बैठी हुई रुई को पुलपुली करके फैलाने के लिये नोचवाना।

तुमार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूमार'। उ०—ये भूलहिं सब हथियार हय गय लोग बाग तुमार।—मीखा श०, पृ० ४४।

तुमारा(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—ताते चलिहै महार तुमारा। इतना वचन धर्म कहैं हारा।—कबीर सा०, पृ० ४५५।

तुमुवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तुमुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'तुमुल'। २. क्षत्रियों की एक जाति जिसका उल्लेख मत्स्य पुराण में है।

तुमुल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का कोलाहल। सेना की धूम। लड़ाई की हलचल। २ सेना की भिड़ंत। गहरी मुठभेड़। ३ बहेड़े का पेड़।

तुमुल²—वि० [सं०] १ हलचल उत्पन्न करनेवाला। २ शोरगुल से युक्त। ३ भयंकर। तीव्र। उ०—सँग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावहीं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८८। ४. अनेक ध्वनियों के मेल से ध्वनित (को०)। ५ क्षुब्ध (को०)। ६ घबराया हुआ। व्यग्र (को०)।

तुम्ह¹—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम'। उ०—जस तुम्ह सुवा कीन्ह है फेरा। गाढ़ न जाइ पिरीतम केरा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७२।

तुम्ह(पु)²—सर्व० [हिं० तुम] तुम्हारा। उ०—प्रावहु सामि सुलच्छना जीउ बसै तुम्ह नाँव।—जायसी ग्रं०, पृ० १०१।

तुम्हरा(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—दुष्ट दमन तुम्हरो अवतार। हे अद्भुत व्रजराज कुमार।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१२।

तुम्हारा—सर्व० [हिं० तुम] [स्त्री० तुम्हारी] 'तुम' का संबंध कारक का रूप। उसका जिससे बोलनेवाला बोलता है। जैसे, तुम्हारी पुस्तक कहाँ है ?।

मुहा०—तुम्हारा सिर = दे० 'सिर'।

तुम्हें—सर्व० [हिं० तुम] 'तुम' का वह विभक्तियुक्त रूप जो उसे कर्म और संप्रदान में प्राप्त होता है। तुमको।

तुयँ—सर्व० [हिं०] दे० 'तू'। उ०—ताहो बेता जनम गो तुय करे तिसो लोपी होई।—पृ० रासो, पृ० ४४।

तुया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोय'। उ०—तेज उतपत ते तुया।—गोरख०, पृ० १५६।

तुरंग¹—वि० [सं० तुरङ्ग] जल्दी चलनेवाला।

तुरंग²—संज्ञा पुं० १. घोडा। उ०—गरुड तुरग तुरग मन, बहुरि तुरंग तुरग।—अनेकार्थ०, पृ० १३३। २ चित्र। ३ सात की संख्या।

तुरंगक—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गक] १ बड़ी तोरई। २ घोड़ा (को०)।

तुरंगकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गकान्ता] घोड़ी [को०]।

यौ०—तुरंगकांतामुख = वाडवानल।

तुरंगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गगन्धा] अश्वगंधा। असगंध [को०]।

तुरंग गौड़—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्ग + गौड] गौड़ राग का एक भेद। यह वीर या रौद्र रस का राग है।

तुरंगद्विषणी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्विषणी] भैंस। महिषी [को०]।

तुरंगद्वेषिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्वेषिणी] भैंस। महिषी।

तुरंगप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गप्रिय] जौ। यव।

तुरंगब्रह्मचर्य—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गब्रह्मचर्य] वह ब्रह्मचर्य जो स्त्री के न मिलने तक हो [को०]।

तुरंगम¹—वि० [सं० तुरङ्गम] जल्दी चलनेवाला।

तुरंगम²—संज्ञा पुं० १. घोड़ा। २ चित्त। ३ एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और दो गुरु होते हैं। इसे तुग और तुंगा भी कहते हैं। उ०—न नम गहु बिहारी। कहत प्रहि पियारी। - (छन्द०)।

तुरंगमी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गमी] १. असगंध। २ घोड़ी [को०]।

तुरंगमी²—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमिन्] घुड़सवार। अश्वारोही [को०]।

तुरंगमुख—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमुख] [स्त्री० तुरगमुखी] (घोड़े का सा मुँहवाला) किन्नर। उ०—गावै गीत तुरगमुख, जलरुह बन घटियाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६।

तुरंगमेध—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमेध] अश्वमेध [को०]।

तुरंगयम—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयम] जौ। यव [को०]।

तुरंगयायी—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयायिन्] घुड़सवार [को०]।

तुरंगरक्ष—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गरक्ष] साईस [को०]।

तुरंगलीलक—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गलीलक] संगीत एक ताल मे [को०]।

तुरंगवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गवक्त्र] (घोड़े का सा मुँहवाला) किन्नर।

तुरंगवदन—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गवदन] (घोड़े का सा मुँहवाला) किन्नर।

तुरंगशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गशाला] घोड़सार। अस्तबल।

तुरंगसादी—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गसादिन्] घुड़सवार [को०]।

तुरंगस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्कन्ध] १. घोड़ों की सेना। २ घोड़ों का समूह [को०]।

तुरंगस्थान—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्थान] घुड़साल। अस्तबल [को०]।

तुरंगारि—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारि] १. कनेर। करवीर। २ भैंसा (को०)।

तुरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गिका] देवदाली। घघरबेल। बंदाल।

तुरंगारूढ—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारूढ] घुड़सवार। अश्वारोही [को०]।

तुरंगी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गी] १. अश्वगंधा। असगंध। २ घोड़ी (को०)।

तुरंगी²—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गिन्] घुड़सवार [को०]।

तुरंज—संज्ञा पुं० [फ़ा० । म० तुर्ज] १ चकोतरा नींबू । २ बिजौरा नीबू । खट्टी । ३. सुई से काढ़कर बनाया हुआ पान या कलगी के आकार का वह बूटा जो अंगरखों के मोढ़ों और पीठ पर तथा दुशाले के कोनों पर बनाया जाता है । कुंज ।

तुरंजबीन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ एक प्रकार की चीनी जो प्राय ऊँटकटारे के पौधों पर ओस के साथ खुरासान देश में जमती है । २ नींबू के रस का शर्बत ।

तुरत—क्रि० वि० [सं० तुर(=वेग, जल्दी)]जल्दी से । अत्यंत शीघ्र । तत्क्षण । झटपट । फौरन । बिना विलंब के । उ०—रघुपति चरन नाइ सिर चलेउ तुरंत अनंत । अंगद नील मयंद नल सग सुभट हनुमत ।—मानस, ६।७४ ।

तुरता—संज्ञा पुं० [हिं० तुरत] १ गाँजा (जिसका नशा तुरत पीते ही चढ़ता है) । २ सत्तू । (जिसे तत्काल खाया जा सकता है) ।

तुरँग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरग' । उ०—तुरँग चपल चंद्रमडल बिकल बेला, कुद है बिफल जहाँ नीच गति बारिए ।—मति० ग्र०, पु० ४१७ ।

तुरँज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरंज—२ । उ०—गलगल तुरँज सदा-फर फरे । नारँग अति राते रस भरे ।—जायसी ग्रं० पु० १३।

तुर१—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र । जल्द । उ०—वह दाबि डारे समर में तुर में तुरगहि दपटि कै ।—पद्माकर ग्रं०, पु० २० ।

तुर२—वि० १. वेगवान् । शीघ्रगामी । २. दृढ़ । सबल (को०) । ३. घायल । आहत (को०) । ४. धनी (को०) । ५. अधिक । प्रचुर (को०) ।

तुर३—संज्ञा पुं० वेग । क्षिप्रता [को०] ।

तुर४—संज्ञा पुं० [सं० तर्कु] १ वह लकड़ी जिसपर जुलाहे कपड़ा बुन-कर लपेटते जाते हैं । २ वह बेलन जिसपर गोटा बुनकर लपेटते जाते हैं ।

तुर(पु)५—संज्ञा पुं० [? सं० तुरग>तुरय, तुर] घोड़ा । अश्व । तुरग । उ०—माघ चढ़ि पंचमि दिवस चढ़ि चलिए तुर वार । —पृ० रा०, २५। २२५ ।

तुरई१—संज्ञा स्त्री [सं० तूर(=तुरही बाजा)] एक बेल जिसके लंबे फलों की तरकारी बनाई जाती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोल कटावदार कद्दू की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं । यह पौधा बहुत दिनों तक नहीं रहता । इसे पानी की विशेष आवश्यकता होती है, इससे यह बरसात ही में विशेषकर बोया जाता है और बरसात ही तक रहता है । बरसाती तुरई छप्परों या टट्टियों पर फैलाई जाती है, क्योंकि भूमि में फैलाने से पत्तियों और फलो के सड़ जाने का डर रहता है । गरमी में भी लोग क्यारियों में इसे बोते हैं और पानी से तर रखते हैं । गरमी के बचाने पर यह बेल जमीन ही में फैलती और फलती है । तुरई के फूल पीले रंग के होते हैं और सन्ध्या के समय खिलते हैं । फल लंबे लंबे होते हैं जिनपर लंबाई के बल उभरी हुई नसों की सीधी लकीर समान अतर पर होती हैं ।

मुहा०—तुरई का फूल सा=हलकी या छोटी मोटी चीज की तरह जल्दी खतम या खर्च हो जानेवाला । इस प्रकार चटपट चुक जाने या खर्च हो जानेवाला कि मालूम न हो । जैसे,—तुरई के फूल से ये सौ रुपए देखते देखते उठ गए ।

२. उक्त बेल का फल ।

तुरई२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरही' ।

तुरक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्क' ।

तुरकटा—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क+हिं० टा (प्रत्य०)] मुसलमान । (घृणासूचक शब्द) ।

तुरकानी—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क] १. तुर्कों या मुसलमानों की बस्ती । २ दे० 'तुर्क' । उ०—पाथर पूजत हिंदु भुलाना । मुरदा पूज भूले तुरकाना ।—कबीर सा०, पृ० ८२० ।

तुरकाना—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क] [स्त्री० तुरकानी] १ तुर्कों का सा । तुर्कों के ऐसा । २ तुर्कों का देश या बस्ती ।

तुरकानी१—वि० स्त्री० [तु० तुर्क+हिं० आनी (प्रत्य०)]तुर्कों की सी ।

तुरकानी२—संज्ञा स्त्री० तुर्क की स्त्री ।

तुरकिन—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क+हिं० इन (प्रत्य०)] १. तुर्क की स्त्री। २ तुर्क जाति की स्त्री । ३. मुसलमानिन । मुसलमान स्त्री ।

तुरकिस्तान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्किस्तान' ।

तुरकी१—वि० [तु० तुर्की] १. तुर्क देश का । जैसे, तुरकी घोड़ा, तुरकी सिपाही । २. तुर्क देश वंशी ।

तुरकी२—संज्ञा स्त्री० तुर्कों की भाषा । तुर्किस्तान की भाषा ।

तुरक्क(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्क' । उ०—राए बुझिअउँ सत हुअ रोस, लज्जाइअ निअ मनहि मन, अस तुरक्क असलान गुणणइ । कीर्ति०, पृ० १८ ।

तुरग१—वि० [सं०] तेज चलनेवाला ।

तुरग२—संज्ञा पुं० [स्त्री० तुरगी] १ घोड़ा । २. चित्त ।

तुरगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तरगगन्धा] अश्वगधा । असगध ।

तुरगदानव—संज्ञा पुं० [सं०] केशी नामक दैत्य जो कंस की आज्ञा से कृष्ण को मारने के लिये घोड़े का रूप धारण करके गया था ।

तुरगब्रह्मचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्रह्मचर्य जो केवल स्त्री के न मिलने के कारण ही हो ।

तुरगलीलक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत दामोदर के अनुसार एक ताल का नाम ।

तुरगारोहा—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०] ।

तुरगारोही—संज्ञा पुं० [सं० तुरगारोहिन्] घुड़सवार [को०] ।

तुरगी१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घोड़ी । २ अश्वगधा ।

तुरगी२—संज्ञा पुं० [सं० तुरगिन्] अश्वारोही । घुड़सवार ।

तुरगुला—संज्ञा पुं० [देश०] लटकन जो कान के कर्णफूल नामक गहने में लटकाया जाता है । झुमका । लोलक ।

तुरगोपचारक—संज्ञा पुं० [सं०] साईस [को०] ।

तुरण्य१—वि० [सं०] वेगवान् । शीघ्रगामी [को०] ।

तुरण्य२—संज्ञा पुं० शीघ्रता । वेग [को०] ।

तुरत—अव्य० [सं० तुर] शीघ्र । चटपट । तत्क्षण । उ०—दूनी रिथ-वत तुरत पधावें ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६२ ।

यौ०—तुरत फुरत = चटपट ।

तुरतुरा†—वि० [सं० त्वरा] [स्त्री० तुरतुरी] १ तेज । जल्दबाज । २ बहुत जल्दी जल्दी बोलनेवाला । जल्दी जल्दी बात करनेवाला ।

तुरतुरिया—वि० [हि०] दे० 'तुरतुरा' ।

तुरत्त(पु)—अव्य० [हि०] दे० 'तुरत' । उ०—कढ़िये सुबीर बढ़िये तुरत्त ।—प० रासो, पृ० ८३ ।

तुरन(पु)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तूर्ण' । उ०—सहसा, सत्वर, रभ, तुरा, तुरन बगे के साथ ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०७ ।

तुरना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तरुण] तरुणावस्था । जवानी । उ०—बाला काता तुरना काता, बिरधे कात न जाय ।—कबीर श०, पृ० ४८ ।

तुरनापन(पु)—संज्ञा पुं० [हि० तुरना+पन (प्रत्य०)] तरुणावस्था । जवानी । उ०—तुरनापन गइ बीत बुढ़ापा आन तुलाने । काँपन लागे सीस चलत दोउ चरन पिराने ।—कबीर श० पृ० १ ।

तुरपई—संज्ञा स्त्री० [हि० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई । तुरपन ।

तुरपन—संज्ञा स्त्री० [हि० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई जिसमें जोड़ों को पहले लंबाई के बल टाँके डालकर मिला लेते हैं, फिर निकले हुए छोर को मोड़कर तिरछे टाँकों से जमा देते हैं । लुढ़ियावन । बखिया का उलटा ।

तुरपना—क्रि० स० [हि० तर (=नीचे)+पर (=ऊपर)+ना (प्रत्य०)] तुरपन की सिलाई करना । लुढ़ियाना ।

तुरपवाना—क्रि० स० [हि० तुरपना का प्रे० रूप] दे० 'तुरपाना' ।

तुरपाना—क्रि० स० [हि० तुरपना का प्रे० रूप] तुरपने का काम दूसरे से कराना ।

तुरबत—संज्ञा स्त्री० [अ० तुर्बत] कब्र । उ०—आसमाँ तुरबत प मेरे शामियाना हो गया ।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ०८५० ।

तुरम—संज्ञा पुं० [सं० तूरम] तुरही ।

तुरमती—संज्ञा स्त्री० [तु० तुरमता] एक चिड़िया जो बाज की तरह शिकार करती है । यह बाज से छोटी होती है ।

तुरमनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] नारियल रेतने की रेती ।

तुरय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुरग] [स्त्री० तुरी] घोड़ा । उ०—सायक चाप तुरय बनि जति हौ लिए सबै तुम जाहू ।—सूर (शब्द०) ।

तुररा(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुर्रा' । उ०—तापर तुररा सुभत अति कहत सोभ कवि नाथ ।—पृ० रा०, १ । ७५२ ।

तुरल—संज्ञा पुं० [सं० तुरग] घोड़ा । उ०—वणिया गजा तणे सिर वाँनाँ । मिलया तुरल रखी असमाँनाँ ।—रा० रू०, पृ०२२५ ।

तुरस(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] ढाल । उ०—तुरस फट्टि कटि गुरज मुकुट करि रेप रिपेसर ।—पृ० रा०, ५ । ५१ ।

तुरसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुलसी' । उ०—हरि चरन तुरसिय माल । घन पति सुक्क विसाल ।—पृ० रा०, २ । ३११ ।

तुरही—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर] फूँककर बजाने का एक बाजा जो मुँह की ओर पतला और पीछे की ओर चौड़ा होता है । उ०—बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, तुरही तान नफीरी ।—कबीर श०, भा०२, पृ०१०८ ।

विशेष—यह बाजा पीतल आदि का बनता है और टेढ़ा सीधा कई प्रकार का होता है । पहले यह लड़ाई में नगाड़े आदि के साथ बजता था । अब इसका व्यवहार विवाह आदि में होता है ।

तुरा(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वरा] दे० 'त्वरा' । उ०—तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिए उपमा को समाउ न आयो । मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो ।—तुलसी ग्रं० पृ० १६६ ।

तुरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० तुरग] घोड़ा ।

तुराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० तूल (=रूई) । तूलिका (=गद्दा)] रूई भरा हुआ गुदगुदा बिछावन । गद्दा । तोशक । उ०—(क) नींद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) विविध वसन, उपधान, तुराई । छीरफेन मृदु विसद सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) कुस किसलय साथरी सुहाई । प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तुराट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुरग] घोड़ा । (डिं०) ।

तुराना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० तुर] घबराना । आतुर होना ।

तुराना(पु)[2]—क्रि० स० [हि०] दे० 'तुड़ाना' ।

तुराना(पु)[3]—क्रि० अ० [हि०] दे० 'टूटना' । उ०—फिरत फिरत सब चरन तुराने ।—कबीर ग्रं०, पृ० २३० ।

तुरायण—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का यज्ञ जो चैत्र शुक्ला ५ और वैशाख शुक्ला ५ को होता है । २ अगम । विरति । अनासक्ति (को०) ।

तुराव(पु)—संज्ञा पुं० [हि० तुरा] जल्दी । शीघ्रता । उ०—गवना चाला तुराव लगो है । जो कोउ रोवे वाको न हँस रे ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६८ ।

तुरावत्—वि० [सं० त्वरावत्] [स्त्री० तुरावती] वेगवाला । वेगयुक्त ।

तुरावती—वि० स्त्री० [सं० त्वरावती] वेगवाली । झोंक के साथ बहनेवाली । उ०—(क) विषम विषाद तुरावति धारा । भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) अमृत सरोवर सरित अपारा । ढाहैं कूल तुरावति धारा ।—श० दि० (शब्द०) ।

तुरावध(पु)—वि० [हि० तुरा] त्वरावान् । शीघ्रतायुक्त । उ०—सामंत सितुंग तुरग तुरावध रावध आवध अग्नि झरे ।—पृ० रा०, १३।१३० ।

तुरावान्—वि० [सं० त्वरावान्] दे० 'तुरावत्' ।

तुरापाट्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

तुरासाह्—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र । २ विष्णु (को०) ।

तुरि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुरी' (को०) ।

तुरि²—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—सात जनम तुरि घर वसौं एक वसत प्रकलक ।—पृ० रा०, २३।३० ।

तुरित—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तुरत' । उ०—गंगाजल कर कलस सो तुरित मँगाइय हो ।—तुलसी० ग्रं०, पृ० ३ ।

तुरिय(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरग' । उ०—पषरैत तुरिय पषरैत गज्ज । नर कस्से बगतर सिलह सज्ज ।—पृ० रा०, १।४४१।

तुरिय²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरीय' । उ०—सुखित भई तिहि छिन मन ऐसें । तुरिय अवस्थ पाइ मुनि जैसे ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०२ ।

तुरिया(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरीय' । उ०—व्योम अनसूत घर वो वरे भौंहरे माँहि । सुंदर साक्षी स्वरूप तुरिया विशेषिये ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५६८ ।

तुरिया²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोरिया' ।

तुरियातीत(पु)—वि० [सं० तुरीय + अतीत] जो तुरीयावस्था से आगे हो । चतुर्थ अवस्था से आगेवाला । उ०—तुरियातीत ह्वै चित्त जब इक भयो रैन दिन मगन है प्रेम पागी ।—पलटू०, भा० ३, पृ० २६ ।

तुरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जुलाहों का तोरिया या तोड़िया नाम का औजार । २ जुलाहों की कूँची । हत्थी । ३ चित्रकार की तूलिका (को०) । ४ वसुदेव की एक पत्नी का नाम (को०) ।

तुरी²—वि० वेगवाली ।

तुरी³—संज्ञा स्त्री० [अ० तुरय (= घोड़ा)] १ घोड़ी । उ०—तुरी अठारह लाख अमीरी बल्ख की । दिया मर्द ने छोड़ माथ सब ससक की ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७६ । २. लगाम । बाग ।

तुरी⁴—संज्ञा पुं० [हिं०] १ घोड़ा । २. सवार । अश्वारोही ।

तुरी⁵—संज्ञा स्त्री० [अ० तुर्रा] १ फूलों का गुच्छा । २ मोती की लड़ों का भब्बा जो पगड़ी से कान के पास लटकाया जाता है ।

तुरी⁶—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरही' ।

तुरी(पु)⁷—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय] चौथी अवस्था । उ०—प्रेम तेल तुरी बरी, भयो ब्रह्म उजियार ।—दरिया० बानी, पृ० ६७ ।

तुरीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुरीयन्त्र] वह यंत्र जिससे सूर्य की गति जानी जाती है ।

तुरीय—वि० [सं०] चतुर्थ । चौथा ।

विशेष—वेद में वाणी या वाक् के चार भेद किए गए हैं—परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी । इसी वैखरी वाणी को तुरीय भी कहते हैं । सायण के अनुसार जो नादात्मक वाणी मूलाधार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता है, उसका नाम परा है । जिसे केवल योगी लोग ही जान सकते हैं, वह पश्यंती है । फिर जब वाणी बुद्धिगत होकर बोलने की इच्छा उत्पन्न करती है, तब उसे मध्यमा कहते हैं । अंत में जब वाणी मुँह में आकर उच्चरित होती है, तब उसे वैखरी या तुरीय कहते हैं ।

वेदांतियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय । यह चौथी या तुरीयावस्था मोक्ष है जिसमें समस्त भेदज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा अनुपहित चैतन्य या ब्रह्मचैतन्य होती है ।

तुरीयवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] चौथे वर्ण का पुरुष । शूद्र ।

तुरीयावस्था—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय + अवस्था] वेदांतियों के अनुसार चार अवस्थाओं में से अंतिम । वि० दे० 'तुरीय' । उ०—इसी प्रकार तुरीयावस्था (द ट्रांस) नाम की कविता में उन्होंने ब्रह्मानुभूति का वर्णन इस प्रकार किया है ।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ७२ ।

तुरुक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्क' ।

तुरुकिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरुक] तुर्क जाति की स्त्री । तुरकिन । उ०—चरण नाष तुरुकिनी आन किछु काहु न भावइ ।—कीर्ति०, पृ० ४२ ।

तुरुप¹—संज्ञा पुं० [अं० ट्रंप] ताश का खेल जिसमें कोई एक रंग प्रधान मान लिया जाता है । इस रंग का छोटे से छोटा पत्ता दूसरे रंग के बड़े से बड़े पत्ते को मार सकता है ।

तुरुप²—पुं० [अं० ट्रूप (= सेना)] १ सवारों का रिसाला । २ सेना का एक खंड । रिसाला ।

तुरुप³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरपन' । उ०—कसमसे कसे उकसेंह से उरोजन पै उपटति कंचुकी की तुरुप तिरीछी बेख ।—पजनेस०, पृ० ४ ।

तुरुपना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तुरपना' ।

तुरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुर्क जाति । तुर्किस्तान का रहनेवाला मनुष्य ।

विशेष—भागवत, विष्णुपुराण आदि में तुरुष्क जाति का नाम आया है जिससे अभिप्राय हिमालय के उत्तर पश्चिम के निवासियों ही से जान पड़ता है । उक्त पुराणों में तुरुष्क राजगण के पृथ्वी भोग करने का उल्लेख है । कथासरित्सागर और राजतरंगिणी में भी इस बात का उल्लेख है ।

२ वह देश जहाँ तुरुष्क जाति रहती हो । तुर्किस्तान । ३. एक गंधद्रव्य । लोबान । ४ तुर्किस्तान का घोड़ा ।

तुरुष्कगौड़—संज्ञा पुं० [सं० तुरुष्क + गौड] दे० 'तुरगगौड' ।

तुरुही—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर अथवा तूर्य] दे० 'तुरही' ।

तुरै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरय' । उ०—जोबन तुरै हाथ गहि लीजै । जहाँ जाइ तहँ जाइ न दीजै ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २३४ ।

तुरैया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई' । उ०—सदा तुरैया फूले नहीं, सदा न सावन होय ।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १५६ ।

तुर्क—संज्ञा पुं० [तु०] १. तुर्किस्तान का निवासी । २ रूम का निवासी । टर्की का रहनेवाला ।

तुर्कचीन—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क+फ़ा० चीन] सूर्य [को०]।

तुर्कमान—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुर्क] १ तुर्क जाति का मनुष्य। २ तुर्की घोड़ा जो बहुत बलिष्ठ और साहसी होता है।

तुर्करोज—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क+फा० रोज] सूर्य [को०]।

तुर्कसवार—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क+फ़ा० सवार] एक विशेष प्रकार का सवार।

विशेष—ऐसे सवारों को सिर से पैर तक तुर्की पहनावा पहनाया जाता था।

तुर्कानी—संज्ञा पुं० [हिं० तुरुक] दे० 'तुर्किन'। उ०—सुनत करा मुसलमानहि कीन्हा। तुर्कानी को का कर दीन्हा।—कबीर सा०, पृ० ८२२।

तुर्किन—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क+हिं० इन (प्रत्य०)] १ तुर्क जाति की स्त्री। उ०—मूं फाँसी थी तो तुर्किन, बन गई अहीरिन। खुदाराम, पृ० १४। तुर्क की स्त्री।

तुर्किनी—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क+हिं० इनी (प्रत्य०)] दे० 'तुर्किन'।

तुर्किस्तान—संज्ञा पुं० [तु० फ़ा०] तुर्कों का देश। तुर्की। टर्की [को०]।

तुर्की[1]—वि० [फा० तुर्क] तुर्किस्तान का। तुर्किस्तान मे होनेवाला। जैसे—तुर्की घोड़ा।

तुर्की[2]—संज्ञा स्त्री० १ तुर्किस्तान की भाषा। २ तुर्कों की सी ऐंठ। अकड़। गर्व।

मुहा०—तुर्की तमाम होना = घमंड जाता रहना। शेखी निकल जाना।

तुर्की[3]—संज्ञा पुं० १ तुर्किस्तान का आदमी। २ तुर्किस्तान का घोड़ा।

तुर्की टोपी—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्की+हिं० टोपी] एक प्रकार की टोपी जो लाल, गोल, ऊँची और फुँदनेदार होती है।

विशेष—इस टोपी को तुर्क लोग पहनते थे। इसी से इसका नाम तुर्की टोपी पड़ा।

तुर्त(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तुरत'। उ०—जो मनइच्छा होय मम तुर्त होत है नाथ।—कबीर सा०, पृ० २२८।

यौ०—तुर्त फुर्त=जल्दी में। शीघ्रतापूर्वक।

तुर्फरी—संज्ञा पुं० [सं०] अंकुश का मारनेवाला भाग जो सामने सीधी नोक की ओर होता है। हथा।

यौ०—जर्फरी तुर्फरी = बात का बतबकड़। प्रलाप।

तुर्य[1]—वि० [सं०] चौथा। चतुर्थ।

यौ०—तुर्य गोल = एक कालसूचक यंत्र। तुर्यवाट् = चार साल का बछड़ा।

तुर्य[2]—संज्ञा पुं० तुरीयावस्था [को०]।

तुर्यवाह—संज्ञा पुं० [सं०] चार वर्ष की बछिया या बछड़ा [को०]।

तुर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ज्ञान जिसमे मुक्ति हो जाती है। तुरीय ज्ञान।

तुर्याश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्थाश्रम। सन्यासाश्रम।

तुर्रा[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १ घुंघराले बालों की लट जो माथे पर हो। काकुल।

यौ०—तुर्रा तरार = सुंदर बालो की लट।

२ पर या फुंदना जो पगड़ी में लगाया या खोंसा जाता है। कलगी। गोशवारा। ३ बादले का गुच्छा जो पगड़ी के ऊपर लगाया जाता है।

मुहा०—तुर्रा यह कि = उसपर भी इतना और। उसके उपरांत इतना यह भी। जैसे,—वे घोड़ा तो ले ही गए, तुर्रा यह कि खर्च भी हम दें। किसी बात पर तुर्रा होना = (१) किसी बात में कोई और दूसरी बात मिलाई जाना। (२) यथार्थ बात के अतिरिक्त और दूसरी बात भी मिलाई जाना। हाशिया चढ़ाना।

४ फूलों की लड़ियों का गुच्छा जो दूल्हे के कान के पास लटकता रहता है। ५ ठोपी आदि मे लगा हुआ फुंदना। ६ पक्षियों के सिर पर निकले हुए परों का गुच्छा। चोटी। शिखा। ७ हाशिया। किनारा। ८ मकान का छज्जा। ९ मुँहासे का वह पल्ला जो उसके ऊपर निकला होता है। १०. गुलतुर्रा। मुर्गकेश नाम का फूल। जटाधारी। ११. कोड़ा। चाबुक।

मुहा०—तुर्रा करना = (१) कोड़ा मारना। (२) कोड़ा मारकर घोड़े को बढ़ाना।

१२ एक प्रकार की बुलबुल जो ८ या ९ अंगुल लंबी होती है।

विशेष—यह जाड़े भर भारतवर्ष के पूर्वीय भागों मे रहती है, पर गरमी में चीन और साइबेरिया की ओर चली जाती है।

१३ एक प्रकार का बटेर। डुबकी।

तुर्रा[2]—संज्ञा पुं० [अनु० तुल तुल (=पानी डालने का शब्द)] भाँग आदि का घूँट। चुसकी।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

मुहा०—तुर्रा चढ़ाना या जमाना = भाँग पीना।

तुर्रा[3]—वि० [फा० तुर्रह्] अनोखा। अद्भुत।

तुर्वणि—वि० [सं०] १ फुर्तीला। क्षिप्र। २. विजेता। शत्रुओं को नष्ट या क्षतिग्रस्त करनेवाला [को०]।

तुर्वसु—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ययाति के एक पुत्र का नाम जो देवयानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

विशेष—राजा ययाति ने विषय भोग से तृप्त न होकर जब इससे इसका यौवन माँगा था, तब इसने देने से साफ इनकार कर दिया था। इसपर राजा ययाति ने इसे शाप दिया था कि तू अधर्मियों प्रतिलोमाचारियों आदि का राजा होकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगेगा। विष्णुपुराण के अनुसार तुर्वसु का पुत्र हुआ वाह्न, वाह्न का गोभानु, गोभानु का त्रैशाब, त्रैशाब का करधम और करधम का मरुत्त। मरुत्त को कोई संतति न थी, इससे उसने पुरुवंशीय दुष्यंत को पुत्र रूप से ग्रहण किया।

तुर्श—वि० [फा०] १ खट्टा। २ रूखा (को०)। ३. कड़ा (को०)। ४ अप्रसन्न (को०)। ५ क्रुद्ध। कुपित (को०)।

तुर्शरू—वि० [फ़ा०] तीखे मिजाजवाला। बदमिजाज। उ०—तुर्शरूई छोड़ दे औ तल्खगोई तर्क कर।—कविता को०, भा० ४, पृ० १०।

तुर्शाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुर्श + हिं० आई (प्रत्य०)] दे० 'तुर्शी'।

तुर्शाना—क्रि० अ० [फ़ा० तुर्श से नामिक धातु] खट्टा हो जाना।

तुर्शी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ खटाई। अम्लता। २ रुष्टता। अप्रसन्नता (को०)।

तुर्शादर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] घोड़े के दाँतों में कीट या मैल जमने का रोग।

तुल(पु)—वि० [सं०] दे० 'तुल्य' उ०—'हरीचंद' स्वामिनि अभिरामिनि तुल न जगत में जाकी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८०।

तुलक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का सलाहकार। राजमंत्री (को०)।

तुलकना(पु)—क्रि० अ० [सं० तुल] बराबरी करना। समता करना। उ०—बरलवा यहि में न महाकवि कोने धो काम कला तुलकी।—अकबरी०, पृ० ३५१।

तुलछी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुलसी'। उ०—घरि घरि तुलछी वेद पुराण।—बी० रासो, पृ० ८१।

तुलन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वजन। तौल। २. तौलना। ३. तुलना करना। समानता दिखाना (को०)।

तुलना¹—क्रि० अ० [सं० तुल] १ तौला जाना। तराजू पर अंदाजा जाना। मान का कूता जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

२ तौल या मान में बराबर उतरना। तुल्य होना। उ०—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग। तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।—तुलसी (शब्द०)। ३ किसी आधार पर इस प्रकार ठहरना कि आधार के बाहर निकला हुआ कोई भाग अधिक बोझ के कारण किसी ओर को झुका न हो। ठीक अंदाज के साथ टिकना। जैसे, किसी कील पर छड़ी आदि का तुलकर टिकना। बाइसिकिल पर तुलकर बैठना। ४ किसी अस्त्र आदि का इस प्रकार हिसाब से चलाया जाना कि वह ठीक लक्ष्य पर पहुँचे और उतना ही आघात पहुँचावे जितना इष्ट हो। सधना। जैसे, तुलकर तलवार का मारना। ५. नियमित होना। बँधना। अंदाज होना। बँधे हुए मान का अभ्यास होना। उ०—जैसे, दूकानदारों के हाथ तुले हुए होते हैं, जितना उठाकर दे देते हैं, वह प्राय ठीक होता है। ६. भरना। पूरित होना। ७ गाड़ी के पहिए का औंगा जाना। ८ उद्यत होना। उतारू होना। किसी काम या बात के लिये बिलकुल तैयार होना। जैसे,—वे इस बात पर तुले हुए हैं, कभी न मानेंगे।

मुहा०—किसी काम या बात पर तुलना = (१) कोई काम करने के लिये उद्यत होना। (२) जिद पकड़ लेना। हठ करना। उ०—तौलने के लिये भला किसको, तुल गए कह तुली हुई बातें।—चोखे०, पृ० ३२। तुली हुई बातें कहना = ठिकाने की बातें कहना। पक्की बातें कहना। उ०—तौलने के लिये भला किसकी। तुल गए कह तुली हुई बातें।—चोखे०, पृ० ३२।

तुलना²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि के एक दूसरे से घट बढ़ होने का विचार। मिलान। तारतम्य।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ सादृश्य। समता। बराबरी। जैसे,—इसकी तुलना उसके साथ नहीं हो सकती। ३ उपमा। ४ तौल। वजन। †५. गणना। गिनती। ६ उठाना। साधना (को०)। ७ आँकना। कूतना। अंदाज लगाना या करना (को०)। ८. परीक्षण करना (को०)।

तुलनात्मक—वि० [सं०] तुलना विषयक। जिसमें दो वस्तुओं की समानता दिखाई जाय। उ०—मानव, मानुषी, विकासशास्त्र हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान।—युगांत, पृ० १०।

तुलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला] तराजू या काँटे की डाँड़ी में सूई के दोनों तरफ का लोहा।

तुलबुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल्दीबाजी।

तुलवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तौलना, तुलना] १ तौलने की मजदूरी। २ पहिए को औंगने की मजदूरी।

तुलवाना—क्रि० स० [हिं० तौलना] [संज्ञा तुलवाई] १. तौल कराना। वजन कराना। २ गाड़ी के पहिए की धुरी में घी, तेल आदि दिलाना। औंगवाना।

तुलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरकस। तूणीर। (को०)।

तुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक छोटा झाड़ या पौधा जिसकी पत्तियों से एक प्रकार की तीक्ष्ण गंध निकलती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक अंगुल से दो अंगुल तक लंबी और लंबाई लिए हुए गोल काट की होती हैं। पुष्प मंजरी के रूप में पतली सींकों में लगते हैं। अंकुर के रूप में बीज से पहले दो दल फूटते हैं। उद्भिद् शास्त्रवेत्ता तुलसी को पुदीने की जाति में गिनते हैं। तुलसी अनेक प्रकार की होती है। गरम देशों में यह बहुत अधिक पाई जाती है। अफ्रिका और दक्षिण अमेरिका में इसके अनेक भेद मिलते हैं। अमेरिका में एक प्रकार की तुलसी होती है जिसे ज्वर जड़ी कहते हैं। फसली बुखार में इसकी पत्ती का काढ़ा पिलाया जाता है। भारत वर्ष में भी तुलसी कई प्रकार की पाई जाती है, जैसे, गंधतुलसी, श्वेत तुलसी या रामा, कृष्ण तुलसी या कृष्णा, बर्बरी तुलसी या ममरी। तुलसी की पत्ती मिर्च आदि के साथ ज्वर में दी जाती है। वैद्यक में यह गरम, कडुई, दाहकारक, दीपन तथा कफ, वात और कुष्ट आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

तुलसी को वैष्णव अत्यंत पवित्र मानते हैं। शालग्राम ठाकुर की पूजा बिना तुलसीपत्र के नहीं होती। चरणामृत आदि में भी तुलसीदल डाला जाता है। तुलसी की उत्पत्ति के संबंध में ब्रह्मवैवर्त पुराण में यह कथा है—तुलसी नाम की एक गोपिका गोलोक में राधा की सखी थी। एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ विहार करते देख शाप दिया कि तू मनुष्य शरीर धारण कर। शाप के अनुसार तुलसी धर्मध्वज राजा की कन्या हुई। उसके रूप की तुलना किसी से नहीं

हो सकती थी, इससे उसका नाम 'तुलसी' पड़ा। तुलसी ने बन में जाकर घोर तप किया और ब्रह्मा से इस प्रकार वर माँगा—'मैं कृष्ण की रति से कभी तृप्त नहीं हुई हूँ। मैं उन्हीं को पति रूप में पाना चाहती हूँ'। ब्रह्मा के कथनानुसार तुलसी ने शंखचूड़ नामक राक्षस से विवाह किया। शंखचूड़ को वर मिला था कि बिना उसकी स्त्री का सतीत्व भंग हुए उसकी मृत्यु न होगी। जब शंखचूड़ ने संपूर्ण देवताओं को परास्त कर दिया, तब सब लोग विष्णु के पास गए। विष्णु ने शंखचूड़ का रूप धारण करके तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इसपर तुलसी ने नारायण को शाप दिया कि 'तुम पत्थर हो जाओ'। जब तुलसी नारायण के पैर पर गिरकर बहुत रोने लगी, तब विष्णु ने कहा, 'तुम यह शरीर छोड़कर लक्ष्मी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर से गंडकी नदी और केश से तुलसी वृक्ष होगा।' तब से बराबर शालग्राम ठाकुर की पूजा होने लगी और तुलसीदल उनके मस्तक पर चढ़ने लगा। वैष्णव तुलसी की लकड़ी की माला और कंठी धारण करते हैं। बहुत से लोग तुलसी शालग्राम का विवाह बड़ी धूमधाम से करते हैं। कार्तिक मास में तुलसी की पूजा घर घर होती है, क्योंकि कार्तिक की अमावस्या तुलसी के उत्पन्न होने की तिथि मानी जाती है।

२ तुलसीदल।

तुलसीचौरा—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्गाकार उठा हुआ स्थान जिसमें तुलसी लगाई जाती है। तुलसी वृंदावन।

तुलसीदल—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसीपत्र। तुलसी के पौधे का पत्ता।

विशेष—वैष्णव इसे अत्यंत पवित्र मानते हैं और ठाकुर पर चढ़ाकर प्रसाद के रूप में भक्तों में बाँटते हैं। कहीं कहीं कथा वार्ता आदि में आने के लिये और प्रसाद रूप में तुलसीदल बाँटा जाता है। कहीं कहीं मंदिरों और साधुओं वैरागियों की ओर से भी तुलसीदल निमंत्रण रूप में समारोहों के अवसर पर भेजा जाता है।

तुलसीदाना—संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + फ़ा० दाना] एक गहना।

तुलसीदास—संज्ञा पुं० [सं० तुलसी + दास] उत्तरीय भारत के सर्वप्रधान भक्त कवि जिनके 'रामचरितमानस' का प्रचार हिंदुस्तान में घर घर है।

विशेष—ये जाति के सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये पतिऔजा के दूबे थे। पर तुलसीचरित नामक एक ग्रंथ में, जो गोस्वामी जी के किसी शिष्य का लिखा हुआ माना जाता है और अबतक छपा नहीं है, इन्हें गाना का मिश्र लिखा है। (यह ग्रंथ अब प्रकाशित हो गया है)। वेणीमाधवदास कृत गोसाईंचरित्र नामक एक ग्रंथ भी है जो अब नहीं मिलता। उसका उल्लेख शिवसिंह ने अपने शिवसिंह सरोज में किया है। कहते हैं, वेणीमाधवदास कवि गोसाईं जी के साथ प्रायः रहा करते थे।

नाभा जी के भक्तमाल में तुलसीदास जी की प्रशंसा आई है, जैसे—कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो। ⋯ रामचरित-रस-मत्त रहत अहनिशि व्रतधारी। भक्तमाल की टीका में प्रियादास ने गोस्वामी जी का कुछ वृत्तांत लिखा है और वही लोक में प्रसिद्ध है। तुलसीदास जी के जन्मसंवत् का ठीक पता नहीं लगता। पं० रामगुलाम द्विवेदी मिरजापुर में एक प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं। उन्होंने जन्मकाल संवत् १५८९ बतलाया है। शिवसिंह ने १५८३ लिखा है। इनके जन्मस्थान के संबंध में भी मतभेद है, पर अधिकांश प्रमाणों से इनका जन्मस्थान चित्रकूट के पास राजापुर नामक ग्राम ही ठहरता है, जहाँ अबतक इनके हाथ की लिखी रामायण क. कुछ अंश रक्षित है। तुलसीदास के माता पिता के संबंध में भी कहीं कुछ लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का हुलसी था। प्रियादास ने अपनी टीका में इनके संबंध में कई बातें लिखी हैं जो अधिकतर इनके माहात्म्य और चमत्कार को प्रकट करती हैं। उन्होंने लिखा है कि गोस्वामी जी युवावस्था में अपनी स्त्री पर अत्यंत आसक्त थे। एक दिन स्त्री बिना पूछे बाप के घर चली गई। ये स्नेह से व्याकुल होकर रात को उसके पास पहुँचे। उसने इन्हें धिक्कारा—'यदि तुम इतना प्रेम राम से करते, तो न जाने क्या हो जाते'। स्त्री की बात इन्हें लग गई और ये चट विरक्त होकर काशी चले आए। यहाँ एक प्रेत मिला। उसने हनुमान जी का पता बताया जो नित्य एक स्थान पर ब्राह्मण के वेश में कथा सुनने आया करते थे। हनुमान् जी से साक्षात्कार होने पर गोस्वामी जी ने रामचंद्र के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की। हनुमान् जी ने इन्हें चित्रकूट जाने की आज्ञा दी, जहाँ इन्हें दो राजकुमारों के रूप में राम और लक्ष्मण जाते हुए दिखाई पड़े। इसी प्रकार की और कई कथाएँ प्रियादास ने लिखी हैं, जैसे, दिल्ली के बादशाह का इन्हें बुलाना और कैद करना, बंदरों का उत्पात करना और बादशाह का तंग आकर छोड़ना, इत्यादि।

तुलसीदास जी ने चैत्र शुक्ल ९ (रामनवमी), संवत् १६३१ को रामचरित मानस लिखना आरंभ किया। संवत् १६८० में काशी में असीघाट पर इनका शरीरांत हुआ, जैसा इस दोहे से प्रकट है—संवत सोलह सौ असी असी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर। कुछ लोगों के मत से 'शुक्ला सप्तमी' के स्थान पर 'श्यामा तीज शनि' पाठ चाहिए क्योंकि इसी तिथि के अनुसार गोस्वामी जी के मंदिर के वर्तमान अधिकारी बराबर सीधा दिया करते हैं, और यही तिथि प्रामाणिक मानी जाती है। रामचरितमानस के अतिरिक्त गोस्वामी जी की लिखी और पुस्तकें ये हैं—दोहावली, गीतावली, कवितावली या कवित्त रामायण, विनयपत्रिका, रामाज्ञा, रामलला नहछू, बरवै रामायण, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, वैराग्य संदीपनी, कृष्णगीतावली। इनके अतिरिक्त हनुमानबाहुक आदि कुछ स्तोत्र भी गोस्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तुलसोद्वेषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनतुलसी। बबई। बबरी। ममरी।

तुलसीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसी की पत्ती ।

तुलसीबास—संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + बास (= महक)] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावल बहुत सुगंधित होता है और कई साल तक रह सकता है ।

तुलसीवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुलसी के वृक्षों का समूह । तुलसी का जंगल । २ वृंदावन ।

तुलसी विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु की मूर्ति के साथ तुलसी के विवाह करने का एक उत्सव ।

विशेष—हिंदू परिवारों की धार्मिक महिलाएँ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में भीष्मपंचक एकादशी से पूर्णिमा तक यह उत्सव मनाती हैं ।

तुलसी वृंदावन—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसीचौरा [को०] ।

तुलह(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला + हिं० ह (स्वा० प्रत्य०)] तुला । तराजू । उ०—तुलह न तोली गजह न मापी, पहुज न सेर अढ़ाई ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५३ ।

तुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सादृश्य । तुलना । मिलान । २ गुरुत्व नापने का यंत्र । तराजू । काँटा ।

यौ०—तुलादंड ।

३ मान । तौल । ४ अनाज आदि नापने का बरतन । भांड । ५ प्राचीन काल की एक तौल जो १०० पल या पाँच सेर के लगभग होती थी । ६ ज्योतिष की बारह राशियों में से सातवीं राशि ।

विशेष—मोटे हिसाब से दो नक्षत्रों और एक नक्षत्र के चतुर्थांश अर्थात् सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है । तुला राशि में चित्रा नक्षत्र के शेष ३० दंड तथा स्वाती और विशाखा के आद्य ४५-४५ दंड होते हैं । इस राशि का आकार तराजू लिए हुए मनुष्य का सा माना जाता है ।

७. सत्यासत्यनिर्णय की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में प्रचलित थी । वादी प्रतिवादी आदि की एक दिव्य परीक्षा । वि० दे० 'तुलापरीक्षा' । ८ वास्तु विद्या में स्तंभ (खंभे) के विभागों में से चौथा विभाग ।

तुलाई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तूला = रूई] वह दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रूई भरी हो । रूई से भरा दोहरा कपड़ा जो ओढ़ने के काम में आता है । दुलाई । उ०—तपन तेज तपता तपन तूल तुलाई माह । सिसिर सीत क्योंहुँ न घटै बिन लपटे तियनाह ।—बिहारी (शब्द०) ।

तुलाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] १ तौलने का काम या भाव । २ तौलने की मजदूरी ।

तुलाई³—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलाना] गाड़ी के पहियों को औंगाने या धुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया ।

तुलाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १ तौल में कसर । २ तौल में कसर करनेवाला । डाँड़ी मारनेवाला मनुष्य ।

तुलाकोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तराजू की डंडी के दोनों छोर जिनमें पलड़े की रस्सी बँधी रहती है । २ एक तौल का नाम । ३. अर्बुद संख्या । ४ नूपुर । ५. स्तंभ का सिरा या छोर (को०) ।

तुलाकोटी—संज्ञा स्त्री० । [सं०] दे० तुलाकोटि' [को०] ।

तुलाकोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुलापरीक्षा । २ तराजू रखने का स्थान (को०) ।

तुलाकोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलाकोश' ।

तुलादंड—संज्ञा पुं० [सं० तुलादण्ड] तराजू की डाँड़ी या डंडी [को०]

तुलादान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें किसी मनुष्य की तौल के बराबर द्रव्य या पदार्थ का दान होता है । यह सोलह महादानों में से है । तीर्थों में इस प्रकार का दान प्रायः राजा महाराजा करते हैं ।

तुलाधट—संज्ञा पुं० [सं०] १ तराजू की डंडी । २ तराजू का पलड़ा [को०] ।

तुलाधर—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यापारी । सौदागर । २ तुला राशि । ३. सूर्य [को०] ।

तुलाधार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुला राशि । २ तराजू की रस्सी जिसमें पलड़े बँधे रहते हैं । ३ बनियाँ । वणिक् । ४. काशी का रहनेवाला एक वणिक् जिसने महर्षि जाजलि को उपदेश दिया था । –(महाभारत) । ५. काशीनिवासी एक व्याध जो सदा माता पिता की सेवा में तत्पर रहता था ।

विशेष—कृतबोध नामक एक व्यक्ति जब इसके सामने आया, तब इसने उसका समस्त पूर्ववृत्तांत कह सुनाया । इसपर उस व्यक्ति ने भी माता पिता की सेवा का व्रत ले लिया । –(बृहद्धर्मपुराण) ।

तुलाधार²—वि० तुला को धारण करनेवाला ।

तुलना(पु)¹—क्रि० अ० [हिं० तुलना (= तौल में बराबर आना)] आ पहुँचना । समीप आना । निकट आना । उ०—(क) समुद झोक घन चढ़ी बिवाना । जो दिन डरे सो आइ तुलाना ।—जायसी (शब्द०) । (ख) अपनो काज आपु ही बोल्यो इनको मीचु तुलानी ।—सूर (शब्द०) ।

तुलना²—क्रि० स० [हिं० तुलना] १. तुलवाना । तौलाना । २ बराबर होना । पूरा उतरना । ३. गाड़ी के पहियों को औंगाना । गाड़ी के पहियों की धुरी में चिकना दिलाना ।

तुलापरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभियुक्तों की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में अग्निपरीक्षा, विषपरीक्षा आदि के समान प्रचलित थी । दोषी या निर्दोष होने की दिव्य परीक्षा ।

विशेष—स्मृतियों में तुलापरीक्षा का बहुत ही विस्तृत विधान किया हुआ है । एक खुले स्थान में यज्ञकाष्ठ की एक बड़ी सी तुला (तराजू) खड़ी की जाती थी और चारों ओर

तोरण आदि बाँधे जाते थे। फिर मंत्रपाठपूर्वक देवताओं का पूजन होता था और अभियुक्त को एक बार तराजू के पलड़े पर बैठाकर मिट्टी आदि से तौल लेते थे। फिर उसे उतारकर दूसरी बार तौलते थे। यदि पलड़ा कुछ झुक जाता था तो अभियुक्त को दोषी समझते थे।

तुलापुरुषकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

विशेष—इसमे पिण्याक (तिल की खली), भात, मट्ठा, जल और सत्तू इनमें से प्रत्येक को क्रमशः तीन तीन दिन तक खाकर पंद्रह दिनो तक रहना पडता है। यम ने इसे २१ दिनों का व्रत लिखा है। इसका पूरा विधान याज्ञवल्क्य, हारीत आदि स्मृतियो मे मिलता है।

तुलापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलाभार' [को०]।

तुलापुरुषदान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलादान'।

तुलाप्रग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलडों की रस्सी [को०]।

तुलाप्रग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] तुलाप्रग्रह।

तुलाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] घुंघची के बीज जो तौल के काम में आते हैं। गुंजाबीज।

तुलाभवानी—संज्ञा स्त्री० [पुं०] शंकर दिग्विजय के अनुसार एक नदी और नगरी का नाम।

तुलाभार—संज्ञा पुं० [सं०] सोने जवाहरात का एक पुरुष के तौल का मान जो दान किया जाता था [को०]।

तुलामान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह अंदाज या मान जो तौलकर किया जाय। २. बाट। बटखरा।

तुलामानांतर—संज्ञा पुं० [सं० तुलामानान्तर] तौल में अंतर डालना। कम तौल के बटखरे रखना। हलके बाट रखना।

विशेष—कौटिल्य ने इस अपराध के लिये २०० पण दंड लिखा है।

तुलायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुलायन्त्र] तराजू।

तुलायष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तराजू की डंडी [को०]।

तुलावा—संज्ञा पुं० [हिं० तुलना] १. वह लकड़ी जिसके बल गाड़ी खड़ी करके धुरी मे तेल दिया जाता है और पहिया निकाला जाता है। २ वह लकडी जिसके सहारे ओंगते समय गाड़ी खड़ी की जाती है।

तुलासूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलड़ों की रस्सी [को०]।

तुलाहीन—संज्ञा पुं० [सं०] कम तौलना। डाँडी मारना।

विशेष—चाणक्य ने तौल की कमी में कमी का चार गुना जुरमाना लिखा है।

तुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जुलाहो की कूँची। २ चित्र बनाने की कूँची।

तुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजन की तरह की एक छोटी चिडिया।

तुलित—वि० [सं०] १ तुला हुआ। २ बराबर। समान।

तुलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तुलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का वृक्ष।

तुली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुलि'।

तुली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला] छोटा तराजू। काँटा।

तुली†[3]—संज्ञा स्त्री० [?] तंबाकू। सुरती।

तुलुव—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम जो सह्याद्रि और समुद्र के बीच में माना जाता था। आजकल इस प्रदेश को उत्तर कनाडा कहते हैं।

तुलू—संज्ञा स्त्री० [कन्नड] कर्नाटक में प्रचलित एक उपभाषा।

तुलू—संज्ञा पुं० [अ० तुलूअ] सूर्य या किसी नक्षत्र का उदय होना।

तुलूलो—संज्ञा स्त्री० [अनु० तुलतुल] बँधी हुई धार जो कुछ दूर पर जाकर पड़े (जैसे, पेशाब की)।

क्रि० प्र०—बँधना।

तुल्य—वि० [सं०] १. समान। बराबर। २ सदृश। समरूप। उसी प्रकार का। ३. उपयुक्त। युक्त (को०)। ४ अभिन्न (को०)।

तुल्यकक्ष—वि० [सं०] समान। बराबरी का। उ०—राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में इस सद्भाव को तुल्यकक्ष कहकर काव्य को दूसरे प्रकार के लेखो से अलग किया है।—पा० सा० सि०, पृ० १।

तुल्यकर्मक—संज्ञा पुं० [सं०] (व्यक्ति) जिनका उद्देश्य समान हो [को०]।

तुल्यकाल—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकालीय—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकुल्य[1]—वि० [सं०] समान कुल का [को०]।

तुल्यकुल्य[2]—संज्ञा पुं० रिश्तेदार। संबंधी [को०]।

तुल्यगुण—वि० [सं०] १ समान गुणवाला। २ समान रूप से अच्छा [को०]।

तुल्यजातीय—वि० [सं०] एक ही जाति का। समान [को०]।

तुल्यजोगिता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुल्ययोगिता'। उ०—तुल्यजोगिता तहँ धरम जहँ बरन्यन को एक।—भूषण ग्रं०, पृ० २७।

तुल्यतर्क—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा अनुमान जो सत्य के निकट हो [को०]।

तुल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बराबरी। समता। २ सादृश्य।

तुल्यदर्शन—वि० [सं०] समान दृष्टि से देखनेवाला। सबके प्रति एक दृष्टि रखनेवाला [को०]।

तुल्यनामा—वि० [सं० तुल्यनामन्] एक ही नाम का। समान नाम का [को०]।

तुल्यपान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजाति के लोगों के साथ मिल जुलकर खाना पीना।

तुल्यप्रधानव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं० तुल्यप्रधानव्यङ्ग्य] वह व्यंग्य जिसमे वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ बराबर हो।

तुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कई प्रस्तुतों या अप्रस्तुतों का अर्थात् बहुत से उपमानों का एक ही धर्म बतलाया जाय। जैसे,—(क) अपने अंग के जानि कै जोबन नृपति प्रबीन। स्तन, मन, नैन, नितंब को बडो इजाफा

कीन।—बिहारी (शब्द०)। यहाँ स्तन, मन, नयन, नितंब इन प्रसिद्ध उपमेयों का 'इजाफा होना' एक ही धर्म कहा गया है। (ख) लखि तेरी सुकुमारता परी या जग माँहि। कमल, गुलाब कठोर से किहि को भासत नाँहि (शब्द०)। यहाँ कमल और गुलाब इन दोनों उपमानों का एक ही धर्म कठोरता कहा गया है।

तुल्ययोगी—वि० [सं० तुल्ययोगिन्] समान संबंध रखनेवाला।

तुल्यरूप—वि० [सं०] समरूप। सदृश। एक जैसा [को०]।

तुल्यलक्षण—वि० [सं०] समान लक्षण युक्त [को०]।

तुल्यवृत्ति—वि० [सं०] समान पेशेवाला [को०]।

तुल्यशः—क्रि० वि० [सं०] तुल्यतापूर्वक। तुलतापूर्वक [को०]।

तुल्ल—वि० [सं० तुल्य] दे० 'तुल्य'।

तुल्वल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तुव[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'तव'।

तुव(व)[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम'। उ०—थिर रहहु राव इम उच्चरे, न डरि न डरि अब सेस तुव।—ह० रासो, पृ० ५३।

तुवर[1]—वि० [सं०] १. कसैला। २. बिना दाढ़ी मोछ का। श्मश्रुहीन।

तुवर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसैला रस। कषाय रस। २. अरहर। ३ एक पौधा जो नदियों और समुद्र के तट पर होता है।

विशेष—इसके फल इमली के समान होते हैं जिनके खाने से पशुओं का दूध बढ़ता है।

तुवरयावनाल—संज्ञा पुं० [सं०] लाल ज्वार। लाल जुन्हरी।

तुवरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गोपीचंदन। २ आढ़की। अरहर।

तुवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुवरिका'।

तुवरीशिंब—संज्ञा पुं० [सं० तुवरीशिम्ब] चकवँड का पेड़। पँवार।

तुवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूँबी।

तुशियार—संज्ञा पुं० [देश०] एक झाड़ जो पश्चिम हिमालय में होता है। इसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। पुरुनी।

तुष—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न के ऊपर का छिलका। भूसी। उ०—आनँदघन, इनकों सिख ऐसें जैसें तुष लै फटके।—घनानंद, पृ० ५४३। २ अंडे के ऊपर का छिलका। ३. बहेड़े का पेड़।

तुषग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

तुषधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] छिलकायुक्त अनाज [को०]।

तुषसार—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

तुषांबु—संज्ञा पुं० [सं० तुषाम्बु] एक प्रकार की काँजी जो भूसी सहित कूटे हुए जौ को सड़ाकर बनती है।

विशेष—वैद्यक में यह अग्निदीपक, पाचक, हृदयग्राही और तीक्ष्ण मानी गई है।

तुषाग्नि—संज्ञा पुं० [हिं०] तुषानल [को०]।

तुषानल—संज्ञा पुं० [सं०] १ भूसी की आग। घासफूस की आग। करसी की आँच। २. भूसी या घास फूस की आग में भस्म होने की क्रिया जो प्रायश्चित्त के लिये की जाती है।

विशेष—कुमारिल भट्ट तुषाग्नि में ही भस्म होकर मरे थे।

तुषार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हवा में मिली भाप जो सरदी से जमकर और सूक्ष्म जलकण के रूप में हवा से अलग होकर गिरती और पदार्थों पर जमती दिखलाई देती है। पाला। २ हिम। बरफ। ३. एक प्रकार का कपूर। चीनियाँ कपूर। ४ हिमालय के उत्तर का एक देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे। ५ तुषार देश में बसनेवाली जाति जो शक जाति की एक शाखा थी। ६ ओस (को०)। ७ हलकी वर्षा। फुही (को०)। ८ तुषार देश का घोड़ा (को०)।

तुषार[2]—वि० छूने में बरफ की तरह ठंढा।

तुषारकण—संज्ञा पुं० [सं०] ओस की बूँदें। हिमकण [को०]।

तुषारकर—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिमकर। चंद्रमा। २. कपूर (को०)

तुषारकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शीत ऋतु। जाड़ा [को०]।

तुषारकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

तुषारगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०]।

तुषारगौर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तुषारगौर[2]—वि० १. तुषार जैसा श्वेत। हिम सा धवल। २ तुषार पड़ने से श्वेत [को०]।

तुषारद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

तुषारपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०]।

तुषारपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ओला। २ बरफ।

तुषारमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुषारर्तु—संज्ञा स्त्री० [सं०] ठंढक का मौसम। शीतकाल [को०]।

तुषाररश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुषारशिखरी—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०]।

तुषारशैल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०]।

तुषारांशु—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुषाराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।

तुषारावृत—वि० [सं० तुषार+आवृत] हिम से घिरा हुआ। हिम से ढँका हुआ। उ०—तुषारावृत अँधेरा पथ था। हिम गिर रहा था। तारों का पता नहीं, भयानक शीत और निर्जन निशीथ।—आकाश०, पृ० ३५।

तुषित—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के गणदेवता जो संख्या में १२ हैं। मन्वंतरों के अनुसार इनके नाम बदला करते हैं। २ विष्णु। ३ एक स्वर्ग का नाम। (बौद्ध)।

तुषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेवियों का एक वर्ग, जिनकी संख्या बारह या छत्तीस मानी जाती है [को०]।

तुषोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुषोदक'।

तुषोदक—संज्ञा पुं० [सं०] १ छिलके समेत कूटे हुए जौ को पानी में सड़ाकर बनाई हुई काँजी। तषांबु। २ भूसी को सड़ाकर खट्टा किया हुआ जल।

तुष्ट—वि० [सं०] १. तोषप्राप्त। तृप्त। संतुष्ट। उ०—तुष्ट तुम्हीं में उन्हें देखकर रही, रहूँगी।—साकेत, पृ० ४०५। २. राजी। प्रसन्न। खुश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संतोष । प्रसन्नता ।

तुष्टना⑤—क्रि० अ० [सं० तुष्ट] प्रसन्न होना । उ०—(क) अपर कर्म तुष्टत चिरकाला । प्रेम ते प्रगट होत ततकाला ।—विश्राम (शब्द०) (ख) नाम लेइ जेहि युवति को नहिं सुहाइ सुनि तासु । राम जानकी के कहे तुष्टत तेहि पर आसु ।—विश्राम (शब्द०) ।

तुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ संतोष । तृप्ति । २. प्रसन्नता ।

विशेष—सांख्य में नौ प्रकार की तुष्टियाँ मानी गई हैं, चार आध्यात्मिक और पाँच बाह्य । आध्यात्मिक तुष्टियाँ ये हैं—(१) प्रकृति—आत्मा को प्रकृति से भिन्न मानकर सब कार्यों का प्रकृति द्वारा होना मानने से जो तुष्टि होती है, उसे प्रकृति या अंगतुष्टि कहते हैं । (२) उपादान—संन्यास से विवेक होता है, ऐसा समझ संन्यास से जो तुष्टि होती है, उसे उपादान या सलिलतुष्टि कहते हैं । (३) काल—काल पाकर आप ही विवेक या मोक्ष प्राप्त हो जायगा, इस प्रकार तुष्टि को कालतुष्टि या ओघतुष्टि कहते है । (४) भाग्य—भाग्य में होगा तो मोक्ष हो जायगा, ऐसी तुष्टि को भाग्यतुष्टि या वृष्टितुष्टि कहते हैं ।

इसी प्रकार इंद्रियों के विषयों से विरक्ति द्वारा जो तुष्टि होती है, वह पाँच प्रकार से होती है, जैसे, यह समझने से कि, (१) अर्जन करने में बहुत कष्ट होता है, (२) रक्षा करना और कठिन है (३) विषयों का नाश हो ही जाता है, (४) ज्यों ज्यों भोग करते है, त्यों त्यों इच्छा बढ़ती ही जाती हैं और (५) बिना दूसरे को कष्ट दिए सुख नहीं मिल सकता । इन पाँचों के नाम क्रमश पार, सुपार, पारापार, अनुत्तमांभ और उत्तमाभ हैं ।

इन नौ प्रकार की तुष्टियों के विपर्यय से बुद्धि की अशक्ति उत्पन्न होती है । वि० दे० 'अशक्ति' ।

३ कंस के आठ भाइयों में से एक ।

तुष्टु—संज्ञा पुं० [सं०] कान में पहनने का एक गहना । कर्णमणि [को०] ।

तुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

तुस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुष' ।

तुसाँदे⑤—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—रहें दा तुसांदे ख्याल कछु ना कहैंदा है ।—नट०, पृ० ६३ ।

तुसाडी⑤†—सर्व० [पं०] आपकी । उ०—की की खूबी कहै तुसाडी हो हो हो हो होरी है ।—घनानंद, पृ० १७६ ।

तुसार—संज्ञा पुं० [सं० तुषार] 'तुषार' । उ०—पूस मास तुसार आयो कपि जाइ जनाइया ।—गुलाल०, पृ० ८४ ।

तुसी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुष] अन्न के ऊपर का छिलका । भुसी । उ०—ऐसी को ठाली बैठी है तोसो मूँड़ पिरावै । झूठी बात तुसी सी बिनु कन फटकत हाथ न आवै ।—सूर (शब्द०) ।

तुस्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धूल । गद । २ भूसी [को०] ।

तुस्स⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुष' । उ०—सत्य असत्य कहो कब एकै कूटन तुस्स निकारो ।—राम० धर्म०, पृ० १७५ ।

तुहु⑤—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम' । उ०—जो तुहु मिलहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ।—मानस, १ । ८१ ।

तुहफा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोहफा' । उ०—तुहफे, घूस और चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७६ ।

तुहमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तोहमत' ।

तुहारा†—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा' ।

तुहाले⑤—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारे' । उ०—जग में राम तुहाले जोड़, हुवो न कोई फेर हुवै ।—रघु० रू०, पृ० १६ ।

तुहिं⑤†—सर्व० [हिं० तू + हि (प्रत्य०)] तुझको ।

तुहिन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाला । कुहरा । तुषार । २ हिम । बरफ । ३ चंद्रतेज । चाँदनी । ४. शीतलता । ठढक । ५. कपूर (को०) । ६. ओस (को०) ।

तुहिनकण—संज्ञा पुं० [सं०] ओसकण । तुषार [को०] ।

तुहिनकर—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ कपूर [को०] ।

तुहिनकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—समाचार सुनि तुहिनगिरि गवनें तुरत निकेत ।—मानस, १ ।६७ ।

तुहिनगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २ कपूर [को०] ।

तुहिनद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ कपूर [को०] ।

तुहिनरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ कपूर [को०] ।

तुहिनरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ कपूर [को०] ।

तुहिनशैल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुहिनशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बरफ का टुकड़ा । बरफ ।

तुहिनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २. कपूर ।

तुहिनाचल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—गए सकल तुहिनाचल गेहा । गावहिं मंगल सहित सनेहा ।—मानस, १ । ९४ ।

तुहिनाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुही⑤—सर्व० [हिं०] दे० 'तुहिं' । उ०—आप को साफ कर तुहीं साँई ।—केशव० अमी०, पृ० ९ ।

तुम्हें†—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हें' ।

तूँ—सर्व० [सं० त्वम्] दे० 'तू' ।

तूँअर⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर' । उ०—अनंगपाल तूँअर तहाँ दिली बसाई आनि ।—पृ० रा०, १।५७० ।

तूँगा⑤—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] फौज का समूह । उ०—तूँगा दरवाजा लगे, पूगा पुरा प्रवेस ।—रा० रू०, पृ० २६७ ।

तूँगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पृथ्वी । भूमि । २. नाव । नौका ।

तूँब⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा' । उ०—जुग तूँबन की बीन परम सोभित मन भाई ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४१७ ।

तूँबड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा' ।

तूँबना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तूमना'।

तूँबा—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] १ कड़ुआ गोल कद्दू। कड़ुआ गोल घीया। तितलौकी। उ०—मन पवन दुइ तूँबा करिहो जुग जुग सारद साजो।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२६।

विशेष—इस कद्दू को खोखला करके कई कामों में लाते हैं, बरतन बनाते हैं, सितार आदि बाजों में ध्वनिकोश बनाने के लिये लगाते हैं आदि।

२ कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन जिसे प्राय साधु अपने साथ रखते हैं। कमंडल।

तूँबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तूँबा] १ कड़ुआ गोल कद्दू। २ कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन।

मुहा०—तूँबी लगाना = वात से पीड़ित या सूजे हुए स्थान पर रक्त या वायु को खींचने के लिये तूँबी का व्यवहार करना।

विशेष—तूँबी के भीतर एक बत्ती जलाकर रख दी जाती है जिससे भीतर की वायु हलकी पड़ जाती है। फिर जिस अंग पर उसे लगाना होता है, उसपर आटे की एक पतली लोई रख कर उसके ऊपर तूँबी उलटकर रख देते हैं जिससे उस अंग के भीतर की वायु तूँबी में खिंच आती है। यदि कुछ रक्त भी निकालना होता है, तो उस स्थान को जिसपर तूँबी लगानी होती है, नश्तर से पाछ देते हैं।

तू¹—सर्व० [सं० त्वम्] एक सर्वनाम जो उस पुरुष के लिये आता है जिसे संबोधन करके कुछ कहा जाता है। मध्यमपुरुष एक वचन सर्वनाम। जैसे,—तू यहाँ से चला जा।

विशेष—यह शब्द अशिष्ट समझा जाता है, अत इसका व्यवहार बड़ों और बराबरवालों के लिये नहीं होता, छोटों या नीचों के लिये होता है। परमात्मा के लिये भी 'तू' का प्रयोग होता है।

मुहा०—तू तड़ाक, तू तुकार, तू तू मैं मैं करना = कहा सुनी करना। अशिष्ट शब्दों में विवाद करना। गाली गलौज करना। कुवाक्य कहना।

यौ०—तू तुकार = अशिष्ट विवाद। कहा सुनी। कुवाक्य। उ०—प्रत्यक्ष धिक्कार और तू तुकार की मुसलाधार वृष्टि होती।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २९८।

तू²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कुत्तों को बुलाने का शब्द। जैसे—'आव तू तू ...'। उ०—दुर दुर करै तो बाहिरे, तू तू करै तो जाय।—कबीर सा० स०, पृ० २१।

तूख—संज्ञा पुं० [सं० तुष = तिनका] का वह टुकड़ा जिसे गोदकर दोना बनाते हैं। सींक। खरका। उ०—छ्वावति न छाँह, छुए नाहक ही 'नाहीं' कहि, नाह गल माहँ बाहँ मेलै सुखरूख सी। तीखी दीठि तूख सी, पतूख सी, अरुरि अंग, ऊख सी मरूरि मुख लागति महूख सी।—देव (शब्द०)।

तूछा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तुच्छ'। उ०—बलधी बादसाही सील बाही तेग तूछा।—शिखर०, पृ०२०।

तूझ(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुझ'। उ०—दीनानाथ तूझ बिन दुख री किणनै जाय पुकार कहाँ।—रघु० रू०, पृ०९८।

तूटना—क्रि० अ० [सं० त्रुट] 'टूटना'। उ०—तुटैं तूट बाहैं। दतै दत मौंह।—पृ० रा०, ७। १२०।

तूठना(पु)¹—क्रि० अ० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट्ठ] तुष्ट होना। संतुष्ट होना। तृप्त होना। अघाना। उ०—राधे व्रजनिधि मीत पै हित के हाथन तूठि।—व्रज० ग्रं०, पृ० १७। २. प्रसन्न होना। राजी होना।

तूठना(पु)²—क्रि० स० प्रसन्न करना। संतुष्ट करना।

तूण—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीर रखने का चोंगा। तरकश।

यौ०—तूणधर, तूणधार = धनुर्धर।

२ धामक नामक वृत्त का नाम।

तूणक्ष्वेड—संज्ञा पुं० [सं०] वाण। तीर।

तूणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूणीर। तरकश (को०)।

तूणी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरकश। निषंग। २ नील का पौधा। ३ एक वातरोग जिसमें मूत्राशय के पास से दर्द उठता है और गुदा और पेड़ू तक फैलता है।

तूणी²—वि० [सं० तूणिन्] तूणधारी। जो तरकश लिए हो।

तूणी³—संज्ञा पुं० [सं० तूणीक ?] तुन का पेड़।

तूणीक—संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़।

तूणीर—संज्ञा पुं० [सं०] तूण। निषंग। तरकश।

तूत—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक पेड़ जिसके फल खाए जाते हैं।

विशेष—यह पेड मझोले आकार का होता है। इसके पत्ते फालसे के पत्तों से मिलते जुलते, पर कुछ लंबोतरे और मोटे दल के होते हैं। किसी किसी के सिरे पर फाँकें भी कटी होती हैं। फूल मंजरी के रूप में लगते हैं जिनसे आगे चलकर कीड़ों की तरह लंबे लंबे फल होते हैं। इन फलों के ऊपर महीन दाने होते हैं जिनपर रोइयाँ सी होती हैं। इनके कारण फलों की आकृति और भी कीड़ों की सी जान पड़ती है। फलों के भेद से तूत कई प्रकार के होते हैं, किसी के फल छोटे और गोल, किसी के लंबे किसी के हरे, किसी के लाल या काले होते हैं। मीठी जाति के बड़े तूत को शहतूत कहते हैं। तूत योरप और एशिया के अनेक भागों में होता है। भारतवर्ष में भी तूत के पेड प्राय सर्वत्र—काश्मीर से सिक्किम तक—पाए जाते हैं। अनेक स्थानों में, विशेषत पंजाब और काश्मीर में, तूत के पेड़ों की पत्तियों पर रेशम के कीडे पाले जाते हैं। रेशम के कीडे उनकी पत्तियाँ खाते हैं। तूत की लकडी भी वजनी और मजबूत होती है और खेती तथा सजावट के सामान, नाँव आदि बनाने के काम आती है। तूत शिशिर ऋतु में पत्ते झाडता है और चैत तक फूलता है। इसके फल असाढ़ में पक जाते हैं।

तूतड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुतुही'।

मुहा०—तूतड़ी का सा मुँह निकल आना = (१) चेहरे पर दुर्बलता की प्रतीति होना। (२) लज्जित होना। उ०—एक-तूतड़ी का सा मुँह निकल आया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०९।

तूतिया—संज्ञा पुं० [सं० तुत्थ] नीला थोथा।

तूती—[फ़ा०] १ छोटी जाति का शुक या तोता जिसकी चोंच

पीली, गरदन बैंगनी और पर हरे होते हैं। उ०—के वाँ से वर्जा आई तूती के पास।—दक्खिनी०, पृ० ८५। २. कनेरी नाम की छोटी सुंदर चिड़िया जो कनारी द्वीप से आती है और बहुत अच्छा बोलती है। इसे लोग पिंजरों में पालते हैं। ३. मटमैले रंग की एक छोटी चिड़िया जो बहुत सुंदर बोलती है।

विशेष—(१) इसे लोग पिंजरों में पालते हैं। जाड़े में यह सारे भारत में पाई जाती है, पर गरमी में उत्तर काश्मीर, तुर्किस्तान आदि की ओर चली जाती है। यह घास फूस से कटोरे के आकार का घोंसला बनाकर रहती है।

विशेष—(२) उर्दू में तूती शब्द का प्रयोग पुंलिंगवत् होता है।

मुहा०—तूती का पढ़ना = तूती का मीठे सुर में बोलना। किसी की तूती बोलना = किसी की खूब चलती होना। किसी का खूब प्रभाव जमना। नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है = (१) बहुत भीड़ भाड़ या शोरगुल में कही हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटों की बात कोई नहीं सुनता।

४ मुँह से बजाने का एक प्रकार का बाजा। ५ मिट्टी की छोटी टोंटीदार घरिया जिससे लड़के खेलते हैं।

तूद¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूत'।

तूद²—संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का पेड़ (को०)।

तूद³—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'तूदा' (को०)।

तूदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तूदह्] १ ढेर। ढेरी। राशि। २ सीमा का चिह्न। हदबंदी। ३ मिट्टी का वह टीला जिसपर तीर, बंदूक आदि से निशाना लगाना सीखा जाता है। ४ पुश्ता। टीला (को०)। ५ वह दीवार जिसपर बैठकर तीरंदाज निशाना लगाते हैं (को०)। ६ वह टीला जिसपर चाँदमारी का अभ्यास किया जाता है (को०)।

तून¹—संज्ञा पुं० [सं० तुन्नक] १ तुन का पेड़। वि० दे० 'तुन'। २ तूल नाम का लाल कपड़ा।

तून(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० तूण] दे० 'तूण'।

तून(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूण'। उ०—तू न लखति कसि तून कटि सजि प्रसून धनु बान।—स० सप्तक, पृ० ३८४।

तूना—क्रि० अ० [हिं० चूना] १. चूना। टपकना। २ खड़ा न रह सकना। गिरना। ३ गर्भपात होना। गर्भ गिरना।

विशेष—दे० 'तुमना'।

तूनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मूत्राशय और पक्वाशय में उठनेवाली पीड़ा। उ०—स्त्री पुरुषों के गुह्य स्थल में पीड़ा करे उस रोग को तूनी कहते हैं।—माधव०, पृ० १४४।

तूनीर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूणीर'। उ०—उपासंग तूनीर पुनि इषुधी तून निषंग।—अनेकार्थ०, पृ० ३६।

तूफान—संज्ञा पुं० [अ० तूफ़ान] १ डुबानेवाली बाढ़। २ वायु के वेग का उपद्रव। ऐसा अंधड़ जिसमें खूब धूल उठे, पानी बरसे, बादल गरजें तथा इसी प्रकार के और उत्पात हों। आँधी।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।

३. आपत्ति। ईति। प्रलय। आफत। ४ हल्लागुल्ला। वावैला। ५ झगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव। दंगा फसाद। हलचल। जैसे,—थोड़ी सी बात के लिये इतना तूफान खड़ा करने की क्या जरूरत ?।

क्रि० प्र०—उठना।—खड़ा करना।

६ ऐसा कलंक या दोषारोपण जिससे कोई भारी उपद्रव खड़ा हो। झूठा दोषारोपण। तोहमत।

क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।

मुहा०—तूफान जोड़ना या बाँधना = झूठा कलंक लगाना। झूठा दोषारोपण करना। तूफान बनाना = दे० 'तूफान जोड़ना'।

तूफानी—वि० [फ़ा० तूफ़ानी] १ तूफान खड़ा करनेवाला। ऊधमी। उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। फसादी। २ झूठा कलंक लगानेवाला। तोहमत जोड़नेवाला। ३ उग्र। प्रचंड। प्रबल।

तूबा(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] स्वर्ग का एक वृक्ष जिसके फल परम स्वादिष्ट माने जाते हैं। उ०—और तूबा वृक्ष तथा कल्पवृक्षों की बड़ी सुगंधि आती थी।—कबीर मं०, पृ० २१२।

तूम†—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम'। उ०—तब वह लरिकिनी वा ब्रजवासी के ढिग आयकै पूछयो, जो तूम कौन हो ?—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ३८।

तूमड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे० तूंबा + ड़ी (प्रत्य०)] १ तूँबी। २. तूँबी का बना हुआ एक प्रकार का बाजा जिसे सँपेरे बजाया करते हैं।

विशेष—तूँबी का पतला सिरा थोड़ी दूर से काट देते हैं। और नीचे की ओर एक छेद करके उसमें दो जीभियाँ दो पतली नलियों में लगाकर डाल देते हैं और छेद को मोम से बंद कर देते हैं। नलियों का कुछ भाग बाहर निकला रहता है। एक नली में स्वर निकालने के सात छेद बनाते हैं जिनपर बजाते वक्त उँगलियाँ रखते जाते हैं।

तमतड़ाक—संज्ञा स्त्री [फ़ा० तमतराक़] १ तड़क भड़क। शान शौकत। आन बान। २. ठसक। बनावट।

तूम तनाना—संज्ञा पुं० [अनु०] अधिक आलाप। स्वर को अत्यधिक खींचने की क्रिया। उ०—सब्र करो, होली के दिन तुम्हारी नजर दिला दूँगा, मगर भाई, इतना याद रखो कि वहाँ पक्का गाना गाया और निकाले गए। तूम तनाना की धुन मत बाँध देना।—काया०, पृ० २६५।

तूमना—क्रि० स० [सं० स्तोम (= ढेर) + ना (प्रत्य०)] १ रुई आदि के जमे हुए लच्छों को नोच नोचकर छुड़ाना। उँगली से रुई इस प्रकार खींचना कि उसके रेशे अलग अलग हो जायँ। रुई के गाले के सटे हुए रेशों को कुछ अलग अलग करना। उधेड़ना। बिथुरना। २ धज्जी धज्जी करना। उ०—सदियों का दैन्य तमिस्र तूम, धुन तुमने काते प्रकाश सूत।—युगांत, पृ० ५४। ३ मलना। दलना। ४. बात का उधेड़ना। रहस्य खोलना। सब भेद प्रकट करना।

तूमर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बा] दे० 'तूँबा'। उ०—ताखो और तिलक साव सेल्ही और तूमर माल।—बीजा० ग्रं०, पृ० ५६।

तूमरी(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तूमड़ी'। उ०—सीस जय कर तूमरी, लिये बुल्लि कर बीय।—प० रासो पृ० ७०।

तूमा(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुम्बक] दे॰ 'तूँबा'। उ०—तूमा तीन भारती बनायो चौथे नीर भरि हाथ लगायो।—गुलाल०, पृ० ५७।

तूमार—संज्ञा पुं॰ [अ॰] बात का व्यर्थ विस्तार। बात का बतंगड़।

क्रि॰ प्र०—बाँधना।

तूमिया सूत—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तूमना + सूत] एक महीन कता हुआ सूत। ऐसा सूत जो तूमी हुई रूई से काता गया हो।

तूया—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] काली सरसों।

तूर¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ एक प्रकार का बाजा। नगाड़ा। उ०—तोरन तोरन तूर बजे बर भावत भाँतिन गावति ठाढ़ी।—केशव (शब्द०)। २ तुरही नाम का बाजा। सिंघा।

तूर²—वि॰ शीघ्रता करनेवाला। जल्दबाज [को॰]।

तूर³—संज्ञा पुं॰ हरकारा [को॰]।

तूर⁴—संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ तूल (= लंबाई)] १ गज डेढ़ गज लंबी एक लकड़ी जो जुलाहों के करघे में लगी रहती है और जिसमें तानी लपेटी जाती है। इसके दोनों सिरों पर दो चूर और चार छेद होते हैं। २ वह रस्सी जिसे जनानी पालकी के चारों ओर इसलिये बाँधते हैं जिसमें परदा हवा से उड़ने न पावे। चौबंदी।

तूर⁵—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुवरी] अरहर।

तूर⁶—संज्ञा पुं॰ [अ॰] शाम या सीरिया का एक पहाड़ जिसपर हजरत मूसा ने ईश्वर का जलवा देखा था।

यौ०—कोह तूर = तूर नामक पहाड़।

तूरज(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तूर्य] दे॰ 'तूर्य'।

तूरण(पु)—क्रि॰ वि॰ [सं॰ तूर्ण] दे॰ 'तूर्ण'।

तूरत—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का पक्षी।

तूरन(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तूर्ण] दे॰ 'तूर्ण'। उ०—नंददास की कृति अपूरन। भक्ति मुक्ति पावै सोइ तूरन।—नंद० ग्रं०, पृ० २१५।

तूरना¹—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार की चिड़िया।

तूरना²—क्रि॰ स॰ [हिं॰] दे॰ 'तोड़ना'। उ०—प्रभु सतावन हैं जग को है कठोर महा सबको मद तूरत।—शंभु (शब्द)।

तूरना³—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तूर] तुरही। उ०—ताकत सराध कै विवाह कै उछाह कछू डोलि लोल बूझत सबद ढोल तूरना।—तुलसी (शब्द०)।

तूरा¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वेग। गति [को॰]।

तूरा²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तूर] तुरही नाम का बाजा। उ०—निसि दिन बाजहिं मादर तूरा। रहस कूद सब भरे सेंदूरा।—जायसी (शब्द०)।

तूरान—संज्ञा पुं॰ [फा॰] फारस के उत्तरपूर्व पड़नेवाला मध्य एशिया का सारा भूभाग जो तुर्क, तातारी, मुगल आदि जातियों का निवासस्थान है। हिमालय के उत्तर अल्टाई पर्वत का प्रदेश।

विशेष—फारस या ईरानवालों का तूरानियों के साथ बहुत प्राचीन काल से झगड़ा चला आता था। यह तूरानी जाति वही थी जिसे भारतवासी शक कहते थे। अफरासियाब नामक तूरानी बादशाह से ईरानियों का युद्ध होना प्रसिद्ध है। प्राचीन तूरानी अग्नि की उपासना करते थे और पशुओं की बलि चढ़ाते थे। ये आर्यों की अपेक्षा असभ्य थे। इनके उत्पातों से एक बार सारा युरोप और एशिया तंग था। चंगेज खाँ, तैमूर, उसमान आदि इसी तूरानी जाति के अंतर्गत थे।

तूरानी¹—वि॰ [फा॰] तूरान देश का। तूरान संबंधी।

तूरानी²—संज्ञा पुं॰ तूरान देश का निवासी।

तूरि—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तूर] दे॰ 'तूरि'। उ०—सुनो प्रयाण के विषाण तूरि भेरि बज उठे।—युगपथ, पृ० ८८।

तूरी¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धतूरे का पेड़।

तूरी²—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तूर] तूर्य। तुरही।

तूरू(पु)—संज्ञा पुं॰[हिं॰]दे॰ 'तूर'। उ०—जस मारइ कँह बाजा तूरू। सूरी देखि हँसा मसूरू।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३९५।

तूर्ण¹—क्रि॰ वि॰[सं॰]शीघ्र। जल्दी। तुरत। उ०—तू तूर्ण और हो पूर्ण सफल, नव नवोर्मियों के पार उतर।—गीतिका, पृ० ७।

तूर्ण²—वि॰ फुर्तीला। वेगवान् [को॰]।

तूर्ण³—संज्ञा पुं॰ त्वरण। वेग। फुर्ती [को॰]।

तूर्णक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे त्वरितक भी कहते हैं।

तूर्णि¹—वि॰ [सं॰] फुर्तीला। तेज [को॰]।

तूर्णि²—संज्ञा स्त्री॰ वेग। गति [को॰]।

तूर्त¹—क्रि॰ वि॰ [सं॰] तुरत। तत्काल। शीघ्र।

तूर्त²—वि॰ फुर्तीला। तेज [को॰]।

तूर्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ तुरही। सिंघा। २ मृदंग (को॰)।

तूर्यओघ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वाद्यवृंद [को॰]।

तूर्यखंड, तूर्यगंड—संज्ञा [सं॰ तूर्यखण्ड, तूर्यगण्ड] एक प्रकार का मृदंग [को॰]।

तूर्यमय—वि॰ [सं॰] संगीतात्मक [को॰]।

तूर्व—क्रि॰ वि॰ [सं॰] तुरत। शीघ्र।

तूर्वयाण—वि॰ [सं॰] १. फुर्तीला। वेग। २. विजेता। ३. सर्वोच्च। श्रेष्ठ [को॰]।

तूर्वि—वि॰ [सं॰] तूर्वयाण [को॰]।

तूल¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. आकाश। २ तूत का पेड़। शहतूत। ३ कपास, मदार, सेमर आदि के डोडे के भीतर का घूआ। रूई। उ०। उ०—(क) जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) व्याकुल फिरत भवन बन जहँ तहँ तूल आक उधराई।—सूर (शब्द०)। ४ घास या तृण का सिरा (को॰)। ५ फूल या पौधों का गुल्म (को॰)। ६ धतूरा (को॰)।

तूल²—संज्ञा पुं॰[हिं॰ तुन = एक पेड़ जिसके फूलों से कपड़े रँगते हैं।]

हैं। १. सूती कपड़ा जो, चटकीले लाल रंग का होता है। २. गहरा लाल रंग।

तूल(पु)³—वि० [सं० तुल्य] तुल्य। समान। उ०—तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय सम तूल।—तुलसी (शब्द०)।

तूल⁴—संज्ञा पुं० [अ०] १ लंबेपन का विस्तार। लंबाई। दीर्घता। यौ०—तूल अर्ज=लंबाई और चौड़ाई। तूल तवील=लंबा चौड़ा। विस्तृत।

मुहा०—तूल खींचना=किसी बात या कार्य का आवश्यकता से बहुत बढ़ाना। जैसे—(क) व्याह का काम बहुत तूल खींच रहा है। (ख) उन लोगों का झगड़ा बहुत तूल खींच रहा है। तूल देना=किसी बात को आवश्यकता से बहुत बढ़ाना। जैसे,—हर एक बात को तूल देने की तुम्हारी आदत है। उ०—अफसरों ने कहा खुदा के लिये बातों को तूल न दो। —फिसाना, भा० ३, पृ० १७६। तूल पकड़ना=दे० 'तूल-खींचना'।

२ विलंब। देर। तवालत (को०)। ३ ढेर (को०)।

तूलक—संज्ञा पुं० [सं०] रूई [को०]।

तूलकार्मुक, तूलचाप, तूलधनुष—संज्ञा पुं० [सं०] धुनकी [को०]।

तूलत—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] जहाज की रेलिंग या कटहरे की छड़ में लगी हुई एक खूँटी जिसमें किसी उतारे जानेवाले भारी बोझ में बँधी रस्सी इसलिये अटका दी जाती है जिसमे बोझ धीरे धीरे नीचे जाय, एक दम से न गिर पड़े।—(लश०)।

तूलतवील—वि० [अ०] बहुत लंबा। उ०—बेगम—अजी तूल तवील किस्सा है कोई कहाँ तक बयान करें।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ७२।

तूलता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुल्यता] समता। बराबरी।

तूलना¹—क्रि० स० [हिं० तुलना] १ धुरी मे तेल देने के लिये पहिए को निकालकर गाड़ी को किसी लकड़ी के सहारे पर ठहराना। २ पहिए की धुरी में तेल या चिकना देना।

तूलना(पु)²—क्रि० अ० [हिं० तुलना] तुल्य होना। तुलित होना। उ०—सु मध्य सीस फूलयं, दिनेस तेज तुलयं।—ह० रासो, पृ० २४।

तूलनालिका, तूलनाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूनी [को०]।

तूलपटिका, तूलपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजाई [को०]।

तूलपिचु—संज्ञा पुं० [सं०] रुई [को०]।

तूलफजूल—संज्ञा पुं० [अ० तूल+फुजूल] व्यर्थ विवाद। अनावश्यक झंझट। उ०—यदि बिना तूलफजूल किए ही जमीन नकदी हो रही है तो सोशलिस्ट पार्टी में जाने की क्या जरूरत है। —मैला०, पृ० १५३।

तूलमतूल—क्रि० वि० [सं० तुल्य या अ० तूल (=लंबाई)] आमने सामने। बराबरी पर। उ०—कंत पियारे भेट देखौ तूलम तूल होइ। भए बयस दुइ हेंठ मुहमद निति सरवरि करैं।—जायसी (शब्द०)।

तूलवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील।

तूलवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तूलशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का बीज। बिनौला।

तूलसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] रुई से सूत कातने का काम।

तूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कपास। २ दिए की बत्ती [को०]।

तूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूलिका [को०]।

तूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चित्रकारों की कूँची जिससे वे रंग भरते हैं। तसवीर बनानेवालों की कलम। २. रूई की बत्ती (को०)। ३ रूई का गद्दा (को०)। ४ बरमा (को०)। ५ धातु का साँचा (को०)।

तूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मणकंद। २ सेमर का पेड़।

तूलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का पेड़।

तूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नील का वृक्ष या पौधा। २. रंग भरने की कूँची। ३ लकड़ी का एक औजार जिसमें कूँची के रूप मे खड़े खड़े रेशे जमाए रहते हैं और जिससे जुलाहे फैलाया हुआ सूत बैठाते हैं। जुलाहों की कूँची। ४. दिए की बत्ती या बाती (को०)।

तूव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा'। उ०—कटि केस बेस मनु उई दूव। कट मुड़ परे ज्यों बेलि तूव।—सुजान०, पृ० २२।

तूवर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुवरक'।

तूवरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठूँडा बैल। बिना सींग का बैल। २ बिना दाढ़ी मोंछ का मनुष्य। हिजड़ा। ३ कषाय रस। कसैला रस। ४ अरहर।

तूवरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरहर। २. गोपीचंदन।

तूवरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तूवरिका'।

तूष—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े का किनारा [को०]।

तूष्णी¹—वि० [सं० तूष्णीम् (अव्य०)] मौन। चुप।

तूष्णी²—संज्ञा स्त्री० मौन। खामोशी। चुप्पी। उ०—वंचकता, अपमान, अमान, अलाभ भुजंग भयानक तुष्णी।—केशव (शब्द०)।

तूष्णी³—क्रि० वि० चुपचाप। बिना बोले हुए [को०]।

तूष्णीक—वि० [सं०] मौनावलंबी। मौन साधनेवाला।

तूष्णीदंड—संज्ञा पुं० [सं० तूष्णीदण्ड] ऐसा दंड जो गुप्त रूप से दिया जाय [को०]।

तूष्णीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] मौनभाव। चुप्पी [को०]।

तूष्णी युद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य कथित वह युद्ध जिसमे षड्यंत्र के द्वारा शत्रु के मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लिया जाय।

तूष्णीशील—संज्ञा पुं० [सं०] चुप रहनेवाला। चुप्पा। बहुत कम बोलनेवाला [को०]।

तूस¹—संज्ञा पुं० [सं० तुष] भूसी। भूसा। उ०—जे दिन चीन रे तिहूँ ते बढ़ित ते सब सुर्पित नभ न तूस।—अकबरी०, पृ० ३१८।

तूस[2]—संज्ञा पुं० [तिब्बती थोश] [वि० तूसी] १. एक प्रकार का बहुत उत्तम ऊन जो हिमालय पर काश्मीर से लेकर नैपाल तक पाई जानेवाली एक पहाड़ी बकरी के शरीर पर होता है। पशम। पशमीना। उ०—तूस तुराई में दुरे दुरो जाय न त्यागि।—राम० धर्म०, पृ० २३४।

विशेष—यह पहाड़ी बकरी हिमालय पर बहुत ऊँचाई तक, बर्फ के निकट तक, पाई जाती है। यह ठंडे से ठंढे स्थानों मे रह सकती है और काश्मीर से लेकर मध्य एशिया में अलटाई पर्वत तक मिलती है। इसके शरीर पर घने मुलायम रोमों की बड़ी मोटी तह होती है जिसके भीतरी ऊन को काश्मीर में असली तूस या पशम कहते हैं। यह दुशालों में दिया जाता है। खालिस तूस का भी शाल बनता है जिसे तूसी कहते हैं। ऊपर के ऊन या रोएँ से या तो रस्सियाँ बटी जाती हैं या पट्टू नाम का कपड़ा बुना जाता है। तूसवाली बकरियाँ लद्दाख मे जाडे के दिनों में बहुत उतरती हैं और मारी जाती हैं।

२ तूस के ऊन का जमाया हुआ कबल या नमदा।

तूस(पु)[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] भय। त्रास। उ०—अधम नीत भूसे अडर, त्रिविध कुकवि विण तूस।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ७८।

तूसदान—संज्ञा पुं० [पुर्त० कारट्रश + दान (प्रत्य०)] कारतूस।

तूसना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० तुष्ट] १ सतुष्ट करना। तृप्त करना। २. प्रसन्न करना।

तूसना[2]—क्रि० अ० संतुष्ट होना।

तूसा—संज्ञा पुं० [सं० तुष] चोकर। भूसी।

तूसी[1]—वि० [हिं० तूस] तूस के रग का। स्लेट या करज के रग का करजई।

तूसी[2]—संज्ञा पुं० एक रग जो करज या स्लेट के रग की तरह का होता है।

विशेष—यह रग हड़, माजूफल और कसीस से बनता है।

तूस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ धूल। रेणु। रज। २ अणु। कणिका। ३ जटा। ४. पाप। धनुष। ५. पाप (को०)।

तृढ—वि० [सं० तृण्ढ] १. आहत। २ दुःखी। ३ मारा हुआ। निहत [को०]।

तृहण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आघात, कष्ट या दुःख देना। २. वध [को०]।

तृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप ऋषि।

तृक्षाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तृक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं०] जातीफल। जायफल।

तृखा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] दे० 'तृषा'।

तृखावंत—वि० [सं० तृषा, हिं० तृखा + वंत] दे० 'तृषावंत'। उ०—जैसे भूखे प्रीत अनाज, तृखावत जल सेती काज।—दक्खिनी०, पृ० ४४।

तृगुनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिगुण + ता (प्रत्य०)] दे० 'त्रिगुणता'।

उ०—तन परिहरि मन दै तुव पद है लोक तृगुनता छीनी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५८१।

तृच—संज्ञा पुं० [सं०] तीन छंदोंवाला पद्य [को०]।

तृजग—वि० [सं० तिर्यक्] दे० 'तिर्यक्'। उ०—तृजग जोनि गत गीध जनम भरि खरि खाइ कुजतु जियो हौं।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—तृजग जोनि = तिर्यक् योनि।

तृण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह उद्भिद् जिसकी पेडी या कांड में छिलके और हीर का भेद नही होता और जिसकी पत्तियों के भीतर केवल समानांतर (प्राय लंबाई के बल) नसें होती हैं, जाल की तरह बुनी हुई नहीं। जैसे, दूब, कुश, सरपत, मूँज, बाँस, ताड़ इत्यादि। घास। उ०—ऊसर बरसे तृण नहि जामा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—तृण की पेड़ी या कांडो के तंतु इस प्रकार सीधे क्रम से नहीं बैठे रहते कि उनके द्वारा मंडलातर्गत मंडल बनते जायँ, बल्कि वे बिना किसी क्रम के इधर उधर तिरछे होकर ऊपर की ओर गए रहते हैं। अधिकांश तृणों के कांडों में प्राय गाँठें थोड़ी थोड़ी दूर पर होती हैं और इन गाँठों के बीच का स्थान कुछ पोला होता है। पत्तियाँ अपने मूल के पास डठल को खोली की तरह लपेटे रहती हैं। पृथ्वी का अधिकांश तल छोटे तृणों द्वारा आच्छादित रहता है। अर्क-प्रकाश नामक वैद्यक ग्रंथ मे तृणगण के अंतर्गत तीन प्रकार के बाँस, कुश, काँस, तीन प्रकार की दूब, गाँडर, नरकट, गूँदी, मूँज, डाभ, मोथा इत्यादि माने गए हैं।

मुहा०—तृण गहना या पकड़ना = हीनता प्रकट करना। गिड़-गिड़ाना। तृण गहाना या पकड़ाना = नम्र करना। विनीत करना। वशीभूत करना। उ०—कहो तो ताको तृण गहाय कै जीवत पायन पारौं।—सूर (शब्द०)। (किसी वस्तु पर) तृण टूटना = किसी वस्तु का इतना सुंदर होना कि उसे नजर से बचाने के लिये उपाय करना पड़े। उ०—आजु की बानिक पै तृण टूटत है कहीं न जाय कछु स्याम तोहि रत।—स्वा० हरिदास (शब्द०)।

विशेष—स्त्रियाँ बच्चे पर से नजर का प्रभाव दूर करने के लिये टोटके की तरह पर तिनका तोड़ती हैं।

तृणवत् = तिनके बराबर। अत्यत तुच्छ। कुछ भी नहीं। तृण बराबर या समान = दे० 'तृणवत्'। उ०—अस कहि चला महा अभिमानी। तृण समान सुग्रीवहि जानी।—तुलसी (शब्द०)। तृण तोडना = किसी सुंदर वस्तु को देख उसे नजर से बचने के लिये उपाय करना। उ०—(क) गाथे महामनि मोर मजुल अग सब तृण तोरहीं।—तुलसी (शब्द०) (ख) स्याम गौर सुदर दोउ जोरी। निरखत छबि जननी तृण तोरी।—तुलसी (शब्द०)। (किसी से) तृण तोड़ना = संबंध तोड़ना। नाता मिटाना। उ०—भुजा छुड़ाइ तोरि तृण ज्यों हित करि प्रभु निठुर हियो।—सूर (शब्द०)।

२ तिनका (को०)। ३ खर पात (को०)।

तृणाक—संज्ञा पुं० [सं०] घास की खराब पत्ती [को०]।

तृणकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि।

तृणकांड—संज्ञा पुं० [सं० तृणकाण्ड] घास का ढेर [को०]।

तृणकोया—संज्ञा स्त्री० [सं०] घासवाली जमीन [को०]।

तृणकुंकुम—संज्ञा पुं० [सं० तृणकुङ्कुम] एक सुगंधित घास। रोहित घास।

तृणकुटी, तृणकुटीर, तृणकुटीरक—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की बनी मड़ैया या झोपड़ी [को०]।

तृणकूट—संज्ञा पुं० [सं०] घास का ढेर [को०]।

तृणकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कूँची या छोटी झाड़ू [को०]।

तृणकूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गोल कद्दू।

तृणकेतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तीखुर।

तृणकेतु—संज्ञा पुं० दे० [सं०] 'तृणकेतुक'।

तृणकेतुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस। २ ताड़ का पेड़।

तृणगोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गिरगिट [को०]।

तृणगौर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तृणकुंकुम' [को०]।

तृणग्रंथी—संज्ञा स्त्री० [सं० तृणग्रन्थी] स्वर्णजीवंती।

तृणग्राही—संज्ञा पुं० [सं० तृणग्राहिन्] एक रत्न का नाम। नीलमणि।

तृणचर¹—वि० [सं०] तृण चरनेवाला (पशु)।

तृणचर²—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेदक मणि।

तृणजभा—वि०[सं० तृणजम्मन्]घास चरने योग्य। घास चरनेवाला। —संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

तृणजलायुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तृणजलोका'।

तृणजलौका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जोंक।

तृणजलौका न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] तृणजलौका के समान।

विशेष—इस वाक्य का प्रयोग नैयायिक लोग उस समय करते हैं उन्हें जब आत्मा के एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाने का दृष्टांत देना होता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जोंक जल में बहते हुए तिनके के अंत तक पहुँच जब दूसरा तिनका थाम लेती है, तब पहले को छोड़ देती है। इसी प्रकार आत्मा जब दूसरे शरीर में जाती है, तब पहले को छोड़ देती है।

तृणजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनस्पति जिसमें घास और शाक आदि गृहीत हैं [को०]।

तृणज्योतिस्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मती लता।

तृणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तृणवत्ता। निरर्थकता। २. धनुष [को०]।

तृणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताड़ का पेड़। २ सुपारी का पेड़। ३ खजूर का पेड़। ४. केतकी का पेड़। ५. नारियल का पेड़। ६. हिंताल।

तृणधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ तिन्नी का चावल। मुन्यन्न। तिन्नी का धान। २. सावाँ।

तृणध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँस। २. ताड़ का पेड़।

तृणनिंब—संज्ञा पुं० [सं० तृणनिम्ब] चिरायता।

तृणप—संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम।

तृणपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदर्भ नामक तृण।

तृणपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदर्भ नामक तृण [को०]।

तृणपीड़—संज्ञा पुं० [सं०तृणपीड] एक प्रकार की लड़ाई। हाथों के द्वारा लड़ाई।

तृणपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृणकेशर। २ ग्रंथिपर्णी। गठिवन।

तृणपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंदूरपुष्पी नामक घास।

तृणपूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गर्भपात [को०]।

तृणपूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] नरकट की चटाई [को०]।

तृणप्राय—वि० [सं०] तृणवत्। तिनके जैसा। तुच्छ [को०]।

तृणबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तृणबिन्दु] दे० 'तृणविंदु' [को०]।

तृणमत्कुण—संज्ञा पुं० [सं०] जमानत देनेवाला। जामिन [को०]।

तृणमणि—संज्ञा पुं० [सं०] तृण को आकर्षित करनेवाला मणि। कहरुबा।

तृणमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तृणमयी] घास का बना हुआ।

तृणराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर। २ ताड़। ३. नारियल।

तृणवत्—वि० [सं०] तिनके के समान। अत्यंत तुच्छ [को०]।

तृणविंदु—संज्ञा पुं० [सं० तृणविन्दु] एक ऋषि जो महाभारत के काल में थे और जिनसे पांडवों से वनवास की अवस्था में भेंट हुई थी।

तृणवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तृणद्रुम' [को०]।

तृणशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास का बिछौना। चटाई। साथरी।

तृणशाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताड़। २ बाँस का पेड़ [को०]।

तृणशीत—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोहिस घास जिसमें से नीबू की सी सुगंध आती है। २ जलपिप्पली।

तृणशीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंधित घास [को०]।

तृणशून्य¹—वि० [सं०] बिना तृण का। तृण से रहित।

तृणशून्य²—संज्ञा पुं० १ मल्लिका। २ केतकी।

तृणशूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

तृणशोषक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

तृणषट्पद—संज्ञा पुं० [सं०] बर्रे। ततैया [को०]।

तृणसंवाह—संज्ञा पुं० [सं०] पवन [को०]।

तृणसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली। केला।

तृणसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का सिंह। २ कुल्हाड़ी [को०]।

तृणस्पर्श परीषह—संज्ञा पुं० [सं०] दर्भादि कठोर तृणों को बिछाकर लेटने और उनके गड़ने की पीड़ा को सहने की क्रिया। (जैन)।

तृणहर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की झोपड़ी [को०]।

तृणांजन—संज्ञा पुं० [सं० तृणाञ्जन] एक प्रकार का गिरगिट [को०]।

तृणाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घास फूस की ऐसी आग जो जल्दी बुझ जाय। २. जल्दी बुझनेवाली आग। ३. घास फूस की आग से अपराधी को जलाकर दिया जानेवाला दंड [को०]।

तृणाढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का तृण जो औषध के काम में आता है। पर्व तृण। २ जंगल जो तृणबहुल हो (को०)।

तृणान्न—संज्ञा पुं० [सं०] तृणधान्य। तिन्नी [को०]।

तृणाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] लवण तृण। नोनिया। ग्रमलोनी।

तृणारणि न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] तृण और अरणी रूप स्वतंत्र कारणों के समान व्यवस्था।

विशेष—अग्नि के उत्पन्न होने में तृण और अरणी दोनो कारण तो हैं पर परस्पर निरपेक्ष अर्थात् अलग अलग कारण हैं। हैं। अरणी से आग उत्पन्न होने का कारण दूसरा है और तृण में आग लगने का कारण दूसरा।

तृणावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ चक्रवात। बवंडर। २ एक दैत्य का नाम।

विशेष—इसे कंस ने मथुरा से श्रीकृष्ण को मारने के लिये गोकुल भेजा था। यह चक्रवात (बवंडर) का रूप धारण करके आया था और बालक कृष्ण को ऊपर उड़ा ले गया था। कृष्ण ने ऊपर जाकर जब इसका गला दबाया तब यह गिरकर चूर चूर हो गया।

तृणेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० तृणेन्द्र] ताड़ का पेड़।

तृणेक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] वल्वजा। सागे बागे।

तृणोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] उखर्बल। ऊखल तृण।

तृणोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] मुन्यन्न। तिन्नी धान। पसही।

तृणोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास फूस की मशाल।

तृणौक—संज्ञा पुं० [सं० तृणौकस्] घास फूस की झोपड़ी [को०]।

तृणौषध—संज्ञा पुं० [सं०] एलुआ। एलुवालुक नामक गंधद्रव्य।

तृण्ण—वि० [सं०] १ काटा हुआ। २ कटा हुआ [को०]।

तृण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास या तिनकों का ढेर [को०]।

तृतिय(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृतीय'। उ०—तृतिय प्रतीप बखानहीं, तहँ कविकुल सिरमोर।—भूषण ग्रं०, पृ० ८।

तृतिया(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृतीया'। उ०—तृतिया अनुसयना कही, हौं न गई पछिताय।—मति० ग्रं०, पृ० २९०।

तृतीय¹—वि० [सं०] तीसरा।

तृतीय²—संज्ञा पुं० १ किसी वर्ग का तीसरा व्यंजन वर्ण। २ संगीत का एक मान।

तृतीयक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजार।

यौ०—तृतीयक ज्वर = तिजरा।

२ तीसरी बार होनेवाली स्थिति (को०)। ३ तीसरा क्रम (को०)।

तृतीयप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरुष और स्त्री के अतिरिक्त एक तीसरी प्रकृतिवाला। नपुंसक। क्लीव। हिजड़ा।

तृतीय सवन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निष्टोम आदि यज्ञों का तीसरा सवन जिसे साय सवन भी कहते हैं। दे० सवन'।

तृतीयांश—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा भाग।

तृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रत्येक पक्ष का तीसरा दिन। तीज। २ व्याकरण में करण कारक।

तृतीया तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] तत्पुरुष समास का एक भेद।

तृतीया नायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तृतीया + नायिका] नायिकाभेद के अनुसार अधमा या सामान्या नायिका। दे० 'नायिका'। उ०—वास्तव में पश्चिमीय सभ्यता अभी बाला और तृतीया नायिका वा वेश्या-वृत्ति-धारणी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५९।

तृतीयाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा आश्रम। वानप्रस्थ।

तृतीयी—वि० [सं० तृतीयिन्] १. तीसरे का हकदार। जिसे किसी संपत्ति का तृतीयांश पाने का स्वत्व हो (स्मृति)। २ तीसरी श्रेणी प्राप्त करनेवाला (को०)।

तृन¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तृण] दे० 'तृण'।

मुहा०—तृन सा गिनना = कुछ न समझना। तृन ओट पहार छपाना = (१) असंभव कार्य के लिये प्रयत्न करना। (२) निष्फल चेष्टा करना। उ०—मैं तृन सो गन्यो तीनहू लोकनि, तू तृन ओट पहार छपावै।—मति० ग्रं०, पृ० ४३४। तृन तोड़ना = दे० 'तृण तोड़ना'। उ०—झूलत में लोट पोट होत दोऊ रंग भरे निरखि छबि नंददास बलि बलि तृन तोरे।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७७।

तृन(पु)²—वि० [हिं०] दे० 'तीन'। उ०—तृन अग्र वृश्चिक के इलानंद। ससि बीस नंद अज अंस मंद।—हु० रासो, पृ० १४।

तृन जोंक(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० तृन + जोंक] तृणजलौका। दे० 'तृणजलौकान्याय'। उ०—ज्यों तृन जोंक तृनन अनुसरै। आगे गहि पाछे परिहरै।—नंद० ग्रं०, पृ० २२२।

तृनद्रुमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृणद्रुम'। उ०—ताल खजूरी, तृनद्रुमा, केतकि पकरति पाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०५।

तृनावर्त्त(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृणावर्त'। उ०—पुनि जब एक बरष को भयो। तृनावर्त उड़ि लै नभ गयो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१०।

तृपत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। २. छाता [को०]।

तृपतना(पु)—क्रि० अ० [सं० तृप्ति] तृप्त होना। संतुष्ट होना। अघाना। उ०—निरवधि मधु की धारा आहि। सु को जु तृपतै पीवत ताहि।—नंद० ग्रं०, पृ० २७९।

तृपता(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—दादू जब मुख माहैं मेलिये, सबही तृपता होइ।—दादू०, पृ० १८७।

तृपति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृप्ति'। उ०—भोजन करै तृपति सो होई। गुरु शिष्य भावै किन कोई।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३६।

तृपल¹—वि० [सं०] १ प्रसन्न। खुश। २ संतुष्ट। ३ बेचैन। व्याकुल [को०]।

पल[2]—संज्ञा पुं० उपल। पत्थर [को०]।

पला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लता। २ त्रिफला।

पित(पु)‡—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'।

प्त—वि० [सं०] १ तुष्ट। अघाया हुआ। जिसकी इच्छा पूरी हो गई हो। २. प्रसन्न। खुश।

प्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इच्छा पूरी होने से प्राप्त शांति और आनंद। संतोष। उ०—फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूने सदन अजान। तिहिं लालच कबहूँ कैसेहुँ तृप्ति न पावत प्रान। —सूर (शब्द०)। २ प्रसन्नता। खुशी।

प्पना(पु)—क्रि० स० [सं० तृप्ति] तृप्त करना। संतुष्ट करना। उ०—ज्वालनिय माल तृप्पय तृपति, अति सुवेव नइवेद जुत। —पृ० रा०, २४। २७९।

प्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ घृत। घी। २ पुरोडाश। ३ तृप्त करनेवाला। तपक।

फू—संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्प जाति [को०]।

बेनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिवेणी'। उ०—पावन परम देखि, मदन मद तृबेनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४८।

भंगी—वि० [हिं०] दे० 'त्रिभंगी'। उ०—धरे टेढ़ी पाग, चंद्रिका टेढ़ी टेढ़े लसै तृभंगी लाल।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५०।

ना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] दे० 'तृष्णा'। उ०—जोगी दुखिया जंगम दुखिया तपसी को दुख दूना हो। आसा तृस्ना सबको व्यापै कोई महल न सूना हो।—कबीर श०, भा० १, पृ० १६।

—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० तृषित, तृष्य] १. प्यास। २. इच्छा। अभिलाषा। ३ लोभ। लालच। ४ कलिहारी। करियारी।

भू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट में जल रहने का स्थान। क्लोम।

या(पु)—वि० [सं० तृषित] तृषित। प्यासा। उ०—सग रहै सोई पियै, नहिं फिरै तृषाया बहर।—दरिया० बानी, पृ० ३१।

लु—वि० [सं०] प्यासा। पिपासित। तृषित। तृषार्त।

वत—वि० [सं० तृषावान् का बहुव०] प्यासा। उ०—तृषावत जिमि पाय पियूषा।—तुलसी (शब्द०)।

र्त—वि० [सं०] प्यास से व्याकुल। प्यासा [को०]।

वान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तृषावती] प्यासा।

स्थान—संज्ञा पुं० [सं०] क्लोम।

हृ—संज्ञा पुं० [सं०] पानी [को०]।

हा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।

त—वि० [सं०] १ प्यासा। उ०—तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करै का सुधा तड़ागा।—तुलसी (शब्द०)। २. अभिलाषी। इच्छुक।

तोत्तरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्मनपर्णी। पटसन।

—वि० [सं०] १ लोभी। इच्छुक। २ वेगवान्। क्षिप्र [को०]।

णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राप्ति के लिये आकुल करनेवाली इच्छा। लोभ। लालच। २. प्यास।

तृष्णाकुल—वि० [सं० तृष्णा+आकुल] प्यास से विकल। तृषित। उ०—तृष्णाकुल होंगे प्रिय जाम्रो। सलिल स्नेह मिल मधुर पिलाम्रो।—गीतिका, पृ० ४४।

तृष्णाक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] १. इच्छा का समाप्त होना। २. मानसिक शांति। चित्त की स्थिरता। ३. संतोष।

तृष्णारि—संज्ञा पुं० [सं०] पित्तपापड़ा।

तृष्णार्त—वि० [सं० तृष्णा+आर्त] प्यास से कातर। तृष्णा से आर्त। उ०—दूर हो दुरित जो जग जागा तृष्णार्त ज्ञान।—गीतिका, पृ० ७०।

तृष्णालु—वि० [सं०] १ प्यासा। २ लालची। लोभी।

तृष्य[1]—वि० [सं०] इच्छा करने योग्य। चाहने लायक [को०]।

तृष्य[2]—संज्ञा पुं० १ लोभ। लालच। २. प्यास [को०]।

तृसंधि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि+संधि] तीन काल। तीन पहर। उ०—समीं साँझै सोइबा मझै जागिबा तृसंधि देणा पहरा।—गोरख०, पृ० ८६।

तृसालवाँ(पु)—वि० [सं० तृषा] तृषालु। प्यासा। उ०—अरहट बहै तृसालवाँ, सूलै काँटा भागा।—गोरख०, पृ० ११२।

तेँदुस—संज्ञा पुं० [सं० टिएडश] डेंड़सी नाम की तरकारी।

तेँ(पु)[1]—प्रत्य० [सं० तस् (प्रत्य०)] १ से। द्वारा। उ०—रन तें रजनी दिन भयो पूरि गयो असमान।—गोपाल (शब्द०)। २ से (अधिक)। उ०—(क) को जग मंद मलिन मति मो तें।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नैना तेरे जलज ते हैं खंजन तें अति नाचैं।—सूर (शब्द०)। (ग) चपला तें चमकत अति प्यारी कहा करौगी श्यामहिं।—सूर (शब्द०)।

विशेष—कहीं कहीं 'अधिक' 'बढ़कर' आदि शब्दों का लोप करके भी 'तें' से अपेक्षाकृत आधिक्य का अर्थ निकालते हैं। वि० दे० 'से'।

३ (किसी काल या स्थान) से। उ०—द्यौसक तें पिय चित चढी कहै चढ़ौहैं त्योर।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—दे० 'से'।

तेँतरा—संज्ञा पुं० [देश०] बैलगाड़ी में फड़ के नीचे लगी हुई लकड़ी।

तेँतालिस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेँतालीस'।

तेँतालिसवाँ—वि० [हिं०] दे० 'तेँतालीसवाँ'।

तेँतालीस[1]—वि० [सं० त्रिचत्वारिंशत्, पा० तिचत्तालीसा] जो गिनती में बयालिस से एक अधिक और चौवालीस से एक कम हो। चालीस और तीन।

तेँतालीस[2]—संज्ञा पुं० चालीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४३।

तेँतालीसवाँ—वि० [हिं० तेँतालीस+वाँ] क्रम में तेँतालीस के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले बयालिस और हों।

तेँतिस—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेँतीस'।

तेँतिसवाँ—वि० [हिं०] दे० 'तेँतीसवाँ'।

तेँतीस[1]—वि० [सं० त्रयस्त्रिंशत्, पा० तितिंसति, प्रा० तित्तीसा] जो गिनती में तीस से तीन अधिक हो। तीस और तीन।

उ०—नौ खेलैं तँतीस तीन। तेज वेद विष संग लीन।—कबीर श०, भा० २, पृ० ११५।

तँतीस[२]—संज्ञा पुं० तीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३३।

तँतीसवाँ—वि० [हिं० तँतीस+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तँतीस के स्थान पर पड़े। जिसके पहले बत्तीस और हों।

तँदुआ[१]—संज्ञा पुं० [देश०] बिल्ली या चीते की जाति का एक बड़ा हिंसक पशु जो अफ्रीका तथा एशिया के घने जंगलों में पाया जाता है।

विशेष—बल और भयंकरता आदि में शेर और चीते के उपरांत इसी का स्थान है। यह चीते से छोटा होता है और चीते की तरह इसकी गरदन पर भी अयाल नहीं होता। इसकी लंबाई प्रायः चार पाँच फुट होती है और इसके शरीर का रंग कुछ पीलापन लिए भूरा होता है। इसके शरीर पर काले काले गोल धब्बे या चित्तियाँ होती हैं। इस जाति का कोई कोई जानवर काले रंग का भी होता है।

तँदुआ[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेंदू'।

तेंदू—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दुक] १ मझोले आकार का एक वृक्ष जो भारतवर्ष, लंका, बरमा और पूर्वी बंगाल के पहाड़ी जंगलों में पाया जाता है।

विशेष—यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है तब इसके हीर की लकड़ी बिलकुल काली हो जाती है। वही लकड़ी आबनूस के नाम से बिकती है। इसके पत्ते लंबोतरे, नोकदार, खुरदुरे और महुवे के पत्तों की तरह पर उससे नुकीले होते हैं। इसकी छाल काली होती है जो जलाने से चिड़चिड़ाती है।

पर्या०—कालस्कंध। शितिसारक। केंदु। तिंदु। तिंदुल। तिंदुकी। नीलसार। अतिमुक्तक। कालसार।

२. इस पेड़ का फल जो नींबू की तरह का हरे रंग का होता है और पकने पर पीला हो जाता और खाया जाता है।

विशेष—वैद्यक में इसके कच्चे फल को स्निग्ध, कसैला, हलका, मलरोधक, शीतल, अरुचि और वात उत्पन्न करनेवाला और पक्के फल को भारी, मधुर, स्वादु, कफकारी और पित्त, रक्तरोग और वात का नाशक माना है।

३ सिंध और पंजाब में होनेवाला एक प्रकार का तरबूज जिसे 'दिलपसंद' भी कहते हैं।

ते(पु)†[१]—अव्य० [हिं०] दे० 'तें'। उ०—के कुदरत ते पैदा किया यक रतन।—दक्खिनी०, पृ० ११७।

ते†[२]—सर्व० [स० ते] वे। वे लोग। उ०—(क) पलक नयन फनिमनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती। ते अब फिरत विपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राम कथा के ते अधिकारी। जिनको सतसंगति अति प्यारी।—तुलसी (शब्द०)।

तेइ(पु)—सर्व० [हिं० ते] उसे। उ०—कवि तौ तेइ पाहन सम मानै। नहिन पखान पखान बखानै।—नंद० ग्रं० पृ० ११८।

तेइस†[१]—वि० [हिं०] दे० 'तेईस'।

तेइस†[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेईस'।

तेइसवाँ†—वि० [हिं०] दे० 'तेईसवाँ'।

तेईस—[स० त्रिविंशति, पा० तेवीसति, प्रा० तेवीस] जो गिनती में बीस से तीन अधिक हो। बीस और तीन।

तेईस[२]—संज्ञा पुं० बीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२३।

तेईसवाँ—वि० [हिं० तेईस+वाँ (प्रत्य०)] क्रम में तेईस के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले बाईस और हों।

तेउँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'। उ०—... प्रारि परेम की, जेउँ भावे तेउँ खेलु।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६१।

तेक(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तेग'। उ०—तेक तोकि तक्यो तुरी।—पृ० रा०, ७।१००५।

तेखना[१](पु)—क्रि० अ० [सं० तीक्ष्ण, हिं० तेहा] बिगड़ना। क्रुद्ध होना। नाराज होना। उ०—उ० (क) सुंभ बोल्यो तबै भैम सों तेखि कै। लाल नैना धरे वक्रता देखि कै।—गोपाल (शब्द०)। (ख) हनुमान या कौन बलाय बसी कछु पूछे ते ना तुम तेखियो री। हित मानि हमारो हमारे कहे भला मो मुख की छवि देखियो री।—हनुमान (शब्द०)। (ग) मोही को झूठो कहो झगरो करि सोंह करौं तब और ऊ तेखो। बैठे हैं दोऊ बगीचे में जायकै पाइं परों अब आइकै देखो।—रघुराज (शब्द०)।

तेखना[२](पु)—क्रि० अ० [हिं०] प्रसन्न होना। उमग में आना। उ०—डारत अतर लगाइ अरगजा रँगिली समधिन तेखि।—पृ० ३८०।

तेखी(पु)—वि० [हिं० तीखा] क्रोधयुक्त। क्रुद्ध। उ०—दिस लंक अंगद आद द्वादस, तहकिया तेखी।—रघु० रू०, पृ० १६१।

तेग—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तेग़] तलवार। खग। उ०—(क) जो रनसूर तेग तजि देवैं। तो हमहूँ तुम्हरो मत लेवैं।—विश्राम (शब्द०)। (ख) बरनै दीनदयाल हरषि जो तेग चलैहो। ह्वै हो जीते जसी, लरे सुरलोकहि पैहो।—दीनदयालु (शब्द०)।

तेगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तेग़] १ खाँड़ा। खग (अस्त्र)। उ—तेगा ये दग मीत के पानि पवार सुघाट। अजन बाढ़ दिए बिना करत चौगुनी काट।—रसनिधि (शब्द०)। २ किसी मेहराब के नीचे के भाग या दरवाजे को ईंट पत्थर मिट्टी इत्यादि से बंद करने की क्रिया। ३ कुश्ती का एक दाँव या पेंच जिसे कमरतेगा भी कहते हैं।

तेज[१]—संज्ञा पुं० [सं० तेजस्] दीप्ति। कांति। चमक। दमक। आभा। उ०—जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं।—तुलसी (शब्द०)। २ पराक्रम। जोर। बल। ३ वीर्य। उ०—पतित तेज जो भयो हमारो कहो देव को धारी।—रघुराज (शब्द०)। ४ किसी वस्तु का सार भाग। तत्व। ५ ताप। गर्मी। ६ पित्त। ७ सोना। ८ तेजी। प्रचंडता। उ०—(क) तेज कृशानु रोष महि शेषा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) थल सो अचल सील, अनिल सो चलचित, जल सो अमल तेज कैसो पायो है।—

तेजिष्ठ—वि० [सं०] तेजस्वी ।

तेजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तेज़ी] १. तेज होने का भाव । तीक्ष्णता २. तीव्रता । प्रबलता । ३. उग्रता । प्रचंडता । ४ शीघ्रता । जल्दी । ५. महँगी । गरानी । मंदी का उलटा । ६ सफर का महीना या मास (को०) ।

यौ०—तेजी का चाँद = सफर महीने का चाँद ।

तेजेयु—संज्ञा पुं० [सं०] रौद्राक्ष राजा के एक पुत्र का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में आया है ।

तेजो—संज्ञा पुं० [सं०] तेजस् का समासगत रूप, जैसे तेजोबल, तेजोमय ।

तेजोबीज—संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा [को०] ।

तेजोभंग—संज्ञा पुं० [सं० तेजोभङ्ग] अपमान । तिरस्कार [को०] ।

तेजोभीरु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाया । परछाईं [को०] ।

तेजोमंडल—संज्ञा पुं० [सं० तेजोमण्डल] सूर्य, चंद्रमा आदि आकाशीय पिंडों के चारों ओर का मंडल । छटामंडल ।

तेजोमंथ—संज्ञा पुं० [सं० तेजोमन्थ] गनियारी का पेड़ ।

तेजोमय—वि० [सं०] १ तेज से पूर्ण । जिसमें खूब तेज हो । जिसमें बहुत आभा, कांति या ज्योति हो । उ०—तेजोमय स्वामी तहँ सेवक हूँ तेजोमय ।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० ३० ।

तेजोमूर्ति¹—वि० [सं०] तेजयुक्त । तेज से परिपूर्ण [को०] ।

तेजोमूर्ति²—संज्ञा पुं० सूर्य [को०] ।

तेजोरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्म । २ जो अग्नि या तेज रूप हो ।

तेजोवत्—वि० [सं०] दे० 'तेजस्वत्' [को०] ।

तेजोवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गजपिप्पली । २. चव्य । ३ मालकँगनी । तेजबल ।

तेजवान्—वि० [सं० तेजोवत्] [स्त्री० तेजोवती] १. तेजवाला । २. उत्साही [को०] ।

तेजोविंदु—संज्ञा पुं० [सं० तेजोविन्दु] मज्जा ।

तेजोवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी अरणी का वृक्ष ।

तेजोहत —वि० [सं०] जिसका तेज समाप्त हो गया हो [को०] ।

तेजोह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तेजबल । २. चव्य ।

तेटकी(पु)—क्रि० वि० [हिं० तेता] दे० 'तेतिक' । उ०—जाको जितनो रच्यो विधाता ताको आवै तेटकी ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८३३ ।

तेडंडिक—वि० [सं० त्रिदण्ड] त्रिदंड धारण करनेवाला ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २१५ ।

तेड़ना(पु)—क्रि० स० [राज०] दे० 'टेरना' । उ०—पिंगल राजा पाठवइ, ढोला तेड़न काज ।—ढोला०, दू० ८१ ।

तेढौं(पु)—वि० [हिं०] दे० 'टेढ़ा' । उ०—माजेवाँ तेढ़ाँ मड़ी, वेढाँ तणो विसस ।—रा० रू०, पृ० १३७ ।

तेण(पु)—सर्व० [हिं० तें] उस । उ०—हुऐ कुंभएसा जोधहूर ओहवाँ, करै कुंण तेण परमाण काया ।—रघु० रू०, पृ० २६ ।

तेणि(पु)—सर्व० [सं० तेन; प्रा० तेण, तेण] १. तिससे । उस कारण से । इसलिये । इससे । उ०—तेणि न राखी सासरइ भजे स मारू वाल ।—ढोला०, दू० ११ ।

तेतना†—वि० [हिं०] दे० 'तितना' । उ०—मास षट बिहार तेतने निमिष हूँ न जाने रस नंददास प्रभु संग रैन रस जागरी ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३.६५ ।

तेता†—वि० पुं० [सं० तावत्] [स्त्री० तेती] उतना । उसी कदर । उसी प्रमाण का । उ०—(क) हरि हर विधि रवि शक्ति समेता । तुडी ते उपजत सब तेता ।—निश्चल (शब्द०) । (ख) जेती स ति कृपन के तेती तू मत जोर । बढ़त जात ज्यों ज्यों उरज त्यों त्यों होत कठोर ।—बिहारी (शब्द०) ।

तेतालीस¹—वि० [हिं०] दे० 'तेंतालीस' ।

तेतालीस²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेंतालीस' ।

तेतिक(पु)†—वि० [हिं० तेता] उतना ।

तेती(पु)—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तेता' । उ०—जितहिं बुझावै का करै तिहि घर तेती आगि ।—नंद० ग्रं०, पृ० १३७ ।

तेतीस—वि० संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेंतीस' ।

तेतो(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'तेता' ।

तेथ(पु)—अव्य० [सं० तत्र] तहाँ । उ०—जेथ तेथ प्राणी जलै लालच ददी लाय ।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ६० ।

तेन—संज्ञा पुं० [सं०] गीत का आरंभिक स्वर [को०] ।

तेनु—सर्व० [सं० तत्] उसने । उ०—धरमान नाम कायथ सुघर, तेनु चरित लिष्षे सबै ।—पृ० रा०, १६।२३ ।

तेम¹—संज्ञा पुं० [सं०] गीला होना । आर्द्र होना । आर्द्रता [को०] ।

तेम²(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तिमि' । उ०—योग ग्रंथ माँहि लिखे मैं समुझाये तेम ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४१ ।

तेमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यंजन । पका हुआ भोजन । २ गीला करने की क्रिया (को०) । ३. आर्द्रता । गीलापन (को०) ।

तेमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चूल्हा [को०] ।

तेमरू—संज्ञा पुं० [देश०] तेंदू का वृक्ष । आबनूस का पेड़ ।

तेयागना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'त्यागना' । उ०—हमारे कहने का मतलब यह है कि सब कोई भेदभाव तेयाग के, एक होकर के परमारथ कारज मै सहजोग दीजिए ।—मैला०, पृ० २६ ।

तेर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेरह' । उ०—सय तेर परे हिंदू सयन कोस तीन रन अद्ध परि ।—पृ० रा०, ६।२०६।

तेरज—संज्ञा पुं० [देश०] खतियौनी का गोशवारा ।

तेरना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टेरना' । उ०—पूनम तिथि मंगल दिनह, गृह तेरिय आजान । आसन छंडि सु अग्र दिय, बहु आदर सनमान । —पृ० रा०, ४।६।

तेरपन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तिरपन' । उ०—सत्रासै तेरपन सैर सीकरी नैं बसायो ।—शिखर०, पृ० ४८ ।

तेरवाँ†—वि० [हिं०] दे० 'तेरहवाँ' ।

तेरस—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ त्रयोदश] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। त्रयोदशी।

तेरसि(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ त्रयोदशी] दे॰ 'तेरस'। उ॰—तेरसि तिथि ससि सम्मर पथ निसि दसमि दसा मोरि मेलि।—विद्या पति, पृ॰ १७८।

तेरह^1—वि॰ [सं॰ त्रयोदश, प्रा॰ तेड्ह, अर्द्धमा॰ तेरस] जो गिनती में दस से तीन अधिक हो। दस और तीन। उ॰—कासी नगर भरा सब झारी। तेरह उतरे औजस पारी।—घट॰, पृ॰ २६३।

तेरह^2—संज्ञा पुं॰ दस से तीन अधिक की संख्या और उस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१३।

तेरहवाँ—वि॰ [हिं॰ तेरह + वाँ (प्रत्य॰)] दस और तीन के स्थानवाला। क्रम में तेरह के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले बारह और हो।

तेरही—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तेरह + ई (प्रत्य॰)] किसी के मरने के दिन से अथवा प्रेतकर्म की तेरहवीं तिथि, जिसमें पिंडदान और ब्राह्मणभोजन करके दाह करनेवाला और मृतक के घर के लोग शुद्ध होते हैं।

तेरा^1—सर्व॰ [सं॰ ते (= तव) + हिं॰ रा (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ तेरी] मध्यम पुरुष एकवचन की षष्ठी का सूचक सर्वनाम शब्द। मध्यम पुरुष एकवचन संबंध कारक सर्वनाम। तू का संबंध कारक रूप। उ॰—तू नहिं मानन देति आली री मन तेरौं मानबे कों करत।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ३६८।

मुहा॰—तेरी सी = तेरे लाभ या मतलब की बात। तेरे अनुकूल बात। उ॰—बकसीस ईस जी की खीस होत देखियत, रिस काहे लागति कहत तो हौं तेरी सो।—तुलसी (शब्द॰)।

विशेष—शिष्ट समाज में इसका प्रयोग बड़े या बराबरवाले के साथ नहीं होता बल्कि अपने से छोटे के लिये होता है।

तेरा(पु)^2—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'तेरह'। उ॰—चंद्रमा मिथुन को तेरा १३ मस, मनि लग्न में देह होगी।—ह॰ रासो॰, पृ॰ ३०।

तेरिज—संज्ञा पुं॰ [फा॰ तिराज ?] १. खुलासा। स्पष्ट। २. सार। संक्षेप। उ॰—तत्त को तेरिज बेरिज बुधि की।—धरनी॰, पृ॰ ४।

तेरुस(पु)^1—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'त्योरुस'।

तेरुस^2—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ [हिं॰] 'तेरस'।

तेरू(पु)—वि॰ [हिं॰ तैरना] तैरनेवाला। उ॰—इसो तेरू कँवण फाड़ आवै उदध, लछीवर कवण नरपाल लाभै।—रघु॰ रू॰, पृ॰ २६७।

तेरे—प्रत्य॰ [हिं॰ ते] से। उ॰—(क) तब प्रभु कह्यो पवनसुत तेरे। जनकसुतहिं लावहु ढिग मेरे।—विश्राम (शब्द॰)। (ख) यहि प्रकार सब बूझन तेरे। भेटि भेंटि पूँछें प्रभु हेरे।—विश्राम (शब्द॰)।

तेरो(पु)—सर्व॰ [हिं॰] दे॰ 'तेरा'। उ॰—तेरो मुख चंदा चकोर मेरे नैना।—(शब्द॰)।

तेलंग—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तैलंग'। उ॰—तेलंगा वगा भोज कलिंगा रामापुत्तें मडोआ।—कीर्ति॰, पृ॰ ४८।

तेल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तैल] १. वह चिकना तरल पदार्थ जो बीजों वनस्पतियों आदि से किसी विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है अथवा आपसे आप निकलता है। यह सदा पानी से हलका होता है, उसमें घुल नहीं सकता, अलकोहल में घुल जाता है। अधिक सरदी पाकर प्रायः जम जाता है और अग्नि के संयोग से धूआँ देकर जल जाता है। इसमें कुछ न कुछ गंध भी होती है। चिकना। रोगन।

विशेष—तेल तीन प्रकार का होता है—मसृण, उड़ जानेवाला और खनिज। मसृण तेल वनस्पति और जंतु दोनों से निकलता है। वानस्पत्य मसृण वह है जो बीजों या दानों आदि को कोल्हू में पेरकर या दबाकर निकाला जाता है, जैसे, तिल, सरसों, नीम, गरी, रेंड़ी, कुसुम आदि का तेल। इस प्रकार का तेल दीया जलाने, साबुन और वार्निश बनाने, सुगंधित करके सिर या शरीर में लगाने, खाने की चीजें तलने, फलों आदि का अचार डालने और इसी प्रकार के और दूसरे कामों में आता है। मशीनों के पुरजों में उन्हें घिसने से बचाने के लिये भी यह डाला जाता है। सिर में लगाने के चमेली, बेले आदि के जो सुगंधित तेल होते हैं वे बहुधा तिल के तेल की जमीन देकर ही बनाए जाते हैं। भिन्न भिन्न तेलों के गुण आदि भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के वृक्षों से भी आपसे आप तेल निकलता है जो पीछे से साफ कर लिया जाता है, जैसे,—ताड़पीन आदि। जांतुज तेल जानवरों की चरबी का तरल अंश है और इसका व्यवहार प्रायः औषध के रूप में ही होता है। जैसे, साँप का तेल, धनेस का तेल, मगर का तेल आदि। उड़ जानेवाला तेल वह है जो वनस्पति के भिन्न भिन्न अंशों से भभके द्वारा उतारा जाता है। जैसे, अजवायन का तेल, ताड़पीन का तेल, मोम का तेल, हींग का तेल आदि। ऐसे तेल हवा लगने से सूख या उड़ जाते हैं और इन्हें खौलाने के लिये बहुत अधिक गरमी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के तेल के शरीर में लगने से कभी कभी कुछ जलन भी होती है। ऐसे तेलों का व्यवहार विलायती औषधों और सुगंधों आदि में बहुत अधिकता से होता है। कभी कभी वारनिश या रंग आदि बनाने में भी यह काम आता है। खनिज तेल वह है जो केवल खानों या जमीन में खोदे हुए बड़े बड़े गड्ढों में से ही निकलता है। जैसे, मिट्टी का तेल (देखो 'मिट्टी का तेल' और 'पेट्रोलियम') आदि। आजकल सारे संसार में बहुधा रोशनी करने और मोटर (इंजिन) चलाने में इसी का व्यवहार होता है।

आयुर्वेद में सब प्रकार के तेलों को वायुनाशक माना है। वैद्यक के अनुसार शरीर में तेल मलने से कफ और वायु का नाश होता है, धातु पुष्ट होती है, तेज बढ़ता है, चमड़ा मुलायम रहता है, रंग खिलता है और चित्त प्रसन्न रहता है। पैर के तलवों में तेल मलने से अच्छी तरह नींद आती है और मस्तिष्क

तथा नेत्र ठंढे रहते हैं। सिर में तेल लगाने से सिर का दर्द दूर होता है, मस्तिष्क ठंढा रहता है, और बाल काले तथा घने रहते हैं। इन सब कामों के लिये वैद्यक में सरसों या तिल के तेल को अधिक उत्तम और गुणकारी बतलाया है। वैद्यक के अनुसार तेल में तली हुई खाने की चीजें विदाही, गुरुपाक, गरम, पित्तकर, त्वचादोष उत्पन्न करनेवाली और वायु तथा दृष्टि के लिये अहितकर मानी गई हैं। साधारण सरसों आदि के तेल में अनेक प्रकार के रोग दूर करने के लिये तरह तरह की ओषधियाँ पकाई जाती हैं।

क्रि० प्र०—जलना।—जलाना।—निकलना।—निकालना।—पेरना।—मलना।—लगाना।

मुहा०—तेल में हाथ डालना = (१) अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये खौलते हुए तेल में हाथ डालना। (प्राचीन काल में सत्यता प्रमाणित करने के लिये खौलते हुए तेल में हाथ डलवाने की प्रथा थी)। (२) विकट शपथ खाना। आँख का तेल निकालना=दे० 'आँख' के मुहावरे।

२ विवाह की एक रस्म जो साधारणतः विवाह से दो दिन और कहीं कहीं चार पाँच दिन पहले होती है। इसमें वर को वधू का नाम लेकर और वधू को वर का नाम लेकर हल्दी मिला हुआ तेल लगाया जाता है। इस रस्म के उपरांत प्रायः विवाह संबंध नहीं छूट सकता। उ०—अभ्युदयिक करवाय श्राद्ध विधि सब विवाह के चारा। कृत्ति तेल मायन करवैहैं ब्याह विधान अपारा।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—तेल उठाना या चढ़ाना = तेल की रस्म पूरी होना। उ०—तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार।—कोई कवि (शब्द०)। तेल चढ़ाना = तेल की रस्म पूरी करना। उ०—प्रथम हरहि बदन करि मंगल गावहिं। करि कुलरीति कलस थपि तेल चढ़ावहिं।—तुलसी (शब्द०)।

तेलगू—संज्ञा स्त्री० [तेलुगु] आंध्र राज्य की भाषा।

तेलचलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल + चलाना] देशी छींट की छपाई में मिहाई नाम की क्रिया। वि० दे० 'मिहाई'।

तेलवाई—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + वाई (प्रत्य०)] १ तेल लगाना। तेल मलना। २. विवाह का एक रस्म जिसमें वधू पक्षवाले जनवासे मे वर पक्षवालों के लगाने के लिये तेल भेजते हैं।

तेलसुर—संज्ञा पुं० [देश०] एक जगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है।

विशेष—इसके हीर की लकडी कडी और सफेदी लिए पीली होती है। यह वृक्ष चटगाँव और सिलहट के जिलों मे बहुत होता है। इसकी लकड़ी से प्राय नावें बनाई जाती हैं।

तेलहँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + हडा] [स्त्री० अल्पा० तेलहँड़ी] तेल रखने का मिट्टी का बडा बरतन।

तेलहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल + हँड़ी] तेल रखने का मिट्टी का छोटा बरतन।

तेलहन—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + हिं० हन (प्रत्य०)] वे बीज जिनसे तेल निकलता है। जैसे, सरसों, तिल, अलसी, इत्यादि। उ०—तिरगुन तेल चुआवे हो तेलहन संसार। कोइ न बचे जोगी जती फेरे बारबार।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३६।

तेलहा—वि०[हिं० तेल + हा (प्रत्य०)][वि० स्त्री० तेलही] १. तेलयुक्त। जिसमें तेल हो। जिसमें से तेल निकल सकता हो। २. तेलवाला। तेल सबंधी। ३. जिसमें चिकनाई हो। ४ तैल निर्मित। तेल से बना हुआ।

तेला—संज्ञा पुं०[देश०]तीन दिन रात का उपवास। उ०—जिसे कतल का हुक्म हो तेला अर्थात् तीन उपवास करे जिसमें परलोक सुधरे।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

तेलिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेली का स्त्री०] १ तेली की स्त्री। तेली जाति की स्त्री। २. एक बरसाती कीड़ा।

विशेष—यह कीड़ा जहाँ शरीर से छू जाता है वहाँ छाले पड़ जाते हैं।

तेलियर—संज्ञा पुं० [देश०] काले रंग का एक पक्षी जिसके सारे शरीर पर सफेद बुँदकियाँ या चित्तियाँ होती हैं।

तेलिया[1]—वि० [हिं० तेल] तेल की तरह चिकना और चमकीला। चिकने और चमकीले रंगवाला। तेल के से रंगवाला। जैसे,—तेलिया अमौवा।

तेलिया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तेल+इया (प्रत्य०)] १ काला, चिकना और चमकीला रंग। २ इस रंग का घोड़ा। ३. एक प्रकार का बबूल। ४. एक प्रकार की छोटी मछली। ५. कोई पदार्थ, पशु या पक्षी जिसका रंग तेलिया हो। ६. सींगिया नामक विष।

तेलियाकंद—संज्ञा पुं० [सं० तेलकन्द] एक प्रकार का कंद।

विशेष—यह कद जिस भूमि में होता है वह भूमि तेल से सींची हुई जान पड़ती है। वैद्यक में इसे लोहे को पतला करनेवाला चरपरा, गरम तथा वात, अपस्मार, विष और सूजन आदि को दूर करनेवाला, पारे को बाँधनेवाला और तत्काल देह को सिद्ध करनेवाला माना है।

तेलियाकत्था—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया+कत्था] एक प्रकार का कत्था जो भीतर से काले रंग का होता है।

तेलियाकाकरेजी—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + काकरेजी] कालापन लिए गहरा ऊदा रंग।

तेलियाकुमैत—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + कुमैत] १ घोड़े का एक रंग जो अधिक कालापन लिए लाल या कुमैत होता है। २. वह घोड़ा जिसका रंग ऐसा हो।

तेलियागर्जन—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + सं० गर्जन] दे० 'गर्जन'।

तेलियापखान—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + सं० पाषाण] एक प्रकार का काला और चिकना पत्थर। उ०—नहीं चंद्रमणि जो द्रवै यह तेलिया पखान।—दीनदयाल (शब्द०)।

तेलियापानी—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + पानी] बहुत खारा और स्वाद में बुरा मालूम होनेवाला पानी, जैसे प्राय पुराने कुओं से निकलता रहता है।

तेलियासुरंग—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + सुरंग] दे० 'तेलिया कुमैत'।

तेलियासुहागा—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + सुहागा] एक प्रकार का सुहागा जो देखने में बहुत चिकना होता है।

तेली—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० तेलिन] हिंदुओं की एक जाति जिसकी गणना शूद्रों में होती है ।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक स्त्री और कुम्हार पुरुष से है । इस जाति के लोग प्रायः सारे भारत में फैले हुए हैं और सरसों, तिल आदि पेरकर तेल निकालने का व्यवसाय करते हैं । साधारणतः द्विज लोग इस जाति के लोगों का छूआ हुआ जल नहीं ग्रहण करते ।

मुहा०—तेली का बैल = हर समय काम में लगा रहनेवाला व्यक्ति ।

तेलौंची—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल + औंची (प्रत्य०)] पत्थर, काँच या लकड़ी आदि की वह छोटी प्याली, जिसमें शरीर में लगाने के लिये तेल रखते हैं । मालिया ।

तेवर—संज्ञा स्त्री० [देश०] सात दीर्घ अथवा १४ लघु मात्राओं का एक ताल जिसमे तीन आघात और एक खाली रहता है । इसके तबले के बोल ये हैं—धिन् धिन् धाकेटे, धिन् धिन् धा, तिन् तिन् ताकेटे धिन् धिन् धा । धा ।

तेवड़ॶ[1]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों' । उ०—जेवड साहिब तेवड दाती दे दे करे रजाई ।—प्राण०, पृ० १२३ ।

तेवड़ॶ[2]—वि० [हिं०] दे० 'तेहरा' । उ०—थ्यूं लीजे गढ़ा बंका भाई, दोवर कोट अरु तेवड़ खाई ।—कबीर ग्रं०, पृ० २०८ ।

तेवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रीड़ा । २. वह स्थान, विशेषतः वन आदि जहाँ आमोदप्रमोद और क्रीड़ा हो । विहार । उपवन । ३ नजरबाग । पाईं बाग ।

तेवनॶ[2]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'[1] । उ०—जैसे स्वान अपावन राजित तेवन लागो संसारी ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३९१ ।

तेवर—संज्ञा पुं० [हिं० तेह (= क्रोध)] १. कुपित दृष्टि । क्रोध भरी चितवन ।

मुहा०—तेवर आना = मूर्छा आना । चक्कर आना । उ०—यह कहकर बड़ी बेगम को तेवर आया और धड़ से गिर पड़ीं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६०९ । तेवर चढ़ना = दृष्टि का ऐसा हो जाना जिससे क्रोध प्रकट हो । तेवर चढ़ा लेना या तेवर चढ़ाना = क्रुद्ध होना । दृष्टि को ऐसा बना लेना जिससे क्रोध प्रकट हो । उ०—क्यों न हम भी आज तेवर लें चढ़ा । हैं बुरे तेवर दिखाई दे रहे ।—चोखे०, पृ० ५२ । तेवर तनना = दे० 'तेवर चढ़ना' । उ०—भाल भाग्य पर तने हुए थे तेवर उसके ।—साकेत, पृ० ४२३ । तेवर बदलना या बिगड़ना = (१) बेमुरौवत हो जाना । (२) खफा हो जाना । उ०—अगर स्त्रियों की हँसी की आवाज कभी मरदानों में जाती तो वह तेवर बदले घर में आता ।—सेवासदन, पृ० २०८ । (३) मृत्युचिह्न प्रकट होना । तेवर बुरे नजर आना या दिखाई देना = अनुराग में अंतर पड़ना । प्रेम भाव में अंतर आ जाना । तेवर पर बल पड़ना = दे० 'तेवर बुरे नजर आना या दिखाई देना' । उ०—डर हमें तिरछी निगाहों का नहीं । देखिए अब बल न तेवर पर पड़े ।—चोखे०, पृ० ५२ । तेवर मैले होना = दृष्टि से खेद, क्रोध या उदासीनता प्रकट होना । तेवर सहना = क्रोध या क्षोभ सहना । क्रोध का विरोध न करना । उ०—जो पड़े सिर पर रहें सहते उसे, पर न औरों के बुरे तेवर सहे ।—चुभते० पृ० १९ ।

२ भौंह । भृकुटी ।

तेवरसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ककड़ी । २ खीरा । ३. फूट ।

तेवरा—संज्ञा पुं० [देश०] द्रुत में बजाया हुआ रूपक ताल । (संगीत) ।

तेवराना[1]—क्रि० अ० [हिं० तेवर + आना (प्रत्य०)] १. भ्रम में पड़ना । संदेह में पड़ना । सोच में पड़ना । २. विस्मित होना । आश्चर्य करना । दे० 'तेवराना' । ३ मूर्च्छित हो जाना । बेहोश हो जाना ।

तेवराना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तेवारी] तिवारियों की बस्ती ।

तेवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योरी' ।

तेवहार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार' । उ०—सखि मानहिं तेवहार सब, गाइ देवारी खेलि ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५७ ।

तेवानॶ†—संज्ञा पुं० [देश०] सोच । चिंता । फिकर । उ०—मन तेवान कै राघव झूरा । नाहिं उबार जीउ डर पूरा ।—जायसी (शब्द०) ।

तेवान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तावान' । उ०—गयो अजपा सुमिर भूले, गयो बिसरि तेवान ।—जग० श०, पृ० १४ ।

तेवानाॶ†—क्रि० अ० [देश०] सोचना । चिंता करना । उ०—(क) सँवरि सेज धन मन भइ संका । ठाढ़ि तेवानि टेककर लंका ।—जायसी (शब्द०) । (ख) रहौं लजाय तो पिय चलै कहौं तो कहँ मोहि ढीठ । ठाढ़ि तेवानी का करौं भारी दोउ बसीठ ।—जायसी (शब्द०) ।

तेवारी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिवारी' ।

तेहॶ†—संज्ञा पुं० [सं० तक्षण, हिं० तेखना] १ क्रोध । गुस्सा । उ०—हम हारी कै कै हहा पायन पारयो प्यौरु । लेहु कहा अजहूँ किए तेह तरेरे त्यौरु ।—बिहारी (शब्द०) । २ अहंकार । घमंड । ताव । उ०—आवै तेह वश भूप करहिं हठ पुनि पाछे पछितैहैं । अवधकिशोर समान और वर जन्म प्रयत न पैहैं ।—रघुराज (शब्द०) । ३ तेजी । प्रचंडता । उ०—शेष भार खाइकै उतारे फन हू ते भूमि कमठ बराह छोडि भागै क्षिति जेह को । भानु सितभानु तारा मंडल प्रतीचि उवैं सोखै सिंधु बाडव तरणि तजै तेह को—रघुराज (शब्द०) ।

तेहजॶ—सर्व० [हिं० ते] उसी को । उ०—दादू तेहज लीजिए रे, साधो सिरजनहार ।—दादू० बानी, पृ० ५८ ।

तेहनौ—सर्व० [हिं० ते] उसका । उ०—ते पुर प्राणी तेहनौ अविचल सदा रहत ।—दादू०, पृ० ५८४ ।

तेहवार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार' । उ०—'हरीचंद' दुख मेटि काम को घर तेहवार मनाओ ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४३२ ।

तेहर†—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि+हार] तीन लड़ की सिकड़ी, करधनी या जजीर जिसे स्त्रियाँ कमर मे पहनती हैं। उ०—जेहर, तेहर, पाँय विछुवन छबि उपजायल ।—नद० ग्रं०, पृ० ३८६ ।

तेहरा—वि० पुं० [हिं० तीन + हरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तेहरी] १ तीन परत किया हुआ। तीन लपेट का। २ जिसकी एक साथ तीन प्रतियाँ हों। जो एक साथ तीन हों। उ०—दोहरे तेहरे चौहरे भुषण जाने जात। —बिहारी (शब्द०)। ३ जो दो बार होकर फिर तीसरी बार किया गया हो। जैसे, तेहरी मेहनत ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार ऐसे ही कामों के लिये होता है जो पहले दो बार करने पर भी उत्तम रीति से या पूर्ण न हुए हों ।

४ तिगुना। (क्व०)।

तेहराना—क्रि० स० [हिं० तेहरा] १ तीन लपेट या परत का करना। २. किसी काम को उसकी त्रुटि आदि दूर करने अथवा उसे बिलकुल ठीक करने के लिये तीसरी बार करना।

तेहरावा†—संज्ञा पुं० [हिं० तेहरा + आव (प्रत्य०)] तीसरी बार की क्रिया या भाव ।

तेहवार—संज्ञा पुं० [सं० तिथि + वार] दे० 'त्योहार'।

तेहा—संज्ञा पुं० [हिं० तेह] १. क्रोध। गुस्सा। २. अहंकार। शेखी। अभिमान। घमड।

यौ०— तेहेदार। तेहेबाज।

तेहातेह—क्रि० वि० [हिं० तह] तह पर तह। खूब गहरे में। उ०—भीजै अहर्रे रैण कै मिलिया तेहातेह। धन नहिं धरती हुइ रही, कंत सुहावो मेह।—ढोला०, दू० ५८४।

तेहि(ए)†—सर्व० [सं० ते] उसको। उसे। उ०—छबि सो छबीले छैल भेंटि तेहि छिनहिं उछावत।—नद० ग्र०, पृ० ३६।

तेही[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तेह + ई (प्रत्य०)] १ गुस्सा करनेवाला। जिसमें क्रोध हो। क्रोधी। २ अभिमानी। घमंडी।

तेही(ए)[2]—सर्व० [हिं० ते + हीं] उसे। उसी को।

तेहीज(ए)—सर्व० [हिं० तेही + ज] उसी को। उ०—प्रथम दल गाडयो रहई, जीग सीरज्यो होई तेहीज खाय। —बी० रासो, पृ० ४६।

तेहेदार†—संज्ञा पुं० [हिं० तेहा + फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तेहेबाज†—संज्ञा पुं० [हिं० तेहा + फा० बाज (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तैंतिडीक—वि० [सं० तैन्तिडीक] तितिडी या इमली की कांजी से बनाया हुआ या तैयार किया हुआ [को०]।

तैं(ए)†—क्रि० वि० [हिं० तें] से। दे० 'तें' उ०—कुज तैं कहूं सुनि कत को गमन लखि आगमन तैसो मनहरन गोपाल को।—पद्माकर (शब्द०)।

तैं(ए)—सर्व० [सं० त्वम्] तू। उ०—त्रिय सग लरहिं न भट रिपु भगनी। बक सम भ्राता तैं मम भगनी।—गोपाल (शब्द०)।

तैंतालीस—वि० दे० [हिं०] तैंतालीस।

तैंतीस—वि० [हिं०] दे० 'तैंतीस'। उ०—खुमी तैंतीस जब कटे मुऱ बीस। धरि मारू दससीस मन राउ रानी। —पलटू० भा० २, पृ० १०८।

तै[1]†—क्रि० वि० [सं० तत्] उतना। उस कदर। उस मात्रा का। जैसे,—अब जै नबर के बाद कहिये तै नबर के बाद आपका ताश निकले। —रामकृष्ण वर्मा (शब्द०)।

तै[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १. समाप्ति। खात्मा।

यौ०—तै तमाम = अंत। समाप्ति।

२ चुकता। बेबाकी (को०)। ३ निर्णय। फैसला। निबटारा। (को०)। ४ रास्ता चलना। जैसे, मंजिल तै कर लो। उ०—बहुतों ने राह तै की सँभले न पाँव फिर भी।—बेला, पृ० ९०।

तै[3]—वि० १ जिसका निबटेरा या फैसला हो चुका हो। निर्णीत। २ जो पूरा हो चुका हो। समाप्त। जैसे, झगड़ा तै करना। रास्ता तै करना।

तै†[4]—संज्ञा पुं० [फ़ा० तह] दे० 'तह'।

तैकायन—संज्ञा पुं० [सं०] तिक ऋषि के वशज या शिष्य।

तैक्त—संज्ञा पुं० [सं०] तिक्त का अभाव। तीतापन। चरपराहट। तिताई। तिक्तत्व।

तैक्ष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीक्ष्णता। तीक्ष्ण का भाव। २. मर्मकरता (को०)। ३. पैनापन (को०)। ४ निर्दयता (को०)।

तैखाना(ए)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० तहखानह्] दे० 'तहखाना'।

तैजस[1]— संज्ञा पुं० [सं०] १. धातु, मणि अथवा इसी प्रकार का और कोई चमकीला पदार्थ। २. घी। ३. पराक्रम। ४ बहुत तेज चलनेवाला घोड़ा। ५ सुमति के एक पुत्र का नाम। ६. जो स्वयप्रकाश और सूर्य आदि का प्रकाशक हो, भगवान्। ७ वह शारीरिक शक्ति जो आहार को रस तथा रस को धातु में परिणत करती है। ८ एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत मे है। ९ राजस अवस्था मे प्राप्त अहंकार जो एकादश इद्रियो और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति में सहायक होता है और जिसकी सहायता के बिना अहकार कभी सात्विक या तामसी अवस्था प्राप्त नहीं करता।

विशेष—दे० 'अहंकार'।

१० जगम (को०)।

तैजस[2]—वि० [सं०] १ तेज से उत्पन्न। तेज सबधी। जैसे, तैजस पदार्थ। २ चमकीला। द्युतिमान (को०)। ३. प्रकाश से परिपूर्ण (को०)। ४. उत्तेजित। उत्साही (को०)। ५ शक्तिशाली। साहसी (को०)। ६. राजसी वृत्तिवाला। रजोगुणी (को०)।

तैजसावर्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी सोना गलाने की घरिया। मूषा।

तैजसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली।

तैतिक्ष—वि० [सं०] धैर्यवान्। सहनशील [को०]।

तैड़े(ए)—सर्व० [राज०] तेरा। उ०—नागर तट तैड़े देखे बिन बेकलियाँ दिख मू।—नट०, पृ० १२६।

तैंतिर—संज्ञा पुं० [सं० तीतर] तीतर।

तैतिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्यारह करणों में से चौथा करण।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला कलाकुशल, रूपवान्, वक्ता, गुणी, सुशील और कामी होता है।

२. देवता। ३. गैंडा।

तैत्तिर—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीतरों का समूह। २ तीतर। ३. गैंडा।

तैत्तिरि—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद के प्रवर्तक एक ऋषि का नाम जो वैशंपायन के बडे भाई थे।

तैत्तिरिक—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पकड़नेवाला [को०]।

तैत्तिरीय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृष्ण यजुर्वेद की छियासी शाखाओं में से एक।

विशेष—यह आत्रेय अनुक्रमणिका और पाणिनि के अनुसार तित्तिरि नामक ऋषि प्रोक्त है। पुराणों में इसके संबंध में लिखा है कि एक बार वैशंपायन ने ब्रह्महत्या की थी। उसके प्रायश्चित्त के लिये उन्होंने अपने शिष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी। और सब शिष्य तो यज्ञ करने के लिये तैयार हो गए, पर याज्ञवल्क्य तैयार न हुए। इसपर वैशंपायन ने उनसे कहा कि तुम हमारी शिष्यता छोड दो। याज्ञवल्क्य ने जो कुछ उनसे पढ़ा था वह सब उगल दिया, और उस वमन को उनके दूसरे सहपाठियों ने तीतर बनकर चुग लिया।

२. इस शाखा का उपनिषद्।

विशेष—यह तीन भागों मे विभक्त है। पहला भाग संहितोपनिषद् या शिक्षावल्ली कहलाता है, इसमे व्याकरण और अद्वैतवाद संबंधी बातें हैं। दूसरा भाग आनंदवल्ली और तीसरा भाग भृगुवल्ली कहलाता है। इन दोनो सम्मिलित भागों को वारुणी उपनिषद् भी कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्मविद्या पर उत्तम विचारों के अतिरिक्त श्रुति, स्मृति और इतिहास संबंधी भी बहुत सी बातें हैं। इस उपनिषद् पर शंकराचार्य का बहुत अच्छा भाष्य है।

तैत्तिरीयक—संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी या पढ़नेवाला।

तैत्तिरीयारण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक अंश जिसमें वानप्रस्थों के लिये उपदेश है।

तैत्तिल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तैतिल'।

तैनात—वि० [अ० तअय्युन] किसी काम पर लगाया या नियत किया हुआ। मुकर्रर। नियत। नियुक्त जैसे,—भीड भाड का इंतजाम करने के लिये दस सिपाही वहाँ तैनात किए गए थे।

तैनाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० तैनात+ई (प्रत्य०)] किसी काम पर लगने की क्रिया या भाव। नियुक्ति। मुकर्ररी।

तैमित्य—संज्ञा पुं० [सं०] जड़ता [को०]।

तैमिर—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग [को०]।

विशेष—इस रोग में आँखों में धुँधलापन आ जाता है।

तैया—संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें छीपी कपड़ा छापने के लिये रंग रखते हैं। अद्धर।

तैयार—वि० [अ०] १. जो काम में आने के लिये बिलकुल उपयुक्त हो गया हो। सब तरह से दुरुस्त या ठीक। लैस। जैसे, कपड़ा (सिलकर) तैयार होना, मकान (बनकर) तैयार होना, फल (पककर) तैयार होना, गाड़ी (जुतकर) तैयार होना, आदि।

मुहा०—गला तैयार होना = गले का बहुत सुरीला और रसयुक्त होना। ऐसा गला होना जिससे बहुत अच्छा गाना गाया जा सके। हाथ तैयार होना = कला आदि में हाथ का बहुत अभ्यस्त और कुशल होना। हाथ का बहुत मँज जाना।

२. उद्यत। तत्पर। मुस्तैद। जैसे,—(क) हम तो सवेरे से चलने के लिये तैयार थे, आप ही नहीं आए। (ख) जब देखिए तब आप लड़ने के लिये तैयार रहते हैं। ३ प्रस्तुत। उपस्थित। मौजूद। जैसे,—इस समय पचास रुपए तैयार हैं, बाकी कल ले लीजिएगा। ४. हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा। जिसका शरीर बहुत अच्छा और सुडौल हो। जैसे, यह घोड़ा बहुत तैयार है। ५ संपूर्ण। मुकम्मल (को०)। ६ समाप्त। खत्म (को०)। ७ पक्व। पुख्ता (को०)। ८ कटिबद्ध। आमादा (को०)। ९. सुसज्जित। आरास्ता (को०)।

तैयारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तैयार+ई (प्रत्य०)] १. तैयार होने की क्रिया या भाव। दुरुस्ती। संपूर्णता। २ तत्परता। मुस्तैदी। ३ शरीर की पुष्टता। मोटाई। ४. धूमधाम। विशेषत प्रबंध आदि के संबंध की धूमधाम। जैसे,—उनकी बरात में बड़ी तैयारी थी। ५. सजावट। जैसे,—आज तो आप बड़ी तैयारी से निकले हैं। ६ समाप्ति। खात्मा (को०)। ७ प्रयोग के काबिल होना (को०)। ८. रचना। निर्माण। सृष्टि (को०)।

तैयों(पु)—सर्व० [सं० त्वम्, हिं० तैं] तुमसे। उ०—तूं आप करण कारण हे तेरा ही कीना होया सब कुछ है। तैंयों कुछ छपिया नही।—प्राण०, पृ० २०२।

तैयो†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तऊ'। उ०—सहस अठासी मुनि जो जेवैं तैयो न घटा बाजे। कहहिं कबीर सुपच के जेए घट मगन ह्वै गाजे।—कबीर (शब्द०)।

तैरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसकी पत्तियों आदि को वैद्यक मे तिक्त और व्रणनाशक माना है।

पर्या०—तैर। तैरणी। कुनीली। रागद।

तैरना—क्रि० अ० [सं० तरण] १ पानी के ऊपर ठहरना। उतराना। जैसे, लकड़ी या काग आदि का पानी पर तैरना। २. किसी जीव का अपने अंग संचालित करके पानी पर चलना। हाथ पैर या और कोई अंग हिलाकर पानी पर चलना। पैरना। तरना।

विशेष—मछलियाँ आदि जलजंतु तो सदा जल मे रहते और विचरते ही हैं, पर इनके अतिरिक्त मनुष्य को छोड़कर बाकी अधिकांश जीव जल मे स्वभावत बिना किसी दूसरे की सहायता या शिक्षा के आपसे आप तैर सकते हैं। तैरना कई तरह से होता है और उसमें केवल हाथ, पैर, शरीर का कोई अंग

अथवा शरीर के सब अंगों को हिलाना पड़ता है। मनुष्य को तैरना सीखना पड़ता है और तैरने में उसे हाथों और पैरों अथवा केवल पैरों को गति देनी पड़ती है। मनुष्य का साधारण तैरना प्राय मेढक के तैरने की तरह का होता है। बहुत से लोग पानी पर चुपचाप चित भी पड़ जाते हैं और बराबर तैरते रहते हैं। कुछ लोग तरह तरह के दूसरे आसनों से भी तैरते हैं। साधारण चौपायों को तैरने में अपने पैरों को प्राय वैसी ही गति देनी पड़ती है जैसी स्थल पर चलने में, जैसे, घोड़ा, गाय, हाथी, कुत्ता आदि। कुछ चौपाए ऐसे भी होते हैं जिन्हें तैरने मे अपनी पूँछ भी हिलानी पड़ती है, जैसे, ऊदबिलाव, गंधबिलाव आदि। कुछ जानवर केवल अपनी पूँछ और शरीर के पिछले भाग को हिलाकर ही बिलकुल मछलियों की तरह तैरते हैं, जैसे, ह्वेल। ऐसे जानवर पानी के ऊपर भी तैरते हैं और अंदर भी। जिन पक्षियों के पैरो में जालियाँ होती हैं, वे जल मे अपने पैरों की सहायता से चलने की भाँति ही तैरते हैं, जैसे, बत्तक, राजहंस आदि। पर दूसरे पक्षी तैरने के लिये जल में उसी प्रकार अपने पर फटफटाते हैं जिस प्रकार उड़ने के लिये हवा मे। साँप, अजगर आदि रेंगनेवाले जानवर जल में अपने शरीर को उसी प्रकार हिलाते हुए तैरते हैं जिस प्रकार वे स्थल मे चलते हैं। कछुए आदि अपने चारों पैरो का सहायता से तैरते हैं। बहुत से छोटे छोटे कीड़े पानी की सतह पर दौड़ते अथवा चित पड़कर तैरते हैं।

तैरय㊁—सर्व० [सं० तव] तेरा। उ०—पच सखी मिली बइठी छइ आइ। तैरय लिखी सखी माँहि सुणाई।—बी० रासो, पृ० ७४।

तैराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तैरना + ई (प्रत्य०)] १. तैरने की क्रिया या भाव। २ वह धन जो तैरने के बदले मे मिले।

तैराक[1]—वि० [हिं० तैरना+आक (प्रत्य०)] तैरनेवाला। जो अच्छी तरह तैरना जानता हो।

तैराक[2]—संज्ञा पुं० तैरने में कुशल व्यक्ति।

तैराना—क्रि० स० [हिं० तैरना का प्रे० रूप] १ दूसरे को तैरने में प्रवृत्त करना। तैरने का काम दूसरे से कराना। २. घुसाना। धँसाना। गोदना। जैसे,—चोर ने उसके पेट में छुरी तैरा दी।

तैरू㊁—वि० [हिं० तैरना] तैराक। तैरनेवाला। उ०—दरिया गुरु तैरू मिलाकर दिया पैले पार।—संतवाणी०, पृ० १२।

तैर्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्य जो तीर्थ में किया जाय।

तैर्थ[2]—वि० तीर्थ संबंधी।

तैर्थिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ शास्त्रकार। जैसे, कपिल, कणाद आदि। २ साधु। संत (को०)। ३ तीर्थस्थान का पवित्र जल (को०)।

तैर्थिक[2]—वि० १. पवित्र। २ तीर्थ से आनेवाला। तीर्थ से संबद्ध। ३ तीर्थों अथवा मंदिरों में जानेवाला (को०)।

तैर्यंगवनिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

तैर्यग्योन—वि० [सं०] तिर्यक् योनि संबंधी [को०]।

तैलंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिङ्ग] १. दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश जिसका विस्तार श्रीशैल से चोल राज्य से मध्य तक था। इसी देश की भाषा तेलुगु कहलाती है।

विशेष—इस देश मे कालेश्वर, श्रीशैल और भीमेश्वर नामक तीन पहाड़ हैं जिनपर तीन शिवलिंग हैं। कुछ लोगो का मत है कि इन्हीं तीनों शिवलिंगो के कारण इस देश का नाम त्रिलिंग पड़ा है, इसका नाम पहले त्रिकलिंग था। महाभारत में केवल कलिंग शब्द आया है। पीछे से कलिंग देश के तीन विभाग हो गए थे जिसके कारण इसका नाम त्रिकलिंग पड़ा। उड़ीसा के दक्षिण से लेकर मदरास के और आगे तक का समुद्रतटस्थ प्रदेश तैलंग या तिलंगाना कहलाता है।

२ तैलंग देश का निवासी।

यौ०—तैलंग ब्राह्मण।

तैलंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलंगा'।

तैलंगी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तैलंग+ई (प्रत्य०)] तैलंग देशवासी।

तैलंगी[2]—संज्ञा स्त्री० तैलंग देश की भाषा।

तैलंगी[3]—वि० तैलंग देश संबंधी। तैलंग देश का।

तैलंपाता—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलम्पाता] स्वधा जिसमे मुख्यत तिल की आहुति दी जाती है [को०]।

तैल—संज्ञा पुं० [सं०] १ तिल, सरसों आदि को पेरकर निकाला हुआ तेल। २. किसी प्रकार का तेल। ३. धूप। गुग्गुल (को०)।

तैलकंद—संज्ञा पुं० [सं० तैलकन्द] तेलियाकंद।

तैलकल्कज—संज्ञा पुं० [सं०] खली [को०]।

तैलकार—संज्ञा पुं० [सं०] तेली (जाति)।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक जाति की स्त्री और कुम्हार पुरुष से बतलाई गई है। दे० 'तेली'।

तैलकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] खली।

तैलकीट—संज्ञा पुं० [सं०] तेलिन नाम का कीड़ा।

तैलक्षौम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र जिसको राख का प्रयोग घाव पर होता है [को०]।

तैलचित्र—संज्ञा पुं० [सं० तैल + चित्र] तैल रंगो से बना हुआ चित्र।

तैलचौरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेलचट्टा [को०]।

तैलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] तेल का भाव या गुण।

तैलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ का एक प्रकार का बड़ा पात्र जो प्राचीन काल मे बनाया जाता था और जिसकी लंबाई आदमी की लंबाई के बराबर हुआ करती थी।

विशेष—इसमें तेल भरकर चिकित्सा के लिये रोगी लिटाए जाते थे और सड़ने से बचाने के लिये मृत शरीर रखे जाते थे। राजा दशरथ का शरीर कुछ समय तक तैलद्रोणी मे ही रखा गया था।

तैलधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य का एक वर्ग जिसके अंतर्गत तीनों प्रकार की सरसों, दोनो प्रकार की राई, अलसी और कुसुम के बीज हैं।

तैलपर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन।

तैलपर्णिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का चंदन। २. लाल चंदन। ३ एक प्रकार का वृक्ष।

तैलपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तैलपर्णी [को०]।

तैलपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सलई का गोंद। २ चंदन। ३. शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य।

तैलपा, तैलपायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेलचट्टा। चपड़ा [को०]।

तैलपायी—संज्ञा पुं० [सं० तैलपायिन्] १. झींगुर। चपड़ा (कीड़ा)। २ तलवार (को०)।

तैलपिंज—संज्ञा पुं० [सं० तैलपिञ्ज] सफेद तिल [को०]।

तैलपिपीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चीटी।

तैलपिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] खली।

तैलपीत—वि० [सं०] जिसने तेल पिया हो [को०]।

तैलपूर—वि० [सं०] (दीपक) जिसमे तेल भरने की आवश्यकता न हो [को०]।

तैलप्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] तेल का दीपक [को०]।

तैलफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंगुदी। २ बहेड़ा। ३ तिलका।

तैलबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तैल + बिन्दु] किसी संक्षिप्त उक्ति को बढ़ा चढ़ाकर कहना। उ०—किसी संक्षिप्त उक्ति को खूब बढ़ाकर ग्रहण करना तैलबिंदु कहा गया है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २९३।

तैलभाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली का पेड़।

तैलमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेल की बत्ती। पलीता।

तैलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तैलयन्त्र] कोल्हू।

तैलरंग—संज्ञा पुं० [सं० तैल + रङ्ग] एक प्रकार का रंग जो तेल में मिलाकर बनाया जाता है और जिस रंग से तैलचित्र बनते हैं।

तैलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी। शतमूली।

तैलसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] शीतल चीनी। कबाब चीनी।

तैलस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंबर नामक गंधद्रव्य। २ तृणमणि। कहरुबा।

तैलस्यंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलस्यन्दा] १ गोकर्णी नाम की लता। मुरहटी। २. काकोली नाम की ओषधि।

तैलांबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलाम्बुका] तेलचट्टा। चपड़ा [को०]।

तैलाक्त—वि० [सं०] जिसमे तेल लगा हो। तैलयुक्त। उ०—उड़ती भीनी तैलाक्त गंध, फूली सरसों पीली पीली।—ग्राम्या, पृ० ३५।

तैलाढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य।

तैलागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] अगर की लकड़ी।

तैलाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बर्रे। भिड़।

तैलाभ्यंग—संज्ञा पुं० [सं० तैलाभ्यङ्ग] शरीर में तेल मलने की क्रिया। तेल की मालिश।

तैलिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] तिलों से तेल निकालनेवाला। तेली।

तैलिक²—वि० तेल संबंधी।

तैलिक यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तैलिक यन्त्र] कोल्हू। उ०—समर तैलिक यंत्र तिल तमीचर निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी।—तुलसी (शब्द०)।

तैलिन—संज्ञा पुं० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०]।

तैलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बत्ती।

तैलिशाला—संज्ञा स्त्री [सं०] वह स्थान जहाँ तेल पेरने का कोल्हू चलता हो।

तैली—संज्ञा पुं० [सं० तैलिन्] तेली।

तैलीन—संज्ञा पुं० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०]।

तैलीशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलिन्शाला] तेल पेरने का स्थान [को०]।

तैल्वक¹—वि० [सं०] लोध की लकड़ी से बना हुआ।

तैल्वक²—संज्ञा पुं० [सं०] लोध।

तैश—संज्ञा पुं० [अ०] आवेशयुक्त क्रोध। गुस्सा।

मुहा०—तैश दिखाना = ऐसा कार्य करना जिससे कोई क्रुद्ध हो। क्रोध चढ़ाना। तैश में आना = क्रुद्ध होना। बहुत कुपित होना।

तैष—संज्ञा पुं० [सं०] चांद्र पौष मास। पौष मास की पूर्णिमा के दिन तिष्य (पुष्य) नक्षत्र होता है, इसी से उसका नाम तैष पड़ा है।

तैषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्य नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी। पूस की पूर्णिमा।

तैस†—वि० [सं० तादृश, प्रा० तइस] दे० 'तैसा'। उ०—पवन जाइ तहँ पहुँचै चहा। मारा तैस टूटि भुइँ बहा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२९।

तैसई(फ)—वि० [हिं० तैस + ई (प्रत्य०)] तैसे ही। वैसे ही। उसी प्रकार के। उ०—तैसई मंत्री अरु सब पुरुष प्रधान।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७०।

तैसहो(फ)—वि० [हिं० तैस + हो (प्रत्य०)] दे० 'तैसई'। उ०—बरिहै बिजैश्री आप हूँ कहूँ श्यामसुंदर तैसहो।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११६।

तैसा—वि० [सं० तादृश, प्रा० तादस] उस प्रकार का। 'वैसा' का पुराना रूप।

तैसील(फ)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तहसील'¹। उ०—मिलिकै बादिसाहूँ का अमल कौ उठाया। ऊ तीन बरस होगा तैसील कूँ न आया।—शिखर०, पृ० २३।

तैसे—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'वैसे'।

तैसों(फ)—वि० [हिं०] दे० 'तैसा'। उ०—रँग रँगीले सँग सखा गन रँगीली नव बधु तैसोई जम्यौ रँगीलो बसंत राग।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६७।

तैसो(फ)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तैसे'। उ०—अंगनि मैं कीनो मृगमद अंगराग तैसो आनन ओढ़ाय लीनो स्याम रंग सारी मैं।—मति० ग्रं०, पृ० ३१३।

त्यौं(फ)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'।

तोंअर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'तोमर'। उ०—सब मंत्री परधान थान पर। गए जहाँ पावासर तोंअर।—पृ० रा०, १।४६४। २. तोमर नामक अस्त्र।

तोंद—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द-तुन्दिल] पेट के आगे का बढ़ा हुआ भाग। पेट का फुलाव। मर्यादा से अधिक फूला या आगे की ओर बढ़ा हुआ पेट।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—तोंद पचकना = (१) मोटाई दूर होना। (२) शेखी निकल जाना।

तोंदल—वि० [हिं० तोंद + ल (प्रत्य०)] तोंदवाला। जिसका पेट आगे की ओर बढ़ा और खूब फूला हुआ हो।

तोंदा¹—संज्ञा पुं० [देश०] तालाब से पानी निकलने का मार्ग।

तोंदा²—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोदा] १. वह टीला या मिट्टी की दीवार, जिसपर तीर या बंदूक चलाने का अभ्यास करने के लिये निशाना लगाते हैं। २ ढेर। राशि। (क्व०)।

तोंदियल—वि० [हिं०] दे० 'तोंदल'।

तोंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डी] नाभि। ढोंढी।

तोंदीला—वि० [हिं०] दे० [वि० स्त्री० तोंदीली] दे० 'तोंदल'।

तोंदूमल—वि० [हिं० तोंदू + मल्ल] दे० 'तोंदल'। उ०—तोंद बना लो, नहीं उल्लू बनाकर निकाल दिए जाओगे या किसी तोंदूमल को पकड़ो।—काया०, पृ० २५१।

तोंदैल—वि० [हिं० तोंद + ऐल] दे० 'तोंदल'।

तोंन(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तौन'। उ०—होत दीर्घ (जो) अत है हुरि सम सब पद तोन।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३३।

तोंबा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा'।

तोंबी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूँबी'।

तोंर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर'। उ०—तहँ तोर तीपन ताकिये, रन बिरद जिनके बाँकिये।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ७।

तो(पु)¹—सर्व० [सं० तव] तेरा।

तो(पु)²—अव्य० [सं० तद्] तब। उस दशा में। जैसे,—(क) यदि तुम कहो तो मैं भी पत्र लिख दूँ। (ख) अगर वे मिलें तो उनसे भी कह देना। उ०—जो प्रभु अवसि पार गा चहहू। तो पद पदुम पखारन कहहू।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पुरानी हिंदी में इस शब्द का, इस अर्थ में प्रयोग प्राय 'जो' के साथ होता था।

तो³—अव्य० [सं० तु] एक अव्यय जिसका व्यवहार किसी शब्द पर जोर देने के लिये अथवा कभी कभी यों ही किया जाता है। जैसे,—(क) आप चलें तो सही, मैं सब प्रबंध कर लूँगा। (ख) जरा बैठो तो। (ग) हम गए तो थे, पर वे ही नहीं मिले। (घ) देखो तो कैसी बहार है?

तो⁴—सर्व० [सं० तव] तुझ। तू का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के समय प्राप्त होता है, जैसे, तोको।

तो⁵—क्रि० अ० [हिं० हतो (= था)] था। (क्व०)। उ०—काल करम दिगपाल सकल जग जाल जासु करतल तो।—तुलसी (शब्द०)।

तोइ(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० तोय] पानी। जल। उ०—दीठ डोरते मोर दिय छिरक रूप रस तोइ। मथि मो घट प्रीतम लिए मन नवनीत बिलोइ।—रसनिधि (शब्द०)।

तोइ(पु)²—अव्य० [सं० तत + अपि] फिर भी। उ०—मारु तोइए कणमणइ साल्ह कुमर बहु साठ।—ढोला०, दू० ६०५।

तोई¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ अंगे या कुरते आदि में कमर पर लगी हुई पट्टी या गोट। २. चादर या दोहर आदि की गोट। ३. लहँगे का नेफा।

तोई(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोय'। उ०—जौं लगि तोई बोले बोले, तौं लगि माया माहीं।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७९।

तोऊ(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तऊ'। उ०—तोऊ दुसग पाइ बहिर्मुख ह्वै रह्यो है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५३।

तोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिशु। अपत्य। लड़का या लड़की। २. श्रीकृष्णचंद्र के एक सखा का नाम।

तोकक—संज्ञा पुं० [सं०] चातक (को०)।

तोकना(पु)—क्रि० स० [?] उठाना। उ०—तेक तोकि तमयो तुरी।—पृ० रा०, ७। १०५।

तोकरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता जो अफीम के पौधों पर लिपटकर उन्हें सुखा देती है।

तोकवत्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तोकवती] पुत्रवान (को०)।

तोकाँ(पु)†—सर्व० [हिं० तो + को] तुमको। तुझे। उ०—औ विधि रूप दीन्ह है तोकाँ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६१।

तोका(पु)—सर्व० [हिं० तो + को] तुझको। तुझे। उ०—करसि बियाह धरम है तोका।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५।

तोक्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंकुर। २. जौ का नया अंकुर। हरा और कच्चा जौ। ४ हरा रंग। ५. बादल। मेघ। ६ कान का मैल।

तोख(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोष' या 'संतोष'। उ०—बिरिरा होइ कंत कर तोखू। किरिरा किहे पाव धनि मोखू।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४।

तोखना(पु)—क्रि० स० [हिं० तोख] प्रसन्न करना। संतुष्ट करना। उ०—तिय ताको पतिवरता अहै। पति हो पोख्यो तोख्यो चहै।—नंद० ग्रं० पृ० २१२।

तोखार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुखार'। उ०—पाँवरि तजहु देहु पग पैरी आवा बाँक तोखार।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०८।

तोगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० तोक'। उ०—ज्ञातिपुत्र सिंह ने एपंस का बना एक महामूल्यवान तोगा पहना था।—वैशाली०, पृ० १२४।

तोछ(पु)—वि० [हिं०] दे० तुच्छ'। उ०—सेना तोछ तपस्या सम्भल।—रा० रू०, पृ० ९५।

तोटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार

सगण (।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ) होते हैं। जैसे,—ससि सो सखियाँ बिनती करतीं। टुक मद न हो पग तो परती। हरि के पद प्रकमि ढूँढन दे। छिन तो टक लाय निहारन दे। २ शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्यों मे से एक। इनका एक नाम नदीश्वर भी था।

तोटका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटका'। उ०—औषध अनेक जंत्र मंत्र तोटकादि किये वादि भए देवता मनाए अधिकाति है।—तुलसी (शब्द०)।

तोटा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटा'। उ०—सौदा सतगुरु सूं किया राम नाम धन काज। लाभ न कोई छेहड़ो तोटा सबही भाज।—राम० धर्म०, पृ० ५२।

तोठौं(पु)—सर्व० [हिं० तो + ठा (प्रत्य०)] तुम्हारा। उ०—हुवमूं सूर तोठौं गौव सोला की लिपावटि।—शिखर०, पृ० १०६।

तोड़—संज्ञा पुं० [हिं० तोडना] १. तोड़ने की क्रिया या भाव (क्व०)। २. किले की दीवारों आदि का वह अंश जो गोले की मार से टूट फूट गया हो। ३. नदी आदि के जल का तेज बहाव। ऐसा बहाव जो सामने पड़नेवाली चीजो को तोड़ फोड़ दे। ४. कुश्ती का वह पेंच जिससे कोई दूसरा पेंच रद्द हो। किसी दाँव से बचने के लिये किया हुआ दाँव। ५ किसी प्रभाव आदि को नष्ट करनेवाला पदार्थ या कार्य। प्रतिकार। मारक। जैसे—अगर वह तुम्हारे साथ कोई पाजीपन करे तो उसका तोड़ हमसे पूछना।

यौ०—तोड जोड़। तोड फोड।

६ दही का पानी। ७ बार। दफा। झोंक। जैसे,—पहुँचते ही वे उनके साथ एक तोड़ लड़ गए।

विशेष—इस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जो बहुत आवेशपूर्वक या तत्परता के साथ किए जाते हैं।

तोड़क—वि० [हिं० तोड + क (प्रत्य०)] तोड़नेवाला। जैसे, जाति पाँत तोड़क मंडल।

तोड़ जोड़—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ + जोड] १ दाँव पेंच। चाल। युक्ति। २ अपना मतलब साधने के लिये किसी को मिलाने और किसी को अलग करने का कार्य। चट्टे बट्टे लडाकर काम निकालना।

क्रि० प्र०—भिड़ाना।—लगाना।

तोड़न—संज्ञा पुं० [सं० तोडनम्] १ फाड़ना। विभाजित करना। २ चिथडे चिथडे करना। ३ आघात या चोट पहुँचाना।

तोड़ना—क्रि० स० [हिं० टूटना] १ आघात या झटके से किसी पदार्थ के दो या अधिक खंड करना। भग्न, विभक्त या खंडित करना। टुकडे करना। जैसे, गन्ना तोडना, लकड़ी तोडना, रस्सी तोडना, दीवार तोड़ना, दावात तोड़ना, बरतन तोडना, बंधन तोड़ना।

विशेष—इस अर्थ मे इस शब्द का व्यवहार प्राय कड़े पदार्थो के लिये अथवा ऐसे मुलायम पदार्थों के लिये होता है जो सूत के रूप मे लंबाई में कुछ दूर तक चले गए हों।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

यौ०—तोड़ा मरोड़ी।

२. किसी वस्तु के अंग को अथवा उसमें लगी हुई किसी दूसरी वस्तु को नोच या काटकर, अथवा और किसी प्रकार से अलग करना। जैसे, पत्ती फूल या फल तोडना, (कोट में लगा हुआ) बटन तोड़ना, जिल्द तोडना, दाँत तोडना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—तोडना = मार डालना। समाप्त कर देना। उ०—उस बाज ने कबूतर को पकड़कर तोड डाला।—कबीर मं०, पृ० ४८५।

३ किसी वस्तु का कोई अंग किसी प्रकार खंडित, भग्न या बेकाम करना। जैसे, मशीन का पुरजा तोडना, किसी का हाथ या पैर तोड़ना। ४. खेत में हल जोतना (क्व०)। ५ सेंध लगाना। ६ किसी स्त्री के साथ प्रथम समागम करना। किसी का कुमारीत्व भंग करना। ७. बल, प्रभाव, महत्व, विस्तार आदि घटाना या नष्ट करना। क्षीण, दुर्बल या अशक्त करना। जैसे,—(क) बीमारी ने उन्हें बिलकुल तोड दिया। (ख) युद्ध ने उन दोनो देशों को तोड दिया। (ग) इस कुएँ का पानी तोड दो। ८ खरीदने के लिये किसी चीज का दाम घटाकर निश्चित करना। जैसे, वह तो १५०) माँगता था पर मैंने तोड़कर १००) पर ही ठीक कर लिया। ९. किसी संगठन, व्यवस्था या कार्यक्षेत्र आदि को न रहने देना अथवा नष्ट कर देना। किसी चलते काम कार्यालय आदि को सब दिन के लिये बंद करना। जैसे, महकमा तोड़ना, कंपनी तोड़ना, पद तोडना, स्कूल तोडना। १० किसी निश्चय या नियम आदि को स्थिर या प्रचलित न रखना। निश्चय के विरुद्ध आचरण करना अथवा नियम का उल्लंघन करना। बात पर स्थिर न रहना। जैसे, ठेका तोडना, प्रतिज्ञा तोड़ना। ११ दूर करना। अलग करना। मिटा देना। बना न रहने देना। जैसे, संबंध तोड़ना, गर्व तोडना, दोस्ती तोडना, सगाई तोड़ना। १२ स्थिर या दृढ़ न रहने देना। कायम न रहने देना। जैसे, गवाह तोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—कलम तोड़ना = दे० 'कलम' के मुहा०। कमर तोड़ना = दे० 'कमर' के मुहा०। किला या गढ़ तोड़ना = दे० 'गढ़' के मुहा०। तिनका तोड़ना = दे० 'तिनका' के मुहा०। पैर तोडना = दे० 'पैर' के मुहा०। मुँह तोड़ना = दे० 'मुँह' के मुहा०। रोटियाँ तोडना = दे० 'रोटी' के मुहा०। सिर तोडना = दे० 'सिर' के मुहा०। हिम्मत तोडना = दे० 'हिम्मत' के मुहा०।

तोड़फोड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोडना + फोड़ना] नष्ट करने की क्रिया। नष्ट करना। खराब करना।

तोड़मरोड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोडना + मरोड़ना] १ तोड़ने मरोड़ने का काम। २. गलत अर्थ लगाना। कुतर्क से भिन्न अर्थ सिद्ध करना।

तोडर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तोडा] एक आभूषण का नाम । उ०—मुद्रिक तोडर दए उतारी ।—०, हिंदी प्रेमगाथा०, पु० १६५ ।

तोड़वाना—क्रि० स० [हिं० तोडना प्रे० रूप] दे० 'तुड़वाना' ।

तोड़ा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तोडना] १ सोने चाँदी आदि की लच्छेदार और चौड़ी जंजीर या सिकडी जिसका व्यवहार आभूषण की तरह पहनने मे होता है ।

विशेष—आभूषण के रूप में बना हुआ तोड़ा कई आकार और प्रकार का होता है, और पैरों, हाथों या गले में पहना जाता है । कभी कभी सिपाही लोग अपनी पगडी के ऊपर चारों ओर भी तोडा लपेट लेते हैं ।

२. रुपए रखने की टाट आदि की थैली जिसमें १०००) रु० आते हैं ।

विशेष—बडी थैली भी जिसमे २०००) रु० आते हैं, 'तोडा' ही कहलाती है ।

मुहा०—(किसी के आगे) तोडे उलटना या गिनना = (किसी को) सैकडों, हजारों रुपए देना । बहुत सा द्रव्य देना ।

३. नदी का किनारा । तट । ४. वह मैदान जो नदी के संगम आदि पर बालू, मिट्टी जमा होने के कारण बन जाता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

५. घाटा । घटी । कमी । टोटा । उ०—तो लाला के लिये दूध का तोड़ा थोडा ही है ।—मान०, भा० ५, पु० १०२ ।

क्रि० प्र०—आना ।—पडना ।

६ रस्सी आदि का टुकडा । ७ उतना नाच जितना एक बार में नाचा जाय । नाच का एक टुकडा । ८ हल की वह लबी लकडी जिसके आगे जूआ लगा होता है । हरिस ।

तोड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड या टोंटा] नारियल की जटा की वह रस्सी जिसके ऊपर सूत बुना रहता था और जिसकी सहायता से पुरानी चाल की तोड़दार बदूक छोडी जाती थी । फलीता । पलीता । उ०—तोडा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बदूकन ।—भारतेंदु ग्र ०, भा० १, पु० ५२४ ।

यौ०—तोड़ेदार बदूक = वह बदूक जो तोड़ा या फलीता दागकर छोड़ी जाय । आजकल इस प्रकार की बदूक का व्यवहार उठ गया है । दे० 'बंदूक' ।

तोड़ा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] १ मिसरी की तरह की बहुत साफ की हुई चीनी जिससे ओला बनाते हैं । कंद । २ वह लोहा जिसे चकमक पर मारने से आग निकलती है । ३ वह भैंस जिसने अभी तक तीन से अधिक बार बच्चा न दिया हो । तीन बार तक ब्याई हुई भैंस ।

तोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुड़ाई' ।

तोड़ाना—क्रि स० [हिं०] दे० 'तुडाना' ।

तोड़ियाँ—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'तोडी' ।

तोड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसों ।

तोण(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० तूण] निषग । तरकस ।

तोत[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोदह् या तूदह् (=ढेर)] १ ढेर । समूह । उ०—घर घर उनही के जुरे बदनामी के तोत । भाजत जे हित खेत तें नेकनाम कब होत ।—(शब्द०) । २. खेत (क्व०) ।

तोत(पु)[2]—संज्ञा पुं० [?] कपट । उ०—पातसाह सुणतां दुख पायो एक हजूर तोत उपजायो ।—रा० रू०, पृ० ३०८ ।

तोतई[1]—वि० [हिं० तोता+ई (प्रत्य०)] सुग्गे जैसा । तोते के रंग का सा । धानी ।

तोतई[2]—संज्ञा पुं० वह रंग जो तोते के रंग का सा हो । धानी रंग ।

तोतरंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो पितपित्ता की सी होती है ।

तोतरा—वि० [हिं०] दे० 'तोतला' ।

तोतरा—वि० [हिं०] दे० 'तोतला' ।

तोतराना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तुतलाना' । उ०—पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई । अतिसै सुख जाते तोहि मोहि कछु समुझाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तोतरि(पु)—वि० स्त्री० [हिं० तोतराना] दे० 'तोतला' । उ०—लरिकाई लटपट जग खेला । तोतरि बात मात संग बोला ।—घट०, पृ० ३७ ।

तोतला—वि० [हिं० तुतलाना] १ वह जो तुतलाकर बोलता हो अस्पष्ट बोलनेवाला । जैसे, तोतला बालक । २ जिसमे उच्चारण स्पष्ट न हो । जैसे, तोतली जबान ।

तोतलाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तुतलाना' ।

तोतली—वि० [हिं० तोतलाना] दे० 'तोतला' । उ०—बिना हुआ मुख कज, मजु दशनावली, अरुण अधर, फलकठ तोतली काकली ।—शकु० पृ० ४८ ।

तोता—संज्ञा पुं० [फा०] १. एक प्रसिद्ध पक्षी जिसके शरीर का रंग हरा और चोंच का लाल होता है । कीर । सुआ ।

विशेष—इसकी दुम छोटी होती है और पैरों में दो आगे और दो पीछे इस प्रकार चार उँगलियाँ होती हैं । ये आदमियों की बोली की बहुत अच्छी तरह नकल करते हैं, इसलिये लोग इन्हें घर में पालते हैं और 'राम राम' या छोटे मोटे पद सिखलाते हैं । ये फल या मुलायम अनाज खाते हैं । तोते की छोटी, बड़ी सैकडों जातियाँ होती हैं जिनमे से अधिकांश फलाहारी और कुछ मासाहारी भी होती हैं । तोते साधारण छोटी चिडियों से लेकर तीन फुट तक की लंबाई के होते हैं । कुछ जातियों के तोतो का स्वर तो बहुत मधुर और प्रिय होता है और कुछ का बहुत कटु तथा अप्रिय । इनमे नर और मादा का रंग प्राय एक सा ही होता है । अमेरिका मे बहुत अधिक प्रकार के तोते पाए जाते हैं । हीरामन, काकिक, नूरी, काकातुआ आदि तोते की जाति के ही हैं । तीतर, मुरगे, मोर, कबूतर आदि पक्षी जिस स्थान पर बहुत दिनो तक पाले जाते हैं यदि कभी लड़कर इधर उधर चले जायँ तो प्राय फिर लौटकर उसी स्थान पर आ जाते हैं पर साधारण तोते छूट जाने पर फिर

अपने पालनेवाले के पास प्रायः नहीं आते। इसलिये तोतों की बेमुरौवती मशहूर है।

मुहा०—हाथों के तोते उड़ जाना = बहुत घबरा जाना। सिर पीटा जाना। तोते की तरह आँखें फेरना या बदलना = बहुत बेमुरौवत होना। तोते की तरह पढ़ना = बिना समझे बूझे रटना। तोता पालना = किसी दोष, दुर्व्यसन या रोग को जान बूझकर बढ़ाना। किसी बुराई या बीमारी से बचने का कोई प्रयत्न न करना।

यौ०—तोताचश्म। तोताचश्मी।

२ बंदूक का घोड़ा।

तोताचश्म—संज्ञा पुं० [फ़ा०] तोते की तरह आँख फेर लेनेवाला। वह जो बहुत बेमुरौवत हो।

तोताचश्मी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तोताचश्म + ई० (प्रत्य०)] बेमुरौवती। बेवफाई।

मुहा०—तोताचश्मी करना = बेमुरौवत होना। बेवफाई करना। उ०—यकीन नहीं आता कि आजाद न आएँ और ऐसी तोताचश्मी करें।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २८।

तोतापंखी—वि० [हिं० तोता + पंख + ई (प्रत्य०)] तोते के पंखों जैसे पीत वर्ण का। पीताभ। उ०—तोतापंखी किरनों में हिलती बाँसों की टहनी। यहीं बैठ कहती थी तुमसे सब कहना अनकहनी।—ठंडा०, पृ० २०।

तोती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तोता] १ तोते की मादा। उ०—बोलहि सुक सारिक पिक तोती। हरिहर चातक पोत कपोती।—नंद० ग्रं०, पृ० ११६। २. रखी हुई स्त्री। उपपत्नी। रखनी। सुरैतिन। (क्व०)।

तोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह छड़ी या चाबुक आदि जिसकी सहायता से जानवर हाँके जाते हैं।

तोत्रवेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के हाथ का दंड।

तोथी(पु)—अव्य० [हिं०] वही। उ०—लाहो लेता जनम गो तुम करे तिसी तोथी होई।—बी० रासो, पृ० ४४।

तोद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीड़ा। व्यथा। उ०—आनंदघन रस बरसि बहायो जनम जनम को तोद।—घनानंद, पृ० ४८६। २. सूर्य (को०)। ३ चलाना। हाँकना (को०)।

तोद[2]—वि० पीड़ा पहुँचानेवाला। कष्टदायक।

तोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोत्र। चाबुक, कोड़ा, चमोटी आदि। २ व्यथा। पीड़ा। ३ एक प्रकार का फलदार पेड़ जिसके फल को वैद्यक में कसैला, मीठा, रूखा तथा कफ और वायुनाशक माना है।

तोदरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फारस में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा कँटीला पेड़ जिसमें पतले छिलकेवाले फूल लगते हैं।

विशेष—इसके बीज भटकटैया के बीजों की तरह चपटे पर उससे कुछ बड़े होते हैं और औषध के काम में आने के कारण भारत के बाजारों में आकर बिकते हैं। ये बीज तीन प्रकार के होते हैं—लाल, सफेद और पीले। तीनों प्रकार के बीज बहुत रक्तशोधक, पौष्टिक और बलवर्धक समझे जाते हैं। कहते हैं, इनके सेवन से शरीर का रंग खूब निखरता है और चेहरे का रंग लाल हो जाता है।

तोदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का ख्याल (संगीत)।

तोन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूण'। उ०—हनुमान हथ्यं संदेस सु कथ्यं। धरे पिट्ठ तोन खग्गी बीर सथ्यं।—पृ० रा०, २।२६७।

तोनि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूण'। उ०—कर खग्ग धनुष कटि लसै तोनि।—ह० रासो०, पृ० १२।

तोप—संज्ञा स्त्री० [तु०] एक प्रकार का बहुत बड़ा अस्त्र जो प्राय दो या चार पहियों की गाड़ी पर रखा रहता है और जिसमें ऊपर की ओर बंदूक की नली की तरह एक बहुत बड़ा नल लगा रहता है। इस नल में छोटी गोलियों या मेखों आदि से भरे हुए गोल या लंबे गोले रखकर युद्ध के समय शत्रुओं पर चलाए जाते हैं। गोले चलाने के लिये नल के पिछले भाग में बारूद रखकर पलीते आदि से उसमें आग लगा देते हैं। उ०—छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४०।

विशेष—तोपें छोटी, बड़ी, मैदानी, पहाड़ी और जहाजी आदि अनेक प्रकार की होती हैं। प्राचीन काल में तोपें केवल मैदानी और छोटी हुआ करती थीं और उनको खींचने के लिये बैल या घोड़े जोते जाते थे। इसके अतिरिक्त घोड़ों, ऊँटों या हाथियों आदि पर रखकर चलाने योग्य तोपें अलग हुआ करती थीं जिनके नीचे पहिए नहीं होते थे। आजकल पाश्चात्य देशों में बहुत बड़ी बड़ी जहाजी, मैदानी और किले तोड़नेवाली तोपें बनती हैं जिनमें से किसी किसी तोप का गोला ७५-७५ मील तक जाता है। इसके अतिरिक्त बाइसिकिलों, मोटरों और हवाई जहाजों आदि पर से चलाने के लिये अलग प्रकार की तोपें होती हैं। जिनका मुँह ऊपर की ओर होता है, उनसे हवाई जहाजों पर गोले छोड़े जाते हैं। तोपों का प्रयोग शत्रु की सेना नष्ट करने और किले या मोरचेबंदी तोड़ने के लिये होता है। राजकुल में किसी के जन्म के समय अथवा इसी प्रकार की और किसी महत्वपूर्ण घटना के समय तोपों में खाली बारूद भरकर केवल शब्द करते हैं।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—छूटना।—छोड़ना।—दगना।—दागना।—भरना।—मारना।—सर करना।

यौ०—तोपची। तोपखाना।

मुहा०—तोप कीलना = तोप की नाली में लकड़ी का कुंदा खूब कसकर ठोंक देना जिससे उसमें से गोला न चलाया जा सके। [प्राचीन काल में मौका पाकर शत्रु की तोपें अथवा भागने के समय स्वयं अपनी ही तोपें इस प्रकार कील दी जाती थीं।] तोप की सलामी उतारना = किसी प्रसिद्ध पुरुष के आगमन पर अथवा किसी महत्वपूर्ण घटना के समय बिना गोले के केवल बारूद भरकर शब्द करना। तोप के मुँह पर छोड़ना = बिलकुल निराश्रित छोड़ देना। खतरे के स्थान पर छोड़ना। उ०—फिर तुम उस बेचारी को अकेली तोप के मुँह पर छोड़ आए हो।—रति०, पृ० ४४। तोप के मुँह पर रखकर

उड़ाना = बहुत कठिन दंड या प्राणदंड देना। तोप के मुहरे पर उड़ा देना = दे० 'तोप के मुँह पर रखकर उड़ाना'। उ०—ऐसी बद औरतों को तोप के मुहरे पर उड़ा दे बस।—सैर कु० पृ० १८। तोप दम करना = दे० 'तोप के मुँह पर रखकर उड़ाना'। किसी पर या किसी के सामने तोप लगाना = किसी वस्तु को उड़ाने के लिये तोप का मुँह उसकी ओर करना।

तोपखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोप + खानह्] १ वह स्थान जहाँ तोपें और उनका कुल सामान रहता हो। २ गोलों और सामान की गाड़ियों आदि के सहित युद्ध के लिये सुसज्जित चार से आठ तोपों तक का समूह।

तोपची—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोप + ची (प्रत्य०)] तोप चलानेवाला। वह जो तोप में गोला भरकर चलाता हो। गोलंदाज।

तोपचीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चोबचीनी'।

तोपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का कबूतर। २ एक प्रकार की मक्खी।

तोपना†—क्रि० स० [देश०] नीचे दबाना। ढाँकना। छिपाना।

तोपवाना†—क्रि० स० [हिं० तोपना प्रे० रूप] तोपने का काम दूसरे से कराना। ढँकवाना। छिपवाना।

तोपा—संज्ञा पुं० [हिं० तुरपना] एक टाँके में की हुई सिलाई।

मुहा०—तोपा भरना = टाँके लगाना। सीना। सीधी सिलाई करना।

तोपाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना] १ तोपने की क्रिया या भाव। २ तोपने की मजदूरी।

तोपाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तोपवाना'।

तोपास—संज्ञा पुं० [देश०] झाड़ू देनेवाला। झाड़ूबरदार।

तोपी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोपी'।

तोफ़ु—संज्ञा पुं० [फा० तुफ (अव्य०)] दुःख। पश्चात्ताप। अफसोस। उ०—तालिब मतलूब को पहुँचे तोफ करे दिल अंदर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

तोफगी—संज्ञा स्त्री० [फा० तोह्फा] तोफा या उम्दा होने का भाव। खूबी। अच्छापन।

तोफाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोप'। उ०—दगै तोफाँ वहै गोला रोहला मोरछा दोला।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १२७।

तोफा¹†—वि० [अ० तोह्फा] बढ़िया।

तोफा²—संज्ञा पुं० दे० 'तोहफा'।

तोफानु—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूफान'। उ०—साहिब वह कहाँ है कहीं फिर नहीं है, हिंदू और तुरुक तोफान करता।—सं० दरिया, पृ० २७।

तोबड़ा—संज्ञा पुं० [फा० तोबरा या तुबरा] चमड़े या टाट आदि का वह थैला जिसमें दाना भरकर घोड़े के खाने के लिये उसके मुँह पर बाँध देते हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

मुहा०—तोबड़ा चढ़ाना = बोलने से रोकना। मुँह बंद करना।

तोबा—संज्ञा स्त्री० [अ० तौबह्] अपने किए पापों या दुष्कृत्यों आदि का स्मरण करके पश्चात्ताप करने और भविष्य में वैसा पाप या दुष्कृत्य न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा। किसी कार्य को विशेषत अनुचित कार्य को भविष्य में न करने की शपथपूर्वक दृढ़ प्रतिज्ञा। उ०—लखे जग लोक दुखदाई नग्न तोबा हाय हाई।—सं० तुरसी०, पृ० ४४।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार कभी कभी किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति घृणा प्रकट करने के समय भी होता है।

मुहा०—तोबा तिल्ला करना या मचाना = रोते, चिल्लाते या दीनता दिखलाते हुए तोबा करना। तोबा तोड़ना = प्रतिज्ञा भंग करना। जिस काम से तोबा कर चुके हों, उसे फिर करना। तोबा करके (कोई बात) कहना = अभिमान छोड़कर अथवा ईश्वर से डरकर (कोई बात) कहना। तोबा बुलवाना = किसी को इतना तंग या विवश करना कि उसे तोबा करनी पड़े। पूर्ण रूप से परास्त करना। ची बुलवाना।

तोम—संज्ञा पुं० [सं० स्तोम] समूह। ढेर। उ०—(क) जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो महामीन बास तिमि तोमनि को थल भो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दिनकर के उदय तोम तिमिर फटत।—तुलसी (शब्द०)। (ग) चहुँ घां तें महा तरपै बिजुरी तम तोम में आपु तमासे करै।—किशोर (शब्द०)।

तोमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे 'तूमड़ी'।

तोमर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाले की तरह एक प्रकार का अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था। इसमें लकड़ी के डंडे में आगे की ओर लोहे का बड़ा फल लगा रहता था। शर्पला। शावल। २ बारह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में एक गुरु और एक लघु होता है। जैसे, तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल। कोप्यो समर श्रीराम। चले विशिख निसित निकाम।—तुलसी (शब्द०)। ३ एक देश का नाम जिसका उल्लेख कई पुराणों में है। ४. इस देश का निवासी। ५ राजपूत क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका राज्य दिल्ली में आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक था।

विशेष—प्रसिद्ध राजा अनंगपाल (पृथ्वीराज के नाना) इसी वंश के थे। पीछे से तोमरों ने कन्नौज को अपना राजनगर बनाया था। कन्नौज में इस वंश के प्रसिद्ध राजा जयपाल हुए थे। आजकल इस वंश के बहुत ही कम क्षत्रिय पाए जाते हैं।

तोमरग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] तोमरधारी सैनिक [को०]।

तोमरधर—संज्ञा पुं० [सं०] १ 'तोमरग्रह'। २ अग्नि [को०]।

तोमरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुवरिका'।

तोमरीु—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'तूमड़ी'। २ कड़ुआ कद्दू।

तोमाु—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा'। उ०—मेहर का जामा और तोमा भी मेहर का। मेहर का आपा इस दिल को पिलाइए।—मलूक०, पृ० ३१।

तोय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल। पानी। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

तोय(पु)[2]—अव्य० [हिं० तो] तो भी। फिर भी। उ०—चहुवांणी कुल चल्लणी, वियो न चल्लै कोय। चाड न घट्टै बूंद की सीस पलट्टै तोय।—रा० रू०, पृ० ११६।

तोय[3]—सर्व० [हिं० तो] दे० 'तुझे'। उ०— मैं पठई वृषभानु के, करनि सगाई तोय।—नंद० ग्रं० पृ० १९५।

तोयकर्म—संज्ञा पुं० [सं० तोयकर्मन्] तर्पण।

तोयकाम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बेंत जो जल के समीप उत्पन्न होता है। वानीर।

तोयकाम[2]—वि० १. जल चाहनेवाला। २. प्यासा (को०)।

तोयकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० तोयकुम्भ] सेवार।

तोयकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

विशेष—इसमें जल के सिवा और कुछ आहार ग्रहण नहीं किया जाता। यह व्रत एक महीने तक करना होता है।

तोयक्रीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तोयक्रीडा] जल मे खेल करना। जलक्रीड़ा (को०)।

तोयगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल (को०)

तोयचर—संज्ञा पुं० [सं०] जलचर (को०)।

तोयडिंब—संज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्ब] ओला। पत्थर। करका।

तोयडिंभ—संज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्भ] दे० 'तोयडिंब' (को०)।

तोयद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ नागरमोथा। ३ घी। ४ वह जो जल दान करता हो (जलदान का माहात्म्य बहुत अधिक माना जाता है।)

तोयद[2]—वि० जल देनेवाला।

तोयदागम—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।

तोयदात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु (को०)।

तोयधर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

तोयधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। २ मोथा। ३ वर्षा (को०)।

तोयधि—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। सागर। २. चार की संख्या (को०)।

तोयधिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।

तोयनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। सागर। २ चार की संख्या (को०)।

तोयनीवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

तोयपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला।

तोयपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली।

तोयपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष। पाँडर।

तोयप्रष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष। पाँडर (को०)।

तोयप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तोयप्रसादनफल'।

तोयप्रसादनफल—संज्ञा पुं० [सं०] निर्मली।

तोयफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरबूज या ककड़ी आदि की बेल।

तोयमल—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र का फेन (को०)।

तोयमुच्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। २ मोथा।

तोययंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तोययन्त्र] १ जलघड़ी। २ फौवारा (को०)।

तोयरस—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रता। नमी (को०)।

तोयराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ वरुण (को०)।

तोयराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २. तालाब या झील (को०)।

तोयवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेले की बेल।

तोयवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

तोयवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल का किनारा। तीर। तट (को०)।

तोयव्यतिकर—संज्ञा पुं० [सं०] संगम। जैसे, नदियों का (को०)।

तोयशुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीपी (को०)।

तोयशूक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार (को०)।

तोयसर्पिका—संज्ञा पुं० [सं०] मेंढ़क (को०)।

तोयसूचक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष में वह योग जिसमें वर्षा होने की सूचना मिले। २ मेढक (को०)।

तोयांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तोयाञ्जलि] दे० 'तोयकर्म' (को०)।

तोयाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाडव अग्नि (को०)।

तोयात्मा—संज्ञा पुं० [सं० तोयात्मन्] ब्रह्म (को०)।

तोयाधार—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करिणी। तालाब।

तोयाधिवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष।

तोयालय—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर (को०)।

तोयाशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ झील। २ कुआँ कूप। ३ जलसंग्रह (को०)।

तोयेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ वरुण। २ शतभिषा नक्षत्र। ३. पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

तोयोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा (को०)।

तोर[1]—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] अरहर।

तोर(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोड़'। उ०—आदि चहुआण रजपूतों का तोर। पाछै मुसलमान बादसाही का जोर।—शिखर०, पृ० ५५।

तोर(पु)†[3]—वि० [हिं०] दे० 'तेरा'।

तोर(पु)[4]—संज्ञा स्त्री० [अ० तौर] तौर। तरीका। ढंग। उ०—तो राखे सिर पर तिको, तज जबरी रा तोर।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ११५।

तोरई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई'।

तोरकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की वनस्पति जो भारत के गरम प्रदेशों और लका मे प्राय. घास के साथ होती है।

विशेष—पश्चिमी भारत मे अकाल के दिनो मे गरीब लोग इसके दानों आदि की रोटियाँ बनाकर खाते थे।

तोरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी घर या नगर का बाहरी फाटक। बहिर्द्वार। विशेषत वह द्वार जिसका ऊपरी भाग मडपाकार तथा मालाओं और पताकाओं आदि से सजाया गया हो। उ०—स्वच्छ सुदर और विस्तृत घर बने, इद्रधनुषाकार तोरण हैं तने।—साकेत, पृ० ३। २. वे मालाएँ आदि जो

सजावट के लिये खंभों और दीवारों आदि में बाँधकर लटकाई जाती हैं। वंदनवार। ३ ग्रीवा। गला। ४ महादेव।

तोरणमाल—संज्ञा पुं० [सं०] अवंतिका पुरी।

तोरणस्फटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्योधन की उस सभा का नाम जो उसने पांडवों की मय दानववाली सभा देखकर ईर्ष्यावश बनवाई थी।

तोरनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोरण'।

तोरन तेगाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ना+तेगा] एक प्रकार का तेगा। उ०—तुरकन के तेगा तोरन तेगा सकल सुवेगा रुधिर भरे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

तोरना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तोड़ना'। उ०—काहे को लगायो सनेहिया रे अब तोरलो न जाय।—पलटू०, पृ० ८२।

तोरयⓅ—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—खुले सुभाग्य मोरयं, लह्यो दरस्स तोरय।—ह० रासो, पृ० १३।

तोरश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० तोरश्रवस्] अंगिरा ऋषि का एक नाम।

तोराँⓅ—सर्व० [हिं०] दे० 'तोरा'। उ०—नानक वगोयद जी तोराँ तिरा चाकरा पारवाक।—कबीर मं०, पृ० ४११।

तोराⓅ[1]—संज्ञा पुं० [फा० तुर्रह्] तुर्रा। कलगी।

तोराⓅ†[2]—सर्व०[हिं०]दे० 'तेरा'। उ०—अलकाउर मुरि मुरि गा तोरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १४३।

तोराईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वरा+हिं० ई (प्रत्य०)] वेग। शीघ्रता। तजी।

तोरादारⓅ—वि० [हिं० तोड़ा (=आभूषण)+फ़ा० दार] तोड़ेदार। मध्ययुग के वे ताजीमी सरदार या मनसबदार, जिन्हें बादशाह सम्मानार्थ पैरों में पहनने के लिये सोने के तोड़े या कड़े प्रदान करता था। श्रेष्ठ। प्रतिष्ठित। उ०—तोरादार सकल तिहारे मनसवदार।—भूषण ग्रं०, पृ० २७७।

तोरानाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तुड़ाना'।

तोरावतीⓅ—वि० [हिं०] वेगवाली। उ०—विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।—तुलसी (शब्द०)।

तोरावान्Ⓟ†—वि० [सं० त्वरावत्] [वि०स्त्री० तोरावती] वेगवान्। तेज।

तोरिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरी] गोटा किनारी आदि बुननेवालों का लकड़ी का वह छोटा बेलन जिसपर वे बुना हुआ गोटा पट्टा और किनारी आदि बराबर लपेटते जाते हैं।

तोरिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोरना (=तोड़ना)+इया (प्रत्य०)] १ वह गाय या भैंस जिसका बच्चा मर गया हो और जिसका दूध दुहने के लिये कोई युक्ति करनी पड़ती हो।

तोरिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसों। तोरी।

तोरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई'।

तोरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

तोरी[3]—सर्व० [हिं०] दे० 'तेरा'। उ०—कहै धर्मदास कर जोरी। चलो जहँ देस है तोरी।—धरम० श०, पृ० ६।

तोल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोला (तौल) जो ८० रत्ती के बराबर होता है। २ तौल। वजन।

तोल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] नाव का डाँड़ा। (लश०)।

तोलⓅ[3]—वि० [हिं०] दे० 'तुल्य'। उ०—साने कोने आवे बुझए बोल मदने पाओल आपन तोल।—विद्यापति, पृ० १२०।

तोलक—संज्ञा पुं० [सं०] तोला (तौल)। बारह माशे का वजन।

तोलन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तौलने की क्रिया। २. उठाने की क्रिया।

तोलन[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्तोलन] वह लकड़ी जो छत के नीचे सहारे के लिये लगाई जाती है। चाँड़।

तोलना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तौलना'। उ०—लोचन मृग सुभग जोर राग रूप भए भोर भौंह धनुष घर कटाक्ष सुरति व्याध तोले री।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—तोल तोलकर बोलना=दे० 'तौल तौलकर बोलना'। उ०—मत वक्ता अपनी बातों को तोल तोलकर नहीं बोलता।—शैली, पृ० ४६।

तोलवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तौलवाना'।

तोला—संज्ञा पुं० [सं० तोलक] १ एक तौल जो बारह माशे या छानवे रत्ती की होती है। २. इस तौल का बाट।

तोलाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तौलाना'।

तोलिⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोला'। उ०—पच तोलि पच मुहरै सु मानि।—ह० रासो, पृ० ६०।

तोलिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तौलिया'।

तोली—वि० [हिं० तुलना] तुली हुई। उ०—यह आँख कही कुछ बोली। यह हुई श्याम की तोली।—अर्चना, पृ० ३८।

तोल्य[1]—वि० [सं०] जिसे तौला जाय [को०]।

तोल्य[2]—संज्ञा पुं० तौलना। तौलने की क्रिया [को०]।

तोवालाँⓅ—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—अरध भूप दरसे तोवालाँ अवनी मोहे रूप उद्योत।—रघु० रू० पृ० २४६।

तोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा। २ हिंसा करनेवाला। हिंसक।

तोशक—संज्ञा स्त्री० [तु०] दोहरी चादर या खोल में रूई, नारियल की जटा आदि भरकर बनाया हुआ गुदगुदा बिछौना। हलका गद्दा।

यौ०—तोशकखाना।

तोशकखाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशाखाना'।

तोशदान—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोशदान] १ वह थैली आदि जिसमें मार्ग के लिये यात्री, विशेषत सैनिक अपना जलपान आदि या दूसरी आवश्यक चीजें रखते हैं। २. चमड़े का वह छोटा बक्स या थैली जो सिपाहियों की पेटी में लगी रहती है और जिसमें कारतूस रहता है।

तोशल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषल'। उ०—विदित है बल वज्र शरीरता विकटता पल तोशल कूट की।—प्रिय०, पृ० ११।

तोशा¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोशह्] १. वह खाद्य पदार्थ जो यात्री मार्ग के लिये अपने साथ रख लेता है।

यौ०—तोशे आकबत = पुण्य। धर्माचरण (जिसमें परलोक बने)।
२ साधारण खाने पीने की चीज। जैसे, तोशा से भरोसा।

तोशा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे गाँव की स्त्रियाँ बाँह पर पहनती हैं।

तोशाखाना—संज्ञा पुं० [तु० तोषक + फ़ा० खानह्] वह बड़ा कमरा या स्थान जहाँ राजाओं और अमीरों के पहनने के बढ़िया कपड़े और गहने आदि रहते हों। वस्त्रों और आभूषणों आदि का भंडार। उ०—जो राजा अपने दफ्तर या खजाने, तोशेखाने को कभी नहीं सम्हालते, जो राजा अपने बड़ों की धरोहर शस्त्रविद्या को जड़ मूल से भूल गए, उनके जीवन पर धिक्कार है।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० ८५।

तोष¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अघाने या मन भरने का भाव। तुष्टि। संतोष। तृप्ति। २ प्रसन्नता। आनंद। ३ भागवत के अनुसार स्वायंभुव मन्वंतर के एक देवता का नाम। ४. श्रीकृष्णचंद्र के एक सखा नाम।

तोष²—वि० [सं० तय] अल्प। थोड़ा। -(अनेकार्थ०)।

तोषक—वि० [सं०] संतुष्ट करनेवाला। तोष देने या तृप्त करनेवाला।

तोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ तृप्ति। संतोष। २ संतुष्ट करने की क्रिया या भाव।

तोषणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

तोषना⑤—क्रि० स० [सं० तोष] १ संतुष्ट करना। तृप्त करना। उ०—प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति विवेक धर्म जुत रचना।—मानस, १।७७। २ संतुष्ट होना। तृप्त होना।

तोषपत्र —संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें राज्य की ओर से जागीर मिलने का उल्लेख रहता है। बख्शिशनामा।

तोषल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कंस के एक असुर मल्ल का नाम जिसे धनुर्यज्ञ में श्रीकृष्ण ने मार डाला था। २ मूसल।

तोषार— संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुखार'। उ०—तुरुक तोषारहिं चलल हाट भमि हेडा मगइ।—कीर्ति०, पृ० ४८।

तोषित—वि० [सं०] जिसका तोष हो गया हो, अथवा जिसे तृप्त किया गया हो। तुष्ट। तृप्त।

तोषी —वि० [सं० तोषिन्] १ जिससे संतुष्ट हुआ जाय। २ संतुष्ट करनेवाला। प्रसन्न करनेवाला। (विशेषत समासांत में प्रयुक्त)।

तोस⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोष'। उ०— सूर घपाए खुज्जडी तो डरपावे तोस।—रा० रू०, पृ० ७६।

तोसक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशक'। उ०—गुन कर पलँग ज्ञान कर तोसक सुरत तकिया लगावो। जो सुख चाहो सोई सतमहल बहुर दुक्ख नहिं पावो।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०।

तोसदान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशदान'। उ०—तोसदान चकमक पचहा गोलीन भरानी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३।

तोसय⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोशक'। उ०—गरम्म रूम तोसयं ढके पलग पोसयं।—पृ० रा०, १७। ५४।

तोसल⑤†—संज्ञा पुं० [सं० तोषल] दे० 'तोषल'।

तोसा⑤†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशा'। उ०—कुछ गाँठि खरची मिहर तोसा खैर खुबीहा थीर बे।—रै० बानी, पृ० ३३।

तोसाखाना—संज्ञा पुं०[हिं०] दे० 'तोशाखाना'। उ०—तेरे काज गजी गज चारिक, भरा रहै तोसाखाना।—मलूक बानी०, पृ० ७।

तोसागार⑤†—संज्ञा पुं० [हिं० तोस + सं० आगार] दे० 'तोशाखाना'।

तोसौं⑤—सर्व[हिं० तो + सौं]तुमसे। उ०—यहाँ तोसौं नद लाडिले झगरौंगी। मेरे सग की दूरि जाति हैं मटुकी पटकि कै झगरौंगी।—नद० ग्र०, पृ० ३६१।

तोहफगी—संज्ञा स्त्री० [अ० तोहफह् + फा० गी (प्रत्य०)] भलाई। अच्छापन। उम्दगी।

तोहफा¹—संज्ञा पुं०[अ० तोहफ़ह्]सौगात। उपायन। भेंट। उपहार।

तोहफा²—वि० अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

तोहमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] मिथ्या अभियोग। वृथा लगाया हुआ दोष। झूठा कलक।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—देना।—धरना।—लगाना।—लेना।

मुहा०—तोहमत का घर या हट्टी = वह कार्य या स्थान जिसमें वृथा कलक लगने की संभावना हो।

तोहमती—वि० [अ० तोहमत + फ़ा० ई (प्रत्य०)] झूठा अभियोग लगानेवाला।

तोहरा†—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—हमहुँ सग सब तोहरे पायन।—कबीर सा०, पृ० ५३१।

तोहार‡—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'।

तोहि†—सर्व० [हिं० तू या तै] १ तुझको। तुझे। २ तुम्हारा। उ०—हिव मालवणी वीनवइ, हूँ प्रिय दासी तोहि।—ढोला०, दू० ३४१।

तोहे⑤—सर्व० [हिं०] दे० 'तोहि'। उ०—चरण भलि नहि तुम रीति एहि मति तोहे कलक लागल।—विद्यापति, पृ० २३०।

तौं⑤¹—अव्य० [हिं०] दे० 'तउ'। उ०—तौं लौं रहि प्यारी जौं लौं लाल ही ले आऊँ।—नद ग्र०, पृ० ३७१।

तौं⑤²—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'। उ०—ऐसे प्रभु पै कौन हँकारे। तौं तौं बढ़ै गुपाल पियारे।—नद० ग्र०, पृ० १९२।

तौंकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तौंसना'।

तौंवर⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर'। उ०—लोहाया तौंवर अभंग मुहर सब्ब सामत।—पृ० रा०, ४। १९।

तौंसा†—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव + ऊष्म, हिं० ऊमस, औस] वह प्यास जो धूप खा जाने के कारण लगे और किसी भाँति न बुझे।

तौंसना—क्रि० अ० [हिं० तौंस] १ गरमी से झुलस जाना। गरमी के कारण संतप्त होना। २ प्यासा होना। पिपासित होना।

तौंसा¹—सं० पु० [सं० ताप, हिं० ताव+सं० ऊष्म, हिं० ऊमस, औंस] अधिक ताप। कड़ी गरमी।

तौ⑤¹—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तो'।

तौ²—क्रि० म० [हिं० हतो] था। उ०—वेऊ माए द्वारे हूँ हुती मगवारे मौर द्वारे मगवारे कोऊ तौ न तिहि काल मैं।—पद्माकर (शब्द०)।

तौक—संज्ञा पुं० [म० तौक़] १ हँसुली के माकार का गले मे पहनने का एक प्रकार का गहना। यह पटरी की तरह कुछ चौडा होता है मौर इसके नीचे घुँघरू मादि लगे होते हैं।

विशेष—प्राय मुसलमान लोग मपने बच्चो को इसी प्रकार का चाँदी का घेरा या गंडा भी पहनाते हैं जिसमें तावीज मादि बँधी होती है। कभी कभी यह केवल मन्नत पूरी करने के लिये भी पहनाया जाता है।

२ इसी माकार की पर तौल में बहुत भारी वृत्ताकार पटरी या मँडरा जिसे मपराधी या पागल के गले मे इसलिये पहना देते हैं जिसमें वह मपने स्थान से हिल न सके।

३ इसी प्रकार का वह प्राकृतिक चिह्न जो पक्षियों मादि के गले में होता है। हँसुली। ४ पट्टा। चपरास। ५ कोई गोल घेरा या पदार्थ।

तौकीर—संज्ञा स्त्री० [म० तौकीर] समान। प्रतिष्ठा। इज्जत। उ०—इस सत्यगुरु की खादिम तौकीर में देखो।—कबीर म०, पृ० ४६७।

तौके गुलामी—संज्ञा पुं० [म० तौकेगुलामी] गुलाम होने की धिक्कार [को०]।

तौक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] धनुराशि।

तौचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे कही कही देहाती स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं।

तौजा¹—संज्ञा पुं० [म० तौजी] वह द्रव्य जो खेतिहरों को विवाहादि में खर्च करने के लिये पेशगी दिया जाता है। तिमाही।

तौजा²—वि० हाथ उधार। दस्तगर्दा।

तौजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताजियागीरी। मुहर्रम मनाना। उ०—तौजी मौर निमाज न जानूँ ना जानूँ धरि रोजा।—मलूक०, पृ० ७।

तौतातिक—वि० [सं०] कुमारिल भट्ट से सबद्ध या सबध रखनेवाला।

विशेष—कुमारिल भट्ट का विशेषण तुतात या तुतातित था।

तौतातित—संज्ञा पुं० [सं०] १ जैनियों का भेद। २ कुमारिल भट्ट का एक नाम।

तौतिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुक्ता। मोती। २ मोती का सीप। शुक्ति।

तौन¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह रस्सी जिससे गैया दुहने के समय उसका बछडा उसके मगले पैर से बाँध दिया जाता है।

तौन²—सर्व० [सं० ते] वह। सो। उ०—उनकी छाया सबको भाई। तौन छाँह सब घटहि समाई।—कबीर सा०, पृ० ६१०।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दो वाक्यों का सबध पूरा करने के लिये 'जोन' के साथ होता है।

तौन⑤³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूण'। उ०—चढ़ि नरिंद कमधज्ज तौन तन सज्जन वारो।—पृ० रा०, २६।१६।

तौना†—वि० [हिं० ताना] जिससे कोई चीज ताई या मुँदी जाय।

तौनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा का स्त्री० मल्पा० रूप] रोटी सेंकने का छोटा तवा। तई। तवी।

तौनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तौन'।

तौनी³—सर्व० [हिं०] दे० 'तौन'।

तौफ⑤—संज्ञा पुं० [म० तौफ] चक्कर। परिक्रमा। उ०—बहुतै तौफ जाय तब वायफ ना देव जाय पहाड़ समुंदर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

तौफीक—संज्ञा स्त्री० [म० तौफ़ीक़] १ सयोगात् किसी वस्तु का सुगमतापूर्वक प्राप्त हूँ जाना। २. दैवकृपा। ईश्वरानुग्रह। ३ शक्ति। सामर्थ्य ३ हौसला। उमग। ५ योग्यता। पात्रता [को०]।

तौफीर⑤—संज्ञा स्त्री [म० तौफ़ीर] मधिकता। प्रचुरता। उ०—रख मपने पनह गुनह ब तौफीर।—कबीर म०, पृ० ४२२।

तौबा—संज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'तोबा'।

तौरगिक—संज्ञा पुं० [सं० तौरङ्गिक] साईस [को०]।

तौर¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

तौर²—संज्ञा पुं० [म०] १ चालढाल। चालचलन।

यौ०—तौर तरीक या तौर तरीका = चाल चलन।

मुहा०—तौर बेतौर होना = रग ढग खराब होना। लक्षण बिगडना।

२ अवस्था। दशा। हालत।

मुहा०—तौर बेतौर होना = मवस्था बिगडना। दशा खराब होना।

विशेष—उक्त दोनो मर्थों में इस शब्द का व्यवहार प्राय बहुवचन में होता है।

३ तरीका। तर्ज। ढग। ४ प्रकार। भाँति। तरह।

तौर³—संज्ञा पुं० [देश०] मथानी मथने की रस्सी। नेत्री।

तौतश्रवस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम (गान)।

तौरात—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तौरेत'।

तौरायणिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तुरायण यज्ञ करता हो।

तौरि⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तौंवरि] घुमेर। घुमरी। चक्कर।

तौरीत—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तौरेत'। उ०—उसका समाचार तौरीत मे उत्पत्ति की पुस्तक में है।—कबीर म०, पृ० ४२।

तौरुष्किक—वि० [सं०] तुरुष्क देश या जाति सबधी [को०]।

तौरूप—संज्ञा पुं० [सं०] कामरूप में प्राप्त एक प्रकार का चंदन [को०]।

तौरेत—संज्ञा पुं० [इब०] यहूदियों का प्रधान धर्मग्रंथ जो हजरत मूसा पर प्रकट हुमा था। इसमे सृष्टि मौर मादम की उत्पत्ति मादि विषय हैं। उ०—जिसमे बनी इसराईल इस नियम पर चले मौर इस नियमावली का नाम तौरेत पुस्तक ठहरा।—कबीर० मं०, पृ० १६७।

तौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढोल मंजीरा आदि बाजे । २. ढोल मंजीरा आदि बजाना ।

तौर्यत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाचना, गाना और बाजे बजाना आदि काम ।

विशेष—मनु ने इसे कामज व्यसन कहा है और त्याज्य बतलाया है ।

तौल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तराजू । २. तुला राशि ।

तौल[2]—संज्ञा स्त्री० १. किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण । भार का मान । वजन । दे० 'गुरुत्व' ।

विशेष—भारत की प्रधान तौल ये हैं—

४ छटाँक = १ पाव
१६ छटाँक = १ सेर
५ सेर = १ पसेरी
८ पसेरी या ४० सेर = १ मन

इससे अन्न, तरकारी आदि भारी और अधिक मान में होनेवाली चीजें तौली जाती हैं । हलकी और थोड़ी चीजें तौलने के लिये इससे छोटी तौल यह है—

८ चावल = १ रत्ती
८ रत्ती = १ माशा
१२ माशा = १ तोला
५ तोला = १ छटाँक

उपर्युक्त तौलों का प्रचलन अब बंद हो गया है । अब तौल दाशमिक प्रणाली पर चल रही है, जिसमें वजन क्विंटल, किलो अथवा ग्रामों में किया जाता है । इसमें सबसे अधिक वजन की तौल क्विंटल है और सबसे कम वजन की तौल मिलीग्राम ।

२ तौलने की क्रिया या भाव ।

तौलना—क्रि० स० [सं० तोलन] १ किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण जानने के लिये उसे तराजू या काँटे आदि पर रखना । वजन करना । जोखना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

मुहा०—तौल तौलकर कदम धरना = सावधानी के साथ चलना । इस प्रकार धीरे चलना कि चलने में एक विशेषता आ जाय । उ०—कुछ नाज व अदा से तौल तौलकर कदम धरती है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २११ । किसी का तौलना = किसी की खुशामद करना ।

२ समझ बूझकर व्यवहार करना । ऐसा व्यवहार करना कि किसी प्रकार की गलती न हो ।

मुहा०—तौल तौलकर बोलना = अत्यंत सावधानी के साथ बोलना । ऐसे बोलना कि किसी प्रकार की गलती न हो जाय ।

३ किसी अस्त्र आदि को चलाने के लिये हाथ को इस प्रकार ठीक न करना कि वह अस्त्र अपने लक्ष्य पर पहुँच जाय । साधना । उ०—लोचन मृग सुभग जोर राग रूप भए मोर भौंह धनुष सर कटाक्ष सुरति व्याध तोले री ।—सूर (शब्द०) ।

४ दो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि का परस्पर तुलना करके विचार करना । तारतम्य जानना । मिलान करना । उ०—गए सब राज केते जग माँहु जो बाहु बली बल बोलत है ।—सं० दरिया, पृ० ६३ । ५ गाड़ी का पहिया औंगना । गाड़ी के पहिए में तेल देना ।

तौलवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तौलाई' ।

तौलवाना—क्रि० स० [हिं० तौलना का प्रे० रूप] तौलने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना । तौलाना ।

तौला—संज्ञा पुं० [हिं० तौलना] १. दूध नापने का मिट्टी का बरतन । २. अनाज तौलनेवाला मनुष्य । बया । ३. तँबिया । ४ मिट्टी का कमोरा । ५ महुए की शराब ।

तौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तौल + आई (प्रत्य०)] १. तौलने की क्रिया या भाव । २ वह धन जो तौलने के बदले में दिया जाय । तौलने की मजदूरी ।

तौलाना—क्रि० स० [हिं० तौलना का प्रे० रूप] तौलने काम दूसरे से कराना । दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना ।

तौलिक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार ।

तौलिकिक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार ।

तौलिया—संज्ञा स्त्री० [अं० टावेल]एक विशेष प्रकार का मोटा अँगोछा जिससे स्नान आदि करने के उपरांत शरीर पोंछते हैं ।

तौली[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक प्रकार का मिट्टी की छोटी प्याली । २. मिट्टी का चौड़े मुँह का बड़ा बरतन जिसमे अनाज आदि, विशेषतः गुड़, रखते हैं ।

तौली[2]—संज्ञा पुं० [सं० तौलिन्] १. तौलनेवाला । २ तुलाराशि [को०] ।

तौलैया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तौलना + ऐया(प्रत्य०)] अनाज तौलनेवाला मनुष्य । बया ।

तौलैया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तौलाई] तौलने का काम ।

तौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ वजन । भार । २ समता । सादृश्य ।

तौषार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुषार का जल । पाले का पानी । २ हिम । पाला (को०) ।

तौषार[2]—वि० [वि०स्त्री० तौषारी] बर्फीला । हिमयुक्त [को०] ।

तौसन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़ा । अश्व । तुरग । उ०—तौसने उमरे खाँ दम भर नहीं रुकता 'रसा' ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५० ।

तौसना[1]—क्रि० अ० [हिं० तौस] गरमी से बहुत व्याकुल होना । उ०—नाम लै बिलात बिललात अकुलात अति तात तात तौसियत झौंसियत झारहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

तौसना[2]—क्रि० स० गरमी पहुँचाकर व्याकुल करना ।

तौहीद—संज्ञा स्त्री० [अ०] एकेश्वरवाद । उ०—कहे तौहीद क्या हैं मुँह कहो अब ।—दक्खिनी०, पृ० ११६ ।

यौ०—तौहीदपरस्त = एकेश्वरवादी ।

तौहीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] अपमान । अप्रतिष्ठा । बेइज्जती ।
यौ०—तौहीने अदालत = न्यायालय का अपमान ।

तौहीनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० तौहीन] दे० 'तौहीन' ।

तौहूⓅ—अव्य० [हिं० तऊ] तब भी । तो भी । तिसपर भी । उ०—पानी माहीं घर करै, तौहू मरै पियास ।—कबीर सा०, पृ० ५ ।

त्यक्त—वि० [सं०] छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । जिसका त्याग कर दिया गया हो । उ०—निकल गए सारे कटक से व्यथा आप ही त्यक्त हुई ।—साकेत, पृ० ०७६ ।

त्यक्तजीवित—वि० [सं०] १. जो प्राण छोड़ने को तत्पर हो । मरने को तैयार । २ बड़े से बड़ा खतरा उठाने को तैयार [को०] ।

त्यक्तप्राण—वि० [सं०] दे० 'त्यक्तजीवित' [को०] ।

त्यक्तलज्ज—वि० [सं०] जिसने लज्जा त्याग दी हो । निर्लज्ज । बेहया [को०] ।

त्यक्तविधि—वि० [सं०] नियमों का अतिक्रमण करनेवाला । नियम न माननेवाला [को०] ।

त्यक्तव्य—वि० [सं०] जो छोड़ने योग्य हो । त्यागने योग्य ।

त्यक्तश्री—वि० [सं०] भाग्यहीन । अभागा [को०] ।

त्यक्ता—वि० [सं० त्यक्तृ] त्यागनेवाला । जिसने त्याग किया हो ।

त्यक्ताग्नि—वि० [सं०] गृहाग्नि का परित्याग करनेवाला (ब्राह्मण) ।

त्यक्तात्मा—वि० [सं० त्यक्तात्मन्] निराश । हताश [को०] ।

त्यग्नायि—संज्ञा पुं० [सं० त्यग्नायिस्] एक प्रकार का साम ।

त्यजणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० त्यजनीय] त्याग । उ०—शब्द स्पर्श रूप त्यजणं । त्यौं रसगंध नाही भजणं ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३७ ।

त्यजन—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ने का काम । त्याग ।

त्यजनीय—वि० [सं०] जो त्यागने योग्य हो । त्याज्य ।

त्यज्यमान—वि० [सं०] जिसका त्याग कर दिया गया हो । जो छोड़ दिया गया हो ।

त्यौंतिकⓅ—अव्य० [?] तब तब (टीका०) । उ०—पग्यो न दिल प्रभु रै पद पंकज, भिसत न त्यौंतिक भेरै ।—रघु० रू०, पृ० १८ ।

त्यौंⓅ—सर्व० [सं० तत्] दे० 'तिस' । उ०—ज्या की जोड़ी बीछड़ी त्यां निसि नींद न आई ।—ढोला०, दू० ५८ ।

त्याँहⓅ—सर्व० [सं० तत्] 'तू' सर्वनाम के कर्मकारक का रूप । उ०—चकवीकइ हर पखडी, रयणि न भेलउ त्याह ।—ढोला०, दू० ७१ ।

त्याⓅ—प्रत्य० [सं० तत्] से । उ०—किसे दिवाने कहता मेरा जावे तन तूँ सब त्या न्यारा ।—दक्खिनी०, पृ० ६६ ।

त्याग—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी पदार्थ पर से अपना स्वत्व हटा लेने अथवा उसे अपने पास से अलग करने की क्रिया । उत्सर्ग ।
क्रि० प्र०—करना ।
यौ०—त्यागपत्र ।
२ किसी बात को छोड़ने की क्रिया । जैसे असत्य का त्याग । ३ संबंध या लगाव न रखने की क्रिया । ४. विरक्ति आदि के कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदि को छोड़ने की क्रिया ।
विशेष—हिंदुओं के धर्मग्रंथों में इस प्रकार के त्याग का बहुत कुछ माहात्म्य बतलाया गया है । त्याग करनेवाला मनुष्य निष्काम होकर परोपकार के तथा अन्यान्य शुभ कर्म करता रहता है और विषय वासना या सुखोपभोग आदि से किसी प्रकार का संबंध नहीं रहता । ऐसा मनुष्य मुक्ति का अधिकारी समझा जाता है । गीता में त्याग को सन्यास की ही एक विशेष अवस्था माना है । उसके अनुसार काम्य धर्म का परित्याग तो सन्यास है और कर्मों के फल की आशा न रखना त्याग है । मनु के अनुसार संसार की और सब चीजें तो त्याज्य हो सकती हैं, पर माता, पिता, स्त्री और पुत्र त्याज्य नहीं हैं ।
५ दान । ४ कन्यादान (डिं०) ।

त्यागना—क्रि० स० [सं० त्याग] छोड़ना । तजना । पृथक् करना । त्याग करना । उ०—नाँ त्यागनो काम नाँ त्यागलो क्रोध ।—प्राण०, पृ० ११६ ।
संयो० क्रि०—देना ।

त्यागपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पत्र जिसमें किसी प्रकार के त्याग का उल्लेख हो । २ इस्तीफा । ३ तिलाकनामा ।

त्यागवान्—वि० [सं० त्यागवत्] [वि० स्त्री० त्यागवती] जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करने की शक्ति हो । त्यागी ।

त्यागी—वि० [सं० त्यागिन्] जिसने सब कुछ त्याग दिया हो । स्वार्थ या सांसारिक सुख को छोड़नेवाला । विरक्त ।

त्याजक—वि० [सं०] तजनेवाला । त्यागी [को०] ।

त्याजन—संज्ञा पुं० [सं०] त्याग । त्याग करना [को०] ।

त्याजनाⓅ—क्रि० स० [सं० त्यजन] त्यागना । उ०—अति उमग अंग अंग भरे रंग, मुकर मुकर निरखत नहिं त्याजे ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८० ।

त्याजित—वि० [सं०] १. जिससे त्याग कराया गया हो या छुड़वाया गया हो । २. जिसका अपमान कराया गया हो । ३. छोड़ा हुआ । त्यक्त [को०] ।

त्याज्य—वि० [सं०] त्यागने योग्य । जो छोड़ देने योग्य हो ।

त्यार—वि० [हिं०] दे० 'तैयार' । उ०—एक कटे एकै पडे एक कटने को त्यार । अड़े रहैं केते सुमन मीता तेरे द्वार ।—रसनिधि (शब्द०) ।

त्यारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तैयारी' । उ०—बाजराज बारण रथां, प्रवर, समाज अमाम । हाजर तिणवारी हुआ, त्यारी करे तमाम ।—रघु० रू०, पृ० ६३ ।

त्यारेⓅ—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारे' । उ०—सितीआ के बोलत बोलने रे, त्यारे बिरंन दस मास ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३३ ।

त्युँहिज—वि० [हिं०] दे० 'त्यों'। उ०—करनहरो खेमकंन, वांघ गह बात न बोले। वले जगे केहरो, त्युँहिज वोले खग तोले। —रा० रू०, पृ० १५७।

त्युँ—क्रि वि० [हिं०] दे० 'त्यों'।

त्युँरसा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योरुस'।

त्यों¹—क्रि० वि० [सं० तद् + एवम् या हिं०] १. उस प्रकार। उस तरह। उस भाँति। उ०—ये अलि या वलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी। ज्यों पद्माकर माधुरी त्यो कुच दोउन की चढ़ती उनई सी। ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कछु ज्यों ही नितंब त्यो चातुरई सी। जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किहिधौं कटि वीच ही लूटि लई सी।—पद्माकर (शब्द०)। २ उसी समय। तत्काल। जैसे,—ज्यों मैं वहाँ पहुँचा त्यों वह उठकर चल दिया।

विशेष—इसका व्यवहार 'ज्यों' के साथ सबंध पूरा करने के लिये होता है।

त्यों²—सज्ञा स्त्री० [सं० तन] ओर। तरफ। उ०—सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। पूछति ग्रामबधू सिय सो कहो साँवरे से सखि रावरे को हैं।—तुलसी (शब्द०)।

त्योरुसा—सज्ञा पुं० [हिं० (ति) + बरस] १ पिछला तीसरा वर्ष। वह वर्ष जिसे बीते दो बरस हो चुके हो। जैसे,—हम त्योरुस वहाँ गए थे। २. आगामी तीसरा वर्ष। वह वर्ष जो दो वर्षों के बाद आनेवाला हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कभी कभी विशेषण के रूप में भी होता है। जैसे, त्योरुस साल।

त्योरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० त्रिकुटी, सं० त्रिकूट (= चक्र)] अवलोकन। चितवन। दृष्टि। निगाह।

मुहा०—त्योरी चढ़ना या बदलना = दृष्टि का ऐसी अवस्था में हो जाना जिससे कुछ क्रोध झलके। आँखे चढ़ना। त्योरी मे बल पड़ना = त्योरी चढ़ना। त्योरी चढाना या बदलना = भौंहें चढ़ाना। आँखें चढ़ाना। दृष्टि या आकृति से क्रोध के चिह्न प्रकट करना। त्योरी मे बल डालना = त्योरी चढ़ाना।

त्योहार—सज्ञा पुं० [सं० तिथि + वार] वह दिन जिसमें कोई बड़ा धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाय। पर्व दिन। जैसे, हिंदुओं के त्योहार—दसहरा, दीवाली, होली आदि, मुसलमानों के त्योहार—ईद, शब बरात आदि, ईसाइयों के त्योहार, बड़ा दिन, गुडफ्राइडे आदि।

मुहा०—त्योहार मनाना = पर्व या उत्सव के दिन आमोद प्रमोद करना।

त्योहारी—सज्ञा स्त्री० [हिं० त्योहार + ई० (प्रत्य०)] वह धन जो किसी त्योहार के उपलक्ष में छोटों, लड़कों या नौकरों आदि को दिया जाता है।

त्यौँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'।

त्यौनार—सज्ञा पुं० [हिं०, (देश०)] १ ढंग। तर्ज। उ०—(क) आए हैं मनुहारि हित धारि मपूर बहार। लखि जीके नीके सुखद ये पीके त्यौनार।—शृं० सत० (शब्द०)। (ख) रही गुही बेनी लखैं गुहिवे के त्यौनार। लागे नीर चुचावने नीठि सुखाए बार।—बिहारी (शब्द०)। किसी कार्य को विशेष कुशलता के साथ करने की योग्यता।

त्यौर—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योरी'। उ०—(क) यौसक ते पिय चित चढ़ी कहैं चढ़ी है त्यौर।—बिहारी (शब्द०)। (ख) तेह तरेरो त्यौर करि कत करियत दृग लोल। लीक नहीं यह पीक की स्रुति मणि झलक कपोल।—बिहारी (शब्द०)।

त्यौराना—क्रि० अ० [हिं० तौंवर] माथा घूमना। सिर मे चक्कर आना।

त्यौरी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योरी'।

त्यौरुस—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योरुस'।

त्यौहार—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार'।

त्यौहारी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योहारी'।

त्रंग—सज्ञा पुं० [सं० त्रङ्ग] एक प्राचीन नगर का नाम जो पहले राजा हरिश्चद्र का राजनगर था।

त्रंबक(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्र्यंबक'। उ०—नयो सिर नाग सुमड्डिय जग, धुरै सुर जोरय त्रबक संग।—पृ० रा०, २४।२२८।

त्रंबकसखा(पु)—सज्ञा पुं० [सं० त्र्यम्बक + सखा] शिव के मित्र। कुबेर। उ०—गुह्यक पति त्रबक सखा राजराज पुनि सोइ। —अनेकार्थ०, पृ० २१।

त्रंबकी(पु)—सज्ञा स्त्री० [राज० त्रबाल] छोटा नगाड़ा। उ०—उभय सहस वाजित्त। ढोल त्रबकी सुमत गुर।—पृ० रा०, २५।३२०।

त्रंबक(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्र्यबक'। उ०—कलस बक त्रंबक्क लोह संकर वर बध्यो।—पृ० रा०, २४।४५।

त्रंबागल(पु)—सज्ञा पुं० [राज० त्रबाल] नगाड़ा। उ०—त्रबागल रिणतूर विहद्दाँ वाजिया।—रघु० रू०, पृ० ६३।

त्र¹—वि० [सं०] १, तीन। २. रक्षा करनेवाला। रक्षक (समासांत मे प्रयुक्त)।

त्र²—प्रत्य० एक प्रत्यय जो सप्तमी विभक्ति के रूप मे प्रयुक्त होता है।

त्रइय(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रयी'¹। उ०—चद्र ब्रह्म नख मद्धि त्रइय सुनि श्रवननि धारहि।—प० रासो, पृ० ३६।

त्रई(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रय'। उ०—मरन काल त्रई लोक में, अमर न दीपै कोय।—कबीर सा०, पृ० ६६२।

त्रकाल(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकाल'। उ०—साहाँ उर असुहावतो, राजावाँ रखवाल। जाँ जसराज प्रतप्पियो, ताँ सुर पूज त्रकाल।—रा० रू०, पृ० १६।

त्रकुटाचल—सज्ञा पुं० [सं० त्रिकूट + अचल] लंकास्थित त्रिकुट पर्वत। उ०—घिर जोधाँणो घेरियो फिर त्रकुटाचल कीस।—रा० रू०, पृ० ५७।

त्रण(पु)—सज्ञा पुं० [सं० त्रि] दे० 'तीन'। उ०—तरुणी री पोसाक त्रण, जीवन मूली जाँण।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० २२।

त्रदस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदश'। उ०—खत्रियाँ रा खटतीस कुल, त्रदस क्रोड़ तेतीस।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १०५।

त्रन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृन'।

मुहा०—त्रन तोरना = दे० 'तृण तोड़ना' ('तृण' में)। उ०—तोरि त्रंन तरुनिय कहत। धरनि सही तुम भार।—पृ० रा०, १८।६४।

त्रपित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—उमा त्रपति रुधिरं भई घनि सूरन भुज दंड।—पृ० रा०, २५।७४४।

त्रपत्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—तन ग्रीष्म महासद मन त्रपत्त। पूरिया रहै नित सगतपत्त।—रा० रू०, पृ० ७४।

त्रपनाना(पु)—वि० [सं० तर्पण] तर्पण। सध्या करनेवाले। उ०—तौ पडित आये वेद भुलाये षटक रमाये त्रपनाये।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २३७।

त्रप्पवर(पु)—वि० [सं० त्रपा] लज्जालु। लज्जाशील। उ०—कि करे न तसकर त्रप्पवर प्रवुध इष्ट सराहु सुमन।—पृ० रा०, १०।१३३।

त्रपा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० त्रपमान्] १. लज्जा। लाज। शर्म। हया। उ०—ह्री लज्जा व्रीडा त्रपा सकुच न करु बिनु काज। पिय प्यारे पै चलिय बलि औषध खात कि लाज।—नंददास (शब्द०)। २ छिनाल स्त्री। पुंश्चली।

यौ०—त्रपारंडा = १ छिनाल स्त्री। २ वेश्या। रंडी। ३ कीर्ति। यश।

त्रपा[2]—वि० लज्जित। शरमिंदा। उ०—भवधनु दलि जानकी बिवाही भये बिहाल नृपाल त्रपा हैं।—तुलसी (शब्द०)।

त्रपानिरस्त—वि० [सं०] निर्लज्ज। धृष्ट [को०]।

त्रपाहीन—वि० [सं०] निर्लज्ज। धृष्ट [को०]।

त्रपारंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रपारण्डा] वेश्या। रंडी [को०]।

त्रपित—वि० [सं०] १. लज्जित। शरमिंदा। २ लज्जालु। लज्जाशील (को०)। ३ विनीत। विनम्र (को०)।

त्रपिष्ठ—वि० [सं०] अत्यंत तृप्त। परितृप्त [को०]।

त्रपु—संज्ञा पुं० [सं०] १ सीसा। २ राँगा।

त्रपुकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खीरा। २ ककरी।

त्रपुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची।

त्रपुल—संज्ञा पुं० [सं०] राँगा।

त्रपुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. राँगा। २ खीरा।

त्रपुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ककड़ी। २. खीरा।

त्रपुस—संज्ञा पुं० [सं०] १ राँगा। २. ककड़ी।

त्रपुसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ककड़ी। २ खीरा। ३. बड़ा इद्रायन।

त्रप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमी हुई श्लेष्मा या कफ।

त्रप्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] मट्ठा [को०]।

त्रबाट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] नगारा। उ०—दलबल सज दुगम चढ़िय सुत दशरथ तहक तबल अत रडत त्रबाट।—रघु० रू०, पृ० ११६।

त्रभंगी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभंगी[3]'। उ०—त्रभंगी छंद पढ़े वु चंद गुन वहि वंदं गुन सोई।—पृ० रा०, २४।२४८।

त्रभवण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—भुवण तजे रहियो विखे, त्रभवण हदो राव।—रा० रू०, पृ० ३६१।

त्रभुयण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—आलस तज निज गरज अब, भज त्रभुयण भूपाल।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४०।

त्रमाला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० त्रंबागल] नगाड़ा। उ०—रिण बलवंता रूप परमसंता प्रतिपाला। तूझ मुर्जा हरितणा तहक वाजंत त्रमाला।—रघु० रू०, पृ० ४।

त्रय[1]—वि० [सं०] १ तीन। उ०—महाघोर त्रय ताप न जरई।—तुलसी (शब्द०)। २ तीसरा।

त्रय(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिया'। उ०—त्रय जोरै कर हृथ्य को चील सभरि वै राइ।—पृ० रा० २५।७३०।

त्रयदेव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदेव'। उ०—अब मैं तुम से कहो चिताई। त्रयदेवन की उतपति भाई।—कबीर सा०, पृ० ८१७।

त्रयविंसत—वि० [सं० त्रयोविंशति] तेईस। तेईसवाँ। उ०—अब सुनि त्रयविंसत अध्याइ। द्विज अरु द्विजपतिनिन के भाइ।—नंद० ग्रं०, पृ०३००।

त्रयलोकी(पु)—वि० [हिं० त्रिलोकी] त्रिलोकपति। तीनों लोकों के स्वामी। उ०—रामचद्र वर्णन करूँ, त्रयलोकी हैं नाथ।—कबीर सा०, पृ०८१३।

त्रयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तीन वस्तुओं का समूह। तिगुह। तीखट। जैसे, ब्रह्मा, विष्णु और महेश। उ०—(क) वेद त्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता शुभ योगमई है।—केशव (शब्द०)। (ख) किधौं सिंगार सुखमा सुप्रेम मिले चले जग चित वित लेन। अद्भुत त्रयी किधौं पठई है विधि मग लोगन सुख देन।—तुलसी (शब्द०) २ सोमराजी लता। ३ दुर्गा। ४ वह स्त्री जिसका पति और बच्चे जीवित हों (को०)। ५ बुद्धि। समझ (को०)।

त्रयीतनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २ शिव (को०)।

त्रयीधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक धर्म, जैसे, ज्योतिष्टोम यज्ञ आदि।

त्रयीमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २ परमेश्वर।

त्रयीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

त्रयीविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयी + विद्या] ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीन वेद। उ०—ऊपर की पक्तियो में त्रयीविद्या अथवा प्रथम तीन वेदों के दर्शन एवं कर्मकांड के सिद्धांतों की सक्षिप्त विवेचना की गई।—स० दरिया, (भू०)पृ० ५५।

त्रयोदश—वि० [सं०] १ तेरह। २. तेरहवाँ (को०)।

त्रयोदशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। तेरस।

विशेष—पुराणानुसार यह तिथि धार्मिक कार्य करने के लिये बहुत उपयुक्त है।

त्रयारुण—संज्ञा पुं० [सं०] पद्रहवें द्वापर के एक व्यास का नाम।

त्रयारुणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो भागवत के अनुसार लोमहर्षण ऋषि के शिष्य थे ।

त्रषेव—वि० [सं० तृषि] तृषायुक्त । प्यासा ।

त्रष्टा—संज्ञा पुं० [?] दे० 'तष्टा' (तश्तरी) । उ०—त्रष्टा अरु आधार भर्त के बहुत खिलौना । परिया टमरी अतरदान रूपे के सौना ।—सूदन (शब्द०) ।

त्रस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैन मत के अनुसार एक प्रकार के जीव । इन जीवों के चार प्रकार हैं—(क) द्वीद्रिय अर्थात् दो इंद्रियोंवाले जीव । (ख) त्रींद्रिय अर्थात् तीन इंद्रियोंवाले जीव । (ग) चतुरिंद्रिय अर्थात् चार इंद्रियोवाले जीव और (घ) पंचेंद्रिय अर्थात् पाँच इंद्रियोवाले जीव । २. जंगल । वन । ३. जंगम । ४. त्रसरेणु ।

त्रस[2]—वि० सचल । जगम [को०] ।

त्रसन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भय । डर । २. उद्वेग ।

त्रसना†—क्रि० अ० [सं० त्रसन] भय से काँप उठना । डरना । खौफ खाना । उ०—(क) कछु राजत सूरज अरुन खरे । जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे । चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै । चोर चकोर चिता सो लसै ।—केशव (शब्द०) । (ख) नवल अनंगा होय सो मुग्धा केशवदास । खेलै बोलै बाल विधि हँसै त्रसै सविलास ।—केशव (शब्द०) ।

त्रसर—संज्ञा पुं० [सं०] जोलाहों की ढरकी । तसर ।

त्रसरेणु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह चमकता हुआ कण जो छेद में से आती हुई धूप में नाचता या घूमता दिखाई देता है । सूक्ष्म कण ।

विशेष—मनु के अनुसार एक त्रसरेणु तीन परमाणुओं से मिलकर और वैद्यक के अनुसार तीस परमाणुओं से मिलकर बना होता है ।

त्रसरेणु[2]—संज्ञा स्त्री० पुराणानुसार सूर्य की एक स्त्री का नाम ।

त्रसरैनि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रसरेणु' । उ०—चंद चकोर की चाह करै, घनआनंद स्वाति पपीहा को धावै । त्यौं त्रसरैनि के ऐन बसै रवि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै ।—घनानंद, पृ० ६५ ।

त्रसाना†—क्रि० स० [हिं० त्रसना] डरवाना । धमकाना । भय दिखाना । उ०—(क) सूर स्याम बाधे ऊखल गहि माता डरत न अति हि त्रसायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) जाको शिव ध्यावत निसि बासर सहसासन जेहि गावै हो । सो हरि राधा बदन चंद को नैन चकोर त्रसावै हो ।—सूर (शब्द०) ।

त्रसित—वि० [सं० त्रस्त] १ भयभीत । डरा हुआ । उ०—सब प्रसंग महिसुरन सुनाई । त्रसित परयो अवनी अकुलाई ।—(शब्द०) । २. पीड़ित । सताया हुआ । उ०—सीत त्रसित कहँ अग्नि समाना । रोग त्रसित कहँ औषधि जाना ।—गोपाल (शब्द०) ।

त्रसिबो—क्रि० अ० [हिं० त्रसना] भय खाना । डरना । उ०—त्रसिबो सदाई नटनागर गुरू जन ते ।—नट०, पृ० ५८ ।

त्रसींग—वि० [सं० त्रासक ?] जबरदस्त । उ०—राजा सिंहल दीपरे तोनूँ बीच त्रसींग ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७२ ।

त्रसुर—वि० [सं०] भीरु । डरपोक ।

त्रस्त—वि० [सं०] १ भयभीत । डरा हुआ । उ०—एक बार मुनिवर कौशिक के तप से सुरपति त्रस्त हुआ ।—शकुं०, पृ० २ । २ पीड़ित । दुःखित । जिसे कष्ट पहुँचा हो । ३ चकित । जिसे आश्चर्य हुआ हो ।

त्रस्नु—वि० [सं०] दे० 'त्रसुर' [को०] ।

त्रहक्कना—क्रि० अ० [सं० त्राहि] त्राहि त्राहि करना । त्रस्त होना । उ०—लरै यों लुहान अभंग जुवान । असव्वंत जोरं त्रहक्केति घोर ।—पृ० रा०, ४।३० ।

त्राटंक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताटंक' । उ०—त्राटकन की उपमा इतनी । जु कही कवि चंद सुरंग घनी ।—पृ० रा०, २१।७६ ।

त्राटक—संज्ञा पुं० [सं०] योग के षट्कर्मों मे से छठा कर्म या साधन । इसमें अनिमेष रूप से किसी बिंदु पर दृष्टि रखते हैं ।

त्राटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्राटक] योगियों की एक क्रिया । उ०—रुद्र अगनि का त्राटिका नाम ।—गोरख०, पृ० २४६ ।

त्राण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षा । बचाव । हिफाजत । २ रक्षा का साधन । कवच ।

विशेष—इस अर्थ मे इसका व्यवहार यौगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, पादत्राण, अंगत्राण ।

३ त्रायमाण लता ।

त्राण[2]—वि० जिसकी रक्षा की गई हो । रक्षित [को०] ।

त्राणक—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक ।

त्राणकर्ता—वि० पुं० [सं० त्राणकर्तृ] रक्षा करनेवाला । रक्षक [को०] ।

त्राणकारी—वि० [सं० त्राणकारिन्] रक्षा करनेवाला । रक्षक [को०] ।

त्राणदाता—संज्ञा पुं० [सं० त्राण + दातृ] त्राण देनेवाला । रक्षा करनेवाला । त्राणक । त्राता । उ०—दयाशील त्राणदाता के मिलने से ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६७ ।

त्राणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाण लता ।

त्रात—वि० [सं०] बचाया हुआ । रक्षित [को०] ।

त्रातव्य—वि० [सं०] रक्षा करने के योग्य । बचाने के लायक ।

त्राता—संज्ञा पुं० [सं० त्रातृ] रक्षक । बचानेवाला । उ०—तप बल रचै प्रपंच विधाता । तप बल विष्णु सकल, जगत्राता ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रातार—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक । उ०—मोक्षप्रदा अरु धर्ममय मथुरा मम त्रातार ।—गोपाल (शब्द०) ।

विशेष—संस्कृ० में यह त्रातृ (त्राता) शब्द का बहुवचन रूप है ।

त्रापुष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] राँगे का बना हुआ बरतन या और कोई पदार्थ ।

त्रापुष[2]—वि० राँगे का बना हुआ [को०]।

त्रायंती—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रायन्ती] त्रायमाण लता

त्रायन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्राण'। उ०—ताड़न छेदन त्रायन खेवन बहु विधि कर ले उपाई।—रै० बानी, पु० १६।

त्रायमाण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बनफशे की तरह की एक प्रकार की लता जो जमीन पर फैलती है।

विशेष—इसमें बीच बीच में छोटी छोटी फलियाँ निकलती हैं जिनमें कसैले बीज होते हैं। इन बीजों का व्यवहार औषध में होता है। वैद्यक में इन बीजों को शीतल, दस्तावर और त्रिदोषनाशक माना है।

पर्या०—अनुजा। अवनी। गिरिजा। देवबाला। बलभद्रा। पालिनी। भयनाशिनी। रक्षिणी।

त्रायमाण[2]—वि० रक्षक। रक्षा करनेवाला।

त्रायमाणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाण लता।

त्रायमाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रायमाण'।

त्रायवृंत—संज्ञा पुं० [सं० त्रायवृन्त] गंडीर या गुंडिरी नामक साग।

त्रास—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ डर। भय। उ०—जम की सब त्रास बिनास करी मुख ते निज नाम उचारन में।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पु० २८२। २ तकलीफ। ३. मणि का एक दोष।

त्रासक—संज्ञा पुं० १. डरानेवाला। भयभीत करनेवाला। २ निवारक। दूर करनेवाला। उ०—त्रिविध ताप त्रासक विमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी।—तुलसी (शब्द०)।

त्रासकर—संज्ञा पुं० [सं०] भयोत्पादक। त्रासक [को०]।

त्रासद—वि० [सं०] त्रासकर। दुःखद। उ०—नाटकों में त्रासद (दुखांत = ट्रेजेडी) और हासद (सुखांत) का भेद किया जाता है।—स० शास्त्र, पु० १२६।

त्रासदायी—वि० [सं० त्रासदायिन्] भयोत्पादक। डरानेवाला [को०]।

त्रासदी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रासद+हिं० ई (प्रत्य०)] दुःख से पूर्ण रचना विशेषत नाटक जो दुःखांत हो।

त्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० त्रासनीय] १. डराने का कार्य। २ डरानेवाला। भय दिखानेवाला।

त्रासना—क्रि० स० [सं० त्रासन] डराना। भय दिखाना। त्रास देना। उ०—काहे को कलह नाध्यो दारुण दाँवरि बाँध्यो कठिन लकुट लै त्रास्यो मेरो भैया ?—सूर (शब्द०)।

त्रासमान—वि० [सं० त्रास+मान्] त्रस्त। भीत। उ०—जोगी जती आव जो कोई। सुनतहि त्रासमान भा सोई।—जायसी ग्र०, पु० ११५।

त्रासा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'। उ०—करहा पाणी खच पिउ त्रासा घणा सहेसि।—ढोला०, दू० ४२६।

त्रासिका(पु)—वि० [सं० त्रासक] त्रास देनेवाली। दुःखद। उ०—दिपंत जोति नासिका। सु गत्ति कीर त्रासिका।—पृ० रा०, २५। १४४।

त्रासित—वि० [सं०] १ भयभीत। डराया हुआ। २ जिसे कष्ट पहुँचाया गया हो। त्रस्त।

त्रासिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रासिन्] डरानेवाली। भयदायिनी। उ०—दुर्मद दुरत धर्म दस्युओं की त्रासिनी निकल, चलो जा तू प्रतारण के कर से।—लहर, पु० ५८।

त्रासी—वि० [सं० त्रासिन्] डरानेवाला। त्रासक [को०]।

त्राहि—अव्य० [सं०] बचाओ। रक्षा करो। त्राण दो। उ०—दारुण तप जब कियो राजसुत तब काँप्यो सुरलोक। त्राहि त्राहि हरि सो सब भाष्यो दूर करो सब शोक।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—त्राहि त्राहि करना = दया या अभयदान के लिये गिड़गिड़ाना। दया या रक्षा के लिये प्रार्थना करना। त्राहि मचना = रक्षा के लिये चीख पुकार होना। विपत्ति में पड़े हुए लोगों के मुँह से त्राहि त्राहि की पुकार मचना। त्राहि त्राहि होना = दे० 'त्राहि त्राहि मचना'।

त्रिंबक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्र्यंबक'। उ०—त्रिनयन, त्रिंबक, त्रिपुर अरि ईस, उमारति होई।—नंद० ग्रं०, पु० ९२।

त्रिंश—वि० [सं०] तीसवाँ।

त्रिंशत्—वि० [सं०] तीस।

त्रिंशत्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोईं का फूल। कुमुदिनी।

त्रिंशांश—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी पदार्थ का तीसवाँ भाग। किसी चीज के तीस भागों में से एक भाग। २. एक राशि का तीसवाँ भाग (या डिग्री) जिसका विचार फलित ज्योतिष में किसी बालक का जन्मफल निकालने के लिये होता है।

विशेष—फलित ज्योतिष में मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुंभ ये छह राशियाँ विषम और वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये छह राशियाँ सम मानी जाती हैं। त्रिंशांश का विचार करने में प्रत्येक विषम राशि के ५, ५, ८, ७ और ५ त्रिंशांशों के क्रमश मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र अधिपति या स्वामी माने जाते हैं और सम ५, ७, ८, ५, और ५ त्रिंशांशों के स्वामी ये ही पाँचों ग्रह विपरीत क्रम से—अर्थात् शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और मंगल माने जाते हैं। अर्थात्—प्रत्येक विषम राशि के

१	से	५	त्रिंशांश	तक के	अधिपति	—मंगल
६	,,	१०	,,	,,	,,	—शनि
११	,,	१८	,,	,,	,,	—बृहस्पति
१९	,,	२५	,,	,,	,,	—बुध
२६	,,	३०	,,	,,	,,	—शुक्र

माने जाते हैं। पर सम राशियों में त्रिंशांशों और ग्रहों के क्रम उलट जाते हैं और प्रत्येक राशि के

१	,,	५	त्रिंशांश	तक के	अधिपति	—शुक्र
६	,,	१२	,,	,,	,,	—बुध
१३	,,	२०	,,	,,	,,	—बृहस्पति
२१	,,	२५	,,	,,	,,	—शनि
२६	,,	३०	,,	,,	,,	—मंगल

माने जाते हैं। प्रत्येक ग्रह के त्रिंशांश में जन्म का अलग अलग फल माना जाता है। जैसे—मंगल के त्रिंशांश में जन्म

होने का फल स्त्रीविजयी, धनहीन, क्रोधी और अभिमानी आदि होना और बुध के त्रिशांश में जन्म होने का फल बहुत धनवान् और सुखी होना माना जाता है।

त्रि[1]—वि० [सं०] तीन।

विशेष—इसका व्यवहार यौगिक शब्दों में, आरंभ में, होता है। जैसे, त्रिकाल, त्रिकुट, त्रिफला आदि।

त्रि(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिय'। उ०—राजमती तु मोबकुमार तो सम त्रि नहीं इणोई ससार।—बी० रासो, पृ० ४६।

त्रिअषिरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [त्रिअक्षर] ओम्। गोरख सप्रदाय का मत्र विशेष। उ०—त्रिअषिरी त्रिकोटी जपीला ब्रह्मकुड निजथान। गोरख०, पृ० १०२।

त्रिकंट—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकण्ट] दे० 'त्रिकटक'।

त्रिकटक[1]—संज्ञा पुं० [स० त्रिकण्टक] १. गोखरू। २. त्रिशूल। ३ तिधारा थूहर। ४ जवासा। ५ टेंगरा मछली।

त्रिकटक[2]—वि० जिसमें तीन काँटे या नोकें हों।

त्रिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन का समूह। जैसे, त्रिकमय, त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिभेद। २ रीढ़ के नीचे का भाग जहाँ कूल्हे की हड्डियाँ मिलती हैं। ३. कमर। ४ त्रिफला। ५ त्रिमद। ६ तिरमुहानी। ७ तीन रुपए सैकड़े का सूद या लाभ आदि (मनु)।

त्रिक[2]—वि० १ तेहरा। तिगुना। त्रिविध। २. तीन का रूप लेनेवाला। तीन के समूह में आनेवाला। ६. तीन प्रतिशत। ४ तीसरी बार होनेवाला (को०)।

त्रिककुद्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिकूट पर्वत। २ विष्णु। (विष्णु ने एक बार वाराह का अवतार धारण किया था, इसी से उनका यह नाम पड़ा)। ३ दस दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

त्रिककुद्[2]—वि० जिसे तीन शृंग हों।

त्रिककुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ उदान वायु जिससे डकार और छींक आती है। २ नौ दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

त्रिकट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकट'।

त्रिकटु—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, मिर्च और पीपल ये तीन कटु वस्तुएँ।

विशेष—वैद्यक में इन तीनों के समूह को दीपन तथा खाँसी, साँस, कफ, मेह, मेद, श्लीपद और पीनस आदि का नाशक माना है।

त्रिकटुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकटु'।

त्रिकत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिमेद। अर्थात् हड़, बहेड़ा और आँवला, सोंठ, मिर्च और पीपल तथा मोथा, चीता और वायविडंग इन सब का समूह।

त्रिकर्मा—वि० [सं० त्रिकर्मन्] वह जो पढ़े, पढ़ाए, यज्ञ करे और दान दे। द्विज।

त्रिकल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन मात्राओं का शब्द। प्लुत। २. दोहे का एक भेद जिसमें ६ गुरु और ३० लघु अक्षर होते हैं। जैसे,—अति अपार जो सरितवर, जो नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिन श्रम पारहिं जाहिं।—तुलसी (शब्द०)।

त्रिकल[2]—वि० जिसमें तीन कलाएँ हों।

त्रिकलिंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिङ्ग] दे० 'तैलग'।

त्रिकशूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वातरोग जिसमें कमर की तीनों हड्डियों, पीठ की तीनों हड्डियों और रीढ़ में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

त्रिकस्थान—पुं० [सं० त्रिक+स्थान] दे० 'त्रिक[2]'। उ०—वायु गुदा में स्थित होने से त्रिकस्थान, हृदय, पीठ इनमें पीड़ा होती है।—माधव०, पृ० १३४।

त्रिकांड[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकाण्ड] १ अमरकोष का दूसरा नाम। (अमरकोष में तीन कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा)। २. निरुक्त का दूसरा नाम। (निरुक्त मे भी तीन कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा)।

त्रिकांड[2]—वि० जिसमें तीन कांड हों।

त्रिकांडी[1]—वि० [सं० त्रिकाण्डीय] जिसमें तीन कांड हों। तीन कांडोंवाला।

त्रिकांडी[2]—संज्ञा स्त्री० जिस ग्रंथ मे कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का वर्णन हो अर्थात् वेद।

त्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुएँ पर का वह चौखटा जिसमें गराडी लगी होती है। २ कुएँ का ढक्कन (को०)।

त्रिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

त्रिकार्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, अतीस और मोथा इन तीनों का समूह।

त्रिकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीनों समय—भूत, वर्तमान और भविष्य। २ तीनों समय—प्रात, मध्याह्न और सायं।

त्रिकालज्ञ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भूत, वर्तमान और भविष्य का जाननेवाला व्यक्ति। सर्वज्ञ।

त्रिकालज्ञ[2]—वि० तीनों कालों की बातों को जाननेवाला। उ०—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारि।—मानस, १। ६६।

त्रिकालज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों का बातें जानने की शक्ति या भाव।

त्रिकालदरसी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिकालदर्शी'। उ०—तुम्ह त्रिकालदरसी मुनिनाथा। विस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा।—मानस, २।१२५।

त्रिकालदर्शक[1]—वि० [सं०] तीनों कालों को जाननेवाला। त्रिकालज्ञ।

त्रिकालदर्शक[2]—संज्ञा पुं० ऋषि।

त्रिकालदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों की बातों को जानने की शक्ति या भाव। त्रिकालज्ञता।

त्रिकालदर्शी[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकालदर्शिन्] तीनों कालों की बातों को देखनेवाला या जाननेवाला व्यक्ति। त्रिकालज्ञ।

त्रिकालदर्शी[२]—वि० तीनों कालों को बातों की जाननेवाला। त्रिकालज्ञ [को०]।

त्रिकुट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकूट'।

त्रिकुटा[१]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकटु] सोंठ, मिर्च और पीपल इन तीनों वस्तुओं का समूह।

त्रिकुटा(पु)[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी'। उ०—त्रिकुटा ध्यान तीन गुन त्यागै।—प्राण०, पृ० २।

त्रिकुटाअचल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकूट + अचल] त्रिकूट पर्वत। उ०—संपातरा सुण वयण सारा गह्वर नद गाजे। चित्त चाव त्रिकुटा अचल चढ़िया, कुदवा काजे।—रघु० रू०, पृ० १६२।

त्रिकुटिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिकूट] तीन कूट या चोटीवाली। उ०—यंत्रों मंत्रों तंत्रों की थी वह त्रिकुटिनी माया सी।—साकेत, पृ० ३८८।

त्रिकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकूट] त्रिकूट चक्र का स्थान। दोनों भौंहों के बीच के कुछ ऊपर का स्थान। उ०—पूरन कुंभक रेचक करहू। उलट ध्यान त्रिकुटी को धरहू।—विश्राम-(शब्द०)।

त्रिकुल—संज्ञा पुं० [सं०] पितृकुल, मातृकुल और श्वसुरकुल।

त्रिकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन शृंगोंवाला पर्वत। वह पर्वत जिसकी तीन चोटियाँ हों। २ वह पर्वत जिसपर लंका बसी हुई मानी जाती है। देवीभागवत के अनुसार यह एक पीठस्थान है और यहाँ रूपसुंदरी के रूप में भगवती निवास करती हैं। उ०—गिरि त्रिकूट एक सिंधु मँझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी।—तुलसी (शब्द०)। ३ सेंधा नमक। ४. एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है।

विशेष—वामन पुराण के अनुसार यह क्षीरोद समुद्र में है। यहाँ देवर्षि रहते हैं और विद्याधर, किन्नर तथा गधर्व आदि क्रीड़ा करने आते हैं। इसकी तीन चोटियाँ हैं। एक चोटी सोने की है जहाँ सूर्य आश्रय लेते हैं और दूसरी चोटी चाँदी की जिसपर चद्रमा आश्रय लेते हैं। तीसरी चोटी बरफ से ढकी रहती है और वैदूर्य, इद्रनील आदि मणियों की प्रभा से चमकती रहती है। यही उसकी सबसे ऊँची चोटी है। नास्तिकों और पापियों को यह नहीं दिखलाई देता।

त्रिकूटलवण—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री नमक [को०]।

त्रिकूटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक भैरवी।

त्रिकूर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार फोड़े आदि चीरने का एक शस्त्र जिसका व्यवहार बालक, वृद्ध, भीरु, राजा आदि की शस्त्रचिकित्सा के लिये होना चाहिए।

त्रिकोटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी'। उ०—त्रिघाचिरी त्रिकोटी जपीला ब्रह्मकुंड निज थांन।—गोरख०, पृ० १०२।

त्रिकोण—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीन कोने का क्षेत्र। त्रिभुज का क्षेत्र। जैसे, △ ▷। २ तीन कोनेवाली कोई वस्तु। ३. तीन कोटियोंवाली कोई वस्तु। ४ योनि। भग। ५ कामरूप के अतर्गत एक तीर्थ जो सिद्धपीठ माना जाता है। ६ जन्मकुंडली में लग्नस्थान से पाँचवाँ और नवाँ स्थान।

त्रिकोणक—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कोण का पिंड। तिकोना पिंड।

त्रिकोणघंटा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकोण घण्टा] लोहे की मोटी सलाख का बना हुआ एक प्रकार का तिकोना बाजा जिसपर लोहे के एक दूसरे टुकड़े से आघात करके ताल देते हैं। इसका आकार ऐसा है—)

त्रिकोणफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा। पानीफल।

त्रिकोणभवन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मकुंडली में लग्न से पाँचवाँ और नवाँ स्थान। दे० 'त्रिकोण'।

त्रिकोणमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित शास्त्र का वह विभाग जिसमें त्रिभुज के कोण, बाहु, वर्ग, विस्तार आदि की नाप निकालने की रीति तथा उनसे संबंध रखनेवाले अन्य अनेक सिद्धांत स्थिर किए जाते हैं।

विशेष—आजकल इसके अंतर्गत त्रिभुज के अतिरिक्त चतुर्भुज और बहुभुज के कोण नापने की रीतियाँ तथा बीजगणित संबंधी बहुत सी बातें भी आ गई हैं।

त्रिक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार, सज्जी और सुहागा इन तीनों खारों का समूह।

त्रिक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] ताल मखाना।

त्रिख—संज्ञा पुं० [सं०] खीरा।

त्रिखा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'।

त्रिखित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृषित'। उ०—त्रिखित लोचन जुगल पान हित अमृतवपु विमल वृंदाविपिन भूमिचारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४।

त्रिगंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगङ्ग] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

त्रिगंधक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगन्धक] दे० 'त्रिजातक'।

त्रिगंभीर—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगम्भीर] वह जिसका सत्व [आचरण], स्वर और नाभि गंभीर हो। लोगों का विश्वास है कि ऐसा पुरुष सदा सुखी रहता है।

त्रिगढ़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + गढ़] ब्रह्मांड। सहस्रार। उ०—कूड़ अरु कपट की झपट कूँ छाँड़ि दे त्रिगढ़ सिर बाय अनहद तूरा।—राम० धर्म०, पृ० १३७।

त्रिगण—संज्ञा पुं० [सं०] 'त्रिवर्ग'।

त्रिगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर भारत के उस प्रांत का प्राचीन नाम जिसमें आजकल पंजाब के जालंधर और कांगड़ा आदि नगर हैं। २ इस देश का निवासी।

त्रिगर्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिनाल स्त्री। पुंश्चली। वह स्त्री जिसे पुरुषप्रसंग की इच्छा हो।

त्रिगर्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिगर्त'।

त्रिगामी(पु)—वि० [सं० त्रि + गामिन्] तीन लोकों में बहनेवाली। त्रिपथगा। उ०—त्रिपथी त्रिगामी विराजत गंगा। महा स्वर्ग लोक नर नारि अंगा।—पृ० रा०, १। १६२।

त्रिगुण[१]—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज, और तम इन तीनों गुणों

का समूह। तीन मुख्य प्रकृतियों का समूह। दे० 'गुण'। उ०—त्रिगुण अतीत जैसे, प्रतिबिंब मिटि जात।—संत-बाणी०, पृ० ११५।

त्रिगुण²—वि० [सं०] १. तीन गुना। तिगुना। २ तीन धागोंवाला। जिसमें तीन धागे हों (को०)। ३. सत, रज, तम इन तीन गुणोंवाला (को०)।

त्रिगुण³—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा। २. माया। तंत्र में एक प्रसिद्ध बीज।

त्रिगुणात्परा—वि० [सं० त्रिगुणात् + परा] त्रिगुणों से परा। उ०—इस अग्निदेवता का निवास है त्रिगुणमयी यह निखिल सृष्टि। पर प्रथम चरम आलोकधाम त्रिनयन की त्रिगुणात्परा दृष्टि।—अग्नि०, पृ० ४०।

त्रिगुणात्मक—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० त्रिगुणात्मिका] तीनों गुणयुक्त। जिसमें तीनों गुण हों। उ०—नारी के नयन! त्रिगुणात्मक ये सन्निपात किसको प्रमत्त नहीं करते।—लहर, पृ० ७१।

त्रिगुणित—वि० [सं०] तीन गुना किया हुआ। तिगुना किया हुआ (को०)।

त्रिगुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेल का पेड़।

विशेष—वेल के पत्ते तीन तीन एक साथ होते हैं इसी से इसका यह नाम पड़ा।

त्रिगुन(पु)—वि० [सं० त्रिगुण] सत, रज तम इन तीन गुणोंवाला। उ०—कह्यो पूरन ब्रह्म ध्यावो त्रिगुन मिथ्या भेष।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३१८।

त्रिगूढ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढ] स्त्रियों के वेष में पुरुषों का नृत्य।

त्रिगूढक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढक] दे० 'त्रिगूढ'।

त्रिगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + गण] तीन का समुदाय। उ०—यहु विवेक कल मान ताल मंडै त्रिगन सुर।—पृ० रा०, २५। १५७।

त्रिघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिघण्टा] एक कल्पित नगर जो हिमालय की चोटी पर अवस्थित माना जाता है। कहते हैं, यहाँ विद्याधर आदि रहते हैं।

त्रिघट—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + घट] स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप तीन शरीर। उ०—युगनि युगनि युगनि युगा त्रिघट उघटित तुरिय उतगा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ८३४।

त्रिघाई(पु)—क्रि० वि० [देश०] त्रिरावृत्ति। बार बार। उ०—नच्चै नद नंदी त्रिघाई त्रिधावै।—पृ० रा०, २५। २२४।

त्रिघाना(पु)—क्रि० अ० [सं० तृप्त] तृप्त होना। संतुष्ट होना। उ०—नच्चै रुर वेताल त्रिघाई। नारद नद्द करै किलकाइ।—पृ० रा०, १९। २१४।

त्रिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनीकुमारों का रथ।

त्रिचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० त्रिचक्षुस्] महादेव।

त्रिचित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गार्हपत्याग्नि।

त्रिजग(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० तिर्यक्] आड़ा चलनेवाले जंतु। पशु तथा कीड़े मकोड़े। तिर्यक्। उ०—(क) त्रिजग देव नर जो तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) यहि विधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते। अखिल विश्व यह मम उपजाया। सब पर मोरि बराबर दाया।—तुलसी (शब्द०)।

त्रिजग²—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] तीनों लोक—स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल। उ०—किंहि विधि त्रिपथगामिनि त्रिजग पावनि प्रसिद्ध भई भले।—पद्माकर (शब्द०)।

त्रिजगत—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये तीनो लोक (को०)।

त्रिजगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये तीनों लोक (को०)।

त्रिजट—संज्ञा पुं० [सं०] १ महादेव। शिव। २ एक ब्राह्मण का नाम जिसको वनयात्रा के समय रामचंद्र जी ने बहुत सी गाएँ दान दी थीं।

त्रिजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विभीषण की बहन जो अशोक-वाटिका में जानकी जी के पास रहा करती थी। २. बेल का पेड़।

त्रिजटी¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजटिन् या त्रिजट] महादेव। शिव।

त्रिजटी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिजटा'।

त्रिजड़—संज्ञा पुं० [हिं०] १ कटारी। २ तलवार।

त्रिजमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रियामा'। उ०—तेही त्रिजमा राय सरेखा। पहिली रात कि मूरत देखा।—इंद्रा०, पृ० १०।

त्रिजात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिजातक'।

त्रिजातक—संज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी (छाल) और तेजपत्ता (पत्ता) इन तीन प्रकार के पदार्थों का समूह जिसे त्रिसुगंधि भी कहते हैं। यदि इसमें नागकेसर भी मिला दिया जाय तो इसे चतुर्जातक कहेंगे।

विशेष—वैद्यक मे इसे रेचक, रूखा, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मुँह की दुर्गंध दूर करनेवाला, हलका, पित्तवर्धक, दीपक तथा वायु और विषनाशक माना है।

त्रिजामा(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रियामा] रात्रि। रजनी। उ०—(क) युग चारि भए सब रैनि याम। अति दुसह बिथा तनु करी काम। यहि ते दयाइ मानो बिरंचि। सब रैनि त्रिजामा कीन्ह संचि।—गुमान (शब्द०)। (ख) छनदा छपा तमस्विनी तमी तमिस्रा होय। निशिश्री सदा विभावरी रात्रि त्रिजामा सोय।—नंददास (शब्द०)।

त्रिजीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन राशियों अर्थात् ९० अंशों तक फैले हुए चाप की ज्या।

त्रिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वृत्त के केंद्र से परिधि तक खिंची हुई रेखा। व्यास की आधी रेखा।

त्रिड़ना(पु)—क्रि० अ० [अनु० तड़तड, राज० तिडकणो, हिं० तड़कना] दे० 'तड़कना'। उ०—जिणि दीहे तिल्ली त्रिड़इ,

हिरणी झालइ गाम। तौंह दिहौंरी गोरड़ी, पडतउ झालइ ग्राम।—ढोला०, दू० २८२।

त्रिण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृण'। उ०—मीढ सहस्सौं मत्थणे लक्ख गिणे त्रिणमत्त।—रा० रू०, पृ० ११५।

त्रिणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष।

त्रिणव—पुं० [सं०] साम गान की एक प्रणाली जिसमें एक विशेष प्रकार से उसकी (३×९) सत्ताईस आवृत्तियाँ करते हैं।

त्रिणाचिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. यजुर्वेद के एक विशेष भाग का नाम। २ उस भाग के अनुयायी। ३ नारायण। ४ अग्नि (को०)।

त्रिणीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी।

विशेष—यह माना जाता है कि पुरुष पति प्राप्त करने के पूर्व कन्या का संबंध सोम, गधर्व और अग्नि से होता है।

त्रितंत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] दे० 'त्रितत्री' (को०)।

त्रितंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] कच्छपी वीणा की तरह की प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा जिसमे तीन तार लगे होते थे।

त्रित—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के मानसपुत्र माने जाते हैं। २ गौतम मुनि के तीन पुत्रों में से एक जो अपने दोनो भाइयो से अधिक तेजस्वी और विद्वान् थे।

विशेष—एक बार ये अपने भाइयों के साथ पशुसंग्रह करने के लिये जगल में गए थे। वहाँ दोनों भाइयों ने इनके सग्रह किए हुए पशु छीनकर और इन्हें अकेला छोडकर घर का रास्ता लिया। वहाँ एक भेड़िए को देखकर ये डर के मारे दौड़ते हुए एक गहरे अधे कुएँ मे जा गिरे। वहीं इन्होने सोमयाग आरभ किया जिसमें देवता लोग भी आ पहुँचे। उन्ही देवताओं ने उस कुएँ से इन्हें निकाला। महाभारत मे लिखा है कि सरस्वती नदी इसी कुएँ से निकली थी।

त्रितय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का समूह।

त्रितय[2]—वि० जिसके तीन भाग हों। तेहरा (को०)।

त्रिताप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताप'।

त्रितिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृतीया'। उ०—त्रितिया सों, सप्तमी कौ एक वचन कबिराइ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५३०।

त्रितीया(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृतीय'। उ०—त्रितीया कीया बाय बघेज।—प्राण०, पृ०३९।

त्रिदंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदण्ड] १ सन्यास आश्रम का चिह्न, बाँस का एक डंडा जिसके सिरे पर दो छोटी छोटी लकड़ियाँ बँधी होती हैं। २ मन, वचन और कर्म का सयम (को०)। ३ दे० 'त्रिदडी' (को०)।

त्रिदंडी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदण्डिन्] १ मन, वचन और कर्म तीनो को दमन करने या वश में रखनेवाला व्यक्ति। २ सन्यासी। परिव्राजक। ३ यज्ञोपवीत। जनेऊ।

त्रिदल—संज्ञा पुं० [सं०] बेल का वृक्ष।

त्रिदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधापदी। हंसपदी।

त्रिदलिका—संज्ञा स्त्री [सं०] एक प्रकार का थूहर जिसे चर्मकशा या सातला कहते हैं।

त्रिदश—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। उ०—(क) कदर्प दर्प दुर्गम दवन उमारवन गुन भवन हर। तुलसीस त्रिलोचन त्रिगुन पर त्रिपुर मथन जय त्रिदशवर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) निरखत बरखत कुसुम त्रिदश जन सुर सुमति मन फूल —सूर (शब्द०)। २ जीव।

त्रिदशगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु बृहस्पति।

त्रिदशगोप—संज्ञा पुं० [सं०] वीरबहूटी नाम का कीड़ा।

त्रिदशदीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंगा। आकाशगगा।

त्रिदशपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदशपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशपुङ्गव] विष्णु (को०)।

त्रिदशपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।

त्रिदशमजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिदशमञ्जरी] तुलसी।

त्रिदशवधू, त्रिदशवनिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

त्रिदशवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशवर्त्मन्] आकाश (को०)।

त्रिदशश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २ ब्रह्मा (को०)।

त्रिदशसर्षप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों। देवसर्षप।

त्रिदशांकुश—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशाङ्कुश] वज्र।

त्रिदशाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदशाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिदशायन'।

त्रिदशायन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

त्रिदशायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

त्रिदशारि—संज्ञा पुं० [सं०] असुर।

त्रिदशालय—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ग। २ सुमेरु पर्वत।

त्रिदशाहार—संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

त्रिदशेश्वरी—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गा।

त्रिदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामरकषा। सातला।

त्रिदिनस्पृश्—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जो तीन दिनों को स्पर्श करती हो। अर्थात् जिसका थोड़ा बहुत अश तीन दिनों मे पड़ता हो।

विशेष—ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

त्रिदिव—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ग। उ०—अनुज ! रहना उचित तुमको यहीं है, यहाँ जो है त्रिदिव में भी नहीं है।—साकेत, पृ० ९५। २ आकाश। ३ सुख।

त्रिदिवाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २ देवता (को०)।

त्रिदिवि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदिव'। उ०—स्वर्ग, नाक, स्वर, द्यौ, त्रिदिवि, दिवि, तिरिविष्टप होइ'—नद० ग्र० पृ० १०८।

त्रिदिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २. इंद्र (को०)।

त्रिदिवोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बड़ी इलायची । २. गंगा ।

त्रिदिवौका –संज्ञा पुं० [सं० त्रिदिवौकस्] देवता [को०] ।

त्रिदश—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

त्रिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देवता ।

त्रिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष । दे० 'दोष' । उ०—गदप्रसु त्रिदोष ज्यों दूरि करै वर । त्रिशिरा सिर त्यों रघुनंदन के शर ।—केशव (शब्द०) । २. वात, पित्त और कफ जनित रोग, सन्निपात । ८०—यौवन ज्वर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन वाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिदोषज¹—वि० [सं०] तीनों दोषों अर्थात् वात, पित्त और कफ से उत्पन्न ।

त्रिदोषज²—संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात रोग ।

त्रिदोषजा—वि० स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिदोषज' । उ०—पूर्वोक्त त्रिदोषजा अश्मरी विशेष करके बालकों के होती है ।—माधव०, पृ० १८० ।

त्रिदोषना(पु)†—क्रि० अ० [सं० त्रिदोष] १. तीनों दोषों के कोप में पड़ना । उ०—कुलहि लजावैं बाल बालिस बजावैं गाल कैधों कर काल वश तमकि त्रिदोषे है ।—तुलसी (शब्द०) । २. काम क्रोध और लोभ के फंदों में पड़ना । उ०—(क) कालि की बात बालि की सुधि करी समुझि हिताहित खोलि कसोले । कह्यो कुरोधित को न मानिए बड़ी हानि जिय जानि त्रिदोषे ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिधनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की रागिनी ।

त्रिधन्वा—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार सुधन्वा राजा के एक पुत्र का नाम ।

त्रिधर्मा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधर्मन्] महादेव । शिव ।

त्रिधा¹—क्रि० वि० [सं०] तीन तरह से । तीन प्रकार से ।

त्रिधा²—वि० [सं०] तीन तरह का ।

यौ०—त्रिधात्व = तीन प्रकारकता । तीन प्रकार का होना ।

त्रिधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १ गणेश । २ सोना, चाँदी और ताँबा ।

त्रिधाम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधामन्] १ विष्णु । २ शिव । ३. अग्नि । ४ मृत्यु । ५ स्वर्ग । ६ व्यास मुनि (को०) ।

त्रिधामूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर जिसके अंतर्गत ब्रह्मा, विष्णु, और महेश तीनों हैं ।

त्रिधारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा नागरमोथा । गुंदला । २ कसेरू का पेड़ ।

त्रिधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तीन धारावाला सेहुँड । २. स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकों मे बहनेवाली, गंगा ।

त्रिधाविशेष—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार सूक्ष्म, मातापितृज और महाभूत तीनों प्रकार के रूप धारण करनेवाला, शरीर ।

त्रिधासर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दैव, तिर्यग् और मानुष ये तीनों सर्ग जिसके अंतर्गत सारी सृष्टि आ जाती है ।

विशेष—दे० 'सर्ग' ।

त्रिन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृण' । उ०—पदतल इन कहूँ बलहु कीट त्रिन सरिस जवनचय ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४० ।

त्रिनयन¹—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

त्रिनयन²—वि० जिसकी तीन आँखें हों । तीन नेत्रोंवाला ।

त्रिनयना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

त्रिनवत—वि० [सं०] तिरानवेवाँ [को०] ।

त्रिनवति—वि०, स्त्री० [सं०] तिरानवे । नब्बे और तीन [को०] ।

त्रिनाभ —संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

त्रिनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ महादेव । शिव । २. सोना । स्वर्ण ।

त्रिनेत्रचूडामणि—संज्ञा पुं० [सं० त्रिनेत्रचूडामणि] चंद्रमा [को०] ।

त्रिनेत्ररस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस ।

विशेष—यह शोधे हुए पारे, गंधक और फूँके हुए ताँबे को बराबर बराबर भागों में लेकर एक विशेष क्रिया से तैयार किया जाता है और जो सन्निपात रोग में दिया जाता है ।

त्रिनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाराहीकंद ।

त्रिनैत(पु)—वि० [सं० तिर्यक् + नेत्र] तिर्यक् नेत्रवाला । उ०—चढ्यो भोजराज पहार त्रिनैत ।—पृ० रा०, २५ । २१८ ।

त्रिनैन(पु)—संज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'त्रिनयन' । उ०—भरि भरि नैन त्रिनैन मनावै । प्रौढ़ा विप्रलब्ध सु कहावै ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५४ ।

त्रिन्न(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृण' । उ०—पेट काज सर, तुंग । त्रिन्न परि धर पर डारैं ।—पृ० रा०, १ । ७६४ ।

त्रिपंखो(पु)—संज्ञा पुं० [डिं०] एक प्रकार का डिंगल गीत । उ०—मद सुकवि हुए भेल, गीत त्रिपंखो गुण इणौं ।—रघु० रू०, पृ० १६० ।

त्रिपंच—वि० [सं० त्रिपञ्च] तिगुना पाँच अर्थात् पंद्रह [को०] ।

त्रिपंचाश—वि० [सं० त्रिपञ्चाश] तिरपनवाँ [को०] ।

त्रिपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ काँच । शीशा । २ ललाट की तीन आड़ी रेखाएँ या बल [को०] ।

त्रिपत—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त' । उ०—बरगौं राल बरमाल सूरा वरैं । त्रिपत पखाल पिल खुल ताला ।—रघु० रू०, पृ० २० ।

त्रिपताक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह माथा या ललाट जिसमें तीन बल पड़े हों । २ हाथ की एक मुद्रा जिनमें तीन उँगलियाँ फैली हों (को०) ।

त्रिपति(पु)¹—वि० [सं० तृप्त > त्रिपित त्रिपति] दे० 'तृप्त' । उ०—त्रिय त्रिघाइ पुरन भए त्रिपति उमापति मुड ।—पृ० रा०, २५।७४४ ।

त्रिपति(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति' । उ०—न हिय राज कहु छिन त्रिपति ।—पृ० रा०, १ । ४८४ ।

त्रिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ बेल का पेड़ जिसके पत्ते एक साथ तीन तीन लगे होते हैं । २ पलाश का पेड़ (को०) ।

त्रिपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पलाश का वृक्ष । ढाक का पेड़ । २. तुलसी, कुंद और बेल के पत्तों का समूह ।

त्रिपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरहर का पेड़। २. तिपतिया घास।

त्रिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनो मार्गों का समूह। उ०—कर्मठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ विहायगो रामदुआरे दीन।—तुलसी (शब्द०)। २ तीनो लोकों (आकाश, पाताल और मर्त्य लोक) के मार्ग (को०)। ३. वह स्थान जहाँ तीन पथ मिलते हैं। तिराहा (को०)।

त्रिपथगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। उ०—मानो मूल भाषा त्रिपथगा की तीन धारा हो बही।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७०।

विशेष—हिंदुओं का विश्वास है कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनो लोकों में गंगा बहती हैं, इसीलिये इसे त्रिपथगा कहते हैं।

त्रिपथगामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। दे० 'त्रिपथगा'।

त्रिपथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'त्रिपथगा'। उ०—पथ देख रही तरंगिणी, त्रिपथा सी वह संग रंगिणी।—साकेत, पृ० ३६३। २ मथुरा (को०)।

त्रिपद[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपद्] १ तिपाई। २ त्रिभुज। ३. वह जिसके तीन पद या चरण हों। ४ यज्ञों की वेदी नापने की प्राचीन काल की एक नाप जो प्रायः तीन हाथ से कुछ कम होती थी। ५ विष्णु (को०)। ६ ज्वर (को०)।

त्रिपद[2]—वि० [सं० त्रिपद] १ तीन पैरोंवाला। २ तीन पाएवाला। ३ तीन चरणवाला। ४ तीन पदों का (शब्दसमूह) [को०]।

त्रिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री।

विशेष—गायत्री मे केवल तीन ही पद होते हैं इसलिये इसका यह नाम पड़ा।

२. हंसपदी। लाल रंग का लज्जू।

त्रिपदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तिपाई की तरह का पीतल आदि का वह चौखटा जिसपर देवपूजन के समय शंख रखते हैं। २. तिपाई। ३ संकीर्ण राग का एक भेद। (संगीत)।

त्रिपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हंसपदी। २ तिपाई। ३ हाथी की पलान बाँधने का रस्सा। ४ गायत्री। ५ तिपाई के आकार का शंख रखने का धातु का चौखटा। ६. गोधापदी लता (को०)।

त्रिपन्न—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के दस घोड़ों मे से एक।

त्रिपरिक्रांत[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपरिक्रान्त] १ वह ब्राह्मण जो यज्ञ करे, पढ़े पढ़ावे और दान दे। २ वह व्यक्ति जिसने काम, क्रोध और लोभ को जीत लिया हो [को०]।

त्रिपरिक्रांत[2]—वि० जो हवन की परिक्रमा करे [को०]।

त्रिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] पलास का पेड़। किंशुक वृक्ष।

त्रिपर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलास का पेड़।

त्रिपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शालपर्णी। २ बनकपास। ३ एक प्रकार की पिठवन लता।

त्रिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का क्षुप जिसका कंद औषध में काम आता है। २ शालपर्णी। ३. वनकपास।

त्रिपल(पु)—संज्ञा पुं० [?] त्रिविध प्राणायाम रेचक, पूरक, कुंभक। उ०—ताड़ी लागी त्रिपल पलटिये छूटै होई पसारी।—कबीर ग्र०, पृ० २२८।

त्रिपाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच (को०)।

त्रिपाठी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठिन्] १ तीन वेदों का जाननेवाला पुरुष। त्रिवेदी। २ ब्राह्मणों की एक जाति। त्रिवेदी। तिवारी।

त्रिपाण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह सूत जो तीन बार भिगोया गया हो (कर्मकांड)। वल्कल। छाल।

त्रिपात्, त्रिपात—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपाद' [को०]।

त्रिपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वर। बुखार। २. परमेश्वर।

त्रिपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तिपाई। २. हंसपदी लता। लाल रंग का लज्जालू।

त्रिपाप—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष मे एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार किसी मनुष्य के किसी वर्ष का शुभाशुभ फल जाना जाता है।

त्रिपिंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपिण्ड] पार्वण श्राद्ध मे पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से दिए हुए तीनों पिंड (कर्मकांड)।

त्रिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध के उपदेशों का बड़ा संग्रह जो उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शिष्यों और अनुयायियों ने समय समय पर किया और जिसे बौद्ध लोग अपना प्रधान धर्मग्रंथ मानते हैं।

विशेष—यह तीन भागों मे, जिन्हें पिटक कहते हैं, विभक्त है। इनके नाम ये हैं—सुत्तपिटक, विनयपिटक, अभिधर्मपिटक। सुत्तपिटक मे बुद्ध के साधारण छोटे और बड़े ऐसे उपदेशों का संग्रह है जो उन्होने भिन्न भिन्न घटनाओं और अवसरों पर किए थे। विनयपिटक मे भिक्षुओं और श्रावकों आदि के आचार के संबंध की बातें हैं। अभिधर्मपिटक मे चित्त, चैतिक धर्म और निर्वाण का वर्णन है। यही अभिधर्म बौद्ध दर्शन का मूल है। यद्यपि बौद्ध धर्म के महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन यानों का पता चलता है और इन्हीं के अनुसार त्रिपिटक के भी तीन संस्करण होने चाहिए, तथापि आजकल मध्यमयान का संस्करण नहीं मिलता। हीनयान का त्रिपिटक पाली भाषा मे है और बरमा, स्याम तथा लंका के बौद्धों का यह प्रधान और माननीय ग्रंथ है। इस यान के संबंध का अभिधर्म से पृथक् कोई दर्शन ग्रंथ नही है। महायान के त्रिपिटक का संस्करण संस्कृत मे है और इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, भूटान, आसाम, चीन, जापान और साइबेरिया के बौद्धों मे है। इस यान के संबंध के चार दार्शनिक संप्रदाय हैं जिन्हें सौत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार और वैभाषिक कहते हैं। इस यान के संबंध के मूल ग्रंथों के कुछ अंश नेपाल, चीन, तिब्बत और जापान में अबतक मिलते हैं। पहले पहल महात्मा बुद्ध के निर्वाण के उपरांत उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों का संग्रह राजगृह के समीप एक गुहा में किया था। फिर महाराज अशोक ने अपने समय मे उसका दूसरा संस्करण बौद्धों के एक बड़े संघ मे कराया था। हीनयान-

वाले अपना संस्करण इसी को बतलाते हैं। तीसरा संस्करण कनिष्क के समय में हुआ था जिसे महायानवाले अपना कहते हैं। हीनयान और महायान के संस्करण के कुछ वाक्यों के मिलान से अनुमान होता है कि ये दोनो किसी ग्रंथ की छाया हैं जो अब लुप्तप्राय है। त्रिपिटक में नारायण, जनार्दन शिव, ब्रह्मा, वरुण और शकर आदि देवताओं का भी उल्लेख है।

त्रिपिताना¹—क्रि॰ अ॰ [सं॰ तृप्ति + आना (प्रत्य॰)] तृप्ति पाना। तृप्त होना। अघा जाना। उ॰—(क) कैसे तृपावत जह अंचवत वह तो पुनि ठहरात। यह आतुर छबि लै उर धारत नेकु नहीं त्रिपितात।—सूर (शब्द॰)। (ख) जे षटरस मुख भोग करत हैं ते कैसे खरि खात। सूर सुनो लोचन हरि रस तजि हम सों क्यों त्रिपितात।—सूर (शब्द॰)।

त्रिपिताना²—क्रि॰ स॰ तृप्त करना। संतुष्ट करना।

त्रिपिब—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह खसी, पानी पीने के समय जिसके दोनो कान पानी से छू जाते हों। ऐसा बकरा मनु के अनुसार पितृकर्म के लिये बहुत उपयुक्त होता है।

त्रिपिष्टप—संज्ञा पुं॰ [स॰ त्रिपुंड] भस्म की तीन आड़ी रेखाओं का तिलक जो शैव या शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। उ॰—गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुंड विराजा।—तुलसी (शब्द॰)।

क्रि॰ प्र॰—देना।—रमाना।—लगाना।

त्रिपुंड्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रिपुण्ड्र] त्रिपुंड।

त्रिपुट—संज्ञा पुं॰ [स॰] १. गोखरू का पेड़। २. मटर। ३ खेसारी। ४ तीर। ५. ताला। ६ एक हाथ की लबाई (को॰)। ७ किनारा। तट (को॰)। ८ बाण (को॰)। ९. छोटी या बड़ी एला या इलायची (को॰) १० मल्लिका (को॰)। ११ एक प्रकार का फोड़ा (को॰)। १२ ताल। तलैया (को॰)।

त्रिपुट²—वि॰ [सं॰] त्रिभुजाकार [को॰]।

त्रिपुटक¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ खेसारी। २. फोड़े का एक आकार।

त्रिपुटक²—वि॰ तिकोना या त्रिभुजाकार (फोड़ा)।

त्रिपुटा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. बेल का पेड़।। २ छोटी इलायची। ३ बड़ी इलायची। ४ निसोथ। ५ कनफोड़ा बेल। ६ मोतिया। ७ तान्त्रिकों की एक देवी जो अभीष्टदात्री मानी गई है।

त्रिपुटी¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ निसोथ। २ छोटी इलायची। २. ३. तीन वस्तुओं का समूह। जैसे, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान, ध्याता, ध्येय और ध्यान; द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि। उ॰—ज्ञाता, ज्ञेय अरु ज्ञान जो ध्याता, ध्येय अरु ध्यान। द्रष्टा, दृश्य अरु दरश जो त्रिपुटी शब्दाभान।—कबीर (शब्द॰)।

त्रिपुटी²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रिपुटिन्] १ रेंड का पेड़। २. खेसारी।

त्रिपुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. बाणासुर का एक नाम। २. तीनो लोक। ३ चदेरी नगर। -(डिं॰)। ४ महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नाम के तीनो दैत्यों ने मय दानव से अपने लिये बनवाए थे।

विशेष—इनमे से एक नगर सोने का और स्वर्ग मे था, दूसरा अंतरिक्ष में चाँदी का था और तीसरा मर्त्यलोक में लोहे का था। जब उक्त तीनों असुरों का अत्याचार और उपद्रव बहुत बढ़ गया तब देवताओं के प्रार्थना करने पर शिव जी ने एक ही बाण से उन तीनों नगरों को नष्ट कर दिया और पीछे से उन तीनों राक्षसो को मार डाला।

त्रिपुरआराति—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रिपुर + आराति] कामारि। महादेव।

त्रिपुरआराती—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रिपुर + आराति] दे॰ 'त्रिपुर आराति'। उ॰—जदपि सती पूछा बहु भाती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती।—मानस, १।५७।

त्रिपुरघ्न—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महादेव।

त्रिपुरदहन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महादेव।

त्रिपुरदाहक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रिपुर + दाहक] दे॰ 'त्रिपुरदहन'। उ॰—त्रिपुरदाहक शिव भद्रवट पर था।—प्रा॰ भा॰ प॰, पृ॰ १०८।

त्रिपुरभैरव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैद्यक का एक रस जो सन्निपात रोग मे दिया जाता है।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है—काली मिर्च ४ भर, सोंठ ४ भर, शुद्ध तेलिया सोहागा ३ भर, और शुद्ध सीगी मोहरा १ भर लेते हैं और इन सब चीजों को पीसकर पहले तीन दिन तक नीबू के रस मे फिर पाँच दिन तक अदरक के रस मे और तब तीन दिन तक पान के रस में अच्छी तरह खरल करके एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेते हैं। यह गोली अदरक के रस के साथ दी जाती है।

त्रिपुरभैरवी—संज्ञा स्त्री॰ [स॰] एक देवी का नाम।

त्रिपुरमल्लिका—संज्ञा स्त्री॰ [स॰] एक प्रकार की मल्लिका।

त्रिपुरहर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महादेव [को॰]।

त्रिपुरसुंदरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ त्रिपुरसुन्दरी] दुर्गा [को॰]

त्रिपुरांतक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रिपुरान्तक] शिव। महादेव।

त्रिपुरा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] कामाख्या देवी की एक मूर्ति।

त्रिपुरारि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिव। महादेव।

त्रिपुरारि रस—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैद्यक मे एक प्रकार का रस जो पारे, ताँबे, गंधक, लोहे, अभ्रक आदि के योग से बनाया जाता है। इसका व्यवहार पेट के रोगों को नष्ट करने के लिये होता है।

त्रिपुरारी—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'त्रिपुरारि'। उ॰—मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन संग दक्षकुमारी।—मानस, १।४८।

त्रिपुरासुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'त्रिपुर'।

त्रिपुरुष¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ पिता, पितामह और प्रपितामह। २. संपत्ति का वह भोग जो तीन पीढ़ियाँ अलग अलग करें। एक एक करके तीन पीढ़ियों का भोग।

त्रिपुरुष²—वि॰ जिसकी लबाई उतनी हो जितनी तीन पुरुषों के मिलने पर होती है [को॰]।

त्रिपुष—संज्ञा पुं० [सं०] १ ककड़ी। २. खीरा। ३. गेहूँ।

त्रिपुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला निसोथ।

त्रिपुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक योग जो पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद और विशाखा इन नक्षत्रों, रवि, मंगल और शनि इन तिथियों मे से किसी एक नक्षत्र एक वार और एक तिथि के एक साथ पड़ने से होता है।

विशेष—इस योग में यदि कोई मरे तो उसके परिवार में दो आदमी और मरते हैं और उसके संबंधियों को अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं। इसमें यदि कोई हानि हो तो वैसी ही हानि और दो बार होती है और यदि लाभ हो तो वैसा ही लाभ और दो बार होता है। बालक के जन्म के लिये यह योग जारज योग समझा जाता है।

त्रिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुरुष' (क्व०)।

त्रिपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से पहले वासुदेव।

त्रिपौरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुरुष'।

त्रिपौलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिरपौलिया'।

त्रिप्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—सुनत सुनत तन त्रिप्त भई।—केशव० अमी०, पृ० १०।

त्रिप्तासना(पु)—क्रि० स० [सं० तृप्ति] तृप्त करना। संतुष्ट करना। उ०—अमृत नामु भोजन त्रिप्तासे। गुर के वाक्य कवन पर गासे।—प्राण०, पृ० १८२।

त्रिप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में दिशा, देश और काल संबंधी प्रश्न।

त्रिप्रस्तुत—संज्ञा पुं० [सं०] वह हाथी जिसके मस्तक, कपोल और नेत्र इन तीनों स्थानों से मद झड़ता हो।

त्रिप्लक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन देश का नाम जिसका उल्लेख वैदिक ग्रंथों में आया है।

त्रिफला—संज्ञा पुं० [सं०] १ आँवले, हड़ और बहेड़े का समूह।

विशेष—यह आँखों के लिये हितकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक, सारक तथा कफ, पित्त, मेह, कुष्ट और विषमज्वर का नाशक माना जाता है। इससे वैद्यक में अनेक प्रकार के घृत आदि बनाए जाते हैं।

पर्या०—त्रिफली। फलत्रय। फलत्रिक।

२. वह चूर्ण जो इन तीनों फलों से बनाया जाता है।

विशेष—यह चूर्ण बनाते समय एक भाग हड़, दो भाग बहेड़ा और तीन भाग आँवला लिया जाता है।

त्रिबंक[1](पु)—वि० [सं० त्रि + हिं० बंक] तीन जगह से टेढ़ा। उ०—बंक दासी संग बैठि चितहू त्रिबंक भो।—नट०, पृ० ३६।

त्रिबंक[2](पु)—संज्ञा स्त्री० तीन जगह से टेढ़ी, कुब्जा। उ०—हम सुधी को टेढ़ी गनी गनिका या त्रिबंक को थक धरी सो धरी।—नट०, पृ० ३१।

त्रिबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवली'।

त्रिवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वे तीन बल जो पेट पर पड़ते हैं। इन बलों की गणना सौंदर्य में होती है। उ०—त्रिवली या पर्दै ललित, रोम राजी मन मोहै।—ह० रासो, पृ० २५। २. मिस्सी (क्व०)।

त्रिवलीक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु। २ मलद्वार। गुदा।

त्रिवालु—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुद्र के एक अनुचर का नाम। २. तलवार का एक दाँव।

त्रिविधि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिविध'। उ०—यहै बहुभाँति त्रिविधि समीर।—ह० रासो, पृ० २१।

त्रिविध(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिविध'। उ०—दरसन परसन पान त्रिविध भय दूर मिटावन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२।

त्रिवीज—संज्ञा पुं० [सं०] साँवाँ (क्व०)।

त्रिवेणी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिवेणी'। उ०—[illegible] त्रिवेणी पुरे पुनाह।—प्राण०, पृ० १११।

त्रिवेनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिवेणी'।

त्रिभंग[1]—वि० [सं० त्रिभङ्ग] तीन जगह से टेढ़ा। जिसमें तीन जगह बल पड़ता हो। उ०—देख कान्ह के तें मिले तब ही सुरत सनेह। गयो त्रिभंग तनु स्याम को कुटिल करी देह।—पद्माकर (शब्द०)।

त्रिभंग[2]—संज्ञा पुं० खड़े होने की एक मुद्रा जिसमें पेट कमर और गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है।

विशेष—प्रायः श्रीकृष्ण के ध्यान में इस प्रकार खड़े होकर बंसी बजाने की भावना की जाती है।

त्रिभंगी[1]—वि० [सं० त्रिभङ्गिन्] तीन जगह से टेढ़ा। तीन मोड़ का। त्रिभंग। उ०—करी कुबत जग कुटिलता, तजौ न दीनदयाल। दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल।—बिहारी (शब्द०)।

त्रिभंगी[2]—संज्ञा पुं० १ ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद जिसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत मात्रा होती है। २ एक राग का एक भेद। ३ एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं और १०, ८, ८, ६, मात्राओं पर यति होती है। जैसे,—परसत पद पावन, सोक नसावन, प्रगट भई तप पुंज सही। ४ गणात्मक दंडक का भेद जिसके प्रत्येक चरण में ६ नगण, २ सगण, भगण, मगण, सगण और अंत में एक गुरु होता है अर्थात् प्रत्येक चरण में ३४ अक्षर होते हैं। जैसे,—सजल जलद तनु लसत विमल तनु श्रम कण रयो झलकों है उनको है सुद मनो है। कुरि कुरि मटकनि फिरि लटकनि अनिमिष नैनन जो है हरयो है मैं मन मोहै। ५ दे० 'त्रिभंग'।

त्रिभंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिभण्डी] निसोथ।

त्रिभ[1]—वि० [सं०] तीन नक्षत्रों से युक्त। जिसमें तीन नक्षत्र हों।

त्रिभ[2]—संज्ञा पुं० चंद्रमा के हिसाब से रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रयुक्त आश्विन, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद

नक्षत्रयुक्त भाद्रमास, और पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी और हस्त नक्षत्रयुक्त फाल्गुन मास।

त्रिभग(पु)—वि० [हि०] दे० 'त्रिभग'। उ०—मुरली सुर नट वाद त्रिभग उर आयत कंबी।—पृ० रा०, २। ४२६।

त्रिभजीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की आधी रेखा। त्रिज्या।

त्रिभज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिभजीया। त्रिज्या।

त्रिभंग—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहवास। स्त्रीप्रसग [को०]।

त्रिभुअन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—कर्म गुत तें बली नाहि त्रिभुअन में कोई।—नंद० ग्रं०, पृ० १७६।

त्रिभुक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] तिरहुत या मिथिला देश।

त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] तीन भुजाओं का क्षेत्र। वह घरातल जो तीन भुजाओं या रेखाओं से घिरा हो। जैसे, △ ▷।

त्रिभुवन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन लोक अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल।

त्रिभुवनगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। उ०—तुम्ह त्रिभुवनगुरु वेद बखाना। आन जीवन पाँवर का जाना।—मानस, १।

त्रिभुवननाथ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + नाथ] जगदीश। परमेश्वर। उ०—त्यों अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सहसुत।—केशव (शब्द०)।

त्रिभुवनराइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + राज] तीन लोकों का स्वामी।

त्रिभुवनराई(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवनराज] तीन लोकों का स्वामी उ०—हम तीनों हैं त्रिभुवन राई।—कबीर सा०, पृ० ५८३।

त्रिभुवनसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिभुवनसुन्दरी] १. दुर्गा। २ पार्वती।

त्रिभूम—संज्ञा पुं० [सं०] तीन खंडोंवाला मकान। तिमहला घर।

त्रिभोलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज वृत्त पर पडनेवाले क्रांतिवृत्त का ऊपरी मध्य भाग।

त्रिमंडला—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिमण्डला] एक प्रकार की जहरीली मकडी।

त्रिमद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मोथा, चीता और बायविडंग इन तीनों चीजों का समूह। २ परिवार, विद्या और धन इन तीनों कारणों से होनेवाला अभिमान।

त्रिमधु—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋग्वेद के एक अश का नाम २. वह व्यक्ति जो विधिपूर्वक उक्त अश पढे। ३ ऋग्वेद का एक यज्ञ। ४ घी, शहद और चीनी इन तीनो का समूह।

त्रिमधुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिमधु'।

त्रिमात—वि० [सं०] दे० 'त्रिमात्रिक'।

त्रिमात—वि० [सं०] त्रिमात्रिक [को०]।

त्रिमातिक—वि० [सं०] तीन मात्राओं का। तीन मात्राओंवाला। जिसमें तीन मात्राएँ हों। प्लुत।

त्रिमार्गगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गगा।

त्रिमार्गगामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गगा।

त्रिमार्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गगा। २ तिरमुहानी।

त्रिमुंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिमुण्ड] १ त्रिशिरा राक्षस। २. ज्वर। बुखार।

त्रिमुकुट—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट।

त्रिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाक्यमुनि। २. गायत्री जपने की चौबीस मुद्राओं में से एक मुद्रा।

त्रिमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिमुखी'।

त्रिमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता, मायादेवी।

विशेष—महायान शाखा के बौद्ध देवीरूप से इनकी उपासना करते हैं।

त्रिमुनि—संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ये तीनों मुनि।

त्रिमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० तिमुहानी'।

त्रिमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता। २ सूर्य।

त्रिमूर्ति[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ब्रह्म की एक शक्ति। २ बौद्धों की एक देवी।

त्रिमृत—संज्ञा पुं० [सं०] निसोथ।

त्रिमृता—संज्ञा स्त्री० सं० दे० 'त्रिमृत'।

त्रियंग(पु)—वि० [सं० त्रि + अङ्ग] तीन रूप का। तीन तरह का। उ०—तहाँ बिट्टिय दति ऊमत्त मत्त। तहाँ छत्र रंगं त्रियंगे ढरत।—पृ० रा०, १६।१४६।

त्रिय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया'। उ०—एहि कर नामु सुमिरि ससारा। त्रिय चढिहहिं पतिव्रत असिधारा।—मानस, १।६७।

त्रियडंडी(पु)—वि० [हि०] दे० 'त्रिदंडी'। उ०—एक डंडी दुडंडी त्रिय-डंडी भगवान हूवा।—गोरख०, पृ० १३२।

त्रियलोक(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिलोक'। उ०—एकै सतगुरु सूर सम तिमिर हरै त्रियलोक।—रज्जब०, पृ० १६।

त्रियव—संज्ञा पुं० [सं०] एक परिमाण जो तीन जौ के बराबर या एक रत्ती के लगभग होता है।

त्रियष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] पितपापड़ा। शाहतरा।

त्रियन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीन'। उ०—त्रियन बरस त्रिय मास दिन त्रीय घटी पल उन्न।—पृ० रा०, २३।१३

त्रिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] औरत। स्त्री।

यौ०—त्रियाचरित्र = स्त्रियों का छल कपट जिसे पुरुष सहज में नही समझ सकते।

त्रियाइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया'। उ०—जलधर बिन यों मेदिनी। ज्यों पतिहीन त्रियाइ।—पृ० रा०, २५।४४।

त्रियाजीत(पु)—वि० [हि० त्रिया + जीत] स्त्री के वश में न आनेवाला उ०—त्रियाजीत ते पुरियागता मिलि भानंत ते पुरिषागता। गोरख०, पृ० ७६।

त्रियातीत(पु)—वि० [सं० त्रि + अतीत] तीन अर्थात् त्रिगुण से परे। उ०—त्रियातीत की श्रेणी जिनको वेद सबसे बढकर बतलाता है।—कबीर म०, पृ० १२६।

त्रियान—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के तीन प्रधान भेद या ज्ञान—महायान, हीनयान और मध्यमयान।

त्रियामक—संज्ञा पुं० [सं०] पाप।

त्रियामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि।

विशेष—रात के पहले चार दंडों और अंतिम चार दंडों की गिनती दिन में की जाती है, जिससे रात में केवल तीन ही पहर बच रहते हैं। इसी से उसे त्रियामा कहते हैं।

२. यमुना नदी। ३. हलदी। ४. नील का पेड़। ५ काला निसोथ।

त्रियासंग—संज्ञा पुं० [हिं० त्रिया + संग] स्त्रीप्रसंग। सहवास। उ०-राजयोग कै चिह्न ये जानै विरला कोय। त्रियासंग मति कीजियहु जो ऐसा नहिं होय।—सुदर ग्रं०, भा० १, पृ० १०४।

त्रियुग—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ वसंत, वर्षा और शरद ये तीनों ऋतुएँ। ३ सत्ययुग, द्वापर और त्रेता ये तीनों युग।

त्रियूह—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा।

त्रियोदश—वि० [हिं०] दे० 'त्रयोदश'। उ०—रवि अयन अस अठ वीस मानि। ससि जन्म त्रियोदस अस ज्यानि।—ह० रासो, पृ० २६।

त्रियोनि—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुकदमा जो क्रोध, लोभ और मोह के कारण होता है [को०]।

त्रिरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध, धर्म और संघ का समूह। (बौद्ध)।

त्रिरश्मि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिकोण'।

त्रिरसक—संज्ञा पुं० [सं०] वह मदिरा जिसमें तीन प्रकार के रस या स्वाद हों।

त्रिरात्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीन रात्रियों (और दिनों) का समय। २ एक प्रकार का व्रत जिसमें तीन दिनों तक उपवास करना पड़ता है। ३ गर्ग त्रिरात्र नामक योग।

त्रिराव—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम [को०]।

त्रिरूप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ के लिये एक विशेष प्रकार का घोड़ा।

त्रिरूप[2]—वि० तीन रंगों या आकृतियोंवाला [को०]।

त्रिरेख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

त्रिरेख[2]—वि० तीन रेखाओंवाला। जिसमें तीन रेखाएँ हों।

त्रिल—संज्ञा पुं० [सं०] नगण, जिसमें तीनों वर्ण लघु होते हैं।

त्रिलघु—संज्ञा पुं० [सं०] १ नगण, जिसमें तीनों वर्ण लघु होते हैं। २ वह पुरुष जिसकी गर्दन, जाँघ और मूत्रेंद्रिय छोटी हो। पुरुष के लिये ये लक्षण शुभ माने जाते हैं।

त्रिलवण—संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा, साँभर और सोचर (काला) नमक।

त्रिलिंग—संज्ञा पुं० [हिं० तैलंग] तैलंग शब्द का बनावटी संस्कृत रूप।

त्रिलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक। यौ०—त्रिलोकनाथ। त्रिलोकपति।

त्रिलोकनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीनों लोकों का मालिक या रक्षक, ईश्वर। २ राम। ३. कृष्ण। ४ विष्णु का कोई अवतार। ५. सूर्य।

त्रिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिलोकनाथ'।

त्रिलोकमणि—संज्ञा पुं० [?] सूर्य। उ०—निरबीज करूँ राकस निकर, मेदूँ फिकर त्रिलोकमणि।—रघु० रू०, पृ० ४८।

त्रिलोकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिलोक'।

त्रिलोकीनाथ—संज्ञा पुं० [हिं० त्रिलोकी + नाथ] दे० 'त्रिलोकनाथ'।

त्रिलोकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर। २. सूर्य।

त्रिलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिलोचनी'।

त्रिलोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा। २ व्यभिचारिणी (स्त्री०)।

त्रिलोह—संज्ञा पुं० [सं०] सोना, चाँदी और ताँबा।

त्रिलोहक—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिलोह [को०]।

त्रिलौह—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिलोह [को०]।

त्रिलौही—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की मुद्रा जो सोने, चाँदी और ताँबे को मिलाकर बनाई जाती थी।

त्रिवट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिवण'।

त्रिवण—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो दोपहर के समय गाया जाता है।

विशेष—इसे कुछ लोग हिंडोल राग का पुत्र मानते हैं।

त्रिवणी—संज्ञा स्त्री० [?] एक संकर रागिनी जो सकराभरण, जयश्री और नरनारायण के मेल से बनती है।

त्रिवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ अर्थ, धर्म और काम। २. त्रिफला। ३ त्रिकुटा। ४ वृद्धि, स्थिति और क्षय। ५ सत्व, रज और तम ये तीनों गुण। ६ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ। ७. सुगति। ८ गायत्री।

त्रिवर्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट [को०]।

त्रिवर्ण[2]—वि० तीन रंगवाला [को०]।

त्रिवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १ गोखरू। २. त्रिफला। ३ त्रिकुटा। ४ काला, लाल और पीला रंग। ५ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ।

त्रिवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनकपास।

त्रिवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोती।

विशेष—कहते हैं, जिसके पास यह मोती होता है उसको दरिद्र कर देता है।

त्रिवर्त्मा[1]—वि० [सं० त्रिवर्त्मन्] तीन मार्गों से जानेवाला। [को०]।

त्रिवर्त्मा[2]—संज्ञा पुं० जीव [को०]।

त्रिवलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवली'।

त्रिवलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवली'।

त्रिबली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवली'।

त्रिबल्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था।

त्रिवार—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

त्रिबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक हाथ।

त्रिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वामन का अवतार। २ विष्णु।

त्रिविद्—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने तीनों वेद पढ़े हों।

त्रिविद्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो तीनों वेदों का ज्ञाता हो [को०]।

त्रिविध¹—वि० [सं०] तीन प्रकार का। उ०—त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी। राम स्वरूप सिंधु समुहानी।—तुलसी (शब्द०)

त्रिविध²—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार से।

त्रिविनत—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें देवता, ब्राह्मण और गुरु के प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति हो।

त्रिविष्टप—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग। २ तिब्बत देश।

त्रिविस्तीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसका ललाट, कमर और छाती ये तीनों अंग चौड़े हों।

विशेष—ऐसा मनुष्य भाग्यवान् समझा जाता है।

त्रिवृत¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवृत्] १ एक प्रकार का यज्ञ। २. निसोथ।

त्रिवृत²—संज्ञा स्त्री० तीन लड़ों की करधनी [को०]।

त्रिवृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवृत'।

त्रिवृत्करण—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि, जल और पृथ्वी इन तीनों तत्वों में से प्रत्येक में शेष दोनों तत्वों का समावेश करके प्रत्येक को अलग अलग तीन भागों में विभक्त करने की क्रिया।

विशेष—इस विचारपद्धति के अनुसार प्रत्येक तत्व में शेष तत्वों भी समावेश माना जाता है। उदाहरण के लिये अग्नि को लीजिए। अग्नि में अग्नि, जल और पृथ्वी का समावेश माना जाता है, और इन तीनों तत्वों के अस्तित्व के प्रमाणस्वरूप अग्नि की ललाई, सफेदी और कालिमा उपस्थित की जाती है। अग्नि की ललाई उसमें अग्नितेज के होने का, उसकी सफेदी उसमें जल के होने का और उसमें की कालिमा उसमें पृथ्वी तत्व होने का प्रमाण माना जाता है। छांदोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक के चौथे खंड में इसका पूरा विवरण दिया हुआ है। जान पड़ता है, उस समय तक लोगों को केवल तीन ही तत्वों का ज्ञान हुआ था और पीछे से जब और दो तत्वों का ज्ञान हुआ तब तत्वों के पंचीकरणवाली पद्धति निकली।

त्रिवृत्त—वि० [सं०] तिगुना।

त्रिवृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवृत्ति'।

त्रिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

त्रिवृत्पर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर। हिलमोचिका।

त्रिवृद्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद। २. प्रणव।

त्रिवृष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ग्यारहवें द्वापर के व्यास का नाम।

त्रिवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तीन नदियों का संगम। २ तीन नदियों की मिली हुई धारा। ३ गंगा, यमुना और सरस्वती का संगमस्थान जो प्रयाग में है।

विशेष—यह तीर्थस्थान माना जाता है और वारुणी तथा मकर संक्रांति आदि के अवसरों पर यहाँ स्नान करनेवालों की बहुत भीड़ होती है।

४ हठयोग के अनुसार इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीनों नाड़ियों का संगम स्थान।

त्रिवेणु—संज्ञा पुं० [सं०] रथ के अगले भाग के एक अंग का नाम।

त्रिवेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋक, यजु और साम ये तीनों वेद। २. इन तीनों वेदों में बतलाए हुए कर्म। ३. वह जो इन तीनों का ज्ञाता हो।

त्रिवेदी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवेदिन्] १ ऋक्, यजु और साम इन तीन वेदों का जाननेवाला। २. ब्राह्मणों का एक भेद।

त्रिवेनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिवेणी'।

त्रिवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

त्रिशंकु—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कु] १ बिल्ली। २ जुगनू। ३ एक पहाड़ का नाम। ४ पपीहा। ५ एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा का नाम जिन्होंने सशरीर स्वर्ग जाने की कामना से यज्ञ किया था पर जो इंद्र तथा दूसरे देवताओं के विरोध करने के कारण स्वर्ग न पहुँच सके।

विशेष—रामायण में लिखा है कि सशरीर स्वर्ग पहुँचने की कामना से त्रिशंकु ने अपने गुरु वशिष्ठ से यज्ञ कराने की प्रार्थना की पर वशिष्ठ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न की। इसपर वह वशिष्ठ के पुत्रों के पास गए, पर उन लोगों ने भी उनकी बात न मानी, उलटे उन्हें शाप दिया कि तुम चांडाल हो जाओ। तदनुसार राजा चांडाल होकर विश्वामित्र की शरण में पहुँचे और हाथ जोड़कर उनसे अपनी अभिलाषा प्रकट की। इसपर विश्वामित्र ने बहुत से ऋषियों को बुलाकर उनसे यज्ञ करने के लिये कहा। ऋषियों ने विश्वामित्र के कोप से डरकर यज्ञ आरंभ किया जिसमें स्वयं विश्वामित्र अध्वर्यु बने। जब विश्वामित्र ने देवताओं को उनका हविर्भाग देना चाहा तब कोई देवता न आए। इसपर विश्वामित्र बहुत बिगड़े और केवल अपनी तपस्या के बल से ही त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने लगे। जब इंद्र ने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग की ओर आते हुए देखा तब उन्होंने वहीं से उन्हें मर्त्यलोक की ओर लौटाया। त्रिशंकु जब उलटे होकर नीचे गिरने लगे तब बड़े जोर से चिल्लाए। विश्वामित्र ने उन्हें आकाश में ही रोक दिया और क्रुद्ध होकर दक्षिण की

और दूसरे सप्तर्षियों और नक्षत्रों की रचना प्रारंभ की। सब देवता भयभीत होकर विश्वामित्र के पास पहुँचे। तब विश्वामित्र ने उनसे कहा कि मैंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है। अत अब वह जहाँ के तहाँ रहेंगे और हमारे बनाए हुए सप्तर्षि और नक्षत्र उनके चारो ओर रहेंगे। देवताओं ने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तब से त्रिशंकु वहीं आकाश में नीचे सिर किए हुए लटके हैं और नक्षत्र उनकी परिक्रमा करते हैं। लेकिन हरिवंश में लिखा है कि महाराज त्रय्यारुण का सत्यव्रत नामक एक पुत्र बहुत ही पराक्रमी राजा था। सत्यव्रत ने एक पराई स्त्री को घर में रख लिया था। इससे पिता ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम चांडाल हो जाओ। तदनुसार सत्यव्रत चांडाल होकर चांडालों के साथ रहने लगे। जिस स्थान पर सत्यव्रत रहते थे उसके पास ही विश्वामित्र ऋषि भी वन में तपस्या करते थे। एक बार उस प्रांत में बारह वर्षों तक वृष्टि ही न हुई, इससे विश्वामित्र की स्त्री अपने बिचले लड़के को गले में बाँधकर सौ गायों को बेचने निकली। सत्यव्रत ने उस लडके को ऋषिपत्नी से लेकर उसे पालना आरंभ किया, तभी से उस लडके का नाम गालव पडा। एक बार मांस के अभाव के कारण सत्यव्रत ने वशिष्ठ की कामधेनु गौ को मारकर उसका मांस विश्वामित्र के लड़कों को खिलाया था और स्वयं भी खाया था। इसपर वशिष्ठ ने उनसे कहा कि एक तो तुमने अपने पिता को असंतुष्ट किया, दूसरे अपने गुरु की गौ मार डाली और तीसरे उसका मांस स्वयं खाया और ऋषिपुत्रों को खिलाया। अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। सत्यव्रत ने ये तीन महापातक किए थे, इसी से वह त्रिशंकु कहलाए। उन्होंने विश्वामित्र की स्त्री और पुत्रों की रक्षा की थी इसलिये ऋषि ने उनसे वर माँगने के लिये कहा। सत्यव्रत ने सशरीर स्वर्ग जाना चाहा। विश्वामित्र ने पहले तो उनकी यह बात मान ली, पर पीछे से उन्होंने सत्यव्रत को उनके पैतृक राज्य पर अभिषिक्त किया और स्वयं उनके पुरोहित बने। सत्यव्रत ने केकय वंश की सत्यरथा नामक कन्या से विवाह किया था जिसके गर्भ से प्रसिद्ध सत्यव्रती महाराज हरिश्चंद्र ने जन्म लिया था। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार त्रिशंकु अनेक वैदिक मंत्रों के ऋषि थे।

६. एक तारा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वही त्रिशंकु है जो इंद्र के ढकेलने पर आकाश से गिर रहे थे और जिन्हें मार्ग में ही विश्वामित्र ने रोक दिया था।

त्रिशंकुज—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुज] त्रिशंकु के पुत्र, राजा हरिश्चंद्र।

त्रिशंकुयाजी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुयाजिन्] त्रिशंकु को यज्ञ करानेवाले, विश्वामित्र ऋषि।

त्रिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इच्छा, ज्ञान, और क्रिया रूपी तीनों ईश्वर शक्तियाँ। २ महत्तत्व जो त्रिगुणात्मक है। बुद्धितत्व। ३. तांत्रिकों की काली, तारा और त्रिपुरा ये तीनो देवियाँ। ४. गायत्री।

यौ०—त्रिशक्तिधृत्।

त्रिशक्तिधृत्—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। २. विजिगीषु राजा का एक नाम।

त्रिशत—वि० [सं०] तीन सौ [को०]।

त्रिशरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध। २ जैनियों के एक आचार्य का नाम।

त्रिशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़, चीनी और मिस्री इन तीनों का समूह।

त्रिशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्तमान अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थंकरों में से अंतिम तीर्थंकर वर्धमान या महावीर स्वामी की माता का नाम।

त्रिशाख—वि० [सं०] जिसमें आगे की ओर तीन शाखाएँ निकली हों।

त्रिशाखपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पेड़।

त्रिशाल—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कमरोंवाला मकान [को०]।

त्रिशालक—संज्ञा पुं० [सं०] वृहत्संहिता के अनुसार वह इमारत जिसके उत्तर और ओर कोई इमारत न हो।

विशेष—ऐसी इमारत अच्छी समझी जाती है।

त्रिशिख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ त्रिशूल। २. किरीट। ३ रावण के एक पुत्र का नाम। ४ बेल का पेड। ५ तामस नामक मन्वंतर के इंद्र के नाम।

त्रिशिख[2]—वि० जिसकी तीन शिखाएँ हों। तीन चोटियोंवाला।

त्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट पर्वत।

त्रिशिखदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालाकंद नाम की लता अथवा उसका कंद (मूल)।

त्रिशिखी—वि० [सं०] दे० 'त्रिशिख'।

त्रिशिर—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशिरस्] १ रावण का एक भाई जो खरदूषण के साथ दंडक वन में रहा करता था। २ कुबेर। ३ एक राक्षस जिसका उल्लेख महाभारत में है। ४ त्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम। हरिवंश के अनुसार ज्वरपुरुष।

विशेष—इसे दानवो के राजा बाण की सहायता के लिये महादेव जी ने उत्पन्न किया था और जिसके तीन सिर, तीन पैर, छह हाथ और नौ आँखें थीं।

त्रिशिरा—संज्ञा पुं० [त्रिशिरस्] दे० 'त्रिशिर'।

त्रिशीर्ष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन चोटियोंवाला पहाड़। त्रिकूट। त्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम।

त्रिशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशूल।

त्रिशुच—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्म, जिसका प्रकाश स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथिवी तीनो स्थानो में है। २ वह जिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के दुःख हों।

त्रिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेव जी का अस्त्र माना जाता है।

यौ०—त्रिशूलधर = महादेव ।

२ दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख । ३ तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिसमें अंगूठे को कनिष्ठा उँगली के साथ मिलाकर बाकी तीनों उँगलियों को फैला देते हैं ।

त्रिशूलघात—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ जहाँ स्नान और तर्पण करने से गाणपत्य देह प्राप्त होती है ।

त्रिशूलधारी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलधारिन्] शिव (को०) ।

त्रिशूली—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलिन्] त्रिशूल को धारण करनेवाला, महादेव ।

त्रिशूली—संज्ञा स्त्री० दुर्गा ।

त्रिशृंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशृङ्ग] १ त्रिकूट पर्वत जिसपर लंका बसी थी । २ त्रिकोण ।

त्रिशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिशृङ्गी] टेंगना नामकी जिसके सिर पर तीन काँटे होते हैं ।

त्रिशोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीव, जिसे आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक ये तीन प्रकार के शोक होते हैं । २ कण्व ऋषि के एक पुत्र का नाम ।

त्रिश्रुतिमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विकृत स्वर ।

विशेष—यह संदीपनी नाम की श्रुति से प्रारंभ होता है । इसमें चार श्रुतियाँ होती हैं ।

त्रिषवण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल । त्रिकाल ।

त्रिषष्ठ—वि० [सं०] तिरसठवाँ । क्रम में तिरसठ के स्थान पर पड़नेवाला ।

त्रिषष्ठि—संज्ञा स्त्री [सं०] साठ और तीन की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६३ ।

त्रिषष्ठि[२]—वि० साठ और तीन । तिरसठ (को०) ।

त्रिषा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा' । उ०—अमर भेद साहिब कहि दीजे । त्रिषा बुझाय अमीरस पीजे ।—कबीर सा०, पृ० ६६२ ।

त्रिषाली(पु)†—वि० [हिं० त्रिषा] तृषातुर । प्यासा । उ०—पिंचल्या रहे त्रिषाली अगल्यों भाव मिल ।—नट०, पृ० १६८ ।

त्रिषित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृषित' । उ०—आतुर गति मनो चंद उदै भए धावत त्रिषित चकोरी ।—नंद० ग्रं०, ३३२ ।

त्रिषु—संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणों तक की दूरी का स्थान ।

त्रिषुक—संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणोंवाला धनुष ।

त्रिषुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिसुपर्ण' ।

त्रिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वैदिक अग्नि ।

त्रिष्टुप—संज्ञा पुं० [सं० त्रिष्टुप्] दे० 'त्रिष्टुभ्' ।

त्रिष्टुभ्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं ।

विशेष—इसका गोत्र कौशिक, वर्ण लोहित, स्वर धैवत, देवता इंद्र और उत्पत्ति प्रजापति के मांस से मानी जाती है । इसके सुमुखी, इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, कीर्ति, वारणी, माला, शाला, हंसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, रथोद्धता, दोधक, ऋद्धि और सिद्धि या बुद्धि आदि प्रधान भेद हैं ।

त्रिष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो अन्नधृति यज्ञ के पहले और पीछे किया जाता है ।

त्रिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तीन पहियोंवाला रथ या गाड़ी ।

त्रिसंक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिशंकु' । उ०—कमल नवाज त्रिसंक वह वध चम आदि सदैव । होंहि हलंत कदापि नहि, आइ करे जो दैव ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३४ ।

त्रिसंगम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसङ्गम] १. तीन नदियों के मिलने का स्थान । त्रिवेणी । २ किसी प्रकार की तीन चीजों का मेल ।

त्रिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसन्धि] एक प्रकार का फूल जो लाल, सफेद और काला तीन रंगों का होता है । इसे फगुनियाँ भी कहते हैं । वैद्यक में इसे रुचिकारक और कफ, खाँसी तथा त्रिदोष का नाशक माना है ।

पर्या०—साध्यकुसुमा । संधिवल्ली । सदाफला । त्रिसंध्यकुसुमा । कांडा । सुकुमारा । संधिजा ।

त्रिसंध्य—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसन्ध्य] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल ।

विशेष—जो तिथि त्रिसंध्यव्यापिनी, अर्थात् सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहती है वह सब कार्यों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्यकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसन्ध्यकुसुम] दे० 'त्रिसंधि' ।

त्रिसंध्यव्यापिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिसन्ध्यव्यापिनी] (वह तिथि) जो बराबर सूर्योदय से सूर्यास्त तक हो ।

विशेष—ऐसी तिथि शुद्ध और सब कामों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसन्ध्या] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों समय ।

त्रिसप्तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्तर और तीन का जोड़ । तिहत्तर । २ तिहत्तर की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७३ ।

त्रिसप्ततितम—वि० [सं०] तिहत्तरवाँ । जो क्रम में तिहत्तर के स्थान पर हो ।

त्रिसम[१]—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, गुड़ और हड़ इन तीनों का समूह ।

त्रिसम[२]—वि० जिसकी तीनों भुजाएँ बराबर हों (ज्या०) ।

त्रिसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेसारी । २. तीन लड़ियों का मोतियों का हार (को०) । ३ दूध में मिलाकर पका हुआ तिल और चावल (को०) ।

त्रिसरैनु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रसरेणु] दे० 'त्रसरेणु' । उ०—उपजत भ्रमत फिरत नहिं चैनु । जैसें जालरंध्र त्रिसरैनु ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७० ।

त्रिसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज और तम तीनों गुणों का सर्ग। सृष्टि।

त्रिसल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [?] त्रिरेखा। त्रिपुंड। उ०—मव माया वालक लियाँ, त्रिसलो लियाँ लिलाट। —बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६।

त्रिसामा¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसामन्] परमेश्वर।

त्रिसामा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकलती है।

त्रिसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिशर्करा'।

त्रिसुगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसुगन्धि] दालचीनी, इलायची और तेजपात इन तीनों सुगंधित मसालों का समूह।

त्रिसुद्ध(पु)—वि० [सं० त्रि + शुद्ध] तीनों तरह से शुद्ध। उ०—बूझैं पूं सुद्ध त्रिसुद्ध तौ स्वर्गापवर्गहिं पावही।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १५।

त्रिसुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम। २ यजुर्वेद के तीन विशिष्ट मन्त्रों का नाम।

त्रिसुपर्णिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो त्रिसुपर्ण का ज्ञाता हो।

त्रिसूल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० त्रिसल] चिंता या क्रोधावेश में ललाट पर उभड़ आनेवाली त्रिशूल की आकृति की रेखा। उ०—माथि त्रिसूलउ नाक सल, कोइ विरुट्टा कज्ज।—ढोला०, दू० २१६।

त्रिसौपर्ण—संज्ञा पुं०[सं०]१ त्रिसुपर्णिक। २. परमेश्वर। परमात्मा।

त्रिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० त्रिस्कन्ध] ज्योतिष शास्त्र जिसके संहिता, तंत्र और होरा ये तीन स्कंध हैं।

त्रिस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गायत्री। २ महाभारत के अनुसार एक राक्षसी जिसके तीन स्तन थे।

त्रिस्तवन—संज्ञा पुं०[सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

त्रिस्तावा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वमेध यज्ञ की वेदी जो साधारण वेदी से तिगुनी बड़ी होती थी।

त्रिस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी, गया और प्रयाग ये तीन पुण्य स्थान।

त्रिस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों स्थानों में रहनेवाला, परमेश्वर।

त्रिस्पृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की एकादशी।

विशेष—यह उस समय होती है जब एक ही सावन दिन में उदयकाल के समय थोड़ी सी एकादशी और रात के अंत में त्रयोदशी होती है। ऐसी एकादशी बहुत उत्तम और पुण्य कार्यों के लिये उपयुक्त मानी जाती है।

त्रिस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] सवेरे, दोपहर और संध्या तीनों समय का स्नान।

विशेष—यह वानप्रस्थ आश्रम में रहनेवाले के लिये आवश्यक है। कई प्रायश्चित्तों में भी त्रिस्नान करना पड़ता है।

त्रिस्रोता—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिस्रोतस्] १. गंगा। उ०—भस्म त्रिपुंड्रक शोभिजै वर्णत बुद्धि उदार। मनो त्रिस्रोता सोतद्युति वदत लगी लिलार।—केशव (शब्द०)। २ उत्तर बंगाल की एक बड़ी नदी जिसे तिस्ता कहते हैं।

त्रिहायण—वि० [सं०] जिसकी अवस्था तीन वर्ष की हो [को०]।

त्रिहायणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी।

त्रिहुत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिरहुत'।

त्री(पु)¹—संज्ञा स्त्री०[हिं०] दे० 'त्रिया'। उ०—गुण गजवध तणा कव गावै। दु रस परायण त्री दरसावै।—रा० रू०, पृ० १६।

त्री(पु)²—वि०[हिं०]दे० 'त्रि'। उ०—त्री अस्थान निरंतरि निरधार। तहँ प्रभु बैठे सम्रथ सार।—दादू०, पृ० ६७५।

त्रीकुटा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकुटा'। उ०—मोथा और पटोल दल आनी। त्रिफला औ त्रीकुटा समानी।—इंद्रा०, पृ० १५१।

त्रीगुन(पु)—वि० [सं० त्रिगुण] तिगुना। उ०—इद्र बीराइ बल इद्र जोर। त्रीगुन विलास तन हरत रोर।—पृ० रा०, ६।८०।

त्रीघटना(पु)—क्रि० अ० [हिं० घटना] घटित होना। होना। उ०—पाथरी घड़ी यो कै त्रीघट लोह।—बी० रासो, पृ० ६४।

त्रीछन(पु)—वि० [हिं०] दे० तीक्ष्ण'। उ०—प्रगिनि तत सुर ऊपर बहई। त्रीछन काल पवन कर अहई।—सं० दरिया, पृ० २५।

त्रीजइ(पु)—वि० [सं० तृतीय] दे० 'तीसरा'। उ०—त्रीजइ पुहरि उलंघियउ, आउ वलाउउ घट्ट।—ढोला०, दू० ४२४।

त्रीस(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'। उ०—भूख नहीं त्रीस ऊछली।—बी० रासो, पृ० ६७।

त्रीयाँ(पु)—वि० [सं० त्रि] तीनों। उ०—मारू मारइ पहिपड़ा, जउ पहिरइ सोवन्न। दंती चूडइ मोतियाँ, त्रीयाँ हेक वरन्न।—ढोला०, दू० ४७५।

त्रुगटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०]—दे० त्रिकुटी'। उ०—त्रुगुणी त्रुगटी मनकर अरघा सपट ध्यान धरीजै।—रामानंद०, पृ० २७।

त्रुगुणी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिगुणी'। उ०—त्रुगुणी त्रुगटी मनकर अरघा सपट ध्यान धरीजै।—रामानंद०, पृ० २७।

त्रुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कमी। कसर। न्यूनता। २ अभाव। ३ भूल। चूक। ४ वचनभंग। ५. छोटी इलायची। एला। ६ संशय। संदेह। ७ कार्तिकेय की एक मातृका का नाम। ८ समय का एक अत्यंत सूक्ष्म विभाग जो दो क्षण के बराबर और किसी के मत से प्राय चार क्षण के बराबर होता है।

त्रुटित—वि० [सं०] १ कटा या टूटा हुआ। २ जिसपर आघात लगा हो। ३ आहत।

त्रुटिबीज—संज्ञा पुं० [सं०] अरुई। कच्चू। घुइयाँ।

त्रुटी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रुटि'।

त्रुटी(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रुटि'। उ०—त्रुटी परे है या मेरा मैया जीवरो बहु दुख पावै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५१।

त्रुटना(पु)—क्रि॰ प्र॰ [हिं॰] दे॰ 'टूटना'। उ॰—सदेसउ जिन पाठवइ, मरिस्यउँ हीया फूटि। पारेवा का भूल जिउँ, पडिनई प्रांगिणि त्रूटि।—ढोला॰, दू॰ १४३।

त्रेटकु(पु)†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'त्राटक'। उ॰—त्रेटकु भेप न चेटकु कोई।—प्राण॰, पृ॰ ११०।

त्रेटना(पु)†—क्रि॰ प्र॰ [सं॰ त्रुटि] तोडना। चोट मारना। उ॰—कटक काल फिरि कदे न त्रेटे।—प्राण॰, पृ॰ १०९।

त्रेता—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ चार युगों में से दूसरा युग जो १२९६०० वर्ष का होता है।

विशेष—पुराणानुसार इस युग का जन्म अथवा आरंभ कार्तिक शुक्ला नवमी को होता है। इस युग में पुण्य के तीन पाद और पाप का एक पाद होता है, और सब लोग धर्मपरायण होते हैं। पुराणानुसार इस युग में मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष तथा मनु के अनुसार तीन सौ वर्ष होती है। परशुराम और रघुवंशी राम के अवतार का इसी युग में होना माना जाता है।

मुहा॰—त्रेता के बीजों में मिलना = सत्यानाश होना। नष्ट होना। (एक शाप)।

२ दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय, ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ। ३ जुए में तीन कौड़ियों का अथवा पासे के उस भाग का चित पड़ना जिसपर तीन बिंदियाँ हों।

त्रेताग्नि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ।

त्रेतायुग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'त्रेता'।

त्रेतायुगाद्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कार्तिक शुक्ला नवमी, जिस दिन त्रेता का जन्म या आरंभ होना माना जाता है।

विशेष—इसकी गणना पुण्य तिथियों में है।

त्रेतिनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह क्रिया जो दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय तीनों प्रकार की अग्नियों से हो।

त्रेधा—क्रि॰ वि॰ [सं॰] तीन प्रकार से अथवा तीन भागों में [को॰]।

त्रेन(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तृण'। उ॰—नैहर नेह नहि त्रेन तन तोरो। पुष्प पलंग पर प्रेम प्रिति जोरो।—सं॰ दरिया, पृ॰ १७२।

त्रै—वि॰ [सं॰ त्रय] तीन। उ॰—ज्यों अति प्यासो पावै मग में गंगाजल। प्यास न एक बुझाय बुझै त्रै ताप बल।—केशव (शब्द॰)।

यौ॰—त्रैकालिक।

त्रैकंटक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रैकण्टक] दे॰ 'त्रिकंटक'।

त्रैककुद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'त्रिककुद'।

त्रैककुभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'त्रिककुभ'।

त्रैकालज्ञ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'त्रिकालज्ञ'।

त्रैकालिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ त्रैकालिकी] वह जो त्रिकाल में होता हो। तीनों कालों में या सदा होनेवाला।

त्रैकाल्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ तीन काल—भूत, वर्तमान और भविष्यत्। २ सूर्योदय, अपराह्न और सूर्यास्त। ३. तीन का समूह। ४ तीन दशाएँ—उत्पत्ति, रक्षण और विनाश [को॰]।

त्रैकूटक—संज्ञा पुं॰[सं॰] कलचुरि राजवंश के समय का एक प्राचीन राजवंश।

त्रैकोणिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वह जिसके तीन पार्श्व हों। तिपहला २ वह जिसके तीन कोण हों।

त्रैकोन(पु)—संज्ञा पुं॰[हिं॰] दे॰ 'त्रिकोण'। उ॰—मध्यचरन त्रैकोन है अमृत कलश कहूँ देख।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ३३।

त्रैगर्त—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ त्रिगर्त देश का रहनेवाला। २ त्रिगर्त देश का राजा।

त्रैगुणिक—वि॰ [सं॰] १ तेहरा। तीनगुना। २ तीन गुणों से संबंधित [को॰]।

त्रैगुण्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] त्रिगुण का धर्म या भाव। सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों का धर्म या भाव।

त्रैता(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'त्रेता'। उ॰—त्रैता राम रूप दशरथ गृह रावन कुलहि संघारयो।—दो सौ बावन॰, भा॰ १, पृ॰ १६२।

त्रैदशिक¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] उँगली का अगला भाग, जो तीर्थ कहलाता है।

त्रैदशिक²—वि॰ १ ईश्वरीय। २ देवताओं से संबंधित [को॰]।

त्रैध—वि॰ [सं॰] तेहरा। तिगुना [को॰]।

त्रैधातवी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार का यज्ञ।

त्रैपन(पु)—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'तिरपन'। उ॰—हवसीह सग त्रैपन हजार। कर धरें कहर कर्त्ता बजार।—पृ॰ रा॰, १३। १७।

त्रैपुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'त्रिपुर'।

त्रैपुरुष—वि॰[सं॰] [वि॰ स्त्री॰ त्रैपुरुषी] पुरुषों की तीन पीढ़ी तक चलनेवाला [को॰]।

त्रैफल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] चक्रदत्त के अनुसार वैद्यक में एक प्रकार का घृत जो त्रिफला आदि के संयोग से बनाया जाता है और जिसका व्यवहार प्रदर आदि रोगों में होता है।

त्रैबलि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है।

त्रैमातुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] लक्ष्मण।

विशेष—लक्ष्मण जी सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे पर सुमित्रा ने चरु का जो अंश खाया था वह पहले कौशल्या और केकयी को दिया गया था और उन्हीं दोनों से सुमित्रा को मिला था, इसीलिये लक्ष्मण का नाम त्रैमातुर पड़ा।

त्रैमासिक—वि॰ [सं॰] [वि॰स्त्री॰ त्रैमासिकी] हर तीसरे महीने होनेवाला। जो हर तीसरे महीने हो। जैसे, त्रैमासिक पत्र।

त्रैमास्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तीन महीने का समय [को॰]।

त्रैयंबक¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रैयम्बक] एक प्रकार का होम।

त्रैयंबक²—वि॰ [सं॰] त्र्यंबक संबंधी। जैसे, त्रैयंबक बलि।

त्रैयंबिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ त्र्यम्बिका] गायत्री।

त्वक्सारभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा चेंच।

त्वक्सारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

त्वक्सुगंध—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्ध] नारंगी [को०]।

त्वक्सुगंधा—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्धा] १. एलुवा। २ छोटी इलायची।

त्वगंकुर—संज्ञा पुं० [सं० त्वगङ्कुर] रोमांच।

त्वग्—संज्ञा पुं० [सं०] 'त्वक्' का समासगत रूप [को०]।

त्वगाक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

त्वगेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वगिन्द्रिय] स्पर्शेंद्रिय [को०]।

त्वग्गंध—संज्ञा पुं० [सं० त्वग्गन्ध] नारंगी का पेड़।

त्वग्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोम। रोआँ। २ रक्त। लहू।

त्वग्जल—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना [को०]।

त्वग्दोष—संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़। कुष्ट।

त्वग्दोषापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वकुची। बावची।

त्वग्दोषारि—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद।

त्वग्दोषी—संज्ञा पुं० [सं० त्वग्दोषिन्] कोढी। जिसे कुष्ट रोग हो।

त्वग्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा फाटना। चमड़े को छीलकर निकालना [को०]।

त्वच्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़ा। २ छाल। वल्कल। ३ दारचीनी। ४ साँप की केंचुली। ५ त्वक् इंद्रिय। दे० 'त्वक्'।

त्वच—संज्ञा पुं० [सं०] १ दारचीनी। २ तेजपत्ता। ३. छाल (को०)।

त्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ खाल से ढाँकना। २. खाल उतारना [को०]।

त्वचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्वक्। चर्म। चमड़ा।

त्वचापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ तेजपत्ता। २ दारचीनी। ३ छाल (को०)।

त्वचिसार—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।

त्वचिसुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वचिसुगन्धा] छोटी इलायची।

त्वदीय—सर्व० [सं०] [स्त्री० त्वदीया] तुम्हारा।

त्वन्निःसृत—वि०[सं० त्वत्+निःसृत] तुम से निकला हुआ। उ०—सुख चला है सचित त्वन्निःसृत नेह अमिय।—क्वासि, पृ० ३४।

त्वम्—सर्व० [सं०] तुम [को०]।

त्वर्—क्रि० वि० [सं०] शीघ्रतापूर्वक। वेग से [को०]।

त्वरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्वरा' [को०]।

त्वरणीय—वि० [सं०] जिसे शीघ्रता से किया जाय। जिसके करने के लिये शीघ्रता की अपेक्षा हो [को०]।

त्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेग। शीघ्रता [को०]।

त्वरा—संज्ञा स्त्री [सं०] शीघ्रता। जल्दी।

त्वरारोह—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर [को०]।

त्वरावान्—वि० [सं० त्वरावत् [वि० स्त्री० त्वरावती] १. शीघ्रगामी। २ शीघ्रता करनेवाला। काम को जल्दी करनेवाला। ३. फुर्तीला। तेज [को०]।

त्वरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वरा'।

त्वरित¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्वरिता। तेज।

त्वरित²—क्रि० वि० शीघ्रता से। उ०—त्वरित भारती ला, उतार लूँ। पद दृगबु से मैं पखार लूँ।—साकेत, पृ० ३१०।

त्वरितक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे तूर्णक भी कहते हैं।

त्वरितगति—संज्ञा पुं० [सं] १. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, ज०ण, नगण और एक गुरु होता है। इसका दूसरा नाम 'अमृतगति' भी है। जैसे,—निज नग खोजत हर छू। पयसित लक्षमि वरछू। (शब्द) २. तेज चाल।

त्वरिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी जिसकी पूजा युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये की जाती है।

त्वलग—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का साँप।

त्वष्टा—संज्ञा पुं० [सं० त्वष्टृ] १. विश्वकर्मा। विष्णुपुराण के अनुसार ये सूर्य के सात सारथियों में से एक हैं। २ महादेव। शिव। ३ एक प्रजापति का नाम। ४ बढ़ई। ५. वृत्रासुर के पिता का नाम। ६. बारह आदित्यों में से ग्यारहवें आदित्य जो आँख के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं। ७. एक वैदिक देवता जो पशुओं और मनुष्यों के गर्भ में वीर्य का विभाग करनेवाले माने जाते हैं। ८ सूत्रधर नाम की वर्णसंकर जाति। ९ चित्रा नक्षत्र के अधिष्ठाता देवता का नाम।

त्वष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनु के अनुसार एक संकर जाति। २. बढ़ई का धंधा (को०)।

त्वष्टर—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वष्टृ] दे० 'त्वष्टा'। उ०—हे त्वष्टर। इसका संतान दो।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८१।

त्वाच—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्वाची] त्वचा से संबंधित [को०]।

त्वाष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

त्वाष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ त्वष्टा (विश्वकर्मा) का बनाया हुआ हथियार, वज्र। २ वृत्रासुर का एक नाम। ३ चित्रा नक्षत्र।

त्वाष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा का एक नाम। जो सूर्य को ब्याही थी और जिसके गर्भ से अश्विनीकुमार का जन्म हुआ था। २ चित्रा नक्षत्र।

त्विट्पति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

त्विष्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तीव्र आंदोलन। २ प्रचंडता। ३ घबराहट। परेशानी। ४ वाणी। ५ सौंदर्य। ६ प्रभा। चमक [को०]।

त्विषांपति—संज्ञा पुं० [सं० त्विषाम्पति] सूर्य [को०]।

त्विषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभा। दीप्ति। तेज।

त्विषामीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २ आक का पेड़।

त्विषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किरण। २. शक्ति (को०) ३ चमक। प्रभा (को०)। ४ ओज। तेज। प्रताप (को०)।

त्वेष—वि० [सं०] तेजस्वी। चमकता हुआ। आभामय (को०)।

त्वेष्य—वि० [सं०] डरावना। भयावना (को०)।

त्सरु—संज्ञा पुं० [सं०] १ तलवार का मूठ। २ सर्प।

त्सरुमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार की लड़ाई (को०)।

त्सारुक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तलवार चलाने में निपुण हो।

थ

थ—हिंदी वर्णमाला का सत्रहवाँ व्यंजन वर्ण और तवर्ग का दूसरा अक्षर। इसका उच्चारण स्थान दंत है।

थंका—संज्ञा पुं० [?] बिलमुकता।

थंड—संज्ञा पुं० [देश०, सं० स्थण्डिल, प्रा० थंडिल] भूमि। स्थान। प्रदेश। उ०—गुन गठि कव्वि आए सु थंड। दिय अनंत द्रव्य वीजीउ थंड।—पृ० रा०, ६१। २४६७।

थंडा†—वि० [हिं० ठंढा] शीतल। ठंढा। उ०—चित सूँ शिव जब मिले तब तनु थंडा होय। 'तुका' मिलना जिन्हासूँ ऐसा विरला कोय।—दक्खिनी०, पृ० १०६।

थंडिल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्थण्डिल, प्रा० थंडिल] यज्ञ की वेदी।

थथा†—संज्ञा पुं० [देश० ?] नृत्य (ताता थेई इत्यादि)। उ०—मंथन करि चाखे नहीं पढ़ि पढ़ि राखे ग्रंथ। थथ करत पग परत नहिं कठिन प्रेम को पंथ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १४०।

थंब—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ, थंब] १ खंभा। स्तंभ। उ०—राजकुल कीर्ति थंब थिर।—कानन०, पृ० २। २ सहारा टेक। ३ राजपूतों का भेद।

थंबन—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन, प्रा० थंबण] सहारा। टेक। उ०—धरती थंबन उदित प्रकाशा। ता पर सूर करै परकासा।—धरम०, पृ० १७।

थंबा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंब] खंभा। थंब। थंभ। उ०—माटी की भीत पवन का थंबा, गुन औगुन से जाया।—दरिया० बानी, पृ० ६५।

थंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भी] १. खड़ी लकड़ी। २. चाँड़। सहारे की बल्ली। थूनी।

थंभ—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] खंभा। उ०—जघन को कदली सम जानै। अथवा कनक थंभ सम मानै।—सूर (शब्द०)।

थंभन—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन] १ रुकावट। ठहराव। २ तंत्र के छह प्रयोगों में से एक। दे० 'स्तंभन'। ३ वह औषध जो शरीर से निकलनेवाली वस्तु (जैसे, मल, मूत्र, शुक्र इत्यादि) को रोके रहे।

यौ०—जलथंभन = वह मंत्रप्रयोग जिसके द्वारा जल का प्रवाह या बरसना आदि रोक दिया जाय। महिथंभन = धरती को स्थिर रखना। पृथ्वी को रोकना। पृथ्वी को थँभाना या थहाना। उ०—अमरित पय नित स्त्रवहिं बच्छ महिथंभन जावहिं। हिंदुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहि न पियावहिं।—अकबरी०, पृ० ३३३।

थंभनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भनी] योग में एक तत्व या धारणा। योग की धारणाओं में से प्रथम धारणा। उ०—पहिली धारणा थंभनी, दूजी द्रावण होय। तीजी दहिनी जानिए चौथि भ्रामिनी सोय।—प्राण०, पृ० ८६।

थंभा†—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] दे० 'थंबा' उ०—जल की भीत भीत जल भीतर, पवन भवन का थंभा री।—संत तुरसी०, पृ० २३४।

थंभित(पु)—वि० [सं० स्तम्भित] १ रुका हुआ। ठहरा हुआ। अड़ा हुआ। २ अचल। स्थिर। ३. भय या आश्चर्य से निश्चल। ठक।

थंभिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भिनी] योग की एक धारणा। उ०—यह येक थंभिनी एक द्राविणी एक सु दहिनी कहिए। पुनि येक भ्रामिणी येक शोषणी सद्गुरु बिना न लहिए।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ५२।

थंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भी, प्रा० थंभ, थंब + ई (प्रत्य०)] चाँड़। सहारे का खंभा। दे० 'थंबी'। उ०—निकसि गइ थंभी ढहि परा मंदिर, रलि गया चिकड गारा।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ८।

थँभना‡—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन] दे० 'थमना'।

थँभवाना—क्रि० स० [हिं० थँभना] दे० 'थमवाना'।

थँभाना†—क्रि० स० [सं० स्तम्भन] दे० 'थमाना'।

थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षण। २ मंगल। ३. भय। ४ पर्वत। ५. भयरक्षक। ६ एक व्याधि। ७ भक्षण। आहार।

थई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाँव, ठाँई] १. ठावँ। जगह। २ ढेर। अटाला।

थइलो†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'थैली'।

थक—संज्ञा पुं० [सं० स्था] दे० 'थाक'।

थकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] दे० 'थकान'।

थकना—क्रि० अ० [सं० √ स्तभ् वा √ स्था + करण < √कृ, प्रा० थक्कन अथवा देश०] १ परिश्रम करते करते और परिश्रम के योग्य न रहना। मिहनत करते करते हार जाना। जैसे, चलते चलते या काम करते करते थक जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. ऊब जाना। हैरान हो जाना। जैसे,—कहते कहते थक गए पर वह नहीं मानता।

संयो० क्रि०—जाना।

३. बुढ़ापे से अशक्त होना। बुढ़ापे के कारण काम करने के योग्य न रहना। जैसे,—अब वे बहुत थक गए, घर ही पर रहते हैं।
संयो० क्रि०—जाना।
४. मंदा पड़ जाना। चलता न रहना। धीमा पड़ जाना। ढीला होना या रुक जाना। जैसे, कारबार का थक जाना, रोजगार का थक जाना। ५ मोहित होकर अचल हो जाना। मुग्ध होना। लुभाना। उ०—(क) थके नयन रघुपति छवि देखी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) थके नारि नर प्रेम पियासे।—तुलसी (शब्द०)।

थकरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकावट। थकान।

थकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्रियों के बाल झाड़ने की खस की कूँची।

थकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकने का भाव। थकावट। शिथिलता।

थकाना—क्रि० स० [हिं० थकना] १. श्रांत करना। शिथिल करना। परिश्रम कराते कराते अशक्त कराना। २ हराना।
संयो० क्रि०—डालना।—देना।

थका माँदा—वि० [हिं० थकना] परिश्रम करते करते अशक्त। श्रांत। श्रमित।

थकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'थ' अक्षर या वर्ण।

थकावा—संज्ञा पुं० [हिं० थकना] थकावट। शिथिलता।

थकावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकने का भाव। शिथिलता।
क्रि० प्र०—आना।

थकाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना + आहट (प्रत्य०)] दे० 'थकावट'। उ०—रोने से उसके चेहरे पर जो थकाहट छप गई थी, उसने उसकी शोभा और भी निर्मल कर रखी थी।—शराबी, पृ० ३२।

थकित—वि० [हिं० थकना अथवा सं० स्था (= स्थिर) + कृत] १ थका हुआ। श्रांत। शिथिल। २ मोहित। मुग्ध। उ०—थकित भई गोपी लखि स्यामहिं।—सूर (शब्द०)।

थकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० थक्का] १ किसी गाढ़ी चीज को जमी हुई मोटी तह। २ गली हुई धातु का जमा हुआ लोंदा।
यौ०—थकिया की चाँदी = गलाकर साफ की हुई चाँदी।

थकैनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] दे० 'थकावट'।

थकौहाँ—वि० [हिं० थकना] [वि० स्त्री० थकौहीं] कुछ थका हुआ। थकामाँदा। शिथिल। उ०—दृग थिरकौंहैं अधखुले देह थकौहे ढार। सुरत सुखित सी देखियत दुखित गरभ के भार।—बिहारी (शब्द०)।

थक्कना—क्रि० अ० [प्रा० थक्क] दे० 'थकना'। उ०—सबै सेन फिरि थक्कि कहूँ काहू न रखायब।—ह० रासो, पृ० ५५।

थक्का—संज्ञा सं० [सं० स्था + कृ, बँग० थाकना (= ठहरना)] [स्त्री० थक्की, थकिया] १ किसी गाढ़ी चीज की जमी हुई मोटी तह। जमा हुआ कतरा। अठी। जैसे, दही का थक्का, खून का थक्का। २ गली हुई धातु का जमा हुआ कतरा। जैसे, चाँदी का थक्का।

थगित—वि० [प्रा० थक्क, हिं० थकित] १. ठहरा हुआ। रुका हुआ। २ शिथिल। ढीला। मंद।

थट, थट्ट—संज्ञा पुं० [देशी० थट्ट] यूथ। समूह। ठट्ट। झुंड। उ०—(क) इक्क समय आखेट, राव खेलन बन आए। सकल सुभट थट संग, बीर बानै जु बनाए।—ह० रासो, पृ० १३। (ख) रहैं सुभट थट्ट प्रथिराज संग।—पृ० रा०, ६।३।

थेड—संज्ञा पुं० [देशी०] समूह। यूथ। झुंड।

थड़ा—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] १ बैठने की जगह। बैठक। २ दूकान की गद्दी।

थणसुत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु (= शिव), प्रा० थण्णु, थाणु हिं० थणु + सं० सुत] शिव के पुत्र। १ गणेश। २ कार्तिकेय। स्कंद।

थती—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाती] दे० 'थाती'।

थतिहार—संज्ञा पुं० [हिं० थाती + हार (प्रत्य०)] वह जिसके पास थाती रखी हो।

थत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाती] ढेर। राशि। अटाला। जैसे, रुपयों की थत्ती।

थथोलना—क्रि० स० [हिं० टटोलना] ढूँढना। खोजना।

थन—संज्ञा पुं० [सं० स्तन, प्रा० थण] १ गाय, भैंस, बकरी इत्यादि चौपायों का स्तन। चौपायों की चूची। उ०—अंडा पालै काछुई, बिन थन राखै पोख।—संतवाणी०, पृ० २२। २ स्त्रियों का स्तन। उ०—उठे थन थोर बिराजत बाम। धरे मनु हाटक सालिगराम।—पृ० रा०, २१।२०।

थनइला—संज्ञा पुं० [हिं० थन] दे० 'थनेला'।

थनकुदो—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी नीले रंग की चमकीली चिड़िया जो कीड़े मकोड़े खाती है। इसका रंग बहुत सुंदर होता है।

थनगन—संज्ञा पुं० [बरमी] एक बड़ा पेड़ जो बरमा, बरार और मलाबार में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत में लगती है।

थनटुट्ट—संज्ञा स्त्री० [हिं० थन + टूटना] वह स्त्री जिसके स्तन में दूध आना बंद हो गया हो।

थनथाई—वि० [सं० स्तनस्थानीय] एक ही स्तन जिनका स्थान हो। एक स्तन का दूध पीनेवाला। धायभाई। सगोत्रीय। कोका। उ०—करि सलाम हुस्सेन अना बंधी दिसि बाई। सजरा बधे कठ सह सज्जे थनथाई।—पृ० रा०, ७।१३४।

थनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तन] १ स्तन के आकार की थैलियाँ जो बकरियों के गले के नीचे लटकती हैं। गलथना। २ हाथियों के कान के पास थन के आकार का निकला हुआ मांस का अंकुर जो एक ऐब समझा जाता है। ३ घोड़े की लिंगेंद्रिय में थन के आकार का लटकता हुआ मांस जो एक ऐब समझा जाता है।

थनु—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'थन'।

थनेला—संज्ञा पुं० [हिं० थन+एला (प्रत्य०)] [स्त्री० थनेली] १. एक प्रकार का फोड़ा जो स्त्रियों के स्तन पर होता है। इसमें सूजन और पीड़ा होती है और घाव हो जाता है। २. गुब-रैले की जाति का कीड़ा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह गाय, भैंस आदि के थन में डंक मार देता है जिससे दूध सूख जाता है।

थनैत—संज्ञा पुं० [हिं० थान] १ गाँव का मुखिया। २. वह आदमी जो जमींदार की ओर से गाँव का लगान वसूल करे।

थनैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० थन+ऐल (प्रत्य०)] वह जिसका थन भारी हो (गाय आदि)।

थनैला—संज्ञा पुं० [हिं० थन+ऐला (प्रत्य०)] दे० 'थनेला'।

थनैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० थन+ऐली (प्रत्य०)] दे० 'थनेला'।

थप्रⓅ—संज्ञा पुं० [सं० स्थान] दे० 'थान'। उ०—दैव काल सजोग तपै ढिल्ली घर थप्पो।—पृ० रा०, १।७०२।

थपकना—क्रि० स० [अनु० थप थप] १. प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये किसी के शरीर पर धीरे धीरे हाथ मारना। हाथ से धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, सुलाने के लिये बच्चे को थपकना। २ धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, थापी से गच थपकना। ३ पुचकारना या दम दिलासा देना। ४ किसी का क्रोध ठढा करना। शात करना।

थपका—संज्ञा पुं० [हिं० थपकना] दे० 'थपकी'।

थपकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थपकना] १ किसी के शरीर पर (प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये) हथेली से धीरे धीरे पहुँचाया हुआ आघात। २. हाथ से धीरे धीरे ठोंकने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना। उ०—थपकी देने लगी तरगें मार थपेड़े।—साकेत, पृ० ४१३। —लगाना।

२ हाथ के झटके से पहुँचाया हुआ कड़ा आघात। ३. जमीन को पीटकर चौरस करने की मुँगरी। ४. थापी। ५ धोबियों का मुँगरा या डंडा जिससे वे धोते समय भारी कपड़ों को पीटते हैं।

थपड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थप थप] १ दोनों हथेलियों को एक दूसरे से जोर से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करने की क्रिया। ताली।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

मुहा०—थपड़ी पीटना या बजाना=जोर जोर से हँसी करना। उपहास करना। दिल्लगी उड़ाना।

२. ताली बजने का शब्द। ३ बेसन की पूरी जिसमें हींग, जीरा और नमक पड़ा रहता है।

थपथपी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थप थप] दे० 'थपकी'।

थपनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] स्थापन। ठहराने या जमाने का काम। उ०—उथपे थपन थिर थपेउ थपनहार केसरीकुमार बल आपनो सँभारिये।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—थपनहार=स्थापित या प्रतिष्ठित करनेवाला।

थपनाⓅ[1]—क्रि० स० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना। बैठाना। ठहराना। जमाना। २ प्रतिष्ठित करना।

थपना[2]—क्रि० अ० १. स्थापित होना। जमना। ठहरना। २. प्रतिष्ठित होना।

थपना[3]—क्रि० स० [अनु० थप थप] धीरे धीरे पीटना या ठोंकना।

थपना[4]—संज्ञा पुं० १ पत्थर, लकड़ी आदि का औजार या टुकड़ा जिससे किसी वस्तु को पीटें। पिटना। २ थापी।

थपरा†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'थप्पड़'।

थपानाⓅ†—क्रि० स० [थपना] स्थापित कराना। स्थित कराना। उ०—जगन्नाथ कहँ दीन्ह थपाई। तब हम चल थंबवारे आई।—कबीर सा०, पृ० १९२।

थपुआ—संज्ञा पुं० [हिं० थपना (=पीटना)] छाजन का वह खपड़ा जो चौड़ा, चौरस और चिपटा हो। अर्थात् नाली के आकार का न हो जैसी कि नरिया होती है।

विशेष—खपरैल में प्राय. थपुआ और नरिया दोनों का मेल होता है। दो थपुओं के जोड़ के ऊपर नरिया औंधी करके रखी जाती है।

थपेटा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'थपेड़ा'।

थपेड़ना—क्रि० स० [हिं०] थपेड़ा देना। थपेड़ा लगाना।

थपेड़ा—संज्ञा पुं० [अनु० थप थप] १ हथेली से पहुँचाया हुआ आघात। थप्पड। २ एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। धक्का। टक्कर। जैसे, नदी के पानी का थपेड़ा। उ०—थपकी देने लगीं तरंगें मार थपेड़े।—साकेत, पृ० ४१३।

क्रि० प्र०—लगना।—मारना।

थपोड़ी†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'थपड़ी'।

थप्प†—संज्ञा पुं० [अनु०] थप् का सा शब्द। उ०—थप्प थप्प थन-वार कइ सुनि रोमाचित अग।—कीर्ति०, पृ० ८४।

थप्पड़—संज्ञा पुं० [अनु० थप थप] १. हथेली से किया हुआ आघात। तमाचा। झापड। चपेट।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुहा०—थप्पड कसना, देना, लगाना=तमाचा मारना। झापड़ मारना।

२. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। धक्का। जैसे, पानी के हिलोर का थप्पड, हवा के झोंके का थप्पड। ३ दाद या फुंसियों का छत्ता। चकत्ता।

थप्पण—वि० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] स्थापित करनेवाला। बसानेवाला। रक्षा करनेवाला। उ०—साह्रा ऊथप थप्पणो, पहु तरनाहाँ पत्र।—रा०, रू०, पृ० १०।

थप्पन—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] स्थापन। स्थापित करना। उ०—नृपति को थप्पन उथप्पन समर्थ सत्रुसाल सुत करे करतूति चित्त चाह की।—मति० ग्रं०, पृ० ३७२।

थप्परि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] न्यास। धरोहर। उ०—राज सुनो चालुक कहै है थप्परि इह रूप। राति परी जुध नहि करे प्रात करै फिर जुद्ध।—पृ० रा०, १।४६१।

थप्पा—संज्ञा पुं० [लश०] एक प्रकार का जहाज।

थविर—वि०, संज्ञा पुं० [सं० स्थविर, प्रा० थविर] दे० 'स्थविर'।—सावयधम्म दोहा, पृ० १२८।

थम—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] १ खंभा। लाट। स्तंभ। थूनी। उ०—धरती पैठि गगन थम रोपी इस बिधि बन पँड पेलो।—रामानंद०, पृ० १५। २. केलो की पेड़ी। ३. छोटी छोटी पूरियाँ और हलुआ जिसे देवी को चढ़ाने के लिये स्त्रियाँ ले जाती हैं।

थमकाना†—क्रि० स० [हिं० थमकना या ठमकना का प्रे० रूप] स्तंभित करना। रोकना। उ०—साँस को थमका कर सारे बदन को कड़ा किया और जमाई ली।—नई०, पृ० ६६।

थमकारीⓅ—वि० [सं० स्तम्भकारिन्] स्तंभन करनेवाला। रोकनेवाला। उ०—मन बुधि चित अहंकार दर्शे इंद्रिय प्रेरक थमकारी।—सूर (शब्द०)।

थमना—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन (=रुकना)] १. रुकना। ठहरना। चलता न रहना। जैसे, गाड़ी का थमना, कोल्हू का थमना। २. जारी न रहना। बंद हो जाना। जैसे, मेह का थमना, आँसुओं का थमना। ३. धीरज धरना। सब्र करना। ठहरा रहना। उतावला न होना। जैसे,—थोड़ा थम जाओ, चलते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

थमुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० थामना] नाव के डाँडे का हत्था।

थम्मा†—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] [स्त्री० थम्भी] दे० 'थंभ'। उ०—(क) थम्मों के गलि लागई अहि सिर पर अगनि अँगारू।—प्राण०, पृ० २४४। (ख) काम बिरह की आठी दाधा। बिरह अग्नि की थम्मी बाधा।—प्राण०, पृ० १५२।

थर[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर] तह। परत।

थर[2]—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] १ दे० 'थल'। उ०—एहि थर बनी क्रीडा गजमोचन और अनंत कथा स्तुति गाई।—सूर०, १।६। २. बाघ की माँद।

थरक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'थिरक'।

थरकनाⓅ†—क्रि० अ० [अनु० थर थर+करना] थर्राना। डर से काँपना। उ०—बंक दृग वदन मयंक वारे अंक भरि अंग मे ससक परयंक थरकत है।—देव (शब्द०)।

थरकाना—क्रि० स० [हिं० थरकना] डर से कँपाना।

थरकुलिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाली] दे० 'थरुलिया'।

थर थर[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] डर से काँपने की मुद्रा।

मुहा०—थर थर करना=डर से काँपना।

थर थर[2]—क्रि० वि० काँपने की पूरी मुद्रा के साथ। जैसे,—वह डर के मारे थर थर काँपने लगा। उ०—थर थर काँपहिं पुर नर नारी।—तुलसी (शब्द०)।

थरथर कँपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थरथर+काँपना] एक छोटी चिड़िया जो बैठने पर काँपती हुई मालूम होती है।

थरथराटⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० थरथराना] थरथराहट। कँपकपी। उ०—थरथराठ उप्पनो तज्यो भवकोट कामकृत।—पृ० रा०, ६१।१८०।

थरथराना—क्रि० अ० [अनु० थर थर] १. डर के मारे काँपना। २. काँपना। उ०—सारी जल बीच प्यारी पीतम के अंक लागी चंद्रमा के चारु प्रतिबिंब ऐसी थरथरात।—शृंगारसुधाकर (शब्द०)।

थरथराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० थरथराना] कँपकँपी जो डर के कारण हो।

थरथरी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थर थर] कँपकँपी जो डर के कारण हो।

क्रि० प्र०—छूटना।—लगना।

थरत्थरⓅ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'थर थर'। उ०—थरत्थर काइर जाइ रमकि।—प० रासो, पृ० ४२।

थरना[1]—क्रि० स० [सं० धुर्व, हिं० धुरना] हथौड़ी आदि से धातु पर चोट लगाना।

थरना[2]—संज्ञा पुं० सुनारों का एक औजार जिससे वे पत्ती की नक्काशी बनाते हैं।

थरना[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर, प्रा० त्थर, थर] फैलना। उ०—कारी घटा डरावनी आई। पापिनि साँपिनि सी थरि छाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१।

थरपनाⓅ†—क्रि० स० [सं० स्थापन] स्थापित करना। प्रतिष्ठित करना। स्थापना। उ०—दरिया साँचा सूरमा, अरि दल घाले चूर। राज थरपिया राम का, नगर बसा भरपूर।—दरिया० बानी, पृ० १३। (ख) बधन जाल जुक्त जम दीनी, कीनी काल थरपना।—रसी० श०, पृ० २२६।

थरमस—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का पात्र जिसमें वस्तुओं का तापमान देर तक सुरक्षित रहता है।

थरसना—क्रि० अ० [सं० त्रसन] थर्राना। काँपना। त्रास पाना। उ०—घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।—रसखान०, प० ५३।

थरहरना—क्रि० अ० [देशी थरहर] हिलना डुलना। थरथराना। काँपना। उ०—ताजन पर कलँगी थरहरई। नृपगन दलदल सोभा करई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७०५।

थरहराना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'थरथराना'।

थरहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थरहरना] कँपकँपी जो डर के कारण हो। उ०—खरी निदाघी दुपहरी तपनि भरी बन गेह। हहा अरी यह कहि कहा परी थरहरी देह।—स० सप्तक, पृ० २७६।

थरहाई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एहसान। निहोरा।

थरि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १ बाघ आदि की माँद। चुर। उ०—सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल भठी, हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।—भूषण ग्रं०, पृ० १२। २ स्थली। आवास स्थान। रहने की जगह। उ०—जौं लगि फेरि मुकुति है परों न पिंजर माहँ। जाउँ बेगि थरि आपनि है जहाँ बिंझ बनाहँ।—पदमावत, पृ० ३७३।

थरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] दे० 'थाली'।

थरुⓅ‡—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] दे० 'थल'।

थरुलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० थारी] छोटी थाली।

थरुहट—संज्ञा पुं० [देश० थारू] थरुओं की बस्ती।

थरुहटी—संज्ञा स्त्री० [देश० थारू] थारू जाति की बोली। उ०—भीतरी मधेश की निचली तलहटी में 'थरुहटी' बोली है, जिसे थारू लोग बोलते हैं।—नेपाल, पृ० ६८।

थर्ड—वि० [अं०] तृतीय। तीसरा।

थर्मामीटर—संज्ञा पुं० [अं०] सरदी गरमी नापने का यंत्र। दे० 'तापमान'।

थर्राना—क्रि० अ० [अनु० थरथर] डर के मारे काँपना। दहलना। जैसे,—वह शेर को देखते ही थर्रा उठा।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

थल—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] १ स्थान। जगह। ठिकाना। उ०—सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू।—मानस, १।३६।

मुहा०—थल बैठना या थल से बैठना = (१) आराम से बैठना। (२) स्थिर होकर बैठना। शांत भाव से बैठना। जमकर बैठना। आसन जमाकर बैठना।

२ सूखी धरती। वह जमीन जिसपर पानी न हो। जल का उलटा। जैसे,—(क) नाव पर से उतर कर थल पर आना। (ख) दुर्योधन को जल का थल और थल का जल दिखाई पड़ा। ३ थल का मार्ग।

यौ०—थलचर। थलबेड़ा। जलथल।

४ ऊँची धरती या टीला जिसपर बाढ़ का पानी न पहुँच सके। ५ वह स्थान जहाँ बहुत सी रेत पड़ गई हो। भूड़। थली। रेगिस्तान। जैसे, थर परकर। ६ बाघ की माँद। चुर। ७ बादले का एक प्रकार का गोल (चवन्नी के बराबर का) साज जिसे बच्चों की टोपी आदि पर जब चाहे तब टाँक सकते हैं। ८ फोड़े का लाल और सूजा हुआ घेरा। व्रणमंडल। जैसे, फोड़े का थल बाँधना।

क्रि० प्र०—बाँधना।

थलकना—क्रि० अ० [सं० स्थूल, हिं० थुला, थुलथुला] १ कसा या तना न रहने के कारण झोल खाकर हिलना या फूलना पचकना। झोल पड़ने के कारण ऊपर नीचे हिलना। उ०—थोंद थलकि वर चाल, मनौं मृदग मिलावनो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४। २. मोटाई के कारण शरीर के माँस का हिलने डोलने में हिलना। थलथल करना।

थलचर—संज्ञा पुं० [सं० स्थलचर] पृथ्वी पर रहनेवाले जीव। उ०—जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।—मानस, १।३।

थलचारी—वि० [सं० स्थलचारिन्] भूमि पर चलनेवाले।

थलज—वि० [सं० स्थल + ज] स्थल पर उत्पन्न। उ०—थलज जलज झलमलत ललित बहु भँवर उड़ावै। उड़ि उड़ि परत पराग कछू छवि कहत न आवै।—नंद० ग्रं०, पृ० २६।

थलथल—वि० [सं० स्थूल, हिं० थूला] मोटाई के कारण झूलता या हिलता हुआ।

मुहा०—थलथल करना = मोटाई के कारण किसी अंग का झूल झूलकर हिलना। जैसे,—चलने में उसका पेट थलथल करता है।

थलथलाना—क्रि० [हिं० थूला] मोटाई के कारण शरीर के मांस का झूलकर हिलना।

थलपति—संज्ञा पुं० [सं० स्थल + पति] राजा। उ०—स्रवन नमन मन लगे सब थलपति तायो।—तुलसी (शब्द०)।

थलबेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० थल + बेड़ा] नाव या जहाज ठहरने की जगह। नाव लगने का घाट।

मुहा०—थलबेड़ा लगना = ठिकाना लगना। आश्रय मिलना। थल बेड़ा लगाना = ठिकाना लगाना। आश्रय ढूँढ़ना। सहारा देना।

थलभारी—संज्ञा पुं० [हिं० थल + भारी] पालकी के कहारों की एक बोली जिससे वे पिछले कहारों को आगे रेतीले मैदान का होना सूचित करते हैं।

थलराना—क्रि० अ०[हिं० दुलराना]प्रसन्न करना। अनुकूल बनाना। उ०—नेह नवोढ़ा नारि कौं धारि बार का न्याय। थलराए पै पाइए, नीपीडे न रसाय।—नंद० ग्रं०, पृ० १४१।

थलरुह—वि० [सं० स्थलरुह] धरती पर उत्पन्न होनेवाले जंतु वृक्ष आदि। उ०—जल थलरुह फल फूल सलिल सब करत पेम पहुनाई।—तुलसी (शब्द०)।

थलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] थाली। टाठी।

थली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १ स्थान। जगह। जैसे, पर्वतथली, वनथली। २. जल के नीचे का तल। ३ ठहरने या बैठने की जगह। बैठक। उ०—थली में कोई सरदार था, उसके पास एक वैष्णव साधु आ गया।—कबीर सा०, पृ० ६७२। ४ परती जमीन। ५ बालू का मैदान। रेतीली जमीन। ६ ऊँची जमीन या टीला।

थवई—संज्ञा पुं० [सं० स्थपति, प्रा० थवइ] मकान बनानेवाला कारीगर। ईंट पत्थर की जोड़ाई करनेवाला शिल्पी। राज। मेमार।

थवन—संज्ञा पुं० [देश०, या सं० स्थापन] दुलहिन की तीसरी बार अपने पति के घर की यात्रा।

थसकना—क्रि० अ० [देश०] नीचे की ओर दबना। धसकना।

थवना—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हिं० थपना] जुलाहों के उपयोग में आनेवाला कच्ची मिट्टी का एक गोला जिसमें लगी हुई लकड़ी के छेद में चरखी की लकड़ी पड़ी रहती है। इस चरखी के घूमने से नारी भरी जाती है (जुलाहे)।

थह—संज्ञा पुं० [देशी] निवास। निलय। स्थान। गुफा। माँद। उ०—(क) कानन सदृन सभरत्त कूद कलह आपेट। थह सूतो वर जगयो सिसु दंपति घटि पेट।—पृ० रा०, १७।४। (ख) जागी नह थह में जिते सभ्भ हाथल सादूल।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १३।

थहण†—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, प्रा० थल, अथवा देशी थह] स्थान। उ०—कमठ पीठ कलमलिय थहण ढलमलिय सुचर थिर।—रघु० रू०, पृ० ४२।

थहना⊕—क्रि० स० [हिं० थाह] थाह लेना। पता लगाना। उ०—थया थाह थहो नहिं जाई। यह थीरे वह थीर रहाई। —कबीर (शब्द०)।

थहरना—क्रि० अ० [अनु०] काँपना। थहराना। उ०—उत गोल कपोलन पै अति लोल अमोल लली मुक्ता थहरैं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३२।

थहराना—क्रि० अ० [अनु० थर थर] १ दुर्बलता या भय से अंगों का काँपना। कमजोरी या डर से बदन का काँपना। २. काँपना।

थहाना—क्रि० स० [हिं० थाह] १. गहराई का पता लगाना। थाह लेना। उ०—(क) सूर कहौ ऐसो को त्रिभुवन आवै सिंधु थहाई।—सूर (शब्द०)। (ख) तुलसी तीरहि के चले समय पाइबी थाह। धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

२. किसी की विद्या बुद्धि या भीतरी अभिप्राय आदि का पता लगाना।

थहारना—क्रि० स० [हिं० ठहराना] जहाज को ठहराना।

थाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० थान] चोरों या डाकुओं का गुप्त स्थान। चोरों के रहने की जगह। २ खोज। पता। सुराग (विशेषत चोर या खोई हुई वस्तु आदि का)।

क्रि० प्र०—लगाना।

३ भेद। गुप्त रूप से लगा हुआ किसी बात का पता। जैसे,—बिना थाँग के चोरी नहीं होती। ४. सहारा। आश्रय स्थान। उ०—अति उमगी री आन प्रीति नदी सु अगाध जल। धार माँझ ये प्रान, दरस थाँग बिन नाहि कल।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४।

थाँगी—संज्ञा पुं० [हिं० थाँग] १ चोरी का माल मोल लेने या अपने पास रखनेवाला आदमी। २ चोरों का भेदिया। चोरों को चोरी के लिये ठिकाने आदि का पता देनेवाला मनुष्य। ३ चोरी के माल का पता लगानेवाला आदमी। जासूस। ४ चोरों का अड्डा रखनेवाला आदमी। चोरों के गोल का सरदार।

थाँगीदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाँग + फ़ा० दार] थाँग का काम।

थाँटा—वि० [देश०] शीतल। प्रसन्न। ठढा। उ०—पैंड पैंड ज्यारा पिसण त्यांरां कडवा वैण। जग जाँणूं देखै जलै नहिं थाँटा ह्वै नैण।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७६।

थाँणा—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० थाण] स्थान। ठिकाना। उ०—थाँणो आयो राय आपणो।—वी० रासो, पृ० १०७।

थाँभ[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] १. खंभा। २. थूनी। चाँड़। उ०—थाँभ नाहिं उठि सकै न थूनी।—जायसी ग्रं०, पृ० १५७।

थाँभना—क्रि० स० [हिं० थाँभ] दे० 'थामना'।

थाँभा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] खंभा। स्तंभ। उ०—कोई सज्जण आविया, जाँह की जोती वाट। थाँभा नाचइ घर हँसइ खेलण लागी खाट।—ढोला०, दू० ५४१।

थाँवला—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल] वह घेरा या गड्ढा जिसमें कोई पौधा लगा हो। थाला। आलबाल। उ०—सतालो के ओझा के घर तुलसी का थाँवला होता है।—प्रा० भा० प०, पृ० २०।

था—क्रि० अ० [सं० स्था] है शब्द का भूतकाल। एक शब्द जिससे भूतकाल में होना सूचित होता है। रहा। जैसे,—वह उस समय वहाँ नहीं था।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग भूतकाल के भेदों के रूप बनाने में भी संयुक्त रूप से होता है। जैसे, आता था, आया था, आ रहा था, इत्यादि।

थाइल—वि० [सं० स्थायिं ?] थाई। स्थायी। उ०—हावनि बहु भावनि करति मनसिज मन उपजाइ। दाइल वह थाइल करत पाइल पाइ बजाइ।—स० सप्तक, पृ० ३६५।

थाई[1]—वि० [सं० स्थायिन्, स्थायी] बना रहनेवाला। स्थिर-रहनेवाला। न मिटने या जानेवाला। बहुत दिनों तक चलनेवाला।

थाई[2]—संज्ञा पुं० १. बैठने की जगह। बैठक। अथाई। २. गीत का प्रथम पद जो गाने में बार बार कहा जाता है। ध्रुवपद। स्थायी।

थाईभाव—संज्ञा पुं०[सं० स्थायी भाव] दे० 'स्थायी भाव'। उ०—रति हाँसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान। भय निंदा बिसमय सदा, थाईभाव प्रमान।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ३१।

थाउ—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, हिं० ठाँउ, ठाँव] उ०—ऊँचो गढ़ अपरंपर थाउ। अमर अजोनी सचि तखत पाउ।—प्राण०, पृ० २५२।

थाक[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्था] १ गाँव की सरहद। ग्रामसीमा। २ थोक। ढेर। समूह। अटाला। राशि। उ०—मधु, मेवा, पकवान, मिठाई, घर घर तैं लै निकसी थाक।—नद० ग्रं०, पृ० ३६०। ३ सीमा। हद। उ०—मेरे कहाँ थाकु गोरस को नवनिधि मंदिर यामहिं।—तुलसी (शब्द०)।

थाका[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकावट।

क्रि० प्र०—लगना।

थाकना—क्रि० अ० [सं० स्था, बग० थाका] १ शक्ति न रहना। थक जाना। शिथिल होना। रुकना। उ०—थाकी गति अंगन की, मति परि गई मंद सूखि झाँझरी सी ह्वैके देह लागी पियरान।—हरिश्चंद्र—(शब्द०)। २ रुकना। ठहरना। उ०—जग जलबूड़ तहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।—जायसी (शब्द०)। ३ स्तमित होना। ठगा सा होना। आश्चर्यचकित होना। उ०—रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।—दरिया० बानी, पृ० १८।

थाका—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धक्का'। उ०—थाका होय रुधिर के ठाँहा।—कबीर सा०, पृ० १५७८।

थाकि†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकावट । शैथिल्य ।

थाकुं†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थाक' ।

थागना†—क्रि० अ० [देश०] रुकना । थाकना । उ०—अपणे घर को गम नहीं पर घर थागे काँय । हुस हँस की गम चले काया काग की पाय ।—राम० धर्म०, पृ० ७२ ।

थाट¹—संज्ञा पुं० [हिं०] संगीत में रागों का आधार । दे० 'ठाट' ।

थाट²—संज्ञा पुं० [देश०] कामना । मनोरथ । उ०—रिसया बाट करै जो राघव थाट सपूरण थावै ।—रघु० रू० पृ० ६५ ।

थाटनहार—वि० [हिं० ठाटना (=बनाना)] ठाठने (बनाने सँवारने) वाला । उ०—थाटनहारा एको सोंई एक ही रीति एक ते आई ।—प्राण०, पृ० ४६ ।

थातⓅ—वि० [सं० स्थातृ, स्थाता] जो बैठा या ठहरा हो । स्थित । उ०—द्वै पिक बिंब बतीस वज्रकन एक जलज पर थात ।—सूर (शब्द०) ।

थाति—संज्ञा स्त्री० [हिं० थात] १. स्थिरता । ठहराव । टिकान । रहन । उ०—सगुन ज्ञान विराग भक्ति सुसाधनन की पाँति । भाजि विकल विलोकि कलि अघ ऐगुनन की थाति ।—तुलसी (शब्द०) । २ दे० 'थाती' ।

थाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० थात] १ समय पर काम आने के लिये रखी हुई वस्तु । २ वह वस्तु जो किसी के पास इस विश्वास पर छोड़ दी गई हो कि वह माँगने पर दे देगा । धरोहर । उ०—दुइ बरदान भूप सन थाती । माँगहु आज जुड़ावहु छाती ।— तुलसी (शब्द०) । ३ संचित धन । इकट्ठा किया हुआ धन । रक्षित द्रव्य । जमा । पूँजी । गथ । ४ दूसरे का धन जो किसी के पास इस विचार से रखा हो कि वह माँगने पर दे देगा । धरोहर । अमानत । उ०—बारहि बार चलावत हाथ सो का मेरी छाती में थाती धरी है ।—(शब्द०) ।

थाथी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'थाती' । उ०—कहै कबीर जतन करो साधो, सतगुरू की थाथी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४८ ।

थान—संज्ञा पुं० [सं० स्थान] १. जगह । ठौर । ठिकाना । २ रहने या ठहरने की जगह । डेरा । निवासस्थान । ३ किसी देवी देवता का स्थान । देवल । जैसे, माई का थान । उ०—इह गोपेसुर थान अपूरब । नित प्रति निसा ऊतरै सौरभ ।—पृ० रा०, १ । ३६८ । ४ वह स्थान जहाँ घोड़े या चौपाए बाँधे जायँ ।

मुहा०—थान का टर्रा=(१) वह घोड़ा जो खूँटे से बँधा बँधा नटखटी करे । घुड़साल में उपद्रव करनेवाला । (२) वह जो घर पर ही या पड़ोस में ही अपना जोर दिखाया करे, बाहर कुछ न बोले । अपनी गली में ही शेर बननेवाला । थान का सच्चा=सीधा घोड़ा । वह घोड़ा जो कहीं से छूटकर फिर अपने खूँटे पर आ जाय । थान में आना=(घोड़े का) धूल में लोटना । अच्छे थान का घोड़ा=अच्छी जाति का घोडा । प्रसिद्ध स्थान का घोड़ा ।

५. वह घास जो घोड़े के नीचे बिछाई जाती है । ६ कपड़े गोटे आदि का पूरा टुकड़ा जिसकी लंबाई बँधी हुई होती है । जैसे, मारकीन का थान, गोटे का थान । ७. संख्या । अदद । जैसे, एक थान अशरफी, चार थान गहने, एक थान कलेजी । ८ लिंगेंद्रिय (बाजारू) ।

थानक—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक] १. स्थान । जगह । २ नगर । ३. थावँला । थाला । आल बाल । ४ फेन । बबूला । झाग । ५ देवस्थान । देवल । उ०—राजन मन चक्रित भयो सुनि थानक की विद्धि ।—पृ० रा०, १।४०१ ।

थानपतीⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] स्थान का अधिकारी । स्वामी । उ०—तहँ मिले प्रीतम फिर नहीं विछोहा । तहँ थानपती निज महलो सोहा ।—प्राण०, पृ० १६० ।

थाना—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक, प्रा० थाण, हिं० थान] १. अड्डा । टिकने या बैठने का स्थान । उ०—पुण्यभूमि पर रहे पापियों का थाना क्यों ? —साकेत, पृ० ४१६ । २. वह स्थान जहाँ अपराधों की सूचना दी जाती है और कुछ सरकारी सिपाही रहते हैं । पुलिस की बड़ी चौकी ।

मुहा०—थाने चढ़ना=थाने में किसी के विरुद्ध सूचना देना । थाने में इत्तला करना । थाना बिठाना=पहरा बिठाना । चौकी बिठाना ।

३ बाँसों का समूह । बाँस की कोठी ।

थानापति—संज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] ग्रामदेवता । स्थानरक्षक । देवता ।

थानी¹—संज्ञा पुं० [सं० स्थानिन्] १ स्थान का स्वामी । वह जिसका स्थान हो । २. दिक्पाल । लोकपाल । ३ घरवाला । स्वामी । पति । उ०—तेरा थानी क्यों मुवा गह क्यो न राखा वाहि । सहजो बहुतक मिल छुटै चौरासी के माहि ।—सहजो०, पृ० २३ ।

थानी²—वि० संपन्न । पूर्ण ।

थानुⓅ—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु] शिव ।

थानुसुत—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु+सुत, प्रा० थाणु+सं० सुत] शिव जी के पुत्र गणेश । गजानन । उ०—थोरे थोरे मदनि कपोल फूले थूले थूले, डोलैं जल थल बल थानुसुत नाचे हैं ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १३१ ।

थानैत—संज्ञा पुं० [हिं० थान] दे० 'थानैत' ।

थानेदार—संज्ञा पुं० [हिं० थाना+फा० दार] थाने का वह अफसर या प्रधान जो किसी स्थान में शांति बनाए रखने और अपराधों की छानबीन करने के लिये नियुक्त रहता है ।

थानेदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाना+फा० दारी] थानेदार का पद या कार्य ।

थानैत—संज्ञा पुं० [हिं० थान+ऐत (प्रत्य०)] १ किसी स्थान का अधिपति । किसी चौकी या अड्डे का मालिक । २. किसी स्थान का देवता । ग्रामदेवता ।

थाप—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन] १. तबले, मृदंग आदि पर पूरे पंजे का आघात । थपकी । ठोक । उ०—शुद्ध मार्ग पर भी द्रुत लय में यथा मुरज की थापें हैं ।—साकेत, पृ० ३७२ ।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. धम्मड़। तमाचा। पूरे पंजे का आघात। जैसे, शेर की थाप, पहलवानों की थाप।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

३ वह चिह्न जो किसी वस्तु के भरपूर बैठने से पड़े। एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के दाब के साथ पड़ने से बना हुआ निशान। छाप। जैसे, दीवार पर गीले पंजे का थाप, बालू पर पैर की थाप।

क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।—लगना।

४ स्थिति। जमाव। ५ किसी की ऐसी स्थिति जिसमें लोग उसका कहना मानें, भय करें तथा उसपर श्रद्धा विश्वास रखें। महत्वस्थापन। प्रतिष्ठा। मर्यादा। धाक। साक। उ०—कहै पदमाकर सुमहिमा मही मे भई महादेव देवन में थाढ़ी थिर थाप है।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जमना।—होना।

६ मान। कदर। प्रमाण। जैसे,—उनकी बात की कोई थाप नहीं। ७ पंचायत। ८ शपथ। सौगंध। कसम।

मुहा०—किसी की थाप देना=किसी की कसम खाना। शपथ देना।

थापणि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना, प्रा० थावणा] स्थिरता। स्थापना। स्थैर्य। शांति। उ०—थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्ही धीर। कबीर हीरा बणजिया, मानसरोवर तीर।—कबीर ग्रं०, पृ० २८।

थापन—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] १ स्थापित करने की क्रिया। जमाने या बैठाने की क्रिया। २ किसी स्थान पर प्रतिष्ठित करने का कार्य। रखने का कार्य। उ०—कहेउ जनक कर जोरि कीन मोहि आपन। रघुकुल तिलक भुवाल सदा तुम उथपन थापन।—तुलसी (शब्द०)।

थापनहार—वि० [सं० स्थापन, हिं० थापन+हार] स्थापन या थापन करनेवाला। प्रतिष्ठित करनेवाला। उ०—अथपन थापनहारा।—धरनी०, पृ० ४२।

थापना[1]—क्रि० स० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना। जमाना। बैठाना। जमाकर रखना। उ०—लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।—मानस, ६।२। २ किसी गीली सामग्री (मिट्टी, गोबर आदि) को हाथ या साँचे से पीट अथवा दबाकर कुछ बनाना। जैसे, उपले थापना, खपड़े थापना, ईंट थापना।

थापना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना] १. स्थापन। प्रतिष्ठा। रखने या बैठाने का कार्य। उ०—जहँ लगि तीरथ देखहु जाई। इनही सब थापना थपाई।—कबीर म०, पृ० ४७०। २ मूर्ति की स्थापना या प्रतिष्ठा। जैसे, दुर्गा की थापना। उ०—करिहौं इहाँ संभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना।—मानस, ६।२। ३. नवरात्र में दुर्गापूजा के लिये घटस्थापना।

थापर्—संज्ञा पुं० [हिं० थाप+र (प्रत्य०)] दे० 'थप्पड़'।

थापरा—संज्ञा पुं० [देश०] छोटी नाव। डोंगी (लश०)।

थापा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० थाप] १ हाथ के पंजे का वह चिह्न जो किसी गीली वस्तु (हलदी, मेंहदी, रंग आदि) से पुती हुई हथेली को जोर से दबाने या मारने से बन जाता है। पंजे का छापा।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

विशेष—पूजा या मंगल के अवसर पर स्त्रियाँ इस प्रकार के चिह्न दीवार आदि पर बनाती हैं।

२ गाँव में देवी देवता की पूजा के लिये किया हुआ चंदा। पुजौरा। ३ खलियान में अनाज की राशि पर गीली मिट्टी या गोबर से डाला हुआ चिह्न जो इसलिये डाला जाता है जिसमें यदि कोई चुरावे तो पता लग जाय। चाँकी। ४ वह साँचा जिसमें रंग आदि पोतकर कोई चिह्न अंकित किया जाय। छापा। ५. वह साँचा जिसमें कोई गीली सामग्री दबाकर या डालकर कोई वस्तु बनाई जाय। जैसे, ईंट का थापा, सुनारो का थापा। ६ ढेर। राशि। उ०—सिद्धहि दरब आगि कै थापा। कोई जरा, जार, कोइ तापा।—जायसी (शब्द०)। ७ नैपालियों की एक जाति।

थापा—संज्ञा [सं० स्थापना, हिं० थाप] आघात। थपकी। थाप। थप्पड। उ०—जहाँ जहाँ दुख पाइया गुरु को थापा सोय। जबही सिर टक्कर लगै तब हरि सुमिरन होय।—मलूक०, पृ० ४०।

थपिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० थापना] दे० 'थापी'।

थापी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थापना] १ काठ का चिपटे और चौड़े सिरे का डंडा जिससे कुम्हार कच्चा घड़ा पीटते हैं। २ वह चिपटी मुँगरी जिससे राज या कारीगर गच पीटते हैं। ३. थपकी। हथेली से किया हुआ आघात। थाप। उ०—कबीर साहब ने उस गाय को थापी दिया।—कबीर म०, पृ० ११४।

थाम[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] १ खंभा। स्तंभ। २ मस्तूल (लश०)।

थाम[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० थामना] थामने की क्रिया या ढंग। पकड़।

थामना—क्रि० स० [सं० स्तम्भन या स्तभन, प्रा० थंभन (=रोकना)] १. किसी चलती हुई वस्तु को रोकना। गति या वेग अवरुद्ध करना। जैसे, चलती गाड़ी को थाम्ना, बरसते मेह को थामना।

संयो० क्रि०—देना।

२ गिरने, पड़ने, लुढ़कने आदि न देना। गिरने पड़ने से बचाना। जैसे, गिरते हुए को थामना, डूबते हुए को थामना।

संयो० क्रि०—लेना।

३ पकड़ना। ग्रहण करना। हाथ में लेना। जैसे, छड़ी थामना उ०—इस किताब को थामो तो मैं दूसरी निकाल दूँ।—

संयो० क्रि०—लेना।

४. सहारा देना। सहायता देना। मदद देना। सँभालना। जैसे,—पंजाब के गेहूँ ने थाम लिया, नहीं तो अन्न के बिना बड़ा कष्ट होता।

संयो० क्रि०—लेना।

५ किसी कार्य का भार ग्रहण करना। अपने ऊपर कार्य का भार लेना। जैसे,—जिस काम को तुम ने थामा है उसे पूरा करो। ६ पहरे में करना। चौकसी में रखना। हिरासत में करना।

थाम्ह—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] १ आधार। खंभा। टेक। उ०—चाँद सूरज कियो तारा गगन लियो बनाय। थाम्ह थूनी बिना देखो, रखि लियो ठहराय।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

थाम्हना—क्रि० स० [देश०] दे० 'थामना'।

थाय—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाय] दे० 'स्थान'। उ०—धमकंत धरनि अहि सिर निछ्रय। हलहलिय द्रिग्ग उद्दिग्ग थाय। पुर धूरि पूरि जुट्टिन अमिश्रि। विसि व दिसि राज पसरंत क्रित्ति।—पृ० रा०, १। ६२५।

थायी—वि० [सं० स्थायी] दे० 'स्थायी'।

थार[1]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थाल'। उ०—भावना थार हुलास के हाथनि यों हित मूरति हेरि उतारति।—घनानंद, पृ० १४८।

थार[2]—संज्ञा पुं० [देश०] ठोकर। आघात। उ०—हयखुर थारन, छार फुट्टि गिरि समुद पक हुव।—प० रासो, ७४।

थारा—सर्व० [हिं० तिहारा] तुम्हारा। उ०—मनमेलहुं पाणी तिजुं कहिव (ो) गोरी थारा जनम की बात।—बी० रासो, पृ० ३४।

थारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली] दे० 'थाली'।

थारू—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली जाति जो नैपाल की तराई में पाई जाती है।

विशेष—यह पूर्व से पश्चिम तक बसी हुई है और अपने रीति-रिवाज, जादू टोना आदि रूढ़िगत विश्वास से बँधी हुई है। इसे लोग पुरानी जनजाति मानते हैं और वर्णव्यवस्था मे इनका स्थाननाम शूद्र का रखते हैं।

थाल—संज्ञा पुं० [हिं० थाली] बड़ी थाली। काँसे या पीतल का बड़ा छिछला बरतन।

थाला—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल] १ वह घेरा या गड्ढा जिसके भीतर पौधा लगाया जाता है। थावँला। आलवाल। २ कुंडी जिसमे ताला लगाया जाता है (लश०)। ३ फोड़े का घेरा। फोड़े की सूजन। व्रण का शोथ।

थालिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] दे० 'थाली'। उ०—सोरह सिंगार किए पीतम को ध्यान हिए, हाथ लिए मंगलमय कनक थालिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २९८।

थालिका[2]—संज्ञा [हिं० थाला] वृक्ष का थाला। आलवाल। उ०—पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार भंजन भवभार भक्ति कल्प थालिका।—तुलसी (शब्द०)

थाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली (=बटलोई)] १ काँसे या पीतल का गोल छिछला बरतन जिसमे खाने के लिये भोजन रखा जाता है। बड़ी तश्तरी।

मुहा०—थाली का बैंगन = लाभ और हानि देख कभी इस पक्ष, कभी उस पक्ष में होनेवाला। अस्थिर सिद्धांत का। बिना पेंदी का लोटा। उ०—जबरखाँ होंगे उनकी न कहिए। यह थाली के बैंगन हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १९। थाली जोड़ = कटोरे के सहित थाली। थाली और कटोरे का जोड़ा। थाली फिरना = इतनी भीड़ होना कि यदि उसके बीच थाली फेंकी जाय तो वह ऊपर ही ऊपर फिरती रहे नीचे न गिरे। भारी भीड़ होना। थाली बजना = साँप का विष उतारने का मंत्र पढ़ा जाना जिसमें थाली बजाई जाती है। थाली बजाना = (१) साँप का विष उतारने के लिये थाली बजाकर मंत्र पढ़ना। (२) बच्चा होने पर उसका डर दूर करने के लिये थाली बजाने की रीति करना।

२. नाच की एक गत जिसमें थोड़े से घेरे के बीच नाचना पड़ता है।

यौ०—थाली कटोरा=नाच की एक गत जिसमें थाली और परबंद का मेल होता है।

थाव—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'थाह'।

थावर—संज्ञा पुं० [सं० स्थावर] दे० 'स्थावर'। उ०—नर पसु कीट पतंग में थावर जंगम मेल।—स० सप्तक, पृ० १७८।

थाह—संज्ञा स्त्री० [सं० स्था] १. नदी, ताल, समुद्र इत्यादि के नीचे की जमीन। जलाशय का तलभाग। धरती का वह तल जिसपर पानी हो। गहराई का अंत। गहराई की हद। जैसे,—जब थाह मिले तब तो लोटे का पता लगे।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।

मुहा०—थाह मिलना = जल के नीचे की जमीन तक पहुँच हो जाना। पानी में पैर टिकने के लिये जमीन मिल जाना। डूबते को थाह मिलना=निराश्रय को आश्रय मिलना। संकट में पड़े हुए मनुष्य को सहारा मिलना।

२. कम गहरा पानी। जैसे,—जहाँ थाह है वहाँ तो हलकर पार कर सकते हैं। उ०—चरण छूते हो जमुना थाह हुई।—लल्लू (शब्द०)। ३ गहराई का पता। गहराई का अंदाज।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।

मुहा०—थाह लगना = गहराई का पता चलना। थाह लेना = गहराई का पता लगाना।

४. अंत। पार। सीमा। हद। परिमिति। जैसे,—उनके धन की थाह नहीं है। ५. संख्या, परिमाण आदि का अनुमान। कोई वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसका पता। जैसे,—उनकी बुद्धि की थाह इसी बात से मिल गई।

क्रि प्र०—पाना।—मिलना।—लगना।

मुहा०—थाह लेना = कोई वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसकी जाँच करना।

६. किसी बात का पता जो प्राय गुप्त रीति से लगाया जाय। अप्रत्यक्ष प्रयत्न से प्राप्त अनुसंधान। भेद। जैसे,—इस बात की थाह लो कि वह कहाँ तक देने को तैयार हैं।

क्रि० प्र०—पाना।—लेना।

मुहा०—मन की थाह=अंतःकरण के गुप्त अभिप्राय की जानकारी। चित्त की बात का पता। संकल्प या विचार का पता। उ०—कुटिल जनन के मनन की मिलति न कबहूँ थाह।—(शब्द०)।

थाहना—क्रि० स० [हिं० थाह] १. थाह लेना। गहराई का पता चलना। २. अंदाज लेना। पता लगाना।

थाहरा†—वि० [हिं० थाह] १. छिछला। जो गहरा न हो। जिसमें जल गहरा न हो। उ०—खरखराइ जमुना गह्यो अति थाहरो सुभाय। मानहु हरि निज पाँव ते दीनी ताहि दबाय।—सुकवि (शब्द०)।

थिएटर—संज्ञा पुं० [अं०] १ रंगभूमि। रंगशाला। २ नाटक का अभिनय। नाटक का तमाशा। उ०—क्लब, कमेटी, थिएटर और होटलों में।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७५।

थिगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकली] वह टुकड़ा जो किसी फटे हुए कपड़े या और किसी वस्तु का छेद बंद करने के लिये टाँका या लगाया जाय। चकती। पैवंद।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—थिगली लगाना=ऐसी जगह पहुँचकर काम करना जहाँ पहुँचना बहुत कठिन हो। जोड़ तोड़ भिड़ाना। युक्ति लगाना। बादल में थिगली लगाना=(१) अत्यंत कठिन काम करना। (२) ऐसी बात कहना जिसका होना असंभव हो।

थित⑤—वि० [सं० स्थित] १ ठहरा हुआ। २ स्थापित। रखा हुआ। उ०—भए धरम में थित सब द्विजजन प्रजा काज निज लागे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २७२।

थिति⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] १ ठहराव। स्थायित्व। २. विश्राम करने या ठहरने का स्थान। ३ रहाइस। रहन। ४ बने रहने का भाव। रक्षा। उ०—ईश रजाइ सीस सब ही के। उतपति थिति, लय विषहु अमी के।—तुलसी (शब्द०)। ५ अवस्था। दशा।

थितिभाव⑤—संज्ञा पुं० [सं० स्थिति भाव] दे० 'स्थायी भाव'।

थिबाऊ—संज्ञा पुं० [देश०] दाहिने अंग का फड़कना आदि जिसे ठग लोग अशुभ समझते हैं (ठग)।

थियेटर—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह मकान जहाँ नाटक का अभिनय दिखाया जाता है। नाट्यशाला। नाटकघर। २. अभिनय। नाटक।

थियोसोफिस्ट—संज्ञा पुं०[अं०]थियोसोफी के सिद्धांत को माननेवाला।

थियोसोफी—संज्ञा स्त्री० [अं०] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी दैवी शक्ति अथवा आत्मा के प्रसाद से हुआ हो।

थिर[1]—वि० [सं० स्थिर] १. जो चलता या हिलता डोलता न हो। ठहरा हुआ। अचल। २ जो चंचल न हो। शांत। धीर। ३. जो एक ही अवस्था में रहे। स्थायी। दृढ़। टिकाऊ।

थिर⑤†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरा] स्थिरा। पृथ्वी। उ०—थिर चूर हुआ कर सूर थके। छल पेख वृंदारक व्योम छके।—रा० रू०, पृ० ३६।

थिरक—संज्ञा पुं० [हिं० थरकना] नृत्य में चरणों की चंचल गति। नाचने में पैरों का हिलना डोलना या उठाना और गिराना।

थिरकना—क्रि० अ० [सं० अस्थिर+करण] १. नाचने में पैरों का क्षण क्षण पर उठाना और गिराना। नृत्य में अंगसंचालन करना। जैसे, थिरक थिरककर नाचना। २. अंग मटकाकर नाचना। ठमक ठमककर नाचना।

थिरकौहाँ[1]—वि० [हिं० थिरकना+औहाँ (प्रत्य०)] थिरकनेवाला। थिरकता हुआ।

थिरकौहाँ[2]—वि० [सं० स्थिर] ठहरा हुआ। रुका हुआ। उ०—दृग थिरकौहैं अधखुलै देह थकौहैं ढार। सुरत सुखित सी देखियति दुखित गरभ कैं भार।—बिहारी (शब्द०)।

थिरचर—संज्ञा पुं० [सं० स्थिर+चल] स्थावर और जंगम। उ०—तान लेत चित की चोपन सों मोहै वृंदावन के थिर चर।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १५६।

थिरजीह⑤—संज्ञा पुं० [सं० स्थिरजिह्व] मछली।

थिरता⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरता] १ ठहराव। अचलत्व। २ स्थायित्व। अचंचलता। ३. शांति। धीरता।

थिरताई⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर+ताति (वै० प्रत्य०)] दे० 'थिरता'।

थिरथानी⑤—संज्ञा पुं० [सं० स्थिर+स्थान] थिर स्थानवाले, लोकपाल आदि। उ०—सुकृत सुमन तिल मोद बासि विधि जतन जंत्र भरि कानी। सुख सनेह सब दियो दसरथहिं खरि खेलेल थिरथानी।—तुलसी (शब्द०)।

थिरथिरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बुलबुल जो जाड़े के दिनों में सारे भारतवर्ष में दिखाई पड़ता है।

थिरना—क्रि० अ० [सं० स्थिर, हिं० थिर+ना(प्रत्य०)] १ पानी या और किसी द्रव पदार्थ का हिलना डोलना बंद होना। हिलते डोलते या लहराते हुए जल का ठहर जाना। जल का क्षुब्ध न रहना। २ जल के स्थिर होने के कारण उसमें घुली हुई वस्तु का तल में बैठना। पानी का हिलना, घूमना आदि बंद होने के कारण उसमें मिली हुई चीज का पेंदे में जाकर जमना। ३ मैल आदि नीचे बैठ जाने के कारण जल का स्वच्छ हो जाना। ४ मैल, धूल, रेत आदि के नीचे बैठ जाने के कारण साफ चीज का जल के ऊपर रह जाना। निथरना।

थिरा⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरा] पृथ्वी।

थिराना[1]—क्रि० स० [हिं० थिरना] १ पानी आदि का हिलना डोलना बंद करना। क्षुब्ध जल को स्थिर होने देना। २

घुली हुई मैल आदि को नीचे बैठने देकर पानी को साफ करना। ४. किसी वस्तु को जल में घोलकर और उसमें मिली हुई मैल, धूल, रेत आदि को नीचे बैठाकर साफ करना। नियारना।

थिराना²—क्रि० अ० दे० 'थिरना'। उ०—दोउन कों रूप गुन दोउ बरनत फिरैं, पल न थिरात रीति नेह की नई नई।—देव०।

थी¹—क्रि० अ० [हिं०] 'है' के भूतकाल 'था' का स्त्री०।

थी²—प्रत्य [देश०] से। उ०—इद्रसिंघ दक्खण थी आयो।—रा० रू०, पृ० २५।

थीकरा—संज्ञा पुं० [सं० स्थित+कर] किसी आपत्ति के समय रक्षा या सहायता का भार जिसे गाँव का प्रत्येक समर्थ मनुष्य बारी बारी से अपने ऊपर लेता है।

थीजना—क्रि० अ० [सं० स्था] टिक जाना। अचल होना। स्थिर रहना। उ०—मन तुम तन मँडरात है नहिं थीजै हा हा। घनानद, पृ० ३६७।

थीत†—संज्ञा पुं० [सं० स्थिति] सत्य। वस्तुस्थिति। उ०—थीत चीन्हैं नहीं पथल पूजता फिरै करम अनक करि नरक लीन्हा।—स० दरिया, पृ० ८३।

थीता—संज्ञा पुं० [सं० स्थित, हिं० थित] १. स्थिरता। शांति। २. कल। चैन। उ०—थीतो परै नहिं चीतो चवैयन देखत पीठि दै डोठि कै पैनी।—देव (शब्द०)।

थीती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति, प्रा० थिइ] संतोष। ढाढ़स। स्थिरता। उ०—टकु पियाउ, बाँधु जिय थीती।—जायसी ग्रं०, पृ० १५२।

थीथी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] स्थिरता। २ धैर्य। धीरज। इतमीनान।

थीन—वि० [प्रा० थीण, थिण्ण] घन। स्त्यान। कठिन। जमा हुआ। उ०—सुभट्ट सूसरं कुघट्ट सु कीन उलथ्थं समेजी घृतं जान थीन।—पृ० रा०, २५। ५५५।

थीर(पु)—वि० [सं० स्थिर] स्थिर। ठहरा हुआ। अडोल। उ०—(क) उलथहिं मानिक मोती हीरा। दरब देखि मन होइ न थीरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) पियरे मुख स्याम सरीरा। कहुँ रहत नहीं पल थीरा—सुदर ग्रं०, भा० १, पृ० १२६।

थुँदला†—वि० [अनु०] थुलथुल। फूला हुआ। भद्दा। उ०—मोटा तन व थुँदला थुँदला मूँ व कुच्ची आँख व मोटे ओठ मुछदर की आमद आमद है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६।

यौ०—थुँदला थुँदला = थुलथुल।

थुकवाना—क्रि० स० [हिं० थूकना] दे० 'थुकाना'।

थुकहाई—वि० स्त्री० [हिं० थूक+हाई (प्रत्य०)] ऐसी (स्त्री) जिसे सब लोग थूकें। जिसकी सब निंदा करते हों।

थुकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूकना] थूकने का काम।

थुकाना—क्रि० स० [हिं० थूकना का प्रे०रूप] १ थूकने की क्रिया दूसरे से कराना। दूसरे को थूकने की प्रेरणा करना।

संयो० क्रि०—देना।

२ मुँह में ली हुई वस्तु को गिरवाना। उगलवाना। जैसे,—बच्चा मुँह में मिट्टी लिए है, जल्दी थुकाओ। ३. थुडी थुडी कराना। निंदा कराना। तिरस्कार कराना। जैसे,—क्यों ऐसी चाल चलकर गली गली थुकाते फिरते हो।

थुकायल†—वि० [हिं० थूक+आयल (प्रत्य०)] जिसे सब लोग थूकें। जिसे सब लोग धिक्कारें। तिरस्कृत। निंद्य।

थुकैल†—वि० [हिं० थूक] दे० 'थुकायल'।

थुक्का†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूक] निंदा। घृणा। धिक्कार।

यौ०—थुक्का थुक्की = परस्पर निंदा, धिक्कार या घृणा।

थुक्का फजीहत—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूक + अ० फजीहत] निंदा और तिरस्कार। थुडी थुडी। धिक्कार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

थुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूक] रेशम के तागे को थूक लगाकर सुलझाने की क्रिया (जुलाहे)।

थुडी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थू थू (= थूकने का शब्द)] घृणा। और तिरस्कारसूचक शब्द। धिक्कार। लानत। फिट। जैसे,—थुडी है तुझको।

मुहा०—थुडी थुडी करना = धिक्कारना। निंदा और तिरस्कार करना।

थुत—वि० [सं० स्तुत, स्तुत्य, प्रा० थुअ, थुत] श्लाघ्य। स्तुत्य। प्रशंसनीय। उ०—कनवज जैचद मात भयौ समरि बहिनी सुत। तिन पवत दुज पठिय थार जर चीर थपिय थुत।—पृ० रा०, ११६६०।

थुति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] स्तवन। प्रार्थना। स्तुति। उ०—जोरि हत्थ थुति मत्र फिरथो परदच्छि लग्गि पय। रुधिर नयन आरक्त कठ लग्यौ सु मुक्कि भय।—पृ० रा०, ११०८।

थुत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'थूत्कार'।

थुथना—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थूथन'।

थुथराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] मुँह लटकना। तुलना मे न्यूनता माना। उ०—जान महा गरवे गुन में घन आनँद हेरि रस्यो थुथराई। पैने कटाच्छनि ओज मनोज के आनन बीच बिथी मुथराई।—रसखान, पृ० १०४।

थुथराना—क्रि० अ० [हिं० थोडा] थोडा पडना।

थुथाना—क्रि० अ० [हिं० थूथन] थूथन फुलाना। मुँह फुलाना। नाराज होना।

थुथुलाना—क्रि० अ० [अनु०] थरथराना। कपित होना। झल्लाना। भभक पड़ना। उ०—रामनाथ क्रोध मे थुथुला गया।—भस्मावृत०, पृ० ८१।

थुनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूनी] टेक। सहारा। थूनी। उ०—अति पुरब पूरे पुण्य रूपी कुल अटल थुनी।—सूर (शब्द०)।

थुनेर—संज्ञा पुं० [सं० स्थूण, हिं० थून] गठिवन का एक भेद।

थुन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूण] थूनी। खभा। चाँड़।

थुपरना—क्रि० [सं० स्तूप, हिं० थूप] मड़ुवे की बालों का ढेर लगाकर दबाना जिसमें उनमें कुछ गरमी आ जाय । रंदवाना । औसाना ।

थुपरा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] मड़ुवे की बालों का ढेर जो औसने के लिये दबाकर रखा जाय ।

थुरना—क्रि० स० [सं० थुर्वण (=मारना)] १. कूटना । २. मारना । पीटना ।

थुरहथा—वि० [हिं० थोड़ा+हाथ] [वि० स्त्री० थुरहथी] १ जिसके हाथ छोटे हों । जिसकी हथेली में कम चीज आवे । २. किसी को कुछ देते समय जिसके हाथ मे थोड़ी वस्तु आवे । किफायत करनेवाला । उ०—कन दैबो सौंप्यो ससुर बहू थुरहथी जानि । रूप रहचटे लगि लग्यो माँगन सब जग आनि ।—बिहारी (शब्द०) ।

थुलना—संज्ञा पुं०[देश०]एक प्रकार का पहाड़ी ऊनी कपड़ा या कंबल ।

थुलमा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थुलना' ।

थुली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल, हिं० थूला] किसी अन्न के मोटे कण जो दलने से होते हैं । दलिया ।

थुवा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] दे० 'थूवा' ।

थूँक—संज्ञा पुं० [हिं० थूक] दे० 'थूक' ।

थूँकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'थूकना' ।

थूँथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'थूथनी' । उ०—नतमस्तक हो थूँथी को धरती में देकर, सूँघ सूँघकर कूड़े के ढेरों के अंदर किया न अर्जन ।—दीप ज०, पृ० १६६ ।

थू—अव्य० [अनु०] १. थूकने का शब्द । वह ध्वनि जो जोर से थूकने मे मुँह से निकलती है । २ घृणा और तिरस्कार सूचक शब्द । धिक् । छि । जैसे,—थू थू ! कोई ऐसा काम करता है ? उ०—बकरी भेड़ा, मछली खायो, काहे गाय चराई । रुधिर मास सब एकै पाँहे थू तोरी बम्हनाई ।—पलटू०, भा०३, पृ० ६२ ।

मुहा०—थू थू करना=घृणा प्रकट करना । छि छि करना । धिक्कारना । थू थू होना=चारो ओर से छि: छि होना । निंदा होना । थू थू युद्दा=लड़को का एक वाक्य जिसे वे खेल में उस समय बोलते हैं जब समझते हैं कि वे बेईमानी होने के कारण हार रहे हो ।

थूक—संज्ञा पुं० [अनु० थू थू] वह गाढ़ा और कुछ कुछ लसीला रस जो मुँह के भीतर जीभ तथा मास की झिल्लियों से छूटता है । ष्ठीवन । खखार । लार ।

विशेष—मनुष्य तथा और उन्नत स्तन्य जीवों में जीवो के अगले भाग तथा मुँह के भीतर की मासल झिल्लियो मे दाने की तरह उभरे हुए (अत्यत) सूक्ष्म छेद होते हैं जिसमें एक प्रकार का गाढ़ा सा रस भरा रहता है । यह रस भिन्न जतुओं में भिन्न भिन्न प्रकार का होता है । मनुष्य आदि प्राणियो के थूक के भाग में ऐसे रासायनिक द्रव्यों का अंश होता है जो भोजन के साथ मिलकर पाचन मे सहायता देते हैं ।

—थूक उछालना=व्यर्थ की बकवाद करना । थूक बिलोना=व्यर्थ बकना । अनुचित प्रलाप करना । थूक लगाना=हराना । नीचा दिखाना । चूना लगाना । हैरान और तग करना । थूक लगाकर छोड़ना=नीचा दिखाकर छोड़ना । (विरोधी को) तग और लज्जित करके छोड़ना । दंड देकर छोड़ना । थूक लगाकर रखना=बहुत सैतकर रखना । जोड़ जोड़कर इकट्ठा करना । कजूसी से जमा करना । कृपणता से सचित करना । थूकों सत्तू सानना=कजूसी या किफायत के मारे थोड़े से सामान से बहुत बड़ा काम करने चलना । बहुत थोड़ी सामग्री लगाकर बड़ा कार्य पूरा करने चलना । थूक है=धिक् है ! लानत है !

थूकना¹—क्रि० अ० [हिं० थूक+ना (प्रत्य०)] १ मुँह से थूक निकालना या फेंकना ।

सयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—किसी (व्यक्ति या वस्तु) पर न थूकना=अत्यत घृणा करना । जरा भी पसद न करना । अत्यत तुच्छ समझकर ध्यान तक न देना । जैसे,—हम तो ऐसी चीज पर थूकें भी नहीं । थूककर चाटना=(१) कहकर मुकर जाना । वादा करके न करना । प्रतिज्ञा करके पूरा न करना । (२) किसी दी हुई वस्तु को लौटा लेना । एक बार देकर फिर ले लेना ।

थूकना²—क्रि० स० १ मुँह में ली हुई वस्तु को गिराना । उगलना । जैसे,—पान थूक दो ।

सयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—थूक देना=तिरस्कार कर देना । घृणापूर्वक त्याग देना ।

२ बुरा कहना । धिक्कारना । निंदा करना । तिरस्कृत करना । जैसे,—इसी चाल पर लोग तुम्हे थूकते हैं ।

थूणी—संज्ञा स्त्री० [वि० स्तूप] दे० 'थूनी' । उ०—तिहि समय अटल थूणी सुथप्प । गणनाथ पूजि सुभ मंत्र जप्प ।—ह० रासो, पृ० १५ ।

थूत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] थूकने का शब्द । थू थू करना [को०] ।

थूत्कृत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'थूत्कार' ।

थूथन—संज्ञा पुं० [देश०] लबा निकला हुआ मुँह । जैसे, सुअर, घोडे, ऊँट, बैल आदि का ।

थूथनी—संज्ञा स्त्री [हिं० थूथन] १ लबा निकला हुआ मुहँ । जैसे, सुअर, घोडे, बैल आदि का ।

मुहा०—थूथनी फैलाना=नाक भौं चढ़ाना । मुँह फुलाना । नाराज होना ।

२ हाथी के मुँह का एक रोग जिसमे उसके तालू में घाव हो जाता है ।

थूथरा—वि० [देश०] थूथन के ऐसा निकला हुआ मुँह । बुरा चेहरा । भद्दा चेहरा ।

थूथुन—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थूथन' ।

थून¹—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूणा] थूनी । चाँड़ । खभा । उ०—प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहि । जनु हिरदय गुनग्राम थून थिर रोपहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

थून²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का मोटा पौंडा या गन्ना जो मदरास में होता है। मदरासी पौंडा।

थूना—संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का लोंदा जिसमें परेता खोंसकर सूत या रेशम फेरते हैं।

थूनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० थून] दे० 'थूनी'।

थूनियां—संज्ञा स्त्री० [हिं० थून + इया (प्रत्य०)] दे० 'थूनी'। उ०—चौदह पंद्रह सालवाले लड़के अखाड़ा गोट चुके थे, छप्पर की थूनिया पकड़े हुए बैठक कर रहे थे।—काले०, पृ० ३।

थूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूण] १ लकड़ी आदि का गड़ा हुआ खड़ा बल्ला। खंभा। स्तंभ। थम। २ वह खंभा जो किसी बोझ को रोकने के लिये नीचे से लगाया जाय। चाँड़। सहारे का खंभा। उ०—चाँद सूरज कियो तारा, गगन लियो बनाय। थाम्ह थूनी बिना देखो, राख लियो ठहराय।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

क्रि० प्र०—लगाना।

३ वह गड़ी हुई लकड़ी जिसमें रस्सी का फंदा लगाकर मथानी का डंडा अटकाते हैं।

थून्ही—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूण] दे० 'थूनी'।

थूथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] साँप का विष दूर करने के लिये गरम लोहे से काटे हुए स्थान को दागने की युक्ति।

थूर¹—संज्ञा पुं० [देश०] समूह। कोठी (बाँस की)। उ०—प्रथिराज प्रबोधिय धार धर हकि साहु उप्परि परिय। जानै कि अगिग उद्यान वन बंस थूर दव प्रज्जरिय।—पृ० रा०, १३। १४०।

थूर²—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] अरहर। तूर। तोर।

थूरना¹—क्रि० स० [सं० थुर्वण (= मारना)] १ कूटना। दलित करना। २ मारना। पीटना। उ०—घूरत करि रिस जबहिं होति सतहूर सम सूरत। थूरत पर बल भूरि हृदय महँ पूरि गरूरत।—गोपाल (शब्द०)। ३. ठूँसना। कस कर भरना। ४ खूब कस कर खाना। ठूस ठूस कर खाना।

थूरना²—क्रि० स० [सं० त्रुट्] दे० तोड़ना'।

थूल(पु)—वि० [सं० स्थूल] १ मोटा। भारी। २ भद्दा। उ०—श्रवणादि वचनादि देवता मन न आदि, सूक्षम न थूल पुनि एक ही न दोइ हैं।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ७६।

थूला—वि० [सं० स्थूल] [वि० स्त्री० थूलि, थूली] मोटा ताजा। उ०—करतार करे यहि कामिनि के कर कोमलता कलता सुनि कै। लघु दीरघ पातरि थूलि तही सुसमाधि टरै सुनि के मुनि कै।—तोष (शब्द०)।

थूली—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूला (= मोटा)] १ किसी अनाज का दला हुआ मोटा कण। दलिया। २ सूजी। ३ पकाया हुआ दलिया जो गाय को बच्चा जनने पर दिया जाता है।

थूवा¹—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, प्रा० थूप, थूव] १ मिट्टी आदि के ढेर का बना हुआ टीला। ढूह। २. गीली मिट्टी का पिंडा या लोंदा। ढोमा। भेली। धोंधा। ३ मिट्टी का ढूहा जो सरहद के निशान के लिये उठाया जाता है। सीमासूचक स्तूप। ४. ढूह के आकार का काला रँगा हुआ पिंडा जिसे पीने का तंबाकू बेचनेवाले अपनी दूकानों पर चिह्न के लिये रखते हैं। ५ वह बोझ जो कपड़े में बँधी हुई राब के ऊपर जूसी निकालकर बहाने के लिये रखा जाता है। ६. मिट्टी का लोंदा जो बोझ के लिये ढेंकली की आड़ी लकड़ी के छोर पर थोपा जाता है।

थूवा²—संज्ञा स्त्री० [अनु० थू थू] थुड़ी। धिक्कार का शब्द।

थूह—संज्ञा पुं० [देशी] भवन का शिखर। मकान की ऊँची छत। —देशी०, पृ० १९५।

थूहड़—संज्ञा पुं० [सं० स्थूण] दे० 'थूहर'।

थूहर—संज्ञा पुं० [सं० स्थूण (=थूनी)] एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियाँ नहीं होतीं, गाँठों पर से गुल्ली या डंडे के आकार के डंठल निकलते हैं। उ०—थूहरों से सटे हुए पेड़ और झाड़ हरे, गोरज से धूम ले जो खड़े हैं किनारे पर।—आचार्य०, पृ० १९८।

विशेष—किसी जाति के थूहर में बहुत मोटे दल के लंबे पत्ते होते हैं और किसी जाति में पत्ते बिलकुल नहीं होते। काँटे भी किसी में होते हैं किसी में नहीं। थूहर के डंठलों और पत्तों में एक प्रकार का कड़ुआ दूध भरा रहता है। निकले हुए डंठलों के सिरे पर पीले रंग के फूल लगते हैं जिनपर आवरणपत्र या विउली नहीं होती। पुं० और स्त्री० पुष्प अलग अलग होते हैं। थूहर कई प्रकार के होते हैं—जैसे, काँटेवाला थूहर, तिधारा थूहर, चौधारा थूहर, नागफनी, खुरासानी थूहर, विलायती थूहर, इत्यादि। खुरासानी थूहर का दूध विषैला होता है। थूहर का दूध औषध के काम में आता है। थूहर के दूध में सानी हुई बाजरे के आटे की गोली देने से पेट का दर्द दूर होता है और पेट साफ हो जाता है। थूहर के दूध में भिगोई हुई चने की दाल (आठ या दस दाने) खाने से अच्छा जुलाब होता है और गरमी का रोग दूर होता है। थूहर की राख से निकाला हुआ खार भी दवा के काम में आता है। काँटेवाले थूहर के पत्तों का लोग अचार भी डालते हैं। थूहर का कोयला बारूद बनाने के काम में आता है। वैद्यक में थूहर रेचक, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कटु तथा शूल, गुल्म, अष्ठी, वायु, उन्माद, सूजन इत्यादि को दूर करनेवाला माना जाता है। थूहर को सेहुँड़ भी कहते हैं।

पर्या०—स्नुही। समंतदुग्धा। नागद्रु। महावृक्षा। सुधा। वज्रा। सीहुंडा। सिहुंड। दडवृक्षक। स्नुक्। स्नुषा। गुड। गुडा। कृष्णसार निस्त्रिंशपत्रिका। नेत्रारि। काण्डशाख। सिंहतुंड। काण्डरोहक।

थूहा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, थूव] १. ढूह। अटाला। २ टीला।

थूही—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूहा] १ मिट्टी की ढेरी। ढूह। २. मिट्टी के खंभे जिनपर गराड़ी या घिरनी की लकड़ी ठहराई जाती है।

थैंथर—वि० [देश०] थका हुआ। श्रांत। सुस्त। हैरान।

थें—सर्व० बहु० [सं० त्वम्] तुम या आप। उ०—ज्यूँ थें जाणउ त्यूँ करउ, राजा आइस दीध। ढोला०, दू० ९।

थेइ थेइ(पु)—वि० [अनु०] दे० 'थेई थेई'। उ०—लाग मान थेइ थेइ करि उघटत घटत ताल मृदंग गँभीर।—सूर० (शब्द०)।

थेई थेई—वि० [अनु०] तालसूचक नृत्य का शब्द और मुद्रा। थिरक थिरककर नाचने की मुद्रा और ताल।

क्रि० प्र०—करना।

थेक†—संज्ञा पुं० [हिं० टेक, ठेघ, थेघ (=स्तंभ, खंभा)] (ला०) शरीररूपी स्तंभ। शरीर। उ०—सत कोटि तीरथ भूमि परिकरमा करि नवावै थेक हो।—कबीर सा०, पृ० ४११।

थेगली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'थिगली'। उ०—पाँच तत्त के गुदडी बनाई। चाँद सुरज दुइ थेगली लगाई।—कबीर० श०, भा० २, १४०।

थेघा†—संज्ञा पुं० [देश०] सहारा। अवलंबन। उ०—गगन गरज मेघा, उठए धरनि थेघा। पँचसर हिय डोल सालि।—विद्यापति, पृ० १३५।

थेट†—वि० [देश०] आरंभ का। असली। मुख्य। उ०—अ मल मड है आजरा थाहर जासी थेट।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३४।

थेवा—संज्ञा पुं० [देश०] १ अँगूठी का नगीना। २ किसी धातु का वह पत्र जिसपर मुहर खोदी जाती है। ३ अँगूठी का वह घर जिसमें नगीना जड़ा जाता है।

थैचा—संज्ञा संज्ञा पुं० [देश०] खेत में मचान के ऊपर का छप्पर।

थै थै—वि० [सं०] वाद्य का अनुकरणात्मक एक शब्द। दे० 'थेई थेई'।

थैरजⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० स्थैर्य] कठोरता। स्थिरता। दृढ़ता। उ०—ए हरि तोहर थैरज जत से सब कहुत धनि गेखि सून संकेता रे।—विद्यापति, पृ० २६०।

थैला—संज्ञा पुं० [सं० स्थल (=कपड़े का घर)] [स्त्री० अल्पा० थैली] १. कपड़े टाट आदि को सीकर बनाया हुआ पात्र जिसमें कोई वस्तु भरकर बंद कर सकें। बड़ा कोश। बड़ा बटुआ। बड़ा कीसा।

मुहा०—थैला करना = मारकर ढेर कर देना। मारते मारते ढीला कर देना।

२ रुपयों से भरा हुआ थैला। तोड़ा। उ०—बोल्यो बनजारो दम खोलि थैला दीजिए जू लीजिए जू आय ग्राम चरन पठाए हैं।—प्रियादास (शब्द०)। ३ पायजामे का वह भाग जो जंघे से घुठने तक होता है।

थैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० थैला] १ छोटा थैला। कोश। कीसा। बटुआ। २ रुपयों से भरी हुई थैली। तोड़ा।

मुहा०—थैली खोलना = थैली में से निकालकर रुपया देना। उ०—तब आनिय व्योहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।—तुलसी (शब्द०)।

थैलीदार—संज्ञा पुं० [हिं० थैली + फ़ा० दार] १ वह आदमी जो खजाने में रुपए उठाता है। २ तहवीलदार। रोकड़िया।

थैलीपति—संज्ञा पुं० [हिं० थैली + सं० पति] पूँजीपति। रुपएवाला। मालदार। उ०—पार्लमेंट में शुद्ध थैलीपतियों का बहुमत था।—भा० इ० रू०, पृ० २६४।

थैलीबरदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थैली + फ़ा बरदार] थैली उठाकर पहुँचाने का काम। थैलियों की ढोआई।

थैलीशाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० थैली + फ़ा० शाही] पूँजीवाद।

थोंद—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द] दे० 'तोंद'। उ०—थोंद थलकि बर चाल, मनों मृदंग मिलावनो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४।

थोंदिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोंद का स्त्री० अल्पा०] दे० 'तोंद'। उ०—उज्ज्वल तन, थोरी सी थोंदिया, राते अधर सोहै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४१।

थो†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'था'। उ०—का जानैं तुम कहा लिख्यो थो जाको फल मैं पायो।—नट०, पृ० २१।

थोक—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक, प्र० थोवक, हिं० थोक] १ ढेर। राशि। अटाला। २ समूह। झुंड। जत्था।

मुहा०—थोक करना = इकट्ठा करना। जमा करना। उ०—द्रुम चढ़ि काहे न टेरो कान्हा गैयाँ दूरि गईं। त्रिडरत फिरत सकल बन महियाँ एकइ एक भईं। छाँडि खेल सब दूरि जात हैं बोले जो सकै थोक कईं।—सूर (शब्द०)। थोक की थोक = ढेर की ढेर। बहुत सी। उ०—वह यह भी जानते थे कि मेरी थोक की थोक डाक चिनी डाकखाने में जमा हो रही है।—किन्नर०, पृ० ५४।

३ बिक्री का इकट्ठा माल। इकट्ठा बेचने की चीज। खुदरा का उलटा। जैसे,—हम थोक के खरीदार हैं। ४ जमीन का टुकड़ा जो किसी एक आदमी का हिस्सा हो। चक। ५. इकट्ठी वस्तु। कुल। ६ वह स्थान जहाँ कई गाँवों की सीमाएँ मिलती हों। वह जगह जहाँ कई सरहदें मिलें।

थोकदार—संज्ञा पुं० [हिं० थोक + फ़ा० दार] इकट्ठा माल बेचनेवाला व्यापारी।

थोड़Ⓟ†—वि० [सं० स्तोक] दे० 'थोड़ा'। उ०—बहुल कोडि कनिक थोड, थीवक पेंचों दीअ घोड।—कीर्ति० पृ० ६८।

थोड़ा¹—वि० [सं० स्तोक, पा० थोअ + डा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० थोड़ी] जो मात्रा या परिमाण में अधिक न हो। न्यून। अल्प। कम। तनिक। जरा सा। जैसे,—(क) थोड़े दिनों से वह बीमार हैं। (ख) मेरे पास अब बहुत थोड़े रुपए रह गए हैं।

यौ०—थोड़ा थोड़ा = कम कम। कुछ कुछ। थोड़ा बहुत = कुछ। कुछ कुछ। किसी कदर। जैसे,—थोड़ा बहुत रुपया उनके पास जरूर है।

मुहा०—थोड़ा थोड़ा होना = लज्जित होना। संकुचित होना। हेठ पड़ना।

थोड़ा²—क्रि० वि० अल्प परिमाण या मात्रा में। जरा। तनिक। जैसे,—थोड़ा चलकर देख लो।

मुहा०—थोड़ा ही = नहीं। बिलकुल नहीं। जैसे,—हम थोड़ा ही जायँगे, जो जाय उससे कहो।

विशेष—बोलचाल में इस मुहा० का प्रयोग ऐसी जगह होता है जहाँ उस बात का खंडन करना होता है जिसे समझकर दूसरा कोई बात कहता है।

थोता‡—वि॰[हिं॰]दे॰ 'थोथा'। उ॰— 'तुका' सज्जन तिन सुँ कहिये जियनी प्रेम दुनाय। दुजन तेरा मुख काला थोता प्रेम घटाय। —दक्खिनी॰, पृ॰ १०८।

थोती—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] चौपायों के मुँह का अगला भाग। थूथन।

थोथ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ थोथा] १ खोखलापन। नि.सारता। २. तोंद। पेटी।

थोथर‡—वि॰ [हिं॰ थोथ + र(प्रत्य॰)] खोखला। थोथरा। उ॰— दते मरी मुख थोथर भए गेल जनिक माञोल साँप ठाम वैसलें भुवन भमिअ। भरी गेल सवे दाप।—विद्यापति,पृ॰ ४०२।

थोथरा—वि॰ [हिं॰ थोथ + रा(प्रत्य॰)] [वि॰ स्त्री॰ थोथरी] १ घुन या कीडों का खाया हुआ। खोखला। खाली। २ नि सार। जिसमें कुछ तत्व न हो। ३. निकम्मा। व्यर्थ का। जो किसी काम का न हो। उ॰—(क) मत भोछी घट थोथरा ता घर बैठो फूलि।—चरण॰ वानी, भा॰ २, पृ॰ २०४। (ख) मनुभी भूठी थोथरी निरगुन सच्चा नाम।—दरिया॰ वानी, पृ॰ २२।

थोथा¹—वि॰ [देश॰] [वि॰ स्त्री॰ थोथी] १. जिसके भीतर कुछ सार न हो। खोखला। खाली। पोला। जैसे, थोथा चना बाजे घना। उ॰—बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी प्रात करैं असनाना। आतम छोड पषानै पूजैं तिन का थोथा ज्ञाना।— कबीर श॰, भा॰ १, पृ॰ २७। २ जिसकी धार तेज न हो। कुठित। गुठला। जैसे, थोथा तीर। ३ (साँप) जिसकी पूँछ कट गई हो। बाडा। वे दुम का। ४ भद्दा। वेढगा। व्यर्थ का। निकम्मा।

मुहा॰—थोथी कथनी = व्यर्थ की वात। नि सार बात। उ॰— करनी रहनी दृढ़ गहो थोथी कथनी डारो।—चरण॰ बानी, भा॰ २, पृ॰ १७०। थोथी बात = (१) भद्दी बात। (२) व्यर्थ की बात। व्यर्थ का प्रलाप।

थोथा²—संज्ञा पुं॰ बरतन ढालने का मिट्टी का साँचा।

थोथी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार की घास।

थोपड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ थोपना] चपत। धौल।

यौ॰—गनेस थोपड़ी = लडकों का एक खेल जिसमें जो चोर होता है उसकी आँखें बद करके उसके सिर पर सब लड़के बारी बारी चपत लगाते हैं। यदि चपत खानेवाला लड़का ठीक ठीक बतला देता है कि किसने पहले चपत लगाई तो वह पहले चपत लगानेवाला लडका चोर हो जाता है।

थोपना—क्रि॰ स॰ [सं॰ स्थापन, हिं॰ थापन] १ किसी गीली चीज (जैसे, मिट्टी, आटा आदि) की मोटी तह ऊपर से जमाना या रखना। किसी गीली वस्तु का लोंदा यों ही ऊपर डाल देना या जमा देना। पानी मे सनी हुई वस्तु के लोदे को किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फेंनाकर डालना कि वह उसपर चिपक जाय। छोपना। जैसे,—घड़े के मुँह पर मिट्टी थोप दो।

सयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

२ तवे पर रोटी बनाने के लिये यों ही विना गढ़े हुए गीला आटा फैला देना। ३ मोटा लेप चढ़ाना। लेव चढ़ाना। ४. आरोपित करना। मत्थे मढ़ना। लगाना। जैसे, किसी पर दोष थोपना। ५ आक्रमण आदि से रक्षा करना। बचाना। दे॰ 'छोपना'।

थोपी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ थोपना] चपत। धौल। चपेट। थोपड़ी।

थोबड़ा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] थूथन। जानवरों का निकला हुआ लवा मुँह।

थोब रखना—क्रि॰ स॰ [लश॰] जहाज को धार पर चढ़ाना।

थोभड़ी†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] थूही। दीवार। भित्ति। उ॰—देखो जोगी करामातडी मनसा महल बणाया। विन थाँभा बिन थोभडी आसमान ठहराया।—राम॰ धर्म॰, पृ॰ ४६।

थोर¹—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. केले की पेडी के बीच का गाभा। २. थूहर का पेड।

थोर²—वि॰ [हिं॰ थोड़ा] थोड़ा। स्वल्प। छोटा। उ॰—उठे थन थोर विराजत श्याम। धरे मनु हाटक सालिगराम।—पृ॰ रा॰, २१।२०।

यौ॰—थोरथनी = छोटे छोटे स्तनोवाली। उ॰—रोम राज राजी भ्रमहि थोरथनी ढुंढि बाल। उतकंठा उतकंठ की ते पुज्जी प्रतिपाल।—पृ॰ रा॰, २५।७२५।

थोरा(पु)†—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'थोड़ा'।

थोरिक(पु)†—वि॰ [हिं॰ थोरा + एक] थोडा सा। तनिक सा।

थोरी¹—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक हीन अनार्य जाति।

थोरी²—वि॰ स्त्री॰ [थोरा का स्त्री॰ अल्पा॰] दे॰ 'थोड़ा'।

थोरो, थोरौ—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'थोड़ा'। उ॰—पाछे उन बदीवानन के तें थोरो द्रव्य आवन लाग्यो।—दो सौ बावन॰, भा॰ १, पृ॰ १२८। (ख) भद्दो महरि अब बधन छोरौ। सुदर सुत पर भयो न थोरौ।—नद॰ ग्र॰, पृ॰ २५१।

थोल‡—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'थोड़ा'। उ॰—काहु कापल काहु घोल, काहु सबल काहु थोल।—कीर्ति॰, पृ॰ २४।

थोहर(पु)†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] दे॰ 'थूहर'। उ॰—सुभा हुरड थोहर सुभा, सुभा कहत कल्याण। सुभा जु सोभावान हरि, और न दूजो जान।—नद॰ ग्र॰, पृ॰ ७०।

थौंदि(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुन्द या तुण्ड] तोंद। पेट। उ॰—किहूपै कटारीन सौं थौंदि फारी। तहीं दूसरें आनिकैं सीस भारी। —सुजान॰, पृ॰ २१।

थ्यॉ†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'था'। उ॰—सवाल सात सुरतौं खुदाए ताला के जात मे क्यों थ्यॉ ?—दक्खिनी॰, पृ॰ ३८८।

थ्यावस†—संज्ञा पुं॰[सं॰ स्थेयस] १. स्थिरता। ठहराव। २. धीरता। धैर्य। उ॰—(क) विन पावस तो इन्हें थ्यावस है न सु क्यौं करिये अब सो परसै। बदरा बरसैं ऋतु मे घिरि के नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं।—आनदघन (शब्द॰)। (ख) ज्यौं कहलाय मसूसनि ऊमस क्यो हूँ कहूँ सो धरे नहिं थ्यावस।— आनदघन (शब्द॰)।

द

द—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला में अठारहवाँ व्यंजन जो तवर्ग का तीसरा वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान दंतमूल है, दंतमूल में जिह्वा के अगले भाग के स्पर्श से इसका उच्चारण होता है। यह अल्पप्राण है और इसमें सवार, नाद और घोष नामक बाह्य प्रयत्न हैं।

दंग[1]—वि० [फा०] विस्मित। चकित। आश्चर्यान्वित। स्तब्ध। हक्का बक्का।

क्रि० प्र०—रह जाना।—होना।

दंग[2]—संज्ञा पुं० १ घबराहट। भय। डर। उ०—जब रथ साजि चढ़ौ रण सम्मुख जीय न आनो दंग। राघव सेन समेत सँघारौं करौं रुधिरमय अंग।—सूर (शब्द०)। २ दे० 'दगा'।

दंग[3]—संज्ञा पुं० [देश०] अग्निकण। उ०—इक राह चाह लग्गी असुर निरसहाय प्राकार नव। अवरग प्रथी पर उलटियौ, दंग प्रगट्यौ जाण दव।—रा० रू०, पृ० २०।

दंगई—वि० [हिं० दंगा + ई (प्रत्य०)] १ दंगा करनेवाला। उपद्रवी लड़ाका। झगड़ालू। २ प्रचंड। उग्र। ३ दगली। बहुत लंबा। लंबा चौड़ा। भारी।

दंगल—संज्ञा पुं० [फा०] १ मल्लों का युद्ध। पहलवानों की वह कुश्ती जो जोड़ बदकर हो और जिसमें जीतनेवाले को इनाम आदि मिले। २ अखाड़ा। मल्लयुद्ध का स्थान।

मुहा०—दंगल में उतरना = कुश्ती लड़ने के लिये अखाड़े में आना।

३ जमावड़ा। समूह। समाज। दल। उ०—सावन नित सतन के घर में, रति मति सियवर में। नित वसत नित होरी मगल, जैसी बस्ती तैसोइ जंगल, दल बादल से जिनके दगल पगे रटे की झर में।—देवस्वामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जमाना।—बाँधना।

४ बहुत मोटा गद्दा या तोशक। उ०—(क) अहलकार हाथ धोकर सामने बैठ जाते थे, वह दगल पर रहता था, खाना एक बड़ी सी कुरसी पर चुना जाता था।—शिवप्रसाद (शब्द०)। (ख) बावर्ची जब छुट्टी पाता हो ··किसी बड़े दंगल पर पाँव फैला कर लबा पड़ जाता।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

दंगली—वि० [फा० दंगल] १ युद्ध करनेवाला। लड़ाका। प्रलय-कर। उ०—भूषन भनत तेरी खरगऊ दंगली।—भूषण ग्र०, पृ० ४५। २ दगल में कुश्ती लड़नेवाला। दगल जीतनेवाला।

दंगवारा—संज्ञा पुं० [हिं० दंगल + वारा] वह सहायता जो किसी गाँव के किसान एक दूसरे को हल बैल आदि देकर देते हैं। जिता। हरसीत।

दंगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दगल] १ झगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव। उ०—खेलन लाग बालकन संगा। जब तब करिय सखन ते दगा।—विश्राम। (शब्द०)।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

यौ०—दगा फसाद।

२ गुल गपाड़ा। हुल्लड़। शोर। गुल। उ०—शीश पर गंगा हँसे भुजन भुजगा हँसैं हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह मे।—पद्माकर (शब्द०)।

दंगाई—वि० [हिं० दगा] दे० 'दगई'।

दंगैत—वि० [हिं० दंगा + एत या ऐत (प्रत्य०)] १. दगा करने-वाला। उपद्रवी। २ बागी। बलवाई।

दंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] १ डंडा। सोटा। लाठी।

विशेष—स्मृतियों में आश्रम और वर्ण के अनुसार दंड धारण करने की व्यवस्था है। उपनयन संस्कार के समय मेखला आदि के साथ ब्रह्मचारी को दंड भी धारण कराया जाता है। प्रत्येक वर्ण के ब्रह्मचारी के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के दंडों की व्यवस्था है। ब्राह्मण को बेल या पलाश का दंड केशांत तक ऊँचा, क्षत्रिय को बरगद या खैर का दंड ललाट तक और वैश्य को गूलर या पलाश का दंड नाक तक ऊँचा धारण करना चाहिए। गृहस्थों के लिये मनु ने बाँस का डंडा या छड़ी रखने का आदेश दिया है। सन्यासियों में कुटीचक और बहूदक को त्रिदंड (तीन दंड), हंस को एक वेणुदंड और परमहंस को भी एक दंड धारण करना चाहिए। ऐसा निर्णयसिंधु में उल्लेख है। पर किसी किसी ग्रंथ में यह भी लिखा है कि परमहंस परम ज्ञान को पहुँचा हुआ होता है अतः उसे दंड आदि धारण करने की कोई आवश्य-कता नहीं। राजा लोग शासन और प्रतापसूचक एक प्रकार का राजदंड धारण करते थे।

मुहा०—दंड ग्रहण करना = सन्यास लेना। विरक्त या संन्यासी हो जाना।

२ डंडे के आकार की कोई वस्तु। जैसे, भुजदंड, शुंडादंड, वेतसदंड, इक्षुदंड इत्यादि। ३ एक प्रकार की कसरत जो हाथ पैर के पंजों के बल औंधे होकर की जाती है।

क्रि० प्र०—करना।—पेलना।—मारना।—लगाना।

यौ०—दंडपेल। चक्रदंड।

४. भूमि पर औंधे लेटकर किया हुआ प्रणाम। दंडवत्।

यौ०—दंड प्रणाम।

५ एक प्रकार व्यूह। दे० 'दंडव्यूह'। ६ किसी अपराध के प्रति-कार में अपराधी को पहुँचाई हुई पीड़ा या हानि। कोई भूल चूक या बुरा काम करनेवाले के प्रति वह कठोर व्यवहार जो उसे ठीक करने या उसके द्वारा पहुँची हुई हानि को पूरा कराने के लिये किया जाय। शासन और परिशोध की व्यवस्था। सजा। तदारुक।

विशेष—राज्य चलाने के लिये साम दान, भेद और दंड ये चार नीतियाँ शास्त्र मे कही गई हैं। अपने देश मे प्रजा के शासन के लिये जिस दंडनीति का राजा आश्रय लेता है उसका विस्तृत

वर्णन स्मृति ग्रंथो मे है। ऐसे दंड को तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं—उत्तम साहस (भारी दंड, जैसे, वध, सर्वस्वहरण, देश-निकाला, अंगच्छेद इत्यादि), मध्यम साहस और प्रथम साहस। अग्निपुराण तथा अर्थशास्त्र में अन्य देशो के प्रति काम मे लाई जानेवाली दंडविधि का भी उल्लेख है; जैसे, लुटना, आग लगाना, आघात पहुँचाना, बस्ती उजाड़ना इत्यादि।

७ अर्थदंड। वह धन जो अपराधी से किसी अपराध के कारण लिया जाय। जुरमाना। डाँड़।

क्रि० प्र०—लगाना।—देना।—लेना।

मुहा०—दंड डालना = (१) जुरमाना करना। अर्थदंड लगाना। (२) कर लगाना। महसूल लगाना। दंड पड़ना = हानि होना। नुकसान होना। घाटा होना। जैसे,—घड़ी किसी काम की न निकली, उसका रुपया दंड पड़ा। दंड भरना = (१) जुरमाना देना। (२) दूसरे के नुकसान को पूरा करना। दंड भोगना या भुगताना = (१) सजा अपने ऊपर लेना। दंड सहना। (२) जान बूझकर व्यर्थ कष्ट उठाना। दंड सहना = नुकसान उठाना। घाटा सहना।

विशेष—स्मृतियों में अर्थदंड की भी तीन श्रेणियाँ हैं,—प्रथम साहस ढाई सौ पण तक, मध्यम साहस पाँच सौ पण तक और उत्तम साहस एक हजार पण तक।

८ दमन। शासन। वश। शमन।

विशेष—सन्यासियो के लिये तीन प्रकार के दंड रखे गए हैं,—(१) वाग्दंड—वाणी को वश मे रखना; (२) मनोदंड—मन को चचल न होने देना, अधिकार में रखना और (३) कायदंड—शरीर को कष्ट का अभ्यास कराना। सन्यासियों का त्रिदंड इन्हीं तीन दंडो का सूचक चिह्न है।

९ ध्वजा या पताका का बाँस। १० तराजू की डंडी। डाँड़ी। ११. मथानी। १२. किसी वस्तु (जैसे, करछी, चम्मच आदि) की डंडी। १३ हल की लंबी लकडी। हल में लगनेवाली लंबी लकडी। हरिस। १४ जहाज या नाव का मस्तूल। १५ एक योग का नाम। १६ लबाई की एक माप जो चार हाथ की होती थी। १७ हरिवंश पुराण के अनुसार इक्ष्वाकु राजा के सौ पुत्रों में से एक जिनके नाम के कारण दंड-कारण्य नाम पडा। वि० दे० 'दंडक'—४। १८ कुबेर के एक पुत्र का नाम। १९ (दंड देनेवाला) यम। २०. विष्णु। २१ शिव। २२ सेना। फौज। २३ अश्व। घोड़ा। २४. साठ पल का काल। चौबीस मिनट का समय। २५. वह आँगन जिसके पूर्व और उत्तर कोठरियाँ हो। २६ सूर्य का एक पार्श्वचर। सूर्य का एक अनुचर (को०)। २७ गर्व। घमंड। अभिमान (को०)। २८ वाद्य बजाने की एक प्रकार की लकडी (को०)। २९ कमल की नाल। जैसे, कमलदंड। ३१ राजा के हाथ का दंड जो शासन का प्रतीक होता है (को०)। ३२. डाँड। पतवार (को०)।

दंडऋण—संज्ञा पुं० [सं० दण्डऋण] वह ऋण जो सरकारी जुरमाना देने के लिये लिया गया हो।

दंडकंदक—संज्ञा [सं० दण्डकन्दक] धरणी कंद। सेमर का मुसला।

दंडक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] १ डंडा। २ दंड देनेवाला पुरुष। शासक। ३ छंदो का एक वर्ग। वह छंद जिसमें वर्णों की संख्या २६ से अधिक हो।

विशेष—दंडक दो प्रकार का होता है, एक गणात्मक, दूसरा मुक्तक। गणात्मक वह है जिसमे गणों का बंधन होता है अर्थात् किस गण के उपरात फिर कौन सा गण आना चाहिए, इसका नियम होता है। जैसे, कुसुमस्तक, त्रिभंगी, नीलचक्र इत्यादि। उ०—(नीलचक्र)। जानि कै समै भुवाल, रामराज साज साजि ता समै अकाज काज कैकई जु कीन। भूप तें हराय बैन राम सीय बंधु युक्त बोलिकै पठाय वेगि कानने सुदीन। —(शब्द०)। मुक्तक वह है जिसमें केवल अक्षरों की गिनती होती है अर्थात् जो गणों के बधन से मुक्त होता है। किसी किसी मे कहीं कहीं लघु गुरु का नियम होता है। हिंदी काव्य में जो कवित्त (मनहर) और घनाक्षरी छंद अधिक व्यवहृत हुए हैं वे इसी मुक्तक के अंतर्गत हैं। उ०—(मनहर कवित्त)। आनंद के कंद जग ज्यावन जगतवंद दशरथनंद के निबाहेई निबहिए। कहै पद्माकर पवित्र पन पालिबे कौं चौरे, चक्रपाणि के चरित्रन कौं चहिए। —पद्माकर ग्रं०, पृ० २३८।

४. इक्ष्वाकु राजा के पुत्र का नाम।

विशेष—ये शुक्राचार्य के शिष्य थे। इन्होंने एक बार गुरु की कन्या का कौमार्य भंग किया। इसपर शुक्राचार्य ने शाप देकर इन्हे इनके पुर के सहित भस्म कर दिया। इनका देश जगल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा।

५. दंडकारण्य। ६ एक प्रकार का वातरोग जिसमे हाथ, पैर, पीठ, कमर आदि अंग स्तब्ध होकर ऐंठ से जाते हैं। ७ शुद्ध राग का एक भेद। ८ हल में लगनेवाली एक लंबी लकड़ी। हरिस (को०)।

दंडकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकर्मन्] दंड देने का काम। दंड। सजा [को०]।

दंडकल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकल] एक छंद का नाम जिसमें तीस मात्राएँ होती हैं [को०]।

दंडकला—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डकला] एक छंद जिसमें १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। इसमें जगण न आना चाहिए। जैसे—फल फूलनि ल्यावै, हरिहिं सुनावै, है या लायक भोगन को। अस सब गुन पूरी, स्वादन रूरी, हरनि अनेकन रोगन को।

दंडका—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डका] दंडक वन। दंडकारण्य [को०]।

दंडकाक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकाक] काला और बड़े आकारवाला कौआ। डोम कौआ [को०]।

दंडकारण्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] वह प्राचीन वन जो

विंध्य पर्वत से लेकर गोदावरी के किनारे तक फैला था। इस वन में श्रीरामचंद्र वनवास के काल में बहुत दिनों तक रहे थे। यहीं शूर्पणखा के नाक कान कटे थे और सीताहरण हुआ था।

दंडकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डकी] ढोलक।

दंडखेदी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डखेदिन्] वह मनुष्य जो राज्य से दंड पाने के कारण कष्ट में हो। दंड से दुःखी व्यक्ति।

विशेष—प्राचीन काल मे भिन्न भिन्न अपराधों के लिये हाथ पैर काटने, अंग जलाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहते थे। कौटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की भी व्यवस्था की थी।

दंडगौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डगौरी] एक अप्सरा का नाम।

दंडग्रहण—संज्ञा पुं० [सं० दण्डग्रहण] संन्यास आश्रम जिसमें दंड ग्रहण करने का विधान है।

दंडघ्न—संज्ञा पुं० [सं० दण्डघ्न] १. डंडे से मारनेवाला। दूसरे के शरीर पर आघात पहुँचानेवाला। २ दंड को न माननेवाला। राजा या शासन जिस दंड की व्यवस्था करे उसका भंग करनेवाला।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि चोर, परस्त्रीगामी, दुष्ट वचन बोलनेवाले, साहसिक, दंडघ्न इत्यादि जिस राजा के पुर में न हों वह इंद्रलोक को पाता है।

दंडचारी—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेनापति (कौटि०)। २ सेना का एक विभाग (को०)।

दंडछदन—संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा जिसमें विभिन्न प्रकार के बर्तन रखे जाते हैं [को०]।

दंडढक्का—संज्ञा पुं० [सं० दण्डढक्का] दमामा। नगाड़ा। धौंसा।

दंडताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डताम्री] वह जलतरंग बाजा जिसमें ताँबे की कटोरियाँ काम में लाई जाती हैं।

दंडदास—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदास] वह जो दंड का रुपया न दे सकने के कारण दास हुआ हो। वह जो जुरमाने का रुपया नौकरी करके चुकाता हो।

दंडदेवकुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदेवकुल] न्यायालय। अदालत [को०]।

दंडदेवार—वि० [सं० दण्ड + हिं० देवार = देनेवाला] दंड देनेवाला। क्षमताशाली। उ०—समर सिंघ मेवार दंडदेवार अजर जर। दीली पत्ति अनंग लरन अङ्गौ सुलोह लरि।—पृ० रा०, ७।२४।

दंडधर[1]—वि० [सं० दण्डधर] डंडा रखनेवाला।

दंडधर[2]—संज्ञा पुं० १ यमराज। २ शासनकर्ता। ३. संन्यासी। ४ छड़ी बरदार। द्वाररक्षक। उ०—जहाँ बूढ़े करणिक, दंडधर, कंचुकी और वाहक तत्परता से इधर उधर घूमते।—दै० न० पृ० ६४।

दंडधार[1]—वि० [सं० दण्डधार] डंडा रखनेवाला।

दंडधार[2]—संज्ञा पुं० १ यमराज। २ राजा। ३ एक राजा का नाम जो महाभारत मे दुर्योधन की ओर था और अर्जुन से लड़कर मारा गया था। ४ पांचालवंशीय एक योद्धा जो पांडवों की ओर से लड़ा था और कर्ण के हाथ से मारा गया था।

दंडधारण—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डधारण] कौटिल्य के अनुसार वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध और शासन के लिये सेना रखनी पड़े।

दंडधारी—वि० संज्ञा पुं० [सं० दण्डधारिन्] दे० दंडधर [को०]।

दंडन—संज्ञा पुं० [सं० दण्डन] [वि० दंडनीय, दंडित, दंड्य] दंड देने की क्रिया। शासन।

दंडना(पु)—क्रि० स० [सं० दण्डन] दंड देना। शासित करना। सजा देना। उ०—मुशल मुग्दर हनत, त्रिविध कर्मनि गनत, मोहि दंडत धर्मदूत हारे।—सूर (शब्द०)।

दंडनायक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डनायक] १. सेनापति। २. दंड-विधान करनेवाला राजा या हाकिम। ३. सूर्य के एक अनुचर का नाम।

दंडनीति—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डनीति] १ दंड देकर अर्थात् पीड़ित करके शासन में रखने की राजाओं की नीति। सेना आदि के द्वारा बलप्रयोग करने की विधि। २. दुर्गा का एक रूप (को०)

दंडनीय—वि० [सं० दण्डनीय] दंड देने योग्य।

दंडनेता—संज्ञा पुं० [सं० दण्डनेतृ] १. नृप। राजा। २. यमराज। ३. हाकिम [को०]।

दंडप—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप] नरेश। राजा [को०]।

दंडपांशुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपांशुल] दंडधर। छड़ी बरदार। द्वारपाल [को०]।

दंडपांसुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपांसुल] दे० 'दंडपांशुल'।

दंडपाणि—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाणि] १ यमराज। २ काशी में भैरव की एक मूर्ति।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि पूर्णभद्र नामक एक यक्ष को हरिकेश नाम का एक पुत्र था जो महादेव का बड़ा भक्त था। एक बार जब इसने घोर तप किया तब महादेव पार्वती सहित इसके पास आए और बोले तुम काशी के दंडधर हो। वहाँ के दुष्टों का शासन और साधुओं का पालन करो। सभ्रम और उद्भ्रम नाम के मेरे दो गण तुम्हारी सहायता के लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। बिना तुम्हारी पूजा किए कोई काशी में मुक्ति नहीं पा सकेगा।

३ पुलिस। नगररक्षक कर्मचारी (को०)।

दंडपात—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपात] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी को नींद नहीं आती और वह इधर उधर पागल की तरह घूमता है।

दंडपारुष्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपारुष्य] १ मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट के मतानुसार दूसरे के शरीर पर हाथ, डंडे आदि से आघात करने, धूल मैला आदि फेंकने का दुष्ट कार्य। मार पीट। २ राजाओं के सात व्यसनों में से एक।

दंडपाल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाल] दे० 'दंडपालक'।

दंडपालक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपालक] १ ड्योढ़ीदार। दरबान। द्वारपाल। २ एक प्रकार की मछली। दाँड़िका मछली।

दंडपाशक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशक] १. दंड देनेवाला प्रधान कर्मचारी। २ घातक। जल्लाद।

दंडपाशिक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशिक] पुलिस का अधिकारी। उ०—पाल, परमार, गहड़वाल तथा प्रतिहार लेखों में पुलिस अधिकारी के लिये दांडिक, दंडपाशिक या दंडशक्ति का प्रयोग किया गया है।—पू० म० भा०, पृ० ११०।

दंडप्रणाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] भूमि में डंडे के समान पड़कर प्रणाम करने की मुद्रा। दंडवत्। सादर अभिवादन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दंडप्रनाम(५)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] दे० 'दंडप्रणाम'। उ०—दंडप्रनाम करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे।—मानस, २। २०५।

दंडबालधि—संज्ञा पुं० [सं० दण्डबालधि] हाथी।

दंडभंग—संज्ञा पुं० [सं० दण्डभङ्ग] शासन या आदेश का उल्लघन। दंडाज्ञा का व्यवहार न होना [को०]।

दंडभय—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + भय] दंड या सजा का डर।

दंडभृत्[1]—वि० [सं० दण्डभृत्] डंडा रखनेवाला। डंडा चलाने या घुमानेवाला।

दंडभृत्[2]—संज्ञा पुं० १. कुम्हार। कुंभकार। २ यमराज (को०)।

दंडमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमत्स्य] एक प्रकार की मछली जो देखने में डंडे या साँप के आकार की होती है। बाम मछली।

दंडमाणव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाणव] दे० 'दंडमानव'।

दंडमाथ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाथ] सीधा रास्ता। प्रधान पथ।

दंडमान(५)—वि० [सं० दण्ड + हिं० मान (प्रत्य०)] दंड पाने योग्य। सजा के लायक। दंडनीय। उ०—अदंडमान दीन गर्व दंडमान भेदवै।—केशव (शब्द०)।

दंडमानव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमानव] वह जिसे दंड देने की अधिक आवश्यकता पड़ती हो। बालक। लड़का।

दंडमुख—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमुख] सेनानायक। सेनापति [को०]।

दंडमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डमुद्रा] १ तंत्र की एक मुद्रा जिसमें मुट्ठी बाँधकर बीच की उँगली ऊपर को खड़ी करते हैं। २ साधुओं के दो चिह्न दंड और मुद्रा।

दंडयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डयात्रा] सेना की चढ़ाई। २ दिग्विजय के लिये प्रस्थान। ३. वरयात्रा। बारात।

दंडयाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डयाम] १ यम। २. दिन। ३. अगस्त्य मुनि।

दंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डरी] एक प्रकार की ककड़ी। डंगरी फल।

दंडवत्—संज्ञा पुं०। स्त्री० [सं० दण्डवत्] साष्टांग प्रणाम। पृथ्वी पर लेटकर किया हुआ नमस्कार।

दंडवत(५)—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आशिरबाद विप्र वर दीन्हा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पूरब में इस शब्द को पुल्लिंग बोलते हैं पर दिल्ली की ओर यह शब्द स्त्रीलिंग बोला जाता है।

दंडवध—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवध] प्राणदंड। फाँसी की सजा।

दंडवासी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवासिन्] १. द्वारपाल। दरवान। २. गाँव का हाकिम या मुखिया।

दंडवाही—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवाहिन्] राजा की ओर से नगररक्षा विभाग का व्यक्ति। पुलिस का कर्मचारी [को०]।

दंडविकल्प—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविकल्प] निर्धारित दो प्रकार के दंड (जुरमाना या सजा) में से किसी एक को चुन लेने की छूट [को०]।

दंडविधान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविधान] दे० 'दंडविधि'।

दंडविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डविधि] अपराधों के दंड से संबंध रखनेवाला नियम या व्यवस्था। जुर्म और सजा का कानून।

दंडविष्कंभ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविष्कम्भ] वह खंभा जिसमें दही दूध मथने की रस्सी बाँधी जाय [को०]।

दंडवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवृक्ष] थूहर। सेंहुड़।

दंडव्यूह—संज्ञा पुं० [सं० दण्डव्यूह] १. सेना की डंडे के आकार की स्थिति।

विशेष—इस व्यूह में आगे बलाध्यक्ष, बीच में राजा, पीछे सेनापति, दोनों ओर से हाथी, हाथियों की बगल में घोड़े और घोड़ों की बगल में पैदल सिपाही रहते थे। मनुस्मृति में इस व्यूह का उल्लेख है। अग्निपुराण में इसके सर्वतोवृत्ति, तिर्यग्वृत्ति आदि अनेक भेद बतलाए गए हैं।

२. कौटिल्य के अनुसार पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में सेना की समान स्थिति।

दंडशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + शास्त्र] दंड देने का विधान या कानून [को०]।

दंडसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डसन्धि] कौटिल्य के अनुसार वह संधि जो सेना या लड़ाई का सामान लेकर की जाय। अपने से कम शक्ति या बलवाले राजा से धन लेकर की जानेवाली संधि।

दंडस्थान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डस्थान] १. वह स्थान जहाँ दंड पहुँचाया जा सकता है।

विशेष—मनु ने दंड के लिये दस स्थान बतलाए हैं—(१) उपस्थ, (२) उदर, (३) जिह्वा, (४) दोनों हाथ, (५) दोनों पैर, (६) आँख, (७) नाक, (८) कान, (९) धन और (१०) देह। अपराध के अनुसार राजा नाक, कान आदि काट सकता है या धन हरण कर सकता है।

२. कौटिल्य के मत से वह जनपद या राष्ट्र जिसका शासन केंद्र द्वारा होता हो।

दंडहस्त—संज्ञा पुं० [सं० दण्डहस्त] १ तार का फूल। २. द्वाररक्षक। द्वारपाल (को०)। ३ यमराज (को०)।

दंडा—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] दे० 'डंडा'।

दंडाकरन(५)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दे० 'दंडकारण्य'।

उ०—परे आइ बन परवत माहाँ। दंडाकरन बीझ बन जाहाँ।—जायसी (शब्द०)।

दंडाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाक्ष] महाभारत के अनुसार चंपा नदी के किनारे का एक तीर्थ।

दंडाख्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाख्य] बृहत्संहिता के अनुसार वह भवन जिसके दो पार्श्व में से एक उत्तर और दूसरा पूर्व की ओर हो।

दंडाजिन—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाजिन] १ साधु संन्यासियों के धारण करने का दंड और मृगचर्म। २. झूठमूठ का आडंबर। धोखेबाजी का ढकोसला। कपटवेश।

दंडादंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डादण्डि] डंडों की मारपीट। लट्ठबाजी। लाठी की लड़ाई।

दंडाधिप—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अधिप] दंड देने का प्रमुख अधिकारी [को०]।

दंडाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड+अध्यक्ष] दंडाधिकारी। न्यायाधीश। उ०—दंडाध्यक्ष या प्राचीन न्यायकरणिक का उल्लेख नहीं मिलता।—पू० म० भा०, पृ० १०८।

दंडानीक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अनीक] सेना की टुकड़ी या विभाग [को०]।

दंडापतानक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अपतानक] एक प्रकार की वातव्याधि जिसमें कफ और वात के बिगड़ने से मनुष्य का शरीर सूखे काठ की तरह जड़ हो जाता है। उ०—देह को दंड के समान तिरछा कर दे यह दंडापतानक कष्ट साध्य है।—माधव०, पृ० १३८।

दंडापूपन्याय—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अपूपन्याय] एक प्रकार का न्याय या दृष्टांत कथन जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जब किसी के द्वारा कोई बहुत कठिन कार्य हो गया तब उसके साथ ही लगा हुआ सहज और सुखकर कार्य अवश्य ही हुआ होगा। जैसे, यदि डंडे में बँधा हुआ अपूप अर्थात् मालपूआ कहीं रखा हो और पीछे मालूम हो कि डंडे को चूहे खा गए तो यह अवश्य ही समझ लेना चाहिए कि चूहे मालपूए को पहले ही खा गए होंगे।

दंडायमान—वि० [सं० दण्डायमान] डंडे की तरह सीधा खड़ा। खड़ा। उ०—यह कौतुक देखने के उपरांत विष्णु महाराज देवी की स्तुति करने को दंडायमान हुए। हे महामाया! सच्चिदानंदरूपिणी। मैं तुमको नमस्कार करता हूँ।—कबीर म० पृ० २१४।

क्रि० प्र०—होना।

दंडार—संज्ञा पुं० [सं० दण्डार] १ धनुष। २ मदगल हाथी। ३. नाव। ४ स्यंदन। रथ। ५ कुम्हार का चाक [को०]।

दंडार्ह—संज्ञा पुं० [सं० दण्डार्ह] दंड देने योग्य। दंडभागी। दंड पाने योग्य [को०]।

दंडालय—संज्ञा पुं० [सं० दण्डालय] १ न्यायालय जहाँ से दंड का विधान हो। २. वह स्थान जहाँ दंड दिया जाय। जैसे, जेलखाना। ३ एक छंद जिसे दंडकला भी कहते हैं। दे० 'दंडकला'।

दंडालसिका—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अलसिका] हैजा। कालरा [को०]।

दंडावतानक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अवतानक] दे० 'दंडापतानक' [को०]।

दंडाहत[1]—वि० [सं० दण्डाहत] डंडे से मारा हुआ।

दंडाहत[2]—संज्ञा पुं० छाछ। मट्ठा।

दंडिक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिक] १. नगररक्षक कर्मचारी। २. दंडधर। छड़ी बरदार। ३ एक प्रकार का मत्स्य [को०]।

दंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिका] १ बीस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में एक रगण के उपरांत एक जगण, इस प्रकार गणों का जोड़ा तीन बार आता है और अंत में गुरु लघु होता है। इसे वृत्त और गंडका भी कहते हैं। जैसे,—रोज रोज राजगैल तें लिए गुपाल ग्वाल तीन सात। वायु सेवनार्थ प्रात बाग जात आव लै सुफूल पात। २ यष्टिका। छड़ी (को०)। ३ कतार। पंक्ति (को०)। ४ रज्जु। डोरी (को०)। ५ मोती की लर, हार आदि (को०)।

दंडित—वि० पुं० [सं० दण्डित] दंड पाया हुआ। जिसे दंड मिला हो। सजायाफ्ता। २. जिसका शासन किया गया हो। शासित। उ०—पंडित गण मंडित गुण दंडित मति देखिए।—केशव (शब्द०)।

दंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिनी] दडोत्पला। एक प्रकार का साग।

दंडिमुंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिमुण्ड] शिव का एक नाम [को०]।

दंडी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिन्] १ दंड धारण करनेवाला व्यक्ति। २ यमराज। ३ राजा। ४ द्वारपाल। ५. वह संन्यासी जो दंड और कमंडलु धारण करे।

विशेष—ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी को दंडी होने का अधिकार नहीं है। यद्यपि पिता, माता, स्त्री, पुत्र आदि के रहते भी दंड लेने का निषेध है, तथापि लोग ऐसा करते हैं। मंत्र देने के पहले गुरु शिष्य होनेवाले के सब संस्कार (अन्नप्राशन आदि) फिर से करते हैं। उसकी शिखा मुँड़ दी जाती है और जनेऊ उतारकर भस्म कर दिया जाता है। पहला नाम भी बदल दिया जाता है। इसके उपरांत दशाक्षर मंत्र देकर गुरु गेरुवा वस्त्र और दंड कमंडलु देते हैं। इन सबको गुरु से प्राप्त कर शिष्य दंडी हो जाता है और जीवनपर्यंत कुछ नियमों का पालन करता है। दंडी लोग गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, सिर मुड़ाए रहते हैं और कभी कभी भस्म और रुद्राक्ष भी धारण करते हैं। दंडी लोग अग्नि और धातु का स्पर्श नहीं करते, इससे अपने हाथ से रसोई नहीं बना सकते। किसी ब्राह्मण के घर से पका भोजन माँगकर खा सकते हैं। दंडियों के लिये दो बार भोजन करने का निषेध है। इन सब नियमों का बारह वर्ष तक पालन करके अंत में दंड को जल में फेंककर दंडी परमहंस आश्रम को प्राप्त करता है। दंडियों के लिये निर्गुण ब्रह्म की उपासना की व्यवस्था है। जिनसे यह उपासना न हो सके वे शिव आदि की उपासना

कर सकते हैं। मरने पर दंडियों के शव का दाह नहीं होता, या तो शव मिट्टी में गाड दिया जाता है या नदी में फेंक दिया जाता है। काशी में बहुत से दंडी दिखाई पडते हैं।

६. सूर्य के एक पार्श्वचर का नाम। ७ जिन देव। ८. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ९. दमनक वृक्ष। दौने का पौधा। १०. मजुश्री। ११. शिव। महादेव। १२. नाविक। केवट (को०)। १३. संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जिनके बनाए हुए दो ग्रंथ मिलते हैं 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श'। ऐसा प्रसिद्ध है कि दंडी ने तीन ग्रंथ लिखे थे दशकुमारचरित (गद्यकाव्य) काव्यादर्श (लक्षण ग्रंथ) और अवंतिसुंदरी कथा, पर तीसरे का पता बहुत दिनों तक नहीं लगा था। इधर उक्त ग्रंथ प्राप्त हो गया है और प्रकाशित भी है। अनेक लोगों का मत है कि ईसा की छठी शताब्दी मे दंडी हुए थे। 'शंकर-दिग्विजय मे 'बाणमयूरदंडि मुख्यान्' से ज्ञात होता है कि ये बाण और मयूर के समकालीन थे। इतना तो निश्चय है कि ये कालिदास और शूद्रक आदि के पीछे के हैं। इनकी वाक्य-रचना आडंबरपूर्ण है।

दंडोत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत'। उ०—वंदन सबही सुरन को विधि हू को दंडोत। कर्मन को फल देतु हैं इनको कहा उदोत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ७२।

दंडोत्पल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डोत्पल] एक पौधे का नाम जिसे कुछ लोग गुमा, कुछ लोग कुकरौंधा और कुछ लोग बडी सहदेया समझते हैं।

दंडोत्पला—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डोत्पला] दे० 'दंडोत्पल'।

दंडोपनत—वि० [सं० दण्ड + उपनत] कौटिल्य के अनुसार पराजित और अधीन (राजा)।

दंडौत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—सनमुप अंजुलि जोड करी दंडौत सवन कहुं। कुसुमंजलि सिर मंडि धूप नैवेद समुद्द लहुं।—पृ० रा०, ६।१५८।

दंड्य—वि० [सं० दण्ड्य] दंड पाने योग्य। जिसे दंड देना उचित हो।

दंत—संज्ञा पुं० [सं० दन्त] १ दाँत। उ०—दंत कवाड्या नहु रँग्या। चालउ सखी होली खेलवा जाई।—बी० रासो, पृ० ६८।

यौ०—दंतकथा। दंत चिकित्सक = दाँत की चिकित्सा करनेवाला। दंतचिकित्सा = दाँत का इलाज।

२ ३२ की संख्या। ३ गाँव के हिस्सों में बहुत ही छोटा हिस्सा जो पाई से भी बहुत कम होता है। (कौडियों में दाँत के चिह्न होते हैं इसी से यह संख्या बनी है)। ४ कुंज। ५. पहाड की चोटी। ६ बाण का सिरा या नोक (को०)। ७ हाथी का दाँत (को०)।

यौ०—दंतकार।

दंतक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक] १ दाँत। २. पहाड की चोटी। ३. पहाड़ से निकलनेवाला एक प्रकार का पत्थर। ४ दीवाल में लगी हुई खूँटी (को०)।

दंतकथा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तकथा] ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से लोग एक दूसरे से सुनते चले आए हों, तथा जिसका कोई और पुष्ट प्रमाण न हो। सुनी सुनाई बात। अनुश्रुति। उ०—इति वेद वदति न दंतकथा। रवि आतप भिन्न न भिन्न यथा।—तुलसी (शब्द०)।

दंतकर्षण—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकर्षण] जमीरी नीबू।

दंतकार—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकार] १ वह व्यक्ति जो हाथीदाँत का काम करता हो। २ दाँत बनानेवाला शिल्पी। दंत चिकित्सक डाक्टर।

दंतकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकाष्ठ] दतुवन। दतून। मुखारी।

दंतकाष्ठक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकाष्ठक] आहुल्य वृक्ष। तरवट का पेड।

दंतकुली†—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त + कुल (= समुदाय)] दाँतों की पंक्ति। उ०—दंतकुली अगुली करी कोपरी कपालों। बीच बेत विथरी, फरी विहूरी किरमालों।—रा० रू०, पृ० २५१।

दंतकूर—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकूर] युद्ध। संग्राम।

दंतक्षत—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] कामशास्त्र के अनुसार कामकेलि में नायक नायिका द्वारा प्रेमोन्माद में एक दूसरे के अधर और कपोल मे लगा हुआ दाँत काटने का चिह्न। दाँत काटने का निशान (को०)।

दंतघर्ष—संज्ञा पुं० [सं० दन्तघर्ष] दाँत पर दाँत दबाकर घिसने की क्रिया। दाँत किरकिराना।

विशेष—निद्रा की अवस्था में बच्चे कभी कभी दाँत किरकिराते हैं जिसे लोग अशुभ समझते हैं। रोगी के पक्ष में यह और भी बुरा समझा जाता है।

दंतघात—संज्ञा पुं० [सं० दन्तघात] दे० 'दंताघात'

दंतच्छद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तच्छद] ओष्ठ। ओंठ।

दंतच्छदोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तच्छदोपमा] विंबाफल। कुँदरू।

दंतछत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतछद¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दन्तच्छद] दंतच्छद।

दंतछद²—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतजात—वि० [सं० दन्तजात] १ (बच्चा) जिसे दाँत निकल आए हों। २ दाँत निकलने योग्य (काल)।

विशेष—गर्भोपनिषद् में लिखा है कि बच्चे को सातवें महीने में दाँत निकलना चाहिए। यदि उस समय दाँत न निकलें तो अशौच लगता है।

दंतजाह—संज्ञा पुं० [सं० दन्तजाह] दाँतो की जड़ (को०)।

दंतताल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तताल] एक प्रकार का प्राचीन बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

दंतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तदर्शन] क्रोध या चिडचिडाहट में दाँत निकालने की क्रिया।

विशेष—महाभारत (वन पर्व) में लिखा है कि युद्ध में पहले दाँत दिखाए जाते हैं फिर शब्द करके वार किया जाता है।

दंतधाव—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधाव] दे० 'दंतधावन' (को०)।

दंतधावन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधावन] १. दाँत धोने या साफ करने

का काम। दातुन करने की क्रिया। २ दतौन। दातुन। ३ खैर का पेड़। खदिर वृक्ष। ४. करज का पेड़। ५ मौलसिरी।

दंतपत्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्र] कान का एक गहना।

विशेष—संभवत जो हाथी दाँत का बनता रहा हो।

दंतपत्रक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्रक] १. कुंद पुष्प। २. कान का एक आभूषण। दतपत्र (को०)।

दंतपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपत्रिका] १ कान का एक आभूषण। २. कुद का पुष्प। ३. कंघी [को०]।

दंतपवन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपवन] दाँत शुद्ध करने की क्रिया। दंतधावन। २. दतुवन। दातन।

दंतपांचालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाञ्चालिका] हाथीदाँत की बनी पुतली [को०]।

दंतपात—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपात] दाँतों का गिरना [को०]।

दंतपार—संज्ञा स्त्री० [हि० दंत+उपारना] दाँत की पीड़ा। दाँत का दर्द।

दंतपालि—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपालि] तलवार की मूठ। तलवार का कब्जा या दस्ता [को०]।

दंतपाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाली] दाँत की जड़। मसूड़ा [को०]।

दंतपुप्पुट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुप्पुट] मसूड़ों का एक रोग, जिसमें वे सूज जाते हैं और दर्द करते हैं।

दंतपुर—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुर] प्राचीन कलिंग राज्य का एक नगर जहाँ पर राजा ब्रह्मदत्त ने बुद्धदेव का एक दंत स्थापित करके उसके ऊपर एक बड़ा मंदिर बनवाया था।

विशेष—यह दंतपुर कहाँ था, इसके संबंध में मतभेद है। डाक्टर राजेंद्रलाल का मत है कि मेदिनीपुर जिले में जलेश्वर से छह कोस दक्खिन जो दाँतन नामक स्थान है वही बौद्धों का प्राचीन दंतपुर है। सिंहली बौद्धों के 'दाठावंश' नामक ग्रंथ में दंतपुर के संबंध में बहुत सा वृत्तांत दिया हुआ है।

दंतपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुष्प] १ कतक। निर्मली। २ कुंद का फूल।

दंतप्रक्षालन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रक्षालन] दे० 'दंतपवन' [को०]।

दंतप्रवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रवेष्ट] हाथी के दाँत का आवरण [को०]।

दंतफल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तफल] १. कतक फल। निर्मली। २ कपित्थ। कैथ।

दंतफला—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तफला] पिप्पली।

दंतबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीज] वह जिसके बीज दाँत के सदृश हों। दाड़िम। अनार [को०]।

दंतबीजक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीजक] दे० 'दंतबीज' [को०]।

दंतभाग—संज्ञा पुं० [सं० दन्तभाग] १ हाथी के सिर का वह अग्र भाग जहाँ से उसके दाँत निकलते हैं। २ दाँतों का हिस्सा [को०]।

दंतमध्य—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमध्य] दे० 'दंतांतर' [को०]।

दंतमांस—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमांस] मसूड़ा।

दंतमूल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमूल] १. दाँत की जड़। २. दाँत का एक रोग।

दंतमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तमूलिका] दंती वृक्ष। जमालगोटे का पेड़।

दंतमूलीय—वि० [सं० दन्तमूलीय] दंतमूल से उच्चारण किया जानेवाला (वर्ण)। जैसे, तवर्ग।

विशेष—व्याकरण के अनुसार स्वर वर्ण लृ और त, थ, द, ध, न तथा ल और स व्यंजन दंतमूलीय कहे जाते हैं।

दंतलेखक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखक] दाँतों को रँगने का व्यवसाय करके अपनी जीविका अर्जित करनेवाला व्यक्ति [को०]।

दंतलेखन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखन] एक अस्त्र जिससे दाँत की जड़ के पास मसूड़ों को चीरकर मवाद आदि निकालते हैं जिससे दाँत की पीड़ा दूर होती है। दंतशर्करा नामक रोग में इस अस्त्र का प्रयोजन होता है।

दंतवक्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवक्र] करुष देश का राजा, जो वृद्धशर्मा का पुत्र था। यह शिशुपाल का भाई लगता था और श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था।

दंतवर्ण—वि० [सं० दन्तवर्ण] चमकदार। ओपदार।

दंतवल्क—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवल्क] दाँत की जड़ के ऊपर का मांस। मसूड़ा।

दंतवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवस्त्र] ओष्ठ। ओंठ।

दंतवीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवीज] अनार।

दंतवीणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तवीणा] १ वाद्यविशेष। एक प्रकार का बाजा। २. (शीतादि के कारण) दाँतों का बजना [को०]।

यौ०—दंतवीणोपदेशाचार्य = शीत या ठंढक जिसके कारण दाँत बजने लगते हैं।

दंतवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवेष्ट] १. हाथी के दाँत के ऊपर का मढ़ा हुआ छल्ला। २ मसूड़ा। ३ दाँतों में होनेवाला एक रोग [को०]।

दंतवैदर्भ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवैदर्भ] दाँत का एक रोग। किसी बाहरी आघात से दाँत का हिलना या टूटना।

दंतशंकु—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशङ्कु] चीर फाड़ का एक औजार जो जौ के पत्तों के आकार का होता था (सुश्रुत)। दाँत को उखाड़ने का यंत्र।

दंतशठ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशठ] १ वे वृक्ष जिनके फल खाने से खटाई के कारण दाँत गुठले हो जायँ। जैसे, कैथ, कमरख, छोटी नारंगी, जंभीरी नीबू, इत्यादि। २ खट्टापन। खटाई।

दंतशठा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशठा] खट्टी नोनिया। अमलोनी। २ चुक। चूक।

दंतशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशर्करा] दाँतों का एक रोग जो मैल जमकर बैठ जाने के कारण होता है।

दंतशाण—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशाण] मिस्सी। स्त्रियों के दाँत पर लगाने का रंगीन मंजन।

दंतशूल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशूल] दाँत की पीड़ा।

दंतशोफ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशोफ] दाँत के मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा। दंतार्बुद।

दंतश्लिष्ट—वि० [सं० दन्तश्लिष्ट] दाँतों में उलझा या चिपका हुआ [को०]।

दंतहर्ष—संज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्ष] दाँतों की वह टीस जो अधिक ठंढी या खट्टी वस्तु लगने से होती है। दाँतों का खट्टा होना।

दंतहर्षक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्षक] जंभीरी नीबू।

दंतहीन—वि० [सं० दन्तहीन] बिना दाँत का। जिसके मुँह में दाँत न हो [को०]।

दंतांतर—संज्ञा पुं० [सं० दन्त+अन्तर] दाँतों के बीच का अंतर या स्थान [को०]।

दंताघात—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताघात] १ दाँत का आघात। २ वह जिससे दाँत को आघात पहुँचे—नीबू।

दंताज—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताज] १ दाँत की जड़ या संधि में पड़नेवाले कीड़े। २. दाँत का रोग जो इन कीड़ों के कारण होता है।

दंतादंति—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तादन्ति] एक दूसरे को दाँत से काटने की क्रिया या लड़ाई।

दंतायुध—संज्ञा पुं० [सं० दन्तायुध] वह जिसका अस्त्र दाँत हो। सूअर। जंगली सूअर।

दंतार¹—वि०[हिं० दाँत+आर (प्रत्य०)] बड़े दाँतोंवाला।

दंतार²—संज्ञा पुं० हाथी।

दंतारा—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० दंतार] दे० 'दंतार'।

दंतार्बुद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तार्बुद] मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा।

दंताल—संज्ञा पुं० [हिं० दन्तार] हाथी।

दंतालय—संज्ञा पुं० [सं० दन्त+आलय] मुख। मुँह [को०]।

दंतालि—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालि] दाँतो की पंक्ति। दाँतों की पाँत [को०]।

दंतालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालिका] लगाम।

दंताली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ताली] लगाम।

दंतावल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तावल] हाथी।

दंतावली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त+अवली] दाँतो की पंक्ति। 'दंतालि' [को०]।

दंताहल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दन्तावल] हाथी।—(डिं०)।

दंति—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] हाथी। उ०—सदा दंति के कुंभ को जो बिदारै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १४२।

दंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिका] दंती। जमालगोटा।

दंतिजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिजा] दंती वृक्ष। दंती [को०]।

दंतिदंत—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिदन्त] हाथीदाँत।

दंतीबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिबीज] जमालगोटा।

दंतिमद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिमद] हाथी का मद। हाथी के गंडस्थल का स्राव [को०]।

दंतियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत+इया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत।

दंतिवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिवक्त्र] हाथी की तरह मुखवाले-गजानन। गणेश [को०]।

दंती—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ती] अंडी की जाति का एक पेड़।

विशेष—दंती दो प्रकार की होती है—एक लघुदंती और दूसरी वृहद्दंती। लघुदंती के पत्ते गूलर के पत्तों के ऐसे होते हैं और वृहद्दंती के एरंड या अंडी के से। इनके बीज दस्तावर होते हैं और जमालगोटे के स्थान पर औषध में काम आते हैं। वैद्यक में दंती, कटु, उष्ण और तृषा, शूल, बवासीर, फोड़े आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है। दंती के बीज अधिक मात्रा में देने से विष का काम करते हैं।

पर्या०—शीघ्रा। निकुंभी। नागस्फोटा। दंतिनी। उपचित्रा। भद्रा। रुक्षा। रेचनी। अनुकूला। निशल्या। विशल्या। मधुपुष्पा। एरंडफला। तरणी। एरंडपत्रिका। विशोधनी। कुंभी। उदुंबरदला। प्रत्यक्पर्णी।

दंती²—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] १ हस्ती। हाथी। गज। उ०—झलते ये श्रुति तालवृंत दंती रह रहकर।—साकेत, पृ० ४१४। २. गणेश। गजानन। ३ पर्वत। ४ सोम। चंद्रमा (को०)। ५. व्याघ्र। मृगाधिप (को०)। ६. क्रोड़। अकोर। गोद (को०)। ७ श्वान। कुत्ता (को०)।

दंती³—वि० दाँतवाला। जिसके दाँत हों [को०]।

दंतुर¹—वि० [सं० दन्तुर] जिसके दाँत आगे निकले हों। दँतुला। दाँतू। २. ऊबड़ खाबड़। नीचा ऊँचा (को०)। ३. खुला हुआ। आवरणरहित (को०)।

दंतुर²—संज्ञा पुं० १ हाथी। २. सूअर।

दंतुरच्छद—संज्ञा पुं० [दन्तुरच्छद] जँभीरी नीबू। बिजौरा नीबू।

दंतुरित—वि० [सं० दन्तुरित] १ आवेष्टित। ढका हुआ। दे० 'दंतुर' [को०]।

दंतुल—वि० [सं० दन्तुल] दे० 'दंतुर' [को०]।

दंतोलूखलिक—संज्ञा पुं० [सं० दन्त+उलूखलिक] एक प्रकार के सन्यासी जो ओखली आदि में कूटा हुआ अन्न नहीं खाते। ये या तो फल खाते हैं या छिलके सहित अनाज के दानों को दाँत के नीचे कुचलकर खाते हैं।

दंतोलूखली—संज्ञा पुं० [सं० दन्त+उलूखलिन्] दे० 'दंतोलूखलिक'।

दंतोष्ठ्य—वि० [सं०] (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत और ओठ से हो।

विशेष—ऐसा वर्ण 'व' है।

दंत्य—वि०[सं० दन्त्य] १. दंत संबंधी। २ (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत की सहायता से हो। जैसे, तवर्ग। ३. दाँतों का हितकारी (औषध)।

दंद¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन, दन्दह्यमान्] किसी पदार्थ से निकलती हुई गरमी, जैसी तपी हुई भूमि पर मेघ का पानी पड़ने से निकलती है या खानों के भीतर पाई जाती है।

क्रि० प्र०—आना।—निकलना।

दंद²—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व प्रा० दंद] १. लड़ाई झगड़ा। उपद्रव। हलचल। २ युद्ध। संघर्ष। संग्राम। उ०—आज हनो जैचंद दंद ज्यों मिटै ततच्छिन।—पृ० रा० ६१।१४६। ३. हुल्ला गुल्ला। शोरगुल। ४ दुःख। मानसिक उथल पुथल। उ०—(क) रोहिनि माता उदर प्रगट भए हरन भक्त के दंद।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१३। (ख) त्यागहु संसय जम कर दंदा। सुभि परहि तब भवजल फंदा।—दरिया० बानी, पृ० ३।

क्रि० प्र०—मचाना।

दंदना(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] दे० 'द्वंद्व'। उ०—फूले पशु पछी सब, देखि ताप कटे तब, फूले सब ग्वाल बाल कटे दुख दंदना —नंद० ग्रं०, पृ० ३७६।

दंदन—वि० [सं० दमन] नाश करनेवाला। दूर करनेवाला। दमन करनेवाला।

दंदश—संज्ञा पुं० [सं० दन्दश] दाँत। दंत (को०)।

दंदशूक¹—संज्ञा पुं० [सं० दन्दशूक] १ सर्प। २ राक्षस विशेष। ३ कीट। कीड़ा (को०)। ४ एक प्रकार का नरक।

दंदशूक²—वि० हिंसक। काटनेवाला (को०)।

दंदहर—वि० [सं० द्वन्द्वहर] द्वंद्व को दूर करनेवाला। मानसिक शांति पहुँचानेवाला। उ०—परसति मंद सुगंध दंदहर विपिन विपिन मैं।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६।

दंदह्यमान—वि० [सं० दन्दह्यमान] दहकता हुआ।

दंदा—संज्ञा पुं० [देश०] ताल देने का एक प्रकार का पुराना बाजा।

ददान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दाँत (को०)।

यौ०—ददानसाज = दंतचिकित्सक। दाँत बनानेवाला।

दंदाना†¹—क्रि० अ० [हिं० दंद] १ गरम लगना। गरमी पहुँचाता हुआ मालुम होना। जैसे, रूई का दंदाना, बंद कोठरी का दंदाना। २ किसी गरम चीज के आसपास होने से गरम होना। जैसे, रजाई या कंबल के नीचे दंदाना।

दंदाना²—संज्ञा पुं० [फ़ा० ददानह्] [वि० दंदानेदार] दाँत के आकार की उभरी हुई वस्तुओं की पंक्ति। शंकु या कँगूरे के रूप में निकली हुई चीजों की कतार, जैसी कंघी या आरे आदि में होती है।

दंदानेदार—वि० [फ़ा०] जिसमें दंदाने हों। जिसमें दाँत की तरह निकले हुए कंगूरों की पंक्ति हो।

दंदारू—संज्ञा पुं० [हिं० दंद + आरू (प्रत्य०)] छाला। फफोला।

दंदी—वि० [सं० द्वन्द्वी, हिं० दंद] झगड़ालु। उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। हुज्जती। उ०—कलिजुग मधे जुग चारि रचीला चूकिला चार विचार। घरि घरि दंदी घरि घरि बादी घरि घरि कथणहार।—गोरख०, पृ० १२३।

दंदु—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] दे० 'द्वंद्व'। उ०—अब हो कठ फाँद गिव चीन्हा। दंदु कै फाँद चाहु का कीन्हा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७०।

दंदुल†—वि० [सं० तुन्दिल] दे० 'तुंदिल'। उ०—विद्याभरी दंदुल पेट उसपर साँप की चपेट। विघन करत है चपेट पकड फेंट काल की।—दक्खिनी०, पृ० ४५।

दंपत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपति'। उ०—छाँड़त ना पल एको अकेले, न पौढ़त हैं परजंक पै दंपत।—नट०, पृ० ३४।

दंपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपती'।

दंपती—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] स्त्री पुरुष का जोड़ा। पति पत्नी का जोड़ा।

दंपा—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमकना] बिजली। उ०—चौंधते चकोर चहूँ ओर जानि चंदमुखी जो न होती डरनि दसन दुति दंपा की।—पूरबी (शब्द०)।

दंभ—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ] [वि० दंभी] १ महत्व दिखाने या प्रयोजन सिद्ध करने के लिये झूठा आडंबर। धोखे में डालने के लिये ऊपरी दिखावट। पाखंड। उ०—आसन मार दंभ धर बैठे मन मे बहुत गुमाना।—कबीर ग्रं०, पृ० ३३८। २ झूठी ठसक। अभिमान। घमंड। ३ शठता। शाठ्य (को०)। ४ शिव का एक नाम (को०)। ५ इंद्र का वज्र (को०)।

दंभक—संज्ञा पुं० [सं० दम्भक] पाखंडी। ढकोसलेबाज। प्रतारक।

दंभन—संज्ञा पुं० [सं० दम्भन] पाखंड करना। ढोंग करना (को०)।

दंभान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ का बहुव०] दे० 'दंभ'।

दंभी—वि० [सं० दम्भिन्] १. पाखंडी। आडंबर रचनेवाला। ढकोसलेबाज। २ झूठी ठसकवाला। अभिमानी। घमंडी।

दंभोलि—संज्ञा पुं० [सं० दम्भोलि] इंद्रास्त्र। वज्र। उ०—मत्त मातंग बल अंग दंभोलि दल काछिनी लाल गजमाल सोहै।—सूर (शब्द०)।

दंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह घाव जो दाँत काटने से हुआ हो। दंतक्षत। २ दाँत काटने की क्रिया। दशन। ३. साँप या और किसी विषैले जंतु के काटने का घाव। जैसे, सर्पदंश। ४ आक्षेपवचन। बौछार। व्यंग्य। कटूक्ति। ५. द्वेष। वैर।

क्रि० प्र०—रखना।

६. दाँत। ७ विषैले जंतुओं का डंक। ८. जोड़। संधि। ग्रंथि (को०)। ९. एक प्रकार की मक्खी जिसके डंक विषैले होते हैं। डाँस। बगदर। उ०—मसक दंश बीते हिम त्रासा।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—वनमक्षिका। गोमक्षिका। भमरालिका। पांशुर। दुष्टमुख। क्रूर।

१० वम। बकतर। ११ एक असुर।

विशेष—इसकी कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है—सत्ययुग मे दंश नामक एक बड़ा प्रतापी असुर रहता था। एक दिन वह भृगु मुनि की पत्नी को हर ले गया। इसपर भृगु ने उसे शाप दिया कि 'तू मल मूत्र का कीड़ा हो जा'। शाप से डरकर जब असुर बहुत गिड़गिड़ाने लगा तब भृगु ने कहा—'मेरे वंश मे जो राम (परशुराम) होंगे वे शाप से तुझे मुक्त करेंगे'। वह असुर शाप के अनुसार कीट हुआ।

कर्ण जब परशुराम से अस्त्रशिक्षा प्राप्त कर रहे थे तब एक दिन कर्ण के जंघे पर सिर रखकर परशुराम सो गए। ठीक उसी समय वह कीड़ा आकर कर्ण की जाँघ में काटने लगा। कर्ण ने गुरु का निद्रा भंग होने के डर से जाँघ नहीं हटाई। जब जाँघ में से रक्त की धारा निकली तब परशुराम की नींद टूटी और उन्होंने उस कीड़े की ओर ताका। उनके ताकते ही उस कीड़े ने उसी रक्त के बीच अपना कीट शरीर छोड़ा और अपने पूर्व रूप में आ गया।

दंशक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो काट खाय। दाँत से काटनेवाला। २. डाँस नाम की मक्खी जो बड़े जोर से काटती है। ३. श्वान। कुत्ता (को०)। ४. मशक। मच्छड़ (को०)।

दंशक²—वि० दंशन करनेवाला।

दंशन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दंशित, दंशी] १. दाँत से काटना। डसना। जैसे, सर्पदंशन। उ०—और पीठ पर हो दुरंत दंशनों का त्रास।—ग्रहुर, पृ० ५६।

क्रि० प्र०—करना।

२. वर्म। बकतर।

दंशना—क्रि० स० [सं० दंश + हिं० ना (प्रत्य०)] काटना। डसना।

दंशनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कीट (को०)।

दंशभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा।

विशेष—भैंसों को मच्छड़ और डाँस बहुत लगते हैं।

दंशभीरुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दंशभीरु' (को०)।

दंशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] सहँजन का पेड़। शोभांजन।

दंशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगुला। बक (को०)।

दंशित—वि० [सं०] १. दाँत से काटा हुआ। २ वर्म से आच्छादित। बकतर से ढका हुआ।

दंशी¹—वि० [सं० दंशिन्] [वि० स्त्री० दंशिनी] १ दाँत से काटनेवाला। डसनेवाला। २ आक्षेप वचन कहनेवाला। कटूक्ति कहनेवाला। ३. द्वेषी। वैर या कसर रखनेवाला।

दंशी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा दंश। छोटा डाँस।

दंशूक—वि० [सं०] डँसनेवाला। डंक मारनेवाला। दंदशूक।

दंशेर—वि० [सं०] १ दे० 'दंशूक'। २. हानिकारक (को०)।

दंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत।

दंष्ट्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मोटे दाँत। स्थूल दाँत। दाढ़। चौभर। २ बिछुआ नाम का पौधा जिसमें रोईंदार फल लगते हैं। वृश्चिकाली।

यौ०—दंष्ट्राकराल = भयंकर दाँतोंवाला। दंष्ट्रादंड = वाराह या शूकर का दाँत। दंष्ट्रानखविष। दंष्ट्रा विष। दंष्ट्राविषा।

दंष्ट्रानखविष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके नख और दाँत में विष हो। जैसे, बिल्ली, कुत्ता, बंदर, मेढक, छिपकली इत्यादि।

दंष्ट्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका अस्त्र दाँत हो। शूकर। सुअर।

दंष्ट्राल¹—वि० [सं०] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दंष्ट्राल²—संज्ञा पुं० १. एक राक्षस का नाम। २. शूकर। वाराह।

दंष्ट्राविष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प। साँप (को०)।

दंष्ट्राविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह की मकड़ी (को०)।

दंष्ट्रास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दंष्ट्रायुध (को०)।

दंष्ट्रिक—वि० [सं०] दंष्ट्रावाला। दंष्ट्राल (को०)।

दंष्ट्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दंष्ट्रा' (को०)।

दंष्ट्री¹—वि० [सं० दंष्ट्रिन्] १. बड़े बड़े दाँतोंवाला। २. दाँतों से काटनेवाला (को०)। ३. मांसभक्षक। मांसाहारी। (को०)।

दंष्ट्री²—संज्ञा पुं० १ सूअर। २. साँप। ३. लकड़बग्घा (को०)। ४. वह जंतु जिसके दाँत बड़े हों। बड़े दाँतोंवाला जंतु (को०)।

दंस—संज्ञा पुं० [सं० दंश] दे० 'दंश'।

दंडवत—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत] दे० 'दंडवत्'। उ०—पदुमावती के दरसन आसा। दँडवत कीन्ह मँडप चहुँ पासा।—जायसी ग्रं०, पृ० २१२।

दँतनाई—क्रि० अ० [हिं० डटना] डटना। समीप होना। सटना।

दँतिया—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त, हिं० दाँत + इया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत। दूध के दाँत। उ०—अरुन अधर दँतियन की जोती। जपाकुसुम मधि जनु बिवि मोती।—नंद० ग्रं०, पृ० २४१।

दँती—संज्ञा पुं० [सं० दन्ती] हाथी। दंती। उ०—तुट्टि तंत भती, गज्जनीय दँती।—पृ० रा०, १। ६५१।

दँतुरच्छद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तुरच्छद] बिजौरा नीबू।

दँतुरियाँ, दँतुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत] बच्चों के छोटे छोटे दाँत।

दँतुला—वि० [सं० दन्तुर] [वि० स्त्री० दँतुली] जिसके दाँत आगे निकले हों। बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दँतुली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त] बच्चे का छोटा दाँत। उ०—बालकृष्ण के छोटे छोटे नए दूध के दाँतों के लिये दूध की दँतुली का प्रयोग कितना सुंदर है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७२।

दँव—संज्ञा पुं० [सं० दव] दव। अग्नि। आग। उ०—दँव दाधी मालति सुनत, अति दाध्यो विधि ठाईं।—हिंदी प्रेमगाथा० पृ० २१५।

दँवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन, हिं दाँवना] अनाज के सूखे डंठलों मे से दाना झाड़ने के लिये उसे बैलों से रौंदवाने का काम।

क्रि० प्र०—नाधना।

दँवारि—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दावाग्नि'।

दँहगल—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटे आकार की गानेवाली चिड़िया उ०—सवेरे सवेरे नहीं आती बुल-बुल, न श्यामा सुरीली, न फुदकी, न दँहगल।—हरी घास०, पृ० ३६।

द¹—वि० [सं०] १ उत्पन्न करनेवाला। २. देनेवाला। दाता।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं होता;

बल्कि किसी शब्द के अंत में जोडने से होता है। जैसे, सुखद (सुख देनेवाला), जलद (जल देनेवाला, बादल) आदि।

द¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ पर्वत। पहाड़। २ दान। ३ दाता।

द²—संज्ञा स्त्री० १ भार्या। कलत्र। स्त्री। २. रक्षा। ३ खंडन।

दइ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव'। उ०—बहुए बुलिए बुलि मरमरि कहनाकर आहा दइ आइ की मेल।—विद्यापति, पृ० ११८।

दइआ†—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव'। उ०—आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा।—मानस, २।१६३।

दइउ†—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव'। उ०—धीरज धरति सगुन बल रहत सो नाहिन। बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन। —तुलसी ग्रं० पृ० ५४।

दइजरी†—वि० [हिं०] दे० 'दईमारी'।

दइजा†—संज्ञा पुं० [सं० दाय] दे० 'दायजा'।

दइत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दिति का पुत्र। दे० 'दैत्य'। उ०—नगर अजुध्या रामहिं राजा। लैहैं दइत बाँधि सब साजा।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

दइमारा—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० दइमारी] दे० 'दईमारा'। उ०—(क) दूध दही नहिं लेय री कहि कहि पचिहारी। कहति सुर कोऊ घर नाहीं कहाँ गई दइमारी।—सुर (शब्द०)। (ख) आखु धरन हित दुष्ट मँजारी। मो परि उघरि परी दइमारी।—नंद० ग्रं०, पृ० १४८।

दइया†—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव'। (स्त्रियों की बोलचाल में आश्चर्य एवं खेद आदि का व्यंजक)। उ०—भोर के आए दोऊ भइया। कीनों नहिन कलेऊ दइया।—नंद० ग्रं०, पृ० २५५।

दइव†—संज्ञा पुं० [सं० दैव, प्रा० दइव] दे० 'दैव'। उ०—वेरि एक दइव दहिन जवो होए, निरधन धन जके धरब मोजें गोए।—विद्यापति, पृ० ३५४।

दई—संज्ञा पुं० [सं० दैव] १ ईश्वर। विधाता। उ०—गई फरि जाहु दई के निहोरे।—दास (शब्द०)।

यौ०—दईमारा।

मुहा०—दई का घाला = ईश्वर का मारा हुआ। अभागा। कमबख्त। उ०—चननी कहति, दई की घाली! काहे को इतराती।—सुर (शब्द०)। दई का मारा = दे० 'दईमारा'। दई दई = हे दैव! हे दैव! रक्षा के लिये ईश्वर की पुकार। उ०—(क) दई दई आलसी पुकारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साँईंहि न भूल। दई दई क्यों करत है, दई दई सो कबूल।—बिहारी (शब्द०)।

२ दैव संयोग। अदृष्ट। प्रारब्ध।

दईजार, दईजारा—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० दईजारी] अभागा। दईमारा। (स्त्रियाँ)।

दईत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य'। उ०—कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दईता।—जायसी (शब्द०)।

दईमारा—वि० [हिं० दई + मारना] [वि० स्त्री० दईमारी] ईश्वर का मारा हुआ। जिसपर ईश्वर का कोप हो। अभागा। मंदभाग्य। कमबख्त। उ०—पीहा पीहा करो या पपीहा दईमारे को।—श्रीपति (शब्द०)।

दईमारो(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'दईमारा'।

दउढ़ा—वि० [सं० अधि + अर्ध] दे० 'डेढ़'। उ०—दउढ़ वरस री मारुवी, त्रिहुँ वरसाँरिउ कंत। उणरउ जोवन वहि गयउ, तूँ किउँ जोवनवंत।—ढोला०, दू० ४५०।

दउरना†—क्रि० अ० [हिं० दौड़ना] दे० 'दौड़ना'।

दउरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दौरा'।

दक—संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

दकन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, फा० दकन] दक्षिण भारत। देश का दक्षिणी भाग। २. दक्षिण दिक्। दक्खिन।

दकार—संज्ञा पुं० [सं०] तवर्ग का तीसरा अक्षर 'द'।

दकार्गल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार भूमि के नीचे जल का ज्ञान करानेवाली एक विद्या। वि० दे० 'दगार्गल' [को०]।

दकियानूस—संज्ञा पुं० [यू० से अ० दक्यानूस] रोम देश का एक अत्याचारी सम्राट् जो सन् ३४९ ई० में सिंहासन पर बैठा था।

दकियानूसी—वि० [अ० दक्यानूसी] १ दकियानूस के समय का। पुराना। २ बहुत ही पुराना। रूढ़िग्रस्त। जर्जर। निकम्मा। उ०—हम आप क्या पुरातन दकियानूसी रुचि का परिचय देकर या अति प्रगतिवाद का बहाना करके इस जागरण का स्वागत न करेंगे?—कुंकुम (भू०), पृ० ११।

दकीक—वि० [अ० दकीक़] मुश्किल। कठिन। गूढ़। उ०—दिस्या सख्त मुश्किल मर्श दकीक। था पानी का वाँ इक चश्मा अमीक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

दकीका—संज्ञा पुं० [अ० दक़ीक़ह्] १ कोई बारीक बात। २ युक्ति। उपाय।

मुहा०—कोई दकीका बाकी न रहना = कोई उपाय बाकी न रखना। सब उपाय कर चुकना। जैसे,—मुझे नुकसान पहुँचाने में तुमने कोई दकीका बाकी नहीं रखा।

३ क्षण। लहजा।

दक्काक—वि० [अ० दक़्क़ाक़] १. कूटनेवाला। पीसनेवाला। महीन करनेवाला। १ गूढ़ या सूक्ष्म बातों को कहनेवाला।

दक्खण†—वि० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खिण] दक्षिण दिशा में स्थित दक्षिणी। उ०—मोढी मोरंग साहु नूँ उर निस दिवस अधीर। मन लग्गो दक्खण मुलक, सरक न सकै सरीर।—रा० रू०, पृ० १६६।

दक्खिन¹—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खिण] [वि० दक्खिनी] १. वह दिशा जो सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होने से दाहिने हाथ की ओर पड़ती है। उत्तर के सामने की दिशा। जैसे,—जिधर तुम्हारा पैर है वह दक्खिन है।

विशेष—यद्यपि संस्कृत 'दक्षिण' शब्द विशेषण है पर हिंदी

शब्द दक्खिन विशेषण के रूप में नहीं आता। दक्खिन ओर, दक्खिन दिशा आदि वाक्यों में भी दक्खिन विशेषण नहीं है। २. दक्षिण दिशा में पड़नेवाला प्रदेश। ३. भारतवर्ष का वह भाग जो दक्षिण की ओर है। विंध्य और नर्मदा के आगे का देश।

दक्खिन²—क्रि० वि० दक्खिन की ओर। दक्षिण दिशा में। जैसे,—उनका गाँव यहाँ से दक्खिन पड़ता है।

दक्खिनी¹—वि० [हिं० दक्खिन] १ दक्खिन का। जो दक्षिण दिशा में हो। जैसे, नदी का दक्खिनी किनारा। २. जो दक्षिण के देश का हो। दक्षिण देश में उत्पन्न। दक्षिण देश संबंधी। जैसे, दक्खिनी आदमी, दक्खिनी बोली, दक्खिनी सुपारी. दक्खिनी मिर्च।

दक्खिनी²—संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी।

दक्खिनी³—संज्ञा स्त्री० दक्षिण देश की भाषा।

दक्ष¹—वि० [सं०] १ जिसमें किसी काम को चटपट सुगमतापूर्वक करने की शक्ति हो। निपुण। कुशल। चतुर। होशियार। जैसे,—वह सितार बजाने में बड़ा दक्ष है। २. दक्षिण। दाहना। उ०—(क) दक्ष दिसि रुचिर वारीश कन्या। —तुलसी (शब्द०)। (ख) दक्ष भाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई।—तुलसी (शब्द०)। ३ साधु। सच्चा। ईमानदार। सत्यवक्ता (को०)।

दक्ष²—संज्ञा पुं० १. एक प्रजापति का नाम जिनसे देवता उत्पन्न हुए।

विशेष—ऋग्वेद में दक्ष प्रजापति का नाम आया है और कहीं कहीं ज्योतिष्कगण के पिता कहकर उनकी स्तुति की गई है। दक्ष अदिति के पिता थे, इससे वे देवताओं के आदिपुरुष कहे जाते हैं। जहाँ ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति का यह क्रम बतलाया गया है कि असत् से पहले ब्रह्मणस्पति ने कर्मकार की तरह कार्य किया, असत् से सत् उत्पन्न हुआ, उत्तानपद से भू और भू से दिशाएँ हुई, वहीं यह भी लिखा है कि 'अदिति से दक्ष जन्मे और दक्ष से अदिति जन्मी'। इस विलक्षण वाक्य के संबंध में निरुक्त में लिखा है कि 'या तो दोनों ने समान जन्म-लाभ किया, अथवा देवधर्मानुसार दोनों की एक दूसरे से उत्पत्ति और प्रकृति हुई।' शतपथ ब्राह्मण में दक्ष को सृष्टि का पालक और पोषक कहा गया है। हरिवंश में दक्ष को विष्णुस्वरूप कहा गया है। महाभारत और पुराणों में जो दक्ष के यज्ञ की कथा है उसका वर्णन वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता, हाँ, रुद्र के प्रभाव के प्रसंग में कुछ उसका आभास सा मिलता है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि पहले मानस सृष्टि हुआ करती थी। दक्ष ने जब देखा कि मानस द्वारा प्रजावृद्धि नहीं होती है तब उन्होंने मैथुन द्वारा सृष्टि का विधान चलाया।

पद्मपुराण में दक्ष की कथा इस प्रकार है—ब्रह्मा ने सृष्टि की कामना से धर्म, रुद्र, मनु, भृगु तथा सनकादि को मानस-पुत्र के रूप में उत्पन्न किया। फिर दाहिने अँगूठे से दक्ष को और बाएँ अँगूठे से दक्षपत्नी को उत्पन्न किया। इस पत्नी के दक्ष को सोलह कन्याएँ उत्पन्न हुईं—श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मूर्ति, तितिक्षा, ह्री, स्वाहा, स्वधा और सती। दक्ष ने इन्हें ब्रह्मा के मानसपुत्रों में बाँट दिया। रुद्र को दक्ष की सती नाम की कन्या प्राप्त हुई। एक बार दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ किया जिसमें उन्होंने अपने सारे जामाताओं को बुलाया पर रुद्र को नहीं बुलाया। सती बिना बुलाए ही अपने पिता का यज्ञ देखने गई। वहाँ पिता से अपमानित होने पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। इसपर महादेव ने क्रुद्ध होकर दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया और दक्ष को शाप दिया कि तुम मनुष्य होकर ध्रुव के वंश में जन्म लोगे। ध्रुव के वंशज प्रचेतागण ने जब घोर तपस्या की तब उन्हें प्रजासृष्टि करने का वर मिला और उन्होंने कंडुकन्या मारिषा के गर्भ से दक्ष को उत्पन्न किया। दक्ष ने चतुर्विध मानस सृष्टि की। पर जब मानस सृष्टि से प्रजावृद्धि न हुई तब उन्होंने वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी को ग्रहण किया और उससे सहस्र पुत्र और बहुत सी कन्याएँ उत्पन्न कीं। उन्हीं कन्याओं से कश्यप आदि ने सृष्टि चलाई। और पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ हेर फेर के साथ है।

२. अत्रि ऋषि। ३. महेश्वर। ४. शिव का बैल। ५. ताम्रचूड़। मुरगा। ६ एक राजा जो उशीनर के पुत्र थे। ७. विष्णु। ८ बल। ९ वीर्य। १० अग्नि (को०)। ११ नायक का एक भेद जो सभी प्रेयसियों में समान भाव रखता हो (को०)। १२. शक्ति। योग्यता। उपयुक्तता (को०)। १३. खोटा या बुरा स्वभाव (को०)।

दक्षकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सती। वि० दे० 'दक्ष'। २. अश्विनी आदि तारा।

दक्षक्रतुध्वंसी—संज्ञा पुं० [सं० दक्षक्रतुध्वंसिन्] १ महादेव। २. महादेव के अंश से उत्पन्न वीरभद्र जिन्होंने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया था।

दक्षजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या'।

यौ०—दक्षजापति = (१) शिव। महेश्वर। (२) चंद्रमा [को०]।

दक्षणा—वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—दक्षण अयन सु सुरत ऋतु, उपजे गए न नरक।—ह० रासो, पृ ३०।

दक्षतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या' [को०]।

दक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निपुणता। योग्यता। कमाल।

दक्षदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

दक्षनⓅ†—वि० [सं० दक्षिण] दाहिना। दाहिनी ओर का। उ०—मेढू हू कै ऊपर दक्षन पाव आनिए।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४२।

दक्षनायन—वि० [सं० दक्षिणायन] दे० 'दक्षिणायन'। उ०—आवै दक्षनायन हू, आवै उत्तरायन हूँ, आवै देह सर्प सिंह बिज्जुली हनत हू।—सुंदर०, ग्रं०, भा० २, पृ० ६४२।

दक्षविहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गीत।

दक्षसावर्णि—संज्ञा पुं० [सं०] नवें मनु का नाम।

दक्षसुत—संज्ञा पुं० [सं०] देवता । सुर ।

दक्षसुता—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष+सुता] दे० 'दक्षकन्या' [को०] ।

दक्षांड—संज्ञा पुं० [सं० दक्षाण्ड] मुरगी का अंडा [को०] ।

दक्षा¹—वि० स्त्री० [सं०] कुशला । निपुणा ।

दक्षा²—संज्ञा स्त्री० १. पृथ्वी । २ गंगा का एक नाम (को०) ।

दक्षाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैनतेय । गरुड़ । २ गीध । गृद्ध [को०] ।

दक्षिण¹—वि० [सं०] १ दहना । दाहिना । बायाँ का उलटा । अपसव्य । २. इस प्रकार प्रवृत्त जिससे किसी का कार्य सिद्ध हो । अनुकूल । ३ साधु । ईमानदार । सच्चा (को०) । ४. उस ओर का जिधर सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होने से दहिना हाथ पड़े । उत्तर का उलटा ।

यौ०—दक्षिणापथ । दक्षिणायन ।

५ निपुण । दक्ष । चतुर ।

दक्षिण²—संज्ञा पुं० १ दक्खिन की दिशा । उत्तर के सामने की दिशा । २. काव्य या साहित्य मे वह नायक जिसका अनुराग अपनी सब नायिकाओं पर समान हो । ३ प्रदक्षिण । ४ तंत्रोक्त एक आचार या मार्ग ।

विशेष—कुलार्णव तंत्र में लिखा है कि सबसे उत्तम तो वेदमार्ग है, वेद से अच्छा वैष्णव मार्ग है, वैष्णव से अच्छा शैव मार्ग है, शैव से अच्छा दक्षिण मार्ग है, दक्षिण से अच्छा वाम मार्ग है और वाम मार्ग से भी अच्छा सिद्धांत मार्ग है ।

५, विष्णु । ६ शिव का एक नाम (को०) । ७ दाहिना हाथ या पार्श्व (को०) । ८ दे० 'दक्षिणाग्नि' । ९ रथ के दाहिनी ओर का अश्व (को०) । १० दक्षिण का प्रदेश (को०) ।

दक्षिणकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्रसार के अनुसार तांत्रिकों की एक देवी । २ दुर्गा [को०] ।

दक्षिणगोल—संज्ञा पुं० [सं०] विषुवत् रेखा से दक्षिण पड़नेवाली राशियाँ, जो छह हैं—तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन ।

दक्षिणपवन—संज्ञा पुं० [सं०] मलयपवन । मलयानिल ।

दक्षिण मार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की तांत्रिक साधना । २. पितृयान [को०] ।

दक्षिणस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] रथवाह । रथ हाँकनेवाला [को०] ।

दक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दक्षिण दिशा । २. वह धन जो ब्राह्मणों या पुरोहितों को यज्ञादि कर्म कराने के पीछे दिया जाता है । वह दान जो किसी शुभ कार्य आदि के समय ब्राह्मणों को दिया जाय ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

विशेष—पुराणों में दक्षिणा को यज्ञ की पत्नी बतलाया है । ब्रह्मवैवर्त्त पुराण मे लिखा है कि कार्तिकी पूर्णिमा की रात को जो एक बार रास महोत्सव हुआ उसी में श्रीकृष्ण के दक्षिणांश से दक्षिणा की उत्पत्ति हुई थी ।

३ पुरस्कार । भेंट । ४. वह नायिका जो नायक के अन्य स्त्रियों से संबंध करने पर भी उससे बराबर वैसी ही प्रीति रखती हो ।

दक्षिणाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिण+अग्नि] यज्ञ मे गार्हपत्याग्नि से दक्षिण ओर स्थापित अग्नि ।

दक्षिणाग्र—वि० [सं०] जिसका अगला अंश दक्षिण की ओर हो दक्षिणाभिमुख [को०] ।

दक्षिणाचल—संज्ञा पुं० [सं०] मलयगिरि पर्वत । मलयाचल ।

दक्षिणाचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सदाचार । शुद्ध और उत्तम आचरण । २ तांत्रिकों में एक प्रकार का आचार जिसमें अपने आपको शिव मानकर पंचतत्व से शिव की पूजा की जाती है । यह आचार वामाचार से श्रेष्ठ और प्राय वैदिक माना जाता है ।

दक्षिणाचारी—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणाचारिन्] १. विशुद्धाचारी धर्मशील । सदाचारी । २ वह तांत्रिक जो दक्षिणाचार दीक्षित हो ।

दक्षिणापथ—संज्ञा पुं० [सं०] विंध्यपर्वत के दक्षिण ओर का वह प्रदेश जहाँ से दक्षिण भारत के लिये रास्ते जाते हैं ।

दक्षिणापरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नैर्ऋत कोण ।

दक्षिणाप्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की ओर अधिक नीचा या ढालुआँ हो ।

विशेष—मनु के अनुसार श्राद्ध आदि के लिये ऐसा ही स्थान उपयुक्त होता है ।

दक्षिणामूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार शिव की एक मूर्ति ।

दक्षिणाभिमुख—वि० [सं०] दक्षिण की ओर मुँह किए हुए । जिसका मुख दक्षिण दिशा की ओर हो ।

दक्षिणायन¹—वि० [सं०] दक्षिण की ओर । भूमध्यरेखा से दक्षिण की ओर । जैसे, दक्षिणायन सूर्य ।

दक्षिणायन²—संज्ञा पुं० १. सूर्य की कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर गति । २. वह छह महीने का समय जिसमें सूर्य कर्क रेखा से चलकर बराबर दक्षिण की ओर बढ़ता रहता है ।

विशेष—सूर्य २१ जून को कर्क रेखा अर्थात् उत्तरीय अयनसीमा पर पहुँचता है और फिर वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ने लगता है और प्रायः २२ दिसंबर तक दक्षिणी अयन सीमा मकर रेखा तक पहुँच जाता है । पुराणानुसार जिस समय सूर्य दक्षिणायन हों उस समय कुआँ, तालाव, मंदिर आदि न बनवाना चाहिए और न देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए । तो भी भैरव, वराह, नृसिंह आदि की प्रतिष्ठा की जा सकती है ।

दक्षिणावर्त¹—वि० [सं०] जिसका घुमाव दाहिनी ओर को हो जो दाहिनी ओर घुमा हुआ हो ।

दक्षिणावर्त²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का शंख जिसका घुमाव दाहिनी ओर को होता है ।

दक्षिणावर्त्तकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणावर्त्तकी] दे० 'दक्षिणावर्तवती' ।

दक्षिणावर्तवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली नाम का पौधा ।

दक्षिणावह—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण से आनेवाली हवा ।

दक्षिणाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

दक्षिणाशापति—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम। २. मंगलग्रह।

दक्षिणी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० दक्षिण + ई (प्रत्य०)] दक्षिण देश की भाषा।

दक्षिणी²—संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी।

दक्षिणी³—वि० दक्षिण देश का। दक्षिण देश संबंधी।

दक्षिणीय—वि० [सं०] १. दक्षिण का। दक्षिण संबंधी। दक्षिण देश का। २ जो दक्षिणा का पात्र हो।

दक्षिण्य—वि० [सं०] दे० 'दक्षिणीय' [को०]।

दक्षिन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'।

दक्षिना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा'। उ०—माह्मनन को दान दक्षिना दै श्री गोकुल माए।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १३९।

दक्षिनी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दक्षिणी] दे० 'दक्षिणी'।

दखन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, फ़ा० दकन] दे० 'दक्षिण'।

दखमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दख्मह्] वह स्थान जहाँ पारसी अपने मुरदे रखते हैं।

विशेष—पारसियो मे यह प्रथा है कि वे शव को जलाते या गाड़ते नहीं हैं बल्कि उसे किसी विशिष्ट एकात स्थान में रख देते हैं जहाँ चील कौए आदि उसका मास खा जाते हैं। इस काम के लिये वे थोड़ा सा स्थान पचीस तीस फुट ऊँची दीवार से चारो ओर से घेर देते हैं, जिसके ऊपरी भाग में जँगला सा लगा रहता है। इसी जँगले पर शव रख दिया जाता है। जब उसका मास चील कौए आदि खा लेते हैं तब हड्डियाँ जँगले में से नीचे गिर पड़ती हैं। नीचे एक मार्ग होता है जिससे ये हड्डियाँ निकाल ली जाती हैं। भारत में निवास करनेवाले पारसियो के लिये इस प्रकार की व्यवस्था बबई, सूरत आदि कुछ नगरो में है।

दखल—संज्ञा पुं० [अ० दखल] १ अधिकार। कब्जा।

क्रि० प्र०—करना।—मे आना।—में लाना।—होना।

यौ०—दखलदिहानी। दखलनामा। दखलकार।

२ हस्तक्षेप। हाथ डालना। उ०—मूरख दखल देइँ बिन जाने। गहैं चपलता गुरु अस्थाने।—विश्राम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।

३ पहुँच। प्रवेश। जैसे,—आप अँगरेजी मे भी कुछ दखल रखते हैं।

क्रि० प्र०—रखना।

दखलदिहानी—संज्ञा स्त्री० [अ० दखल + फ़ा० दिहानी] किसी वस्तु पर किसी को अधिकार दिला देना। कब्जा दिलवाना।

दखलनामा—संज्ञा पुं० [अ० दखल + फ़ा० नामह्] वह पत्र विशेषत. सरकारी आज्ञापत्र जिसमे किसी व्यक्ति के लिये किसी पदार्थ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा हो।

दखिणाध(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिणापथ, प्रा० दक्खिणावध, दक्खिणावह] दक्षिण देश। उ०—उत्तर आज न जाइयइ, जिहाँ स सीत अगाध। सा भइ सुरिज डरपतउ, ताकि चलइ दखिणाध।—ढोला०, दू० ३०१।

दखिन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

दखिनहरा†—संज्ञा पुं० [हिं० दखिन + हारा] दक्षिण से आनेवाली हवा। दक्षिण की ओर से आती हुई हवा।

दखिनहा†—वि० [हिं० दखिन + हा (प्रत्य०)] दक्षिण का। दक्षिणी।

दखिनाई‡—संज्ञा पुं० [हिं० दखिन + आ (प्रत्य०)] दक्षिण से आनेवाली हवा।

दखील—वि० [अ० दखील] अधिकार रखनेवाला। जिसका दखल या कब्जा हो।

दखीलकार—संज्ञा पुं० [अ० दखील + फ़ा० कार] वह असामी जिसने किसी जमीदार के खेत या जमीन पर कम से कम बारह वर्ष तक अपना दखल रखा हो।

दखीलकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० दखील + फ़ा० कार] १ दखीलकार का पद या अवस्था। २ वह जमीन जिसपर दखीलकार का अधिकार हो।

दख्ख†—संज्ञा पुं० [सं० द्राक्षा, प्रा० दक्खा, दक्ख] दे० 'दाख¹'। उ०—अहर पयोहर, दुइ नयण मीठा जेहा मख्ख। ढोला एही मारुई, जाणे मीठी दख्ख।—ढोला०, दू० ४७०।

दगंबर†—संज्ञा पुं० [हिं० दिगंबर] दे० 'दिगबर'। उ०—दया दगबर नामु एकु मनि एको आदि अनूप।—प्राण०, पृ० २१२।

दगइल‡—वि० [हिं० दगैल] दे० 'दगैल'।

दगड़—संज्ञा पुं० [? या सं० ढक्का + हिं० ड़ (प्रत्य०)] लड़ाई में बजाया जानेवाला बड़ा ढोल। जगी ढोल।

दगड़ना—क्रि० अ० [?] सच्ची बात का विश्वास न करना।

दगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दगड़] दे० 'दगड़'।

दगदगा—संज्ञा पुं० [अ० दग्दगह्] १ डर। भय। २. संदेह। शक। ३. एक प्रकार की कडील।

दगदगाना¹—क्रि० अ० [हिं० दगना] दमदमाना। चमकना। उ०—ज्यो ज्यों अति कृशता बढ़ति त्यों त्यों दुति सरसात। दगदगात त्यों ही कनक ज्यों ही दाहत जात।—गुमान (शब्द०)।

दगदगाना²—क्रि० स० चमकाना। चमक उत्पन्न करना।

दगदगाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दगदगाना + हट (प्रत्य०)] चमक। दमक।

दगदगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दगदगा] दे० 'दगदगा'।

दगध¹—संज्ञा पुं० [सं० दग्ध] दे० 'दाह'। उ०—पेम का लुबुध दगध पै साधा।—जायसी ग्र०, पृ० ६४।

दगध²—वि० दे० 'दग्ध'। उ०—ग्यान दगध जोगिंद कुलट केरव भगि पानं।—पृ० रा०, ५५।१२१।

दगधना(पु)†¹—क्रि० अ० [सं० दग्ध, हिं० दगध + ना (प्रत्य०)] जलना। उ०—वज्र अगनि बिरहिन हिय जारा। सुलग सुलग दगधि भइ छारा।—जायसी (शब्द०)।

दगधना²—क्रि० स० १ जलाना। १ बहुत दुःख देना। कष्ट पहुँचाना।

दगना¹—क्रि० अ० [सं० दग्ध, हिं० दगध+ना(प्रत्य०)] १ (बंदूक या तोप आदि का) छूटना। चलना। जैसे,—बंदूक आप ही आप दग गई। २ जलना। दग्ध होना। झुलस जाना। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की कटाक्ष कोटि काम दगे।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। ३. दागा जाना। दागना का अकर्मक रूप।

दगना²—क्रि० स० दे० 'दागना'। उ०—(क) विषधर स्वास सरिस लगे तन सीतल बन वात। अनलहु सों सरसै दगै हिमकर कर धन गात।—शृं० सत (शब्द०)। (ख) जे तब होत दिखा-दिखी भई अमी इक आँक। दगै तिराछी दीठ अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी (शब्द०)।

दगना³—क्रि० अ० [अ० दाग] १ दागा जाना। अंकित होना। चिह्नित होना। २. प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। उ०—लोक वेद हूँ लौं दगौ नाम भले को पोच। धर्मराज जम गाज पवि कहत सकोच न सोच।—तुलसी (शब्द०)।

दगरा—संज्ञा पुं० ['देर' से देश०] दे० 'दगरा'।

दगरा—संज्ञा पुं० [?] १ देर। विलंब। उ०—भोरहि ते कान्ह करत सोसों झगरो। सब कोउ जात मधुपुरी बेचन कोने दियो दिखावहु कगरो। अचल ऐंचि ऐंचि राखत हो जान देहु अब होत है दगरो।—सूर (शब्द०)। २. डगर। रास्ता। उ०—वह जो खंडित मेंड बनी दगरे के माहीं। —श्रीधर पाठक (शब्द०)।

दगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दही जिसपर मलाई या साढ़ी न हो।

दगल¹—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दगला'। उ०—सौंर सुपेती मंदिर राती। दगल चीर पहिरहिं बहु भाँती।—जायसी (शब्द०)।

दगल²—संज्ञा पुं० [अ० दगल] १ धोखा। फरेब। मक्कर। २ खोटा सोना या चाँदी (को०)।

दगलफसल—संज्ञा पुं० [अ० दगल+अनु० फसल या हिं० फँसाना] धोखा। फरेब।

दगला—संज्ञा पुं० [देश०] मोटे वस्त्र का बना हुआ या रुईदार अँगरखा। भारी लबादा।

दगली—संज्ञा स्त्री० [देश] दे० 'दगला'। उ०—मुई मेरी माई हो खरा सुखाला। पहिरौ नही दगली लगे न पाला।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०९।

दगवाना—क्रि० स० [हिं० दागना का प्रे० रूप] दागने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दागने में प्रवृत्त कराना। उ०—उठि भोरहि तोपन दगवायो। दीनन को बहु द्रव्य लुटायो।—रघुराज (शब्द०)।

दगहा¹—वि० [हिं० दाग+हा (प्रत्य०)] १ जिसके दाग लगा हो। दागवाला। २. जिसके सफेद दाग हों।

दगहा²—वि० [हिं० दाग (=प्रेतकर्म)+हा (प्रत्य०)] जिसने प्रेत-क्रिया की हो। प्रेतकर्मकर्ता।

दगहा³—वि० [हिं० दगना+हा (प्रत्य०)] जो दागा हुआ हो। जो दग्ध किया गया हो।

दगा—संज्ञा स्त्री० [अ० दगा] छल। कपट। धोखा।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—खाना।

यौ०—दगाबाज। दगादार।

दगाती—वि० [फा० दगा] दगाबाज। धोखेबाज। उ०—छल बल करि नहिं काहू पकरत दौरि दगाती।—घनानंद०, पृ० ५९९।

दगादगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दगा] धोखेबाजी। उ०—सजनी निपट अचेत है दगादगी समुझै न। चित बित परकर देत है लगालगी करि नैन।—स० सप्तक, पृ० २३४।

दगादार—वि० [फ़ा० दगा+दार] धोखेबाज। छली। उ०—(क) एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहिं गंगा के कछार मे पछार छार करिहौं।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) छबीले तेरे नैन बडे हैं दगादार।—गीत (शब्द०)।

दगादारी—संज्ञा स्त्री० [फा० दगादार+ई] दे० 'दगादगी'।

दगाबाज¹—वि० [फ़ा० दगाबाज] छली। कपटी। धोखा देनेवाला। उ०—(क) कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नाम तुलसी पै भोंडे भाग ते भयो है दास, किए अंगीकार एते बड़े दगाबाज को।—तुलसी (शब्द०)।

दगाबाज²—संज्ञा पुं० छली मनुष्य। धोखा देनेवाला आदमी।

दगाबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दगाबाजी] छल। कपट। धोखा। उ०—सुहृद समाज दगाबाजी ही को सौदा सूत जब जाको काज तब मिलै पाय परि सो।—तुलसी (शब्द०)।

दगार्गल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की विद्या, जिसके अनुसार किसी निर्जल स्थान के ऊपरी लक्षण आदि देखकर, भूमि के नीचे पानी होने अथवा न होने का ज्ञान होता है।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में रक्तवाहिनी शिराएँ होती हैं उसी प्रकार पृथ्वी में जलवाहिनी शिराएँ होती हैं और इन शिराओं के किसी स्थान पर होने अथवा न होने का ज्ञान वृक्षों आदि को देखकर हो सकता है। जैसे, यदि किसी निर्जन स्थान मे जामुन का पेड़ हो तो समझना चाहिए कि उससे तीन हाथ की दूरी पर उत्तर की ओर दो पुरसे नीचे पूर्ववाहिनी शिरा है, यदि किसी निर्जन स्थान मे गूलर का पेड़ हो तो उससे पश्चिम तीन हाथ की दूरी पर डेढ़ दो पुरसे नीचे अच्छे जल की शिरा होगी, इत्यादि।

दगैल¹—वि० [अ० दाग+एल (प्रत्य०)] १. दागदार। जिसमें दाग हो। २ जिसमें कुछ खोट या दोष हो।

दगैल²—संज्ञा पुं०[अ० दगा]दगाबाज। छली। उ०—सात कोप कौनौं बजि आए। भए दगैलन के मन भाए।—लाल (शब्द०)।

दग्गना(पु)—क्रि० अ० [हिं० दगना] दे० 'दगना'। उ० —तोप तुपक बहुर सब बग्गिय।—पृ० रासो, पृ० १४८।

दग्ध¹—वि० [सं०] १. जला या जलाया हुआ। २ दुखित। जिसे कष्ट पहुँचा हो। जैसे, दग्धहृदय। ३. कुम्हलाया हुआ। म्लान। जैसे, दग्ध आनन। ४ अशुभ। जैसे, दग्ध योग। ५ क्षुद्र। तुच्छ। विकृष्ट। जैसे, दग्धदेह, दग्धउदर, दग्धजठर। ६. शुष्क। नीरस। बेस्वाद (को०)। ७ बुभुक्षित। क्षुधाग्रस्त (को०)। ८ चतुर। चालाक। विदग्ध (को०)।

दग्ध²—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे कतृण भी कहते हैं।

दग्धकाक—संज्ञा पुं० [सं०] डोम कौवा।

दग्धमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दग्धमन्त्र] तंत्र के अनुसार वह मंत्र जिसके मूर्धा प्रदेश में वह्नि और वायुयुक्त वर्ण हों।

दग्धरथ—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के सारथी चित्ररथ गंधर्व का एक नाम। विशेष—दे० 'चित्ररथ'।

दग्धरुह—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष।

दग्धरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरुह नामक वृक्ष।

दग्धवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष नाम की घास।

दग्धव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] जलने का घाव [को०]।

दग्धव्य—वि० [सं०] जलाने लायक। कष्ट देने योग्य [को०]।

दग्धा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सूर्य के अस्त होने की दिशा। पश्चिम। २. एक प्रकार का वृक्ष जिसे कुरु कहते हैं। ३ कुछ विशिष्ट राशियों से युक्त कुछ विशिष्ट तिथियाँ। जैसे—मीन और धन की अष्टमी। वृष और कुंभ की चौथ। मेष और कर्क की छठ। कन्या और मिथुन की नौमी। वृश्चिक और सिंह की दशमी। मकर और तुला की द्वादशी।

विशेष—दग्धा तिथियों में वेदारंभ, विवाह, स्त्रीप्रसंग, यात्रा या वाणिज्य आदि करना बहुत हानिकारक माना जाता है।

दग्धा²—वि० [सं० दग्धृ] १ जलानेवाला। २. दुःख देनेवाला। [को०]।

दग्धाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल के अनुसार झ, ह, र, भ और ष ये पाँचो अक्षर, जिनका छंद के आरंभ में रखना वर्जित है। उ०—दीजो भूल न छंद के आदि झ ह र भ ष कोइ। दग्धाक्षर के दोष तें छंद दोषयुत होइ।—(शब्द०)।

दग्धाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

दग्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'दग्धा' २ जला हुआ अन्न या भात (को०)।

दग्धित(पु)—वि० [सं० दग्ध + हिं० इत (प्रत्य०)] दे० 'दग्ध'। उ०—बोले गिरा मधुर शांति करी विचारी। होवे प्रबोध जिससे दुख दग्धितों का। —प्रिय०, पृ० १६६।

दग्धेष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध + इष्टका] जली और झुलसी हुई ईंट। झावाँ [को०]।

दघ्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दघ्नी] तक पहुँचने या जाननेवाला तक गहरा या ऊँचा। (समासांत में प्रयुक्त)। जैसे, उरुदघ्न, जानुदघ्न, गुल्फदघ्न आदि।

दचक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ झटके या दबाव से लगी हुई चोट। २. धक्का। ठोकर। ३. दबाव।

दचकना¹—क्रि० अ० [अनु०] १ ठोकर या धक्का खाना। २ दब जाना। लचकना। ३ झटका खाना।

दचकना²—क्रि० स० १ ठोकर या धक्का लगाना। २ दबाना। लचकाना। ३ झटका देना।

दचका—संज्ञा पुं० [हिं० दचकना] धक्का। ठोकर। उ०—हलका सा दचका लगा तो गाड़ीवान की नींद खुल गई।—रति०, पृ० ६२।

दचना—क्रि० अ० [देश०] गिरना। पड़ना। उ०—गगन उड़ाइ गयो ले श्यामहिं आइ धरनि पर आप दच्यो री।—सूर (शब्द०)।

दच्चा—संज्ञा पुं० [देश०] ठोकर। धक्का। दचका। उ०—सबै बाल-बच्चे फिरैं खात दच्चे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११।

दच्छ(पु)—वि० [सं० दक्ष] चतुर। निष्णात। कुशल। उ०—सापवस मुनिवधू मुक्तकृत विप्रहित यज्ञरच्छन दच्छ पच्छकर्ता।—तुलसी ग्रं०, पृ०।

दच्छ—संज्ञा पुं० [सं० दक्ष, प्रा० दच्छ] दे० 'दक्ष'। उ०—जनमी प्रथम दच्छगृह जाई।—मानस, १।

यौ०—दच्छकुमारी। दच्छसुत=दक्ष प्रजापति के पुत्र। उ०—दच्छसुतन्हि उपदेसेन्हि जाई।—मानस, १। दच्छसुता।

दच्छकुमारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + कुमारी] दक्ष प्रजापति की कन्या, सती। उ०—मुनि सन विदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी।—तुलसी (शब्द०)।

दच्छना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा'।

दच्छसुता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षसुता] दक्ष की कन्या, सती।

दच्छिन(पु)—संज्ञा पुं०, क्रि० वि०, वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—दच्छिन पिय ह्वै बाम बस बिसराई तिय आन। एकै बासर के बिरह लागे बरष बितान।—बिहारी (शब्द०)।

दच्छिननायक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण + नायक] दे० 'दक्षिणनायक'।

दच्छिना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा'। उ०—दच्छिना देत नंद पग लागत, आसिस देत गरग सब द्विजबर।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७१।

दछना, दछिना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा'। उ०—(क) भोजन कर जिजमान जिमाये। दछना कारन जाय अड़े।—संत तुरसी०, पृ० १८९। (ख) तुमहिं मिलैगो बीरा दछिना भरि भरि झोरी जू।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३१।

दज्जाल—संज्ञा पुं० [अ० दज्जाल] झूठा। बेईमान। अत्याचारी।

दझकना(पु)—क्रि० अ० [सं० दग्ध, प्रा० दज्झ] दे० 'दहना'। उ०—दुज्जन काय सु कहत राज मन माँहि समझ्झौं। कामज्वाल मो बढ़िय तुमहिं तिन कै दुख दझ्झौं।—पृ० रा०, ११। ४१६।

दट¹—क्रि० अ० [सं० दष्ट, प्रा० दट्ठ (=कटा हुआ)] दब जाना। हेठ पड़ना। उ०—तरह मदन रत तरणी, देख दिल दरप जाय दट।—रघु० रू०, पृ० ३६।

दटना(पु)²—क्रि० अ० [हिं० डटना] दे० 'डटना'।

दडघल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डोत्पल] सहदेई नाम का पौधा।

दड़क्का(ए)—संज्ञा पुं० [अनु०] दरेरा। उ० इक इक्क हुटक्कै, देत दड़क्कै, सेल तटक्कै श्रोन बहै।—सुजान०, पृ० ३१।

दड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कदुक। गेंद। तड़ी। उ०—जोध पौए दड़ी जेम ध्रणियो गिरद एम। उठै महीराव जाँए, नीव सूँ उखास।—रघु० रू०, पृ० १६६।

दड़ूक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दहाड़। गरज।

दड़ूकना—क्रि० अ० [अनु०] दहाड़ना। गरजना।

दड़ोकना—क्रि० अ० [अनु०] दहाड़ना। गरजना। बाघ, साँड़, आदि का बोलना।

दड्ढ(ए)—वि० [सं० दृढ, प्रा० दड्ढ] पक्का। मजबूत। दृढ़। उ०—खरे राव के रावतं जोर दड्ढ।—ह० रासो, पृ० ६६।

दढ(ए)—वि० [सं० दृढ़, प्रा० दड्ढ] दे० 'दृढ़'। उ०—सर्पं व्यूह आकार सज्जे सभारं। दढं फन्न पुच्छं रचे चित्त सारं।—पृ० रा०, ११६३३।

दढ़ियल—वि० [हिं० दाढ़ी + इयल (प्रत्य०)] दाढ़ीवाला। जो दाढ़ी रखे हो।

दणयर, दणियर(ए)†—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिणयर] सूर्य। दिनकर। उ०—मारू सी देखी नहीं, अणमुख दोय नयणांह। थोड़ो सो मोले पड़इ, दणयर उगहतांह।—ढोला०, दू० ४७८।

दत—संज्ञा पुं० [सं० दत्त (= दान)] दे० 'दान' उ०—देतो अड़व पसाव दत, वीर गोड वछराज।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७६।

दतना†—क्रि० अ० [हिं० डटना] दे० 'डटना'। उ०—केसव कैसहुँ देखन कौं तिन्हैं भोरही भोरी ह्वै मानि दती हो। पान खवावत ही तिनसों तुम राति कहा सतराति हुती हो।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ७१।

दतवन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'।

दतारा—वि० [हिं० दाँत + आर (प्रत्य०)] १ दाँतवाला। जिसमें दाँत हों। दाँतदार। २ बड़े बड़े या दृढ़ दाँतोंवाला (हाथी, शूकर आदि)।

दतिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + इया (प्रत्य०)] दाँत का स्त्रीलिंग और अल्पार्थक रूप। छोटा दाँत।

दतिया²—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का पहाड़ी तीतर जो बहुत सुंदर होता है। इसकी खाल अच्छे दामों पर बिकती है। नीलमोर। २ एक पुराना राज्य।

दतिसुत—संज्ञा पुं० [सं० दितिसुत] दैत्य। राक्षस (डिं०)।

दतुअन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'।

दतुइन†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'। उ०—दतुइन करी न जाय नहीं अब जाय नहाई।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२।

दतुवन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + अवन (प्रत्य०) अथवा धावन] १ नीम या बबूल आदि की काटी हुई छोटी टहनी जिसके एक सिरे को दाँतों से कुचलकर कूँची की तरह बनाते और उससे दाँत साफ करते हैं। दातुन।

क्रि० प्र०—करना।

२ दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—दतुवन कुल्ला = दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया।

दतून—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'।

दतौन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'।

दत्त¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दत्तात्रेय। २. जैनियों के नौ वासुदेवों में से एक। ३ एक प्रकार के बंगाली कायस्थों की उपाधि। ४. दान। ५ दत्तक।

दत्त²—वि० १. दिया हुआ। प्रदत्त। २. दान किया हुआ। ३. सुरक्षित। रक्षित (को०)।

दत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रविधि से बनाया हुआ पुत्र। वह जो वास्तव में पुत्र न हो, पर पुत्र मान लिया गया हो। गोद लिया हुआ लड़का। मुतबन्ना।

विशेष—स्मृतियों में जो औरस और क्षेत्रज के अतिरिक्त दस प्रकार के पुत्र गिनाए गए हैं, उनमे दत्तक पुत्र भी है। इसमें से कलियुग में केवल दत्तक ही को ग्रहण करने की व्यवस्था है, पर मिथिला और उसके आसपास कृत्रिम पुत्र का भी ग्रहण अबतक होता है। पुत्र के बिना पितृऋण से उद्धार नहीं होता इससे शास्त्र पुत्र ग्रहण करने की आज्ञा देता है। पुत्र आदि होकर मर गया हो तो पितृऋण से तो उद्धार हो जाता है पर पिंडा पानी नहीं मिल सकता इससे उस अवस्था में भी पिंडा पानी देने और नाम चलाने के लिये पुत्र ग्रहण करना आवश्यक है। किंतु यदि मृत पुत्र का कोई पुत्र या पौत्र हो तो दत्तक नहीं लिया जा सकता। दत्तक के लिये आवश्यक यह है कि दत्तक लेनेवाले को पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि न हो। दूसरी बात यह है कि आदान प्रदान की विधि पूरी हो, अर्थात् लडके का पिता यह कहकर अपने पुत्र को समर्पित करे कि मैं इसे देता हूँ और दत्तक लेनेवाला यह कहकर उसे ग्रहण करे 'धर्माय त्वां परिगृह्णामि, सन्तत्यै त्वां परिगृह्णामि। द्विजों के लिये हवन आदि भी आवश्यक है। वह पुत्र जिसपर उसका असली पिता भी अधिकार रखे और दत्तक लेनेवाला भी 'द्वामुष्यायण' कहलाता है। ऐसा लड़का दोनों की संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है और दोनों के कुल में विवाह नहीं कर सकता है।

दत्तक लेने का अधिकार पुरुष ही को है, अतः स्त्री यदि गोद ले सकती है तो पति की अनुमति से ही। विधवा यदि गोद लेना चाहे तो उसे पति की आज्ञा का प्रमाण देना होगा। वशिष्ठ का वचन है कि 'स्त्री पति की आज्ञा के बिना न पुत्र दे और न ले। नंद पंडित ने तो दत्तक मीमांसा में कहा है कि स्त्री को गोद लेने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह जाप होम आदि नहीं कर सकती। पर दत्तकचंद्रिका के अनुसार विधवा को यदि पति आज्ञा दे गया हो तो वह गोद ले सकती है। बंगदेश और काशी प्रदेश में स्त्री के लिये पति की अनुमति अनिवार्य है, और वह इस अनुमति के अनुसार पति के जीते जी या मरने पर गोद ले सकती है। महाराष्ट्र देश के पंडित वशिष्ठ के वचन का यह अभिप्राय निकालते हैं कि पति की अनुमति की आवश्यकता उस अवस्था

में हैं जब दत्तक पति के सामने लिया जाय, पति के मरने पर विधवा पति के कुटुंबियो से अनुमति लेकर दत्तक ले सकती है।

कैसा लडका दत्तक लिया जा सकता है, स्मृतियो मे इस संबध मे कई नियम मिलते हैं—

(१) शौनक, वशिष्ठ आदि ने एकलौते या जेठे लडके को गोद लेने का निषेध किया है। पर कलकत्ते को छोड और दूसरे हाइकोर्टों ने ऐसे लडके का गोद लिया जाना स्वीकार किया है।

(२) लडका सजातीय हो, दूसरी जाति का न हो। यदि दूसरी जाति का होगा तो उसे केवल खाना कपडा मिलेगा।

(३) सबसे पहले तो भतीजे या किसी एक ही गोत्र के सपिंड को लेना चाहिए, उसके अभाव मे भिन्न गोत्र सपिंड, उसके अभाव में एक ही गोत्र का कोई दूरस्थ संबधी जो समानोदकों के अतर्गत हो, उसके अभाव में कोई सगोत्र।

(४) द्विजातियों मे लडकी का लडका, बहिन का लडका, भाई, चाचा, मामा, मामी का लडका गोद नहीं लिया जा सकता। नियम यह है कि गोद लेने के लिये जो लडका हो वह 'पुत्रच्छायावह' हो अर्थात् ऐसा हो जिसकी माता के साथ दत्तक लेनेवाले का नियोग या समागम हो सके।

दत्तक विषय पर अनेक ग्रंथ संस्कृत मे हैं जिनमें नंद पंडित की 'दत्तक मीमासा' और देवानंद भट्ट तथा कुवेर कृत 'दत्तकचंद्रिका' सबसे अधिक मान्य हैं।

मुहा०—दत्तक लेना = किसी दूसरे के पुत्र को गोद लेकर अपना पुत्र बनाना।

दत्तचित्त—वि० [सं०] जिसने किसी काम में खूब जी लगाया हो। जिसने खूब चित्त लगाया हो।

दत्ततीर्थकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] गत उत्सर्पिणी के आठवें अर्हत (जैन)।

दत्तदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी आँखें किसी वस्तु पर टिकी हों [को०]।

दत्तशुल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लड़की जिसे प्राप्त करने के लिये शुल्क के रूप में कोई द्रव्य दिया गया हो [को०]।

दत्तस्यानपाकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार कोई चीज किसी को देकर फिर लौटाना। एक बार दान करके फिर वापस माँगना या लेना।

दत्तहस्त—वि० [सं०] जिसे हाथ का सहारा दिया गया हो [को०]।

दत्ता—संज्ञा पुं० [सं० दत्त] दे० 'दत्तात्रेय'।

दत्तात्रेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि जो पुराणानुसार विष्णु के चौबीस अवतारो मे से एक माने जाते हैं।

विशेष—मार्कंडेय पुराण में इनकी उत्पत्ति के संबंध मे जो कथा लिखी है वह इस प्रकार है—एक कोढ़ी ब्राह्मण की स्त्री बडी पतिव्रता और स्वामिभक्त थी। एक बार वह ब्राह्मण एक वेश्या पर आसक्त हो गया। उसके आज्ञानुसार उसकी पतिव्रता स्त्री उसे अपने कंधे पर बैठा कर अँधेरी रात में उस वेश्या के घर चली। रास्ते में माडव्य ऋषि तपस्या कर रहे थे, अँधेरे में कोढ़ी ब्राह्मण का पैर उन्हे लग गया। उन्होने शाप दिया कि जिसका पैर मुझे लगा हैं सूर्य निकलते निकलते वह मर जायगा। सती स्त्री ने अपने पति की रक्षा करने और वैधव्य से बचने के लिये कहा कि जाओ सूर्य उदय ही न होगा। जब सूर्य का उदय न हुआ और पृथ्वी के नाश की संभावना हुई तब सब देवता मिलकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हे अत्रि मुनि की स्त्री अनसूया के पास जाने की समति दी। देवताओ के प्रार्थना करने पर अनसूया ने जाकर ब्राह्मण पत्नी को समझाया और कहा कि तुम सूर्योदय होने दो तुम्हारे पति के मरते ही मैं उन्हे फिर सजीव कर दूँगी और उनका शरीर भी नीरोग हो जायगा। इसपर वह मान गई, तब सूर्य उदय हुआ और मृत ब्राह्मण को अनसूया ने फिर जीवित कर दिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर अनसूया से वर माँगने के लिये कहा। अनसूया ने कहा—ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण करें। ब्रह्मा ने इसे स्वीकार किया, और तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बनकर, और महेश्वर ने दुर्वासा बनकर अनसूया के घर जन्म लिया। हैहयराज ने जब अत्रि को बहुत कष्ट पहुँचाया था तब दत्तात्रेय क्रुद्ध होकर सातवें ही दिन गर्भ से निकल आए थे। ये बड़े भारी योगी थे और सदा ऋषिकुमारो के साथ योगसाधन किया करते थे। एक बार ये अपने साथियों और संसार से छुटकारा पाने के लिये बहुत समय तक एक सरोवर मे ही डूबे रहे फिर भी ऋषिकुमारो ने उनका संग न छोडा, वे सरोवर के किनारे उनके आसरे बैठे रहे। अंत में दत्तात्रेय उन्हे छलने के लिये एक सुंदरी को साथ लेकर सरोवर से निकले और मद्यपान करने लगे। पर ऋषिकुमारो ने यह समझकर तब भी उनका संग न छोडा कि ये पूर्ण योगीश्वर हैं, इनकी आसक्ति किसी विषय मे नहीं है। भागवत के अनुसार इन्होने चौबीस पदार्थों से अनेक शिक्षाएँ ग्रहण की थी और उन्हीं चौबीस पदार्थों को ये अपना गुरु मानते थे। वे चौबीस पदार्थ ये हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, सागर, पतंग, मधुकर (भौंरा और मधुमक्खी), हाथी, मधुहारी (मधुसग्रह करनेवाली), हरिन, मछली, पिंगला वेश्या, गिद्ध, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, साँप, मकडी और तितली।

दत्तापदानिक—संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार मे अट्ठारह प्रकार के विवाद पदो मे से पाँचवाँ विवाद पद। किसी दान किए हुए पदार्थ को अन्यायपूर्वक फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न।

दत्तावधान—वि० [सं० दत्त + अवधान] दत्तचित्त। सावधान। उ०—भारत साम्राज्य को भी दत्तावधान होना पडा है। प्रेमघन०, भा० २ पृ० २२२।

दत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०]।

दत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] सगाई का पक्का होना।

दत्तेय—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

दत्तोपनिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

दत्तोलि—संज्ञा पुं० [सं०] पुलस्त्य मुनि का एक नाम।

दत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ धन। २ सोना।

दत्रिम¹—वि० [सं०] दान में प्राप्त। दानस्वरूप मिला हुआ (को०)।

दत्रिम²—संज्ञा पुं० [सं०] दत्तक पुत्र।

दत्रेय(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दत्तात्रेय] दे० 'दत्तात्रेय'। उ०—व्यास जग्य दत्रेय सुद्ध नारद सुमुनीवर।—सुजान०, पृ० ३।

ददन—संज्ञा पुं० [सं०] दान। देने की क्रिया।

ददनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० ददन+हिं० ई (प्रत्य०)] दान। उ०—हरिजन हरि चरचा नित बाँटहि ज्ञान ध्यान की ददनी।—मीरा० श०, पृ० ६।

ददमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

ददरा—संज्ञा पुं० [देश०] छानने का कपड़ा। छन्ना। साफी।

ददरी—संज्ञा पुं० [देश०] १ पके हुए तमाखू के पत्तों पर का दाग। २. दे० 'मरवन'। ३. उत्तर प्रदेश का एक स्थान जहाँ पशुओं का मेला लगता है।

ददा—संज्ञा पुं० [हिं० दादा] दे० 'दादा'। उ०—बहु विनोद देखत घरनोधर मात पिता बलभद्र ददा रे।—सूर (शब्द०)।

ददिऔर, ददिऔरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ददिहाल'।

ददिता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० ददितृ] देनेवाला। दान देनेवाला। दाता (को०)।

ददियाल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ददिहाल'।

ददिया ससुर—संज्ञा पुं० [हिं० दादा+ससुर] श्वसुर का पिता। ससुर का बाप।

ददिया सास—संज्ञा स्त्री० [हिं० दादी+सास] सास की सास। ददिया ससुर की स्त्री।

ददिहाल—संज्ञा पुं० [हिं० दादा+आलय] १ दादा का कुल। २ दादा का घर।

ददोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ददोरा'।

ददोरा—संज्ञा पुं० [हिं० दाद] मच्छड़, बर्रे आदि के काटने या खुजलाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से घेरे के बीच में पड़ी हुई थोड़ी सी सूजन जो चकत्ती की तरह दिखाई देती है। चकत्ता। चटसर। उ०—बसन फटे उघटे भुवक विथुक ददोरे हाथ। चिट्टुटन सुमन गुलाब को धव मग जाय बलाय।—स० सप्तक, पृ० २६६।

दद्दुर—संज्ञा पुं० [सं० दर्दुर] दे० 'दादुर'। उ०—करें सोर निलती घन दद्दुर ने। तहाँ बाल लीला करें काँम चगे।—ह० रासो, पृ० २०।

दद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १ दाद का रोग। २. कछुआ।

यौ०—दद्रु विनाश।

दद्रुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दद्रु' (को०)।

दद्रुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रमर्द। चकवँड़।

दद्रुण—वि० [सं०] दद्रु रोग से पीड़ित (को०)।

दद्रू—संज्ञा पुं० [सं०] दाद रोग।

दद्रूण—वि० [सं०] दे० 'दद्रुण' (को०)।

दध(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० दधि] दे० 'दधि'।

दध²—वि० [सं०] धारण करनेवाला। ग्रहण करनेवाला (को०)।

दध³—संज्ञा पुं० भाग। हिस्सा। अंश (को०)।

दध(पु)⁴—संज्ञा पुं० [सं० उदधि, हिं० दधि] सागर। समुद्र। उ०—जनु मिलत मृत्यु दुख दरी प्रभु मह, धन बाजत्त। दध बीच बाव पताक दसी, मनो मद जवा।—पृ० रा०, पृ० १६४।

दध(पु)⁵—वि० [सं० दग्ध] दग्ध। जलित। उ०—जारि भस्म दै दध दगाय मातु पवनसुत गुणगाथ।—पृ० रा०, पृ० ११।

दधना(पु)—क्रि० अ० [सं० दहन] जलना। दहना।

दधसार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दधिसार] दे० 'दधिसार'।

दधि¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दही। जमाया हुआ दूध। २. वस्त्र। कपड़ा।

दधि²—पुं० [सं० उदधि] समुद्र। सागर।

विशेष—इस अर्थ में दधि शब्द का प्रयोग सूरदास ने बहुत किया है।

दधिकाँदो—संज्ञा पुं० [सं० दधि+कर्दम, हिं० कादो (= कीचड़)] जन्माष्टमी के उत्सव में होनेवाला एक प्रकार का उत्सव, जिसमें लोग हलदी मिला हुआ दही एक दूसरे पर फेंकते हैं। उ०—अनुमति मांगि मुदित ले लिन बाबा हरि को हुलास। करहु मनन की पालनो ... दधिकाँदो हुए।—सूर (शब्द०)।

विशेष—कहते हैं, श्रीकृष्णजन्म के समय गोपों और गोपिकाओं ने आनंद से मग्न होकर हलदी मिला दही एक दूसरे पर इतना अधिक फेंका था कि नंद के आँगन में दही का कीचड़ सा हो गया था।

दधिक्रा, दधिक्रावन्—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक वैदिक देवता जो घोड़े के आकार के माने जाते हैं। २ घोड़ा। अश्व।

दधिकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटे हुए दूध का वह अंश जो पानी निकल जाने पर बच जाता है। छेना।

दधिचार—संज्ञा पुं० [सं०] मथानी।

दधिज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिजात'।

दधिजात¹—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन। नवनीत।

दधिजात²—संज्ञा पुं० [सं० उदधि+जात (= उत्पन्न)] चंद्रमा। उ०—देखो री नैं दधिजात।—सूर (शब्द०)।

दधित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ। कैथ।

दधित्थाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] लोबान।

दधिदान—संज्ञा पुं० [सं० दधि+दान] दही का कर। दही पर लगनेवाला कर। उ०—कृष्ण के दधिदान माँगने पर गोपियों को कृष्ण से उलझन, वाग्युद्ध करना, उनको छेड़ और बदले में अनखोपनों का आनंद मिलता है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १११।

दधिदानी—वि० [सं० दधिदानिन्] दही का दान या कर लेनेवाला।

उ०—कब को भयो रे ढोटा दधिदानी।—प्रकबरी०, पृ० ६१।

दधिधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये कल्पित गौ जिसकी कल्पना दही के मटके में की जाती है।

दधिधानी—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें दही रखा हो। दही रखने का बर्तन [को०]।

दधिनामा—संज्ञा पुं० [सं० दधिनामन्] कैथ का पेड़।

दधिपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपराजिता।

दधिपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम।

दधिपूप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो दही मे फेंटे हुए शालि धान के चूर्ण को घी मे तलने से बनता है।

दधिफल—संज्ञा पुं० [सं०] कैथ। कपित्थ।

दधिमंड—संज्ञा पुं० [सं० दधिमण्ड] दही का पानी।

दधिमंडोद—संज्ञा पुं० [सं० दधिमण्डोद] पुराणानुसार दही का समुद्र।

दधिमथन—संज्ञा पुं० [सं० दधिमन्थन] दही को मथने की क्रिया [को०]।

दधिमंथानां—संज्ञा पुं० [सं० दधिमन्थन] दही बिलोने या मथने का काम। उ०—सो ता दिन में वह व्रजवासिनी जब दधिमथान को बैठती तब ही श्री गोवर्धननाथ जी वा पास प्राइ विराजते।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६।

दधिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र जी की सेना का एक बंदर जो सुग्रीव का मामा और मधुवन का रक्षक था। रामायण के अनुसार यह सुग्रीव का ससुर था। २ फनवाले साँपों में श्रेष्ठ एक नाग का नाम (को०)।

दधियार—संज्ञा पुं० [देश०] जीवंतिका की जाति की एक लता अर्कपुष्पी। अधाहुली।

विशेष—इस लता के पत्ते लंबे और पान के आकार के होते हैं। इसकी डंठियों आदि में से दूध निकलता है और इसमें सूर्यमुखी की तरह के फूल लगते हैं। इसका व्यवहार औषध में होता है।

दधिवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिमुख' (को०)।

दधिशर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिमंड' (को०)।

दधिशोण—संज्ञा पुं० [सं०] बंदर। वानर (को०)।

दधिषाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] घृत। घी (को०)।

दधिसंभव—संज्ञा पुं० [सं० दधि+सम्भव] मक्खन। नवनीत। नैनू।

दधिसागर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दही का समुद्र।

दधिसार—संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत। मक्खन।

दधिसुत¹—संज्ञा पुं० [सं० उदधि+सुत] १ कमल। उ०—देखो मैं दधिसुत में दधिजात। एक अचंभो देखि सखी री रिपु में रिपु जु समात।—सूर०, १०।१७२ २ मुक्ता। मोती। उ०—दधिसुत जामे नद दुवार। निरखि नैन अरुभयो मनमोहन रटत देहु कर बारबार।—सूर०, १०।१७३। ३ उडुपति। चंद्रमा। उ०—(क) राधे दधिसुत क्यो न दुरावति। हौं जु कहति वृषभानु नंदिनी काहे जीव सतावति।—सूर०, १०।१७१४। (ख) दधिसुत जात हौं उहि देस। द्वारिका है स्याम सुदर सकल भुवन नरेस।—सूर०, १०।४२६४।

यौ०—दधिसुत सुत = चंद्रमा का पुत्र, बुध, अर्थात् विद्वान्। पंडित। उ०—जिनके हरि वाहन नहीं दधिसुत सुत जेहि नाहिं। तुलसी ते नर तुच्छ हैं बिना समीर उड़ाहिं।—स० सप्तक, पृ० २१।

४ जालंधर दैत्य। उ०—विष्णु वचन पपसा प्रतिहारा। तेहि ते प्रापुन दधिसुत मारा।—विश्राम (शब्द०)। ५ विष। जहर उ०—नहिं विभूति दधिसुत न कंठ यह मृगमद चंदन चरचित तन।—सूर (शब्द०)।

दधिसुत²—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन। नवनीत।

दधिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं० उदधिसुता] सीप। उ०—दधिसुता सुत अवलि ऊपर इंद्र आयुध जानि—सूर (शब्द०)।

यौ०—दधिसुता सुत = सीप का पुत्र—मोती। मुक्ता।

दधिस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] दही की मलाई।

दधिस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] तक्र। छाछ। मट्ठा।

दधी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उदधि] दे० 'उदधि'। उ०—रिछ बानरायं, भए सो सहायं। हनुम्मान तायं, दधी सीस आयं।—पृ० रा०, २।२४।

दधीच(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधीचि'। उ०—जीत महीपति हाड़नही महँ जोत दधीच के हाडन ही में।—मति० ग्रं०, पृ० ३९२।

यौ०—दधीचास्थि = दे० 'दधीच्यस्थि'।

दधीचि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि जो यास्क के मत से अथर्व के पुत्र थे और इसी लिये दधीचि कहलाते थे। किसी पुराण के मत से ये कर्दम ऋषि की कन्या और अथर्व की पत्नी शांति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और किसी पुराण के मत से ये शुक्राचार्य के पुत्र थे।

विशेष—वेदों और पुराणों मे इनके संबंध में अनेक कथाएँ हैं, जिनमे से विशेष प्रसिद्ध यह है कि इंद्र ने इन्हें मधुविद्या सिखाई थी और कहा था कि यदि तुम यह विद्या बतलाओगे तो हम तुम्हें मार डालेंगे। इसपर अश्विद्युगल ने दधीचि का सिर काटकर अलग रख दिया और उनके धड़ पर घोड़े का सिर लगा दिया और तब उनसे मधुविद्या सीखी। जब इंद्र को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने आकर उनका घोड़ेवाला सिर काट डाला। इसपर अश्विद्युगल ने उनके धड़ पर फिर वही मनुष्यवाला पहला सिर लगा दिया। एक बार वृत्रासुर के उपद्रव से बहुत दुःखित होकर सब देवता इंद्र के पास गए। उस समय निश्चित हुआ कि दधीचि की हड्डियों के बने हुए अस्त्र के अतिरिक्त और किसी अस्त्र से वृत्रासुर मारा न जा सकेगा। इसलिये इंद्र ने दधीचि से उनकी हड्डियाँ माँगी। दधीचि ने अपने पुराने शत्रु और हत्याकारी इंद्र को भी विमुख लौटाना उचित न समझा और उनके लिये अपने प्राण त्याग दिए। तब उनकी हड्डियों से अस्त्र बनाकर वृत्रासुर मारा गया। तभी से दधीचि का बड़ा भारी दानी होना प्रसिद्ध है। महाभारत में यह भी लिखा है कि जब एक

ने हरिद्वार मे बिना शिव जी के यज्ञ किया था, तब इन्होंने दक्ष को शिव जी के निमन्त्रित करने के लिये बहुत समझाया था, पर उन्होंने नहीं माना, इसलिये ये यज्ञ छोड़कर चले गए थे। एक बार दधीचि बड़ा कठिन तपस्या करने लगे। उस समय इंद्र ने डरकर इन्हे तप से भ्रष्ट करने के लिये अलबुषा नामक अप्सरा भेजी। एक बार जब ये सरस्वती तीर्थ में तपस्या कर रहे थे तब अलबुषा उनके सामने पहुँची। उसे देखकर इनका वीर्य स्खलित हो गया जिससे एक पुत्र हुआ। इसी से उस पुत्र का नाम सारस्वत हुआ।

दधीच्यस्थि—संज्ञा पुं० [सं० दधीचि + अस्थि] १ इंद्रास्त्र। वज्र। २ हीरा। हीरक।

दध्न—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह यमो में से एक यम।

दध्यानी—संज्ञा पुं० [सं०] सुदर्शन वृक्ष। मदनमस्त।

दध्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] दही की मलाई।

दध्युत्तरक, दध्युत्तरग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दध्युत्तर' [को०]।

दन—संज्ञा पुं० [सं० दिन] दिवस। दिन (डिं०)।

दनकर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिणयर, दणयर] दिनकर। सूर्य (डिं०)।

दनगा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत का छोटा टुकड़ा।

दनदनाना—क्रि० अ० [अनु०] १ दनदन शब्द करना। २ आनंद करना। खुशी मनाना।

दनमणि—संज्ञा पुं० [सं० दिनमणि] द्युमणि। सूर्य (डिं०)।

दनादन—क्रि० वि० [अनु०] दनदन शब्द के साथ। जैसे,—दनादन तोपें छूटने लगीं।

दनु¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की एक कन्या जो कश्यप को ब्याही थी।

विशेष—इसके चालीस पुत्र हुए थे जो सब दानव कहलाते हैं। उनके नाम ये हैं—विप्रचित्ति, शबर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिरा, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुंड, एकपद, एकचक्र, विरूपाक्ष, महोदर, निचंद्र, निकुंभ, कुजट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य, चंद्र, एकाक्ष, अमृतप, प्रलब, नरक, वातापी, शठ, गविष्ठ, वनायु और दीर्घजिह्व। इनमे जो चंद्र और सूर्य नाम आए हैं, वे देवता चंद्र और सूर्य से भिन्न हैं।

दनु²—संज्ञा पुं० एक दानव का नाम जो श्री दानव का लड़का था।

विशेष—इंद्र द्वारा त्रस्त एवं पीड़ित इस राक्षस को राम और लक्ष्मण ने मारा था। शिरविहीन कबंध की आकृति का होने से इसका एक नाम दनुकबंध भी है।

दनुज—संज्ञा पुं० [सं०] दनु से उत्पन्न, असुर। राक्षस।

दनुजदलनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

दनुजद्विट—संज्ञा पुं० [दनुजद्विप्] सुर। देवता [को०]।

दनुजपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुज' [को०]।

दनुजराय—संज्ञा पुं० [सं० दनुज + हिं० राय] दानवों का राजा हिरण्यकशिपु।

दनुजारि—संज्ञा पुं० [सं०] दानवो के शत्रु।

दनुजारी—संज्ञा पुं० [सं० दनुजारि] दनुजो के शत्रु। विष्णु। उ०—बीचहि पथ मिले दनुजारी।—मानस, १।१३६।

दनुजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दनुजेन्द्र] दानवों का राजा,—रावण।

दनुजेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिरण्यकशिपु। २. रावण।

दनुजसंभव—संज्ञा पुं० [सं० दनु-सम्भव] दनु से उत्पन्न, दानव।

दनुजसूनु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुजसभव'।

दनू—संज्ञा स्त्री० [सं० दनु] दे० 'दनु'।

दन्न—संज्ञा पुं० [अनु०] 'दन्न' शब्द जो तोप आदि के छूटने अथवा इसी प्रकार के और किसी कारण से होता है।

दपट—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँट के साथ अनु०] घुड़की। डपट। डाँटने या डपटने की क्रिया।

दपटना—क्रि० स० [हिं० डाँटना के साथ अनु०] किसी को डराने के लिये बिगड़कर जोर से कोई बात कहना। डाँटना। घुड़कना।

दपु—संज्ञा पुं० [सं० दर्प] दर्प। अहंकार। अभिमान। शेखी। घमंड। उ०—सात दिवस गोवर्धन राख्यो इंद्र गयो दपु छोंहि।—सूर (शब्द०)।

दपेट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दपट'।

दपेटना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दपटना'।

दप्प—संज्ञा पुं० [सं० दर्प, प्रा० दप्प] दे० 'दर्प'।

दफतर—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़्तर] दे० 'दफ्तर'।

दफतरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ्तरी] दे० 'दफ्तरी'।

दफतरीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ्तरीखानह्] दे० 'दफ्तरीखाना'।

दफती—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ्तीन] कागज के कई तख्तो को एक में साट कर बनाया हुआ गत्ता जो प्रायः जिल्द बाँधने आदि के काम में आता है। गत्ता। कुट। वसली।

दफदर‡—संज्ञा पुं० [हिं० दफतर] दे० 'दफ्तर'। उ०—तबलक तत्त दया को दफदर, सत कचहरी भारी।—धरनी० बानी, पृ० ३।

दफन—संज्ञा पुं० [अ० दफन] १ किसी चीज को जमीन मे गाड़ने की क्रिया। २ मुरदे को जमीन मे गाड़ने की क्रिया।

दफनाना—क्रि० स० [अ० दफ़न + आना] १ जमीन मे दबाना। गाड़ना। २ (लाक्ष०) किसी दुर्व्यवहार, कटुता आदि को पूरी तरह भुला देना।

दफरा—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का वह टुकड़ा या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ जो किसी नाव के दोनों ओर इसलिये लगा दिया जाता है कि जिसमे किसी दूसरी नाव की टक्कर से उसका कोई अंग टूट न जाय। होंस (लश०)।

दफराना—क्रि० स० [देश०] १ किसी नाव को किसी दूसरी नाव के साथ टक्कर लड़ने से बचाना। २. (पाल) खड़ा करना।—(लश०) ३. बचाना। रक्षा कराना।

दफला—संज्ञा पुं० [फा० दफ़ या दफ़न] दे० 'डफ'। उ०—बैंड से लेकर दफले और नृसिंहे तक सभी प्रकार के बाजे थे। —काया०, पृ० ५७५।

दफा[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ़अह्] १ बार। बेर। जैसे,—(क) हम तुम्हारे यहाँ कल दो दफा गए थे। (ख) उसे कई दफा समझाया मगर उसने नहीं माना। २ किसी कानूनी किताब का वह एक अंश जिसमें किसी एक अपराध के संबंध में व्यवस्था हो। धारा।

मुहा०—दफा लगाना=अभियुक्त पर किसी दफा के नियमों को घटाना। अपराध का लक्षण आरोपित करना। जैसे—फौजदारी में आज उसपर चोरी की दफा लग गई।

३. दर्जा। क्लास। श्रेणी। कक्षा। उ०—किस दफे मे पढ़ते हो भैया ?—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४६६।

दफा[2]—वि० [अ० दफ़अह्] दूर किया हुआ। हटाया हुआ। तिरस्कृत। जैसे,—किसी तरह इसे यहाँ से दफा करो।

मुहा०—दफा दफान करना=तिरस्कृत करके दूर कराना या हटाना।

दफादार—संज्ञा पुं० [अ० दफ़अह् (=समूह)+फ़ा० दार] फौज का वह कर्मचारी जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही हों।

विशेष—सेना में दफादार का पद प्राय पुलिस के जमादार के पद के बराबर होता है।

दफादारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दफादार+ई (प्रत्य०)] १ दफादार का पद। २. दफादार का काम।

दफीना—संज्ञा पुं० [अ० दफ़ीना] गडा हुआ धन या खजाना।

दफ्तर—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़्तर] १ स्थान जहाँ किसी कारखाने आदि के संबंध की कुल लिखा पढ़ी और लेन देन आदि हो। आफिस। कार्यालय। २ बड़ा भारी पत्र। लंबी चौडी चिट्ठी। ३ सविस्तर वृत्तांत। चिट्ठा।

दफ्तरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़्तर] १. किसी दफ्तर का वह कर्मचारी जो वहाँ के कागज आदि दुरुस्त करता और रजिस्टरों आदि पर रूल खींचता अथवा इसी प्रकार के और काम करता हो। २ किताबों की जिल्द बाँधनेवाला। जिल्दसाज। जिल्दबंद।

यौ०—दफ्तरीखाना।

दफ्तरीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ्तरीखानह्] वह स्थान जहाँ किताबों की जिल्द बँधती हो अथवा दफ्तरी बैठकर अपना काम करते हो।

दफ्ती—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ़्तीन] दे० 'दफती'।

दफ्तीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] दफ्ती [को०]।

दबंग—वि० [हिं० दबाव या दबाना] प्रभावशाली। दबाववाला। जिसका लोगों पर रोबदाब हो। जैसे,—वे बड़े दबंग आदमी हैं, किसी से नहीं डरते।

दबंगपन—संज्ञा पुं० [हिं० दबंग+पन] दबदबा। रोबदाब। उ०—चाहिए कुछ दबंगपन रखना। दब बहुत दाब मे न आएँ हम। —चुभते०, पृ० ३६।

दब—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबना] बडो के प्रति संकोच या भय। दे० 'दाब'। उ०—कहा करौं कछु बनि नहिं आवै अति गुरजन की दब री।—घनानंद, पृ० ५३३।

यौ०—दबगर।

दबक—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबकना] दबने या छिपने की क्रिया या भाव। २ सिकुडन। शिकन। ३. धातु आदि को लंबा करने के लिये पीटने की क्रिया।

यौ०—दबकगर।

दबकगर—संज्ञा पुं० [हिं० दबक+गर (प्रत्य०)] दबका (तार) बनानेवाला।

दबकना[1]—क्रि० अ० [हिं० दबना] १ भय के कारण किसी सँकरे स्थान मे छिपना। डर के मारे छिपना। जैसे,—(क) कुत्ते को देखकर बिल्ली का बच्चा आलमारी के नीचे दबक रहा। (ख) सिपाही को देखकर चोर कोने में दबक रहा। २ लुकना। छिपना। जैसे,—शेर पहले से ही झाड़ी में दबका बैठा था, हिरन के आते ही उसपर झपट पड़ा।

क्रि० प्र०—जाना।—रहना।

दबकना[2]—क्रि० स० किसी धातु को हथौड़ी से चोट लगाकर बढ़ाना या चौडा करना। पीटना।

दबकना[3]—क्रि० स० [सं० दर्प ?] डाँटना। डपटना। घुड़कना। उ०—दबकि दबोरे एक, वारिधि मे बोरे एक, मगन मही में एक, गगन उडात हैं।—तुलसी (शब्द०)।

दबकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबना] भाथी का वह हिस्सा जिसके द्वारा उसमें हवा घुसती है।

दबकवाना—क्रि० स० [हिं० दबकना का प्रे० रूप] दबकाने का काम किसी दूसरे से कराना। दूसरे को दबकाने में प्रवृत्त करना।

दबका—संज्ञा पुं० [हिं० दबकना (=तार आदि पीटना)] कामदानी का सुनहला या रुपहला चिपटा तार।

दबकाना—क्रि० स० [हिं० दबकना का सक० रूप] १ छिपाना। ढाँकना। आड़ मे करना। २ डाँटना।—(क्व०)।

दबकी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] सुराही की तरह का मिट्टी का एक बर्तन जिसमें पानी रखकर चरवाहे और खेतिहर खेत पर ले जाया करते हैं।

दबकी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबकना] दबकने या छिपने की क्रिया या भाव।

मुहा०—दबकी मारना=छिप जाना। अदृश्य हो जाना।

दबके का सलमा—संज्ञा पुं० [?] चमकीला सलमा। दबके का बना हुआ सलमा जो बहुत चमकीला होता है।

दबकैया—संज्ञा पुं० [हिं० दबकना+ऐया (प्रत्य०)] सोने चाँदी के तारों को पीटकर बढ़ाने, चपटा और चौड़ा करनेवाला। दबकगर।

दबगर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १ ढाल बनानेवाला। २. चमडे के कुप्पे बनानेवाला।

दवगार[2]—संज्ञा पुं०, वि० [हिं० दब (=दाब) + गर] दाब या शासन मे पड़ा हुआ। अधिकार माननेवाला।

दबटना†—क्रि० अ० [हिं० दबाना] दबाना। अधिकार मे करना। उ०—इत तुलसी छवि हुलसी छोडति परिमल लपटे। इत कमोद आमोद गोद भरि भरि सुख दबटे।—नंद० ग्रं०, पृ० १२।

दबड़ घुसड़—वि० [हिं० दबाना + घुसना] डरपोक। सब से दबने और डरनेवाला।

दबदबा—संज्ञा पुं० [अ०] रोबदाब। आतंक। प्रताप।

दबना—क्रि० अ० [सं० दमन] १ भार के नीचे आना। बोझ के नीचे पड़ना। जैसे, आदमियों का मकान के नीचे दबना। २ ऐसी अवस्था मे होना जिसमें किसी ओर से बहुत जोर पड़े। दाब मे आना। ३ (किसी भारी शक्ति का सामना होने अथवा दुर्बलता आदि के कारण) अपने स्थान पर न ठहर सकना। पीछे हटना। ४ किसी के प्रभाव या आतंक मे आकर कुछ कह न सकना अथवा अपने इच्छानुसार आचरण न कर सकना। दबाव में पड़कर किसी के इच्छानुसार काम करने के लिये विवश होना। जैसे,—(क) कई कारणों से वे हमसे बहुत दबते हैं। (ख) आप तो उनसे कमजोर नहीं हैं, फिर क्यों दबते हैं। ५ अपने गुणों आदि की कमी के कारण किसी के मुकाबले में ठीक या अच्छा न जँचना। जैसे,—यह माला इस कंठे के सामने दब जाती है। ६. किसी बात का अधिक बढ़ या फैल न सकना। किसी बात का जहाँ का तहाँ रह जाना। जैसे, खबर दबना, मामला दबना। उ०—नाम सुनत ही ह्वै गयो तव औरे मन और। दबै नहीं चित चढ़ि रह्यो अबहुँ चढ़ाए त्यौर।—बिहारी (शब्द०)। ७. उमड़ न सकना। शांत रहना। जैसे, बलवा दबना, क्रोध दबना। ८ अपनी चीज का अनुचित रूप से किसी दूसरे के अधिकार में चला जाना। जैसे,—हमारे सौ रुपए उनके यहाँ दबे हुए हैं। ९ ऐसी अवस्था में आ जाना जिसमें कुछ बस न चल सके। जैसे,—वे आजकल रुपए की तंगी से दबे हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

१० धीमा पड़ना। मंद पड़ना।

मुहा०—दबी आवाज=धीमी आवाज=वह आवाज जिसमे कुछ जोर न हो। दबी जबान से कहना=अस्पष्ट रूप से कहना। किसी प्रकार के भय आदि के कारण साफ साफ न कहना बल्कि इस प्रकार कहना जिससे केवल कुछ ध्वनि व्यक्त हो। दबे दबाए रहना=शांतिपूर्वक या चुपचाप रहना। उपद्रव या कारंवाई न करना। दबे पाँव या पैर (चलना)=इस प्रकार (चलना) जिसमें किसी को कुछ आहट न लगे।

११ संकोच करना। झेंपना।

दबमो†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बकरा जो हिमालय में होता है।

दबवाना—क्रि० स० [हिं० दबना का प्रे० रूप] दबाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दबाने मे प्रवृत्त कराना।

दबस—संज्ञा पुं० [?] जहाज पर की रसद तथा दूसरा सामान। जहाजी गोदाम में का माल।

दबा—वि० [हिं० दबना] दबाव मे पड़ा हुआ। भार से दबा हुआ। विवश।

दबाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबाना] अनाज निकालने के लिये बालों या डठलो को बैलों के पैरों से रौंदवाने का काम।

दबाऊ—वि० [हिं० दबाना] १ दबानेवाला। २. जिस (गाड़ी आदि) का अगला हिस्सा पिछले हिस्से की अपेक्षा अधिक बोझल हो। दब्बू।

दबाना—क्रि० स० [स० दमन] [संज्ञा, दाब, दबाव] १ ऊपर से भार रखना। बोझ के नीचे लाना (जिसमें कोई चीज नीचे की ओर धँस जाय अथवा इधर उधर हट न सके)। जैसे, पत्थर के नीचे किताब या कपड़ा दबाना। २. किसी पदार्थ पर किसी ओर से बहुत जोर पहुँचाना। जैसे, उँगली से कागज दबाना, रस निकालने के लिये नीबू के टुकडे को दबाना, हाथ या पैर दबाना। ३ पीछे हटाना। जैसे,—राज्य की सेना शत्रुओं को बहुत दूर तक दबाती चली गई। ४ जमीन के नीचे गाड़ना। दफन करना।

संयो०क्रि०—देना।

५ किसी मनुष्य पर इतना प्रभाव डालना या आतंक जमाना कि जिसमे वह कुछ कह न सके अथवा विपरीत आचरण न कर सके। अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने के लिये दबाव डालना। जोर डालकर विवश करना। जैसे,—(क) कल बातों बातों मे उन्होने तुम्हें इतना दबाया कि तुम कुछ बोल ही न सके। (ख) उन्होंने दोनों आदमियों को दबाकर आपस में मेल करा दिया। ६ अपने गुण या महत्व की अधिकता के कारण दूसरे को मंद या मात कर देना। दूसरे के गुणों या महत्व का प्रकाश न होने देना। जैसे,—इस नई इमारत ने आपके मकान को दबा दिया।

सयो० क्रि० —देना।—रखना।

७ किसी बात को उठने या फैलने न देना। जहाँ का तहाँ रहने देना। ८. उभड़ने से रोकना। दमन करना। शांत करना। जैसे, बलवा दबाना, क्रोध दबाना।

संयो०क्रि०—देना।—लेना।

९ किसी दूसरे की चीज पर अनुचित अधिकार करना। कोई काम निकालने के लिये अथवा बेईमानी से किसी की चीज अपने पास रखना। जैसे—(क) उन्होने हमारे सौ रुपए दबा लिए। (ख) आपने उनकी किताब दबा ली।

सयो० क्रि०—बैठना।—रखना।—लेना।

१० झोंक के साथ बढ़कर किसी चीज को पकड़ लेना।

सयो० क्रि० —लेना।

११ —ऐसी अवस्था में ले आना जिसमें मनुष्य असहाय, दीन या विवश हो जाय। जैसे,—आजकल रुपए की तंगी ने उन्हे दबा दिया।

दबावा—संज्ञा पुं० [फा०] युद्ध की सामग्री मे लकड़ी का एक प्रकार

का बहुत बड़ा संदूक जिसमें कुछ आदमियों को बैठाकर गुप्त रूप से सुरंग खोदने अथवा इसी प्रकार का और कोई उपद्रव करने के लिये शत्रु के किले में उतार देते हैं।

दबाव—संज्ञा पुं० [हिं० दबाना] १ दबाने की क्रिया। चाँप।

क्रि० प्र०—डालना।—में आना या पड़ना।

२. दबाने का भाव। चाँप। ३ रोब।

क्रि० प्र०—डालना।—मानना।—में आना या पड़ना।

दबिला—संज्ञा पुं० [देश०] खुरपी या खुचनी के आकार का लकड़ी का बना हुआ हलवाइयों का एक औजार जिससे वे बेसन आदि भूनते, खोवा बनाते या चीनी की चाशनी आदि फेंटते हैं।

दबीज—वि० [फ़ा दबीज] जिसका दल मोटा हो। गाढ़ा। सगीन।

दबीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लिखनेवाला। मुंशी। २ एक प्रकार के महाराष्ट्र ब्राह्मणों की उपाधि।

दबूचना†—क्रि० स० [हिं० दबोचना] दे० 'दबोचना'। उ०—पंजे से दबूच चोंच से चमड़ी नोचकर—।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

दबूसा—संज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज का पिछला भाग। पिच्छल। २ बड़ी नाव का पिछला भाग जहाँ पतवार लगी रहती है। ३ जहाज का कमरा।—(लश०)।

दबेरना—क्रि० स० [हिं० दबाना] दे० 'दबोरना'।

दबेला—वि० [हिं० दबना + एला (प्रत्य०)] १ दबा हुआ। जिसपर दबाव पड़ा हो। २ जल्दी जल्दी होनेवाला (काम)। (लश०)।

दबैल—वि० [हिं० दबना + ऐल (प्रत्य०)] दबनेवाला। दब्बू। दबैला। उ०—सुख सों लाज सिधारो सुरग कों काहू की हौं न दबैल।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४०१।

दबैला—वि० [हिं० दबना + एला (प्रत्य०)] १. जिसपर किसी का प्रभाव या दबाव हो। दबाव में पड़ा हुआ। किसी से दबनेवाला। दब्बू।

दबोचना—क्रि० स० [हिं० दबाना] १ किसी को सहसा पकड़कर दबा लेना। धर दबाना। जैसे—बिल्ली ने तोते को जा दबोचा। २. छिपाना।

संयो० क्रि०—लेना।

दबोरना†—क्रि० स० [हिं० दबाना] अपने सामने ठहरने न देना। दबाना। उ०—दबकि दबोरे एक बारिधि में बोरे एक मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।—तुलसी (शब्द०)।

दबोस—संज्ञा स्त्री० [देश०] चकमक पत्थर।

दबोसना†—क्रि० स० [देश०] शराब पीना।

दबौता—संज्ञा पुं० [हिं० दबाना + औत (प्रत्य०)] लकड़ी का वह कुंदा जिसे पानी में भिगाए हुए नील के डंठलों आदि को दबाने के लिये ऊपर से रख देते हैं।

दबौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबाना + औनी (प्रत्य०)] १ कसेरों का लोहे का औजार जिसे वे बरतनों पर फूल पत्ते आदि उभारते हैं। २ भँजनी के ऊपर की ओर लगी हुई लकड़ी (जोलाहे)।

दब्ब(पु)१—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य, प्रा० दव्व] द्रव्य। धन। संपत्ति। सामान। उ०—जो मिलत मुद्दि भाइ। देउँ धन अवर दब्ब।—पृ० रा०, १२। ११७।

दब्बू२—वि० [हिं० दबना + ऊ (प्रत्य०)] दबनेवाला। दबैला।

दभ्र१—वि० [सं०] १ अल्प। थोड़ा। कम। २. कुंद। अतीक्ष्ण।

दभ्र२—संज्ञा पुं० सागर। समुद्र। उदधि [को०]।

दमंगल—संज्ञा पुं० [फ़ा० दंगल ? या डिं० दमगल] बखेड़ा। उपद्रव। युद्ध। उ०—विधि हुते वीर महाबलं गह बाल हुत दमगलं। विल समय केकया दवारे, गजे सुर गहर।—रघु० रू०, पृ० १५२।

दमंकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० दमकना] चमकना। उ०—बहु कृपान तरवारि चमकहिं। जनु दह दिसि दामिनी दमकहिं।—मानस, ६। ८६।

दमंस†—संज्ञा पुं० [हिं० दाम + अंश] मोल ली हुई जायदाद।

दम१—संज्ञा पुं० [सं०] १ दंड जो दमन करने के लिये दिया जाता है। सजा। २ बाह्येंद्रियों का दमन। इंद्रियों को वश में रखना और चित्त को बुरे कामों में प्रवृत्त न होने देना। ३ कीचड़। ४ घर। ५ एक प्राचीन महर्षि जिनका उल्लेख महाभारत में है। ६ पुराणानुसार मरुत राजा के पौत्र जो बभ्रु की कन्या इंद्रसेना के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—कहते हैं कि ये नौ वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। इनके पुरोहित ने समझा था कि जिसकी जननी को नौ वर्ष तक इस प्रकार इंद्रियदमन करना पड़ा है वह बालक स्वयं भी बहुत ही दमनशील होगा। इसी लिये उसने इनका नाम दम रखा था। ये वेद वेदांगों के बहुत अच्छे ज्ञाता और धनुर्विद्या में बड़े प्रवीण थे।

७. बुद्ध का एक नाम। ८ भीम राजा के एक पुत्र और दमयंती के एक भाई का नाम। ९ विष्णु। १० दबाव।

दम२—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ साँस। श्वास।

क्रि० प्र०—आना।—चलना।—जाना।—लेना।

मुहा०—दम अटकना = साँस रुकना, विशेषत: मरने के समय साँस रुकना। दम उखड़ना = दे० 'दम अटकना'। दम उलटना = (१) व्याकुलता होना। घबराहट होना। जी घबराना। (२) दे० 'दम घुटना'। दम खाना = दे० 'दम लेना'। दम खिंचना = दे० 'दम अटकना'। दम खींचना = (१) चुप रह जाना। न बोलना। (२) साँस खींचना। साँस ऊपर चढ़ाना। दम घुटना = हवा की कमी के कारण साँस रुकना। साँस न लिया जा सकना। दम घोंटना = (१) साँस न लेने देना। किसी को साँस लेने से रोकना। (२) बहुत कष्ट देना। दम घोंटकर मारना = (१) गला दबाकर मारना। (२) बहुत कष्ट देना। दम चढ़ना = दे० 'दम फूलना'। दम चुराना = जान बूझकर साँस रोकना।

विशेष—यह क्रिया विशेषत: मक्कार जानवर करते हैं। बंदर मार खाने के समय इसलिये दम चुराता है कि जिसमें मारने

वाला उसे मुरदा समझ ले। लोमड़ी कभी कभी अपने आप को मरी हुई जतलाने के लिये दम चुराती है। साज चढाने के समय मक्कार घोड़े भी साँस रोककर पेट फुला लेते हैं जिसमें पेटी या बंद अच्छी तरह न कसा जा सके।

दम टूटना = (१) साँस बद हो जाना। प्राण निकलना। (२) दौड़ने या तैरने आदि के समय इतना अधिक हाँफने लगना कि जिसमें आगे दौड़ा या तैरा न जा सके। दम तोड़ना = मरते समय झटके से साँस लेना। अंतिम साँस लेना। दम पचना = निरंतर परिश्रम के कारण ऐसा अभ्यास होना जिसमें साँस न फूले।—(कुश्तीबाज)। दम फूलना = (१) अधिक परिश्रम के कारण साँस का जल्दी जल्दी चलना। हाँफना। (२) दमे के रोग का दौरा होना। दम बंद करना = बलपूर्वक किसी को बोलने आदि से रोकना। दम बद होना = भय या आतंक आदि के कारण बिलकुल चुप रह जाना। दम भरना = (१) किसी के प्रेम अथवा मित्रता आदि का पक्का भरोसा रखना और समय समय पर अभिमानपूर्वक उसका वर्णन करना। जैसे,—(क) वे उनकी मुहब्बत का दम भरते हैं। (ख) हम आपकी दोस्ती का दम भरते हैं। (२) परिश्रम या दौड़ने आदि के कारण साँस फूलने लगना और थकावट आ जाना। परिश्रम के कारण थक जाना। जैसे,—इतनी सीढ़ियाँ चढ़ने में हमारा दम भर गया। (३) भालू का हाथ या लकड़ी मुँह पर रखकर साँस खींचना। इस क्रिया से उसका क्रोध शांत होता अथवा भोजन पचता है (कलदर)। (४) किसी को कुश्ती लड़ाकर थकाना (पहलवानों की परीक्षा)। दम मारना = (१) विश्राम करना। सुस्ताना। (२) बोलना। कुछ कहना। चूँ करना। जैसे,—आपकी क्या मजाल जो इस बात में दम भी मार सकें। (३) हस्तक्षेप करना। दखल देना। जैसे,—इस जगह कोई दम मारनेवाला भी नहीं है। दम लेना = विश्राम करना। ठहरना। सुस्ताना। दम साधना = (१) श्वास की गति को रोकना। साँस रोकने का अभ्यास करना। जैसे, प्राणायाम करनेवालों का दम साधना, गोता लगानेवालों का दम साधना। (२) चुप होना। मौन रहना। जैसे,—(क) इस मामले में अब हम भी दम साधेंगे। (ख) रुपयों का नाम सुनते ही आप दम साध गए।

२. नशे आदि के लिये साँस के साथ धूआँ खींचने की क्रिया।

क्रि० प्र०—खींचना।

मुहा०—दम मारना = गाँजे या चरस आदि को चिलम पर रखकर उसका धूआँ खींचना। दम लगाना = गाँजे या चरस का धूँआँ खींचना। दम लगाना—दे० 'दम मारना'।

३ साँस खींचकर जोर से बाहर फेंकने या फूँकने की क्रिया।

मुहा०—दम मारना = मंत्र आदि की सहायता से झाड़ फूँक करना। दम फूँकना = किसी चीज में मुँह से हवा भरना। दम भरना = कबूतर के पोटे में हवा भरना।

४ उतना समय जितना एक बार साँस लेने में लगता है। लमहा। पल।

मुहा०—दम के दम = क्षण भर। थोड़ी देर। जैसे,—वे यहाँ दम के दम बैठे, फिर चले गए। दम पर दम = बहुत थोड़ी थोड़ी देर पर। हर दम। बराबर। जैसे,—दम पर दम उन्हें कै आ रही है। दम बदम = दे० 'दम पर दम'।

५. प्राण। जान। जी।

मुहा०—दम उलझना = जी घबराना। व्याकुल होना। दम खाना = दिक करना। तंग करना। दम खुश्क होना = दे० 'दम सूखना'। दम चुराना = जी चुराना। जान बचाना। किसी बहाने से काम करने से अपने आपको बचाना। दम नाक में या नाक में दम आना = बहुत अधिक दुखी होना। बहुत तंग या परेशान होना। दम नाक में या नाक में दम करना अथवा लाना = बहुत कष्ट या दुःख देना। बहुत तंग या परेशान करना। दम निकलना = मृत्यु होना। मरना। (किसी पर) दम निकलना = किसी पर इतना अधिक प्रेम होना कि उसके वियोग में प्राण निकलने का सा कष्ट हो। बहुत अधिक आसक्ति होना। जैसे,—उसी को देखकर जीते हैं जिसपर दम निकलता है। दम पर आ बनना = (१) जान पर आ बनना। प्राणभय होना। (२) आपत्ति आना। आफत आना। (३) हैरानी होना। व्यग्रता होना। दम फड़क उठना या जाना = किसी चीज की सुंदरता या गुण आदि देखकर चित्त का बहुत प्रसन्न होना। जैसे,—उसकी कसरत देखकर दम फड़क गया। दम फड़कना = चित्त का व्याकुल होना। बेचैनी होना। दम फना होना = दे० 'दम सूखना'। जैसे,—(क) देने के नाम तो उनका दम फना हो जाता है। दम में दम आना = घबराहट या भय का दूर होना। चित्त स्थिर होना। दम में दम रहना या होना = प्राण रहना। जिंदगी रहना। दम सूखना = बहुत अधिक भय के कारण बिलकुल चुप हो जाना। बहुत डर के कारण साँस तक न लेना। प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। जैसे,—उन्हें देखते ही लड़के का दम सूख गया।

६ वह शक्ति जिससे कोई पदार्थ अपना अस्तित्व बनाए रखता और काम देता है। जीवनी शक्ति। जैसे,—(क) इस छाते में अब बिल्कुल दम नहीं है। (ख) इस मकान में कुछ दम तो है ही नहीं, तुम इसे लेकर क्या करोगे।

यौ०—दमदार = (१) जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो। (२) मजबूत। दृढ़।

७ व्यक्तित्व। जैसे, आपके ही दम से ये सब बातें हैं।

मुहा०—(किसी का) दम गनीमत होना = (किसी के) जीवित रहने के कारण कुछ न कुछ अच्छी बातों का होता रहना। गई बीती दशा में भी किसी के कार्यों का ऐसा होना जिसमें उसका आदर हो सके। जैसे,—इस शहर में अब तो और कोई पंडित नहीं रहा, पर फिर भी आपका दम गनीमत है।

८ संगीत में किसी स्वर का देर तक उच्चारण।

मुहा०—दम भरना = किसी स्वर का देर तक उच्चारण करते रहना।

यौ०—दमसाज = वह आदमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये स्वर भरता रहे।

९. पकाने की वह क्रिया जिसमें किसी खाद्य पदार्थ को बरतन में चढ़ाकर और उसका मुँह बंद करके आग पर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार बरतन के अंदर की भाफ बाहर नहीं निकलने पाती और उस पदार्थ के पकने में भाफ से बहुत सहायता मिलती है।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

यौ०—दम चूल्हा। दम आलू। दम पुख्त।

मुहा०—दम करना = किसी चीज को बरतन में रखकर और भाप रोकने के लिये उसका मुँह बंद करके आग पर चढ़ा देना। दम खाना = किसी पदार्थ का बंद मुँह के बरतन में भीतरी भाफ की सहायता से पकाया जाना। दम देना = किसी अधपकी चीज को पूरी तरह से पकाने के लिये उसे हलकी आँच पर रखकर उसका मुँह बंद कर देना जिसमें वह अच्छी तरह से पक जाय। दम पर आना = किसी पदार्थ के पकने में केवल इतनी कसर रह जाना कि थोड़ा दम देने से वह अच्छी तरह पक जाय। पक कर तैयारी पर आना। थोड़ी देर भाप बंद करके छोड़ देने की कसर रहना। दम होना = भाप से पकना।

१०. धोखा। छल। फरेब। जैसे,—आप तो इसी तरह लोगों को दम देते हैं।

यौ०—दम झाँसा = छल कपट। दम दिलासा = वह बात जो केवल फुसलाने के लिये कही जाय। झूठी आशा। दम पट्टी = (१) धोखा। फरेब। (२) दे० 'दम दिलासा'। दमबाज = (१) धोखा देनेवाला। (२) फुसलाने या बहकानेवाला।

मुहा०—दम देना = बहकाना। धोखा देना। फुसलाना। दम में आना = धोखे में पड़ना। फरेब में आना। जाल में फँसना। दम खाना = फरेब में आना। धोखे में पड़ना। दम में लाना = (१) बहकाना। फुसलाना। (२) धोखा देना। झाँसा देना।

११ तलवार या छुरी आदि की बाढ़। धार।

यौ०—दमदार = चोखा। तेज। पैना। धारदार।

दम³—संज्ञा पुं० [देश०] दरी बुननेवालों की एक प्रकार की तिकोनी कमाची जिसमें सवा सवा गज की तीन लकड़ियाँ एक साथ बँधी रहती हैं। ये करघे में पड़ी रहती है और उसमें जोती बँधी रहती है जो पैर के अँगूठे में बाँध दी जाती है। बुनने के समय इसे पैर से नीचे दबाते हैं।

दम⁴—संज्ञा पुं० [देश०] झोपड़ा। छप्पर। उ०—ये अपनी बस्ती को विश् कहते थे और उनके भीतर इनके झोपड़े दम और पू कहलाते थे।—प्रा० भा० प०, पृ० ९६।

दमक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमक का अनु०] चमक। चमचमाहट। द्युति। आभा।

दमक²—संज्ञा पुं० [सं०] दमनकर्ता। दबाने, रोकने या मात करनेवाला।

दमकना—क्रि० अ० [हिं० चमकना का अनु०] १ चमकना। चमचमाना। उ०—गजमोतिन से पूरे माँगा। लाल हिरा पुनि दमके आँगा।—कबीर सा०, पृ० ४५८। २. ज्वलित होना। सुलगना।

दमकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० दमकर्तृ] दमन करनेवाला। स्वामी। शासक [को०]।

दमकल—संज्ञा स्त्री० [हिं० दम + कल] १ वह यंत्र जिसमें एक या अधिक ऐसे नल लगे हों, जिनके द्वारा कोई तरल पदार्थ हवा के दबाव से, ऊपर अथवा और किसी ओर झोंक से फेंका जा सके। पंप।

विशेष—ऐसे यंत्रों में एक खजाना होता है जिसमें जल अथवा और कोई तरल पदार्थ भरा रहता है, और इसमें एक ओर पिचकारी और दूसरी ओर साधारण नल लगा रहता है। जब पिचकारी चलाते हैं तब खजाने में का पदार्थ जोर से दूसरे नल के द्वारा बाहर निकलता है।

२. उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से मकानों में लगी हुई आग बुझाई जाती है। पंप। ३ उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से कुएँ से पानी निकालते हैं। पंप। दे० 'दमकला'।

दमकला¹—संज्ञा पुं० [हिं० + कल] १. दमकल के सिद्धांत पर बना हुआ वह बड़ा पात्र जिसमें लगी हुई पिचकारी के द्वारा बड़ी बड़ी महफिलों मे लोगो पर गुलाबजल अथवा रंग आदि छिड़का जाता है। २ जहाज में वह यंत्र जिसकी सहायता से पाल खड़ा करते हैं। ३ दे० 'दमकल'।

दमकला²—संज्ञा पुं० [हिं० दम] दे० 'दमचूल्हा'।

दमखम—संज्ञा पुं० [फा० दमखम] १ दृढ़ता। मजबूती। उ०—कवि दूसरे के सामने दमखम से उपस्थित होते थे।—प्राचार्य०, पृ० २०३। २. जीवनी शक्ति। प्राण। ३ तलवार की धार और उसका झुकाव।

दमगजा—संज्ञा पुं० [हिं०] लड़ाई। धमचख। हलचल। युद्ध। उ०—सुर असुर दमगल लख सकल, थक प्रबल ऊथल पथल चल।—रघु० रू०, पृ० २२१।

दमघोष—संज्ञा पुं० [सं०] चेदि देश के प्रसिद्ध राजा शिशुपाल के पिता का नाम जो दमयंती के भाई थे। इनका दूसरा नाम श्रुतश्रवा भी है।

दमचा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत के कोने पर बनी हुई वह मचान जिसपर बैठकर खेतिहर अपने खेत की रखवाली करता है।

दमचूल्हा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लोहे का बना हुआ गोल चूल्हा जिसके बीच में एक जाली या झरना होता है।

विशेष—इस जाली के नीचे एक और बड़ा छिद्र होता है। इसकी जाली पर कुछ कोयले रखकर उसकी दीवार पर पकाने का बरतन रखते हैं और नीचे के छिद्र से उसमें हवा

की जाती है जिससे आग सुलगती रहती है और जाली में से उसकी राख नीचे गिरती रहती है।

दमजोड़ा—संज्ञा पुं० [?] तलवार।—(डिं०)।

दमड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दाम + ड़ा (प्रत्य०)] रुपया। धन। दाम।—(बाजारू)।

क्रि० प्र०—खर्चना।

मुहा०—दमड़े करना = बेचकर दाम खड़ा करना।

दमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविण (= धन) या दाम + ड़ी (प्रत्य०)] १. पैसे का आठवाँ भाग।

विशेष—कहीं कहीं पैसे के चौथे भाग को भी दमड़ी कहते हैं।

मुहा०—दमड़ी के तीन होना = बहुत सस्ता होना। कौड़ियों के मोल होना। दमड़ी की बुलबुल टका हसकाई = कम दाम की चीज पर अन्य खर्च अधिक पड़ जाना। उ०—तिनक-कर कहा ऊंह। दमड़ी की बुलबुल टका हसकाई हम अपने आप पी लेंगे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२६।

२ चिलचिल पक्षी।

दमथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ आत्मनियंत्रण या दमन। दम। २ दंड। सजा [को०]।

दमथु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दमथ'।

दमदमा[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दमदमह्] १ वह किलेबंदी जो लड़ाई के समय थैलों या बोरों में धूल या बालू भरकर की जाती है। मोरचा। धुस।

क्रि० प्र०—बाँधना।

२ धोखा। जाल। फरेब। दिखावा (को०)।

दमदमा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दमामह्] नगाड़ा। धौंसा। उ०—उसके दहने दमदमा, बाएँ उसी के बंब है।—संत तुरसी०, पृ० ४०।

दमदार—वि० [फ़ा०] १. जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो। जानदार। २ दृढ़। मजबूत। ३ जिसमें दम या साँस अधिक समय तक रह सके। जैसे,—इस हारमोनियम की भाथी बहुत दमदार है। ४ जिसकी धार बहुत तेज हो। चोखा।

दमन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ दबाने या रोकने की क्रिया। २ दंड जो किसी को दबाने के लिये दिया जाता है। ३. इंद्रियों की चंचलता को रोकना। निग्रह। दम। ४ विष्णु। ५ महादेव। शिव। ६ एक ऋषि का नाम। दमयंती इन्हीं के यहाँ उत्पन्न हुई थी। उ०—पटरानी सों कै मता, लै परिजन कछु साथ। आश्रम गयो नरेश तब जहाँ दमन मुनिनाथ।—गुमान (शब्द०)। ७ एक राक्षस का नाम। उ०—दमन नाम निश्चर अति घोरा। गर्जत भाषत वचन कठोरा।—रामाश्वमेध (शब्द०)। ८ दौना। ९ कुंद। १० वध। हनन (को०)। ११ रथ का चालक। सारथी (को०)। १२ योद्धा। युद्धकर्ता। सैनिक (को०)। १३. हरिभक्तिविलास में वर्णित एक पूजनोत्सव जिसमें चैत्र शुक्ल द्वादशी को विष्णु को दौना समर्पित किया जाता है।

दमन[2]—वि० १ दमन करनेवाला। दमनकर्ता। २ शांत [को०]।

दमन(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] दे० 'दमयंती'। उ०—दमनहि नलहि जो हंस मेरावा। तुम्ह हिरामन नावँ कहावा।—जायसी (शब्द०)।

दमनक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक छंद का नाम जिसमें तीन नगण, एक लघु और एक गुरु होता है। २. दौना।

दमनक[2]—वि० दमन करनेवाला। दमनशील।

दमनशील—वि० [सं०] जिसकी प्रकृति दमन करने की हो। दमन करनेवाला।

दमना(पु)[1]—क्रि० अ० [फ़ा० दम] थकना। दम लेना। उ०—फिरता फिरता जी दमता है बाबा, कौन रखे तेरे तन कूं यूं।—दक्खिनी०, पृ० १५।

दमना[2]—क्रि० स० [सं० दमन] दमन करना। वश में लाना।

दमना†[3]—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] द्रोणलता। दौना। उ०—दमना क मञ्जरी शालिक परिमल।—वर्ण०, पृ० २०।

दमनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप, जिसे अग्निदमनी कहते हैं।

दमनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] संकोच। लज्जा। उ०—सील सनी सजनीन समीप गुलाब कछू दमनी दरसावै।—गुलाब (शब्द०)।

दमनीय—वि० [सं०] १ दमन होने के योग्य। जो दमन किया जा सके। २ जो दबाया जा सके। जो खंडित किया जा सके। जो दबाकर चढ़ाया जा सके। उ०—कुँवरि मनोहर विजय बड़ि कीरति अति कमनीय। पावनहार विरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय।—तुलसी (शब्द०)।

दमपुख्त—वि० [फ़ा० दमपुख़्त] (वह खाद्य पदार्थ) जो दम देकर पकाया गया हो।

दमबाज—वि० [फ़ा० दम + बाज] दम देनेवाला। फुसलानेवाला। बहाना करनेवाला।

दमबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दम + बाजी] बहानेबाजी। दम देने या फुसलाने का काम। धोखेबाजी।

दमयंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्तिका] मदनबान वृक्ष।

दमयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] १ राजा नल की स्त्री जो विदर्भ देश के राजा भीमसेन की कन्या थी। वि० दे० 'नल'। २ एक प्रकार का बेला। मदनबान।

दमयिता—संज्ञा पुं० [सं० दमयितृ] १ दमन करनेवाला। दमकर्ता। २ विष्णु। ३ शिव [को०]।

दमरक—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'चमरख'।

दमरख—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'चमरख'। उ०—कहिं बान अटेरन टाट गजी, कहिं दमरख चमरख तकला है।—राम० धर्म०, पृ० ९२।

दमरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमड़ी] दे० 'दमड़ी'। उ०—पैसा दमरी नाहिं हमारे। केहि कारण मोहि राय हँकारे।—कबीर सा०, पृ० ४८५।

दमवंती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमयंती] दे० 'दमयंती'। उ०—सो

उपकार करो जिय माई। दमवंती ज्यों नलहि मिलाई।—हिंदी प्रेम गाथा०, पृ० २२०।

दमसाज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह आदमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये केवल स्वर भरता है।

दमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दमह्] एक प्रसिद्ध रोग। श्वास। साँस।

विशेष—इस रोग में श्वासवाहिनी नाली के अंतिम भाग में, जो फेफड़ों के पास होता है, आकुंचन और ऐंठन के कारण साँस लेने में बहुत कष्ट होता है, खाँसी आती है और कफ रुककर बड़ी कठिनता से धीरे धीरे निकलता है। इस रोग के रोगी को प्राय अत्यंत कष्ट होता है, और लोगों का विश्वास है कि यह रोग कभी अच्छा नहीं होता। इसी लिये इसके संबंध मे एक कहावत बन गई है कि दमा दम के साथ जाता है।

दमाग—संज्ञा पुं० [अ० दमाग़] दे० 'दिमाग' [को०]।

दमाद—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] कन्या का पति। जवाई। जामाता। उ०—ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।—ठाकुर०, पृ० २६।

दमादम—क्रि० वि० [अनु०] १. दम दम शब्द के साथ। २ लगातार। बराबर।

दमान—संज्ञा पुं० [देश०] दामन। पाल की चादर (लश०)।

दमानक—संज्ञा स्त्री० [देश०] तोपों की बाढ़। उ०—देव भूत पितर करम खल काल ग्रह मोहि पर दौरि दमानक सी दई है।—तुलसी। (शब्द०)। (ख) निज सुभट वीरन संग लै सु दमानकै चालीं भली।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३।

दमाम—संज्ञा पुं० [हिं० दमामा] दे० 'दमामा'। उ०—जीव जंजाले परि रहा, जमहि दमाम बजाय।—कबीर सा०, सं०, पृ० ७४।

दमामा—संज्ञा पुं०[फ़ा० दमामह्]नगाड़ा। नक्कारा। डंका। धौंसा।

दमारि(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दावानल] १ जंगल की आग। वन की आग। २. दमड़ी। उ०—पपरम आठो गाँठि न्याव बिनु चौगम पूजा। टकमि दमारि गुलाम आप को भयो असूदा।—पलटू० बानी, पृ० ११२२।

दमावति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] दे० 'दमयंती'। उ०—राजा नल कंह जैसे दमावति।—जायसी (शब्द०)।

दमावती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दमावति'।

दमाह—संज्ञा पुं० [हिं० दमा] बैलो का एक रोग जिसमें वे हाँफने लगते हैं।

दमित—वि० [सं०] १. जिसका दमन किया गया हो। उ०—कवि सामाजिक प्रतिबंधों के विरुद्ध अपनी दमित वृत्तियो का प्रकाशन करता है।—नया०, पृ० ३। २ पराजित। पराभूत। विजित (को०)।

दमी¹—वि० [सं० दमिन्] दमनशील।

दमी²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का जेबी या सफरी नैचा। दम लगाने का नैचा।

दमी³—वि० [फ़ा० दम] १. दम लगानेवाला। कश खींचनेवाला। २ गाँजा पीनेवाला। गँजेड़ी। जैसे,—दमी यार किसके। दम लगाके खिसके। (कहा०)।

दमी⁴—वि० [हिं० दमा] जिसे दमे का रोग हो। दमे के रोगवाला।

दमुना—संज्ञा पुं० [सं० दमुनस्] १ अग्नि। आग। २ शुक्र का एक नाम (को०)।

दमैया(पु)†—वि० [हिं० दमन+ऐया (प्रत्य०)] दमन करनेवाला। उ०—तुलसी तेहि काल कृपाल विना दूजो कौन है दारुन दु:ख दमैया।—तुलसी (शब्द०)।

दमोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दाम+ओड़ा (प्रत्य०)] दाम। मूल्य। कीमत। (दलाली)।

दमोदर—संज्ञा पुं० [सं० दामोदर] दे० 'दामोदर'।

दम्य¹—वि० [सं०] १. दमन करने योग्य। जो दमन किया जा सके। २ बैल जो बधिया करने योग्य हो।

दम्य²—संज्ञा पुं० बैल जो धुरा धारण कर सके। पुष्ट बैल [को०]।

दयंत‡—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य'। उ०—(क) देव दयंतहि भूतहि प्रेतहि कालहु सों कबहूँ न डरै जू।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३५। (ख) कीन्हेसि राकस भूत परेता। कीन्हेसि भोकस देव दयता।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० १२३।

दय—संज्ञा पुं० [सं०] दया। कृपा। करुणा।

दयत(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दैत्य'। उ०—मो नाम कुंढ बीसल न्रपति साप देह लभिय दयत।—पृ० रा०, १।५६१।

दयत²—संज्ञा पुं० [सं० दयित] दे० 'दयित'। उ०—सुहृद दयत, बल्लभ, सखा प्रीतम परम सुजान।—नंद० ग्रं०, पृ० ८९।

दयनीय—वि० [सं०] दया करने योग्य। कृपा करने योग्य।

दयनीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी दशा जिसे देखकर देखनेवाले के मन में दया उत्पन्न हो। उ०—ऐसी दयनीयता हुई है क्या। फूली है, भीतरी रुई है क्या।—आराधना, पृ० १६।

दया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मन का वह दु:खपूर्ण वेग जो दूसरे के कष्ट को दूर करने की प्रेरणा करता है। सहानुभूति का भाव। करुणा। रहम।

क्रि० प्र०—आना।—करना।

यौ०—दया दृष्टि।

विशेष—जिसके प्रति दया की जाती है उसके वाचक शब्द के साथ 'पर' विभक्ति लगती है। जैसे, किसी पर दया आना, किसी पर (या किसी के ऊपर) दया करना। शिष्टाचार के रूप में भी इस शब्द का व्यवहार बहुत होता है। जैसे, किसी ने पूछा 'आप अच्छी तरह'? उत्तर मिलता है—'आपकी दया से'।

२ दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को व्याही गई थी।

दयाकर—वि० [सं०] दया करनेवाला। दयालु। कृपालु। उ०—सुनु सर्वज्ञ कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो।—मानस, ७।१८।

दयाकर²—संज्ञा पुं० शिव [को०]।

दयाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

दयाकूर्च—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दयादृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के प्रति करुणा या अनुग्रह का भाव । रहम या मेहरबानी की नजर ।

दयानंद सरस्वती—संज्ञा पुं० [सं० दयानन्द सरस्वती] आर्यसमाज के संस्थापक जिनका समय सन् १८२४ से १८८३ तक है । वि० दे० 'आर्यसमाज' ।

दयानत—संज्ञा स्त्री० [अ०] सत्यनिष्ठा । ईमान ।

दयानतदार—वि० [अ० दयानत + फ़ा० दार] ईमानदार । सच्चा ।

दयानतदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० दयानत + फ़ा० दारी] ईमानदारी । सच्चाई ।

दयाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० दया + ना (प्रत्य०)] दयालु होना । कृपालु होना । उ०—आगम कारण भूप तब मुनिसों कह्यो सुनाई । मुनिवर दई उपासना परम दयालु दयाई ।—गुमान (शब्द०) ।

दयानिधान—संज्ञा पुं० [सं०] दया का खजाना । वह जिसमें बहुत अधिक दया हो । बहुत दयालु पुरुष ।

दयानिधि—संज्ञा पुं० [सं०] दया का खजाना । वह जिसके चित्त में बहुत दया हो । बहुत दयालु पुरुष । २. ईश्वर का एक नाम । उ०—दयानिधि तेरी गति लखि न परै ।—सूर (शब्द०) ।

दयापात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया के योग्य हो । वह जिसपर दया करना उचित हो ।

दयामण(पु)—वि० [सं० दयावत्, वहु व० दयावन्त, देशी दयावण, दयावन्न, हिं० दयावना] दया के योग्य । दयनीय । उ०—पहिली होय दयामणउ रवि आयमणउ जाइ ।—ढोला०, दू० ५४६ ।

दयामय[1]—वि० [सं०] १. दया से पूर्ण । दयालु ।

दयामय[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर का एक नाम ।

दयार[1]—संज्ञा पुं० [सं० देवदारु] देवदारु का पेड़ ।

दयार[2]—संज्ञा पुं० [अ०] प्रांत । प्रदेश ।

दयार[3]—वि० [सं० दयालु, हिं० दयाल] दे० 'दयालु' । उ०—भावागवन नसावे हो, गुरु होवे दयार ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८३ ।

दयार्द्र—वि० [सं०] दया से भीगा हुआ । दयापूर्ण । दयालु ।

दयाल[1]—वि० [सं० दयालु] दे० 'दयालु' ।

दयाल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया जो बहुत अच्छा बोलती है ।

दयाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दया] दे० 'दयालुता' । उ०—जिनपर संत दयाली कीन्हा । अगम वृक्ष कोइ बिरले लीन्हा ।—घट०, पृ० २१८ ।

दयालु—वि० [सं०] जिसमें दया का भाव अधिक हो । बहुत दया करनेवाला । दयावान् ।

दयालुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दयालु होने का भाव । दया करने की प्रवृत्ति ।

दयावंत—वि० [सं० दयावत् का बहुव०] दयायुक्त । दयालु ।

दयावती[1]—वि० स्त्री० [सं०] दया करनेवाली ।

दयावती[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभ स्वर की तीन श्रुतियों में से पहली श्रुति ।

दयावना(पु)—वि० पुं० [हिं० दया + आवना] [वि० स्त्री० दयावनी] दया के योग्य । दया का पात्र । दीन । उ०—देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ, बापुरे बराक कहा और राजा राना रांक को ।—तुलसी (शब्द०) ।

दयावान्—वि० [सं० दयावत्] [वि० स्त्री० दयावती] जिसके चित्त में दया हो । दयालु ।

दयावीर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया करने में वीर हो । वह जो दूसरे का दुःख दूर करने के लिये प्राण तक दे सकता हो ।

विशेष—साहित्य या काव्य में वीर रस के अंतर्गत युद्धवीर, दानवीर आदि जो चार वीर गिनाए गए हैं उनमें दयावीर भी है ।

दयाशील—वि० [सं०] दयालु । कृपालु ।

दयासागर—संज्ञा पुं० [सं०] जिसके चित्त में अगाध दया हो । अत्यंत दयालु मनुष्य ।

दयित[1]—वि० [सं०] १. प्यारा । प्रिय । उ०—दयित, देखते देव भक्ति कोई निरखते नहीं न्यक्ति जो ।—साकेत, पृ० ३११ ।

दयित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] पति । वल्लभ ।

दयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियतमा । पत्नी । स्त्री । उ०—दयिता वल्लभा प्रिया प्रेयसी होई ।—अनेक०, पृ० २६ ।

दर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शंख । २. गड्ढा । दरार । ३. गुफा । कदरा । ४. फाड़ने की क्रिया । विदारण । जैसे, पुरंदर । ५. डर । भय । खौफ । उ०—(क) मुखवारिधि—मदर, परम दर । वारय, वारय संसृति दुस्तर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दर जु कहत, कवि शंख को, दर ईषत् को नाम । दर डरते, राखो कुँवर मोहन गिरधर श्याम ।—नंददास (शब्द०) । (ग) साध्वस दर आतंक भय भीत भीर अो त्रास । डरत सहचरी सकुच तें गई कुँवरि के पास ।—नंददास (शब्द०) ।

दर[2]—संज्ञा पुं० [सं० दल] सेना । समूह । दल । उ०—(क) पलटा जनु वर्षा ऋतुराजा । जनु असाढ़ आवै दर साजा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) दुवन कहा आयु जहँ राजा । चढ़ा तुरक आवै दर साजा ।—जायसी (शब्द०) ।

दर[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] द्वार । दरवाजा । उ०—माया नटिन लकुटि कर लीने कोटिक नाच नचावै । दर दर लोभ लागि लै डोलति नाना स्वाँग करावै ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—दर दर मारा मारा फिरना = कार्यसिद्धि या पेट पालने के लिये एक घर से दूसरे घर फिरना । दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना ।

दर[4]—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल, थर अथवा फ़ा० दर] १. जगह । स्थान । २. वह स्थान जहाँ जुलाहे ताने की डंडियाँ गाड़ते हैं ।

दर[5]—संज्ञा स्त्री० १ भाव । निर्ख । जैसे,—कागज की दर आजकल

बहुत बढ़ गई है । २ प्रमाण । ठीक ठिकाना । जैसे,—उसकी बात की कोई दर नहीं । ३. कदर । प्रतिष्ठा । महत्व । महिमा । उ०—सिर केतु सुहावन फरहरै जेहि लखि पर दल थरहरै । सुरराज केतु की दर हरै जादव जोधा बर हरै ।—गोपाल (शब्द०) ।

दर³—वि० [सं०] किंचित् । थोड़ा । जरा सा ।

दरौ⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० दारु (= लकड़ी)] ईख । इक्षु । ऊख । उ०—कारन ते कारज है नीको । जथा कद ते दर रस फीको ।—विश्राम (शब्द०) ।

दरकंटिका—संज्ञा स्त्री० [दरकण्टिका] शतावरी । सतावर नामक ओषधि ।

दरक¹—वि० [सं०] डरनेवाला । डरपोक । भीरु ।

दरक²—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरकना] १. जोर या दाब पड़ने से पड़ा हुआ दरार । चीर । २ दरकने की क्रिया ।

दरकच—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोरा + अनु० कच] १ वह चोट जो जोर से रगड़ या ठोकर खाने से लगे । २. वह चोट जो कुचल जाने से लगे ।

क्रि० प्र०—लगना ।

दरकचाना—क्रि० स० [हिं० दर + कचरना] थोड़ा कुचलना । इतना कुचलना जितने में कोई वस्तु कई खंड हो जाय पर चूर्ण न हो ।

दरकटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दर (= भाव) + कटना] पहले से किसी वस्तु की दर या निर्ख काट देने की क्रिया । दर की मुकर्ररी । भाव का ठहराव ।

दरकना—क्रि० अ० [सं० दर (= फाड़ना)] दाब या जोर पड़ने से फटना । चिरना । विदीर्ण होना । जैसे, कपड़ा दरकना, छाती दरकना । उ०—क्यों यों दाग्यों लौं हियो दरकत नहिं नँदलाल ।—बिहारी (शब्द०) ।

दरका—संज्ञा पुं० [हिं० दरकना] १ शिगाफ । दरार फटने का चिह्न । २ वह चोट जिससे कोई वस्तु दरक या फट जाय । उ०—सखी वियोगिनि दाड़िमन, कंटक श्रम निदान । कुसत नविन दरको लगो शुकमुख किंशुकवान ।—गुमान (शब्द०) ।

दरकाना¹—क्रि० स० [हिं० दरकना] फाड़ना । उ०—ढीठ लँगर कन्हाई मोरी आँगी दरकाई रे ।—(गीत) ।

दरकाना²—क्रि० अ० फटना । उ०—पुलकित अंग अँगिया दरकानी उर आनंद अंचल फहरात ।—सूर (शब्द०) ।

दरकार—वि० [फ़ा०] आवश्यक । अपेक्षित । जरूरी ।

दरकिनार—क्रि० वि० [फ़ा०] अलग । अलहदा । एक ओर । दूर ।

मुहा०—...तो दर किनार=कुछ कथा नहीं । दूर की बात है । बहुत बड़ी बात है । जैसे,—वह कुछ देना तो दरकिनार मैं उससे बात भी नहीं करना चाहता ।

दरकूच—क्रि० वि० [फ़ा०] बराबर यात्रा करता हुआ । मंजिल दरमंजिल । उ०—(क) रामचंद्र जी की चमू राज्यश्री विभीषण की, रावण की मीचु दरकूच चलि आई है ।—केशव । (शब्द०) । (ख) दस सहस बाजे दराब साजे अरु अराबो संग लै । दरकूच आवत हैं चलो मन माँहि जंग उमंग लै ।—सूदन (शब्द०) ।

दरक्क⁽¹⁾—संज्ञा पुं० [देश० ?] ऊँट । उ०—दिन लाख घटे हैवर दरक्क । जवनान पड़े निस दिवस जक्क ।—रा० रू०, पृ० ७३ ।

दरख़त⁽¹⁾—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरख्त] दे० 'दरख्त' ।

दरखास्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दरख्वास्त] १ निवेदन । किसी बात के लिये प्रार्थना ।

क्रि० प्र०—करना ।

२ प्रार्थनापत्र । निवेदनपत्र । वह लेख जिसमें किसी बात के लिये विनती की गई हो ।

मुहा०—दरखास्त गुजरना = दे० 'दरखास्त पड़ना' । दरखास्त देना = प्रार्थनापत्र उपस्थित करना । कोई ऐसा लेख भेजना या सामने रखना जिसमें किसी बात के लिये प्रार्थना की गई हो । दरखास्त पड़ना = प्रार्थनापत्र उपस्थित किया जाना । किसी के ऊपर दरखास्त पड़ना = किसी के विरुद्ध राजा या हाकिम के यहाँ आवेदनपत्र देना ।

दरख्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरख्त] पेड़ । वृक्ष ।

दरगह⁽¹⁾—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दरगाह] दरबार । सभा । उ०—चाँदरा तणो वणियो मदन घर वीणा दरगह धसे ।—रघु० रू०, पृ० ४६ ।

दरगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ चौखट । देहरी । २. दरबार । कचहरी । उ०—चढ़ी मदन दरगाह में तेरे नाम कमान ।—रसनिधि (शब्द०) । ३ किसी सिद्ध पुरुष का समाधि-स्थान । मकबरा । मजार । जैसे, पीर की दरगाह । ४. मठ । मंदिर । तीर्थस्थान ।

दरगुजर—वि० [फ़ा० दरगुजर] १ अलग । बाज । वंचित ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—दरगुजर करना = टालना । हटाना ।

२ मुआफ । क्षमाप्राप्त ।

मुहा०—दरगुजर करना = जाने देना । छोड़ देना । दंड आदि न देना । मुआफ करना ।

दरगुजरना—क्रि० अ० [फ़ा० दरगुजर + हिं० ना (प्रत्य०)] १. छोड़ना । त्यागना । बाज आना । २ जाने देना । दंड आदि न देना । क्षमा करना । मुआफ करना ।

दरगाह⁽¹⁾—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरगाह] दरबार । दरगाह । उ०—सहजादे निज अंग सनाह मोगे खाग दरगह मांहे ।—रा० रू०, पृ० ६५ ।

दरज—संज्ञा स्त्री० [सं० दर (= दरार)] दरार । शिगाफ । दराज । वह खाली जगह जो फटने या दरकने से पड़ जाय । उ०—घटहिं में दया के दरजो, तो दरज मिलावहिं हो ।—धरम०, पृ० ४८ ।

यौ०—दरजबंदी = दीवार की दरारों को चूना गारा भरकर बंद करने का काम ।

जन—संज्ञा पुं० [अं० डजन, हिं० दर्जन] दे० 'दर्जन'।

जा¹—संज्ञा पुं० [अ० दर्जह, हिं० दरजा] दे० 'दर्जा'।

जा²—संज्ञा पुं० [हिं० दरजा] लोहा ढालने का एक औजार।

जिन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दर्जिन'।

जी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर्जी] दे० 'दर्जी'। उ०—दृग दरजी बरुनी सुई रेसम डोरे लाल।—स० सप्तक, पृ० १९२।

ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ दलने या पीसने की क्रिया। २ ध्वंस। विनाश।

णि—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवाह। धारा। २ भौंर। आवर्त। ३. तरंग। लहर। ४. तोड़ना। खंडन [को०]।

णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दरणि'।

त्, दरद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पर्वत। पहाड़। २ बधा। बंध। बाँध। ३ प्रपात। झरना। ४. डर। भय। ५ हृदय। ६ म्लेच्छ जाति [को०]।

थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कंदरा। गुफा। २. गर्त। गड्ढा। ३ चारे की तलाश करना। ४. पलायन [को०]।

द¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर्द] १. पीड़ा। व्यथा। कष्ट। उ०—दरद दवा दोनों रहै पीतम पास तयार।—रसनिधि (शब्द०)। २ दया। करुणा। तर्स। सहानुभूति। उ०—माई नेकहु न दरद करति हिलकिन हरि रोवै।—सूर (शब्द०)।

विशेष—दे० 'दर्द'।

द²—वि० [म०] भयदायक। भयकर।

द³—संज्ञा पुं० १ काश्मीर और हिंदूकुश पर्वत के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम।

विशेष—बृहत्संहिता में इस देश की स्थिति ईशान कोण मे बतलाई गई है। पर आजकल जो 'दरद' नाम की पहाड़ी जाति है वह लद्दाख, गिलगित, चित्राल, नागर हुंजा आदि स्थानों में ही पाई जाती है। प्राचीन यूनानी और रोमन लेखकों के अनुसार भी इस जाति का निवासस्थान हिंदूकुश पर्वत के आसपास ही निश्चित होता है।

२. एक म्लेच्छ जाति, जिसका उल्लेख मनुस्मृति, हरिवंश आदि में है।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि पौंड्रक, ओड्र, द्राविड, कांबोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खस पहले क्षत्रिय थे, पीछे संस्कारविहीन हो जाने और ब्राह्मणों का दर्शन न पाने से शूद्रत्व को प्राप्त हो गए। आजकल जो दारद नाम की जाति है वह काश्मीर के आसपास लद्दाख से लेकर नागरहुंजा और चित्राल तक पाई जाती है। इस जाति के लोग अधिकांश मुसलमान हो गए हैं। पर इनकी भाषा और रीति नीति की ओर ध्यान देने से प्रकट होता है कि ये आर्यकुलोत्पन्न हैं। यद्यपि ये लिखने पढ़ने में मुसलमान हो जाने के कारण फारसी अक्षरों का व्यवहार करते हैं, तथापि इनकी भाषा काश्मीरी से बहुत मिलती जुलती है।

३ ईंगुर। सिंगरफ। हिंगुल।

दरदमंद—वि० [फा० दर्दमंद] १ दुखी। दर्दवाला। २ दयालु। जो दूसरे को दुखी देखकर स्वयं दुःख का अनुभव करे। उ०—फरन कुबेर कलि कीरति कमाल करि ताले बंद मरद दरदमंद दाना था।—अकबरी०, पृ० १४४।

दरदर¹—क्रि० वि० [फा० दर दर] १. द्वार द्वार। दरवाजे दरवाजे। उ०—माया नटिन लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै। दर दर लोभ लागि लै डोलै नाना स्वाँग करावै।—सूर (शब्द०)। २ स्थान स्थान पर। जगह जगह। उ०—दर दर देखो दरीखानन में दौरि दौरि दुरि दुरि दामिनी सी दमकिदमकि उठै।—पद्माकर (शब्द०)।

दरदर†²—वि० [हिं०] दे० 'दरदरा'।

दरदरा—वि० [सं० दरण (=दलना)] [वि०स्त्री० दरदरी] जिसके कण स्थूल हों। जिसके रवे महीन न हों, मोटे हों। जिसके कण टटोलने से मालूम हों। जो खूब बारीक न पिसा हो। जैसे, दरदरा आटा, दरदरा चूर्ण।

दरदराना—क्रि० स० [सं० दरण] १ किसी वस्तु को इस प्रकार हलके हाथ से पीसना या रगड़ना कि उसके मोटे मोटे रवे या टुकड़े हो जायँ। बहुत महीन न पीसना, थोड़ा पीसना। जैसे,—मिर्च थोड़ा दरदरा कर ले आओ, बहुत महीन पीसने का काम नहीं। † २ जोर से दाँत काटना।

दरदरी¹—वि० स्त्री० [हिं० दरदरा] मोटे रवे की। जिसके रवे मोटे हों।

दरदरी⁽ᵖ⁾²—संज्ञा [सं० धरित्री] पृथ्वी। जमीन। धरती (डिं०)।

दरदवंत⁽ᵖ⁾—वि० [फा० दर्द+हिं० वंत (प्रत्य०)] १ कृपालु। दयालु। सहानुभूति रखनेवाला। उ०—सज्जन हो या बात को करि देखो जिय गौर। बोलनि चितवनि चलनि वह दरदवंत की ओर।—रसनिधि (शब्द०)। २ दुखी। जिसके पीडा हो। पीड़ित। उ०—लेउ न मजनू गोर ढिग कोऊ लैलै नाम। दरदवंत को नेकु तौ लेन देहु विश्राम।—रसनिधि (शब्द०)।

दरदवंद⁽ᵖ⁾—वि० [फ़ा० दर्दमंद] १ व्यथित। पीड़ित। जिसके दर्द हो। २ दुखी। खिन्न।

दरदाई⁽ᵖ⁾—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दर्द से युक्त होने का भाव। वेदना। दरद। उ०—पीकी मौहि लहर उठत छुटत रैन नाहीं। कहा कहूँ करमन की रेख हिय की दरदाई।—तुलसी० श०, पृ० ६।

दरदालान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दालान के बाहर का दालान।

दरदी—वि० [फ़ा० दर्द, हिं० दरद+ई (प्रत्य०)] जिसे दुःख मिला हो। दुखी। पीडित। उ०—मीरा कहती है मतवाली, दरदी को दरदी पहचाने। दरद और दरदी के रिश्तों को, पगली मीरा क्या जाने।—हिमत०, पृ० ७६।

दरद्द—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर्द] दे० 'दरद' या 'दर्द'।

दरद्री—वि० [सं० दरिद्र] निर्धन। कंगाल। उ० बेहथ्थ दरद्री द्रव्य ज्यों अचल सचल सिर दिष्षइय। धंगार वेम पेमहकरन। जित्ति किति अभिलष्षई।—पृ० रा०, १२। ६६।

दरन⁽ᵖ⁾—संज्ञा पुं० [सं० दरण] दे० 'दरण'।

दरना²—क्रि० स० [सं० दरण] १. दलना। चूर्ण करना। पीसना। २. ध्वस्त करना। नष्ट करना।

दरप⑤†—संज्ञा पुं० [सं० दर्प] दे० 'दर्प'। उ०—तरह मदन रत तरुणी देखि दिल दरप जाय दट।—रघु० रू०, पृ०

दरपक⑤—संज्ञा पुं० [सं० दर्पक] दे० 'दर्पक'। उ०—तोहि पाइ कान्ह प्यारी होइगी विराजमान ऐसे जैसे छीने संग दरपक रति है।—कविता०, पृ० ५३।

दरपन—संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] [स्त्री० अल्पा० दरपनी] मुँह देखने का शीशा। आईना। मुकुर। आरसी।

दरपना⑤—क्रि० अ० [सं० दर्पण] १. ताव में आना। क्रोध करना। २. गर्व या अहंकार करना। घमंड करना।

दरपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरपन] मुँह देखने का छोटा शीशा। छोटा आईना।

दरपरदा—क्रि० वि० [फ० दरपर्दह्] चुपके चुपके। आड़ में। छिपाकर।

दरपित—वि० [सं० दर्पित] दे० 'दर्पित'।

दरपेश—क्रि० वि० [फ़ा०] आगे। सामने।

मुहा०—दरपेश होना = उपस्थित होना। सामने आना। जैसे, मामला दरपेश होना।

दरबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. दरवाजा। बड़ा दरवाजा। २ परकोटा। चारदीवारी। ३. दो राष्ट्रों के मध्य का अंतर [को०]।

दरबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. किसी चीज की दर या भाव निश्चित करने की क्रिया। २. लगान आदि की निश्चित की हुई दर। ३. अलग अलग दरजा विभाग आदि निश्चित करने की क्रिया।

दरब—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] १ धन। दौलत। २. धातु। ३ मोटी किनारदार चादर।

दरबदर—क्रि० वि० [फ़ा०] द्वार द्वार। दर दर। उ०—उनकी असल जाने नहीं। दिल दर बदर ढूँढे कुफर।—तुरसी० श०, पृ० २७।

दरबरा¹—वि० [सं० दरण] १ दरदरा। २ ऐसा रास्ता जिसमें ठीकरे पड़े हों (कहारों की बोली)।

दरबर²—संज्ञा स्त्री० [देशी दडवड़ (= शीघ्र)] उतावली। हड़बड़ी। जल्दबाजी। शीघ्रता। उ०—अहो हरि आए महा हरबर में, कहा बनि आवै टहल दरबर में। साधु सिरोमनि घर मैं साधन धोखे बसे परघर में।—घनानंद, पृ० ४४०।

दरबराना¹—क्रि० स० [हिं० दरबर] १ दरबरा करना। थोड़ा पीसना। २ किसी को इस प्रकार डरा देना कि वह किसी बात का खंडन न कर सके। घबरा देना। ३ दबाना। दबाव डालना।

दरबराना⑤²—क्रि० अ० [देशी दडवड, हिं० दरबर] १ शीघ्रता करना। हड़बड़ी करना। २ छटपटाना। आकुल होना (लाक्ष०)। उ०—देखन कौं दृग दरबरात, प्रान मिलन अरबरात सिथिल होति अगनि गतिमति तितही करति गवन।—घनानंद, पृ० ४२०।

दरबहरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मद्य जो कुछ वनस्पतियों को सड़ाकर बनाया जाता है।

दरबाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबान] दे० 'दरबान'।

दरबा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर] १ कबूतरों, मुरगियों आदि के रखने के लिये काठ का खानेदार संदूक, जिसके एक एक खाने में एक एक पक्षी रखा जाता है। २ दीवार, पेड़ आदि में वह खोंडरा या कोटर जिसमें कोई पक्षी या जीव रहता है।

दरबान—संज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० द्वारवान्] ड्योढ़ीदार। द्वारपाल।

दरबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दरबान का काम। द्वारपाल का कार्य।

दरबार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० दरबारी] १ वह स्थान जहाँ राजा या सरदार मुसाहबों के साथ बैठते हैं। २. राजसभा। कचहरी। उ०—करि मज्जन सरयू जल गए भूप दरबार।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—दरबारदार (१) दे० 'दरबारी'। (२) खुशामदी। चापलूस। दरबारदारी। दरबार आम। दरबार खास। दरबार वृत्ति।

मुहा०—दरबार करना = राजसभा में बैठना। दरबार खुला = दरबार में जाने की आज्ञा मिलना। दरबार बंद होना = दरबार में जाने की रोक होना। दरबार बाँधना = घूस बाँधना। रिश्वत मुकर्रर करना। मुँह भरना। दरबार लगना = राजसभा के सभासदों का इकट्ठा होना।

३ महाराज। राजा (रजवाड़ों में प्रयुक्त)। ४. अमृतसर में सिक्खों का मंदिर जिसमें 'ग्रंथ साहब' रखा हुआ है। ५. दरवाजा। द्वार। उ०—तब बोलि उठ्यो दरबार विलासी। द्विजद्वार लसै जमुनातटवासी।—केशव (शब्द०)।

दरबारदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दरबार में हाजरी। राजसभा में उपस्थिति। २ किसी के यहाँ बार बार जाकर बैठने और खुशामद करने का काम।

क्रि० प्र०—करना।

दरबारविलासी⑤—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबार + सं० विलासी] द्वारपाल। दरबान। उ०—तब बोलि उठ्यो दरबारविलासी। द्विजद्वार लसै जमुनातटवासी।—केशव (शब्द०)।

दरबारवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [फ० दरबार + सं० वृत्ति] राजा द्वारा प्राप्त होनेवाली वृत्ति। राज्य द्वारा दी हुई जीविका। उ०—नियत दरबारवृत्ति पानेवाले हिंदी कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी अकबरी दरबार द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत हुए थे।—अकबरी०, पृ० ३२।

दरबार साहब—संज्ञा पुं० [फा० दरबार + अ० साहब] अमृतसर स्थित सिक्खों का प्रसिद्ध तीर्थस्थल गुरुद्वारा जहाँ उनका धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहब' रखा हुआ है।

दरबारी¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] राजसभा का सभासद। दरबार में बैठनेवाला आदमी।

दरबारी²—वि० दरबार का। दरबार के योग्य। दरबार से संबंध रखनेवाला। जैसे, दरबारी पोशाक।

दरबारी कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [फा० दरबारी + हिं० कान्हड़ा] एक

राग जिसमें शुद्ध ऋषभ के अतिरिक्त बाकी सब कोमल स्वर लगते हैं।

दरवी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] करछी। कलछी। करछुल।

दरभ[1]—संज्ञा पुं० [सं० दर्भ] दे० 'दर्भ'।

दरभ[2]—संज्ञा पुं० [?] बंदर। उ०—कपि शाखामृग बलीमुख कीश दरभ लंगूर। बानर मर्कट प्लवँग हरि तिन कहँ भजु मन-कूर।—नंददास (शब्द०)।

दरमंद—वि० [फ़ा० दरमादह] आजिज। दुखी। निःसहाय। बेकस। उ०—खालिक तो दरमंद जगाया बहुत उमेद जवाब न पाया।—रै० बानी, पृ० ५५।

दरमन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] इलाज। औषध।

यौ०—दवादरमन = उपचार।

दरमाँदा—वि० [फ़ा० दरमान्दह] लाचार। असहाय। संकटग्रस्त। उ०—दरमाँदा ठाढो तुम दरबार। तुम बिन सुरत करे को मेरी दरसन दीजै खोल किवार।—कबीर ग्र०, भा० २, पृ० ६०।

दरमा[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाँस की वह चटाई जो बंगाल में झोपड़ियों की दीवार बनाने में काम आती है।

दरमा[2]—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] अनार।

दरमाहा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरमाह्] मासिक वेतन।

दरमियान[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मध्य। बीच।

दरमियान[2]—क्रि० वि० बीच में। मध्य में।

दरमियानी[1]—वि० [फ़ा०] बीच का। मध्य का।

दरमियानी[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ मध्यस्थ। बीच में पड़नेवाला व्यक्ति। दो आदमियों के बीच के झगड़े का निबटेरा करनेवाला मनुष्य। २ दलाल।

दरम्यानⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरमियान] दे० 'दरमियान'। उ०—अव्वल देखो ये कथा, उसे नाम न था, नाम दरम्याने पैदा हुआ चल, चल, चल।—दक्खिनी०, पृ० ५७।

दरया—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर्या] दे० 'दरिया'।

दरयाव—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरयाब] दे० 'दरियाव'। उ०—ऐसे सब खलक तें सकल सकिलि रही, राव मैं सरम जैसें सलिल दरयाव में।—मति० ग्रं०, पृ० ३६८।

दररना[1]—क्रि० स० [देश०] दे० 'दरना'।

दररना[2]—क्रि० स० [हिं० दरेर] दे० 'दरेरना'।

दररानाⓅ[1]—क्रि० स० [अनु०] हड़बड़ी या तेजी से आना।

दरराना[2]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दरदराना'।

दरवाजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरवाजह] १. द्वार। मुहाना।

मुहा०—दरवाजे की मिट्टी खोद डालना या ले डालना = बार बार दरवाजे पर आना। दरवाजे पर इतनी बार जाना आना कि उसकी मिट्टी खुद जाय।

२. किवाड़। कपाट।

क्रि० प्र०—खटखटाना।—खोलना।—बंद करना।—भेड़ना।

दरवी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] १. साँप का फन।

यौ०—दरवीकर = साँप। फनवाला साँप।

२ करछुल। पौना। ३ सँड़सी। दस्तपनाह। दस्पना।

दरवेश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० दरवेशी] फकीर। साधु।

दरवेशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] फकीरी। साधुता [को०]।

दरश—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] दे० 'दर्श'।

दरशन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन'।

दरशना—क्रि० अ०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसना'।

दरशानाⓅ—क्रि० अ०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसाना'।

दरस—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] १ देखादेखी। दर्शन। दीदार। उ०—दरस परस मज्जन अरु पाना।—तुलसी। (शब्द०)।

यौ०—दरस परस।

२ भेंट। मुलाकात। ३ रूप। छवि। सुंदरता।

दरसन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन'।

दरसनाⓅ[1]—क्रि० अ० [सं० दर्शन] दिखाई पड़ना। देख पड़ना। देखने में आना। दृष्टिगोचर होना। उ०—श्री नारद की दरसै मति सी। लोपै तमता अपकीरति सी।—केशव (शब्द०)।

दरसना[2]—क्रि० स० [सं० दर्शन] देखना। लखना। उ०—(क) बन राम शिला दरसी जबही।—केशव। (शब्द०)। (ख) नर अघ भए दरसे तरु मोरे।—केशव। (शब्द०)।

दरसनियाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] विस्फोटक, महामारी आदि बीमारियों की शांति के लिये पूजा आदि करनेवाला। झाड़ फूँक आदि करनेवाला।

दरसनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] दर्पण। शीशा। आईना। उ०—नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चकचाप। दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहिं मन अभिलाष।—तुलसी (शब्द०)।

दरसनीयⓅ—वि० [सं० दर्शनीय] दे० 'दर्शनीय'।

दरसनी हुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] १. वह हुंडी जिसके भुगतान की मिति को दस दिन या उससे कम दिन बाकी हों। (इस प्रकार की हुंडी बाजार में दरसनी हुंडी के नाम से बिकती थी। २ कोई ऐसी वस्तु जिसे दिखाते ही कोई वस्तु प्राप्त हो जाय।

दरसाना—क्रि० स० [सं० दर्शन] १. दिखलाना। दृष्टिगोचर करना। उ०—चकित जानि जननी जिय रघुपति वपु विराट दरसायो।—रघुराज (शब्द०)। २ प्रकट करना। स्पष्ट करना। समझाना। उ०—रामायन भागवत सुनाई। दोन्ही भक्ति राह दरसाई।—रघुराज (शब्द०)।

दरसाना[2]—क्रि० अ० दिखाई पड़ना। देखने में आना। दृष्टिगोचर होना। उ०—(क) डाढ़ी मे अरु वदन मे सेत बार दरसाहिं। रघुराज (शब्द०)। (ख) प्रमुदित करहिं परस्पर बाता। सखि तव अधर स्याम दरसाता।—रघुराज (शब्द०)।

दरसावना—क्रि० स० [हिं० दरसाना] दे० 'दरसाना'।

दरहाल—क्रि० वि० [फ़ा० दर + अ० हाल] अभी। इसी समय।

उ०—दादू कारणि कंत के खरा दुखी बेहाल। मीरां मेरा मिहार करि, दे दरसन दरहाल।—दादू०, पृ० ६१।

दराँती—संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री] १ हँसिया। घास या फसल काटने का ग्रौजार।

मुहा०—दराँती पड़ना=कटोनी पड़ना। कटाई प्रारंभ होना।

२ दे० 'दरेंती'।

दरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरंह्; तुल० सं० दरा (=गुफा)] दे० 'दर्रा'। उ०—खैवरा का दरा सों वार माँगो का इरादा।—शिखर०, पृ० ५१।

दराई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दलने की मजदूरी। २. दलने का काम।

दराज¹—वि० [फ़ा० दराज] बड़ा। भारी। लंबा। दीर्घ।

दराज²—क्रि० वि० [फ़ा०] बहुत। अधिक।

दराज³—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरार] दरज। शिगाफ। दरार।

दराज⁴—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रावर] मेज में लगा हुग्रा संदूकनुमा खाना जिसमें कुछ वस्तु रखकर ताला लगा सकते हैं।

दरार—संज्ञा स्त्री० [सं० दर] वह खाली जगह जो किसी चीज के फटने पर लकीर के रूप में पड़ जाती है। शिगाफ। उ०—(क) ग्रवहुं ग्रवनि बिहरत दरार मिस को ग्रवसर सुधि कीन्हें।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुमिरि सनेह सुमित्रा सुत को दरकि दरार न ग्राई।—तुलसी (शब्द०)।

दरारना(ऎ)—क्रि० ग्र० [हिं० दरार+ना (प्रत्य०)] फटना। विदीर्ण होना। उ०—बाजहि भेरि नफीर ग्रपारा। सुनि कादर उर जाहि दरारा।—तुलसी (शब्द०)।

दरारा—संज्ञा पुं० [हिं० दरना] दरेरा। धक्का। रगड़ा। उ०—दल के दरारे हुते कमठ करारे फूटे केरा कैसे पात बिहराने फन सेस के।—भूषण (शब्द०)।

दरिंदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरिन्दह्] फाड़ खानेवाला जंतु। मांसभक्षक वनजंतु। जैसे, शेर, कुत्ता, ग्रादि।

दरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दरी' (को०)।

दरित—वि० [सं०] १ भयालु। डरपोक। भीत। २ विदीर्ण। फटा हुग्रा (को०)।

दरिदर‡—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र] १ कंगाली। निर्धनता। गरीबी। २ कंगाल। निर्धन।

दरिदर‡—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दरिद्र] दे० 'दरिद्र'।

दरिद्र¹—वि० [सं०] [स्त्री० दरिद्रा] जिसके पास निर्वाह के लिये यथेष्ट धन न हो। निर्धन। कंगाल।

यौ०—दरिद्र नारायण=कंगाल। भिक्षुक।

दरिद्र²—संज्ञा पुं० १ निर्धन मनुष्य। कंगाल ग्रादमी। †२ दारिद्र्य। कंगाली।

दरिद्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंगाली। निर्धनता।

दरिद्राण—संज्ञा पुं० [सं०] गरीबी। धनहीनता (को०)।

दरिद्रायक—वि० [सं०] धनहीन। कंगाल (को०)।

दरिद्रित—वि० [सं०] दे० 'दरिद्रायक'।

दरिद्री‡—वि० [सं० दरिद्रिन, ग्रथवा सं० दरिद्र+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'दरिद्र'।

दरिया¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ नदी। २. समुद्र। सिंधु। उ०—उ०—(क) तजि ग्रास भो दास रघुपति को दसरत्थ के दानि दया दरिया।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दरिया दधि किय मथन मोम फट्टिय खह्र तुट्टिय।—पृ० रा०, १।६३६।

यौ०—दरियादिल=उदार।

दरिया²—संज्ञा पुं० [हिं० दरना] दलिया।

दरिया³—संज्ञा पुं० [देश०] निर्गुण पंथी एक संत।

यौ०—दरियादासी।

दरियाई¹—वि० [फ़ा०] १ नदी संबंधी। २ नदी में रहनेवाला। जैसे, दरियाई घोड़ा। ३. नदी के निकट का। ४ समुद्र संबंधी।

दरियाई²—संज्ञा स्त्री० पतंग को दूर ले जाकर हवा में छोड़ने की क्रिया। भोखी। छुड़ैया।

क्रि० प्र०—देना।

दरियाई³—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दाराई] एक प्रकार की रेशमी पतली साटन। उ०—सच है, ग्रौर तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे सफेद फर्श पर गोबर का चोंथ, सोने की सिकड़ी में लोहे की घंटी ग्रौर दरियाई की ग्रंगिया में मूंज की बखिया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३७७।

दरियाई⁴—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दरिया] एक तरह की तलवार। उ०—दिपती दरियाई दोनों घाई झटनि चलाई प्रति उमही।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३८।

दरियाई घोड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाई+हिं० घोड़ा] गैंडे की तरह का मोटी खाल का एक जानवर जो ग्रफ्रिका में नदियों के किनारे की दलदलों ग्रौर झाड़ियों में रहता है।

विशेष—इसके पैरों में खुर के ग्राकार की चार चार उँगलियाँ होती हैं। मुँह के भीतर डाढ़ें ग्रौर कँटीले दाँत होते हैं। शरीर नाटा, मोटा, भारी ग्रौर बेढंगा होता है। चमड़े पर बाल नहीं होते। नाक फूली ग्रौर उभरी हुई तथा पूँछ ग्रौर ग्राँखें छोटी होती हैं। यह जानवर पौधों की जड़ों ग्रौर कल्लों को खाकर रहता है। दिन भर तो यह झाड़ियों ग्रौर दलदलों में छिपा रहता है, रात को खाने पीने की खोज में निकलता है ग्रौर खेती ग्रादि को हानि पहुँचाता है। पर यह नदी से बहुत दूर नहीं जाता ग्रौर जरा सा खटका या भय होते ही नदी में जाकर गोता मार लेता है। यह देर तक पानी में नहीं रह सकता, साँस लेने के लिये सिर निकालता है ग्रौर फिर डूबता है। यह निर्जन स्थानों में गोल बाँधकर रहता है।

कभी कभी लोग इसका शिकार गड्ढे खोदकर करते हैं। रात को जब यह जंतु गड्ढों मे गिरकर फँस जाता है तब लोग इसे मार डालते हैं। इसके चमडे से एक प्रकार का लचीला और मजबूत चाबुक बनता है जिसे 'करबस' कहते हैं। मिस्र देश मे इस चाबुक का प्रचार है। वहाँ की प्रजा इसकी मार से बहुत डरती है। पहले नील नदी के किनारे दरियाई घोड़े बहुत मिलते थे, पर अब शिकार होने के कारण बहुत कम हो चले हैं।

दरियाई नारियल—संज्ञा पुं० [फा० दरियाई+हिं० नारियल] एक प्रकार का नारियल जो अफ्रीका, अमेरिका आदि मे समुद्र के किनारे किनारे होता है।

विशेष—इसकी गिरी और छिलका सूखने पर पत्थर की तरह कड़ा हो जाता है। इसकी गिरी दवा के काम मे आती है। खोपड़े का पात्र बनता है जिसे सन्यासी या फकीर अपने पास रखते हैं।

दरियाउ(पु)—संज्ञा पुं० [फा० दरियाव] दे० 'दरियाव'।

दरियादासी—संज्ञा पुं० [हिं० दरियादास+ई] निर्गुण उपासक साधुओं का एक सप्रदाय जिसे दरिया साहब नामक एक व्यक्ति ने चलाया था। कहते हैं, इस संप्रदाय के लोग आधे हिंदू आधे मुसलमान होते हैं। सत दरिया के संप्रदाय का अनुगामी।

दरियादिल—वि० [फा०] [स्त्री० दरियादिली] उदार। दानी। फैयाज।

दरियादिली—संज्ञा स्त्री० [फा०] उदारता।

दरियाफ्त—वि० [फा० दरियाफ्त] दे० 'दरियाफ्त'। उ०—आपुको खूब दरियाफ कीजै।—पलटू०, पृ० ५६।

दरियाफ्त—वि० [फ० दरियाफ्त] ज्ञात। मालूम। जिसका पता लगा हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दरियाय(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाव] दे० 'दरियाव। उ०—हिंव ते पेदि पठान पग्ग वर दल दलमलि दरियाय बहाऊँ।—अकबरी०, पृ० ६७।

दरियाबरामद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दरियाबरार'।

दरियाबरार—संज्ञा पुं० [फा०] वह भूमि जो किसी नदी की धारा हट जाने से निकल आती है और जिसमें खेती होती है।

दरियाबार—वि०[फा०]अत्यंत बरसनेवाला। उदार। बरसालू [को०]।

दरियाबुर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह भूमि जिसे कोई नदी काटकर खराब कर दे जिससे वह खेती के योग्य न रहे।

दरियाव—संज्ञा पुं० [फा० दरियाव] १ दे० 'दरिया'। उ०—तन समुद्र मन लहर है नैन कहर दरियाव। बेसर भुजा सिकदरे कहत न आव, न आव।—(प्रचलित)। २ समुद्र। सिंधु। उ०—पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसब छोड़ि मक्का ही उतरत दरियाव हैं।—भूषण(शब्द०)।

] १. गुफा। खोह। २. पहाड़ के बीच वह खड्ड या नीचा स्थान जहाँ कोई नदी बहती या गिरती हो।

यौ०—दरीभृत्। दरीमुख।

दरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर, स्तरी (= फैलाने की वस्तु)] मोटे सूतों का बुना हुआ मोटे दल का बिछौना। शतरंजी।

दरी[3]—वि० [सं० दरिन्] १. फाड़नेवाला। विदीर्ण करनेवाला। २ डरनेवाला। डरपोक। कादर।

दरी[4]—संज्ञा स्त्री०[फा०]फारसी भाषा की एक शाखा का नाम [को०]।

दरीखाना—संज्ञा पुं० [फा० दर+खाना] वह घर जिसमे बहुत से द्वार हों। बारहदरी। उ०—दर दर देखो दरीखानन में दौरि दौरि दुरि दुरि दामिनी सी दमकि दमकि उठै।—पद्माकर (शब्द०)।

दरीगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दरी'। उ०—...ये मदिर पाषाणखडो को काट काटकर दरीगृहो के रूप मे बने थे।—प्रा० भा०, पृ० ५६३।

दरीचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरीचह्] [स्त्री० दरीची] १. खिड़की। झरोखा। २. छोटा द्वार। चोर दरवाजा। उ०—दरीचा तू इस बाब का मुज को खोल। मिल उस यार सूँ क्यूँ गहूँ मुज कूँ बोल।—दक्खिनी, पृ० ८४। ३ खिड़की के पास बैठने की जगह।

दरीची—संज्ञा स्त्री० [फा० दरीचह्] १ झरोखा। खिड़की। २. खिड़की के पास बैठने की जगह। उ०—(क) मूँदि दरीचिन दै परदा सिदरीन झरोखन रोंकि छपायो।—गुमान(शब्द०)। (ख) तैसेई मरीचिका दरीचिन के देवे ही में छपा की छबीली छवि छहरति ततकाल।—द्विजदेव (शब्द०)।

दरीबा—संज्ञा पुं० [?] १ पान दरीबा। पान की सट्टी। वह जगह जहाँ बहुत से तँबोली बेचने के लिये पान लेकर बैठते हैं। २ बाजार। उ०—आसिक अमनी साध सब, अलख दरीबे जाइ। साहेब दर दीदार मैं, सब मिलि बैठे आइ।—दादू०, पृ० १३१।

दरीभृत—संज्ञा पुं० [सं० दरीभृत्] पर्वत। पहाड़।

दरीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ गुफा का मुँह। २ राम की सेना का एक बदर। ३. गुफा के समान मुखवाला (को०)।

दरूदा—संज्ञा स्त्री० [फा० दरूद] दुआ। शुभकामना। कृपा। उ०—वे बदे को पैदा किया दम का दिया दरूदा।—कबीर सा०, पृ० ८८७।

दरून—संज्ञा पुं० [फ़ा०] आत्मा। हृदय। चित्त। कल्ब [को०]।

दरूना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरूना] वह फोड़ा या घाव जिसका मुँह भीतर हो। उ०—दादू हरदम माँहि दिवान कहूँ दरूने दरद सों। दरद दरूनें जाइ, जब देखो दीदार को।—दादू०, पृ० ५६।

दरूनी—वि० [फा०] भीतरी। आतरिक। उ०—बगोनी सब तमाशा यह जो देखो। न जाने यह दरूनी खेल घट का।—कबीर म०, पृ० ३७६।

दरेंती—संज्ञा स्त्री० [सं० दर+यन्त्र] अनाज दलने का छोटा यत्र। चक्की।

दरेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दरेन्द्र] विष्णु का शंख। पांचजन्य [को०]।

दरेक—संज्ञा पुं० [सं० द्रेक] बकाइन का वृक्ष।

दरेग—संज्ञा पुं० [अ० दरेग़] कमी। कसर। कोर कसर। जैसे—हाँ मैं इस काम के करने में दरेग न करूँगा।

दरेर—संज्ञा पुं० [सं० दरण] दे० 'दरेरा'। उ०—दरिया जो कहै दरियान दरेर में तोरि जंजीर के तानतु है।—स० दरिया, पृ० ६५।

दरेरना—क्रि० स० [सं० दरण] १. रगड़ना। पीसना। २. रगड़ते हुए धक्का देना।

दरेरा—संज्ञा पुं० [सं० दरण] १. रगड़ा। धक्का। उ०—तापर सहि न जाय करुणानिधि मन को दुसह दरेरो।—तुलसी (शब्द०)। २. मेंह का झावा। ३. बहाव का जोर। तोड़।

दरेस¹—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रेस] एक प्रकार की छींट। फूलदार छपा हुआ एक महीन कपड़ा।

दरेस²—वि० [अं० ड्रेस] तैयार। बना बनाया। सजा सजाया।

दरेस³—संज्ञा, पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दरस'। उ०—दूसा देस तहाँ जा पहुँचे देखो पुरुष दरेस।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ४६।

दरेसी—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रेस] दुरुस्ती। तैयारी। मरम्मत।

दरैया—संज्ञा पुं० [सं० दरण] १ दलनेवाला। वह जो दले। २. घातक। विनाशक। उ०—दशरथ को नंदन दुख दरैया।—(शब्द०)।

दरोग—संज्ञा पुं० [अ० दरोग] झूठ। असत्य। गलत। मिथ्या। उ०—(क) हौं दरोग जो कहौं सुर उग्गै पच्छिम दिसि। हौं दरोग जो कहौं ईद उग्गमै कुहूँ निसि।—पृ० रा०, ६४। १३६। (ख) मेरी बात जो कोई जाने दरोग। कभी फेर उसको न होवे फरोग।—कबीर म०, पृ० १३४।

यौ०—दरोग हलफी।

दरोगहलफी—संज्ञा स्त्री० [अ० दरोग़हलफ़ी] १ सच बोलने की कसम खाकर भी झूठ बोलना। २. झूठी गवाही देने का जुर्म।

दरोगा‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० दारोगह्] दे० 'दारोगा'। उ०—सो वा परगने में एक म्लेच्छ दरोगा रहे।—दो सौ बावन० भा० १, पृ० २४२।

दरोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुरोदर' [को०]।

दर्कार—क्रि० वि० [फ़ा० दरकार] दे० 'दरकार'।

दर्गाह—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरगाह] दे० 'दरगाह'।

दर्ज¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरज; तुल० फ़ा० दर्ज] दे० 'दरज'।

दर्ज²—वि० [फ़ा०] लिखा हुआ। कागज पर चढ़ा हुआ। अंकित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दर्जन—संज्ञा पुं० [अं० डजन] बारह का समूह। इकट्ठी बारह वस्तुएँ।

दर्जा¹—संज्ञा पुं० [अ० दर्जह्] १. ऊँचाई निचाई के क्रम के विचार से निश्चित स्थान। श्रेणी। कोटि। वर्ग। जैसे,—वह अव्वल दर्जे का पाजी है। २. पढ़ाई के क्रम में ऊँचा नीचा स्थान। जैसे,—तुम किस दर्जे में पढ़ते हो।

मुहा०—दर्जा उतारना = ऊँचे दर्जे से नीचे दर्जे में कर देना। दर्जा चढ़ना = नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में जाना। दर्जा चढ़ाना = नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में करना।

क्रि० प्र०—घटाना।—बढ़ाना।

४ किसी वस्तु का विभाग जो ऊपर नीचे के क्रम से हो। खंड। जैसे, आलमारी के दर्जे। मकान के दर्जे।

दर्जा²—क्रि० वि० गुणित। गुना। जैसे,—वह चीज उससे हजार दर्जे अच्छी है।

दर्जिन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दर्जी+हिं० इन (प्रत्य०)] १ दर्जी जाति की स्त्री। २ दर्जी की स्त्री। ३ सीने का व्यवसाय करनेवाली स्त्री।

दर्जी—संज्ञा पुं० [फा० दर्जी] १ कपड़ा सीनेवाला। वह जो कपड़े सीने का व्यवसाय करे। २. कपड़े सीनेवाली जाति का पुरुष।

मुहा०—दर्जी की सूई = हर काम का आदमी। ऐसा आदमी जो कई प्रकार के काम कर सके, या कई बातों में योग दे सके।

दर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. पीड़ा। व्यथा।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—दर्द उठना = दर्द उत्पन्न होना। (किसी अंग का) दर्द करना = (किसी अंग का) पीड़ित या व्यथित होना। दर्द खाना = कष्ट सहना। पीड़ा सहना। जैसे,—उसने दर्द खाकर नहीं जना? दर्द लगना = पीड़ा आरंभ होना।

२ दुख। तकलीफ। जैसे, दूसरे का दर्द समझना।

मुहा०—दर्द आना = तकलीफ मालूम होना। जैसे,—रुपया निकालते दर्द आता है।

३, सहानुभूति। करुणा। दया। तर्स। रहम।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

मुहा०—दर्द खाना = तरस खाना। दया करना।

४ हानि का दुख। खो जाने या हाथ से निकल जाने का कष्ट। जैसे,—उसे पैसे का दर्द नहीं।

यौ०—दर्दनाक। दर्दमंद। दर्दजिगर = दर्देदिल। दर्देदिल = मनस्ताप। मनोव्यथा। दर्देसर = (१) सिर पीड़ा। (२) झंझट का काम। दर्दोगम = पीड़ा और दुख। कष्टसमूह। उ०—मुझको शायर न कहो मीर कि साहब मैंने। दर्दोगम कितने किए जमा तो दीवान किया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२२।

दर्दनाक—वि० [फ़ा०] कष्टजनक। दर्द पैदा करनेवाला [को०]।

दर्दमंद—वि० [फ़ा०] [संज्ञा दर्दमंदी] १ जिसे दर्द हो। पीड़ित। दुखी। २ जो दूसरे का दर्द समझे। जिसे सहानुभूति हो। दयावान्।

दर्दर¹—वि० [सं०] टूटा हुआ। फटा हुआ।

दर्दर²—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुछ कुछ खंडित कलश। २. एक बाजा। दर्दुर। ३ दर्दुर नामक पर्वत [को०]।

दर्दुराम्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक पेड़ का नाम। २ एक प्रकार का व्यंजन [को०]।

दर्दुरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेढक। दादुर। २ मेघ। बादल। ३ वाद्य। बाजा। ४ एक प्रकार का विशेष वाद्य। जैसे, वंशी [को०]।

दर्दवंद(५)—वि० [फ़ा० दर्दमंद] दे० 'दर्दमंद'। उ०—खड़े दर्दवंद दरवेस दरगाह में खैर औ मेहर मौजूद मक्का।—कबीर० रे०, पृ० ४०।

दर्दी—वि० [फ़ा० दर्द+हिं० ई (प्रत्य०)] १. दुखी। पीड़ित। २ जो दूसरे का दर्द समझे। दयावान्। जैसे, बेदर्दी।

दर्दु—संज्ञा पुं० [सं०] दाद। दद्रु [को०]।

दर्दुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेढक।

यौ०—दर्दुरोदना = यमुना नदी।

२. बादल। ३ अभ्रक। अबरक। ४. पश्चिमी घाट पर्वत का एक भाग। मलय पर्वत से लगा हुआ एक पर्वत। ५ उक्त पर्वत के निकट का देश। ६ प्राचीन काल का एक बाजा (को०)। ८ एक प्रकार का चावल (को०)। ९. धौंसे की ध्वनि। नगाड़े की आवाज (को०)। १० राक्षस (को०)। ११ ग्राम, जिला या प्रांतसमूह (को०)।

दर्दुरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेढक। दादुर। २ एक बाद्य। दर्दुर।

दर्दुरच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी बूटी।

दर्दुरपुट—संज्ञा पुं० [सं०] वंशी आदि वाद्यों का मुख [को०]।

दर्दुरा, दर्दुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

दर्द्रु, दद्रू—संज्ञा पुं० [सं०] दाद नामक रोग।

दर्द्रुण, दद्रुण—वि० [सं०] दाद का रोगी। जिसे दद्रु रोग हुआ हो [को०]।

दर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. घमंड। अहंकार। अभिमान। गर्व। ताव। उ०—कदर्प दुर्गम दर्प दवन उमारवन गुन भवन हर।—तुलसी (शब्द०)। २ मन। अहंकार के लिये किसी के प्रति कोप। ३ उद्दंडता। अक्खड़पन। ४. दबाव। आतंक। रोब। ५ कस्तूरी। ६ ऊष्मा। ताप। गर्मी (को०)। ७ उमंग। उत्साह (को०)।

यौ०—दर्पकल = गर्व के कारण मुखर। गर्वभरी बात कहनेवाला। दर्पच्छिद = गर्व को नष्ट करनेवाला। दर्पद = विष्णु का एक नाम। दर्पहर=दे० 'दर्पच्छिद'। दर्पहा = विष्णु।

दर्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १ दर्प करनेवाला व्यक्ति। २ कामदेव। मनोज। ३. दर्प। अहंकार (को०)।

दर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आईना। आरसी। मुँह देखने का शीशा। वह काँच जो प्रतिबिंब के द्वारा मुँह देखने के लिये सामने रखा जाता है। २ ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद। ३. चक्षु। आँख। ४ संदीपन। उद्दीपन। उभारने का कार्य। उत्तेजना। ५ एक पर्वत का नाम जो कुबेर का निवासस्थान माना जाता है (को०)।

दर्पन—संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] दे० 'दर्पण'।

दर्पना(५)—क्रि० अ० [सं० दर्पण] ताव में आना। दरपना। गर्वयुक्त होना। उ०—रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु एहि विधि अर्पा।—मानस, ६। ६६।

दर्पमय क्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसिकता या रंगीलेपन के खेल। नाच रंग आदि।

दर्पहा—संज्ञा पुं० [सं० दर्पहन्] विष्णु का एक नाम [को०]।

दर्पित—वि० [सं०] गर्वित। अहंकार से भरा हुआ। उ०—रघुबीर बल दर्पित विभीषनु घालि नहिं ताकहु गने।—मानस, ६।९३।

दर्पी—वि० [सं० दर्पिन्] [वि० स्त्री० दर्पिणी] घमंडी। अहंकारी।

दर्ब(५)¹—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] १ द्रव्य। धन। उ०—दृष्टुक दर्ब दे संधि कै, फेरि देहु हिंदुवान।—प० रासो, पृ० १०५। २. धातु (सोना, चाँदी इत्यादि)।

दर्बा†—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य। धन। उ०—आसा वासा मनसा खाय। पर दर्बा न हुरै न पर घरि जाय।—प्राण०, पृ० १०१।

दर्बान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबान] दे० 'दरबान'।

दर्बार—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबार] दे० 'दरबार'।

दर्बारी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबारी] दे० 'दरबारी'।

दर्बि(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रव्य] दे० 'द्रव्य'। उ०—हय गय मानिन दर्बि दिय, आदर बहु नृप किन्न।—प० रासो, पृ० १३१।

दर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का कुश। डाभ। डाभुस। २ कुश। ३ कुश निर्मित आसन। कुशासन। उ०—अस कहि लवणसिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—दर्भकुसुम = दर्भपुष्प। एक कीट। दर्भचीर = कुश का परिधान। दर्भपत्र। दर्भपुष्प। दर्भलवण। दर्भसंस्तर। दर्भसूची = दर्भांकुर।

दर्भकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] कुशध्वज। राजा जनक के भाई का नाम।

दर्भट—संज्ञा [सं०] गुप्त गृह। भीतरी कोठरी।

दर्भपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] काँस।

दर्भपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

दर्भलवण—संज्ञा पुं०[सं०]कुश या घास काटने का एक औजार [को०]।

दर्भसंस्तर—संज्ञा पुं०[सं०]कुश का आसन या कुश का बिछौना [को०]।

दर्भांकुर—संज्ञा पुं० [सं० दर्भाङ्कुर] डाभ का गोफा जो सुई की तरह नुकीला होता है [को०]।

दर्भासन—संज्ञा पुं० [सं०] कुशासन। कुश का बना हुआ बिछावन।

दर्भाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] मूँज।

दर्भि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

विशेष—महाभारत के अनुसार इन्होंने ऋषि ब्राह्मणों के उपहार के लिये अर्धकील नामक एक तीर्थ स्थापित किया था। इनका एक नाम दर्भी भी है।

दर्भी—संज्ञा पुं० [सं० दर्भिन्] दे० 'दर्भि'।

दर्भेपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश का निचला भाग या डंठल [को०]।

दर्मियाँ—क्रि० वि० [फ़ा० दरमियान] दे० 'दरमियान'। उ०—वहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे। कलाम आते हैं दर्मियाँ कैसे कैसे। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७।

दर्मियान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरमियान] दे० 'दरमियान'।

दर्मियानी—वि०, संज्ञा पुं० [फ़ा० दरयामिनी] दे० 'दरमियानी'।

दर्या—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरिया] दे० 'दरिया'। उ०—एक मछली सारे दर्या को गदा कर डालती है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ११७।

दर्याउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० दरियाव] दे० 'दरिया'।—कूदहिं ज र कहर दर्याउ में।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १४।

दर्यादिली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दरियादिली] उदारता। हृदय की विशालता। उ०—और दर्यादिली खुदा के घर से इसी को मिली है।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८६।

दर्याफ्त—वि० [फ़ा० दरियाफ्त] ज्ञात। मालूम। दरियाफ्त। उ०—इस वक्त मुझसे यहाँ आने का सबब दर्याफ्त करेगा तो मैं इससे क्या जवाब दूँगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दर्याव—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरिया] दे० 'दरिया'।

दर्रा[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. पहाड़ी रास्ता। वह सँकरा मार्ग जो पहाड़ों के बीच से होकर जाता हो। घाटी। २. दरार। दरज।

दर्रा[2]—संज्ञा पुं० [सं० दरना] १ मोटा आटा। २ कँकरीली मिट्टी जो सड़कों या बगीचों की रविशों पर डाली जाती है। ३ दरार। शिगाफ। दरज।

दर्राज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दराज (=लंबा)] लकड़ी का एक औजार जिससे लकड़ी सीधी की जाती है।

दर्राना—क्रि० अ० [अनु० दड़ दड, धड़ धड] धड़धड़ाना। बेधड़क चला जाना। बिना रुकावट या डर के चला जाना।

विशेष—इस क्रिया के उन्हीं रूपों का प्रयोग होता है जिनसे क्रि० वि० का भाव प्रकट होता है, जैसे, दर्राकर = धड़धड़ाकर। बेधड़क। दर्राता हुआ = धड़धड़ाता हुआ। बेधड़क। उ०—वह दर्राता हुआ दरबार में जा पहुँचा। †दर्राना = धड़धड़ाता हुआ। बेधड़क। उ०—द्वारपालों की बात सुनी अनसुनी कर हरि सब समेत दर्राने वहाँ चले गए, जहाँ तीन ताड़ लंबा अति मोटा महादेव का धनुष धरा था।—लल्लू (शब्द०)।

दर्व(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य। धन। संपत्ति। उ०—सहस धेनु कंचन बहु हीरा। अगनित दर्व दियो नृप बीरा।—रसरतन, पृ० १९।

दर्व[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा करनेवाला मनुष्य। २ राक्षस। ३ एक जाति जिसका नाम दरद, किरात आदि के साथ महाभारत में आया है। इस जाति का निवासस्थान पंजाब के उत्तर का प्रदेश था। ४. वह देश जहाँ उक्त जाति बसती थी। ५ सर्प का फण (को०)। ६ आघात। चोट। क्षति (को०)। ७ करछुल। दर्वी (को०)।

दर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] १ गाँव का चौकीदार। गोड़इत। २. द्वार रक्षक। द्वारपाल (को०)।

दर्वरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २. वायु। ३ एक प्रकार का बाजा।

दर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उशीनर की पत्नी का नाम।

दर्वि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दर्वी' (को०)।

दर्वि(पु)[2]—वि० [सं० दर्प] दर्पयुक्त। गरबीला। गर्वयुक्त। उ०—बहु दर्वि लखि गुमान। सावत लखि परिवान।—पृ० रासो पृ० ५२।

दर्विक—संज्ञा पुं० [सं०] डोआ। चमचा। कलछुल। दर्वी (को०)।

दर्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आँख में लगाने का वह काजल जो घी से भरे दीये में बत्ती जलाकर जमाया या पारा जाता है। २ बनगोभी। गोजिया। ३. चमचा। डोआ (को०)।

दर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करछी। चमचा। डोआ। २ साँप का फन।

यौ०—दर्वीकर।

दर्वीकर—संज्ञा पुं० [सं०] फनवाला साँप।

दर्वेस†—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरवेश] दे० 'दरवेश'। उ०—जोगी जंगम और सन्यासी, डीगवर दर्वेस।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ६।

दर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ दर्शन। अवलोकन। २ सूर्य और चंद्रमा का संगम काल। अमावस्या तिथि। ३ द्वितीया तिथि।

यौ०—दर्शपति।

३ वह यज्ञ या कृत्य जो अमावस्या के दिन किया जाय।

यौ०—दर्शपौर्णमास।

४ प्रत्यक्ष प्रमाण। चाक्षुष प्रमाण (को०)। ५ दृश्य (को०)।

दर्शक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १ जो देखे। दर्शन करनेवाला। देखनेवाला। २ दिखानेवाला। लखानेवाला। बतानेवाला। जैसे, मार्गदर्शक। ३. द्वाररक्षक। द्वारपाल (जो लोगों को राजा के पास ले जाकर उसके दर्शन कराता है)। ४ निरीक्षक। निगरानी रखनेवाला। प्रधान।

दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह बोध जो दृष्टि के द्वारा हो। चाक्षुष ज्ञान। देखादेखी। साक्षात्कार। अवलोकन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—दर्शन देना = देखने में आना। अपने को दिखाना। प्रत्यक्ष होना। दर्शन पाना = (किसी का) साक्षात्कार होना।

विशेष—हिंदी काव्य में नायक नायिका का परस्पर दर्शन चार प्रकार का माना गया है—प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न और श्रवण।

२ भेंट। मुलाकात। जैसे,—चार महीने पीछे फिर आपके दर्शन करूँगा।

विशेष—प्राय बड़ों के ही प्रति इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है।

३ वह शास्त्र जिससे तत्वज्ञान हो। वह विद्या जिससे तत्वज्ञान हो। वह विद्या जिससे पदार्थों के धर्म, कार्य-कारण संबंध आदि का बोध हो।

विशेष—प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत् के नियामक धर्म, जीवन के अंतिम लक्ष्य इत्यादि का जिस शास्त्र में निरूपण हो उसे दर्शन कहते हैं। विशेष से सामान्य की ओर आंतरिक दृष्टि को बराबर बढ़ाते हुए सृष्टि के अनेकानेक व्यापारों का कुछ तत्वों या नियमों में अंतर्भाव करना ही दर्शन है। आरंभ में अनेक प्रकार के देवताओं आदि को सृष्टि के विविध व्यापारों का कारण मानकर मनुष्य जाति बहुत काल तक संतुष्ट रही। पीछे अधिक व्यापक दृष्टि प्राप्त हो जाने पर युक्ति और तर्क की सहायता से जब लोग संसार की उत्पत्ति, स्थिति आदि का विचार करने लगे तब दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति हुई। संसार की प्रत्येक सभ्य जाति के बीच इसी क्रम से इस शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। पहले प्राचीन आर्य अनेक प्रकार के यज्ञ और कर्मकांड द्वारा इंद्र, वरुण, सविता इत्यादि देवताओं को प्रसन्न करके स्वर्गप्राप्ति आदि के प्रयत्न में लगे रहे, फिर सृष्टि की उत्पत्ति आदि के संबंध में उनके मन में प्रश्न उठने लगे। इस प्रकार के संशयपूर्ण प्रश्न कई वेदमंत्रों में पाए जाते हैं। उपनिषदों के समय में ब्रह्म, सृष्टि, मोक्ष, आत्मा, इंद्रिय, आदि विषयों की चर्चा बहुत बढ़ी। गाथा और प्रश्नोत्तर के रूप में इन विषयों का प्रतिपादन विस्तार से हुआ। बड़े बड़े गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों का आभास उपनिषदों में पाया जाता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'तत्वमसि' आदि वेदांत के महावाक्य उपनिषदों के ही हैं। छांदोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक में उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की उत्पत्ति समझाकर कहा है कि 'हे श्वेतकेतो ! तू ही ब्रह्म है'। बृहदारण्यकोपनिषद् में मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमृत ब्रह्म के दोहरे रूप बतलाए गए हैं। उपनिषदों के पीछे सूत्र रूप में इन तत्वों का ऋषियों ने स्वतंत्रतापूर्वक निरूपण किया और छह दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके नाम ये हैं—सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा (पूर्वमीमांसा), और वेदांत (उत्तरमीमांसा)। इनमें से सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम का विस्तार के साथ जितना विवेचन है उतना और किसी में नहीं है। सांख्य आत्मा को पुरुष कहता है और उसे अकर्ता, साक्षी और प्रकृति से भिन्न मानता है, पर आत्मा एक नहीं अनेक हैं, अतः सांख्य में किसी विशेष आत्मा अर्थात् परमात्मा या ईश्वर का प्रतिपादन नहीं है। जगत् के मूल में प्रकृति को मानकर उसके सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के अनुसार ही संसार के सब व्यापार माने गए हैं। सृष्टि को प्रकृति की परिणामपरंपरा मानने के कारण यह मत परिणामवाद कहलाता है। सृष्टि संबंधी सांख्य का यह मत इतिहास, पुराण आदि में सर्वत्र गृहीत हुआ है। योग में क्लेश, कर्मविपाक और आशय से रहित एक पुरुषविशेष या ईश्वर माना गया है। सर्वसाधारण के बीच जिस प्रकार के ईश्वर की भावना है वह यही योग का ईश्वर है। योग में किसी मत पर विशेष तर्क वितर्क या आग्रह नहीं है, मोक्षप्राप्ति के निमित्त यम, नियम, प्राणायाम, समाधि इत्यादि के अभ्यास द्वारा ध्यान की परमावस्था की प्राप्ति के साधनों का ही विस्तार के साथ वर्णन है। न्याय में युक्ति या तर्क करने की प्रणाली बड़े विस्तार के साथ स्थिर की गई है, जिसका उपयोग पंडित लोग शास्त्रार्थ में बराबर करते हैं। खंडन मंडन के नियम इसी शास्त्र में मिलते हैं, जिनका मुख्य विषय प्रमाण और प्रमेय ही है। न्याय में ईश्वर नित्य, इच्छाज्ञानादि गुणयुक्त और कर्ता माना गया है। जीव कर्ता और भोक्ता दोनों माना गया है। वैशेषिक में द्रव्यों और उनके गुणों का विशेष रूप से निरूपण है। पृथ्वी, जल आदि के अतिरिक्त दिक्, काल, आत्मा और मन भी द्रव्य माने गए हैं। न्याय के समान वैशेषिक ने भी जगत् की उत्पत्ति परमाणुओं से बतलाई है। न्याय से इसमें बहुत कम भेद है। इसी से इसका मत भी न्याय का मत कहलाता है। ये दोनों सृष्टि का कर्ता मानते हैं इसी से इनका मत आरंभवाद कहलाता है। पूर्वमीमांसा में वैदिक कर्मसंबंधी वाक्यों के अर्थ निश्चित करने तथा विरोधों का समाधान करने के नियम निरूपित हुए हैं। इसका मुख्य विषय वैदिक कर्मकांड की व्याख्या है। उत्तरमीमांसा या वेदांत अत्यंत उच्च कोटि की विचार-पद्धति द्वारा एकमात्र ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण बतलाता है अर्थात् जगत् और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करता है। इसी से इसका मत विवर्तवाद और अद्वैतवाद कहलाता है। भाष्यकारों ने इसी सिद्धांत को लेकर आत्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध की है। जितना यह मत विद्वानों को ग्राह्य हुआ, जितनी इसकी चर्चा संसार में हुई, जितने अनुयायी संप्रदाय इसके खड़े हुए उतने और किसी दार्शनिक मत के नहीं हुए। अरब, फारस आदि देशों में यह सूफी मत के नाम से प्रकट हुआ। आजकल योरप और अमेरिका आदि में भी इसकी ओर विशेष प्रवृत्ति है। भारतवर्ष के इन छह प्रधान दर्शनों के अतिरिक्त 'सर्वदर्शनसंग्रह' में चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, नकुलीश, पाशुपत, शैव, पूर्णप्रज्ञ, रामानुज, पाणिनि और प्रत्यभिज्ञा दर्शन का भी उल्लेख है।

योरप में यूनान या यवन देश ही इस शास्त्र के विवेचन में सबसे पहले अग्रसर हुआ। ईसा से पाँच छह सौ वर्ष पहले से वहाँ दर्शन का पता लगता है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू इत्यादि बड़े बड़े दार्शनिक वहाँ हो गए हैं। आधुनिक काल में दर्शन की योरप में बड़ी उन्नति हुई है। प्रत्यक्ष ज्ञान का विशेष आश्रय लेकर दार्शनिक विचार की अत्यंत विशद प्रणाली वहाँ निकली है।

४ नेत्र। आँख। ५ स्वप्न। ६ बुद्धि। ७ धर्म। ८ दर्पण। ९ वर्ण। रंग। १० यज्ञ। इज्या (को०)। ११ उपलब्धि (को०)। १२ शास्त्र (को०)। १३ परीक्षण। निरीक्षण (को०)। १४ प्रदर्शन। दिखावा (को०)। १५ उपस्थिति या विद्यमानता (न्यायालय में) (को०)। १६ राय। सलाह। विचार (को०)। १७ नीयत (को०)।

दर्शनगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सभाभवन। २. वह स्थान जहाँ लोग कुछ देखने या सुनने के लिये बैठें (को०)।

दर्शनपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का पथ। जहाँ तक दृष्टि जाय। क्षितिज (को०)।

दर्शनप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू या जामिन जो किसी को समय पर उपस्थित कर देने का भार अपने ऊपर ले। वह आदमी जो किसी को हाजिर कर देने का जिम्मा ले।

दर्शनप्रतिभाव्य ऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो दर्शन प्रतिभू की साख पर लिया गया हो।

दर्शनीय—वि० [सं०] १. देखने योग्य। देखने लायक। २ सुंदर। मनोहर। ३. न्यायालय में न्यायाधीश के समक्ष उपस्थिति योग्य (को०)।

दरसनी हुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दरसनी हुंडी'।

दर्शयिता[1]—वि० [सं० दर्शयितृ] १ दिखानेवाला। प्रदर्शक। २. निर्देश करनेवाला। बतानेवाला। जैसे, पथदर्शयिता।

दर्शयिता[2]—संज्ञा पुं० १ द्वाररक्षक। द्वारपाल। २. निर्देशक [को०]।

दर्शाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दरसाना'।

दर्शित—वि० [सं०] १. दिखलाया हुआ। २. प्रकाशित। प्रकटित। ३. प्रमाणित।

दर्शी—वि० [सं० दर्शिन्] १ देखनेवाला। २ विचार करनेवाला। ३ अनुभूत करनेवाला।

दर्स—संज्ञा पुं० [अ०] शिक्षा। नसीहत। उपदेश। उ०—जो पडते दर्स जब ये खुर्द साल, मस्जिद के दरमियान तख्ती कतें ले।—दक्खिनी०, पृ०, ११५।

दर्सनीयⓊ—वि० [सं० दर्शनीय] देखने योग्य। दर्शनीय। उ०—रम्य सुपेसल भव्य पुनि दर्सनीय रमनीय।—अनेकार्थ०, पृ० ९६।

दल—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी वस्तु के उन दो सम खडों में से एक, जो एक दूसरे से स्वभावत जुड़े हुए हो पर जरा सा दबाव पड़ने से अलग हो जायँ। जैसे चने, अरहर, मूँग, उरद, मसूर, चिऍं इत्यादि के दो दल जो चक्की मे दलने से अलग हो जाते हैं। २ पौधों का पत्ता। पत्र। जैसे, तुलसीदल। ३ तमालपत्र। ४ फूल की पखडी। उ०—जय जय अमल कमलदल लोचन।—हरिश्चंद्र(शब्द०)। ५. समूह। झुंड। गरोह। ६ गुट। चक्र। जैसे,—वह दूसरे के दल में है। ७ सेना। फौज। जैसे, शत्रुदल। ८ मयूरपुच्छ। उ०—दल कहिए नृप को कटक, दल पत्रन को नाम, दल बरही के चंद सिर धरे स्याम अभिराम।—अनेकार्थ०, पृ० १३५। ९ पटरी के आकार की किसी वस्तु की मोटाई। परत की तरह फैली हुई किसी चीज की मोटाई। ६ अस्त्र के ऊपर का आच्छादन। कोष। म्यान। १० धन। ११. जल में होनेवाला एक तृण। ११ अंश। टुकड़ा। खंड (को०)। १२ किसी का आधा अंश। अर्धांश (को०)। १३ वृक्षविशेष (को०)। १४ इक्ष्वाकुवंशी परीक्षित राजा के एक पुत्र जिनकी माता मडूकराज की कन्या थी (को०)।

दलक[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० दलक] गुदडी। उ०—बैठा है इस दलक बिच आपै आप छिपाय। साहब जा तन लख परे प्रगट सिफात दिखाय।—रसनिधि (शब्द०)।

दलक[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दलकना] राजगीरों का एक औजार जिससे नक्काशी साफ की जाती है। यह छुरी के आकार का होता है परंतु सिरे पर चिपटा होता है।

दलक[3]—संज्ञा [हिं० दलकना] १ वह कप जो किसी प्रकार के आघात से उत्पन्न हो और कुछ देर तक बना रहे। थरथराहट। धमका। जैसे, ढोलक की दलक। २. रह रहकर उठनेवाला दर्द। टीस। चमक।

दलकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] १ दलकने की क्रिया या भाव। दलक। २ झटका। आघात। उ०— मद बिलद अमेरा दलकन पाइय सुख झकझोरा रे।—तुलसी (शब्द०)।

दलकना[1]—क्रि० अ० [सं० दलन] १ फट जाना। दरार खाना। चिर जाना। उ०—तुलसी कुलिस की कठोरता तेहि दिन दलकि दली।—तुलसी (शब्द०)। २. थर्राना। काँपना। उ०—महाबली बलि को दबतु दलकत भूमि तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकत है।—तुलसी (शब्द०)। ३. चौंकना। उद्विग्न हो उठना। उ०—(क) दलकि उठेउ सुनि बचन कठोरू। जनु छुइ गयो पाक बरतोरू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कैकेई अपने करमन को सुमिरत हिय में दलकि उठी।—देवस्वामी (शब्द०)।

दलकनाⓊ[2]—क्रि० स० [सं० दलन] डराना। भीत कर देना। भय से कँपा देना। उ०—सूरजदास सिंह बलि अपनी लीन्ही दलकि शृगालहि।—सूर (शब्द०)।

दलकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] हरी पखड़ियों का वह कोश जिसके भीतर कली रहती है।

दलकोमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पकज [को०]।

दलकोश—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पौधा।

दलगंजन[1]—वि०[सं० दलगञ्जन] श्रेष्ठ वीर। सेना को मारनेवाला। भारी वीर।

दलगंजन[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान।

दलगंध—संज्ञा पुं० [सं० दलगन्ध] सप्तपर्ण वृक्ष। छितवन। सतिवन।

दलगर्जनⓊ—वि० [सं० दलगञ्जन] दे० 'दलगंजन'। उ०—अग अग लच्छन बसहिं जे बरनौ बत्तीस। दलगर्जन दुर्जन दलन दलपति पति दिल्लीस।—रसरतन, पृ० ८।

दलघुसरा†—संज्ञा पुं० [हिं० दाल + घुसड़ना] एक प्रकार की रोटी, जिसमे पिसी हुई दाल नमक मसाले के साथ भरी रहती है।

दलथंभण—वि० [सं० दल + स्तम्भन] सेना को रोकनेवाला। बढ़ती हुई सेना को रोक देनेवाला। दल का स्तंभन करनेवाला। उ०—दादू सूर सुभट दलथभण रोपि रह्यो रन माहीं रे। जाकी साखि सकल जग बोले टेक टली कहुँ नाहीं रे।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८७९।

दलथंभन—संज्ञा पुं० [हिं० दल + थामना] कमखाब बुननेवालों का औजार जो बाँस का होता है और जिसमें अँकुवा और नक्शा बँधा रहता है।

दलदⓊ†—संज्ञा पुं० दे० [सं० दारिद्रय] 'दारिद्रय'। उ०—दीधो धन

लीधो दलद, कीधो गात कुढग। गनका सु`राखै गुसट रसिया तोनूं रग।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० १२।

दलदल—संज्ञा स्त्री० [सं० दलाढ्य (= नदीतट का कीचड)] १ कीचड। पाँक। चहला। २. वह जमीन जो गहराई तक गीली हो और जिसमें पैर नीचे को धँसता हो।

विशेष—कहीं कहीं पूरब में यह शब्द पुं० भी बोला जाता है।

मुहा०—दलदल में फँसना = (१) कीचड़ में फँसना। (२) ऐसी कठिनाई में फँस जाना जिससे निकलना दुस्तर हो। मुश्किल या दिक्कत में पड़ना। (३) जल्दी खतम या तै न होना। अनिर्णीत रहना। खटाई में पड़ना। उ०—दोनों दलों की दलादलो मे दलपति का चुनाव भी दलदल मे फँसा रहा।—बदरीनारायण चौधरी (शब्द०)। ४ बुड्ढी स्त्री (पालकी के कहार)।

दलदला—वि० [हिं० दलदल] [वि० स्त्री० दलदली] जिसमें दलदल हो। दलदलवाला। जैसे, दलदला मैदान, दलदली धरती।

दलदार—वि० [हिं० दल + फा० दार] जिसका दल मोटा हो। जिसकी तह या परत मोटी हो। जैसे, दलदार गूदा। दलदार आम।

दलन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दलित] १ पीसकर टुकडे टुकडे करने की क्रिया। चूर चूर करने का काम। २ विनाश। संहार। ३ विदारण। उ०—या विधि वियोग ब्रज बावरो भयो है सब, बाढत उदेग महा अंतर दलन को।—घनानद०, पृ० ५०३।

दलन[2]—वि० दलनेवाला। नष्ट करनेवाला। विनाशकारी। नाशक। उ०—साहि का ललन दिली दल का दलन अफजल का मलन शिवराज आया सरजा।—भूषण ग्र०, पृ० ११६।

दलना—क्रि० स० [सं० दलन] १ रगड़ या पीसकर टुकडे टुकड़े करना। मलकर चूर चूर करना। चूर्ण करना। खंड खड करना। २. रौंदना। कुचलना। मलना। खूब दबाना। मसलना। मीड़ना। उ०—पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषि दलि गरही।—मानस, १।४।

संयो० क्रि०—डालना।—मारना।

३ चक्की में डालकर अनाज आदि के दानों को दलों या कई टुकड़ों में करना। जैसे, दाल दलना। ४. नष्ट करना। ध्वस्त करना। जंतना। उ०—केतिक देश दल्यो भुज के बल।—भूषण (शब्द०)।

यौ०—दलना मलना। उ०—भुजबल रिपुदल दलि मलि देखि दिवस कर अत।—तुलसी (शब्द०)।—मलना दलना।

५ तोडना। झटके से खडित करना। उ०—(क) दलि तृण प्राण निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सोई हौं बूझत राजसभा धनुकै दल्यो हौं दलिहौं बल ताको।—तुलसी (शब्द०)।

[illegible]।—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलना] दलने की क्रिया या ढग।

दलनिर्मोक—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।

दलनिहार(पु)—वि० [सं० दलनि + हिं० हारा (प्रत्य०)] विध्वंस करनेवाला। नष्ट करनेवाला। मर्दित करनेवाला। उ०—कलि नाम कामतरु राम को। दलनिहार दारिद' दुकाल दुख दोप घोर घन घाम को।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३७।

दलनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंकड़। मिट्टी का टुकड़ा। ढेला [को०]।

दलप—संज्ञा पुं० [सं०] १ दलपति। मंडली या सेना का नायक। २ सोना। स्वर्ण। ३ शस्त्र। आयुध (को०)। ४. शास्त्र (को०)।

दलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी मंडली या समुदाय का प्रधान। मडली का मुखिया। अगुवा। सरदार। २. सेनापति। उ०—दलगर्जन दुर्जनदलन दलपतिपति दिल्लीस।—रसरतन, पृ० ८।

यौ०—दलपतिपति = सेनापतियों का अधीश्वर।

दलपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी जिसके फूल पत्ते के आकार के होते हैं।

विशेष—केतकी या केवडे की मंजरी बहुत कोमल पत्तों के कोश के भीतर रहती है। सुगंध के लिये इन्हीं पत्तों का व्यवहार होता है।

दलबदी—संज्ञा स्त्री० [सं० दल + हिं० बाँधना] गुटबाजी। दल या गुट बनाने का काम।

दलबल—संज्ञा पुं० [सं०] लाव लश्कर। फौज। उ०—कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चने पराइ। गर्जहिं भालु बलीमुख रिपु दलबल बिचलाइ।—मानस, ६।४६।

दलवा—संज्ञा पुं० [हिं० दलना] तीतरबाजो, बटेरबाजों आदि का वह निर्बल पक्षी जिसे वे दूसरे पक्षियों से लड़ाकर और मार खिलाकर उन पक्षियों का साहस बढ़ाते हैं।

दलबादल—संज्ञा पुं० [हिं० दल + बादल] १ बादलों का समूह। बादलों का झुड। २ भारी सेना। ३ बहुत बड़ा शामियाना। बड़ा भारी खेमा।

मुहा०—दलबादल खडा होना = बड़ा भारी शामियाना या खेमा गड़ना।

दलमलना—क्रि० स० [हिं० दलना + मलना] १ मसल डालना। मीड़ डालना। उ०—यों दलमलियत निरदई दई कुसुम से गात। कर धर देखो धरधरा अजौं न उर ते जात।—बिहारी (शब्द०)। २. रौंदना। कुचलना। उ०—रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचड भुजबल दलमले।—मानस, ६।९४। ३ विनष्ट कर देना। मार डालना।

दलमलित—वि० [हिं० दलना + मलना] सताई हुई। कुचली हुई। पीडित। उ०—प्रजा दुखित दलमलित गएउ फटि फुटि पठान दल।—अकबरी०, पृ० ६८।

दलराय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दल + राज, प्रा० राय] दे० 'दलपति'। उ०—दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय, जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।—भूषण ग्र०, पृ० ६।

दलवाना—क्रि० स० [हिं० दलना का प्रे० रूप] १. दलने का काम करवाना। मोटा मोटा पिसवाना। जैसे, दाल दलवाना। २ रौंदवाना। ३ नष्ट कराना। ध्वस्त करा देना।

दलवाल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दलपाल] सेनापति। फौज का सरदार।

दलवीटक—संज्ञा पुं० [सं०] कुट्टनीमतम् मे वर्णित कान का एक आभूषण। एक कर्णभूषण [को०]।

दलवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० दलना + वैया (प्रत्य०)] १. दलनेवाला। २ दलने मलनेवाला। जीतनेवाला।

दलसायसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी। श्वेत तुलसी [को०]।

दलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केमुआ। कंडा। कच्चू।

दलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पौधा जिसके पत्तों में काँटे हो। जैसे, नागफनी। २. पत्तों का काँटा। ३. काँटा।

दलसूसा†—संज्ञा स्त्री० [सं० दलश्रसा या दलस्नसा] दल की शिरा। पत्तों की नस।

दलहन—संज्ञा पुं० [हिं० दाल + अन्न] वह अन्न जिसकी दाल बनाई जाती है जैसे, चना, अरहर, मूँग, उरद, मसूर इत्यादि।

दलहरा—संज्ञा पुं० [हिं० दाल + हारा (प्रत्य०)] दाल बेचनेवाला। वह जो दाल बेचने का रोजगार करता हो।

दलहा†—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थाल्हा] थाला। आलवाल।

दलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलना] १. चक्की से दाल आदि दरने का काम। उ०—जब तक आँखें थीं, सिलाई करती रही। अब से आँखें गईं दलाई करती हूँ।—काया०, पृ० ५३६। २. दलने की मजदूरी। दराई।

दलाई लामा—संज्ञा पुं० [ति०] तिब्बत के सबसे बड़े लामा या धर्मगुरु जो वहाँ के सर्वप्रभुतासपन्न शासक भी होते हैं।

दलाढक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जंगली तिल। २ गेरू। ३. नागकेसर। ४. सिरिस। ५ कुंद। ६. गजकर्णी। एक प्रकार का पलाश। ७ गाज। फेन (को०)। ८ खाँई। परिखा (को०)। ९ तीव्र वायु। अंधवायु। बौंडर (को०)। १०. ग्राममुख्य। गाँव का प्रधान (को०)।

दलाढय—संज्ञा पुं० [सं०] नदी तट का कीचड़। पंक [को०]।

दलादली—संज्ञा स्त्री० [सं० दलन का द्वित्वप्रयोग (मुष्टामुष्टि की भाँति)] भिड़ंत। संघर्ष। होड़। उ०—उसे इस दोनों दलों की दलादली ने दल मलकर समाप्त कर डाला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३०७।

दलानां—संज्ञा पुं० [हिं० दालान] दे० 'दालान'।

दलाना—क्रि० स० [हिं० दलना] दे० 'दलवाना'।

दलामल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दौने का पौधा। २ मरुवे का पौधा। ३ मैनफल का पेड़।

दलाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] लोनिया साग। अमलोनी।

दलारा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झूलनेवाला बिस्तरा जिसका व्यवहार जहाज पर मल्लाह लोग करते हैं।

दलाल—संज्ञा पुं० [अ०] [संज्ञा दलाली] १ वह व्यक्ति जो सौदा मोल लेने या बेचने में सहायता दे। बिचवई। मध्यस्थ। २. स्त्री पुरुष का अनुचित सयोग करानेवाला। कुटना। ३ जाटों की एक जाति।

दलालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] चिह्न। पता। लक्षण। उ०—दलालत यो सही कुरान मूँ है। कवी इस्लाम के ईमान मूँ है।—दक्खिनी०, पृ० १६३।

दलाली—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ दलाल का काम।

क्रि० प्र०—करना।

२. वह द्रव्य जो दलाल को मिलता है। उ०—भक्ति हाट बैठि तू थिर ह्वै हरि नग निर्मल लेहि। काम क्रोध मद लोभ मोह तू सकल दलाली देहि।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

दलाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता।

दलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का टुकड़ा। ढेला [को०]।

दलिक—संज्ञा पुं० [सं०] काठ। लकड़ी। [को०]।

दलित—वि० [सं०] १ मीड़ा हुआ। मसला हुआ। मर्दित। २. रौंदा हुआ। कुचला हुआ। ३ खंडित। टुकड़े टुकड़े किया हुआ। ४ विनष्ट किया हुआ। ५ जो दबा रखा गया हो। दबाया हुआ। जैसे,—भारत की दलित जातियाँ भी अब उठ रही हैं।

दलिद्दर—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्रय दरिद्र] १. दरिद्रता। गरीबी। उ०—आप चाहें तो एक दिन में हमारा दलिद्दर दूर कर सकते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३७। २. कूड़ा करकट। गदगी। ३ दरिद्र। गरीब। धनहीन।

दलिद्र—संज्ञा पुं० [सं० दरिद्र] दे० 'दरिद्र'।

दलिया—संज्ञा पुं० [हिं० दलना। तुल० फा० दलीदह्] दलकर कई टुकड़े किया हुआ अनाज। जैसे, गेहूँ का दलिया।

दली—वि० [सं० दलिन्] १ जिसमें दल या मोटाई हो। २ जिसमें पत्ता हो। पत्तेवाला।

दलीप—संज्ञा पुं० [सं० दिलीप] दे० 'दिलीप'।

दलील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ तर्क। युक्ति। २. बहस। वादविवाद।

क्रि० प्र०—करना।—लाना।

दलेगंधि—संज्ञा पुं० [सं० दलेगन्धि] सप्तपर्णी वृक्ष।

दलेपंज—संज्ञा पुं० [हिं० ढलना + पजा] १ वह घोड़ा जिसकी उमर ढल गई हो। वह घोड़ा जो जवान न रह गया हो। २ ढलती हुई उमर का आदमी।

दलेल—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रिल] सिपाहियों का वह दंड जिसमे हथियार और कपड़े आदि उनकी कमर में बाँधकर उन्हें टहलाते हैं। वह कवायद जो सजा की तरह पर ली जाय। उ०—दिल चले दम बने रहेंगे ही, क्यों न हो दिल दलेल मे मेरा।—चोखे०, पृ० १४।

मुहा०—दलेल बोलना = सजा की तरह पर कवायद देने की आज्ञा देना।

दलै—क्रि० स० [देश०] मुँह बाओ। बाओ (हाथीवानों की बोली)।

यौ०—दले छब दले = पानी पीओ (हाथीवानों की बोली)।

दलैया†—संज्ञा पुं० [हिं० दलना] १. दलने या पीसनेवाला। २ नाश करनेवाला। मारनेवाला। उ०—मदर बिलद मदगति के चलैया, एक पल में दलैया, पर दल बलखानि के। —मति० ग्रं०, पृ० ३११।

दल्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रतारण। धोखा। २ पाप। ३. चक्र।

दल्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र का वज्र। अशनि। २ शिव का एक नाम [को०]।

दल्लाल—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'दलाल'। उ०—जिन्हें हम व्यापारी न कहकर दल्लाल कहेंगे। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६३।

दल्लाला—संज्ञा स्त्री० [अ० दल्लालह्] कुटनी। दूती।

दल्लाली—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'दलाली'।

दवँगरा‡—संज्ञा पुं० [सं० दव+अङ्गार] १ वर्षा ऋतु के आरंभ में होनेवाली झड़ी। उ०—बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका।—जायसी। (शब्द०)। २. वर्षा के आरंभ में पानी का कहीं कहीं एकत्र होकर धीरे धीरे बहना। (बुंदेल०)।

दवँरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दँवरी'।

दव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन। जगल। २. दवाग्नि। वह आग जो वन में आपसे आप लग जाती है। दवारि। दावा। उ०—गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा।—तुलसी (शब्द०)। ३ अग्नि। आग। उ०—(क) आजु अयोध्या जल नहिं अचवौं ना मुख देखौ माई। सूरदास राघव के बिछुरे मरौं भवन दव लाई। —सूर (शब्द०)। (ख) राकापति षोडश उगैं तारागण समुदाय। सकल गिरिन दव लाइए रवि बिनु राति न जाय। —तुलसी (शब्द०)।

यौ०—दवदाधक = एक तृण। एक घास का नाम। दवदहन = दावाग्नि। वनाग्नि।

४ दे० 'दवथु'।

दवथु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाह। जलन। २. सताप। परिताप। दुःख।

दवदग्ध(पु)—वि० [सं० दव+दग्ध, प्रा० दड्ढ]दावाग्नि में जला हुआ। उ०—तहाँ सु अंश्वतर रिप्प इक, कस तन अग सुरग। दवदड्ढो जनु द्रुम कोढ कै कोढ भूत भुअग।—पृ० रा०, ६।१७।

दवन(पु)[1]— वि०, संज्ञा पुं० [सं० दमन, प्रा० दवण] दमन करनेवाला। नाश करनेवाला। उ०—प्राणनाथ सुदर सुजानमनि दीनबंधु जन आरति दवन।—तुलसी (शब्द०)।

दवन[2]—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] दौना नामक पौधा। उ०—महुव गुलाब, मजु मोगरे, दवन फूले, बेले अलबेले खिले चपक चमन में।—भुवनेश (शब्द०)।

दवनपापड़ा—संज्ञा पुं० [सं० दमनपर्पट] पितपापडा।

दवना(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] दे० 'दौना'।

दवना[2]—क्रि० स० [सं० दव] जलाना। उ०—ग्रीषम दवत दवरिया कुंज कुटीर। तिमि तिमि तकत तरुनिर्याहि बाढ़ी पीर।—रहीम (शब्द०)।

दवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दवन] फसल के सूखे डठलों को बैलों से रौंदवाकर दाना झाड़ने का काम। दँवरी। मिसाई। मँड़ाई।

दवरिया‡—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दवारि'। उ०—ग्रीषम दवत दवरिया कुंज कुटीर। तिमि तिमि तकत तरुनिर्याहि बाढ़ी पीर।—रहीम। (शब्द०)।

दवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दवारि] आग। अग्नि। ज्वाला। ताप। उ०—जो मन की दवरी बुझि आवे, तब घट में परचे कुछ पावे। —दरिया बा०, पृ० ३५।

दवाँरि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दावाग्नि] दे० 'दावानल'। उ०—अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के।—मानस०, १।३२।

दवा[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ वह वस्तु जिससे कोई रोग या व्यथा दूर हो। औषध। औखद। उ०—दरद दवा दोनों रहैं पीतम पास तयार।—रसनिधि (शब्द०)।

यौ०—दवाखाना। दवादारू। दवादर्पन। दवादरमन।

मुहा०—दवा को न मिलना = थोड़ा सा भी न मिलना। अप्राप्य होना। दुर्लभ होना। दवा देना = दवा पिलाना।

२ रोग दूर करने का उपाय। उपचार। चिकित्सा। जैसे,—अच्छे वैद्य की दवा करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ दूर करने की युक्ति। मिटाने का उपाय। जैसे,—शक की कोई दवा नहीं। ४ अवरोध या प्रतिकार का उपाय। ठीक रखने की युक्ति। दुरुस्त करने की तदबीर। जैसे,—उसकी दवा यही है कि उसे दो चार खरी खोटी सुना दो।

दवा(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दव] १. वनाग्नि। वन में लगनेवाली आग। उ०—कानन भूधर वारि बयारि महा विष व्याधि दवा अरि घेरे।—तुलसी (शब्द०)। २ अग्नि। आग। उ०—(क) चल्यो दवा सो तप्त दवा दुति भूरिश्रवा भर।—गोपाल (शब्द०)। (ख) तवा सो तपत धरामंडल अखडल और मारतंड मडल दवा सो होत भोर तें।—बेनी (शब्द०)।

दवाई†—संज्ञा स्त्री० [फा० दवा+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'दवा[1]'।

दवाईखाना— संज्ञा पुं० [हिं० दवाई+फ़ा० खाना] दे० 'दवाखाना'।

दवाखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ वह जगह जहाँ दवा बिकती हो। २ औषधालय। चिकित्सालय।

दवागनि(पु) – संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि'। उ०—कहा दवागनि के पिएँ, कहा धरें गिरि धीर।—मति० ग्रं०, पृ० ३४७।

दवागि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] वनाग्नि। दावानल।

दवागिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि'।

दवाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली आग। दावानल।

दवात[1]—संज्ञा स्त्री०[म० दावात] लिखने की स्याही रखने का बरतन। मसिपात्र। मसिदानी।

दवात(ए)†[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दवा] औषध। उ०—रचिक ताहि न भावै, कहै कहानी जेत। परम दवात कहै जेत, दुखद होइ तेहि तेत।—इद्रा०, पृ० १३।

दवादर्पन—संज्ञा पुं० [फा० दवा + सं० दर्पण] औषध। चिकित्सा। उ०—बिना दवा दर्पन के गृहनी स्वरग चली आँखें आतीं भर।—ग्राम्या, पृ० २५।

दवादस(ए)—वि० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश'। उ०—गंधमादन आद दवादस गाजिय कीस, समाजिय क्रोतरा।—रघु० रू०, पृ० १५८।

दवान(ए)—संज्ञा पुं० [देश० ? या डिं०] एक प्रकार का अस्त्र। एक प्रकार की उत्तम कोटि की तलवार। उ०—(क) संज्जे हयद जे भरे सान, गज्जे सुभट्ट लै लै दवान।—सुजान०, पृ० १७। (ख) चले कवान बान आसमान भू गरज्जियो। घवान दै दवान की कृपान हीय सज्जियो।—सुजान०, पृ० ३०।

दवानल—संज्ञा पुं० [सं०] दवाग्नि।

दवाम[1]—क्रि० वि० [अ०] नित्य। हमेशा। सदा। उ०—एक शर्त उस संधि में यह भी थी कि झाँसी का राज्य रामचंद्र राव के कुटुंब में दवाम के लिये रहेगा, चाहे वारिस और संतान हों, चाहे गोत्रज हों अथवा गोद लिए हुए हों।—झाँसी०, पृ० १०।

दवाम[2]—संज्ञा पुं० [अ०] नित्यता। स्थायित्व। हमेशगी।

दवामी—वि० [अ०] जो चिरकाल तक के लिये हो। स्थायी। जो सदा बना रहे। जैसे, दवामी बंदोबस्त।

दवामी बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जमीन का वह बंदोबस्त जिसमें सरकारी मालगुजारी सब दिन के लिये मुकर्रर कर दी जाय। भूमिकर का वह प्रबंध जिसमें कर सब दिन के लिये इस प्रकार नियत कर दिया जाय कि उसमें पीछे घटती बढ़ती न हो सके।

दवार†[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'द्वार'। उ०—पधरावियो सुभ प्रात। छल हूँत सुरधर छात। दल कमँध साह दवार। अन रहे साम उबार।—रा० रू०, पृ० ३०।

दवार[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दवारि'।

दवारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि, हिं० दवागि] वनाग्नि। दावानल। उ०—हाय न कोऊ तलास करै ये पलासन कौने दवारि लगाई।—नरेश (शब्द०)।

दवाला(ए)†—संज्ञा पुं० [सं० द्विदल, राज० द्वाला (=दो चरणों-वाला)] छंद। उ०—विषम सम विषम सम दवालै वेद तुक, ठीक गुर अंत तुक वहस ठाला।—रघु० रू०, पृ० ५०।

दव्वार‡—संज्ञा पुं० [सं० दावाग्नि, हिं० दवारि] [आग की लपट) आग का पुंज। उ०—आगे अग्नि का दव्वार। तपती भाय ताता सार।—राम० धर्म०, पृ० १६८।

दश—वि० [सं०] दे० 'दस'।

दशकंठ—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठ] रावण (जिसके दस कंठ या सिर थे)।

दशकंठजहा—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजहा] रावण के संहारक, श्री रामचंद्र। उ०—आजु बिराजत राज है दशकंठजहा को।—तुलसी (शब्द०)।

दशकंठजित्—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजित्] रावण को जीतनेवाले, श्रीराम।

दशकंठारि—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठारि] (रावण के शत्रु) श्री रामचंद्र।

दशकंध—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्कन्ध, हिं० कंध] रावण।

दशकंधर—संज्ञा पुं० [सं० दशकन्धर] रावण।

दशक—संज्ञा पुं० [सं०] १ दस का समूह। दस की ढेरी। २ दस वर्षों का समूह। दस साल का निर्धारित काल।

दशकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दशकर्मन्] गर्भाधान से लेकर विवाह तक के दस संस्कार, जिनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकरण, निष्क्रामण, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरन, उपनयन और विवाह।

दशकुमारचरित—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत कवि दंडी का लिखा एक गद्यात्मक काव्य।

दशकुलवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कु[illegible] जिनके नाम ये हैं—लिसोड़ा, करंज, बेल, पीप[illegible] बरगद, गूलर, आँवला और इमली।

दशकोपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रताल के ग्यारह भे[illegible] (संगीत)।

दशक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार इन [illegible] दूध—गाय, बकरी, ऊँटनी, भेंड़, भैंस, घोड़ी, स्त्री, [illegible] हिरनी और गदही।

दशगात—संज्ञा [सं० दशगात्र] दे० 'दशगात्र'।

दशगात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर के दस प्रधान अंग। २ मृतक संबंधी एक कर्म जो उसके मरने के पीछे दस दिनों तक होता रहता है।

विशेष—इसमें प्रतिदिन पिंडदान किया जाता है। पुराणों में लिखा है कि इसी पिंड के द्वारा क्रम क्रम से प्रेत का शरीर बनता है और दसवें दिन पूरा हो जाता है। जैसे, पहले पिंड से सिर, दूसरे से आँख, कान, नाक इत्यादि।

दशग्रामपति—संज्ञा पुं० [सं०] जो राजा की ओर से दस ग्रामों का अधिपति या शासक बनाया गया हो।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि राजा पहले प्रत्येक ग्राम का एक मुखिया या शासक नियुक्त करे, फिर उससे अधिक प्रतिष्ठा और योग्यता के किसी मनुष्य को दस ग्रामों का अधिपति नियत करे, इसी प्रकार बीस, शत, सहस्र आदि तक के ग्रामों के हाकिम नियुक्त करने का विधान लिखा है।

दशग्रामिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशग्रामपति' [को०]।

दशग्रामी—संज्ञा पुं० [सं० दशग्रामिन्] दे० 'दशग्रामपति' [को०]।

दशग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौ। शत।

यौ०—दले खब दले = पानी पीओ (हाथीवानों की बोली) ।

दलैया†—संज्ञा पुं० [हिं० दलना] १. दलने या पीसनेवाला । २ नाश करनेवाला । मारनेवाला । उ०—मदर बिलद मंदगति के चलैया, एक पल में दलैया, पर दल बलखानि के । —मति० ग्र०, पृ० ३११ ।

दल्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रतारण । धोखा । २ पाप । ३ चक्र ।

दल्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र का वज्र । अशनि । २ शिव का एक नाम [को०] ।

दल्लाल—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'दलाल' । उ०—जिन्हें हम व्यापारी न कहकर दल्लाल कहेंगे । —प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६३ ।

दल्लाला—संज्ञा स्त्री० [अ० दल्लालह्] कुटनी । दूती ।

दल्लाली—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'दलाली' ।

दवँगरा‡—संज्ञा पुं० [सं० दव + अङ्गार] १ वर्षा ऋतु के प्रारंभ में होनेवाली झड़ी । उ०—बिहरत हिया करहु पिउ टेका । दीठि दवँगरा मेरवहु एका ।—जायसी । (शब्द०) । २ वर्षा के प्रारंभ में पानी का कहीं कहीं एकत्र होकर धीरे धीरे बहना । (बुदेल०) ।

दवँरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दँवरी' ।

दव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन । जगल । २. दवाग्नि । वह आग जो वन में आपसे आप लग जाती है । दवारि । दावा । उ०—गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा । —तुलसी (शब्द०) । ३ अग्नि । आग । उ०—(क) आजु अयोध्या जल नहिं अचवों ना मुख देखों माई । सूरदास राघव के बिछुरे मरों भवन दव लाई । —सूर (शब्द०) । (ख) राकापति षोडश उगैं तारागण समुदाय । सकल गिरिन दव लाइए रवि बिनु राति न जाय । —तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दवदग्धक = एक तृण । एक घास का नाम । दवदहन = दावाग्नि । वनाग्नि ।

४ दे० 'दवथु' ।

दवथु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाह । जलन । २. संताप । परिताप । दुःख ।

दवदग्ध(पु)—वि० [सं० दव + दग्ध, प्रा० दद्ध] दावाग्नि मे जला हुआ । उ०—तहाँ सु अंबतर रिष्व इक, कृश तन अग सुरग । दवदद्धौ जनु द्रुम कोइ के कोइ भूत भुअग ।—पृ० रा०, ६।१७।

दवन(पु)¹— वि०, संज्ञा पुं० [सं० दमन, प्रा० दवण] दमन करनेवाला । नाश करनेवाला । उ०—प्राणनाथ सु दर सुजानमनि दीनबधु जन आरति दवन ।—तुलसी (शब्द०) ।

दवन²—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] दौना नामक पौधा । उ०—गहब गुलाब, मजु मोगरे, दवन फूले, बेले अलबेले खिले चपक चमन में ।—भुवनेश (शब्द०) ।

दवनपापड़ा—संज्ञा पुं० [सं० दमनपर्पट] पितपापडा ।

दवना(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] दे० 'दौना' ।

दवना²—क्रि० स० [सं० दव] जलाना । उ०—ग्रीषम दवत दवरिया कुज कुटीर । तिमि तिमि तकत तरुनिन्हि बाढ़ी पीर ।—रहीम (शब्द०) ।

दवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दवन] फसल के सूखे डठलों को बैलों से रौंदवाकर दाना झाड़ने का काम । दँवरी । मिसाई । मँड़ाई ।

दवरिया‡—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दवारि' । उ०—ग्रीषम दवत दवरिया कुज कुटीर । तिमि तिमि तकत तरुनिन्हि बाढ़ी पीर ।—रहीम । (शब्द०) ।

दवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दवारि] आग । अग्नि । ज्वाला । ताप । उ०—जो मन की दवरी बुझि आवै, तब घट में परचै कुछ पावै । —दरिया बा०, पृ० ३५ ।

दवाँरि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दावाग्नि] दे० 'दावानल' । उ०—अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के । कामद घन दारिद दवाँरि के ।—मानस०, १।३२ ।

दवा¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ वह वस्तु जिससे कोई रोग या व्यथा दूर हो । औषध । ओखद । उ०—दरद दवा दोनों रहैं पीतम पास तयार ।—रसनिधि (शब्द०) ।

यौ०—दवाखाना । दवादारू । दवादर्पन । दवादरमन ।

मुहा०—दवा को न मिलना = थोड़ा सा भी न मिलना । अप्राप्य होना । दुर्लभ होना । दवा देना = दवा पिलाना ।

२ रोग दूर करने का उपाय । उपचार । चिकित्सा । जैसे,—अच्छे वैद्य की दवा करो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३ दूर करने की युक्ति । मिटाने का उपाय । जैसे,—शक की कोई दवा नहीं । ४ अवरोध या प्रतिकार का उपाय । ठीक रखने की युक्ति । दुरुस्त करने की तदबीर । जैसे,—उसकी दवा यही है कि उसे दो चार खरी खोटी सुना दो ।

दवा(पु)†²—संज्ञा स्त्री० [सं० दव] १ वनाग्नि । वन मे लगनेवाली आग । उ०—कानन भूधर वारि बयारि महा विष व्याधि दवा अरि घेरे ।—तुलसी (शब्द०) । २ अग्नि । आग । उ०—(क) चल्यो दवा सो तप्त दवा दुति भूरिश्रवा भर ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) तवा सो तपत धरामंडल अखडल और मारतड मडल दवा सो होत भोर तें ।—बेनी (शब्द०) ।

दवाई†—संज्ञा स्त्री० [फा० दवा + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'दवा¹' ।

दवाईखाना—संज्ञा पुं० [हिं० दवाई + फा० खाना] दे० 'दवाखाना' ।

दवाखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ वह जगह जहाँ दवा बिकती हो । २. औषधालय । चिकित्सालय ।

दवागनि(पु) - संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि' । उ०—कहा दवागनि के पिएँ, कहा धरें गिरि धीर ।--मति० ग्र०, पृ० ३४७ ।

दवागि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] वनाग्नि । दावानल ।

दवागिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि' ।

दवाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन मे लगनेवाली आग । दावानल ।

दवात[1]—संज्ञा स्त्री०[अ० दावात] लिखने की स्याही रखने का बरतन। मसिपात्र। मसिदानी।

दवात(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दवा] औषध। उ०—रविक ताहि न भावै, कहै कहानी जेत। परम दवात कहै जेत, दुखद होइ तेहि तेत।—इद्रा०, पृ० १३।

दवादर्पन—संज्ञा पुं० [फा० दवा + सं० दर्पण] औषध। चिकित्सा। उ०—बिना दवा दर्पन के गृहनी स्वरग चली आँखें आती भर।—ग्राम्या, पृ० २५।

दवादस(पु)—वि० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश'। उ०—गंधमादन माद दवादस गाजिय कीस, समाजिय कीतरा।—रघु० रू०, पृ० १५८।

दवान(पु)—संज्ञा पुं० [देश० ? या डिं०] एक प्रकार का अस्त्र। एक प्रकार की उत्तम कोटि की तलवार। उ०—(क) संज्जे हयद जे भरे सान, गज्जे सुभट्ट लै लै दवान।—सुजान०, पृ० १७। (ख) चले कवान वान आसमान भू गरज्जियो। धवान दै दवान की कृपान हीय सज्जियो।—सुजान०, पृ० ३०।

दवानल—संज्ञा पुं० [सं०] दवाग्नि।

दवाम[1]—क्रि० वि० [अ०] नित्य। हमेशा। सदा। उ०—एक शर्त उस संधि में यह भी थी कि झाँसी का राज्य रामचंद्र राव के कुटुंब में दवाम के लिये रहेगा, चाहे वारिस और संतान हों, चाहे गोत्रज हों अथवा गोद लिए हुए हों।—झाँसी०, पृ० १०।

दवाम[2]—संज्ञा पुं० [अ०] नित्यता। स्थायित्व। हमेशगी।

दवामी—वि० [अ०] जो चिरकाल तक के लिये हो। स्थायी। जो सदा बना रहे। जैसे, दवामी बंदोबस्त।

दवामी बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जमीन का वह बंदोबस्त जिसमें सरकारी मालगुजारी सब दिन के लिये मुकर्रर कर दी जाय। भूमिकर का वह प्रबंध जिसमें कर सब दिन के लिये इस प्रकार नियत कर दिया जाय कि उसमें पीछे घटती बढ़ती न हो सके।

दवार†[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'द्वार'। उ०—पघराविये सुभ प्रात। छल हूंत मुरधर छात। दल कमंध साह दवार। अन रहे साम उबार।—रा० रू०, पृ० ३०।

दवार[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दवारि'।

दवारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि, हिं० दवागि] वनाग्नि। दावानल। उ०—हाय न कोऊ तलास करै ये पलासन कौने दवारि लगाई।—नरेश (शब्द०)।

दवाला(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० द्विदल, राज० द्वाला (=दो चरणों-वाला)] छंद। उ०—विषम सम विषम सम दवालै वेद तुक, ठीक गुर अंत तुक वहुस ठाला।—रघु० रू०, पृ० ५०।

दव्वार‡—संज्ञा पुं० [सं० दावाग्नि, हिं० दवारि] [आग की लपट) आग का पुंज। उ०—आगे अग्नि का दव्वार। तपती भाय ताता सार।—राम० धर्म०, पृ० १६८।

दश—वि० [सं०] दे० 'दस'।

दशकंठ—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठ] रावण (जिसके दस कंठ या सिर थे)।

दशकंठजहा—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजहा] रावण के संहारक, श्री रामचंद्र। उ०—आजु विराजत राज है दशकंठजहा को।—तुलसी (शब्द०)।

दशकंठजित्—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजित्] रावण को जीतनेवाले, श्रीराम।

दशकंठारि—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठारि] (रावण के शत्रु) श्री रामचंद्र।

दशकंध—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्कन्ध, हिं० कंध] रावण।

दशकंधर—संज्ञा पुं० [सं० दशकन्धर] रावण।

दशक—संज्ञा पुं० [सं०] १ दस का समूह। दस की ढेरी। २ दस वर्षों का समूह। दस साल का निर्धारित काल।

दशकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दशकर्मन्] गर्भाधान से लेकर विवाह तक के दस संस्कार, जिनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकरण, निष्क्रामण, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरन, उपनयन और विवाह।

दशकुमारचरित—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत कवि दण्डी का लिखा एक गद्यात्मक काव्य।

दशकुलवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कु[illegible] जिनके नाम ये हैं—लिसोड़ा, करंज, बेल, पीप[illegible] बरगद, गूलर, आँवला और इमली।

दशकोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रताल के ग्यारह भे[illegible] (संगीत)।

दशक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार इन [illegible] दूध—गाय, बकरी, ऊँटनी, भेंड़, भैंस, घोड़ी, स्त्री, [illegible] हिरनी और गदही।

दशगात—संज्ञा [सं० दशगात्र] दे० 'दसगात्र'।

दशगात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर के दस प्रधान अंग। २ मृतक संबंधी एक कर्म जो उसके मरने के पीछे दस दिनों तक होता रहता है।

विशेष—इसमे प्रतिदिन पिंडदान किया जाता है। पुराणों में लिखा है कि इसी पिंड के द्वारा क्रम क्रम से प्रेत का शरीर बनता है और दसवें दिन पूरा हो जाता है। जैसे, पहले पिंड से सिर, दूसरे से आँख, कान, नाक इत्यादि।

दशग्रामपति—संज्ञा पुं० [सं०] जो राजा की ओर से दस ग्रामों का अधिपति या शासक बनाया गया हो।

विशेष—मनुस्मृति मे लिखा है कि राजा पहले प्रत्येक ग्राम का एक मुखिया या शासक नियुक्त करे, फिर उससे अधिक प्रतिष्ठा और योग्यता के किसी मनुष्य को दस ग्रामों का अधिपति नियत करे, इसी प्रकार बीस, शत, सहस्र आदि तक के ग्रामों के हाकिम नियुक्त करने का विधान लिखा है।

दशग्रामिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशग्रामपति' [को०]।

दशग्रामी—संज्ञा पुं० [सं० दशग्रामिन्] दे० 'दशग्रामपति' [को०]।

दशग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौ। शत।

दशद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के दस छिद्र—२ कान, २ आँख, २ नाक, १ मुख, १ गुद, १ लिंग और १ ब्रह्मांड ।

दशधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मनुस्मृति में निर्दिष्ट धर्म के दस लक्षण जो मानव मात्र के लिये करणीय हैं ।

दशधा[1]—वि० [सं०] १. दस प्रकार का । २. दस के स्थान का । दशम । दसवाँ । उ०—विश्वमंगल आधार सर्वानंद दशधा के आगार ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४११ ।

दशधा[2]—क्रि० वि० दस प्रकार ।

दशन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दाँत । २ दाँत से काटना । दाँतो से काटने की क्रिया । ३ कवच । वर्म । ४ शिखर । चोटी ।

यौ०—दशनच्छद । दशनवासस् = होंठ । दशनपद = दंतक्षत का स्थान अथवा चिह्न । दशनबीज ।

दशनच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] होठ । ओष्ठ ।

दशनबीज—संज्ञा पुं० [सं०] अनार ।

दशनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों की चमक । दाँतो की दमक [को०] ।

दशनाढ्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोनिया शाक ।

दशनाम—संज्ञा पुं० [सं०] सन्यासियो के दस भेद जो ये हैं—१ तीर्थ, २ आश्रम, ३ वन, ४ अरण्य, ५. गिरि, ६ पर्वत, ७. सागर, ८ सरस्वती, ९ भारती और १०. पुरी ।

दशनामी—संज्ञा पुं० [हिं० दश+नाम] सन्यासियों का एक वर्ग जो अद्वैतवादी शंकराचार्य के शिष्यों से चला है ।

विशेष—शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्य थे—पद्मपाद, हस्तामलक, मंडन और तोटक । इनमे से पद्मपाद के दो शिष्य थे—तीर्थ और आश्रम, हस्तामलक के दो शिष्य—वन और अरण्य, मंडन के तीन शिष्य—गिरि, पर्वत और सागर । इसी प्रकार तोटक के तीन शिष्य—सरस्वती, भारती और पुरी । इन्ही दस शिष्यो के नाम से संन्यासियो के दस भेद चले । शंकराचार्य ने चार मठ स्थापित किए थे, जिनमें इन दस प्रशिष्यो की शिष्यपरंपरा चली जाती है । पुरी, भारती और सरस्वती की शिष्य परंपरा शृंगेरी मठ के अंतर्गत है; तीर्थ और आश्रम शारदा मठ के अंतर्गत, वन और अरण्य गोवर्धन मठ के अंतर्गत तथा गिरि, पर्वत और सागर जोशी मठ के अंतर्गत हैं । प्रत्येक दशनामी संन्यासी इन्ही चार मठो में से किसी न किसी के अंतर्गत होता है । यद्यपि दशनामी ब्रह्म या निर्गुण उपासक प्रसिद्ध हैं, तथापि इनमे से बहुतेरे शैवमंत्र की दीक्षा लेते हैं ।

दशनोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधर । ओष्ठ । २ अधरचुंबन । ३ निश्वास । श्वास । ४ दाँतो द्वारा स्पृष्ट कोई पदार्थ [को०] ।

दशपंचतपा—संज्ञा पुं० [पुं० दशपञ्चतपस] इंद्रियों का निग्रह करते हुए पंचाग्नि तपस्या करनेवाला तपस्वी [को०] ।

दशप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशग्रामपति' ।

दशपारमिताधर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ केवटी मोथा । २. मालवे का एक प्राचीन विभाग जिसके अंतर्गत दस नगर थे । इसका नाम मेघदूत में आया है ।

दशपेय—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक प्रकार का यज्ञ ।

दशबल—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

विशेष—बुद्ध को दस बल प्राप्त थे, जिनके नाम ये हैं—दान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रणिधि और ज्ञान ।

दशबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव । पंचमुख [को०] ।

दशभुजा—संज्ञा स्त्री [सं०] दुर्गा का एक नाम ।

दशभूमिग—संज्ञा पुं० [सं०] (दान आदि दस भूमियों या बलो को प्राप्त करनेवाले) बुद्धदेव ।

दशभूमीश—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दशम—वि० [सं०] दसवाँ ।

यौ०—दशमदशा । दशमद्वार । दशमभाव । दशमलव ।

दशमदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के रसनिरूपण मे वियोगी की वह दशा जिसमें वह प्राण त्याग देता है ।

दशमद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मरंध्र । उ०—दशमद्वार से प्राण को त्याग श्री रामधाम को प्राप्त हुए ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४५५ ।

दशमभाव—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक जन्मलग्नांश । कुंडली मे लग्न से दसवाँ घर ।

विशेष—इस घर से पिता, कर्म, ऐश्वर्य आदि का विचार किया जाता है ।

दशमलव—संज्ञा पुं० [सं०] वह भिन्न जिसके हर मे दस या उसका कोई घात हो (गणित) ।

दशमहाविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'महाविद्या' [को०] ।

दशमांश—संज्ञा पुं० [सं०] दसवाँ हिस्सा । दसवाँ भाग ।

दशमाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद । एक प्रदेश का प्राचीन नाम ।

दशमालिक—संज्ञा पुं० [सं०] दशमाल देश ।

दशमास्य—वि० [सं०] माता के गर्भ में दस महीने तक रहनेवाला [को०] ।

दशमिकभग्नांश—संज्ञा पुं० [सं०] अंकगणित की एक क्रिया जिसके द्वारा प्रत्येक भिन्न या भग्नांश इस रूप में लाया जाता है कि उसका हर दस का कोई गुणित अंक हो जाता है । दशमलव ।

दशमी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चांद्रमास के किसी पक्ष की दसवीं तिथि । २ विमुक्तावस्था । उ०—दशमी रानी है दिल दायक । सब रानी की सो है नायक ।—कबीर सा०, पृ० ५५० । ३. मरणावस्था ।

दशमी[2]—वि० [सं० दशमिन्] [वि० स्त्री० दशमिनी] बहुत वृद्ध । बहुत पुराना । शतायु की अवस्थावाला ।

दशमुख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

यौ०—दशमुखांतक = राम ।

दशमुख[2]—संज्ञा पुं० [सं० दस + मुख] १. दसों दिशाएँ । २ त्रिदेव (ब्रह्मा के ४ मुख; विष्णु का १ और महेश के ५ मुख) । उ०—दशमुख मुख जोवैं गजमुख मुख को ।—राम चं०, पृ० १ ।

दशमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशमूत्रक' ।

दशमूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] इन दस जीवों का मूत्र जो वैद्यक में काम आता है—१. हाथी, २. भैंस, ३ ऊँट, ४. गाय, ५ बकरा, ६. मेढा. ७. घोड़ा, ८ गदहा, ९ पुरुष, और १० स्त्री ।

दशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] दस पेड़ों की छाल या जड़ जो दवा के काम आती है ।

विशेष—सरिवन (शालपर्णी), पिठवन (पृश्निपर्णी), छोटी कटाई, बड़ी कटाई, और गोखरू ये लघुमूल और वेल, सोनापाठा (श्योनाक), गंभारी, गनियारी और पाठा वृहन्मूल कहलाते हैं । इन दोनों के योग को दशमूल कहते हैं । दशमूल काश, श्वास और सन्निपात ज्वर में उपकारी माना जाता है ।

दशमूलीसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० दशमूलीयसङ्ग्रह] वे दस चीजें जो आग से बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को घर में रखनी चाहिए ।

विशेष—चंद्रगुप्त मौर्य के समय में निम्नलिखित दस चीजों को घर में रखने के लिये प्रत्येक व्यक्ति राजनियम के द्वारा बाध्य था,—पानी से भरे हुए पाँच घड़े, (२) पानी से भरा हुआ एक मटका, (३) सीढ़ी, (४) पानी से भरा हुआ बाँस का बरतन, (५) फरसा या कुल्हाड़ी, (६) सूप, (७) अंकुश, (८) खूँटा आदि उखाड़ने का औजार, (९) मशक और (१०) हलादि । इन दसो चीजो का नाम दशमूलीसंग्रह था । जो लोग इसके रखने में प्रमाद करते थे उनको १४ पण जुरमाना देना पड़ता था ।

दशमेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मकुंडली मे दशम भाव का अधिपति (ज्योतिष) । २. सिख संप्रदाय के दसवें गुरु गोविंदसिंह ।

दशमौलि—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशयोगभंग—संज्ञा पुं० [सं० दशयोगभङ्ग] फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रवेध जिसमे विवाह आदि शुभकर्म नहीं किए जाते ।

विशेष—जिस नक्षत्र मे सूर्य हो और जिस नक्षत्र मे कर्म होनेवाला हो, दोनो नक्षत्रों के जो स्थान गणनाक्रम मे हो उन्हें जोड़ डाले । यदि जोड़ पंद्रह, चार, ग्यारह, उन्नीस, सत्ताइस, अठारह या बीस आवे तो दशयोगभंग होगा ।

दशरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय एक प्राचीन राजा जिनके पुत्र श्रीरामचंद्र थे । ये देवताओं की ओर से कई बार असुरो से लडे थे और उन्हें परास्त किया था ।

विशेष—इस शब्द के आगे पुत्र वाचक शब्द लगने से 'राम' अर्थ होता है ।

दशरथसुत—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र ।

दशरश्मिशत—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । अंशुमाली [को०] ।

दशरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ दस रातें । २ एक यज्ञ जो दस रात्रियों में समाप्त होता था ।

दशरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत में नाटयशास्त्र पर आचार्य धनंजय का लिखा हुआ लक्षणग्रंथ ।

दशरूपभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु जिन्होंने दस अवतार धारण किया था [को०] ।

दशवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दशवक्त्र] दे० 'दशमुख' ।

दशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख ।

दशवाजी—संज्ञा पुं० [सं० दशवाजिन्] चंद्रमा ।

दशवाहु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

दशवीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक सत्र या यज्ञ का नाम ।

दशशिर—संज्ञा पुं० [सं० दश + शिरस्] रावण ।

दशशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ रावण । २. चलाए हुए अस्त्रो को निष्फल करने का एक अस्त्र ।

दशशीश(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] दे० 'दशशीर्ष' ।

दशसीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] रावण । दशमुख ।

दशस्यंदन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दशस्यन्दन] दशरथ नामक राजा ।

दशहरा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तिथि जिसे गंगा दशहरा भी कहते हैं ।

विशेष—इस तिथि को गंगा का जन्म हुआ था अर्थात् गंगा स्वर्ग से मर्त्यलोक में आई थीं । इसी से यह अत्यंत पुण्य तिथि मानी जाती है । कहते हैं, इस तिथि को गंगास्नान करने से दसों प्रकार के और जन्म जन्मांतर के पाप दूर होते हैं । यदि इस तिथि मे हस्तनक्षत्र का योग हो या यह तिथि मंगलवार को पड़े तो यह और भी अधिक पुण्यजनक मानी जाती है । दशहरे को लोग गंगा की प्रतिमा का पूजन करते हैं और सोने चाँदी के जलजंतु बनाकर भी गंगा में डालते हैं ।

२. विजयादशमी ।

दशहरा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा, जो दस प्रकार के पापों का हरण करती है [को०] ।

दशांग—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्ग] पूजन में सुगंध के निमित्त जलाने का एक धूप जो दस सुगंध द्रव्यों के मेल से बनता है ।

विशेष—यह धूप कई प्रकार से भिन्न भिन्न द्रव्यों के मेल से बनता है । एक रीति के अनुसार दस द्रव्य ये हैं—शिलारस, गुग्गुल, चंदन, जटामासी, लोबान, राल, खस, नख, भीमसेनी कपूर और कस्तूरी । दूसरी रीति के अनुसार मधु, नागरमोथा, घी, चंदन, गुग्गुल, अगर, शिलाजतु, सलई का धूप, गुड़ और पीली सरसों । तीसरी रीति गुग्गुल, गंधक, चंदन, जटामासी, सतावरि, सज्जी, खस, घी, कपूर और कस्तूरी ।

दशांग क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गक्वाथ] दस ओषधियों का काढ़ा ।

विशेष—इस काढ़े मे निम्नांकित १० ओषधियाँ प्रयुक्त होती हैं—(१) अड़ूसा, (२) गुर्च, (३) पित्तपापड़ा, (४) चिरायता, (५) नीम की छाल, (६) जलभंग, (७) हड़, (८) बहेड़ा, (९) आँवला, और (१०) कुलथी । इनके क्वाथ में मधु डालकर पिलाने से अम्लपित्त नष्ट होता है ।

दशांगुल[1]—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गुल] खरबूजा । डंगरा ।

दशांगुल²—वि० जो लंबाई मे दस अंगुल का हो। दस अंगुल के परिमाणवाला [को०]।

दशांत—संज्ञा पुं० [सं० दशान्त] बुढ़ापा।

दशांतर—संज्ञा पुं० [सं० दशान्तरा] शरीर अथवा जीव की विभिन्न दशा [को०]।

दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अवस्था। स्थिति या प्रकार। हालत। जैसे,—(क) रोगी की दशा अच्छी नहीं है। (ख) पहले मैंने इस मकान को अच्छी दशा में देखा था। २ मनुष्य के जीवन की अवस्था।

विशेष—मानव जीवन की दस दशाएँ मानी गई हैं—(१) गर्भवास, (२) जन्म, (३) बाल्य, (४) कौमार, (५) पौगंड, (६) यौवन, (७) स्थाविर्य, (८) जरा, (९) प्राणरोध और (१०) नाश।

३. साहित्य में रस के अंतर्गत विरही की अवस्था।

विशेष—ये अवस्थाएँ दस हैं—(१) अभिलाष, (२) चिंता, (३) स्मरण, (४) गुणकथन, (५) उद्वेग, (६) प्रलाप, (७) उन्माद, (८) व्याधि, (९) जड़ता और (१०) मरण।

४ फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह का नियत भोगकाल।

विशेष—दशा निकालने में कोई मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानकर चलते हैं और कोई १०८ वर्ष की। पहली रीति के अनुसार निर्धारित दशा विंशोत्तरी और दूसरी के अनुनिर्धारित अष्टोत्तरी कहलाती है। आयु के पूरे काल में प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग संख्या नियत है—जैसे, अष्टोत्तरी रीति के अनुसार सूर्य की दशा ६ वर्ष, चंद्रमा की १५ वर्ष, मंगल की ८ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, शनि की १० वर्ष, वृहस्पति की १९ वर्ष, राहु की १२ वर्ष और शुक्र की २१ वर्ष मानी गई है। दशा जन्मकाल के नक्षत्र के अनुसार मानी जाती है। जैसे, यदि जन्म कृत्तिका, रोहिणी या मृगशिरा नक्षत्र में होगा तो सूर्य की दशा होगी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य या अश्लेषा नक्षत्र में होगा तो चंद्रमा की दशा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी मे होगा तो मंगल की दशा, हस्त, चित्रा, स्वाती या विशाखा में होगा तो बुध की दशा, अनुराधा, ज्येष्ठा या मूल नक्षत्र में होगा तो शनि की दशा; पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित् या श्रवण नक्षत्र में होगा तो वृहस्पति की दशा, धनिष्ठा, शतभिषा या पूर्व भाद्रपद में होगा तो राहु की दशा और उत्तर भाद्रपद, रेवती, अश्विनी या भरणी नक्षत्र होगा तो शुक्र की दशा होगी। प्रत्येक ग्रह की दशा का फल अलग अलग निश्चित है—जैसे, सूर्य की दशा में चित्त को उद्वेग, धनहानि, क्लेश, विदेशगमन, बंधन, राजपीड़ा इत्यादि। चंद्रमा की दशा में ऐश्वर्य, राजसम्मान, रत्नवाहन की प्राप्ति इत्यादि।

प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल या दशा के अंतर्गत भी एक एक ग्रह का भोगकाल नियत है जिसे अंतर्दशा कहते हैं। रवि की दशा को लीजिए जो ६ वर्ष की है। अब इन ६ वर्षों के बीच सूर्य की अपनी दशा ४ महीने की, चंद्रमा की १० महीने की, मंगल की ५ महीने की, बुध की ११ महीने २० दिन की, शनि की ६ महीने २० दिन की, वृहस्पति की १ वर्ष २० दिन की, राहु की ८ महीने की, शुक्र की १ वर्ष २ महीने की है। इन अंतर्दशाओं के फल भी अलग अलग निरूपित हैं—जैसे, सूर्य की दशा में सूर्य की अंतर्दशा का फल राजदंड, मनस्ताप, विदेशगमन इत्यादि, सूर्य की दशा मे चंद्र की अंतर्दशा का फल शत्रुनाश, रोगशांति, वित्तलाभ इत्यादि।

ऊपर जो हिसाब बतलाया गया है वह नाक्षत्रिकी दशा का है। इसके अतिरिक्त योगिनी, वार्षिकी, लाग्निकी, मुकुंदा, पताकी, हरगौरी इत्यादि और भी दशाएँ हैं पर ऐसा लिखा है कि कलियुग में नाक्षत्रिकी दशा ही प्रधान है।

५ दीए की बत्ती ६ चिराग। ७. कपड़े का छोर। वस्त्रांत।

दशाकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कपड़े का छोर या अंचल। २. दीपक। चिराग।

दशाकर्षी—संज्ञा पुं० [सं० दशाकर्षिन्] दे० 'दशाकर्ष' [को०]।

दशाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णिक वृत्त [को०]।

दशाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलित ज्योतिष मे दशाओं के अधिपति ग्रह। २ दस सैनिकों या सिपाहियों का अफसर। जमादार। (महाभारत)।

दशानन—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशानिक—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

दशापवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध आदि में दान किए जानेवाले वस्त्रखंड।

दशापाक—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य का परिपाक। भाग्यफल का पूर्ण होना [को०]।

दशामय—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र।

दशारुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कैवर्तिका नाम की लता जो मालवा में होती है और जिससे कपड़े रँगे जाते हैं।

दशार्ण—संज्ञा पुं०[सं०]१. विंध्य पर्वत के पूर्व दक्षिण की ओर स्थित उस प्रदेश का प्राचीन नाम जिससे होकर धसान नदी बहती है।

विशेष—मेघदूत से पता चलता है कि विदिशा (आधुनिक भिलसा) इसी प्रदेश की राजधानी थी। टालमी ने इस प्रदेश का नाम दोसारन (Dosaron) लिखा है।

२ उक्त देश का निवासी या राजा। ३ तंत्र का एक दशाक्षर मंत्र। ३ जैन पुराण के अनुसार एक राजा।

विशेष—इस राजा ने तीर्थंकर के दर्शन के निमित्त जाकर अभिमान किया था। तीर्थंकर के प्रताप से उसे वहाँ १६,७७,७२,१६,००० इंद्र और १३,३७,०५,७२,८०,००,००,००० इंद्राणियाँ दिखाई पड़ी और उसका गर्व चूर्ण हो गया।

दशार्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धसान नदी जो विंध्याचल से निकलकर बुंदेलखंड के कुछ भाग मे बहती हुई कालपी के पास जमुना मे मिल जाती है।

दशार्द्ध, दशार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १ दस का आधा पाँच। २. बुद्धदेव। जो दशबलों से युक्त हैं।

दशार्ह—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्रोष्टुवंशीय धृष्ट राजा का पुत्र। २ राजा वृष्णि का पौत्र। ३. वृष्णिवंशीय पुरुष। ४. वृष्णिवंशियों का अधिकृत देश।

दशावतार—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् विष्णु के दस अवतार जो इस प्रकार हैं,—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (३) वाराह, (४) नृसिंह, (५) वामन, (६) परशुराम, (७) राम, (८) कृष्ण (९) बुद्ध और (१०) कल्कि।

दशावरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दस सभ्यों की शासक सभा। दस पंचों की राजसभा।

विशेष—ऐसी सभा जो व्यवस्था दे, उसका पालन मनु ने आवश्यक लिखा है। गौतम ने दशावरा के दस सभ्यों का विभाग इस प्रकार बताया है कि चार तो भिन्न भिन्न वेदों के, तीन भिन्न भिन्न आश्रमों के और तीन भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधि हों। बौधायन ने धर्मों के तीन ज्ञाताओं के स्थान पर मीमांसक, धर्मपाठक और ज्योतिषी रखे हैं।

दशाविपाक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशापाक'।

दशाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा जिसके रथ में दस घोड़े लगते हैं।

दशाश्वमेध—संज्ञा पुं० [सं०] १ काशी के अंतर्गत एक तीर्थ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि राजर्षि दिवोदास की सहायता से ब्रह्मा ने इस स्थान पर दस अश्वमेध यज्ञ किए थे। पहले यह तीर्थ रुद्रसरोवर के नाम से प्रसिद्ध था। ब्रह्मा के यज्ञ के पीछे दशाश्वमेध कहा जाने लगा। ब्रह्मा ने इस स्थान पर दशाश्वमेधेश्वर नामक शिवलिंग भी स्थापित किया था। जो लोग इस तीर्थ में स्नान करके उक्त शिवलिंग का दर्शन करते हैं उनके सब पाप छूट जाते हैं।

२ प्रयाग के अंतर्गत त्रिवेणी के पास वह घाट या तीर्थस्थान जहाँ यात्री जल भरते हैं। लोगों का विश्वास है कि इस स्थान का जल बिगड़ता नहीं।

दशास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख। रावण।

दशाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस दिन। २. मृतक के कृत्य का दसवाँ दिन।

विशेष—गृह्यसूत्रों में मृतक कर्म तीन ही दिनों का माना गया है। पहले दिन श्मशान कृत्य और अस्थिसंचय, दूसरे दिन रुद्रयाग, क्षौर आदि और तीसरे दिन सपिंडीकरण। स्मृतियों ने पहले दिन के कृत्य का दस दिनों तक विस्तार किया है जिनमें प्रत्येक दिन एक एक पिंड एक एक अंग की पूर्ति के लिये दिया जाता है। पर ग्यारहवें दिन के कृत्य में अब भी द्वितीयाह्नसंकल्प का पाठ होता है।

दशी—संज्ञा पुं० [सं० दशिन्] दस गाँवों का शासक। उ०—दश ग्रामों के शासक को 'दशी' कहा जाता था।—आदि०, पु० १११।

दशेंधन—संज्ञा पुं० [सं० दशा (=दीप की बत्ती) + इन्धन] प्रदीप। दीपक। दीया [को०]।

दशेर—संज्ञा पुं० [सं०] हिंसक जीव। हिंस्र प्राणी [को०]।

दशेरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मरु प्रदेश। मरु देश। २ मरु देश का निवासी। ३ उष्ट्र। ऊँट। युवा ऊँट। ४ गर्दभ। गदहा [को०]।

दशेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशेरक' [को०]।

दशेश—संज्ञा पुं० [सं०] दस गावों का अधिपति। दशी [को०]।

दश्त—संज्ञा पुं० [फा०] जंगल। बियाबान। वन। उ०—फिरते ही फिरते दश्त दिवाने किधर गए। वे आशिकी के हाय जमाने किधर गए।—कविता को०, भा० ४, पु० १५।

दषिन (पु)—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'।

दषिना (पु)—संज्ञा, स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा'। उ०—पुनु विप्रहि दषिना करि दीन्हा। देषत ताहि नैन हरि लीन्हा—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २१२।

दष्ट—वि० [सं०] जिसे किसे ने डसा हो या काट लिया हो। काटा हुआ। उ०—चेतनाहीन मन मानता स्वार्थ घन। दष्ट ज्यों हो सुमन छिद्र शत तनु पान।—गीतिका, पृ० ५८।

दसँन (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दशन] दे० 'दशन'। उ०—परमानंद ठगी नँदनदन, दसँन, कुंद मुसकावत।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३५।

दस[1]—वि० [सं० दश] १ पाँच का दूना। जो गिनती में नौ से एक अधिक हो। २. कई। बहुत से। जैसे,—(क) दस आदमी जो कहें उसे मानना चाहिए। (ख) वहाँ दस तरह की चीजें देखने को मिलेंगी।

दस[2]—संज्ञा पुं० १ पाँच की दूनी संख्या। २ उक्त संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१०।

दसा[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० दिश्, प्रा० दिस्, राज० दस] ओर। तरफ। दिशा। उ०—आज धरा दस ऊनम्यउ, काली घड़ सखराँह। उवा धण देसी ओलँवा, कर कर लाँबी बाँह।—ढोला०, दू० २७१।

दसई†—वि० [सं० दशम] दशम। दसवाँ। दस की संख्यावाला। उ०—दसई द्वार न खोलत कोई। तब खोलै जब मरमी होई।—इंद्रा०, पृ० ४६।

दसकंध (पु)—संज्ञा पुं० [सं० दशस्कन्ध, हिं० दसकंध] रावण। उ०—मसकरूप दसकंधपुर निसि कपि घर घर देखि।—तुलसी०, ग्रं० पु० ८६।

यौ०—दसकंधपुर = लंका।

दसखत‡—संज्ञा पुं० [फा० दस्तखत] दे० 'दस्तखत'।

दसगुना—वि० [सं० दशगुणित] किसी संख्या या परिमाण का दस प्रतिशत अधिक। उ०—होत दसगुनो अंकु है दिएँ एक ज्यो बिंदु। दिएँ दिठोना यो बढ़ी आनन आभा इंदु।—मति० ग्रं०, पृ० ४५३।

दसगून (पु)—वि० [हिं० दसगुना] दे० 'दसगुना'। उ०—राम नाम को अंक है, सब साधन हैं सुन। अंक गए कछु हाथ नहि अंक रहे दसगु।—संतवाणी०, पृ० ७१।

दसठौन—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्थान] बच्चा जनने के समय की एक रीति, जिसके अनुसार प्रसूता स्त्री दसवें दिन नहाकर सौरी के घर से दूसरे घर में जाती है।

दसताँ—संज्ञा पुं० [फा० दस्तानह्] हाथ के पंजों की रक्षा के लिये बना हुआ लोह कवच। उ०—माथे टोप सनाह तन, कर

दसता रिन काज। मावड़िया सोभै नहीं, सूरा हूँदो साज।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २०।

दसन⁴—संज्ञा पुं० [सं० दशन] दे० 'दशन'। उ०—जो चित चढ़ै नाममहिमा जिन गुनगन पावन पन के। तो तुलसिहि तारिहौ बिप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०७।

यौ०—दसनबसन = दाँतों का वस्त्र अर्थात् ओठ और अधर। उ०—नैननि कै तारनि में राखौ प्यारे पूतरी कै, मुरली ज्यों लाइ राखौ दसनबसन में।—केशव० ग्रं०, भा० १, पृ० २८।

दसन²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी पंजाब, सिंध, राजपूताने और मैसूर में पाई जाती है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है। दसरनी।

दसन³—संज्ञा पुं० [सं०] १ विनाश। क्षय। नाश। २. हटा देना। बहिष्करण। निष्कासन। ३. क्षेपण। फेंकना [को०]।

दसना¹—क्रि० अ० [हिं० डासना] बिछना। बिछाया जाना। फैलाया जाना।

दसना²—क्रि० स० बिछाना। विस्तर फैलाना। उ०—विवेक सों अनेकधा दसे अनूप आसने। अनर्घ अर्घ आदि दै विनय किए घने घने।—केशव (शब्द०)।

दसना³—संज्ञा पुं० [हिं०] बिछौना। बिस्तर।

दसना⁴—क्रि० स० [सं० दशन या दशन] दे० 'डसना'।

दसनामी—संज्ञा पुं० [हिं० दशनाम] दे० 'दशनामी'। उ०—लेकिन दंडी पाखंडी नहीं निर्द्वंद्व स्वच्छंद अवधूत सर्व वर्णागम गिरि, पुरी, भारती और दसनामी और उदासीन भी।—किन्नर०, पृ० १०१।

दसनावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० दशनावलि] दाँतों की पंक्ति। उ०—खिल उठी चल दसनावलि आज, कुंद कलियों में कोमल आभ।—गुंजन, पृ० ४८।

दसमरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० दस + मडना] एक प्रकार की बरसाती बड़ी नाव जिसमें दस तख्ते लवाई के बल लगे होते हैं।

दसमाथ⁴—संज्ञा पुं० [हिं० दस + माथ] रावण। उ०—सुनु दसमाथ! नाथ साथ के हमारे कपि हाथ लंका लाइहैं तो रहैगी हथेरी सी।—तुलसी (शब्द०)।

दसमी—संज्ञा स्त्री० [सं० दशमी] दे० 'दशमी'।

दसरंग—संज्ञा पुं० [हिं० दस + रंग] मलखंभ की एक कसरत।

विशेष—इस कसरत में कमरपेटा करके जिधर का पैर मलखंभ को लपेटे रहता है उधर के हाथ को सीधी पकड़ से मलखंभ में लपेटकर और दूसरे हाथ को भी पीछे से फँसाकर सवारी बाँधते हैं तथा और अनेक प्रकार की मुद्राएँ करते हुए नीचे ऊपर खसकते हैं।

दसरत्थ⁴—संज्ञा पुं० [सं० दशरथ] दे० 'दशरथ'। उ०—क्यों न सँभारहि मोहिं, दयासिंधु दसरत्थ के।—तुलसी ग्रं०,पृ० ९०।

दसरथ⁴—संज्ञा पुं० [सं० दशरथ] दे० 'दशरथ'।

यौ०—दसरथसुत = रामचंद्र। उ०—सोइ दसरथसुत भगत हित कोसलपति भगवान।—मानस, १।११८।

दसरनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी। वि० दे० 'दसन'।

दसरान—संज्ञा पुं० [हिं० दस + रान ?] कुश्ती का एक पेच।

दसराहा—संज्ञा पुं० [सं० दशाहरा] विजया दशमी उ०—ढोला रहिसि निवारियउ मिलिसि दई कइ लेखि। पूगल हुइस ज प्राहुणउ, दसराहा लग देखि।—ढोला०, दू० २७३।

दसवाँ¹—वि० [सं० दशम] जिसका स्थान नौ और वस्तुओं के उपरांत पड़ता हो। जो क्रम में नौ और वस्तुओं के पीछे हो। गिनती के क्रम मे जिसका स्थान दस पर हो। जैसे, दसवाँ लड़का।

दसवाँ²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दशगात्र'।

दसस्यंदन⁴—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्यन्दन] दशरथ। उ०—जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसिल्या धनि दसस्यंदन।—घनानंद०, पृ० ५५१।

दसांग—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्ग] दे० 'दशांग'।

दसा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] दे० 'दशा'।

दसा²—संज्ञा पुं० [हिं० दस] अगरवाल वैश्यों के दो प्रधान भेदों में से एक।

दसारन—संज्ञा पुं० [सं० दशार्ण] एक देश। दे० 'दशार्ण'।

दसारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है।

दसी—संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] १. कपड़े के छोर पर का सूत। छोर। २. कपड़े का पल्ला। थान का आँचल। उ०—जाता है जिस जान दे, तेरी दसी न जाय।—कबीर (शब्द०)। ३ बैलगाड़ी की पटरी। ४.चमड़ा छीलने का औजार। रापी। ५ पता। निशान। चिह्न।

दसेंदू—संज्ञा पुं० [देश०] केंदू। तेंदू का पेड़।

दसेरक, दसेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशेरक'।

दसैं—संज्ञा स्त्री० [सं० दसमी, हिं० दसई] दशमी तिथि।

दसोतरा¹—वि० [सं० दशोत्तर] दस ऊपर। दस अधिक। जैसे, दसोतरा सौ अर्थात् एक सौ दस।

दसोतरा²—संज्ञा पुं० सौ मे दस। सैकड़ा पीछे दस का भाग।

दसौंधी—संज्ञा पुं० [सं० दास (= दानपत्र) + बन्धुक (= स्तुतिगायक, भाट)] बंदियों या चारणों की एक जाति जो अपने को ब्राह्मण कहती है। ब्रह्मभट्ट। भाट। राजाओं की वंशावली और प्रशंसा करनेवाला पुरुष। उ०—(क) राजा रहा दृष्टि करि औंधी। रहि न सका तब भाट दसौंधी।—जायसी (शब्द०)। (ख) देस देस तें ढाढ़ी आए मनवांछित फल पायो। को कहि सकै दसौंधी उनको भयो सबन मन भायो।—सूर (शब्द०)।

दस्तंदाज—वि० [फा० दस्तदाज] हस्तक्षेप करनेवाला। बाधा देनेवाला। छेड़छाड़ करनेवाला [को०]।

दस्तंदाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दस्तंदाजी] किसी काम में हाथ डालने की क्रिया। किसी होते हुए काम में छेड़छाड़। हस्तक्षेप। दखल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।